

मिताक्षरा सटीक

अर्थात्

मर्यादा परिपाटी समाचार

धर्मशास्त्र

प्रायश्चित्तकाण्ड

इससे प्रथम आचारकाण्ड व व्यवहारकाण्ड भी उपस्थित हैं ॥

जिसमें

जलदान प्रकार व आशौच सूतकदिनावधि कथन व सद्य शौच व्यवस्थाकथन व जगदुत्पत्ति प्रपंचविस्तार कथन व वृद्धादि समवाय व प्रायश्चित्त करणदोष व नरकादिनामस्वरूप व अतिपातक और पातकादिलक्षण भेद व सकामसुरापानादि महापातक प्रायश्चित्त कथन व स्वर्णापहारादि प्रायश्चित्त व अवकृष्टवध प्रायश्चित्त कथन व प्रत्येकव्रतोंके स्वरूप व नियमादि सविस्तार वर्णित हैं ॥

जिसको

सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न सकलकलाचातुरीधुरीण विद्याविलासी श्रीमान् मुंशी नवलकिशोर (सी आई ई) की आज्ञानुसार सर्वविद्यालङ्कृत विद्वद्वृन्द शिरोमणि सकल गुणिगणमण्डलीमण्डन आगरानिवासि पण्डित दुर्गाप्रसादजीने अत्यत परिश्रम से सम्पूर्ण विद्वज्जनों के निमित्तार्थ अति मनोहर व लालित्यपदोंसे सरलभाषामें अनुवाद किया ॥

प्रथमवार

स्थान लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर के छापेखाने में छापीगई

अप्रैल सन् १८८८ ई०

विज्ञापन ॥

इस महीने अर्थात् मार्च सन् १८८८ ई० पर्यन्त जो पुस्तकें बेचने के लियेतय्यारहैं उनमेंसे कुछ इस सूची मे लिखी हैं और उनका मोल बहुत किफायत से घटाके नियत हुआहै और व्योपारियों के लिये और सस्ती होंगी जिनको व्योपार की इच्छाहो वह मुंशीनवलकिशोर के छापेखाने मुकामलखनऊ हजरतगञ्जको खत भेजकर कीमतका निर्णयकरलें ॥

नामकिताब

(अ)

अमरकोषतीनोंकाण्ड
अध्यात्मरामायणभाषा टीकासहित
अमृतसागरबड़ाव छोटा
आरिथमेटिक तीनो भाग

(इ)

इलाजुलगुरबा
ईशावास्यवाजसनेय संहितोपनिषत्
इतिहास तिमिरनाशक
इंगलिस्तानकाइतिहास

(उ)

उमापतिदिग्विजय

(ऐ)

ऐक्ट १ सन् १८८६ ई०
ऐक्ट १२ सन् १८८१ ई०
ऐक्ट १० सन् १८८२ ई०
ऐक्ट १४ सन १८८२ ई०
ऐक्ट १० सन् १८८३ ई०
ऐक्ट १० सन् १८७६ ई०
ऐक्ट १० सन् १८६२ ई०
ऐक्ट२० सन् १८६६ ई०

नामकिताब

ऐक्ट२६ सन्१८८०ई०
ऐक्टमजमूआअवधल-गान१६ सन्१८६८ई०
ऐक्ट१८ सन्१८८६ई०
ऐक्ट२४ सन्१८७०ई०
ऐक्ट१६ सन्१८७३ई०

(क)

कायस्थकुलभास्कर
कायस्थविनोद
कर्मविपाकसंहिता
कृष्णबाललीला
कालिञ्जरमाहात्म्य
कृष्णसागर
कथा श्रीगंगाजी
कैवल्यकल्पद्रुम
कृष्णप्रिया
कविकुलकल्पतरु
कवितरंग
केनोपनिषत्
काव्यसंग्रह
कवित्तरत्नाकर दोभाग
कृष्णचालीसी

(ग)

गुटका तीनोंखण्ड

नामकिताब

गर्गसंहिता
गरुडपुराणप्रेतकल्प
गणितप्रकाश चारोंभाग

(च)

चित्रचन्द्रिका
चाणक्यनीति
चौरासीवार्तिक

(छ)

छन्दोर्णवपिंगल

(ज)

जातकालंकार
जातकाभरण
जगद्विनोद
जातकचन्द्रिका

(त)

तुलसीकृतरामायण
तशरीहुलहुरूफटूंडला०

(द)

दुर्गास्तोत्रमूल व सटीक
दुर्गायननवकाण्ड
देवीभागवतभाषाबारहोस्कन्ध

नामकिताब

दास्तानअमीरहमजा
दैवज्ञाभरण
दोहावलीरत्नावली

(न)

निर्णयसिंधु
नाममाहात्म्य
नानार्थनवसंग्रहावली
नवीनसंग्रह
नवरत्नभाष्य
निघंटभाषा
नारीबोध

(प)

परमार्थसार
प्रेमसागर
पारसभाग
प्रेमरत्न
प्रेमामृतसार
पद्मावतभाषा
पत्रासन्१८४५
पटवारियोंकीपुस्तकके तीनो भाग
प्रबोधचन्द्रोदयनाटक
पत्रहितैषिणीना०वक्री०

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्त काण्डका विज्ञापन॥



पाठक महाशयों को ज्ञातव्य है कि इस ग्रंथ की रचना और छापेद्वारा प्रकाश होने मध्ये यद्यपि राजा महाराजे आदि अनेक सज्जनों की कृपा दृष्टि धन दान की सहायता द्वारा आरूढ हुई परन्तु अन्तिम सिद्धि की फतेह (विजय) केवल मुंशीनवलकिशोर साहब (सी आई ई) रईसअवध लखनऊ के हाथ होनहार थी सो अब हुई विक्रमादित्य के सम्वत् १९४४ उन्नीससौ चवालिस में मुंशी साहब ने पूरा कराकर प्रकाश किया आगे को मुंशीनवलकिशोर जब चाहैं तभी बारंबार इसको छापेंगे कि जिससे उन सब सामान्य विद्वानों का उपकार होय जिनको ऐसा ग्रंथ अलभ्य रत्न हाथ नहीं आसका था—इसकी रचना का प्रारंभ सन् १८०२ ईसवी में मर्यादा प्रिय पंडित दुर्गाप्रसाद शुक्ल कान्यकुब्ज ने निज इच्छाचार से आगरा बेलनगंज में श्री यमुना तटपर किया जिन की जन्मभूमि शहर शाहाबाद जिला हरदोई मुल्क अवध राज लखनऊ में थी ताको बाल अवस्था में विद्याभ्यसन से सत्यक्त करि आगरा में मुस्तवासी हुये—अपने रचेहुये पाण्डुलेख (मसौदा) की प्रवृत्ति होनी चाहिये छापे का अवस्थान कल्पना करिके सन अठारह सौउन्नासी अस्सी तक सात आठवर्ष में जैसे तैसे आचार व्यवहार दो काण्डों को स्वाधीनता से छापिके कुछ पुस्तकें प्रकाश करि पाईं—उसी अवसर में श्रीमन्महाराणा मेद पाटेश्वर श्री सज्जनसिंह उदयपुर अधिष्ठित धीरेश ने धन दान की सहायता देकर व्यवहार मर्यादा परिपाटी वृहत्काण्ड पूरा करवाया किंतु उस समय व्यवहार शास्त्र अवलोकन की आकांक्षा उनको विशेष थी चाहते थे कि शीघ्र पूरा होय इसी हेतु मध्यम काल में सहायता उदय हुई थी—इसी प्रकार पहिला आचार काण्ड राजाधिराज शाहपुरा मेवाड ने पूरा करवायाथा—तथापि सात वर्ष में दो काण्डों की समाप्ति करके कर्ता के चित्तने उपराम लिया और व्यवहार काण्ड के अन्तमें समस्या लिखी कि आगेने बहुत बडे प्रायश्चित्त काण्ड का प्रारंभ नहीं करेंगे कि जब तक कोई धरणी पाल अपने ऊपर इसका पूरा भार न झेले—किंतु वही पूरा भार आज मुंशी नवलकिशोर ने अपने ऊपर स्वीकार सहित झेला अर्थात् उक्त समस्या लिखे पीछे ग्रंथ कर्ताने इस काण्डका रोकि थाँभि सन् १८८५ ई० तक पांच वर्ष छोटे मोटे वैद्यक आदि विद्याओं के अद्भुत ग्रंथों का पाण्डु लेख निर्माण करते हुये पूर्व तुल्य प्रकाशन वृत्ति से कालक्षेप किया—यद्यपि इसी मध्यम काल में परोपकारी मुंशी नवल किशोर ने यशोवृत्ति का विस्तार करतेहुये ग्रंथ कर्ता को अपने सन्मित्रों के द्वारा तथा चिट्ठियों से आवाहनका सबोधन भेजिके अभिलाषा प्रकट करी थी कि लखनऊ में आकर अपना अधूरा ग्रंथ पूरा करो तथापि (सत्यप्रतिज्ञेनपुन प्रतिज्ञा) इस आग्रह से रचयिता ने यही उत्तर भेजा कि आगरा में प्रारंभ होचुका था समाप्ति भी इसी जगह होनी चाहते हैं बल्कि उदयपुर के महाराणा धीरेशों ने जब जब आवाहन के आज्ञापत्र भेजे कि राजकीय ग्रंथालय का अधिष्ठातृ पद स्वीकार हो तो शीघ्र चले आवो या अपने इष्ट मित्रों को भेजो जो इस कार्य को करसकें—तबहू केवल इसी प्रतिज्ञा के प्रतिबंध से अपने मित्र वंशीधर वाजपेयी जिनकी नौकरी यहां छुटिचुकी थी स्नेहसे उनकी कैफियत की रिपोर्ट भेजि मञ्जूरी कराकर उस पदपर उदयपुर भेजिदिया आगरा नहीं छोडा—तिससे आप जो लखनऊ बुलाने बिना यहां बैठेही प्रतिज्ञा पूरी करैं तो पीछे कोई अटक न रहेगी—इस पर श्रीमान् मुंशी नवलकिशोरने ग्रंथकर्ता के साथ अपने दो संबंध माने कि जहां पर शासनी सुस्थान होने से जिस आगरे का मैं पहिला निवासी और जहां मेरे बहुत बढिया स्वजन इष्ट मित्र वकील व रईस मुंशी गिरिधर लाल आदि स्तूयर्ब भी उपस्थित है और जहां मैने (भार्गव विद्याश्रम नाम) महत् पाठशाला का प्रारंभ निज ज्ञाति भार्गव जनों के निमित्त से करवाया जिसके प्रबंध में श्री मुंशी गिरिधरलाल साहब वकील अदालत आगरा आदि सब ही

कुछ लिखे छापें—इसीलिये तीनि बार शोधिके व्यर्थ बिंदुमात्र को भी हरिताल से भ्रान्ति मेटि देता है कि दर्पण के तुल्य पढाजाय (यद्यपि विद्वानों के निकट किसी एक अक्षर या मात्रा का भूलसे रहिजाना कुछ अशुद्धिमें नहीं माना जाता क्योंकि इतना तो अत्यन्त शोधने पर भी कहीं दृष्टिचूक से रहिजाता है) परंच ऐसी दशा पर भी विशेष उदासी केवल इस बातपे ठाँहरी कि प्रायः वैतनिक लोग कुछ मात्रा वा अक्षर अपनी ओर से अधिक धर देते और कहीं विरले अक्षर का निज प्रमाद या चातुर्य से पलटि भी देते हैं—इसका दृष्टान्त जैसा इस कांड के पहिले पृष्ठ में भूमिका के श्लोक मात्र हैं उनके द्वितीय श्लोक में (योहास्य जगत स्रष्टा) यही तीसरा पाद है तहां स्रष्टा के स्थान पर भ्रष्टा बदलि के धर दिया—— इसी तरह बहुधा प्राचीन ऋषि वाक्यों में अक्षर मात्रा की अधिकता और व्यत्यय देखिपरा इसका भी प्रमाण यहां बाँये कोठे का चक्र देखो तो विद्वानों के समझने को अशुद्ध शुद्ध पत्रों से चुनिकर जुदा बना—— यह नमूना केवल इस प्रेरणा (ताकीद) के निमित्त से इस जगह धरा गया है कि ऐसाही अशुद्ध शुद्ध चक्रों में सर्वत्र समुझिके अपनी अपनी जिल्दें शोधिलेना —तहां प्रतिपृष्ठके केवल एक अशुद्धि शोधने का परिश्रम अति छोटी बात समुझिके—परमोदार मुंशी नवलकिशोर के महान् गुणपर यह धन्यवाद करना चाहिये कि जिसने ऐसे अलभ्य रत्न ग्रंथ का पूरा करवाकर थोडे मूल्य से प्रकाश किया जो पहिले बहुत मोल देने की शक्ति या इच्छा होते हुयेभी हाथ नहीं आता या संस्कृत मूल रूप हाथ आता तो समुझा नहीं जाता था—उक्त मुंशी व रेशक ऐसही उदार चरितों सहित सर्वस्वयं सदा चिरजीव रहो अशीश पायात् इति—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध जाथैतनिकप्रमाद से छपा	शुद्धपाठजामसोदा में दर्पणतुल्य
४	२४	अश्वराथे	अस्वराथे
४	१८	जमसूतक	जन्मसूतक
८	२४	मुर्दानजायँ	मुर्दा न लजायँ
६	०	चिरात्रि	त्रिरात्र
६	१०	दिमुखा	दिङ्मुखा
१६	०	माम	मास
४०	८८	का स्थिरत्व	का अस्थिरत्व
२०	३	त्रिहूँत्यापि	निहृँत्यापि
३३	३	धिच्युपा	पिचुपा
९३	१२	मातापितोरिति	मातापित्रोरिति
९४	२४	सनकाद्यर्थान्द्वे	अर्थात्सनकादेवै
७४	०	अविभक्तिवन	अविभक्तवन
३१	१८	मिद्धिकिये	मिद्धक्रिये
३२	४८	बहुता काल	बहुत काल
३०	१८	सम्पर्शननिपिध्यते	सस्पर्शन निपिध्यते
३०	१८	सम्पर्श सूतिकायास्तु	सम्पर्शसूतिकायास्तु
३३	२४	द्विजाश्चान्द्रायण	द्विजश्चान्द्रायण
४०	३०	चिप्यतेषु	त्विप्यतेषु
२०४	१४	ये आता ब्रह्मोज्झा	अयेयोता ब्रह्मोज्झता

संवत् १९४४ विक्रमी ॥

सन् १८८८ ई० जनवरी ॥

पण्डित दुर्गाप्रसाद धर्मशास्त्री

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का प्रथम सूचीपत्र ॥

मिताक्षरा स॰ प्रायश्चित्तकांड का प्रथम सूचीपत्र ।

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकाण्ड का प्रथम सूचीपत्र ।

इतिश्रीमर्यादाप्रियकृतेधर्मशास्त्रेप्रायश्चित्तकांडस्यलघुसूचीपत्रंसमाप्तम् ॥

अथ मिताक्षरा स० प्रायश्चित्त कांडस्य वृहत्सूचनं द्वितीयं ॥

पृष्ठ	पंक्ति	पुनर्निर्मितविषयभेदाः
१६०	१४	**इति प्रायश्चित्त निमित्तानां महापातकादीनांनाम लक्षण विवेक प्रकरणं त्रिपरिच्छेदमयं ॥** इस प्रकरण में २४ । २५ । २६ ये तीनि परिच्छेद हैं इन तीनों में महापातकों से लेकर तुच्छ उपपापों पर्यन्त सब तरहके निमित्तोंका निर्णयनाम लक्षणों सहित कियागयाहै—यद्यपि तीसवें परिच्छेदकेअन्तमें दशपरिच्छेदोंका प्रकरण कहाजायगा तिसको महाप्रकरण समुझिलेना कि वहतीनि प्रकरणोंका एक बडा प्रकरण है तिससे कुछ दोषनहीं (इसत्रुटिको चौदहवीं पंक्तिके साथहीलिखिलेना)
३२६	२७ ३०	भ्रामकता—इन तीनि पंक्तिओंकापाठ जो भ्रामकसा प्रतीत होताहै उस भ्रांतिका भंजन आगे ३३० पृष्ठमें दशवीं १० पंक्तिसे विचारो किन्तु उसीके अनुसारपाठ यहां भी समझो—यहां जो वशिष्ठ के वचन में—रजस्वला शब्द जुडाहोनेसे कुछ भ्रांतिसी प्रतीत होतीहै उसका भी समास ऐसा मानना कि (रजस्वलाच ऋतुस्नाताचआत्रेयीमाहुः) अर्थात् जुदी जुदी रजस्वलाको तथैव ऋतुस्नाताको भी आत्रेयी कहिते हैं• तहां मुख्यतो ऋतुस्नातानाम ऋतुमतीसे प्रयोजन है उसके अन्तर्गत रजस्वला होनेके दिवस भी अपेक्षित ठहिरे किन्तु केवल रजस्वला या उससे स्नान के समीपी दिवसों से तात्पर्य यहां नहीहै ऋतुमतीसे प्रयोजन ठीकहै उसीका प्रमाणदेखो प्रचेताके वचनसे ४३४ पृष्ठकी सबसे निचली पंक्तिमें जैसी अनृतुमती कही तैसी उसके विपरीत यहां ऋतुमती जानना—यह•सब साधारणोंके बोध हेतु लिखनापरा अन्यथा विवेकीजन आपही जानमानहैं (इन्हीं तीनि पंक्तिओंका पाठ परिवर्तन भी अशुद्ध शुद्ध चक्रोंको देखो)
३३२	२२	**चतुः परिच्छेदमयं ॥** इस प्रकरण में सत्ताइसकी आदिसे तीसके अन्ततक चारिहो परिच्छेद हैं जिनमें केवल ब्रह्महत्याकी व्यवस्था कहीगई (इस त्रुटिको बाईसवीं पंक्तिके साथही मिलाकर आगुपर लिखिलेना) ॥
३३३	२३	**इति साधारण प्रकरणांच दशपरिच्छेदमयं ॥** (इस त्रुटिको बाईस पंक्तिके नीचे और तेईसवींके ऊपर दोनोंके बीचमें स्थापन करना)
३५८	१० ११	अर्थ विशेष—ये दोनो पंक्तिदेखो उनमें वशिष्ठने कहाहै कि राजा आप न मारिसके तो चोरको औदुम्बरशस्त्र सोंपिदे तिससे अपने आपही चोर मरिजाय—इस कथनसे साफ यही अर्थ मिलता है कि तमंचा तुपंचा आदि गोलो वारूदवाला आग्नेयशस्त्र सौंपिदे जिसको चोर अपने हाथसे झेलिके तब शुद्धहोय —यद्यपि मिताक्षरा में (औदुम्बरंताम्रमयं) औदुम्बर तांबेकाशस्त्र ऐसाकहाहै क्योंकि उदुम्बर तांबा तिसकाबना औदुम्बर कहावै—तथापि यह ब्योरा नहीं खोलाहै कि तांबेका ऐसा कोई शस्त्र संसार में होताहै यानहीं जो अपने किसी विशेष नामसे विख्यात हो और जिसकेद्वारा चोर अपने हाथसे मरसके परंच तुपक्षा आदि आग्नेयशस्त्र यद्यपि लोहेके होतेहैं तोभी उनकानाम औदुम्बर इस लक्षण से वशिष्ठजीने माना होगा कि गूलरका फलभी औदुम्बर कहाता है जिसके समान गोली भी गोलहोती जो तुपंचा आदिमें भरीजाती और गुलिका गुटिका नामोंसे या वही हो सो गोल गोलक नामोंसे प्रसिद्ध है तथा लाक्षणिक सत्तार्थमें भी शास्त्रमें अतिशय मात्रसे प्रचलितहै (इसपाठको फालतू मानिके ३५८ पृष्ठ में सबसे नीचे खाली जगहपर स्थापनकरना)

पृष्ठ	पंक्ति	पुनर्निर्मितविषयभेदाः
४५२	२३	**इति साधारणं प्रकरणं पंचपरिच्छेदमयं• नचैतेषु पंचसुपरिच्छेदेषु प्रकरणत्व नियमः॥** अर्थात् चवालिस परिच्छेदकी आदिसे यहां अरतालिस परिच्छेद के अन्ततक पाच परिच्छेदोंका साधारण मिला भुला प्रकरण ऐसानाम यद्यपि बोधमात्र के निमित्तसे लिखि दियागया तो भी इन पाचोंमे विषय अपना अपना जुदाहै तिससे प्रकरणकानाम अर्थी सहित नहीं सिद्ध होताहै क्योंकि प्रकरण उन्हीं सबका एक होताहै जिनके विषय एक समान हो—इसीलिये इन पाचोंके जुदे जुदे पाच प्रकरण समझने चाहिये—इसका ब्योरा पारदार्य प्रकरणके ठिकानेपर फिर भी दर्शावेंगे तव समुझि लेना • इसके लिये ४७६ पृष्ठदेखो (इस त्रुटिको तेईस २३ पंक्तिके नीचे लिखिलेना)
४८५	१९ २४	अर्थवाद—इन दोनो पंक्तिको देखो • तहां कर्मसाधन होसकने आदि गुणका तात्पर्य केवल यहीहै कि घरके काम धन्धोंमें समर्थ और निपुणहोय तथा पतिके मैथुन और सेवा आदि प्रयोजन वालीहो विक्षिप्त या योनिहीना या गूगी बहिरी कोढिन आदि होनेसे निकम्मी न हो (परन्तु उस उत्तम गुणसे रहित होय जो स्त्रियोंका मासिकधर्म प्रसिद्धहै जिसके द्वारा सन्तानरूपी रत्न पैदाहोते हैं वही आर्तवी कहाती है उसके वधपर इनसे भी बडे प्रायश्चित्त चाहिये सो तीसवें परिच्छेद मे लिखिचुके तहा देखो (इस पाठको ४८१ पृष्ठमें सबसे नीचे स्थापन करना चाहिये यह किसी की त्रुटि नहींहै॥
४९०	२८	यहा संदेह शेषरहा कि जिनको यहां निकम्मी कहा उन्हींको ४८५ पृष्ठमें—तदपि (कर्मसाधनत्वादि गुणयोगिनी) यह कहिचुके तो फिर कर्मसाधन होसकने की सम्भावना आदि उत्तम गुणसे युक्त होनेपरभी निकम्मी उनको क्योंकहा—सुनो निकम्मी उनका परम उत्तम गुण समुझानेके निमित्त सेही कहागया तहा मंदा मध्यमा कहिके भी समुझिलेना क्योंकि कर्मका साधनत्व आदि गुणसेयुक्त होनेका ब्योरा उसी ४८५ पृष्ठकी अपेक्षा ऊपर लिखागया तिसको देखो वैसे गुणोंसे सयुक्त होनेपरभी निकम्मी या मंदा मध्यमा कहाती हैं क्योंकि आर्तवीसे मंद होतीहैं (इस पाठको २८ पंक्तिके बीच में एकहीहै इन चारिअक्षरोंके आगे त्रुटिमानिके हाशियेपर लिखना जिसके आगे। ४८९। यही अकहै
५०८	२१	भ्रामकपाठ—पचीसवीं पंक्तिसे लेकर परापर के आठ नव श्लोकहैं, यद्यपि उनमें अशुद्ध कोई पद नहीं है तथापि उनके विश्राम अस्तव्यस्त हैं कि प्रायश अर्द्धश्लोक दूसरे अर्द्ध से भिडाइदिये और चरण या आधे चरणपर व्यर्थ विश्रामहैं कि जहापर विश्राम न होना चाहिये यह सबसे बडी भ्रामकता होतीहै पढते समय दुखदेतीहै—सो यह एक निदर्शनका नमूनामात्र बताजाते हैं कि जैसी पाचसौ आठके पृष्ठमें भ्रामकता हुई तैसी और भी बहुधा स्थलोंपर श्लोकों में दिखाई, देती सो पाण्डुलिपिके निमित्त डौलसे अन्य या छपी परन्तु अब कोई उसका उपाय ऐसा नहीं है जिसकी समस्या किसी चक्रमें स्थापन कीजासके—केवल यही इलाज है कि जैसे निर्माताने एक पुस्तक में स्याही से छेवादेकर अर्द्ध जुदे किये और व्यर्थ विश्रामोंक मस्तक आपस में जोडिके सुन्दरूप किये तैसे सभी सद्व्यसनी बुद्धिमान अपनी जिल्दोंमें सुधारलें॥
६४८	१३	जानेकहा—वसी छ'सौअरतालिसके पृष्ठमें सातवींपंक्ति देखो उसमे गंधर्वीके वचन से राज अदालत में जाहिर करनाकहा सो केवल उन्हीं पापोंमें समुझना कि जिनमें राजदंड (राजमुद्रंड) होता हो किंतु सबही अपराधो में न जाहिरकरे—इसीलिये ६२१ छ'सौ इक्कीसके पृष्ठमें २० बलाइसपंक्ति देखो

इति सूचीपत्रं समाप्तम् ॥

———※———

अथ संदेहनिवारणं पुनर्निर्मितभेदानां संग्रहचक्रं ॥

पृष्ठ	पंक्ति	त्रुटिपाठ या भ्रामक पाठोंके बोध या विज्ञापन आदि पाठों के जुदे जुदे भेद यहां सोचिलेना ॥
१४३	२५	**अथ परमात्मनः शरीरग्रहणप्रकारप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः (१०) दशमः** इस परिच्छेद में वहप्रकार जानाजायगा कि ईश्वर आप अजन्मा होते हुये भी संसारी देहोंमें किसप्रकार जन्मलेताहै (यह इतनी त्रुटि ऐसेही अति मोटे और बारीक अक्षरों से चौबीसपंक्तिके नीचे लिखिलेना)॥
२१६	२२	पुरश्चर्या आदिकी व्यवस्थाका तात्पर्य आगे ९६ छप्पन परिच्छेदमें २०० दोसौमतहत्तरि मूलश्लोक से समुझिलेना (इस त्रुटिको बाईसपंक्तिकेनीचे तेईसवीं के स्थानपर लिखिलेना)
२६३	२३	**इतिपापात्मनां नरकादिगति विषयकं प्रकरणं त्रिपरिच्छेदमयं ॥** इस प्रकरण में तीनिही परिच्छेद हैं—यद्यपि आगे तीसवें परिच्छेद के अन्तमें दशपरिच्छेदोंका एक प्रकरण मानाजायगा कि जिसमें ये भी तीनि गिनेजायँगे—तहां उसको महाप्रकरण समुझना चाहिये—तिससे इक्कीसवेंसे प्रारम्भसे तेईसवेंके अन्ततक यहांपर इन्हीं तीनि परिच्छेदोंका जुदा एकप्रकरण कहागया कि इसमें सब तरहके पापियों को इसलोक और परलोक में नरक आदि भोग जो जो मिलते हैं उन्हींका वर्णन किया गयाहै (इसत्रुटिको तेईस पंक्तिकेनीचे लिखिलेना)

पृष्ठ	पंक्ति	पुनर्निर्मितविषयभेदा
		यहा देवलका वचन है (स्वयतुब्राह्मणाब्रूयुः) इत्यादि इसकी व्याख्या जो कुछ वहालिखोहै सोभी यहा शंखजीके वचन से मीलान करिके काम चलाना क्योंकि दोनो वचन का एकही तात्पर्य है= (यह इतना विशेषलेख तेरहवीं पंक्तिमे त्रुटिमानिके आयुपर लिखिलेना)
६६०	१०	आरूढ करेगा यह तात्पर्य है—इसैांमरतालिस के पृष्ठमे सातवींपंक्ति देखो शंखजीका वचनहै (तस्यगुरुत्वाधमानुराजसमक्ष) इत्यादि इसी वचनकी व्याख्या वहा जो कुछ लिखी हो तिसका भी मीलान यहां देवल के वचन से करना चाहिये क्योंकि वहा जो शंखजीका यन्यर्थ है वही यहा देवलका तात्पर्य है और सिद्धांत दोनोका यहीहै कि जिन पापोंके अपराध में राजवादी (राजमुद्दई) न होताहो न होसका हो तिनके मध्ये प्रायश्चित्तका बोझडारनेवालो को राज अदालत में प्रकाश करना या करवाना कुछ आवश्यक नहींहै—परन्तु जहां पापी इच्छा सहित पापकरै और प्रायश्चित्त भी न करनाचाहै और सज्जनोंकी सुशिक्षासे अपनी प्रकृति को भी न सुधारै बल्कि वारम्वार पापकर्म का अभ्यास करै तो फिर सभी पाप ऐसेहैं कि राज अदालतके सन्मुख पापीके बडे बूढे वधूजनोंको समझाकर प्रायश्चित्त करायाजाय ॥ (यह इतना लेख विशेष दशमी पंक्तिको त्रुटिमानिकर आयुपर लिखलेना चाहिये)
७६२	११	समुझलेना——अर्थात् जिस व्रतकी साधना जितनेदिन होतीहो उसके वदले उतनेही दिनोतक उत्कृष्टप्या रोज रोज जिमावे इसका दृष्टांत जैसे चान्द्रायण मे तीसदिनतक चोवीस ब्राह्मण ॥ ० ॥ (यह इतना लेख ग्यारहवीं पंक्तिमें त्रुटिमानिके आयुपर लिखलेना चाहिये)
७६२	१९	ने समुझाया—परन्तु जैसा अति निर्धनको प्राजापत्य के वदले वारह ब्राह्मण कहेगये तैसा अन्यत्रतोंमे ऊपरले हिसाब से जितने होसकें तितने उनमें भी इन्हीं वारहके अनुसार लेखा जोडिके समुझिलेना ॥ ० ॥ (यह इतनालेख उन्नीसवीं पंक्तिमें त्रुटिमानिके आयुपर लिखि लेना)

मिताक्षरा सटीक प्रायश्चित्तकांड——इस ग्रंथकानाम निर्माताका निर्मीत किया (मर्यादापरिपाटी समाचार), धर्मशास्त्र ठीक ठीकहै जैसा सन्१८०३ ई० से लेकर आचार और व्यवहार के दोकांडोंपर छपिचुका सो प्राचीन ग्राहकोंके पास वह मौजूद हैं उनके ऊपर याज्ञवल्क्यस्मृति और मिताक्षरा मर्यादा परिपाटी ये तीनोंनाम समस्या कियेगयेथे अबके इसकांड प्रायश्चित्त के पृष्ठोंपर मिताक्षरा सटीक छापागया किसी भांतिसे निर्माता के अनुपस्थित होनेमें सो इसवास्ते कुछ दोष वा गल्ती न समझना कभी दुवारा मुद्रित होनेमें परिवर्तन कियाजायगा—यथार्थ से मिताक्षराका पूरा लेख इसमें प्रधानतासे लेकर बाकी और ग्रंथोंका सारांश लियागयाहै कि जो जो वातें मिताक्षरा में भी नहींथीं उनकी व्यवस्था इस मर्यादा परिपाटी में मिलसकें——और भी मिताक्षरा में प्रकरणोंक परिच्छेद आदि ग्रन्थभेद जो कुछ नहींथे सो सब इसमें अपने रचयिता के उद्योग से निर्माण किये गये जिनसे व्यवस्था ढूंढनेवालों को सुगमता होय—शास्त्रोक्त विधि जो सबकार्योंकी होती है सो मर्यादा कहाती है—और सब देशोंकभिन्न भिन्न आचार्योंकी रीतिहैं सोईपरिपाटी कहातीहैं जो गुरुमूल पुरुषों से लेकर क्रमागतचली आईहो ये दोनो मिलिके (मर्यादापरिपाटी) बना इन्हीं दोनोंका अच्छा आचरण वर्तमान होय या वर्णन कियागया जिस धर्मशास्त्र में सो (मर्यादा परिपाटी समाचार) धर्मशास्त्र इसनामसे ग्रंथनाम तथा गुणार्थनाम होताहै ॥

इति ॥



मिताक्षरा सटीक ॥

तीसराप्रायश्चित्तकाण्ड ॥

श्रीगुरुंसुप्रणम्यादौ परमात्मपदाभिधम् । तद्वचोमंत्रपूतात्मा शुद्धिंगत्वाविशेषतः १ ॥
ध्यात्वासर्वशरीरस्थं जगदीशंनिरञ्जनम् । योह्यस्यजगत स्रष्टा चराचरमपस्यतु २ ॥
योगीश्वरंयाज्ञवल्क्यं मिथिलापतिपूजितम् । येनलोकोपकाराय कृतेयंधर्म्मसंहिता ३ ॥
विज्ञानेश्वरनामानं प्रणम्यचपुनःपुनः । मिताक्षराकृतायेन विद्वज्जनप्रमोदिनी ४ ॥
श्रीमर्यादाप्रियस्तस्या मर्यादापरिपाटिकाम् । भाषाटीकांप्रकुर्वाण शुक्लोदुर्गाप्रसादकः ५ ॥
आचारव्यवहाराभ्यां निवृत्याग्रेतनोतिच । प्रायश्चित्ताभिधकांडं क्रमप्राप्तमलापहम् ६ ॥
प्रायश्चित्तमपेक्षूना मात्मशुद्ध्यभिलाषिनाम् । सौगम्येनैवबोधाय परार्थेवाविचारिणाम् ७ ॥

प्रायश्चित्त काण्डका प्रारम्भ किया चाहते हैं तहां पहिले यहबात भी प्रकाश करनी आवश्यक ठहिरी कि प्रायश्चित्त काण्डमें कावस्तु वर्णनकरेंगे—ऐसे समझो कि आचारकाण्ड में गृहस्थाश्रमीमात्र सबहीके नित्य और नैमित्तिकधर्म वर्णनकिये थे उनमें भी राजास्वतः गिनती होचुका क्योंकि वहभी एक गृहस्थीहै—फिर उसी आचारकाण्ड में ३०८ श्लोक से लेकर व्यवहारकाण्ड पर्यंत एक गृहस्थी विशेष जो अभिषेक आदि गुणोंसे संयुक्तहोने करके राजा प्रसिद्ध होताहै तिसके गुण धर्म सबसे जुदेभी दर्शायेगये क्योंकि सब गृहस्थियोंकी अपेक्षा उसमें राजरूपीगुण विशेषहै तिस गुणकेधर्म प्रजापालन आदि उसकेलिये अधिक होतेहैं—अब इस प्रायश्चित्तकाण्डमें उन्हीं पूर्वोक्त सर्वधर्मोंका अपवाद (अर्थविरुद्ध इस्तिस्ना) वर्णनकरेंगे—इसीलिये उन धर्मोंका अधिकार संकुचितकरने (रोकदेने)वाला आशौचका नियम पहिले कहेंगे ॥ तहां आशौचशब्दके अर्थसे वहकाल उतना समझना जिसमें अशुद्धहोने आदि कारणोंसे स्नान ध्यानआदि पूर्वोक्त धर्मोंका अवरोधहो और यही उस अपवादका स्वरूप

करें इसका अग्निसंस्कार और जलदान क्रिया भी न करनी चाहिये किन्तु जैसे जं-गलमें लकड़ी छोड़िकर वेफिकिर होजातेहैं तैसे इसे गाडहिले में दाविकर तिस पीछे (श्राद्धआदि ऊर्ध्वदैहिककर्म जो आचारकांडमें श्राद्ध प्रकरणके द्वाराकरने कहिचुके तिनसे) उदासीनहोकर तीनदिन उदासीमें वितावें (ध्यानसे सोचनाचाहिये इसकथन से अपवादकास्वरूप सिद्धहोगया कि जो आचार अध्यायमें करना कहाथा वहइसको छोड़कर औरोंपर समझना इसीको छत्रया इस्तिन्याय कहतेहैं इसीतरह सर्वत्र प्राय-श्चित्तकांड में आचार व्यवहार दोनोंके अपवाद अनेक भाँति वर्णन होते रहेंगे कि जहाँ जहाँ जिस जिसप्रकारके अपवादका प्रयोजन हो)॥ दोवर्षसे कमअवस्थाके घृत लगाकर गाड़ना और यमगाथा पढ़तेहुये गाड़ना येदोनोंबात यमस्मृतिसे सिद्धहोतीहैं = यथाह यमः = ऊर्नद्विवार्षिकंप्रेतं घृताक्तंनिखनेद्बहिः यमगाथागायमानो यमसूक्त मनुस्मरन् = अर्थात्-दो वर्षसे ऊने प्रेतकोघीसेचुपड़ि यमगाथा गातेहुये ग्रामसे बाहर खोदिगाड़ैऔर यमसूक्तका स्मरण उच्चारण करतेहुयेलौटें ॥०॥ देवलः-चांडालाग्नि रमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्चकर्हिचित् पतिताग्निश्चिताग्निश्चनशिष्टग्रहणोचिताः = अर्थात्-देवलमुनिका यहवचनहै कि जिसप्रेतको अरणीकाष्ठकी अग्नि न मिलनेसे लौकिक अग्नि लेनीपरै तहां उत्तमकुल जातिवालेको इतनी अग्नि न लेनीचाहिये. एकतो किसीचांडालसे दूसरे जो अग्निआपही प्रत्यक्षमें अपवित्रहो जैसे पजावेआदि में लगीहुई तीसरे सूतिकाकेपास जहां जन्मसूतक हुआहो तिसकीअग्नि चौथेपतित के हाथसे न लेनी पांचवें किसी चितासे भी न लेनीचाहिये॥अग्नि संस्कार और ज-लदानमध्ये लौगाक्षिने यहअग्रोक्तविशेषता दर्शाईहै = यथाहलौगाक्षिः = तूष्णीमेवो दकंकुर्यात्तूष्णींसंस्कारमेवच सर्वेषांकृतचूडानामन्यत्रापीच्छयाद्वयम = अर्थात्—सभी बालक जिनका चूड़ाकर्म मुंडन होचुकाहो तिनको तो नियमसे अवश्यही अग्निदाह और जलदान करनाचाहिये लेकिन विनामंत्रके चुपके करनाचाहिये. अन्यत्रापिजहां चूड़ाकर्म नहोचुकाहो परन्तु नामकरण होचुकाहो ऐसेबालकों के मरने में यदि कर्ता पुरुषोंकी इच्छाहो तो अग्निदाहऔर जलदान दोनोंविनामंत्रके करें अपनेप्रेतकाअभ्यु दयचाहि सोचिके अन्यथा कुछ आवश्यक नियमनहीं केवल इच्छापर आरूढ़हैचाहे करें या न करें ॥ इसीनियमके अनुरूपमनुने कुछ और विशेषता कही है = यथाह मनुः = नात्रिवर्षस्यकर्तव्याबांधवैरुदकक्रिया जातदंतस्यवाकुर्यान्नाम्निवापिकृतेस ति = अर्थात्-बिना तीनवर्ष पूरेहुये की उदक दान क्रिया बांधवोंको न करनी चा-हिये (केवल उदक क्रिया कहन से अग्निदाहभी समझलेना क्योंकि इन दोनों का

जोडाहै) कहीं विकल्प से तीनवर्ष के भीतरभी जिसकेदाँत जमिचुके हों अग्निदाह उदकदान करो या न करो इसी प्रकार नामकरणहोजानेवाले के तीनवर्ष भीतर करो या न करो किंतु कर्त्ता की इच्छापर आरूढ है आवश्यक नियम नहीं है परंतु तीन वर्षका जो नियम आवश्यक ठहिराया तिंससे यह अभिप्राय सिद्ध होता है किचूडा कर्म यद्यपि किसी के कुलपरिपाटी से तीन वर्षके उपरांत पाँचसात वर्षतक होताहो तिससे न होनेपाया तौभी तीनवर्ष से उपरांत मरे प्रेत को अग्निदाह और जलदान अवश्य बिना मंत्रोंके चुपके करदेनाचाहिये = मनुके इस वचनसे लौगाक्षिके पूर्वोक्त वचन में इतना भेदहै कि लौगाक्षिने तीन वर्षभीतरभी चूड़ाकर्म्महोजानेबादि अग्नि-दाह और जलदान का आवश्यकीय नियम किया और इसमें मनुने तीनवर्ष के उप-रांत चूड़ा न होनेपरभी आवश्यक नियम ठहिराया क्योंकि चूड़ाकर्म्मका विशेषकर कोई एकसमयठीकनहींहै तिसकोदेशकालवस्तुके अनुसारविवेचन करिलेनाचाहिये= ऊर्ध्वोक्त सभी वचनोंका अभिप्रायलेकरयहक्रम स्थापनहुआहै किजबतकनामकरण कर्मसंस्कार न हुआहो तिससे पहिलेमरे सो खोदिके गाड़ाजायउदकदानभी नकिया जाय.फिर नामकरणके उपरांत तीनवर्ष भीतर विकल्पहै कि चाहैं अग्निदाहजलदान करो या न करो·तिसपीछे जबतक जनेऊ न हुआहो तिसकेमरनेमें अग्निदाह जलदान दोनों अवश्यकियेजायँगे परंतु बिनामंत्रके चुपके कियेजायँगे और तीनवर्ष के भीतर जिसका चूड़ाकर्म होचुकाहो तिसकाभी यही नियम समुझना·फिरजनेऊ होजानेबाद जोमरै तिसको (आहिताग्न्याहृत्त विधिसे) जलायकर सब कर्म ऊर्ध्वदैहिकभी किये जायँ जोकुछ लोकमें होतेहैं·तिसजलानेमें कई भाँतिका विचारहै कि जनेऊवाले कई तरहके होतेहैं उनका जुदाजुदा विधान अपनी कुल परपाटीसे होताहै अर्थात् एक तो सामान्य कुलका लड़का किजिसके कुलमेंअग्निहोत्र नहींहोता औरदाहकर्मभी अग्नि होत्रियोंकी रीतिसे नहींहोताहो.दूसरावह लड़का किजिसकेघर अग्निहोत्र तो नहींहै परंतु अग्निहोत्रियों की रीतिसे दाहकर्म की परिपाटी चली आतीहै·तीसरा वहकि जिसकेघर अग्निहोत्रकी स्थापना रहितीहो · चौथा वह कि जिसकेघर अग्निहोत्र की स्थापनाहै औरवह अपने आपभी आहिताग्निहो क्योंकि विवाहभी होचुका तिससे उसने अग्निकी स्थापनाभी जुदी अपनी करीहोगी—इन्हीं भेदोंके अनुसार दाहक्रि-यामेंभी कईभेदहोतेहैं क्योंकि जोपूरे अग्निहोत्री हैं तिनकादाह उसी अग्नि कुंडकी अग्निसे होता और यज्ञके पात्र आदिभी मुर्दाके साथही जलायेजातेहैं इत्यादि विधा-न उनकी कुल पद्धतियोंमें प्रसिद्धहैं·बिरलेकुलोंमें अग्निहोत्रके न होनेपरभी थोड़ीबातें

उसी रीतिकी चलीआतीहैं क्योंकि पहिले कभी अग्निहोत्र उनके होताथा इत्यादि सब भेदोंका तात्पर्य योगीश्वर ने (उपेतश्चेत्-आहिताग्न्यावृतार्थवत्) इतने अक्षरों से समुझायाहै कि जिसकी जैसी परिपाटीहो उसीके प्रयोजनसे दाहकर्मकरै—इसका यह दृष्टांत है कि जिसके अग्निहोत्र का वितान हो और भूमिजोषणा प्रोक्षण आदि विधि करनी आवश्यक हो तौ वही करना या जिसके अग्निहोत्र का वितान आदि न हो तौ वहलुप्त प्रयोजनहै कि पात्र योजन आदि विधान उसका न करनाहोगा॰ यह समस्तवार्ता प्रासंगिक है॰ अब उसी प्रकृतको दर्शाते हैं कि उपनीत जनेऊ होचुके का दाहलौकिक अग्निके विधानसे होताहैपरंतु जो अग्निहोत्रीकेकुलमेंउपनीत होनेपरभी अनाहिताग्निएरुयमरै तौ गृह्याग्निसे और लौकिकाग्निके दाहसेभी जलायाजाताहै किंतु उसका विवाह और यज्ञाग्नि संबंध नहोनेसे आहवनीय आदि अग्नि नहीं हैं॥ उसीअग्निसे या दूसरी अग्नि से भी॰ यह अभ्यंतर विधान भी वृद्ध याज्ञवल्क्य ने प्रकाश किया है= यथा—आहिताग्निर्यथान्यायंदग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः अनाहिताग्नि रेकेन लौकिकेनापरोजनः=अर्थात्—आहिताग्नि जो अग्निहोत्री हो सो तीनों भाँति की अग्नियों में किसी अग्नि से यथोचित न्याय के अनुसार जलायाजाय अर्थात् तीनों मौजूद होते जो उत्तमहो उसीसे जलाना चाहिये अनाहिताग्नि जो अग्निहोत्री के घर जन्म होतेहुये अग्निमान न हो सो एकही गृह्याग्नि से जलाया जाय और बाकी सामान्य जन लौकिक अग्निसेजलाया जाय॥ अग्नीनां भेदाः— प्रसंग से आवश्यक जानिके अग्नियों के भेद भी दर्शाते हैं—यद्यपि अग्नि तीनही मुख्य और प्रसिद्ध हैं तथापि उनके भेद अनेक हैं और यथार्थ में सर्वत्र अग्नि एकही है कि जिसके संस्कार भेद वा स्थान कर्म भेद से नामभेद भी होजातेहैं॰ इसका दृष्टांत है कि जैसे एक लौकिकअग्नि वहीकहाता जो लोकमें जहाँ तहाँ प्रसिद्धरहता और कोईसा संस्कार उसका शास्त्रोक्त विधानसे न कियागयाहो इसकेभी स्थानकर्म भेदसे अनेक नाम होतेहैं जैसे भाड़ भट्ठी आदिमें होनेसे—फिर वही अग्नि जो निरंतर किसी के घर में रहिता हो तौ आवसथ्य यह नाम होजाता क्योंकि आवसथ नामहै घरका (परंतुघरमें रहते भी जबतक कोईसा संस्कार न किया जाय तबतक दोनों नाम रहतेहैं अर्थात् आवसथ्य और लौकिकभी कहाताहै) इसीतरह लौकिक अग्निके स्थान भेदसे अनेक नाम होतेहैं—फिर उसी आवसथ्यनाम अग्निको जब किसी यज्ञ विशेष के लिये यद्वा नैत्तिक पाक यज्ञोंके लिये घरका मालिक संस्कारोंसे कल्पितकरै तब गार्हपत्य नाम कहाता है क्योंकि गृहपति जो घर

का स्वामीहै वही उसका संस्कार यजन करनेसे यजमान ठहिरा और उसी गार्हपत्य अग्निको नामांतरसे गृह्याग्नि भी कहते हैं—फिर उसी गार्हपत्य में से थोड़ा अग्नि लेकर जब किसीके विवाह में होमसंस्कार से संयुक्त कियाजाय जिसे साक्षीबनाकर वर वधूको प्रतिज्ञा वचन दियेजाते हैं तब उसका और नाम भेद भी विवाहाग्नि ऐसा कहाने लगता और वही वैवाहिक अग्नि आगे को सदा सर्वदा उन वर वधू के घर में रक्षासे रहिती है कि जबतक वह पत्नी जीवै किंतु मरजाने से उसी अग्निमें फूंकी जातीहै फिर अन्य विवाह करनेसे अग्नि स्थापन होताहै (आचार मर्यादा परिपाटी में ८९श्लोक देखो)--फिर उसी गार्हपत्यअग्निमेंसे थोड़ी लेकर कुंडेकुंड या वेदीमें वेदोक्त कर्म अग्निहोत्र आदि किसी होमके निमित्तसे स्थापनकरके संस्कार कराजाय तो यह अग्निआहवनीय कहाता और वैतानिक भी कहाता और इस भांतिके वेदोक्त अनेक अग्नि सब श्रौताग्नि के नामसे प्रसिद्ध होते हैं-इसी प्रकार अनंतरोक्त वैवाहिक और गार्हपत्यभी स्मार्तअग्नि के नामसे प्रसिद्ध होतेहैं • इसी प्रकार ऊपर कहे आवसथ्य पर्यंत लौकिक अग्निके नामसे प्रसिद्ध होते सो लिख चुके हैं तिससे अग्नि के मुख्य भेद तीनही कहेजाते हैं (अन्यथा भेदतो अनेक अभी लिखने योग्यहैं) इसीलिये आचार मर्यादा परिपाटी में योगीश्वरने यह कहाया कि (कर्मस्मार्तंविवाहाग्नौकुर्वीत प्रत्यहंगृही दायकालाहृतेवापिश्रौतंवैतानिकाग्निषु)अर्थात् गृहस्थीका सदायह धर्महै कि प्रतिदिन स्मार्त कर्मोंको विवाह की संचितकरी अग्नि में किया करै यहादाय भाग होनेके समय जो हिस्साबांट में पाईहो तिस अग्निमें करै और वेदोक्त श्रौतकर्मोंको वैतानिक आदि अग्नियों में करै=और जो अनेक अग्निलिखने योग्य है तिन में एक दक्षिणाग्नि के नामसे कहाता उसका यहलक्षणहै किजो कहींसे मांगिला के रसोई आदि पाकयज्ञ में प्रवृत्तकराजाय सो इस दक्षिणाग्नि जन्मकेवलमांगि लाना है कि जो कई भांतिसे होताहै क्योंकि या तो किसी दूसरे गृहस्थीके गार्हपत्य में से लाईजातीहै या धनवान वैश्यके कुलसे या भाड़मेंसे इत्यादि ले आनेका विधानहै• यहसब चर्चा प्रासंगिकथा अबउसी प्रकृतका वर्णनकरेंगे जो चितासंबंधी होरहाथा ॥ ० ॥ यमस्मृतिमें यह भी नियम कहाहै कि शूद्रके हाथसे आग या लकड़ी आदि श्मशान भूमि तक न पहुंचावे = यथाह यमः= यस्यानयतिशूद्रोऽग्निंतृणकाष्ठं हवींषिच । प्रेतत्वंहिसदातस्य सचाधर्मेणलिप्यते = अर्थात्–जिस द्विजाती के शूद्र पुरुष अग्नि लाताहै या फूस काठ या हवींषि अर्थात् होम और पिंडोंकी सामग्री आदि लाता है तिसको सदा प्रेतत्व बना रहता और करवाने वाला या वह शूद्र भी

अधर्मसे लिप्त होताहै ॥ ० ॥ दाहकर्म भी स्नान आदि कराने पीछे करना चाहिये जैसा यह वचनहै = प्रेतंदहेच्छुभैर्गंधैःस्नापितंस्त्रग्विभूषितम् = अर्थात्—प्रेतको स्नान कराये हुये माला आदिसे विभूषित उत्तम गंध द्रव्यों सहित जलावै ॥ प्रचेतसस्मृति में प्रचेताने भी कहाहै = यथा = स्नानंप्रेतस्यपुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैःपूजनंततः । नग्नदेहंदहेन्नैर्वकिंचिद्देयंपरित्यजेत् = अर्थात्—पुत्रादिकोंके द्वारा प्रेतका स्नान और वस्त्रादि सामग्रीसे पूजन भी होय किंतु नंगीदेह नहीं जलावै और चढ़ाए हुये वस्त्रमें से कुछ देने योग्य फाड़िके छोड़िदे जो श्मशान के निवासी पावैंगे ॥ ० ॥ मनुने प्रेतको लेजाने मध्ये भी विशेषता कहीहै = यथा—नविप्रं स्वेषुतिष्ठत्सुमृतंशूद्रेणहारयेत् । अस्वर्ग्या ह्याहुतिःसास्याच्छूद्रसंपर्कदूषिता = अर्थात्—अपने जाती मौजूदहोतेहुये मरे ब्राह्मण को शूद्रके कंधे न पहुंचावै क्योंकि जो आहुति उसको स्वर्ग पहुंचाने हेतु दीजायगी वह शूद्रके संसर्गसे दूषित अस्वर्ग्य होजायगी (इस वचनमें अपनों के होते हुये यह कथन केवल गोत्रियों पर नहीं कहा समझना किंतु ज्ञातिमात्र पर विवक्षा करीहै कि ब्राह्मण मात्र किसीके होते हुये ऐसा अनर्थ न होनेदेवै क्योंकि अस्वर्ग्य दोषके भागी वेभी होतेहैं जो अनर्थ देखैं इसी प्रकार अन्य वर्णोंमें समझना ।।० ॥ जहां ग्रामके चारों खूंट मार्ग खुलेहैं या शहर पनाह के दरवाजे पुरमें बने हों तहां भी किस द्वारको कैसा मुर्दा निकाला जाय यह भी नियम कियाहै = यथा—दक्षिणेनमृतंशूद्रंपुरद्वारेणनिर्हरेत् । पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तुयथासंख्यंद्विजातयः = अर्थात्—मरे हुये शूद्रको पुरके दक्षिण द्वारसे निकासै और पश्चिम उत्तर पूर्व इन द्वारों से यथा क्रमके अनुसार द्विजातियों के मुर्दे निकासे जायँ—किंतु पश्चिम द्वार से वैश्य और उत्तर द्वारसे क्षत्री और पूर्वद्वारसे ब्राह्मण निकाला जाय॰ तात्पर्य इससे यही है कि विना प्रकाश किये स्वतः प्रकाश होसक्ता है कि अमुक वर्ण का मुर्दा निकला ॥ न ग्रामाभिमुखंप्रेतंहरेयुरितिहारीतोऽपि = अर्थात्—हारीतने यहभी कहा कि ग्रामके सन्मुख मुर्दा न लेजायँ ॥ ० ॥ कदाचित् कोई विदेश में रहिते मरजाय जिसका शरीर पुत्रादिकोंको न मिलसकै परंतु हाड़ मिलेहों तो उन हाड़ोंसेही प्रतिकृति पुत्तलविधान करै या हाड़ भी न मिलें तो पर्णशरैंसेही पुत्तलविधान शौनकादि गृह्योक्तमार्गसे करके दाहआदि संस्कार करै(पर्णशर अर्थात् हरेपत्ते और शरकण्डोंसे नराकार मुर्दाकी नकल बनानी पुत्तल विधान कहाजाताहै)और सूतकभी दशदिन आदि जैसाहोता है सो सब इसमें मानै— इस नियम का प्रमाण आगे वशिष्ठजीका वचनदेखो= यथाह वशिष्ठः= आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्म्रियेत पुनः संस्कारंकृत्वा शववदाशौचमिति=

अर्थात्—जो आहिताग्निः पुरुष अग्निहोत्री होकर विदेश में रहिते मरजाय पुत्रादिकोंको अग्निदाह देनेका अवसर न मिले तिसका फिर पुत्तल विधानके द्वारा अग्नि संस्कार करके मुर्दा की तरह सूतक माने॥ और जो अनाहिताग्नि पुरुष अग्निहोत्री नहींहै सो विदेशमें मरै तिसका सूतक तीनरात्रि मानाजाय—इसके भी प्रमाणमें यह वचनहै=यथा=सुपिष्टैर्जलसंसिक्तैर्दग्धव्यश्चतथाग्निना। असौस्वर्गायलोकायस्वाहेत्युक्त्वासर्वांधवैः॥ एवंपर्णशरंदग्ध्वा त्रिरात्रिमशुचिर्भवेत्=अर्थात्–पर्णनर नामक पुत्तल बनाने पीछे जल मिलायेहुये अच्छे तंडुल यव आदिके पिसानोंसे योपिलीपिके अग्निसे जलाना योग्यहै और उन्हींसने पिसानोंके बने पिण्डसे (यहकहिकर कि यहमृतक और पिण्ड स्वर्गलोक प्राप्त होनेके निमित्तस्वाहा) इस भांति मंत्रसे स्वाहा कहिकर बांधवोंसहित कर्त्ता पुरुष पर्णशर को जलाइकर तीनरात्रितक अशुचिनाम सूतकीरहै॥ यहांतक मृतक संस्कारकहागया कि इसतरह गाड़ै या जलावै॥ संस्कार के आगे फिर क्या करना चाहिये सो नीचे अभी कहते हैं १।२ परन्तु दाह के दिवसजो कुछ और करना होता है तिसकी व्यवस्था आगे पांचमी अधिकोक्ति में व्योरेवार देखना॥ इतिशवदाहविधानं॥

(अथ जलदानप्रकारः)

सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोभ्युपयंत्यपः। अपनःशोशुचदघमनेनपितृदिंमुखाः ३॥

अर्थः—सातमें या दशमें दिवसके अनन्तर ज्ञातीयजन (अपनःशोशुचदघं) इस मंत्रसे दक्षिणामुख होकर जलका अभ्युपगम करतेहैं+इसमें अभ्युपगमन कहिनेसे उस के प्रयोजन अनुसार स्नान और जलदानकर्म समुझाजाताहै क्योंकि चौथेश्लोकमें इसी तीसरे और पांचमेंका अति देशधर्म नाना आदिपर बताकार उदक क्रिया करनी करेंगे और पांचमें श्लोकमें भी जलदानविधि स्पष्ट भावसे कहेंगे (अतिदेश उसकानाम है कि जो कोई साधर्म किसी एक दोके नामसे कहिकर औरोंपर भी बतायाजाय कि जैसा यहां तैसा वहां भी होना चाहिये॥ ३॥

३अधिकोक्तिः=उक्त जलदान विधि विषम तिथियों में करनाचाहिये समतिथियों में नहीं=यथाह गौतमः=प्रथमतृतीयपंचमसप्तमनवमेषूदकक्रिया= अर्थात्–पहिले तीसरे पांचमें सातमें नवमें दिवसोंमें उदक क्रियाहोय॥ सो यह स्नानके अनन्तरकरना चाहिये=यथाहप्रचेताः=शरीरमग्निसंयोज्यानवेक्षमाणाआपोभ्युपयंतीति=अर्थात् मृतकदेह को अग्नि में संयुक्त करके फिर उसकीतर्फ न देखते हुये जलका अभ्युपगम

करें ॥ प्रचेताने कुछ और भी विशेषता कही=यथा= प्रेतस्यबांधवोयथाहमुदकमव तीर्यतोऽयेयेयुरुदकांतेप्रसिंचेयुरपसव्ययज्ञोपवीतवाससो दक्षिणाभिमुखा ब्राह्मणस्यो दङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च राजन्य वैश्ययोरिति= अर्थात् प्रेतके बांधवलोग जैसाउत्तमजलाशय या गहिरा जलमिले उसमें गोतालगाके शरीरको नमलें घिसें जलके किनारे अंजलियाँसीचें दाहने कांधे जनेऊ अँगोछा से अपसव्य होकर दक्षिणमुख होकर यह नियम सबका सामान्य है उसमें यह विशेषता भी करसक्ते हैं कि ब्राह्मणके मुर्दाको उत्तरमुखहोकर और क्षत्री वैश्यकेमुर्दाको पूर्वमुखहोकर • किंतु शूद्रकेलियेकोईनियम यद्यपि नहीं कहा गयाहै तथापि शेष पश्चिमकी दिशा केवल बुद्धिसे कल्पनाहोती है तिसका निर्णय देशाचारसे कर्त्तव्यहै ॥ विष्णुकी स्मृतिमें तबतक रोजरोजअंजली देनीकहीहै कि जबतक सूतक मानाजाय=यथाह विष्णुः=यावदाशौचं तावत्प्रेतस्यो दकंपिण्डंचदद्युरिति=अर्थात्=जबतक आशौच रहै तब तक प्रेतके लिये जल और पिण्ड भी देतेरहें ॥ प्रचेतस्स्मृति में रोजरोज अंजलियों की वृद्धि करनी कहीहै जैसा यह प्रचेताका वचन है=दिनेदिनेंऽजलीन्पूर्णान्प्रदद्यात्प्रेतकारणात् तावद्वृद्धिःप्रकर्तव्यायावत्पिण्डःसमाप्यते=अर्थात्=प्रेत के निमित्तसे दिनदिन प्रति जलभरी हुई अंजलियाँदेवें और जबतक दशमापिण्डपूराहो तबतक एकअंजलीरोजबढातारहै ॥०॥ ऊर्ध्वोक्त दोप्रकारोंमें छुटाईबड़ाईके हेतुसे यद्यपि तर्कवितर्करूपीशास्त्रार्थखड़ाहोताहै तथापिजो बड़ाअनुकल्पकहा तिसमें बहुत क्लेश उठानेकेहेतुसे बहुधा प्रवृत्तिनहीं सिद्ध होतीहै परन्तु जिसको यह अभिलाषाहो कि मेरे प्रेतकाअभ्युदयहोगा सो इसबड़ेही अनुकल्प को सावे जिसपर न सावाजाय सो उसीछोटे अनुकल्पका अवलम्बलेवै कि एकही दिनमें निपटारा हो जैसा याज्ञवल्क्य और गौतम के वचनों से लिखागया ॥ अंजलीदान दोनों हाथ मिलाकर करनाचाहिये=यथा वसिष्ठः= सव्योत्तराभ्यांपाणिभ्यामुदकक्रियांकुर्वीरन्=अर्थात्=बायें दाहिने दोनों हाथों से उदक क्रियाकरें ॥३॥ दशमें दिनकी शुद्धक्रियाका विधान आगे १७ सत्रह के श्लोकसे देखो ॥

(उक्तस्यवक्ष्यमाणस्यचातिदेशः)

एवंमातामहाचार्य्य प्रेतानामुदकक्रिया। कामोदकंसखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ४ ॥

अर्थः—ऐसेही नाना आचार्य इन प्रेतों की उदकक्रिया • कामोदकनाम इच्छा से उदक देनाचाहै तो सखा मित्र प्रत्ता विवाही बहिन बेटी आदि स्वस्रीय भानजा श्वशुर ऋत्विज याग करानेवाला इनको भी प्रेतों को जलदेवै जो प्रेतका अभ्युदय चाहताहो किन्तु इच्छाके न होनेमें न देनेसे कुछ दोषभागी नहींहोता ४ ॥

अधिकोक्ति=जलदानके नियम ऊपर कहेगये सो किसप्रकारसे करना चाहिये तिसका प्रकार पाँचमें मूल श्लोकसे कहेंगे और उसी पाँचमें अधिकोक्ति में सविस्तर व्यौरा लिखेंगे कि जिससे कुछ संदेह न रहसके ४ ॥

(उदकदाने गुणविधिः)

सकृत्प्रसिंचन्त्युदकं नामगोत्रेणवाग्यताः। नब्रह्मचारिण: कुर्युरुदकंपतितास्तथा ५ ॥

अर्थः—सकृत एकही वार सींचते हैं जलांजली (प्रेतके) नामगोत्रसे (बांधवलोग सपिंड और समानोदक) वाक्‌वाणी थांभे हुये अर्थात (मौनी होकर) ब्रह्मचारी तथा (जातिसे) पतित बांधव जलांजली न करें (यह विधिमें अपवाद है कि ये दोनों जलदान के अधिकारी नहीं ॥ ५ ॥

५ अधिकोक्तिः=(अमुकनामा प्रेतोऽमुकगोत्रः तृप्यतु) इस मंत्रसे एक वार जलांजली छोड़नी मूल श्लोक में योगीश्वर ने कही परंतु कहीं देशाचार वा इच्छा के अनुसार विकल्प भी तीन अंजलीसे होताहै अर्थात् नामगोत्रका मंत्र एकही वार कहि कर तीन अंजली देना भी ठीकहै ॥ क्योंकि प्रचेतस् स्मृतिमें तीनवार जल देनेका नियम है जैसा यह प्रचेतामुनि का वचनहै=त्रिःप्रत्येकंकुर्युः प्रेतस्तृप्यतु=अर्थ त्रि—अमुक नामा प्रेतस्तृप्यतु इस पूर्वोक्त मंत्रके प्रत्येक उचारण में तीन अंजलीकरें ॥ यह नियम तो तीसरी अधिकोक्तिमें प्रचेताके वचनसे लिखचुके हैं कि रोज रोज एकअंजली की वृद्धि होतीरहै ॥ उन्हीं प्रचेताने यह और भी विशेषविधि वर्णन करीहै=यथा=
नदीकूलंततोगत्वा शौचंकृत्वायथार्थवत्। वस्त्रंसंशोधयेदादौ तत स्नानंसमाचरेत् ॥
सचैलस्तुततःस्नात्वा शुचिःप्रयतमानसः। पाषाणंततआदायविप्रेदद्याद्दशाञ्जलीन् ॥
द्वादशक्षत्रियेदद्याद्वैश्येपंचदशस्मृताः। त्रिंशच्छूद्रायदातव्यास्ततःसंप्रविशेद्गृहम् ॥
ततः स्नानं पुनःकार्यं गृहशौचंचकारयेत= अर्थात्—सबसे पहले द्विजदाह दिये पीछे नदी किनारे जाकर यथोचित शौच करिके पहिले कपड़े धोवे तिस पीछे स्नान करें॰फिर धोती सहित स्नान किये हुये पवित्र और मनको सावधान किये उसीजघे सेएक पत्थर लेके एक ठिकाने जलके किनारे धरै उसको प्रेत मानिके जो ब्राह्मण प्रेतहो तो दश १० अंजली छोड़ैक्षत्री प्रेतकोबारह १२अंजलीदें वैश्यप्रेत को पन्द्रह १५ देनीकहीं शूद्रप्रेतको तीस ३० अंजली देनी चाहिये तिसपीछे घरको जायँ फिर दुबारा स्नान करना चाहिये और घरका शौच भी लीपा पोती करावें ॥ ० ॥ ऊपर मूल श्लोकके उत्तरार्द्धमें योगीश्वरने जो अपवाद कहा तिसके मध्ये यहां और भी विशेष-

ता निर्णय करते हैं कि ब्रह्मचारी यद्यपि सजाती सगोत्रीहों तौभी अपने ब्रह्मचर्य के समावर्त्तन कर्मकी अवधि तक जलदान आदि कुछ न करें किंतु ब्रह्मचर्य से निपटारा हुये पीछे सूतक मानिके जलदान आदि शुद्धक्रिया उन्हीं सपिण्डोंकी फिर करें जो जो ब्रह्मचर्यके भीतर मरगये थे . ऐसेही पतित जो द्विजातियोंके कर्माधिकारसे गिर चुके अर्थात् जातिपांतिसे बाहरहों वेभी जलदान आदि अशौचकर्म नकरें परंतु जब कभी प्रायश्चित्त आदि प्रकारोंसे जो कोई जाति पांति में मिलाये जायं तो पहिले मरे हुओं को फिर पीछे जलदान आदि करें और सूतक मानैं यह सूतक सिर्फ़ तीन दिन होताहै–यथाह मनुः—आदिष्टीनोदकंकुर्यादाव्रतस्यसमापनात् । समाप्तेतूदकंकृत्वात्रिरात्रमशुचिर्भवेत् = अर्थात्—आदिष्टी नाम ब्रह्मचारी का और उसका भी कि जो जातिसे पतितहोके किसी प्रायश्चित्त आदि प्रयोगमें लगाहो • क्योंकि आदिष्टी वह कहाता है जिसको कुछ आदेश कियागयाहो जैसाब्रह्मचारी को आदेश किया जाताहै कि अपोशान कर्मकरो दिन में मत सोना इत्यादि व्रतके नियम और पतित को आदेश किया जाताहै कि अमुक प्रायश्चित्त करो—इसव्याख्याके अनुसार मनु कहते हैं किदोनों आदिष्टी जलदानको न करें जबतक उनके व्रत समाप्तहों किंतु समाप्त होजाने बाद जलदान करके तीनरात्रि सूतकोबनें ॥ इसी प्रकारनिपट नपुंसक आदि भी जलदान के अधिकारी नहीं हैं = यथाहस्ह मनुः—क्लीवाद्यानोदकंकुर्युः स्तेनाव्रात्याविधर्मिणः गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैवयोषितः = अर्थात्—क्लीबआदि और स्तेनचोर और व्रात्य संस्कार विहीन और विधर्मी जो पराये धर्मका आश्रय लेकर वेधर्म हुयेहैं. एवं गर्भ गिराने वाली और भर्ताके प्राण हरने वाली या उससे पूरा द्रोह राखने वाली और मद्यपान करनेवाली स्त्रियां भी जलदान आदि न करें. क्लीव के साथ जो आदि शब्दकहा तिससे कुष्ठी कलंकी आदि औरभी समझने ॥ इस अपवाद में जो जो अनधिकारी कहे तिनमें एक ब्रह्मचारी को अपेक्षा अपवाद का कुछ प्रतिप्रसव है सोभी आगे पंद्रहवें मूल श्लोक और उसीकी अधिकोक्ति में देखो क्योंकि उसके देखे विना व्यवस्था में असिद्धि खड़ीरहेगी ॥ ५ ॥

(अकर्मपात्रमृतकाः)

पाखंड्यनाश्रिताः स्तेनाभर्तृघ्न्य कामगादिकाः।सुराप्यआत्मत्यागिन्योनाशौचोदकभाजनाः ६ ॥

अथार्थः—पाखंडी अनाश्रित स्तेन • भर्तृघ्नी कामगा आदि स्त्रियोंभी तथा सुरापी आत्मत्यागिनी भी आशौच तथा उदकपात्र नहीं हैं ॥ ६ ॥

अभिप्रायः—नरकपाल आदि (वेदवाह्य) चिह्नों को धारण करतेहुये जे कोई पुरुष उदर पूरणार्थवृत्तिलेते हैं सो पाखण्डी कहाते हैं· अनाश्रित जो किसी आश्रम के सहारे न हों· स्तेन जो सोना आदि उत्तम द्रव्य चुरावें या अपहार करें · भर्तृघ्नी स्त्रियाँ कि जिन्होंने पतिको विषदेकर या किसीप्रकार माराहो· कामगा जो कुलटा कहाती हैं· इनको आदि लेकर औरभी समझनी जो गर्भ गिराती या गिरवाती हैं या ब्राह्मण का या बालकों का वध करतीहैं इत्यादि. सुरापी जो कोईसा मद्यपीती हैं अर्थात् जिस मद्यका पीना जिसजाति को निषिद्ध हो उसके पीनेवाली सुरापी ठहरती है अन्यथा नहीं. आत्म त्यागिनी जिसने अपने आत्मा को जलमें डुबाया वा अग्निमें गिराया वा विष भक्षणआदिप्रकारोंसे या फाँसीसेत्यागदियाहो (सुरापी आदि जो स्त्रियां कहीं उस प्रकारके पुरुषभी समझिलेना) ये सभी मरने पीछे सूतक या जलदान के भागी नहींहैं अर्थात् इनके मरनेमें सपिंड लोग सूतक न मानें और जलदान आदिकर्मभी न करें = इन्हीं दो कर्मोंका निषेधकरनेसे यह तात्पर्यभी स्वतः सिद्ध होजाता है कि अग्निदाह मात्र यथा संभव इनको भी कराय देना चाहिये॥ इसका मुख्यतात्पर्य आगे दूरजाके इक्कीस मामूलश्लोक और उसीकीअधिकोक्तिमेंदेखना है॥

६ अधिकोक्तिः—अभिप्राय रूपी पाठमें जिन पापों के प्रभाव से ऊर्ध्व दैहिक क्रिया का प्रतिषेध किया सोभी इच्छा पूर्व या बुद्धिपूर्व पाप करनेवालोंका नियम समझना क्योंकि अगिले वचन का यही तात्पर्य है = यथाह गौतमः = प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बंधनप्रपतनैश्चेच्छताम् = अर्थात्–प्रायो नाम महा प्रस्थान किंतु मरजाना इच्छतां इच्छा करते हुयोंका भी (उदकदान आदिमें प्रतिषेधजानो) किन प्रकारों से इच्छा सहित मरजाने वाले·अनाशक लंघनसे·शस्त्रोंसे·अग्निसे·विष भक्षणसे·उद्बन्धन गलफंदा लगानेसे·प्रपतन पर्वत आदि ऊंचे चढिके गिर परने से ॥

तात्पर्यः इच्छासे मरजाना इस कथन का यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि जो विना इच्छा किये अग्निविष आदिमें धोखासे मरगए हों तिनका जलदान आदि कर्म करना चाहिये क्योंकि प्रमाद गफलत आदिसे उस भांतिकी अकाल मृत्यु होजाने से मृतक पुरुष दोषी नहीं था = तथाह अंगिरा = अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः तस्याशौचंविधातव्यं कर्तव्याचोदकक्रिया = अर्थात्—यदि कोई प्रमाद नाम धोखे मेंही अग्नि जल आदि के द्वारा मरजाय तिसका सूतक मानना और जलदान आदि क्रिया भी करना चाहिये॥ ० ॥ और भी विरली भांति की अकालमृत्यु होनेमें क्रिया कर्मका प्रतिषेध किया गया है = यथा = चांडालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि

दंष्ट्रिभ्यश्चपशुभ्यश्च मरणंपापकर्मणाम् ॥ उदकंपिंडदानंचप्रेतेभ्योयत्प्रदीयते नोपतिष्ठतितत्सर्वं मन्तरिक्षेविनश्यति = अर्थात्–पापकर्मी पुरुषोंका मरना जो चांडाल के हाथसे या जलसे या सर्पसे या ब्राह्मणके हाथसे या वैद्युत बिजली गिरनेसे या दाढवाले सिंह वराह आदिसे या पशुओंसे हो तो जलदान और पिंडदान जो इन प्रेतोंको दीजिये सो सब अंतरिक्षही में विनाश होजाता किंतु पापों के प्रभावसे उनके पास तक नहीं पहुँचने पाता तिससे करना व्यर्थ है॥ इस प्रकार की मृत्युभी इच्छा पूर्वहुई हो तो कर्मके अधिकारी नहीं समुझने क्योंकि गौतम ने जो अपने वचन में इच्छा जाहर कीथी सो इन वचनोंमें पापकर्म के विशेषणसे इच्छा सिद्ध होतीहै ·इसपर ये दृष्टांत हैं कि जो अपने दर्पसे कोपयुक्त होकर चांडाल आदिकोंको मारने गया जलजीवों को मारनेगया या भयानक प्रवाहके देखते हुये तैरने गया इत्यादि सबतरह पापकर्मकी इच्छादोहिरी यदि उन्हींकेहाथसे यह आपमारा गया तो अपने मारेजानेकी इच्छा उसने जानिवूझिकेकरी यह तात्पर्यहै· इसीलिये उसके पिंडदानका निषेध (विधिका अतिक्रम करनेके निमित्तसे)कियागया क्योंकि (सर्वत एवात्मानंगोपायेदिति)यह श्रुतिजो प्रसिद्धहै कि सबओरसेही आत्माकी रक्षा कियेरहै सो यहविधि उसने न मानी॥ पापकर्मके विशेषण से यह दूसरा तात्पर्यहै कि जिसने पुण्यकर्मके हेतुसे उन्हींप्रकारोंमें अपने प्राणदेदिये हों तिसका क्रिया कर्मकरना चाहिये यहां पुण्यकर्मका दृष्टांतजैसेकिसी डूबतेहुयेको उभारनेके निमित्त गोतालगाया यद्यपि उसकेप्राण बचादिये परन्तु आप डूबिगया तो यह पुण्यकर्मसे जल के द्वारा मृत्युहुई पापकर्मसे नहीं इसीप्रकार सबमें दृष्टांत समुझिलेने जैसेसांपने धोखेमें काटिखाया तो मरजानेसे क्रियाकर्म करना चाहिये यदि सांपको पकडते या मारते पालते काटाजाय तो यहपापकर्मके हेतुसे क्रियाकर्मका भागीनहीं इत्यादि॥ ०॥ यह जो सूतक न मानना कहा सो दसदिन आदिनियमोंका प्रतिषेध कियाहै अर्थात थोड़े कालतक इनका भी सूतक माताजाताहै सो सब सद्यःशौचका नियम आगे इक्कीसमे मूलश्लोकमें योगीश्वर आप वर्णन करेंगे = जिनका जलदान और सूतक निषेध किया तिनको अग्निदाह का भी प्रतिषेध करते हैं = यथाहयमः = नाशौचंनोदकंनाश्रुनदाहाद्यंतकर्मच ब्रह्मदंडहतानांचनक्रयात्कटधारणम् = अर्थात्– ब्रह्मदंड कहिये ब्राह्मणकाशाप तिसने मरेहुयों तथा औ भी पूर्वोक्त पापियों का न सूतक न जलदानहै न आंसू डालिके रोनाहै न दाहआदि अंतकर्म हैं न उनका कटधारण किन्तु थिकटी रथी विमान आदि कांधेपर धारणकरै॥ परंतु (आहिताग्नि

सग्निभिर्दहंतियज्ञपात्रैश्च) यहश्रुति जो प्रसिद्धहै कि अग्निहोत्री को अग्नियोंसे और यज्ञके पात्रोंसे जलातेहैं सो इस प्रसिद्धि से यह न समझिलेना कि युक्तिसे प्रतिपादन हुई अग्नितया यज्ञपात्रोंकी आज्ञालोप होती है तिससे अनन्तरोक्त दाहका निषेध जो स्मृतियोंका धर्महै सो ब्रह्मदंड से मरेहुये अग्निहोत्रियोंपर नहीं आरूढ होताहै क्योंकि अग्निहोत्री पर भी वहीधर्म्म आरूढ होताहै इस हेतुसे कि अन्यस्मृती में चांडालआदिकेहाथमरे अग्निहोत्रीके अग्नितथायज्ञके पात्रोंकाभी विधानकहाहै = यथा = वैतानंप्रक्षिपेदप्सुआवसथ्यंचतुष्पथे पात्राणितुदहेदग्नौ यजमानेवृथामृते = अर्थात्—यजमान कहिये अग्निहोत्री यदि वृथा मरजाय किन्तु ब्राह्मण के शापसे या चांडाल आदि के हाथसे मरे तब उसका वितान लेकर जलप्रवाह में फेंके तथा आवसथ्य नामक अग्नि जो उसके वितान वा निवास में स्थापन हुईहो सो लेकर चौराहे में छोड़िदे और यज्ञके पात्र लेकर अग्नि में जलाय देवै = इसी प्रकार उसके मरे शरीर काभी नियम कहाहै = यथा = आत्मनस्त्यागिनांनास्तिपतितानांतथाक्रिया तेषामपितथागंगातोयेसंस्थापनहितम् = अर्थात्—अग्निहोत्री भी यदि आत्मघातीहों या पतित होजायँ तिनका क्रिया कर्म दाह आदि नहींहो किंतु उनकाभी गंगा के प्रवाह में स्थापन करना श्रेष्ठ है कि जैसा औरों का = इन बचनों के प्रमाण से अग्निहोत्री और अनग्निहोत्री सभीके दाह आदि कर्मों का प्रतिषेध ऊपर कियाया यह समझिलेना ॥ ० ॥ तिसपर भी यदि कोई अपने मुर्दा के स्नेह आदि आग्रह से कदाचित् प्रतिषेध का अतिक्रम करै किंतु निषेध को न मानकर दाह आदि कुछ उपकार करै तब उसको उसी अतिक्रम का प्रायश्चित्त करना चाहिये = तथाचवचनं = कृत्वाग्निमुदकंस्नानंस्पर्शनंवहनंकथाम् रज्जुच्छेदाश्रुपातंचतप्तकृच्छ्रेणशुद्ध्यति = अर्थात्—अग्निदाह देकर या जलांजली देकर या उसके साथ स्नान करिके या उस मुर्देका स्पर्श करिके या कांधा देकर या उसकी कथा कहिकर या रथीकी रस्सीकाटकर या आंसू बहायकर तप्तकृच्छ्र नामक प्रायश्चित्त करिके शुद्ध होताहै अर्थात् कोईसी एकहू बात करने में प्रायश्चित्त लगता है परंतु उसी दशा में कि जिसने जानि बूझि के ऐसा कियाहो = किंतु = जिसने बिनाजाने धोखेसे ऐसा किया हो तिसके लिये दूसरा प्रायश्चित्त है = यथाह संवर्तः = एषामन्यतमप्रेतंयोवहेत दहेत्तवा कटोदकक्रियांकृत्वाकृच्छ्रंसांतपनंचरेत् = अर्थात्—इन पूर्वोक्त पापी प्रेतों में यदि किसीको जो कोई कांधे लादै या दाहदेवै या कटोदक क्रियाकरके कृच्छ्रसान्तपन प्रायश्चित्त करै तब शुद्धहोय = परन्तु = जिसने अनन्तरोक्तकाम न किये हों केवल

बंधुजनों सहित भोजनकरै = परंतु = जो सर्पकाटेसे मराहो तिसके लिये यह अग्रोक्त विशेषता समुझनी कि–जबताईं संवत्सर पूराहोय तबतक पुराणोक्त विधिसे प्रत्येक पंचमीको नागपूजा करके वर्ष पूरा होजाने बाद सोनेका बनाहुआ सर्प देवै तथा सा साव गऊदान करै तिस पीछे सब ऊर्ध्व देहिक कर्मकरै ॥ ० ॥ नारायणबलि का अनुक्रम जो ऊपर लिखचुके तिसका स्वरूप वैष्णवपुराण में कहाहै = यथा = एकादशींसमासाद्यशुक्लपक्षस्यवैतिथिम विष्णुंसमर्चयेद्देवं यमंवैवस्वतंतथा दशपिंडान्घृताभ्यक्तान्दर्भेषुमधुसंयुतान तिलमिश्रान्प्रदद्यात्तु संयतोदक्षिणामुखः विष्णुंबुद्धौसमासाद्यनद्यंभसिततःक्षिपेत नामगोत्रग्रहंतत्र पुष्पैरभ्यर्चनंतथा धूपदीपप्रदानंचभक्ष्यंभोज्यंतथापरम निमंत्रयेत्तविप्रान्वैपंचसप्ततवापिवा विद्यातपःसमृद्धान्वैकुलोत्पन्नान्समाहितान अपरेहनिसंप्राप्ते मध्याह्ने समुपोषितःविष्णोरभ्यर्चनंकृत्वाविप्रांस्तानुपवेशयेत उदङ्मुखानयथाऽयेष्ठं पितृरूपमनुस्मरन मनोनिवेश्यविष्णौवैसर्वंकुर्यादतंद्रितः आवाहनादिपरप्रोक्तंदेवपूर्वंतदाचरेत तृप्तान्ज्ञात्वाततोविप्रान्दत्तं पृथ्वाद्यथाविधि हविष्यव्यंजनेनैवतिलादिसहितेनच पंचपिण्डान्प्रदद्याचदैवंरूपमनुस्मरन् प्रथमंविष्णवेदद्याद्ब्रह्मणेचशिवायच यमायसानुचारायचतुर्थंपिंडमुत्सृजेत् मृतंसंकीर्त्यमनसागोत्रपूर्वंमतःपरम विष्णोर्नामगृहीत्वैवंपंचसंपूर्वंवतक्षिपेत विप्रानाचम्यविधिवद्दक्षिणाभिःसमर्चयेत गवावस्त्रेणभूम्याचप्रेतंतंमनसास्मरन ततस्तिलांभोविप्रास्तुहस्तैर्दर्भसमन्वितैः क्षिपेयुर्गोत्रपूर्वंतुनामवद्धौनिवेश्यच हविर्गंधतिलांभस्तुतस्मैदद्युःसमाहिताःमित्रभृत्यजनैःसार्द्धंपश्चाद्भुंजीतवाग्यतः सर्वंविष्णुमतेस्थित्वायोदद्यादात्मघातिनेस मुद्धरतितंक्षिप्रंनात्रकार्याविचारणा–अर्थात्–शुक्लपक्षकी एकादशी पायकर विष्णु देवका पूजनकरै तथा यमराजको और वैवस्वतको पूजे फिर दशपिंड घीके स ने सहत तिलमिलेहुये कुशाओंके ऊपर विष्णुके निमित्त दानकरै दक्षिण मुख बैठिके विष्णु को निज बुद्धिमें समझे हुये फिर सर्व कर्म समाप्त होनेपर नदीके जलमें फेंकि आवै. तहां विष्णुको दसपिण्ड देते हुये प्रेतकानाम गोत्रलेले कर पुष्पोंसे अर्चन भी पिंडौं पर करते हुये धूपदीप देवै और भक्ष्यभोज्य आदि और भी पदार्थ चढावै. तिसपीछे रात्रि समयपांच या सात या नौ ब्राह्मणों को निमंत्रण भेजै जो विद्या तपस्या से संयुक्त अच्छे कुलकेहैं तिनको और सावधान होकर भोजन में आसकते हैं तिनको फिर कर्ता पुरुष आप व्रती रहिकर दूसरा दिवस होनेपर मध्याह्न समय विष्णुका पूजन करके नौते हुये ब्राह्मणों को उत्तर मुख बैठावै और जैसा अधिक उत्तमहो उसमें अधिक प्रेत पितर का रूप समझै और अपना मन विष्णु में लगायकर निरा-

लभी होता सबकर्म करै आवाहन आदिजो कर्म करना कहासो सब देव शब्द पूर्वक सावै॰ फिर भोजन से तृप्तहुये जानिके ब्राह्मणों से यह बूझै कि आप अच्छे तृप्त हुये जो तृप्ति शेष रही समुझै तो उसको भी॰ पूर्णकरै॰ फिर खीर व्यंजन सबमें तिल सहतआदि मिलेहुयेसे पाँचपिण्ड बनावै सो देवहीका रूप स्मरण करतेहुये पहिला पिण्ड विष्णुके निमित्त देवै दूसरा ब्रह्माको तीसरा शिवके लिये चौथा अनुचरों सहित यमके लिये समर्पण करै फिर पाँचमा पिण्ड हाथमेंलेते अपने मनमें प्रेतका नामगोत्र याद करके और विष्णुका नाम उचारण करके पूर्वरीतिसे यह पिण्ड भी छोड़े तिस पीछे ब्राह्मणोंको विधिवत् आचमन कराय के अनेक दक्षिणाओं से समर्चन करै पर उनमें एक सबसे बड़ेबूढे उत्तम विप्रको सोना चांदीसे पूजै और गऊ तथा वस्त्र और पृथ्वीसे भी संतुष्ट करै प्रेतका नामलेताहुआ॰ तिसपीछे वे ब्राह्मण भी तिल जल कुश हाथोंमें लेकर प्रेतका गोत्रनाम कहिकर तर्पण करैं अर्थात् सावधान चित्तसे प्रेतके निमित्त में इविय गन्ध तिल जल समर्पण करैं॰ तिसपीछे कर्त्तापुरुष भी अपने मित्र भृत्य कुटुम्बी जनों सहित भोजनकरै वाणीको जीतेहुये किन्तु मुखसे कोई क्रूर वचन न काढ़ै॰ इसप्रकारसे जो कोई विष्णुके मतमें स्थितहोकर जिसकिसी आत्म घातीको देवै वह तत्कालही उसका उद्धार करदेता है इसमें कुछ विचारकरना आवश्यक नहींहै ॥ ० ॥ सर्पकाटे प्रेतके निमित्त सोनेका नाग बनाकर देना सुमंतुने भविष्यत्पुराण में कहा है =यथा=सुवर्णभारनिष्पन्नं नागंकृत्वातथैवगाम्। व्यासायद त्वाविधिवत्पितुरानृण्यमाप्नुयात्=अर्थात्–एकभार सोने से बना नाग विधि से दान करके तथा गोदान भी व्यास विप्रको देकर पिता के ऋणसे उद्धार होवै=इसव्यवस्था का एकाहस्चाहिकर इक्कीसमा मूलश्लोक अधिकोक्ति सहित देखना॥६॥इसभाँति उदकदान आदिविधि और उसकाअपवादभीजतायाअब इसके आगे क्या करना चाहिये सो लिखते हैं ६ ॥

(शोकशान्तिनियमाः)

कृतोदकान्समुत्तीर्णान्मृदुशाड्वलसंस्थितान्। स्नातानपवदेयुस्तानितिहासैः पुरातनैः ७॥

अर्थः—उदकदान किये और स्नानसे निवृत्तहुये बंधुओं मृदु शाड्वल नवीन जमी घासके अंकुर सहित भूमिपर बैठे विश्रामलेते हुयोंको शोकमें डूबे देख बड़ेबूढ़े बुद्धिमान पुरुष अपवाद करैं अर्थात् पुराने इतिहासोंकोसुनातेहुये रोनापीटना निषेध कर के शोकशान्तिकरैं-कि संसार में सदासे यहीरीति चलीआतीहै कोई अमरनहीं॥७॥ यही वार्ता अगले चारश्लोकों से वर्णन करेंगे॥

आँसूडाले या मुर्देको छुआहो तिसका प्रायश्चित्त छोटासा जुदा है= यथा=तच्छव केवलंस्पृष्टमश्रुवापातितंयदि पूर्वोक्तानामकारीचेदेकरात्रमभोजनम्=अर्थात्-निषिद्ध मुर्दा केवल स्पर्श किया या यदि उसकेलिये रोयाहो और वह पूर्वोक्त कामोंका न करनेवाला ठहिरै तो एक रात्रि निराहार व्रतकरै=सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसका है कि जो कठिन प्रायश्चित्तोंके करनेमें अशक्तहो=औरभी अशक्तों का प्रायश्चित्त आगे कहिते हैं=यथाह सुमंतुः=बंधनच्छेदनेवामासंभैक्ष्याहारस्त्रियवशांच=अर्थात्-मुर्देकी लपटी रस्सीका बन्धन काटने में एक महीनाभर भिक्षामांगि खातारहै और त्रियवशाभी करै· जिसके लक्षण आगेदूर जाके वर्णनहोंगे=ऐसेहीयदि और स्मृति-योंके वचन कहीं इसीवार्ताके संबंधी मिलैं तो उनकीभी व्यवस्था कल्पित करलेनी चाहिये॥ ० ॥ छठेमूल श्लोकसे लेकर यहाँतक जो जो मृतकक्रियाकरने योग्य नहीं ठहिरे तिनका थोड़ा अपवाद भी कहिना शेषरहाहै कि अमुकामुक मुर्दे छोड़के वह नियम समुझना=इसीलिये पूर्वोक्तदाहकर्म आदिका निषेध उनके लिये न समुझना जो अपने अंगीकृत अनुष्ठान में अत्यंत असमर्थ या जीर्णदेह वानप्रस्थ आदि कोई अपने प्राण त्यागिदें किन्तु उनको स्मृतियों से आज्ञा पाईजातीहै=तथाचवचनं = वृद्धःशौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः। आत्मानंघातयेद्यस्तुभृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः॥ तस्यत्रिरात्रमाशौचंद्वितीयेत्वस्थिसंचयः। तृतीयेतूदकंकृत्वाचतुर्थेश्राद्धमाचरेत्=अर्थात्-जो अति बूढाहोकर नित्यशौच क्रिया न कर सकने से या अति रोगी होकर असाध्य रोगहोने से वैद्य से निपट कोरा उत्तर पायाहो ऐसा पुरुष यदि अपने शरीरको विनाशकरावै सींगवालोंसे या अग्नि से या लंघनसे या जलसे· तो उसका तीन रात्रिभर अशौच सूतक भी होनाचाहिये तथा दूसरेदिन अस्थि संचय क्रिया फिर तीसरे दिन शुद्धस्नान आदि जलदान करके चौथेदिन श्राद्धकरै=इस वचनमें देह का विनाशकरना चारप्रकारोंसे कहागया तो इन्हीं चार प्रकारोंसे शास्त्रकी आज्ञासिद्ध होतीहै=अन्यथा जो औरही किसी मार्गसे निज देहका वधकरै तिसके लिये पूर्वोक्त सभी निषेध वाक्य समुझलेने परन्तु यह अपेक्षा शेष रही कि फिर उनके लिये क्या करना चाहिये जो उनकी भी सुगति होजाय=तहाँ वृद्ध याज्ञवल्क्य और छागलेय मुनि दोनों का एकही वचन है सो देखो=यथाहतुः=नारायणबलिःकार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः तथातेषांभवेच्छौचंनान्यथेत्यब्रवीद्यमः तस्मात्तेभ्योपिदातव्यमन्नमेवमदक्षिणां=अर्थात्-दोनों महात्मा कहितेहैं कि साक्षात् यमराजका यह कथनहै मनुष्योंकोलोकनिन्दाके भयहेतुसेउनकानारायणबलि विधानकरनाचाहिये तो फिरउसकेसाथउनका

भी सूतक मानाजाय किन्तु उसीकेसंबंधसे उनकोभी दक्षिणासहित अन्नदेनाचाहिये अन्यथा नहीं=एवं=व्यासजीनेभी यही दर्शकियाहै=यथा=नारायणंसमुद्दिश्य शिवं-वायत्प्रदीयते। तस्यशुद्धिकरंकर्मतद्भवेन्नैतदन्यथा=अर्थात्--नारायणके नामसे उद्देश करिके या शिवको उद्देश करिके जो कुछ किया और दियाजाताहै वही कर्म उसप्रेत की शुद्धिकारकहोता है यह अन्यथा न समुझना=नारायणबलिःकारणं--जैसा ऊपरकहिचुके उसकेअनुसार नारायणबलिकर्म जोहै सोईप्रेतकीशुद्धिकरनेकेद्वाराश्राद्ध आदि संप्रदानरूपकी योग्यता उत्पन्नकरताहै इसलिये उनकाभीऊर्ध्वदैहिकसबकर्म करनाचाहिये=इसीहेतुसे=षट्त्रिंशत् स्मृतिकेमतसेभी श्राद्धआदिऊर्ध्वदैहिककर्मकरनेकी अनुज्ञा देखि पडती है=यथा=गोब्राह्मणहतानांचपतितानांतथैवच ऊर्ध्वंसंवत्सरात्कुर्यात्सर्वमेवोर्ध्वदैहिकम=अर्थात्--गऊसे ब्राह्मण से मारेहुये तथा पतित प्रेतों काऊर्ध्व दैहिक कर्म सब एकवर्ष उपरांत करै=तो इसनियमके अनुसार एक वर्षके उपरांतही नारायण बलिकरके सर्व कर्मसाधै ॥ ० ॥ अथनारायणबलिप्रकारः--- कोईसी एकादशी जो शुक्लपक्ष की हो तिसके रोज, विष्णु ,और वैवस्वत. यम इन तीनोंको पद्धति की विधिसे पूजिकर इनके सन्मुख मदत घी तिलै मिले हुये दस पिंड विष्णु के रूप से प्रेतको याद करते हुये प्रेतके नाम गोत्रका उचारण करिके आप दक्षिण मुख बैठाहुआ दक्षिण को अग्रभाग से फैले हुये कुशाओं पर उक्त पिंडोंको धरिके गन्धआदिसे पिंडोंको पूजिके पिंडप्रवाहणपर्यंत कर्मसाधनकिये पीछे नदीके प्रवाह में फेंक देवे (किंतुपत्नीआदि किसी स्त्रीको ये पिंड न दियेजायँ)फिरउसीराति को विषम संख्यासेपांच सातआदिविद्वान् कुलवान्तपयुक्तब्राह्मणोंकोनिमंत्रितकरके आप निराहार व्रतीरहै. दूसरा दिन उदयहोनेमें मध्याह्नसमय विष्णुका आराधन करके एकोदिष्ट पद्धतिके विधानसे निमंत्रित ब्राह्मणोंके चरणप्रक्षालनआदि तृप्तिकाप्रश्न करने पर्यंत कर्म निपटायके फिर (पिंडपितृयज्ञावृतोल्लेखनादि अवनेजनपर्यंत) चुपके मौनी भूत कर्म करिके ब्रह्मा विष्णु शिव और परिवार सहित यमराज को भी चारों पिंड जुदे जुदे समर्पण करके फिर नाम गोत्र सहित प्रेतको स्मरण करके और विष्णुका नाम उचारण करिके पाँचमा पिण्डदेवै--तिस पीछे ब्राह्मणों को आचमन करनें पर अनेक दक्षिणाओं से संतुष्ट करके उनमेंसे अति गुणवान एक ब्राह्मण को अपने प्रेतका स्वरूप समझि स्मरण करते हुये गऊ धरती सोना चाँदी आदि उत्तम द्रव्योंसे अतिशय संतुष्ट करके तिसपीछे पवित्र धारण किये हाथों से ब्राह्मणों के द्वारा प्रेतके लिये तिल आदि संयुक्त जलदान तर्पण कराय के कर्तापुरुष अपने

अभिप्रायः—यहाँ इसवचनसे यह भी आज्ञा पाईजातीहै कि जब मुर्दाको फूंकि नहाय धोयकर लौटैं तो बीचमें किसी उत्तम धरती पर बैठि के थोड़ासा विश्राम करैं तहाँ रोतेहुओं को समुझाकर शोकशान्ति करैं इसीलिये मृदुशाड्वल अर्थात् नवीन हरीघास जमी धरती पर बैठना कहा ॥ ७ ॥

(शोकशांत्युपायः)

मानुष्येकदलीस्तंभनिःसारेसारमार्गणम् । करोतियःससंमूढोजलबुद्बुदसन्निभे ८ ॥
पंचधासंभृतःकायोयदिपंचत्वमागतः । कर्मभिःस्वशरीरोत्थैस्तत्रकापरिदेवना ९ ॥
गंत्रीवसुमतीनाशमुदधिर्दैवतानिच । फेनप्रख्यःकथंनाशंमर्त्यलोकोनयास्यति १० ॥
श्लेष्माश्रुबांधवैर्मुक्तंप्रेतोभुंक्तेयतोऽवशः । अतोनरोदितव्यंहिक्रियाःकार्याःस्वशक्तितः ११ ॥

अर्थः—रोतेहुयोंको इस भाँति समझावैं कि मनुष्यका शरीर जैसा केलेकाखंभ भीतरसे थोथाहोता किन्तु कुछसार नहीं होताहै ऐसे निःसार देहमें सारवस्तुका ढूंढना जो कोई करने लगताहै वह बड़ा मूर्ख है क्योंकि समस्त संसारही जलफेनके बताशे बुल बुले तुल्यहोता जो क्षणमात्रमें विनाश होसक्ताहै तिससे संसारका स्वरूप खूब समुझिके रोना न चाहिये चुपके होजाओ ॥ ८ ॥ मनुष्यकी काया पांच वस्तुओंसे (पृथ्वी·जल·अग्नि·वायु·आकाश·इनके संयोगसे) बनीहै सो जब अपने पूर्वजन्मकृत कर्मोंके वेगसे संयोग जुदाहोकर पंचत्वको पहुँचिगया तो इस दशामें परिदेवना वृथा क्योंकरनी ॥ ९ ॥ मरजाना कोई अचंभा नहींहै क्योंकि पांचोंतत्त्व समेत पृथ्वी भी एक दिन नाशको पहुंचनेवाली तथा इतने बड़े समुद्रभी नाशमान हैं और देवता जो अमर कहाते या वेहनहीं होते सुने हैं अवश्य किसी रोज न होंगे अर्थात् महाप्रलय के समय पर कुछ भी न रहेगा तो यह मर्त्यलोक जो फेनके समान कहा सो क्योंकर नहीं नाशहोगा तिससे शोकदूर करो॥ १० ॥ अन्यथा जो नहीं चुपके होतेहो तौभी बड़ा दोषहै कि रोने से कफ आँसू आदि जो बान्धव लोग छोड़ते हैं सो सब प्रेत को विवशहोकर खानापरताहै इससे निपटरोनाही न चाहिये किंतु अपनीशक्तिके अनुरूप उसकेक्रियाकर्मकरने चाहिये तिनमेंतत्परहोनाहै उठि खड़ेहोउ घरको चलो ॥ ११ ॥

८-११अधिकोक्तिः—केवलमानुष्यशब्दकहा तिससे जरायुज अण्डज आदिभी जीव समुझने क्योंकि मनुष्य प्रधान होनेसे सबका उपलक्षणहै उसके द्वारा सारे संसारही का स्थिरत्व प्रकट किया गया इसीहेतु आगे दशमें श्लोकमें मर्त्यलोक शब्द कहा है॥ ८ ॥ पूर्व जन्मांतर में जो पुण्य अथवा पाप कर्म संचय किये जाते हैं वही कर्म दूसरे जन्म का बीज कहाते हैं क्योंकि उन्हींकेभोगने को यह जन्म लेनापरताहै

जो पृथ्वी आदि पांच पदार्थों से बना तिसके पूर्व कर्म्मोंका भोग पूरा होजानेसे यदि शरीर छूटिगया तो यह आश्चर्य नहीं है क्योंकि पृथ्वी आदि पांचो तत्त्व शरीर से भिन्न होकर निज निज महा तत्त्वमें मिलजातेहैं ९॥ १० ॥ ११ ॥ शोक शांत किये पीछे जैसे घरको जाना चाहिये सो नीचे वर्णन करेंगे॥

(अथगृहगमनप्रकारः)

इतिसंश्रुत्यगच्छेयुर्गृहंबालपुरःसराः। विदश्यनिम्बपत्राणिनियताद्वारिवेश्मनः १२॥
आचम्याग्न्यादिसलिलंगोमयंगौरसर्षपान्। प्रविशेयुःसमालभ्यकृत्वाऽश्मनिपदंशनैः १३॥

अर्थः—ऊपर कही रीतिके इतिहासों को सुनिके शाद्वल भूमिसे उठिकर छोटे बालकोंको आगेलेकर घरकोजायँ तहां घरकेद्वार आगेसब इकट्ठे एकमनहोकर खड़े हों औरनीबके पत्ते दांतोंसे काटि खुतरि आचमन करें॥ १२॥ आचमन किये पीछे अग्नि आदि तथा जल गोवर पीलीसरसों इनको छुइकर और पत्थरकी सिलापर पैरधरिके धीरे धीरे सावधानीसे घरमें घुसें ॥ १३॥

१२।१३ अधिकोक्तिः—अग्नि आदि जो कहा सो उस आदिशब्द से शंखोक्त अन्यवस्तुभी स्पर्श करनी कहीहैं=यथाहशंखः=दूर्वाप्रवालमग्निद्वयमश्नौवा= अर्थात्-पूर्वोक्तचीजें या दूब मुगा अग्नि द्वयम इनको छुइकर सिलपरपैरधरि घरमेंघुसें अर्थात् जहां जिसके जैसीरीति प्रवृत्तहो उन्ही चीजोंको विकल्पसे समझना ॥ १२। १३॥

(उक्तनियमस्यातिदेशः)

प्रवेशनादिकंकर्मप्रेतसंस्पर्शिनामपि। इच्छतांतत्क्षणाच्छुद्धिःपरेषांस्नानसंयमात् १४॥

अक्षरार्थः—प्रवेशआदि कर्म प्रेतसंस्पर्शियों को भी तत्क्षण शुद्धि चाहनेवालों परजनोंको स्नान प्राणायामसे शुद्धि ॥ १४॥

अभिप्रायः—नीब के पत्ते चाबना आदिघरमें घुसना पर्यंतजो कर्म ऊपर निज सपिंडों के निमित्त करना कहा सो औरोंको भी करना चाहिये जो साथ गयेहों और प्रेतका स्पर्श कियाहो अर्थात् प्रेतके आभूषण उतारना आदि छूनेका कोईसा पुण्य अर्थ कियाहो ऐसे असपिंड और जनों कोभी नीबके पत्ते खुटकना आदि कर्तव्य है परंच उनको अनेक दिन सूतक मानना आवश्यक नहींहै-इसी लिये दूसरेअध्याय में यह कहा है कि परजन जो तत्काल शुद्धहोजाना इच्छा करें तिनका अपने घर जाके स्नान और संयम कहिये प्राणायाम ये दोनों कर्म करने से शुद्धि होजाती है॥ यद्यपि नीबके पत्ते आदि इस क्रमसे घरमें जाना पर्यन्त कहाथा और इस मूलश्लो-

क में आदि शब्द प्रवेश के साथ जोड़ागया तोभी यह विपरीत न समझना किंतु काव्य की मर्यादा से प्रतिलोम अभिप्राय प्रकट कियाहै कि घरमें घुसने से लेकरइधर नीव चाबनेतक जो कुछ करना कहागया तिसका अतिदेश गैरजनों परभी समझना यहलेख मांगलिक है ॥ १४ ॥

१४अधिकोक्तिः—तत्काल शुद्धि होजानेका प्रमाण वाक्य यहाँ लिखतेहैं = यथाह पाराशरः=अनाथंब्राह्मणंप्रेतंयेवहंतिद्विजातयः पदेपदेयज्ञफलमनुपूर्वंलभंतिते। नतेषामशुभंकिंचित्पापंवाशुभकर्मणाम जलावगाहनात्तेषांसद्यःशौचंविधीयते = अर्थात— किसी अनाथको या ब्राह्मण प्रेतको जेकोई द्विजातीलोग कांधे धरतेहैं वे प्रत्येक पग धरनेमें यज्ञफल पातेहैं उनको ऐसेशुभकर्मोंसे न कुछअशुभहै न कोईसापापहै किन्तु उनको जलमें गोता लगानेसेही तत्काल शुद्धिहोजाती है ॥ स्नेहआदिसे पराया मुर्दा लेजानेमध्येमनुनेविशेषताप्रकटकरीहै=यथा= असपिण्डंद्विजंप्रेतंविप्रोनिर्हृत्यबंधुवत विशुद्ध्यतित्रिरात्रेणमातुराप्तांश्चबांधवान् यद्यन्नमत्तितेषांतुदशाहेनैवशुद्ध्यति अनदन्नन्नमह्नैवनचेत्तस्मिनगृहेवसेत =अर्थात—इनवचनोंका यहतात्पर्यहै किजोकोईब्राह्मण अपनेअसपिण्ड द्विजाती गैरके प्रेतको प्रीतिभावसे बंधुकेहीतुल्य कांधेधरै या माताके ठीक सपिण्डोंकोही कांधेधरै और उसके सूतक में अन्न भोजन करै और उसीके घर निवासकरै तिसको भी घरू मनुष्योंकी तरह दशदिनका सूतक होकर शुद्धि होतीहै या जो मुर्दा लेजानेके सिवाय केवल निवास उसके घर करै किन्तु भोजन मे साथी न हो तिसको तीनरात्रिका सूतक होताहै पर जो कोई केवल मुर्दा कांधे धरै किंतु न उसके घर वसै न अन्न भोजन करै उसको एकही दिनका सूतक होताहै सो यह नियम केवल अपने अपने वर्णमात्र में समझना—किंतु—अन्यवर्णका मुर्दा कांधे धरनेसे उसीवर्णके समान सूतक इसकोभी लगताहै =यथाहगौतमः=अवरश्चेद्वर्णःपूर्ववर्णमुपस्पृशेत पूर्वोवाऽवरंतत्रतच्छवोक्तमाशौचं (विप्रस्यशूद्रनिर्हरणेमासमाशौचं शूद्रस्यतुविप्रनिर्हरणेदशरात्रमित्येवंशवबदाशौचंकार्यमित्यर्थः=अर्थात—पिछलावर्ण जो पहले वर्णको उपस्पर्शकरै या पहिलावर्ण पिछलेको तहाँ उस मरेहुये के वर्णको कहा सूतक इसेकरनाचाहिये(यहांपर उपस्पर्शका अर्थ मुर्दाढोनासमझना) यह दृष्टांत है कि शूद्र जो ब्राह्मणका मुर्दा लेजाय तो दशदिन सूतकी बनै या ब्राह्मण जो शूद्रका मुर्दा ढोवै वह एक महीना तक सूतक मानै इसीप्रकार औरवर्णभी समुझिलेने—इसका विशेष निर्णय आगे सत्रहवीं अधिकोक्तिके अंतमें देखना फिर छब्बीसवीं अधिकोक्तिभी देखो ॥ १४ ॥

(ब्रह्मचारिणंप्रत्याह)

आचार्यपित्र्युपाध्यायान्निर्हृत्यापिव्रतीव्रती। सकटान्नंचनाश्नीयान्नचतैःसहसंवसेत् १५॥

अर्थः—आचार्य (जिसके लक्षण आचारअध्याय में कहिचुके) पिता माता॰ उपाध्याय (जिसके लक्षण आचार में) इन तीनोंको निर्हृत्यअपि कांधेधरिके भी व्रती जो ब्रह्मचारी है सो व्रती बनारहताहै अर्थात् उसकाव्रत नहीं भंग होताहै परतु सकटान्न जो कहे का सूतकी अन्नहो तिसको नहीं खाय न सूतकी सपिण्डी केसाथ वसे क्योंकि इन बातोंसे ब्रह्मचर्य भंग होताहै॥ १५॥

१५ अधिकोक्तिः—ऊर्ध्वोक्त नियमसे यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि आचार्य पिता माता उपाध्याय इनचारके उपरान्त किसी सपिण्ड भाई आदिकी रथीमें हाथलगाने से ब्रह्मचारीका व्रत भंग होताहै इसीलिये वसिष्ठका अग्रोक्त वचन है=यथा=ब्रह्म॰ चारिणः शवकर्मिणोव्रतान्निवृत्तिरन्यत्रमातापितोरिति=अर्थात्—मुर्देका कामकरने वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य व्रतसे निवृत्ति होजाती है व्रत नहीं रहिता परंतु मात पितासे अन्यत्रका यह नियम है॥ १५॥

(आशौचिनांनित्यनियमाःकर्माधिकारिणश्च)

क्रीतलब्धाशनाभूमौस्वपेयुस्तेपृथक्पृथक्। पिंडयज्ञावृतादेयंप्रेतायान्नंदिनत्रयम् १६॥

अक्षरार्थः—वे सब धरतीमें जुदे जुदे सोवें क्रीतलब्धाशन होकर। प्रेतकेलिये तीन दिनतक पिण्डयज्ञकी आवृत्से अन्नदेय है॥ १६॥

अभिप्रायः—क्रीतनाम खरीदा हुआ रोज रोज या लब्धनाम जो विना मांगे अन्नादिक मिलजाय वही सब सूतकी भोजनकरें और वेही सब सपिण्ड लोगधरती पर जुदेजुदे सोवें और तीनदिन प्रेतको भी अन्न देतेरहें पिण्डयज्ञकी आवृत् मर्यादा से अर्थात् पिण्डपितृ यज्ञकी प्रक्रिया जैसी प्रसिद्ध है कि अपसव्य दक्षिण मुख होकर इत्यादि रीतोंसे-परंतुइसवचन में तीनदिहीं पिण्डदेने सिद्धहुये तिससे अधिकोक्ति में देखो॥ १६॥

१६ अधिकोक्तिः—क्रीत और अयाचितलब्धभोजनका नियम कहनेसे यहभाव सिद्ध हुआ कि जो ऐसा न मिले तो निराहार भी रहिजाय पर घरमें धरे हुयेको न छुवै छेडै—इसी लिये वसिष्ठका अग्रोक्त वचनहै=यथा=गृहान्व्रजित्वाअधःप्रस्तरेष्वहमन शनंतआसीरन्क्रीतोत्पन्नेनवावर्तेरन्=अर्थात्—दाह दिये पीछे घरोंको जायकर नीचे धरती में प्रस्तर कुशासन चटाई आदि तृणमय विछावने पर सोवें किंतु खाट आदि

ऊंचेपर नहीं=इसमें मनुने कुछ और विशेषता कहीहै=यथा=अक्षार लवणान्नाःस्यु र्निमज्जेयुश्चतेत्र्यहम् मांसाशनंचनाश्नीयुःशयीरंश्चपृथक्क्षितौ=अर्थात्—ऐसा अन्न भोजनकरैं जो खार या खारी लवण से विहीन हो और तीनदिन गोता लगाके स्नान करें और मांसका भोजन न करें और सब जुदे जुदे धरतीपर सोवें = गौतम ने भी विशेष कहा है=यथा=अधःशय्याशयिनोब्रह्मचारिणःशवकर्मिणः = अर्थात्—मुर्देका कर्म करनेवाले खाटसे नीचेसोवें तथा ब्रह्मचर्यसे रहें। प्रेतको अन्नदेने मध्ये अगिला वचन विशेष है=यथाहमरीचिः= प्रेतपिण्डंबर्हिर्दद्याद्दर्भमंत्रविवर्जितम् प्रागुदीच्यांच लक्षरवास्नातःप्रयतमानसः=अर्थात्—घरसे बाहर उदीची दिशा में पहले स्नान करके मन सावधान कियेहुये खीरि वनाइके प्रेतको पिण्डदेवेंकुशा और मंत्रसे विवर्जित= कुशा और मंत्र बिना जो देनाकहा सो उस प्रेतको समझना जिसका जनेऊ न हुआ हो यह भेद अगिले प्रचेता के वचन से जाना जायगा=यथा=असंस्कृतानांभूमौपिंड दद्यात्संस्कृतानांकुशेषु=अर्थात्—संस्कार से रहित प्रेतोंको धरतीपर पिण्ड देवें संस्कार होचुकनेवालों को कुशा बिछाकरदेवें ॥ ० ॥ कर्मकरनेवालेका विशेष नियम जो गृह्य परिशिष्ट में लिखा सो अब कहतेहैं=यथा=असगोत्रःसगोत्रोवायदिस्त्रीयदिवा पुमान् प्रथमेऽहनियोदद्यात्सदशाहंसमापयेत्=अर्थात्—चाहें सगोत्री वा असगोत्री हो प्रथमदिन जोकोई पिंडदेवें वही दशदिनका कर्म समाप्तकरें ॥ पिंडोंका द्रव्य नियम भीशुनःपुच्छ ऋषिने कहाहै=यथा=शालिनासक्तुभिर्वापि शाकैर्वाप्यथनिर्वपेत्। प्रथमेऽहनियद्द्रव्यंतदेवस्याद्दशाहिकम् ॥ तूष्णींप्रसेकंपुष्पंच धूपंदीपंतथैवच=अर्थात्—भातसे या सत्तुओं से अथवा शाकोंसेही प्रेत के निमित्त पिंडबोवें परंतु जिस द्रव्यसे पहले रोज़ दियाजाय वही द्रव्य दश दिन तक होय और मौन साधे हुये जल प्रसेक फूल धूप दीप भी देवें ॥ धरती या पत्थर पर देनेका नियम विकल्प से समुझना=यथाह शंखः=भूमौमाल्यंपिंडपानीयमुपलेवादद्युः=अर्थात्—फूलमाला पिण्ड पानी यह सब धरती या पत्थर पर देवें ॥ यहां पर दद्युः सबको अर्थात् देवें इस बहुवचनसे यह शंका न करनी चाहिये कि जैसे जलांजली देनी सबको कही थी उसी प्रकार पिंड आदि भी सबकोई दे सकते हैं क्योंकि यह काम केवल पुत्रहीको या किसी एकदाह देनेवाले को कर्त्तव्य है अर्थात् पुत्र न होनेमे जो कोई अतिशय निकटका सपिंडहो सो करसकता है उसके भी न होने में प्रेत की माता का सपिंड आदि जो निकट समुझा जाताहो वही करे=इसमें जो आदि शब्द कहा तिसके अधिकारी अगले गौतम के वचन में देखो=यथाह गौतमः=पुत्राभावेसपिंडा मातृसपिण्डाः शिष्याद्युस्तदभावे

ऋत्विगाचार्यौ=अर्थात्—पुत्रके अभावमें प्रेतका सपिंड पुनि उसके भी अभावमें प्रेत की माताके सपिंड पुनि उनके भी अभाव में प्रेत के शिष्य शागिर्द देवें उनके भी न होनेमें ऋत्विक् वा आचार्य पिंडदेवै ॥ परंतु जहां पुत्र अनेकहों तहां जेठा पुत्र कर्म करें सबनहीं=तथाह मरीचिः=सर्वैरनुमतिंकृत्वाज्येष्ठेनैवतुयत्कृतम। द्रव्येणाचाविभक्तेनसर्वैरेवकृतंभवेत् = अर्थात्—जुदे जुदे भी सब पुत्रोंसे अनुमति और द्रव्यकी सहाय लेकर जो कर्म जेठे पुत्रने किया हो यद्वा अनुमति विना भी अविभाक्त धनसे जेठे ने कियाहो सो सबका किया कहाता है ॥ ० ॥ वर्णभेदसे पिंडोंकी संख्यामेंभी नियम भेद कहाहै = यथाह विष्णुः = ब्राह्मणस्यदशपिंडाः क्षत्रियस्य द्वादशैवेत्येव माशौच दिवससंख्यया =अर्थात्–ब्राह्मण के दशपिंड और क्षत्रीके बारह पिण्ड इसी प्रकार जिस वर्णका जितने दिन सूतकहो उसी संख्यासे पिण्डहों अर्थात् जहांतक शुद्धहोने का दिवस आवै तबतक जलदान और एक पिण्ड रोज़ रोज़ प्रेतको दियाजाय= यही प्रमाण अन्यस्मृतिमें कहाहै = यथा = नवभिर्दिवसैर्दद्यान्नवपिण्डान्समाहितः। दशमंपिण्डमुत्सृज्यरात्रिशेषेशुचिर्भवेत् = अर्थात्–यहां केवल ब्राह्मण वर्णसे उदाहरण दर्शाते हैं इसी तरह अन्य वर्णोंके शुद्ध होने योग्य अवधि समुझी जायगी कि• नव दिनोंसे नौपिण्ड सावधानी सहित देतारहै फिर दशमा पिण्ड देकर केवल रात्रि शेष रहिते दिन दिनमें शुद्ध होजावै = शुद्ध होजाना यह तात्पर्यहै कि अगले दिन ब्राह्मण निमंत्रणार्थ जो श्राद्ध कियाजायगा उसके योग्य यह शुद्धि समुझी जायगी ॥ योगीश्वरके मूलश्लोक में केवल तीनदिन तीन पिण्ड देने कहेगये और यहां अधिकोक्तिमें अन्यस्मृतियों से दश बारह आदि पिण्ड देने सिद्ध हुये तो इन छोटे बड़े दो भांति के नियमोंकी व्यवस्था उसी तरह कल्पित करलेनी चाहिये कि जैसी तीसरी अधिकोक्ति के अंतमें जलदान मध्ये लिखिचुके अर्थात् जहां प्रेतका उपकार अधिक चाहाजाय तहां अधिक पिण्डोंका नियम अंगीकार करना या जहां अधिक कर्म करनेका अवसर आदि न मिलने से कठिनाई समुझी जाय तहां तीनपिण्डोंके नियमसे निर्वाह करना यह सिद्धांतहै ॥ ० ॥ तथापि जहां यह भ्रांति खड़ीहोय कि यद्यपि शुद्धकर्म थोड़े दिनमें कर सकनेका अवकाशहै परंतु पिण्ड पूरमपूर देनाचाहतेहैं तहां शातातपस्मृति का वचन अंगीकार करना = यथाह शातातपः = आशौचस्यतुह्रासेपि पिण्डान्दद्याद्दशैवतु = अर्थात्—आशौच नाम सूतक चाहैं थोड़े दिन माना जाय परंच पिण्ड पूरे दसदेने चाहिये॥ इसी लिये योगीश्वरके वचनानुसार तीनदिन सूतक मानने वालोंका निर्वाह पारस्करने दर्शाया है = यथा = प्रथमेदिवसेदेया स्त्रयःपिण्डाःस

माहितैः। द्वितीयेचतुरोदद्यादस्थिसंचयनंतथा॥ त्रींस्तुदद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्रादिक्षालयेत्तथा = अर्थात—जो तीनिही दिन सूतक मानै तौ सावधानी से पहिले दिवस तीन पिण्ड देने चाहिये दूसरे दिन चारपिण्ड देवै पुनि उसी दिन अस्थि संचय कर्म करै फिर तीसरे दिवस तीनपिण्डदेकर पं.के कपड़े धोकर शुद्धहोजावै तौ यहभी दशदिन के समान कर्म रहिरता है = इस अधिकोक्तिमें वर्णन करी व्यवस्था सभी वर्णों की तुल्यात्मक साधारण है॥ १६॥

(अथ सिक्यजल वंधनादि विशेषं नित्यकर्मादि विवेकश्च)

जलमेकाहमाकाशेस्थाप्यंक्षीरंचमृण्मये। † वैतानौपासनाःकार्याःक्रियाश्चश्रुतिनोदनात् १७॥

अर्थः—आकाशमें एकदिन जलदूध भी मृत्पात्रोंमें जुदा जुदा स्थापन करना चाहिये किंतु छींकेमें धरिके वृक्षादि पर लटकाना चाहिये † वितान संबंधी उपासना क्रियायें भी करनी चाहिये श्रुतिकी आज्ञासे अर्थात् वितान अग्नियों के विस्तार का नामहै जो अग्निहोत्रियोंके वेद विहित मार्गसे स्थापन होतीहैं कि जिनमें सांझ सबेरे दोनों समय नित्य होम होता रहताहै उसकी क्रियायें वैतानौपासना कहातीहैं तिनका त्याग सूतकमें भी नहीं होता क्योंकि श्रुति वेदकी आज्ञा यहीहै = इसका विशेष व्यौरा अधिकोक्ति में देखौ॥ १७॥

१७ अधिकोक्तिः—जल और दूध जुदे पात्रोंमें एकदिन जो कहा तिसका कोई दिवस ठीक निश्चय नहीं किया तिससे पहिला दिवस पायागया कि दाहदिये पीछे उसी दिन सायंकालको लटकावै=पारस्करने इस कर्म का निमित्त भी प्रकाश किया है = यथा = प्रेतात्रस्नाहीत्युदकस्थाप्यं पिवचेदमितिक्षीरं = अर्थात—अये प्रेत इसमें स्नान करु इसलिये जल स्थापनहो.यह दुग्ध पानकरौ इसलिये दूधका स्थापन॥०॥ फूल बीनना किंतु अस्थिसंचय कर्म करना यद्यपि १६ की अधिकोक्तिमें दूसरेदिन कहिचुके हैं तथापि इसके कई भेद हैं सो आगिले संवर्तके वचनमें देखौ= यथाह संवर्तः =प्रथमेऽह्नितृतीयेवा सप्तमेनवमेतथा। अस्थिसंचयनंकार्यंदिनेतद्गोत्रजैःसह = अर्थात—पहिले दिवस या तीसरे या सातवें या नववें दिन अस्थिसंचय करना सो दिन में करना और प्रेतके गोत्रियोंको साथ लेकर करना = इसके सिवाय विरली स्मृति में दूसरे दिन करने कहे तथा वैष्णवशास्त्र में चौथे दिनभी करने कहे और गंगा जल में छोड़ने कहेहैं—इन सब कहे दिवसोंमें जो जिसके घरकी परिपाटीसे प्रसिद्ध हो सो उसी दिन करै यह तात्पर्यहै॥ अंगिराने इस कर्मके साथ देवयाग भी करना कहाहै=

=यथा = अस्थिसंचयनेयागो देवानांपरिकीर्त्तितः। प्रेतीभूतंतमुद्दिश्य यःशुचिर्नकरोतिचेत्॥ देवतानांतुयजनंतंशपंत्यथदेवताः। श्मशानवासिनोदेवाः शवानांपरिकीर्त्तिताः = अर्थात्--अस्थि संचय कर्मके दिवस देवताओंका याग अर्थात् यजन पूजन करना कहाहै उसी प्रेतके उद्देश करके जो कोई शुद्ध चित्त होकर देवताओंका यजन इसमें नहीं करता उसको अवश्यही देवता शाप देती हैं (देवता इसमें गणेशादि वा इन्द्रादि नहीं समुझने किन्तु) श्मशानभूमि के रहनेवाले मुर्दाओं की देवता कहातीं जो पहिले वहांपर फूंकेगये हों--इसका यही तात्पर्यहै कि फूल चीनते समय पहिले श्मशानके देवता और अपने मुख्य प्रेतके नामसे धूप दीप पुष्प माला दूध और पिंड रूप अन्नसे पूजे॥ ०॥ अब दशवे दिनका शुद्धकर्म मुंडन आदि की विधि कहते हैं =यथाह देवलः = दशमेऽहनिसंप्राप्ते स्नानंग्रामाद्बहिर्भवेत्। तत्रत्याज्यानिवासांसि केशश्मश्रुनखानिच = अर्थात्--दशवां दिन प्राप्त होने से बस्ती से बाहर जाके शुद्ध स्नान किया जाय तहां अशुद्ध वस्त्र त्यागि दिये जायें और बाल दाढी मूछ नख भी त्यागि दियेजायँ॥ यह सामान्य भावसे दशवां दिन कहा सो उन सभी दिवसों का उदाहरण समुझना जो जिस वर्णके नियमसे अधिक अवधिमें या किसीके परम्परा से या किसी आवश्यकता से थोडी अवधि में करने का दिन ठहराया जाय = सो यह विकल्प अगले स्मृत्यंतर वचन से स्पष्ट होताहै = यथा = द्वितीयेऽहनि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म्मप्रयत्नतः। तृतीयेपंचमेवापिसप्तमेवाप्रदानतः= अर्थात्—यहां प्रदान शब्दसे श्राद्धप्रदान जो एकादशाहिक प्रसिद्ध है तिसते भीतर भीतर ये सब दिवस हो सकते हैं कि या तो दूसरे दिनही क्षौरकर्म्मको यत्नसे करै या तीसरे या पांचवें या सातवेंदिन जहां जैसा संभव हो॥ ०॥ अब उसका निर्णय कर्तव्य है कि मुंडनकौन करावैं तिसके लिये यह आपस्तम्ब का वचन देखो=यथा=अनुभाविनांचपरिवापनं =अर्थात्—(यावद्दुःखमनुभवंतीत्यनुभाविनःसपिंडाः) जो मुर्देका दुःख अतिशय मानते हैं वेही सपिण्ड अनुभावी कहाते हैं तिन सबका मुडन होना चाहिये किन्तु मुर्दासे छोटी अवस्था वालोंका पूरा मुंडन कियाजाय यह भी तात्पर्य इसी वचन के अर्थसे संसिद्ध होताहै कि (अनुपश्चाद्भवतीत्यनुभाविनः) जो मृतक से पीछे पैदा हुये हों वे अनुभावी कहाते हैं अर्थात् उससे छोटे हों तिनका परिवापन किन्तु पूरा मुण्डन=विरले आचार्योंका यह मतहै कि अनुभावी शब्दसे पुत्रसमझने क्योंकि पूरे मुडन या सर्वभद्रकी जरूरत उन्हींको होतीहै (यहां परिवापन या पूरा मुडन या सर्वभद्र कहने से दाढी मूछतक मुडाना सिद्ध होताहै) सर्वभद्र मुंडन अग्रोक्त सातकर्म्मों

में होता है=यथाग्रंथांतरवचनं=गंगायांभास्करक्षेत्रेमातापित्रोर्गुरोर्मृतौ । आधानकाले सोमेचवपनंसप्तसुस्मृतम्=अर्थात्—गंगातटपर भास्करक्षेत्र में माता और पिता केमरने में गुरु के मरने में आधान काल में अर्थात् अग्नि के स्थापन समय जो अग्निहोत्रियों का विधान है सोमतीर्थ में अर्थात् सोमनामतीर्थ या सोमयागरूपी तीर्थमें भी इन सात स्थानोंपर सर्वभद्ररूपी वपनहोना कहाहै॥ यहां तक आवेमूल श्लोकपर अधिकोक्ति पूरीहुई उसीका यह चिह्नहै ॥ । ॥ अब उत्तरार्द्धकी अधिकोक्ति लिखते हैं क्योंकि पूर्वार्द्ध से जो सूतक में अशुचित्व कहा तिससे सभीकर्म श्रौत और स्मार्त्तों का करना तबतक निषिद्ध समझागया परन्तु जो विरले कर्म सूतक में भी कियेजाते हैं तिनकी आज्ञा इसमें दर्शावेंगे (वैतानोपासनाःकार्याःक्रियाश्चश्रुतिनोदनात्)वितान अग्नियोंका विस्तार कर्म कहाता है तिसमें जो क्रिया हों सो वैताना कहाती हैं. दृष्टांत जैसे त्रेताग्निनाम अग्निसे जो क्रिया वेदोक्त होतीहों या अग्निहोत्रकी अग्नि में होतीहों या अमावस पूर्णमासी आदिके वेदोक्त यज्ञों में अग्निसाध्य क्रिया होती हों तिनकी उपासना साधन करने के हेतु से (वैतानोपासनारूपी यह नाम ठहरा) ऐसी सब क्रियायें सूतक में करनी बंदनहीं होती किंतु करना चाहिये क्योंकि श्रुति नोदनात् श्रुतिकी आज्ञा होने से इनको सूतक नहीं लगता= श्रुतिकी आज्ञाके यह अग्रोक्त उदाहरण हैं = यथा = यावज्जीवमग्निहोत्रंजुहुयात् = तथा = अहरहःस्वाहाकुर्यात् = अर्थात्—यह श्रुति कहती है कि जबतक जीवै अग्निहोत्र में होमकरतारहै = तथा दूसरी यह श्रुतिहै कि = दिनदिनप्रतिस्वाहा करै = तो इस आज्ञा से सूतकमें भी कोई दिन स्वाहासे खाली नहीं रहसकता (अन्नाभावेकेनचिदाकाष्ठादिनाश्रुत्यौपासनहोमोऽपिचोद्यते) अर्थात् होम योग्य अन्नके अभाव में किसी एककाष्ठ आदि द्रव्यसेभी श्रुत्यौपासन होम कहाताहै॥ अब उस बातपर ध्यान देना चाहिये कि योगीश्वर के मूलश्लोक में श्रुतिकी आज्ञावाली क्रियायें करनी कहीं तिससे श्रौतकर्म मात्र सब सूतकमें होंगे किंतु स्मार्त कर्मोंकी दान आदि क्रियाओंकाअनुष्ठान करना निषिद्ध ठहरा = इसी बातपर वैयाघ्रपाद का अग्रोक्त वचन है = यथा = स्मार्तकर्मपरित्यागोराहोरन्यत्रसूतके । श्रौतेकर्मणितत्कालंस्नातःशुद्धिमवाप्नुयात्= अर्थात्—राहुसे अन्यत्र सूतक में स्मार्त कर्मों का परित्यागहै परंच श्रौत कर्मकरने मध्ये तत्कालही स्नान करके शुद्धहोजाताहै ॥ ० ॥ सूतक में श्रौतकर्मों का करना कहा सोभी नित्य और नैमित्तिक अभिप्रायसे कहागया है अर्थात् सामान्य सब कर्मोंका नहीं यह ध्वन्यर्थ अगले वचन से संसिद्धहोगा = यथाइपैठीनसिः = नित्यानिविनि-

वर्तेरन्वैतानवर्ज्यंशालाग्नौचैके = अर्थात्—सूतकमें नित्यकर्म श्रौतस्मार्त सबहोंकि आय परंच नैत्तिक श्रौत कर्मों में वैतानकर्म नित्य होते हैं जो तीन प्रकार की अग्नि से साधनहो तिनको छोड़कर यह नियम समुझना और एकोंके विचारसे वहकर्मभीकि जो शालाग्नि में अर्थात् गृह्याग्नि में आवश्यक नित्य होतेहैं होते रहेंगे क्योंकि उनके लिये सूतक नहींहै = और = जोजो काम्य कर्महैं कि कामना से उत्पन्न किये जातेहों तिनको सूतक लगताहै इस हेतुसे उनका करना निषिद्धहै = इसी अभिप्रायसे मनुने यह कहाहै कि=प्रत्यूहेन्नाग्निषुक्रियाः = अग्निमें जो क्रिया साधन होती हैं तिनको नहीं रोके– किंतु--जो विना अग्निके पंचमहा यज्ञ आदि कर्म नित्य होते हैं तिनको निवृत्ति करै=संवर्तने इसका विशेषनिर्णय कियाहै=यथा = होमंतत्रप्रकुर्वीतशुष्कान्नेनफलेनवा पंचयज्ञविधानंतुनकार्यन्मृत्युजन्मनोः=अर्थात्–तहांसूतकमें अपना नित्य होम जो आवश्यक है सो करै किंतु सूखे अन्नसे करै या फलसे करै (सूखा अन्न पिसेहुये चावल आदि या सूखेफल मेवा आदिसे) परंतु पंचयज्ञोंका विधान जो है सो नहींकरै मृत्युसूतक और जन्मसूतक इनदोनोंमें॥ यद्यपि अग्नि में होनेवालेकर्मोंकी आज्ञा ऊपर लिखी गईथी और यहां पंचयज्ञों में वैश्वदेव कर्म जो अग्नि से होता तिसका निषेध पंचयज्ञों के निषेध से होगया कि अग्निसाध्य होनेपरभी वैश्वदेव न करना चाहिये–फिर–इसको जुदे वचन से भी संवर्तने निषिद्ध किया है=यथा=विप्रोदशाहमासीतवैश्वदेवविवर्जितः=अर्थात्—ब्राह्मण दशदिन वैश्वदेव कर्म से वर्जितहोके रहै ॥ ० ॥ संध्या वंदनभी नित्य कर्महै तिसका निर्णय कर्तव्यहै (सूतकेकर्मणांत्यागःसंध्यादीनांविधीयते) अर्थात् सूतक में संध्या आदि कर्मोंका त्याग रखना कहाहै–यद्यपि इसी वचन से संध्यावंदन का निषेध पाया गया तथापि सूर्य नारायण को जलांजली देना आदि स्वल्पकर्म करना पैठीनसिने दशर्याहै=यथा=सूतकेसावित्र्याचांजलिं प्रक्षिप्यप्रदक्षिणां कृत्वासूर्यंध्यायन्नमस्कुर्यात्=अर्थात्—सूतकमें सूर्यको अंजली भी गायत्री पढ़िकर फेंके और प्रदक्षिणाकरके सूर्यका ध्यान करते हुये नमस्कार करै ॥ ० ॥ यद्यपि योगीश्वर के मूलश्लोक में (वैतानोपासनाः कार्याः) यह सामान्य भावसे कहागया किंतु कोईसी विशेषता इसमें नहीं प्रकाश हुई तथापि जो क्रिया सूतकमें करनी कहीं सो सब अन्य पुरुष के द्वारा करवानी चाहिये क्योंकि (अन्यएतानिकुर्युः) यह पैठीनसि का वचन है कि ये इतने कर्म सूतकी के सिवाय कोई अन्य पुरुष करें=यही तात्पर्य बृहस्पति ने भी कहा है = यथा = सूतकेमृतकेचैवअशक्तौश्राद्धभोजने प्रवासादिनिमित्तेषुहावयेन्नतुहापयेत्॥

अर्थात्—जननसूतक और मृतक सूतक और रोग आदिसे अशक्ति होनेमें औरश्राद्ध के रोज ब्रह्मभोज के अनवकाश में इसी प्रकार कहीं विदेशको जाने आदि निमित्तों में और के हाथसे होम करावै परकर्मकी हानि न करै॥ ०॥ पिछले स्मार्त कर्म भी सूतक में करने कहे हैं = यथाहजातूकर्ण्यः = सूतकेतुसमुत्पन्नेस्मार्तंकर्मकथंभवेत् पिंडयज्ञंचरुंहोममसगोत्रेणकारयेत्=अर्थात्—सूतक उत्पन्न होने में यदि कोई कर्म ऐसाही आवश्यक आनिपरै जो स्मार्तहो किंतु स्मृतियों की आज्ञा के अनुसार परम धर्म गिना जाताहो तौ वह स्मार्त कर्म कैसे होवै (इस प्रश्नका यह उत्तर है कि) पिंडयज्ञ नाम श्राद्ध जो आश्विन आदि महीनामें आवश्यक हैं तथा चरुहोम अर्थात् हव्यान्न होम जिसका बड़ा उपाय और महूर्त भी पहिले से निश्चय होचुका था या कोईसा नियमात्मक नित्य होम जो निरंतर होता रहताथा बीचही में सूतक होगया इसी प्रकार कोई बड़ा यज्ञ बागप्रतिष्ठा आदि जो पहिले से प्रारंभ था सो सब उसी सूतक में असगोत्री पुरुषके द्वारा करावै किंतु न आपकरै न अपने सगोत्रीसे करावै= अब = शेषरहा यह संदेह कि गैरके हाथ से किये कर्म का फलभागी कौन होगा इसके मध्ये सदा शिवजी का यह वचनहै = यथा = दैवेपित्र्ये चवाणिज्येराजद्वारे विशेषतः यदिदध्यात्प्रतिनिधिःतन्नियंतुःकृतिर्भवेत्=अर्थात्—विशेषकर देवकर्म जप होम यज्ञ आदि ब्राह्मण वरणीसे और पितर कर्म श्राद्ध गयाश्राद्ध आदि जो आचार्य वा पुरोहित से कराया जाय और वाणिज्य व्यापार कर्मजो गुमाश्तों वा मुनीमोंके द्वारा किया जाय तथा राजद्वार में जो मुख्तार वकीलोंके द्वारा काम होते हैं इनसभी में जोकुछ काम कोई प्रतिनिधि करै सो नियंता स्वामी का करना गिनाजाता किंतु भले बुरे फलका भागी वही मालिक होता है जिसने किसीको मुख्तार बनायाहो॥ यहां सूतक के प्रसंग में यद्यपि सांगोपांग विधान तथा अपने अंगसे कर्म करने का अधिकार सूतकी जनको नहीं ठहिरा तथापि अपना द्रव्य लगाकर प्रतिनिधि के द्वारा प्रधान कर्मका करना निश्चितरहा क्योंकि द्रव्य अपनाही अपना होताहै वह औरके उत्पादन करनेसेभी अपना नहीं ठहिरता—इन्हीं कारणों से यह वचन पहिले कहाथा कि (श्रौतेकर्मणि तत्कालं स्नातःशुद्धिमवाप्नुयात्) = और जो यह वचन है कि=दानंप्रतिग्रहोहोमःस्वाध्यायश्चनिवर्तते=अर्थात्—सूतकमें दानदेना और प्रतिग्रह लेना और होमकरना और स्वाध्याय नाम अपना पाठ पढ़ना आदि यहसब निवर्तित होजाता है—इसमें जो होमका रुकिजाना कहा सो कामना संबंधी काम्यहोमके अभिप्राय से वा वैश्वदेव रूपी होम के अभिप्राय से समझना जिसका निषेध पहिले

इसी अधिकोक्ति में होचुकाहै ॥ ० ॥ अस गोत्रीके सूतक में अन्न भोजन का निषेध है=यथाहयमः=उभयत्रदशाहानिकुलस्यान्नंनभुज्यते सूतकेतुकुलस्यान्नमदोषंमनुरब्रवी त=अर्थात्--जिसके सूतकहो उसके कुलमात्र का अन्न दशदिन नहीं खाया जाता उभयत्र नाम जनन मरण दोनोंसूतक में (यहाँ दशदिन के उपलक्षण से उतने दिन समझने जो जिसवर्णके सूतकके नियतहों) परंतु अपने सगोत्री कुलका अन्न अदोषितहै सूतक में भोजन करना चाहिये यह मनुका संमत यमने प्रकट किया ॥ ० ॥ विनाजाने या जान बूझ भोजन करने में किसको दोष होताहै यह भेद षट्त्रिंशत् के मतसे दर्शाते हैं = यथा = उभाभ्यामपरिज्ञातेसूतकंनैवदोषकृत् एकेनापिपरिज्ञातेभोक्तुर्दोषमुपावहेत् = अर्थात्–विदेशमें होने आदि कारणों से दोनोंको सूतक नामालूमहो तो अन्नका दोष देनेवाले या खानेवाले किसीको नहीं होता पर जो दाता या भोक्ता दोमें किसी एकहूको सूतक मालूम हो तो केवल खानेवालेको दोष लगताहै· यह जनन मरण दोनों सूतक में समझना ॥ ० ॥ विवाह आदि उत्सवों में जो अन्न पकान्न सूतकसे पहिले सिद्धहो चुकाहो और सूतक उसी घरमें नहो किंतु गृहांतरमें पकान्न सिद्धहुआहो तो वह अन्न ब्राह्मण आदि भोजन करसकते हैं=यथाह बृहस्पतिः=विवाहोत्सवयज्ञेषुत्वंतरामृतसूतके पूर्वसंकल्पितार्थेषुनदोषःपरिकीर्तितः = अर्थात्–विवाह या और किसी बड़े उत्सव या यज्ञोंमें उसघरके अंतरसे जनन यामरण का सूतक उत्पन्न होय तो पहिले संकल्पित या सिद्धि किये पदार्थों में सूतक दोष नहीं लगता = इसी वार्तापर षट्त्रिंशन्मत में औरभी कुछ विशेषता कहीगई है = यथा = विवाहोत्सवयज्ञेषुत्वंतरामृतसूतके परैरन्नंप्रदातव्यंभोक्तव्यंचद्विजोत्तमैः भुंजानेषुतुविप्रेषुत्वंतरामृतसूतके अन्यगेहोदकाचांताःसर्वेतेशुचयःस्मृताः = अर्थात्–विवाह उत्सव यज्ञों में गृहांतर से सूतक उत्पन्न होने में दूसरे घरमें बनाधरा अन्न असगोत्री परजनों के हाथ से दिलायाजाय तो अच्छे द्विजोत्तम भोजन करें दोष नहीं है इसी प्रकार सूतकी घरसे जुदे घरमें जिमाये हुये ब्राह्मण असगोत्री के घरके जलसे आचमन कराये जायँ तोवेसब पवित्रहैं उनको कोई दोष या प्रायश्चित्त नहीं लगता ॥ ० ॥ अब यह निर्णय करना चाहिये कि सूतकी घरमें किन पदार्थोंको सूतक नहीं लगता = तथाह मरीचिः=लवणोमधु मांसेच पुष्पमूलफलेषुच। शाककाष्ठतृणेष्वप्सुदधिसर्पिःपयःसुच । तिलौषधाजिनेचैवपक्वापक्वेस्वयंग्रहः पण्येषुचैवसर्वेषुनाशौचंमृतसूतके=अर्थात्– नमक और मधुशब्दसे मद्य सहत मीठारस पुष्परस आदि चीजें समझनी और· मांस प्रसिद्धहै.एवं फूल· मूल· फल· शाक· लकड़ी· तृण भूसा

आदि' और जल जो सूतकी घरमें कूपकुण्ड तलाव आदिमें हों' और दही' घी' दूध' तिल' दवाई' मृगचर्म' पकेअन्न जिनका भेद नीचे लिखेंगे कचेअन्न तंदुल आदि इन सबमें दोष नहीं है पर स्वयंग्रह से अर्थात् जो वस्तु सूतकी ने न छुई हो मुखसे बतादी लेनेवालेने आपही उठाली सो स्वयंग्रह कहाताहै परंच पराय वस्तु जो बेचने खरीदनेसे व्यापार से रहिती हों बाजार से दिलाई जाय' इनसब द्रव्यों को सूतक नहीं लगता तिससे इनका देनालेना निषिद्ध नहीं समझा—इनमें पकेअन्न पक्वान्न जो कहे गये या कचे अन्न तंदुल आदि सो यह सब प्रवृत्त सूतकी का विषय निश्चित हुआहै कि यदि सूतकी बहुतसा बांटने वर्त्ताने पर उद्यत हुआ हो और अपना हाथ नहीं लगाया हो इसी लिये स्वयंग्रह भी ऊपर कहिचुके या औरके हाथसे लेना दोष नहीं ठहिरता = इसी आशयपर यह अगिला वचन है = यथाह अंगिरा = अन्नसत्रप्रवृत्तानामासन्नमगर्हितम्। भुक्त्वापक्वान्नमेतेषांत्रिरात्रंतुपयःपिबेत् = अर्थात्—जो सूतकी अन्न सबके मार्गसे बहुतसा बांटने पर प्रवृत्तहुयेहों तिनका काचा अन्न तिल चावरआदिअनिंद्य है परंच उनका पकाअन्न खायकर तीनराति पयः पानका प्रायश्चित्त करै—इस वचन से पकेअन्नका बहुतबडादोष कहा सो निज सूतकीके हाथसे पकाये अन्नका सिद्धांत है और ऊपर मरीचि के वचन में पक्वान्न को सूतक नहीं लगता कहा सो वह जुदा विषयथा कि और का पकाया वा बाजारसे दिलायाहुआ लेनेवाला आपही स्वयंग्रह की रीतिसे लैआवै तो कुछ दोष नहीं था॥ ० ॥ चौदहवीं अधिकोक्ति के अनुसार किसी असवर्ण या असगोत्री को यदि किसी मुर्दा के संसर्गसे सूतक लगाहो तिसकी विशेषता अंगिराने दर्शाई है = यथा = आशौचंयस्यसंसर्गादापतेद्गृहमेधिनः क्रियास्तस्यनलुप्यन्तेगृह्याणांचनतद्भवेत् = अर्थात्—जिसकिसी गृहस्थी पुरुष को किसी के संसर्ग से सूतक आपरे तौ उसके घरकी सब क्रिया नहीं लोपहोती हैं न उसके अन्य घरवालोंको सूतकहोता किन्तु केवल उसके देहमात्रको लगताहै॥ औरभी जिसकिसी गृहस्थी को स्थानांतरीय सूतक वीतिजाने पीछे सुनिपरै तौ उसका निर्णयभी अंगिराने किया है = यथा = अतिक्रांतेदशाहेतुपश्चाज्जानातिचेद्गृही। त्रिरात्रंसूतकंतस्यनतद्रव्यस्यकर्हिचित् = अर्थात् — दशदिनआदि नियत अवधि वीतिजाने बाद जो कोई गृहस्थी जानिपावै कि मुझको सूतकहुआथा पर सुनानहीं तौ अब उसकोकेवल तीन रात्रि का सूतक शरीरसे संबंधराखैगा किन्तु उसके अन्य द्रव्योंको सूतकतीनरातिभी नहोगा॥ १७॥ कहीं विदेशमेंमरेहुये सपिण्डकी खबर जो बहुत॥ काल पीछेमिली हो तिसकाभी सूतकआदि वर्त्तावा नीचेके परिच्छेदमेंदेखना॥ इतिप्रथमःपरिच्छेदः॥

अथआशौचसूतकयोर्दिनावधिकथनेद्वितीय परिच्छेदः२॥

—※—

इसदूसरे परिच्छेद में जन्म और मरण दोनोंके सूतकों
मध्ये सबतरहकी अवधि कही जायँगी॥

(जननमरणयोर्ज्ञाते श्रवणे वा सूतक नियमाः)

त्रिरात्रंदशरात्रंवाशावमाशौचमिष्यते। ऊनद्विवर्षउभयोःसूतकंमातुरेवहि॥ १८॥

अक्षरार्थः—तीनरात्र या दशरात्र शवका आशौच इच्छा करतेहैं। दो वर्षसे ऊने मे (माता पिता) दोनोंको हि यथा सूतक माताकोही॥ १८॥

अभिप्रायः—इस वचन के अर्थ कई तरहसे लगाते हैं इसी हेतु बहुत गूढ अन्वय लगताहै तिससे खूब ध्यानदेकर सोचो—शवनाम मुर्देका तिसके निमित्तका आशौच सूतक शावकहाताहै दूसरा पद सूतक जो उत्तरार्द्ध में आया तिससे केवल जन्मसूतक भी समझा जाता और विरले समय जन्म मरण दोनोंके सूतक एकही पदसे समुझे जातेहैं जहाँ जैसा प्रयोजन हो वही अर्थ लगाया जाताहै यहाँ पर योगीश्वर कहितेहैं कि—तीनरात्र या दशरात्र मुर्देका सूतक मानने को मन्वादि ऋषीश्वर इच्छा करते हैं सामान्य सभी गोत्रियोंके निमित्तमें इस भेदसे कि सातपीढीतक सपिण्डलोगदशरात्र मानें और उनसे उपरान्त आठवीं पीढीसे ले चौदह के भीतर जो समानोदक हों सो केवल तीनरात्रिमानें (यहाँपर मुर्दा कहिनेसे पूरामृतक समझना कि जिसको अग्नि का दाह दिया गयाहो क्योंकि उत्तरार्ध मे गाडने योग्य छोटी अवस्था का वृतान्त जुदा कहेंगे—और भी यह व्यवस्था सिर्फ ऐसे मुर्दाकी समझनी जो देशांतर मे मरा सुना गयाहो क्योंकि प्रत्यक्ष मे समीप मरेदेखे हुये की व्यवस्था सत्रह श्लोक तक वर्णन होचुकी) और विशेष ब्यौरा इसीका अधिकोक्ति में समझना यह सब पूर्वार्ध का अभिप्राय कहागया। पूर्वार्धमे सपिण्डोंको दशदिन बतायेगये तौ सामान्यभाव से सभी सपिण्ड समझेगये तिससे उत्तरार्द्धमें विरले समीपी सपिण्डोंका जुदा नियम दर्शाते हैं कि—दो वर्षसे ऊने बालक मरनेमें (उभयोर्मातापित्रोः) मातापिता दोही को,

दशरात्रि का सूतक लगै किन्तु सभी सपिण्डों को नहीं क्योंकि अन्य सपिण्डोंको सूतक आगे तेईसके मूलश्लोकसे कहेंगे (सूतकेमातुरेवहि) सूतकमें अर्थात् पुत्रजन्म होतेही मरणउत्पन्न होय तहां केवल माताही को दशरात्रि सूतक लगै पिता को नहीं क्योंकि पिताके निमित्त आगे बीसके श्लोक से जुदा नियम कहेंगे- अथवा (सूतके मातुरेवहि) ऐसा पाठहोने से यह केवल दृष्टांत है कि हि यथा जैसे सूतक नाम जनन कालका अस्पृश्य लक्षण केवल माताको होता है कि उसको न छूनाचाहिये तैसेही दो वर्षसे ऊने बालक मरने में माता पिता दोनोंको अस्पृश्य रूपी सूतक लगता है कि दोनोंको न छूना चाहिये अन्य सपिण्डोंको छूनेका कुछ दोष नहीं (जब कि सपिंडों को छूने मध्यं दोषका निषेध किया तो सपिण्डोंसे उपरान्त समानोदक अवश्य ही स्पर्श करने योग्य ठहिरे) इन बातों के विशेष ब्यौरे अधिकोक्ति में समझना जहां अनेक स्मृतियों के वचन दियेजायँगे—परन्तु छोटे बचों के सूतक नियम आगे तेईसवें मूल श्लोक से देखना (इस आशौच के प्रकरण में जहां कहीं केवल रात्रि या दिन कहाजाय तहां रात्रि दिन दोनों मिलके समझने ॥ १८ ॥

१८ अधिकोक्तिः—योगीश्वर के मूलश्लोक में जैसा शाव--शब्दसे मरणाशौच समझाजाताहै तैसा उत्तरार्ध में सूतकशब्दसे जननाशौचभी जुदासमझाजाताहै सोइन दोनों पदोंसे योगीश्वरने जनन मरण दोनोंके आशौच सूतक एकही श्लोकमें समस्या किये हैं कि तीन या दश रात्र की व्यवस्था जो कुछ अभिप्राय में लिखचुके सो सब जन्म मरण दोनोंके निमित्त यथा संभव समझ लेनी = वह दोनों जब कभी कोई एक भी उत्पन्न होकार विदितहोजाय तभी सूतक लगता है अर्थात् उत्पन्न होनेपरभी जिस किसीको मालूम न होसके तिसको सूतकनहीं लगता यह तात्पर्यहै इसीलिये अगले वचनहैं=यथा=निर्दशंज्ञातिमरणं श्रुत्वापुत्रस्यजन्मचेत्यादिलिंगदर्शनात्=यथा=विगतं तुविदेशस्थंशृणुयाद्योह्यनिर्दशं। यच्छेषंदशरात्रस्यतावदेवाशुचिर्भवेदित्यादिवाक्यारंभ सामर्थ्याच • उत्पत्तिमात्रापेक्षत्वेह्याशौचस्यदशाहाद्याशौचकालनियमास्तत्तत्प्रभृति कास्व=अर्थात्—ये दृष्टांत हैं कि जैसे निर्दश नाम निकसि गये दशदिन जिसके ऐसा जो ज्ञातिका मरण हो या ऐसाही पुत्रका जन्महो ताहि सुनिके• इत्यादि वचन का लिंग स्वरूप देखनेसे=तथैव = दूसरा दृष्टांतहै कि विदेशमें टिकेहुयेको यदि कोई अनिर्दश मरासुने अर्थात् मौतको दशदिन पूरे न बीतेहों बीचही में सुने तहां जो दश रात्रका शेषकाल रहाहो उन्हीं दिनोंतक अशुद्धहै• इत्यादिवाक्य आरंभकी सामर्थ्य सेभी सर्वथा निश्चित होताहै कि• सूतक उत्पन्न होने मात्रकी अपेक्षा से आशौच के

दशदिन आदि वर्णभेद से जो नियम कहिचुके सो सब जन्म या मरण होनेके समय से आवश्यकहैं—इसीहेतुसे अनिर्दशमरण सुननेमें कि जिसको दशदिवस न वीतेहों तो शेष दिवसोंका सूतक सिद्धहोता है तिससे यह तात्पर्य निकसताहै कि शेष काल से लेकर पूरा सूतक न आरंभ करै· इस कारणसे मरण या जन्म जब सुननेमें आवै तभी से सुनने वालेके निकट मरण या जन्म हुआ समझा जाय और उतने दिनतक माना जाय जैसा योगीश्वर के मूलश्लोक पर अभिप्राय लिखागयाहै कि तीन रात्र या दश रात्र समानोदक सपिण्डके भेदसे = इसीके प्रमाणमें यह वचन है = यथा = दशाहंशावमाशौचंसपिण्डेषुविधीयते। जननेप्येवमेवस्यान्निपुणांशुद्धिमिच्छताम्॥ जन्मन्येकोदकानांतुत्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। शवस्पृशोविशुध्यंतित्र्यहात्तूदकदायिनः = अर्थात्—सुनेहुये मुर्देका आशौच दशदिन सपिण्डों में किया जाताहै· ऐसेही जन्म सूतकमें दशदिन कियाजाय जो अच्छी शुद्धिचाहते हों· और जन्म सूतकमें एकोदक समानोदकों की शुद्धि तीनरात्रि से कही जातीहै· और उदकदायी समानोदक प्रत्यक्ष मुर्दाको स्पर्श करके भी तीनिही दिनमें शुद्धहोजाते हैं = और भी स्मृत्यंतर वचन जो अशोक्तहै कि = चतुर्थेदशरात्रंस्यात्षण्णिशाःपुंसिपंचमे। षष्ठेचतुरहाच्छुद्धिःसप्तमेत्वहरेवतु = अर्थात्—चौथी पीढीतक दशरात्रिका सूतकहोय पाँचवींतक छैरात्रि मानी जायँ और छठींपीढीमें चारहीदिनसे शुद्धिहोती सातवें पुरुषमें एकही दिन मानाजाय सो यह गाथा की रीति से कहा नियम आदर करने योग्य नहीं है· यद्यपि यह भी कहि सकते हैं कि गाथा नहीं एक नियमहै तथापि जैसे विवाह में मधुपर्क समय पशुका आलंभन करना एक धर्म्म ही कहा गयाहै पर वह लोकविद्वेषी धर्महोने से बर्त्ताव नहीं किया जाता है (अस्वर्ग्यंलोकविद्विष्टंधर्ममप्याचरेन्नतु) जैसा मनु का यह वचनहै कि जिस धर्ममें स्वर्ग न मिलसके या वह लोक में विद्वेष बढानेवालाहो ऐसा धर्म भी नहीं आचरे—यहां सातवें सपिण्ड समीपीको एकहीदिनसूतक जिसने बताया तो ऐसा नियम आदरकरने योग्यनहीं हैं--क्योंकि योगीश्वरने आठवें पुरुष को आदि लेकर समानोदकों को तीन दिन सूतक होना कहा यह बहुत बड़ा अन्तर है तिससे जो कुछ अभिप्राय में लिखचुके सोई आदरणीय है॥ ०॥ अभिप्रायनामक पाठमें माता पिताके सूतक में कुछ भेद बताया था उसका भी प्रमाण यह अशोक पैठयमुनिकावचन है=यथा=गर्भस्थेप्रेतेमातुर्दशाहंजातउभयोः कृतेनाम्निसोदराणांच= अर्थात्–गर्भहीमें बालकमरै तो माताको दश दिन सूतकहोय जो जन्मलेकर तत्काल मरै तो माता पिता दोनों को दशदिन जो नामकरण होकर मरै तो सहोदर भाइयों

को भी दश दिन का आशौच लगै ॥ ० ॥ औरभी सूतक में छूना न छूना कहा तिस का भी प्रमाण यह देवल का वचन है=यथा=स्वाशौचकालाद्विज्ञेयंस्पर्शनंचत्रिभागतः। शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यथाशास्त्रंप्रचोदितम् = अर्थात्—शूद्र वैश्य क्षत्री ब्राह्मण इनके जैसे सूतक शास्त्रमें आज्ञाकियेगयेहैं तैसे निज निज आशौच कालके तिहाई भागसे उपरांत अंगछूना समझो = देवल का यह वचनभी अनुपनीत मुर्देका नियम समझना जो यज्ञोपवीत होनेके भीतर माराहो और जनेऊहुये उस मृतक मध्ये समझना जिसका पूरा सूतक वीति जाने पर सुनागया और दुवारा माना गया हो क्योंकि जनेऊवाले मृतकमध्ये देवलने जुदा वचन कहा है = यथा = दशाहादित्रिभागेनक्षते संचयनेक्रमात्।अंगस्पर्शनमिच्छंतिवर्णानांतत्त्वदर्शिनः॥त्रिचतुःपंचदशभिःस्पृश्यावर्णाः क्रमेणतु।भोज्यान्नोदशभिर्विप्रःशेषाद्वित्रिषडुत्तरैः = अर्थात्—दशदिन आदि जिसवर्ण का जितना सूतक होताहै तिसके क्रमसे तिहाई दिवस वीतने और अस्थिसंचय करलेनेपर सूतकियों का शरीर छूना कहा है तत्त्वदर्शी जनोंने॰ इसी का यह ब्योरा है कि तीन॰चार॰पांच॰दश॰ये वर्ण क्रमसे स्पर्श करने योग्य दिवस हैं—क्योंकि ब्राह्मणकेदश दिनकी तिहाई तीन माने॰क्षत्री के वारह दिनकी तिहाई चार हुये॰वैश्यके पंद्रह दिनकी तिहाई पांच हुये॰शूद्र के तीस दिनकी तिहाई दशदिन हुये॰ इसी प्रकार ब्राह्मण का अन्नभी दशदिन वीते वाद खाने योग्य और शेष वर्णों का दो तीन छै दिन उपरान्त वीति जानेपर समझना ॥ १८ ॥ दिनमें मरै या रातिमें तिसको दिवस गणना कवसे करनी यह विचार आगे २० कीअभिकोक्ति के अंतमें देखना ॥ ० ॥ यद्यपि जन्म सूतक मरण के साथभी कहिचुके परन्तु समझ में भ्रांति खड़ी होती सो संदेह निवारण पूर्वक अव केवल जन्म सूतक वर्णन करते हैं ॥ १८ ॥

(जनने चास्पृश्यत्वसूतकनियमाः)

पित्रोस्तुसूतकंमातुस्तदसृग्दर्शनाद्ध्रुवम् । तदहर्नप्रदुष्येतपूर्वेषांजन्मकारणात् ॥ १९ ॥

अर्थः—जननमात्र का सूतक (न छूने योग्य) माता पिता दोही सपिंडों को लगता है सर्व सपिंडों को नहीं॰दोसें भी माता को ध्रुवं दशदिन पर्यंत निश्चय रूपसे अवश्य वना रहताहै कि उसको न छूना चाहिये क्योंकि उसके द्वारा रक्तका दर्शन होनेके हेतुसे जैसी कुछ विशेषता अस्पृश्यत्व की होती है तैसी पिताको नहीं किंतु पिताका अस्पृश्यत्व स्नान करने मात्रसे निवृत्त होजाताहै अभिकोक्ति में देखना—। वह दिवस दूषित नहीं है (जिसमे जन्म होय) क्योंकि पूर्वपुरुष पिता पितामह

आदि का जन्म होने के कारण से अर्थात् पुत्र रूप से आपही पहिले पुरुष जन्म लेतेहैं तिसके मंगल हेतुसे दान करने आदिका अधिकार नहीं मिट सकता यह अधिकोक्ति में देखना ॥ १९ ॥

१९ अधिकोक्तिः—माता पिता के सूतक में कुछ भेद ऊपर कहागया तिसका व्यौरा वशिष्ठने स्पष्ट करके कहाहै = यथा = नाशौचंविद्यतेपुंसः संसर्गंचेन्नगच्छति रजस्तत्राशुचिर्ज्ञेयंतच्चपुंसिनविद्यते = अर्थात्–पुरुष को जन्मसूतक उस दशामें नहीं लगता जो सूतिका के संसर्ग तक नहीं पहुँचे क्योंकि उस घरमें रक्तका संसर्ग है सोई अशुचि समझना वह रक्त पुरुष में नहीं होता = इसी हेतुसे पिता शीघ्रभी स्पर्शकरने योग्य हो सकता है = यथाह संवर्तः = जातेपुत्रेपितुःस्नानंसचैलंतुविधीयते माता शुद्ध्येद्दशाहेनस्नानात्तुस्पर्शनंपितुः = अर्थात्—पुत्र पैदा होने में पिताको सचैलस्नान करना कहा है माता दशदिन में शुद्ध होगी और पिता को स्नान करने सेही छूने का दोष नहींरहा = माताको दशदिन में शुद्धहोना कहा सो स्पर्श करनेआदि व्यवहारों मध्ये समझना किंतु अदृष्टार्थ रूप कर्मकरानें मध्ये जुदा नियमहै = तदाहपैठीनसिः= सूतिकांपुत्रवतींविंशतिरात्रेणकर्माणिकारयेत मासेनस्त्रीजननीम = अर्थात्—पुत्र वाली सूतिका से बीस दिन बाद गृहस्थीके काम करावै और कन्या पैदा करनेवाली सेमहीना भरमें = जन्मसूतक में सपिंडों को न छूने योग्य दोष नहीं होता यह अंगिरानेभी कहा है = यथा = सूतकेसूतिकावर्ज्यं संस्पर्शोननिषिध्यते संस्पर्शसूतिकायास्तुस्नानमेवविधीयते = अर्थात्--सूतकमें सूतिका के सिवाय किसी और सपिंड का छूना निषेध नहींहै परंतु सूतिका स्त्रीको स्पर्श होजानेमें केवल स्नानकरना कहा है– ।–उत्तरार्ध मूलश्लोक में पुत्रजन्मका दिवसमात्र निर्दोष कहाथातिसकानियम वृद्ध याज्ञवल्क्यस्मृतिमेंकहाहै= यथा=कुमारजन्मदिवसेविप्रैःकार्यःप्रतिग्रहः हिरण्यभूगवा श्वाजवासःशय्यासनादिषु तत्रसर्वंप्रतिग्राह्यंकृतान्नंनतुभक्षयेत भक्षयित्वातुतन्मोहा द्विजश्चान्द्रायणंचरेत=अर्थात्–कुमार जन्म के दिवस में ब्राह्मणों को दान का प्रतिग्रह करना चाहिये सोना चाँदी पृथ्वी गऊ घोडा बकरा कपड़े शय्यापलँग आसन बैठका आदि किन्तु उस दिन सब तरहका दानलेनाकहाहै परन्तु बनायाहुआ अन्न न भोजन करे अर्थात् ऐसे अन्न को यदि कोई ब्राह्मण अपने मोह अज्ञान से भक्षण करे तो चांद्रायण विधिसे प्रायश्चित्त करे = व्यासनेकुछ और भी विशेषता इसमें कही है = यथाह = सूतिकावासनिलयाजन्मदानासदेवताः। तासांयागनिमित्तंतुशुचिर्जन्म निकीर्त्तिता॥प्रथमेदिवसेषष्ठेदशमेचैवसर्वदा। त्रिष्वेतेषुनकुर्वीतसूतकंपुत्रजन्मनि =

अर्थात्—जन्म देनेवाले जन्मदा इसी नामके देवता जो सूतिकाके घरमें निवास रखते हैं तिनके यागपूजन निमित्तसे दान करनेआदिकामों योग्य पवित्रता जन्मके दिवसमें कहीहै सो केवल जन्महीके दिवसमें नहीं किन्तु प्रथमदिवस छठेंदिवस दशवेंदिवस इनमेंसूतक न माने परंतु जो पुत्रहीका जन्महो किन्तु कन्याके जन्मका यह नियम नहीं है॥ मार्कण्डेयने जन्मदा देवताओं का पूजन और जागरण भी करना कहाहै = यथा = रक्षणीयातथाषष्ठीनिशातत्रविशेषतः। रात्रौजागरणंकार्यंजन्मदानांतथाबलिः॥ पुरुषाःशस्त्रहस्ताश्चनृत्यगीतैश्चयोषितः।रात्रौजागरणंकुर्युर्दशम्यांचैवसूतके = अर्थात् —सूतकमें छठी की रात्रि विशेष करके रक्षाकरनी चाहिये रात्रिमें जागरण करना चाहिये तथा जन्मदानाम देवताओं को बलिदेनाचाहिये और उस रात्रिमें पुरुष शस्त्रों को हाथमेंरक्खें तथा स्त्रियाँ नृत्यगीतआदि सहित जागरणकरें यहीसूतकमेंदशवींरात्रि में भी करें इसअविकोक्तिके सर्वनियमसभी वर्णोंके साधारणहै कुछ भेद नहीं॥ १८॥ अबउस प्रकारका सूतक वर्णन होगा जो एक सूतकमें दूसरा सूतक होजाय तहाँ किस अवधिमें जाकर शुद्ध क्रियाहोगी॥ १९॥

(अशौचाभ्यंतराशौचांतरं)

अंतराजन्ममरणेशेषाहोभिर्विशुद्ध्यति २० (पूर्वार्ध)।

अर्थः—बीच में जन्म मरण होने में शेष दिवसों से विशुद्धि होती=अभिप्राय इसका यहहै कि (प्रति निमित्त नैमित्तिक) न्यायसे यह भी संभव होताहै कि पहिले सूतकमें दूसरा सूतक होजाय तो दूसरा अपनी अवधि पर जाके शुद्ध होय तिसका निषेध इस अद्धमें कियाहै कि जिस वर्णका जितना सूतक होताहो या जिसअवस्था में जितना होताहो उतने दिनका आशौच वर्तमान होतेहुये उसी में दूसरा सूतक चाहैं जनन का या मरणका ऐसा आनि परै कि पहिलेकी बराबर दिवस इसके भी उचित हों या पहिले की अपेक्षा इसका थोड़ा सूतक ठहरै परन्तु पहिलेकी अन्त्य अवधि से बाहर बढ़िजाने योग्य दिवस हों तो दो सूतक जुदे जुदे न मानेजायँ- किंतु उन्हींशेष दिवसोंकी अवधिपर दोनोंकीशुद्ध दोक्रिया करनी होगी जो पहिले सूतकमें बाकीरहे अर्थात् जुदे जुदेदिवसोंमेंदोशुद्धक्रिया न होंगी—परंतु—जोदूसरा सूतक पहिलेकी अपेक्षा बड़ाहो (दृष्टांत जैसे पहिले किसी अनुपनीतकी मृत्यु हुई जिसका तीनिहीदिन सूतक ठहिराहो उसीके बीच किसी ऐसे की मृत्युहुई कि जिसका दशदिन का सूतकहोगा तो यह उससे बड़ा गहिरा) तो इस बड़ेकी शुद्ध क्रिया छोटे के साथ न होगी किंतु

छोटे की वड़केसाथ जाकरउसीके दिवसों पर होगी–अधिकोक्तिमेंदेखना॥ २०॥ इति पूर्वार्धश्लोकः॥

२०अधिकोक्तिः—छोटे बड़े अशौचकी व्यवस्था उशनाने स्पष्ट करीहै=यथा=स्वल्पाशौचस्यमध्येतुदीर्घाशौचंभवेद्यदि। नपूर्वेणाविशुद्धिःस्यात्स्वकालेनैवशुद्ध्यति=अर्थात्—छोटे आशौचके बीच यदि बड़ा आशौच पैदा होजाय तौ पहिले के साथ शुद्धि न होगी किन्तु बड़ा अपने समय पर शुद्धहोगा=यमोप्याह=अहोवृद्धिमदाशौचंपश्चिमेनसमापयेत्=अर्थात्—यमनेभी कहाहै कि दिवसोंसे बढ़तीवाले आशौच को पीछेसे निज कालसें समाप्तकरै॥ ०॥ यद्यपि योगीश्वर के मूल वचनमें कुछभेदनहीं खोला सामान्य भावसे कहा है कि बीच में जन्म या मरण होजाय-तौभी यह भेद समझना योग्यहै कि–जहाँ पहिला सूतक जन्म का मौजूद है उसके बीच मुर्दे का सूतक होजाय तहाँ वह नियम नहीं मानना उचितहै कि पहिले बाकी दिवसों के साथ दूसरा भी शुद्धहोजाय=इसका ब्योरा अंगिराने स्पष्टकिया है=यथा=सूतकेमृतकंचेत्स्यान्मृतकेत्वथसूतकम्। तत्राधिकृत्यमृतकं शौचंकुर्यान्नसूतकम्=अर्थात्—यदि जन्म सूतकमें मरण सूतक होजाय या मरण में जन्म सूतक होय तहाँ मृतकशौच के आधार में जन्म शौच भी करना चाहिये किन्तु जन्मशौच के साथ मृतकशौच न करै—परन्तु=मरण सूतक में जन्म सूतक आपरै तौ पहिलेकेसाथ पिछला शुद्धहोसक्ताहै=तथाचषट्त्रिंशन्मतम्=शावाशौचेसमुत्पन्नेसूतकंतुयदाभवेत्। शावेनशुद्ध्यतेसूतिर्नसूतिःशावशोधिनी=अर्थात्–मुर्देकासूतक उत्पन्न होनेके बीचमें जो जन्मकासूतक आनिपरै तौ पहिले उत्पन्नहुये शावशौच के साथ सूतिकाभी शुद्धहोतीहै परंतु सूतिका शावसूतक को नहीं शोधनकर सक्तीहै· तिससे जन्म सूतकमें यदि मरण सूतक आजाय तौ पूर्वशेष कालसे शुद्धि न करनी चाहिये॥ ०॥ कहीं दोनोंसूतक एकहीसे होनेपर भी पूर्व शेषकाल से शुद्धि करने का अपवाद है=यथास्मृत्यंतरवचनं=मातर्यग्रेप्रमीतायामशुद्धौम्रियतेपिता। पितुःशेषेणशुद्धिःस्यान्मातुःकुर्यात्तुपक्षिणीम्=अर्थात्–माता पहिले मरी हो उसके अशुद्ध कालके भीतर जो पिता भी मरजाय तौ (माता के शेष दिवसों साथ पिता की शुद्धि क्रिया न होगी) पिताके शेष दिवस बीतने में उसी साथ माताकी भी शुद्धक्रिया करनी होगी· तथैव जो पिता पहिले मराहो उसके सूतक बीच पीछेसे माता मरै तौभी पूर्वशेष दिवसों से माता की शुद्ध क्रिया न होगी किंतु पिता के पूर्वशेष दिन पूरे होनेमें उसकी क्रिया समाप्त करके माताकी पक्षिणी क्रिया करै (पक्षिणी उसरात्रिका नामहै जो आगे पीछे दोदिनके बीचमें हो) अर्थात्

केवल एक रात्रिही बीच देकर माता की शुद्धक्रिया दूसरे दिनमें करें ॥ ० ॥ जहां एकही दिनमें दो सूतकों का सन्निपात होय तिसका नियम गौतमने पूर्व नियमों के अपवाद रूप से कहा है=यथाहगौतमः=रात्रिशेषेसतिद्वाभ्यां प्रभातेसतितिसृभिः= अर्थात्—जहाँ समस्त रात्रिशेष रहिते दिनदिनमें कुछ आगे पीछे दो अशौच होजायं तहाँ पहिला सूतक नियत समय पर समाप्त करके दूसरे को दो रात्रि बीचदेकर पीछे करें· इसी प्रकार जहाँ रात्रि में एक सूतक लगे पीछे उसी रात्रिके पिछलेपहर प्रभात समय दूसरा सूतक होजाय तहाँ पहिलेकी शुद्धक्रिया नियत कालपर समाप्त करके तीनरात्रिबीचदेकर पीछे से दूसरे की शुद्ध क्रिया करें· सो (यह गौतम का कथन योगीश्वर के नियम का अपवाद समझना कि इस दशाको छोड़ि के योगीश्वर वाला नियम अन्यत्र माना जायगा) = यही नियम शातातपने भी कहा है = यथा=रात्रिशेषेद्व्यहाच्छुद्धिर्यामशेषेशुचिस्त्र्यहात् = अर्थात्—सब रात्रि शेषरहने में दो दिन पीछे दूसरेकी शुद्धि होय एक प्रहर राति शेष रहने में तीन दिन पीछेसे दूसरेकी शुद्धक्रिया होय किंतु पहिले मरेकी अपने नियत दिनपर होगी ॥ परंतुसूतकों का सन्निपात आपड़ने से प्रेतकी क्रिया करनी नहीं मिट सकती है यहभी शातातपनेकहाहै = यथा = अंतर्दशाहेजननात्पश्चात्स्यान्मरणंयदि प्रेतमुद्दिश्यकर्तव्यं पिंडदानंस्वबंधुभिः प्रारब्धेप्रेतपिंडेतुमध्येचेज्जननंभवेत् तथैवाशौचपिंडांस्तुशेषांदद्या द्यथाविधि=अर्थात्—जन्मसूतक होनेके पाछे दश दिन भीतर यदि किसीका मरण होयं तहाँ प्रेतके नामसे पिंडदान रोज़ अपने बंधुवों सहित करना चाहिये तथैवजहाँ पहिले प्रेतके पिंडप्रारंभ होजानेके बीचमें जन्म सूतक लगै तहाँभी जो पिंड शेषरहे या जितना शौचकाल शेष रहाहो सो यथाविधि से पूरा करें (नसूतिःशावशोधिनी यह वचन ऊपर लिखा गया सो भी इसी व्यवस्था के समानहै) ॥ इसीप्रकार जहाँ दोनों सूतक मरण से उत्पन्न हुयेहों ऐसेसन्निपातमें भी प्रेतोंके क्रिया कर्म करनेचाहिये=तथैव जहाँ दो भाँति के दो सूतक एकही दिन जन्म और मरण से उत्पन्न हों तहाँभी जन्म के जात कर्म आदि सब करने चाहिये = तदाह प्रजापतिः = अशौचेतु समुत्पन्नेपुत्रजन्मयदाभवेत् कर्तुस्तात्कालिकीशुद्धिःपूर्वाशौचेनशुद्ध्यति = अर्थात्— मरण का आशौच उत्पन्न होनेके बीच में जो पुत्र जन्म होय तो इस दूसरे सूतक में जातकर्म आदि जो करने अवश्यकहाँ तिनके लिये कर्ता पुरुषको तात्कालिकशुद्धि होती है (अर्थात् जितना काल कर्म करनेमें लगताहै उतनी देर कर्ताको सूतक नहीं लगता माना जाता है) बाकी और कुटुंबी और सूतिका स्त्रीकी संशुद्धि उस अवधि

पर होगी जो पहिले मरगा सूतक मध्येशुद्धक्रिया का दिन ठहिराहो. किंतु सूतिका के दशदिन यद्यपि कई दिन पीछे पूरेहोंगे तथापि सूती शावशौच के साथ शुद्धहोजायगी—यह सब नियम योगीश्वर के मूलश्लोक से तुल्यात्मक है और (नसूतिः शावशोधिनी) यह वचन जो इसी अधिकोक्ति में लिखा गया तिसके भी समान है॥ २० ॥ इति पूर्वार्ध श्लोकः॥

(अब उत्तरार्द्ध श्लोक में उस प्रकार का सूतक वर्णन होगा जो गर्भके दिन पूरे हुये विना गर्भ गिरजाय तहाँ कितना सूतक माना जाय—ऊपर तथा नीचेकी दोनों अधिकोक्तियों के नियम सभी वर्णोंको बराबर है कुछ भेद नहीं)

(गर्भस्राव सूतक नियमाः)

गर्भस्रावेमासतुल्यानिशाःशुद्धेस्तुकारणम् २०

अर्थः—गर्भ गिरजाने में मासों के तुल्य रात्रियाँ शुद्धि का कारण हैं–अभिप्राय इसका यहकि जितने महीने का गर्भ होकर गिराहो उतनी संख्या से रात्रें किंतु उतने दिनका सूतक माना जाय तब शुद्धिका स्नान होय ॥ २० ॥

२० अधिकोक्तिः—गर्भस्राव होनेमें पुरुषोंको स्नान करने मात्र से उसी दिनशुद्धि होजाती है यह वृद्ध वशिष्ठने कहा है = यथा = गर्भस्रावेमासतुल्यारात्रयः स्त्रीणां स्नानमात्रमेवपुरुषस्य = अर्थात्—गर्भ गिरने में महीनाओं के बराबर रात्रें शुद्ध होने को स्त्रियोंके निमित्त होतीहैं किंतु पुरुष को स्नान मात्र शुद्धि का हेतुहै॥ स्त्रियों की शुद्धि योगीश्वर ने महीनों के समान रात्रियोंसे कही–परंतु गौतमने (त्र्यहंच) यहपद अपने किसी वचन में कहाहै कि तीन दिन सामान्य भाव से नियमात्मक समझ लेने. इसपर मिताक्षरा का श्रीमद्विज्ञानेश्वराचार्य तर्कना दृढ करते हैं कि यह नियम तीन महीनासे इधर गर्भ गिरने में समझना–क्योंकि–अगले मरीचि के वाक्यसे यही तात्पर्यपाया जाताहै = यथाह मरीचिः = गर्भस्तुत्यांयथामासमचिरेतूत्तमेत्र्यः राजन्येतु चतूरात्रंवैश्येपंचाहमेवतुअष्टाहेनतुशूद्रस्यशुद्धिरेषाप्रकीर्तिता (अचिरेमासत्रयादर्वाक् गर्भस्रावेउत्तमेब्राह्मणजातौ त्रिरात्रमित्यर्थः एतच्चप्रमासपर्यंतद्रष्टव्यं सप्तमादिषुपुनः परिपूर्णमेवप्रसवाशौचंकार्यमितिचविज्ञानेश्वरः) अर्थात् मरीचि के वचन में अचिर शब्द अल्पकालका बोधक प्रसिद्ध है और विज्ञानेश्वर की पंक्ति में (अचिरे मासत्र यादर्वाक्) यह प्रत्यक्ष लेखहै कि तीन महीना के भीतर गर्भस्राव होनेमें महीनोंके समान दिवस शुद्धिके निमित में समझने और (अचिरेत स्वल्पकालेगर्भेनिपतने)

किंतु थोड़े कालका गर्भनिपात होनेमें उत्तम जाति ब्राह्मण के तीन रात्रिका सूतक नियमात्मक समझना एवं क्षत्रीके चार दिनका और वैश्य के पाँच दिनका और शूद्र की आठ दिन में शुद्धि होनी कही है = ये नियमात्म दिवस भी छे महीने पर्यंत का गर्भ गिरने मध्ये समझने किंतु सातवें महीना से लेकर पूरा गर्भगिरनेमें वही पूरासूतक मानना जो पूरे जन्म के होनेपर माना जाता क्योंकि इतने महीनोंका गर्भ पूरे अंगोंसे जीवता भी निकसता देखागयाहै तब उसदशा में लोग उसको जन्म होना कहते हैं चाहें थोड़ी देर पीछे मरिही जाताहो'यहसब कथन भी विज्ञानेश्वरा चार्यका है= और इसके प्रमाण हेतु स्मृत्यंतर वचन भी आगे लिखते हैं=यथा=षण्मासाभ्यंतरेयावद्गर्भस्रावोभवेद्यदा तदामाससमैस्तासांदिवसैःशुद्धिरिष्यते अतऊर्ध्वंस्वजात्युक्ताशौचंतासांभविष्यते सद्यःशौचंसपिंडानांगर्भस्यपतनेसति=अर्थात-छेमहीना के भीतर जो गर्भस्राव होजाय तब उनस्त्रियोंकी शुद्धि महीनों के समान दिवसोंसे कहीहै इसके उपरांत के गर्भमध्ये अपनी जाति का कहा हुआ आशौच उन स्त्रियोंकाहोता है जो पूरेजन्मका नियत हो परंतु अन्य सपिंडोंको गर्भगिरनेमें सद्यःशौचकहाहै कि तत्काल स्नान से शुद्धहों=सपिंडोंका यह सद्यःशौच विधानभी उसदशामें समझना जो पतला गर्भ निचुड़गयाहो किंतु पिंडी बँधी न हो यह विज्ञानेश्वरका कथनहै=औरभी वशिष्ठ का वचन है=यथा=ऊनद्विवार्षिकेप्रेते गर्भस्यपतनेच सपिंडानांत्रिरात्रं=अर्थात—दो वर्षसे ऊनाबालकमरने या गर्भकेगिरनेमेंभी सपिंडोंको तीनदिनका सूतकहै-सो-यह तीन दिनका सपिण्डोंका नियम उस गर्भके गिरनेमें समझना जो पाँचवें छठेमहीनामें कठिन पिण्डहोकर गिराहो क्योंकि इसमें पतन शब्दका प्रयोगहै स्राव शब्दका नहीं यह भेद भी अग्रोक वचन में समझो=यथाहमरीचिः= आचतुर्थाद्भवेस्रावः पातःपंचमषष्ठयोः। अतऊर्ध्वं प्रसूतिःस्याद्दशाहंसूतकंभवेत ॥ स्रावेमातुस्त्रिरात्रंस्यात्सपिण्डाशौचवर्जनम। पातेमातुर्यथामासंपित्रादीनांदिनत्रयम=अर्थात—चौथेमहीना पर्यंत जो गर्भ गिरता है सो गर्भस्राव कहाता है कि गर्भ निचुड़गया' पाँचवें छठे महीना पर्यन्त गिरने से गर्भपात कहाता है क्योंकि वहाँ तक निचुडने योग्य पतला नहीं रहिता· छठेसे ऊपर गर्भगिरनेमें प्रसूतिकहाती है कि मराबालक पैदाहुआ किंतु यहाँपरगर्भ गिरना नाम नहीं रहिता· तिससे इसमें पूरा दशदिन का सूतक मानाजाय परंतु स्राव होने में माता को तीन रात्रिका सूतक होय अन्य सपिण्डोंको इसमें सूतक वर्जित है· और पात होने में माता को जितने महीने हों उतने दिनका सूतक और पिता आदि सपिण्डों को तीन दिनका होय-ऊपर नीचेके सभी वचनों को मिलाकर अविरोधसे

व्यवस्था कल्पित करलेनी पर विशेषकर देशाचार कुलाचार पर दृष्टिदेना पाण्डित्य का विश्वासहै कि जो वचन जिस देश या जिस कुलकी परिपाटीसे तुल्य हो उसीको उस जगह पर स्वीकार करना ॥ ० ॥ जो गर्भ सातवें महीना से लेकर किसी महीना में जीवता जन्म लेकर तत्काल मरै या पेटही से मरा पैदाहोय तिसके लिये सपिण्ड लोग पूरा सूतक जो जन्म के निमित्त में दशदिन आदि होता है वही मानें क्योंकि छे महीना से उपरांत जन्म होने या गर्भ गिरने में प्रसूति कहाती है यह अभी ऊपर लिखचुके हैं और भी अग्रोक्त वचन प्रमाण है=यथाहमरीचिः=जातमृतेमृतजातेवास पिण्डानांदशाहमिति=अतःसूतकेचेदोत्थानादाशौचंसूतकवदिति पारस्करवचनंच-अत्रार्थे (ओत्थानादासूतिकाया उत्थानाद्दशाहमितियावत्सूतकवदिति शिशुपरम निमित्तोदकदानरहितमित्यर्थ इतिमिताक्षराकारः = अर्थात्—जन्म होकर मरने में या मरा जन्म होने में सपिण्डों को दश दिन सूतक यह मरीचिने कहा=और=इसी से यदि सूतक मेंही (शिशुमरजाय) तहाँ आउत्थानात् ओत्थान की अवधि से सूतकवत् आशौच कियाजाय यह पारस्कर का वचन है--यहाँ ओत्थान की अवधि जो कही तिसका यह तात्पर्य है कि सूतिका स्त्रीका उत्थान अर्थात् बड़ा नहान जितने दिन में होता हो जैसे दश दिन प्रसिद्ध हैं सूतक उठि जाने के उसी दिन आशौच किया जाय सोभी सूतकवत् कियाजाय जैसा प्रसूतीका स्नान प्रसिद्ध है अर्थात् सूतक में बचा जो मरचुका तिसको जलदान आदि मरण क्रिया का आशौच न करे= यही नियम वृहन्मनु में स्पष्ट करके कहागया है=यथा=दशाहाभ्यंतरेबालेप्रमीते तस्यबांधवैः । शावाशौचंनकर्तव्यंसूत्याशौचंविधीयते=अर्थात्—बचा जन्म लेनेसे दशदिन के बीच में जो किसी दिवस मरै (सो तत्कालहीमरा कहाता क्योंकि दश दिनतक उसी सूतकका समय वर्तमान रहताहै) तो उस मरेबचे के बांधव सपिंडोंको मृतक निमित्तका स्नान शौच न करना चाहिये जन्म निमित्तका स्नान शौच किया जाता है=ऐसाही और एकस्मृत्यंतरवचन है=यथा=अंतर्दशाहोपरतस्यसूतकाद्दोधि रेवाशौचं=अर्थात्—दशदिनके भीतर मरेहुयेका शौचकर्म सूतकके दिवसोंसे किया जाय—इत्यादि बहुधा वचनों के समूह से सर्वथा यही निश्चित हुआहै कि सपिंडों को जन्मनिमित्तका आशौच न मेटना चाहिये ॥ ० ॥ इसीवार्ता मध्ये जो अग्रोक्त वृहद्विष्णुकावचनहै कि=जातेमृतेमृतजातेवाकुलस्यसद्यःशौचम=अर्थात्—जन्महोके मरै या मराजन्मै तो कुलके लोगोंको सद्यः शौच किंतु उसी समय स्नान करके शुद्ध होजाना--सो इस वचनका तात्पर्य केवल यहहै कि बचा मरने के निमित्तका स्नान

भी उसी समय करडाले क्योंक प्रसूती के शौचका येव इसमें नहींहै कि दशदिन पूरे होनेपर प्रसूतीका सूतक नहीं उतारै=तथाचपारस्करः=गर्भेयदिविपत्तिःस्याद्दशाहंसूतकंभवेत् (सपिंडानांप्रसवनिमित्तस्यविद्यमानत्वात्) जीवन्जातोयदिम्रियेतसद्यएव विशुध्यति (इतिप्रेताशौचाभिप्रायम=अर्थात्—पारस्करने यह भेद खोलाहै कि जो गर्भही में मरा होजाय तब तो दशदिनका जन्मसूतक मानाजाय क्योंकि जन्म का होना यह संबंधरूपी निमित्त सपिंडोंके लिये विद्यमान है. जो जीवता जन्म लेकर पीछे मरै तो शीघ्रही स्नानसे विशुद्धि होजाती है यह मरने के निमित्तका जुदा स्नान बताया=शंखोपि=प्राङ् नामकरणात्सद्यःशौचम=अर्थात्शंखनेभी कहाहै कि नामकरण से पहिले जो मरै तिसका सद्यःशौच कियाजाय=और जो कात्यायन का यह वचन है कि=अनिर्वृत्तेदशाहेतुपंचत्वंयदिगच्छति। सद्यएवविशुद्धिःस्यान्नप्रेतंनोदकक्रिया=अर्थात्—जन्मसे दशदिन बीते विना जो मरजाय तिसकी तत्काल विशुद्धि होय न तो प्रेतकर्म है न जलदान क्रिया-और जो (नप्रेतंनैवसूतकं) यह पाठांतर मानाजाय तो यह अर्थ है कि नतो प्रेतकर्म्म करै न सूतक अर्थात् पिता आदि को छूनेका दोष भी नहीं लगै=अथवा=इसी पाठांतर में दूसरा अर्थ भी मिताक्षराकारने दर्शाया है कि-दशदिन बीते विना यदि बचा मरै तो शीघ्रही विशुद्धि होजाय किंतु प्रेतका सूतक नहीं मानाजाय और न सूतकं अर्थात् जो उन्हीं दिवसोंमें कोई और सपिण्ड जन्मै तो उस जन्मेहुयेका वृद्धिसूतक भी नहीं मानना किंतु पहिले वर्तमान सूतकके दिवसों सेही शौच स्नान किया जाय॥ ० ॥ इसीवार्ता मध्ये जोवृहन्मनुका वचन और वृहत्प्रचेताकावचन आगे लिखतेहैं तिनमें किंचित् विचार भेदहै सो देखो=यथाह वृहन्मनुः=जीवन्जातो यदिततोमृतःसूतकएवतु। सूतकंसकलंमातुः पित्रादीनांत्रिरात्रकम=वृहत्प्रचेताच=मुहूर्त्तंजीवतोबालःपंचत्वंयदिगच्छति। मातुःशुद्धिर्दशाहेनसद्यःशुद्धास्तुगोत्रिणः=अर्थात्—जीवता जन्मलेकर तिस पीछे जो मराहो तौ जन्महीका सूतक मानाजाय किन्तु पूरा सूतकमाताको और पिता आदि को तीन दिनकाहो (इसमें यह व्यवस्थाहै कि जन्म होनेबाद नाल काटनेसे पहिले जो मरै तो पिता आदि को जन्म निमित्त का सूतक तीन दिनहोय)=और वृहत् प्रचेता का यह कथनहै कि=जन्म लेनेबाद दो घडी जीता रहकर जो बालक मरजाय तो माता दशदिन में शुद्ध होगी और गोत्री लोग सद्यः शुद्ध होजायँगे (इसमें जो सद्यः शौचकहा सो अग्निहोत्र आदि वेदोक्त श्रौत कर्मोंके निमित्त में समझना किंतु स्मार्त धर्म्म के मार्गसे तीनिही दिन ठीक हैं=क्योंकि=यही तात्पर्य आगेके वचनोंसे पायाजाताहै

यथाह शंखः = अग्निहोत्रार्थंस्नानोपस्पर्शनात्तत्कालंशौचं = अर्थात — अग्निहोत्र कर्मकी जरूरत के लिये स्नान और आचमन करलेने से तत्कालही शौच होजाता है॥ नाभि वर्धन किंतु नाल छेदन कर्म होजाने पीछे जो बचा मरे तो सपिण्डों को पूरा सूतक जन्म निमित्त का होताहै = तदाह जैमिनिः = यावन्नछिद्यतेनालंतावन्नाप्नोतिसूतकम्। छिन्नेनालेततःपश्चात्सूतकंतुविधीयते = अर्थात—जब ताजीनाल नहीं काटाजाता तब ताजी सूतक नहीं लगता नाल कटे पीछे सूतक लगा कहाता है॥०॥ अथात्र रजस्वलाप्रायश्चित्तं—यहांसूतकियोंके प्रायश्चित्त प्रसंगसे रजस्वला स्त्रीओं के प्रायश्चित्त दर्शाते हैं = यथाहमनुः = रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावेविशुद्ध्यति। रजस्युपरतेसाध्वीस्नानेनस्त्रीरजस्वला = अर्थात—जो गर्भपेटमेंजमिकरपीछे बहिजाय तो महीनोंके तुल्य रात्रियोंसे वह स्त्री शुद्धहोतीहै दृष्टांत जैसे प्रथम मासमें गर्भ स्राव होजाय तो एक रात्रि वीते स्नान करें इत्यादि दूसरे तीसरे मासमें समुझि लेना·परंतु जो रजस्वला मात्रहुईहो तो निपट रक्त सूखिजानेपर देव कर्म आदि धर्मों के योग्यशुद्धहोती है चाहें जितने अधिक दिनोंतक सूखै·किंतु छूने आदि व्यवहारों के योग्य तो चौथे दिनही रक्त सूखे विना भी स्नान करके शुद्ध होजाती है= तदाह वृद्धमनुः--चतुर्थेऽहनिसंशुद्धाभवतिव्यावहारिकी=तथास्मृत्यंतरमपि=शुद्धाभर्तुश्चतुर्थेऽह्निस्नानेनस्त्रीरजस्वला दैवेकर्मणिपित्र्येचपंचमेऽहनिशुद्ध्यति=अर्थात—चौथे दिन शुद्धहोती है व्यवहार मात्रके योग्य ऐसेही अन्यस्मृति का वचन है कि=रजस्वला स्त्री भर्ताके व्यवहार योग्य चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होजाती है·पर देव कर्म औ पितर कर्मके योग्य पाँचवें दिन होतीहै (यहाँपाँचवांदिन इसलिये नियत कियाहै किबहुधा स्त्रियोंका रक्त पाँचवें दिन निःशेष होजाता है अन्यथा प्रायश बिरली स्त्रियों के दशदिनतक भी न सूखताहो इसीलिये ऊपरले मनुके वचन में रजस्युपरते समस्या करीगईहै कि जब कभी रजकी निवृत्तिहो तभी देव कर्म के योग्य शुद्धि होगी)=जिस स्त्रीको रजोदर्शन के दिनसे लेकर सत्रह दिनके भीतर फिरके रजोदर्शन होय तो उसमेंअपवित्रता नहींमानी जायगी· जो सत्रह दिनके बाद अठारहवें दिवस होय तोएक दिनकी अशुद्धि मानीजायगी· उन्नीसवें दिनहोनेसे दोदिनमें शुद्धि होगी· इसके उपरान्त वीसवें दिनको आदिलेकर किसी दिनमें होय तो तीन दिन से शुद्धि होगी = तथाहात्रिः = रजस्वलायादस्नातापुनरेवरजस्वला अष्टादशदिनादर्वागशुचित्वंनविद्यते एकोनविंशतेरर्वागेकाहंस्यत्ततोद्व्यहम् विंशत्प्रभृत्युत्तरेयुत्रिरात्रमशुचिर्भवेत् = अर्थ ऊपरलिखचुके वहीदेखो = एक जो स्मृत्यत्तर वचन है कि चौदहदिनके

भीतरही रजस्वला होय तो अशुद्धि नहीं मानी जाय किंतु चौदहवें को आदिलेकर मानी जाय सो यह अनंतरोक्त का विरोधी नियम नहीं है क्योंकि इसमें स्नानके दिन से भुवालिया है॥ अशुद्धि नहीं मानीजाय यह नियम उस स्त्रीको समझना जिसके सदैव बीसदिन पीछे मासिक-धर्महोता रहता हो और कभी दैवयोगसे अठारहदिन के पहले होजाय अन्यथा जो स्त्री यौवनकी भरीहुई होनेसे अठारह दिन के भीतरही रजोधर्म बहुताइत से सदैव करतीहो तिसको तीनदिन अशुद्धि माने पीछे स्नान करना होगा=तथाच वशिष्ठः= रजस्वलात्रिरात्रमशुचिर्भवतिसाचनाञ्जीतनाभ्यंजीतनाप्सुस्नायातअवःशयीत नदिवास्वप्यात नग्रहान्वीक्षेतनाग्निंस्पृशेत नाश्नीयान्नरज्जुंसृजेत नचदंतान्धावयेत नहसेन्नकिंचिदाचरेत अखर्वेणपात्रेणापिबेदंजलिना वःपात्रेणालोहितायसेनवेतिविज्ञायते=अर्थात्—वशिष्ठ ने कहा है कि रजस्वला तीन रात्रि तक अशुद्ध होतीहै वह उन दिनों में न आंखि आंजे न उबटना करें न जलोंमें स्नान करें न खाट पर सोवें किंतु पृथ्वीपर सोवें और दिनमें न सोवें ताराग्रहोंको न देखे अग्नि को न छुवै न उष्ण भोजन करें सीवना परोवना आदिभी न करें दाँतभी न धोवें हँसैनहीं न कुछ काम धंधा करें अखर्वपात्र से जो छिद्रआदि रहितहो उसी से पानीपीवें या हाथकी अंजली से पीवें या ताँबे के पात्रसे पीवें यह समझमें आताहै=अंगिराने कुछ और विशेषता कहीहै=यथा=हस्तेभोयान्मृन्मयेवाहविर्भुक्क्षितिशायिनी रजस्वला चतुर्थेऽह्निस्नात्वाशुद्धिमवाप्नुयात =अर्थात्—रजस्वला हाथ में धरिके भोजनकरें या मट्टी के बासन में हविष्य भोजन करें धरतीमें सोवें और चौथे दिन स्नानकरके शुद्ध होय=पाराशर ने भी विशेषता कही है=यथा=स्नानेनैमित्तिकेप्राप्ते नारीयदिरजस्वला पात्रांतरिततोयेनस्नानंकृत्वाव्रतंचरेत् सिक्तगात्राभवेदद्भिःसांगोपांगाकथंचन नवस्त्रपीडनंकुर्यान्नान्यद्वासश्चधारयेत्=अर्थात्—मासिक रजोधर्म के निमित्त का स्नान समय प्राप्त होने में जो नारी रजस्वला होय तो वह किसी पात्रमें भरे धरे जल से स्नान करके व्रताचरण करें और स्नानका यह अर्थ है कि किसी प्रकार सांगोपांग जल के छ टे लेकर काम चलावैं किंतु न कपड़े निचोड़े न धोती आदि वस्त्र बदलके पहरें=उशनाने ज्वर होनेमेंकुछ और विशेषताकहीहै=यथा=ज्वराभिभूतायानारीरजसाचपरिप्लुता कथंतस्याभवेच्छौचंशुद्धिःस्यात्केनकर्मणा चतुर्थेऽहनिसम्प्राप्ते स्पृशेदन्यातुतांस्त्रियम्सासचैलावगाह्यापःस्नात्वास्नात्वापुनःस्पृशेत् दशद्वादशकृत्वोवाआचमेच्चपुनःपुनःअंतेचवाससांत्यागस्ततःशुद्धाभवेत्तसा दद्याच्छक्त्यातातोदानंपुण्याहेनविशुद्ध्यति=अर्थात्—जोस्त्री ज्वरसे घिरीहुई कपड़ों सेहोजाय तिसकास्नान कैसे होसकेऔर किस

कर्मसेशुद्धि उसकी होय॰ सोकहितेहैं कि ज्वर के वेगमें स्नान तौ न होगा परन्तुचौथा दिन होनेमें कोई और स्त्री उसरजस्वला को स्पर्शकरके प्रतिनिधिवनै और नदीतडागमें वस्त्रों सहित उसके बदले गोता लगाकर बार बार उसको छूवतीजाय और बीच बीच आचमन भी करती जाय ऐसे दशबारह बेर स्नान आचमन करके छूने पीछे वस्त्रोंका त्याग करावै तौ वह रजस्वला भी शुद्ध होजायगी और शक्ति के अनुरूप कुछ दानदेवै फिर पुण्याह वाचन कराके शुद्ध होती है॥ यह प्रतिनिधि रूपी स्नान का प्रकार और भी सब रोगीमात्र के निमित्त में समझना केवल रजस्वला को नहीं=क्योंकि= पाराशर में सभी रोगियों के निमित्त से कहाहै= यथा= आतुरेस्नानउत्पन्नेदशकृत्वो ह्यनातुरः स्नात्वास्नात्वास्पृशेदेनं ततःशुध्येत्सआतुरः=अर्थात्–जहाँ किसी रोगी को स्नान की आवश्यकता खड़ीहोजाय तब दूसरा कोई निरोग पुरुष स्नान कर कर के दशबार उसको छूवै तौ वह रोगी शुद्ध होजाय॥ ०॥जहाँ कहीं रजस्वला या प्रसूती स्त्री की मौत होजाय तहाँ स्नान का प्रकार यह अग्रोक्त है = यथा = सूतिकायां मृतायांतुकथंकुर्वंतियाज्ञिकाः कुम्भेसलिलमादायपंचगव्यंतथैवच पुण्यर्भिर्भिमं त्र्यापोवाचाशुद्धिंलभेत्ततः तेनैवस्नापयित्वातुदाहंकुर्याद्यथाविधि=रजस्वलायास्तु = पंचभिःस्नापयित्वातुगव्यैःप्रेतांरजस्वलाम् वस्त्रांतरावृतांकृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम्= अर्थात्–प्रसूती स्त्री मरजाने में याज्ञिकलोग कैसे करते हैं इसप्रश्नका यह उत्तरहै कि मट्टी के घड़े में जल लेकर तथा पंचगव्य लेकर पवित्र ऋचाओं से जल अभि मंत्रित करके वचन से शुद्धि प्राप्तकरैं तिसपीछे उसी जल से मुर्दे को स्नान करायके जैसी विधि हो तैसे दाहकरैं = रजस्वला का यह विधानहै कि = मरीहुईप्रेता रजस्वला को पंचगव्यों से स्नान करायके दूसरे सूखे वस्त्र से लपेटिके विधिपूर्वक दाह कर्म करै॥ ० ॥यहाँतक स्नान शुद्धि के निमित्त जो दिवस कहेगये कि इतने दिन पीछे शौच करना चाहैं प्रसूती का हो या मृत्युका या रजस्वलाका हो उसकी अवधि कबसे गिनीजाय यह ब्यौरा अब लिखते हैं सर्वत्र समझलेना = तदाह कश्यपः = उदितेतुयदासूर्येनारीणांदृश्यतेरजः जननंवाविपत्तिर्वायस्याहस्तस्यशर्वरी अर्द्धरात्राव धिःकालःसूतकादौविधीयते॰ रात्रिंकुर्यात्त्रिभागांतुद्वौभागौपूर्वएवतु उत्तरांशःप्रभातेन युज्यतेऋतुसूतके॰ रात्रावेवसमुत्पन्नेमृतेरजसिसूतके पूर्वमेवदिनंग्राह्यंयावन्नोदयते रविः = अर्थात्—इसमें दो तीन भाँतिके कल्प कहेहैं तिनको ध्यानदेकर सोचो कि– जब सूर्य के उदय होनेबाद स्त्रियों का रजोदर्शन होय या किसी का जन्म होय या मरणा होय तौ उस दिनकी संध्यासे आनेवाली रात्रि उसी दिनके साथ समझनी और

उसी दिनसे लेकर तीन या दश या जितने दिन कहेहों सो गिनिलेने एकयह सामान्य कल्प कहा॰ एवं जो आधीरात्रिके पहिले छद्ममरण आदि हुआहो तौभी उसीपहिले दिवस को लेकर गिनती करनी क्योंकि सूतक आदि कामों में आधीरात तक उसी दिन की अवधि मानी जाती है (इसी से यह तात्पर्य स्वतः सिद्ध होगया कि जो आधी के उपरांत मृत्यु या जन्म या रजो दर्शन हुआहो तौ वह आधीरात दूसरे दिन के साथ समझनी और उसके लिये आगामी आधादिन भी दुपहर तक उसी रात्रिके साथ समझना दूसरा कल्प इसी नियम से माना जासक्ता है जिसकी इच्छा वा देश कुलकी रीतिहो तौ वह इसी कल्प को मानो॰ इसीलिये (यस्याहस्तस्यशर्वरी) यह श्लोकों में कहागया कि जिस रात्रि का दिन हो उसी दिन की रात्रि समझनी या जिसदेशमें जैसा दिन मानाजाताहो तौ उसीदिनकेअनुसार उसकीशर्वरीभी समझनी) तीसरा कल्प यह भी है कि रात्रिके तीन भाग मानिके दो भाग तौ बीते दिनके साथ समझने और तीसरा भाग शेष रात्रि को आगामी दिन के साथ समझना रजोदर्शन और सूतक में॰ एक कल्प यह भी है कि जहां तक सूर्यउदय न हुये हों सामान्य भाव से रात्रि भर में किसी समय मरण या रजोदर्शन या प्रसूत हुआ हो तौ पहिलाही दिन मानना किन्तु आगामी का प्रयोजन इसमें नहीं है–इन सब कई भांति के कल्पों में जिस देश की जैसी परिपाटी हो तैसा कल्प स्वीकार करना यह सिद्धांत है॥ ० ॥ अब यह नियम करना शेष रहा कि मरण के दिन से अवधिलेनी या दाह के दिन से सो कहिते हैं कि जो आहिताग्नि अग्निहोत्री मरा हो तौ दाह आदि संस्कार के दिनसे अवधिलेनी और अनाहिताग्नि जो अनग्निहोत्री कोई मराहो तौ मौतके दिन से अवधि माननी परंतु अस्थिसंचय कर्म दोनों का दाहके दिनसे गिनाजाय सो यह भेद अंगिरा ने कहाहै = यथा = अनग्निमतउत्क्रांतेःसाग्नेः संस्कारकर्म्मणः शुद्धिःसंचयनंदाहा न्मृताहस्तुयथातिथिः = अर्थात्–अनग्निमान का मौत के दिनसे शुद्धिका दिवस लियाजाय और अग्निमान का संस्कार कर्मके दिन से और संचयन कर्म दाहके दिन से दोनोंका और मरनेका दिन सयाह जो तिथि हो उसके अनुकूल समझना॥ उक्त वचन में अग्निहोत्री का सूतक मानना जो दाह कर्म के होने बाद कहा तिससे यह तात्पर्यभी उत्पन्नभया कि जिसका आहिताग्नि पिता कहीं देशांतरमें मरे तौपुत्रादि-कोंको पुत्तल विधान रूपी संस्कार करनेसे पहिले संध्यावंदन आदि कर्मों का निषेध नहीं है–तथाचपैठीनसिः–अनग्निमतउत्क्रांते राशौचंहिद्विजातिषु दाहादग्निमतोवि द्याद्विदेशस्थेमृतेसति = अर्थात्–द्विजाती लोगों में अनग्नि मानका मरणके दिनसे

आशौचलगै और अग्निमानकादाहकेदिनसेजानौ जो विदेश में बैठाहुआसराहो२०॥

(ऊपर के नियमों में दशादिन आदि का सूतक जो सपिण्ड आदि को कहा गया सो बिरली मौतविशेषमें न होना चाहिये यह अपवाद नीचेकहेंगे)

(सद्यःशौचभागिनो पिकेचित्प्रेताः)

हतानांनृपगोविप्रैरन्वक्षंचात्मघातिनाम् २१(पूर्वार्द्धश्लोकः)

अर्थः—नृप'गऊ'विप्रोंसे मरेहुयों और आत्म घातियों का अन्वक्षही शौचहो= अर्थात्–दाह या मौत देखि सुनिकर तत्कालही स्नान करके सपिण्ड लोग शुद्धहोजायँ किन्तु दशादिन आदि की आवश्यकता और योग्यता इनके नहीं है. किनके इस अपेक्षा में कहितेहैं कि राजाने फाँसी आदि किसी प्रकार से मृत्यु दण्ड देकर जिनका बध किया हो तिनके तथा गऊ बैल आदि सींगवाले या दाढवाले पशुओंसे मारेगये हों तिनके तथाविप्रोंके शापसे जो मरेहों तिनके और आत्म घाती जो आपहीफाँसी लगाकर या विष भक्षण या शस्त्र आदि किसी प्रकार से मरिगये हों तिनके लिये सपिण्डोंको सद्यः शौच करना योग्यहै॥ २१॥

२१अधिकोक्तिः—विज्ञानेश्वराचार्य कहते हैं कि विप्रके हाथ माराजाना कहने से चांडाल के हाथसे भी मारेजाने का उपलक्षण समझ लेना (इस व्यवस्थाकी दृढ़ताके लिये पूर्व लिखित छठा मूल श्लोक और उसकी अधिकोक्ति परभी ध्यानदेकर विचारो) यह व्यवस्था गौतम ने स्पष्टरूप से दर्शाईहै=यथा=गोब्राह्मणहतानामन्वक्षंराजक्रोधाच्चायुद्धे प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकबन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्=अर्थात्— गऊसे ब्राह्मण से हतहुयों का और युद्धबिना राज क्रोधसे मौत पाये हुयों का और युद्ध बिना किसी प्राणघाती शस्त्रसे आपही इच्छाकरके मरें या अग्नि में जल मरें या विष खाकर मरें या जलमें डूबि मरें या रस्सी बाँध लटकते मरें या ऊँचे से गिर के मरें इन सबमें यहसमझ लेना कि इच्छासे चाहिकर किसीके ऊपर या वृथा प्राणदे दियेहों तो ये आत्मघाती कहाते हैं इनके लिये सपिंडों को अन्वक्षही सद्यः शौच करना चाहिये (यहाँपर इच्छासे करने का यह तात्पर्य है कि जो बिना चाहे दैवयोग से ऐसी मौतें हुईहों तिनके लिये यह नियम नहींहै) (एवं जो राज के क्रोध से कहा तिसका भी यह तात्पर्य है कि जो राजाके क्रोध बिना दैवयोग से धोखे में उसके हाथ मौत मिलीहो तिसका भी यह नियम नहींहै) (एवं बिना युद्धके शस्त्रों से माराहो इस कथन का भी यह तात्पर्य है कि जो युद्ध में जाकर किसी शस्त्र से माराहो

तिसका भी यह नियम नहींहै) किंतु युद्ध में जो मारे गये तिनके लिये एक दिन का सूतक लिखाहै = यथा = ब्राह्मणार्थेविपन्नानांयोषितांगोग्रहेपिच आहवेपिहतानां चएकरात्रमशौचकम् = अर्थात—ब्राह्मण की रक्षा आदि उपकार करते हुये जो किसी प्रकार की अपमृत्यु से मरेहैं एवं स्त्रियोंकी रक्षा करते जो मरेहैं या गऊके अनुग्रह में अर्थात गऊकी रक्षा या चिकित्सा आदि उपकार करनेमें या गोग्रह नामगऊ के बांधने छोरने आदि साधारण काम करते हुये उसके द्वारामरेहों या आहव नामयुद्ध में मारे गये इन सबका एकदिन रातिका सूतक होना चाहिये किन्तु सद्यःशौचनहीं—तथापि यह नियम केवल उन युद्ध वालोंका समझना जो युद्धमें घायलहोकर तत्काल न मरेहों किन्तुकालांतर में प्राण छोड़ेहों—क्योंकि—रणभूमिपर प्राण छोड़नेवालेकी मृत्युभी यज्ञसमान होतीहै तिससें,मनुने उसकोसद्यःशौचभागी कहा वरनविशेषक्रिया कर्मकी आवश्यकता भी उसकेलियेनहीं राखी=यथाह मनुः=उद्यतैराहवे शस्त्रैःक्षत्रधर्महतस्यच सद्यःसंतिष्ठतेयज्ञस्तथाशौचमितिस्थितिः= अर्थात—संग्रामकी भूमि पर उद्यत हुयेशस्त्रोंसे क्षत्रीधर्मसे जो मराहो तिसका यज्ञउसीसमय खड़ाहोता और इसीप्रकार सद्यःशौच भी होजाता है यही मर्यादा इसकी नियत है—अर्थात ऐसे वीर पुरुषों का ब्रह्मभोज रूपी यज्ञ तत्काल किया जाता है सूतक पातकों का विचार इसमें नहीं क्योंकि उसकी स्वर्गयात्रा का उत्सव रूपी यज्ञ माना जाता है प्रेतयज्ञ नहीं इसीलिये सपिंड लोगभी तत्काल सद्यःशौचके अधिकारी होतेहैं॥ आगे उत्तरार्ध मूल श्लोक से यह कहेंगे कि जो कोई सपिंड विदेश में बैठा किसी सपिंड का मरना कुछ काल बीते सुनै तौ कितना सूतक मानै॥ २१ ॥ यहां तक सद्यः शौच के भागी प्रेतमात्र कहे गये कि इनके लिये सब कोई शीघ्र शुद्ध होसकताहै—किंतु जो सर्वही सद्यःशौच के अधिकारी कर्तापुरुष भी होतेहैं तिनका नियमआगे सत्ताइस मूल श्लोक से देखना ॥ २१ ॥ जन्म या मरण का सुन पानाही सूतक चढ़नेका निमित्त ठहिराया गया कदाचित्र कोई विदेश में बैठाहुआ घरकी खबर एक दो दिन पीछे सुनै तिसमें कुछ अपवाद कहा चाहते हैं कि उसको भी सुनि पाने के दिन से लेकर दश दिन आदि न मानने चाहिये ॥

(अतिकालजमाशौचं)

(देशांतरस्थसपिंडेसूतकनियमः)

प्रोषितेकालशेषः स्यात्पूर्णेदत्वोदकं शुचिः २१

अर्थः—प्रोषित में शेषकालही सूतकहोय पूर्णकालमें उदकदेकर शुद्धि होय=अ-

र्थात—यदि कोई सपिंड कहीं ऐसे विदेशमें बैठाहो जो मरे या पैदा हुयेकी खबरपहिले रोज न सुनिसके किन्तु कई दिन पीछे सुने तो दश दिन आदि सूतकों का जितना काल शेषरहाहो उसीको बिताकर अशुद्धिहोगी-और जिसने सूतक पूरा होजाने बाद सुनिपायाहो वह सुनते मार जलदान करके पवित्र होगा (परंतु जलदान केवल प्रेतको होताहै तिससे यह पिछला नियम प्रेतही के निमित्त में समझना कि स्नान करके जलदान करै अन्यथा जो जन्मका सूतक पूराहोजाने बाद सुनाहो तो जलदानके अभावसे स्नानकी भी जरूरत नहींरही यह भेद अधिकोक्ति से देखना ॥ २१ ॥

२१अधिकोक्तिः—मनुराह—निर्देशंज्ञातिमरणंश्रुत्वापुत्रस्यजन्मचासवासाजलमाप्लुत्यशुद्धोभवतिमानवः—अर्थात्—दशदिन बीतजाने बाद जातिका मरना सुनिके या पुत्रका जन्म सुनिके कपडों सहित जलमें स्नान करिके मनुष्य शुद्ध होता है॥ योगीश्वर के इसी उत्तरार्द्ध मूल श्लोक में पहिला पाद जन्म मरण दोनों के नियम मध्ये समझना और पिछला केवल मरण के सूतक मध्ये समझना क्योंकि जलदान करके शुद्धि होजाना कहा सो जलदान केवल प्रेतके निमित्त में होताहै तो यह तात्पर्य निकसा कि जन्म का सूतक पूराहोजाने के बाद जो विदेश में बैठा हुआ सपिंड सुने तो उसको सूतक नहीं रहा समझना किन्तु स्नान मात्रभी न करना चाहिये-परंतु जो उस जन्म लेनेवाले पुत्रके पिताने विदेशमें रहते सूतक पूरा होजाने बाद सुना हो तो पिता को उस दशामें भी स्नानकरके शुद्धि होतीहै,जैसा अनन्तरोक्त मनुके वचनमें लिखचुके हैं सो देखो कि दशदिनबीते पुत्रका जन्म सुनिके स्नान करै-और- पुत्र शब्द कहिने से यह भी सिद्धांत ठहरा कि जिस का पुत्र नहीं ऐसा कोई सपिण्ड जो दशदिन बीते बाद जन्म सुने तो उसको स्नान की आवश्यकता नहींरही-क्योंकि-जो ऐसा सिद्धांत न होता तो मनुके वचनमें पाठभी (निर्देशंज्ञातिमरणंश्रुत्वाजन्मचनिर्दशम्) ऐसा होता सो नहीं है-और उसी सिद्धांत के अनुकूल आगे देवलका वचन है-यथा-नाशुद्धिः प्रसवाशौचेव्यतीतेषुदिनेष्वपि। तस्माद्धिपतावेवातिक्रांताशौचमितिस्थितिः-अर्थात्—देवलनेस्पष्ट कहा है कि जन्मसूतकके दिन बीतिजानेमें सुननेसेभी अशुद्धि नहींलगती है तिसते मोतही में पूरा होजा ने पर भी अशौच होता यह मर्यादानियत है॥ ०॥ योगीश्वर का मूल श्लोक किरली पुस्तकों में पाठांतर से भी देखागया है कि जिसके अर्थ में कुछ भेद है-यथा (प्रोषितेकालशेषःस्यादशेषेऽयहएवतु । सर्वेषांवत्सरेपूर्णेप्रेतेदत्वोदकंशुचिः) अर्थात जो प्रेत विदेशमें मराहो तो सभी वर्णोंके लिये सुनने के समयसे जोकाल सूतक में शेष रहाहो उसीको पूरा करके शुद्धस्नान करना उचित है.

और जो शेष नहीं रहा किन्तु सूतक पूरा होजाने बाद सुनाहो तो सभी वर्णोंको समान भाव तीनदिन का सूतक चाहिये· और जो एक वर्ष पूरा होजाने बाद विदेशस्थ का मरना सुनाजाय तो सभी ब्राह्मण आदि वर्णों का एकही नियम है कि सुनते सार स्नान पूर्वक जलदेकरशुद्ध होजायँगे=और इसका भी प्रमाण अग्रोक्त मनुका वचनहै= यथाह=संवत्सरेव्यतीतेतुस्पृष्ट्वैवापोविशुद्ध्यति=अर्थात=संवत्सर बीतिजाने पर सुनने में जल स्पर्शही करके शुद्ध होजाता है=सो यह पाठांतर में तीन दिन का नियम दश दिन के बाद तीन महीना के भीतर खबर पाने में समझना और पूर्वोक्त मूल पाठमें कहाभया सद्यःशौच उस दशामें बर्तावा करना जो नौमहीना बीतिजाने बाद वर्ष भीतर कभी खबर मिली होतो जल दानमात्र से तत्काल शुद्धि होजायगी = और जो अग्रोक्त वचन है = यथाह वशिष्ठः = ऊर्ध्वंदशाहाच्छ्रुत्वैकरात्रं = अर्थात—दश दिन उपरांत खबर मिलने में एक रात्रिका सूतक होय—सो यह एकदिनका उस दशामें मानना जो छैमास के उपरांत नौमासके भीतर खबर मिले = एक यह गौतमका वचनहै = यथा = श्रुत्वाचोर्ध्वंदशम्याःपक्षिणी = अर्थात दशईरातिके उपरांत सुनिके एक पक्षिणी नामक रातिमात्रका सूतक होय किन्तु जिसकेसाथ एक दिन पहिला और एक पिछला भी मिलायाजाय सो पक्षिणी कहाती है तो इस हिसाब से दश ग्यारह या बारह प्रहरका सूतक ठहरा सो यह सो नियम उस दशामें समुझना जो तीन महीना के उपरांत छै महीनाके भीतर कभी खबर मिले ॥ इनसब भेदों को वृद्ध वाशिष्ठ में स्पष्ट किया है सो देखो = यथा = मासत्रयेत्रिरात्रंस्या त्षण्मासेपक्षिणीतथा । अहस्तुनवमादर्वागूर्ध्वंस्नानेनशुद्ध्यति = अर्थात—तीन मास के भीतर सुननेमें तीन दिन का सूतक होय तथा छैमास के भीतर में पक्षिणी अर्थात डेढ़ दिनका सूतक और नवममासके भीतर में एक दिन रातिका सूतक होय फिर नौ महीना उपरांत खबर मिलने में स्नानमात्रसे तत्काल शुद्धि होजातीहै ॥ ० ॥ ये सब नियम जो कहेगये सो माता पिताको सिवाय अन्य सपिंडोंके समुझने·क्योंकि उन के मध्ये पैठीनसिने जुदा नियम किया है = यथ = पितरौचेन्मृतौस्यातांदूरस्थोपिहिपुत्रकः । श्रुत्वातद्दिनमारभ्य दशाहंसूतकीभवेत् = अर्थात—माता पिता यदि मरे होयँ और पुत्र बड़ीदूर बैठाहो तो उनकी खबर सुनिके उसी दिवसको लेकर दशदिन तक सूतकी होय = स्मृत्यंतरे प्रमाणंतु = महागुरुनिपातेतु आर्द्रवस्त्रोपवासिना । अतीतेऽब्देपिकर्तव्यंप्रेतकार्यंयथाविधि = अर्थात—माता पिता के देहपात होने में वर्ष बीति जाने पर भी सुनने से आर्द्र वस्त्रोपवासी होकर पुत्र को यथा विधि से

सब करना चाहिये अर्थात् सूतक मानना जलदान करना आदि क्रिया वर्ष बीति जाने परभी करै किन्तु स्नानमात्र करनेसे पुत्रकी शुद्धि नहींहोती जैसी अन्यसपिण्डों को कही थी॥ ०॥ माता से उपरान्त सावती जो पिताकी दूसरी आदि पत्नी मरी हो तिसके मध्ये भी स्मृत्यन्तर में विशेषता कही है=यथा=पितृपत्न्यामपेतायांमा तृवर्ज्याद्विजोत्तमः संवत्सरेऽव्यतीतेपित्रिरात्रमशुचिर्भवेत्=अर्थात्—माता को छोड़िके और कोई पिताकी पत्नी जो मरीहो तो द्विजातियों में श्रेयपुरुष संवत्सर बीतिजाने बाद सुननेपरभी तीनदिन सूतक मानै॥ ०॥ अब एक यह विशेष नियम दर्शाते हैं कि अतिशय दूरनिवासी कोईसपिंड जो देशांतर में जावसगया हो तिसका मरना दश दिन पीछे तीनमास के भीतर भी सुनिके सद्यः शौच करना योग्य है=तथाच वचनं= देशांतरमृतंश्रुत्वाक्लीवेवैखानसेयतौ मृतेस्नानेनशुद्ध्यन्तिगर्भस्रावेचगोत्रिणः=अर्थात्— देशान्तर में किसी सपिण्ड को मरा सुनिके उसके गोत्री लोग स्नानही से तत्काल शुद्ध होजाते हैं तथैव क्लीव या वैखानस वानप्रस्थ तापस या यती संन्यासी इनके मरने में (दूरगगोत्रदोनोंदशामें) गोत्रीलोग स्नान मात्रसेही शुद्ध होजाते हैं तथैव निज गोत्र में गर्भस्राव गर्भ गिरजाने पर भी स्नान करके शुद्ध होजाते हैं-यहां गोत्री लोगों का नियम दर्शाया तिससे पुत्र पौत्रोंका जुदा नियम समझना जैसा पहिले लिख चुके हैं॥ ०॥ इस वचन में देशान्तर कहागया तिसके लक्षण भी समझने चाहिये कि देशांतर कितनी दूरहोताहै=तदाह बृहस्पतिः=महानद्यंतरंयत्रगिरिर्वाव्यवधायकः वाचोयत्रविभिद्यंतेतद्देशांतरमुच्यते देशांतरंवदंत्येकेषष्टियोजनमायतम् चत्वारिंश द्वदंत्यन्येत्रिंशदन्येतथैवच=अर्थात्—जहां कोई बड़ी नदी बीचमें उतरनी हो याबीच में कोई पहाड़ही आड़करता हो तिसको दूसरादेशकहना (परंतु जहां नदी या पहाड़ बीचमें न हो तहां क्योंकर देशांतर समझाजाय सो कहते हैं कि (जहांकी बोलीमें भेद हों वहभी देशांतर कहाजाता है (अथवा जहां बोलीमें भेद कुछ न हो न कोई नदी पहाड़ बीचमें हो तहांभी देशांतर का यह चिह्नहै कि) जो कोई साठियोजन अर्थात् २४० कोस के अन्तर से जावसगया हो तो वह देशांतर में बैठा समझ लेना और भी पुराने लोगोंने४०चालीस योजन अर्थात्१६०कोस पर भी विदेश कहाहै कि जहां राज दूसरा हो. अन्यथा और बहुत लोगोंने तीसही योजन अर्थात् १२० कोस दूरी अंतरको दूसरा देशमानाहै तिनका यह सिद्धांतहै कि जिस देशकामार्ग कठिन होने से बहुत न चलता हो न वहांके समाचार शीघ्र आसक्ते हों तो एकसौ बीसहीकोसपर दूसरादेश कहना चाहिये॥ ०॥ अवतक यहनियम जो लिखागया कि सूतक बीति

जाने बाद सुनै सो इतने दिवस मानै सो सब उस मुर्दा के निमित्त में समझना जो ज-नेऊदार मरा हो किन्तु कुछ अवस्या छोटी वड़ी आदि होनेमध्ये भेद नहींहै-इसका व्योरा व्याघ्रपादने दर्शाया है=यथा=तुल्यंवयसिसर्वेषामतिक्रांतेतथैवच उपनीतेतु वियमंतस्मिन्नेवातिकालजम्=अर्थात्—आगे तेईसवें मूल श्लोकमें जो अवस्थाभेदसे नियम करैंगे कि तीनवर्ष की अवस्था भीतर या दाँत जमने से पहिले मरे तो इतने दिन मानेजायँ सो वह नियम सभी ब्राह्मण आदि वर्णोंका तुल्य है कुछ भेद उसमें नहीं और जो दशदिन आदि की सूतक अवधि बीतिजाने बाद सुनने में तीन दिवस आदिका सूतक मानना कहागया वह भी सर्व वर्णोंका तुल्यरूप एकही नियम है परंतु जो उपनीत जनेऊदार मरे तिसका सूतक वियमहै अर्थात् ब्राह्मण के दशदिन क्षत्रीके बारहदिन इत्यादि प्रसिद्ध है उसी जनेऊदार के मरने में अति कालज सूतक भी समझना जो ऊपर वर्णन होचुकाहै कि इतनेदिन बीते बाद सुननेसे इतनेदिनका सूतक माने तीन वर्णोंमें कोई वर्णहो सबका एक नियम है जनेऊदार होनेसे तथैव चौथे शूद्र में जनेऊके स्थान उसका व्याह समझना॥०॥ऊपर जहाँजहाँ दशदिन का सूतक सपिंडों को बताया सो केवल ब्राह्मण वर्णका नियम था इसीलिये नीचेके श्लोक में क्षत्रीआदि वर्णोंको दशदिन के मध्ये अपवाद सूचित करैंगे॥ २१॥

(क्षत्रियादीनांसूतकाऽवधिः).

क्षत्रस्यद्वादशाहानिविशःपंचदशैवतु। त्रिंशद्दिनानिशूद्रस्यतदर्धन्यायवर्तिनः २२॥

अर्थः—क्षत्रीकेबारहदिन वैश्यके पंद्रहदिन शूद्रके तीसदिन और न्यायवर्तीशूद्र के उससे आधा पंद्रहदिनका सूतकहोय=अर्थात्—इन वर्णोंमेंयदि किसी सपिंडका जन्महोय या किसी सपिंडका मरण होजाय तहाँ पूर्वोक्त दशदिन से अपेक्षा नहीं किन्तु अनोक्त बारह पंद्रह तीस दिनोंका सूतकमानै और शूद्र जो न्यायवर्ती अर्थात् द्विजातियों की सेवा और पाकयज्ञ आदि टहलों में निरत हो तौ१५दिनका सूतक माना जाय तीसका नहीं॥ २२॥

२०अधिकोक्तिः—विज्ञानेश्वर कहतेहैं कि इस ठीकहुये नियमके सन्मुख पारि-शेष्य मार्गसे वह नियम जो अठारहवें मूलश्लोक मे (त्रिरात्रंदशरात्रंवा) कहिचुके सो केवल ब्राह्मण के निमित्त में समझा जाताहै कि दशदिन उसीके लिये--परंतु--स्मृत्यंतर में कर्मिष्ठ क्षत्री आदिको भी दशदिन आदिके अशौचकल्प कहे गये हैं= यथाह पराशरः = क्षत्रियस्तुदशाहेनस्वकर्मनिरत शुचिः तथैवद्वादशाहेनवैश्य शुद्धिम

वाप्नुयात्=तथाचशातातपः=एकादशाहाद्राजन्योवैश्योद्वादशभिस्तथा शूद्रोविंशति रात्रेणशुद्ध्यतमृतसूतके=अर्थात्—जो अपने कर्मधर्म में निरत हो ऐसा क्षत्री भी दश दिनमें शुद्धहोय वैसाही वैश्य बारह दिनमें शुद्धिपावै यह पराशरने कहा=तैसाही शातातप कहतेहैं कि=मरण या जन्मके होनेमें ग्यारहदिनसे क्षत्री और बारहदिनोंसे वैश्य और शूद्र बीसदिन से शुद्धहोय्=वशिष्ठने और भी अधिकदिन बताये हैं=यथा= पंचदशरात्रेणराजन्योविंशतिरात्रेणवैश्यः=अर्थात्—पंद्रह रात्रियों से क्षत्री और बीस रात्रियोंसे वैश्यका आशौच होय=अंगिराने सभी वर्णोंको बराबर दशदिनका सूतक बताया सो भी शातातपके कथनका पता देकर=यथा = सर्वेषामेववर्णानांसूतकेमृ तकेतथा दशाहाच्छुद्धिरेतेषामितिशातातपोऽब्रवीत् = अर्थात्—जन्मतथामरण में इन सभी वर्णोंका (कि जिनकासूतकजुदाजुदा वर्णन होचुका) उन्हीं सबकी सामान्य भाव दशदिनसे शुद्धि होतीहै यह शातातपनेकहाथा॥ इसभांतिसे अनेक ऊंचेनीचे शौचके कल्पदर्शित हुयेहैं तिनका संसारमें अच्छाप्रचार न होनेसे व्यवस्था कल्पित करना कुछआवश्यक नहींहै इसलिये व्यवस्थाका रूप डोलनहीं दर्शातेहैं यह विज्ञा- नेश्वरनेकहा—और भावार्थ इसका यहीहै कि जिस स्थलमें जैसा प्रचारहो तैसासमझ लेना॥०॥जहां कहीं ब्राह्मण आदि किसी वर्णके क्षत्री आदि सपिंड हों,तिनका शौच नियम हारीत आदि स्मृतियों के अनुसार होनाचाहिये क्योंकि उन्हीं में यह निर्णय अच्छा कियाहै = यथा हारीतः = दशाहाच्छुध्यतेविप्रो जन्महानौस्वयोनि षु षड्भिस्त्रिभिरथैकेनक्षत्रविट्शूद्रयोनिषु= अर्थात्—जन्म या मरण होने में ब्राह्मण दशदिन में वही शुद्ध होताहै जो अपनीही ब्राह्मणी योनि में जन्मा हो अन्यथा जो ब्राह्मण क्षत्री योनि में जन्मा हो तो उस योनिका सापिण्ड्य सूतक छै दिन का लगै एवं जो वैश्य योनि में जन्मा हो तो उस योनि का सापिंड्य सूतक तीन दिनका हो एवं जो शूद्र योनि में जन्मा हो तो एकही दिनका सूतक = विष्णुरप्याह = क्षत्रिय स्याविट्शूद्रेषुसपिण्डेषुषड्रात्रत्रिरात्राभ्यां वैश्यस्यशूद्रसपिण्डेषड्रात्रेणशुद्धिः हीनवर्णा नांतूत्कृष्टेषुसपिण्डेषुजातेषुमृतेषुवा तदाशौचव्यपगमेशुद्धिः = अर्थात्—क्षत्रीके यदि वैश्य या शूद्र सपिण्डों में जन्म या मरण हो तो उस क्षत्री सपिण्ड को यथा क्रम से छे दिन या तीन दिनसे शुद्धि होती है एवं जो वैश्यके शूद्र सपिण्डों में जन्म या मरण हो तो उस वैश्य को छे दिन में शुद्धि होती है—अब इससे विपरीत जहाँ ऊंचे वर्ण के सपिण्डों में जन्म या मरण होय तहाँ नीचे वर्ण को तब शुद्धि होगी जब उस ऊंचे वर्ण का सूतक मिटिजाय॥ बौधायन ने इनको भी सामान्यभाव दशदिन का सूतक

बताया है = यथा = सर्वविट्शूद्रजातीयायेस्युर्विप्रस्यबांधवाः तेषामशौचेविप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते = अर्थात् — सभी वैश्य शूद्र जातिके लोग जो ब्राह्मणके बांधव अर्थात् सपिण्ड होयँ तो उनके घरू सूतक में ब्राह्मण सपिण्ड की शुद्धि दशदिन में कही जातीहै—ये दो भाँति के नियम जो ठहिरे तिनकी व्यवस्था आपद अनापद काल के अनुसार कल्पित करनी चाहिये ॥ ० ॥ दास दासी जो गुलाम और बांदी कहाते हैं तिनका शौच स्वामी के शौच साथ होजाताहै स्पर्श करने योग्य और कर्म के अधिकार योग्य दासी को एक महीना तक सूतक बनारहताहै = तदाहांगिराः= दासीदासश्चसर्वेवैयस्यवर्णस्ययोभवेत् तद्वर्णस्यभवेच्छौचं दास्यांमासस्तुसूतकम = अर्थात् —दासी और दास चाहें किसी जातिके हों किन्तु जिस वर्णके दासत्व में रहते हों उसी वर्ण का जो शौचहो सो उनको होय परन्तु दासीमें अपना सूतकएक मासतकरहै ॥ ० ॥ प्रतिलोमानांत्वाशौचाभावएवप्रतिलोमाधर्महीनाइतिस्मरणात्केवलंमृतौप्रसवेच मलापकर्षणार्थंमूत्रपुरीषोत्सर्गवत् शौचंभवेत्येवइतिविज्ञानेश्वराचार्यः = अर्थात् —श्रीमद्विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि प्रतिलोमजाती धर्म्म हीन कहातेहैं इसस्मृतिकेप्रसिद्धहोनेसेप्रतिलोम जातियोंमें आशौचकाअभावहै तथापि केवलमरण और जन्म होने में मलीनता दूरकरनेकेअर्थ हगने मूतनेकेतरह शौचभी होताहै॥२२॥

(बालकादीनांमरणाशौचभेदाः)

आदंतजन्मनःसद्यआचूडान्नैशिकीस्मृता। त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतःपरम् २३॥

अक्षरार्थः—दाँत जमनेतक सद्यही • चूडाकर्म्म तक नैशिकी कही है • व्रता देश तक तीनरात्र • इससे परे दशरात्र जानो ॥ २३ ॥

• अभिप्रायः —जबतक दाँत न जन्मेहों तबतक मरनेवाले बचेका आशौच सद्यही उसके सपिण्डों को कर्त्तव्यहै • दाँतजमने बाद जबतक मुण्डनकर्म न हुआहो तबतक मरनेवाले की अशुद्धि एक दिन राति की माननी चाहिये • मुण्डन से उपरांत जनेऊ होनेसे पहिलेपहिले जो मरै तिसका तीनदिनतक सूतकहोनाचाहिये• जनेऊ होजाने से बाद मरनेवालेका दशदिन पूरासूतक होताहै—और विशेषताअधिकोक्तिमेंदेखो२३॥

२३अधिकोक्तिः—(इस अधिकोक्ति में एकही बातपर बहुधा वचन अनेकभाँति से दर्शाये जायँगे जिस किसी को समझने में कछु भ्रांति खडीहो सो अधिकोक्ति के अंतमें जाकर उन्हीं सबकी सार व्यवस्था को विचारो) मूल श्लोक में सद्यः शौचके लिये यद्यपि दाँतजमे बिना का नियम सामान्य भावसे कहागया तथापि उनबालकों

के निमित्त में समझना जिनको अग्निदाह न कियाजाय—क्योंकि वैष्णवशास्त्र में यही तात्पर्य्य स्पष्ट कहागया है = यथा = अदंतजातेबालेप्रेतेसद्यएवनास्याग्नि संस्कारोनोदकक्रिया = अर्थात्—दांत जमे विना बालक प्रेतहोजाने में सद्यही शौच कियाजाय न इसका अग्नि संस्कार होवै न जलदान कियाजाय = और जो दाँतजमे विना मरे को अग्निदाह किसी कारण से कियाजाय तिसके लिये एक दिन रात्रि का सूतक अगिले चौबीस के मूल श्लोक में देखो उसीका प्रमाण भी अग्रोक्त यम का वचन है (इतिविज्ञानेश्वरः) = यथाह यमः = अदंतजाततनयेशिशौगर्भच्युतेतथा सपिराडानांतुसर्वेषामहोरात्रमशौचकस = अर्थात्—विना दांतोंका पुत्र मरने में तथा मराबचा गर्भ से गिरजाने में भी सभी सपिराडों को एक दिन रात्रिका अशौच लगता है = और भी नामकरण से पहिले मरजानेमें अवश्यभाव सद्यः शौच कानियम शंख-स्मृति में नियत है क्योंकि उसको अग्निदाह कभी नहीं होता = यथा = प्राङ् नाम करणात्सद्यःशौचं) : (चूडाकर्मचोटीधारना प्रथम वर्ष वा तृतीय वर्ष में भी होताहै= तथाचवचनं=चूडाकर्मद्विजातीनांसर्वेषामेवधर्मतःप्रथमेऽब्देतृतीयेवाकर्त्तव्यं श्रुतिचोदना त्=अर्थात्—चूडाकर्म्म सभी द्विजाती लोगों का निज धर्म्मके अनुसार पहिले वर्ष में या तीसरे में करना चाहिये श्रुतिकी आज्ञासे) तो इस नियमसे यह व्यवस्था सिद्ध होती है कि दांत जमने से उपरांत पहिले वर्ष भीतर जबतक चूडाकर्म न हुआहो तब तक मरजानेमें एकदिन रात्रिका सूतक मानाजाय·तहाँदूसरायह विचार भी कर्त्तव्यहै किजिनके तीनवर्षमें चूडाकर्महोताहो तिनकेदाँतजामि आनेपर जो तीनवर्ष भीतरतक चूडाकर्म हुये विना मृत्यु होजाय तौभी एकही दिनका सूतक रहेगा = इसी व्यवस्था का प्रमाण भी अग्रोक्त विष्णु का वचन है = यथा = दतजातेप्यकृतचूडेऽहोरात्रेण शुद्धिः = अर्थात्—दांत जमने पर भी चोटी धरे विना मरजाने में एक दिन राति से शुद्धि होतीहै ॥ ० ॥ जिसका मुडन और चूडाकर्म होचुका हो ऐसा बालक जनेऊ होनेसे पहिले कभी मरजाय तिसका सूतक तीन दिन होता है क्योंकि ऐसे बालकों को अग्निदाह भी अवश्य किया जाताहै यह विधान भी पहली दूसरी अधिकोक्ति में लौगाक्षि के वचनसे देखो ॥ और जो अग्रोक्त मनु का वचन है कि = नृणामकृत चूडानामशुद्धिर्नैशिकीस्मृता । निवृत्तचूडकानांतु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते = अर्थात्—विना चोटी धरे मनुष्योंके मरने में एक दिन रातकी अशुद्धि कहीहै और जिनका चूडाकर्म से निपटारा होचुका तिनके मरनेमें तीन दिन रातिसे शुद्धि करीजाती है·सो इस वचन का भी वही तात्पर्यहै जो अभी ऊपर कहा गया ॥ और जो उन्हीं मनुका

यह दूसरा वचन है = ऊनद्विवार्षिकंप्रेतं निदध्युर्बांधवाबहिः। अरण्येकाष्ठवत्यक्त्वा क्षिपेयुस्त्र्यहमेववतु = अर्थात्—दो वर्षसे ऊने प्रेतको ग्रामसे बाहर गाड़के तीन दिन सूतक मानैं सो उन लोगोंके अभिप्रायसे तीनदिन कहेहैं कि जिनके वर्ष भीतर चूडा होजाता है = इसी प्रकार वशिष्ठका वचन है कि = ऊनद्विवर्षेप्रेते गर्भपतनेवासपिंडानांत्रिरात्रं—इसमें भी तीन दिन उसी अभिप्रायसे कहेहैं कि वर्ष भीतर चोटीधरचुकी होगी॥ और जो अंगिरा का यह वचन है कि = यद्यप्यकृतचूडोवैजातदंतश्चसंस्थितः। तथापिदाहयित्वैनमशौचंत्र्यहमाचरेत् = अर्थात्—यद्यपि किसी लड़के का चूड़ाकर्म न हुआहो परंतु दांत जमने बाद मरै तौभी इसको जलाइके तीनदिन सूतक मनावै—सो यह ऐसे घरोंका नियम समुझना कि जिनके तीनवर्ष से उपरांत भी चूड़ाकर्म न हुआहो क्योंकि बहुधा कुलों की परिपाटी ऐसी भीहैं कि पांचवें सातवें वर्ष तक चोटी धरी जातीहै' वरन अयोक्त स्वन्यर्थ भी उन्हीं अंगिराके द्वितीय वचन से स्पष्ट होताहै = यथा = विप्रेन्यूनत्रिवर्षेतुमृतेशुद्धिस्तुनैशिकी=अर्थात्—तीनवर्ष से ऊने ब्राह्मण के मरनेमें एक दिन रातिमें शुद्धिहोतीहै—अब यह विचार करो कि उन्हीं अंगिरा ने इस वचन में तीन वर्ष भीतर में एक दिन का सूतक बताया तिससे पहिले वचन में आपही सिद्ध होगया कि तीन दिन का सूतक तीन वर्ष से अधिक अवस्था में सूचित किया परंतु ऐसा भी न समुझिलेना कि यह एक दिनका सूतक विना दांत बालेका कहा होगा क्योंकि तीनवर्षके भीतर तक कोई बालक विना दांत जमे नहीं रहिता तिससे दांत जमने बाद तीन वर्षके भीतर का यह नियम समुझना—अन्यथा जो दांतों से पहिले का भी अर्थ मानोगे तो विष्णुके वचन से विरोध खड़ा होगा क्योंकि विष्णुने दांत जमने बाद विना मुंडनके मरनेमें एक दिनका सूतक बताया है तिससे वही व्याख्या उत्तम है जो पहिले कही गई॥ और जो कश्यप का यह वचन है कि = बालानामदंतजातानांत्रिरात्रेणशुद्धिः = अर्थात्—विना दांत जमे बालकों के मरने में तीन दिन रातिसे शुद्धि होती है—सो यह तीन दिन केवल माता पिताके निमित्तमें समुझने किंतु सब सपिंडों को नहीं-क्योंकि माता पिता को बीज अधिक होना कहा है = तथाचस्मरणं = निरस्यतुपुमान्शुक्रमुपस्पर्शाद्विशुध्यति। बैजिकादभिसम्बन्धादनुरुंध्यादघंत्र्यहम-इतिजन्यजनकसम्बन्धोपाधिकतयात्रिरात्र नियमात् = अर्थात्—पुरुष अपने वीर्यको निकासिकेही स्नान करनेसे पवित्र होताहै (इसी परम कारणसे संतानमें) अपने बीजका सम्बन्ध होने से उसके नष्ट होजाने

पीछे अशुचितारूपी अघ सूतक तीन दिन रोके• यह स्पष्ट प्रमाण है तिससे काश्यप के वचन में भी यही तात्पर्य समुझना॥ सर्ववचनानां सारव्यवस्था-ऊर्ध्वोक्त सभी वचनोंके सारसे यह अनुक्रम सिद्ध होताहै कि नामकरण दसूठन दट्ठौन होने से पहिले मरे तिसका सद्यः शौच उसी समय स्नान चाहिये• नामकरण होजाने से उपरांत दांत जमने से पहिले मरे तिसका एक दिन राति का सूतक माने सो उस दशा में कि जो इसको अग्निदाह किया गया हो अन्यथा अग्नि संस्कार के न करने में इस का भी सद्यः शौच करना चाहिये• जिसके दांतभी जमिचुके और कुलकी परिपाटी से प्रथम वर्षमें चूड़ाकर्म होताहो तिसकर्म के हुये विना मरजाय तो एक दिन राति का सूतक माना जाय• दांत जमने और पहिला वर्ष पूरा होजाने से चूड़ाकर्म भी हो चुकाहो तिसको तीन वर्षके भीतर मरजाने में तीनदिन रातों का सूतक माना जाय परंतु जिसका चूड़ाकर्म न हुआहो तिसको तीनवर्ष भीतर भी एकही दिनका सूतक जानो• तीन वर्षकी अवस्था पूरी होजाने उपरांत भी जिसका चूड़ा न हुआहो तिस का भी तीनदिन सूतक है• जिसका यज्ञोपवीतभी होचुका तिसके मरने में पूरा दश दिन आदि सूतक जो जिस वर्णका आवश्यक है सो करना चाहिये॥ २३॥

(स्त्रीणांवयोवस्थाविशेषेणापवादः)

अहस्त्वदत्तकन्यासुबालेषुचविशोधनम्॥ २४ (इतिपूर्वार्ध)

अक्षरार्थः—अदत्ताकन्याओंमेंऔरबालकोंमेंभीएकदिनविशोधनकाहो॥ २४॥

अभिप्रायः-विनादई कन्याएँ कि जिनका वाग्दान फलदान सगाई जब तक न हुई हो परंतु चूड़ाकर्म होचुकाहो तिनके मरजाने में सपिंडों को एक दिन शुद्ध होने का सूतक होताहै• और बालक लड़के कि जिनके दांत न जमेहों तिनको यदि अग्नि दाह दिया जाय तो एक दिन शुद्ध होने का कारण है (पर जो अग्निदाह न किया जाय तो तेईसवें मूलश्लोकवाली व्यवस्था मानी जायगी॥ २४॥

२४अधिकोक्तिः—सगाई हुये विना कन्याका सूतक जो सपिंडों को एकदिन का बताया तहां कन्याकी सपिंडता केवल तीन पीढ़ीतक होतीहै इससे आगे नहीं = तदाह वशिष्ठः = अप्रत्तानांतुस्त्रीणांत्रिपुरुषीविज्ञायते = अर्थात् विना विवाही स्त्रियोंकी सपिंडता तीनपुरुष तक जानी जातीहै=जिसकन्याका चूड़ाकर्म न हुआ हो तिसके मरने में सद्यः शौचहोना कहाहै कि जबतक सगाई न हुईहो = तथाच आपस्तंबः = अकृतचूडायांतुकन्यायांसद्यःशौचंविधीयते = अर्थात् विनाकिये चूड़ा

कर्मकी कन्या मरने में उसी समय स्नान किया जाय॥ जिस कन्याकी सगाई हो चुकी पर विवाह अबतक न हुआहो तो भी उसके मरजाने में दोनों कुलको तीनदिन सूतक होताहै = यथाहमनुः=स्त्रीणामसंस्कृतानांतुत्र्यहाच्छुध्यंतिबांधवाः। यथोक्तेनै वकल्पेनशुध्यंतितुसनाभयः = अर्थात्–असंस्कृत स्त्रियां कि जिनकी सगाई हो-जाने पर भी विवाहरूपी संस्कार न हुआहो तिनके बांधव जो पतिके सपिंडहों सो भी तीनदिन में शुद्ध होतेहैं और सनाभि जो पिता के पक्षवाले सपिंड हैं सो भी यथोक्त कल्पसे तीनिही दिनमें शुद्ध होतेहैं किन्तु स्त्रियोंके विवाहसे पहिले मरजाने में दश दिन आदिका पूरा सूतक नहीं मानाजाताहै–इसीलिये मरीचि ने तीनदिन के हेतु में असंस्कृताका लक्षणभी ब्यौरेवार कहाहै=यथा=वारिपूर्वंप्रदत्तातु यानैवप्रतिपादि-ता। असंस्कृतातुसाज्ञेयात्रिरात्रमुभयोःस्मृतम् = अर्थात्–प्रदत्तानामदेनीकहीकन्याहो क होजाने पर भी जो जलके साथ संकल्प से नहीं प्रतिपाद न हुई हो सो असंस्कृत जाननी और उसीके मरनेमें दोनों (पिता और पतिके) कुलों को तीन दिन अशौच होना कहाहै = विवाह के होजाने बाद स्त्रियोंके सूतक मध्ये पिताके घर विष्णु ने विशेष नियम कहाहै = यथा = संस्कृतासुस्त्रीषु नाशौचंपितृपक्षेतत्प्रसवमरणेचेत्पि तृगृहेस्यातां तदैकरात्रंत्रिरात्रंवा = अर्थात्–विवाह रूपी संस्कारसे संयुक्त स्त्रियों का सूतक पिताके कुलको नहीं लगता सो उस दशामें कि जो सूतक वाला हेतु पति के घर उत्पन्नहो ·अन्यथा जो पिता के घरमें कन्या के प्रसूतहोय वा कन्या का मरण होजाय तौ एक या तीन दिनका सूतक पिताके कुलको लगता है अर्थात् प्रसूत में एक दिनका मरण में तीन दिनका समुझना॥ ०॥ यह जो ऊपर अवस्था के भेद से अशौच की व्यवस्था कही सो सामान्य सभी वर्णोंको समुझनी किंतु इसमें वर्ण भेदसे कुछ भेद नहीं समुझना क्योंकि (जैसा बाईसवें मूलश्लोक में सपी आदि शब्दों का प्रयोगथातैसा) इसमें किसी वर्णका संकेत नहीं किया-इसी हेतुसे मनुने मनुस्मृति से जहां सर्व वर्णोंकी एकही व्यवस्था कही तहां (चतुर्णामपिवर्णानांयथावदनुपू-र्वशः) ऐसा भेद खोलिके कहिदिया है कि चारो वर्णोंका यह नियमहै = ऐसेही अंगिरा ने भी अपनी स्मृति संहिता में (अविशेषेण वर्णानामर्वाक्संस्कारकर्मणः। त्रिरात्रात्तुभवेच्छुद्धिःकन्यास्वह्नाविधीयते) यह स्पष्ट करिके कहाहै कि संस्कार कर्म से पहिले सभी वर्णोंको अविशेषतासे यह नियम समुझना कि तीनरात्रियोंसे सबकी शुद्धि होतीहै और कन्याओंके मरनेमें सभी वर्णोंकी एक दिनसे शुद्धि होती है = व्याघ्रपादका यह वचनहै कि (तुल्यंवयसिसर्वेषा मतिक्रांतेतथैवच) अर्थात् वयसि

नाम अवस्था भेदसे जो नियम सूतकमें कहीं लिखा गयाहो कि इतनी अवस्था तक इतना सूतक मानना होगा जैसा तेईस मूलश्लोक पूर्वार्ध में देखो सो सब नियम सभी वर्णोंका तुल्यहै कुछ ऊंच नीच का भेद उसमें नहीं·तथैव अतिक्रांत नाम जो बहुत काल बीति जाने बाद सुना गया तिसके जो नियम कहीं इक्कीस की अधिकोक्ति आदि में लिखे गये सोभी सर्व वर्णों के सामान्य हैं-तो इन सभी वचनों के प्रमाण से ऊपरली व्यवस्था भी सभी वर्णोंकी समझनी जो इसी अधिकोक्ति के प्रारंभ से वर्णन होती रही·जैसे सोरहवें श्लोक वा उसी की अधिकोक्ति वाले नियम सभी वर्णों के सामान्यकहे थे·या जैसा समानोदकों का आशौच सभी वर्णों को सामान्य कहागया था·या जैसे बीसवें मूल श्लोक के दोनों अर्द्धोंसे अधिकोक्ति पर्यंत के सब नियम सभी वर्णोंको सामान्य कहे गये थे·या जैसे इक्कीसके उत्तरार्ध मूलश्लोक से अधिकोक्ति पर्यन्त के सब नियम सभी वर्णोंको सामान्यकहे गयेथे·या जैसा आगे वर्णन होने वाले नियम गुरु आदि के सूतक मध्ये सभी वर्णोंके सामान्य कहेजायँ गे·तैसेही अवस्था भेद के सूतक भी सभी वर्णों को बराबरहोने योग्य हैं यह व्यवस्था ठीक हो चुकी ॥ ० ॥ तथापि ऋष्यशृंग आदिके वचन इसके विरोधी देखि परतेहैं= यथा = सत्रैयड्भिःकृतेचौलेवैश्येनवभिरुच्यते ऊर्ध्वंत्रिवर्षाच्छूद्रेतुद्वादशाहोविधीयते—तथा—यत्रत्रिरात्रंविप्राणामाशौचंसंप्रदृश्यतेतत्रशूद्रेद्वादशाहःषण्नवक्षत्रवैश्ययोरित्यादीनि अन्यान्यपिवचनानिसंति=अर्थात्—इन वचनोंने वर्ण भेदसे यह कहाहै कि·तीन वर्ष से उपरांत चौलकर्म हुये क्षत्री के मरने में छे दिनोंसे शुद्ध हों और वैश्य के मरने में नौ दिनोंसे कहते हैं और शूद्रके मरनेमें बारह दिनका अशुद्धकाल विधान किया है-तथा-दूसरा भी यह वचनहै कि जहाँ ब्राह्मणों का तीन दिन अशौच माना जाता हो तहाँ शूद्रका बारह दिन वैश्यका नौदिन क्षत्री का छे दिन से करना चाहिये यहप्रायश देखनेमें आता है:दोनों वचन का एकही तात्पर्य है इनके समान और भी अनेक स्मृतियोंमें वचनहैं तिन सबको विगीतरूप जानिके अर्थात् ऐसीरीति निन्दित समझके प्राचीन आचार्य धारेश्वर· विश्वरूप·मेधातिथि·आदि अनेक धर्म्मशास्त्र के संग्रहीता पुरुषों ने आदर पूर्वक प्रमाण में नहीं लाकर छोड़दिये और वही व्यवस्था अंगीकार करी जो ऊपर अभी लिखि चुके हैं (कोई अपनी तीव्रबुद्धि से यह तर्कना न खड़ीकरो कि जिन वचनों की रीतिका प्रचार नहीं रहा तो फिर यहाँ लिखने और वृथाही विस्तार बढ़ाने से क्या सिद्धि हुई केवल वही व्यवस्था लिखते जिस का प्रचार है·सुनो जब किसी स्थलपर कोई पुरुष उन्हीं वचनों को सुनाकर

अच्छी रीति में भंग डारने लगें तब इस खण्डन मण्डनके समझे बिना तुमसे क्या उत्तर बनि आवै तिससे यह विस्तारही कार्यसाधक होगा कि (संग्रहत्यागनविनपहिं-चाने) अच्छी बुरी दोनोंरीतिका स्वरूप समझ बूझिके अच्छीका स्वीकार और बुरीका निरादर भी करसकोगे) इसी लिये पीछेसे विज्ञानेश्वरने यह लिखाहै कि जहाँ किसी अवसर में कोई बुद्धिमान् उन्हीं वचनों को अविगीत ठहरावै किन्तु आदर के योग्य सिद्धकरें कि वह भी किसी देशकालकी मर्यादा से निर्माण हुयेथे अनादर क्योंकरना-तहाँक्षत्रीआदिवर्णोंके आर्त अनार्त समयके अनुसारव्यवस्था कल्पितकरनी चाहिये अर्थात् जो किसी प्रबल विपत्ति में फँसेहैं तो वही साधारण पक्ष जो सभी वर्णों का एक है सो अंगीकार करना जो ऐसी विपत्ति में न फँसे सावधान हैं तो यह अधिक दिनों वाला पक्ष भी स्वीकार होसकता है॥ इस चौबीस के श्लोक पूर्वार्ध से योगीश्वरने जो कुछ नियम कहा सो आगे उत्तरार्ध से गुरु आदि के सूतक में अति देश करेंगे॥ २४॥

(गुर्वादीनांमरणेपि उक्तनियमस्यातिदेशः)

गुर्वंतेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषुच २४

अक्षरार्थः—गुरु·अंतेवासी·अनूचान·मातुल·श्रोत्रिय· इनमें भी एकदिन॥ २४॥

अभिप्रायः—यहाँपर गुरु उपाध्यायको समझना·अंतेवासी वह शिष्यहै जो गुरु के पासही सदा रहिके विद्या पढ़ताहो·अनूचान जो अनु वचन में समर्थ किन्तु अंगों सहित वेद में विचक्षण हो·यहां मातुल मामा के नामसे और भी बन्धुलोग जो अपने या अपने पिता के और माता के भी जो लँहगहा नाते में होतेहैं योनि संबंधी समझे जाते हैं सो सो व्यवहाराध्यायमें वर्णन होचुके तहाँ देखो·श्रोत्रियएक शाखाध्यायी को समझना·इनमें से कोई मराहो तौ वही एकदिन रात्रिका सूतक मानना जो पूर्वार्ध में कन्या के निमित्त लिखागया था—गुरु कहनेसे मुख्य गुरु पिता भी होताहै तिसका ब्यौरा अधिकोक्ति में॥ २४॥

२४अधिकोक्तिः—एक शाखाध्यायी को श्रोत्रिय कहा तिसका प्रमाण बौधायनका वचन है=यथा=एकांशाखामधीते श्रोत्रियः=अर्थात्—जो ब्राह्मण वेद की एक शाखा पढ़े सो श्रोत्रिय होताहै॥ यद्यपि गुरुका सूतक ऊपर कहिचुके परन्तु गुरु शब्द से पिता भी समझाजाता वरन मुख्य गुरु पिताही होताहै तिसका सूतक ऊपर के गुरु शब्द से एक दिनका नहीं समझना किन्तु पिता के मरने मे पूरा दशदिन का

सूतक आवश्यक है क्योंकि पिता पुत्र में सपिण्डता रूपी संबंध बहुत प्रबल है सो ये दशदिन भी सामान्य पिता के मरने में समझने किन्तु विशेष पिता जो महागुरु के लक्षणों से संयुक्त हो तिसके मरने में दो दिन और भी अधिक हैं=तथाचआश्वलायनः=द्वादशरात्रंवामहागुरुषुदानाध्ययनेवर्जयेरन्=अर्थात्—पुत्रोंके लिये जो पिताका सूतक दशदिन कहिचुके तिसमें यह पक्षांतर भी आश्वलायन दर्शातेहैं कि'यद्वा महागुरुओं के मरने में बारह दिन तक दान और अध्ययन कर्म वर्जित राखें ॥ महा गुरु के लक्षणों से संयुक्त पिता वह कहाता है जिसने पुत्रों को जन्म देकर और उनके सब संस्कार करके वेद विद्यायें अच्छे पढ़ाय गुनायके फिर उन्हीं पुत्रों के लिये कोईसी जीविका वृत्तिभी कल्पित करदीहो कि जिसके द्वारा सदासर्वदा निर्वाहचले तो यह पिता महागुरु कहाता है सामान्य पिता केवल गुरुही कहाते हैं कि जिन से ऐसा उपकार पुत्रोंका न होसकाहो केवल जन्मदेने से गुरु कहाता है (यथाह विज्ञानेश्वराचार्यः) (यस्तुपितापुत्रानुत्पाद्य संस्कृत्यवेदानध्याप्यवेदार्थं ग्राहयित्वावृत्तिंचविदधाति तस्यमहागुरुत्वा त्तदुपरमेद्वादशरात्रं वा महागुरुषु दानाध्ययनेवर्जयेरन् इत्याश्वलायनेनोक्तंद्रष्टव्यं)--अर्थ लिखचुके वहांदेखो और (पिता एक होताहै • आश्वलायनके वचनमें महागुरुषु यह बहुत्व भी आचुका तिसका यह तात्पर्यहै कि जहांकिसी और हीने अत्रोक्त उपकार पिताके स्थानीभूत बनिके किये हों यद्वा स्थानीभूत न होनेपर भी पिताके तुल्य उपकार किये हों तो वही महा गुरु हो सक्ता है तिससे बहु वचन का होना उचित है॥ आचार्यके मरने में तीन दिन सूतक मानना मनुने कहा है=यथा = त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्येसंस्थितेसति तस्यपुत्रेचपत्न्यांचदिवारात्रमितिस्थितिः=अर्थात्—आचार्य के मरने में तीन रात्रि का आशौच कहते हैं और जो उसकी स्त्री या पुत्र मरे तो एक दिन रात की मर्यादा है॥ जो कोई अपने आचार्य आदि का दाह कर्म आदि ऊर्ध्वदेहिक करै तो इनका भी पूरा दशरात्रि का सूतक मानना चाहिये=तदप्याह मनुः=गुरोःप्रेतस्यशिष्यस्तुपितृमेधंसमाचरन् प्रेताहारैःसमंतत्रदशाहेनविशुद्ध्यति=अर्थात्—यदि कोई शिष्य अपने गुरु का पितृमेध यज्ञ अर्थात् अग्निसंस्कार आदि कर्म आरंभ करै तो वहभी प्रेतके आहरण करनेवालोंके समान दश दिन में शुद्ध होता है॥ सब्रह्मचारी और श्रोत्रिय जो समान ग्रामी अर्थात् अपने गाँव में रहताहो तिसका भी एक दिन सूतक होताहै=तदाहाश्वलायनः=एकाहंसब्रह्मचारिणि समान ग्रामीणेचश्रोत्रिये=अर्थात्—अपना सब्रह्मचारी जो एकही अपने आचार्य से जनेऊ दियागया हो तिसके मरनेमें एक दिनका सूतक मानना तथाएक

भेद से व्यवस्था कल्पित करलेनी चाहिये तो कुछ विरोधनहींहै ॥ २४ ॥ मूलश्लोक में एक दिन कहा या उसी एक दिनका अतिदेश अगिले श्लोक में भी कहेंगे॥ २४॥

(पूर्वनियमस्यैवातिदेशः)

अनौरसेषुपुत्रेषुभार्यास्वन्यगतासुच२५ (इतिपूर्वार्धः)

अर्थः—अनौरस पुत्रोंमें और अन्यपुरुषगता भार्याओंमें भी वही एकदिन सूतक हो=अर्थात्—दत्तक क्षेत्रज आदि जो बारह पुत्र व्यवहार मर्यादा परिपाटी में वर्णित हुये सो औरस नहीं अनौरस कहाते हैं तिनके मरनेमें या उनमें यथा संभव किसीका जन्महोनेमें वही एकदिन सूतकहै जो पहिले श्लोकमें कहिचुके-तथैव अपनी भार्य्या जो और किसी के बैठिगई हों तिनके उस घर में मरनेसे भी मुख्य पतिको एक दिन सूतक है (परन्तु जो ऊंचजाति छोड़ि नीच जाति के बैठी हो तिसके मरने में यह नियमनहीं समझना किन्तु ऊंचे वर्ण या समानवर्णके बैठी हो उसीका यह नियमहै) क्योंकि प्रतिलोम जातिके बैठनेवाली का सूतक पहिले पतिको नहीं लगता यह छठे मूल श्लोक में निषेध होचुका तहाँ देखो . भार्य्या अपने पति की सपिण्ड होती है उसका सूतक सपिण्डतासे पूरा दशदिनहोना योग्यथा सो और के बैठिजानेसे एकही दिन का रहगया जो समान या ऊंची जातिके बैठीहो-तोभी यह उस दशामें समझना कि जिस भार्या से पहिले पति को किसी तरह का समागम शेषबना हो-पति के सिवाय किसी और पतिके भाई आदि सपिण्ड को निपट सूतक ऐसी स्त्रियों का नहीं है अधिकोक्ति देखो॥ २५ ॥

२५ अधिकोक्तिः = अत्रप्रजापतिः = अन्याश्रितेषुदारेषु परपत्नीसुतेषुच । गोत्रिणःस्नानशुद्धाःस्युस्त्रिरात्रेणैवतत्पिता = अर्थात्—प्रजापति का वचनहै कि जो और किसीके बैठी हुई स्त्रियांहैं तिनसे पराई पत्नीके मरनेमें गोत्री लोग स्नानमात्र से शुद्ध होजायेंगे परंतु उनके पिता तीन रात्रि से शुद्धहोंगे ॥ स्वैरिणी आदि स्त्रियां जिसके घर बैठीहों तिसको उनके मरने में तीन दिन सूतक होताहै = यथाह विष्णुः = अनौरसेषुपुत्रेषुजातेषुचमृतेषुच । परपूर्वासुभार्यासुप्रसृतासुमृतासुचेतित्रिरात्रमशुद्धत्वं = अर्थात्—अनौरस पुत्रोंके मरने या जन्म होनेमें भी और भी पर पूर्वा भार्याओंके मरने या प्रसूत होनेमें भी तीन दिन सूतकहै जो पहिले किसी वचनमें कहा होगा=यहांपर विष्णुने उन्हीं को तीन दिन कहे जिनको योगीश्वरने एक दिन कहा था तो यह व्यवस्थाभी समीप और विदेशके भेदसे दोनों ठीक समझनी कि जो विदेशमें मरा तिस-

का एकही दिनमानै जो समीप मरा तिसके तीन दिन मानै (परपूर्वा स्त्रियां वे कहाती हैं जिनके पहिला पिछला दो पतिहों) पतिहित्वाऽपकृष्टंस्वमुत्कृष्टंयानिषेवते परपूर्वेतिसाप्रोक्ता = अर्थात्--परपूर्वा वह कहाती है जो अपने खोटे पतिको छोडिके उत्तम किसी दूसरे को सेवन करै॥ परपूर्वा स्त्रियोंके प्रसूत या मरने का सूतक उनके पिता को यद्यपि तीन दिन कहा गया परंतु बहिन भाई आदि अन्य सपिंडोंको एकही दिन का जैसा मरीचि का यह वचन है कि = सूतकेमृतकेचैवत्रिरात्रंपरपूर्वयोः एकाहस्तु सपिंडानांत्रिरात्रंयत्रवैपितुः = अर्थात्--परपूर्वा स्त्रियोंके प्रसूतहोने या मरनेमें पहिले पिछले दोनों पतिको तीन दिन सूतक होय और एक दिन उन्हींके सपिंडोंको सूतक हैकि जहां उनके पिताको तीनदिनकहेगये-यह पूर्वार्द्धकी अधिकोक्ति पूरीहुई॥२५॥

(देशाधिपस्यमरणाशौचं)

निवासराजनिप्रेते तदहःशुद्धिकारणम् २५

अर्थः-निवास का राजा मरने में वही दिन शुद्धिका कारण है = अर्थात्--जिस देशमें अपना निवासहो उस देशका राजा मरै तो वही दिनमात्र शुद्ध होजाने का हेतु है रात्रि इससें नहीं समुझनी किंतु रात्रिमें राजा मरा और उसी रात्रिमें दाहादि कर्म होगये हों तो वही एक रात्रि प्रजामात्रके शुद्ध होजाने का हेतुहै॥ २५॥

२५ अधिकोक्तिः=मनुराप्याह=प्रेतेराजनिसज्योतिर्यस्यस्याद्विषयेस्थितः=अर्थात्--मनुष्य जिसके राजमें रहताहो उस राजाके प्रेत होनेमें सज्योति सूतक रहिता है अर्थात् ज्योतिः नाम प्रकाश का कि जो सूर्य चंद्र आदि से होता है तिससे यह तात्पर्य ठहिरा कि जो दिनमें राजा मरै तो जब तक सूर्यका प्रकाश बनारहे तबतक प्रजा को सूतक है जो रात्रि में राजा मरै तो जब तक नक्षत्रों का प्रकाश बना रहे तब तक सूतक है॥ २५॥

(अनुगमनाशौच नियमाः)

ब्राह्मणेनानुगंतव्योनशूद्रोनाद्विजःक्वचित्। अनुगम्यांभसिस्नात्वास्पृष्ट्वाग्निंघृतभुक्शुचिः२६॥

अर्थः--ब्राह्मणकरके न शूद्र अनुगंतव्यहै न कहींकोई द्विजमात्र. अनुगमनकरके भी जलमें स्नान करके अग्निका स्पर्श करके घृत भोजन से पवित्र होय=अर्थात्--ब्राह्मण जो किसी का सपिण्ड न हो तो असपिण्ड किसी शूद्रके मुर्दा साथ न जाना चाहिये न किसी द्विजाती के मुर्दा साथ· परंतु जो स्नेह आदि कारणों से जाना पड़े

सूतक हो (योनिसंबंधा मातुल मातृष्वस्रीयपितृष्वस्रीयादयः) अर्थात मामा मावसी फूआ आदि रिश्ते योनि संबंधी कहाते हैं = तथा जाबालिः=एकोदकानांतुत्र्यहोगोत्र ज्ञानासहःस्मृतम मातृबंधौगुरौमित्रेमंडलाधिपतौतथा = अर्थात—जाबालि कहते हैं कि जो समानोदक मरें तिनके लिये तीनदिनका सूतक है इनके उपरान्त यदिगोत्री मरे हों तो एकहीदिनकहाहै और माताके वंधुमरने में या गुरुके मरने में या मित्रके मरनेमें तथा मंडलाधिप एक राजा के मरने में भी कि जो चारसौ योजन धरती का अधिपतिहो = विष्णुस्तु = असपिंडेस्ववेश्मनिमृतेएकरात्रम = अर्थात—जो अपना सपिंड नहींहै वही अपने घर में रहके मरे तौभी एक दिनका सूतक है=तथा वृद्धः= भगिन्यांसंस्कृतायांतुभ्रातर्यपिचसंस्कृते मित्रेजामातरिप्रेतेदौहित्रेभगिनीसुते श्यालके तत्सुतेचैवसद्यःस्नानेनशुद्ध्यति • ग्रामेश्वरेकुलपतौ श्रोत्रियेचतपस्विनि शिष्येपंचत्वमापन्नेशुचिर्नक्षत्रदर्शनात्‌• ग्राममध्यगतोयावच्छवस्तिष्ठतिकस्यचित्‌ ग्रामस्यतावदाशौचंनिर्गतेशुचितामियात्‌ = अर्थात—विवाहरूपी संस्कार करी वहिन के मरने में या उपनयन रूपी सस्कार किये छोटे भाई के मरने में या मित्र के मरने में या जमाई के मरने में या धेवताके मरने में याभानजेके मरने में या शालेके मरने में या शालेका पुत्र मरजाने में सुनते मात्र सद्यही स्नान करके शुद्ध होजाता है और ग्रामेश्वर गाव के ठाकुर मरने में या कुल पति जो सेना आदि किसी जनसमूह का अधिष्ठाता हो तिसके मरने में या श्रोत्रिय के मरने में या किसी प्रसिद्ध तपस्वी के मरने में या शिष्यके मरजाने में नक्षत्र दर्शन करके शुद्ध होताहै अर्थात जो रात्रिमें मरना सुनाहो तो नक्षत्रों को दर्शन करिके सो जाने मात्रसे शुद्धि होती है दूसरे दिन स्नान अपने मामूली समय पर होगा अन्यथा जो दिवस मे सुनाहो तौभी नैत्तिक स्नान करने पश्चात रात्रि में नक्षत्र दर्शन होनेपर सूतक मिटा समझा जायगा और विशेष इसमें यही तात्पर्यहै कि सूतक निमित्त का स्नान करना आवश्यक नहीं किन्तु स्नानका स्थानीभूत नक्षत्रोंका दर्शन कहाहै और भी ग्राम के बीच चाहे किसी जातिका मुर्दाहो जबतक धरा रहे तबतक ग्राममात्र को सूतक है कि उतनी देर कुछ कामधंधा न कियाजाय फिर उस मुर्दाके निकसि जानेमें स्नानकिये विनाही समस्त ग्राम को पवित्रता प्राप्त होतीहै— इन वचनोंको आदि लेकर और भी अनेकस्मृतियों के ऐसे वचनहैं जो यहाँ पर ग्रन्थ वढ़िजाने के संदेह से नहीं लिखे जो जो यहाँ नहीं लिखेवेही जबकहीं देखिपरैंतिनमें और लिखेगये तिन मे जो जो एक ही विषय पर छोटा बड़ा शौच कल्प कई भेद से परस्पर विरोधी देखिपरै तिस को विदेश की खबर पाने या समीपही मौत देखने के

ही दिन समान ग्रसौरा श्रोत्रिय के मरनेमें भी=यह नियम जोजो एक दिनका कहा सो दूर कहीं देशांतर में मरना सुनिके मानना कहा गया किंतु पासही मरने में तीन दिन आदिका सूतक नियम जुदा है=तदाहमनुः=श्रोत्रियेतूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् मातुलेपक्षिणीरात्रिं शिष्यर्त्विग्बांधवेषुच=उपसंपन्न श्रोत्रिय के मरने में तीन दिन अशुद्ध होवै और मामा के मरनेमें पक्षिणीरात्रि जिसके आगे पीछे दोनों दिवस सिलेहों ऐसा बारह प्रहर का सूतक होय तथा शिष्य ऋत्विक् बांधव इन के भी मरने में बारह प्रहर समझने (उपसंपन्न विशेषण का यह तात्पर्य है कि जो विशेष मैत्री भाव रखता हो या घर में आना जाना जिसका अधिक हो इत्यादि प्रकारों से स्नेह जिसका प्रत्यक्षहो सो उपसंपन्न है) औरभी (मातुल कहनेसे केवल मामा नहींकिंतु माता की बहिन आदि भी समझनी—और बांधव जो कहे सो अपने और पिता के और माताके ये तीन भाँति बंधुहोतेहैं व्यवहार मर्यादा परिपाटीमें देखो=यहोनियम जो कहिचुके तिसका प्रमाण आगे बृहस्पतिका वचन है=यथा=त्र्यहंमातामहाचार्यश्रोत्रियेष्वशुचिर्भवेत्=अर्थात्—नाना आचार्य श्रोत्रिय इनकेमरनेमें तीनदिन सूतक राखै=तथा प्रचेताः=मृतेचर्त्विजियाज्येच त्रिरात्रेणविशुद्ध्यति=अर्थात्—प्रचेता ने भी कहा है कि ऋत्विज याज्य इनके मरने में तीन रात्रि से विशुद्ध होय=वृद्धबृहस्पतिस्तु=संस्थितेपक्षिणींरात्रिंदौहित्रेभगिनीसुते संस्कृतेतुत्रिरात्रंस्यादितिधर्मोव्यवस्थितः॥ पित्रोरुपरमेस्त्रीणामूढानांतुकथंभवेत् त्रिरात्रेणैवशुद्धिःस्यादित्याहभगवान्यमः॥श्वशुरयोर्भगिन्यांचमातुलान्यांचमातुले पित्रोःस्वसरितद्वच्चपक्षिणींक्षपयेन्निशाम्=तथा=मातुले श्वशुरेमित्रेगुरौगुर्वंगनासुच अशौचंपक्षिणींरात्रिंमृतामातामहीयदि= अर्थात्—धेवते और भानजे के मरने में पक्षिणी रात्रिका बारह प्रहर सूतक मानै परन्तु जो इनके संस्कार हो चुकेहों तो तीनदिन सूतक मानै यह मर्यादा है॰ माता पिता के मरने में विवाही कन्याओं को कैसा सूतक होय इसके मध्ये साक्षात् यमराज का कथनहै कि तीनदिन सूतक मानै सासू ससुरके मरने और बहिन के मरने और मामा मामीके मरने में तथैव पिता या माता की बहिन के मरने में पक्षिणी रात्रि का बारह प्रहर सूतक मानै = तैसा = और यह वचन है कि मामाके मरने या ससुरके मरने या मित्र के मरने या गुरुके मरने या गुरानी के मरने में या जो नानी मरी हो तौभी पक्षिणी रात्रिका बारह प्रहर सूतक मानै = तथाच गौतमः = पक्षिणीसमपिंडेयोनिसंबंधेसहाध्यायिनिच = अर्थात्—जो अपने सपिंड न हों किन्तु योनि सम्बन्ध के रिश्तेदार हों तिनके मरने तथा सहाध्यायी के मरने में पक्षिणी रात्रिका बारह प्रहर

साथ जाने से एक दिन रात्रिभर आठपहर तक अशौच लगे और एकवर्णा बीच में अंतर देकर जो शूद्रहै तिसके मुर्दासाथ जाने में सबीको बारह पहर सूतक लगे तथा वैश्यको भी अपने अनन्तर शूद्र वर्ण के मुर्दासाथ जाने में एकही दिन आठप्रहर तक अशौच होगा यह कल्पना कर्त्तव्य है॥ विराने मुर्देको रोने सम्बंधे पारस्करका वचन है = यथा = मृतस्यबांधवैःसार्द्धं कृत्वातुपरिदेवनम् वर्जयेत्तदहोरात्रं दानंश्राद्धादिक मंच = अर्थात्—किसी मरेहुये के बान्धवों साथ मिलि के जो कोई रोवें पीटें सो इस परिदेवनको करने के हेतुसे उस दिनका दिवस तथा रात्रिभी दान और श्राद्ध आदिकर्म करने वर्जित राखे क्योंकि सूतकी ठहरा॥ विराने प्रेत को शृङ्गार आदिभी करना निषिद्ध है क्योंकि शंख ने अग्रोक्त वचन से प्रायश्चित्त कहा है = यथाह शंखः = कृच्छ्रं पादोऽसपिण्डस्य प्रेतालंकारणेकृते अज्ञानादुपवासःस्यादशक्तौस्नानमिष्यते= अर्थात्—असपिंड किसी गैर सजाती के प्रेतका अलंकार सुधारने करने में कृच्छ्रचां द्रायण व्रत······का एक पाद किन्तु चौथाई प्रायश्चित्त करनाचाहिये जो इस दोष को जाने विना ऐसा किया हो तो उपवासमात्र करके शुद्ध होय परंतु जिसको कृच्छ्र या उपवास करने की शक्ति किसी हेतुसे न हो सो स्नानमात्रकरें॥ इस अधिकोक्ति के विचार समय चौदहवीं अधिकोक्तिभी देखो तथासत्रहवीं अधिकोक्ति का अंतिम भाग देखो॥ २६॥

अगले श्लोक में यह वर्णन करेंगे कि विरले सपिंडोंकोभी सपिंडों का सूतक नहीं लगता तिससे उनके लिये अशौच का अपवाद समझना॥ २६॥



तो नदी तडाग आदि में स्नान दुवारा किये पीछे अग्निको स्पर्शकरै फिर घृतप्राशन करै तब शुद्ध होता है सो यह नियम भी अपनी समान जाति और अपना से ऊँची जातिका विषय समझना ॥ २६ ॥

२६ अधिकोक्तिः=मनुरप्याह = अनुगम्येच्छयाप्रेतंज्ञातिमज्ञातिमेवचस्नात्वा सचैलःस्पृष्ट्वाऽग्निंघृतंप्राश्यविशुद्ध्यति = अर्थात्—अपनी इच्छा से जाति या और जातिकेमुर्दा साथ जायके वस्त्रों सहित स्नान करके और अग्नि का स्पर्श करके घृत चाटिके विशुद्ध होताहै (अत्रज्ञातयोमातृसपिंडाः इतरेषांतुविहितत्वान्नदोषः इतिविज्ञानेश्वराचार्यः) अर्थात् श्रीमद्विज्ञानेश्वरने यहभी कहाहै कि यहांपर ज्ञाति शब्दसे माता के सपिण्ड समझने जिनके साथ जानेका यह प्रायश्चित्त कहा क्योंकि औरों के साथ जानेका नियम कहचुकनेसे कुछ दोषही नहीं) समान और ऊँची जाति का नियम यह कहागया अब नीची जाति के मुर्दा साथ जाने मध्ये स्मृत्यंतर वचन कहतेहैं=यथाहपराशरः=प्रेतीभूतंतुयःशूद्रंब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः अनुगच्छेन्नीयमानंत्रिरात्रेणशुद्ध्यति त्रिरात्रेतुततश्चीर्णेनदींगत्वासमुद्रगामप्राणायामशतंकृत्वाघृतंप्राश्यविशुद्ध्यति=अर्थात्—मरे हुये शूद्रको लेजातेसमय जो कोई ब्राह्मण ज्ञानसे हीनहोकर साथ चला जाय सो तीन दिन में शुद्ध होताहै तीन रात्रि बीतजाने बाद ऐसी नदी में जाकर गोता लगावे जो समुद्रमें जामिलीहो फिर एकसौ प्राणायाम किये पीछे घी पीकर शुद्ध होता है=यहां पर विज्ञानेश्वर कहिते हैं (क्षत्रियानुगमनेत्वहोरात्र) कि क्षत्री मुर्दाके साथ जानेमें ब्राह्मणको एकदिन रातिभर आठपहर तक अशुद्धता रहती हैक्योंकिवशिष्टकायहवचनभी नावचनप्रमाणहै) यथा—मानुषास्थिस्निग्धंस्पृष्ट्वात्रिरात्रमाशौचं अस्निग्धेत्वहोरात्रं शवानुगमनेचैवं=अर्थात्—मनुष्यका हाड़ गीला छूइकर तीन रात्रिकी अशुद्धता और सूखाहाड़ छूनेमें एक दिन रात्रि की अशुद्धता और मुर्दा के साथ जाने में भी इसी प्रकार (यद्यपि वशिष्ठके इस वचन में क्षत्री का प्रसंग नहीं आया है तथापि इस प्रायश्चित्त काण्ड में विराने लेखपर हमकुछ तर्क उठाना नहीं चाहतेहैं कदाचित् ऐसा सन्दिग्धस्थल आचार व्यवहार से होता तो स्वबुद्धिको विस्तार दियेबिना न रहते विवेकी पुरुष आपही मन न कासकैंगे) पुनरपिविज्ञानेश्वरः=वैश्यानुगमनेपुनःपक्षिणीतथा क्षत्रियस्यानंतरं वैश्यानुगमने अहोरात्रमेकांतर शूद्रानुगमनेपक्षिणीवैश्यस्यशूद्रानुगमने एकाहइत्यूहनीयम्=अर्थात्—फिर भी विज्ञानेश्वर ने यह लिखाहै कि ब्राह्मण जो वैश्यके मुर्दासाथगमनकरै तो पक्षिणीनामकरात्रिकीबारह प्रहर तक अशुद्धि मानीजाय तथा क्षत्री को भी अपने से अनन्तर वर्णमें वैश्यके मुर्दा

क्षत्रियादीनांनाशौचंतैराशौचंनकार्यमित्यर्थः तथा विद्युद्धतानां गोब्राह्मणारक्षणार्थंविपन्नानांच संबंधिनो येसपिण्डास्तैरप्याशौचंनकार्यं=अर्थात्—श्लोक में पहिले पाद का अर्थ जो आधुनिकने लिखा वही विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि महीपतियों को किसीका सूतक न मानना चाहिये सोतो निःसंदेह अविरोधीहै तथैव चौथेचरण का भी अर्थ उभयत्र अविरोधी समझना–किंतु बीचके दो पाद में विरोध है जैसा विज्ञानेश्वरने यह कहा कि–बिजली के मारे हुयोंके संबंधी सपिण्ड लोग उनका सूतक न मानें तथा गऊ ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त संग्राम करतेहुये लड़ाईमें जो मरे हों तिनका भी सूतक उनके सपिण्ड लोग न मानें (बसयही इतना विरोध है) इस विरोधके प्रत्येकपदमें बड़ेबड़े शास्त्रार्थहैं आधुनिक लेखक यद्यपि प्रायश्चित्त विषय पर शास्त्रार्थ खड़ा करना नहीं चाहता है तथापि लेखनी अपने स्वाभाविक स्वभाव से मानती नहीं है–तिससे शोचना चाहिये कि प्रथम तो यही एक दूषण आताहै कि एकस्थलमें दो वस्तु ठहरीं अर्थात् राजा तो आपही सूतक न मानै और उसकेसाथमें जो अन्यपुरुष कहेगये तिनके सपिण्डलोग उनकासूतक न मानैं याज्ञवल्क्य योगीश्वरका यह तात्पर्य नहीं है क्योंकि जिनका सूतक सपिण्डों को न मानना चाहिये तिनके लक्षण इक्कीसवें मूल श्लोक पूर्वार्ध में कहि चुकेहैं उसीकी अधिकोक्ति भी देखो कि वहां कुछ और ही नियम कहागया था यहां दूसरा कर कहिना सम्भव नहींहै· यहां केवल उन्हीं कर्त्तालोगोंका चर्चाहै कि जिनको आपही किसीकासूतक न मानना चाहिये दृष्टांत जैसे राजाको किसीका सूतक न माननाकहा तैसा औरोंको भी समझना– इसके सिवाय इस अर्थमें संग्राम शब्द जो स्वयं आधार भूत है तिसके साथ गऊ ब्राह्मण का अर्थ मात्र विशेष्य विशेषण मानकर हत शब्द के योग से निपट उन्हीं का सत्जाना सिद्ध कियागया कि जो सूतक न मानने के अधिकारी आप जीतेरहिकर योगीश्वरने दर्शाये हैं सो यह अर्थ इसी हेतुसे विरुद्ध ठहिरा कि हत का अर्थ निपटमाराजानाही नहीं बल्कि ताडित पिटा अवमरा आदिभी होते हैं तथैव संसार में भी देखो कि बिजली की चपेटसे मारेहुये भी बहुधा जीते रहितेहैं उन्हींका प्रयोजन यहां मुख्य है ऐसेही प्रसिद्ध है कि संग्रामसे भी जो पिटे अवमरेआदि जीते लौटतेहैं वेभी हत कहातेहैं. औरभी गऊ ब्राह्मणके उपकार में लगेहुये मात्र का चर्चा हेतु गर्भित है उसमें कुछ हतहुयेका सम्बंध नहीं है औरभी इस बात का प्रमाण देखो इक्कीसवीं पूर्वार्ध की अधिकोक्ति में (यह वचन (ब्राह्मणार्थेविपन्नानांयोषितांगोग्रहेपिच आहवेपिहतानांचएकरात्रमशौचकं) लिखचुके हैं) उसी जगे गौतम का

अथसद्यःशौचव्यवस्थाकथने तृतीयःपरिच्छेदः ३

---*---

(इस परिच्छेदमात्र में सब तरह के सद्यः शौच कहेजायंगे कि अमुकामुक मनुष्यों को तत्कालभी शुद्धि प्राप्त होती है कि वे दशादिन आदिके बन्धनमें नहीं रहिसक्ते- तथा विरलेस्थलभी सद्यःशौचकहेजायंगे इक्कीसवें मूलश्लोक पूर्वार्धसे उसकी अधिकोंकि मे जो सद्यःशौचका प्रसंगथोड़ासा आयाथा वह केवल उन्हीं प्रेतोंकाप्रसंगथा किजिनके लिये हर कोई सद्यःशौचहोसक्ता)

(केचित्सपिण्डाअपिसद्यःशौचाः)

महीपतीनांनाशौचंहतानांविद्युतातथा। गोब्राह्मणार्थेसंग्रामेयस्यचेच्छतिभूमिपः २७

अर्थः—मही पतियों को अशौच नहीं है तथा बिजली से मारेहुयों को और गऊ ब्राह्मण के अर्थ में उपयुक्त और संग्राममें उपस्थित वा हतहुयों को और जिस को भूपतिचाहै तिसको भी सूतक नहीं =अर्थात्—राजाओंका यदि कोई सगोत्री वा सपिंड मरै तौभी उनको सूतक नहीं लगता तथैव जिनको बिजलीने सिर्फ चपेट मारी मरने से बचिगये पर स्नान आदि क्रिया करने योग्य शक्ति उनमें नहींरही तिससे ऐसीदशा में यदि कोई सपिण्ड उनका मरा हो तो इन बिजलीसे मारे हुयों को भी सूतक नहीं लगताहै एवं जे कोईपुरुष गऊ या ब्राह्मणके किसी ऐसे उपकारमें लगेहैं जिनको सूतक मनाने का अवकाश न हो या सूतक मानने से उपकार में विघ्न होना संभव हो तो इनको भी सूतक नहीं लगता है एव जे कोई शूर वीर युद्ध में उपस्थित हों या युद्ध से कुछ घायल होकर घर आये हों तिनका कोई सपिण्ड यदि इसी अवसरमें मरै तौ उनको भी सूतक नहींलगताहै एवंजिसकिसी मन्त्री पुरोहित हाकिम अहल्कार आदि को राजाचाहै कि (इसको छुट्टी देनेसे राज कार्यमें बहुत बड़ी हानि होगी तिससे यह सूतकियोंमें न शामिल हो) तो इनकोभी सपिण्डोंके मरनेमें इनको सूतक नहींलगता है॥ यहांपर विवेकीजनोंको विचारकरनाचाहिये कि आधुनिक लेखकने यही अर्थ अपनीबुद्धिसे ठीकसमझा सो लिखा—परंतु मुख्य मिताक्षराकारने अन्य व्याख्याकरी है सोभी लिखे देतेहैं कि दोमें जो ठीक हो वही स्वीकारकरना॥ यथाहविज्ञानेश्वरः--

सपिण्डादीनांनाशौचंतैराशौचंनकार्यमित्यर्थः तथा विद्युद्धतानां गोब्राह्मणरक्षणार्थेविपन्नानांच संबंधिनो येसपिण्डास्तैरप्याशौचंनकार्यं=अर्थात्—श्लोक में पहिले पाद का अर्थ जो आधुनिकने लिखा वही विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि महीपतियों को किसीका सूतक न मानना चाहिये सोतो निःसंदेह अविरोधीहै तथैव चौथेचरण का भी अर्थ उभयत्र अविरोधी समझना--किंतु बीचके दो पाद में विरोध है जैसा विज्ञानेश्वरने यह कहा कि--बिजली के मारे हुयोंके संबंधी सपिण्ड लोग उनका सूतक न मानै तथा गऊ ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त संग्राम करतेहुये लड़ाईमें जो मरे हों तिनका भी सूतक उनके सपिण्ड लोग न मानें (बसयही इतना विरोध है) इस विरोधके प्रत्येकपदमें बड़ेबड़े शास्त्रार्थहैं आधुनिक लेखक यद्यपि प्रायश्चित्त विषय पर शास्त्रार्थ खड़ा करना नहीं चाहता है तथापि लेखनी अपने स्वाभाविक स्वभाव से मानती नहीं है--तिससे सोचना चाहिये कि प्रथम तो यही एक दूषण आताहै कि एकस्थलमें दो वस्तु ठहिरीं अर्थात् राजा तो आपही सूतक न मानै और उसकेसाथमें जो अन्यपुरुष कहेगये तिनके सपिण्डलोग उनकासूतक न मानें याज्ञवल्क्य योगीश्वरका यह तात्पर्य नहीं है क्योंकि जिनका सूतक सपिण्डों को न मानना चाहिये तिनके लक्षण इक्कीसवें मूल श्लोक पूर्वार्धं में कहि चुकेहैं उसीकी अधिकोक्ति भी देखो कि वहां कुछ और ही नियम कहागया था यहां दूसरा कर कहिना सम्भव नहींहै· यहां केवल उन्हीं कर्त्तालोगोंका चर्चाहै कि जिनको आपही किसीकासूतक न मानना चाहिये दृष्टांत जैसे राजाको किसीका सूतक न माननाकहा तैसा औरोंको भी समझना-- इसके सिवाय इस अर्थमें संग्राम शब्द जो स्वयं आधार भूत है तिसके साथ गऊ ब्राह्मण का अर्थ साथ विशेष्य विशेषण मानकर हत शब्द के योग से निपट उन्हीं का मरजाना सिद्ध कियागया कि जो सूतक न मानने के अधिकारी आप जीतेरहिकर योगीश्वरने दर्शाये हैं सो यह अर्थ इसी हेतुसे विरुद्ध ठहिरा कि हत का अर्थ निपटमाराजानाही नहीं बल्कि ताड़ित पिटा अधमरा आदिभी होते हैं तथैव संसार में भी देखो कि बिजली की चपेटसे मारेहुये भी बहुधा जीते रहितेहैं उन्हीं का प्रयोजन यहां मुख्य है ऐसेही प्रसिद्ध है कि संग्रामसे भी जो पिटे अधमरेआदि जीते लौटतेहैं वेभी हत कहातेहैं. औरभी गऊ ब्राह्मणके उपकार में लगेहुये मात्र का चर्चा हेतु गर्भित है उसमें कुछ हतहुयेका सम्बंध नहीं है औरभी इस बात का प्रमाण देखो इक्कीसवीं पूर्वार्ध की अधिकोक्ति में (यह वचन (ब्राह्मणार्थेविपन्नानांयोयितांगोग्रहेपिच आहवेपिहतानांचएकरात्रमशौचकं) लिखचुके हैं) उसी जघे गौतम का

वचनहैं उनमें हत शब्दसे निपटमरेहुयेकाही अर्थ है पर यहाँ नहीं और उन वचनों से युद्ध में मरेहुयों का नियम सामान्य भावसे कहिचुके हैं यहाँ उसका सम्बन्ध निपट कुछ नहीं है फिर गऊ ब्राह्मण के निमित्त से संग्राम को विशेषण देनेकी अपेक्षा कहाँ रही और भी उसीजगे मनुका वचन देखौ कि संग्राम के मरेहुये का सपिण्डों को सद्यःशौच और तत्काल यज्ञ करना लिखिचुके फिर उस प्रकरणका प्रसंग यहाँ इतनी दूर दुबारा क्यों कर आसक्ता या अर्थात यह प्रकरण उससे जुदाहै इसका उस का परस्पर भी संबंधनहींहै—और बिजलीसे मरजाना आदि अकाल मृत्युका निपटारा छठी अधिकोक्ति में होचुका तहाँ देखौ किंतु यहाँ बिजली से घायलहुये जीवतेका प्रसंग है कि वह सूतक में भी स्नान करनेसे मञ्जूर है तिससे इनअग्नोक्त सब नियमों के प्रसंग में हत शब्दका अर्थही मौत न समझना—अथवा जो आधुनिक निर्णताके विचार में कुछ अंतर पायाजाय तौभी विवेक्ता लोग समायुक्त होकर दो अर्थों में जिसको चाहैं तिसको मानैं कुछ विशेष आग्रह से प्रयोजन अपने को नहीं है॥ अब इसकी अधिकोक्ति देखौ॥ २७॥

२७ अधिकोक्तिः—महीनाम धरती का पति राजा ऊपर कहागया तहाँ मही शब्दसे यद्यपि सकल पृथ्वी समझी जाती है तथापि समस्त भूगोल का एक राजा होना सम्भव नहींहै इसीलिये योगीश्वर के श्लोक में महीपतीनां यह अनेक पतियों का बहुवचन कहाहै तिससे एकएक देशके जुदे जुदे भूमण्डल निश्चित होते हैं कि जिस किसी देश के पालन में क्षत्री आदि कोई राजा अभिषेक से संयुक्त कियागया हो वही महीपति कहाता है॰ महीपतियों को सूतक नहीं लगता यह नियम केवल इसलिये है कि प्रजाकी रक्षा आदि विशेष बड़ेकाम जिनको राजाके सिवाय कोई और नहीं करसक्ता तिनका विध्वंस न होजाय तिससे यह भी तात्पर्य है कि जिस राजा को दानमान सत्कार व्यवहार दर्शन आदि जिन विशेष कामों के प्रभाव से अशौच मानने का अवकाश न हो वही राजा केवल उन्ही कामों मध्ये सूतक न माननेका अधिकारी होसक्ताहै अन्यथा पंचमहायज्ञ आदि सभी कामों मध्ये सूतक न मानना कोई नियम नहीं है॰ इसका प्रमाण भी अग्नोक्त मनुका वचन है=यथा= राज्ञोमहात्मिकेस्थाने सद्यःशौचंविधीयते प्रजानांपरिरक्षार्थं मासनंचात्रकारणम्= अर्थात—राजाको बहुत बड़े कार्य की आवश्यकता के स्थानपर सद्यःशौच कहाजाता है दृष्टान्त जैसे प्रजाओं की विशेष रक्षा के लिये इसमें आसन भी बड़ा कारण है— यहाँ आसन शब्द से कई अर्थ लिये जासक्तेहैं जैसे सूतक में आसन सिंहासन गद्दी पर

वैठेविना रक्षाके व्यवहार नहीं निर्णय होसक्तेहैं या जैसे सूतक होनेपर भी आवश्यक राजगद्दी का तिलक अभिषेकोत्सव किये विना प्रजा वर्ग में गदर खड़ा होजाना सम्भव है या जैसे राजनीति के षट्गुणों में (संधिर्नाविग्रहोयान मासनंद्वैधमाश्रयः) आसन भी एक गुण है कि शत्रुके दुर्गदेश आदि को घेरिके आसन मारि बैठे विना संप्रति प्रजा की रक्षा होनी सम्भव नहीं है उसीसमय यदि सूतक उत्पन्न हो कोंकर माना जासक्ताहै इत्यादि=यही प्रमाण गौतमनेभी कहा है=यथा=राज्ञांचकार्यविघातार्थं=अर्थात्–राजाओं को सूतक नहीं यह केवल इसलिये हैं कि बड़ेकामों का विघात न होने पावै ॥०॥यह ऊपर लिखा गया था कि जिसको राजा चाहै तिसको भी सूतक नहीं लगता है इसमें विशेष अपेक्षा मंत्री पुरोहित आदिको होती है सो तौ लिखी गई पर उनके सिवाय और भी अनेक ऐसे होतेहैं जिनके विना राजा के कामनहीं चलसक्ते हैं सो सब अगले वचनों में देखो=यथाह प्रचेताः=कारवःशिल्पिनोवैद्या दासीदासास्तथैवच राजानोराजभृत्याश्च सद्य शौचाःप्रकीर्त्तिताः=अर्थात्–प्रचेताने कहाहै कि एक तौ कारु पेशेवाले सूपकार आदि॰ और शिल्पी चित्रकार छीपी रँगरेज आदि॰और वैद्य प्रसिद्धहैं॰दास॰दासी॰राजालोग॰तथा राजाओं के भृत्य वर्ग अनेक मुसाहिब सेवक आदि॰ ये सब सद्य॰शौचा कहेहैं कि उसी समय शुद्ध हो जातेहैं ॥ ० ॥ यह बात समझनी आवश्यक ठहरी कि इन लोगोंका अशुद्ध न होना किनबातों में मानाजाय किनमेंनहीं सोकहितेहैं कि जिसजिसका जोजो मुख्यकर्म्म है जिसके नामसे प्रसिद्ध हो कि जिसका होना अन्यके द्वारा सम्भव नहीं उसी कार्म्म के मध्ये सूतक नहीं लगता–इनके दृष्टांत भी प्रत्यक्ष रेल तार डाक आदि कारखानों से समझने इसी लिये अग्रोक्त विष्णु का वचन है=यथा=नराज्ञांराजकर्मणिनव्रतिनांव्रतेनसत्रिणांसत्रेनकारूणांकारुकर्मणि=अर्थात्–राजाओं को मुख्य राजकर्म्म के मध्ये सूतक नहीं है॰चांद्रायण आदि व्रतवालों को अपने व्रतके मध्ये नहीं है॰ सत्र यज्ञ कर्त्ताओं को सत्र में सूतक नहीं॰ कारीगर आदि को अपने मुख्य कामों में सूतक नहीं–जब यह नियत विषय ठहिरा तौ यह भी तात्पर्यहै कि नियतकामोंके सिवाय अन्यत्र सूतक इनको भी होताहै दृष्टांत जैसे चिकित्सक चिकित्सा कर्म करने के स्थलपर छूनेयोग्य शुद्ध ठहरैगा अन्यत्र अपने घरमें वह भी अशुद्ध है=यही भाव शातातप ने दर्शायाहै=यथा=मूल्यकर्मकराःशूद्रादासीदासस्तथैवच स्नानेशरीरसंस्कारेगृहकर्मण्य दूषिताः=अर्थात्—मजूरीसे कामकरने वाले शूद्र और दास दासी ये विराने घरके कामों में अपने स्नान मध्ये और शरीरके शुद्धिरूप संस्कारों मध्ये अदू-

यित हैं इनसे काम करानेमें दोषनहीं·विज्ञानेश्वर कहतेहैं कि इन दासादिकोंकीशुद्धि अशुद्धि मध्ये विशेष उपाय कोई नहीं है कि इनको छूनेसे कोई वचिसके क्योंकि बहुधा गृहस्थों के काम धन्धे इनकेविना होभीनहींसक्तेहैं तिससे जिनकामोंसेंछूनका बचाउ निपट न होसक्ता हो उन्ही में शुद्ध समझना सर्वत्र नहीं=इसी आशयपरीक्षी स्मृति का यह वचन है=यथा=सद्य स्पृश्योगर्भदासो भक्तदासस्त्र्यहाच्छुचिः--तथा--चिकित्सकोयत्कुरुतेतदन्येननशक्यतेतस्माचिकित्सकःस्पर्शेशुद्धोभवतिनित्यशः=अर्थात्-गर्भदास गृहजात नामक जो घरकी दासीके उदरसे उत्पन्नहो· तिसको किसी कालमें जब सूतक लगाहो तो वह शीघ्रही छूनेयोग्यहै क्योंकि वह भी घरू मनुष्योंके अनुरूप है उसके छूने विना बहुतेरे कामोंकी हानिहोगी.परन्तु भक्तदास जोअन्नमात्रपाने के स्वीकारसे दासहोताहै वह तीनदिनमें शुद्धहोय (यहाँसद्यःशौचकेप्रसंगमें तीनदिन का कोई सिद्धांत विशेष नहीं पायाजाता है या यह प्रतीकही असंगत हो विवेकी पुरुष आपही समझें) तथा--यह दूसरा वचन पूर्वोक्त दृष्टांत में प्रमाणिकहै कि वैद्य जिस चिकित्सा रूपी कामको करता है वह और किसीसे नहींकिया जासक्ता तिससे वैद्य अपने कामके स्थलपर छूनेमें हमेशा शुद्ध माना जाता है ॥ २७ ॥

(अन्येपिसद्यःशौचाःपुरुषविशेषाः कर्म्मस्थलानिचसद्यःशुचीनि)

ऋत्विजांदीक्षितानांचयज्ञियंकर्मकुर्वताम्। सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदांतथा २८

दानेविवाहेयज्ञेचसंग्रामेदेशविप्लवे । आपद्यपिहिकष्टायांसद्यःशौचंविधीयते २९

अक्षरार्थः--यज्ञीय कर्म्म करतेहुये ऋत्विजों तथा दीक्षितों को और सत्री·व्रती· ब्रह्मचारी·दाता·ब्रह्मवेत्ता· २८इनकोभी सद्यःशौच कहा जाताहै और दान में·विवाह में·यज्ञमें·संग्राममें·देशविप्लवहोनेमें·कष्टात्मिकआपत्तिमेंभीसद्यःशौचहोताहै२८।२९

अभिप्रायः--ऋत्विज वे कि जो किसी यज्ञमें वरण किये गये हों·दीक्षित वे कि जो यज्ञ आदि किसी प्रकार की दीक्षासे संस्कारसे संयुक्त होरहे हों·और भी (यज्ञियंकर्म्मकुर्वतां) जो कोई पुरुष यज्ञ संबन्धी कार्य में ऐसे लगे हों कि जिनके विना वह काम किसी और से होना संभव न हो तिनको भी समझलेना·सत्री जो सत्र नाम यज्ञमें लगाहो अर्थात् निरंतर प्रयोग की रीतिसे अन्नदान करने में प्रवृत्तहो चाहै निज अपनी ओरसे या किसी सत्रकर्त्ता स्वामी ने नियुक्त कियाहो तौभी उसकोसत्री समझना जैसा भण्डारा करानेवाला स्वामी और उसी भण्डारे का अधिकर्त्ता· व्रती उनको समझना जो कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रतों में प्रवृत्तहों या स्नातक व्रत वालों के निमित्तजोप्रायश्चित्त होतेहैं तिनमेंलगेहों ऐसेही चातुर्मास्य आदि अनेकमहाव्रतों

में लगेहों सो व्रती कहातेहैं·ब्रह्मचारी नैष्ठिक जो विवाह न करे और सदा ब्रह्मचर्यहीमें रहिताहो सो और दूसरा ब्रह्मचारी उपकुर्वाण जो उपनयनसे पश्चात् किसी नियमित अवधिके लिये ब्रह्मचर्य धारण करे और वह भी कि जो विद्या संग्रहके निमित्त किसी गृहस्थपाठशाला में नियमों से नियुक्तहो समझना·दाता वह कि जो हमेशा देतारहता तथा औरोंसे दिलवाता हो पर आप किसी से प्रतिग्रह न लेताहो ऐसे वैखानस वानप्रस्थ आदि बहुत होतेहैं·ब्रह्मवेत्ता यती संन्यासी परिव्राजक कहातेहैं और वेभी कि जो वेदांत आदि शास्त्रोंके आराधन में अहर्निश तत्पर किन्तु पठन पाठन आदिमें रंगे रहितेहों या पारायण आदि प्रयोग में लगेहों समझने (नैष्ठिकब्रह्मचारी दाता वैखानस ब्रह्मवेत्ता यती ये तीनों सदाही सर्वत्र शुद्धहोतेहैं किसीविशेष कार्यके स्थल पर. कि जैसा वैद्यको चिकित्साके स्थलहीपर शुद्ध कहा तैसी इनकेलिये विशेषता नहीं कही जासक्तीहै २८ ॥ आगे उनतिस श्लोकसे जो दान विवाह यज्ञआदि को सूतक नहींलगता कहा तिनके निर्णय इसी अधिकोक्ति में देखना और थोड़ासा निर्णय पहिले सत्रहवींअधिकोक्तिमेंलिखचुके तहांभी बृहस्पति आदिकेवचन देखो ॥२९॥

२९अधिकोक्तिः—दान में जो सद्यः शौच होजाना कहा सो केवल उसी द्रव्यकी अपेक्षा में समझना जो पहिले से संकल्प कियाहुआ देतेचले आतेहों जैसाएक सदावर्त अन्नपर्वत भण्डारा आदि प्रसिद्ध हैं इसीका प्रमाण भी अग्रोक्त स्मृतुस्मरणवाक्य है सोदेखो=पूर्वसंकल्पितंद्रव्यंदीयमानंनदुष्यति=अर्थात्–पहिला संकल्प कियाद्रव्य जोदेरहेहों तिसको दोषनहींलगता=और भी इसीसध्ये स्मृत्यंतर वचनसे विशेषताहै= यथा=विवाहोत्सवयज्ञादिष्वंतरामृतसूतके शेषमन्नंपरैर्देयंदातृन्भोक्तृंश्चनस्पृशेत= अर्थात्—विवाह में·बड़े उत्सवों में·यज्ञों में (कि जो जो प्रथम से प्रारंभ हो चुकेहों तिनकी अंत्यावधि पूरी होनेकेबीचमें) यदि कोई मरजाय या जन्मे तौ उससूतकमेंभी जो पहिले नवे कामों का बचाहुआ अन्न हो तिसमें सूतकियों का स्पर्श बचा कर गैर लोगोंके हाथसे दिलाना चाहिये पर मुख्य दाता मालिक और भोजन करनेवाले भी कि जोजो सूतकीहुयेहों तिनका स्पर्श न करें=यही प्रमाण अगिले वाक्यसे मिलता है=तथा स्मृत्यंतरं=यज्ञेसंभृतसंभारेविवाहेश्राद्धकर्मणि इत्यत्र सद्यःशौचंप्रकर्तव्यं= अर्थात्—सचय होचुकेहैं संभार सामग्री जिसके ऐसे प्रारंभ कियेहुये किसी यज्ञ या विवाह या श्राद्ध कर्म्म वृषोत्सर्ग आदि में सूतक उत्पन्न होजाने पर भी सद्यः शौच कियाजाता है यहपहिले वचनमें आचुका सोई समझलेना—इनवचनों में विवाहके उपलक्षण मात्रसे और भी बड़ेबड़े संस्कार यज्ञोपवीत मुण्डन आदि समझलेने कि जो

सूतकउत्पन्न होनेसे पहिले प्रारम्भ होचुके जिनके बीचमें सूतक होजाय तो उनमें भी सद्यःशौच माना जायगा—और भी इन वचनों में यज्ञ शब्दके उपल क्षणमें किसी देवताकी प्रतिष्ठा या बागीचेकी प्रतिष्ठा या कोई बड़ा उत्सव उद्यापनआदि बड़ेबड़े सब काम समुझिलेने जो पहिलेसेआरंभ होचुके हों सो सूतक आपरने से रुकि नहीं सकते किंतु सूतकमें नवीन आरंभ नहीं कियाजाता यह तात्पर्य ठीक है—इसका भी नियम अगिले वचनसे मिलताहै=तथाह विष्णुः=नदेवप्रतिष्ठोत्सर्गविवाहेषु नदेशविभ्रमे नापद्यपिचकष्टायामाशौचं=अर्थात्—विष्णु ऋषि कहिते हैं कि न तो देव प्रतिष्ठा में सूतक लगता है न उत्सर्ग व्रतोद्यापन आदि में न विवाह में न देश की भगेहरि होनेमें न कष्टरूपी आपत्ति में सूतक है॥ योगीश्वर ने मूलश्लोक में संग्राम के समय भी सद्यःशौच होना कहा उसके अनेक तात्पर्य हैं तिनमें एक यह भी है कि जैसा आश्वलायन आदि ऋषियों ने युद्धको सजिकर सेना चलती होनेसमय प्रारब्धनिक शांतिरूपी होम जप यज्ञ करने कहेहैं तिनका भी करना सूतक आपरने से रुकता नहीं इसी प्रकार संग्राम के और भी कोई काम नहीं रुकते और यह तात्पर्य तो प्रत्यक्ष है कि युद्ध करते समय जो किसीको सूतक आपरै तब उसके हेतुसे आवश्यक युद्ध रोका नहीं जाता इसीलिये सद्यः शौच होजाना कहागया॥ मूलश्लोक में देशविप्लवके समय भी सूतक नहीं लगता कहा था-देशविप्लव गदर का नाम है जो अपने राजमें उठिखड़ाहो या दूसरा राजा चढ़ि आनेसे लूटिमार होरही हो और जो विस्फोटक महामारी आदि देशमें अत्यंत भयानक रूपसे फैले हों तो भी देशविप्लव कहाजाता है इनकी शांतिके उपाय करने योग्य कामोंको सूतक नहींलगता है तिससे ऐसे कामों में सूतकीलोग भी प्रवृत्त होने कहे हैं इसी लिये सद्यःशौच कहाते हैं॥ देशविप्लव के विना भी तीर्थ आदि बिरले स्थलों पर मौजूद होनेवालेको सूतक नहीं सताता है यह अगिले वचनमें देखो = तदाह पैठीनसिः = विवाहदुर्गयज्ञेषुयात्रायांतीर्थकर्मणि नतत्रसूतकंतद्वत्कर्म यज्ञादिकारयेत = अर्थात्—विवाह के स्थलपर जो किसी बराती ने अपने को सूतक लगा सुनि पाया हो यद्वा उसी बरात का बराती कोई मरजाय या दोनों समधीयों में से किसीके घर तात्कालिक मौत होजाय तौभी फेरे परने नहीं रुकि सकते हैं न किसी को उस जगेपर उस भांति का सूतक है कि जैसा कोरी दशामें होताहो॰एवं दुर्गस्थान राजभवनमें जेकोई अधिकारी कार्यकर्त्ता आदि आवश्यक राजकाजों में लगेहों तिनको सूतक आपरने से भी उस जगेपर कि जब तक वह ज़रूरी कार्य पूराहोय नहीं लगिसकता है॰एवं यज्ञ होतेहुये

उस स्थलमें यदि कोई सरजाय या सूतक सुनिपावें तो उसजघे उसको सूतक नहीं लगता है न यज्ञका पूरा करना रुकि सकता है॰एवं यदि कोई लंबी यात्रामें प्रवृत्तहो तिसको सूतक सुनि पाने या पासही मौत होजाने से भी मार्ग में वैसा सूतक नहीं लगता है कि जैसा घरपर होताहो इसी हेतु पांथ भी सद्य:शौच कहाते हैं॰ एवं तीर्थ कर्म परिक्रमा स्नान दान श्राद्ध आदि जो जो कुछ होतेहैं तिनके करनेवाले तीर्थयात्रियों को उसजघेपर वैसा सूतक नहीं लगताहै कि जैसा घरपर होता तिससे यात्री अपने यज्ञादि कर्मोंको न रोकें चाहे सूतक सुनिपाया यद्वासाथही मौतहुई हो सद्यः शौच करिके तीर्थ संबन्धी यज्ञ करावें॥ कष्टदशा की आपत्तिमें भी सद्य शौच कहा या उसका यह तात्पर्य है कि जब कोई असाध्य महा व्याधिसे पीड़ित होकर मरने की दशापर उपस्थित हो संकट दूर करने के निमित्त से कुछ तुला आदि महा दान करने को समुद्यत हुआ उसी अवसरमें यदि सूतक भी आपरे तो वह सद्य शौच होकर दानकार्य को करसक्ता है न उसमें दान देनेवाले को विचार है न लेनेवालेको॥ परंतु ऐसा दान लेने वालेका यह विचार है कि जिसकी जीविका वृत्ति न चलतीहो लाचार होकर माता पिता स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बके भरण हेतु कुटुंब छोड़ि विदेशभ्रमण करना पड़ाहो तो इस प्रतिग्रहके लेनेसे भी सद्यः शुद्ध कहाता है॥ तथापि यह सद्यः शुद्धि उसके लिये समुझनी जिसको सद्यः शौच किये बिना पीड़ा न मिटि सकती हो कि जिसके घर दूसरे दिनके योग्य भी अन्नका सचय नहीं रहिताहो किंतु जिस के घर एक दिन खाने योग्य अन्नधन संचित रहा करता हो तिसके लिये एक दिन रातिका सूतक ऐसे प्रतिग्रह के लेनेसे होताहै एवं जिसके घर तीनदिन खानेयोग्य अन्नधनका संचय रहिताहो तिसको ऐसे प्रतिग्रहसे तीन दिनका सूतक समुझिलेना एवं जिसके चार दिन खाने योग्य अन्न धन संचित रहा करता हो सो कुम्भी धान्य कहाता है कि कुंभमात्र नाजवाला (या वर्ष मात्र के निर्वाह योग्य रहिता हो तौभी कुंभीधान्य कहाता है) परन्च विज्ञानेश्वरने इस व्यवस्थामें चारही दिन का नियम रक्खाहै तिसके लिये चारदिनका सूतक होताहै इससे आगे तीनवर्षके निर्वाहयोग्य या तीनसे भी अधिक नाजवाला ब्राह्मण कुशूल धान्य कहाताहै कि खत्ती कुठारी भर नाजवाला तिसके लिये पूरे दशदिनका सूतक उसी प्रतिग्रह के लेनेसे होता है यह समुझि लेना॥ इसीलिये मनुने अग्रोक्त नियम कियाहै = यथा = कुशूलधान्य कोवास्यात्कुंभीधान्यकएववा त्र्यहैहिकोवापिभवेदश्वस्तनिकएववा (इत्येवंचतुर्विधब्राह्मणगृहस्था भिप्रायेणैवसस्वाहाय्यें) दशाहंशावमाशौचंसपिण्डेषुविधीयते

अर्वाक्संचयनादस्थ्नांत्र्यहमेकाहमेववा = अर्थात्—ब्राह्मण कुसूल धान्यक हो या कुंभीधान्यकहो या त्र्यहैहिक तीनदिनके निर्वाह योग्य अन्नवाला हो या अश्वस्तनिक जो उसी दिन कमाकर खालेता हो दूसरे दिनके योग्य संचय न करसके (ऐसेचारविध गृहस्थी ब्राह्मण के अभिप्रायसे ही उन्हीं मनुने अगिला नियमकहा है कि) सपिंडों में मरण का सूतक दश दिन होताहै या अस्थि संचय कर्म से पहिले जितनेदिन होतेहों तभी तक सूतक या तीनदिन सूतक यासकदिन सूतक–इन्हीं चार प्रकारों को अनन्तरोक्त चारों गृहस्थों के निमित्तयथाक्रमसे समुझिलेना किंतु ये संकोच वाले छोटे आशौच कुछ सबके लिये नहींमानेजासकते हैं=औरभी स्मृत्यंतर में समानोदकों के निमित्त भी छोटे नियम के अशौच लिखे देखे हैं कि पक्षिणी राति के बारह प्रहर· एक दिन के आठ पहर· सद्यःशौच जो तत्काल·शुद्ध हो जाय–परंतु सोचनाचाहिये कि जब समानोदकता के निमित्तपर लिखे गये तो ये नियम जीविका के संकोच मध्ये नहीं जोड़े जासकते हैं–और वहभी कि जोजो नियम अभी ऊपर लिख चुके सो उन्हीं ब्राह्मणों के निमित्त मेंसमझने कि जिनकी प्रतिग्रह लेने बिना या भिक्षा आदि किसी और वृत्तके साधे बिना पीडा नहीं मिट सकती हो किंतु ऐसी, पीडा से रहित ब्राह्मणों को भी आशौच का संकोच करना योग्य नहीं है फिर अन्य वर्णों की क्या कथा ॥ ० ॥ तर्कविवादः—अब यहां से आगे एक तर्कना रूपी शंका से विवाद है तिसकी व्यवस्था नैयायिक परिपाटी के अनुसार खंडन मण्डन से वर्णन करी जायगी=यथा=ननु · एकाहाद्ब्राह्मणःशुद्ध्येद्योग्निवेदसमन्वितः त्र्यहात्केवलवेदस्तु विहीनोदशभिर्दिनै रित्यादिस्मृत्यंतरवचनपर्यालोचनयाऽध्ययनज्ञानानुष्ठानयोगिना मेकाहादिनाशुद्धिरित्येवंकस्मान्नेष्यते-उच्यते-दशाहंशावमाशौचंसपिंडेषुविधीयते · इतिसामान्यप्राप्तदशाहवाधपुरस्सर मेवह्येकाहाद्ब्राह्मणःशुध्येदितिविधायकंभवति=अर्थात् वादी तर्क उठाता है कि (ननु) क्यों जी अन्य स्मृतियोंमें ऐसे वचन भी उपस्थित हैं कि ब्राह्मण एकही दिन सूतक मना के शुद्ध होजाय जो अग्निहोत्र और वेदाध्ययन से संयुक्त हो· जो केवल वेदही से युक्त हो सो तीन दिन से शुद्ध होय· जो दोनोंसे विहीन हो सो दश दिनों से शुद्ध होय· इत्यादि अनेक वचनों की पर्यालोचना करने से अध्ययन ज्ञान अनुष्ठानों के संयोग वालों को एकही दिन आदिसे शुद्धिपाई जातीहै इसलिये ऐसाही नियम क्योंनहीं माना जाता है—उत्तर कहियतहै कि—सपिंडोंमें मरनेका आशौच दशदिन कहा जाताहै · यह एकाही नियम जो सामान्य भावसे सबके लिये पाया जाताहै तिसके

(बाधपुरस्सर) रोक टोक पूर्व कही वह वचन सिद्ध नहीं होता कि ब्राह्मण एकही दिनसे शुद्ध होजाय इत्यादि· क्योंकि इसमें यह कारण है-कि-बाधकस्यचानुपपत्ति निबंधनत्वात्तयाबत्यबाधितेऽनुपपत्तिप्रशमोनभवतितावद्बाधनीयं = अर्थात्—वह वचन जो इसका रोकने वाला बाधक तथा आप अबाधित ठहरा तिसके भी(अनुपपत्ति निबंधनत्व से) अयुक्त होनेके हेतु से जबताईं उसी (अबाधित में) बिनारोकेहुये में उसकी असत्य रूपी शंका का नाश नहीं होता तबतक वह आपही (बाधनीय) रोकने योग्य ठहरता है कि जबतक अपनी सचावट का प्रमाण न देखै—अथवा-यहभी अर्थ होताहै कि वह वचन जो बाधित किया गया रोका टोका गया तिसके लिये (यावत्यबाधिते) जितना अबाधित में दूसरे की अनुपपत्ति का नाश नहीं समाता उतनाही वह बाधनीय होताहै उससे अधिक नही—अतःकियदनेन बाध्यंइत्यपेक्षायां अपेक्षितविशेष समर्पणक्षमस्यअग्निवेदसमन्वित इतिवाक्यशेषस्यदर्शनादग्निवेद विषयेऽग्निहोत्रादि कर्मणि स्वाध्यायेचव्यवतिष्ठते नपुनर्दानादावपिएवंचाग्निवेदपदयोःकार्यान्वयित्वंभवति· इतरथायेनाग्निवेदसाध्यंकर्मकृतंतस्यैकाहाच्छुद्धिरितिपुरुषविशेषोपलक्षणत्वमेवस्यात्‌ नचैतद्युक्तं =अर्थात्—इस कारण से आगेजो यह समझा चाहो कि कितना इस करके वह बाध्य होसकता है तो इस अपेक्षा में अपेक्षित पदार्थ का देसकने वाला जो उस वचन में (अग्निवेदसमन्वितः) यहवाक्य शेष रहा तिसके विचारने से यह प्रतीत हुआ कि अग्निहोत्र आदि कर्म और वेदाध्ययन में वह वस्तु उपस्थित है कि इतनाही बाध्यसंबंध है किंतु दानादिकोंमें संबंध उसका नहीं और जब यही निश्चित होगया तो उन अग्नि और वेद दोनों पदों का कार्यान्वयित्व खड़ा होता है कि इन्ही दो कामोंवालेका वह नियमहै तिसके स्वीकार में अन्य प्रकार से भी दूषण आताहै कि जिसने अग्नि और वेदवाला कर्मकिया तिसकी एक दिनसे शुद्धिहोथी यह किसी बिरले पुरुष विशेष का उपलक्षणत्व माना जाय सो भी ठीक नहींहै तिसका हेतु आगेकहेंगे—एवंचसति (प्रत्यूहेन्नाग्निषुक्रियाः) (वैतानोपासनाःकार्याःक्रियाश्चश्रुतिनोदिताः)तथाब्राह्मणस्यस्वाध्यायादिनिवृत्त्यर्थंसद्यःशौच मित्येवमादिभिर्मन्वादिवचनैरेकवाक्यताभवति ततः उभयत्रदशाहादिनिकृत्स्यान्नंनभुज्यते इतिदशाहपर्यंतंभोजनादिकं प्रतिषेधयन्निर्यमादिवचनैर्विरोधोपिसिद्ध्यति=अर्थात्—ऐसा होनेमें भी कोई विशेषता न ठहरी क्योंकि अग्नोक्त वचन जो पहिले सब लिख चुकेहैं कि अग्नियों में जो क्रियायें होती हैं तिनको नहीं रोके) वैतानिक उपासना वाली क्रियायें भी वेदोक्त करनी चाहिये) तथा

ब्राह्मण को अपना पाठ आदि निवृत्त होने के हेतुसे सद्याशौच होना ये मन्वादिकों के ऐसे वचनों से एक वाक्यता भी होती है कि जो तात्पर्य इन वचनों का वही उसका होगा तिससे उपरान्त यह वचन भी सत्रहवीं अधिकोक्ति में आचुकाहै कि दोनों मृतकों में सूतकी कुलका अन्न दश दिन नहीं भोजन करते हैं इसतरह दशदिन पर्यंत भोजनादि का निषेध करते हुये यमादिकों के वचनों से अविरोध भी सिद्धहोताहै॥ इसी कारण से यह सिद्धांत समुझि लेना कि आशौच का संकोच विधानजो कुछ कहा गया कि ऐसे थोड़े काल से भी शुद्धि हो सकती है सो वह संकोच किसी विरले स्थलमें विरले पुरुष की अपेक्षा सिद्ध होता है सब लोगोंको सामान्य उसका वर्त्ताव करना व्यवहारिक नहींहै तिससे इसी तर्क विवाद के विस्तार द्वारा संकोच का निवारण करना दर्शाया गया कि जहाँतक होसके सूतकों के संकोच पर अधिक दृष्टि न देनी चाहिये बल्कि यह वेदस्वाध्याय संबंधी सद्यःशौच विधान जो कहा गया सो बहुत वेदके पाठाभ्यास वालेको जहाँ उसके त्यागने रोकने से क्लेश प्रतीत होताहै। तहाँ समुझना सर्वत्रनहीं क्योंकि और सब सामान्यके लिये सत्रहवीं अधिकोक्तिमें लिख चुके हुये यथोक्त वचनसें स्वाध्यायका भी रोकना कहागया है (दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्त्तते) अर्थात् सामान्य मर्यादा यहीहै किहोम दान प्रतिग्रह स्वाध्याय इनको सूतकमें न जारी रक्खे—एवं बाईसवें मूल श्लोक सेया उससे पहिले पीछे ब्राह्मण आदि वर्णोंको जिसका जितना सूतक लिखागया सो सब उतने दिनोंके अनंतर स्नान करके शुद्ध होते हैं किंतु उसकालका अति क्रम करने मात्रसे नहीं शुद्ध होतेहैं=यथाह मनुः=विप्रःशुद्ध्यत्यपःस्पृष्ट्वा क्षत्रियोवाहनायुधम् वैश्यःप्रतोदंरश्मीन्वायष्टिंशूद्रःकृतक्रियः=अर्थात्—दशदिन आदि स्ववर्णोचित अवधि तक यथोक्त क्रियाएँकियाहुआ ब्राह्मण जलस्पर्शकरके शुद्ध होताहै(यहाँजलस्पर्श कहिनेसे स्नानया आचमन न समुझना किन्तुकोई क्रिया विशेष होगी जो प्रेत कर्म संहिता से मालूम होसक्तीहै)एवंक्षत्री सर्वक्रिया कर्मकिये पीछेसवारी औरशस्त्रों का स्पर्श करनेसे शुद्ध जानाजाताहै यहभी कोई क्रिया विशेषहै एवं वैश्यभी सर्वक्रियाएँकियाहुआ पीछेसे आर पैनाचाबुक और बागडोरि नाथ आदि को स्पर्शरूपी क्रिया विशेष करके शुद्ध समझाजाता है एवंशूद्र लाठीका स्पर्श करके शुद्ध होताहै यहाँतक दोनों श्लोक की अधिकोक्ति पूरी हुई॥२८॥२९॥ यहाँ तक कुलव्यापिनी अशुद्धिके प्रायश्चित्त पूरे हुये कि जिनसे एकसाथ अनेक शुद्ध होतेहैं इसके आगे प्रत्येक पुरुष व्यापिनी शुद्धि कही जायगी कि जहाँकोई किसीके स्पर्श प्रसंगसे अशुद्ध समझागयाहो॥ २८२९॥

सूतकांविनाप्यशुचिस्पर्शदोषकथने चतुर्थःपरिच्छेदः ४

इस परिच्छेद में उस भांतिके प्रायश्चित्त कहेजायँगे कि जो अनेक अशुद्धोंका स्पर्शकरैं तिनकी शुद्धिहोसकै इनबातोंसे हरवक्तज़रूरत रहतीहै ॥

(स्पर्शाघशुद्धिशोधनप्रकारः)

उदक्याऽशुचिभिः स्नायात्संस्पृष्टस्तैरुपस्पृशेत्। अब्लिंगानिजपेच्चैवगायत्रींमनसासकृत्३०॥

अक्षरार्थः—उदक्या. अशुचिमात्र इनसे संस्पृष्टहुआ स्नान करै तिनसे छुआ उपस्पर्श न करै अब्लिंगोंको जपै गायत्री को भी एकवार मनसे जपै ॥ ३० ॥

अभिप्रायः—उदक्या रजस्वला अशुचिमात्र जो जो बहुत अशुद्ध होते हों जैसे मुर्दा चाण्डाल पतित सूतिका आदि अनेक समुझने और पूर्वोक्त मुर्दाके सूतकी भी समुझने इनमें किसीका स्पर्श जिसको होजाय सोस्नान करके शुद्ध होय—कदाचित् स्नान जिसने नहीं किया ऐसे छुयेहुयों को यदि कोई छुइजाय तिसको स्नान की अपेक्षा यद्यपि नहीं है परन्तु उपस्पर्शन अर्थात् आचमन करै और अब्लिंग अर्थात् आपोहिष्ठा आदि संध्या विधान में लिखेहुये मंत्रवाक्य तीनवार जपै और गायत्री भी एक वार मनसे जपै (स्नान किये विना इतना कर्तव्यभी हाथपैर धोके मुख मंजन करके करना होगा यह समझ लेना और भी इसविधि में शूद्रका पूरा अधिकार नहीं है क्योंकि सध्याकेमंत्र और गायत्री जपनेकी आज्ञा लिखी तिससे तीन वर्णोंका धर्म दर्शाया है विशेषकर ब्राह्मणका—अन्यथा जिसको उक्त मंत्रोंका बोध न हो तिसको उसी आचमन के अर्थ से मुखमंजनऔर हाथ पैर धोना आदि आवश्यक है॥ ३० ॥

३०अधिकोक्तिः—व्याकरण काव्यकी रीतिसे एक शंकाहै कि मूल श्लोक में (उदक्यादिसंस्पृष्ट स्नायात्) इस एकवचनसे निर्देश किये हुये को (तैः) इस बहुवचन में कैसे परामर्श किया जाय—उत्तर समाधान—यह शंका यद्यपि ठीक है तथापि हेतु गर्भित आशय ढूंढने से विरोध नहीं है क्योंकि उदक्या और अशुचियों से छुयेहुये से उपरान्त भी अनेक ऐसे हैं कि जिनको स्नान करना चाहिये तिनको

यदि स्नान किये विना स्पर्श होजाय तौभी आचमन विधि जो ऊपर लिखी सो कर्त्त-व्यहोती है तिनके नाम चिह्न अगिले वाक्य से देखो किन्तु उन्हीं के हेतु गर्भित आशयसे (तैःस्पृष्टःउपस्पृशेत्) उनसे छुआ हुआ आचमनकरै यह वहु वचन भी परामर्श होता है विरोध नहीं = तदाह पाराशरः = दुःस्वप्नेमैथुनेवांते विरिक्तेक्षुर कर्मणि चितियूपश्मशानास्थ्नांस्पर्शनेस्नानमाचरेत् = तथाचमनुः=वांतोविरिक्तःस्नात्वातु घृतप्राशनमाचरेत् आचामेदेवभुक्त्वान्नं स्नानंमैथुनिनःस्मृतम्=अर्थात्–खोटा स्वप्न होनेमें या बुरी तरह सोनेमें· मैथुन करने में· वमन करने में · दस्त लगेहोनेमें · वार वनवाने में·चिता के छूनेमें · यूपनाम पशुहिंसा के स्थानमें गड़े हुये स्तम्भ को छूनेमें· श्मशान भूमिपर होआनेमें·हाड़ोंके छूनेमें·स्नान करै तब शुद्धहोय = ऐसाही मनुने कहाहै कि = वमन किया हुआ पुरुष·विरेचन जुलाव किया हुआ पुरुष· स्नान करिके घी चाटै तब शुद्ध होय·और अन्न भोजन करिके आचमन कुल्लामात्रही करै तब शुद्ध होय·परंतु मैथुन वालेको स्नान करना चाहिये यह कहाहै = परंतु यह स्नान उस मैथुन का साथमें समुझना जो स्त्री के ऋतुकाल होने बाद किया गयाहो· अन्यथा ऋतुकालके न होने में जो मैथुन किया जाता है तिसकी शुद्धिस्नान किये विना भी होसकती है =तदाह वृहस्पतिः=अनृतौतुयदागच्छेच्छौचंमूत्रपुरीषवत्= अ-र्थात्–ऋतुकाल के अभाव में जो स्त्री से संभोग करै तौ गृह मूत प्रक्षालन करने की रीतिसेही शौच करिके शुद्धमाना जासक्ता है=तथापि विरले कुसमयपर मैथुनकरनेसे ऋतुकाल के विना भी स्नान करना कहा है=तथा स्मृत्यंतर वचनं=अष्टम्यांचचतुर्दश्यांदिवापर्वणिमैथुनंकृत्वासचैलंस्नात्वाचवारुणीभिश्चमार्जयेत्=अर्थात्–अष्टमी चौदस की रातिमें या दिनमें चाहैं कोई भी तिथिहो तौभी या पर्व की रातिमें भी जो मैथुन करै यद्यपि स्त्री का ऋतुकाल शुद्धहो तौभी पुरुष अपने वस्त्र धोकर स्नान करै और पहिले अशुचि अंगोंको वारुणी नाम दूर्वा या कुश कांश आदि घासों से रगड के शोधि लेवै (यद्यपि ऐसा अर्थ भी सुगमतासे होताहै कि वारुणी जो अनेक भांतिकी मदिरा हैं तिनसे धोवैं परंतु इसका कोई सिद्धांत रूपी प्रयोजन ठीक नहीं मिलता यदा ऐसा अर्थ मानाजाय कि वारुणी जो इंद्रवारुणी इन्द्रायन घुसिला इन जंगली वेलि के अत्यन्त कड़वे फल होते हैं तिनसे धोवै तौ यह निपट असंगत है तिससे दूर्वा आदि वाला अर्थ ठीक मानागया कि उसका जूना वनाकार शरीर को रगड़े तब स्नान करै—यद्यपि कोई यह तर्कना उठावै कि (विषस्यविषमौषधं) जैसा वैद्यक शास्त्र के मतमें विषही से विष दूरकिया जाता है तैसा उसी

न्याय से अशुद्धि को अशुद्ध वस्तुसे हटाना किंतु मदिरा से ही धोकर शुद्ध माना जाय-तिसका उत्तर यह दृष्टांतभी प्रसिद्धहै कि कीचसे कीच नहीं धोईजासकती है= यमस्मृति में और भी स्नान का विधान है= यथाह यमः = अजीर्णेभ्युदितेवांतेतथा प्यस्तमितेरवौ दुःस्वप्नेदुर्जनस्पर्शेस्नानमात्रंविधीयते=तथा वृहस्पतिः=मैथुनेकटधूमेच सद्यःस्नानंविधीयते=अर्थात्—यमने यह कहाकि जिसको अन्नादि का अजीर्ण होकर उलटा गले कंठतक अभ्युदित हो आया हो या जिसने वांति करी हो या जिसने सूर्य के अस्त होते समय बुरा स्वप्ना देखाहो या जिसने दुर्जन चंडाल मलीनआदि का स्पर्श कियाहोसो स्नान मात्र करिके शुद्धहोताहै=तैसा वृहस्पतिने भी कहाकि= मैथुन करके या कटधूम नाम मुर्दा फुंकती चिता के धूएँको सूंघि वा देही में स्पर्श करके शीघ्रही स्नान करना चाहिये विलंब न होने देवै यह विशेषता जानों—यहाँ कटधूम के उपलक्षण में उस धूएँको भी समुझ लेना जो मलीन घूरा फुंकता हो या मलीन कूराकर्कट से पजावा आदि फुंकता हो—यह लिखाहुआ स्नानमात्र उसके लिये समझना जिसके वस्त्र बचिकर किसी अंगमात्र में स्पर्श हुआ हो किन्तु वस्त्रों को स्पर्श होने में सचैल स्नान करना चाहिये=तथा चाहच्यवनः=श्वानंश्वपाकंप्रेत धूमंदेवद्रव्योपजीविनंग्रामयाजिनंसोमविक्रयिणंयूपंचितिंचितिकाष्ठंमद्यंमद्यभांडंसस्ने हंमानुषास्थिशवस्पृष्टंरजस्वलांमहापातकिनंशवंस्पृष्ट्वासचैलमंभोऽवगाह्योत्तीर्याग्निमु पस्पृश्यगायत्रीमष्टवारंजपेत् घृतंप्राश्यपुनःस्नात्वात्रिराचामेत्. एतच्चबुद्धिपूर्वविषयं= अर्थात्—च्यवन मुनि कहते हैं कि कुत्तेको छुइकर या कुत्ता सारखानेवाले चंडाल को या प्रेतके धुएँको या देवता के निमित्तका द्रव्य चढ़ावाआदि से उपजीवन करने वालेको या ग्रामयाजीको या सोमविक्रयी को या यूपनाम पशु हिंसाके स्थान वा खंभको या चिताको या चिता की लकडी डेंगरी को या मदिरा या मदिरा के बासनको या गीलाहाड मनुष्यका या मुर्दाकीस्पर्शकरी किसीचीजको या रजस्वलाको या महापातकीको या मुर्देको छुइकर वस्त्रों सहित जलमें गोतालगाके वहांसे निकसिके अग्निमें शरीरको तपाइ के आठवार गायत्री जपै फिर घीचाटिके दुवारा स्नान करिके तीनवार आचमन करै तब शुद्धहोय सो यह प्रायश्चित्त उसका है कि जिसने जानि बूझिकर इच्छा पूर्व उनको छुआ हो=अन्यथा=विनाजाने धोखा में छुइजाने का प्रायश्चित्तस्नानमात्र आगेदेखो=तदाह वृहस्पतिः=शवस्पृष्टंदिवाकीर्तिंचितिंयूपंर जस्वलांमस्पृष्ट्वात्वकामतोविप्रःस्नानंकृत्वाविशुद्ध्यति=अर्थात्—मुर्दाकी छुईचढाकोई वस्तु या दिवाकीर्तिनाम नाईको या चिताको या यूपको या रजस्वलाको या उनको

विना धुला लेना होताहै इसमें भी कुछ विचार नहीं एवं बिल्लीको साधारण में छुइ कर स्नान करना आवश्यक नहींहै क्योंकि प्रायश इससे बचाना नहीं बनिआता है तिससे भोजन या अनुष्ठान के समय जो छुइजाय तो स्नान करना उचितहै=कुत्ता के स्पर्श का भी यह नियम समुझना कि जो नाभिसे ऊपरली देहमें छुइजाय तो स्नान करै किंतु नीचेकी देह में छुइजाने से उसी अंग का धो डारना मात्र उचित है क्योंकि उन्हीं अंगिरा का दूसरा वचन इसपर मौजूद है = यथा = नाभेरूर्ध्वंकरौमुक्त्वायुना यदुपहन्यते तत्रस्नानमधस्ताच्च प्रक्षाल्याचम्यशुध्यति = अर्थात्--तोंदी से ऊपर जो हाथोंकेउपरालु कोई अंग कुत्तासे विगाड़ा जाय तहां स्नान करना चाहिये जो नीचे का अंग या केवल हाथहीको विगाड़ा हो तो उतना धोकर आचमन करनेसे शुद्धहो जाताहै=एवं पक्षियोंके स्पर्शमध्ये जातूकर्ण्यने विशेषता कहीहै=यथा= ऊर्ध्वंनाभेः करौमुक्त्वायदंगंसंस्पृशेत्खगः स्नानंतत्रप्रकुर्वीतशेषंप्रक्षाल्यशुध्यति=अर्थात्--हाथोंको छोडिके यदि कोई अङ्ग तोंदीसे ऊपर में काक आदि पक्षीकास्पर्शहोजाय तो स्नान करैवाकी दोनों हाथ या नीचेके अंगमें स्पर्शहुआहो तो धोनेमात्रसे शुद्धहोजाताहै= एवं अपवित्र वस्तुओंके स्पर्श मध्ये विष्णुने विशेषता कहीहै = यथा = नाभेरधस्ता त्प्रबाहुषुचकायिकैर्मलैः सुराभिर्मद्यैर्वोपहतो मृत्तोयैस्तदंगंप्रक्षाल्याचांतःशुध्येत् अन्य त्रोपहतोमृत्तोयैस्तदंगंप्रक्षाल्यस्नायात् तैरिंद्रियेषूपहतस्तूपोष्यस्नात्वापंचगव्येन दश नच्छदोपहतश्चेति=अर्थात्--कायासे उत्पन्नयुकमूतआदि अनेकका यिकमलहोतेहैं तिनसे जो कोई नाभिके नीचे अंगोंमें या कुहुनीके नीचे पहुंचा आदिमें विगड़िजाय या सुरासे या मद्यों से उन्हीं अंगोंमे विगडै तो वही अंग माटी और जलसे धोने तथा आचमन करने से शुद्ध होताहै जो उन अंगोंके सिवाय किसी और अंगमें पूर्वोक्तमलों से विगड़ै तो माटी और जल से मांजि धोकर पीछे स्नान भी करै. कदाचित् नाक कान आदि उत्तम इंद्रियों में उन्हीं मलोंसे बिगड़ै तो वह स्नान और निराहार उपास करिके शुद्ध होता है. कदाचित दांतोंके स्थानपर उन्हीं मलोंसे विगडाहो तो पूर्वोक्त मंजन स्नान व्रत करने के सिवाय पंचगव्य से भी शुद्धि करै-- ये सब नियम बिराने शरीर के उत्पन्न हुये मलोंसे विगड़ने मध्ये समुझने किंतु अपने मलोंसे नाभिके ऊपर भी विगड़ने में धोनेमात्र से शुद्ध होजाता है = यथाह देवलः = मानुषास्थिवसां विष्टामार्तवंमूत्ररेतसी मज्जानंशोणितंवापि परस्ययदिसंस्पृशेत् स्नात्वाप्रमृज्यले पादीनाचम्यसशुचिर्भवेत् · तान्येवस्वानिसंस्पृश्यपूतःस्यात्परिमार्जनात्=अर्थात्—मनुष्यका हाड या वसा या विष्ठा या आर्तव रजोरक्त या मूत्र या वीर्य यामज्जा या

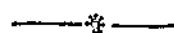
लोहू जो पराये अंगसे उत्पन्न हुयों को स्पर्श करै तो उस लगे हुये लेप आदि को माजि,धोय स्नान करिके आचमन किये पीछे शुद्ध होता है॰ उन्हीं मलोंको यदि अपनेही शरीर के उत्पन्न हुयोंको स्पर्श करै तो माजने धोने मात्र से शुद्ध होजाता है= तथाह शंखः=रथ्याकर्दमतोयेनष्ठीवनाद्येनवातथा नाभेरूर्ध्वंनरःस्पृष्टःसद्यःस्नानेनशुद्ध्यति=अर्थात—गलियोंकी कीचड़ या जलसे या थूक खँखार आदि से नाभि के ऊपरले अंगों में जो पुरुष बिगड़े तो तत्कालही स्नान करके शुद्ध होता है=यमनेभी विशेषता इसमें कहीहै=यथा=सकर्दमंतुवर्षासुप्रविश्यग्रामसंकरम जंघयोर्मृत्तिकास्तिस्रःपादयोर्द्विगुणास्ततः (ग्राम संकरं ग्राम सलिलप्रवाह प्रवेशं सकर्दमं प्रविश्येत्यर्थः) अर्थात—ग्रामसंकर जो कीचड भरा ग्रामहो तिसको वर्षा कालमें सभाइ कर दोनों जाँघ मट्टी से तीन तीन बार माजै और दोनों पैर छेछे बार मट्टीसे माजै धोवै=परंतु हवा से सूखी हुई कीच आदि में उक्त दोष नहीं है क्योंकि आचार मर्यादा परिपाटी में अग्रोक्त वचन आचुका है कि (रथ्याकर्दमतोयानिस्पृष्टान्यंत्यश्ववायसैः मारुतेनैव शुद्ध्यंतिपक्वेष्टकाचितानिच) अर्थात—गलियों में कीच तथा मैले जल भी जो चंडाल और कुत्ता कौओं से स्पर्श किये अशुद्ध होतेहैं सो वायु के भकोरों से ही शुद्धहो जाते हैं जब सूखि जायें॰ तथैव पकीईंट और ईंटके चिने हुये स्थान भी हवासे पवित्र होतेरहितेहैं=एवं हाड़ों मध्ये मनुने विशेषता कहीहै=यथा = नारंस्पृष्ट्वास्थिसस्नेहं स्नात्वाविप्रोविशुद्ध्यति आचम्यैवतुनिःस्नेहंगांस्पृष्ट्वावीक्ष्यवारविम = अर्थात— मनुष्य का गीला हाड़ छुइकर ब्राह्मण स्नान करके शुद्ध होता है. परंतु सूखा हाड़ छुइकर आचमन से ही शुद्ध होजाता है या जलकी प्राप्ति न होसके तो गऊके दर्शनों से ही शुद्ध होताहै जहाँ गऊ भी न मिलै तो सूर्यके दर्शन करके शुद्ध होता है— सो यह नियम केवल द्विजातियों के हाड़ छूजानेमध्ये समझना किन्तु और किसी जाति का हाड़ जिसने छुआ हो तिसके लिये वशिष्ठ के वचनानुसार प्रायश्चित्त करना चाहिये = यथावशिष्ठः = मानुषास्थिस्निग्धंस्पृष्ट्वात्रिरात्रमाशौच मस्निग्धे त्वहोरात्रं=अर्थात—मनुष्य का गीला हाड़ छुइकर तीन दिन तक अशुचि रहता है और सूखा छूने में एकही दिन आशौच मानै = मनुष्यके सिवाय अन्य जीवोंके हाड़ मध्ये विष्णु का वचन देखो = यथा = भक्ष्यवर्जंपंचनखशवंतदस्थिचसस्नेहंस्पृष्ट्वा स्नातःपूर्ववस्त्रंप्रक्षालितंबिभृयात = अर्थात—जो खाने योग्य जीव लिखे हैं तिनको छोड़िके शेष पाँच नखवालेमरे जीव या उन जीवों के गीले हाड़ छुइकर स्नान करै और पहिले वस्त्रोंको खूबधोकरपहिरै॥ इसी प्रकार औरभी अनेक स्नान करनेयोग्य

भी कि जो इसवचनमें नहींलिखे पहिलेमें कहिचुके हों तिनको इच्छाविनाही यदि कोई विप्र छुवै तो स्नान करिके शुद्धहोताहै पर जानि बूझिके छूने में वही च्यवनोक्त विधि करनी चाहिये॥ इसीप्रकार जो आगे वचन लिखे जायँ तिनमें भी बहुत या थोड़ीके अनुरूप इच्छा या बिना इच्छा की व्यवस्था मानि के सबको तुल्य समझ लेना=तथाचकश्यपः=उदयास्तमयोस्स्कंदयित्वा अक्षिस्पंदनेकर्णाक्रोशनेचित्यारोह णे यूपसंस्पर्शनेसचैलंस्नानंपुनर्मामैत्विति जपेत् महाव्याहृतिभिःसप्ताज्याहुतीर्जुहुयात्= अर्थात्—उदयहोते या अस्त होतेहुये सूर्यका देखना भी आचारकांड मे निषिद्धकिया गयाहै तिनके सन्मुख ऐसे दोनों काल में जो स्कंदन करै अर्थात् मलमूत्र आदि छोड़ै यद्वा आँखितिल मिलावै या कर्णाक्रोशन होने में कि जब किसी सज्जनकी वृथा निंदा आदि कान में सुनी हो या चिता के ऊपर पैर धराहो या यूपका स्पर्श किया हो तो सचैल स्नान करै तथा पुनर्माम् इत्यादि ऋचा मंत्रको जपै फिर सन्ध्या प्रयोग में लिखीहुई सात महाव्याहृतियों से घीकी आहुति होमैं तब शुद्धहोय=स्मृत्यंतरवचनंचयथा=स्पृष्ट्वादेवलकंचैवसवासाजलमाविशेत् देवार्चनपरोविप्रोवित्तार्थेव त्सरत्रयम् असौदेवलकोनामहव्यकव्येषुगर्हितः=अर्थात्—देवलक ब्राह्मणको भी छुइ करवस्त्रों सहित जलमें गोता लगावै तब शुद्ध होय देवलक वह कहाताहै जो धनके लियेदेवताकी पूजा में तत्पर होके तीनवर्ष वितावै सो देवलकनामा ब्राह्मण हव्य और कव्यमें अर्थात् देव पितरोंके कार्यमें लगाना निषिद्ध है=तथाब्रह्मांडपुराणेपि= शैवान्पाशुपतान्स्पृष्ट्वालोकायतिकनास्तिकान् विकर्मस्थान्द्विजाञ्शूद्रान्सवासाज लमाविशेत्—तथा—अस्वर्ग्याह्याहुतिःसास्याच्छूद्रसंपर्कदूषिता इति लिंगाच्चशूद्रस्पर्श नेनिषेधः=अर्थात्—शैव जो शिवालयका चढ़ावा आदि खानेवाले योगीआदि या पाशुपत जो ना दिया रीछ बंदर आदिसे जीविका करैं या यतिक नास्तिक लोग जो बनेहुये यतीकेनाम से प्रसिद्धपर यथार्थ धर्म से नास्तिक हों या विकर्मस्थ द्विजाती जो त्रैवर्णिक जाति होने पर भी कुकर्मों में रतहों या मलीनशूद्र इनमें से किसी को भी छुइकर वस्त्रोंसहित जलमें गोतालगावै तब शुद्धहोय—तथा—यह वचन जो लिखि चुकेहैं कि शूद्र के संसर्ग से स्पर्शकिये द्रव्योंकी आहुति भी अस्वर्ग्य होजाती है सो इस डौलसे भी शूद्रको छूनेका निषेधहै=तथांगिराः=यस्तुछायांश्वपाकस्यब्राह्मणोह्य धिरोहतितत्रस्नानंप्रकुर्वीतघृतंप्राश्यविशुद्ध्यति=अर्थात्—जो कोई ब्राह्मण चांडाल की छायाको आरोहण करै सो खूब अच्छी विधिसे स्नानकरै और घी चाटिके विशुद्धहोताहै=तथाव्याघ्रपादः=चांडालंपतितंचैवदूरतःपरिवर्जयेत्गोवालव्यजनादर्वाक्

सवासाजलमाविशेत (सततदीतसंकटस्थलविषयं)= अर्थात्-चांडाल और पतित को दूरिही से वचता रहे कितना दूर से कि जितना लंबा वालव्यजन किंतु चमर होता है इतना वीच देकर प्रथमसे वचिजाय'कदाचित इतनी नाप के वीच में आजाय चाहे शरीर का स्पर्श न हुआहो तौ भी वस्त्रों सहित जलमें गोता लगावै तब शुद्ध होय- सो यह चौंर की लम्बाई भर वीच देना ऐसी जगहके निमित्तमें समुझना जहां मार्ग संकोच होनेसे संकट प्रतीत होताहो-अन्यथा जहां भीड भाड न हो या मार्ग चौड़ा हो तहां इससे अधिक वीच देकर वचना कहा है=तथाचाह बृहस्पतिः= युगंचद्वियुगंचैव त्रियुगंचचतुर्युगम चांडालसूतिकोदक्यापतितानामधःक्रमात = अर्थात्--यहां युगशब्द से चार हाथ लंबाई का अंतर समुझना किंतु चंडालसे एक युग वीच देकर इधर को वचिजाना तथा सूतिका से दो युग वीच देकर तथा रजस्वला से तीन युग वीच देकर तथा पतित से चारयुग अर्थात सोरह हाथ वीच देकर वचना चाहिये कदाचित उक्त अतरोंके भीतर ये चांडाल आदि आजायँ तहां स्पर्श होगया समुझि लेनाचाहैं देहसे देह न भिड़ी हो तौभी स्नान करना होगा (इसी आशय से व्यवहार कांडकी मर्यादा वहुधा राज्यस्थानों में प्रवृत्त रहती है कि ये चंडाल आदि आपही अपना योग्य वीच देकर वचते रहैं कदाचित न वचैं तौ दंडपावैं)=पैठीनसिस्तुयथाह=काकोलूकस्पर्शने सचैलंस्नानमनुदकमूत्रपुरीषकरणे सचैलस्नानं महाव्याहृतिहोमश्च (अनुदकमूत्रपुरीषकरणं इत्येतच्चिरकालमूत्र पुरीषशौचाकरणपरं) अर्थात् पैठीनसिका कथन है कि काक उलूकके स्पर्श करने में सचैल स्नान करना चाहिये और विना पानी लिये हगने मूतने में सचैल स्नानके सिवाय महाव्याहृतियोंसे होम भी करें तब शुद्ध हो (विना पानी हगना मूतना यह उस भांतिका समुझना जिसने वहुत दिनोंसे ऐसा कियाहो एकही दिनका नियम नहीं)=तथांगिराः=भासवायसमार्जार खरोष्ट्रं चश्व शूकरान अमेध्यानिचसंस्पृश्य सचैलोजलमाविशेत =अर्थात्-भास पक्षी काक पक्षी बिल्ली गर्दभ ऊंट कुत्ता शूकर इनको तथा और भी अपवित्र वस्तुओं को छुइ कर वस्त्रों सहित जलमें घुसै तब शुद्धहोय=इसमें विल्ली का छूना जो अशुद्ध कहा सो भोजन आदिके समय तथा कोई अनुष्ठान करनेके समय समुझना क्योंकि लोक में भी यही समाचार है=अन्यथा और सामान्य समयों के निमित्त यह अग्रोक्त वचन भी आरूढ है=यथा=मार्जारश्चैवद्रव्यंच मारुतश्चसदाशुचिः= अर्थात्-विल्ली और द्रव्य रुपया पैसा आदि और मारुत हवा ये सदाही पवित्र हैं क्योंकि हवा सबके देहोंको छूती चली आतीहै उसमें कोई भेद नहीं वनि आता एव द्रव्य चंडाल के भी हाथ से

पुरुष होते हैं तिनको अन्य स्मृतियों से समझना जहां प्रयोजन उनका संभव है—सो इस भांति स्नान करने योग्य पुरुषों की बहुतायत के आशय से योगीश्वर के मूल श्लोक में (तैःस्पृष्टः उपस्पृशेत) यह बहु वचन का निर्देश दिया गयाथा विरोध उसमें नहीं है ॥ ० ॥ श्रीमद्विज्ञानेश्वर व्यवस्था देतेहैं कि मूल श्लोक में (उदक्यातथा और अशुचियों से छुआहुआ स्नानकरै परंतु छुयेहुयों से छुआ हुआ पुरुष आचमन मात्र करै) यह थोड़ा प्रायश्चित्त दर्शाया था सो वह थोड़ा इस हेतु में समझना कि जहां चंडाल आदि कोई अशुचि प्राणी जड़बुद्धि वेहोश होकर धोखा से लपेट में आकर भिड़ाहो तिसके भिड़े हुयोंसे जो कोई भिड़जाय तिसको आचमन मात्र करना ठीक है स्नान की अपेक्षा नहीं—परंतु—जहां होशियार चंडाल आदि लपेट में आया हो तिसके छुयेहुयों से यदि कोई भिड़जाय तहां इसकोभी स्नानही करनाचाहिये किंतु आचमन मात्र से शुद्धहोना ठीक नहीं है यह सिद्धांत अगिले वचन में उत्पन्न होता है सो देखो = यथाह मनुः=दिवाकीर्तिमुदक्यांचपतितंसूतिकांतथा शवंतत्स्पृष्टिनंचैवस्पृष्ट्वास्नानेनशुद्ध्यति (अत्रतत्स्पृष्टिनंतत्तेषांस्पृष्टानांस्पृष्टिर्नमितिभावः नशव मावस्पृष्टिनं) अर्थात—नाई॰रजस्वला॰ पतित॰ सूतिका॰ मुर्दा॰और इनके छूने वाले कोभी छूइकर स्नान से हीशुद्ध होताहै = परंतु = छूने वालेके छुये हुये को तीसरा कोई छुवै तिसको फिर स्नानकी अपेक्षा नहीं किंतु आचमन से ही शुद्ध होता है= यथाह संवर्तः = तमेवतुस्पृशेद्यस्तुस्नानंतस्यविधीयते ऊर्ध्वमाचमनंप्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणंतथा = अर्थात—जिसनेचंडाल आदिसेछुयेहुये को छुआहो तिसकोभी स्नानकराया जाता है पर उससे उपरान्त कोई तीसरा जो दूसरे को छुइ जाय तिसको आचमन हाथ पैरोंका प्रक्षालन और वस्त्रादि द्रव्यों को छींटा देना कहा है॥ सोभी यह तीसरेको आचमन विधिउस दशामें समझना जहांतीसराज्ञान विनाधोखासेभिड़गयाहो अन्यथा जानिबूझिके भिड़ने वाले तीसरेको भी स्नान करना होगा=तदाहगौतमः= पतितचंडालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टितत्स्पृष्ट्युपस्पर्शनेसचैलमुदको स्पर्शनाच्छुद्ध्येत= अर्थात—पतित चंडाल सूतिका उदक्या मुर्दा॰ इनको स्पर्श करने वाला फिर उसको स्पर्श करनेवाले को जो कोई ज्ञान बूझके स्पर्शकरै तीसरा वहभी॰ये सब तीनों भांति के पुरुष वस्त्रों सहित जलमें स्नान करनेसेही शुद्धहोयँ फिर चौथे छूनेवालेको आचमन मात्र चाहिये=यथाह देवलः=उपस्पृश्याशुचिस्पृष्टं तृतीयंवापिमानवः हस्तौपादौच तोयेनप्रक्षाल्याचम्यशुद्ध्यति=अर्थात—अशुचिमात्र जोजोकहेगये तिनकेछुयेहुयेतीसरे कोभी छुइ कर चौथा मनुष्य हाथ पैर धोयके जलआचमनकुल्लाकरके शुद्धहोताहै॥०॥

जहाँ कोई अशुद्धही उदक्या आदि अशुद्धों को भिड़जाय तहाँ देवलने विशेषताकहीहै =यथा=श्वपाकंपतितंव्यंगं मुन्मत्तंशवहारकम् सूतिकांसाविकांनारींरजसाचपरिप्लुताम् श्वकुक्कुटवराहांश्चग्राम्यान्संस्पृश्यमानवः सचैलःसशिराःस्नात्वातदानीमेवशुद्ध्यति अशुद्धान्स्वयमप्येतानशुद्धस्तुयदिस्पृशेत् विशुद्ध्यत्युपवासेनतथाकृच्छ्रेणवापुनः=अर्थात्-श्वपाक·पतित·व्यंग कोढीआदि·उन्मत्त मतवारा·मुर्दा ढोनेवाला· सूतिका· साविका दायी जो बालक जन्मावे· रजोरक्त से भीगी स्त्री·कुत्ता·मुरगा·सूअर जो जो ग्रामनगर के रहैया होते हैं वनके नहीं· इनको भिड़कर मनुष्य तत्काल ही वस्त्रों सहित शिरसे स्नान करके शुद्धहोताहै ॥ और जो इन अशुद्धोंको आपही कोईअशुद्ध रजस्वलाआदि भिड़जाय तो निराहार उपवास करनेसे शुद्धहोता है या यथा सम्भव कृच्छ्र चांद्रायण व्रतकरनेसेभी· अर्थात् चण्डाल आदिके अति स्पर्श में कृच्छ्र व्रत समुझना और कुत्ता आदिस्वल्प स्पर्शमें उपवास मात्र यह यथा संभव का तात्पर्य है ॥ ३० ॥



अथसर्वसामान्यशुद्धिहेतूनांसंख्यानुक्रमादिकथने पंचमःपरिच्छेदः ५

इस परिच्छेद में उन पदार्थोंकी संख्या आदि गुणवर्णन किये जायँगे कि जो जो शुद्धि करदेनेवाले परम कारण भूत प्रसिद्ध हैं ॥

(शुद्धिहेतूनांसंख्याऽनुक्रमः)

कालोऽग्निः कर्ममृद्वायुर्मनोज्ञानंतपोजलम् । पश्चात्तापोनिराहारःसर्वेऽमीशुद्धिहेतवः ३१

अक्षरार्थः-काल·अग्नि·कर्म·कर्म·मृत्तिका·वायु·मन· ज्ञान·तप·जल·पछितावा· निराहार·ये सब शुद्धिके कारण हैं ॥ ३१ ॥

अभिप्रायः—कदाचित् कोई यहसंदेहकरै कि जलसे या मट्टी आदिसे नहाना धोना आदि कर्म तो प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं कि इनसे शुद्धि होजायगी परन्तु अब तक

जो गीत गाया कि दश दिन में शुद्ध होय या तीन वा एकही से इत्यादि सो यह कैसा भ्रमहै कि तथा इतने दिनतक अशुद्ध वनिके वैठें--इसी संदेहके निवारणसमर्थे कालरूपी शुद्धिपर अग्नि आदिको दृष्टांत रूपसे दर्शाते हैं-वरन दूसरायहभी तात्पर्य है कि आचार मर्यादा परिपाटी के द्रव्य शुद्धि प्रकरण में शुद्धि के जो कुछ हेतु कहि चुके हैं या अव यहाँ से आगे जितने हेतु कहे जायँगे कि इनसेभी अमुकामुक शुद्धि होतीहै तिन सव अगिले पिछिलों को इकट्ठे करके इसी श्लोक में अनुक्रम किये देतेहैं--और कालरूपी हेतु में जो संदेह अभी कहिचुके तिसकाएकप्रमाण तो आचार कांड में भी १८७ मूलश्लोक पर देखो कि काल वीतने से इस तरह पृथ्वी शुद्ध हो जाती है उसी प्रकार यहाँभी सूतक आदिमें नियमित काल वितानेसे शरीर शुद्धहोते हैं--उसी काल की शंका मध्ये यहाँ यह दृष्टांतहै कि जैसे अग्नि आदि दश कारण निज निज विषय के स्थलों पर यथा योग्य शुद्धिकारसक्ते हैं तैसे काल भी दश दिन आदि जहाँ जितना उचितहै उतना समय वितानेसेही शरीरोंको शुद्ध करदेताहै यही शास्त्र की आज्ञाहै तिससे काल भी शुद्धि करनेको एक परम हेतुहै=तहाँ=अग्नि जैसे अशुद्धधातु पात्रों को शुद्ध करता या पकेहुये मृत्पात्रों को दुवारा पकाने से अशुद्धि मेटि देताहै इत्यादि-कर्म भी शुद्धि का हेतु नामनिमित्त है जैसा आगे कहेंगे या जैसा अश्वमेध के अवभृथ शेषांग कर्म का स्नान आदि अनेक भाँति-मट्टी भी शुद्धि का कारणहै माजने लीपने आदि प्रकारों से-वायुभी शुद्धिका हेतुहै (मारुतेनैवशुद्ध्यंति) यह लिखचुके हैं कि अनेक चीजें केवल हवासेही शुद्ध होतीहैं-मन भी एक शुद्धि साधन करनेका हेतुहै क्योंकि मन चाहै तौ शुद्धि कीजाय यद्वा मनसेही शुद्ध बोल चाल आदि गुरुओंसे उपदेशलेकर सीखीजाती है या उत्तम शास्त्रोंसे इत्यादि-ज्ञान भी शुद्धिका हेतु इस भाँतिहै कि अध्यात्मिक वेदांत आदिसे उत्पन्नहुआ ज्ञान मनुष्यकी वुद्धि शुद्ध करदेता है इत्यादि आगे चौतीसवें मूलश्लोक में योगीश्वर आपकहेंगे-तपभी शरीर शुद्ध करने का एक हेतुहै जैसे कृच्छ्रआदि प्रायश्चित्तों के व्रत आगे कहेजायँगे उनको तपसमझना(प्रजापत्यंचरेत्कृच्छ्रं) इत्यादि वचन ढूंढो-जलभी शरीरआदि सव शोधने काहेतु है (वर्प्सशोजलं) यहवचन आगे योगीश्वर आपकहेंगे- पश्चात्तापपछिताचा करना भी शुद्धि काहेतु है जैसा कोई जीव पैरसे दविगया तहाँ हरेराम इत्यादि पछितावा करने से भी दोष मिटताहै और भी (ख्यापनेनानुतापेन) यह वचन कहीं लिखाहै कि अपना पाप कहि सुनाने औरपछितावा करनेसे घटताहै निराहार व्रतभी शुद्धिकाहेतुहै जैसा(त्रिरात्रोपोषितोजप्त्वा)इत्यादिवचनआगेयोगीश्वरआपकहेंगे३१॥

अकार्यकारिणादानवेगोनद्याश्चशुद्धिकृत्।शोध्यस्यमृच्चतोयंचसंन्यासोवैद्विजन्मनाम्॥३२॥
तपोवेदविदांक्षान्तिर्विदुषांवर्ष्मणोजलम्। जपःप्रच्छन्नपापानांमनसःसत्यमुच्यते॥३३॥
भूतात्मनस्तपोविद्येबुद्धेर्ज्ञानंविशोधनम्। क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिःपरमामता॥३४॥

अर्थः—अकार्यकारी लोग जो निषिद्ध काम करनेवाले तिनकी शुद्धि बहुत दान करने से होजातीहै॰ और नदीका किनारा आदि जो मलीन हो तिसको शोधने वाला बहुत वर्षाका प्रवाहरूपी वेग होताहै॰ कोई वस्तु जो शोधने योग्य हो तिसके लिये मट्टी और जलभी शुद्धिका हेतु है॰ द्विजातियों को मन उपराम होनेकी दशामें सन्यासही शुद्धिका हेतुहै कि उसे लेलेनेसे पवित्र होते हैं ३२॥ तपोवेदविदां अर्थात् वेद वेत्ताओं को तपही शुद्धिका हेतु है यहां तप शब्दसे वेदाभ्यास किन्तु वेदहीका पाठ मनन आदि आराधन उनका तपहै उसीसे शुद्ध होजाते हैं और कृच्छ्र आदि जो तप कहे सो अन्यसाधारण मनुष्यों को कि जो वेदवेत्ता न हों॰ क्षांति विदुषां अर्थात् विदुष जो वेद शास्त्रों के गूढार्थ जाननेवाले उत्तम ज्ञानी हैं तिनको जब कोई दुर्जन आदि वृथा कलंक लगावैं तब क्षांति करना किन्तु सहिलेना यही शुद्धिका हेतु रूप प्रायश्चित्त है क्षांति शब्दके और भी ऐसे अर्थ हैं कि जब कोई अपना अपकार करै तिसपर क्षमाकरना या क्रोध आवै तिसको रोकिलेना या अपने में शक्ति होतें हुये भी अपराधी को प्रतिकार करने से तरह देजाना इत्यादि॰ वर्ष्मणोजलं किन्तु वर्ष्म जो शरीर है तिसकी शुद्धिका हेतु जलहै॰प्रच्छन्न पापानां जपः अर्थात् ढकेहुये जो पाप किये गये कि उनका दोष किसी से कहा सुनाया नहीं तिनकी शुद्धिका हेतु अघमर्षण आदि सूक्तोंका जप होताहै॰मनसःसत्य अर्थात् मनकी शुद्धि होनेका हेतु केवल सत्यप्रतिज्ञा है तहाँसत्असत् भला बुरा दोनोंतरहके विचारका जो संकल्परूप है सोई मन कहाताहै इनमें जो बुरे विचारोंसे मनको अशुद्धि प्राप्त होजातीहै तिसके शुद्ध करनेको प्रायः सत्यवचनरूपी प्रतिज्ञा धारणाकरै यह तात्पर्य है३३॥ भूतात्मनः तपो विद्ये अर्थात् भूतात्माके शुद्ध करनेको तप और विद्या ये दोही परम हेतु हैं तहां भूतात्मा देही और प्राणीको अर्थात् मनुष्यही को कहते हैं यद्यपि भूतात्मा शब्दके अनेक अर्थहैं पर यहां ऐसे समझना कि पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वभी पंचभूत कहातेहैं और प्राणीकोभी भूतकहते इन दोनोंका संबन्ध इसी एकदेहमें होताहै तिससे इसको भूतात्मा कहा तिस भूतात्मानाम देहऔर प्राणोंकी शुद्धि जो कोईठीकठीकचाहै तिस को तप और विद्याका समागम करनाचाहिये इसमें तपऔर विद्याकेभी अर्थसंकुच भेदहै किन्तु ज्ञानकी लक्षणारूपी जो ब्रह्महै जिसका जानना वेदांत से होताहै तिस

कास्वरूप समुझिकेतन्मयहोजानायहीतपहैपरन्तु जिसकोइतनीशक्तिनहीतिसकेलिये तप शब्दसे अपने वर्णोका धर्म अपने कुलका मुख्यधर्म अपने आश्रम का कर्म समुझना उनको यही तपहै और विद्या यहां कौनसी कि वेदांत में तत्त्वमसि वाक्य से त्वंपदार्थके निरूपण करनेवाले व्याख्यानोंसे जो ज्ञान उत्पन्न होताहै तिसको समुझना इन दोनोंके उत्पन्न होनेसे भूतात्मा की अशुद्धि मिटिजाती है॰ज्ञानंबुद्धे र्विशोधनं अर्थात् बुद्धिका शोधने वाला ज्ञानहै किन्तु बुद्धि जब अनेक यद्वा एकही किसी संशय के भ्रमसे विगड़ि के अशुद्ध होजाती है तिसको उत्तम प्रमाण देकर समुझने समुझाने का ज्ञान प्राप्त होनेसे भ्रम दूर होताहै तभी उसको शुद्ध हुई कहिते हैं.क्षेत्रज्ञस्य ईश्वर ज्ञानात् शुद्धिः अर्थात् क्षेत्रज्ञ जो शरीर के भीतर बैठाहुआ आत्माहै तिसकी शुद्धि ईश्वर का स्वरूप ज्ञान होनेसे होतीहै किंतु क्षेत्र नामहै खेतका तौ यह शरीर भी एक प्रकार का खेतहै जैसे धरती पर खेतोंको किसान खोदने जोतने आदि प्रकारोंसे बोने योग्य शुद्ध करताहै तैसे पूर्वोक्त तपोविद्याके प्रभावसे शरीररूपी खेत भी शुद्ध हुआ तब कहाजाता है कि जब त्वंपदार्थ रूपी ज्ञान संयुक्त होजाय और तत्पदार्थका ज्ञान भी तत्त्वमसि आदि वाक्यों के बोधसे उत्पन्न होता उसी को ईश्वर का जानना भी कहिते हैं इसीसे मुक्ति लक्षणरूपी परम अतिशय शुद्धि क्षेत्रज्ञ की होती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

३२ अधिकोक्तिः—क्षेत्र जैसा शरीर का नाम कहा तैसा क्षेत्रज्ञ उस खेतकी दशा जानने वाला पुरुष रूपी आत्मा जो भीतर इसका अधिपति देवता बना बैठाहै वही शरीर की दशाको पहिंचानता है कि इससमयमेंइतना काम करनेकी शक्ति वर्त्तमान है उसी कार्यमें इस देहको लगाना चाहिये ऐसा शोचि विचार के कामों में प्रवृत्त करता रहिता है इसीसे क्षेत्रज्ञ उसका नामहै = यथाह मनुः = योऽस्यात्मनःकारयितातंक्षेत्रज्ञंप्रचक्षते = अर्थात्—जो इस देहका काम धन्धा करानेवाला प्रेरक है उस को क्षेत्रज्ञ कहिते हैं॥ शोधने योग्य वस्तुओं के निमित्त ऊपर मट्टीजल कहा था तिसका यह प्रमाण है = अमेध्याक्तस्यमृत्तोयैः शुद्धिर्गन्धापकर्षणात् = अर्थात्—अमेध्य अपवित्र किसी मलसे जो भरी लिपी कोई चीज़ हो तिसकी शुद्धि मट्टी और बारंवार जलोंसे गन्धि छुड़ाइ डारने से होतीहै ॥ ० ॥ इन तीनों श्लोकसे जो वर्णन किया सो भी इकतीसवे श्लोकमें चर्चा किये हुये काल पर दृष्टांत समुझिलेना कि जैसे अन्य सब शुद्धियां मनुष्यके पुरुषार्थसे सिद्ध होती हैं तैसे काल रूपी शुद्धि स्वयंसिद्ध होतीहै॰कि उतना नियत काल बीतिजाने पर अशुद्धि मिटिजातीहै॰इसका

दृष्टांत प्रत्यक्ष में भी लोकसे समुझना कि जैसे कोई अपराध रूपी लांछन किसी को लगावलगा हो पर ऐसाहै कि उसके लिये अदालत में अवधि नियत होतीहै जोउसी अवधि के भीतर अभियुक्त किया जाय तो सुनवाई होसकी थी अन्यथा मीआद गुजर जाने बाद उस बातकी समाश्रुत न होगी तो यह तात्पर्य ठहरा कि उतने काल में उस पुरुष की स्वत शुद्धि होगई ऐसेही परमेश्वर के समस्या किये सूतक आदिकालों के बीतनेसे ही शुद्धि प्राप्त होती है॥ ३२॥ ३३ ॥ ३४॥

इत्याशौच प्रकरणं प्रथमं १

इस अशुद्धि नामक प्रकरणमें पांच परिच्छेद है सो समझ लेना

(अब यहां से आगे आपत्कालिक धर्म जीविका आदि दृत्यंतर कहा जायगा)

आपत्काले वृत्यंतरानियमादिकथनेषष्ठःपरिच्छेदः६

इसपरिच्छेद में चारों वर्णोंको आपत्कालिक धर्मके नियम दर्शाये जायँगे और उन्हीं के प्रसग में बेचने या न बेचने योग्य द्रव्यों के नियम कहे जायंगे

(आपदि वृत्यंतर नियमाः)

क्षात्रेणकर्मणाजीवेद्विशांवाप्यापदिद्विजः। निस्तीर्यतामथात्मानंपावयित्वान्यसेत्पथा ३५॥

अर्थः—द्विज ब्राह्मण आपत्काल में क्षात्र कर्मसे जीवै या वैश्योंकेसे॰उसआपदा को निस्तीरन करिके फिर आत्मा को पवित्रकरिके मार्गमे राखे=अर्थात्—ब्राह्मण जब अपनी वृत्ति याजन अध्यापन आदि से निर्वाह न करसकेतो वही उसको आपत्काल है तिसमें अपने से न्यून वर्ण क्षत्री का कर्म जो शस्त्र बांधना आदि प्रसिद्धहै तिसके द्वारा जीविका करै जो यहभी न करसके तब उससे न्यून वाणिज्य आदि वैश्य कर्म से निर्वाह करे (परंतु शूद्र की वृत्ति से न जीवै यह अधिकोक्तिमें देखना) इसी उपलक्षण से अन्य वर्णभी अपना से अनतर हीनवर्ण का जीविका आपत्काल में करसकते है अधिकोक्ति में देखो) इस भाँति उस आपदाको वितायकर पीछे अपने आत्मा को प्रायश्चित्तों से पवित्र करके कि जैसे प्रायश्चित्त आगे वर्णन होंगे उनका आचरणकिये पीछे फिर अपनीमुख्य वृत्तिको करनेलगैया अपनी फिरभी न करसकैं तो उसी वृत्तिसे धन संचयके द्वारा अपने आत्मा कोअच्छेसुमार्गमेंचलावें अर्थातउसी निंदितवृत्तिसेजोड़ेहुये धनकोसुमार्गवालेश्रेष्ठकामोमेलगाकरअपनेकोपुनीतकरें ३५॥

३५अधिकोक्तिः—ब्राह्मण शूद्रवृत्तिको आपत्काल में भी न करै=तथाचमनुः=उभाभ्यामप्यजीवंस्तुकथंस्यादितिचेद्भवेत् कृषिगोरक्षं सास्थायजीवेद्वैश्यस्यजीविकाम =अर्थात्—अपनी तथा क्षत्री की इन दोनों वृत्तियों से न जीसकने की दशा में कैसे हो यह शंका यदि उत्पन्नहोय तब खेती और गौओं का राखना आदि वैश्यों की जीविका से निर्वाह करै=इसी प्रकार क्षत्री जब अपनी वृत्तिसे न जीसके तब अनन्तर वर्ण वैश्यकी वृत्ति से निर्वाह करै ऐसेही वैश्य अपनी वृत्तिसे न जीसके तब अनन्तर वर्ण शूद्रकी वृत्तिसे जीवै पर उससे भी नीच वृत्तिको न करै और यह भी नियम है कि अपना से उत्तम वर्णकी वृत्ति को कदापि न धारण करै=तदाहवशिष्ठः=अजीवंतःस्वधर्मेणानंतरांपापीयसींवृत्तिमातिष्ठेरन् नतुकदाचिज्ज्यायसीम् (ज्यायसीचब्राह्मी वृत्तिः)=अर्थात्—अपने धर्म्मसे न जीसक्ते हुये कोई वर्ण अपनेसे अन्तरविना निचले कीखोटी वृत्तिपरभी आरूढहोयँ परन्तु ज्यायसीनाम अपनेसे उत्तम की वृत्तिकोकदाचित भी न करैं (यहांउत्तमवृत्ति ब्राह्मण की समझनी दान लेनायज्ञ कराना आदि) इसका प्रमाण अगिला वचन है=यथास्मृत्यंतरं=उत्कृष्टंवापकृष्टंवा तयोःकर्मनविद्यते मध्यमेकर्मणीहित्वासर्वसाधारणेहिते=अर्थात्—उत्कृष्टकर्म और अपकृष्टकर्म्म येदोनों उनके दोनोंको नहींपहुंचते किन्तु बीचके दोकर्म्म क्षत्री और वैश्यवाले छोड़िके तथैव कर्मोंको छोड़ि के यह नियम समुझना जो सबके साधारण हितकारी हों अभिप्राय इसका यह कि शूद्रको ब्राह्मण का उत्कृष्ट कर्म नहीं और ब्राह्मण को शूद्रका नीच कर्म्म नहीं उचित परन्तु बीचवाले दोवर्णों के कर्म्मको परस्पर ऊंचनीचका भी बदल होसक्ताहै इसकेसिवाय जो जो कर्म सबकेही आपत्काल में करने योग्य हैं तिनको सब करसक्ते हैं=किन्तु आपदा से ग्रसित शूद्रभी वैश्यकी वृत्तिसे या नाना भांति के शिल्प कर्मोंसे निर्वाह करै जैसा यह वचन पहिले आचार में आचुका है (शूद्रस्यद्विजशुश्रूषयाऽजीवनवणिग्भवेत् शिल्पैर्वाविविधैर्जीवेद्द्विजातिहितमाचरन्)अर्थात्-शूद्रका मुख्य कर्म तो द्विजातियोंकी सेवाहै पर उससे न जीसक्ताहुआ वणिक्बनै या द्विजातियों की भलाई करता रहकर विविध भांति के शिल्पोंसे जीवै=इसी वार्त्तापर मनु ने भी विशेषता करी है=यथा = यैःकर्मभिःप्रचरितैः शुश्रूष्यंतेद्विजातयः तानिकारुककर्माणिशिल्पानिविविधानिच=अर्थात्—नगरमें जिनकर्मोंके प्रचार होनेसेद्विजाती लोग आराम पातेहैं वेकर्म कारुक लोगोंके अर्थात् अनेक धा कारीगरों केहोतेहैं और विविध भांति के शिल्प कर्म भी कारीगरोंके होतेहैं ॥ ० ॥ जैसा चारोंवर्णोंका यह सब नियम कहा तैसा इसी न्याय से अनुलोमोत्पन्नशंकर जातियों में भी समझ लेना

कि अपत्तेसे अनन्तर हीनजातिका कर्म आपत्कालमें करसक्ते हैं=अनुलोम जाति की उत्पत्ति आचार अध्याय के वर्णजाति विवेक प्रकरण में लिखचुकेहैं=कदाचित आपत्काल में ब्राह्मण ने असत्प्रतिग्रह आदि किया हो तिसका दोष मिटाने का नियम आगेदेखो=तदाहमनुः=जपहोमैरपैत्येनोयाजनाध्यापनैःकृतम प्रतिग्रहनिमित्तंतु त्यागेनतपसैवतु=अर्थात—असत याजन असत अध्यापनसे जो पाप उत्पन्न होय सो जप होमों के करनेसे मिटता है और जो असत प्रतिग्रह के निमित्त का पापहोय सो द्रव्य त्याग करने किन्तु दीन दुखियाको बांटदेने तथा अपने जातीधर्म्मकर्म्मरूपी तप करने सेही मिटता है॥ ३५॥

(अविक्रेयानिद्रव्याणि)

फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधः। तिलौदनरसक्षारान्दधिक्षीरंघृतंजलम् ३६॥
शस्त्रासवमधूच्छिष्टमधुलाक्षाथवर्हिषः। मृच्चर्मपुष्पकुतुपकेशतक्रविषक्षितीः ३७॥
कौशेयनीललवणमांसैकशफसीसकान्। शाकार्द्रौषधिपिण्याकपशुगन्धांस्तथैवच ३८॥
वैश्यवृत्त्यापिजीवन्नोविक्रीणीतकदाचन॥

अर्थः—इतनी चीजें नबेचै·फल·उपल· क्षौम·सोम·मनुष्य. अपूप·वीरुध· तिल. ओदन· रस·क्षार·दधि·क्षीर·घृत·जल·शस्त्र· आसव· मधूच्छिष्ट· मधु ·लाक्षा· वर्हिष· मृत्तिका·चर्म·पुष्प·कुतुप·केश·तक्र·विष·क्षिति·कौशेय·नील·लवण·मांस·एकशफ· सीसक·शाक·आर्द्रऔषधि· पिण्याक· पशु·गन्ध—वैश्यवृत्ति से निर्वाह करना परै तो भी ब्राह्मण इतने द्रव्योंको न कभी बेचै=अर्थात—फल हरेगोले केले आदि के· उपल पत्थर माणिक्य आदि सब समझने· क्षौम वस्त्र जो क्षुमा अलसीकी छाति से बुना हो उसके उपलक्षण में सनकासूत आदि भी समझने जैसा अविक्रोक्ति में मनु का वचन है·सोमनाम एकलता विशेष वेलि होतीहै·मनुष्य स्त्री पुरुष नपुंसकआदि चाहैं किसी प्रकारका हो·अपूप पुआके उपलक्षणसे भक्ष्यमात्र और भी समझने·वीरुध नामसे वेच गिलोह आदि लताएं समझनी·तिल प्रसिद्ध हैं· ओदन भात कहिने से इसप्रकारके और भी भोज्यान्नमात्र समझने·रस कहिनेसे गुड ईखरस शर्कराआदि मीठेरस जानने·क्षार जवाखार आदि·दधि और क्षीर दुग्धकहिनेसे उसके विकारवाली अन्य चीजें भी खोया खडी आदि समझनी·घृत के उपलक्षण में तेल आदि सब चिकनाई समझलेनी·जल पानी·शस्त्र तलवार आदि.आसव शब्द से मद्यमात्र जो नशा के करनेहारे सब समझने·मधूच्छिष्ट मोम·मधु· महत·लाक्षा लाख·वर्हिषकुशा· मृत्तिका मट्टी·चर्म चमडा·पुष्प फूल·कुतुपनाम ऊनके काम्बल·केश बाल चमरीगऊ

आदिकैं·तकसट्टा·विष जिनसे प्राणी मरजाताहो·क्षिति धरती·कौशेय रेशम·नील नीलबरी प्रसिद्ध है·लवण जो खानिसे उत्पन्नहों और बनेहुये सोंचर आदि सब समझने मांस प्रसिद्ध है·एकशफ जिनके सुम दोहरे फटे न हों किन्तु घोड़ा गर्धव आदि· सीसक धातुके उपलक्षण में लोहा पर्यंत सात सब समझने · शाक साग तरकारी सब तरह के·आर्द्र भीजी औषधी जो वर्षात में जमिकर फलपकनेतक मिटिजातीहों अर्थात सूखी औषधियों में विक्रय दोष नहीं है·पिण्याक पीना खलि·पशु जो वन के चौपाये प्रसिद्धहैं·गन्धनास अतर आदि सुगन्धि की चीजें·अब जो कुछ भेदबाकी रहा सो अधिकोक्तिमेंदेखो येसाढेतीन श्लोकएकसाथहैं॥३६॥३७॥३८॥पूर्वार्धश्च॥

३६अधिकोक्तिः—फलोंका निषेधकिया तिनमें बेर और इंगुदहिंगोट को छोड़ि के समझना=यथाह नारदः=स्वयंशीर्णानिपर्णानिफलानांबदरेङ्गुदे: रज्जुःकार्पासिकंसूत्रं तच्चेदविकृतंभवेत्=अर्थात—आप झड़िपरेहुये पत्ते और फलों में बेर तथा इंगुद तथा रज्जु रस्सी और कपास का सूत सोभी जो बिगड़ा मैला अशुद्ध न हो॥ अलसी का वस्त्र कहा तिससे सनी आदि के और भी समझने=यथाह मनुः=सर्वंचतांतवंरक्तंशाणक्षौमाविकानिच अपिचेत्स्युररक्तानिफलमूलेतथौषधी=अर्थात—सब सूत का वस्त्र जो रँगा हो और सनका अलसीका भेडीको ऊनका ये चाहैं न रँगेहों तौभी और फल मूल तथा औषधियाँ जो जंगल से हरीलाकर बेचीजाती हों॥ केवल रसही से गुड आदि का निषेध किया तिसका आगे प्रमाण है=तथाचमनुः=क्षीरंक्षौमंदधिघृतंतैलं मधुगुडौकुशाव=अर्थात—दूध अलसीका वस्त्र या सूत दही घी तेल सहत गुड कुशा ये नवेचैं·किन्तु (क्षीरंसविकार मितिगौतमोपि) अर्थात गौतमने भी कहाहै कि दूध उसके बने विकारों सहित॥ क्षिति भूमिका निषेध किया तहां इतने और समझने= यथाह सुमंतुः=नित्यंभूमिव्रीहियवाजाव्यश्वर्षभधेन्वनडुहश्चैके=अर्थात—धरतीधानजौ बकरी आदि घोडा बैल गाय आँडूविजारभी कभी न बेचै यहएकों का मत सुमन्तु ने लिखा है॥ पशु जो बनके बताये तिसका भी प्रमाण है=यथामनुः=आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्चवयांसिच = अर्थात — बनके सभी पशुओंको और दाढसे फाडने वालोंको और वयांसि पक्षियों को न बेचै॥ ये साढेतीन श्लोक यहांतक हुये कि वैश्यकी वृत्तिसे निर्वाह करने से भी ब्राह्मण ये चीजें कभी न बेंचे किन्तु सर्वो आदि को यह दोषनहींहै—इसी लियेयद्यपियोगीश्वरने भेदनहीं खोलापरन्तु नारदनेब्राह्मण के ही नाम से निषेध किया है = यथा = वैश्यवृत्तावविक्रेयंब्राह्मणस्यपयोदधी = अर्थात—ब्राह्मणको वैश्यवृत्तिमेंभी दहीदूध बेचने योग्य नहीं३६॥३७॥३८॥अर्द्धश्च

(अगिलेडेढ श्लोकसे छन्दप्रतिप्रसवकहाजायगा-प्रतिप्रसवउसका नामहै कि जो बातें निषेध करीगई उनकोंफिर किसीअवसरमें करनेकी आज्ञादीजाय) ॥

(निषिद्धस्य प्रतिप्रसवः) ।

धर्मार्थेविक्रयंनेयास्तिलाधान्येनतत्समाः ३९ ॥

लाक्षालवणमांसानिपतनीयानिविक्रये । पयोदधिचमद्यचहीनवर्णकराणितु ४०

अर्थः—धर्म के लिये तिल बेचने योग्य हैं धान्यसे उसीकी बराबर ३९ लाख ननक मांस ये बेचने में जातिसे पतनीयहैं-दूध दही मद्ययें हीनवर्णकरने वालेहैं ४०= अर्थात—जब रोजका मामूली पाक यज्ञ रसोई आदिका धर्म नाजके न होने से रुकता हो तब नाज के लिये तिल विक्रय में देने चाहियें सो उसी नाज की बराबर (यहां बराबरका अर्थ विज्ञानेश्वरने यहरक्खाहै कि नापि तौलिके बराबर देना-परन्तु ऐसा अर्थ ठीक है कि तत्समाः उसी नाज के मोलके समान जितने होसकें सो देना जितने नाज की ज़रूरत हो किन्तु उस ज़रूरत की बराबर से अधिक रोक इच्छासे न बेचने चाहिये अन्यथा तिल और नाज के मोल में बहुत अंतर होनेसे बराबर तौलिके देना कोई ठीक न्याय नहीं है) धर्म के निमित्त बेचने कहे तो इस धर्म पदसे और भी आवश्यक धंधे जैसे प्राणों की रक्षाहेतु औषधी मँगाने आदि में भी बेचनेकी आज्ञा सिद्ध होतीहै तहां भी बराबर का यही अर्थ होगा कि जितने दामोंको औषधीलेनी हो उतनेबेचे अन्यथा दवाई महँगी मोल की सस्ते तिलों की बराबर तौलि के कोई विक्रेता नहीं देगा तब कैसा विरोध खड़ा होगा ३९ ॥ परतु लाख लवण मांस इन का निषेध होचुका है कदाचित इनको बेचे तो सद्यही पतित ठहेरता है क्योंकि इन के बेचने से द्विजाती के कर्मकी हानि होती है वरन दूध दही मद्य इनके बेचने से शूद्र जातिकेही तुल्य होजाता है ॥ ४० ॥

३९ अधिकोक्तिः=मनुः=कामनुत्पाद्यकृष्यांतुस्वयमेवकृषीवलः विक्रीणीततिला न्शुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान्=अर्थात—मनुने किसानोंको यह आज्ञा करीहै कि खेती में (कृषीवल) किसान आपही शुद्ध साफ तिलों को उत्पन्न करिके यदि इच्छा हो तो धर्मके अर्थ बेचें परन्तु थोड़े काल के धरे हुये बेचें किंतु बहुत पुराने बिगड़े न देवे (यहां धर्मके अर्थका यह तात्पर्य है कि जो कोई होम यज्ञ श्राद्ध आदि कामों को खरीदे उसीके हाथ बेचे और किसी विदेश के बैपारी आदि को भर्ती न भरावे क्योंकि अपने देशमे ज़रूरत पर तोडा न हो जाय जिससे प्रजा दुखपावे ॥ नारदः=अग्र

क्षौमेयजस्यार्थेयज्ञहेतोस्तथैवच यद्यवश्यंतुविक्रेयास्तिलाधान्येन तत्समाः (यद्यन्यथाविक्रीणीतेतर्हिदोषः) तदाह मनुः=भोजनाभ्यंजनाद्दाना द्यदन्यत्कुरुतेतिलैः कृमिभूत्वाश्वविष्टायांपितृभिःसहमज्जति=अर्थात्–नारदने कहा कि अपनी अशक्तिमें कि जब तिलोंके बेचे विना काम नहीं चलै तब औषधीके अर्थमें तथा यज्ञके हेतुसे भी जो अवश्यही तिल बेचने परें तौ धान्यसे उसकी बराबर बेचें (जो और किसी प्रकार से बेचै तौ दोष है) सोई मनुने यों कहा कि=तिलनको खाने और अभ्यंजन कहिये तेल करने या दान करने इन कामोंके सिवाय जो कुछ और काम तिलों से करें जैसे पशुओंको दाने तुल्य खिला देना आदि तौ वह मनुष्य पितरों सहित कुत्ताके विष्टा मे कृमि होकर उसमें पैरता है (यह तलाकृदी) इसका भी यह तात्पर्य है तिलोंका भोजन या तेल या दान चाहै अपने आप करें या जो कोई इन्हीं कामों के निमित्त चाहै तिसके हाथ बेचै तौ यह तलाक उसको न समुझनी (अत्रोक्त नारदके वचन में भी धान्यसे उसकी बराबर बेचै इस आज्ञाका यह तात्पर्य नहीं है कि नाजकी बराबर देदेवै और नाज लेकर दवा ख़रीदने जाय-किंतु ऐसा तात्पर्य है कि धान्य शब्द के उपलक्षणमें दवाई आदि सब चीजें समुझलेनी कि जिनकी ज़रूरत खड़ी हुईहो और तत् शब्दसे ज़रूरत वाली वस्तुके परिमान का निर्देश कहागयाहै कि जितनी वस्तुकी ज़रूरतहो उतनेके समान तिल बेचने चाहिये अधिक नहीं) तौ इस व्याख्या से अब कोई सा विरोध शेष नहीं है अन्यथा जो (तिलाधान्येनतत्समा विक्रेयाः) इसका वही अर्थ जोड़ोगे कि तिल नाज से उसकी बराबर बेचने जैसी विज्ञानेश्वराचार्यकी यह पंक्तिहै (तत्समाद्रोणा परिमिता द्रोणपरिमितेनेत्येवं तेनधान्येनसमाः) कि बत्तीस सेर तिलोंको बत्तीस सेर नाजसें देवै यह उदाहरण इसी पंक्ति में प्रत्यक्ष है परंतु इसमे पूर्वोक्त विरोधों से उपरान्त एक और भी यह बड़ा विरोध है कि जो नाजकी बराबर देनेका सिद्धांत ठीक होता तौ मुनीश्वर उसको बदला करना लिखते किंतु विक्रय पद नहीं लिखते ॥ और जो बदला करने मध्ये एक वचन किसी स्मृति का आयाहै उसका भी यह तात्पर्य नहींहै कि अतिशय न्यूनाधिक मूल्यवाली वस्तु बराबर के बदले में दीजायँ=यथा=रसारसैर्निमातव्या नत्वेवलवणंरसैःकृतान्नंचकृतान्नेनतिलाधान्येनतत्समाः = अर्थात्–रसों से रस (यद्यपि निमातव्य) बदला करने योग्यहैं पर वेही जो सजाती होनेसे मूल्यमें बराबरहों क्योंकि रसों में लवण भी गिनतीहै वह रसोंसे नहीं बदला जासकताहै किन्तु यह दृष्टांत है कि जैसेकृतान्न सिद्धान्न सिद्धान्नसेही बदला जायगा औरजैसे (तिलाधान्येन तत्समाः) तिलधान्य में

नहीं उसकी बराबर दिये जासक्ते हैं-यह वचन यद्यपि निश्चित नहीं कि किसग्रन्थ का है तथापि किसीऐसेझगड़ेके न्यायपर आरूढ़है कि जहां कोईउधार लीहुईवस्तु केवदलेमें हठसे कुछ और वस्तु उसीकीबराबर देनेलगै तब यहन्याय सुनायाजाय यह व्यवहार से संबंध रखता है (अन्यथा जो·तिलधान्येन तत्समाः इस वाक्यमें तृतीया विभक्ति से योजना करनी चाहोगे तौ भी पूर्वोक्त व्याख्यासे यह अर्थ सिद्धहोगा कि तिलधान्य से उसकी बराबर दिये जायें अर्थात् उसके मोल की योग्यता के समान दियेजायँ तौलके बराबर नहीं और यही न्याय लोकमें भी विदित है॥ ३९ ॥ नियम छोडिके निषिद्ध चीजोंके बेचने मध्ये मनुने ये दोषप्रकटकियेहैं=यथा=सद्यःपततिमांसेनलाक्षयालवणेनच त्र्यहेणशूद्रोभवतिब्राह्मणःक्षीरविक्रयात् इतरेषामपरायानांविक्रयादिहकामतःब्राह्मणःसप्तरात्रेणवैश्यभावंनिगच्छति=अर्थात्-मांसबेचनेसेब्राह्मण सद्यही तत्काल जातिसे पतित होताहै तथैव लाख और नमक बेचनेसे भी और दूध बेचनेसे तीनदिनमें शूद्रके तुल्यहोजाताहै इनके सिवाय जोजो और चीजें बेचनेकोनिषेधकरीं तिनको अपनी इच्छासे बेचनेमें सातदिन बेचिके वैश्यकेतुल्यहोजाताहै ४०

(आपद्गतविप्रस्यजीवनानि)

आपद्गतःसंप्रगृह्णन्भुंजानोवायतस्ततः। नलिप्येतैनसाविप्रोज्वलनार्कसमोहिसः ४१

कृषिःशिल्पंभृतिर्विद्याकुसीदंशकटंगिरिः। सेवाऽनूपंनृपोभैक्ष्यमापत्तौजीवनानितु ४२

अर्थः—आपद्गत ब्राह्मण प्रतिग्रह लेताहुआ जहां तहां खाताहुआ भी पापसे नहींलिप्त होताहै अग्नि और सूर्यके समान ४१ ॥ कृषी·शिल्प·भृति. विद्या.कुसीद. शकट·गिरि·सेवा·अनूप·नृप·भैक्ष्य·ये जीवन के हेतु हैं आपत्ति में ४२ ॥ अर्थात्— जिस ब्राह्मण के बहुत कुटुम्ब होने आदि से निर्वाहमें कठिनताहो और वह ब्राह्मण उस आपत्ति में भी क्षत्री या वैश्य की वृत्ति न करसक्ता हो तौ वह अति हीनसे भी हीन प्रतिग्रह दान आदि लेने और हीन जातियों का अन्न भोजन करनेसे पतित या दोषी नहीं ठहर सक्ता है कि जैसे अग्नि अशुद्ध वस्तुओं को पकाने जलाने से भी या सूर्य अशुचि द्रव्यों को सुखाने आदि से भी दोषी नहीं हो सक्ते हैं तैसे वह ब्राह्मण भी अग्नि और सूर्य के समान है--इस नियम से यह तात्पर्य सिद्ध होताहै कि ब्राह्मण को आपत्काल में भी विरानी वृत्तिसे अपनी वृत्तिनिन्दित भी श्रेय है अधिकोक्ति में देखना--अगिले श्लोक में सामान्य भावसे दश ग्यारह भेद जीवन के सब लिखते हैं कि उनमें से जो जिस को अच्छी दशा में निषिद्ध हो सो आपत्काल में करसक्ता है यह तात्पर्य समझना ४१ कृषी खेती जिसको अपने हाथ से करनी

निषिद्ध हो वह भी आपत्काल में करसक्ता है·शिल्प कर्म जिसको सर्वेकियें सोभी आपत्काल में करसक्ता है·भृति प्रेष्यकर्म है कि चिट्ठी पत्री या संदेशा लेकरजाना आना आदि·विद्या यह ब्राह्मणको पढाई लेकर पढ़ानी निषिद्धहै पर आपत्कालमें पढाई लेकर पढावे·कुसीद व्याज दत्ता खाना निषिद्धहै पर आपत्कालमेंकरे·शकट गाडी छकड़ा यह भाड़ेको चलाना आदि सभी या दैश्यको भी आपत्काल में कर्तव्य है· गिरि पहाड़ अर्थात् उसमें से लकड़ी आदि चीजें लाकर बेचना आपत्कालमें· सेवा नौकरी हाजिरबाशी आदिके द्वारा समर्थोंका सेवन करना यह भी आपत्काल में·अनूप नामसे वह धरती कहाती है जहाँ बहुत सा जल वृक्ष लकडी कण्डा आदि प्राप्त होसके तहाँ जा बसना· नृप अर्थात राजा की सेवा यद्वा याचना करनी· भैक्ष्य भिक्षा वृत्तिकरनी स्नातक हो तौभी आपत्कालमें निषेध नहींहै क्योंकि आपत्काल में ये सभी जीवन के हेतुहैं इनके कियेविना निर्वाह नहीं होता ॥ ४२ ॥

४१ अधिकोक्तिः=मनुरपि=विद्याशिल्पंभृतिःसेवा गोरक्षाविपणिःकृषिः।गिरिर्भैक्ष्यंकुसीदंचदशजीवनहेतवः=अर्थात्—विद्या·शिल्प·भृति·सेवा·गोरक्षा·विपणि·दुकान खेती·पहाड़·भिक्षा·कुसीद सूदव्याज· ये दश हेतु जीवन के मनुने भी कहे हैं॥ ० ॥ मनुने ब्राह्मण को जहाँतक होसके अपनी वृत्ति निंद्य भी करणीय आपत्काल में भी कही है=यथा=वरंस्वधर्मोविगुणोनपारक्यःस्वनुष्ठितः परधर्माश्रयाद्विप्रःसद्यःपतति जातितः=अर्थात्—अपनाधर्म विगुणाहो सो भी अच्छा पराया धर्म अच्छा हो तौभी ब्राह्मणको नहीं चाहिये क्योंकि पराये धर्मका आश्रयलेकर ब्राह्मणशीघ्रही जाति से पतित होजाता किन्तु ब्राह्मणत्व के चिह्न मिटि जातेहैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

(अनाहारपीडितधर्मः)

बुभुक्षितस्त्र्यहंस्थित्वाधान्यमब्राह्मणाद्धरेत। प्रतिगृह्यतदाऽऽख्येयमभियुक्तेनधर्मतः ४३
तस्यवृत्तंकुलंशीलंश्रुतमध्ययनंतपः। ज्ञात्वाराजाकुटुम्बंचधर्म्यांवृत्तिंप्रकल्पयेत् ४४

अर्थः—भूखा तीन दिन रहिकर अब्राह्मणका धान्य हरै लेकर वही कहिदेना चाहिये अभियुक्त पकड़े हुये करके भी धर्मसे कहिदेना चाहिये ४३॥ राजा उसका वृत्त चलन कुल शील स्वभाव पढना तपस्या और कुटुम्ब कोभी जानके धर्म्यावृत्ति कल्पित करे कि जिससे फिर ऐसा उसको न करना परे ४४॥ अर्थात् जिसके खेती आदि आपत्काल में कोई काम सम्भव न हो और नाजविना तीनदिन कड़ाके हो चुकेहों तो ब्राह्मण को छोंड़ किसी शूद्र का नाज केवल एक दिनके खाने योग्य

या शूद्रका न मिलै तौ वैश्यका या ऐसे किसी सगीका चुरावै जो धर्म कर्म से हीन हो परंच इस चुराने को सबसे जाहर भी करदेवै कि ऐसी लाचार दशामे यहकरना पड़ा यदा नाज का मालिक जो इसको पकड़ि के राज में लेजाय तौ वहाँ भी सचा वृत्तान्त कहिसुनावै तब राजा इसके चाल चलन कुल शील आदिकी तहकीकात लेकर समाकिये पीछे उसके लिये कोई भी जीविका वृत्ति कल्पित करावै जो उस की दशा के अनुरूप समझी जाय ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

४३ अधिकोक्तिः=मनुः=तथैवसप्तमेभक्ते भक्तानियडनश्नता अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यहीनकर्मणः=अर्थात्—सांझ सवेरे दो बार भोजन के मार्गसे छै बार किन्तु पूरे तीनदिन जिसने भोजन न पाया हो तौ वह सातवीं बारके भोजन अर्थ उतनाही नाज हीन कर्म धर्मका चुरावै जो एकदिन भोजन करलेने के सिवाय दूसरे दिनको न बचै (तिस ऐसे सच्चे चोरकी जीविका राजा कल्पित करादेवै यह योगीश्वर के वचन से आचुकाहै) राजा भी जीविका कल्पितकरानेविना दोषी होताहै=तदाहमनु=यस्यराज्ञस्तुविषयेश्रोत्रियःसीदतिक्षुधा तस्यसीदतितद्राष्ट्रन्दुर्भिक्षव्याधिपीडितम = अर्थात्—जिस राजाके राजमें ज्ञानमान पण्डित भूख से पीडित होता है तिसका वह राज्य भी दुर्भिक्षऔर महामारी आदि व्याधिसे पीड़ित होता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

——*——

अथ वानप्रस्थाश्रमधर्म कथने सप्तमःपरिच्छेदः ७

इस परिच्छेदमें वानप्रस्थ जो तीसरा आश्रम कहाता है तिसके सब नियम धर्म कहे जायंगे ॥

(वानप्रस्थाश्रमधर्माः)

सुतविन्यस्तपत्नीकस्तयावानुगतोवनम्। वानप्रस्थोब्रह्मचारीसाग्नि सोपासनोव्रजेत् ४५

अक्षरार्थः—सुत में विन्यास करी पत्नीवाला या तिसको पीछे लगाये ब्रह्मचर्यसे अग्नि सहित सोपासन वनको जाय सो वानप्रस्थ है ॥ ४५ ॥

अभिप्रायः—चार वर्णोंके सिवाय चार आश्रम जो प्रसिद्ध हैं सो उन्हीं वर्णों मे सब होतेहैं अर्थात् पहिला ब्रह्मचर्य्य आश्रम फिर दूसरा गृहस्थ आश्रम तब होता है कि जब ब्रह्मचारी अपना व्याह करके गृहस्थी बने (आश्रम ठिकाने का नामहै कि

अमुक मनुष्य किस ठिकाने में गिनती है ब्रह्मचारियों में या गृहस्थियों के ठिकाने में यह तात्पर्यहै) सो इन दोनों आश्रमके सब धर्म्म कर्म्म आचार मर्यादा परिपाटी में लिख चुकेहैं अब यहाँ उनका तीसरा आश्रम वानप्रस्थ दर्शाते हैं कि (वनेप्रकर्षे णा नियमेनच तिष्ठति चरतीति वनप्रस्थः वनप्रस्थएव वानप्रस्थः संज्ञायांदैर्घ्यं) वन में प्रस्थित रहै सो वनप्रस्थ है उसी को वानप्रस्थ कहते हैं सो यह वानप्रस्थ गृहस्थोमें से होताहै-कैसे होता और कैसे वनमेंरहताहै तिसके लक्षण ऊपर अक्षरार्थसे कहिचुके परन्तु अच्छी भाँति समझाने के निमित्त से अभिप्राय अब लिखते हैं कि—गृहस्थ का आश्रम अच्छा भोगि सन्तानि के पुत्रोंको जीविका नियत करदेने बाद उन को समर्थहुआ जानिकर अपनी पत्नी उनको सौंपिदे कि माता को आराम तथा रक्षासे राखना मैं वनवास को जाताहूं—यद्वा भार्य्या आपहीअपनी इच्छा से पति की सेवा करनीचाहिके साथजानाचाहै तो उसकोभी साथलेकर ब्रह्मचारीहोकेरहै किन्तु पत्नी से रतिविलास न करै अपना वीर्य्य खींचिके माथेपर चढ़ालेवै—और साग्नि वनको जाय अर्थात् वैतान अग्नि जो वेदोक्त अग्निहोत्र की स्थापन घरमें होरही थी तिसको भी साथलिये जावै तथा सोपासनोव्रजेत् किन्तु उपासन अग्नि भी गृह्याग्नि के नाम से दूसरी अग्नि होतीहै तिसको भी साथ लिये जावै·फिर वन में रहकर अगिले छहा-लिस ४६ श्लोकवाले नियमोंको साधै वह वानप्रस्थ कहाता है॥ ४५॥

४५अधिकोक्तिः—यहाँ यहसंदेह न करना कि प्रायश्चित्तोंके प्रसंगमें आश्रम के धर्म क्यों कहिनेलगे—क्योंकि यह वानप्रस्थका धर्म्म जो है सोभी आत्माकीशुद्धि करदेनेवाला एक बहुत बड़ा प्रायश्चित्त है इसके आगे संन्यास वर्णन करेंगे सोभी यद्यपि चौथाआश्रमहै परन्तु आत्म शुद्धिके प्रभावसेवहभी एकप्रबल प्रायश्चित्तसम-झना इसीप्रकार जहाँजहाँ जो कुछइसकाण्डमें वर्णनहो सोसर्वथा प्रायश्चित्तहीका रूपसमझनाकि उसका पाठमात्र भी श्रवण करनेसे मनुष्यों के जन्मांतर पापशोधन होजाते हैं फिर साक्षात् साधना करने वालोंकी क्या कथा॥०॥ बेटाको अपनीभार्या सौंपिकेजाय इसकथनसे यह तात्पर्य भी दर्शायाहै कि वनवासउसीकोलेनाचाहिये जिसने गृहस्थी धर्म के द्वारा बेटेपैदा करके और पालि पोषि समर्थ करदियेहों अन्यथा छोटे बालबच्चों वालानहीं--सोभी यह नियम उसके लिये सम्भव है कि जिसने क्रमसे सब चारों आश्रम का फल उठाना चाहा हो—अन्यथा (अविप्लुतब्रह्मचर्योयं यमिच्छेत्तमावसेत्) दूसरा नियम यह भी है कि जिस ब्रह्मचारीने विवाह न करके अपनावीर्य ब्रह्मचर्यसे थाँभाहो सो जिसजिस आश्रमको इच्छाकरै तिसमेंबसै अर्थात्

गृहस्थी बनेबिना भी निज इच्छासे बनबास लेकर बानप्रस्थबनें या संन्यास लेकर संन्यासी बने॥ ० ॥ गृहस्थी को बनवास लेनाकहा सो उस दशामें संसूचित है कि जब देह उसकी बुढ़ापे से जर्जर होजाय यद्वा पुत्रों के पुत्र भी उत्पन्न होजायें तब देह जर्जर न होनेपर भी जाना चाहिये अन्यथा नहीं=यथाह मनुः= गृहस्थस्तुयदापश्येद्व लीपलितमात्मनः अपत्यस्यैवचाऽपत्यंतदारण्यंसमाश्रयेत=अर्थात—गृहस्थ पुरुषजब अपनी देहकी खालमें बल पड़िगये ढीली और पकीहुई देखे या संतानके संतानहुई देखें तभी बनवास करै तौ उसके बनवास रूपी तपके प्रभाव से संतान की सदा जय होती बनीरहती हैं॥ ० ॥ पुत्रोंको पत्नी सौंपिके जानाकहा तिसका यह ध्वन्यर्थ नहीं है कि जिसकी पत्नी मरगई हो सो बनको नहीं जासक्ता क्योंकि पत्नी जीती होती तो सौंपिके बनवासलेते· तिससे वह सौंपिजाना नियम केवल उसका है कि जिस की पत्नीजीवती हो अन्यथा जिसकी मरचुकी हो तिसको भी बनबास लेना आपस्तंब आदि अनेक मुनीश्वरों ने कहा है—जब कि बूढी अवस्था में स्त्री मरजाने पर भी बनवास लेना सिद्ध हुआ—और—आचार मर्यादा परिपाटी के ८९ श्लोक से यह कहाथा (दाहयित्वाऽग्निहोत्रेणस्त्रियंवृत्तवतींपतिः आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलंबयन्) कि जिसकी भार्या मरजाय तो वह पति अपने अग्निहोत्र की अग्नि से सुलक्षणी स्त्री को जलाय कर देरी न करके शीघ्रता से विधि पूर्वक अपना विवाह करैं और अग्नियों का (पुनराधान) फेर स्थापन करैं जो भार्या के न रहने से मिट गईथीं—सो इस वचन से यह विरोध न समझ लेना कि आचारधर्म से विवाह करना आवश्यक लिख चुकेथे अब क्योंकर भार्या मरजाने बाद विवाह किये बिना बनको जासक्ता है—क्योंकि इस वचन से विवाह करने की आज्ञा केवल उसको दीगई थी कि जिसकी देह और अवस्था पुष्ट होनेसे काम भोगकी वासना खड़ी रही हो या बालक बच्चे पालने योग्यहों या संतान जिसके न हो और गृहस्थी धर्मकरने की वासना बाकी रहीहो और यहां जो पत्नीके न होनेपर भी बनवास लेना कहा सो उस दशा में कि जब गृहस्थी धर्म्मसे खूब तृप्ति होचुकी हो और पुत्र पौत्र भी समर्थ मौजूदहों या अपनी देहजर्जर होचुकीहो तिससे कोईसा विरोध नहीं केवलसमझका अन्तर है॥ ० ॥ विज्ञानेश्वर का कथन है कि· साग्निःसोपासनोव्रजेत्· यह वाक्य जो मूल श्लोक में कहा गया कि अग्नि सहित या उपासन अग्नि सहितजाय इसमें भी यह तात्पर्य है कि जिसके आधीही अग्नियों का स्थापन हो सो तो श्रौताग्नियों को और गृह्याग्नि को भी साथ लेजाय और जिसके सब अग्नियों का अर्थात् तीनों

का आधान हुआहो वह केवल एक श्रौताग्नि को लेजाय सबको नहीं ((ये अग्नियों की व्यवस्था अच्छी तरह उन्हीं की समझ में आसक्ती है कि जो अग्निहोत्री हों और अग्निहोत्र आदि यज्ञ विधान की पद्धति पढ़े हों उस विषय के विधिनिषेधों को जानतेहों क्योंकि यहाँ केवल उनका चर्चामात्र है कुछ पूरा विधि निषेध नहीं है इसका दृष्टांत जैसे जेठा भाई जिसका अनाहिताग्नि हो तो छोटा भाई श्रौताग्नि का आधान न करै यह भी एक निषेध है ऐसे और भी अनेक हेतु हैं सो सब उन्हीं यज्ञविधानों से जानेजासके हैं)) जहाँ कहीं ऐसे उक्त कारणों से श्रौताग्नि का आधान न होसका हो तहाँ वह वानप्रस्थ केवल उपासनाग्नि को ही लेजाय इत्यादि विवेचन कर्तव्य है इसीलिये साग्निःसोपासनोव्रजेत यह कहा गया॥ ७ ॥ अग्नि का साथ लेजाना भी इसी लिये कहा गया कि जो कर्म अग्निहोत्र आदि उसमें होते हैं सो होतेरहैं—इसीलिये मनुने वानप्रस्थ के धर्मों साथ यह अग्रोक्त नियम कहाहै= यथा=वैतानिकंचजुहुया दग्निहोत्रंयथाविधि दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासंचशक्तितः=अर्थात्—वानप्रस्थ बनमें रहते वैतानिक अग्नि होत्र भी यथा विधिसे होमै और दर्शनाम अमावस की पर्व तथा पूर्णिमा की पर्वकोभी अपनीशक्तिके अनुसार खाली न जाने देय किंतु उन में जो विशेष यज्ञ होते हैं सोभी करै ॥ अत्रवितर्कः—क्योंजी पुत्र को पत्नी सौंपिके वन में गया वहाँ पत्नीविना अग्निहोत्र आदि कर्मका अनुष्ठान क्योंकर होगा किंतु (पत्न्या सहयष्टव्यं) सपत्नीक यज्ञ करना कहा है॥ समाधान॰ यह तर्क तुम्हारी सत्य है परंतु पत्नीको सौंपि जाना इस आज्ञा की प्रबलता से ही उसके विना करने का अधिकार सिद्ध हुआ—और भी यह विधि है कि जिस अग्निहोत्री के यज्ञ रूपी व्रतके दिवस पत्नी रजस्वला होकर छूनेयोग्य न हो तो उस दिन उसको साथ वैठारे विना यज्ञ करै तैसा यहाँ बनमें भी समझ लेना कि विना पत्नी के होसक्ता है वरन पत्नी घर वैठी भी यह अनुमान किये रहेगी कि मैं पतिके साथही बनमें उपस्थित और यज्ञादि कर्मों में उसी तरह शामिलहूँ कि जैसे पहले घरके यज्ञ में होती थी तिससे कोई विरोध इसमें नहीं है न यह शंका करनी चाहिये कि जैसे ब्रह्मचारी जिसके स्त्रीका अभाव सदा होताहै तिसके बनमें जाने या विधुर जो स्त्रीसेविहीन या वियोगी हो सो····वनमेंजाय तिसकेलिये अग्निहोत्रआदिका परिलोपहै कि वे दोनों नहींकरते या नहींकरसक्तेहैं तैसेंजिसनेपुत्रोंकोपत्नीसौंपी वह भी न करसकैगा ऐसी शंका निपट व्यर्थहै—क्योंकि—ब्रह्मचारी और विधुर ये दोनों भी अग्निसाध्य कर्म्मों के अनधिकारी नहीं किंतु अधिकारी सिद्ध होते हैं क्योंकि

पंचम मास के उपरांत श्रावणिक अग्नि के आधान में उनका भी अधिकार देख पड़ता है इस बातका प्रमाण अगिला वचन वशिष्ठ का देखो=यथाह वशिष्ठः=वान प्रस्थोजटिलश्चीराजिनवासा नफालकृष्टमधितिष्ठेत अकृष्टंमूलफलंसंचिन्वीतऊर्ध्वरे ताः क्षमाशयोदद्यादेवनप्रतिगृह्णीयात ऊर्ध्वंपंचभ्योमासेभ्यः श्रावणिकेनाग्निमाधा याऽऽहिताग्निर्वृक्षमूलिकोदद्यादेवपितृमनुष्येभ्यः सगच्छेत्स्वर्गमानंत्यं=अर्थात–वशि ष्ठ ने यह कहा कि वानप्रस्थ बनकर जटा रखाये चीरनाम कोपीन बांधे या वनके वक्कल भोजपत्रआदि और अजिन मृगछाला बिस्तर कियेहुये रहे पर हलकेजुते खेत में न टिके बिन बोये जोते जो वन में आपसे उत्पन्न होकर गिरें ऐसे कंद मूल फलों को अच्छी शुचिता से बीन लेवें वीर्य अपना खींचके माथे में चढ़ाये हुये (ऊर्ध्व-रेताः) ब्रह्मचर्यसे धरतीपर सोया करे और किसी से कुछ प्रतिग्रह आदि न लेवें किंतु जहांतक होसके देताहीरहे उपरांत पांच महीनाके श्रावणिक नाम वैदिक मार्ग से (किंतु लौकिक से नहीं यह तात्पर्य है) वैदिक विधान से अग्नि का आधान कर-के आहिताग्नि बनाहुआ वृक्षकी जड़के पास निवास किये पितरों तथा मनुष्यों को भी देताही रहे सो वह ऐसा वानप्रस्थ आनंत्य स्वर्ग को जावै—अर्थात् ऐसे स्वर्ग में जाता है कि जहां उसकी तपस्या का अंत नहीं होसकता=इन सब नियमों को यो-गीश्वर अगिले ४६ के श्लोक में विशेषता से दर्शावेंगे॥ ४५॥

(वानप्रस्थेगुणविधिः)

अफालकृष्टेनाग्नींश्चपितृंदेवातिथीनपि। भृत्यांश्चतर्पयेत्श्मश्रुजटालोमभृदात्मवान् ४६॥

अर्थः—श्मश्रु जटालोम धारणकरी देहवाला अफालकृष्ट अन्नसे अग्नियों को और पितरों तथा देवताओं और अतिथियों और भृत्यों को भी तृप्तकरें=अर्थात्–पूर्वोक्तवानप्रस्थ श्मश्रु दाढीमूछ जटा शिरपर लोम रोमा जोबगल आदिकहीं शरीर मे होतेहो सोभी रखाये हुये तथा रोम के उपलक्षणमें नख भी रखे समझने आत्मवान् अर्थात् आत्मा जो परमात्माहै तिसकी उपासनारूपी शुद्ध सेवामें तत्पर बनारहिकर हल फालीसे जुते बिना धरती से उत्पन्न जो मुन्यन्न अनेक वन में होते हैं तिनसे उन अग्नियों को तृप्त करें जिनका साथ लेजाना पहिले कहिचुकेहैं अर्थात् उन में श्रौत वा स्मार्त कर्म करता है और पितरोंके निमित्त श्राद्ध तर्पण आदि भी करता है तथा देवतोंके निमित्त जो जो कर्म आवश्यकहैं सो करतारहै और अतिथि जो सबसे प्रथम दिवस अपूर्व कोई आवै ऐसे अतिथियों को नित्यही आह्निक विधानसे तृप्त करता

रहै और च शब्द के ध्वन्यर्थ से भिक्षादान भी उसीअन्नसे करतारहै(अधिकोक्तिमेंमनु केवचनदेखो) और अपि शब्द के ध्वन्यर्थ से भूतों को भी पंचयज्ञ विधान से तृप्त करता रहै और भृत्य जो अपने शिष्यादिकहों तिनको भी उसी अन्नसे अर्थात् जो कुछ करै सो सब वन के उत्पन्न नीवार आदि मुन्यन्नों से करै किन्तु खेत के उत्पन्नों से नहीं—और विशेषता अधिकोक्तिमे॥ ४६॥

४६अधिकोक्तिः—मूलश्लोक में दूसरे चकार के ध्वन्यर्थ से उनको भी संतृप्त करै जो कोई भूले भटके आश्रम के पास आपरैं=तथाचमनुः=यद्भक्षःस्यात्ततोदद्याद्बलिं भिक्षांचशक्तितः अब्मूलफलभिक्षाभी रर्चयेदाश्रमागतान्=अर्थात्—जो कुछ अपना भोजन होय तिसमें भूतबलि और भिक्षा भी शक्ति के अनुरूप किन्तु जल मूल फल भिक्षा इनसे सत्कारकरै उनका कि जो आश्रमपर आगयेहों=इसप्रकारपंचमहायज्ञों को निपटाइके उसका शेषअन्न आपभी प्रसादभोगै यहतात्पर्य अग्रोक्त मनुके वचनसे स्पष्टहै=यथा=देवताभ्यश्चतद्धुत्वावन्यंमेध्यतरंहविः शेषमात्मनियुंजीतलवणंचस्वयं कृतम्=अर्थात्—वनका उत्पन्न जो अत्यंतपवित्र हव्यहो सोदेवताओंके लिये होमिके (चकार से पितरों को भी) फिर बचाहुआ अपने उदर में युक्त करै और नमक जो ऊखर धरतीसे खारी आदि किसीतरहका उत्पन्नहो जिसको धोय नितारिके आपही शुद्धकिया हो सोई बर्त्तावामें लावै क्योंकि यज्ञोंके लिये वन का मुन्यन्न कहा तैसा नमक भी सूचित किया तिससे सभी वस्तु जो ग्राम्य हो किन्तु नगर आदि बस्तीसे उत्पन्न हो तिसका आहार करना निषेध ठहरा=तदप्याहमनुः=संत्यज्यग्राम्यमाहारं सर्वंचैवपरिच्छदम्=अर्थात्—बस्ती से उत्पन्न आहार को बिल्कुल त्यागि के और गृहस्थोंवाला सब सामान भी छोड़िके वनमें बसै॥ ०॥ अथवितर्कः—क्योंजी ग्राम्य आहारों का निपट त्यागकैसे होसक्ता है अमावस पूर्णमासी आदिके वेदोक्त यज्ञ भी धान चांवर आदि ग्राम्य द्रव्योंसे होते हैं जो वनमें भी करने कहे-इससे यह उत्तर न देना चाहिये कि(अफालकृष्ट) बिना जोते अन्नसे अग्नियों को तृप्त करना कहा तो इसविशेष वचन की सामर्थ्यसे धान आदि ग्राम्य द्रव्योंकी रोक पाईजातीहै क्योंकि यह विशेष वचन है स्मृतियोंका और धानआदि की आज्ञाहै वेदोक्त श्रुति वचन से तो इस दशापर स्मृति चाहैं विशेष विषय वालीहो तौभी उसके द्वारा श्रुति वचन का बाधकरना अन्याय ठहरताहै और वह(अफालकृष्टविधि)बिनाजुते अन्नकीआज्ञा भी स्मार्त अग्नि मे होने वाले कर्मोंके विषय पर आरूढहै तिससे यहाँ विरोध संभव होताहै—समाधान—यह आपने सत्य कहा कि धान आदिसे यज्ञ करने कहे परन्तु

धान आदि भी केवल जुते खेतसेनहीं होते किन्तु बिना जुते भी उत्पन्न होतेहैं तिससे कुछ विरोध नहीं है--इसी हेतु मनुने यह कहाहै कि=वासतशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैःस्वयमाहृतैः पुरोडाशांश्चरूंश्चैवविधिवन्निर्वपेत्पृथक्=अर्थात्--वनके मेध्यमुन्यन्न जो वसंत ऋतुमें उत्पन्नहों या शरद ऋतुमें उत्पन्नहों और आपही चुनिकेलावै तिनसे पुरोडास और चरू भी अर्थात् होम की सामग्री और खीर भी यथोक्त विधि से जुदे जुदे सब कामोंमें लगावै--यहाँ--मुन्यन्न जो कहे सो नीवार वेणु श्यामक आदि अनेक होतेहैं आपही उत्पन्न होनेसे मेध्यत्व नाम पवित्रता उनकी स्वतः प्रसिद्ध है तथापि मनु के वचन में जो मेध्य शब्द से विशेषण दियागया सो इसी लिये कि उन में जो ब्रीहि आदि यज्ञके योग्य हों तिनमें कार्य्य करै (किन्तु मेधनाम यज्ञ का है तिसके योग्य जो अन्न समझाजाय सो मेध्य कहावै--मेधोयज्ञस्तदर्हंमेध्यं) तिससे शंका न करनी चाहिये॥'०॥ मूल श्लोक में लोम शब्द से नख भी स्वीकार किये गयेहैं तिसका प्रमाण यह अग्रोक्तवचन है=यथाहमनुः=जटाश्चबिभृयान्नित्यंश्मश्रु लोमनखांस्तथा =अर्थात्--हमेशा जटारखावै और दाढ़ीमूछ तथा नखोंको भी॥ अबनीचे वानप्रस्थ को नाज आदि जरूरी द्रव्योंका संचय करना भी कहेंगे॥ ४६॥

(वानप्रस्थेधान्यादिसंचयनियमाः)

अह्नोमासस्यषण्णांवातथासंवत्सरस्यवा। अर्थस्यसंचयंकुर्य्यात्कृतमाश्वयुजेत्यजेत्॥ ४७॥

अक्षरार्थः--दिन का या महीने वा छमाही वा सालभर का अर्थ संचय करै और किया हुआ आसौज के महीना में त्यागिदे॥ ४७॥

अभिप्रायः--भोजन और भिक्षादेना आदि और यज्ञों में लगाना आदि जो जो मामूली ख़र्च उसके होते हों तिनसबके अनुमान से एकदिनके निर्वाह योग्य या महीनाभरके या छमाहीके निर्वाहयोग्य या वर्षमात्र के निर्वाह योग्य अर्थका संचय वानप्रस्थ भी करै (या शब्दकीलक्षणासे यह तात्पर्यहै कि जहां नित्य नया अन्नप्राप्त होसक्ताहो तहाँ एकदिन के योग्य धरराखै अधिक नहीं एवं जिस वनमें जैसी कठिनता या वर्षाकालमें मिल सकने की कठिनता देखि परती हो तिसके अनुरूप संचय करै किन्तु कठिनतासे अधिक नहीं। यद्दा संचय करतेहुये कभी अधिक संचयहो भी जाय तो उसको बाँटि बर्ताइ देवै एवं वर्षा ऋतु के पीछे क्वार के महीना में संचय किये हुये सभी को वर्त्ताइ देवै क्योंकि प्रथम तो वर्षा में जीवजन्तु पड़िजाने से यज्ञ के योग्य नहींरहता और दूसरे वर्षा के बाद नवीन द्रव्यों का संग्रह किया चाहिये तिससे पूर्वसंचित को त्यागि देवै॥ ४७॥

(वानप्रस्थेविशेषनियमाः)

दांतस्त्रिषवणस्नायीनिवृत्तश्चप्रतिग्रहात्। स्वाध्यायवान्दानशीलःसर्वसत्वहितेरतः४८॥
दंतोलूखलिकःकालपक्वाशीवाश्मकुट्टकः। श्रौतंस्मार्तंफलस्नेहैःकर्मकुर्यात्तथाक्रियाः ४९॥

अर्थः—दांतहो किंतु दर्प से रहित स्वभाव हो त्रिषवणस्नायी तीनोंकालमें स्नान किया करै प्रतिग्रह लेनेसे मुँह फेरे रहै चाहैं तैसा लोभ लालच कोई आकर दिखावै तौभी स्वाध्यायवान् किंतु अपने वेदके पाठमें, अभ्यास आवृत्तियों से करतारहै. दानशीलहोय किन्तुफल मूल भिक्षाआदि देतारहै सभी जीवोंका हितकरतारहै ४८॥ दंतोलूखलिक बनै अर्थात् ओखली खल्लड आदि न राखै अपने दाँतों को गाली मूसर आदि मानै और उन्हीं से क्वादि तोडि के भक्षण किया करै. कालपक्वाशी बनै अर्थात् नीवार वेणु श्यामा आदि मुन्यन्न और बेर इंगुद आदि फल भी जो केवल कालहीसे पकते और खाने योग्य होजाते हैं अग्नि की अपेक्षा उनमें नहीं रहती तिनको खाकर समय बिताया करै यद्यग्नि सेभी पकाकर किसी अवसर में खाय तौ कुछ दोष नहींहै परंतु अग्निके वशीभूत न होजाय कि उसमें पकाये बिनाखाही न सकें यह तात्पर्य है मनु के वचन से अधिकोक्ति में. यद्वा इसी प्रकार जो केवल दाँतों से न खासके सो किसीअवसर में पत्थरपर कूटिकेभी खाय पर चक्कीआदिका संग्रह न राखै—एवं श्रौत और स्मार्त कर्म यज्ञ होम आदि तथा भोजन आदि और भी क्रियायें जो अवश्य चिकनाई से होते हों सो सब फलोंको भोगसे उपजे स्नेहों से करै दृष्टांत जैसे महुआकी गुठलीका तेल वा बडहरकी गुठलीका इत्यादि पवित्र फल चिकनाईवाले वनमें बहुत होतेहैं तिनसे काम चलावै पर घृतादिक स्नेहों का वर्ताव न करै॥ ४९॥

४८अधिकोक्तिः—कालपक्वभुगेव वा इतिमनुः=अर्थात्मनुने भी विकल्प दर्शाया है कि अग्निसे पका यद्वा कालहीसे पका भोजन करै॥ अन्यच, मनुरेव=मेध्यवृक्षो द्भवानद्यात्स्नेहांश्चफलसंभवान्=अर्थात्–पवित्र वृक्षोंके फलखाय तथा उनके फलों से उत्पन्न चिकनाइयों को भी खाय॥ ४८॥ ४९॥

(वानप्रस्थस्यान्येपिनियमाः)

चांद्रायणैर्नयेत्कालंकृच्छ्रैर्वावर्तयेत्सदा। पक्षेगतेवाप्यश्नीयान्मासेवाऽहनिवागते ५०॥
स्वप्याद्भूमौशुचीरात्रौदिवासंप्रपदैर्नयेत्। स्थानासनविहारैर्वायोगाभ्यासेनवातथा ५१॥

अक्षरार्थः—चांद्रायणों से काल को लेवै या सदा कृच्छ्रों से वर्तै यद्वा पक्ष बीते

भोजन करै या महीना बीते या दिनके बीति जाने में ५० ॥ रात्रिमें शुचि होके धरती पर सोवै तथा दिन में संप्रदों से काल बितावै यद्वा स्थान आसन के विहारों से या योगाभ्यासही से काल बितावै ॥ ५१ ॥

अभिप्रायः—अग्रोक्त नियम इस तात्पर्य पर दर्शाते हैं कि वानप्रस्थ को दोबार आदि भोजन गृहस्थीकी तरह न करना चाहिये क्योंकि उससे देहका पुरुषार्थ बढ़ता है तिससे इंद्रियां भी प्रबलहोके सताने लगती हैं तिससे—वानप्रस्थ चांद्रायणव्रतको बारंवार साधै जिसकी विधि आगे कही जायगी अथवा कृच्छ्र नामक प्राजापत्य आदि व्रतोंसे सदा अपने कालको बितावै या यह नियम साधै कि पक्षनाम अँधेरा उजेरा पखवारा पूरा होनेपर एकदिन भोजन किया करै या दोनोंपाख बिताकर पूरे एक महीना बाद भोजन कियाकरै अथवाये न होसकें तो दिनमात्र बिताकर केवल रात्रिमें भोजन कियाकरै यद्वा अपि शब्दके ध्वन्यर्थ से चौथेकाल आदिका कोई नियमसाधै जैसाअधिकोक्तिमें मनुका वचनहै-इनसबनियमोंमें शक्तिके अनुसार विकल्प समुझिलेना कि जैसा नियम साधन होसके सो करना चाहिये ५०॥ और भी सबकामों से निपटेपीछे जो रातिका समय खाली रहिजाय तिसमें मनको जीते हुये सावधान पवित्र देहसे धरतीपरसोवै इसी प्रकार दिनमें जोकुछ काल नित्यकृत्यों से फालतू रहि जाय (तहां दिनमें सोउने का निषेध पूरपूरहै)कदाचित उसमें भी निद्रा या तंद्रा आकर घेरै तहां निद्रा तंद्राकोदूरि करना चाहिके पैरोंके अग्रभागसे अर्थात पाँचौ अंगुरियोंके भार चहलकदमीकरने लगै किंतुधरती पर एँड़ी को न लगने देवै सिर्फ अंगुरियोंसे चला फिरी करिकेनीद हटावै(दिवा संप्रपदैर्नयेत)यह इसी पदका अर्थ है) अथवा निद्राके न लगने परभी यदि चित्तको उद्वेग आताहो तौ फिर कुछ खड़े कुछ बैठे होकर बारम्बार कालकोबितावै यहां स्थानकाविहार खड़े होकर टहलने का अर्थ है कि जिसमें एँड़ी सहितपूरे पैरसे खड़ा होना औरचहलकदमी करनासिद्धहोता है और आसनका विहार बैठिजाने का अर्थहै और सबका तात्पर्य केवलयही है कि दिनमें निद्राके बिना भी लोटै नहीं मन बहिलाने के लिये कभी खड़ा कभी बैठा काल बितावै अथवा सब से उत्तम यह उपाय है कि योगाभ्यास करने लगै अर्थात आसन पर बैठिके परमेश्वर के ध्यान सहित बारम्बार प्राणायामों की साधना करने लगै (कदाचित यह प्रश्न किया जावै कि योगाभ्यासरूपी प्राणायाम कैसे किया जाता होगा तिसका उत्तर आगे चलिके २० बीसवें परिच्छेदमें १९८ एकसौ अट्ठानवे मूलश्लोकसे आदि होकर देखना॥ ५१॥

५० अधिकोक्तिः=मनुः=नक्तंवान्नंसमश्नीयाद्दिवावाऽऽहृत्य शक्तितः चतुर्थका

लिकोवास्यात् यद्वाऽष्टमकालिकः (एतेषांकालनियमानां शक्त्यपेक्षयाविकल्पं इतिमिताक्षरा=अर्थात्—मनुने यह कहाहै कि अपनी शक्ति के अनुसार चाहैं राति में भोजन करने का नियम राखै या दिनमेंही एकबार थोड़ा खानेका नियम राखै तिस में भी दिनके चौथे कालमें खानेका नियम राखै यद्वा आठवें कालमें भोजनका नियम राखै (मिताक्षराकार कहिते हैं कि इन सब जुदे जुदे काल नियमों में से अपनी शक्ति के अनुकूल कोई एक नियम रावै फिर चाहैं तभी वदलिके दूसरा नियम रावने लगै जो पहिले में अड़चल प्रतीत होय इसी लिये विकल्प रक्खे गये हैं ॥ ५०॥ इक्या- उनके मूलश्लोक में योगाभ्यास का जो चर्चा किया तिसके भी अनेक डौल होते हैं उसके मध्ये मनुने यह कहाहै कि (विविधाश्चोपनिषदीरात्मसंसिद्धयेश्रुतीः) आत्म सिद्धि चाहनेके लिये विविध भाँतिकी उपनिषदी श्रुतियां ११८० ग्यारहसौ अस्सी उपनिषदों में चारों वेदके सारांश रूपसे प्रसिद्ध हैं तिनको भी वानप्रस्थ अपने फालतू कालमें विचारै फिर उनके द्वारा मनन करिके प्राणायाम ध्यान योग समाधि पर आरूढ़ होवै—क्योंकि—उपनिषद् यह शब्दही वेदके सारांश का नाम है (और ब्रह्म विद्या जो अध्यात्म कहाती है तिसका भी उपनिषद् नामहै उसकी श्रुतियां तत्त्वमसि आदि वाक्योंको जानना) और भी (अत्रचोपनिषच्छब्दोब्रह्मविद्यैकगोचरः तच्छब्दावयवार्थस्यविद्यायामेवसंभवात्) ब्रह्म और आत्माके साक्षात्कार एकही रूप होजानेका अर्थ भी उपनिषद् नाम कहाता है तिससे विशेषकर उपनिषदों की आराधना करै=कदाचित्—यह शंका करी जावै कि वानप्रस्थ के और सब नियम कहे गये परंतु स्नान आचमन आदि नित्यकृत्योंका प्रकार कुछ न कहागया सो कैसेकरै· तहां ब्रह्मचारी के प्रकरण आदि स्थलोंपर आचारकांडमें जैसा ब्रह्मचारीके निमित्त पर कहिचुके तैसा यहां इसको भी वही प्रकार समुझिलेना—क्योंकि (उत्तरेषांचैतदविरोधीतिगौतमः) गौतम ने शौचका विधान ब्रह्मचारीके अवलम्बसे कहिकर यह कहिदिया है कि पिछले आश्रमों को भी यही विधान अविरोधी जानो ॥ ५१ ॥

(वानप्रस्थस्यसाधनविशेषधर्माः)

ग्रीष्मेपंचाग्निमध्यस्थोवर्षासुस्थंडिलेशयः। आर्द्रवासास्तुहेमंतेशक्त्यावापितपश्चरेत् ५२

यःकंटकैर्वितुदतिचंदनैर्यश्चलिंपति। अक्रुद्धोऽपरितुष्टश्चसमस्तस्यचतस्यच ५३

अग्नीन्वाऽप्यात्मसात्कृत्वावृक्षावासोमिताशनः। वानप्रस्थगृहेष्वेवयात्रार्थंभैक्ष्यमाचरेत् ५४

अर्थः—ग्रीष्ममें पंचाग्नि बीच बैठे·वर्षाओं में स्थंडिल पर बैठे लेटै· हेमंत में भी जो वस्त्र पहिरेहुये तपकरै या शक्तिके अनुरूप तपकरै=अर्थात्—गरमी बरसात जाड़ा

ये तीनिही ऋतु साल भरमें प्रधान होतीहैं इनमें ऐसी रीतिसे बानप्रस्थको तपकरना चाहिये कि चैत से असाढ तक चार महीने पंचाग्नि तापै अर्थात् जंगल में बैठि के अपने चारों ओर चार अग्नी जलावै ऊपरसे पांचवीं आगि सूर्यका आताप होय यह पंचाग्नि का स्वरूप है. फिर श्रावण से कातिक तक चार महीने जब जब कभी वर्षा होय तब स्थंडिल एक चबूतरा जो बिना छायाकी धरती पर जंगल आदि सूने स्थान में बनायाहो तिसपर बैठे लेटे सभी तरहसे वर्षाओंको बरसते समय अपने मूड़पर झेलै ऐसे चबूतरे पर किसी पेड़की छाया भी न होनी चाहिये॰ फिर हेमंत जाड़ेकी ऋतुमें मार्गशिर महीनासे फागुनतक चार महीने भर भीजा कपड़ा पहिने रहाकरै॰ जिसको ऐसा तप करनेवाली शक्ति इतनी न होय सो जितनी उसमें शक्तिहोय उसीके अनुरूप तपस्या करै परंतु जिस प्रकारसे शरीर दुर्बल होसके सो करना चाहिये॥ ५२॥ दूसरा धर्म कहिते हैं कि—जो कांटों से छेदता है या जो चंदनों से लेप करता है तिस पर न क्रोध करना न संतुष्टि मानना किंतु उसको और उसको भी समान बुद्धि राखै= अर्थात्—बानप्रस्थ के साथ यदि कोई खोटे बचन कहि कर या कुछ खोटा काम करिके उसे ऐसी पीड़ा देने लगै मानो कांटोंसे छेदता है तिस पर क्रोध भी न करना चाहिये या यदि कोई ऐसी सेवा शुश्रूषा आदि भलाई करने लगै जानों शीतल सुगंधिमान् चंदनोंका लेप करता होय तिसपर भी अत्यंत प्रसन्नता अपनी न जाहर करै किंतु दोनोंपर एकहीसी प्रकृति अपनी उदासीन बनीराखै॥ ५३॥ तीसरा धर्म कहितेहैं कि -अग्नियों को आत्मामें समावेश करिके थोड़ा भोजन करतेहुये वृक्षही के नीचे वासकरै तहां बानप्रस्थोंकेही घरोंमें प्राणयात्रा के लिये भिक्षा आचरै= अर्थात्—जिन अग्नियों की सेवा करनी ४६ छयालीस मूलश्लोक में कहि चुके हैं उन्हीं की सेवामें जो तत्पर होरहा हो और उस रीतिसे करनेकी समर्थ जिसमें न रही हो तिसके लिये यह और धर्म कहा है कि अग्नियोंको अपने हृदयरूपी आत्मा में स्थापन करिके झोपड़ी छोड़ि छाड़िके चाहैं तिस वृक्षके नीचे अपनी कुटी मानिके निवास किया करै॰ इसका विशेष ब्यौरा अधिकोक्ति में देखना॥ ५४॥

५२ अधिकोक्तिः—तपके साथ देहका दुर्बल करना मनुने स्पष्ट कहाहै=यथा= तपश्चरंश्चोग्रतरंशोषयेद्देहमात्मनः=अर्थात्—बानप्रस्थ बड़ा उग्रतप करते हुये अपने देहको सुखावै॥ ५२॥ ५३॥ पूर्वोक्त अग्नियों को आत्मसात् करना मनुने भी विस्पष्ट कहाहै=यथा=अग्नीन्स्वात्मनिवैतानान्समारोप्ययथाविधि अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः (अत्रमुनिर्मौनव्रतयुक्तः फलमूलासंभवेच यावत्प्राणधारणाभ

वति तावन्मात्रंभैक्ष्यंवानप्रस्थगृहेष्वेवाचरे दितिमिताक्षरा=अर्थात्—जिस किसी वानप्रस्थ ने बनमे कुटी आदिकी रचना सहित श्रौतविधि से यज्ञके वितान में अग्नियों का स्थापन किया होय सो कुछ काल सेवन करके सेवा करने से असमर्थ होजाय अथवा कुटी और अन्नोंका संग्रह आदि विस्तार जैसा छेयालीस मूलश्लोक से लेकर पचास तक पाँच श्लोकों में दर्शाया था तिसका वर्त्ताव करते करते भी पेटभर जाय जिससे वैराग्य उत्पन्न होने लगै इसीसे सबआडंबर छोडिछाँडिके स्वतंत्र नियम धर्म्मकी साधना किया चाहै तिनके लिये यही चौवन ५४ का मूलश्लोक योगीश्वर ने भी कहा और उन्हींके निमित्तपर मनुभी यह कहते हैं कि—वितानकीस्थापन करी अग्नियो को यथोक्त विधि के साथ अपने हृदय रूपी आत्मा में आरोपित करिके अनग्निहोजावे और अनिकेत होजावे कि अग्निभी न रक्खे और कुटीआदि स्थान का बखेड़ा भी न रक्खे और मुनिरूप होकर कंद मूल फल भोजन कियाकरै और वृक्षो के नीचे विश्राम लेकर चाहे तहाँ इच्छा के अनुसार टिका करे (इसपर मिताक्षराकार कहते हैं कि मौन रहनेका व्रतसाधै तिससे मुनि कहावै यह तात्पर्य है) और इन्हीं फलमूल आदि के न मिलने में योगीश्वर के मूल श्लोक वालानियम समझना कि प्राणो की धारणा बनी रहने के अर्थमें भिक्षाको आचरै परन्तु भिक्षाभी सर्वत्र नहीं माँगै किंतु केवल वानप्रस्थोंके घर माँगै जो पहिली रीतिके अनुसारकुटी और अन्न का संग्रह किये स्थानधारी बने बैठे हों (उनका धर्म देखो ४६ । ४७ श्लोकोंसे) अतिथि को भिक्षा देना उन्हींका यह धर्महै तथा अनिकेतनवानप्रस्थका उन्हींसे भिक्षालेनेकाधर्महै जो अभीवर्णनहोरहाहै=परंतु=जबऐसीभिक्षा न मिलसकै तब क्या करनाचाहिये तिसका धर्म दूसरा है सो देखो अगले मूलश्लोक में ॥ ५४ ॥

(क्वचिद्ग्रामादपि भिक्षाचरण)

ग्रामादाहृत्यवाग्रासानष्टौभुंजीतवाग्यत । ५५ पूर्वार्ध

अर्थः—या ग्राम से भिक्षा लाकर आठ ग्रासो को मौन साधे वाणी को जीतेहुये भोगै=अर्थात् —पूर्वोक्त फल मूल आदि न मिलने पर वानप्रस्थो के घरभी निकट न होयँ तिनकी भिक्षा न मिलसकै तब अन्य किसी ग्रामही से जाकर भिक्षा लावै ॥ १॥ ५५

५५ अधिकोक्तिः—पहिले ४६ छेयालीस मूलश्लोकों से स्थानधारीवानप्रस्थों के जो धर्म कहे गयेथे उनमे नीवार श्यामक आदि मुनिओं के अन्न भोजन करना

कहा गया था उस नियम का लोप यहाँ समझना यह स्वतः सिद्ध होताहै क्योंकि वानप्रस्थोंके घरकी भिक्षा मिलती तो वह नियम लोप न होता—किंतु-ग्रामसेमाँगी हुई भिक्षामें मुन्यन्न वाला नियम नहीं चलसक्ता है अर्थात् ग्रामवासी लोगवही भिक्षा देसक्तेहैं जो आप खाते होंगे कुछ इनके लिये मुन्यन्न लाकर जुदे नहींपकावेंगे और भिक्षाभी भात रोटी पूरी आदि पकाये अन्नकी समझना क्योंकि कुटी और चूल्हा आदि अग्नियों का जजाल मेटिमाटि निरग्नि होकर वृक्ष तले का निवास करना कहिचुके हैं तिससे कच्चेअन्नकी भिक्षाका अपवाद सिद्धहोताहै· इसी लिये गिनमाआठ कौर का नियम ऊपर कहागया-परंतु आठ कौर से जिस किसी की प्राणधारणा न होसक्ती हो तहाँ सोरह कवल भोगे जैसा यह वचन है (अष्टौग्रासामुनेर्वैस्यंवानप्रस्थस्यषोडश) अर्थात् आठग्रास भिक्षा भोजन करना मुनिका धर्म्म है सोरहग्रास वानप्रस्थ के यहभी एक नियम है ग्रन्थान्तर में ॥ ँ ॥ ५५ ॥ कदाचित् यह शंका करीजाय कि वानप्रस्थ कितने दिन कौन कौन से नियमों को राखें· सो कुछ अवधि का नियम इसमें नहीं केवल उसकी इच्छा और समर्थ पर आरूढ है कि चाहे सदा सर्वदा कुटीचर होके रहे या उससे मन हटजाय तब ५४ चौवन पचपन श्लोकवाली दशापर आरूढ होय अथवा अपने शरीर में समर्थ देखै और सन्यास लेकर चौथे आश्रम का आनंद भोगना चाहे तौफिर आगे ५६ छप्पन मूल श्लोक वाले मार्गसे सन्यासी होजाय तिसके लिये इतना नियम है कि (यावताकालेनतीव्रतपःशोषितवपुषो विषयकषायपरिपाकोभवति पुनश्चमदोद्भवाशंकानोद्भावयते तावत्कालंवनवासंकृत्वा तत्क्षमनंतरंमोक्षेमनःकुर्यात्) अर्थात्—जितने दिनों में गाहिरा तप करने से अपने शरीरकी सुखाय के निर्बल करपावे जिससे काम क्रोध लोभ मोह रूपी विषयों का राग पकि जाकर छुटिजाय जिससे आगे को मद मात्सर्य पैदा होने की शंका बाक्की न रहै उतने काल तक वनमें वास करके अनंतर उसके लगमाही मोक्षरूप आश्रम जो संन्यास है तामें मन लगावे—अथवा यह कोईसी समर्थ अपने में न देखै किंतु सर्वथाही बुढापा आदि से असमर्थ होजाय तो फिर सन्यास लेने विनाही उन प्रकारों से शरीर त्यागै कि जैसा आगे उत्तरार्ध पचपन के मूल या उसी को अधिकोक्ति में कहेंगे ॥

(सर्वथाऽसमर्थवानप्रस्थस्य प्राणत्यागरूपंमहाप्रस्थानं)

वायुभक्ष प्रागुदीचींगच्छेद्वावर्ष्मसंक्षयात् ५५ ॥

अर्थः—या वायू भक्षहोकर शरीर का संक्षय होने ताईं पूर्व उत्तर कोण में ईशान

दिशाको चला जावे=अर्थात्—जिस वानप्रस्थ पर अत्यंत बुढापा या प्रवल रोगहोने आदि कारणों से ग्राम जाकर भिक्षा भी न लाई जाय किंतु चलाफिरी आदि कोई भी काम जिसपर न होसके सो ऐसाकरै कि वायुको भक्षण करते हुये ईशानीदिशा के पर्वती मार्गों में तहाँतक सीधा तुक्काके समान चलाजावै कि जहाँपर उसकादेह-पात होजाय· यही महा प्रस्थान कहा जाता है॥ ५५॥

५५ अधिकोक्तिः=मनुः=अपराजितांवास्थायगच्छेद्दिशमजिह्मगः=अर्थात्—मनु ने यहभीकहाहै किजो पहिलेकहे नियम न चलसकें तो अपराजिता नामकीईशानी दिशामें उपस्थितहोकर सीधेपैरों सूत बांधेविना विचारमार्गके देहांतपर्यंतचलाजाय· इसी को महा प्रस्थान भी कहते हैं—यद्यपि—वानप्रस्थ के लिये सर्वत्र यह विधान होसक्ता है कि वह जिस देशमें उपस्थित होय तहाँ अपने ठिकाने से लेकर ईशानी दिशा कोप्रस्थान करै तथापि विशेष कर हिमालय पर्वत इस कार्य के निमित्त में प्रसिद्ध है कि जहाँ पांडव आदि अनेक महात्मा देह त्यागने को पहुँचेक्योंकि उसमें देह त्यागने से सीधा स्वर्गहीमें जाताहै बल्कि हिमालय के उत्तर भागमें स्वर्गारोहण पंथ इस नाम से मार्गही एक सबसे जुदा प्रसिद्ध है इसी को महापथ भी कहते हैं उसीको ठीक महा प्रस्थान जानों क्योंकि स्वर्ग पर चढि जाने का मार्ग है इसका ठिकाना भी श्री बद्रीनाथ जी से पचासही साठ कोसके अनुमान अंतर पर सुनाजाता है—बल्कि बहुधा तीर्थ के यात्री लोग अद्यापि उसके दर्शनमात्र के निमित्त जाया करते थे उनमें से बहुतेरे अपनी श्रद्धासे देह त्यागने को भी आगे बढिजाते थे· कुछ दिनों से अँगरेज़ी सरकार ने देह त्यागने का निषेध क़ायम करके वहाँके अधिकर्ता पंडालोगों से इक़रारभी लेलियेसुनेजातेहैं कि उस मार्गके दर्शनमात्रकेनिमित्त यात्री जानेपावैं लेकिन देहत्यागनेके लियेवहाँसे आगे न बढने पावें· कदाचित् इससेवि-परीत किसीसालमें एक दो यात्री आगे बढिजाय तो प्रतिमूर्ति इतनाजुर्माना(धनदंड) पंडा लोगों को देना पड़े· इस लिये दर्शन मात्रके लिये भी जोकोई यात्री जाना चाहतेहैं सो पंडालोगों की जमानत से जाने पाते है अन्यथा नहीं· क्योंकि धर्मशास्त्र में जो देह त्यागना इसी उग्रे पर आदेश किया गया सो हर एक मनुष्यों को नहीं केवल वानप्रस्थ का यह धर्म है कि जिसने पूर्वोक्त प्रकारों से तपस्या भी कुछ संचय करी हो और निपट अपने सब अंगों से निर्बल भी होचुका हो॥ ०॥ जब कोई वानप्रस्थ इतना निर्बल होचुका हो जिस पर महाप्रस्थान की यात्रा भी न होसके सो औरही प्रकारोंसे देह त्यागै कि जिन प्रकारों की आज्ञा शास्त्रमे लिखीहोय=तथाच स्मृत्यं

तरम=वानप्रस्थोवीराध्वानं ज्वलनांबुप्रवेशनं भृगुपतनंबानुतिष्ठेत=अर्थात्--वानप्रस्थ अपना देहछोड़नेके लियेचाहैं वीरोंके रास्तेमें प्रवेश करै कि जहां दुतरफा तीरंदाजी आदि शस्त्रोंकी वर्षा होती होय या बहुत बड़े अग्निमें या गहिरे जलमें प्रवेश करै या पर्वत आदि ऊंचे से गिरि परै तौभी उसको आत्म हत्याका दोष नहीं लगता है= बल्कि यह फल होताहै कि जो कोई वानप्रस्थ पचासवें मूलश्लोक से लेकर यहां तक दर्शाये चांद्रायण आदिसे लेकर शरीर त्यागने पर्यंत क्रमसे सब धर्मोंका साधन करसके या विरले किसी एकही दो का·सो ब्रह्मलोकमें जाकर पूज्य होताहै=यथा हमनुः=आसांमहर्षिचर्याणां त्यक्त्वाऽन्यतमयातनुम वीतशोकभयोविप्रोब्रह्मलोकेम हीयते=अर्थात्–इन महाऋषियोंकी अनेक धर्मचर्याओंमें किसी एकहू के आश्रय भूत शरीरको त्यागिकेभयशोकसेछुटिकरब्राह्मण ब्रह्मलोकमें जाकरपूज्यहोताहै५५॥

(अत्र प्रसंगादेव वक्ष्यमाण संन्यासाश्रमस्यप्रशंसायांप्रकर्षः)

मिताक्षराकार कहिते हैं कि ब्रह्मलोकमें पहुँचना कहा सो यह ब्रह्मलोक स्वर्गों मध्ये किसी एक जुदे स्थान का नामहै किंतु नित्यंब्रह्म को न समुझि लेना क्योंकि उस पूर्णब्रह्म के साथ कहीं लोक शब्दकी योजना होती नहीं सुनी और इसमें लोक शब्द भी लगाहै तिससे और इससे भी कि उस पूर्णब्रह्मके समीप चौथे आश्रम का संन्यासधर्म साधे विना मुक्तिपद देना मंजूर नहीं होताहै यह चर्चा केवल तीसरे आश्रमके वानप्रस्थ का होरहा है·फिर कहितेहैं कि·इक्यावन मूलश्लोकमें योगाभ्यास का उपदेश वानप्रस्थको भी चर्चामात्र आयाथा तिसके द्वारा ब्रह्मकी उपासना सिद्ध होतीहै जो आगे चौथे आश्रम के स्थलपर स्पष्ट करी जायगी उस चर्चा से भी यह मत समुझिलेना कि वानप्रस्थको उस पूर्णब्रह्मकी उपासनासे समीपता मिल सक्ती होगी क्योंकि ब्रह्मकी उपासना निपट ब्रह्मकी समीपताही नहींदेती किंतु सालोक्य आदि भेदोंवाली मुक्तिके भी अर्थसे ब्रह्मकी उपासना करी जातीहै (इतना कहिकर मिताक्षराकार फिर भी संन्यासियों का पक्ष पालन करने पर आग्रह खड़ा करते हैं (कि) यही आशय आगिली श्रुत्युक्त व्यवस्था से भी हम संसिद्ध करते हैं सो देखो) अतएव श्रुतौ त्रयोधर्मस्कंधा इत्युपक्रम्य-यज्ञोऽध्ययनंदान मितिप्रथमः १ तपएवेति द्वितीयः २ ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासीतृतीयः ३ अत्यन्तमाचार्यकुल एवात्मान मवसा दयन्निति) गार्हस्थ्य १ वानप्रस्थ्य २ नैष्ठिकत्व ३ स्वरूप मभिधाय-सर्व एते पुण्य लोका भवंतीति त्रयाणां पुण्यलोक प्राप्तिमभिधाय-ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेतीति पारिशे ष्यात् परिव्राजकस्यैव ब्रह्मसंस्थस्य मुक्तिलक्षणामृतत्व प्राप्तिरभिहिता–यदपि-

श्राद्धकृत्सत्यवादीच गृहस्थोपिविमुच्यते इतिगृहस्थस्यापि मोक्षप्रतिपादनंतद्भवांतरानुभूतपारिव्राज्यस्यैवेत्यवगंतव्यं=अर्थात्--वे कहिते हैं कि जैसा ब्यौरा ऊपर हमने कहि समुझाया उसी सवबसे श्रुति में भी यह भूमिका पहिले कहिकर कि धर्म के तीनि स्कंध (बड़े मोटेमुद्दे) होतेहैं--फिर उन तीनोंके रूप जुदे दर्शायेगये कि नित्यनैमित्तिक आदि यज्ञों का करना और वेद विद्याका अभ्यास राखना और दान करते रहिना यह सब काम गृहस्थी का होताहै सो धर्म का पहिला मुद्दा जानना १ और केवल तप करना वानप्रस्थका स्वाभाविक काम होताहै सो धर्मका दूसरा मुद्दा जानना २ और ब्रह्मचारी होके सदा अपने आचार्य गुरुके कुलमें वासकरै और निपट आचार्य के कुलहीमें अपने देहको मरण पर्यंत खपावै यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी का काम है सो धर्मका तीसरा स्कंध जानौं-मिताक्षराकार कहिते हैं कि इस प्रकार धर्मके तीनि स्कंधोंके बहाने से गृहस्थी१ वानप्रस्थ २ नैष्ठिक ब्रह्मचारी ३ इन तीनों का स्वरूप समुझाइके-यह कहा गया है कि ये तीनों आश्रमी यदि इसी प्रकार अपने कामों का वर्तावा करें तौ ये सभी पवित्र लोकों में जाते हैं इसरीति से तीनों को पुण्य लोकों का मिलना समझाय के--यह कहना छोड़ि दिया गयाकि ब्रह्म के आराधन में आरूढ होने से मोक्षरूपी अमृत को पाते- सो इसलिये छोड़ागया कि चौथा संन्यास धर्मका आश्रम जो बाक़ी रहगया जो परिव्राजकों का ठिकाना बड़ा प्रसिद्ध है उसी को अमृतत्व मिलता है अर्थात् उस कथन के छोड़ देने से भी यह आशय सिद्ध होता है कि साक्षात् ब्रह्म के स्वरूप का ध्यान योग आराधन करनेवाला परिव्राजक नाम संन्यासीही मुक्ति रूपी अमृतत्व को पाता है ग्रहस्थी आदि तीनों में और कोई नहीं पासक्ता है (यह कहकर मिताक्षराकार फिर कहते हैं कि) यद्यपि आगे २०५ दोसौपाँचवें मूल श्लोक में योगीश्वर आपही अपने मुखसे यह कहैंगे कि ऐसे लक्षणों वाला गृहस्थी पुरुष भी मुक्ति को पाता है तौ भी वह उसके लिये समझना जो पहिले जन्मों में परिव्राजक होकर संन्यास धर्मका साधन करचुका और उस जगह किसी हेतु से मुक्ति उसकी न होसकी हो तो इस जन्म से गृहस्थी होते भी मोक्षफल का अधिकारी होजायगा परंतु कुछ नियमात्मक प्रतिज्ञा नहीं है--अत्र मर्यादाप्रियस्तु=श्रीमन्मिताक्षराकार परिव्राजकने वानप्रस्थके प्रसंगसे बहुत सुंदर यह वर्णन किया जिससे संन्यास धर्मका प्रकरण जो आगे प्रारंभ होनेवाला है तिसकी महिमा जानपड़ी और महिमा जानपड़ने से उसमें चित्त लगाने का उत्साह बढ़ने लगा- तहाँ यह वार्त्ता एक जुदी है कि उन्हों ने गृहस्थी आदि किसी

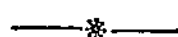
को भी मुक्तिभागी न ठहिराकर केवल संन्यासी को मुक्तिपात्र ठहिराया सो भी कुछ अनुचित नहीं क्योंकि श्रीमन्मिताक्षराकार आपही परिव्राजक संन्यासी थे अपने आश्रम का विशेष पक्ष किया तो कुछदोषनहीं किंतु सबकोई अपनीजाति ठिकाने आदि की महिमा बढाता है तथापि मर्यादा प्रिय को यह चिंता खडी हुई कि जिस गृहस्थी को योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने २०५ दोसौ पाँचवें मूल श्लोक से डंका की चोट घंटा के घोष तुल्य मोक्ष का अधिकारी ठहराया है तिसको भी मिताक्षराकारने न माना तो फिर यह आशय सिद्धहोता है कि मोक्षफल पानेके लिये सबही को संन्यासी होना चाहिये • तिस में यह सब से बडा घबराहट है कि जब सभी संन्यासी होजायँ तो फिर उनके पालन के कामों को कौन करे क्योंकि संन्यासी को चूल्हा चक्की आदि सब कामों का निषेधहै पर अबतो उनके भिक्षा भोजनआदि गृहस्थी लोग बनाते और संन्यासी आदि सभी आश्रमों का पालन वेही करते हैं फिर कौन किसकी बात बूझै जब गृहस्थी का अभाव होजाय—ईश्वर की इच्छा से गृहस्थी ही गृहस्थी आदि चारों आश्रम का पालन किया करता है इसीलिये गृहस्थ का आश्रम सब से बडा कहाता है-बल्कि दूसरा बडापन इसमें और है कि इसी गृहस्थ के पेट में से ब्रह्मचारी जन्म लेताहै इसी में से वानप्रस्थ और इसी मेंसे संन्यासी पैदा होतेहैं अर्थात एक गृहस्थी के न होने से फिर कोईभी नहीं है इसीहेतु से गृहस्थी का ज्येष्ठाश्रमी नाम जुदा है कि सबसे जेठा आश्रम यही है=तथाच वचनं=गृहस्थोब्रह्मचारीचवानप्रस्थोऽथभिक्षुकः चत्वारआश्रमाःप्रोक्ताःसर्वेगार्हस्थ्यमूलकाः=यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणोज्ञानेनान्नेनचान्वहम् गृहस्थेनैवधार्यंतेतस्माज्ज्येष्ठाश्रमोगृही=अर्थात—धर्मशास्त्रमें यहवचन प्रमाणहै-गृहस्थी• ब्रह्मचारी• वानप्रस्थ• भिक्षुकसंन्यासी• येचार आश्रम जो प्रसिद्ध हैं तिनसबकीजड़ गृहस्थहीजानों क्योंकि उसके बिना इनकी उत्पत्ति किसी और से नहीं होसक्ती है=इनमें गृहस्थ सबसे जेठा आश्रम होता है इस हेतु से कि जिससे नित्यं प्रति रोज रोज तीनों आश्रम के लोगों को विद्या पढाना आदि ज्ञानदेने तथा अन्न के देने से भी गृहस्थीही थांभता है अर्थात सबका भार गृहस्थी पर आरूढ और यही उसको झेलता है और किसीमें इतनी बडी हिम्मत नहींहै--कदाचित--यह कहाजाय कि बहुधा गृहस्थी ऐसे होतेहैं जो किसी प्रकार का सत्कर्म नहीं करसक्ते हैं तिनके लिये सबसे बडा सत्कर्मएक यहीहै कि जिनसे कुछभी न होसके सो तीनों आश्रमके लोगों को भिक्षादान करके उनके किये सत्कर्मोंमें अंशभागी होते रहतेहैं॥ वानप्रस्थ का प्रकरण पूराहोचुका

उसके प्रसंग से संन्यासी और गृहस्थों की विशेषता भी चमकाई गई अब इससे आगे संन्यास धर्म के प्रकरण का प्रारंभ किया जायगा वह बहुत बड़ाहै सो अनेक परिच्छेदों में जाकर पूरा होगा क्योंकि उसके साथ अध्यात्म रूपी ब्रह्म विद्या का विस्तार किया जायगा॥ इतिवानप्रस्थधर्म्मप्रकरणम्॥

इत्यापद्धर्म सहितं वानप्रस्थाश्रम प्रकरणं द्वितीयम्

इस प्रकरण में छठा सातवां दो परिच्छेद हैं कि उनमें एक छठा परिच्छेद आपत्काल के धर्मोंपर आरूढ़ है कि जहां मुख्य धर्मोंसे निर्वाह न होताहो तहां आपत्कालिक धर्मोंसे निर्वाह किया जाय--उसके बादि सातवां परिच्छेद केवल वानप्रस्थाश्रमके धर्मोंपर आरूढ है कि जहां कहीं आपत्कालिक मर्यादा से भी काल क्षेप न होसके तहां गृहस्थ धर्मका आडंबर समर्थपुत्रोंके ऊपर छोडि छाडिके बनवासी होकर वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करे इसमें भी यदि पुत्रोंका अभाव देखे तौ पत्नी को भी साथ लेजावै या पत्नी भी न हो तौ एकाकी चला जाना बहुत उत्तम है॥

अथ चतुर्थाश्रम धर्मारंभः॥



अथसंन्यास ग्रहण विधानपूर्वकंपरिव्राजकस्वरूप निरूपणोऽयंपरिच्छेदः ८

इस परिच्छेद में चौथा आश्रम जो संन्यास कहाता है तिसका भार लादने का विधान जैसा होताहै सो सब यथा क्रमसे दर्शाइके परिव्राजक जो संन्यासी अथवा यती कहाते हैं तिनका स्वरूप लक्षण आदि निरूपण किया जायगा कि इसरीति से ऐसे ऐसे चिह्नों को धारण करै और ऐसे नियमों से भिक्षाचरण करते हुये अपने योग्य स्थानों पर टिकते हुये धरित्री का पर्यटन और कालक्षेप करै सो संन्यासी और परिव्राजक भी कहाता है॥

(संन्यासारंभ)

वनादृगृहाद्वाकृत्वेष्टिंसार्ववेदसदक्षिणाम्। प्राजापत्यांतदंतेतानग्नीनारोप्यचात्मनि ५६
अधीतवेदोजपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान्। शक्त्याचयज्ञकृन्मोक्षेमन कुर्यात्तुनान्यथा ५७

अर्थ:-वन से या घरसे मोक्षमें मनकरै तब प्राजापत्या नाम की इष्टि को सार्ववेद सदक्षिणा मयी करिके तिसके अंतमें जो अग्निमान हो उन अग्नियों को आत्मा में आरोपित करिके·जो वेद पढाहो तौ वेदपाठ करिके भी मोक्ष पर मन धरै·जो पुत्रवान् हो सो अन्नदान करिके तथा यज्ञभी यथाशक्ति करिके संन्यास में मन धरै अन्यथा नहीं=अर्थात्-दोनौं श्लोकोंका संबंध परस्पर मिलाहुआ एक है तिस एकही में जुदे जुदे कई डौलहैं सो कहिते हैं कि (यहां वन शब्दसे वानप्रस्थका आश्रम समुझना·गृह शब्दसे घर अर्थात् गृहस्थ का आश्रम जानना·मोक्ष कहिने से मोक्षफल देनेवाला संन्यास का आश्रम जानना) वनसे वानप्रस्थका धर्म अच्छा साधिके संन्यास धर्म लेने को मन करै या वानप्रस्थ होने विना घरही से संन्यास लेना चाहै तब सब से प्रथम यह करना चाहिये कि प्रजापति देवताहै जिसका ऐसे यागका प्रारंभ करै फिर उस यागके अंतमें सार्ववेद सदक्षिणा दान करै अर्थात् जो एकाकी होय सो अपना सर्व धन दक्षिणामें वर्तावै किंतु कोई वस्तु भी न रक्खै परंतु जो वन से संन्यास लेने लगा हो उसपर विशेष धन होना संभव नहींहै तिससे जो कुछ थोडा या बहुत अन्नका संचयहो उसीको वर्तावै अथवा गृहस्थी या वानप्रस्थ दोमें से कोई ऐसा हो जिस पर कुछ भी धन देनेको नहो परंतु वेद पढाहो तौ वेदका पारायण पाठ और उसके बडे श्रेष्ठ मंत्रोंका जपही करै तोभी सार्ववेद स दक्षिणाका फल सिद्ध होगा·परंतु·जिसके पुत्रादिक संतान भी उपस्थित होय तिसको सर्वधन दान करदेने की स्वाधीनता नहीं है तिससे यथाशक्ति संभव के अनुसार कुछ अन्नादिक दान दीन दुखिया को देकर अपनी शक्तिके समान यज्ञ पूराकरै·परंतु·जो पुरुष अग्निमान अग्निहोत्री होय और सन्यास लेनेलगै सो इस यागसे निपटे पीछे उन अग्नीयोंको श्रुतिके कहे विधानसे आत्माके बीच समारोपित कराइके सन्यास धारण करै अन्यथा नहीं यह तात्कालिक विधि कही गई॥ अन्यथा नहीं इस पदके ध्वन्यर्थसे और यज्ञकृत् इस विशेषण की शक्ति से भी दूसरा यह तात्पर्य है कि सन्यास लेने से पहिले गृहस्थ के आश्रम द्वारा अपनी शक्तिके अनुसार नित्य नैमित्तिक यज्ञोंकी साधना जिसने करी हो अर्थात् गृहस्थीके जो कुछ धर्म होतेहैं सो सब यथा विधिसे आराधन कियेहों वही पुरुष संन्यास लेनेका अधिकारी होताहै सब कोई नहीं॥ ५६॥ ५७॥

५६ अधिकोक्तिः—सब कोई नहीं इसका यह तात्पर्य है कि गृहस्थी पुरुष पर तीन भांतिके ऋण होते हैं तिनको प्रथम अच्छीतरह से उद्धार करै वही संन्यासी होकर मोक्ष फल पाता है अन्यथा जिसने तीनों ऋण उद्धार न कियेहों सो मोक्षपद पानेका अधिकारी नहीं है=यथाह मनुः=ऋणानित्रीण्यपाकृत्य मनोमोक्षेनिवेशयेत् अनपाकृत्यमोक्षंतु सेवमानोव्रजत्यधः=अर्थात्–तीनों ऋण शोधिके तब मोक्षमें मनको लगावै क्योंकि ऋण शोधे बिना मोक्षका सेवन करते हुये भी नरकही को जाता है (तीनों ऋणका स्वरूप आगे इसी वार्ता में देखना उसमें पुत्र का उत्पन्न करना भी एक ऋण शोधना ठहिरता है) सत्तावन ५७ के मूल श्लोकमें पुत्रवान् जो कहागया तिसका दूसरा अर्थ यह भी है कि संतान उत्पादन किये बिना थोड़ी अवस्थावाला पुरुष जिसके सन्तान होसकने का भरोसा आगे को होय वह संन्यासी न होजाय क्योंकि अभी इस ऋण से छुटकारा नहीं मिला परंतु यह नियम केवल गृहस्थी को समुझना॥ ० ॥ यदि कोई पुरुष नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में उपस्थित होतेहुये संन्यास लेना चाहै तिसके लिये संतान पैदाहोने आदिका कुछ नियम नहीं है अर्थात् वह संतान पैदा किये बिनाही संन्यासी होजाय तौभी ऋणी नहीं रहा क्योंकि नैष्ठिक ब्रह्मचारी वही कहाता है जिसने विवाह न कियाहो तौ फिर भार्याका संग्रह न होने से संतान उत्पादन करने का अधिकारही उसको नहीं रहा (कदाचित् यह कहो कि ज़रूरतके लिये विवाह करना चाहिये सोभी नहीं क्योंकि विवाह करनेसें उलटा रागमें फँसना होगा जिससे विराग जाता रहेगा वैराग्यके न होनेसे संन्यासका लेना भी मारागया) और– यह शंका न करनी चाहिये कि तीनों ऋणउद्धारकरनेकी आज्ञारूपी विधि प्रसिद्धहै सोई स्त्रियोंका संग्रहकराना खींचकेसिद्धकरतीहो तिससे ब्रह्मचारी को भी दार संग्रहकरिके संतानपैदाकरनी चाहिये क्योंकि जहां दैवयोग से ऐसाही वाक्य मौजूद हो कि ब्रह्मचर्यको विवाह के होजाने पीछे धारण किया और विद्या धन संचय करने के नियम तुल्य उसकोदाराकिसी और के समीप सौंपी मौजूदहुई तो फिर विवाह करनेका आक्षेप आकर्ष भी जरूरी नहींरहा तिससे तात्पर्य केवल यहीहै कि ब्रह्मचारी यदि संन्यास लेना चाहै तिसको यह आवश्यक नहीं है कि संतान पैदाकरै क्योंकि उसका ब्रह्मचर्य खण्डितहोजायगा-यह सब अर्थ मिताक्षराकी इस पंक्तिसे उत्पन्न होताहै कि (यदातुब्रह्मचर्यात्प्रव्रजति तदा न प्रजोत्पादनादि नियमः अकृतदारपरिग्रहस्यतत्रानधिकारात्रागप्रयुक्तत्वाच्चविवाहस्यनचऋणापाकरणविधिरेवदारानाक्षिपतीति शंकनीयंविद्याधनार्जननियमवदन्यप्रयुक्तदारसंभवेतस्यानाक्षे

पकत्वादितिमिताक्षरा) और इसके ऊपर यह तर्कनाकरनीचाहिये कि संतान पैदा न करनेसे ऋणी बनारहेगा सो अगिली श्रुतिसे विरोधआवैगा क्योंकि श्रुतिमें जन्म लेतेंही ऋणीहोनाकहाहै=यथा=जायमानोब्राह्मणस्त्रिभिः ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्योयज्ञेनदेवेभ्यः प्रजयापितृभ्यः=अर्थात—उत्पन्न होतेहुये ब्राह्मण तीनिसे ऋणीहोताहै तहाँ ब्रह्मचर्य साधनकरिके ऋषियों के ऋणसे छुटकारा पाताहै यज्ञों के करनेसे देवतोंके ऋणसे शुद्ध होताहै संतान पैदा करनेसे पितरोंके ऋणसे छुटजाताहै- यहीपितरोंकाऋण उसपरबनारहेगा यह न कहिनाचाहिये॰क्योंकि श्रुतिमें(जायमानो- इसपदका अर्थजन्महोते साथही यहनहींहै) न पैदाहोतेके साथही उसपर किसीऋण का भारहै क्योंकि जन्मलेते सारस्त्री संग्रह और अग्निपरिग्रहभी नहीं होसक्ताहै फिर इसकेहुये विना यज्ञआदि कार्यों में अधिकारहीनहींपहुँचताहै तबकैसे ऋणीठहिरे-- तिससे श्रुतिमेंभी (जायमानो) इस पदका अर्थ ऐसाहै कि ब्राह्मण आदि द्विजाती पुरुष अधिकारी जायमान होवै तब यज्ञादि कर्मोंको करै अर्थात (जन्मनाजायते शूद्रः) जन्मसे शूद्रही पैदा होताहै शूद्रको यज्ञादि कर्म्मका अधिकार नहीं तिससे जायमान उसको जानना जिस द्विजाती का उपनयनरूपी संस्कार भी होजाय तभी द्विज कहलाता और तभी संध्यावंदन आदि नित्यकर्मका अधिकारी होताहै इसी दृष्टांत से विवाहरूपी संस्कार होजाने पर संतान पैदा करनेका अधिकारी होताहै तभी उसपर संतान पैदाकरने सध्ये पितरोंका ऋणभी आकर आरूढ होताहै किन्तु विवाह के हुये बिना न उस कामका अधिकार है न पितरों के ऋणका कुछ भारहै इसी दृष्टांत से बाक़ी सब कामोंकी व्यवस्था समझ लेना कि जिस अवस्थाके समय पर जिस कार्यका अधिकार पैदा होताहो तभी उस कार्यकी अपेक्षा वहपुरुष जायमान अधिकारी कहा जाताहै.इसीलिये ऊपर लिखी श्रुतिका यह तात्पर्य है कि जब जिसका उपनयन संस्कार होय तभी उसको वेदका पढना आवश्यकहै अर्थात वेद पढनेका ऋण उसपर आरूढ हुआ और स्त्री संग्रह तथा अग्निका परिग्रहकरने वालेपर संतान पैदा करनेका भार अन्यथा नहीं ॥०॥ विरोधपात्तिनिवारणं इस व्यवस्था को पढ़िकर एक और भी शंका खड़ी होतीहै कि मूल श्लोकवाले अर्थमें केवल यही कहाथा कि वनसे या घरसे संन्यास लेनाचाहै तो फिर यहां अधिकोक्ति में यह क्योंकर कहा कि ब्रह्मचर्य से संन्यस्त होना चाहै तिसको संतान पैदा करने का कुछ नियम नहीं.इसमें यही तर्कनाहै कि ब्रह्मचारीका चर्चा मूलमें नहीं था— इसका समाधान सुनो—वनसे वा घरसे इसमें अव्ययरूपी वा शब्दहै सोई पाक्षिक

है कि तीनों वर्णोको वेदपढ़िके चार आश्रम होतेहैं इस वचनके प्रभावसे भी द्विजाती मात्र का अधिकार कहिते हैं कि तीनोंवर्णोंमें जिसकी इच्छाहोय सो संन्यास लेसक्ता है केवल शूद्र नहीं॥ यहां तक संन्यास लेने का ढंगही कहा गया किंतु इसी ढंग से संन्यास लेचुकने वाले को क्या क्या धर्मवर्तने होंगेसो आगे देखो॥ ५६॥ ५७॥

(संन्यासिधर्माः)

सर्वभूतहितःशान्तस्त्रिदंडीसकमंडलुः। एकारामःपरिव्रज्यभिक्षार्थीग्राममाश्रयेत् ५८॥

अर्थः–परिव्राजक होके सर्वभूतों का हित होय शांत होय. त्रिदंडीहोय कमंडलु सहित होय एकारामहोय भिक्षाके अर्थ ग्रामका आश्रय लेवै=अर्थात–संन्यासी सब कर्मों का त्याग करने से कहाता है उसी को परिव्राजकभी इसलिये कहिते हैं कि वह धरती पर फिरने लगताहै कहीं ठिकाना बांधि के नहीं टिकता है इस फिरने के उपलक्षण से संन्यास के आश्रम को प्रव्रज्याभी कहिते हैं उस प्रव्रज्यापर आरूढ होय सो नित्यप्रति सभी प्राणी मात्र का हितहोय. इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके साथ कुछ भलाईका आचरण करनेलगै. किंतुयही तात्पर्यहै कि जो कोई कुछ अपनेसाथ प्यारका वर्तावा करै या कोई कुछअप्रियवर्तावाकरै इन दोनों से उदासीन बुद्धिवनी राखै इत्यादि बातोंका व्योरा अधिकोक्ति में॥ ५८॥

५८ अधिकोक्तिः–दोनोंसे उदासीन बुद्धि राखै क्योंकि दुख देने वाले का प्रतिकार करने से किसी प्रकारकी हिंसा करनी परैगी तथा सुखदेने वाले पर अनुग्रह करनेसे उसके किसी शत्रुको कुछ पीड़ा देनी परैगी इसी से संन्यासी को इन दोनोंबात का निषेध है=तथाच गौतमः=हिंसाऽनुग्रहयोरनारंभी=अर्थात–हिंसा और अनुग्रह इन दोनों का आरंभ कभी नकरै. शांत होय यह जो ऊपर कहागया तिसका यह तात्पर्य है बाहरली प्रत्यक्षइंद्रियां और मनको आदि लेकर भीतर की इंद्रियां दो तरह की होती हैं तिनमें चंचलता न खड़ी होनेदेय त्रिदंडी होनाभी कहा तिसका यह तात्पर्य है तीन दंड उसके पास रहा करैं जो बांसके होते हैं और शौच आदि शुद्धि के लियेकमंडलु का राखना कहा सो हरवक्त जलसे भरा चाहिये=तथाच स्मृत्यंतरं= प्राजापत्येष्ट्यनंतरंत्रीन् वैणावांदंडान्मूर्धप्रमाणांदक्षिणेन पाणिना धारयेत् सव्येन सोदकंकमंडलुम्=अर्थात्–पूर्वोक्त प्राजापत्य नामका याग करनेके अनंतर बांस केतीन दंडे जो अपने माथे पर्यंत कनपटी तक लंबेहों तिनको दाहने हाथ में लेकर तबनिकसै और बायें हाथमें जलसे भरा कमंडलु होय–परंतु–निर्विकल्प नियम नहींहै कि तीन

ही दंड होयँ विकल्पसे एकभी होता है (एकदंडीत्रिदंडीवेति बौधायनः) जैसा यह बौधायन का कहा विकल्प है कि एक दंडी बनै या त्रिदंडी बनै विकल्प उसकी इच्छा पर आरूढ है=एवं=चतुर्विंशति मतनामके शास्त्र में भी विकल्प है=यथा=चतुर्थमाश्रमंगच्छेद्‌ब्रह्मविद्यापरायणः एकदंडीत्रिदंडीवासर्वसंगविवर्जितः=अर्थात्— ब्रह्म विद्या जो वेदांत नाम से अध्यात्म विद्या कहाती है तिसमें निपुण और तत्पर होके संन्यास नामके चौथे आश्रमको पहुँचै किस रीतिसे कि एक दंडी या त्रिदंडी बनिके जाय और सर्व संगों से रहित होके जाय अर्थात् इष्ट मित्र संबंधी नाते गोते आदि सबकाही संग छोडि उनका मोह मुहब्बत तोड़े हुये जाय किसी से कुछ वास्ता अपना न बाक़ी रक्खे=और=शिखा सूत्र बना राखने या त्यागि देने मध्ये भी ग्रन्थांतरसे विकल्प है कि चाहै बनारक्खै या निपट त्यागि देवै सो सब आगे वचनों में देखो (मुंडःशिखी वेति गौतमः) गौतमने कहा है कि मुंडितहोय या शिखावान् होय (मुंडोऽममोऽपरिग्रह इति वशिष्ठः) वशिष्ठ ने कहाहै कि मुंडा होय और अमम होय अर्थात् किसी प्राणी या किसी जगह स्थान या किसी वस्तु पर मामता अपनी न रक्खै कि वह मेरा या यह मेरा और अपरिग्रहभीहोय अर्थात् चाकीचूल्हा सिलवट्टाआदि गृहस्थीवाले उपकरणोंकासंग्रहकभी न करै-यहतोमुंडितऔरशिखी का विकल्प दर्शाया आगे यज्ञोपवीतका विकल्प दर्शाते हैं सो देखो (सशिखान्केशान्निकृंत्य विसृज्ययज्ञोपवीत मितिकाठकश्रुतिः) काठकीश्रुतियह कहतीहैकि चोटी सहितबालोंको काटिके यज्ञोपवीतको विसर्जन करिके संन्यास धारण करै= जैसा बाष्कल का यह वचन है=कुटंवंपुत्रदारांश्चवेदांगानिचसर्वशःकेशान्यज्ञोपवीतंचत्यक्त्वागूढश्चरेन्मुनिः=अर्थात्—कुटम्ब.पुत्र.स्त्रियां.वेदोंके अंगभूत पंचयज्ञ आदि कर्म भी सर्वथा नित्य नैमित्तिक दोनों भाँति.और मूडकेबाल.जनेऊ.इन सबकात्याग करिके अपने स्वरूपको छिपाये मौन साधेहुये विचरै (मौन साधेका यह तात्पर्य नहींहै कि निपट न बोलै किन्तु यह प्रयोजन है कि बहुत न बोलै सिर्फ दोचार शब्द जरूरीमात्र मुखसे निकासा करै बाक़ी परमात्मा के ध्यानमें लगारहा करै और स्वरूपको गूढ किये फिरनेका यह तात्पर्य है कि इतना अधिक न ठहरै कहीं जिससे बस्तिओं के लोग उसके स्वरूप को यथार्थ भेदभावसे पहिंचान सकैं और वर्षा आदि ठहिरने की जरूरत पर भी ऐसे एकांत स्थानोंमें बसतीसेबाहर देवस्थ न आदि पर ठहिरै जहां बसती के लोग बहुधा नहीं आसकैं जो आकर उसके ध्यानमें व्यतिक्रम करैं यह बाष्कल मुनिने कहा=जैसा परिशिष्टनाम ग्रन्थ का अग्रोक्त वचन है

न्यायसे समुच्चय पक्षका दर्शाने वालाहै कि वनसे वा घरसे वा तीसरे ब्रह्मचर्यही से यदि कोई संन्यास लेना चाहे यह अर्थ सूचन करता है और इसीसे दूसरा मुख्य पक्ष भी संसिद्ध होताहै-तिससे यह तात्पर्य पाया गया कि हर किसी आश्रमका पुरुष अपने आश्रम से अनंतरही संन्यास लेसक्ता है—इसीलिये—जाबाल मुनिकी श्रुतिमें दोतरह से विकल्प कहा गया है उसमें एक यही पक्ष जो कहिचुके दूसरा मुख्य पक्ष भी उपस्थितहै=तथाचश्रुतिः=ब्रह्मचर्यंपरिसमाप्यगृहीभवेद्गृहीभूत्वा वनीभवेत् वनीभूत्वाप्रव्रजेद्यदिवेतरथाब्रह्मचर्यादेवप्रव्रजेद्गृहाद्वनाद्वा = अर्थात्—ब्रह्मचर्य धारण करे उसको अच्छीरीतिसे पूराकरिके गृहस्थी बने गृहस्थको पूरा करिके वानप्रस्थ होय वनके आश्रम को पूरा साधन करिके संन्यास धारण करै (यही मुख्य पक्षवाला कल्पहै) पर जिससे यह चारों आश्रम यथा क्रमसे न बनिपरै सो औरही तरह ब्रह्मचर्यही से संन्यास लेलेवै या गृहस्थी बनिके घरहीसे या बीच में गृहस्थ छोड़ि ब्रह्मचारी से वानप्रस्थ बनिकर उसीके अनंतर संन्यास लेवै (सब तरहसे गुंजाइश मिली अब संदेह जातारहा) परंतु यह भी नियम नहीं कि अवश्यभाव से वानप्रस्थ या संन्यासी होजाना क्योंकि गौतम ने गार्हस्थ्यके सन्मुख उपरान्त आश्रमों को रोक बाध भी प्रदर्शित किया है = यदाह गौतमः=एकाश्रम्यंत्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्गार्हस्थ्यस्य=अर्थात्—जिन आचार्यों ने चार आश्रम दर्शाये उन्हीं ने एकाश्रम्य भी गृहस्थ का प्रत्यक्ष विधान होने से कहा है कि जिसके गृहस्थी आश्रम प्रत्यक्ष पूरे विधि विधान से बना चुना देखपड़ै जहाँ किसी धर्मकी न्यूनता न समझ परै तिसको एक यही आश्रम सेवन करना चाहिये जो सबसे जेठा होता है क्योंकि यह सभी आश्रमों की धर्मरक्षा करसक्ता है· इसीसे जेठापन के दो हेतु इसमें होते हैं वानप्रस्थ प्रकरण के अन्त में लिख चुके तहाँ देखो—ऊपरली शंका के समाधान पर भी ध्यान करो कि संन्यास धर्म्म लेने मध्ये· समुच्चय· विकल्प· और बाध·भी सबतरह की गुंजायशवालेपक्ष दर्शाये गये तिनसबकी जड़ वेद में ठहरी उसी श्रुति मूलत्व से कर्ताको इच्छा बलवान ठहरी कि वह जिसमें अपना सुभीता समझै उसीका सेवन करै और जिस रीति से होसके उसी रीति से करै सभी प्रकारों का प्रमाण एक वेदहै तिससे विरोध की संभावना कुछ नहीं है ॥ ० ॥ तोभी विरले विद्वानों की समझ को भद्दी जान उनका दोष पकड़ने के निमित्त से मिताक्षराकार ने एक फालतू व्याख्यान भी आरोपित किया सो देखो (यत्त्वेकेप्रिचत्र पण्डितमान्यैरुक्तं स्मार्तत्वान्नैष्ठिकादीनां गार्हस्थ्येन श्रौतबाधः गार्हस्थ्यानधिकृतांधक्लीबा

र्विवियतावेति तत्स्वाध्यायाध्ययन वैक्षर्यनिबंधन मित्युपेक्षणीयं) अर्थात्–मिताक्षरा कार कहिते हैं कि–विरले किन्हीं पण्डित मान्य पुरुषों ने इससंन्यास लेनेकेमध्ये संतान पैदा करके जाना चाहिये इस युक्ति के लिये ऐसा जो कहा है कि नैष्ठिक आदि दोनों ब्रह्मचारी यदि संन्यास लेनाचाहें तो प्रथम गृहस्थी बनके विवाह करने के द्वारा संतान उत्पादन करके पितरों का ऋण शोधिके संन्यासी बनें तो इससे कुछ श्रुतिकी आज्ञा नहीं मिलती है क्योंकि यह धर्म स्मार्त है तिससे अथवा यदि विवाह करना आदि विरुद्धही मानाजाय तो फिर उस प्रकार के ब्रह्मचारियों को संन्यास लेना कहागया होगा जो अन्धे नपुंसक आदि अंगभंग ब्रह्मचारी होजाते हैं जिनको गृहस्थी होने का अधिकारही नहीं होता है ये लोग बेखटके ब्रह्मचर्य से संन्यासी होजायँ तो कुछ विरोध नहींहै क्योंकि जिनको विवाहकरनेका अधिकारहीनहींतिन पर पितरोंका ऋणभी नहीं उक्तविद्वानोंका यहविचारहै इसको मिताक्षराकारउपेक्षा कारदेनेकेयोग्य ठहिराते हैं कि न माननाचाहिये क्योंकि वे लोग कुछ समझे नहीं और सतर्क मीमांसाकीपंक्ति देकर यहतर्कदर्शातेहैं कि लूले अंधेआदिको जैसे अग्नि क्रिया करने घृत देखनेआदिकामोंकी समर्थ न होनेसे श्रौतकर्म्मका अधिकार नहीं तैसेहीस्मार्तकर्मोंमेंभी जलका घड़ा भरलाना भिक्षाले आना आदिकामोंकी समर्थ न होने से क्योंकर नैष्ठिकत्व आदि आश्रम का निर्वाह पंगु आदि से होसकेगा॥ ०॥ संन्यास लेनेका अधिकारी कौन वर्णहै इस प्रश्न का उत्तर मिताक्षराकार कहतेहैं कि इस आश्रम का अधिकारी केवल ब्राह्मण वर्ण होता है क्योंकि मनुने प्रकरण के आरम्भमेंभी ब्राह्मणका नामवरा और समाप्ति के स्थल परभी उसीका नाम लिया ये दोनों वचन आगे देखो=यदाह मनुः=आत्मन्यग्नीन्समारोप्यब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्-तथा-एषवोऽभिहितोधर्मोब्राह्मणस्य चतुर्विधः (ब्राह्मणाःप्रव्रजंतिइतिश्रुतेश्चाग्रजन्म नएवाधिकारो नद्विजातिमात्रस्य)=अर्थात्–मनुने कहा है कि अग्नियों को आत्मा में आरोपित करके ब्राह्मण घरसे निकस संन्यास में जावै–तैसे यहभी उन्हीं ने कहा है कि–अय ऋषि लोगों यह ब्राह्मणका धर्म तुमसे चार प्रकार कहा (ब्राह्मण लोग संन्यास में जाते हैं यह श्रुतिभी प्रसिद्ध है तिससे ब्राह्मण वर्ण ही का अधिकार है तीनों द्विजातियों का नहीं)=परंतु=अन्यसंग्रहकार टीकाकार तीनों वर्णोंका अधिकार बताते हैं क्योंकि गर्भके संस्कार से लेकर वेदका पढ़ना आदिसर्व धर्म तीनोंवर्णों के वर्णन होते चलेआते हैं=बल्कि=त्रयाणांवर्णानां वेदमधीत्यचत्वारआश्रमाः इति सूत्रकार वचनाच द्विजातिमात्रस्याधिकारमाहुः=अर्थात्–सूत्रकारका भी यह वचन

हैं कि तीनों वर्णोंको वेदपाठके चार आश्रम होतेहैं इस वचनके प्रभावसे भी द्विजाती मात्र का अधिकार कहिते हैं कि तीनोंवर्णोंमें जिसकी इच्छाहोय सो संन्यास लेसक्ता हैं केवल शूद्र नहीं ॥ यहां तक संन्यास लेने का ढंगही कहा गया किंतु इसी ढंग से संन्यास लेचुकने वाले को क्या क्या धर्मवर्तने होंगेसो आगे देखो ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

(संन्यासिधर्माः)

सर्वभूतहितःशान्तस्त्रिदंडीसकमंडलुः । एकारामःपरिव्रज्यभिक्षार्थीग्राममाश्रयेत् ५८ ॥

अर्थः–परिव्राजक होके सर्वभूतों का हित होय शांत होय. त्रिदंडीहोय कमंडल सहित होय एकारामहोय भिक्षाके अर्थ ग्रामका आश्रय लेवै=अर्थात्–संन्यासी सब कर्मों का त्याग करने से कहाता है उसी को परिव्राजकभी इसलिये कहिते हैं कि वह धरती पर फिरने लगताहै कहीं ठिकाना बांधि के नहीं टिकता है इस फिरने के उपलक्षण से संन्यास के आश्रम को प्रव्रज्याभी कहिते हैं उस प्रव्रज्यापर आरूढ होय सो नित्यप्रति सभी प्राणी मात्र का हितहोय. इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके साथ कुछ भलाईका आचरण करनेलगै. किंतुयही तात्पर्यहै कि जो कोई कुछ अपनेसाथ प्यारका वर्तावा करै या कोई कुछअप्रियवर्तावाकरै उन दोनों से उदासीन बुद्धिबनी राखै इत्यादि बातोंका व्योरा अधिकोक्ति में ॥ ५८ ॥

५८ अधिकोक्तिः–दोनोंसे उदासीन बुद्धि राखै क्योंकि दुख देने वाले का प्रतिकार करने से किसी प्रकारकी हिंसा करनी परैगी तथा सुखदेने वाले पर अनुग्रह करनेसे उसके किसी शत्रुको कुछ पीड़ा देनी परैगी इसी से संन्यासी को इन दोनोंबात का निषेध है=तथाच गौतमः=हिंसाऽनुग्रहयोरनारंभी=अर्थात्–हिंसा और अनुग्रह इन दोनों का आरंभ कभी नकरै. शांत होय यह जो ऊपर कहागया तिसका यह तात्पर्य है बाहरली प्रत्यक्षइंद्रियां और मनको आदि लेकर भीतर की इंद्रियां दो तरह की होती हैं तिनमें चंचलता न खड़ी होनेदेय त्रिदंडी होनाभी कहा तिसका यह तात्पर्य है तीन दंड उसके पास रहा करैं जो बांसके होते हैं और शौच आदि शुद्धि के लियेकमंडलु का राखना कहा सो हरवक्त जलसे भरा चाहिये=तथाच स्मृत्यंतरं=प्राजापत्येष्ट्यनंतरंचोत्र वैणवांदंडान्मूर्धप्रमाणांदक्षिणेन पाणिना धारयेत् सव्येन सोदकंकमंडलुम्=अर्थात्–पूर्वोक्त प्राजापत्य नामका याग करनेके अनंतर बांस केतीन दंडे जो अपने माथे पर्यंत कनपटी तक लंबेहों तिनको दाहने हाथ में लेकर तदनिकसे और बांयें हाथमें जलसे भरा कमंडलु होय––परंतु––निर्विकल्प नियम नहींहै कि तीन

हो दंड होयँ विकल्पसे एकभी होता है (एकदंडीत्रिदंडीवेति बौधायनः) जैसा यह बौधायन का कहा विकल्प है कि एक दंडी बने या त्रिदंडी बने विकल्प उसकी इच्छा पर आरूढ है=एवं=चतुर्विंशति मततामके शास्त्र में भी विकल्प है=यथा=चतुर्थमाश्रमंगच्छेद्ब्रह्मविद्यापरायणः एकदंडीत्रिदंडीवासर्वसंगविवर्जितः=अर्थात्— ब्रह्म विद्या जो वेदांत नाम से अध्यात्म विद्या कहाती है तिसमें निपुण और तत्पर होके संन्यास नामके चौथे आश्रमको पहुँचे किस रीतिसे कि एक दंडी या त्रिदंडी बनिके जाय और सर्व संगों से रहित होके जाय अर्थात् इष्ट मित्र संबंधी नाते गोते आदि सबकाही संग छोडि उनका मोह मुहब्बत तोड़े हुये जाय किसी से कुछ वास्ता अपना न बाक़ी रक्खे=और=शिखा सूत्र बना राखने या त्यागि देने मध्ये भी ग्रन्थांतरसे विकल्प है कि चाहें बनारक्खें या निपट त्यागि देवें सो सब आगे वचनों में देखो (मुंडःशिखी वेति गौतमः) गौतमने कहा है कि मुंडितहोय या शिखावान् होय (मुंडोऽममोऽपरिग्रह इति वशिष्ठः) वशिष्ठ ने कहाहै कि मुंडा होय और अमम होय अर्थात् किसी प्राणी या किसी जगह स्थान या किसी वस्तु पर मामता अपनी न रक्खें कि वह मेरा या यह मेरा और अपरिग्रहभीहोय अर्थात् चाकीचूल्हा सिलवट्टाआदि गृहस्थीवाले उपकरणोंकासंग्रहकभी न करें-यहतो मुंडितऔरशिखी का विकल्प दर्शाया आगे यज्ञोपवीतका विकल्प दर्शाते हैं सो देखो (सशिखान्केशान्छित्वा विसृज्ययज्ञोपवीत मितिकाठकश्रुतिः) काठकीयश्रुतियह कहतीहैकि चोटी सहितबालोंको काटिके यज्ञोपवीतको विसर्जन करिके संन्यास धारण करे= तैसा बाष्कल का यह वचन है=कुटुंबंपुत्रदारांश्चवेदांगानिचसर्वशःकेशान्यज्ञोपवीतं चत्यक्त्वागूढश्चरेन्मुनिः=अर्थात्—कुटुंब .पुत्र स्त्रियां वेदोंके अंगभूत पंचयज्ञ आदि कर्म भी सर्वथा नित्यनैमित्तिक दोनों भाँति और मूडकेबाल जनेऊ इन सबकात्याग करिके अपने स्वरूपको छिपाये मौन साधेहुये विचरें (मौन साधेका यह तात्पर्य नहींहै कि निपट न बोलें किन्तु यह प्रयोजन है कि बहुत न बोलें सिर्फ दोचार शब्द ज़रूरीमात्र मुखसे निकासा करें बाक़ी परमात्मा के ध्यानमें लगारहा करें और स्वरूपको गूढ किये फिरनेका यह तात्पर्य है कि इतना अधिक न ठहिरें कहीं जिससे बस्तिओं के लोग उसके स्वरूप को यथार्थ भेदभावसे पहिंचान सकें और वर्षा आदि ठहिरने की ज़रूरत पर भी ऐसे एकांत स्थानोंमें बसतीसेवाहर देवस्थ न आदि पर ठहिरें जहां बसती के लोग बहुधा नहीं आसकें जो आकर उसके ध्यानमें व्यतिक्रम करें यह बाष्कल मुनिने कहा=तैसा परिशिष्टनाम ग्रन्थ का अग्रोक्त वचन है

कि जिसमें वाक्योंरहे विधानोंका प्रतिपादन होता है=यथा=अथयज्ञोपवीत मप्सुजु होतिभूःस्वाहेति अथदंडमादत्तेसखेमांगोपायेति=अर्थात्-पूर्वोक्तप्राजापत्य यागकिये पीछे चलते समय (भूःस्वाहा) इस मंत्रको पढ़िकर जलकी धाराओं में उपवीतसूत्र को होमि देताहै फिर पूर्वोक्त दंडको हाथमें लेताहै इस मंत्रसे कि (सखेमांगोपाय) मित्र मुझे बचाइयो संसार के दुःखोंसे=यहां तक सभी वचनों में जनेऊ का त्यागि देना सिद्ध हुआ- अगिले देवल के वचन से जनेऊ रखिलेना भी सिद्ध होगा इसीसे ऊपर इसका विकल्प कहा गयाथा (और जिसको एकही वस्त्र से निर्वाह करनेकी शक्ति निपट न हो सो जाड़े आदि की ऋतु में दूसरी कथरी भी साथ रक्खै = यथा ह देवलः=काषायोमुंडस्त्रिदंडीकमंडलु पवित्रपादुका२८सनवं थासन्यः=अर्थात्-संन्यासी मूड़ मुड़ाये हुये सिर्फ़ इतनी चीजें साथ रक्खे-गेरुआ आदि कषाय वस्त्र-तीनदंड- कमंडलु जल से भरा-पवित्र नाम यज्ञोपवीत सूत्र-पादुका खड़ाऊं-आसन-कंथाकथरी एकारास होय यह योगीश्वरके मूलश्लोकमें कहा तिसका तात्पर्यहै कि और किसी संन्यासी को अपनेसाथ न रक्खै न किसी संन्यासिनी स्त्रीको साथ रक्खै (यहां यह संदेह न करना कि पुरुषही संन्यास लेते होंगे क्योंकि (स्त्रीणांचैके इति बौधायन) बौधायन मुनिने किरलोंके मतसे स्त्रियोंको भी संन्यास लेना कहाहै) किसी संन्यासी आदिको साथ लेनेमें जो दोषहैं तिनको दक्षने प्रकाश किया है=यथा=एकोभिक्षुर्य थोक्तस्तद्वावेवमिथुनंस्मृतम् त्रयोग्रामःसमाख्यात ऊर्ध्वंतुनगरायते राजवार्तादितेषांतु भिक्षावार्तापरस्परम् अपिपैशुन्यमात्सर्यंसन्निकर्षान्नसंशयः=अर्थात्-भिक्षुकनाम संन्यासी का जैसा लक्षण कहागया सो सब उसीमें समुझना जो एकला असहाय फिरता होय-तिससे जहां दो भिक्षुक इकट्ठे होयँ तिनको स्त्री पुरुषके तुल्य मैथुनी जोड़ा कहा गया है-जहां कहीं तीनि भिक्षुक एकत्र होयँ तिनको ग्रामके समान जानो-इन से अधिक जहां चारि पांच आदि इकट्ठे होयँ तहां नगर शहर के समान भव्भड़ होता है क्योंकि उनके परस्पर समीप होनेसे राजाओं की वार्ता और भिक्षाकी वार्ता पिशुनता की वार्ता मत्सरताकी वार्ता भी अवश्य होने लगतीहैं जिससे ओंकार आदि आत्माके स्वरूप ध्यान भूलिजाते हैं संदेह इसमें नहीं है=मूल श्लोक में (परिव्रज्य) यही पद आया था इसका यही अर्थहै कि सब कृत्य त्यागिके संन्यासी बनाहोय-तिससे-मैं मेरा आदि जो अभिमान के स्वरूप हैं तिनके लिये जो कृत्य लोकाचारी कर्म होतेहैं तिनको त्यागि देवै और वेदमें भी जो नित्य और काम्य रूपी कर्म करने कहे होयँ तिनको त्यागि देवै=तथाच मनुः=सुखाभ्युदयिकंचैवनैः श्रेयसिकमेवच प्रवृत्तंच

निवृत्तंचद्विविधंकर्मवैदिकम् इहवाऽमुत्रवाकाम्यंप्रवृत्तंकर्मकीर्त्यते निष्कामंज्ञानपूर्वंतु निवृत्तमुपदिश्यते यथोक्तान्यपिकर्माणिपरिहायद्विजोत्तमः आत्मज्ञानेशमेचस्याद्वेदाभ्यासेचयत्नवान् (अत्र वेदाभ्यासः प्रणवाभ्यासः तत्रयत्नवानित्यर्थः= अर्थात्--मनु ने कहाहै कि सुखों का उदय करनेवाले कर्म और निःश्रेयस जो मोक्षहै तिसके देनेवाले कर्म और इसी तरह दोभांतिके वेदोक्त कर्महैं प्रवृत्त और निवृत्त (इन्हीं दो नामोंसे) तिनका यही अर्थहै कि वेदके जितने यज्ञादि कोई कर्म इहां संसारही में कामना देनेवाले या परलोक में जाकर कामना पूरी करनेवाले हों सो सब प्रवृत्त कर्म कहाते हैं तथा निवृत्त कर्म उनका नामहै कि जो केवल ज्ञानहीके विचार सहित कामना से रहित होके कियेजायँ अर्थात् जिनका साधन करते समय न तो इसलोकमें कोई फल चाहाजाय न परलोकमें जाकर कुछ पावनेकी कामना रक्खीजाय सो निष्काम होनेसेही निवृत्त कहि जातेहैं ये सब तरह के श्रुति और स्मृतियों में कहे भये कर्मों को सर्वथा छोड़ि छाड़िके द्विजोत्तम अपने आत्मज्ञानके प्रभावसे भीतरली इंद्रियोंका दमन करि पाने में वेदाभ्यास करनेमें यत्नवाला होय अर्थात् यहां वेदके नाम से प्रणव ओंकार मात्रको जानना तिसका वारंवार जप करने में अभ्यास बढ़ाता रहै=मूल श्लोकमें (ग्रामं आश्रयेत) यह भी कहा गया है कि ग्रामके भीतर भी कदाचित् प्रवेश करै परंतु भिक्षार्थीहो तभी करै अर्थात् भिक्षा के प्रयोजन विना ग्राम आदि बसतीके भीतर कभी न जावै=तथापि इसनिषेधके होते भी वर्षाकाल में गाँवभीतर जानेया टिकनेका भी दोष कुछनहींहै=यथाहशंखः=ऊर्ध्वंवार्षिकाभ्यांमासाभ्यांनैकस्थानवासीति=अर्थात्--शंख मुनिने अपवाद के द्वारा उपदेश फल उत्पन्न कियाहै कि वर्षा ऋतुके श्रावण भादों इन्हीं दो महीना से उपरान्त किसी एकही स्थानपर नटिके अर्थात् इन्हीं दो में टिके=परन्तु जो कोई असमर्थ होय तिसके लिये चार महीने भी टिकिजानेका दोष नहीं देखि परता है=तदाह देवलः=नचिरमेकत्रवसेदन्यत्र वर्षाकालात् श्रावणादयश्चत्वारोमासावर्षाकालः=अर्थात्--वर्षा कालके सिवाय अन्य ऋतुमें संन्यासी बहुतकाल एक जघेपर न टहिरै और वर्षाकाल श्रावणआदि चार महीनों में जब जब कभी वर्षा देखि परै उसीको समझना तथापि जो शरीर से अशक्त होय तिसके लिये निरंतर चारोंमास वर्षाकाल जानना चाहे निरंतर वर्षा होतीरहै या नहीं भी होतीरहै=यही ध्वन्यर्थ अगिले कण्व मुनिके वचनमें समझना= यथा=एकरात्रंवसेद्ग्रामेनगरेरात्रिपंचकम् वर्षाभ्यो ऽन्यत्रवर्षासुमासांस्तुचतुरोवसेत्= अर्थात्--संन्यासीहोय सो छोटे ग्रामोंमें एकहीरात्रिटिके बड़े नगरोंमें पाँचरात्रि टिके

इससे अधिक नहीं परंतु यह नियम वर्षा के दिवसों से अन्यत्र सूखेकालमें समझना किन्तु वर्षा होतेहुये पाँच दिनसे अधिक भी टिकिजानेमें दोष नहीं बल्कि वर्षाऋतु में अति वर्षा होती जानिके चारमहीना तक निरंतर भीटिके तोकुछ दोष नहीं (यहाँ यद्यपि अति वर्षाके होनेमें समर्थ को भी निरन्तर टिकनेका दोषनहीं कहा परन्तु खंडवर्षाके होनेमें निरन्तर चारमहीने टिकिजाने से दोष प्रकट होताहै तथापि जो असमर्थहोय तिसको खराड वृष्टिके होने परभीचारमहीनाभर टिकनेका दोषनहीं यह देवलकेवचन से भी सिद्ध होचुकाहै॥ किसरीतिसे भिक्षामाँगै यहनियम अगिले मूल श्लोकसे देखो॥ ५८॥

(भिक्षाचरण प्रकार:)

अप्रमत्तश्चरेद्भैक्ष्यंसायाह्नेनभिलक्षितः। रहितेभिक्षुकैर्ग्रामेयात्रामात्रमलोलुपः ५९॥

अर्थः—सायाह्न में भिक्षुकों से रहित गावँ में यात्रा मात्रही भैक्ष्य को चरै अलोलुप अप्रमत्त अनभिलक्षित होके=अर्थात्–भिक्षा माँगते समय अपने मुंहकी वाणी तथा नेत्रों की निगाह तथा औरही किसी अंगकी समस्या आदि चपलता से रहित होय सो अप्रमत्तहोना कहाता है और अनभिलक्षित होय अर्थात् ज्योतिष वैद्यक मंत्र यंत्र इंद्रजाल आदि किसी विद्या के लक्षणसे लोगों को रिझाय के न माँगैऔर दिनका पिछला पाँचवाँ भाग जो सायाह्न कहाता है तिसमें माँगै पहिले से नहीं और जिस गाँव में भिक्षुक बहुत न होयँ तिसही में माँगै और उतनाही माँगै जिससे शरीर और प्राणों की यात्रा बनी रहै बहुत न माँगै और अलोलुप होके माँगै किंतु मीठे खट्टे आदि पदार्थों को न माँगै जैसा मिल जाय उसीसे संतुष्टि मानै॥ ५९॥

५९ अधिकोक्तिः=वशिष्ठः=सप्तागाराणय संकल्पितानिचरेद्भैक्ष्यं=अर्थात्—वशिष्ठ ने घरोंका भी नियम किया है कि सातही घरसे भिक्षा आचरै और सात घर भी असंकल्पित होयँ अर्थात् ऐसा संकल्प न किया होय कि अमुकही अमुक घरों में जाकर कालिह माँगैगे या देनेवालों ने ऐसा संकल्पनिमंत्रण की रीति से ज़ाहिर किया होय कि अमुक दिवसमें हमारेही घरसे भिक्षा लेना तोभी ऐसे संकल्पितघर की भिक्षा न स्वीकार करै--और–दिनका पाँचवाँ भाग सबसे पीछे जो सायाह्न कहाता है तिसमें माँगने को निकसै यह मूलश्लोक में कहागया तिसका प्रमाण अगिले मनुके वचनमें समझौ=यथाह मनुः=विधूमेसन्नमुसलेव्यंगारेभुक्तवज्जने वृत्तेशरावसंपातेनित्यं भिक्षांयतिश्चरेत्–तथा–एककालंचरेद्भिक्षांप्रसज्जेतनविस्तरे भैक्ष्य

प्रसक्तोहियतिर्विषयेष्वपिसज्जति=अर्थात्—यती संन्यासी नित्यप्रति ऐसे समयपर उसघर मे भिक्षा मांगने जावे जहां रसोई का धुआं बंद होचुका अर्थात् रसोई का धंधा निपट चुकाहो और मूसर ओखली आदि के धंधे अर्थात् ऐसे कामों की खटा पटी निपट-गईहो और द्वयंगार घरमें जावे कि जहां चूल्हा भट्टी आदि की आंचभी बुझगई हो और मनुष्यों का खाना पीना भोजन कर्म भी होचुका हो और भी (शराव) सरपोश आदि वासनों का संपातनाम धरना ढाकना आदि आहट होना निपट चुकाहो—इन वातों से स्वन्यर्थ सबका यहीहै कि यतीको ऐसे घरमें भिक्षाकेलिये न घुसना चाहिये जिसमें रोटी चढीका धुआं होता हो या खावापी होतीहो या वासन भंडवा की धरा उठ ई ढांका मूंदी आदि कामों का आहट होताहो किंतु भोजन कर्मसें निपटे हुये निर्द्वंद घर मे जाना चाहिये जिससे उन घरों के स्त्री पुरुष अपना हाथ खाली का अवकाश पायकर एकही आवाज सुनतेबार कोई वचा वचायारोटी टुकड़ा देसकें उनको यह न कहिना परै कि हाथ खाली नहींहै सो यह ऐसा वानक प्रायश मउसी समय मिल सक्ता है कि जब तीसरे पहर के पीछेदिन का पांचवां अंश वाकी रहिजाय॰ इसीलिये इतनी वडी वार्ताका निपटारा मूल श्लोक में योगीश्वर ने (सायाह्ने) इन्हीं तीन अक्षरों से दर्शाया=तथा=मनुका एक दूसरा भी वचनहैकि॰ भिक्षा एकही काल चरै किंतु विस्तर मे न लगे क्योंकि भिक्षा से प्रसक्त होकर विस्तर में लगने से यती पुरुष विषयों में भी लगजाता है और वेही विषय उसकेशत्रु होते हैं—इस वचन से मनुने एकही वार मांगना कहा और विस्तर से लगने का निषेध किया उस विस्तर शब्दके अग्रोक्त इतने अर्थ होते हैं इन सवही का निषेध भी समझना कि प्रथम तो विस्तर विछौना आसन पीढा मोढाआदि का नामहै तिनपर न वैठे सिर्फ खडे हुये मांगै॰ और विस्तर नामहै वाक्यसमूह का तिसकाभी प्रतिषेध है कि बहुतसी वातों के विस्तरमें न लगै सिर्फ भिक्षाही मांगै॰ और विस्तर नाम है शब्दों के समूह का तिसका भी निषेध जानो कि भिक्षा मांगनेका शब्द मुखसेवारंवार न काढै सिर्फ एकही वार मांगि चुपका होजाय॰ और विस्तार नाम है आधार का अर्थात् धरती चबूतरा जिसपर आदमी वैठ सकै तिसपर भी यतीको न वैठना चाहिये (इन्हीं सव अर्थोंसे यह तर्क पैदा होती है कि आसन पीढा मोढा और धरती पर वैठने का निषेध किया तो फिर वडी देरतक चुपकेखडा रहना पाया गया सोभी नहीं क्योंकि) विस्तर विस्तार वडी देर का भी नाम है तिसमें भी न सज्जै अर्थात् भिक्षा मांगनेकाशब्द मुखसे एकवार कहिकर चलेजाने मध्ये देरीभी न करै किंतु

शीघ्र चलाजाय (इससे भी यह तर्क पैदा होती है कि जब इसतरह के निषेध ठहिरे तो फिर हाथखाली आदि अवकाशोंको न देखिके तत्काल चलाजाय पर लौटिके दुबारा तिबारा फेराकरै·सो भी नहीं क्योंकि (एककालंचरेद्भिक्षां एकहीकाल भिक्षा मांगै इस नियमसे दुबारा आदि फेराकरनेका निषेध सबसे पहिले कहिचुकेऔर इसी लिये दूसरे श्लोकसे मनुने यह कहाहै (भैक्ष्यप्रसक्तोहियतिर्विषयेष्वपिसज्जति) कि यती पुरुष भिक्षाके मध्ये बहुत लालसा बढाने से संसारी विषयों में रचता और फँसताहै जिससे योगभ्रष्ट होजाना दुर्घट नहींहै ॥ योगीश्वर ने मूलश्लोक में अनभिलक्षित होके मांगना कहाहै कि भिक्षा के लिये कोईसा विद्याका लक्षण अपने साथ न राखै तिसके मध्ये मनुने स्पष्ट ब्यौरा दर्शाया है=यथा=नचोत्पातनिमित्ताभ्यांन नक्षत्रांगविद्यया नानुशासनवादाभ्यांभिक्षांलिप्सेतकर्हिचित=अर्थात—यतीपुरुष कभी भी भविष्य उत्पातोंकी उत्पत्ति और फलोंको सुनाइ के भिक्षापर लालसा न राखै·एवं कभी भी शुभा शुभ शकुनरूपी उत्पन्न हुये निमित्तों के फल कहिकर या शकुनौती आदि प्रश्नफल कहिकर भिक्षा न चाहै·एवं किसीप्रकारके समुद्रिक आदि हाथके लक्षण कहिकर या कोईसी आज्ञारूपी अनुशासनकी बात देकर भिक्षा न मांगै·एवंकिसी वाद विवादका तत्त्व निर्धारण करिके भिक्षा न मांगै·न ज्योतिषकी विद्याका वर्तावा करिके (इसका यह तात्पर्य नहींहै कि इनसे उपरान्त वैद्यकआदि विद्याओं से मांगना दोष न होगा किन्तु सिद्धांत इसका यहीहै कि जिन विद्याओं के नाम यहाँ नहींकहे तिनसे भी न मांगै क्योंकि संन्यासीको विद्याओंका त्यागकर देना पहिले कहिचुके तिसका यही प्रयोजन है जो यहाँ आकर दृढ किया गया= सायंकाल मांगनेका प्रसंग वर्तमानहै तिसकेमध्ये एक जुदाप्रकार भी देखनेमें आता है=तदाहवशिष्ठः=ब्राह्मणकुलेवायल्लभेत तद्भुंजीत सायंप्रातर्मांसवर्ज्यम (तदशक्त विषयमिति मिताक्षरा=अर्थात—वशिष्ठ ने जो कहा है कि सांझ या सवेरेही जब कभी किसी ब्राह्मणके घरमें जो कुछ मिलिजाय या विकल्पसे औरही किसी द्विजातीके घरमें जो कुछ मिलिजाय सोई भोग में लगावै परन्तु मांसको छोडिके यह नियम जानना अर्थात किसी ऐसे देशके निवासी ब्राह्मणआदि द्विजाती होयँ जिनके मांस खायाजाता हो वही लाकर भिक्षामें समर्पण करैं तो सन्यासीको न खाना चहिये—इस वचन में सांझ या सवेरेका जो विकल्प कहा सो सवेरा कहिने से दोपहर के पहिलेका समय निश्चितभया (इसपर मिताक्षराकारकहिते हैं कि यह दुपहरसे पहिले भिक्षा भोगलगानेका चर्चा सिर्फ़ उसकेलिये जानना जो रोगी आदि

होनेसे अशक्तहोय जिसपर सवेरे खाइलेने विना सांझतक न टहिराजाय परन्च दोनोंवार खानेका नियम इसमें नहींहै=भिक्षुकों से खाली गांवमें भिक्षा मांगने जाय यह मूलश्लोक में योगीश्वरने कहा—इसका यह तात्पर्य है कि पाखण्डी आदि नकली भिक्षुक जहां बहुतहोयँ तहां देनेवालोंको अश्रद्धा होजातीहै तब सच्चे स्वरूपमें भी श्रद्धा नहीं करते हैं इसी वार्तापर मनुने कुछ और भी विशेष नियम किया है=तथाच=नतापसैर्ब्राह्मणैर्वावियोभिरपिवाश्वभिः आकीर्णंभिक्षुकैरन्यैरगारमुपसंव्रजेत्= अर्थात—ग्रामतो बहुत बड़ाहोनेसे उसकी दशा अचानक नहीं भी मालूम होसक्तीहै तिससे एकटोला मुहल्ला आदि शुद्ध समझै वलिक मनुने इस वचन से मकानहीका शुद्धभाव देखना कहाहै कि भिक्षालेनेको ऐसे घरमे न जावै जो तपसी या मंगिता ब्राह्मणोंसे गसा हो या काक आदि बहुत पक्षियों से भराहोय या जवानपट्ठे लुंगाड़े आदमियों से डटाहो या कुत्तोंसे रुकाहो याऔरही किसीप्रकार के भिखारियों से घिराहोय॥ मूल श्लोकमें यह भी कहिचुके हैं कि उतनाही मांगै जिससे प्राणकी रक्षा होसके उससे अधिक न मांगै तिसका परिमाण भी संवर्तने दर्शाया है=यथा= अष्टौभिक्षाःसमादायमुनिःसप्तचपंचवा अद्भिःप्रक्षाल्यताःसर्वास्ततोऽश्नीयाच्चवाग्यतः= अर्थात—भिक्षाके प्रयोजनवाला एकही शब्द मुखसे निकासनेके उपरान्त मुनि चना हुआ अर्थात (मौन) चुपसाधे हुये आठ घरसे भिक्षा या सात घरसे लेकर या बहुत मिली दीखै तो पाँचही घरसेलेकर सबको जलोंसे धोकर तिसपीछे वाणीको जीति के भोजनकरे(वाणीका जीतना यहां यहीहै कि मोटे झोटेअन्नकीनिंदा कुछ न करै महाप्रसाद समझि के भोगै-इसीलिये मूलश्लोक में कहिचुके हैं कि जीभकी लोलुपता छोड़िकर खट्टी मीठी आदि न मांगै।कैसा पात्रलेजाकर भिक्षामांगै सो अगिले मूलश्लोक मे देखो॥ ५९॥

(यतेःपात्राणि)

यतिपात्राणिमृद्वेणुदार्वलाबुमयानिच। सलिलंशुद्धिरेतेषांगोवालैश्चावघर्षणम्॥ ६०॥

अर्थ.—यतीके पात्रहोयँ मट्टी या बांस या काठ या तोमड़ीके बनेहुये–इनबासनोंका शुद्धकरना जलसे और गायके वालों से रगड़ना भी होताहै॥ ६०॥

६० अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार कहतेहै कि यह शुद्धि का प्रकार सिर्फभिक्षा के प्रयोग सध्ये उसका एक अंश समझको कहा गया कि भिक्षा के जिनपात्रों में पवित्र लेपजो भिक्षाके अन्नादि का होजाय तिसको इसी प्रकारसे धोवै अन्यथा इससे उपरान्त किसी प्रकारसे यदि वही पात्र बिगड़ै तौ फिर इस रीतिको छोड़िके आचार

मर्यादा परिपाटी में द्रव्य शुद्धि प्रकरण के द्वारा उसके शोधन की रीति देखनी चाहिये—इसी आशय के अनुसार अगला वचन है सो देखो=यदाह मनुः=अतैजसा निपात्राणिातस्यस्युर्निर्व्रणानिच तेषामद्भिःस्मृतंशौचंचमसानामिवाध्वरे (चमसदृष्टांतो पादानेनप्रयोगिकीशुद्धिर्दर्शिता इतिमिताक्षरा=अर्थात्—उस यतीके पात्रहोय अतैजस धातुओंसे उपरान्त काठ आदि के परंतु निव्र॑ण होयं जिनमें छेद गढहिला आदि कुछ न होय जिसमें मैल भरै किंतु साफ़चिकने घुटे होयँ तिनका शौच करना सिर्फ़ जलसे कि जैसे यज्ञों में चमसनामी पात्रों की चिकनाई गरम जल से या ठंढेभी जल से दूरकरते हैं (इसमें यज्ञसंबंधी चमस पात्रोंका दृष्टांत स्वीकारहोने से प्रयोगवती शुद्धि दर्शाई गई यह मिताक्षराने प्रकाश किया=[मिताक्षराकार फिर कहतेहैं कि जिसके पास दूसरापात्र न होय सो भोजनभी उसी पात्रमें करै यहतात्पर्य देवलके वचनसे प्रतीत होताहै=यदाह देवलः=तद्भैक्ष्यंगृहीत्वै कांतेतेनपात्रेणान्येनवातूष्णीं मात्रयाभुंजीत=अर्थात्—उसभिक्षाको लेकर एकांतमें उसी पात्रसे या और पात्रसे भोगै मौन साधिके और नियम किये हुये अपने पेटके अनुमान भरि भोगै अधिकनहीं (इस वचन में और किसी पात्र के कथन से दूसरा पात्र भी सिद्ध होता है इसीसे मिताक्षराकारनेभी यह कहा कि जिसकेपास दूसरा न होय परंतु दूसरा पात्र पास रखने वाला कोई वचन ऐसा नहीं पाया जिससे दोपात्रों की आज्ञा समझी जाय और पहिले जहाँ संन्यास लेनेका प्रारंभ किया तहाँ केवल कमंडलका साथ होना कहा था सो जलका पात्र है यहाँ जो भिक्षा माँगने के पात्र कहे तिनमें दूसरे पात्रका प्रयोजनभी कुछ नहींहै तिससे यहां देवलके वचन में अन्यपात्रके शब्दसे ढाकपत्र आदि समझे जातेहैं कि जिससे भिक्षा माँगनेका पात्र भोजन कर्मसे जूठा न करनापरै परंतु जिसपर ढाक पत्र आदि नहीं वह उसी भिक्षा पात्र मेंभोजन करै यह सिद्धांत ठहरा॥ यहाँ तक संन्यासी का शील मात्र कहा गया ऐसे संन्यासी को उपासना मध्ये जैसा नियम करना चाहिये सो अगले परिच्छेद से देखना ॥

—*—

(अथसंन्यास प्रसंगादेव अध्यात्म प्रकरणं सविस्तरं प्रारभ्यते)

इस प्रकरण में त्रयोदश १३ परिच्छेद होंगे यह याद रक्खो ॥

अथसंन्यासाश्रमारूढस्य हृदिज्ञानोत्पत्तिसाधनाय तत्कारणसमूहप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः(९) नवमः॥

इस परिच्छेदमें ज्ञान के उत्पन्न करने कराने वाले सब कारणों का समूह दर्शाया जायगा जिनको समझने से सन्यासी के हृदयमे ज्ञानकी उत्पत्ति होय• क्योंकि ज्ञान के उत्पन्न हुये विना यह आश्रम नहीं चलता किंतु ज्ञानही इसका मूल है॥

(यतेर्नियमाः)

संनिरुद्धयेन्द्रियग्रामंरागद्वेषौप्रहायच। भयंहित्वाहिभूतानाममृतीभवतिद्विजः ६१॥

अर्थः—इन्द्रियोंके झुण्डको रोकिके रागद्वेष दोनोंको छोडिके भूतोंका भय त्यागिके द्विज पुरुष अमृती होताहै=अर्थात—द्विज कहिने से विशेष प्रधानता से ब्राह्मण और विरले उत्तम त्रैवर्णिक भी समझने कि जिन्होंने संन्यास लिया होय ऐसा पुरुष उस दशामें अमृती अर्थात मोक्षपानेका अधिकारी होताहै कि जब नेत्र कान आदि सब इन्द्रियों के समूहको उनके रूपशब्द आदि विषयों से (संनिरुध्य) खबअच्छे रोकिवचाइके और रागजिसका विषयभोग प्रियवस्तु की चाहना और प्राप्तिहोतीहै तथा द्वेष जिसका विषयभोग अप्रियका निरादर या दूरिकरना होता है इन दोनोंको अत्यन्त त्यागिके और चकारके ध्वन्यर्थ से ईर्ष्या आदि दोषों को भी त्यागिके भूतजे संसारी जीवहैं तिनसे अपने अपकारकाडर छोडिके दुखपानेका भय छोडिके अन्तःकरण को निष्कपट भावसे अति शुद्ध करै जिससे अद्वैत आत्म स्वरूप उसको साक्षात्कार प्रतीत होनेलगै तव उस यती पुरुष को मोक्षफल मिलता है॥ ६१॥ किस प्रकार अंतः करणशुद्धहोय सो कहिते हैं॥

(अन्तःकरणशुद्धिरेवादौकर्तव्या)

कर्त्तव्याशयशुद्धिस्तुभिक्षुकेणाविशेषतः। ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात्स्वातंत्र्यकरणायच ६२

अर्थः—आशय (अंतःकरण) की शुद्धि ही ज्ञानोत्पत्ति का निमित्त है तिससे

विशेषकर भिक्षुक यती करके स्वातंत्र्य करने के लिये भी करनी चाहिये=अर्थात्-विषय भोगोंकी अभिलाषा और अप्रिय विषयोंकाद्वेषभाव इनदोनोंसे उपजे दोषों करके कलंकित जो आशय नाम अंतःकरण चतुष्ट्य अर्थात् मनबुद्धि अहंकार चित्त इन चारोंमें घुसेहुये पाप कलंकों का सयकरना आशय की शुद्धि कहिलाती है सो प्राणायामों के अभ्यास से भिक्षुकको अवश्य करनी चाहिये अपने आत्माके स्वतंत्र होजानेके लिये.क्योंकि साक्षात् अद्वैत आत्मा का स्वरूपज्ञान उत्पन्न होनेके लिये अंतःकरणकी शुद्धिहोना बहुत बड़ा कारण है॥ ६२॥

६२ अधिकोक्तिः—ऊपर लिखी वार्त्ता से यह सिद्धांत निकसा कि विषयों में मनका राग लगाना एक प्रतिबंध बड़ी रुकावट है तिसके मिटिजाने और तिससे उपजे हुये दोषरूपी प्रतिबन्ध के मिटिजाने में आत्माका ध्यान धारणा आदि साधन करने को स्वतंत्रता प्राप्त होतीहै यद्यपि यह सबके लिये उपकारी है तथापि भिक्षुक यती को विशेषकर ऐसी शुद्धिका अनुष्ठान करना चाहिये क्योंकि मोक्षके अधिकारियों में सबसे बड़ा प्रधान वहीहै और मोक्ष जो पदार्थहै सो अन्तः करणके शुद्धहुये बिना अन्य उपायों से मिलना बड़ा दुर्घटहै=यथाहमनुः=दह्यंतेध्मायमानानांधातूनांहियथा मलाः तथेन्द्रियाणांदह्यंतेदोषाःप्राणस्यनिग्रहात् = अर्थात्—प्राण वायुका निग्रह प्राणायाम तिसकी धारणासे इंद्रियों के दोष उस तरह जलिजाते हैं कि जैसे लोहा आदि धातुओं के धमाते हुयें उनके मैल भस्म होजाते हैं-तिससे अधिकतर प्राणायामोंकी धारणासाधन कियाकरैं॰जिसका संक्षेप डौल १११ एक सौ ग्यारह मूल श्लोकमें और विस्तार १९८ एक सौ अट्ठानवे मूल श्लोकसे दर्शाया जायगा तहाँ तहाँ देखिलेना॥ ६२॥

इन्द्रियों के निरोधका उपाय करना चाहिके संसारकेस्वरूपको विचारैं सो आगे कहि के समुझातेहैं॥ ६२॥

(संसारस्यानित्यरूपत्वंध्येयम्)

अवेक्ष्यागर्भवासाश्चकर्मजागतयस्तथा। आधयोव्याधयःक्लेशाजरारूपविपर्ययः ६३
भवोजातिसहस्रेषुप्रियाप्रियविपर्ययः। ध्यानयोगेनसंपश्येत्सूक्ष्मआत्मात्मनिस्थित.६४

अर्थः—गर्भ के वास देखने चाहिये तथा कर्मों से उत्पन्न गतियाँ भी आधियाँ और व्याधियाँ और क्लेशों के भेद॰और जरा बुढापा से रूपों के विपर्यय (६३) सहस्रों जाति में जन्म और प्रिय अप्रिय का उलटापन यहसब देखि शोचिके सूक्ष्म आत्माको आत्मा में स्थितहुआ ध्यान के योगही से अच्छीतरह देखै = अर्थात्—

मन में वैराग्य पैदा करने के लिये नानाभाँति गर्भों के निवास जो मूत्र और विष्ठा आदि अनेक सङ्कट के बीच करने परते हैं शोचने चाहिये (यहाँ चकारके ध्वन्यर्थ से जनन और मरण भी जैसे कष्टों से भोगने होते हैं बिचारने चाहिये) तथा निषिद्ध आचरण आदि कर्मोंके फलसे उत्पन्न जो महा रौरव आदि नरकों में गिरना रूपी (गतियाँ) चालें भोगनी होती हैं शोचनी चाहिये· तथा मनमें जो नानाभाँति की पीडा और चिंतारूपी आधि उत्पन्नहुआ करती हैं शोचनी चाहिये· तथा शरीरों में ज्वरातिसार आदि बहुधारोगभेदोंसे व्याधें लगी रहितीहैं शोचना चाहिये-तथाक्लेश भी पाँच प्रकार के सदा लगे रहतेहैं (अविद्या ऽस्मिता रागद्वे षा भिनिवेशाःपंचक्लेशाः)अर्थात्सबसे पहिला क्लेश अविद्याअज्ञानहै जिसका स्वरूप लक्षण अविकोक्ति में देखना-दूसराक्लेश अस्मिता अहंता ममता रूपी मोह कहाताहै·तीसराक्लेशराग है जो रागवत या प्रीति या अनुराग भी कहाता है·चौथा क्लेश द्वेषहै जो रागसे विपरीत होताहै कि अप्रिय चीजोंको न चाहै.पाँचवां क्लेश अभिनिवेश है जो प्रायः स्त्री या बालक या अपण्डितमें रहिताहै इसकास्वरूप अविकोक्तिमें देखना.इन पाँचो से सर्वदाक्लेशहीउत्पन्नहोतेरहितेहैंतिससेइनकानामही क्लेशधरागया शोचनेचाहिये. तथा जरानाम है बुढापेका वह सबको आनि घेरतीहै जिससे खालपकि जाती और ढीली होजाती और खाल मे सलवट किन्तु वलभी पडजाते हैं और उसी जराके सबब से मनुष्यों के रूपमें भी विपर्यय अर्थात उलटापन कुरूपता कुबडापन आदि होजाता है बिचारना चाहिये (६३) तैसेही यह शोचना चाहिये कि घोडा गदहा शूकर सर्प आदि नानाभाँति की योनियों में जन्म लेना होता है जहां उन्हीं देहों के धर्मरूपी दुःख भोगनेपरतेहैं·तैसे यहभी शोचै कि जोवस्तु प्रियहोतीहै सो नहीं हाथ लगती जो अप्रिय होतीहै वही कर्मोंके वेगसे भोगनीपरतीहै तिससे प्रियअप्रियका उलटापन भी सदा दुखदायी देखि परताहै अर्थात सारासंसारही दुःखोंका रूपहै यहसब अच्छीतरह शोचि विचारि के दुःखों के मूलरूपी संसार को त्यागने के अर्थ से आत्मज्ञान प्राप्त होनेका उपाय जो इन्द्रियों का जीतना है तिसही में प्रवृत्त होवै (तहाँ क्या करना चाहिये सो कहितेहैं कि) अपने चित्तरूपी आत्मा की एकाग्रता ध्यान कहाती है और उसी चित्त की अनेक बाहरली वृत्तियों का निरोध नाम रोकना किन्तु खींचि के उसीमे मिलायलेना अर्थात बाहरले विषयोंपर नहीं पहुँचनेदेवै यही योगहै तहाँ ध्यान और योग इन दोनों के अर्थ से जो कुछ रूपक सिद्धभया हो उसी ध्यानयोगसे अच्छीतरह देखै·क्या देखै·सूक्ष्मरूपी आत्मा जो अपने सूक्ष्म शरीरगत अन्तःकरण में

उपस्थितहै वही परब्रह्मरूपी परमात्मा के बीचमें संस्थित होरहा है यह देखे अर्थात् सर्वत्र सबजीवोंमें ऐसाही प्रतीत करनेलगे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

६३अधिकोक्तिः – ऊपरकी वार्त्ता में यह श्रुति भी प्रमाण देती है कि (आत्मा द्रष्टव्यःश्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः--अत्रद्रष्टव्यइति साक्षात्काररूपंदर्शनमनूद्य तत्साधनत्वेन श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्य इति श्रवण मनन निदिध्यासनानि विहितानीति मिताक्षराच) अर्थात्—आत्मा जो साक्षात्कार ब्रह्मका स्वरूप है वह देखना चाहिये सुननाचाहिये मानना और मनन करना चाहिये निदिध्यासित करना अर्थात् ध्यानयोग में लगाना चाहिये यह श्रुति ने समझाया–इसपर मिताक्षराकार भी यह कहिते हैं कि साक्षात्कार देखना बहुत कठिन है तिससे उसीके निमित्त में ये तीन उपाय श्रुति ने दर्शाये हैं कि १ आत्मा के व्याख्यान श्रवण करै २ मनन करै ३ निदिध्यासन अर्थात् ध्यानयोग में धारणा करै--परन्तु–यहां पर ध्यानयोग कहिने से प्राणायामों को धारणा मत समझो बल्कि जिसध्यान योगका चर्चायहां कियागया तिसका अर्थ उसके स्वरूप से निदिध्यासन जानना॰ निदिध्यासन के दो तीनक अर्थ होते हैं एक तो अपरायत्त बोध जो केवल अपने ज्ञानही के अधीन बोध होय सो निदिध्यासन कहाताहै (अपरायत्तबोधोहि निदिध्यासनमुच्यते) दूसरे एक प्रकार के ध्यानरूपी विचारको निदिध्यासन कहिते हैं जो श्रवण और मनन दोनों के फलसे आत्मज्ञानका चिन्तमन करते समय ध्यान लगायाजाताहै (ताभ्यांनिर्विचिकित्स्येर्थेचित्तस्यस्थापितस्ययत्एकतानत्वमेतद्धिनिदिध्यासनमुच्यते)इसीलक्षण का यह भी तात्पर्य है कि आत्मा संबन्धी जो कुछ व्याख्यान गुरु के मुख से पहिले सुनाहोय वही श्रवण कहाता है फिर सुनेहुये को अच्छी तरह मान्यतासे समझ के विचार सहित प्रमाण मानिकर स्वीकार कियाहोय वही मनन होताहै फिर उसीको एकाग्र चित्त से निरंतर ध्यान लगाये सत्यभाव से धारणा बनीरखे यही निदिध्यासन कहाजाता है (निरंतरविचारोय:श्रुतार्थस्यगुरोर्मुखात् तन्निदिध्यासनंप्रोक्तंतच्चैकाग्र्येणलभ्यते) यद्यपि निदिध्यासन के दो तीनक लक्षण जुदे करिके समझाये गये तौभी सिद्धान्त से तात्पर्य सब का एक है जुदाई कुछ नहीं है--अब–योगीश्वरका मूल श्लोक देखो (ध्यानयोगेनसंपश्येत्) निदिध्यासनरूपी ध्यानके योग से स्म्यक् देखे॰ क्या देखे॰ भीतरला सूक्ष्म शरीर और प्राण आदि इनसे जुदा जो सूक्ष्म रूप आत्मा है सेवन कहाता है सो आत्मा में अर्थात् ब्रह्मही में टिका हुआ बैठा है यह देखे इस प्रकार से तत् और त्वम् वह और तू इन दोनों पदार्थों का अर्थात्

परमात्मा और आत्मा का अभेद अपने हृदय मे सन्मुख प्रत्यक्ष देखने लगें कि इसमे और उसमें भेद नहीं है ॥ ० ॥ क्षेत्रज्ञ आत्माका नाम क्षेत्रज्ञ और आत्माभी उसपुरुष का नाम है जो शरीर को उसके कामोंमें प्रवृत्त करवाता रहा करता और इसीसे शरीर का अधिष्ठाता देवता भी कहाता है (योऽस्यात्मनः कारयिता तंक्षेत्रज्ञं प्रचक्षते इतिमनुः) क्षेत्र नाम है शरीर का शरीरों की दशा को पहिचानै तिससे क्षेत्रज्ञ कहा जाता है=यथा=क्षेत्राण्यानिशरीराणि तेषांचैवयथासुखम् आत्मनवेत्तिसंयोगादतः क्षेत्रज्ञउच्यते=अर्थात —क्षेत्रनाम के शरीरहैं तिनकी जैसी कुछ सुख दुख आदि अवस्था होती है सो सब जीवात्मा भीतर बैठा हुआ जानता है तथैव अपने शरीर के संयोग से ब्रह्मरूप आत्माको भी जानता है इसी जाननेके हेतुसे क्षेत्रज्ञ उसका नाम है(इसकी विशेषपहिचानि आगे १४६ एकसौ उनचास आदि मूल श्लोकों से देखना॥ ० ॥ ऊपर मूल श्लोकोंके अर्थों में पंच क्लेशोंके नाम जहाँ लिखे गये उनमें पहिला क्लेश अविद्या कहा गयाथा तिसका स्वरूप लक्षण यहां समझो कि विद्या रूपी ज्ञान से विरुद्ध विपरीत होय वही अविद्या कहलाती है जिस अविद्या के होने में परमानंद का स्वरूप नहीं पहिचाना जासक्ता है (क्योंकि उसअविद्या की प्रधानता मलिन सत्व में रहतीहै) उससे मिथ्या और उलटा ज्ञान उत्पन्नहोता रहता है तिससे अज्ञान रूपी भ्रांति जो वस्तुहै वही उसका स्वरूप जानों इसी लिये यह सबसे पहिला क्लेश कहाती है ॥ ० ॥ उन्हीं पचक्लेशों में सबसे पिछला पाँचवाँ क्लेश अभिनिवेश कहागयाथा उसका यह लक्षणहै कि यद्यपि शरीर और इंद्रियाँआदि नाशमानहैं सबकोई जानताहै तिसपर आयुभी पूर्णहोचुकी चाहैं अति बूढा शिथिल शरीर होय तौभी इसप्रकारका अभिनिवेश बनारहताहै कि अभी न मरना परै या मैं अभी नहीं मरसक्ताहूँ या यह मेरा अति प्यारा पुरुष जो निपट मराऊबराहै यदि अमुक वैद्यआदि इस वेशपर आसके तो यह बचिरहनेसक्ताहै इत्यादि नानाभांतिके अभिनिवेश केवल बालकों की बुद्धि में और स्त्रियों की समझ में और उस पुरुष के अज्ञान में भी रहतेहैं जो विद्या से विहीन कोरा मूर्ख जडबुद्धि पुरुष होय ॥६३।६४ ॥

(साधनायां विशेषः)

नाश्रम कारणंधर्मेक्रियमाणेभवेद्धि सः । अतोयदात्मनोऽपथ्यंपरेषांनतदाचरेत् ६५ ॥
सत्यमस्तेयमक्रोधोह्रीः शौचंधीर्धृतिर्दमः । सयतेन्द्रियताविद्याधर्मः सर्वउदाहृत ६६ ॥

अर्थः—धर्ममें आश्रम नहीं कारण है वह करनेहीसे होता है इससे जो अपने को अपथ्य होय सो पर जनों के लिये न आचरै=६५=सत्य॰ अस्तेय॰ अक्रोध॰ ह्रीः॰ शौच.

धीः धृति· दम· संयतेन्द्रियता· विद्या· यह सब धर्म कहा है=६६=अर्थात—संन्यास आश्रम के चिह्न जो दंड कमंडल आदि कहिचुके वे चिह्नही उसके धर्मका विशेषकारण कुछ नहींहैं क्योंकि ये चिह्न तो करनेमें सुगमता से धारण होसक्तेहैं कुछ कठिनता इनमें नहीं है (अर्थात उन चिह्नों के होतेहुये बीच में इस आश्रम के धर्मका स्वरूप अपने सूक्ष्म रूपसे दूसराहै सो कहते हैं कि) इसकारण से यह चाहिये कि अपनेको जो जो बातें अपथ्य प्रतीत होतीहैं दृष्टांत जैसे किसीने खोटा वचन सुनाया सो अपने हृदय में विषके तुल्य जाकर लगता है यह अपथ्य ठहरा इसी प्रकार औरभी अनेक बातें समझ लेनी सो सब औरों के साथ न करें बल्कि और जो कोई अपने साथ कुछ खोटाही आचरण करें सो सब सहिलिया करें तब इस आश्रम का धर्म ठीक होता है तिसके नियम आगे देखो॥ ६५ ॥ सत्य बोलें पर ऐसा सत्य न बोलें जिस से किसी के हृदयको दुःख वा उद्वेग पैदा होताहो· अस्तेय पराया द्रव्य न हरनेका नियमराखैं क्रोध को अपने स्वभावही से निकालिडारैं कि जो कोई अपकारकरैं तिसपरभी क्रोध न लावैं· ह्रीः लज्जा को अपने स्वभाव में बनीराखैं किंतु संन्यास के नियमों से विपरीत आचरण करिके निर्लज्ज न बनैं· शौच अपने शरीर और आहारकीभीशुद्धिपर ध्यान राखैं· धीः बुद्धि अर्थात हित अहित दोनों के विचार में बुद्धि को लगी राखैं· धृति धीरज ऐसे समय पर चाहिये कि जब अपनी चहीती वस्तु से वियोग होय या अप्रिय से संयोग होजाय तभी चित्तविचल होता है तिसको विवेक से समझाय के ठिकाने करैं कि जैसा पहिले सावधान होरहाथा तैसा होजाय· दम अर्थात मदका त्यागदेना दम कहाताहै इसकीभी साधनाकरैं· संयतेन्द्रियता अर्थात् संम्यक प्रकार से इंद्रियों का यत्न वशमें राखना यहांतक कि जिन विषयों को तुच्छता से नाम लेकर प्रतिषेध उनका नहीं किया गयाहो तिनसेंभी प्रवृत्त न होना चाहिये. विद्या अर्थात अध्यात्म विद्याका अभ्यास करैं (अविद्याको निज बुद्धिमें न घुसने देवैं)जिससे आत्मज्ञान प्राप्त होताहै· इन्हीं सब नियमों की साधना से संन्यास आश्रम का पूरा धर्म सिद्ध होता है॥ ६६ ॥

६५ अधिकोक्तिः—ऊपर की व्यवस्था से योगीश्वर ने यह तात्पर्य दर्शाया है कि दंड कमंडल आदि ऊपरके चिह्न जोसबलोग देखि सक्ते हैं तिनके होते हुये भीतर भी अन्तःकरणमें सत्य बोलना आदि इतने गुणहोने चाहिये कि जिनके होनेविना केवल ऊपरले चिह्नों से संन्यास नहीं सिद्ध होताहै· परंतु (नाश्रमः कारणं) मूलमें इस पदका यह तात्पर्य नहीं है कि दंड कमंडल आदि चिह्नों को न धारण करैं

क्योंकि धारण करने का विधान सबसे पहिलेही आदेश होचुका है· इसका प्रमाण अगिला वचनहै=यथाहमनुः=भूषितोऽपिचरेद्धर्मंयत्रतत्राश्रमेवसन् समःसर्वेषुभूतेषुनलिंगंधर्मकारणम्=अर्थात्—दंड कमण्डल आदि सब चिह्नों से सजा हुआ भी जहाँ तहाँ टिकानौं पर टिकते हुये अन्तरीय गुणरूपी धर्मको आचरै परंच सभी प्राणी मात्रमें मनकी वृत्ति एकसी समान बनीराखै किंतु इसके विना सिर्फ दिखावे का चिह्नरूपी लिंगही संन्यास का धर्म कारण कुछ नहीं है॥ ६५।६६॥

अध्यात्म विद्या ब्रह्मविद्या जो वेदांत विद्याभी कहातीहै जिसको छहासठिके ६६ मूलश्लोक में विद्या इसी शब्द से दर्शाय चुके हैं कि संन्यासी को उसका अभ्यास करना बहुत आवश्यकहै उसकेविना जाने संन्यास का आश्रम नहीं चलताहै—तिससे अगिले मूल श्लोकसे उसविद्याका प्रारम्भ करतेहैं विस्तार उसका अनेक परिच्छेदोंसे जाकर पूरा होगा क्योंकि उसका स्वरूप ज्ञान होने के प्रकार भेदभी अनेकहै॥

(परमात्मनः सकाशात् जीवात्मानः प्रभवन्ति)

निःसरंतियथालोहपिंडात्तप्तात्स्फुलिंगकाः। सकाशादात्मनस्तद्वदात्मानःप्रभवंतिहि ६७॥

अर्थः—जैसे तपाये लोह पिण्डसे फुलिंगा निसरते हैं तद्वत आत्माके सकाश से आत्मानः उत्पन्न होतेहैं निश्चय जानो=अर्थात्—यद्यपि परम अर्थ के विचारसे जीव और परमात्मा में कुछ नहीं है तौभी अविद्याकी उपाधि रूपी भेदसे भिन्नता पाइकर परमात्मा के स्वरूप से असंख्य जीवात्मा पैदा होतेहैं तिससे जीव और परमात्मा में कुछ भेद का बहानामात्र कहाजाता है—इसका यह दृष्टांतहै कि जैसे तपायेहुये लोहे के पिण्ड गोले आदि को हथौडाकी धमक आदि पहुँचनेसे सहस्रों फुलिंगे चिरकारे झराकरते हैं तैसे ही उसीसमान परमात्मारूपी लोहपिण्डसे असंख्य जीवात्माकभी झडतेहैं—तहाँ जैसेलोहके गोलामें अग्नि और धौंकनी हथौडाआदि संसारीमाया की उपाधि पहुँचनेसे उसका तेजरूपी सूक्ष्म अंगहोकर फुलिंगे झडतेहैं तैसेही परमात्मा रूपी ब्रह्म के गोले में अविद्या रूपी माया से त्रिगुणात्मक उपाधिकी धमक पहुँचने से उसी ब्रह्मके अति छोटे छोटे अंश उससे जुदे होकर उडने लगते हैं॥ ६७॥

६७अधिकोक्तिः—यद्यपि लोहके फुलिंगे लोहेका अंश होनेके हेतुसे लोहा कहे जासक्ते हैं और उसीतरह ब्रह्मका छोटाअंश होने के हेतु से वेभी ब्रह्म कहे जासक्ते हैं परंतु मुख्यरूपसे जुदेहोजानेके हेतुसे लोहेकेअंश फुलिंगे कहे जाते हैं तैसेही परमात्मा के स्वरूपसे जुदे होजाकर उसके छोटे अंशजीवात्मा कहेजाते हैं॥ यहवार्त्ता इसबात

परदर्शाईगई कि जैसा ६४ चौंसठि मूलश्लोक उत्तरार्द्ध में कहिचुकेहैं कि (ध्यान के योगसे अपनेजीवात्माको परमात्मासें वेंदादेखे) सो इसकथनसे दोनोंमें भेदका नहोना यद्यपि दर्शाया गया तौभी वहाने मात्रका भेद सिद्धहोता है क्योंकि जो निपट भेदही न होता तौफिर अभेद किसका सिद्धकियाजाता जब कि भेदकुछ थोड़ा बहुत प्रतीत होता मौजूद है तब उसीका अभेदभी समझाना परा तिससे भेद मानना भी यद्यपि अनर्थक नहीं है तथापि संन्यास धर्म्मपर आरूढ़ योगीजनोंको अभेदहीकीउपासना करनीयोग्यहै यह तात्पर्यरहिरा—अर्थात योगीजनको चौंसठिमूलश्लोकपर यहशंका न करनी चाहिये कि (आत्मामें जीवात्माको वेंदादेखै इससे आपही दो वस्तु देखि परती हैं कि एकमें दूसरे को वेंदादेखै) किंतु शंका दूरकरने को यह ६७ सरसठिमूल श्लोक देखै कि एकही वस्तुके दो भेद होगये सो उसको उसीमें मिलाय देनेसे भेद नहीं रहिसक्ताहै ॥ इसी सरसठिके मूलश्लोकपर दूसरे प्रकारसे भी अर्थ कियाजाता है कि—योगीजन कदाचित यह शंका करनेलगें कि• सुषुप्ति और प्रलय इन दोनों के समयपर सभी जीवात्मा जो सेवज्ञ भी कहाते सो ब्रह्मही में प्रलीन (लय) होजाते हैं तिससे आपही कुछ भेद नहीं रहिता तो फिर यह चौंसठि मूलश्लोकमें किसके लिये आत्माकी उपासना विधि कहीगई—यह शंका दूरकरने को समाधान रूपी सरसठि का श्लोक है कि—हां—यद्यपि प्रलयके समयपर सूक्ष्मरूप से सबजीव उसी ब्रह्म में लयहोतेहैं तथापि उसी ब्रह्मके सकाशसे अविद्याकी उपाधि रूपी भेदसे जुदाई पाइ के अति सूक्ष्म रूपी असंख्य जीवात्मा फिर दुबारा पैदाहोते हैं कि जब जब कभी दूसरी सृष्टि रची जानेका समय उपस्थित होताहो- तिस पीछे वे सब जीवात्मा कभी निज निज कर्मों के वशीभूत होके स्थूल शरीराभिमानी आकार होतेहैं अर्थात निज कर्मोंकी प्रेरणा से इस संसार विनाशमान में आकर स्थूल कलेवर पाते हैं कि जैसा देह सबके देखने में आताहै (किन्तु जबतक सूक्ष्म देह रहिता है तबतक जीवात्माका स्वरूप कोई नहीं देखिपाता है—तिससे—चौंसठि मूलश्लोकमें कहीगई उपासना की विधिसे कुछ विरोध भी नहींहै क्योंकि जो उस ब्रह्मसे जुदेहोकर संसारमें स्थूलकलेवर के अभिमानी बने तिनको उसकी जुदाईसे उसीकी उपासनाका अधिकाररहिरा कि जिससे फिरभी कभी उसमें जाकरमिलें—यहां—लोहपिण्डका दृष्टांत इससे दिया गया कि सोना आदि सब धातुओंकी संज्ञालोह कहातीहै तथा सबधातुओंकी सज्ञा तैजसभी होतीहै• और सांख्यशास्त्र के सिद्धांत में सत्त्वगुण से उत्पन्न जो वस्तु होय तिसको भी तैजस कहिते हैं तहां दोनों तैजसका पृथग्भावजुदाई एकहीसी बराबर

समझीजाय ॥ ० ॥ एकशंका और भी उत्पन्न होनेलगी कि ब्रह्मके सकाश से उड़ेहुये असंख्यजीवात्माजबतक सूक्ष्मदेहवाले रहाकरतेहैंतबतकउन्हेंकोईदेखिनहींपाता क्या उससेभी अतिसूक्ष्म होतेहोंगे जो मकानकेभारोखेमें सूर्यकीकिरणोंसे त्रसरेणुदेखिपरते हैं—सुनो जीवात्माके सूक्ष्मदेह यद्यपि त्रसरेणुओं अपेक्षा बहुत बड़े हैं तौभी मनुष्य के नेत्रोंपर ईश्वरकी मायारूपी अज्ञानकापर्दा रहाकरता है जिससे उसे देखतेहुये भी देखिनहीं सक्ते हैं अर्थात् असंख्यजीवात्मा यद्यपि आंखोंके आगे उड़ाकरतेहैं तथापि प्रायश अतिमूढ़ तो देखिही नहीं पाते किन्तु विरले विज्ञानी जो उनकारूप देखते हैं वे भी कुछ विवेक नहीं करसक्ते हैं कि यह कितना बड़ा और मुख्यस्वरूप कैसा है क्योंकि प्रायश जीवात्मा सूक्ष्मरूपसे मनुष्यों तथा सबजीवोंके समीपही कुछअंतरसे विहार करते फिरते और स्थूलशरीर धारियोंके आचरण टटोलते रहितेहैं कि हमको किस देहमें प्रवेश करना चाहिये किसमें अधिक सुभीता होगा तहां भी निजकर्मोंके वशीभूत मायाकी प्रेरणासे जिस प्राणीके स्थूलशरीरपर मनका मोह लगाते हैं उसी योनिके गर्भोंमें (इसीमानसकर्मकेप्रभावसे) जाकर जन्मलेते हैं(गर्भोंमें प्रवेश होनेका प्रकार आगे७० सत्तरिके श्लोकमेंदेखो) जबतक गर्भोंमें प्रवेशनहींकिया तबतक सूक्ष्मरूप उनका ज्ञानीपुरुष को सिर्फ इतना देखि परताहै कि आकाशकीओर अपने सन्मुख दृष्टिथांभनेसे आकीशो वर्णके तिलमिले दिखाई देतेहैं जो सांपकी कंचुली समान हलुके और लम्बे लच्छेदार अनेक भांति के तिरछे बेंड़े उड़ते वा लटकते से प्रतीतहोते हैं यदि उनके ऊपर किंचितभी दृष्टिजमाचाहो तभी इधरसे उधर चलजाते हैं इसी लाघवता से विवेक नहीं कियाजासक्ता है कि यह एक वा अनेक हैं और कितना परिमान इनका ठीकहै॰ इसीप्रकार काल पुरुष के पहिंचाननेवाले कालपुरुषको देखते हैं ॥ ६७ ॥

नीचे यह बात कही जायगी कि जिनको अब तक स्थूल देह नहीं
मिला तिनकोभी कर्मही के अनुसार देह मिलता है ॥

(अनुपात्तवप्रपंचेत्रचानांचकर्मनिबंधनोदेहः)

तत्रात्माहिस्वयंकिंचित्कर्मकिंचित्स्वभावतः । करोतिकिंचिदभ्यासाद्धर्माधर्मोभयात्मकम् ६८ ॥

अर्थः—तहां किंचितकर्म आत्मा आपही करताहै किंचित स्वभाव से करता है किंचित अभ्याससे करताहै धर्म अधर्म दोनों रूपवालाकर्म=अर्थात्—तहां स्थूल शरीरका कलेवर धारण करनेमें कुछ कुछ कर्मोंकोआत्मा आपही अपनी चैतन्यशक्ति

के प्रभावसे करने लगताहै—इसका यहदृष्टांतहै कि (यद्यपिआत्मा आपतौअन्वय १ व्यतिरेक२(मिलाप और जुदाई) इन दोनोंसे निरपेक्ष बेवास्ता सदा रहताहै तथापि इस कलेवरको दिगाश्रत से अन्वय और व्यतिरेक दोनोंका स्वीकार करने लगताहै अर्थात् जैसे जन्मलेतेसार दूधपीलेना यह मिलापनामका अन्वय ठहिरा तिससे तृप्ति मानिके प्रसन्न होजाना या दूध न मिलने के व्यतिरेक (जुदाई) मेंतृप्ति न मानिके रोने लगना इत्यादि वहुत कामों को समझलेना ऐसे ऐसे कुछ कर्म्मों को पैदाहोते के साथही आत्मा अपनी चिच्छक्तिके प्रभावसे स्वतः करनेलगता है क्योंकि उसी चिच्छक्ति के प्रभाव से पहिले कल्पांतर जन्मों का अनुभव उसकी भावना में भावित बना रहताहै तिससे मामूली कामोंका तत्काल वोध होआताहै-इनके सिवाय कुछ कुछ ऐसे भी निरपेक्ष कर्मोंको स्वभावही से करने लगताहै जिनकर्मोंसे उसका कोईसा प्रयोजनका संबंधनहीं दृष्टांत जैसे चीटीको उठाकर मुहमें रखिलेना यामट्टी खाइलेना इत्यादि वालस्वभाव के वहुधा कामों को समझि लेना.तहां स्वभावही से करताहै अर्थात् वाल चपलताकी स्वतंत्रता से करताहै यह अर्थ जानना—इनके सिवाय वड़ी अवस्थाभरमें धर्म तथा अधर्मरूपी दोनों भांतिके वहुधा कर्म पहिले जन्म के अभ्यास में वशहोकर किया करताहै ॥ ६८ ॥

६८अधिकोक्तिः–अभ्यासके वशमें होकर करताहै इस वातका प्रमाण अगिला वचन है=तथाच स्मृत्यंतरं=प्रतिजन्मयदभ्यस्तंदानमध्ययनंतपः तेनैवाभ्यासयोगेनतदेवाभ्यसतेपुनः=अर्थात्–हरएकजन्मपहिलेसेदानकरना या वेदविद्यापढ़ना या तपस्या करनाइनमें जोकुछवारंवारअभ्यास कियागयाहोउसीअभ्यासके संयोगसेवहीकर्मइस देहमेंभीआकर अभ्यासकियाजाताहै=इसकादूसरा प्रमाणमनुकावचनहै=यथा=हिंसाहिंस्रेमृदुक्रूरेधर्माधर्मावृतानृतेयद्यस्यसोदधात्सर्गेतत्तस्यस्वयमाविशत्॥यंतुकर्मणियस्मिन्सन्ययुंक्तप्रथमंप्रभुःसतदेवस्वयंभेजेसृज्यमानःपुनःपुनः=अर्थात्-जिससमयप्रभुनवीनसृष्टिको उत्पन्नकरताहै उस समय सबकर्मोंके द्वन्द्व जोड़े जो प्रसिद्धहैं तिनसे अपनी प्रजा को संयुक्त करता है उसीका दृष्टांतहै कि एक हिंसकर्म दूसरे को पीड़ादेनवाले जैसा सिंह व्याघ्र विड़ाल आदि का स्वभावसे उत्पन्न है तैसा वहुधा मनुष्योंमें भी हिंसकर्म होतेहैं इससे विपरीत अहिंसकर्म जिनसे किसीको पीड़ा न पहुंचे यह एक जोड़ा ठहिरा इसीतरह मृदुक्रूर स्वभावके कर्मोंका जोड़ाहै किसी प्राणी में कोमलता और किसीमें कठोरता इत्यादि वहुत जोड़े हैं तिनमेंसे जो कुछकर्म भला या बुरा जिस प्राणीकेलिये पहिली सृष्टिमें परमेश्वर ने बनाकर सौंपाथा वहीकर्म और वहीस्वभाव

उसी योनिके प्राणीमे यहां भी आकर आपही प्रवेश किया करताहै॥ इसीप्रकार पहिले जिस कार्य मे जिस प्राणी को परमेश्वरने नियुक्त किया था वह प्राणी यहां आकरभी वहीकर्म आपसेआप करनेलगताहै किन्तु यहभी एकअभ्यासहीका प्रभाव है जो कर्त्ता कर्म दोनोंमें घुसिजाताहै॥०॥ ऊपर सरसठि के श्लोकवाली उत्पत्ति को देखि सुनिकर यहशंका खडी होसक्तीहै कि ब्रह्मके सकाससे असंख्य जीवात्मा जो फुलझडी से उड़नेलगे तिनके देह गेह परिजन आदि न होनेसे कोई कर्म करना असंभव है तौ फिर कर्मके होने विना भी कर्महीके वशीभूत होकर क्योंकर स्थूल शरीर पातेहैं कि जिसमे जरायुज अण्डज आदि चारभेदभी होतेहैं—इसकासमाधान— यहां अरसठिके श्लोक से दर्शायागया कि यद्यपि उस अवस्था में देह गेह परिजन आदि न होनेसे क्रियाकर्म दोनोंका अभाव है तौ भी धर्म अधर्मका आराधन मनके विचारमात्रसे होतारहाकरताहै कि जैसासरसठिकी अधिकोक्तिमें मानसकर्मकहाथा कि फिरते हुये जीवात्मा जिस प्राणीके स्थूल शरीरपर मनका मोह जमाते हैं उसी मानसकर्म के प्रभाव से उस योनिमें जातेहैं—फिर उस मिलेहुये शरीरसे किये गये भले बुरे कर्मोंसे अन्यदेह मिलने लगतेहैं=मानस कर्मके प्रभावसे स्थूलदेह मिलनेका प्रमाण अगिला वचन देखो=यदाहमनुः=वाचिकैः पक्षिमृगतांमानसैरन्त्यजातिताम्= अर्थात—वाणीसे किये पापकर्मोंके प्रभावसे पक्षी और चौपाये आदि मृगजीवोंकी योनिमें जन्मताहै तथा मनसे किये पापकर्मोंके प्रभावसे चण्डाल आदि अन्त्यजातिके मनुष्योंमें जन्मताहै—इसप्रकारसे—जीवोंके कर्मोंकी विचित्रतासे किया और दिया हुआ जरायुज आदिदेह भेदोंका वैचित्र्य होताहै संदेह न करना चाहिये॥ ६८॥

वर्णनकरी व्यवस्था में फिर भी एक शंका खडीहोतीहै—क्योंजी जब ऐसाही मानागया तौ फिर कैसेब्रह्महीका चिदंश जीवसंज्ञाको पावै किन्तु ब्रह्मके नित्यत्व आदिधर्म निर्विकल्प हैं तहां यह व्यवहार कैसा कि जिस्सेमिश्र पैदा भया अविका इस पैदाभया इसी शंकाका समाधान अगिला श्लोक देखो॥

(अजस्यशरीरग्रहणं)

निमित्तमक्षर कर्त्तावोद्धाब्रह्मगुणीवशी। अज शरीरग्रहणात्सजातइतिकीर्त्यते ६९॥

अर्थः—निमित्त·अक्षरः·कर्त्ता·बोद्धा·ब्रह्म·गुणी·वशी·अज —शरीर ग्रहणमात्रेण कारणेन सएवजातः इतिकीर्त्यते=अर्थात—सत्य जानो कि आत्मा जो परमात्मा है सो सकल जगत्का प्रपंच प्रकट करते समय अविद्या माया के समावेश में आकर

(समवाय्य·समवायी) इन दोनोंका निमित्त आपहोताहै इनमें समवायी तो पुरुषका शरीर जानना जो२५तत्त्वोंके समवायमिलापसे बनताहै१ और समवाय्य उन्हींतत्त्वों को जानना जो पंच महाभूत आदि चौबीस२४तत्त्व होतेहैं कि जिनका समवायमेल होकर शरीर बनताहै २ तीसरा क्षेत्रज्ञजीवात्मा जो चौबीसतत्त्वोंके साथमें पचीसवां तत्त्व माना जाता और वही उन चौबीस तत्त्वों का समवाय होसकने में निमित्तरूप होताहै ३ तिससे वह आपही इन तीनोंमें तीन विधकारण है तथापि कार्यों के समूह में वह आपनहीं रहिता है इसीलिये मूल श्लोकी आदि में निमित्तं यह लक्षण पहिले कहागया क्योंकि जिस हेतुसे इतने लक्षण उसमें औरभी हैं कि·अक्षर अविनाशी·कर्त्ता भी वही आपहै क्योंकि·बोद्धा होनेसे अर्थात् जीवके उपभोग तथा सुख दुःखोंके हेतु भूत जो अदृष्टनामक परजन्मके कर्मआदि तिनका जानने समझनेवाला भी वही आपहै तथा·ब्रह्मस्वरूप है अर्थात् जगत्का रचक विस्तार करसकनेवाला भी आपहै किन्तु दूसरे में यह शक्ति नहीं क्योंकि·गुणी है अर्थात् निर्गुण भी नहीं जिससे तीन गुणवाली शक्तिरूपी अविद्या प्रकृति जो प्रधान और अव्यक्त नामोंसे प्रसिद्धहै सोई उसके अधीन सर्वदारहीहै (तिससे यद्यपि आप निर्गुण भी कहाता है तथापि अपनी शक्तिरूपी मायाके द्वारा सतोगुण आदि तीनों गुणका वास्तेदारहै) तो भी केवल मायाही इस जगत्का नहीं कारण है क्योंकि·आत्मा आपही अपने वशीभूत स्वतंत्रहै कुछ मायाके वशमें नहीं क्योंकि·वह अजहै उसकी उत्पत्ति किसी ओरसे नहीं·यद्यपि ऐसे अजन्माका जन्म साक्षात्कार होना तो नहीं सिद्ध होताहै तथापिसंसारीशरीरग्रहणकरनेसामकी उपाधिसेयहकहाजाताहै किजन्मलिया॥६९॥

६९अधिकोक्तिः—आत्माको अक्षर अविनाशी जो कहा तिसपर जिज्ञासू तर्क उठाताहै कि अविनाशी होना तो सत्य है इसमें कुछ संदेह नहीं परन्तु--जगत् रूपी प्रपंच के देखनेसे प्रतीत होताहै कि त्रिगुणवती माया जो प्रकृति भी कहातीहै उसी का कर्तृत्व यह जगत् की रचना माननी चाहिये क्योंकि·सत्व·रज·तम·इन तीनों गुण का सम स्वरूप वही कहाती और जगत् है उन्हीं तीनों गुण के विकारों का कार्य रूप जो सुख दुःख मोहादि से भराहुआ दिखाता है तिससे यह सबरचना उसी प्रकृति की ठहिरी पर उस ब्रह्म की नहीं जो आप निर्गुण कहाता है—इस जिज्ञासा के भरेहुये सुतर्कको सुनिकर शास्त्रार्थका विज्ञाता गुरुकहिताहै कि ऐसा मतमानो-- जगत् का कर्त्ता वही आपहै क्योंकि जीवोंके भोगने योग्य सुख दुःखोंका हेतुरूप जो अदृष्ट पहिले जन्मोंका कर्म्मरूपी भाग्य है तिसका जुदेजुदे भेदोंसे बोद्धा जानने

वाला जतानेवाला वहीहै जो कर्म्मविपाक भृगुसंहिताआदिके द्वारा छिपी बातोंको भी स्पष्टकहिदेताहै-और प्रकृतिहै सो अचेतना किन्तु विशेषज्ञानसे विहीनहैजिसको विशेषज्ञानही नहीं तिसमें ऐसे जगतकी रचना क्योंकर संभव होसके कि जिसजगत में असंख्य नाम असंख्यरूप असंख्य नानाभाँतिके प्रकाश और नानाभांतिकेविचित्र भोक्ता जीवोंके जुदेजुदे वर्ग भेद समसमूहभी अगाध देखिपरतेहैं तिनसबहीके जुदेजुदे भोगोंके अनुकूल भोग्य चीजैं और सबके लिये उनके जुदे भोगोंके स्थानभेदभी अनेक भांतिके इत्यादि और बातोंको संसारमें देखिभाल अपनी बुद्धिसे जानना किन्तु ऐसे उपयोगोंसे भरेहुये जगत की प्रपंच रूपी रचना क्या अचेतन प्रकृति कर सकेगी· तिससे आत्मा आपही जगत का कर्त्ताहै इसीलिये दूसरा नाम उसका ब्रह्म अर्थात जगत का टंटक-विस्तार दर्शाने वाला भीहै--और निर्गुण यद्यपि कहाता है परन्तु निर्गुण वह नहींहै क्योंकि तीनों गुण की शक्ति वाली अविद्या प्रकृति जो प्रधान आदि नामोंसेभी विख्यात सो उसकेहाथ मुट्ठीमें रहिती है तिससेआप निर्गुण कहावै तौभी शक्ति के द्वारा सतोगुण आदि गुणोंके योगवाला कहाता है और इस बातसे भी यह न जानना कि प्रकृति है सोई कारण ठहिरी क्योंकि वह प्रकृति के वश में नहीं आपही अपने वश में स्वतंत्र है और प्रकृति कदाचित भी उसकी इच्छा बिना अपनी स्वतंत्रता से वैसा कोई दूसरा जगतनहीं बनाइ सक्तीहै क्योंकि इसका प्रमाण कोई नहीं है और यह भी न समझना चाहिये कि वह प्रकृति यदि शक्तिरूप ठहिर चुकी तो फिर वही कर्त्ता ठहिरी क्योंकि शक्तिवाला कारक जो होताहै (जैसाशब्द-वेधीवाण आदि कोई सा औजार समझो) सो नहीं शक्ति कहिलाता किन्तु उसके प्रेरक की शक्ति उसमें आकर प्रभाव दिखलाती है वही शक्ति कहाती है--तिससे आत्मा आपही जगत का त्रिविध कारण होता है तथैव अजन्मा होतेहुये भी शरीर धारण करने मात्र के बहाने से उत्पन्न भया कहाता है (अवस्थांतरयोगतयोत्पत्तेः गृहस्थोजातइतिवत्)जैसे कोईपुरुष जिसका जन्म तो बहुतकाल पहिले कभीहोचुका परन्तु दूसरी अवस्था प्राप्तहोने और भार्य्यासंग्रहकरनके हेतु से उसकी उदयरूपी उत्पत्ति दूसरी मानिकै गृहस्थी भया कहिने लगते हैं--और भी आत्मा को निर्गुण केवल इसाशये कहाजाता है कि तीनों गुण के जुदे प्रभाव जैसे संसारी शरीरों में प्रविष्ट होकर अपने लक्षणजतातेहैं तैसा उस आत्मा के साथ नहीं करसक्ते इसीसे वह तीनों गुणसे परे(जुदा) कहाताहै· कुछ निर्गुणका यह अर्थ नहीं कि वह किसी गुणका मर्म्म नहीं जानता ऐसा नहीं कहिसक्ते क्योंकि वह सर्वज्ञहै ॥६९॥

भला किसमार्गसे किनप्रकारोंसे शरीर ग्रहणकरताहै सो सब आगेसमझातेहैं॥

(शरीरग्रहणप्रकाराः)

सर्गादौसयथाऽऽकाशंवायुंज्योतिर्जलंमहीम्। सृजत्येकोत्तरगुणास्तथाऽऽदत्तेभवन्नपि ७०॥

अर्थः—वहजैसे सर्गकी आदिमें·आकाश·वायु·तेज·जल·धरिणी. इनको एकोत्तर गुण सहित सृजा करताहै तैसे आपसंसारी होतेहुयेभी इनको साथलेता है=अर्थात- वह आत्मा परब्रह्म जब जगतकी उत्पत्ति किया चाहताहै तब सबसे प्रथम आकाश आदि पाँचों महाभूतरूपी सामग्री प्रघट करताहै कि इसी मशाले से सब संसारबनता रहाकरैगा (तहाँ इन पाँचों में पांचगुणभी एकोत्तर अधिक संख्यासे निरूपणभाय करदेता है अर्थात्आकाशमें शब्दही एक गुणहै·पवन में शब्द और स्पर्शभी दो गुण होतेहैं·अग्नि तेजमें शब्द और स्पर्श और रूपभी ये तीन गुणहोतेहैं·जलमें शब्द और स्पर्श और रूप और रसभी ये चारिगुण होतेहैं·धरती मे शब्द स्पर्शरूप रस और गंधभी ये पाँचों गुणहोतेहैं) जैसे सृष्टिके प्रारंभ समय पाँचों गुणसहित पाँचों महाभूत रूपी इन्हीं तत्वोंको परमात्मा रचिलेता है तैसे जब आपही जीवरूप होकर संसारी शरीरों में बैठना चाहताहै तबहू किसी गर्भमें जाकर अपने रहिनेका शरीरबनातेहुये भी अपने रचे पाँचों गुण सहित पाँच तत्वोंसेही कुछकुछ मशाले निज अनुमानके योग्यलेकर गर्भमें घुसता और शरीरको बनाता रहाकरताहै॥ ७०॥ धरती आदि पाँच महाभूतों से क्योंकर शरीर बनता होगा यह वृत्तांत अब कहिते हैं॥

(पृथिव्यादीनांशरीरारंभकत्वं)

आहुत्याऽऽप्यायतेसूर्य्यःसूर्याद्वृष्टिरथौषधिः। तदन्नंरसरूपेणशुक्रत्वमधिगच्छति ७१

अर्थः—आहुतिसे सूर्य तृप्त किया जाताहै सूर्यसे वृष्टि और वृष्टिसे औषधियां होतीहैं वही अन्नरूपसे रसरूप होकर शरीरोंमें शुक्ररूपको पहुँचैहै= अर्थात्-ऊपर के सत्तरि ७० मूलश्लोक में यह कहा गया कि·मट्टी·जल·अग्नितेज·हवा·आकाश· इन पांचों मे से कुछ लेकर शरीर बनाता है सो यह कैसे समझ में आवै कि ये चीजें क्योंकर गर्भके भीतर जाके पहुँचती हैं क्या जीवात्मा आपही ढोकर लेजाता होगा- ऐसी जिज्ञासुताको भरीहुई शंकारूपी तर्कनाका समाधान यहां समझातेहैं कि ढोइ कर लेजाना कुछ आवश्यक नहीं वल्कि ये सब चीजें माता के शरीरही भीतर सदा मौजूद रहिती और पिताके वीर्यद्वारा भी दूसरेशरीरमेंसे निकसिके उसगर्भमें सब चीजें

महा पंच भूतों) को लेकर उनके साथछठा चिद्धातु जो आपही चैतन्य एक ज्योति के समान है सो मिलिके सबका एक साथही स्वीकार करलेता है क्योंकि शरीर बनाने की प्रक्रिया में वह प्रभुही समर्थ है तिससे अपने भोगका स्थान बनाने का प्रारम्भ (युगपत्) एकदम करदेता है कुछ पहिले पीछे जोड़ तोड़ सोचने की ज़रूरत उसको नहीं है यह तात्पर्य ठहिरा ॥ ७२ ॥

७२ अधिकोक्तिः—वात पित्त श्लेष्म दुष्ट ग्रन्थ पूय क्षीण मूत्र पुरीष गंधरेतांस्य बीजानि इतिस्मृत्यंतरं=अर्थात्—ग्रन्थांतर में वीर्य रक्त के इतने दोष कहेहैं कि वात पित्त कफके वेगसे बिगड़ाहो या दुष्ट गाँठ जो वद कहाती है तिससे या पीव राद हो जानेसे या मूत गूहके समान बास आतीहो जिस पिता के वीर्य या माता के रजोरक्त में तौ ये सभी वीर्य अबीज होते हैं अर्थात् इनके योगसे गर्भ नहीं जमता है जिस वीर्य में ये दोष कोईनहीं वही शुद्ध जानों इसीलिये मूल श्लोकमें योगीश्वरने शुक्र शोणित दोनों के विशुद्ध होनेका संयोग बताया=गर्भ स्थान में गर्भ रूपी मकान अपने रहने को जीवात्मा बनाता है यह मूलमें कहिचुके—तिसका प्रमाण भी शारीरक शास्त्रमें कहा है=यथा=स्त्रीपुंसयोर्योगेयोनौरजसाभिसंसृष्टशुक्रंतत्क्षणमेव सहभूतात्मनागुणैश्च सत्वरजस्तमोभिःसहवायुनाप्रेर्यमाणं गर्भाशये तिष्ठति=अर्थात्—स्त्री पुरुष के मैथुन समय योनि में रजोरक्त से मिला हुआ वीर्य तत्कालही पंच भूतों सहित आत्मा और सत्व रज तम तीनों गुणों करके सहित वायुसे प्रेर्यमाण हलाया झुलाया हुआ गर्भाशय के नियत स्थानपर टिकताहै ॥ भला उसगर्भमें रहिकर चिद्धातुरूपी जीवात्मा अपने रहने को मकान किस ढंगसे बनाता है अर्थात् उस में क्या क्या रचना करता है सो अगिले श्लोकों से कहते हैं ॥ ७२ ॥

(इन्द्रियादिसर्वभावानां समूहग्रन्थ्याभासः)

इंद्रियाणिमनःप्राणोज्ञानमायुःसुखंधृतिः। धारणाप्रेरणंदुःखमिच्छाऽहंकारएवच ७३
प्रयत्नआकृतिर्वर्णःस्वरद्वेषौभवाभवौ। तस्येतदात्मजंसर्वमनादेरादिमिच्छतः ७४

अर्थः—अनादेः आदिं इच्छतः (अजन्माके शरीरजन्मको चाहतेही) इंद्रियां· मन· प्राण· ज्ञान· आयुस्· सुख· धृति· धारणा· प्रेरणा· दुःख· इच्छा· अहंकार· प्रयत्न· आकृति· वर्ण· स्वर· द्वेष· भव· अभव· यहसब उसका आत्मज होताहै=अर्थात्—जिस परमात्मा का जन्म किसी और से नहींहै इसीसे अनादि कहा जाताहै कि उसकी आदि जन्म कोई नहीं जानता वही जब जन्म रूपी आदिको चाहताहै तब चाहनाके

रहा करता है उसीसे गर्भका शरीरभी बनिजाता बल्कि शेष चारों तत्त्वभी उस गर्भ में जितनी चाहीजायँगी सो सब स्त्रीके शरीर में अधिकता से मौजूद हैं केवल वीर्यही में इनतत्त्वोंको ढूंढनेकी अपेक्षा शेषनहीं क्योंकि पुरुषकावीर्य और स्त्रीकारक्तदोनों मिलकर गर्भका पहिला अंकुरजमताहै सो अगिलेकई श्लोकों में समझिलेना=कदाचित्=यहशंका आरोपित करीजाय कि स्त्रियोंके उदरभीतरजीवात्मा अपनाशरीर जो बनाता है सो यह नयेहुये कामोंका करना बहुत सुगम है कि उसी पहिले शरीर का मशाला लेलेकर अपनाघर बनानेलगा-किन्तु जब एक भी स्त्री या पुरुषोंके शरीर पहिले नहीं थे केवल सूक्ष्म रूपी जीवात्माही असंख्य फिरते होंगे तब किसके रक्त और वीर्यसे बनाताहोगा--सुनो धरतीसे आकाशतक पंचमहाभूतभी पहिले निपटनहीं थे जिस परमात्माने उन पाँचोंकी उत्पत्ति एक साथही अपनी इच्छासे प्रकाश करी तिसको स्त्री पुरुष का एक जोड़ा अपनी इच्छा से उत्पन्न करदेना क्या दुर्घट है कि जिसके द्वारा सब जीवात्मा अपने शरीरों को सुगमतासे बनानेलगे इसके लिये मनुस्मृतिमें स्वायंभूमनुकी उत्पत्ति को देखो पहिले उसीसे सब सृष्टि पैदा होनेलगी सो भी यह चर्चा केवल मानुषी देहों का होरहा है इसके उपरान्त सृष्टिकी दशा परभी ध्यान करो कि दीमक आदि लाखों प्रकारके जंतु एक साथही धरतीको फाड़ि के उत्पन्न होते हैं वे कहाँ आते हैं क्या उनके भी उतने माता पिता नीचेबैठे हैं जिससे जीवात्मा को उतने शरीर धारण करनेकी सुगमता है--उसको सभी दशामें सुगमता है कठिनता उसकोकहींभी नहीं क्योंकि जब सर्वशक्तिमानहै तो फिरचाहैं तबचाहैं तैसेप्रकार से करसक्ता है उसकेलिये कोई सा एक नियम नहीं कि उसीरीतिसे चले (कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थः सईश्वरः) तिससे ऐसी शंका करना कुछ आवश्यक नहींहै-जिनप्रकारोंसे गर्भमें जीवात्माकाम करताहै सो अगिले मूलश्लोकसेदेखो७१॥

(जीवात्मनःशरीरधारणं)

स्त्रीपुंसयोस्तुसंयोगेविशुद्धेशुक्रशोणिते। पंचधातून्स्वयंषष्ठआदत्तेयुगपत्प्रभुः ७२

अर्थः—स्त्री पुरुष के संयोग समय शुक्रशोणित दोनोंके विशुद्ध होनेमें प्रभुपांचो धातु को छठा आप एक साथही अंगीकार किया करता है=अर्थात्—मासिक ऋतु कालमें रजोधर्मके नियमोंसे ठीकठीक समयपर स्त्री पुरुष दोनोंका रक्तवीर्य ठीक शुद्धहोय तभी उनका मैथुन होकर यदि रक्तवीर्य दोनोंका संयोग (मिलाप) होयतो तत्कालही जीवात्मा उसमें बैठिके पूर्वोक्त पाँच धातुओं को (अर्थात् धरती आदि

महा पंच भूतों) को लेकर उनके साथही चिद्धातु जो आपही चैतन्य एक ज्योति के समान है सो मिलिके सबका एक साथही स्वीकार करलेता है क्योंकि शरीर बनाने की प्रक्रिया में वह प्रभुही समर्थ है तिससे अपने भोगका स्थान बनाने का प्रारम्भ (युगपत) एकदम करदेता है कुछ पहिले पीछे जोड़ तोड़ शोचने की जरूरत उसको नहीं है यह तात्पर्य ठहिरा॥ ७२ ॥

७२ अधिकोक्तिः—वात पित्त श्लेष्म दुष्ट ग्रन्थ पूय क्षीण मूत्र पुरीष गंधरेतांस्य बीजानि इतिस्मृत्यंतरं=अर्थात्—ग्रन्थांतर में वीर्य रक्त के इतने दोष कहेहैं कि वात पित्त कफके वेगसे बिगड़ाहो या दुष्ट गाँठ जो बद कहाती है तिससे या पीव राद हो जानेसे या मूत गूहके समान बास आतीहो जिस पिता के वीर्य या माता के रजोरक्त में तो ये सभी वीर्य अबीज होते हैं अर्थात् इनके योगसे गर्भ नहीं जमता है जिस वीर्य में ये दोष कोईनहीं वही शुद्ध जानो इसीलिये मूल श्लोकमें योगीश्वरने शुक्र शोणित दोनों के विशुद्ध होनेका संयोग बताया=गर्भ स्थान में गर्भ रूपी मकान अपने रहने को जीवात्मा बनाता है यह मूलमें कहिचुके—तिसका प्रमाण भी शारीरक शास्त्रमें कहा है=यथा=स्त्रीपुंसयोगेयोनौरजसाभिसंसृष्टशुक्रंतत्क्षणमेव सहभूतात्मनागुणैश्च सत्त्वरजस्तमोभिःसहवायुनाप्रेर्यमाणं गर्भाशये तिष्ठति=अर्थात्—स्त्री पुरुष के मैथुन समय योनि में रजोरक्त से मिला हुआ वीर्य तत्कालही पंच भूतों सहित आत्मा और सत्व रज तम तीनों गुणों करके सहित वायुसे प्रेर्यमाण हलाया झुलाया हुआ गर्भाशय के नियत स्थानपर टिकताहै॥ भला उसगर्भमें रहिकर चिद्धातुरूपी जीवात्मा अपने रहने को मकान किस ढंगसे बनाता है अर्थात् उस में क्या क्या रचना करता है सो अगिले श्लोकों से कहते हैं ॥ ७२ ॥

(इन्द्रियादिसर्वभावानां समूहप्रत्ययाभासः)

इंद्रियाणिमनःप्राणोज्ञानमायुःसुखंधृतिः। धारणाप्रेरणंदुःखमिच्छाऽहंकारएवच ७३
प्रयत्नआकृतिर्वर्णःस्वरद्वेषौभवाभवौ। तस्यैतदात्मजंसर्वमनादेरादिमिच्छतः ७४

अर्थः—अनादेः आदिं इच्छतः (अजन्माके शरीरजन्मको चाहतेही) इंद्रियां· मन· प्राण· ज्ञान· आयुस्· सुख· धृति· धारणा· प्रेरणा· दुःख· इच्छा· अहंकार· प्रयत्न· आकृति· वर्ण· स्वर· द्वेष· भव· अभव· यहसब उसका आत्मज होताहै=अर्थात्—जिस परमात्मा का जन्म किसी ओर से नहींहै इसीसे अनादि कहा जाताहै कि उसकी आदि जन्म कोई नहीं जानता वही जब जन्म रूपी आदिको चाहताहै तब चाहनाके

साथही किसी गर्भ में प्रवेश करते हुये यह सब सामग्री इंद्री आदि उसके आत्मा में ही आपसेआप पैदा होजातीहै-अर्थात्-ज्ञानेन्द्री कर्मेन्द्रीपांच पांच और ग्यारहवां मन भी जो सबका प्रेरक अधिष्ठाता है· प्राण जो पांच प्रकार की प्राण वायु जुदी२ शरीर में स्थान भेदसे रहती सो पंच प्राण कहाते हैं नाम उनके प्राण १ अपान २ उदान ३ समान ४ व्यान ५ ये पाँच हैं और· ज्ञान जो पद पदार्थोंका बोध करानेवाली एक वृत्ति कपाल में होतीहै उसके भी अनेक शाखा भेद होते हैं· आयु जोएक प्रकार का काल नियम है कि इतने काल तक यह शरीर बना रहेगा· सुख जो आनंदरूपी एक गुण कहाताहै· धृति यहचित्त की स्थिरता कहातीहै·धारणा यह प्रज्ञा औरमेधा भी कहातीहै अर्थात् सरस्वती रूपा बुद्धि और उस बुद्धिको धारणा कहते हैं जिसकी सुनी समझी बात कभी न भूले· प्रेरणा अर्थात् मनका यह धर्महै कि दशों इंद्रियों पर अधिष्ठाता बनके उन्हें उनके जुदे कामों में लगाता या हटाताभी रहताहै मनकी प्रेरणा बिना इंद्रियां अपने भले बुरे कामों को नहीं करसक्ती हैं· दुःख यह प्रसिद्धहै कि चित्त को उद्वेग घबड़ाहट दिलानेवाला होताहै यह भी जितना भोग्यहो सो गर्भ के साथही आकार शरीर में प्रवेश होता है·इच्छा यहएक प्रकार की वृत्तिअंतःकरण में रहिती है उन बातों या चीजों की चाहना करवाती है जो चहोती अबतक नहीं मिलीं और मिलचुकीं तिनकी बारम्बार अधिक मिलनेको चाहना किया करतीहै· अहंकार यह भी अन्तःकरण में रहिनेवाला एक वृत्तिहै जो अपने स्वरूप का बोध कराताहै कि मैं इस प्रकारका हूंप्रयत्न यहपुरुषका गुण कहाताहै कि व्यवहारोंको किया करने में युक्ति शोचिके प्रवृत्तहोय·आकृति यह शरीर का आकार डीलडौल ओछापूरा आदि जो कुछ हो·वर्ण यह देह का रंगहै गोरा काला आदि जो कुछ हो· स्वर यह वाणी का गुण है और गान विद्या में षड्ज ऋषभ गांधार आदिनाम तथा स्वरूपों का विस्तार है·द्वेष यह वैर का स्वरूपहै·भव यह पुत्रपौत्रपशु आदिकी वृद्धि कहाती जितनीउसके प्रारब्धमें आई हो·अभव उससे विपरीतहै कि दास पशु पुत्रादि की समृद्धि न होनीजैसी प्रारब्धमें आई हो·यह सबसामग्री उसीअनादि नित्यआत्मा के शरीर इच्छा करतेहुये आत्म जनित होताहै अर्थात् पहिले जन्म कर्म्मरूपी बीज से उत्पन्न होता वह साथही आया करताहै॥ ७३ । ७४ ॥

ये सबचीजें जिस वेरा जिस क्रमसे पैदाहोती हैं सो अगिले श्लोकों से दर्शातेहैं॥

(संयुक्तशुक्रशोणितस्यकाय परिणतिक्रमः)

प्रथमेमासिसंक्लेदभूतोधातुविमूर्च्छितः । मास्यर्बुदंद्वितीयेतुतृतीयेंगेन्द्रियैर्युतः ७५
आकाशाल्लाघवंसौक्ष्म्यंशब्दंश्रोत्रंबलादिकम् । वायोश्चस्पर्शनंचेष्टांव्यूहनंरौक्ष्यमेवच ७६
पित्तात्तुदर्शनंपक्तिमौष्ण्यंरूपंप्रकाशिताम् । रसात्तुरसनंशैत्यंस्नेहंक्लेदंसमार्दवम् ७७
भूमेर्गंधंतथाघ्राणंगौरवंमूर्तिमेवच । आत्मागृह्णात्यजःसर्वतृतीयेस्पंदतेततः ७८

अर्थः—गर्भके पहिले महीनाभर (छठा धातु रूपी चेतन जीवात्मा) आप धातु विमूर्च्छित (अर्थात पृथिवी आदि पाँच धातुओंमें दूध पानीकी तरह परस्पर मिला) होके अच्छा क्लेद भूत अर्थात गीलाही ढलकमा रहाकरताहै कड़ापनको नहीं पकड़ता फिर–दूसरे महीना में अर्बुद होजाताहै अर्थात कुछकठिन कुछ कोमल मांसकी पिण्डोरूप कोलसी होजाती है–तीसरे महीने में अंग और इन्द्रियों से भी युक्त होता है (अर्थात धड़के सिवाय मुह और चारोंहाथ पैरों के चिह्न मात्र येही पांच अग उपजि आते और इन्द्रियोंके आकारकेवल गर्भके भीतरसे उभरनेमात्र लगतेहैं तिनका ब्योरा अगिले श्लोक से समझो ॥७५॥(आत्मागृहणातिं)आत्मा ग्रहण करताहै यह अठत्तरिके श्लोक वाला पद सबके साथ समझतेरहिना)किंच इसीतीसरे मासमें इतने काम होतेहैं–आकाशधातुके हलुकापन प्रभावसेगर्भमें लाघव हलुकापन फुर्तीउत्पन्न होतीहै और उसी आकाश के प्रभावसे सूक्ष्मता भी होतीहै अर्थात अगोंका भद्दापन दूर होके सफाई प्राप्त होती और बारीकी और कान की इन्द्री का श्रोत्र और उसी इन्द्री का भोगरूपी शब्द गुण भी और बल आदि भी गर्भ में आजाते हैं–वायु तत्त्व रूपी धातुके प्रभाव से स्पर्शन इन्द्री अर्थात खाल और चलाफिरी आदि की चेष्टा और व्यूहन अर्थात अगोंका विविध भाँतिसे पसारना समेटना आदि यह भी पवनके प्रभाव से और उसीसे रौक्ष्य रूखापन खर्दरापन आदि और चकारके ध्वन्यर्थ करके उसी पवन से स्पर्श गुण भी पैदा होताहै जो स्पर्शन इन्द्रीका भोगहै ॥ ७६ ॥ अग्नि धातुका तेज पित्तरूपी जो शरीरों में रहा करता है तिसके प्रभाव से दर्शन अर्थात नेत्रकी इन्द्री पैदा होती और पक्ति अर्थात खायेहुये अन्न का पचना किन्तु पचाने वाली एक शक्ति और उष्णता अर्थात अगोंके छूनेसे गरमी मालूम होना तथा रूप सुन्दर असुन्दर आदि और प्रकाशिता अर्थात चमक दमक तथा संताप क्रोध आदि भी अग्निही के प्रभावसे–एवं रस अर्थात जल धातुके प्रभावसे रसन अर्थात रसनेन्द्री जिसका जीभमें निवासहै सो और रसन नासका कफभी जो जीभकी जड़केनीचे सदा

रहिकर भोजनका स्वाद बताया करता है और उसी जल धातुसे अंगोंमें शैत्य ठंढापन और स्नेह जोवसाआदि चिकनाई देहके भीतर हुआ करती है तथैव चिकनापन जो देह केऊपर दरकीलीखाल होजाती है और उसी जल धातुसे समार्दवक्लेदं अर्थातकोमलतासहित गीलापन भी इसी तीसरे मासमें उत्पन्नहोताहै ॥ ७७ ॥ एवं भूमि धातु के प्रभावसे गर्भ के भीतर तरह तरह के गन्ध तथा घ्राण जो सूंघनेवालीइन्द्री नाकमें रहिती है तथा गौरव अर्थात चूतर आदि कुछ अंगों का विशेष भारीपन तथा मूर्त्ति अर्थात कठिनता कड़ापन और देहका आकार डौल भी इसी तीसरे मासमें यह सब आत्मा आपही ग्रहण करताहै अजन्मा होतेहुये भी–ततःस्पंदते अर्थात तिससे आगे चौथे मासमें कुछ कुछ हिलताचलता है ॥ ७८ ॥=७५। ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

७५अधिकोक्तिः—पचहत्तरिका श्लोक देखो मांसकी पिराडी सी होजाती कही तहाँ यह सिद्धांत नहीं है कि दूसरा महीना लगतेसार एकही दिन में पिराडी बनि जायगी अर्थात क्रमक्रम से तीसदिन मे सूखतेसूखते कठिनताको पहुँचती है=यदाह सुश्रुतः=द्वितीयेशीतोष्णानिलैरभिपच्यमानो भूतसंघातोघनोजायते=अर्थात—सुश्रुतने कहाहै कि दूसरे महीनेमें नारीके पेटमें रहिने वाले ठंढे गरम दो भाँति के पवनों के झकोरे लगिलगि पकता सूखताहुआ पूर्वोक्त महाभूतोंका ढलकसा समूह क्रमक्रमसे कड़ापन पकड़ लेताहै(दो तरहका वायु कहा तिसका यह तात्पर्यहै कि नारीके उदर मे वात पित्त कफ तीनों जो रहिते हैं तिनमें पित्तहै अग्निका रूप और कफ जलका रूप ठंढा होता है तहाँ वातजब कफकेसाथ मिलाप करताहै तभी ठराढा और अग्नि रूपी पित्तसे मिलापकरताहै तब गरम होजाताहै तिसके दोनोंभांति के ठढे गरम झकोरे लगने से गर्भगाढा होजाकर पिराडीबनतीहै) इसी हेतुसे वात पित्त कफ तीनों उसी गर्भ को मजबूत करनेवाले सहायक ठहिरेइसकाप्रमाणभी अगिलावचन देखो= यदाहभावमिश्रः=मरुत्पित्तकफैस्तत्स्थैः पच्यमानोद्वितीयके कललस्यमहाभूत समुदायोघनोभवेत=अर्थात–गर्भस्थानमें रहिनेवाले वात पित्त कफोंकरके पचायासुखाया हुआ महाभूतों का समुदाय कलल में वेदिके घनरूप अर्थात मांसकाअर्बुद होजाता है इसी बातसे यहभी तात्पर्य ठहिरा कि दूसरे महीनामें जब गाढाहोकर पिराडबंधने लगता है तभीउसपर (कलल) चमड़ा तुल्य जालीसी होजाती जो जरायुभी कहातीहै उसीमेंवँधा लपिटा गर्भ आठ नौमहीनेतक सिद्धहोतारहिता औरउसीकललसेबँधाफँसा जन्मलेताहै=तीसरेमहीनाकी व्यवस्था जो कहीगई तिसकेलिये एकदृष्टान्तभी यहांपर शोचना चाहिये कि जैसे हींग सोंठि आदि सब द्रव्योंमें गुणहोते और खाने

लगाने से मालूम देतेहैं कि मूत्र पटकाइदेना डकारलेआता पचा उकरना वाउसराना देहकीपीड़ादूरिकर देना आदिबुद्धिमानोंसे पहिंचानेजातेहैं उसीप्रकार आकाशआदि पांचोमहाभूतोंमें गुणहोते और ज्ञानसेपहिंचानेजातेहैं कि सबचीजों तथासबजीवोंके देहमें उन पांचोंका क्या क्या गुण उपस्थित होताहै--तिस पहिंचाननेकेलिये प्रथम उन्हीं पांचोंके गुण कहिने परतेहैं क्योंकि उन्हीं पांचों धातुसे शरीर बना ठहिरा तो जो जो गुण धातुओं में होंगे सो सब उनसेबने शरीर में भी आवेंगे जैसा गर्भके पहिले महीना से लेकर तीसरे महीना में कहिकर समझायागया तहाँ पचहत्तरि आदि श्लोकोंसे यद्यपि यह जानागया कि आकाशआदि धातुओंके प्रभावहीसे सब लक्षण गर्भ में आतेहैं परन्तु यह न जानागया कि उन महाभूतों में कुछ आप भी गुण होते हैं या नहीं--इसी लिये वैद्यक परिभाषा से लेकर पाँचों के पाँच श्लोक यहाँ स्थापन करतेहैं=यथा=महाभूतानां-धातुभूतानांगुणाः=शब्दश्रोत्रेन्द्रियंवापिछिद्राणिचविविक्तता वियतःकथिताएतेगुणागुणविचारिभिः ॥ १ ॥ स्पर्शस्त्वगिन्द्रियंचापिलघुताश्चंदंततनोःचेष्टाःसर्वशरीरस्थवायोरेतेगुणाःस्मृताः २ ॥ रूपंनेत्रेन्द्रियंपाकःसंतापस्तीक्ष्णता तथा वर्णोभ्राजिष्णुताऽमर्षःशौर्यंवह्नेर्गुणाश्रमी ३ ॥ रसोरसेन्द्रियंशैत्यंस्नेहश्चगुरुता तथा सर्वद्रवसमूहश्चशुक्रंवारिगुणाःस्मृताः ४॥ गंधोघ्राणेन्द्रियंस्थैर्यंकाठिन्यंगौरवं तथा वसुन्धरागुणाएतेगदितागणवेदिभिः ५=अर्थात्-वियत् आकाशके गुणविचारने वालोंने इतने गुण उसमें कहेहैं कि शब्द-कानकी इन्द्री-देहमें अनेकछिद्र-विविक्तता जो मिले अंगोंकी जुदाई प्रतीतकरै जिससे हाड़मांस खाल नस नाड़ी आदि सबमिले, और जुदे भी प्रतीत होयँ(आकाशाच्छब्दंश्रोत्रंविविक्ततां सर्वछिद्रसमूहांश्चेतिगर्भोपनिषदिचोक्तं) १ ॥ स्पर्श-और खाल की इन्द्री-हलुकापन-शरीर का फरकना सर्व शरीर की चेष्टायें इतने वायुके गुण कहेगये २ ॥ रूप-नेत्रकी इन्द्री जो रूपको देखसके. पाक जिससे अन्नपचे या अन्नसे उत्पन्नरसादिक धातुपकें या शरीरके अंगपकें-संताप गरमाई-तीक्ष्णता खरापन-वर्ण काला पीला लालआदि-भ्राजिष्णुता चमक दमक. अमर्ष क्रोध-शौर्य शूरता-ये अग्नि के गुण होतेहैं ३ ॥ तथा जलके गुण इतने कहेगये हैं कि शुद्धका रस जो रसन नामाकफ कहाता है. तथैव रसनेन्द्री जो जीभ कहातीहै. शैत्य ठंढापन जिस किसी अंग में होय-स्नेह चिकनाई जो किसी चीज में या कहीं अंगमें भीतर बाहर मौजूदहोय-गुरुता भारपन जो किसी वस्तुमें या देहके किसी अंग में होय-सर्वद्रव समूह अर्थात् मनुष्य आदि जीवोंके देह में रस रक्त आदि जो कुछ पतरी ढरकनी चीजें होती हों या संसारी फल तरकारी आदि सब चीजों में जो कुछ

अंग पतरा दरकना होय सो सब जलही का गुण जानना तथा जीवों के देह में जो शुक्र वीर्य होताहै सोभी जलका गुण जानना ४ ॥ तथैव धरती के मृत्तिका तत्व में गुणके जानने वालों ने इतने गुण कहे हैं कि॰ गन्ध दोनों भाँतिका चाहैं सुगन्ध वा दुर्गंध होय॰घ्राणेन्द्री जो गन्धका पहिंचानिसके नाकहै॰स्थौल्य जो शरीर या किसी वस्तु में मोटापन देखिपरै॰काठिन्य कड़ापन॰गौरव भारापन ये धरती में होते हैं ५ ॥ (जहाँ वातके गुणकहे तहाँ रौक्ष्य भी समझना कि रूखा पन वायु का गुण होताहै जैसा अग्रोक्त गर्भोपनिषदके बचन में देखो—शौर्यामर्यरौक्ष्यापक्त्यौष्ण्यभ्राजिष्णुता संतापवर्णरूपेन्द्रियाणि तैजसानि इति) यह सब तीसरे महीनामें उत्पन्नमात्र होता है अर्थात इन्हीं बातों का प्रकाश पूरा चौथे मासमें जाकर होताहै (तस्माच्चतुर्थेमासि चलनादावभिप्रायंकरोतीति शारीरकेपि) शारीरक शास्त्रमें भी यह कहाहै कि उस तीसरेसे आगे चौथेमासमें गर्भचलने उछलने आदि मध्ये अभिप्राय प्रकट करनेलगता है॰इसी आदि शब्दसे वे बातें भी समझनी जो ८० अस्सी की अविकोक्ति में भावप्रकाशके शारीरक द्वारा लिखी जायँगी—इसीलिये योगीश्वर ने अवत्तरि ७८ मूल श्लोक के अंत में (स्पंदतेततः) यही कहा है कि ततः तीसरे के बाद चौथे मास में फरकने लगता है--इसका विशेष ब्यौरा अस्सी मूल श्लोक वाली अविकोक्ति में समझलेना ॥ ७५ । ७६ । ७७ । ७८ ॥

तीसरे चौथे दोनों मास की संधिसे लेकर आगेगर्भिणीका बर्ताव जैसा चाहिये सो उनासी श्लोक से देखो ॥

(गर्भिण्याद्विहृदयायाः सदाचारः)

दोहृदस्याप्रदानेनगर्भोदोषमवाप्नुयात् । वैरूप्यंमरणंवापितस्मात्कार्यंप्रियंस्त्रियाः ७९

अर्थः—द्वौ हृदके अप्रदान से गर्भ दोष को पाताहै वैरूप्यको या मरणको ही तिससे स्त्रीका प्रियकरना चाहिये=अर्थात—एक हृदय गर्भ का दूसरा गर्भिणी का दो हृदय एकत्र होने से गर्भिणी द्विहृदया कहाती है द्विहृदया की लालसा से जिस वस्तुकी चाहना होय तिसका दौहृद नाम होताहै तिस दौहृद को उसकी अभिलाष के अनुकूल यदि अच्छीतरह न देवै तौ न देनेसे गर्भ में विरूपता अंगभंग रूपी दोष या निपट मरजानेका दोष जाकर लगता है चाहैं पेटके भीतर या बाहर आके मरै॰ तिससे गर्भिणी को जो कुछ प्रिय लागै सो अवश्य करना चाहिये॰ यह करना कुछ तीसरे मासके प्रारम्भसे नहीं वल्कि गर्भ जमनेके समयसेही जो जो उसकी अभिलाष देखै सो सब साधै ॥ ७९ ॥

७९अधिकोक्तिः—सुश्रुतने फल हेतु भी दर्शाया=द्विहृदयांनारीं दौहृदिनीमाचक्षते तदभिलषितंदद्यात् वीर्यवंतंचिरायुषंपुत्रंजनयति=अर्थात्—दो हृदयवाली नारी को दौहृदिनी कहिते हैं उसका अभिलाष किया पदार्थ उसे देवै जिससे बलीऔर बडी अवस्था वाले पुत्रको जनती है=तथा=गर्भजमने के समय से लेकर व्यायाम आदि भी न करे यह सुश्रुतमें कहाहै =यथा= ततःप्रभृतिव्यायामव्यवायातितर्पणादिवास्वप्नरात्रि जागरण शोक भय यानारोहण वेगधारणा कुक्कुटासन शोणित मोक्षणानि परिहरेत्=अर्थात्—गर्भजमनेके समय से लेकर इतनी बातें न करै· व्यायाम कुश्ती आदि किसी तरहकी मिहनत बोझ उठाना मार्ग चलना आदिभी समझने . व्यवाय मैथुन कर्म· अति खाना पीना जिससे पेट तनै·दिनमेंसोना· रात में जागना·शोकमानना या पहिला शोकयादकरना·भयमानना या भयकी जगह जाना·धमकीलीसवारी ·पर चढके कहीं जाना· शंका लघुशंका आदि वेगोंका रोकना या भूख प्यास आदि या जिन चीज़ोंपर इच्छा चलै तिनके वेगोंका रोकना · कुक्कुटासन अर्थात् मुर्गाकी बैठक समान घूंटे खड़े करके उकुरू बैठना इससेभी गर्भकी हानि प्रायश होती है इन सब कामोंको निपट त्यागि देवै ॥ ० ॥ यह तर्कना खडी होतीहै कि तत्कालही गर्भका जमना क्योंकर जाना जा सके जिससे आगेको इन कामोंका त्याग किया जाय तिसकी भी पहिचान सुश्रुत में कहीहैं=यथा=सद्योगृहीतगर्भायाः श्रमोग्लानिः पिपासासक्थिसदनंशुक्रशोणितयोरवबंधःस्फुरणंचयोनेरित्यादि=अर्थात्—हालहीजिसने गर्भ ग्रहण कियाहो ऐसी स्त्रीके शरीर में तत्काल श्रम थकाहरि पसीना आदि चिह्न होने लगतेहैं और मनमें कुछ ग्लानि भी उत्पन्न होतीहै प्यास भी लगतीहै हड़फूटन भी कुछ होती है और वीर्य रक्त ये दोनों मिलके जो भीतर बँधने लगते हैं तिसका भी आहट उसी गर्भिणी को मालूम होताहै कि सब ओरसे रक्त खिँचने लगा इसके सिवाय योनिमें पहुँच गया वीर्य फिर बाहर नहीं आताहै अर्थात् गर्भ न रहनेकी दशा में सर्वदा मैथुन के अंतमें वीर्य उलटके बाहर निकसि आताहै तिससेभगका द्वार और पुरुष की इंद्री भी लिस जातीहै तभी बुद्धिवान् जानलेताहै कि गर्भ रहा यानहीं रहा इत्यादि बहुधा और भी विलक्षण बातें वैद्यक शास्त्र के शारीरक प्रकरण में देखो क्योंकि यहाँपर उन बातों का संक्षेपही चर्चा कियागया ॥ ७९ ॥

अब चौथे महीना को आदि लेकर महीनों की व्यवस्था अगिले श्लोकों से प्रारम्भ करते हैं ॥

(चतुर्थ मासादेः)

स्थैर्यंचतुर्थेत्वंगानांपंचमेशोणितोद्भवः । षष्ठेवलस्यवर्णस्यनखरोम्णांचसंभवः ८०
मनश्चैतन्ययुक्तोसौनाड़ीस्नायुसिरायुतः । सप्तमेचाष्टमेचैवत्वङ्मांसस्मृतिमानपि ८१
पुनर्धात्रींपुनर्गर्भमोजस्तस्यप्रधावति । अष्टमेमास्यतोगर्भोजातःप्राणैर्वियुज्यते ८२
नवमेदशमेवापिप्रवलैःसूतिमारुतैः । निःसार्यतेवाणइवयंत्रच्छिद्रेणसज्वरः ८३

अर्थः—चौथे मास भरमें उन्हीं अंगों की स्थिरता होतीहै कि जिन अंगों का समूह तीसरे मासमें उत्पन्न होचुका अर्थात् उस महीनामें केवल अंकुर मात्र उपजे और इंद्रियों के सूक्ष्म रूप गर्भके भीतरसे उत्पन्न हुयेथे वही सब यहाँ आकर स्थूल हुये॰ इसीसे हलना चलना उछलना आदिभी इस चौथे मासमें होताहै—पाँचवें मास गर्भ के शरीर में लोहू की उत्पत्ति होतीहै—छठे मास बल का वर्णका नख रोमाओं का कुछ कुछ संभव होआताहै (चपुनः) और ॥ ८० ॥ इसी छठे मासमें यह गर्भ मनके चैतन्य भाव से चेतना से भी युक्त होता और नाड़ी॰ स्नायुनसें॰ सिरा. इनसे सातवें में युत होता हुआ सातवें और आठवें दोनोंही में त्वचा॰ मांस की मज़बूती और स्मृति यादगारी वाला होजाताहै ॥ ८१ ॥ तहाँ आठवें मासमें उस गर्भका ओजस् अर्थात् उसके प्राणों का बल स्मृति में आकर अपने को घिरा रुका देख देख फिर धात्री को फिर गर्भ को प्रकर्ष से दौड़ता है तिससे आठवें मास में जन्म पाया गर्भप्राणों से जुदा होजाता है—अर्थात् यहाँ धात्री नाम (धरती और जननी दोनों का होते हुये भी) धरती को जानना और (ओजस प्राणों का बल होतेभी) उसी गर्भ का रूप ओजस् जानना क्योंकि प्राणबल भी उसीके भीतर होताहै॰ तिससे खुलासा यह अर्थहै कि गर्भ अपनी स्मृति और प्राणों का बल पायके चंचलता से कभी हारा ढूंढता हुआ धरती की ओर झांकने लगता और वहांसे चौंकना होकर कभी फिर गर्भही की तरफ़ किंतु गर्भ रहने के स्थानही को शीघ्र दौड़ जाता है इस प्रकार से वारंवार किलोलें कियाकरता है (दृष्टांत जैसे हालका बछेड़ाकभी घोड़ीसे दूरभाग जाता कभी लौटकर माता के पास आजाताहै) परंतु इस चंचलता से यहधोखाभी सदा लगा रहता है कि धरती की तरफ़ झांकते कभी गिर न जाय वल्कि इसी हेतुसे विरला गर्भ जो इसीआठवें मासमेंवाहरनिकसआताहै सो जीतानहीं क्योंकि पूरे नौ

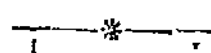
मास के काल रूपी शक्ति उसमे नहीं पहुँची (यह व्याख्या यद्यपि ठीक है तथापि अधिकोक्ति में इसीका कुछ और तात्पर्य है सो देखो ॥ ८२ ॥ फिर नववे या दशवें (यद्वा अपिशब्द के ध्वन्यर्थ से कदाचित् पहिलेही सातवें आठवे) महीना में अति बली सूति पवनोंके वेगसे प्रेरित गर्भ जरायुमे बँधा हुआ योनि रूपी यन्त्रकेछोटे छिद्रसे बाण की तरह फटाक बाहर निकाला जाता है सो भी सज्वर दुःसह दुःख से योनि यन्त्र के छोटे छिद्रमें दबाया हुआ (जैसे यन्त्री में तार खिंचाकरता है) उग्र सूति पवन के बलसे फेंका हुआ बाहर आता है उस दशामे कि जब पूर्वोक्त प्रकारों से हाथ पाँव नेत्र आदि सब अंग प्रत्यंग तथा इन्द्रियों से परिपूर्ण होजाता है ॥ ८३ ॥

८० अधिकोक्तिः—अस्सीइक्यासी दोश्लोकोंमे चौथेसेआठवेतकपांचमहीनेका वृत्तांत जो संक्षेप कहागया तिसका ठीकव्योरा समझानेके लिये यहां भावप्रकाश का शारीरक लिखते हैं=यथाहुर्भावमिश्राः=तृतीये मासि शिरसोहस्तयोः पादयोस्तथा पिंडिकाः पंचसंभूयतिसूक्ष्माङ्गावयवास्ततः ॥ सर्वाण्यंगान्युपांगानिचतुर्थेऽस्यस्फुटानि हि हृदयंव्यक्तभावेनव्यञ्जयतेचेतनापि च-तस्माच्चतुर्थे गर्भस्तु नानावस्तूनिवांछति ॥ ततो द्विहृदयायस्यानारी दौहृदिनीमता ॥ पंचमे मानसं यष्ठे बुद्धिप्रचाप्यनुवर्त्तते सर्वाण्यंगान्युपांगानिभृशंव्यक्तानिसप्तमे ॥ ओजोऽष्टमेसंचरतिमातापुत्रौमुहुःक्रमात् तेनतौम्लानमुदितौस्यातांजातोनजीवति नजीवत्यष्टमेजातस्तत्रौजोनास्थिरंयतः तथानैऋत्यभागत्वाद्धीयतेतद्बलिततः=अर्थात्—गर्भके शरीर से तीसरे महीने में मूडकी और दो दो हाथ पैरोंकी ये पांचपिण्डी अङ्कुरकी तरह निकसने लगती हैं जो सूक्ष्मबारीक और छोटी जो आधे आधे अंग प्रतीत होतेहैं ॥ फिर येही सबअंग इसके निजनिज उपांगों सहित होके चौथे मासमें स्पष्टहोजाते और हृदयभी छातीके भीतर कुछकुछ दिखाई देनेयोग्यहोआता और चैतन्य चेतनाभी कुछकुछ प्रकाश होनेलगतीहै-इसी हेतुसे इस चौथेमासमे गर्भ नानावस्तुओंको माताके हृदयद्वारा चाहने लगताहै तभीसे गर्भिणी नारी दो हृदयवाली होजानेसे दौहृदिनी कहातीहै ॥ फिर पांचवें महीना पूर्वोक्त हृदयके भीतर गर्भकामन उत्पन्न होताहै वहीमन छठेमें जाकर प्रबल होताहै फिर छठे महीने गर्भके मस्तकमें बुद्धिभी उत्पन्न होतीहै सो आगेको क्रम क्रमसे बढती जातीहै (इसबुद्धिकी सहेली एक महाचेतनानामसे हृदयकमलमेंभी जीवकेसमीप रहाकरती है जिसकी अनेक दासीरूप चेतनाये सबदेहमे फैली रहाकरतीहैं इसका व्योरा आगे चलिके देखना) फिर सातवें मासमे वेही सबअंग और उपांग छोटे अंगभी जो चौथे मासमे उत्पन्नहोचुके अतिशय व्यक्त खुलासाहोजाते हैं ॥ आठवें मे ओजस् खूबचलने

लगताहै माता पुत्र दोनोंके तरफ फिर फिर वारंवार क्रमसे अर्थात् एकवार माता में फिर एकवार पुत्रमें फिर मातामें इसीतरह वारंबार ओजस् एकही सो लौटपौट किया करताहै तहां दोनों इसीक्रमसे म्लान या मुदितहोते रहिते हैं अर्थात् जिससमय जिस की तरफ ओजस् दौड़िगया वही मुदित प्रसन्न मुहखिलासा होगया किन्तु जिसकी तरफसे ओजस् हटगया वहीम्लान उदास कुम्हिलायेमुख होगया यहतात्पर्यटहिरा-विवेक्तालोक समझैंगे–ओजसकी व्याख्या जो कुछ८२ बयासी मूलश्लोकवालेअर्थ में लिखचुके उसके जोड तोडपर बुद्धि ठीकजमतीहै—अतोक्त व्याख्या यद्यपि प्राचीन ग्रन्थकारोंका लेखहै तौभी इसपर बुद्धि न जमनेका हेतु केवल यहीहै कि उन प्राचीनोंने स्पष्ट निर्णय कुछ नहींदिया कि ओजस् किसको जानना या वह ओजस् किनकारणों से दो तरफ़ दौड़ता है-अन्यथा (पुनर्धात्रीम्पुनर्गर्भंसोजस्तस्यप्रधावति) इस बयासीके श्लोकमें भी यही अर्थ होताहै कि उसगर्भका ओजस् फिर माताकोफिर गर्भको दौड़ता है—और—ओजसका लक्षण जो शारीरक व्यवस्था में प्रसिद्ध है सो यही है कि सातवांधातु शुक्रवीर्य पकने से उसका सारभूत अतर खिंचिकर ओजस् पैदाहोताहै वह आठबूंदमात्र हृदय में रहिताहै वही सब देहमें बल पुष्टि चंचलता रूप रंग चमक दमक चैतन्यता आदि बढाता रहिताहै उसका पीलावर्ण कुछसुपेदी कुछ सुर्खीलिये होताहै वही जीवका आधार है उसका नाशहोने में देहनाश होजाताहै इत्यादि बहुत बातोंका विस्तार इसका लिखना नहीं चाहते हैं संक्षेप यहांपर कहा गया ॥ ० ॥ चेतना जो चैतन्य परमात्माका चिदाभास रूपी एकशक्ति होतीहै जिसका थोड़ासा आभास गर्भमें इंद्रियां उत्पन्न होनेके साथही तीसरेमास फिर दृढतासे चौथेमासमें आचुकाथा उसीका पूरापूरा प्रकाश छठेमासमें आकर हुआ सोसबकहा गया(जहांतहां ऊपरकेपाठोंमें देखिलो)इसचेतनाका अर्थ यद्यपिज्ञान और बुद्धिपर भी आरूढहोता(बल्किविशेषकर बुद्धिकानाम भी चेतना कहाजाताहै) तथापि जैसाज्ञान और बुद्धिसे विचारकियाजाताहै तैसाचेतनाके द्वारा कोई शोचविचारवालाकामनहीं चलताहै तिससे यहांज्ञान और बुद्धिसे भी जुदी चेतना एकतीसरीशक्ति जाननी–कि इसचेतनाकेहोनेसे शरीरके छोटेबड़े सब अंगोंमें गरम ठंढागीला सूखानरम कठोरआदि छुइ जानेका बोध या कांटा आदि चुभि जानेका बोधमात्र होजाता है पर और किसी शोचविचारकी समर्थ इसमें नहीं है-अर्थात् शीत उष्ण पीड़ा आदिका बोध इसके द्वारा होजानेसे अनंतर तत्काल उसीबोधका प्रभाव जाकर अंतःकरणमें आश्रयलिया करता है-तहां फिर बुद्धि उसका निर्णय अपनी शक्तिसे करलेती है कि यह क्या था और

क्या हुआ·इसीहेतु यह चेतना कुछ बुद्धि आपनहीं हैं बुद्धिके आधीन रहा करतीहै· इसका निवास यद्यपि विशेष कर त्वचामें रहिता है परंतु चेतना एक ही प्रकार की, नहीं वलिक अनेक प्रकारकी होतीहैं सो सब जुदे अंगों तथा इन्द्रियों में रहितीहैं और इन्द्रियोंके अपनेअपने जुदे जोज्ञान अथवाकर्म्म हैं उनकर्मोंकी शक्तिजोहैं सोभी चेतनाओंके स्वरूपभेद जानिलेना (इनसब चेतनाओं की अधिष्ठाता एकसबसेबडी चेतना आगे चौरासीको अधिकोक्तिमें किसी प्रसंगसे दर्शाई जायगी)यहाँ उसकी इन्हीं सब दासिओंका प्रमाण समझलेना चाहिये=यदाहचरकः=चेतनानामधिष्ठानंमनोदेहश्च सेंद्रियःकेशलोमनखाग्रांतमलद्रवगणैर्विना=अर्थात्–चरकने कहाहै कि सब तरहकी चेतनाओंकानिवासहै सबइन्द्रियोंसहितदेह औरमन भी·परन्तुवार औररोमावली और नखोंके निर्जीव अग्रभाग जो काटि फेंकने योग्य होतेहैं तिनमें किसी तरहकी चेतना नहीं और अन्तरमल भी जो शरीर के भीतर विष्टा आदि अनेक होतेहैं और भीतर ले द्रवोंके गण भी जो रसरक्त जल मूत्र कफ पित्तस्तन्य आदि ढरकनी वहिचलने वाली चीजें द्रव कहाती हैं तिनमें भी किसी तरहकी चेतना नहीं होतीहै तिससे इन सबके जुदे गण समूहोंको छोड़ि इनकेबिना सबइन्द्रियों सहितदेहतथा मनमेंभी चेतनायेंरहा करतीहैं यह जानना—इस वचनकेअर्थयद्यपि बहुतही विस्तारवालेहैं सब नहींलिखे जासक्तेहैं परन्तु चरकनेविद्वानोंके समझने योग्य उत्सर्ग और अपवादकी रीतिसेयह वचन कहाहै अर्थात् प्रथम सब इंद्रियों सहित देह तथा मनको भी सामान्य विधिसे चेतनाओंका अधिष्ठान कहा(तिससे वाहर भीतर समस्तदेह समझा गया)उसीमेंदूसरे अद्धासे अपवाद रूपी छूट भी कहिदीहै कि·वालोंका गण समूह·रोमाओंका समूह· नखाग्रोंका समूह·मलोंका समूह·द्रवचीजोंका समूह·इनसब गणोंको छोड़ि के सब देहमें चेतना रहा करतीहैं (चेतनानां) चेतनाका बहुत्व भी इसी लिये रक्खाहै कि अंगोंके स्थान भेदसे चेतना वहुत प्रकारोंकी होती हैं और नखोंके अग्रभागही केवल इसलिये कहे कि उनकाऊपरला भाग जोपूरापूरा सुपेद नखहोताहै उसमेंचेतनारहिती है सुई गडाकरदेखो उसमे पीडाआदिका वोधहोने लगता और वहीचेतनाकारूपहै॥०॥ तिरासी ८३के श्लोकमें सूति मारुतकहे सो उसकानामहै जो वायु केवल गर्भका जन्म होतेसमय प्रवल होके कामदेती अर्थात् गर्भको वाहर निकासती यह स्त्रियोंके पेटमें रहिती है=वायुके वेगसम गर्भवाहर आजानेपर ईश्वरकी इच्छासे तत्काल वाहरकी हवासे स्पर्श कियाहुआ पहिले जन्मोंकास्मरण (जो गर्भमें रहितेसेवन करताथा सो) भूलिजाता है=यह निरुक्त के अष्टादश भाग में कहाहै=यथा=जात·सवायुनास्पृष्टोन

स्मरति पूर्वजन्ममरणांकर्मच शुभाशुभम=अर्थात्—पैदाहोके वहवायुसे छुआगयापहिला जन्म औरमरण औरभलेवुरे कर्मोंकोभी नहीं यादि रखताहै॥८०॥८१॥८२॥८३॥
ऐसेउत्पन्नहुये गर्भकेदेहमें क्याक्याशुणहोताहैसो सबअगिले परिच्छेदभरमेंदेखना॥



अथैवमुत्पन्नस्यगर्भस्यदेहेसंक्षेपतः शारीरकव्यवस्था विज्ञापकोऽयंपरिच्छेद(११)एकादशः॥

इस ग्यारहवे परिच्छेद में उत्पन्न हुये गर्भके देहमे संक्षेप से शारीरक व्यवस्था कही जायगी कि उसके देहमें भीतर वाहरक्याक्या वस्तु होतीहैं—शारीरकव्यवस्था वही कहातीहै जो शरीरका सवच व्यवस्थापनकरे—संक्षेपसे इसलिये कहा कि वैद्यक शास्त्र में शारीरक बहुत विस्तार वाला है यहां उस का थोडासा लेकर जरूरी मात्र सन्यासी को समझावेंगे॥

(अंगादीनांप्रदर्शनं)

तस्यषोढाशरीराणिषट्त्वचोधारयंतिच। षड्ंगानितथास्थ्नाचसहषष्ठ्याशतत्रयम् ८४

अक्षरार्थः—उसके छ प्रकार के विभक्त शरीरों को छे त्वचा धारण करती हैं तथा छे अंग भी होतेहैं और हाड़ोंकी संख्या साठि ऊपर तीन सौ॥८४॥

अभिप्रायः—इस अक्षरार्थ का अभिप्राय मिताक्षराकार दर्शातेहैं कि उस आत्मा के सिर्फ जरायुज अण्डज दो भेदों के शरीर जितने संसारमें होतेहैं उन्हींका यहचर्चा है (अर्थात् स्वेदज उद्भिज्जोंका नहीं) चर्चावाले प्रत्येक जुदे शरीर भी षट्प्रकारके होतेहैं क्योंकि रक्तआदि षट्धातुओंको पकानेवाले छे अग्निओंके स्थान छे होते हैं एकही शरीरमें तिससे एक शरीर के छ प्रकार माने गये—इस बातका यह व्योराहै कि भोजन किये अन्नका रस पैदा होकर उदर के अग्नि से पचिके लालरक्त होता है एक इस अग्नि का स्थान ठहिरा १ रक्त अपने ठिकाने की अग्निसे पकाहुआ मांस वनिजाता है यह दूसरा ठहिरा२ मांस अपने ठिकानाके अग्नि से पका हुआ मेदा हो जाताहै तीसरा ठहिरा ३ मेद अपने ठिकाना के अग्नि से पकाहुआ हाड वनिजाते हैं चौथा ठहिरा४ हाड अपने अग्निसे पके हुये मज्जा वनती है पांचवां ठहिरा ५ मज्जा अपने अग्नि से पकाहुआ शुक्र होजाता है छठाभया ६ इस पिछले धातु का रूपांतर

कुछ नहीं होता और वही आत्मा का पहिला कोश है यही इसप्रकार से छे कोशों कोअग्नि के संबंध से शरीरों का छ प्रकार होना समझा गया और अन्न का रस भी यद्यपि सबसे पहिला धातु कहाता है जिससे सातधातु गिने जातेहैं परन्तु वह अनियत है तिससे उसकेभी स्थानकी अग्निसे सातवां प्रकार शरीरोंका नहीं मानाजासक्ता है इसीसे केवल छे प्रकार ठहिरे--और उन्हीं छे शरीरों को जुदे जुदे पर्दे में छे त्वचाये धारण करतीहैं—फिर कहिते हैं कि-रक्त-मांस-मेद-हाड-मज्जा-शुक्र-इन नामोंके छे धातुही आप केलेकेखम्भकी त्वचाओंकीतरह बाहरभीतरके डौलसे परस्पर मिलेहुये टिके हैं,और (त्वचा कहिते हैं खालको) खालकी तरह तर ऊपर ढांकने का डौल होजानेसे वेही त्वचा ठहिरे (किन्तु त्वचा कोई जुदी नहीं) वेही षट्धातुरूपी त्वचाये शरीर को थांभती हैं (सो यह आयुर्वेद में प्रसिद्ध है) तथा उसी शरीरमें छे अंगभी जुदे जुदे होतेहैं अर्थात् दोहाथ दोपैर एकशिरएकछाती आदि विचलागात्र तथा उसीशरीर में तीन सौ साठि ३६० हाड़ छोटे बड़े सभी मिलिके होते हैं जिनका ब्योरा अगिले श्लोकोंमे आवैगा—मिताक्षराकार ने यह व्याख्या कही परन्तु आयुर्वेदका कोईवचन इसमें नहीं प्रमाण दिया जिस के देखने से संदेह मिटिजाता जो आयुर्वेद से विरुद्ध इसमें मौजूद है॥ ८४॥

८४अधिकोक्तिः--मिताक्षरा--कायस्वरूपं विवृणवन्नाहतस्यात्मनोयानि जरायुजां डजशरीराणितानिप्रत्येकंषट्प्रकाराणिरक्तादिषट्धातुपरिपाकहेतुभूतषडग्निस्थानयो गित्वेन तथाह्यन्नरसोजाठराग्निना पच्यमानोरक्ततांप्रतिपद्यतेरक्तञ्च स्वकोशस्थेनाग्नि नापच्यमानंमांसत्वं मांसंचस्वकोशानलपरिपक्वमेदस्त्वंमेदोपिस्वकोशवह्निना पक्वम स्थितां अस्थ्यपिस्वकोशाग्निपरिपक्वमज्जात्वं मज्जापिस्वकोशपावकपरिपच्यमान शुक्रमधातुतयापरिणमतेचरमधातोस्तुपरिणतिर्नास्तीतिसएवात्मनःप्रथमःकोशइत्येव षट्कोशाग्नि योगित्वात्षट्प्रकारत्वंशरीराणाम अन्नरसरूपस्यतुप्रथमधातोरनियत त्वान्नतेनप्रकारांतरत्वंतानिचशरीराणिषट्त्वचोधारयंति रक्तमांसमेदोस्थिमज्जाशुक्रा ख्याःषड्धातवएवरंभास्तम्भत्वगिवबाह्याभ्यन्तररूपेणास्थिताः त्वगिवाच्छादकत्वात्त्व चस्ताःषट्त्वचोधारयंति तदिदमायुर्वेदप्रसिद्धंतथांगानिच षडेवकरयुग्मचरणयुगलमुत्त मांगगात्रमितिअस्थ्नांतुषष्टिसहितं शतत्रयमुपरितनषट्श्लोक्यावक्ष्यमाणमवगंतव्यमि तिविज्ञानेश्वराचार्याः—अर्थ इसका वहीहै जो ऊपर अभिप्रायसे लिखचुके और मूल श्लोक में (षोढाशरीराणि-षट्त्वचोधारयति) इसका कोईभेद योगीश्वरने नहींखोला कि शरीरोंकेछप्रकार कैसेहोते या छे त्वचा उनको कैसेधारणकरतीहैं इसीसे टीका

कारोंनेअभ्यन्तर इसका नहीं पायाहोगा·यद्यपि यह कहिसक्ते हैं कि मिताक्षरा के सिवायटीका इसके और भी अनेकहैं तिनके रचकोंने अभ्यन्तर पायाहोगा·तिसका यहीप्रत्युत्तरहै कि विज्ञानेश्वरने पुरानीटीका सब देखिभालिउनकेधारांश लेकरपोछे मिताक्षराका निर्माण किया है यदि उनमें कोई जुदाआशयहोता तो इसमें भी अवश्य धराजाता-किन्तु-छइभाँतिके शरीर कहे तिनकी कोई ठीक मीजाँ नहींमिलती है·यहांपर गर्भ जो पूराहोकर जन्मलेचुका उसकी कायाके भीतर बाहर जो कुछहोताहै सो सब यथाक्रमसे दर्शाना चाहतेहैं यही सब चरक सुश्रुत शार्ङ्गधर भावप्रकाश आदि आयुर्वेदके शारीरक वर्गोंमें विस्तारसे मौजूद हैं तिसके देखने से विरोध इसमें आताहै कि प्रथम रसधातु जो रक्तआदिसबहीको प्रत्येकसमय बढ़ाता रहिताहै तिसको अनियतकहिके सातधातोंकी गिनतीसे निकासिडाला·फिर अनपेक्षितअग्निओं के स्थानभेदका प्रमाणमाना तिससे शुक्रकेस्थानवाली सातसी अग्निको यहकहिके छोड़िदेनापरा कि शुक्र नहींपकता है न उसका कुछ रूपांतर होताहै·यथार्थ से शुक्र के स्थानपर भी अग्निहोताहै और शुक्र भी पचिकर परिणाम को पाताहै तिससे ओजस की उत्पत्ति होतीहै यह भी एक विरोध ठहिरा और शरीरके ऊपर जो खाल इसी नामसे सब से बड़ा आवेष्टन है तिस में सात पर्त होने से त्वचा भी सातही गिनी जाती हैं (योगीश्वर ने किसी हेतुसे इन सातोंकी छे त्वचा कहीं) मिताक्षराने उनसातों का चर्चा निपट छोड़िके (षट्त्वचो) इसी पदका अर्थ केवल छे धातों के परस्पर पर्त मानेहैं कि जैसे केलाके लक्कड़ में अनेक वक्कल तर ऊपरहुआ करते हैं यह भी बड़ा विरोध ठहिरा कि मुख्य खालों को नहीं माना जिनसे सब शरीर थँभा रहिता है और उनका चर्चा कहीं आगे नहीं आवैगा तिससे (षट्त्वचो) इस पदका अर्थ वेही सातखालें माननीचाहिये क्योंकि पांचके सिवाय ऊपरली बारीक दोखालोंकी एक मानी जिससे सातको छे ठहिरनेपरभी मुख्य गिनतीमें सातकी सातोरहीं॥ शारीरक व्यवस्था आयुर्वेद में और अध्यात्म वेदमेंभी होतीहै यद्यपि दोनोंके बीच विरलीबात में कुछ अंतर इस हेतुसे होताहै कि अध्यात्म विद्या वाला केवल संसारको त्यागनेके हेतुसे उसका ढोल समझानेके लिये शारीरक दर्शाताहै(जैसायहां पर योगी पुरुषको समझाय रहेहैं) आयुर्वेद वाला वैद्योंको इसलिये समझाता है कि शारीरक जानने से रोगी या निरोगी के भीतरले बाहरले सब अंग पहिचाने जायं·जिससे अच्छीतरह चिकित्सा करसकैं–तथापि वह अन्तर कुछ अंतर नहीं कहाता किन्तु दोनों शास्त्रका सिद्धांत एक है इसीलिये मिताक्षराकार ने भी (तदिदं आयुर्वेदप्रसिद्धं) यही कहा

कि यह शारीक वृत्तांत वैद्यक शास्त्रमें प्रसिद्ध है अर्थात आयुर्वेदहीका सहारालिया तिसमें किंचित विरोधरहा=इन्हीं कारणोंसे=आयुर्वेद और अध्यात्मदोनोंके मिलाप से दूसरा अर्थ जो अविरोधी देखिपरा सो हम लिखतेहैं (अपरोऽर्थः) तस्ययोढाशरीरा णि अर्थात उस आत्माके शरीर योढा छ प्रकारके स्थान भेद वाले होतेहैं-इसी अर्थ के अनुसार शरीरोंके भीतर आत्मा के टिकने योग्य छे स्थान ढूंढने चाहियें जिनमें जीवात्मा रहा करताहै—तहाँ सबसे मुख्यस्थान हृदय कमलहै=यथा=हृदयपुण्डरीके शाम्दशस्यादधोमुखम् जाग्रतस्तद्विकशतिस्वपतस्तुनिमीलति आशयस्तत्तुजीवस्य चे तनास्थानमुत्तमम्=अर्थात्-मनुष्यका हृदय भीतर कमलके आकार नीचेको मुहकिये लटका होताहै वह जागते समय मुहखोले रहाकरता और सोतेहुये मुहको मींचिलेता है वही जीवके रहिनेका स्थान प्रधानहै और वही चेतनाके रहिनेकाभी मुख्य स्थान है (चेतना उसी जीवकी चिच्छायारूपी प्रधान एकवृत्तिहै कि जैसे ईश्वरकी प्रधान मायावृत्ति होतीहै वह चेतना भी जीवके समीपही सदा रहिती और सबदेहमें प्रभाव अपना फैलातीहै कि जैसें राजाकाप्रधान मंत्री उसके निकट रहि के देशभरमें आज्ञा फैलाताहै) इस बातको ८० अस्सीकी अधिकोक्तिमें देखो कि तदोक्त सबचेतनाओं पर अशोक सबसे बड़ी यही चेतना उनकी अधिष्ठाताहै) जीवात्मा का मुख्य स्थान एक यही हृदय कमल हैं फिर पाँचस्थान उसके और हैं जो पंचकोश कहे जाते हैं (कोशभी गुप्तस्थानही का नाम है) अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय-आनंद मय-इनमेंभी आत्मा आपरहिताहै अर्थात अन्नमय कोश कहिनेसे सातों धातुसहित सबरा ही स्थूल शरीर समझलेना किंतु अन्नही के विकारसे-रस-रक्त-मांस मेद-हाड़-मज्जा-शुक्र- ये सातों धातु और इन्हीं सातोंके मिलाप से स्थूल शरीर बनाकरता है तिसमें जीवात्मा का निवास यह पहिला कोश कहाताहै१ दूसरे प्राणमय कोशका स्वरूपहै पाँचकर्म इंद्रियोंसहित पचप्राण वायु जिसमें जीवात्माका निवासहै२तीसरे मनोमय कोशकास्वरूपहै अहंकारसहितमनका स्थान जिसमें आत्माकानिवासहै ३ चौथेविज्ञानमयकोशका स्वरूपहै पंच ज्ञानेन्द्रियों सहित बुद्धिकीवृत्तिजिसमें विज्ञान के रूपसे आत्माका निवासहै ४ पाँचमें आनन्दमय कोशका आनन्दही स्वरूप और स्थूलसूक्ष्म दोनोंशरीरोंसे परे जो कारण शरीरहै तिसमें उसआनन्दका मूलरूप होके जीवात्मा रहा करताहै ५ छठा हृदय कमल मुख्यस्थान पहिले कहिचुकेहैं ६ ऐसे छे स्थानोंके भेदसे जीवात्मा सब देहमे रहिता है तिससे एकही शरीर में छ प्रकारके शरीर कहे तो कुछ विरोध बाकी नहींरहा—एव (यदृत्वचो धारयति) यह कथन भी

शरीरकी ऊपरली से भीतरली तक त्वचाओं का स्पष्ट है कुछ रक्तादि धातुओं का तात्पर्य इसमें नहीं क्योंकि सब कुछ आगे कहेंगे पर त्वचाओंका चर्चा आगे कहीं भी न आवेगा और इसी लये इसका कहाजाना भी योग्यथा॰यद्यपि इतना अंतर है कि आयुर्वेद में सर्वत्र पूरी सात खालों का नियम घंटा घोयहै और यहाँ एक न्यून कही तिसका यही तात्पर्यहै कि ऊपरली दोकी एक मानी कुछ इससे दोष नहींहै॰ इसी प्रकार वैद्यक में अंग भी कुछ अधिकहैं परयहां छेअंगोंकोमुख्यजानि (षडंगानि) यह कहागया॰इसी प्रकार आयुर्वेदी शल्यतंत्र शारीरकमें तीन सौ हाड़ों का नियम यद्यपि ठीकहै पर यहाँ तीन सौ साठिकहे सो इन,साठि अधिकहोनेका हेतुआगे ९० नब्बेकी अधिकोक्तिमें समझना (अपरोऽप्यर्थः) मूलश्लोक देखो उसीके अन्वय से तीसरा अर्थ ऐसे सिद्धहोता है (तस्योत्पन्नस्यबालस्य: अस्थ्नांशतत्रयंयद्यधिकंषोढा शरीराशायेयद्वातवएवधारयंति तथा यद्त्वचोपि तमेवास्थिपंजरंयद्धातुसहितं धारयंतिआवेष्टयंतीत्यर्थः एवंसर्वंमिलित्वा षडंगानिशिरः प्रभृतीनितस्यदेहे सिद्धानी त्यभिप्रायः)अर्थात् उसके देहमें तीनसौसाठि हाड़ों कावना एकपंजर जो,प्रधानहै ताहि बाकीके छे,शरीर धारण करतेहैं अर्थात् (रस॰रक्त॰मांस॰मेद॰मज्जा॰शुक्र) येहीधातुएँ थांभे रहितीहैं किन्तु इनके बिना हाड़ोंका पिंजरा नहीं थंभिसक्ता॰ तथा छे खालें भी उसी हाड़ोंके पिंजरे धातुओंसहित को लपेटेहुये धारण किये रहिती हैं क्योंकि खालोंसे लपेटे बिनाभी ये सब चीजें कभी न थंभिसकें तिससे ऐसे,यह सब मिलिके जो देहबना तिसमें,छे अगहैं शिर छाती चारो हाथपैर॥ ८४॥

(अब नीचे तीनसौ साठि हाड़ों का ब्योरा समझावेंगे)

(अस्थ्नांसंस्थितिः)

स्थालैःसहचतुःषष्ठिर्दंतावैविंशतिर्नखाः। पाणिपादशलाकाश्चतेषांस्थानचतुष्टयम् ८५
षष्ठ्यंगुलीनांद्वेपार्ष्ण्योर्गुल्फेषुचचतुष्टयम्। चत्वार्यरत्निकास्थीनिजंघयोस्तावदेवतु ८६
द्वेद्वेजानुकपोलोरुफलकांससमुद्भवे। अक्षतालूषकश्रोणीफलकेचाविनिर्दिशेत् ८७
भगास्थ्येकंतथापृष्ठेचत्वारिंशच्चपंचच। ग्रीवापंचदशास्थीस्याज्जत्र्वेकैकंतथाहनुः ८८
तन्मूलेद्वेललाटाक्षिगंडेनासाघनास्थिका। पार्श्वकाःस्थालकैःसार्द्धमर्बुदैश्चद्विसप्ततिः ८९
द्वौशंखकौकपालानिचत्वारिशिरसस्तथा। उरःसप्तदशास्थीनिपुरुषस्यास्थिसंग्रहः ९०

अर्थः—स्थालों सहित चौंसठि दाँत॰नख बीस निश्चय जानो क्योंकि बीस अंगुरियों में होते हैं॰हाथ पाओं की शलाका भी बीसही अर्थात् बीस अँगुरियोंके नीचे आकार

देह हाथों तथा पैरों मे पांच पांच लंबीसी पतरी हड्डी होती वही शलाकाके आकार होनेसे शलाका कहिलाती हैं जिनमें अंगुरियों की जड़ मिली रहिती हैं तिनके स्थान भी चारिही जानों किंतु चारों हाथ पैरोंमें नख और शलाका भी रहिते हैं इसगिनती से (शलाका २० नख २० दांत ३२ दांतोंके स्थालभी ३२ कुल्ल जोड़िके १०४ एक सौ चारि हाड़ हुये) दांतों के स्थाल अर्थात थाउले कि जिनमें दांत गड़े रहितेहैं उन के नीचे एक और भी कोमल हाड छिपा हुआ रहिता है तिससे बत्तीस के दूने ६४ मानेगये ॥ ८५ ॥ अंगुरिओं के साठि हाड अर्थात एक अंगुरी में तीनि पोरे होते हैं बीसतिया साठि हाड़ हुये पार्ष्णीयों के दो हाड़ अर्थात दो पैरों का पिछला भाग, एंड़ी पार्ष्णी कहलाती है तिनमें एक एक हाड होता है दो हुये गुल्फों में चार हाड अर्थात एड़ियोंके दाहने बामे एक एक ऊंची गांठि भी होतीहैं जिन्हे टिखना-टिखनी भी कहिते हे ऐसे दो पैरोंके चारि गुल्फ हुये तिनके भी चारि हाड़ समुझने चारि हाड अरत्निका नामके अर्थात दोनों बाहु के पहुँचा तथा भुज दड के दो दो हाड़ जो अनुमान कुछ कम एक हाथके बराबर होतेहैं सब चारि हुये एव चारिहाड दोनोंगोड में जांघों तथा कूंचोंके होतेहैं इस गिनती से (गोड़ोंके अरत्नि ४ बाहों के अरत्नि ४ टिखनों के ४ एड़ियों के दो हाड २ अंगुरियोंके ६० साठि कुल्ल जोड़िके ७४ चौहत्तरि हुये-तिनमे ऊपरले १०४ जुड़िके सब १७८ एकसौ अठत्तरि हाड़हुये ॥ ८६ ॥ दो दो हाड़ इन सातों अंगों मे अर्थात जानू दो गोड़ों के बीचमे घूटों का नाम है जिनमें एक एक परिआ के समान हाड़ होता है दो कपोलों के अर्थात गालों की चौहरि मे दो हाड़ होतेहैं दो हाड ऊरुफलकों के अर्थात ऊरु सोरी जांघें तिनके मूल में एक एक फलक जो ढालके समान हाड होता है दो हाड़ दोनों अंस बखोरों के जो भुजा की जड़ होतीहै तिसमें एक एक हाड़ होताहै दो हाड़ अक्ष नामक स्थानके अर्थात कन-पटीसे नीचे कान आंखि दोनोंके बीच एक हड्डी जो कान के समीप हुआ करती है दो हाड़ तालुय के स्थानपर जहां जीभ की जड होतीहै समझने दो हाड़ श्रोणिफल-कों के अर्थात कमर के नीचे चूतरों के ऊपरली कोड़ी नाम की हड्डीके दुतरफा जो चौड़ापन होता है तिसमें भी दो चौड़े हाड़ (ये सब चौदह १४ ठहिरे इनमें १७८ ऊपरके जोड़ने से १९२ एकसौ बानबे कुल हुये ॥ ८७ ॥ भग अर्थात गुदामें एक हाड़ तथा पीठिके समस्त पंजरमें पैंतालिस ४५ हाड़ और ग्रीवा घेंच गले में पद्रह और दोनों जत्रुओं मे एक एक अर्थात कधे और छातीके बीच मे दोनों तरफ जत्रु होते हैं जो भाषामे हँसुलीके हाड कहिलाते हैं हनु अर्थात चिबुक नाम ठोंड़ी में एक हाड़

(ये सब चौंसठि हुये-तिनमें १९२ एकसौ बानबे ऊपरके जुडि कर कुल २५६ दो सौ छप्पन हाड़ ठहिरे ॥ ८८॥ उसके मूलमें दो अर्थात् डाँडीकी जडमें दोहाड और होते हैं-तथा ललाट माथे पर दोहाड-अक्षि नेत्रों के दो हाड-गंड अर्थात् कपोल और अक्ष स्थाल दोनों का बीचहै सो गंडस्थल कहाता है दोनों गंडस्थलों के दो हाड़ समुझने (अक्षस्थान का चिह्न पहिले सत्तासी के श्लोक में कहि चुके वही जानना) और नासा घनास्थिका कहलाती अर्थात् नाक में एकही हाड घन संज्ञा वाला जिसके शृङ्गार में चारो तरफ छिद्रमार्ग हैं होताहै-बहत्तरि ७२ हाड़ दोनों पाँसुओं में होते हैं अर्थात् बगल के नीचे पँसुरियोंके हाड़ अपने स्थालों सहित और अपने अर्बुद नामके सहायक हाड़ों सहित छत्तीस छत्तीस दोनोंतरफ़ होतेहैं(इनछत्तीसमें तीन भांति कहीं तिससे बारह पसुरी बारह स्थाल बारह अर्बुदठहिरे) स्थालोंका अर्थ जैसा पचासीके श्लोकमें कहा गया तैसा यहाँ भी समुझना (ये सब ८१ इक्यासी ठहिरे-इनमें दो सौ छप्पन २५६ ऊपर के जुड़िकर कुल्ल ३३७ तीन सौ सैंतिस हाड़ हुये ॥ ८९॥ दो हाड़ शंख नामके कनपटियाँ कहातीहैं अर्थात् भौंह और कानोंके बीचमें अक्षस्थान से कुछ ऊपर जो पटियासी चौड़ा हाड़ होताहै वही दोनों ओरके दो शंखजानो-तथा शिरमें चारि कपाल खोपडीके ठीकरेसे निकसते हैं-उरस् के सत्रह अर्थात् छाती से हृदय तक समस्त हाड़ों की तादाद१७सत्रहसंख्यासे होतीहै(ये सब तेईस ठहिरे-इनमें ३३७ तीनसौ सैंतीस ऊपर के जुड़िकर कुल्ल ३६० तीनसौ साठि हाड़ पुरुष के देह भरमें कहेगये=यद्यपि चिकित्साशास्त्र के शारीरक में तीनिहीसै हाड़ों का नियम सर्वथा ठीक और प्रसिद्धहै तथापि यहाँ साठि उपराल् कहेगये तिसका यहीकारण है कि वैद्यक में बत्तीस दाँतही गिनेजाते हैं यहाँ उनके स्थाल भी गिनती किये गये तथा पसुरियों के साथ उनके स्थाल भी गिनती में लेलिये गये इसी तरह और भी कुछ भेदहै तिससे कुछ दोष वा विरोध नहीं आता है केवल मुख्य प्रयोजन पर दृष्टि राखनी चाहिये कि संन्यासीको संसार का स्वरूप समुझातेहैं (अब अगिले श्लोकों से इंद्रियों की व्यवस्था कही जायगी ॥ ९० ॥

(स्वविषयसहितानिज्ञानेन्द्रियाणि)

गन्धरूपरसस्पर्शशब्दाश्चविषयाःस्मृताः। नासिकालोचनेजिह्वात्वक्श्रोत्रंचेन्द्रियाणिच ९१

अर्थः—गंध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द-ये पाँचो विषय यथा क्रमसे पाँच इंद्रियों के भोगरूप होते हैं अर्थात्-नासिका-जीभ-नेत्र-त्वचा-कान (इन्हीं इन्द्रियोंके द्वारा ये

पांचौ विषयपुरुष के बंधन हेतू होते हैं क्योंकि इनको ये इन्द्रियांही जुदे जुदे निज निजविषयको जानती पहिंचानती और चाहना कियाकरतीहैं और कोईनहीं॥ ६१॥

६१ अधिकोक्तिः--यह सदेह न करना कि इंद्रियोंकी उत्पत्ति पहिले कहि चुके थे दुबारा यहां क्यों कहिनें लगे-क्योंकि वहां पचहत्तरि आदि श्लोकों में गर्भका भीतरला प्रसंग था उसमें यह चर्चा किया गया था कि गर्भ के तीसरे महीना में आत्मा आपही सब अंग और इन्द्रियोंको चाहना करिके उत्पन्न करिलेता है तिससे गर्भकी पिंडीमें इन सब चीजोंके अंकुर आपसे आप होजाते हैं=और=यहां जो गर्भ पूरा होकर जन्म पानेसे बाहर आया तिसके सब अंगोंका विस्तार ब्यौरे वार समुझाते हैं कि उसके शरीर में भीतर बाहर का क्या वस्तु होतीहै॰सो हाड़ोंका पिंजरा खाल मास आदि से बंधा हुआ पहिले चौरासी के श्लोक मे दर्शाया तिसके सब हाडों की व्यवस्था ९० नव्वे श्लोक तक समुझाइके यहां उसकी इन्द्रियां भी दो भांतिकी समुझाने लगे क्योंकि इन्द्रियों के होने विना हाड़ मासके पिंजरा से कुछ काम नहीं चलसक्ता॥ ९१॥

(कर्मेन्द्रियाणिच)

हस्तौपायुरुपस्थंचजिह्वापादौचपंचवै। कर्मेन्द्रियाणिजानीयान्मनश्चैवोभयात्मकम् ९२

अर्थः—दोनों हाथ १ गुदा २ लिंग ३ मुखवाणी ४ दोनों पैर ५ ये पांचो अग पाँच काम जुदे जुदे करनेके हेतुसे पांच कर्मेन्द्रियां कहाते हैं और मन भी एकइन्द्री है सो उभयात्मक जानना॥ ९२॥

९२ अधिकोक्तिः—हाथों का कर्म लेना उठाना आदि प्रसिद्ध है॰तद्वत् गुदा का काम है विष्टा आदिको त्यागना॰तथा लिंग का काम है आनंद भोगना गर्भ धर देना आदि॰तथा जीभके उपलक्षण से मुह की वाणीका कामहै बातकहिना आदि॰तथा पैरोंका काम है चलना आदि--और मनका रूपहै अतःकरण में सो उभयात्मक इस हेतुसे कहाता है कि ज्ञानेन्द्री कर्मेन्द्री दोनोंतरहके दशअंगोंपर प्रभाव अपनाराखता है कि इसकी इच्छासे सब इंद्रियां अपने कामोंमें लगतीहैं इसकी इच्छा विना सब चुपकी रहिती हैं किंतु सबका प्रेरक एक मनहै॥ ९२॥

गूढ़ाशयः—यह बार्ता यादि रक्खो कि यहां तक शरीर का आकार हाथ पैर नाक कान आदि इंद्रियां भी समुझाइ चुके--आगे ९३ तिरानवे से ९९ निन्यानवे तक सात श्लोकों में शरीर के छोटे मोटे अंग वा स्थान भी दर्शावैंगे सो किसी क्रम

के साथ (सिलसिलेवार) नहीं कहें कि जिससे यह जानाजाय पहिले भीतर के फिर वाहर के या पहिले वाहर फिर भीतर के अथवा पहिले ऊंचे ऊपर ले अंगके फिर निचलेके हों सोभीनहीं—अर्थात् केवल अंगों वा स्थानों के नामों को आगा पीछा समुझाने विना कहिते चले जायंगे॰तहां विरले अंग वा ठिकानों के नाम दो दोबार भी कहिने में आजायंगे तिसका आशय यद्यपि मूलकार और टीकाकारने भी नहीं खोला तौभी तात्पर्य उसका यही है कि देहके भीतर और वाहर के भेद से दो बार नाम लिया गया इसी का दृष्टान्त जैसे (९३।९४) श्लोकोंमें नाभि शब्द दो बार कहा जायगा तहां एकवार जो पेटके बीच में तुंदी कहलाती है तिसको समुझिलेना और दूसरी वार उसी तोंदी के भीतर जो नाभि कछुआ के डौल सम होती है तिसको जानना इसी प्रकार हृदयको दो वार समुझना कि एकवार छातीके बीचमें जो हृदय का ठिकाना है तिसका नाम और दूसरे वार उसी छातीके भीतर जो कमल फूल के डौल सम हृदयका आकार होताहै सो दर्शाया है॰इसी प्रकार और भी वृक्क आदि जो दोदो वारकहेजायंतिनकोमूलश्लोकोंकेअर्थवाला पाठयहां मिलाकरसमुझिलेना॥

(शरीरस्य वाह्याभ्यंतरज्ञानं)

नाभिरोजोगुदंशुक्रंशोणितंशंखकौतथा । मूर्धांसकंठहृदयंप्राणस्यायतनानिच ९३
वपावसाऽवहननंनाभि क्लोमयकृत्प्लिहा । क्षुद्रांत्रंवृक्ककौवस्ति॰पुरीषाधानमेवच ९४
आमाशयोऽथहृदयंस्थूलांत्रंगुदएवच । उदरंचगुदौकौष्ठ्योविस्तारोयमुदाहृतः ९५
कनीनिकेचाक्षिकूटेशष्कुलीकर्णपत्रकौ । कर्णौशंखौभ्रुवौदंतवेष्टावोष्ठौककुंदरे ९६
वंक्षणौवृषणौवृक्कौश्लेष्मसंघातजौस्तनौ । उपजिह्वास्फिजौवाहूजंघोरुषुचापिंडिका ९७
तालूदरवस्तिशीर्षंचिवुकंगलशुंडिके । अवटश्चैवमेतानिस्थानान्यत्रशरीरके ९८
अक्षिवर्णचतुष्कंचपद्धस्तहृदयानिच । नवछिद्राणितान्येवप्राणस्यायतनानितु ९९

अर्थः—नाभि॰ओजस॰गुदा॰शुक्र॰रक्त॰ दोनों शंख कनपटी॰मूर्धाशिर॰ अंस दोनों कांधे॰कंठ॰हृदय॰ये अग उपअंग हैं और प्राणकेभी स्थानहैं—अर्थात्—पंचप्राणोंमें एक समानवायुजो सर्वशरीरमें फैलतारहिताहै तिसकानिवास इनस्थानोंमें अधिकहै॥९३॥ फिर भी इसका विस्तार दर्शाते हैं कि—वपा॰मेदा—वसा जो मेदमांसकासार एकभांति की चिकनाई होतीहै—अवहनन॰फुप्फुस कहाताहै—नाभि॰यहदुवाराकही सो भीतर वाहर दो जगह के तात्पर्य में समझना—क्लोम॰यह फुप्फुस का दूसराभेद पुप्फुसकहाताहै—यकृत॰यह कालेयक भी कहाताहै—प्लीहाभी उसीका दूसरा भेदहै—क्षुद्रांत्र नामछोटीपतरी आंतें—वृक्कौ अर्थात वृक्क वुक्क नामोंके दो गोले पेटमे होतेहैं—वस्ति

जो मूतभरा रहिनेका कोश है–पुरीया धान जिसथैली में विष्टा जमा रहिताहै॥९४॥ आमाशय जिस थैली में भोजन किया अन्न जाकर पहिले पहुँचता है–हृदय जो छाती के भीतर कमल का फूलसा औंधे मुखहोता है–स्थूलांत्रगुदे एव(अर्थात मोटीआंत जो गुदाही में होती जो काँच काढ़ नामोंसे प्रसिद्धहै–उदर पेट–गुदोकोश्यो अर्थइसका अधिकोक्तिमें देखो--यहभी सबउन्होंछे अंगोंका विस्तारकहा जोचौरासी मूलश्लोक में हाथ पैर मूड़ धड़ कहेथे(इनमेंभी वहुतेरे उपअंग ऐसेहैं कि जिनमेंप्राणोंका निवास होताहै यहांतिरानवेके श्लोकसेसंबंध चलाआताहै' इसवातको ९९ निन्यानवेके श्लोक में समझो ९५॥ कनीकेद्वे) दो आँखोंके तारे कनीनिका कहातेहैं २ अक्षिकूटभी दो होतेहैं जो नाकआँखिदोनोंकी संधिहैं २ शष्कुली किंतु कर्णशष्कुलीभीदोनोंकानकी दोहोतीहैं अर्थात कानका वह भाग जिसमेंअंती पत्तेआदिभूषण छेदिकेलटकायेजाते हैं २ कर्णपत्रभी दो होतेहैं अर्थात कानोंकी निचली ईयिका जोसबसेछोटी तिकोनी सीहोती वहकर्णपालीभी कहातीहैं २कर्णौ दोनोंकानभी छिद्रोंरहित सवश्रग सिलि केजुदे समझने २ शंख दोनों कनपटियाँ २दोनों भौंह२दंतवेष्टौ मसूढ़े नीचे ऊपरके२ ओष्ठौ दोनों ओठ ऊपर नीचेके२ ककुन्दरे जाघोंके कूपक दो कूले प्रसिद्ध हैं २॥९६॥ वंक्षणौ द्दौसांग सैंकी दो संधिजाननी २ वृषणौ दोनोंआंड २ वृक्कौ दो वृक यावृक नामके दो गोलेजोकफ मांसके वनेहोतेहैंपेटमें २(इनका व्योरा सत्तानवेकी अधिकोक्ति में देखो) स्तनौचश्लेष्मसंघातजौ अर्थात दोनों छातीके चिह्न भी कफ मांसके समूह से बने होतेहैं २ उपजीभ कौआ काक जो हलक में मांस कील सी लटकती होती और जलभी देतीरहिती है १ स्फिजौ दोनों चूतर २ दोनों भुजा२जंघाओं तथा ऊरु-ओंमें एकएक पिंडिका अर्थात छोटीवड़ी चारो जांघमें ससीला टौर जो थलकता रहिताहै सो पिंडिकाकेनामसे दर्शाया ये सवचारिहोतीहैं ४॥९७॥ तालूदरंअर्थात तालुवेका उदर अवकाश जो मुहमें खाली जगह रहितीहै १वस्ति शीर्षं अर्थात वस्ति जो मूत्राधार कोशहै तिसका शीर्ष ऊपरला भाग जो पेडूके नामसेप्रसिद्धहै १ चिवुक ठोढ़ी प्रसिद्ध है १ गलशुंडिका गलसूआभी दोही प्रसिद्धहैं जो गालोंके भीतरदोनों तरफ मांसकी वारीक सूंडसी प्रतीतहोती हैं २ अवट गड़हिला अर्थात मुहके भीतर घांटी जिसमें अन्न उतारिके जाताहै १ इतनेस्थान इसमनुष्यके शरीरमें होतेहैं॥ ९८॥ तिसमेंभी नेत्रोंमें चारिप्रकार के वर्ण काला पीला लाल सुपेद होतेहैं और हाथ पैर हृदय येभी तथा नौछेद भी जानने दो कानके दो आँखों के दोनाकके एक एक मुख गुदा लिंग इनके ऐसे नौछिद्र इसी नित्यशरीर में होतेहैं (नित्यत्व का लक्षण आगे

फिर उसके नीचे कफका आशय फिर उसके नीचे आमाशय काचे अन्नका ठिकाना तिसका डौल चरकयों कहि गये कि नाभि और स्तनोंके बीच जो गड्हिला देखि परता है उसी के भीतर आमाशय होताहै इसकी माप भी वागभटने यों कही है कि नाभिसे एक बिलाँद ऊपर और कठ से एक बिलाँद नीचे वही गड्हिला प्रत्यक्ष है तिसके भीतर छ अंगुर की चौड़ी थैली होतीहै वाकी यही ठिकाना हृदय कहाताहै॥

॥ ३ ॥ हृदय की तरहहीमें यकृत प्लीहा दोनों रक्तके स्थानहैं इन दोनोंमें मुख्य ठिकाना बाँये रक्त रहिता है इसी जगहसे सब देह में पहुँचता है॥ यकृत•प्लीहा• क्या चीज़हैं सो देखो॥ प्लीहा एक भीतर का अंगस्थान है जो रक्तहीसे उत्पन्नहोता किन्तु बामी चूचीके नीचे उसका ठिकाना जो वातपित्तों के योग से गाढ़ी रक्त की गादिका छीछड़ासा कुछ कोमल कुछ कठोर होता उसमें रक्त भरा रहिता है उसी में रक्त पहुंचाने वाली सिरा नाड़ियों की जड़ गडी रहिती हैं तहां से लेले कर अपनी पोंगियों से सब देहमें सींचती रहिती हैं तिससे देह सूखने नहीं पाता॥ ऐसेही दूसरा यकृत है सो दाहनी चूची के नीचे रहिता और इसमें भी सब लक्षण उसी के समान हैं कि रक्तहीसे उत्पन्न भया रक्तही इसमें रहिता तथा रंजक नामी पित्त भी रहिता जो अग्नि का प्रभाव है उसी पित्तसे रसका रंग बदलिके रक्त बनि जाता है यह चौथे अंक से देखो॥

॥ ४ ॥ खाये पिये अन्नों का रस जो पैदाहो वह यद्यपि सब देहमें फैलता रहिकर देहको सींचता है तौभी उसके रहिने का मुख्य ठिकाना हृदय होताहै कि जहां एक थाउले में भरा रहिकर सब अंगोंमें जाता है क्योंकि इसको पैदाहोते सार समान नामी पवन ऊपरको खींचि पहिले हृदय पास रखिदेता है॥ जब समानसे खींचाहुआ रस यकृतके स्थानतकजाताहै तहां रहिने वाले रंजकपित्तसे पकायाहुआ लाल रंगतिको पाकर वही रक्तकहाने लगता है॥ देहको सिंचाई यही सुपेद रस अपने जुदे तौर से करता और पूर्वोक्त लालरक्त अपने जुदेप्रकारसे करताहै(उसकेस्थानपरजानेसे यहभी लालहोताहै परंतु जो अपनी जुदी सिंचाईवाले कुराडमें रहिताहै तिसका स्थान उससे नीचेउसीके लगभग जानना क्योंकि ऐसे कईठिकाने सबहृदयके समीपहोतेहैं)सोभीदेखो॥ हृदयसे बामे को झुकता हुआ प्लीहसे नीचेके ठिकाने पर पुष्कस होता है वह पकते हुये रक्तके फेना से वायु मिलिके बनता है इसी में आकर सुपेद रस टिकता है इसी जगह से नाड़ियों के मार्गसे सबदेह में जाता और इसीसे चोड़कर लाल होनेकेलिये यकृत प्लीहमें भी जाता है॥ इसीका दूसरा भैया रक्त और पवन के योग से अर्थात

रक्तका फेना और वायुके मिलापसे बनता सो दाहनेको झुकता हुआ यकृत के नीचे होताहै उसके नाम कईहैं•कालेयक•तिलक•क्लोम•फुःफुस•इनमें फुःफुस नाम प्रधान है (ये फुःफुस और पुप्फस दोनों उसी तरह भाता हैं जैसे यकृत प्लीह दोनों कहेगाये) इस फुःफुसमें जल भरा रहिताहै उसीमें जल सींचने वाली सिरा नाड़ियोंके मूल छोर लगे रहितेहैं यही ठिकाना पिपासा दूर होनेका कहाता है॥ इनके नीचे दो गोले हैं तिनका ब्योरा पांचवें अंकसे देखो॥

॥ ५ ॥ कफ रक्त इन दोनोंका अतरभूत सार मिलिके दो गोलोंका जोड़ा बनता है सो एक बुक्क दो नामोंसे कहाता है ये दोनों भी दाहने बामे बराबर में मुक्काविले पर उन्हीं पुप्फस और फुःफुस के नीचे पेटमें रहिते हैं पेटही का उपअंग कहाते और पेट में रहिनवाले मेदो धातु को पुष्ट करते रहिते हैं॥ फिर इनके नीचे पेट में आंतें रहा करती हैं तिनका हिसाब लिखना छोड़दिया•ऐसेही अनेक उपअंगोंको विस्तार भय से छोड़िके अंडकोश का थोड़ा ब्योरा लिखेंगे वह छठे अंकसे देखो॥

॥ ६ ॥ वृषण जो पुरुष के आंड कहाते हैं वे तीन चीज़ मिलिके बनतेहैं अर्थात् कफका सार रक्तका सार मेदका सार इन तीन सारों से• वीर्य को शरीर में फैलाने बहिने वाली सिरा नाड़ियोंके आधार येही दोनों आंड हैं अर्थात् उनके छोर इन्हींमें जड़की तरह लगे जमेहैं•पुरुष का पौरुष किंतु इंद्री सहित वीर्य थांभनेवाले ये दोनों आंड़हैं॥ स्त्रीके इतना भेदहै कि लिंग आंडों के बदले योनि होती है वह शंख की नाभिके आकार डौल वाली होतीहै उसके भीतर शंखहीके से तीन आवर्त फेर होते हैं उसके सबसे भीतरले तीसरे फेरमें (गर्भशय्या) गर्भ टिकनेका यंत्र रहा करता है॥ गुदा सबही की अर्थात् स्त्री पुरुष नपुंसकों की एकहीसी साढ़ेचार अंगुल गहिरी होती है उसमें भी तीन फेरे शंखही के समान हैं डेढ़ डेढ़ अंगुलके अंतर से॥ हृदय से गुदा तक आशय यद्यपि अनेक हैं पर उनमें से मुख्य मुख्यों के नाम आगे लिखते हैं सातवें अंकसे देखो॥

॥ ७ ॥ रक्तका आशय ऊपर कहिचुके•लोदन कफका आशय•आमाचका आशय•पाचक पित्तका आशय जो अग्न्याशय भी कहाता है•पवनाशय•पक्वाशय•मलाशय•मूत्राशय•इनके मध्ये इस वचनको भी शोचना (उरोरक्ताशयस्तस्मादधःश्लेष्माशयःस्मृतः आमाशयस्तुतदधःतदधोदहनाशयः तथा आमाशयादधःपक्वाशयादूर्ध्वं तुयाकला ग्रहणीनामकासैवकथितंपाचकाशयः ऊर्ध्वमग्न्याशयोनाभेर्मध्यभागेव्यवस्थितः तस्योपरितिलंज्ञेयंतदधः पवनाशयः) कला एक झिल्ली का नामहै जो ग्रहणी

१०७ की अधिकोक्ति में देखना) ये नव छिद्र भी प्राणों का स्थान होते हैं तथैव छहानवे श्लोक से कनीनिका आदि यहांतक जितने उपअंग समुझाये गये उनमेंभी बहुतेरे स्थानप्राणवायुका निवासरूप होतेहैं•इसबातका विशेषव्यौरा १०२ एकसो दोकी अधिकोक्तिमें समझना जहां मर्मस्थानोंकी व्यवस्था कही जाय ॥ ९९ ॥

९३अधिकोक्तिः—इन्हीं सातश्लोकों में जितनेअंग भीतर बाहरके सिर्फनामोंसे प्रकाश कियेगये उनमें जोभीतरले अंगहैं तिनका व्यौरा अच्छीतरह तभी जानाजासक्ताहै जब यहां समस्त शारीरक लिखाजाय और शारीरकहै सो चरक वाग्भट आदि ग्रन्थोंमें बहुतबड़ा विस्तारहै क्योंकर यहां लिखनेका अवकाश उसको मिलै•तौ भी उन्हीं ग्रन्थोंका संक्षेप चुनिकर थोड़े से वचनमात्र लिखते हैं कि जिनसे वृक्क प्लीहा आदि विरले अंगोंका स्वरूप पहिंचाना जाय ॥

॥ प्र•१ ॥ जीव और चेतनाका मुख्यस्थान हृदय कमलमें होताहै तिनकाव्यौरा चौरासीकी अधिकोक्ति में किसीप्रसंगसे लिखि चुके तहां देखो• फिर उसी हृदय में रस कफ रक्त जलआदि जैसे रहितेहैं तिनका व्यौरा आगे संग्रहवचनोंसे देखो उसीमें वृक्कआदि भी समझलेना ॥

॥ द्वि•२ ॥ अथाहुःप्राचीनाः ॥ उरोरक्ताशयस्तस्मादधःश्लेष्माशयःस्मृतः आमाशयस्तुतदधस्तल्लिंगंचरकोऽब्रवत् ॥ नाभिस्तनांतरेजंतोराहुरामाशयंबुधाः । नाभेर्वितस्तिमात्रंचकंठदेशात्षडंगुलम् । उरसस्तद्विजानीयाच्छ्रेयंतुहृदयंमतम् ॥

॥ तृ•३ ॥ यकृत्प्लीहाचरक्तस्यमुख्यस्थानंतयोःस्थितम् ॥ शोणिताज्जायतेप्लीहावामतोहृदयादधः रक्तवाहिसिराणांसमूलंख्यातोमहर्षिभिः ॥ अधोदक्षिणतश्चापि हृदयाद्यकृतःस्थितिःतत्तुरंजकपित्तस्यस्थानंशोणितजंमतम् ॥

॥ च•४ ॥ सर्वदेहचरस्यापिरसस्यहृदयंस्थलम् समानमरुतापूर्वंयदयंहृदयेधृतः॥ यदास्रोयकृद्यातितमरंचकपित्ततः रागंपाकंचसंप्राप्यसभवेद्रक्तसंज्ञकः ॥ हृदयाद्वामतोऽधश्चपुष्कसोरक्तफेनजः ॥ रक्तादनिलसंयुक्तात्कालेयकसमुद्भवः (कालेयकःक्लोमइत्यर्थ) अधस्तुदक्षिणेभागेहृदयात्क्लोमतिष्ठति जलवाहिसिरामूलंतृष्णाच्छादनकंमतम् (क्लोम•तिलकं•फुःफुसः) ॥

॥पं•५॥कफशोणितयोःसाराद्वृक्कयोर्युगलंभवेत् तौतुपुष्टिकरौप्रोक्तौजठरस्थस्यमेदसः॥ ।।ष•६॥ वृषणौभवतःसारात्कफासृङ्मांसमेदसः वीर्यवाहिसिराधारौतौमतौपौरुषावहौ ॥ शंखनाभ्याकृतिर्योनिःत्र्यावर्तासाचकीर्तिता तस्यास्तृतीयेत्वावर्तेगर्भशय्याप्रतिष्ठिता॥ गुदस्यमानंसर्वस्यसार्धस्यात्चतुरंगुलम् तत्रस्युर्वलयस्तिस्रःशंखावर्तनिभास्तुताः॥

॥ स·७ ॥ रूफाऽऽसपित्तवातानामाशयामलमूत्रयोः ॥ पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः धराःगर्भाशयःप्रोक्तःपित्तपक्वाशयांतरे स्तनौप्रवृद्धौतावेवबुधैः स्तन्याशयौमतौ ॥ स्तनौपुंसस्तथानार्याविशेषउभयोरयम यौवनागमनेनार्याःपीवरौ भवतःस्तनौ गर्भवत्याःप्रसूतायास्तावेवक्षीरपूरितौ ॥

॥ अ·८ ॥ यात्यामाशयमाहारःपूर्वंप्राणानिलेरितः माधुर्यंफेनभावंचयद्रसोऽपि लभेतसः ॥

॥ नव·९ ॥ आमाशयादधःपक्वाशयादूर्ध्वंतुयाकला ग्रहणीनामकासैवकथितंपा चकाशयः ॥ ऊर्ध्वमग्न्याशयोनाभेर्मध्यभागेव्यवस्थितः तस्योपरितिलज्ञेयंतदधःप वनाशयः ॥

॥ दश·१० ॥ पाचकंतिलमानंस्यात्काठिन्यान्नास्यदीयता ॥ पित्तंपंचात्मकंतच्च पक्वाऽऽमाशयमध्यगं पंचभूतात्मकत्वेपियत्तैजसगुणोदयम त्यक्तद्रवत्वंपाकादिक र्मणाऽनलशब्दितम पचत्यन्नंविभजतेसारकिट्टौपृथक्तयातत्रस्थमेवपित्तानांशेषाणा मप्यनुग्रहमकरोतिबलदानेनपाचकंनामततस्मृतम ॥

॥ एका·११ ॥ अग्निर्भिन्नगुणैर्युक्तः पित्तभिन्नगुणैर्युतम द्रवंस्निग्धमथोगंधःपित्तं बह्निस्ततोऽन्यथा ॥ तस्मात्तेजोमयंपित्तंपित्तोष्मायःसशक्तिमान ॥ वामपार्श्वस्थितंनाभेः किंचित्सोमस्यमंडलम तन्मध्येमंडलंसौर्यंतन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः जरायुमानप्रच्छन्नः काचकोशस्यदीपवत ॥

॥ द्वा·१२ ॥ जाठरोभगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्यपाचकः सौक्ष्म्याद्रसानाऽऽददानोविवेक्तुंनैवशक्यते ॥ नाभौमध्येशरीरस्यविशेषात्सोममंडलम सोममंडलमध्यस्थंविद्यात्सूर्यस्यमण्डलम प्रदीपवत्तत्रगुणास्थितोमध्येहुताशनः ॥ सूर्यादिवियथातिष्ठंस्तेजोयुक्तौ र्गभस्तिभिः विशोषयतिसर्वाणिपल्वलानिसरांसिच तद्वच्छरीरिणाभुक्तंज्वलनोनाभि माश्रितः मयूखैःपचतेक्षिप्रंनानाव्यंजनसंस्कृतम ॥ (वस्तेजःसमुदायात्मकस्यापिपित्त स्यतेजोभागोऽग्निरिति अनेनैवकारणेनपित्तमप्यग्निवन्मन्यते ऽतितापितायोगोलव दितिसर्वस्यैवसिद्धांतः) तस्यचकेवलाग्नेःक्रियत्स्वरूपंतल्लिख्यतेऽग्रे ॥ स्थूलकायेषु सत्त्वेषुयवमात्रःप्रमाणतः ॥ ह्रस्वकायेषुसत्त्वेषु तिलमात्रःप्रमाणतः ॥ कृमिकीटपतंगेषु वालमात्रोऽवतिष्ठते-अर्थात्—ये बारह अंक एकही बातके जुदे जुदे बारहभेद करिके धरेगये हैं कि इसी क्रमसे अर्थोंके भेद भी जुदे जुदे लिखने और मोलानसे पढने को सुगमता होय सो सब दूसरे अक्षरों देखो ॥

॥ २ ॥ यहां पुराने ऋषिलोगही कहिते हैं कि ॥ हृदय में पहिले रक्तका आशय

कहातीहैं वाक्ती इनवचनोंका अर्थ लिखना यहांपर आवश्यक नहींहै सातवें अंकस्थल के श्लोकोंपर ध्यानकरो॥ स्त्रियोंके तीनि आशय और भी पुरुषोंसे अधिक होते हैं तिनमें एक तो वरागा जो गर्भ धरने का यंत्र है तिसके रहिने का स्थानही गर्भाशय कहाता वह पित्त और पक्वाशय के बीच होताहै और दो आशय दो स्तनोंके दूधभरे कहाते हैं उसी दशामें कि जब दूधसे भरें॰किंतु॰स्तन यद्यपि पुरुष स्त्री दोनोंके एकही से होतेहैं पर दोनों में जुदाई सिर्फ यही है कि नारी के यौवन अवस्था में बड़े मोटे एए होके गर्भिणी होनेपर दूधसे भरते हैं॥

॥ ८॥ आमाशय जो बताया गया पहिले उसीमें भोजन किया हुआ आहार प्राणवायु से प्रेरितकिया धक्कादिया पहुंचता है पहुंचिके उसजघे रहिनेवाले क्लेदन कफके जोर से ढीलाहोके फेनसा मीठा मीठाहोजाताहै चाहैं खट्टा मीठा कटुकआदि कैसाही भोजनकिया हो॥ अब नाभिस्थान के आशयोंका ब्यौरा देखोनवमे अंकसे॥

॥ ६॥ ऊपर सातवें भेदमे आशयोंकी स्थितिका क्रम शोचिके फिर यहांदेखो–आमाशयसेनीचे पक्वाशयसे ऊपर दोनोंके बीचमें जो ग्रहणीनामकी कला एकभिंत्तीहै वहीपाचकपित्तका आशयनाम ठिकानाजानों–पाचकपित्तसे ऊपर अग्निका ठिकाना है वह नाभिके बीचों बीच स्थापन होरहाहै तिसके ऊपर अग्निके रूपसे तिल रहिताहै (तिलकाव्यौरा अगिले भेदोंमें समझलेना) उस अग्निकेनीचे समान वायुका स्थानहै वही उस अग्निको प्रचण्डकरता रहिताहै जैसे भट्ठीकेनीचे धौंकनी लगी रहिकर अपने पवनसे अग्निको बढ़ातीहै॥

(अग्निपित्तनिर्णयः)

दशवेंसे वारहवें पाठतक अग्नि और पित्त इन्हींदोनोंका स्थान और स्वरूपआदि भेदभी दर्शाये जायँगे क्योंकि इनके परस्पर वैद्योंको बड़े बड़े संदेह और झगड़े प्रतीत होतेहैं॰किसी वचनसे पित्त अग्नि दोनों एकहीरूप॰किसी वचनसे दोनों जुदेजुदे॰प्रतीत होतेहैं तैसा तीनोंपादके श्लोक जहां लिखेगये सो सवदेखो तहां यहभी शोचो कि ये दोनोंबात ठीकही हैं अर्थात् दोनों जुदेहैं परन्तु दोनों एकही रूपसे जुदे हुयेहैं तिससे सिद्धांतमें एकही मानेजातेहैं यहवार्त्ता केवल विद्वानोंके समझने योग्यहै कि जैसा जगत् और ईश्वरका परस्पर संबन्ध अकथनीय है तैसा पित्त और अग्निका भी समझो इन्हीं वचनोंके अर्थ नीचे देखो॥

॥ १०॥ पाचक (पकानेवाला) जो पित्तहै वह एक तिलके समान है और कहा

है उसके कड़ापनसे उसको दोषतानहीं अर्थात् वातादि दोषत्रयकेसाथ उसकोगगाना नहीं कीजातीहै (इसका यहीतात्पर्य ठहिरा कि उसकड़े तिलको अग्निही जानना) तिलका ठिकाना ऊपर नववेंपाठमें शोचो॥ पित्तकास्वरूप कफसे भी, पतरा ढरकमा कुछ चिकना भी है परन्तु कफठंढासुपेदहै पित्त पीला अति गरमहै यही तीनों दोषमें गिनती होताहै इसीहेतु तिलके कड़ापनसे गीलापनका विरोधरहा॥ पित्त पंचात्मक पाँचरूपों वालाहै वहभी एक मुख्यरूपसे आमाशय पक्वाशयके बीच रहाकरताहै॰ यद्यपि पृथिवी आकाश आदि पाँचौभूत मिलेहुयोंकारूप उसकाहै तौ भी उसमें जो अग्निके गुणका उदय गरमाई अधिकहै सो द्रवकेसाथ मिलारहितेही पकानाआदि कर्मसाधन करताहै तिससे अग्नि कहाजाताहै, वहीअन्नको पचाताहै फिर उसकारस रूपीसार और मैलरूपी कीट जुदा जुदा करदेता है और आप उसी जघे बैठा बाक़ी दूरस्थ चारपित्तोंको बलपहुँचाते रहिकर सहायता देता रहिताहै इसीसे पाचकनाम कहागयाहै॥ यहपाठ यद्यपि पित्तकी प्रधानता सहित कहागया तौ भी पित्त और अग्नि दोनों जुदे सिद्धहोकर फिर इंतमें एकता सिद्धहुई॰इसीकानिर्णय फिर ग्यारह के अंकसे देखो॥

॥ ११ ॥ अग्निमें जुदेतरहके गुण लक्षणहैं पित्तमें जुदे किन्तु पित्तके लक्षण ऊपर लिखिचुकेहैं कि वह चिकना द्रवरूपहै नीचेको ढरकनेवाला और अग्नि इससे विपरीतहै अर्थात् रूखीकड़ी और ऊपरको ज्वाला पहुँचानेका स्वभाव रखनेवाली॥ इसी जुदाईसे समझना चाहिये कि पित्त जो (वातपित्त कफकेसाथ गिनाजाता) है सो अग्निहीके तेजसे भरापुरा रहिता और पित्तमें जो गरमीहै सोई शक्तिमती जानों॰ अब अग्निका ठिकाना दर्शाते हैं कि॥ नाभिसे किंचित् वामेको झुंकताहुआ भीतर एकसोमका मण्डल है वह ठंढाजानों तिसकेबीच फिर सूर्यका मण्डल है वह गरम जानों उसीके भीतर अग्नि स्थापन होरहाहै सो कैसा कि जैसे कांचकी हांड़ीमें दीपक छिपा हुआ भी अपना प्रकाश देतारहिताहै तैसे यह अग्नि भी एक झिल्लीसे मढ़ा हुआ दमकता अपनातेज बाहर फैलाये रहाकरता है॥ ऊपर दशवाँपाठ देखो उसमें पित्तही की प्रधानता (उसके विकार समय चिकित्सा की महिमा बढ़ाने के निमित्तही) दीगई थी कि अन्नका पचाना आदि वही करता है वही ऐसे कामोंसे अग्नि शब्द के नाम से कहाता है॰तिसके निराकरण पूर्वक अग्निही की प्रधानता रक्खीजायगी बारहवां अंक देखो॥

॥१२॥ पेटकी जठराग्निरूप आपही भगवान्हैं वहीअन्न पचानेवाले क्योंकि ईश्वर

सबकुछ करने में समर्थ हैं वही अपने अग्नि रूप की सूक्ष्म तेजोंसे रसों को आकर्षण करते हुये जब अन्नको पचाते हैं उस समयकी विलक्षण दशा ब्योरेवार नहीं विवेचन करी जासक्ती है (क्योंकि पकाते समय कोई भीतर घुसके नहीं देखिपाताहै॥ शरीर की नाभिके भीतर जुदाई के साथ सोमका मंडल है उसी मंडलके बीचमें फिर सूर्यका मंडल जानें (सोम मंडल दशद्दा• सूर्यमगडल उसके बीच गर्भस्थान है) तिसमें प्रदीप ज्योतिकी तरह अग्नि बैठा है॥ जैसे सूर्य आकाशही में बैठाहुआ अपने तेजकी भरी किरणों से छोटे बड़े सब तलावोंको जल खींचके सुखाताहै उसीतरह छोटेबड़े हरएक शरीरधारी का भोजन किया पदार्थहै सो नाभिमें बैठाहुआ अग्नि अपनी तेजकिरणों से शीघ्रही पचाय देताहै चाहैं नानाभाँतिके शाकादि व्यंजन सहित सिद्ध भोजनहोय या चाहें कोई कठोर कची चीज़ खाईहो तिसकोभी पचाताहै॥ (पित्त गीला दरकना द्रव रूपहै•यद्यपि द्रवरूपी एक तेज का समुदाय मिला भूला उसमें होता है तथापि उसके तेजका भाग जितनाहोय वही अग्निका तेजहै इसी कारणसे पित्तभी अग्निके तुल्य मानाजाता है जैसे लोहका गोला जब अग्निसे अत्यंत तपाया जाय तब अग्नि के तुल्य होजानेसे अग्निही कहाजाताहै यह सबहीका सिद्धांत ठहिरा इसी धोखासे कोई पित्तको अग्नि और कोई अग्निको पित्त जाननेलगतेहैं) उस अग्निका कितना बड़ा रूप है सो आगे लिखते हैं॥ हाथी आदि जो बड़े मोटे डीलडौल वाले प्राणी होयँ तिनमें एक जौकी बराबर अग्नि होता है• मनुष्य आदि छोटे पतरे डीलडौल वालेहैं तिनमें एक तिलकी बराबर अग्नि होती है•कृमि कीटपतंग आदि तुच्छ देह वाले जीवों में बार की नोक बराबर अग्नि रहताहै॥ यहाँ तक बारह भेदों में अविकोक्ति पूरीभई जो ९३ सेर९९ तक सात श्लोकों मध्ये लिखीगई॥ ९३ ॥ ९४॥९५॥ ९६॥ ९७॥ ९८॥ ९९॥

(अन्यच्च शरीराभ्यंतरज्ञानं)

सिराःशतानिसप्तैवनवस्नायुशतानिच। धमनीनांशतेद्वेतुपंचपेशीशतानिच १००
एकोनत्रिंशल्लक्षाणितथानवशतानिच। षट्पंचाशच्चजानीतसिराधमनिसंयुताः १०१
त्रयोलक्षास्तुविज्ञेयाःश्मश्रुकेशाःशरीरिणाम्। सतोत्तरंमर्मशतंद्वेचसंधिशतेतथा १०२

अर्थः—सिरा नामकी नाड़ीं जो नाभि से निकसती हैं ७०० सातसौ जाननी•तथा स्नायु नामकी नसें जिनसे सब अंगों के बंधान बँधे रहते हैं सो नौसै ९०० जाननी• तथा धमनी नामकी नाड़ियाँ जो नाभि से उत्पन्न होती हैं सब दोसौ २०० जाननी• तथा पेशी नाम मांसकी मुठियाँ पिंडीं सब देहमें ५०० पाँच सौ होती हैं॥ १०० ॥

हे अथय० उनतीस लाख नौसौ छप्पन २९००९५६ संख्या होती है सब अंगों में सिरा और धमनी नाम की नाड़ियाँ मिलकर यह जानों॥ १०१॥ औरभी शरीरमें दाढ़ी मूछ तथा शिरके बाल मिलकर तीनलाख जानने चाहिये और सबशरीरों में एकसौ सात मर्मस्थान हैं तथा दोसौ संधि मिलाप भी होतेहैं॥ १०२॥

१०० अधिकोक्तिः–मिताक्षराकार इसपर कहते हैं कि नाभि में संबंध रखने वाली सिरायें जो संख्या से चालीस होती हैं उन्हीं की बड़ी छोटी अनेक शाखायें बढ़कर सर्व शरीर में फैलतीं और वात पित्तकफों की भर्ती किया करतीहैं वेही सिर्फ चालीस की शाखा वृद्धिसे सातसौ होती हैं–तैसेही अंग प्रत्यंगोंके हाड़ मांस बांधने वाली नसें नौसे होतीं–और धमनी जोनाभिसे उत्पन्नहुई चौबीसहोतीहैं प्राणादि पं-चवायुकी बहने वालीं तिनकी शाखा अनुशाखावृद्धि होने सेदोसौहोजातीहैं॥१००॥ और (२९००९५६)-इतनी संख्या जो कहीगई सोभी सिर्फ नाड़ियोंकी नहीं किंतु ८४ चौरासी मूल प्रतीकसे लेकर यहांतक जो कुछ अंग प्रत्यंग वर्णनकियेगयेतिनके भी सूक्ष्म अंग जो नहीं वर्णन कियेगये सो सब जोड़िके समझनी॥ १०१॥ दोसौ संधें जो बताईं सो भी केवल बड़े छोटे हाड़ हड्डियोंके जोड़वालीं संधि जाननी किंतु नाड़ी शिरा स्नायु आदि के मिलाप वालीं संधें अतिशय बहुत होने से अनन्त हैं तिससे उन की गिनती कुछ नहींकरीजासक्तीहै॥ एकसौसात जो मर्मस्थानकहे तिनका थोड़ासा व्योरा यहां लिखते हैं क्योंकि देह में सर्वको स्थान कराठ हृदयआदि१०७वे कहाते हैं जिनमें थोड़ी भी चोट लागनेंसे मरण होजाय अथवा बहुत पीड़ा या बहुत दिनके लिये खाट सेवनी परै=यथाहुःप्राचीनाः=सन्निपातःशिरास्नायुसंधिमांसास्थिसंभवः म र्माणितेषुतिष्ठतिप्राणाःखलुविशेषतः १ सप्तोत्तरशतंसंतिदेहेमर्माणिदेहिनाम् तान्ये कादशमांसेस्युस्त्वावस्थिद्वर्सातिहि २ सधोनांविंशतिस्तानिस्नायूनांसप्तविंशतिः चत्वा रिंशत्येकंचसिरामर्माणितत्तु ३ (व्यवस्थाचेयं) द्वाविंशतिःसक्थियुगेतावंत्येवभुज द्वये द्वादशोरसिकुक्षौचपृष्ठदेशेचतुर्दश ग्रीवायामूर्ध्वभागेतुसप्तत्रिंशच्चतानिहि ४ (ता निचसर्वाणिपंचधाभवंति) सद्यःप्राणहराणिस्युर्मर्माण्येकोनविंशतिः १ मर्मदेशास्त्र यस्त्रिंशत्स्युःकालांतरमारकाः २ चत्वारिंशच्चचत्वारि वैकल्यंजनयंतिहि ३ मर्माणिरुक् रुजाकारि ४ विशल्यघ्नञ्चिकं नतम=अर्थात्–देह में मर्मस्थान वे हैं कि जहांजहां सि-राओं का संनिपात इकट्ठा होय या स्नायुओं का संघात या अनेक संधियाँ मिलके इकट्ठी होयँ या मांसका समूह या हाड़ोंकासन्निपात इकठाये होजाना या इन सबही का मिलाप या इनमें से कोई वस्तुओं का प्रवेश होय क्योंकि उन ठिकानों में प्राण

विशेष रहा करते हैं॥ १ ॥ वे मर्मभी १०७ एकसौ सात हैं इस हिसाब से कि ग्यारह मर्म मांस के ठिकानों पर दृष्टांत जैसे गुदा या चूतर ये उन्हीं ग्यारहमें गिनतीहैं तथा हाड़ों मे आठ मर्म होते हैं दृष्टांत जैसे कान के समीप कनपटियों के दो हाड़ उन्हीं आठ में गिनती हैं॥ २॥ संधियों में बीस मर्म होतेहैं दृष्टांत जैसे मूड़में कपालों की संधि उन्हीं बीसमें गिनती हे तथा स्नायु नाम नसोंमें सत्ताइस मर्म होते हैं दृष्टांत जैसे वस्ति मूत्रकोशहै सो बारीक खाल और नखोंका संघात एक मर्महै यहउन्हींसत्ताइस में गिनती है॰चालीस और इकतालिसहैं सिरामर्म जो सिराओंके मिलापों के स्थलों पर होतेहैं दृष्टांत जैसे नाभि सिरामर्म यह उन्हीं इकतालिसमें शामिल है॰देखो (११ मांसमर्म—८ अस्थिमर्म—२० संधिमर्म—२७ स्नायुमर्म—४१ सिरामर्म) इनसबकाजोड़ १०७ एकसौ सात मर्म ठहिरे॥ ३॥ (इन्हीं की व्यवस्थासमझो) इनमें से ग्यारह ग्यारह वाईस दोनोंटांगमें इसीतरह वाईस दोनोंवाहूमें और हृदयसे ऊपर तथा दोनों कोखि में तीनों जगह के कुल्ल बारह मर्म होते हैं पीठ में चौदह मर्म जानने तथा घींच और मूड़ने कुल्ल सैंतीस मर्महोतेहैं (वही१०७एकसौसातवाला जोड़ इसतरह से भी ठहिरा) इनसब अंगोंमें जितने जितनेहोते हैं कहेगये तिनका वह नियम नहीं है कि एक अंगमें एकही प्रकार के मर्महों किंतु सब अंगों में सबतरह के मिले भूले कुछ सिरा मर्म॰कुछ मांस मर्म कुछ संधिमर्मआदि जानने॥ ४॥ फिरभी इनके पांच भेद होते हैं कि) उन्नीस मर्म चोट लगने पर शीघ्रही प्राणहरनेवाले १॥ और तेंतीस मर्मों के ठिकाने ऐसेहैं जो कुछ काल के अंतर से मारने वाले २॥ और चवालिस मर्म ऐसे जो थोड़ी भी चोट लगने से विकलता पैदा करते हैं मारते नहीं ३॥ और आठ मर्म ऐसेहैं जो चोट लगने से कुछ रोग विगाड़ उनमें घुसि जाता है ४॥ विशल्य घ्नत्रिकंमतं—तीन मर्म स्थान विशल्यघ्नहोतेहैं कि उनमें घुसा हुआ वाण आदिकोई शस्त्र जब खींचि के निकासा जाय तभी तत्काल प्राणहरैं या बिल्ले के सातदिन के भीतर तक हरैं (ऐसे पाँच प्रकारों से भी वही १०७ एकसौ सात मर्म ठहिरेसब जोड़ देखो) ५॥ जो सद्यःप्राणहर कहेगये वे भी सात दिन के भीतर तक हरते और कांतर से मारने वाले पखवारे से ऊपर महीना के अंत तक मारते हैं—इस वार्ता का विस्तार अभी वहुत बड़ा वाक़ीहै कि किस अंगमें किस ठिकानेपर कै अंगुरका लंबा चौड़ा किस प्रकारका मर्महै वह कितने दिनमें मारताहै इत्यादि एकसौ सातवातें विस्तार भयसे नहीं लिखीं सो वैद्यक शारीरकमें देखना॥१०२॥=१००॥१०१॥१०२॥

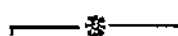
(रोमश्मश्रुपिरादीनां रसरक्तादीनांच परिमान)

रोम्णांकोटयस्तुपंचाशच्चतस्रःकोट्यएवच। सप्तषष्टिस्तथालक्षाःसार्धाःस्वेदायनैःसह १०३
वायवीयैर्विगण्यंतेविभक्ताःपरमाणवः। यद्यप्येकोऽनुवेत्त्येषांभावानांचैवसंस्थितिम् १०४
रसस्यनवविज्ञेयाजलस्यांजलयोदश। सप्तैवतुपुरीषस्यरक्तस्याष्टौप्रकीर्तिताः १०५
षट्श्लेष्मापंचपित्तंचचत्वारोमूत्रमेवच। वसात्रयोद्वौतुमेदोमज्जैकोऽर्धंतुमस्तके १०६
श्लेष्मौजसस्तावदेवरेतसस्तावदेवतु। इत्येतदस्थिरंवर्ष्मयस्यमोक्षायकृत्यसौ १०७

अर्थः—रोमाओंकी संख्या चौमन करोड़ि साढे सरसठि लाख ५४६७५०००० इतनी होती है अपने स्वेदायनों सहित अर्थात इसी सख्या में आवे रोमकूप भी जानने कि जिनमें रोमा जमते और जिनके द्वारा पसीना टपकता है ॥ १०३ ॥ ये सब वायवीयों से विभाग किये हुये परमाणव गिने जाते हैं यद्यपि इन भावोंकी संस्थिति मर्यादा को तुम सब ऋषियों में कोई एक जानता भीहो (अर्थात योगीश्वरनेइस गूढ वाणी से यह तात्पर्य दर्शाया है कि जो कुछ कहा सो सब शास्त्रही अनुसार तुमको समझाया किंतु शरीरोंकी भीतरली दशा नेत्रहाथ आदि इंद्रियोंसे देखेटटोले विना ठीक नहीं जानी जा सक्तीहै तिससे यह शारीरिक भावोंकी व्यवस्था वाला आशय बहुत गहिरा है इस बातको तुम सबमें भी बिरलेही समझते होंगे बल्कि जो कोई ऐसा समझता हो वहभी बुद्धिमानों में अग्रणी जानों तिससे यह व्यवस्था बड़े यत्नोसे जाननी चाहिये) इतना समझायके योगीश्वर फिर कहिने लगे ॥ १०४ ॥ कि अन्नसे उत्पन्न हुये रसकी नौ अँजुरी अपने मुख्य कोश में सर्वदा भरीरहती हैं जानना तथा पिये हुये पक्वजल की दश अँजुरी अपने ठिकानेमें रहिती हैं तथा पुरीष विष्ठा की सात अँजुरी बिना पची हुई सदा रहिती हैं तथा आठ अँजुरी रक्तकी-रक्त स्थान में रहती कही जाती हैं ॥ १०५ ॥ कफकी छे अँजुरी अपने ठिकाने पर तथा पांचअँजुरी पित्त अपने ठिकानेपर तथा चारि अँजुरी मूत्र अपने ठिकानेपर और वसा तीन अँजुरी और मेद दो अँजुरी और मज्जा एकही अंजुरी निज ठिकाने और आधी अँजुरी मज्जाकी मस्तकमें भी होती है ॥ १०६ ॥ फिर उसी मस्तक में आधी अँजुरी श्लेष्मौजस की अर्थात कफके सारकी भी होती है और आधी अँजुरी वीर्य की भी (इतिएतत अस्थिरंवर्ष्म) यह ऐसा शरीर जो ८४ चौरासी श्लोक से लेकर यहां तक चौवीस श्लोकोंमें हाड मास खाल आदि जो कुछ दर्शाया गया सो सब अशुद्ध चीजोंके समूह से बनाहुआ अपवित्रता का खजाना और अस्थिर भी है अर्थात क्षण भंगुर होनेसे इसके लिये स्थिरताभी कुछ नियत नहीं है-जिसके यहीबुद्धि होतीहै वही ज्ञाती बिज्ञानीहै और वही मोक्षके अर्थयत्न करने में समर्थ होताहै ॥ १०७ ॥

१०३अधिकोक्तिः–पूर्वोदितसिराकेशादिसहितानां सकलशरीरसुषिरादिशेभ्यां परमाणवः सूक्ष्मसूक्ष्मतररूपाभागाः स्वेदप्रवाणसुषिरैः सहचतुःपंचाशत्कोट्यः तथा सप्तोतर यष्टिलक्षाःसार्धाःपंचाशत्सहस्रसहिताः वायवीर्यैर्विभक्ताः पवन परमाणुभिः पृथक्कृताविगण्यंते इतिमिताक्षरा=अर्थात्–शरीरके जितने वड छोटे भाव जुदेजुदे स-मझायेगये सो सब क्या चीज़ हैं इसका उत्तर कहितेहैं कि वायुके अतिसूक्ष्मभाग जो पवनके परमाणु होतेहैं अत्यत भिंचीसंधें में घुसि जाइसक्ते हैं उन्हींसे पृथिवी आदि के विकार घुसि घुसि जुदे कियेहुये बहुतसे परमाणुओंका संघात गिनाजाताहै नैया-यिक मतसे इसके सिवाय और कुछ नहीं प्रतीत होता है जो कुछ शरीर में दर्शाया गया सिद्धांत इसका यहीहै तिससे ऐसे निःसार शरीरसे मोक्षपाने का प्रयत्न करना सार है॥ १०३॥१०४॥१०५॥१०६॥१०७॥

यहांतक थोड़ाथोड़ा संक्षेप शारीरक समझाया गया•इसी शरीरकी परमगति होने का उपाय भी अगिले परिच्छेदसे दर्शावेंगे॥



अथब्रह्मोपासनायांज्ञेयस्यध्येयस्यतत्साधनफलस्य चस्वरूपनिरूपणोयंपरिच्छेदः(१२)द्वादशः॥

इस परिच्छेदमें यह निरूपण कियाजायगा कि योगी पुरुष को क्या जानना और किसका ध्यान किस रीतिसे करना चाहिये और उसकी साधनापूरी करिपानेसे क्या फलहोता है सोभी कहाजायगा॥

(उपासनीयस्वरूपस्य आत्मनिध्यानं)

द्वासप्ततिसहस्राणिहृदयादभिनिःसृताः।हिताहितानामनाड्यस्तासांमध्येशशिप्रभम् १०८
मंडलंतस्यमध्यस्थआत्मादीपइवाचलः। सज्ञेयस्तंविदित्वेहपुनराजायतेनतु १०९

अर्थः—हिता हिता नामकी नाडियां ७२००० बहत्तरि हजार जो हृदयसे मूर्तात् निकसीं=अर्थात्—(नाभि से मूल रखने वालीं) हृदय समीप से सन्मुख और हर तरफ़ हृदय को अभिव्यापन करि घेरि के निकसीं किंतु मस्तक तक चलीगई

उस प्रकार से कि जैसे कदम के फूल में सघन केसरों का गुच्छा देखिपरताहो तिनके बीचमें चन्द्रकांतिके समान एकमंडलहै तिसके बीच आत्मा बैठाहै अचल दीपज्योति के समान वही ज्ञेय है अर्थात् उसीको ध्यान द्वारा आराधन करना चाहिये तिसको अच्छेजानिके फिरकभी यहांसंसारी देहोंमें आकर नहींजन्मताहै॥ १०८॥ १०९॥

१०८ अधिकोक्तिः—अपरातिस्रोनाड्यस्तासामिडा पिंगलाख्येद्वेनाड्यौ सव्य दक्षिण पार्श्वगतेहृदिविपर्यस्तेनासाविवरसंबद्धे प्राणापानायतने सुषुम्नाख्यापुन स्तृतीया दंडवन्मध्येब्रह्मरंध्रविनिर्गता तासांनाडीनांमध्ये मंडलंचंद्रप्रभं तस्मिन्नात्मा निर्वातदीपइवाचलःप्रकाशमान आस्तेइतिमिताक्षरा=अर्थात्—मिताक्षराकारकहिते हैं किमूलश्लोक मे कही७२००० बहत्तर हज़ार नाड़ियोंसे उपरालनाड़ी तीन और हैं•इडा•पिंगला•सुषुम्ना•योगशास्त्र के अनुसार•इनमें इडा बामे नथुना औरपिंगला दाहने नथुना तक हृदयसे जाकर दोनों छिद्रों में बंधीहै यही दोनों प्राण अपानदोनों वायुका स्थान हैं और तीसरी सुषुम्ना नाड़ी हृदय से निकसी हुई लाठी के समान सीधी नासाकेबीच होकर कपालमें ब्रह्मरंध्र तक चलीगई• इस सब नाड़ियोंके बीच उसी सुषुम्ना की मूलपर एक चंद्रमा के समान उज्वल कान्तिवाला मंडल है तिसमें आत्मा रूपसे परमात्मा विराजमान है अचल ज्योतिके समान जैसे पवन,से विहीन मंदिर में दीपक निरन्तर एक रस अचल रक्खा हुआ प्रकाश देता है तिसके ध्यान में लगना चाहिये॥ १०८ ॥ १०९॥ इसी ध्यान की युक्ति नीचे दर्शाते हैं॥

(ध्यानस्यायमुपायः)

ज्ञेयंचारण्यकमहंयदादित्यादवाप्तवान्। योगशास्त्रंचमत्प्रोक्तंज्ञेयंयोगमभीप्सता ११०
अनन्यविषयंकृत्वामनोबुद्धिस्मृतीन्द्रियम्। ध्येयआत्मास्थितोयोऽसौहृदयेदीपवत्प्रभुः १११

अर्थः—योगको चाहतेहुये पुरुषकरके आरण्यक जानने योग्यहै जो मैंआदित्य से पावने वाला भया और योगशास्त्रभी मेराहीकहा बताया ज्ञेय है=अर्थात्—चित्त की वृत्ति को सब ओरसे खींचके हृदयस्थ आत्मामें लगाकर स्थिर करना यहीयोग कहाता है तिस योगकी सिद्धि चाहनेवाले पुरुष को उचितहै कि वृहदारण्यक नाम ग्रन्थजो मैंनेकभीपहिले आदित्यसे सुनिपायावेदकाअगहैतिसकोखूब जानैसमझै और योगशास्त्र जो निज मेराही बनायाहै सोभीपढै(इसउपायसे योगसाधनासीखपावैगा॥ ११०॥ मन बुद्धि स्मृति इन्द्रियोंको अनन्य विषय करिके आत्मा ध्येयहै जो यह प्रभु दीपवत् हृदयमें बैठा है=अर्थात्—दूसरा उपाय यहभीहै कि—यह समर्थ प्रभु आत्मारूप

जो हृदयबीच पूर्वोक्त मण्डल में दीपक तुल्य प्रकाशमान बैठाहै सो इस रीतिसे ध्यान करिबेयोग्य है कि मन को बुद्धि को सब इन्द्रियों को यादिको सभी कामों और सभी बातोंकी तरफ़से खींचिके केवल उसी आत्मामें समर्पण करे॥ १११॥

१११०अधिकोक्तिः-(योगंअभीप्सता) इस पद में योग शब्दका यह अर्थहै कि संसारके सभी विषयरूपी बंधोंको छोड़ि उनकी उपेक्षासहित अपने चित्तकी वृत्तियां उनकी ओरसे खींचि एक मनही में आत्मा के ऊपर उन वृत्तियों को लगाना जोड़ना यही योगहै तिसकी सिद्धि चाहने वाले योगी को आरण्यक विचारना चाहिये जो वृहदारण्यक नामसे भी वेदहो का अंग ब्राह्मण विशेष कहाजाताहै जिसको योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने (अरण्यस्थान) वन में रथ चलते हुये सूर्यनारायण से पढा था॥ ११०॥ योगी के योगरूपी ध्यान का कर्त्तव्य रूपयही है कि चित्तकी वृत्तियों को सब ओरसे ऐसे खींचिके आत्मा में एकत्र करे जैसे प्रज्वलित दीप ज्योतिका प्रकाश दूरफैलाहुआ भी दीपकपर शरावा ढांकि देनेसे खिंचिकर उसी ज्योतिमें समाइ जाता है इस रीतिसे उस आत्मा के ध्यान में लयलीन होवै जो यह अनंतरोक्त १०९ श्लोक में कहागया प्रभु दीपके तुल्य अपने हृदय में प्रकाशमानहै॥ १११॥

(अशक्तौतुशब्द ब्रह्मोपासनं)

यथाविधानेनपठन्सामगायमविच्युतम्। सावधानस्तदभ्यासात्परंब्रह्माधिगच्छति ११२
अपरांतकमुल्लोप्यंमद्रकंमकरींतथा। औवेणकंसरोविन्दुमुत्तरंगीतकानिच ११३
ऋग्गाथापाणिकादक्षविहिताब्रह्मगीतिका। गेयमेतत्तदभ्यासकरणान्मोक्षसंज्ञितम् ११४

अर्थः-सावधान संन्यासी यथाविधानसे सामगायको अविच्युत पढत करतेहुये उसी अभ्याससे परंब्रह्मके समीप जाताहै=अर्थात्-सामवेदकी श्रुतियां स्वरके साथ गाई जातीहैं तिससे उसको सामगान और सामगाय भी कहितेहैं उसी सामगाय को जैसा उसकेगानेका विधान सामवेदमें उपस्थितहोय उसीविधानसे संन्यासीआप सावधान होते (अविच्युतनाम) नित्यंप्रति अखण्ड नियमसे पढत अर्थात् गान करते करते उस अभ्यास के प्रभावसे परंब्रह्म के समीप तक पहुँचता है (शेष ब्यौरा अधिकोक्ति में देखो॥ ११२॥ अपरांतक• उल्लोप्य• मद्रक• मकरी• औवेणक• सरोविन्दु• उत्तर• ये सात अपने प्रकरणों में कहे गीतोंके भेदहैं (और चकारके ध्वन्यर्थसे आसारित वर्द्धमानताआदि महागीत भी ग्रहण किये जातेहैं मिताक्षराकारने यह कहा॥ ११३॥ ऋग्गाथा• पाणिका• दक्षविहिता• ब्रह्मगीतिका• ये चारों गीतिका कहाती हैं इनका

भी विस्तार गानसंबंधी वेदके प्रकरणोंमें मिलसक्ताहै•यह सब अपरांतकआदि ब्रह्म गीतिका पर्यंत जुदे भेद गाने के योग्यहैं अर्थात् केवल पाठही बाँचनेकी रीतिसे नहीं किन्तु गानतानके स्वरसहितआराधनकरै जिसका अभ्यास खूबकरनेसे वहीमोक्षनाम कहाताहै अर्थात् मोक्षरूपी फलदेनेके हेतुसे यह अभ्यासहीमोक्षकहिलाताहै ११४॥

११२अधिकोक्तिः—सामगानआदि जो गान करनाकहा तिसकायही तात्पर्य है कि•शब्द तथा आकार डीलडौल से शून्य जो परंब्रह्म सो सामगानके प्रत्येक शब्द शब्द के स्वरोंमें स्वरशब्द रूपी होकर ऐसा फँसा विंधा है कि जैसे दुशाला आदि वस्त्रों के वेलि.वूटा आदि में सघन सूत्र मिले होते हैं जिन तरगोंकी गति हरसकसे नहीं पहिंचानी जाती है तैसे अनुस्यूत हुये आत्मा में गान के द्वारा चित्तकी वृत्ति एकाग्र होकर जालगती है तब उसी अभ्यास के मार्ग से परंब्रह्म तक पहुँचहोजाती है वही मोक्षपदनामहै—तदुक्तंच (शब्दब्रह्मणिनिष्णातःपरंब्रह्माधिगच्छति) अर्थात् शास्त्रांतरमें यह नियम कहा गयाहै कि शब्दरूपी ब्रह्ममें लयलीनहुआ पुरुष परं ब्रह्मके समीप जाताहै=यद्यपि=अपरांतक आदि गीतजात भी सब एक प्रकार का अध्यारोप समझाजाता है तथापि उसमें शब्दरूप होकर आत्माका भाव जो अध्यारोपित होरहा है (जिसका दृष्टांत अभी दुशाला आदिसे कहिचुके) तिससे यह अभ्यास मोक्षफल देनेवाला ठहिरता है इसीसे इस अध्यारोप में कुछ कलंक नहीं—परन्तु—यह अभ्यास करना संन्यासी को उस अवसरमें उचितहै कि जब अपनेनित्य के स्वाध्याय ओंकार जप करनाआदि नियमोंसेछुटकारामिले किन्तु यहतात्पर्य नहीं है कि मुख्य नियमोंका अति क्रमकरके इसीमें तत्परहोय ११२॥ ११३॥ ११४॥

(शब्दब्रह्मोपासनस्य अंगभूतिनियमाः)

वीणावादनतत्त्वज्ञःश्रुतिजातिविशारदः। तालज्ञश्चाप्रयासेनमोक्षमार्गंनियच्छति ११५
गीतज्ञोयदियोगेननाप्नोतिपरमंपदम्। रुद्रस्यानुचरोभूत्वातेनैवसहमोदते ११६
अनादिरात्माकथितस्तस्यादिस्तुशरीरकम्। आत्मनस्तुजगत्सर्वंजगतश्चात्मसंभवः ११७

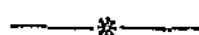
अर्थः—वीणा बजानेमें तत्त्वज्ञ श्रुतिजातिमें विशारद और तालविधि जाननेवाला भी विनाप्रयास मोक्षके मार्गमें पहुँचताहै=अर्थात्—भरत आदि मुनिजनोंका कल्पित वीणा जो प्रसिद्ध है तिसके बजानेकी तत्त्व (असलियत) जाननेवाला संन्यासी जो श्रुति और जातोंके लक्षण जानने में विशारद अति प्रवीण होय और ताल जिससे गीतका परिमान कल्पना किया जाता है (अर्थात् गानके स्वरके साथ सजोरा या

हाथ या पैर या घूंटा या थपकी वा अँगुरी या लकड़ीआदिसे हरकोईसुननेवालाभी तालमिलाया करताहै तिसका भी स्वरूप संन्यासीजन जानताहो (तात्पर्यअधिकोक्ति में देखो॥११५॥ यह गीतज्ञ संन्यासी यदि गीतरूपीयोगसे कदाचित (चित्तविक्षेप आदि कारणोंसे लयभंग होकर) परम पदको नहीं पावै तौभी रुद्रका अनुचर होके उसीके साथ सुख भोगता है॥ ११६॥ एवंप्रकार तुम सबको आत्मा का अनादि होना कहिसुनाया फिर उसकी आदि जो शरीर है सोभी कहा॰आत्मासे सब जगत होताहै सोभी कहा फिर जगत सेभी आत्मा की उत्पत्ति कही=अर्थात्—सरसठि मूल श्लोकसे लेकर अनादि आत्मा का स्वरूप और उनहत्तरि श्लोक उत्तरार्धसे उस की आदि भी शरीर धारण करनेसे कहिकर आगे सत्तरि मूलश्लोकसे ८३ तिरासी तक उसी परमात्मा के सकाशसे आकाश पृथ्वी आदि समस्तभुवनों की उत्पत्ति कही और उससे उत्पन्न हुये पंच महाभूतों के मिलाप से स्थूल शरीर बनने के द्वारा सब जीवों की उत्पत्ति भी कही॥ ११७॥

११५ अधिकोक्तिः—श्रुतियों तथा जातों में प्रवीण होना यह कि॰वेदोक्त गान विद्यामें सातस्वरोंकी अठारह जाति और बाईस श्रुतियां होतीहैं (षड्ज॰ऋषभ॰गांधार॰मध्यम॰पंचम॰धैवत॰निषाद) ये सात स्वर होतेहैं येही सात इनकी मुख्यजाति कहाती हैं फिर इनमें से दो दो आदि के मिलाप से ग्यारह जातें और भी होजाती हैं वह संकरजाति कहाती हैं तिससे शुद्ध७और संकर ११ दोनों मिलकर अठारह जातें स्वरोंकी ठहेरती हैं—यथा—षड्ज॰मध्यम॰पंचम॰इन तीनों स्वरमें चार चार श्रुतियां होतीहैं सो बारह ठहरीं ऋषभ॰धैवत॰इन दोनोंमें तीन तीन श्रुतियां होतीहैं बारह में जोड़के अठारह ठहरीं॰गांधार॰निषाद॰इन दोनोंमें दो दो श्रुती लगतीहैं सब जोडि के बाईस २२हुईं—इन्हीं सर्वश्रुति जातिमें प्रवीणहोय अर्थात् इनके स्वरूप उत्पत्ति स्थान आदि सब जानैं—दृष्टांत—जैसे नाभिके भीतरसे उठायाहुआ स्वरकण्ठमें निकसतेहुये वृषभके शब्दसम गरजताहै इसीलिये ऋषभ स्वरनाम उसका धरागया क्योंकि वृषभको ऋषभ कहिते हैं—जैसी यह ऋषभ स्वरकी उत्पत्ति कही तैसेसातोंकी जुदी जुदी फिर ग्यारह संकर जातोंकी जुदी जुदी फिर बाईस श्रुतियोंके जुदे जुदे लक्षण उत्पत्तिआदि जानै और वीणा सहित अपने कंठके द्वारा सबकागान भी यथा विधि से कर सक्ताहो तो श्रुति जातिमें विशारद कहलाता है—इस प्रकारसे शब्दरूपी ब्रह्म की उपासना मे सुगमता सेही चित्तकी वृत्ति आरोपित होजातीहै क्योंकि स्वरताल आदि भंग होजानेके भयसे चित्तकी वृत्तियों अवश्य रोकनीपरतीं और स्वतःखिंचि॰

कार एकत्र होजाती हैं और यही बात पूर्वोक्त ध्यान योगमें भी मुक्तिका हेतु कहीगई थी परन्तु पूर्वोक्तयोग जिसपर न साधाजाय तिसको इसअग्रोक्त प्रकारसे उसपरिश्रम के बिना भी मुक्तिका मार्ग मिलजाता है ११५ ॥ ११६ ॥

मोटी बुद्धिवालोंको ये बातें सुनिके कुछ संदेह भी उत्पन्न होताहै तिससे अगिले परिच्छेद में संदेह मिटाने के निमित्त से ११८ का श्लोक प्रश्नरूपसे कहिकर आगे समाधान दिये जायँगे कि जगत और परमात्मा का परस्पर एकी भावहै ॥



अथ परमेश्वरस्यब्रह्मरूपस्यसर्वविश्वरूपितानिरूपणोयंपरिच्छेदः (१३) त्रयोदशः ॥

इस परिच्छेद में उस ब्रह्मविद्याका विस्तार कहाजायगा जिससे परमेश्वर ब्रह्म रूपको विश्वरूपिता जानीजाय कि उसके सकाशसे जगत क्योंकर उत्पन्नहोता और परमात्मा आपभी जगत में क्योंकर जन्म धरता और संपूर्ण विश्व का रूप आपही कैसे कहाजाना सिद्ध होताहै

(जगतःपरमात्मनश्च पारस्पर्यमैक्यं)

कथमेतद्विमुह्याम सदेवासुरमानवम् । जगदुद्भूतमात्माचकथंतस्मिन्वदस्वनः ११८
मोहजालमपास्येहपुरुषोदृश्यतेहियः । सहस्रकरपन्नेत्र सूर्यवर्चा सहस्रक- ११९
सआत्माचैवयज्ञश्चविश्वरूप प्रजापतिः । विराज सोऽन्नरूपेणयज्ञत्वमुपगच्छति १२०

अर्थः—देव असुर मनुष्यों सहित यह जगत कैसे उस आत्मासे उपजा और उस जगत में आत्मा आप भी कैसे पशु पक्षी नर सर्प आदि शरीरोंको पाताहै इस सब ऋषिलोग इस अटपटी बातसे विमोहको पहुँचतेहैं ॥ ऐसा ऋषि लोगोंका संदेहमय प्रश्न सुनिके याज्ञवल्क्य जी आगे समाधानों सहित परमात्मा का स्वरूप समझाते हैं ॥ ११८ ॥ इह जगत में मोह जालको छोड़िके जो पुरुष देखिपरता है सहस्र हाथ पैर नेत्रवाला सूर्यसम तेज वाला सहस्रों शिरवाला (११९) वही आत्माहै वहीयज्ञ रूप है विश्वरूप है प्रजापति भी है जिससे विराजरूप है सो अन्न रूपसे यज्ञत्व को पहुँचता है—अर्थात्—निर्मल ज्ञान रूपी दृष्टि से ध्यान करो कि—इहाँ समस्त जगत भरमें दृश्यमात्र जो यह स्थूलरूप कलेवर आदि सबही में भिन्न भिन्न देहाभिमानरूप

(मोहजाल) अज्ञान का माया जालहै सोसब जुदा मानिके उसके उपरान्त जो कोई एक पुरुष प्रतीत होताहै वही सहस्रों अर्थात् असंख्य हाथ पैरोंवाला असंख्य नेत्र मस्तक वाला और असंख्य सूर्यों के समान तेज वाला भी है (अर्थात् देव राक्षस मनुष्य आदि सभी जीवोंके हाथपैर मस्तक आदि की संख्या जो कुछ तीनों भुवनमें हो सक्तीहो सो सब अंग उसी एक पुरुषके हैं किन्तु उसीके प्रत्यक्ष जो उसकी शक्ति उपस्थित रहिती है तिसके आधार सहारेपर ये सब तीनों भुवनके हाथपैर नेत्रआदि इन्द्रियाँ कामदेती हैं) परन्तु वह पुरुष किसीके सन्मुख आकर नहीं दिखाई देता है (११६) वही पुरुष सब जीवों में आत्मारूपहोके उपस्थित और वही यज्ञों का रूपहै अर्थात् नित्य नैमित्तिक तथा काम्यभेद वाले सभी यज्ञोंका स्वरूप वहीआप है इसीसे यज्ञ पुरुष भी उसका एक नामहै और विश्वरूप अर्थात् समस्त जगत का आत्मारूप है क्योंकि विराज रूप होनेसे अर्थात् मस्तक जिसका स्वर्ग आदि ऊपर के लोक और पाताल पैर और भूतल मध्यस्थ अंग है इत्यादि लक्षणों से ब्रह्माण्डमात्र सब स्थूलरूपी देहका अभिमानी वही पुरुष है जो विराट भी कहाजाता(एकसौपचीस १२५मूलश्लोकसे१२८तकचारिश्लोकदेखो)औरप्रजापतिवहीआपहै अर्थात्प्रजाकी उत्पत्ति या वृद्धिकरनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा और दक्ष आदिरूपोंसे आपही वर्त्तमान है तथा राजा महाराजा आदि नरपाल भी प्रजापति होतेहैं तिनके भी रूपोंसे आपही वर्तमानहै तथा विश्वकर्मा और सूर्य्य और अग्नि भी प्रजापति कहाते हैं तिनके भी रूपोंसे आपही वर्तमानहै (इसवार्ताके निमित्तसे गीतामें विभूति अध्यायभी देखना चाहिये) वहीपुरुष आप अन्नरूप होकर तिल घृत खाँड़ मेवा आदि अन्नोंका पुरोडाश बनिकर अपनेही अग्निरूप में मिलि के यज्ञरूप बनिजाता है (फिरभी उसी यज्ञसे वर्षारूप बनिकर उसीवर्षासे अन्नादि औषधियोंकारूप लेकर उन्हीं अन्नोंसे रस धातुकेद्वारा शुक्रधातुका रूपलेकर गर्भों में जाकर फिर प्रजारूप होजाताहै बहुतेरी जीवोंकी संतति केवल वर्षाके होनेसेही पृथ्वीसे आपही आप शुक्रधातुके विनाही उत्पन्न होजाती है तिससे संपूर्ण विश्वरूप होना उस पुरुषका प्रत्यक्ष है) इस वार्ताका विशेष व्यौरा ७१ इकहत्तर के मूलश्लोक से भी देखो तथा यहाँ भी अगिले श्लोकोंसे दर्शाते हैं॥ १२० ॥=११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥

——*——

योद्रव्यदेवतात्यागसंभूतोरसउत्तमः। देवान्सन्तर्प्यसरसोयजमानंफलेनच १२१
संयोज्यवायुनासोमंनीयतेरश्मिभिस्ततः। ऋग्यजुःसामविहितंसौरंधामोपनीयते १२२
स्वमंडलादसौसूर्यःसृजत्यमृतमुत्तमम्। यज्जन्मसर्वभूतानामशनानशनात्मनाम् १२३
तस्मादन्नात्पुनर्यज्ञःपुनरन्नंपुनःक्रतुः। एवमेतदनाद्यंतंचक्रंसंपरिवर्तते १२४

अर्थः—देव निमित्त त्यागे द्रव्यसे उत्तम रस संभूत होके देवोंको भले तृप्त करिके वही रस यजमानको भी फलसे=संयोजन किये पीछे वायुसे खींचा सोमको पहुँचाया जाताहै तहांसे ऋक् यजु साम रूप सौरधामको रश्मियों करके लियाजाताहै=फिर यह सूर्य अपने मंडलसे उत्तम अमृतको सृजता है जो अशन अनशन रूपी सर्वभूतोंका जन्म है=तिस अन्नसे फिर भी यज्ञ फिर अन्न फिर यज्ञ•ऐसेही यह अनादि अंत चक्र सदा परिवर्तित है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥=अर्थात्—परमात्मा को सर्व विश्वरूपी जो कहिचुके तिसका ब्योरेवार प्रकार यहां समुझाते हैं कि इसी संसार में जो कुछ-द्रव्य सामग्री होम आदिकै द्वारा देवताके निमित्त छोड़ा जाता है तिसका रस उत्तम जो संभूत भली भाँतिसे उत्पन्न हुआ (अर्थात् यह रस देखने में नहीं आता किंतु अदृष्ट रूपही रहिकर परमात्माकी परिणति रूप अवस्था भेद कहाताहै क्योंकि अन्न परमात्माहै तिसका रूप पलटिके उत्तम रस बना) इसको (उत्तम इसलिये कहा कि संपूर्ण जगत्‌के जन्मका बीज रूप यही उत्तम है) वही रस पहिले अपने संप्रदान भूत देवताओं को संतुष्ट करिके उनकी संतुष्टि द्वारा यजमान को भी वांछितफल से संयुक्त करिके फिर महावायु से खींचा हुआ सोमंप्रति चंद्रमाके मण्डल को पहुँचता है (वहां उस चंद्रमाके किरणों से टपकेहुये अमृतसे संमिश्रित होके अतिशय गुणवान् शक्तिमान् होजाता है) ततः तिस चन्द्रमण्डल से फिर सूर्यकी रश्मि किरणों से खींचा हुआ सौरधाम अर्थात् सूर्यके स्थान मण्डलको लेलिया जाताहै•वह मंडल सौरधाम ऐसाहै कि जहां ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद तीनोंका आश्रमहै (अर्थात् तीनों वेदमय स्वरूपही उस मंडलका होताहै इसका वचन अधिकोक्ति मे देखो) फिर यह सूर्य भी उसी अमृत रूपी उत्तम रस को अपने मंडल से सृजता है (अर्थात् वर्षारूप बनाकर सारे जगत् में बरसाताहै इसी हेतुसे जलका नाम अमृत भी कहाताहै) जोकि वही उत्तम जल सर्वभूतों (सभी प्राणियों) का जन्मरूपी निमित्त है क्योंकि जलही. से सब सृष्टि होतीहै सब सृष्टि में दोही भांति के प्राणी होते हैं इसीलिये अशनात्म अनशनात्म ये दो विशेषण सर्व भूतोंको दियेगये इनके अर्थ अधिकोक्ति में देखो ॥

१२१॥ १२२॥ १२३॥ उसी (जलसे उत्पन्न हुये) अन्न से (कि जो सब तरह के अन्नादिक पदार्थही प्रजाकी उत्पत्ति पालन करनेमें कारण हैं तिनसे) फिर यज्ञहुये॰ फिर भी (पूर्वोक्त रीतिके द्वारा) उन्हीं यज्ञों से वर्षा होकर अन्न पैदाहुये फिर उन्हीं से क्रतुयज्ञ होने लगे॰एवं इसी प्रकार से यह समस्त संसार एक चक्र वड़े चाक के अनुरूप खूब घूमता रहिता है कि इसका परिवर्त्तन वेग (घूमना चक्कर खाना) कभी थमता नहीं (अर्थात् कभी अगिला भाग पीछे कभी पिछला भाग सन्मुख आजाता रहिता) इसी कारण यह संसार अपने उत्पत्ति और विनाश इन दोनों से विहीन ठहिरता है क्योंकि परमात्मा का स्वरूपही विराट रूपसे संसार ठहिरा तो फिर उस अविनाशी के रूपका विनाश नहीं होसकता न कभी उसकी उत्पत्ति होनी कही जासकती क्योंकि सदा सर्वदा से यह इसी प्रकार वर्त्तमान चला आता है फिर उत्पत्ति किसकी कहीजाय॥ १२१॥ १२२॥ १२३॥ १२४॥

१२४ अधिकोक्तिः—अपने भ्रमरूपी संदेहमय प्रश्नोंको याद करो कि जगत में आत्मा कैसे उत्पन्न होताहै-सो सब समुझाया गया कि इस अनंतरोक्त क्रमसे आत्मा आपही जगत् रूपहै और इसी क्रमसे आत्मा के सकाशसे संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति होतीहै और इसी जगत में वह आत्मा (सरसठि ६७ श्लोकसे चर्चा कियेहुये चिदंश रूपोंसे) निज कर्मानुरूप शरीरोंका परिग्रह करता है॥ संसार यद्यपि उत्पत्ति और विनाशसे विहीन है तथापि इसके प्रलय और उद्भव जो प्रसिद्ध किये गये सो केवल सूर्यके उदयास्त सम कल्पित किये कहाते हैं—अर्थात् जैसे सूर्य कभी न अस्त होताहै न उदय होताहै सदा सर्वदा प्रकाशमान रहिताहै परंतु जिस समय जिनदेशों में पर्वतकी आड़ होजानेसे देखि नहीं परता तब उतने समय तक राति कहिके सूर्य का अस्त हुआ मानि लेते हैं इसी प्रकार जिस समय जिन देशों के सन्मुख आजाताहै तहां उतने समयतक दिनकहिकर सूर्यका उदयहुआ मानिलेतेहैं(क्योंकि जो ऐसी कल्पना न करीजाय तो वार्त्तालाप में दिनरातिके व्यवहार कैसेचलें तिससे नामसाधही के निमित्तसे उदय अस्त कल्पितमानेगये) तैसेही संसार जब ईश्वर की शक्तिरूपी मायाके आड़में होजाता तब उसका प्रलय कहाने लगताहै॰जब उसमाया की आडसे निरालाहोता तब उत्पन्नहुआ कहाने लगताहै किन्तु यथार्थसे न उसकी उत्पत्तिहै न प्रलय॰तिससे भ्रमरूपी मोहको त्यागो॥ ०॥ एकसौ तेईसश्लोकमें सर्व भूतों के दोभेद प्रकट करनेके निमित्तसे अशनात्म अनशनात्म ये दो विशेषण दिये गयेहैं तहां अशनसंज्ञा खानेकी और आत्मसंज्ञा रूपकी ये दोनों मिलिके यह अर्थ

सिद्धहोताहै कि खानेवालेरूप जो जो चैतन्य प्राणीमात्रहैं कि वे कुछ न कुछखानेसे जीसकैं सो अशनात्म समझने•फिर इसीमें निषेध करनेवाला अनशब्द जोडनेसे अनशनात्महुये कि जो जो प्राणी खानेमें समर्थ नहीं और खाने विनाही जीसकैं जैसे वृक्ष पत्थरआदि नानाभाँतिके जड़जीवहैं सो सब दूसरेभेदमें समझने सबसंसार भरमें सृष्टिके दोहीभेदहैं (अर्थात् स्थावर जंगम या जड़चैतन्य कहातेहैं) दूसराअर्थ उन्हीं का इसरीतिसे भी होताहै कि अशन भोजन है आत्मारूप जिनका सो अशनात्म समझने(अर्थात् आपही भोजनरूपहैं जो किसी प्राणीके खानेयोग्य ठहिरैं चाहैं अन्न या औषधी या घास या रस फल फूल आदिहों या छोटे मोटे जीवहों सभी समझने जो किसीके अशन भोजनमें लगिसकैं सो एकभेद ठहिरा•दूसरे अनशनात्म जो किसी प्राणीके भोजन योग्य न ठहिरैं) अर्थात् जिनचीजोंको कोई भी न खासके सो अनशनात्म समझे) इस प्रकार से भी सब संसार भर में दोही भेद ठहिरे—ऐसेही जड़ और चैतन्य को चर अचर कहिने से दो भेद होते हैं और इनमें भी दो भाँति से अर्थ सिद्ध होताहै कि चर जीव तौ वे हैं जो चलिफिर सकैं या चरि सकैं किंतु खाने पीने में समर्थहैं। जैसे मनुष्य पशु पक्षी कीरे आदि जिनके इंद्रियाँ होती हैं—इसी चरके साथ निषेधका अकार जोड़नेसे अचर नाम ठहिरा और चरकी अपेक्षा विपरीत अर्थ देने लगा कि न चलि फिर सकैं न खाय सकैं किन्तु खाने पीनेमें असमर्थ हों और खाने विनाही जीसकैं जैसे पत्थर धातु वृक्षादिक नाना भाँतिके जड़ पदार्थहैं जिनके इंद्रियाँ नहीं होतीं सो सब अचर सृष्टि मे समझने=तथाच वैद्यक शास्त्रं=सेंद्रियंचेतनं द्रव्यंनिरिन्द्रियमचेतनं=अर्थात्—संसारभर में सब द्रव्योंके दोही भेदहैं कि जो जो द्रव्य इंद्रियों सहित हैं। सोसब चेतन समझना जोजो निरिंद्रिय अर्थात् विना इंद्रियोंकेहैं। सो सब अचेतन द्रव्य समझना—इस वचन में द्रव्य शब्द से मनुष्यादि सब जीवोंका बोधकरायागयाहै तैसा पूर्वोक्त अन्यवचनोंमें जीवशब्दसेजड़द्रव्योंकाभी बोधहोताहै सिद्धांत में तात्पर्य सबका एकहै ॥ ० ॥ ऊपर एकसौ बाइसश्लोक में सूर्यमण्डलको तीनों वेदका आधार कहागयाथा उसके मध्ये यह श्रुति प्रमाणहै कि (सैषात्रय्येव विद्या तपतीत्यभेदाभिधानं) अर्थात् सूर्य के मंडल में तेज प्रकाश रूप से ऋक् यजुः साम तीनों वेद की त्रयीविद्या जो है सो आपही साक्षात्कार तपिरही है तिससे सूर्य और वेदत्रयी में परस्पर कुछ भेद नहीं ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

कदाचित् श्रोता यह संदेह करैं कि जब आत्माका संसरण (अर्थात् पूर्वकर्मों के अनुसार संसार में देहों का स्वीकार करना उक्तोक्त प्रकारों से अनाद्यन्त ठहिरा कि

इसका आदि अंत नहीं यह सदासे ऐसा चला आताहै—तो फिर निर्मुक्ति कहांसे हो-सकती है क्योंकि प्रथमतो इस संसार के जंजालसे उसीकी निवृत्ति कभी नहींहै फिर औरकोई मुक्तिकाभरोसा उससे क्याकरै—इसके समाधान मध्येनीचेका वचनदेखो॥

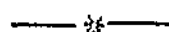
(समवायीपुरुषः)

अनादिरात्मासंभूतिर्विद्यतेनांतरात्मनः। समवायींतुपुरुषोमोहेच्छाद्वेषकर्मजः १२५

अर्थः—आत्मा अनादिहै अंतरात्मा की संभूति नहीं विद्यमान होतीहै—मोहइच्छा द्वेष कर्मों से उत्पन्न समवाय वाला पुरुष होताहै=अर्थात्—यह बात यद्यपि सत्य है कि आत्मा के अनादि होनेसे अंतरात्मा की संभूति नाम (जन्म लेनेसे) उत्पत्तिउस आत्मा अनादि को नहीं व्यापती है (यही उसकी समर्थकी विचित्रताहै कि मिला-रहै अरु नामिलै तासेकहा बसाय) यहाँपर (आत्मापरब्रह्म को समझना अंतरात्मा उस चिदंश को समझना जो संसारी देहों के भीतर आके प्रविष्ट होताहै) और (सं-भूति केवल देहों के उत्पन्न होने को समझना तथा और सब संसार की वस्तु जो जो होती हैं तिनके भी उत्पन्न होजाने मात्र को संभूति समझना अर्थात् यह संभूति उस आत्मा के अन्तरात्मा को भी नहीं व्यापती है अनादि होने के हेतु से) यद्यपि नहीं व्यापती है तथापि पुरुष देहमात्र से समवायी होता है किन्तु (समवाय भी दो भाँतिसे कहाता है एक तो सूधीरीति से यह समझ लेना कि अनेक वस्तुओं का संग्रह इकट्ठा होना समवाय कहाता है जैसे देहरूपी कलेवरमें ८० अस्सी श्लोक से लेकर १०७ एकसौ सात श्लोकतक जो कुछ दर्शाया सो सबका जमाहोना समवाय संबंध समझना) दूसरा नैयायिक मतसे यह ढंग है कि (नित्यद्रव्यादिषु जात्यादीनां संबंधभेदः समवायः अर्थात् जो वस्तु अनित्य नहीं नित्यहै जैसे पृथ्वीआदि पाँचोतत्त्व नित्यहैं यथार्थसे कलेवरमें भी येही पाँचतत्त्व हैं छठा आत्मा आप है ७२ बहत्तरि श्लोकमें देखो सो उन्हीं नित्यद्रव्यों में, नामजाति रूपों से अनेक संबंध भेद करदेना समवाय कहाताहै जैसा उसीजगे ७३। ७४ तिहत्तरि चौहत्तरि श्लोकों में देखो कि छठे आत्माने उन्हीं पाँच तत्त्वोंसे कितने संबंध भेद करदिये जिनके अनेक नाम भेद कहिने परे) दो भाँतिसे समवाय होता दर्शाया सो दोनोंका एक ही तात्पर्य्य केवल समझने मात्रके निमित्तसे दो भेद कहेगये अब ऊपर ध्यान करो कि पुरुष देहमात्र से समवायी कहा तिसका यही तात्पर्य्यहै कि वह चिदंशरूपी पुरुष इसदेहमें समवाय इकट्ठा करनेवाला ठहिरता है अर्थात् उसको अपने जनमने या मरने आदि से कुछ

वास्ता नहींहै—इसके सिवायवहसमवाय जो उत्पन्नहुआ सो कैसा और कितना और कहाँसे आया इस प्रश्नके उत्तरमें यह चौथा पादहै कि (मोहेच्छाद्वेषकर्मजः) अर्थात मोह इच्छा द्वेष इनसे जो उत्पन्नहुये पूर्वकर्म्म हैं तिन कर्मोंके द्वारा यहां समवायकी तौलनाप करी जासक्ती है अर्थात समवाय कुछ निसर्ग स्वभावही से नहीं उत्पन्न हो जाता—और पुरुष जो समवाय इकट्ठा करनेवाला कहागया सो उसी समवाय रूपी भोगके स्थान कलेवर में बसिकर सुख दुःख रूपी भोगों को भोगता है कि जो कुछ पहिले संस्कार के प्रभावसे इकट्ठे हुयेहों—इसप्रकार के संबंध से कलेवरका संबंधी वास्तेदार वह आपभी ठहिरताहै कि जैसे नदीके समीप मट्टीका मटीला घर आपही कोई बनावै और लकडीफूसमट्टी आदिके समवायसे सम्हारिके, आपही उसमें निवास करै जब नदीकी रौ चढिआने से उसको बहिजाता दीखै तभी आप निकसि के साफ चलाजाकर कहीं अन्यत्र बसै तौ उस घरके विनाश होनेसे भी यद्यपि उसका विनाश तौ न हुआ तथापि जबतक उस घरके बिगड़तेहुये समयपर जितने काल तक निवास रहाहोगा तबतक पानी भरिआने या मट्टी फूस गिरपरने आदिकी विपत्ति कुछउसको भी भोगनी परी तैसे यहाँ देहरूपी कलेवर में कुछ रोग पीड़ा खड़ीहोनेसे उसी वास्तेदार समवायी पुरुष जीवात्मा को दुख भोगना परताहै कि जबतक उसी बिगते हुये देह में निवास करना परै॥ तिससे अब अपने संदेहको निवारण करो क्योंकि ये समवायरूपी उपभोग आदि कार्य्यरूप होनेसे विनाशमानहै और आत्मा सदाही अनादि होनेसे निर्मुक्त है वह किसीके बन्धन में नहीं है॥ १२५॥

११९ श्लोकसे यहाँतक यह बात जो पहिले वर्णन करचुके कि जगत की उत्पत्ति परमात्मासे होती है तिसका डौल अगिले परिच्छेद में ब्यौरेवार दर्शावैंगे कि इसप्रकार से होतीहै॥



अथ परमात्मनः सकाशाज्जगदुत्पत्तेः पूर्वोक्तायाःप्रपंच विस्तारोनामचतुर्दशःपरिच्छेदः॥

इसपरिच्छेद में जगत की उत्पत्ति जो परब्रह्म के सकाशसे होती पहिले कहिचुके तिसका प्रपंचरूपी विस्तार ब्यौरेवार कहा जायगा कि इस रीतिसे होतीहै॥

(जगतःप्रारम्भेचतुर्वर्णोत्पत्तिः)

सहस्रात्मामयायोवआदिदेवउदाहृतः। मुखबाहूरुपज्जाःस्युस्तस्यवर्णायथाक्रमम् १२६

अर्थः—(वःयुष्मान्प्रति मैंने जो सहस्रात्मा आदिदेव तुमसे उदाहृत किया तिसके मुखबाहु जंघा पादसे यथाक्रम वर्णहोतेहैं=अर्थात्—ब्राह्मण आदि चारोवर्ण इसक्रम से उत्पन्न होते हैं कि मुखसे ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्री जंघाओं से वैश्य चरणोंसे शूद्र ये उसीसे कि जो पहिले मैंने तुम सब ऋषीश्वरों को सहस्रात्मा आदिदेव समुझाया था (सहस्रात्मा कहिने का यह तात्पर्य है कि सब जीवधारी उसीका रूपहैं तिससे बहुरूप है अर्थात् असंख्य सहस्रों रूप वाला सहस्रात्मा के नामसे कहा) आदिदेव इससे कहा कि जगत् का सबसे पहिला हेतु रूप वही आप है ॥ १२६ ॥

(समस्तजगदुत्पत्तिप्रपंचः)

पृथिवीपादतस्तस्यशिरसोद्यौरजायत। नस्तःप्राणादिशःश्रोत्रात्स्पर्शाद्वायुर्मुखाच्छिखी १२७
मनसश्चंद्रमाजातश्चक्षुपश्चदिवाकरः। जघनादंतरिक्षंचजगच्चसचराचरम् १२८

अर्थः—उसके पैरसे पृथिवी उत्पन्न•शिरसे स्वर्ग•नाकसे प्राण•कान से दिशायें• स्पर्शसे वायु•मुखसे अग्नि १२७॥ मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ•नेत्रसे सूर्य•जाँघ से अंतरिक्ष और चराचर सहित जगत् भी=अर्थात्—उसी आदि देव के इन अंगों से ये वस्तु भी उत्पन्न हुईहैं कि पैरोंकी पगतलीसे धरती जो मनुष्यों का आधारभूत लोक है—और मस्तकसे स्वर्गलोक जो देवतों का देशहै और नाक से सामान्य प्राणों की उत्पत्ति हुई कि जो सबजीवोंमें वही प्राण होतेहैं उनके बिना कोई जीव न जीसके—और उसीके कान छिद्रसे दशों दिशा भी उत्पन्न हुईं कि जिनके बीच बड़े तीनों भुवन और चतुर्दश लोकोंकी स्थिति रही आतीहै (कदाचित् ये दिशायें न होतीं तौ बड़े बड़े लोकों का स्थान किस ठिकाने पर होसकता था)—स्पर्श नाम है छुईजाने वा छुइ सकने योग्य का इसीसे त्वचा भी स्पर्श नाम एक इन्द्री कही जातीहै कि उसमें वायु का स्पर्श होनेसे वायुका स्वरूप जाना जाताहै सो वायु उसी आदिदेव के स्पर्शसे उत्पन्न हुआहै कि जगत् के कोई काम उसके बिना न चल सकते-और उसी आदिदेव के मुखसे अग्निकी उत्पत्ति हुई कि जिसमें होम करनेसे उसी आदिदेव के मुखमें पहुँचिजाता है=उसी आदिदेव के मनमें से चंद्रमा की उत्पत्ति हुई कितु चंद्रमा की अमृतमय शीतलता जो प्रकाशमान है वही उसके मन का स्वरूप है—और उसी आदिदेव के नेत्र की ज्योति अर्थात् कोई एक किरण की आभामात्र से सूर्य

रंडलकी उत्पत्ति हुई कि इसके विना जगत में उजीता न होसकता—और उसी आदि देवकी जांघोंके बीच से अंतरिक्ष अर्थात धरती और सूर्यमंडल के बीचमें जो शून्याकार आकाश है सो उत्पन्न हुआ कि उसमें मेघोंकी चलाफिरी और वायुका स्थान तथा पक्षी आदि के उड़नेको अवकाश रहा आताहै-और दूसरी निचली जांघों से चर अचर जीवों सहित जगत का आकार भी उत्पन्न हुआ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

॥ इतना सुनिके श्रोतालोग ऋषीश्वर फिर छेड़छाड़ करने लगे कि इसमें बड़ा संदेह खड़ा होताहै सो नीचे कहेंगे ॥

(पुनरपिसंदिग्धश्रोतृप्रश्नः)

यद्येवंसकथंब्रह्मन्पापयोनिषुजायते। ईश्वर सकथंभावैरनिष्टै संप्रयुज्यते १२९
करणेनान्वितस्यापिपूर्वज्ञानंकथंचन। वेत्तिसर्वगताकस्मात्सर्वगोपिनवेदनाम् १३०

अर्थः—ए ब्रह्मन् जो ऐसा है सो कैसे पाप योनियोंमें जन्मता है जो ईश्वर है सो कैसे अनिष्ट भावों से संप्रयुक्त होताहै=अर्थात्—हे ब्रह्मन योगीश्वर हम सबों को यह संदेह आता है-जब कि वह आत्मा एकहै अनादि है सब जीवों की आदि वही आप है और वही सब जीवोंका रूप धरा करता है तो फिर यह आत्मा मृग पक्षी आदि पापरूपी अनेक योनियों में उत्पन्न होताहै सो कैसे संगत माना जाय-और भी यह संदेह कि जैसा एकसौ पचीसवां मूल श्लोक है उसमें (मोहेच्छाद्वेषकर्मजः) इस चौथे पादका अर्थ देखो कि मोह राग द्वेष आदि दोषोंके दुष्टत्वसे वैसे जुदे जन्महोते कहेगये सो भी हम नहीं मान सकते क्योंकि वह ईश्वर अर्थात समर्थ और स्वतंत्रहै फिर कैसे मोह राग आदि भावोंसे संयुक्त होता किंतु स्वतंत्र होतेहुये क्योंकर उनके वशमें फँसिजाता है ॥ और भी यह दूषण है कि १२९ ॥ करण से अन्वित को भी पूर्वज्ञान कैसे नहीं और सर्वगत होता हुआ भी सब में पहुँची वेदनाको काहे से नहीं जानता है=अर्थात्—मन आदि उत्तम इंद्रियां जो ज्ञानका उपाय रूपी करण अर्थात् समुझ का शस्त्र होती हैं तिनसे संयुक्त होकर भी उस आत्मा को पूर्व जन्मों का बोध नहीं आसक्ता कि मैं कहांथा और कौनथा और कैसा पहिले हुआथा या इत्यादि—तैसेही वह सर्वज्ञ कहाताहै कि सबकुछ जाननेवाला और सभी प्राणीमात्र के घट मे उपस्थित है तौभी सर्वज्ञ होतेहुये सबमें व्याप्त होते हुये जो सबके भीतर अनेक पीड़ा रूपी वेदना है तिसको कैसे या किस हेतुसे नहीं जानता है सो उत्तर देनाचाहिये ॥ १३० ॥

(उत्तर स्वरूपं)

अंत्यपक्षिस्थावरतांमनोवाक्कायकर्मजैः। दोषैःप्रयातिजीवोऽयंभवंयोनिशतेषुच १३१
अनंताश्चयथाभावाःशरीरेषुशरीरिणाम्। रूपाण्यपितथैवेहसर्वयोनिषुदेहिनाम् १३२

अर्थः–मन वचन कर्म इनसे उपजे दोषों से यह जीवही सैकड़ों योनिमें भवजन्म से अंत्ययोनि पक्षीयोनि स्थावरत्व को जाता है=अर्थात्–तुम्हारे संदेह के अनुसार यद्यपि यह सत्यहै कि वह आत्मा ईश्वर होने से अपने स्वरूपही से सत्यरूपी लक्षण और ज्ञानरूपी लक्षण और आनन्दरूपी लक्षणसे संपन्नहै तौभी यहसब शुद्धलक्षण उसी एक परब्रह्म के स्वरूप में समझना (जिसका सरसदि ६७ के श्लोक से चर्चा आचुका है कि उस में से फुलिंगे उड़ते हैं सो सब जीवरूप कहे जातेहैं) सो यहजीव जो उसीका किंचित् मैलरूपी अंश उड़िकर जन्म लेताहै उसीका संबंध यहाँ समझि लेना कि जीवही शक्तिहीन होकर उसको अविद्या माया के आवेश में वशहोकर मोहराग आदि भावों से लिप्त होताहुआ उन कर्मों का आचरण करने लगता है कि जिनके प्रभाव से अवश्यही नाना भाँति नीच योनियों में जन्म लेना परताहै (केवल मानस कर्मोंका आचरण उस दशा में भी समझना कि जबतक कोई एकभी जन्म उस जीवने न पायाहो किंतु उसी मानस कर्मके प्रभाव से सबसे पहिला जन्म लेना परैगा चाहें किसी योनि में हो तहाँ फिर कायिक और वाचिक भी भले बुरे जैसे कर्मोंका आचरण होने लगा होगा उन्हीं के अनुरूप उसको ऊँच नीच योनिमेंजाना परता है) इसीलिये मूल श्लोक में ये कर्म तीनों भाँति के दर्शाये गये कि एक मन से जैसा भला बुरा विचार मात्र कियाहो १ दूसरे वाणी से भला बुरा जो कुछ उच्चारण कियाहो २ तीसरे काया से कि जैसा किसीके बुरी तरह धक्का मारा या भली तरह स्नेह प्यार किया हो ३ इत्यादि–इन्हीं कर्मों से उत्पन्न हुये जो कुछ दोषइसी जीवके ठहिरतेहैं तिन दोषों के प्रभावसे यह जीवही सैकरों हज़ारों योनि में भवजन्म को पहुँचता है तहां यह भेदभी अवश्य आनिपरता है कि बुरे मानस कर्मों के दोषसे अंत्ययोनि अर्थात् चंडाल आदि जातिमें जाना परताहै और वाणीसे उत्पन्न बुरेकर्मों के दोष से काक उलूक आदि पक्षियों की योनिमें या पशुओं की योनिमें भी जन्म लेना परता है और काया से उत्पन्न खोटे कर्मों के दोषसे स्थावर वृक्षादिक योनिमें उत्पन्न होना परताहै (अरसदि की अधिकोक्तिमें मनुका वचन है सो देखो) ॥१३१॥ और शरीरियोंके शरीरोंमें जैसे अनंत भाव होतेहैं तथैव यहाँ सब योनियों में देहियों

के रूपभी=अर्थात्–शरीरी उन जीवों को समझना जो परमात्मा के अंगसे छोटे छोटे अंश रूपी फुलिंगे उड़िकर असंख्य जीव कहाने लगते हैं यद्यपि उनको संसारी देह कभी एक वार भी न मिला हो तौभी उनका बोध यहां शरीरी के नामसे दर्शाया है कि–जैसे उन शरीरी जीवों के शरीरों में तरह तरह के अनंत भाव (अनेक भावनायें जो सतोगुण रजोगुण तमोगुण की अधिकता या न्यूनता के भेद से) उपजते रहते हैं तैसेही इह संसार में आकर भी सब योनियोंमें देह धरनेवालों के रूप भेदभी अनंत हो जाते हैं (अर्थात् एकही योनिमें अनेक रूपभेद जैसे कुबडा बौना जन्मांध एकाक्ष आदि समझने) क्योंकि जब कारण में अनंत भावों के भेद होचुके तो उन्हीं के कार्य रूप देहों में भी अनेक रूप भेद होने न्यायात्मक हैं॥ १३२॥

१३१ अधिकोक्तिः–जीवही शक्तिहीन होकर अविद्या मायाके वशमें आजाता है अर्थात् साक्षात् ब्रह्म नहीं मायाके वश में आता यह ऊपर लिखचुके तहांयह शंका खड़ी होती है कि जीव उसी ब्रह्म का एक अंशहै जैसा ६७ सरसठ श्लोकसे कहिचुके कि उसी ब्रह्म के अंगमें से फुलिंगे उड़िकर जीव कहाने लगते हैं तो फिर ब्रह्मका अंश होते हुये यह कैसे शक्तिहीन होजाता जो माया के वशमें होजाना परता है–समाधान इसका उसी सरसठि श्लोक में मौजूदहै सो देखो कि तपाये हुये लोहेके गोलेका दृष्टांत इसीनिमित्त दियागयाथा जैसे अग्निके छोटे छोटे अंशभट्टी में धौंकनी धौंकते समय या लोहेको लाल होजाने बाद घन मारते समय जो अनेकचिटकारे उड़िकर ऊपरछप्पर तक पहुँचते या घन मारनेसे उछलिके दिशोंमें जापरते हैं यद्यपि साक्षात्कार उसी अग्निका अंशहैं कि जो छप्पर आदिको भस्मकरसकता है तथापि जुदे होजानेसे सब शक्तिहीन होजातेहैं कि अपने अग्निके चमत्कारको भी भूल जातेकिंतु छप्परआदि उनसे नहींजलता क्योंकि उसीहवाके वशमें,आकरनिर्बल होजातेहैं जिस हवाके प्रभाव से अग्नि की वृद्धि होसकती और तेजोबल बढ़ता है--जैसे यहां अग्नि के फुलिंगे जुदे होते बार वायु के आवेश में आकर अपने मुख्य स्वरूपही को भूलि जाते कि हम किसमें से उत्पन्न हुये और क्या हमारी शक्ति और क्या हमारा काम था कुछ नहीं जानते–तैसेही जीव उसी ब्रह्मके अंगमें से फुलिंगा रूप जुदा होते बार मायाके आवेश में फँसिकर उसी माया के वशमें आकर शक्ति हीन होजाता तभी अपने पूर्व जन्म आदि मुख्य स्वरूप को भी भूलि जाता है कि मैं किसमें से उत्पन्न हुआ और क्या मेरी शक्ति थी और यह वही मायाहै कि जो ब्रह्मकी इच्छा अनुसार उसकी आज्ञा पालन करने वाली प्रसिद्ध है तथापि निर्बलता सबलता का भेद यह हुर

सेही उत्पन्न हुआ और इसमें भी इच्छा उसी ब्रह्म की बलवानहै=कि=जिन फुलिंगे रूपी जीवोंको प्रथम कोई संसारी देह जब तक नहीं मिला केवल उसी सूक्ष्म रूप शरीर में रजोगुण तमोगुण सतोगुण इनके प्रभाव से जो जो मानसिक भाव उत्पन्नहोते रहे सो भी अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे केवल बीजमात्रही अंकुर उठते हैं कि जिनके प्रभाव से प्रथम कोई न कोई सी एक योनिमें देह उनको मिलजाती है फिर तो स्थूल देह पाकर उन्हीं पहिले बीजोंकी वृद्धि भी इसतरह होती रहती है कि जिस योनिमें पहिला देह पाया तहां थोड़े बहुत पाप या पुण्य रूपी और भी कुछ कर्म किये तिनसे फिर और कोई योनि पाई तहां फिर और भाँति कर्मोंकी वृद्धि हुई इसी प्रकार फिर फिर आवागमन की शृंखला बँधि जाती है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

कदाचित् यह शंका आरोपित करी जाय कि जब कर्महीं को प्रधानता ठहिरी कि वह सूक्ष्मरूपी जीवहू कर्मसे खाली नहीं तो फिर कर्मका फल भी तत्काल मिलना चाहिये कि जब कर्म किया गयाहो अर्थात् देहांतर वा जन्मांतरका चर्चा आप क्यों करतेहैं—सो इसका नियम नीचे वर्णन करते हैं ॥

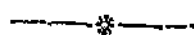
(कर्मविपाकनियमाः)

विपाकःकर्मणांप्रेत्यकेषांचिदिहजायते । इहवाऽमुत्रवेकेषांभावस्तत्रप्रयोजकम् १३३

अर्थः—किन्हींएककर्म्मोंका विपाकप्रेत्य होताहै•किन्हींकायहाँ•औरकिन्हीं का इहां या वहां भी•तिस में प्रयोजक भाव है=अर्थात्—कुछ तो कर्म्म ऐसे हैं कि जिनका विपाक फल प्रेत्य ही (अर्थात् दूसरे जन्मों के देह में जाकर) मिलता है (इसका दृष्टांत जैसे ज्योतिष्टोम आदि बहुधा यज्ञों का फल इस देह से नहीं किन्तु दूसरे देहमें जाकर होता यही नियम है) और किन्हीं बिरले कर्मोंका फल इहांइसी देहसे मिल जाताहै (दृष्टांत जैसे कारीरी नाम एक याग होता है कि वर्षा होना आदि जिस कामनासे ठीक ठीक कियाजाय सो फल वर्षा आदि इसी देहसे तत्काल प्राप्त होता ऐसे और भी अनेक कर्म्म होते उनका यही नियम है कि जैसे दशरथने पुत्र कामेष्टि यज्ञ किया था चारपुत्र इसी देहसे फल मिले) और बहुधा कर्म ऐसे भी होते हैं कि जिनका विपाक फलचाहें इसी देहमें होजाय यद्वा इहाँ किसी हेतु से न मिले तो अमुत्र वहाँ दूसरे देह से ही जाकर मिलताहै अर्थात् इनमें कोई एक नियम नहीं किंतु जैसा कर्मोंका प्रभाव होगा उसके अनुसार चाहें यहां फल मिले या वहां जाकर मिले॥ तिससे यहतर्कना अनुचितहै कि कर्मपूराहोते सारतत्कालही

फल क्यों नहींहोता ॥ तहाँ फल मिलनेवालेदेहमेंशुभ अशुभ किंतु अच्छा या बुराफल पैदाकरनेमध्ये भावही मुख्य प्रयोजकहोता है अर्थात् सतोगुण तमोगुण रजोगुणरूपी जैसा भावकर्मों में उत्पन्न होचुकाहोगा वही भाव अच्छे बुरे फलों को विभाग पूर्व नियत करेगा क्योंकि फलों का विभाग विस्तार उसीभावके अधीन सदा रहिता है इसमें संदेह नहीं॥ १३३॥

एकसौ इकत्तिस श्लोक से यहाँ तक तीन श्लोकों में जिन बातों की संक्षेपसम-स्याकरीगई उन्हींकाविस्तार ब्योरेवार सर्वथा अगिले परिच्छेदसेदर्शावेंगे॥



अथ पूर्वोक्त कर्मबीजानां विपाक प्रपंच विवेकोनाम पंचदशःपरिच्छेदः १५

इस परिच्छेद में उन कर्मों का विपाक ब्योरेवार कहाजायगा कि जिन बीजों का प्रसंग ऊपर आचुका है॥

(कर्मविपाकानांप्रपंचभेदाः)

परद्रव्याण्यभिध्यायंस्तथानिष्टानिचिंतयन्। वितथाभिनिवेशीचजायतेन्त्यासुयोनिषु १३४
पुरुषोऽनृतवादीचपिशुनःपुरुषस्तथा । अनिबद्धप्रलापीचमृगपक्षिषुजायते १३५॥
अदत्ताऽऽदाननिरतःपरदारोपसेवकः । हिंसकश्चाविधानेनस्थावरेष्वभिजायते १३६ ॥

अर्थः—पराये द्रव्यों को सब तरह ध्यान करते हुये वैसे अशुभों को विचारते हुये तैसा वितथ अभिनिवेशी भी चंडाल योनियोंमे उत्पन्न होताहै=अर्थात्—ये मानसकर्म होतेहैं जो मनसे किये जायँ किंतु सर्वथा यही ध्यान करता रहै कि पराये धनों को किस प्रकार हरें इसीलिये वैसेही (अनिष्ट-अप्रिय) जो दूसरों को अशुभ होने से अप्रियहैं तिन प्रकारों को शोचते हुये (वितथ-विपरीत) असत् कुविचारों में (अभिनिवेशी) अर्थात् उनमें अभ्यास करनेवाला इन्हीं मानस कर्मोंके विपाकसे चंडाल आदि नीची योनियों मे जन्म पाता है॥ १३४॥ अनृतवादी और पिशुन पुरुष तथा अनिबद्ध वचनोंका प्रलापी पुरुष मृग पक्षियों मे जन्मता है=अर्थात्—ये वाचा कर्म होते हैं जो वाणीसे किये जायँ किंतु जो कोई पुरुष (अनृतवादी) असत्य बोलने में

तत्परहो और (पिशुन) जो पराये कानमें धीमे बोलिके पराई चुगली चाई की बातें बहुधा किया करें जो बातें सुनिके किसीको उद्वेग या क्षोभ होता हो और (अनिबद्ध प्रलापी) वह पुरुष जो विना ठीक जोड़के असंगत बातें बनाकर पुकारता फिरै कि जिन बातोंका संसर्ग भी सम्भव नहीं या ऐसा पुरुष पशु आदि मृगजीवोंकी योनिमें या किसी प्रकारकी पक्षी योनिमें जाकर जन्म लेता है-वहां भी ये भेद उसमें जुदे हैं कि जिसने उक्त बातें जानि बूझिके बनाई और बोली होंगी सो अति नीच पशु पक्षी की योनि पावें या जिसने विना समुझे कुछ धोखेसे उस भाँतिकी बात बोली होंगी सो कुछ अच्छे पशु पक्षीकी योनिपावें इत्यादि नानाभाँतिसे असंख्य भेद होतेहैं ॥ १३५॥
विनादिया लेनेमें निरत और पराईदाराका उपसेवक और अविधान से हिंसक सर्वथा स्थावरोंमें जन्मता है=अर्थात्-ये काया कर्म होतेहैं जो हाथआदि कायासे कियेजायँ किंतु जो विनादिये बिराना धन हरनेमेंतत्परहो और बिरानीस्त्रियोंके भोगने में लगा रहिता हो और विना विधान के हिंसा करता हो अर्थात् शास्त्रोक्त बलिदान या शास्त्रोक्त प्राणदण्ड या शास्त्रोक्त धर्मयुद्ध इनसे उपरान्त जो जीवोंकी निरर्थक हिंसा यद्वा इन्हीं कामोंमें विधिको छोड़ि विना विधिके हिंसा करता हो सोभी वृक्षादि स्थावर सृष्टिका जन्म जाकर पाताहै उसमें भी असंख्य भेदहैं कि यहाँ जिसने जैसा बड़ा छोटा दोष उत्पादन किया होगा तैसे बड़े छोटे उत्तम मध्यम नीच स्थावरों में जन्म उसको मिलता है कि आँब या बबूर आदि वृक्षहो या लतावेलिहो या प्रतान छतरीला पेड़हो इत्यादि-क्योंकि विना दिये धन हरनेमें भी नाना भेद होते हैं कि जैसे कोमलता से फुसिलाकर हरा या कठोरतासे मारि पीटिकर छीना या चोरीसे हरा या धोखा देकर या सौंपा हुआ नहीं दिया इत्यादि सभी बातों में असंख्य भेद होते हैं ॥ १३६ ॥
१३४ अधिकोक्तिः-यद्यपि एकसौ इकत्तिस बत्तीस श्लोकों के अर्थ में लिख चुके और उन्हीं श्लोकों का विस्तार यहाँभी स्पष्ट किया गया-तौभी शंकायें चली आती हैं जब सबसे पहिले किसी कल्प की आदि में सूक्ष्म शरीर वाले जीवात्मा ने केवल मनही से मानस कर्मों के बीज मात्र पैदा किये (अर्थात् जो मनसे अच्छेसंकल्प किये होंगे तो उत्तम तीनि वर्णों में जन्म पाया होगा या मध्यम संकल्प से चौथे शूद्र वर्णों में या मनसे खोटे संकल्प किये होंगे तो चंडाल आदि नीचीजातों में जन्म पाया) तिससे सबसे प्रथम मनुष्ययोनि में अवतार पाना निश्चित भया तौभी कोई विरोध नहीं ठहिरा-क्योंकि मुख्य मानस बीजों के प्रभाव से मनुष्य होकर उसी पहिली देहमें अनृतवादी या पिशुन होनेकेद्वारा वाचाकर्मभी उत्पन्नहुये और परस्त्री

के उपभोग या बिना दिये धन हरनेकेद्वारा कायाकर्मभी उत्पन्नहुये तिनसेफिर पशु पक्षीकी योनि और स्थावर वृक्षादिकों की योनिमें भी जानेलगे तब क्रमसेऔर सृष्टि भी उत्पन्न हुई॰तो इसक्रमसे बडा विलम्ब बीताहोगा तब संसार पूरा बनाहोगा किंतु यहभी एकसदेहरूपीटूयरायायागया कि एकसाथही सबसृष्टिकी उत्पत्ति न होसकी होगी क्योंकि कर्म बीजों के आधीन होकर इसी क्रमसे वृद्धि हुई=समाधान॰सुनों सृष्टिके उत्पन्नहोने मध्ये कोईसा एकहीमार्ग ऐसा नहींहै कि जिसका भेद सुगमता से हर कोई पासके (नेतिनेति) ऐसा कहिकर वेदकी श्रुतियाँही अपनी अशक्ति दर्शाती हैं फिर औरोंकी क्या सत्ताहै जो ईश्वरके निःशेय मार्गों का भेद हासके—सब से पहिली सृष्टि की आदि मे विशेषकर कर्म बीजोंकी आवश्यकता ईश्वरको नहीं भी हातीहै जैसा मनुका अग्रोक्त बचन है=मनुराह=यंतुकर्मणियस्मिन्सनियुंक्तप्रथमं प्रभुः सतदेवस्वयंभेजेसृज्यमानःपुनःपुनः=अर्थात्—वह समर्थ प्रभुने सबसे पहिले कल्प में जिस जीवको जिस कामके धन्धे मे अपनी सामर्थ्य से लगादियाया वहीजीव फिर वारंवार कल्पोंकी रचना समय जब जब सृजाजाता है तब तब आपही उसी कर्मको भजने लगता है (जैसा इसवचनमें कर्म बीजोंका प्रयोजन कुछ आवश्यक नहींदहिरा तैसे और भी सृष्टिके अनेक मार्ग हैं) इसी मनुवचन के अनुकूल अरसठि का श्लोक और उसी की अधिकोक्ति मे जो बचनहै सोभी देखो कि केवल कर्म बीजोंका नियम उसमें नहीं है—और भी—एक सौ तरेसठि १६३ का श्लोक आगे देखना कि उसमें कर्म बीज से उपरान्त अन्य कारण भी दर्शाये जायेंगे तिससे ऐसी शंका न करनी चाहिये—और—यथार्थ में सबसे पहिला कल्प ही कोई नहीं है क्योंकि जो सब से पहिला कोई कल्प ठहिरै तो परमात्मा की आदि भी जानीजाय उसके आदि नहीं है वह अपनी प्रभुताकी सामर्थ्य सेही एक साथ सबकुछ उत्पन्न करसक्ताहै (इसके प्रमाण मध्ये एकसौछब्बीस आदि श्लोकोंको देखो कि सबकुछ एक साथही उत्पन्न किया) और भी बहत्तरि मूलश्लोक मे युगपत शब्द के अर्थों को विचारो कि उसने अपनी समर्थ सेही एकसाथ गर्भमें सब अंग और अनेक भाँतिकी सामग्री तथाइन्द्री आदि का समवाय इकट्ठाकिया और सदा करता रहिताहै कि जिसका आगापीछा कोई नहीं जानिसक्ताहै कबकिया कैसे किया॰और भी चौहत्तरि मूलश्लोकमे (तस्ये तदात्मजसर्व मनादेरादिमिच्छतः) इस अंश के अर्थ देखो कि इतना सर्व समवाय उसके पासही से उत्पन्नहुआ किसी मशाले की जरूरत उसको नहीं होती=यथार्थ से=यहां जो एकसौ चौंतास आदि श्लोकों में कर्मों का विपाक वर्णन कियागया

सोभी ऐसी दशापर आरूढ है कि जब निरंतर जीवोंका आवागमन जारी होरहाहो (जैसे गेहूं से खेत और खेत से गेहूं फिर गेहूं से खेत फिर खेतसे गेहूं) अब इसमें जो कोई तर्क उठाना चाहै कि पहिले गेहूंथा या खेत जो खेतथा।ओ तो विना बीज क्यों कर उगा जो गेहूं पहिले तृता।ओ तौ खेत विना बीज कहांसे पैदा हुआ—सो यहतर्क भी ऐसाहै कि सर्वशक्तिमान् ईश्वरके ईश्वरत्वकी गांडिमें चूना लगाने का मनोरथ ठहरता है—क्योंकि ऐसी शंकायें भी तभी तक उठि खडी होतीहैं कि जबतक ज्ञानी के ध्यानमें ईश्वर की सामर्थ्यका स्वरूप नहीं प्रकाश होता किंतु उसकी सामर्थ्यका पूरा रूप उदय होनेसे इसभांति की शंकायें भी अग्निके धूमकी तरह स्वतः उठि उठि कर उडी चली जातीं खड़ी होनेको अवकाश नहीं पाती है—ईश्वर अपनी प्रभुता से सब कुछ सबतरह कर दिखाताहै न आगे पीछेका कुछ नियमहै न एक साथका (एक सौ चौबीस मूल श्लोक वाला पिछला अङ्कादेखो) यह संसार भी अनादि अंत रूपी चक्रके समान भ्रमता कहिचुके तिसकी रचना में विलंब होनेका क्या अवसर है या पहिला पीछा ढूंढना क्या प्रयोजन है॥ १३४॥ १३५॥ १३६॥

जैसे ऊपर मानस वाचिक कायिक कर्मोंके प्रभावसे जन्मभेद होना कहा गया• तैसे सतोगुण रजोगुण तमोगुण इनके शुद्ध परिपाक से भी जन्मभेद होताहै सो नीचे समझाकर उन्हीं तीनों गुणके लक्षण भी दर्शावेंगे॥

(सत्वादिगुणपरिपाकःगुणानांचिह्नानिच)

आत्मज्ञःशौचवान्दान्तस्तपस्वीविजितेन्द्रियः।धर्मकृद्वेदविद्याविस्सात्विकोदेवयोनिताम्॥१३७॥
असत्कार्यरतोऽधीरआरंभीविषयीचयः। सराजसोमनुष्येषुमृतोजन्माधिगच्छति १३८॥
निद्रालुःक्रूरकृल्लुब्धोनास्तिकोयाचकस्तथा। प्रमादवान्भिन्नवृत्तोभवेत्तिर्यक्षुतामसः १३९॥

अर्थः—आत्माको जाननेवाला• शौचवाला• दांत• तपस्वी• विशेषजितेन्द्री•धर्म करनेवाला•वेदविद्या जाननेवाला•सात्विक जानों वह देवयोनिको जाताहै=अर्थात्—आत्मज्ञ वह कि जो आत्मा के स्वरूपको जानि पहिचानिके विद्या तथा धनके अभिमानसेभी रहितहोय—शौचवान् वह कि जो बाहरकी शौचक्रियासे शरीरको शुद्ध राखता हो और भीतर अंतःकरणभी कपटी न हो—दांत वह कि जिसने इन्द्रियोंको यथोचित शिक्षासे संपन्न कियाहो—तपस्वी जो कृच्छ्र आदि तपमें प्रवृत्त रहिता हो—विजितेन्द्री जिसने विशेषकर इंद्रियों को ऐसा जीति रक्खा हो जो अपने विषयों पर बहकने न पावैं—धर्मकृद् वह कि जो नित्यधर्म नैमित्तिक धर्म जातीधर्म इन सब

की साधना करताहो—वेद विद्याविद्र वह कि जो वेदोंके अर्थको जानताहो—इतने लक्षणोंसे पहिंचाना जाताहै कि यह सतोगुण वाला सात्विक पुरुषहै और ऐसा सतोगुणी देव योनिमें जाकर जन्मलेता है-वहां भी सामान्य वा उत्तम अति उत्तम आदि देवता योनि उसके अनुसार मिलतीहै कि जैसा थोड़ा बहुत या उत्तम आदि सतोगुण संचय हुआहो ॥ १३७ ॥ जो असत्कार्योंमें लीन•अधीर•आरंभी•और विषयीभी हो सो राजस जानों वह मराहुआ फिर मनुष्यों में जन्म को पहुंचता है=अर्थात्—गाने वजाने नाचने आदि बहुधा असत्काम तिनके करने या करवाने में जो तत्पर बनारहिता हो और अधीर किन्तु व्यग्रचित्त रहिता हो कभी सावधानी को न पावै और आरंभी किंतु सदाही संसारी विषयोंके दंद घंद जिसको लगे रहितेहों-इतनेलक्षणोंसे पहिंचाना जाताहै कि यह रजोगुण वाला राजस पुरुष है और ऐसा रजोगुणी मरे पीछे फिर भी मनुष्य योनिमें जन्मताहै वहां भी अति हीन वा हीन वा उत्तम अति उत्तम आदि मनुष्योंमें होताहै कि जैसा कुछ अच्छा बुरा राजसगुण संचय होचुका होगा १३८ निद्रालु•क्रूरकर्मा•लुब्ध•नास्तिक तथा याचक•प्रमादवान्•भिन्नवृत्त• तामस जानों वह तिर्यक् योनियोंमें होयहै=अर्थात्—निद्रालु जो सदा दिनमें भी सोता रहिताहो—क्रूरकर्मा जो प्राणियोंको पीड़ा देनेवाले काम करता हो—लुब्ध जो अति लोभी किंतु अनुचित मार्गसे भी लोभ करताहो—नास्तिक जो धर्म आदि की निंदा में तत्परहो—याचक जो सदैव मांगनेका स्वभावही रखताहो—प्रमादवान् जो करने न करने योग्य कामका विचार करसकने में सदा गाफिल रहिता हो अर्थात् विचार की शक्तिसे विहीनहो—भिन्नवृत्त जिसने अपना जातीवर्णाचार आदि छोड़िके कुछ विरोधी आचरण अंगीकार कियाहो—इतने लक्षणों से पहिचाना जाताहै कि यह तमोगुण वाला तामस पुरुषहै और ऐसा तमोगुणी तिर्यक तिरछी योनियोंमें अर्थात् पशु पक्षी आदिमें जाकर जन्मपाताहै—वहां भी उत्तम मध्यम नीच आदि शरीर उसके अनुसार मिला करताहै कि जैसा कुछ तामसगुणका सचय होचुका होगा॥१३९॥

॥ एकसौ बत्तीस तेंतीस श्लोकसे आदि लेकर यहां तक जो कुछ दर्शाया तिसको याद दिलातेहुये सबका उपसंहार नीचे कहेंगे ॥

(पूर्वोक्तस्योपसंहारः)

रजसातमसाचैवंसमाविष्टोभ्रमन्निह । भावैरनिष्टैः संयुक्तः संसारंप्रतिपद्यते १४० ॥

अर्थः—एवं रज तम दोनों से सम्यक् आविष्ट हुआ अनिष्ट भावों से संयुक्त इहां

भ्रमते हुये संसारको पहुँचता है=अर्थात्–एकसो उनतीस श्लोक में शंकाकरीगई थी कि जो ईश्वरहै सो कैसे अनिष्ट भावोंसे संयुक्त होताहै–तिसका उत्तर यहां उपसंहार में तोड करिके समझाते हैं कि–एवं इसप्रकार जैसा छे सात श्लोकों में कहागया तैसे रजोगुण तमोगुण इनदोनों से लिप्तहुआ यह आत्मा का चिदंशमात्र इहांसंसारही में भ्रमता घूमता हुआ नानाभांति दुःख देनेवाले अनिष्टभावों से संयुक्तहोकर (संसारंप्रतिपद्यते) देहरूप संसार को पाताहै–तिससे उक्त शंका को अवकाश नहीं है १४० ॥ इसीका शेषउत्तर आगे सुनो॥

(पुनश्चाह)

मलिनोहियथाऽऽदर्शोरूपालोकस्यनक्षमः। तथाऽविपक्ककरणआत्मज्ञानस्यनक्षमः१४१ ॥
कटुकेर्वारौयथाऽपक्केमधुरःसन्रसोपिन। प्राप्यतेह्यात्मनितथानापक्ककरणेज्ञता १४२ ॥

अर्थः–मलीन दर्पण जैसे रूप देखाने में समर्थ नहीं तैसे विनापके करणवाला आत्मा अपने ज्ञानको समर्थ नहीं=अर्थात्–एकसौतीसके पूर्वार्द्ध श्लोक से यह शंका करीगई थी कि मन बुद्धि आदि अंतःकरणसे संयुक्त होतेहुये भी उस आत्माको अपना पूर्वजन्म संबन्धी ज्ञान क्यों नहीं आता• तिसका ब्यौरा बीच में समझाने पीछे अब कहिते हैं कि–हाँ ठीक यद्यपि आत्मा मन बुद्धि आदि अंतःकरण से संपन्नहै तथापि जन्मांतर के बीते वृत्तांत यादि करने में समर्थ नहींहोता क्योंकि भीतरले मन बुद्धि आदि करण औजार जोहैं सो पके नहीं अर्थात राग द्वेषआदि मलोंसे जटितहुआ चित्त रहिताहै कि जैसे दर्पणका शीशा मलसे जटि जाताहै (और यही अपनी माया की आड़ उसने रक्खीहै कि कोई उसका भेदखुल्लम करिके न पाइसके) इसीका दृष्टांत आगे देखो॥ १४१ ॥ जैसे कडुवे सर्वारु फलमें मिठास होते हुये भी कच्चे में रसमीठा नहीं पायाजाताहै तैसे विनापके करण के आत्मामें भी ज्ञता विज्ञता नहीं प्राप्तहोती है=अर्थात्–कदाचित यह शंका भी आरोपित करीजाय कि जन्मांतरों का न जानि सकना जीवधर्मसे भी ठीक पायाजाताहै कि जब उसको जीवसंज्ञा मिली तभी उसका जन्मांतर ज्ञान जातारहा•परंतु जबतक जीव संज्ञा नहीं मिली सबसे पहिलाही निज रूप जो उसीआत्माका स्वरूपथा तिसका ज्ञान तो होनाचाहिये क्योंकि वैसे आत्मा का स्वरूपज्ञान ठीकठीक आत्मासेही प्रकाश होसकता और यह अपनीबात आपही उसको सिद्धहोगी तिससे यह कहिनाठीक नहींहै कि वह अपने भी स्वरूपको नहीं जानि सकता है–ऐसे वितर्करूपी शंकाके समाधान मध्ये यह दृष्टांत देतेहैं कि–जैसे कडुवी ककड़ी कचरिया आदि फलों में यद्यपि मीठा रस वर्तमान है तथापि उनके

पके बिना मीठा रस नहीं जाना जाता है तथैव बिनापके करण के (अर्थात् अंतः-करण का शोधन हुये बिना) आत्मा में ज्ञता सर्वज्ञता उपस्थित होते हुयेभी पहिले स्वरूप का ज्ञान पाया नहीं जासक्ता है॥ १४२ ॥

(पुनरप्याह)

सर्वाश्रयांनिजेदेहेदेहीविंदतिवेदनाम्। योगीमुक्तश्चसर्वासांयोगमाप्नोतिवेदनाम् १४३

अर्थः—सब में आश्रित हुई वेदना को देही निज अपने देह में पाता जानता है• मुक्तगुणवाला योगी सब मूर्तियोंकी वेदनाको योगमें प्राप्तकरि जानताहै=अर्थात्—एकसौ तीस के उत्तरार्ध मूल श्लोक से जो प्रश्न किया गया था तिसका जुदा उत्तर यहां देतेहैं कि—सब मूर्तियों में टिकीहुई वेदना पीड़ाको देही जो आत्मा क्षेत्रज्ञहै सो उसी अपने जुदे जुदे देह के द्वारा जानता पहिचानता है कि जो जो उसके भोगों के जुदे जुदे स्थान कल्पित हुये अर्थात् एक देहसे दूसरे देहकी पीड़ानहीं पहिचानता क्योंकि भोगस्थान बनने का हेतुरूप जो पहिले कर्म अदृष्ट होतेहैं तिनका विलक्षण स्वभाव यही है—परंतु योगी पुरुष (जिसके लक्षण पहिले बहुत वर्णन होचुके हैं) जो अहंकार आदिके त्याग से निर्मुक्त हो सो इस एकही देहसे सब मूर्तियों में घुसी हुई वेदना पीड़ा को अपने योग रूपी ध्यान में ठीक ठीक पाता और जानता पहि-चानता है•इसमें संदेह नहीं॥ १४३ ॥

कदाचित् यहां यह शंका खड़ी होय कि आत्मा एकहै एकही आत्मामें सुर नर असुर आदि नाना देहभेद होनेका प्रमाण कोईनहीं समझमें आया—तिसका समाधान आगे कहेंगे॥

(एकस्यैवनानाघटभेदाः)

आकाशमेकंहियथाघटादिषुपृथग्भवेत्। तथात्मैकोह्यनेकश्चजलाधारेष्विवांशुमान् १४४

अर्थः—जैसे आकाश एकही है घटादिकों में जुदा होजाय तैसे आत्मा एक वा अनेक भी है जलाधारों में सूर्य की भांति=अर्थात्—जैसे महा आकाश एक होते हुये भी कुछ बड़े मकानों के भीतर घिरिके कुछ कुवा बावड़ीमे घिरिके कुछ मटके घड़े ढोलक आदि वस्तुओंमें घिरिके जुदा जुदा दीख परने लगा और इन्हीं नाना भांति की उपाधियोंसे आकाशके अनेक भेद होकर वैसे नामभेद भी होजातेहैं कि महाकाश घटाकाश वस्त्राकाश इत्यादि ऐसेही आत्मा भी एकसे अनेक दीखनेलगा और इन्हीं

नानाभांति की उपाधियोंके भेदसे देव नर दैत्य आदि नामभेद भी कहानेलगा अथवा दूसरा यह दृष्टांतहै कि जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब एकहै वह नानाभांतिके जलाशय कूप तड़ाग नदी आदिमें आभास जुदा जुदा देखिपरनेसे अनेक रूपसा होजाताहै या कांच आदि बहुधा चमकीली चीज़ोंमें आभास परनेसे अनेक सूर्य देखि परतेहैं तथैव आत्मा यद्यपि एकहै तथापि नाना देहोंमें अंतःकरण रूपी उपाधियों के भेद से अनेक रूप देखिपरताहै॥ आकाश और सूर्यके दृष्टांतोंसे पूर्वोक्त पारस्पर्य की दोनों बातें यहां पर दर्शाईगईं कि आत्माके बीच में सृष्टि और सृष्टिके बीच में आत्मा इन प्रकारों से परस्पर लीन होरहे हैं॥ १४४॥

पहिले जो बहत्तर ७२ श्लोकसे आदि लेकर गर्भद्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति कहीगई थी कि पृथ्वी आदि पांच जड़धातु और छठा चैतन्यधातु आत्मा का चिदंश ये सब एकसाथही लेकर प्रभु आप रचना करवाता है इत्यादि और जो कुछ कहा था–सो सब खींचिकर फिरभी यहां ब्योरेवार ईश्वरकी ईश्वरता द्वारा अगिले परिच्छेदमेंसमुझावेंगे कि जिससे उसका कर्तृत्व जानाजाय॥



अथपरमात्मनोजगदुत्पत्तौबीजवापादिकर्मानन्तर मेवसर्वव्यापित्वविवेकोनामषोडशःपरिच्छेदः १६

इस परिच्छेदमें यह ज्ञान वर्णनहोगा कि जगतकी उत्पत्तिमें बीज बोने आदि कर्मोंके साथही परमात्मा सबसृष्टिमें व्याप्तहोजाताहै तिससे कोई वस्तु या कोई जीव ऐसा नहीं देखि परता कि जिसमें उसका निवास न हो॥

(जगदुत्पत्तिबीजवापः)

ब्रह्मखानिलतेजांसिजलभूश्चेतिधातवः। इमेलोकाएषचात्मातस्माच्चसचराचरम् १४५

अर्थ:–ब्रह्मआत्मा खम आकाश अनिल वायु तेज अग्नि जल पानी भूः धरती मादो ये धातु लोकनीय और यह आत्मा चैतन्य तिसके योग से चर अचर सहित जगत होताहै–अर्थात–इन पांचों धातुकी उत्पत्ति इसी क्रमसे होती है कि ब्रह्म जो आत्माहै तिसमें उसकी इच्छासे प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ फिर उसी आकाशमें

वायु उत्पन्न हुआ फिर वायुसे अग्निहुआ फिर अग्निसे जल उत्पन्नभया फिर जल में से मृत्तिका उत्पन्न भुई वही जमते जमते क्रम क्रमसे धरती होजातीहै (परंतु उसकी इच्छामें यह भी सामर्थ्य हैं कि विना क्रमके एकसाथ अचानक भी उत्पन्न होय) अब तात्पर्य यहां यह लेनाहै कि ये पाँचोवस्तु शरीरोंमें व्याप्त रहिकार शरीर थाँभे रहितीहैं थाँभना जो कामहै सो धारना कहातीहै इसीलिये इनका नाम धातु कहा गया कि जो धारणा करसकें सो धातु कहातेहैं तथापि (इमेलोका) ये धातुलोकनीय हैं अर्थात देखि परने योग्य जड़वस्तु हैं यह तात्पर्य ठहिरा और यह आत्मा जो चैतन्य ब्रह्म कहा सोई छठा चिदातुहै इन पाँचोंके बीचमें तौ इसभाँतिसे जड़ चैतन्य दोनों का योग मिलाप ठहिरा उसी योग के समुदाय से चराचर मय जगत की उत्पत्ति होती है॥ १४५॥

(केनप्रकारेणात्माजगत्सृजति)

मृद्दंडचक्रसंयोगात्कुंभकारोयथाघटम्। करोतितृणमृत्काष्ठैर्गृहंवागृहकारकः १४६
हेममात्रमुपादायरूपंवाहेमकारक.। निजलालासमायोगात्कोशंवाकोशकारकः १४७
कारणान्येवमादायतासुतास्विहयोनिषु। सृजत्यात्मानमात्माचसंभूयकरणानिच १४८

अर्थः—कुम्हार जैसे माटी डंडा चाक इनके संयोगसें घटको (नाना भाँति सिद्ध) करताहै—यद्वा गृहकार (घरामी आदि कारीगर) फूस मट्टी लकड़ीके संयोग से घर बनाताहै (तैसे आत्मा भी॥ १४६॥ यद्वा केवल सोना लेकर सुनार नानारूप गहने बनाता है—यद्वा कोशकार नाम कीड़ा अपनी लार (से जाला उत्पन्न करि उसी) के अच्छे योगसे कोशको बनाताहै (अर्थात आपही अपनी लारके जाले से अपने बंधे फसे रहिने योग्य सुन्दर कोश घर बनाके उसमें गुप्त रहिताहै तैसे आत्मा भी॥१४७॥ ऐसेही आत्मा भी कारणोंको लेकर तथा करणोंको भी उत्पन्न करिकें इहसंसार में उन्हीं उन योनियोंमें अपने आत्मा को सृजता है=अर्थात—देव नर असुर पिशाच आदि नाना भाँति योनियोंमें वैसेही जुदे जुदे रूप अपने आत्मा के बनाकर उनमें रहिताहै (तहां कोई वस्तु या घर बनानेकी सामग्री सर्वत्र दोतरह.की प्रसिद्ध होती है कि एक तो ईंट गारा लोहा लकड़ी आदि मुख्य मसाला और दूसरे काम करने के औजार हथियार फिर तीसरे बनाने वाले कारीगर भी अवश्य होतेहैं तब कोई कार्य सिद्ध होताहै) इसका नियम यदि रक्खो कि मुख्य मसाला तो कारण कहाताहै और उससे बना काम जो मकान या गहिना आदि कुछहो सो कार्य कहाता है और काम करने के औजार हथियार जोहैं सो करण कहाते हैं और बनानेवाला

कर्ता कहाता है—सो यहाँ जगत् रूपी कार्य के बनाने वाला कर्ता आपही आत्मा ब्रह्महै मुख्य मसाला वही पृथ्वी आदि पाँचों धातुहैं सो कारण समझने और शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये करण किंतु औजारहैं—इसीसे श्लोकमें यह कहा गया कि धातु रूपी कारणों को लेकर तथा औजार रूपी करणों को भी सम्हालि के आत्मा अपने आत्मा को संसार में अनेकधा सृजता है॥ १४८॥

१४६ अधिकोक्तिः—कुम्हार के दृष्टांत में माटी मुख्य धातु या मसालाकहो सो कारण है•डंडा औरचाक सूत धापी उसके करण औजार हैं कुम्हार आपही उसका कर्ताहै और नानाभाँतिकेपात्र जो जो बनतेहैं सो सबकार्यरूप कहातेहैं॥ इसी प्रकार सोना धातु कारण है और हथौड़ा फुंकनी आदि औजार सब करण कहे जातेहैं तथा बनेहुये आभूषण आदि सब सोनेका कार्य कहिलातेहैं अर्थात् सर्वत्र कारणसे कार्य की उत्पत्ति होती है—और कार्य भी कर्ता बिना नहीं सिद्ध होता है कि जैसे इसमें कर्तासुनारहै ऐसेहीसर्वत्रसब सृष्टिकी उत्पत्तिको समझना॥ १४६॥१४७॥१४८॥

फिरभी यहाँ यह तर्कना खड़ी होतीहै कि शरीरों की उत्पत्ति जैसी पहिलेवर्णन होचुकी तिससे प्रत्यक्ष जाना जाता है कि बुद्धि आदि अंतःकरण की वृत्तियाँ और ज्ञानेंद्री सब अपने जुदे कामों में प्रवृत्त रहिते हैं तिससे शरीरके सबधर्म कर्म चलते रहिते हैं अर्थात् शरीर के भीतर बुद्धि आदि करणों के सिवाय आत्माका निवास नहीं समझा जाता और जो है भी तो उसहोने का प्रमाण क्या—इसका समाधान आगे बहुत बड़े प्रमाणों से बिस्तार करते हैं॥

(आत्मनः शरीरस्थस्य प्रमाणानि)

महाभूतानिसत्यानियथात्मापितथैवहि। कोऽन्यथैकेननेत्रेणदृष्टमन्येनपश्यति १४९
वाचंवाकोविजानातिपुनःसंश्रुत्यसंश्रुताम्। अतीतार्थस्मृतिःकस्यकोवास्वप्नस्यकारकः १५०
जातिरूपवयोवृत्तविद्यादिभिरहंकृतः। शब्दादिविषयोद्योगंकर्मणामनसागिरा १५१
ससंदिग्धमतिःकर्मफलमस्तिनवेतिवा। विद्वानःसिद्धमात्मानमसिद्धोपिहिमन्यते १५२
ममदाराःसुतामात्याअहमेषामितिस्थितिः। हिताहितेषुभावेषुविपरीतमतिःसदा १५३

अर्थः—महाभूत जैसे सत्य हैं तैसेही आत्मा भी•अन्यथा कौन एक नेत्र से देखे को और से देखता है—अर्थात् शरीरों में पृथ्वी आदि पांच महाभूत जैसे प्रमाणों करके सत्य समझेजाते हैं तैसे आत्मा भी प्रमाणोंसे सत्य है—अन्यथा यदि उसका होना न मानेंगे तो यह शरीरके भीतर ऐसा कौन है जो एकबार आँखि से देखी हुई वस्तु को ठीक समझे बिना फिर और किसी इन्द्री से देखता किन्तु पहिंचानने

का प्रारंभ करदेता है दृष्टांत जैसे हाथ से टटोलना या नाक से सूंघना या जीभ से चीखना इत्यादि अलटा पलटी कौनकरवाने लगता किन्तु उसीआत्माका यहकामहै ॥१४६॥ यहा सुनीबातको फिर अच्छे सुनिके विशेष कौन समझताहै और बीतेहुये प्रयोजनकी यादि किसको आतीहै या सोते हुये स्वप्न दिखानेवाला कौन है और सोतेसे जागने पीछे उसी स्वप्नको समझानेवाला कौनहै=अर्थात्–जो शरीरों में बुद्धि आदि करणोंके सिवाय आत्मा कोई न हो तो फिर यह किसका कामहै कि एक-वार किसीकी बातको सुनिके फिर दुवारा कहिलाता तब अच्छीतरह तत्त्वको पहिं-चानताहै अर्थात्बुद्धि और कान उसके वहीहैं कि जिनसे पहिलीबारसुनी तब अच्छी तरह नहीं समझपाईथी–औरभी यदि आत्मा इसके भीतर न हो तो फिर पहिलेकाभी देखीसुनी बातको बहुतकाल पीछे कौनयादि करावै अर्थात् वही आत्मा यादि क-राताहै–और भी जो आत्मा इसमें न हो तो बुद्धिआदि सर्वइन्द्रियों के निपट सोइजाने पर नानाभाँतिस्वप्नोंका दिखानेवाला कौनठहिरै या सोतेसमय देखीसुनी स्वप्नेवाली बातोंको जागतेसमय यादिकराने तथा दूसरेको समझानेवाला कौनठहिरै किन्तु उसी आत्माका यहकामहै॥१५०॥जाति॰रूप॰अवस्था॰चरित्र॰विद्या॰आदिसेअहंकृतकौन होताहै–शब्दआदिविषयोंकाउद्योगकर्ममनवाणीसेकौनकरताहै=अर्थात्–जोआत्मा सब शरीरों मे न होता तो इस अहंकारका बोध किसको होता कि हम ऐसी उत्तम जातिमें॰हमऐसेरूपवाले॰हमऐसे यौवन वयसवाले॰ हमऐसे दृत्तचरित्रोंके विस्तार करनेवाले॰हम ऐसी विद्यावाले धनवाले राजवाले इत्यादि हम कहिनेवाला कौन होता–और–शब्द॰स्पर्श॰रूप॰रस॰गंध॰जो प्रत्येक इन्द्रियोंके सुखदेनेवालेभोगप्रसिद्ध हैं कि जिनके प्राप्त होनेका उद्योग उपाय हरकोई मनसे शोचता तथा मुहसे कहिकर करवाता और निज हाथ पैर आदि कायकर्म से भी करता है सो कौन करनेवालाहै अर्थात् ये सब उसी आत्माके उद्योगहैं जो सब इन्द्रियोंको निजप्रयोजन में प्रवृत्तकिये रहिताहै ॥ १५१ ॥ सो विप्लुतहुआ सदिग्ध बुद्धि होताहै कि कर्मकाफल सत्यहै या नहीं और असिद्ध होताहुआभी अपनेको सिद्धही मानैहै=अर्थात्–वही पूर्वोक्तआत्मा यदि विप्लुत (अहंकार के व्यसन से दूषित) हो तब सदेहभरी मति से युक्त होजाता है अर्थात् भलेबुरे कर्मोंके फलमे बुद्धि ठीकठीक स्थिर नहीं रहिती कि फलकाहोना सत्यहै या नहीं (क्योंकि जो फलका होना सत्यसमुझै तो बुरेकर्म न करै केवल भले करै सोनहीं)इसी हेतुसे बहुधा अहंकारवाले कर्मोंको करतेहुये उनमें सिद्धिके न होने पर भी अहंकार से यह समझिलेता है कि अवहाल मैंने सिद्ध किया अब मे सिद्ध

मनोरथ हुआ ॥ १५२ ॥ मेरे स्त्रियां सुत अमात्य मैं इनका यहस्थिति (उसकीहोती और) हित अहित भावोंमे सदा मति विपरीत (रहती है) =अर्थात्-उसी अहंकार से दूषित आत्माके मनमें इसप्रकारको धारणा (स्थित) होतीहै कि ये मेरे स्त्रियां ये पुत्र ये मंत्री गुमाश्ते दूत आदि और में इनका प्रतिपालक स्वामी-और भी-कार्योंके (हित अहित) भलेबुरे भाव जो आगेको उत्पन्न होनेवाले हों तिनमें सदा उसकीमति उलटी रही आती है (तिससे जो कुछ और भी फल होताहै सो अगिले श्लोकों से देखना ॥ १५३ ॥

(अहंकारेणविप्लुतात्मनःफलानि)

ज्ञेयज्ञेप्रकृतौचैवविकारेवाऽविशेषवान् । अनाशकाऽनलापातजलप्रपतनोद्यमी १५४ ॥
एवंवृत्तोऽविनीतात्मावितथाभिनिवेशवान् । कर्मणाद्वेषमोहाभ्यामिच्छयाचैवबध्यते१५५॥

अर्थः-ज्ञेयज्ञ में और प्रकृतिमें,और विकार में भी अविशेषवाला•अनशन•अनलापात•जलपतन•इनमें उद्यमी होताहै=अर्थात्-ज्ञेयज्ञनाम है आत्मा ब्रह्म का और प्रकृतिनाम है प्रधानमायाका जिसमें तीनोंगुण बराबर मिले होते हैं (किन्तु तीनों गुणका बराबर होनाही प्रकृतिका स्वरूप है) और विकारनाम है उसी प्रकृतिका रूपांतर होजाना किन्तु उन्हीं तीनोंगुणका परिणाम (जैसेदूधसेदही) होकरअहंकार१ मन२ बुद्धि३ चित्त४ ये चारि अंतःकरण उत्पन्न होतेहैं-सो वही पूर्वोक्त आत्मा जो अहंकारके उपद्रव से दूषित होकर विप्लुतबुद्धि कहागया वह इनतीनों में अविशेषवान होताहै अर्थात् ब्रह्म१और प्रकृति२ और विकार३ इनके भेदोंकी विशेषता नहीं समझि सकताहै-फिर इसी मूर्खता के हेतुसे अनाशक अन्नछोड़ि लंघनकरिके दूसरे पर अपनेप्राण देदेने या अनलापात अग्निमें कूदिके जलिजाना या जलप्रपतन कूप नदी आदिमें गिरिके डूबना या विषभक्षण करना आदि और भी अनेक ढगहैं तिनमें उद्यमी उपाय करनेवाला होजाता है ॥ १५४ ॥ ऐसे प्रवृत्तहुआ वही अविनीत बुद्धि आत्मा वितथों मे अभिनिविष्ट होकर कर्म से या द्वेषमोहों के हेतु निज इच्छासे भी बंधै फंसै और मारा भी जाय=अर्थात्-जैसा ढंग ऊपर कहागया तैसे न करने योग्य कामोंमे प्रवृत्तहोके(अविनीतात्मा)खोटी बुद्धिवाला(वितथों)कुकर्मोंका(अभिनिवेश) आराधन करतेकरते कभी अपनेकिये खोटे कर्मसेही अन्य पुरुषके द्वारा कहींबंधता और माराजाता है या कभी द्वेष मोहों करके निज इच्छासेही फंसता या मरता है कि जैसाजलिजाना डूबिजानाआदि पहिलेकहिचुके सोनिजइच्छासेसमझना १५५॥
ऐसे उपद्रवों से विप्लुतहुये पुरुषकी सद्गति इसी देहसे या और किसी देहसे फिर

भी कभी विश्वास पूर्व होतीहै या नहीं सो नीचे वर्णन करतेहुये एक औरभी उपासना का प्रकार सूचन करेंगे ॥

(विप्लुतात्मनोपिकालांतरेण उपासनाभेदैःसद्गतिःस्यात्)

आचार्योपासनंवेदशास्त्रार्थेषुविवेकिता। तत्कर्मणामनुष्ठानंसंगःसद्भिर्गिरःशुभाः १५६
स्त्र्यालोकालंभविगमःसर्वभूतात्मदर्शनम्। त्यागःपरिग्रहाणांचजीर्णकाषायधारणम् १५७
विषयेन्द्रियसंरोधस्तंद्रालस्यविवर्जनम्। शरीरपरिसंख्यानंप्रवृत्तिष्वघदर्शनम् १५८
नीरजस्तमतासत्त्वशुद्धिर्निःस्पृहताशमः। एतैरुपायैःसंशुद्ध सत्त्वयोग्यमृतीभवेत् १५९

अर्थः—आचार्य की उपासना•वेद शास्त्र के अर्थों में विवेकिता• तिनके कर्म्मों का अनुष्ठान•सत्पुरुषों का संग• सुशीलवाणी=स्त्रियों को देखने वा छूने कात्याग• सर्व भूतों को निज आत्मातुल्य देखना•परिग्रहोंकाभीत्याग•जीर्ण वा कषाय वस्त्रों का पहिरना=विषयोंसे इन्द्रियों का अच्छा निरोध•तंद्रा वा आलस्य का छोडना• शारीरक विद्याका विचार• प्रवृत्तियों में पापका पहिंचानना=निकासि देना रज तम के भाव का•सत्व का शुद्ध करना•निकासिदेना (स्पृहा) अभिलाष का•स्वभाव में शमता• इतने उपायों से शुद्धहुआ सत्वयोगी अमृती होय=अर्थात्—पूर्वोक्त विप्लुत हुआ (उपद्रवयुक्त) आत्मा जब कभी कालान्तर में चाहे इसी देहसे या और किसी देहमें जाकर इतने कर्मोंकी साधना करै तब इन उपायों से शुद्ध होकर (सत्तु अयोगी अमृतीभवेत्) वही अयोगी योग साधेविना भी अमृती होय किन्तु मोक्ष रूपी अमृत का भागी होता है(यहां सतुके साथ तु अव्यय अवधारणा और प्रशंसा में सप्तभंगी)=उन कर्मोंकी साधना जो ऊपर सब लिखीगई तिसका अभिप्रायरूपी अर्थ यहहै कि—प्रथम तो विद्यापढनेके निमित्तसे विद्यागुरु आदि अच्छे आचार्यों के पास रहिकर निष्कपट उनकी सेवा करै—फिर पातञ्जल योगशास्त्र वेदांत आदि शास्त्रों में अच्छाअर्थ समझने का विवेक बढावै—फिर उन्हीं शास्त्रों में लिखे हुये कर्मोंका अनुष्ठान करै—और अनेक सत्पुरुषोंसे सत्संगतिकरिके उनमें जो जो अच्छी प्रकृति या कोईभी उत्तमगुण देखै सोभी नम्रतासे संग्रहकरै—और अच्छी सुशीलता की वाणीसीखै कठोर वाणी किसीसे न बोलै—और परस्त्री का देखना तथा अंग से स्पर्श करना त्यागै—और सर्वभूत चर अचरकोभी दुखहोने सबमें अपनी देहके समान शोचकरै कि जैसी अपनी देहमें पीडाहोती है किंतु सबहोमें आत्माको विराजमान देखै—और परिग्रह जो बड़े विकट कर्मों के निमित्त से बहुत मनुष्यों का संग्रह करना

पस्ताहै तिन दखेड़ेवाले परिग्रहों काभी त्याग रक्खे–और जो बनिआवै तो यहांतक शरीरको वशमें करै कि फटेपुराने वस्त्रों को गेरूआदि से रँगेहुये धारण करै इससे यह तात्पर्य दर्शाया है कि अवसर मिलै तो संन्यासीभी होजाय जैसा संन्यास धर्म वर्णन करचुके–औरविषयजो•शब्द•स्पर्श•रूप•रस•गन्ध•ये पाँच इंद्रियोंके भोग हैं तिनसबसे निज इन्द्रियों को रोके–और तंद्रा जो निद्राकी छोटीबहिन एकप्रकार की शुस्ती होती है तथा आलस्य जो काहली प्रसिद्धहै (कि जो काम अवश्यकरनाचाहिये जिसके करने माफिक समर्थ मौजूदहै तथापि अनुत्साहसे न करना यह आलस्य होताहै) इनदोनोंको दूरिहीसे बचाता रहै पास न आनेदे–और (शरीरकापरिसंख्यान)शारीरक हिसाब जो७०सत्तरि श्लोकसे आदि लेकर१०९एकसौनौश्लोकतक वर्णन होचुका तिसको अच्छे समझिके यादिकरै–और सर्वत्र प्रवृत्तियों में अघ पाप का देखना अर्थात प्रवृत्तिनामहै कहीं जाना चलना हाथपांवँका दौड़ाना या किसी कार्यका प्रारंभ करना या किसी कार्य में बुद्धिका विचार दौडाना आदि तिन सब तरहकी प्रवृत्तियों में सबसे पहिले किसी जीवकी हिंसा होजानेका पाप ढूंढता रहै कि इस प्रवृत्तिमें अमुक पापहोगा सो न होनेपावै–और रजोगुण तमोगुणका स्वभाव जैसा (१३८।१३९)दो श्लोकोंसे वर्णन होचुका सो न राखै–और सत्वकी शुद्धि अर्थात मनका भावहै वह सत्व कहाताहै तिसको अनेक प्राणायाम आदि उपायों से शुद्धराखै–और निःस्पृहता किन्तु विषयभोगोंकी अभिलाष छोडिदेना यही बहुतबडी तपस्याका बीजहै–शम अर्थात भीतरकी चित्तकी वृत्तियों को जीति के शांत राखै यही शम कहाताहै–ये सब आचार्य की सेवा आदि जो कुछ उपाय कहेगये तिनकी साधनासे अच्छा शुद्धहुआ आत्मा यद्यपि अयोगी (किन्तु संन्यास आदि योग नहीं किया) हो सोभी इतने उपायोंसे अमृत मोक्षका भागी होजाताहै॥ १५६ ॥१५७॥ १५८ ॥ १५९ ॥

१५६अधिकोक्तिः–एकसौ उनसठि श्लोकमें (सत्वयोगयमृतीभवेत) यह चौथा पादहै तिसका अर्थान्वय दो तरहसे होताहै एकतो (सतुअयोगी अमृती भवेत) यह पदच्छेद है तिसका अर्थ ऊपर लिखा गया–और दूसरा (सत्वयोगी अमृती भवेत) यह पदच्छेदहै इसकाअर्थ ऐसे होताहै कि सत्व जो सतोगुण है वही मनके भावकी शुद्धि समझना तिसका साधनेवाला सत्वयोगी ठहिरा सो अमृतका भागी होताहै– यद्यपि अर्थ दोनों सत्य हैं तथापि श्रेष्ठ वही समझना जो ऊपर अर्थों मे लिखा गया क्योंकि सत्वका योगी पूरा संन्यासी होताहै तिसका प्रसंग पहिले संन्यास धर्म में

आचुका—किन्तु यहां यह दूसरी भाँतिकी उपासनाविधि उसके लिये कही गई जो सत्वका योगी पूरा न हो केवल इन्हीं चारश्लोकों में कही हुई उपासना के सामान्य उपायों से अपने आत्मा का शोधनमात्र कर सके सो अयोगी भी मोक्षभागी होता है चाहें कोईहो कुछ योगी संन्यासी का नियम नहीं यहतात्पर्यहै॥ इसतात्पर्यके ठीक होने पर भी याद रक्खो कि दोनों अर्थ समझना क्योंकि यह ऐसा पुरुष भी कदाचित् साधना करते करते पूरा, योगधारी संन्यासी होजाय तो वह दूसरे अर्थके अनुसार सत्वहीका योगी समझा जायगा—इसीलिये अगिले दो श्लोकोंको विचारो कि याज्ञवल्क्यजीने योगी अयोगी दोनोंका तात्पर्य उनमें दर्शायाहै ॥ अगिले दो श्लोकों में यह नियम सिद्धकरैंगे कि मोक्षपद कैसे मिलता है ॥ १५६॥१५७॥१५८॥१५९॥

इसी प्रसंग में जो कहिना कुछ शेषरहा सो अब अगिले परिच्छेद में देखना ॥



अथ-सत्कर्मादिहेतूनांपरिपाकात्जातिस्मरत्वंदेवयोनित्वंवागच्छंतीत्यादिविवेकोनामसप्तदशःपरिच्छेदः१७॥

इसपरिच्छेद में वह विवेक जाना जायगा कि सत्कर्म आदि विरले अन्य हेतुओं से भी बहुधा प्राणीजातिस्मर होते यहा देवयोनिमें जातेहैं इत्यादि और बातेंभीदर्शावैंगे

(कथममृतत्वप्राप्तिःजातिस्मरत्वंच)

तत्वस्मृतेरुपस्थानात्सत्वयोगात्परिक्षयात्। कर्मणांसन्निकर्षाच्चसतांयोगःप्रवर्तते १६०
शरीरसंक्षयेयस्यमनःसत्वस्थमीश्वरम्। अविप्लुतमतिःसम्यग्जातिसंस्मरतामियात् १६१

अर्थः—तत्व के स्मरण से उपस्थान (प्रणाम) से सत्वके योगसे कर्मोंके क्षय होने से सत्पुरुषोंके संगसे योग वर्तमान होताहै कि जिसकामन सत्वस्थ होके शरीर नाश होतेसमय ईश्वरमें लगे—अथवा) अविप्लुतबुद्धि हो सो अच्छे जातिस्मरत्व को पहुँचे =अर्थात्—अब यादकरो॰पूर्वोक्त दोनों अर्थका तात्पर्य यहां दर्शातेहैं कि—तत्वरूपी जो आत्मा है तिसकी यादगारी खूबकरतेकरते और उसकोनिरंतर प्रणाम नमस्कार (उपस्थान) उसकेसमीप चित्तलगाते लगाते और सत्वनाम जो सतोगुण(किन्तु अपने मनका) शुद्धभाव तिसके योग मिलाप से कुकर्मों के बीज नाश होजाने से साधू

सत्पुरुषोंका संग सेवन करते करते (योगःआत्मयोगःप्रवर्तते) आत्मा से योग मिलापहोजाताहै सो यह उसीको कि जिसकामन सतोगुणमें स्थिर होते होते ऐसा निश्चलहोजाय जो मरतेसमय ईश्वरमें लीनहोसके यह तौ पूरे योगी संन्यासीका चर्चा किया--अथवा--जो इतना पूरानहोसके केवल अविप्लुत बुद्धि होजाय अर्थात् १५२ एकसौ बावनके श्लोकवाली दशामात्र मिलिजाय जिससे आत्मा की पहिंचान में बुद्धि स्थिर होने लगै पूरी उपासनावाले योगमें होशियारी न होसके तौ भी इतने उत्तम कर्मके प्रभावसे ऐसा पुरुष मरनेके बाद जहाँ जन्मलेता है तहाँ पहिले जन्मोंके अपने सब दुख सुख आदि यादि करसकनेवाला जातिस्मर होताहै फिर उस जातिस्मरत्व से भी अच्छा ज्ञान होकर मोक्षका रास्ता ढूंढिलेता अर्थात् श्रेय कर्मोंमें मन लगाताहै ॥ १६० ॥ १६१ ॥

(अजातिस्मरत्वेपिइयंगतिः)

यथाहिभरतोवर्णैर्वर्णयत्यात्मनस्तनुम् । नानारूपाणिकुर्वाणस्तथात्माकर्मजास्तनूः १६२
कालकर्मात्मवीजानांदोषैर्मातुस्तथैवच । गर्भस्यवैकृतंदृष्टमंगहीनादिजन्मतः १६३
अहंकारेणमनसागत्याकर्मफलेनच । शरीरेणचनात्माऽयंमुक्तपूर्वःकथंचन १६४

अर्थः--जैसे (भरत) नट नाना रूपों की लीला करते समय अनेक रंगों से अपने शरीर को (वर्णयति) रचता है तैसे आत्मा भी कर्मोंसे उत्पन्न भोगोंके लिये शरीरों को नाना रूपसे धरताहै ॥ १६२ ॥ तहाँ काल कर्म अपना बीज तथा माताका रक्त इनके दोषों से अंगहीन आदि गर्भ का विकार जन्म से भी देखा जाता है=अर्थात्--अग भंग आदि रूप केवल कर्मों से नहीं किंतु इन दोषोंके मिलापसेभी होते हैं कि एकतौ उस वर्तमानकाल का स्वभाव दूसरे पूर्वजन्मके कर्मों का प्रभाव तीसरे अपने पिता के वीर्य का दोष चौथे माता के रजोरक्त का कुछ दोष इन सबके या किन्हीं के संयोग से गर्भमें अंधा लूला आदि विकार पैदाहोता है यद्वा जन्म होनेबाद कभी विकार उदयहोतेहैं ॥ १६३ ॥ अहंकारसे•मनसे• गति (संसार के उत्पत्तिमार्ग) से• कर्म के फलसे भी•शरीर धरनेसेभी•यह आत्मा दोषसे नहीं कभी छूटता है जब तक मोक्ष पदको न पहुँचै=अर्थात्--यहाँ यह शंका खडीहोतीथी कि महाप्रलय होजाने से (महत्तत्त्व) बुद्धि आदि सभीविकारों का नाश होकर कर्मोंकोभी जभी ना शहोजाते होंगे तौफिर प्रलयकेपीछे जब दुबारा नईसृष्टि रचीगई तहाँ सबसेपहिले मिले शरीर से कर्मों का संबंध कहांसे आसकता है कि जिससे अग भंग आदि कुडौलरूप पैदाहो--

इसी शंका के समाधान मध्ये यह उत्तर दिया गयाहै कि आत्मा कभी भी अप्रोक्त अहंकार आदि कर्म के बीजों से नहीं छूटता अर्थात् प्रलय से पीछे दूसरी सृष्टि में भी पहिली सृष्टि के कर्म बीज संचित बनेरहितेहैं कि उन्हींके प्रभावसे दूसरी सृष्टि में भी योनि भेद या अंग भंग आदि रूप भेद उसी आत्मा को मिलता है कि जिसके बीज धरे रहेथे—परंतु उस दशा में बीजनाश हो जाते हैं कि जब उत्तम योग साधना से मोक्षभागी किया जाय॥ १६४॥

१६४ अधिकोक्तिः—कर्मोंके बीज नहीं नाश होते इस बातका दृष्टांत (राजविप्लव) गदर है कि जैसे किसी समर्थ राजाके राज्यमें महाभयंकर गदर होने लगता है तब तक अच्छे बुरे सब कर्मोंवाले मनुष्य अपना अपना प्रतिकार पानेसे रुकिजाते हैं अर्थात् धन प्राणों को लूटने मारने वाले आगि लगानेवाले आदि भी दण्ड नहीं पा सकते और प्रजा अथवा राजाकी भलाई करने वाले भी अच्छा फल नहीं पासकते क्योंकि दोनोंको फलका दाता जो राजाहै सो अपने होशमें नहीं रहिता तब जो चाहै सो भलाई या बुराई करै उसकी बूझ नहीं रहितीहै•ऐसी दशा देखिके अज्ञानी यही समुझताहै कि ऐसे समयपर सबके कर्म बीज जो कुछ पहिले से भलाई बुराई चली आती थी वह भी मिटिजातीहै—परंतु—वही राजा जब राजका प्रबन्ध ठीककरि पाता है (कि इस प्रबन्धको दूसरी सृष्टि कहिना चाहिये) तब यथा क्रमसे सबके कर्मबीजों को टटोलताहै कि इन मनुष्योंके कर्मबीज गदर के साथ या गदर से पहिली दशा में क्या क्या संचित हुयेथे तिनका भला बुरा फल भी सबको देता है—अथवा उस राजा से राज छूटिजाय तौभी जो दूसरा कोई विवेकी राजा राज्यपर आरूढ होताहै सो भी प्रजा लोगोंके उन कर्मोंको टटोलताहै कि जो कुछ पहिले राजाके अमलमें कर्मबीज संचित कियेहों भले या बुरे दोनों भाँतिके—तौ इस प्रकार से कर्मों के बीज कभी प्रलयके पीछे भी नहीं नाशहोतेहैं—संसारमें भी देखिलो बारह महीना के बीच में अकाल वर्षा चाहें तैसी होजाय बीज नहीं जमता है धरती उसको थांभे रहिती है पर वर्षाऋतुके प्रारंभमें थोड़ी बूंद परनेसे भी वही बीज सब जमते हैं कि जिनका काल वर्त्तमानहो ऐसेही सृष्टिके प्रारंभ में भी॥ १६४॥

एक यह तर्कना खड़ी होती है कि जिन जीवों के कर्मबीजही प्रधान ठहिरे तो फिर उनके नियत कर्मोंके समयपरही मौत होनी चाहिये•किंतु यह विपरीत लक्षण कैसाहै कि युद्धस्थान आदिमें एकही साथ अनेक प्राणी मरजातेहैं•इसका समाधान अब कहिते हैं॥

(मर्त्यलोकप्राप्तिमार्गः)

येनेकरूपाश्चाधस्ताद्रश्मयथमृदुप्रभाः। इहकर्मोपभोगायतैःसंसरतिसोऽवशः १६९

अर्थः-तिसके नीचे जो अनेकरूप रश्मियां मृदुप्रभा होती हैं तिनके द्वारा इहां (संसारहीमें) कर्मोंके उपभोग के लिये अवश हुआ संसरण पाताहै=अर्थात्-पूर्वोक्त सैंकराके नीचे जो और भी अनेक भाँति नाड़ियां कोमल प्रभावाली हैं तिनके द्वारा जीव निकसनेसे फिर इसी संसार में अपने कर्मोंके वशीभूत जन्मलेताहै कर्मोंकाभोग भोगनेके अर्थसे॥ १६९॥

(अनीश्वराश्चपिसति)

नास्तिशुभाशुभयोःकर्मणोःफलदातेश्वर। इतिवादिनोऽपिवहवोऽनीश्वराःसन्तीहलोके

अर्थात्-भले बुरे दोनों कर्मका फल देनेवाला ईश्वर नहींहै ऐसा वाद करनेवाले (जो अनीश्वर कहाते सो) अनीश्वर भी बहुत इसी संसार में हैं और होतेहैं॥

ईश्वर कोई नहीं यह कहिनेवाले भी उसी ईश्वरने रचेहैं कि निज सृष्टि में जो नाना भाँति विचित्रता रची तिनमें एक यह भी है॰अर्थात् थोड़ेसे विज्ञान भी तार्किक अर्हंत स्वभाववादी आदि अनीश्वरलोग सदासे होते चले आये जो सृष्टिकी उत्पत्ति केवल स्वभावही से अपने आप होती रहिती यह कहिते हैं॰कि इसका कर्त्ता कोई एक ईश्वर नहीं किन्तु वह स्वभावही अपने आप ईश्वर होताहै॰विरले तार्किक यह कहते हैं कि आकाशको छोड़ि शेष चारों तत्वके जुदे जुदे परमाणू आदि बहुत छोटे अंशों से आकाश परिपूरित रहाकरता उन्हीं परमाणुओं की गांठैं बनि बनि समवाय इकट्ठा होकर स्वतः सृष्टि उत्पन्न होती रहितीहै॰तिससे चारों तत्व अपने आपही चैतन्य रूप हैं अर्थात् उनको चैतन्य करनेवाला कोई ईश्वर नहींहै॰क्योंकि जो होता तो देखने में आता किन्तु जो देखने में नहीं आसक्ता तो कुछहै भी नहीं केवल बुद्धिमानों की बनावटहै-ऐसे इदवादियोंका विचार थोरा दर्शाने के निमित्त से अगिले कई श्लोकों मे अनेक शास्त्रार्थ भरे परेहैं कि जो उनको पूराविस्तार देना चाहाजाय तौ वर्षों तक निपटारा न होसके तिसके सूखे संक्षेप अर्थ लिखेजायँगे कि हरकोई शीघ्रसमझै रहे सब अगिले परिच्छेद में देखना॥॥

——*——

अथ-अनीश्वरवादिनांमतखंडनपूर्वकमीश्वरस्यचसर्वगतस्यप्रत्यक्षलक्षणाविवेकोनामअष्टादशःपरिच्छेदः१८॥

इस परिच्छेद में अनीश्वरवादी लोगोंकामत झूंठा दर्शाते हुये समर्थ ईश्वर की प्रत्यक्ष पहिंचानिवाले चिह्न भी समझाये जायँगे कि जो चर अचर सृष्टि में सर्वत्र परि व्याप्त है॥

(पंचभूतानांअचैतन्यत्वं)

वेदैःशास्त्रैःसविज्ञानैर्जन्मनामरणेनच । आर्त्यागत्यातथाऽऽगत्यासत्येनह्यनृतेनच १७०
श्रेयसासुखदुःखाभ्यांकर्मभिश्शुभाशुभैः । निमित्तशाकुनज्ञानग्रहसंयोगजैःफलैः १७१
तारानक्षत्रसंचारैर्जागरैःस्वप्नजैरपि । आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैस्तथा १७२
मन्वंतरैर्युगप्राप्त्यामंत्रौषधिफलैरपि । वित्तात्मानंवेद्यमानंकारणंजगतस्तथा १७३

अर्थः—याज्ञवल्क्यजी सब समाज के सन्मुख कहिते हैं कि ये मुनीश्वरो—जगत् के कारणभूत आत्मा को इन सब प्रमाणों से समझो और समझातेहुये को सत्य जानों (किनप्रमाणोंसे) वेदोंसे कि वेदकी श्रुतियाँ जैसा उसको जपतीहैं (दृष्टांतजैसेनेतिनेति आत्माकारूप इतनाही नहीं किन्तु वह स्थूलभी नहीं वह सूक्ष्मभी नहीं उसके हाथ पैर असंख्य वह विना हाथ पैरोंका इत्यादि श्रुति वचन हैं)—शास्त्रों से कि वेदांत मीमांसा आन्वीक्षिकी आदि शास्त्र उसका लक्षण जैसा कहिते हों—विज्ञानों से भी सत्यजानों कि यह शरीर मेरा इत्यादि वातोंका बोलनेवाला साफ जताताहै कि मैं शरीर से जुदा इसका मालिक हूं शरीर मेरा मालहै (इन्हीं विज्ञानों में समझि देखौ कि आत्मा शरीर से उपराल वस्तुहै या नहीं)—तैसेही जन्म और मरणसे भी समझि देखौ कि जिसमे से वह आत्मा निकसि जाताहै तिस देहके पांचो तत्व जड होके निरर्थक परे रहिजाते हैं फिर वही आत्मा जिस किसी गर्भ में जाकर निवास करता है तिसके पाँचो तत्व चैतन्य होकर एक नयाप्राणी पैदा होजाता है (इस प्रमाणसे भी आत्मा जुदीवस्तु और देह जुदीवस्तु निश्चित है)—आर्त्ति जो पीडाहै तिससे भी समझ देखो कि जबतक देह में आत्मा का निवास रहिता तभीतक सुईकी नोक से भी पीडा होने लगती है आत्मा के निकसि जानेबाद छुरी घुसेरने से भी कुछ पीडा नहीं—तथैव (गति आगति) जाना आना इन दो से भी समझ देखो कि जीवता हुआ देह भी जो कहीं जाता या कहीं से लौटि आता है सो भी ज्ञान और इच्छा

(यौगपद्याकालमरणविवेकः)

वर्त्याधार.स्नेहयोगाद्यथादीपस्यसंस्थितिः। विक्रियापिचदृष्टैवमकालेप्राणसंक्षयः १६५

अर्थः–दीपकी स्थिति जैसे चिकनाईके योगसे बत्तीके आधारपर होतीहैविकार भी उसमें देखाहुआ दोयहै ऐसेही•अकाल में प्राणों का नाश होता है=अर्थात्–जैसे तेलकी भीजी अनेक बत्तियों के सहारे पर अनेक जोति अपने अपने जीवन को तब तक थाँभि सकती हैं कि जितना जितना तेल उनमें हो (ऐसेही प्राणी अपने कर्मों के समान जीसकतेहैं) परंतु जब बड़ी तीव्र वायुका झकोरा रूपी विपत्ति जितने दीपकोंपर एकसाथ आपरतीहै तब तेलके शेष रहते भी अनेक दीपक एकसाथ बुझि जातेहैं तिनमें भी जिनको कुछ आगे पीछे विपत्ति लगी सो आगे पीछे बुझतेहैं (यह वायुकी विपत्तिरूपी कारण देखाहुआ प्रत्यक्ष हेतु कहाताहै) ऐसेही प्राणीभी आयु शेष होतेहुये युद्ध आदि देखीहुई विपत्तिमें अकालमृत्युसे मरता है अर्थात् कर्मों का बीजरूपी बिना देखा कारण अदृष्ट कहाताहै सो तौ नियत कालहीपर मौतहेतु माना जाताहै यह युद्ध आदि देखाहुआ हेतु अनियत कालमें भी मौत करदेताहै तिससे अकालमृत्यु भी झूठीनहीं है॥ १६५॥

१६५ अधिकोक्तिः (प्रतिनियत काल विपत्ति हेतु भूतादृष्टस्य-तद्विरुद्ध कार्यारम्भदृष्टहेतूपनिपातेनप्रतिबंध इत्युक्तंचशास्त्रांतरे) अर्थात्–अन्य शास्त्रों में यह प्रमाण भी लिखाहै कि मनुष्य की लिखी हुई आयुके ठीक समय पर मरने का हेतु जो बिना देखा नियत होचुका है•तिसकी रोक भी होजाती है उसके विरोधी कर्म देखे हुये विघ्नरूप आपरने से तभी अकाल मौत होजाती है॥ १६५॥

(मोक्षस्यमुख्योमार्गः)

अनंताररमयस्तस्यदीपवद्यःस्थितोहृदि। सितासिता.कद्रुनीलाःकपिलानीललोहिताः १६६
ऊर्ध्वमेकःस्थितस्तेषांयोभित्वासूर्यमंडलम्। ब्रह्मलोकमतिक्रम्यतेनयातिपरांगतिम् १६७

अर्थः–(१०८। १०९ इन श्लोकोंमें जो लिखिचुके सो देखो फिर उसीको यहाँ आकर शोचो कि) जो चैतन्यरूपी जीव दीपकी शिखा तुल्य हृदय में विराजमान हैं तिसकी अनन्त असंख्य रस्सी जो नाड़ियाँहैं सुपेद काली चितकबरी नीली सुनहरी गुलाबी लाल काले मिलायके रंगोंवाली हर तर्फको जातीहैं=तिनमें से (सुषुम्ना नामकी) एक रस्सी ऊपर कपाल तक गईहै जो वही डोरी सूर्यके मंडल में घुसती

हुई फिर ब्रह्माजीके लोकहूको उलाँघती हुई सदा रहिती है (और वेही सब जीवों को डोरियों के छोर उस नटिनी के हाथ में रहिते हैं जो परमात्मा की माया उसकी इच्छा मात्रसे आप नाचती फिरती और सबजीवोंको हरवक्त नचातीहै कि जैसे कठपुतरीके स्वाँगमें पर्दा बीचदेकर कोई नटिनी सूत्रधार बनिके आड में बैठती और डोरियों के इशारेसे पुतरियोंको नचायाकरतीहै) उसी ब्रह्मलोकसे पार पहुँचीहुई नाड़ी डोरीके मार्गसे परमगतिको जीव जाताहै उस झपटी के साथ जैसे तार बिजली विना रोकटोक जातीहै इसी झपटी में उसमायाके हाथसे भी रस्सी छोनिके लेजाता है-सो यह वही जीव ऐसा करसकताहै कि जिसने पूर्वोक्त मार्गोंसे माया को खूब जीति रक्खाहो-परमगतिका यह अर्थहै कि जहाँ पहुँचिके फिर संसारी जन्म मरण आदि दुःखोंमें नहीं आने सकता है यही मोक्षका स्वरूपहै॥ १६६ ॥ १६७ ॥ तात्पर्य इस आशयसे यह दर्शायाहै कि जिसके प्राण कपाल फटिके निकसैंचाहै योगाभ्यास के द्वारा कपालफटै या योगसाधे विना भी किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे ऐसा बानक स्वतः बनिजाय दोनोंतरहसे मोक्षभागीहोता है-इसी प्रकार अगिले श्लोकों में लिखे हुये मार्गसें जीव निकसनेवालेको स्वर्ग आदि मिलतेहैं सो आगेदेखो॥१६६॥१६७॥

(स्वर्गप्राप्तिमार्गः)

यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्ध्वमेवव्यवस्थितम्। तेनदेवशरीराणितैजसानिप्रपद्यते १६८॥

अर्थः-जो इसके रस्मिशतक और भी ऊपरहीको स्थितहै तिससे तैजस देव शरीरोंको पहुँचताहै=अर्थात्-पूर्वोक्तमोक्षके मार्गवाली एकडोरीकेसिवाय जो औरभी रस्मियों (नाड़ियों) का सैकरा इसदेहके भीतरहै कि उसके भी सौ छोर ऊपरहीको रहिते और स्वर्गतक जातेहैं कि उसके द्वारा जिसका मरते समय जीव निकसै वह (स्वर्गहीको जाताहै अर्थात्) तैजस जो रजोगुण सतोगुण दोनोंके सारसे उत्पन्न एक बड़ा उत्तमधातु सुवर्णसे भी अनंतगुना प्रकाशमान स्वर्गलोक में खानिसे उपजताहै उसी तैजसधातु से इमारतें वहाँ बनती हैं सो बहुत चमकती होतीहैं-और दूसरा एक अदृष्ट तैजस जो तेज बल पराक्रम कांतिका बीजरूप सब देवतोंके शरीरमें वही सत्ता रहिती है कि जिससे उनकेरूप अतिशय कांति युक्त होतेहैं क्योंकि यह सत्ता भी रजोगुण सतोगुण के सूक्ष्मसारसे उत्पन्न होतीहै-ऐसे तैजसरूपी देवतोंके शरीर तथा रहिनेको वैसे तैजसमय मकान सर्व भोगोंसे भरे हुये जाकर पावाहै कि जहाँ सुख भोगनेके सिवाय दुःखोंका चर्चा नहींहै ॥ १६८ ॥

और प्रयत्न से खाली कहीं न जाता है न आता है अर्थात् प्रथम तो उस ठिकाने का ज्ञान चाहिये फिर इच्छा भी जाने तथा आने की चाहिये फिर उसके लिये सवारी आदि कोई सा प्रयत्न भी अवश्य किया जाताहै सो इन तीनों बात का अधिकर्त्ता उस आत्मा के सिवाय कोई नहीं क्योंकि देह उसकी इच्छा विना कुछ नहीं करसक्ता–सत्य असत्य से भी सोचो कि सत्यवादी होने की प्रतिज्ञा वा असत्य छोड देनेका नियम कौन चलाताहै शरीर तो आपही जडहै इसकी यह सामर्थ्य नहींतिससे आत्माही यह करता है–ऐसेही श्रेयस् अपनेहित कल्याणका विचार और यहां वा परलोक में सुख दुःख प्राप्त होनेका विचार भी आत्मा आप किया करताहै जड देह का यह काम नहीं–ऐसेही शुभ अशुभ कर्मों के विचारको भी आत्मा कर्त्ता है शरीर की सामर्थ्य नहीं क्योंकि ये बातें ज्ञानके आधीनहैं और ज्ञानका विवेक उसी आत्मा के आधीन है–तथा•निमित्त•शाकुनज्ञान•ग्रहसंयोगजफल•इनसे भी समझ देखो कि निमित्त जो भूकम्प उल्कापातआदि बहुधा शुभ अशुभकीसूचनाकरानेवाले प्रसिद्ध होतेहैं तिनका उत्पन्न करनेवाला आत्मा के सिवाय ऐसा कौनहै क्या यहभी जडदेहोंका काम है•यहा शाकुनज्ञान जो पक्षियोंकी बोलीसे या उनके उडने बैठने के भेदसे शकुन कहेजाते और(शकुनवसन्तराजआदिग्रन्थोंसे) ठीक उनके फलहोतेहैं सो प्रभाव उनमें किसने उत्पन्नकिया क्या आत्माके विना जडदेहोंका यह कामहै• यहा सूर्य्य आदिनवग्रहोंके परस्पर संयोग वा दृष्टि आइपरने से जो जो फल गणक विद्वानों के द्वारा विचार किये जाते और ठीक प्रमाण देते हैं क्या उन ग्रहों के भी प्रभाव आत्मा से उपरान्त कोई उत्पन्न करने वाला जड देहोंमें से होसक्ता है–तथैव तारा और नक्षत्रोंके संचारसे भी शोचि देखो कि नक्षत्र तो अश्विनीआदि रेवतीपर्यंत और तारा इनसे उपरान्त जो आकाश में असंख्य दीख परतेहैं जिनके (संचार)चलने घूमनेका आधार जो शिशुमार चक्रहै आकाशी पुलके तुल्य तिसपर फिरते रहितेहैं सो किसने रचा क्या आत्माके सिवाय जडदेहों की यह कारीगरी होसक्ती है–तथा जागर और स्वप्नज फलों से भी शोचि देखो कि जागर नाम जागते समय जो कोई सा शकुन या अपशकुन देखा जैसे सूर्य्य के मण्डलमें छिद्रदेखि परनेलगा या काकमैथुनहोते देखागया या छाया पुरुष अंग भंग देखि परनेलगा इत्यादि और सोते हुये स्वप्नों में वाराह गर्दभसे जुडेहुये रथमें चढिकर चलना आदि अनेक भांत से देखना चाहें अपने लिये चाहें किसी राजा आदि अपने प्रियतम के लिये सो सब तद्रूप फल देखने में आतेहैं अब कहो कि जो आत्माकोईनहीहै तो इनचरित्रोंके रचनेवाले क्या

येही जड़शरीर हैं—तथा जीवोंके उपकार के लिये जो•आकाश•पवन•जोति• (अग्नि और उजीता) जल•पृथ्वी (जो रत्नोंसे भरी और नाना वस्तु उत्पन्न करनेवालीधरतीहै) अँधेरा (यह भी एक पदार्थ है) ये सब जिसने रचे सो कितना बड़ा समर्थहै क्या उस आत्माके विना जड़देह भी ऐसेकामकरसके—तथा युगों की वृद्धि से मन्वन्तर काल फिर उनकी वृद्धिसे कल्पांतरआदि बड़े लम्बे कालके विस्तारों को शोचि देखो जो देहोंमें नहीं समायसक्ता बरन उसके बीच असंख्य देह चलेजातेहैं यह किसने रचा—तथा मंत्र और औषधियोंके फल शोचिदेखो उनमें बड़ेबड़े अनूठेप्रभावहैं सो किसने रचे क्या यह भी जड़ देहोंका काम था—तिससे समस्त जगत् का रचनेवाला कारण उसी आत्मा को जानो ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

१७०अधिकोक्तिः—एक सौ सत्तर आदि श्लोकमें जो (पंचभूत जड़द्रव्योंसे बने हुये) देह को जड़ कहागया तिसके मध्ये एक यह भी शास्त्रार्थ है=यथाह विज्ञाने श्वराचार्यः=नहिदेहस्यचैतन्यादि संभवति यतःकारण गुणप्रक्रमेण कार्यद्रव्ये वैशेषिक गुणारम्भोदृष्टः नचतत्कारणभूत पार्थिव परमाणवादिषु चैतन्यादि समवायः संभवति तदारब्धस्तम्भकुंभादि भौतिकेष्वनुपलम्भात् नचमदशक्तिवदुदकादि द्रव्यांतर संयोग इतिवाच्यं शक्तेः साधारणगुणत्वात् अतोभौतिक देहातिरिक्त चैतन्यादिसमवाय्यंगी कर्त्तव्यः=अर्थात्—नहीं देह का चैतन्यादि लक्षण सभव होता है क्योंकि (असली गुणके शुरूकिये अवसर से उत्पन्न कार्य्यरूपी द्रव्यमें उसीके विशेष गुण का आरम्भ देखागया है पर) उस देहके असली कारण पृथ्वी आदिके परमाणुओं से चैतन्य आदिका समवाय इकट्ठा होना संभव नहीं है क्योंकि उन परमाणुओं से बनेहुये लक्कड़ मटके आदि अनेक देखो जो पृथ्वी आदि भूतोंकी उत्पत्ति है तिन में वह चैतन्यका समाज नहीं मिलता है (इस प्रमाणसे देहोंको भी समझलो) और यह युक्ति भी न कहिनी चाहिये कि जड़ शक्तिवाले उदक आदि अन्य द्रव्यों के सयोग से उत्पन्न होता होगा क्योंकि शक्ति जो पदार्थ है सो साधारण गुणों का रूपहै•तो इसहेतुसे ही भूतोंसे उत्पन्न देहके उपरान्त चैतन्य आदि समवायको इकट्ठा करने वाला समवायी उसका अधिष्ठाता (वही परमात्मा) भी है यह ऐसा अंगीकार कर्तव्य ठहिरा ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

——*——

(पुनरप्याह)

अहंकारःस्मृतिर्मेधाद्वेषोबुद्धिःसुखंधृतिः। इंद्रियांतरसंचारइच्छाधारणजीविते १७४
स्वर्गःस्वप्नश्चभावानांप्रेरणंमनसोगतिः। निमेषश्चेतनायत्नआदानंपांचभौतिकम् १७५
यतएतानिदृश्यंतेलिंगानिपरमात्मनः। तस्मादस्तिपरोदेहादात्मासर्वगईश्वरः १७६

अर्थः–परमात्मा के इतने चिह्न ये प्रत्यक्ष देखि परते हैं कि–अहंकार (मैं हीं मैं होता इत्यादिरूप अहंकृति के प्रसिद्ध हैं) स्मृति यादि पुरानी बातों की जरूरत के समय स्मरण करिलेना कि पहले जन्मों में पैदाहोकर मैं दूध पीने और मांगने लगता था यहां भी वही जन्मकाल फिर वर्तमान हुआ है दूधके लिये रोकर याद दिलानी चाहिये–मेधा उस बुद्धिका नामहै जो समझि पाई हुई बातोंको हर वक्त यादि रखि सके–द्वेष यद्यपि वैर को भी कहिते हैं परन्तु ठीकनाम उस लक्षणकाहै कि दुःख या दुख देनेवाली वस्तु को न चाहै कि यह मेरे निकट न आवै यह द्वेष कहाता है सो अतिशय छोटे शिशुमें भी यह लक्षणस्वतः विना सिखलाने के उत्पन्न होताहै–बुद्धि उस ज्ञानका नामहै कि ये मेरे माता पिताहैं ये और सब गैरहैं ऐसी बुद्धि छोटे शिशु में भी उत्पन्न होजातीहै–सुख आराम इसको पहिंचानना कि यही प्राप्त होय ऐसा बोध अज्ञान बालकों में भी होताहै (रुपया पैसा कौडी आदि सन्मुख डालिके देखो कि उनमें जो अच्छा होगा उसी को उठावैंगे) धृति धीरज का नामहै कि बालक यद्यपि अकेला पड़ारोरहाहो कि माता किसी धंधेमें लगीहै कदाचित्‌ कोई गैर गोद में लेनाचाहै तौ न जावैगा माताचाहैं विलम्ब से आवैं तौ भी उसीके निमित्त धीरज किये रहिताहै–इन्द्रियांतर संचार यह कहाता है कि चाहैं तैसा अज्ञान बालक हो वहभी एक इंद्री से समझी बात को पाने के लिये दूसरी इंद्री पसारता है (दृष्टांत जैसे अबूझ बालक ने आँख से चन्द्रमा देखा तौ उसके लेनेको हाथ या मुँह पसारता है तात्पर्य इसका यह कि चन्द्रमा तक हाथनहीं जासकताहै इस बातकी अज्ञानता होते हुये भी इतना बोध होताहै कि हाथही या मुँहसेभी कोई वस्तु पकडी जायगी) इच्छा वह कहाती है कि किसी उपाय पर बुद्धि को दौड़ाना जैसा अभी जो दृष्टांत लिख चुके हैं कि चन्द्रमा को देखिके तोड़ने की इच्छा उत्पन्न करी–धारणा कहते हैं थाँभने को दृष्टांत जैसे बचाभी कहीं से फिसिलि के गिरने लगै और उसको मालूम हो जाय कि मैं गिराऊ हुआ तौ उसी समय यह धारणा उत्पन्न होजातीहै कि जहाँ तक हो सके अपने शरीर को थाँभता है कि न गिरने पाऊं–जीवित नाम है

प्राणों की धारणा का कि जिसको थोडा भी ज्ञान होगा अर्थात पशु पक्षी आदि भी प्राणों के थाँभने को समझते और थाँभने का उपाय भी जहाँ तक होसके सो करते हैं अर्थात मारने वाले को सामने आया देखिके आड में होजाना आदि अनेक प्रकार हैं जीवित के=स्वर्ग अर्थात ऊँची पदवी की पहिचानि और उसकी चाहना अपनी योग्यता के अनुरूप यह बालकों वा पशु पक्षी आदि में भी स्वतः बोध होता है—स्वप्न भी ऐसी चैतन्य वस्तु है जो बालक और पशुपक्षी आदि में भी उत्पन्नहोता है तब नाना प्रकार की त्रिलोकीदेखने मे आती है यह भी पूरे चैतन्य का काम है—भावोंकी प्रेरणा अर्थात इंद्री आदि जो जो देहके भावहैं तिनको यथायोग्य जैसीजैसी ज़रूरत के समय पर घुमाने चलाने फेरने आदि की ताक़ीद अजख़ुद होती रहिती है यह भी पूरे चैतन्य का काम है— मनकी चालि को देखो कि क्षणमात्र में लाखों कोस हज़ारों मंज़िल की ख़बरलेता और सैर करिआताहै यह कैसी पूरी चेतना का काम है—निमेष अर्थात नेत्र और पलकों का मीचना खोलना जो प्रसिद्ध है वहभी कैसी पूरी चेतना के आधीन है कि उनके इशारों से अनेक बात कही जाती हैं जिनको दूसरेलोगविना कहे समझ लेते हैं—पंचभूतों का आदान भी देखो अर्थात पृथ्वी जल तेज वायु आकाश ये पाँच भूत जो सामान्य भावसे जुदे जुदे उत्पन्न किये गये तिससे इनके पाँच समूह मात्र ठहिरे तिनका आदान उपादान किंतु सृष्टिकी रचना में लेकर लगाने की बारीकी शोचो कि बड़े छोटे सब जीव चर अचर जो बने और सदा बनते रहिते हैं तिन सबही में ये पाँचों महाभूत होते हैं अर्थात इन्हीं पाँचों के मेल से सब जीव होतेहैं तहाँ यह बारीकी शोचने के योग्यहै कि अति सूक्ष्म जंतुमें कितना कितना भाग इन पाँचों का पहुँचता होगा फिर उन भागों के पहुँचानेवाले की शक्ति शोचो कि थोड़ा थोड़ा पांचों में से लेना और यथायोग्य सब जीवों के चोला तक पहुँचाना फिर बडी युक्तियों की चुनाई करिके असंख्य मूर्ते दिखलाय देनी कि जो एकसे दूसरी कुछ अनूठी होगी=जबकि परमात्मा के इतने चिह्नप्रत्यक्ष देखे जातेहैं तिससे वह आत्मा देहसे उपरान्त जुदा रूपहै पर सबही के देहों में सर्वत्र छुआ रहिता क्योंकि ईश्वर है अर्थात सामर्थ्यमान् है जो कुछ जिस रीति से होना या करना चाहे सो सब संभवहै तिससे उसके होनेमें संदेह नहीं॥ १७४॥१७५॥१७६॥

———※———

(क्षेत्रज्ञस्यस्वरूपं)

बुद्धीन्द्रियाणिसार्थानिमनःकर्मेन्द्रियाणिच। अहंकारश्चबुद्धिश्चपृथिव्यादीनिचैवहि १७७
अव्यक्तमात्माक्षेत्रज्ञःक्षेत्रस्यास्यनिगद्यते। ईश्वरःसर्वभूतस्थःसन्नसन्सदसञ्चयः १७८

अर्थः—अर्थों सहित ज्ञानेन्द्री और कर्मेन्द्री तथा मन और अहंकार और बुद्धि और पृथिवी आदि भूतभी=अर्थात—बुद्धिवाली पाँचइन्द्रियाँ (श्रोत्र त्वचा चक्षु जीभ नासिका ये पाँच ज्ञानेन्द्री) अपने विषय रूपी अर्थों (शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन) सहित और मन जो सब इन्द्रियोंका राजाहै और कर्मेन्द्री जो काम करनेवाली पाँच इन्द्रियाँ (मुख हाथ पैर गुदा लिंग ये) प्रसिद्ध हैं और अहंकारको पहिले भी लिख चुके हैं तिसका गुप्तरूप यहाँपर समझ लेना प्रकाशमान चेष्टा नहीं और बुद्धि जो निश्चय करनेवाली महातत्त्व कहाती है और पृथिवी आदि पाँच भूत भी प्रसिद्ध हैं और=अव्यक्त नामसे प्रकृति•यह सब सामग्री मिलिके देहरूपी क्षेत्र(खेत) कहाता है सो इस क्षेत्र का जाननेवाला क्षेत्रज्ञ वही आत्मा कहा जाता है जो सर्व शक्तिमान ईश्वर तथा सर्व भूतोंमें संस्थित और है या नहीं इन दोनों लक्षणसे सपन्नहै क्योंकि (सत असत सभोंमें परिव्याप्त है प्रमाणों से पहिचाना जाताहै तिससेहै इस लक्षण से संपन्नठहिरा और प्रत्यक्षरूप देखने से कभी नहीं आता तिससे नहीं इस लक्षण से युक्त ठहिरा १७७ ॥ १७८ ॥

अब इस बुद्धि और इंद्रियाँ और अहंकारआदि छिपेहुये पदार्थों की उत्पत्ति जैसे परमात्मा के सकाश से होती है सोभी अगिले परिच्छेद में देखना•क्योंकि अब तक पृथ्वी आकाशआदि महाभूत और अन्य भाँतिकी सृष्टि का उत्पत्ति क्रम जहाँ तहाँ दर्शायागया•परन्तु बुद्धि और इन्द्री आदि भीतरी समवाय का उत्पन्न होना अबतक कहागया—यद्यपि तिहत्तरि के श्लोक से यह कहाथा कि गर्भमें युगपद्व उसीआत्मा के पाससे उत्पन्न हो जाताहै फिर उसी जघे ७५ पचहत्तरि श्लोक से यह भी कहा कि गर्भमें तीसरे महीना से इन्द्रियोंका प्रकाश होनेलगता है फिर सातवें आठवें म· हीनातक मन बुद्धि आदि सब चैतन्य समूह उसमें आजाता है परन्तु यह शरीरों में आजाना जुदी बातहै जो सदाजारी रहिताहै अर्थात सृष्टिके प्रारम्भ समय जो समष्टि रूप से बुद्धि आदिका चैतन्य समवाय पैदा होता है तिसका ब्योरा अब तक नहीं कहा गया सो कहेंगे॥

———※———

अथ-बुद्ध्यादीनामुत्पत्तिः स्वर्गमार्गादीनांचोत्पत्तेर्विवेकोनाम-ऊनविंशःपरिच्छेदः१९॥

इस परिच्छेद में बुद्धि आदि समवाय की उत्पत्तिमायाके पाससे जिस क्रमसेहुआ करतीहै सो जानी जायगी और स्वर्ग जानेवालों को मार्गजैसा मिलताहै सोभी कहा जायगा और पुनरावर्त्ती भी मुनीश्वर जो दूसरी सृष्टिमें फिर आकर वही अपना जन्म पातेहैं और सत्यलोक में जानेवालोंके विश्राम स्थान भी दर्शावेंगे॥

(सृष्ट्यारंभकाले बुद्ध्यादीना मुत्पत्तिक्रमः)

बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्तात्ततोऽहंकारसंभवः। तन्मात्रादीन्यहंकारादेकोत्तरगुणानिच १७९
शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसोगंधश्चतद्गुणाः। योयस्मान्निसृतश्चैषांसतस्मिन्नेवलीयते १८०
यथात्मानंसृजत्यात्मातथावःकथितोमया। विपाकात्त्रिःप्रकाराणांकर्मणामीश्वरोपिसन् १८१
सत्त्वंरजस्तमश्चैवगुणास्तस्यैवकीर्तिताः। रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद्भ्राम्यतेह्यसौ १८२
अनादिरादिमांश्चैवसएवपुरुषःपरः। लिंगेन्द्रियग्राह्यरूपःसविकारउदाहृतः १८३

अर्थः—अव्यक्त से बुद्धिकी उत्पत्ति•तिससे अहंकार का जन्म•अहंकारसे तन्मात्रों की उत्पत्ति•फिर उनसे आकाश आदि एक एक गुण अधिक वाले भी होते हैं और चकार के ध्वन्यर्थ से दश इंद्रियाँभी—अर्थात्—सत्त्व रज तम ये तीनों गुण एक सी बराबर तुल्यात्मक मिले हुये प्रकृति कहातीहै उसीका नाम शक्ति भी होता है वही न देखिपरने के हेतु से अव्यक्त कहा जाता है•उस अव्यक्त में से प्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है (यहां पर बुद्धि केवल इसको न समझना जो सिर्फ़ एक मनुष्य के हृदय में होतीहै अर्थात् उस महत्तत्त्व को समझना जो सृष्टि की आदिमें सबसे पहले अव्यक्त में से महाबुद्धि उत्पन्न होती है उसी की छाया सब जीवों के हृदय में आकार उस तरह से परती है कि जैसे जलमें सूर्यका आभास) उस महाबुद्धिमें से अहंकार उत्पन्न होताहै उसी अहंकार की छाया सब सृष्टि के जीवों पर परतीहै•उसी अहंकार में से आकाश आदि पाँच भूतों के पाँच बीज उत्पन्न होते हैं सो तन्मात्र कहाते हैं उन्हीं के ये नाम हैं (शब्द तन्मात्र १ स्पर्शतन्मात्र २ रूपतन्मात्र ३ रसतन्मात्र ४ गंधतन्मात्र ५) ये अति सूक्ष्म रूपी बीज होते हैं पाँच तन्मात्र कहेजातेहैं फिर इन्हीं मेंसे जुदे जुदे अपने बीजों से आकाश आदि स्थूल रूपी पाँच तत्त्व भी उत्पन्न होतेहैं अर्थात् (शब्द तन्मात्रके बीजसे आकाश) (स्पर्श तन्मात्र बीजसे वायु) (रूपतन्मात्र

बीजसे अग्नितेज) (रसतन्मात्र बीजसे जल) (गंध तन्मात्रबीजसे मृत्तिका पृथ्वी) इसी हेतु जिन बीजोंसे उत्पत्तिहुई उन्हीं बीजोंवाले गुण आकाशआदिपांचोंभूतमें प्रत्यक्ष होते हैं सोभी एक एक पिछलेमें अधिक गुण होता है अर्थात((आकाशमें अपनेही बीजका गुण एक शब्दमात्र होता है १—वायुमें अपने बीजका गुणस्पर्श और अपने बाप आकाशकाभी शब्द गुणहोताहै २—इसीतरह अग्निमें अपनेबीजका गुण रूप भी और दोनों बाप दादा के गुण स्पर्श और शब्द भी३—जलमें अपने बीजका गुण रस भी और तीनों पुरुषाओं के गुण शब्द स्पर्श रूप भी ४—मट्टी में अपने बीजका गुण गंधभी और चारों अपनेबड़ों के गुण शब्द स्पर्श रूप रसभी ये पांच होतेहैं५)) इसी मूल श्लोक से च कारसे दश इंद्री तथा और भी विशेषता कहिनी शेष रही सो अधिकोक्ति में देखना ॥ १७९ ॥ शब्द•स्पर्श•रूप•रस•गंध•ये उन्हीं आकाश आदि पांच भूतों के गुण होते हैं सो अभी पहिले श्लोकमें लिखचुके और यहभी एक नियम है कि उन बुद्धिआदि सभी में जो जिसमें से निकसा है सो उसी क्रमसे प्रलय के समय पर उसी में लीन होजाता है ॥ १८० ॥ याज्ञवल्क्य जी पहिली सब सुनाई हुई व्यवस्था को याद दिलाकर कहिते हैं कि ये श्रोता मुनीश्वरो आत्मा जो ईश्वर है सो जैसे जैसे अपने आत्मा को सृष्टि में सृजता है सो पहिले मैंने सब कहिकर तुमको सुनाया कि यद्यपि वह ईश्वर है तथापि मानस १ वाचिक १ कायिक ३ तीन प्रकार के कर्मों का विपाक फल स्वीकार करनेसे नाना रूप धरताहै (इसी प्रयोजनसे सबसे प्रथम इतनी सामग्री को तैयार करताहै कि अव्यक्त से बुद्धि आदि फिर आकाश से धरती पर्यंत रचिकर फिर उन्हीं से सब जीवों को उपजाताहै ॥ १८१ ॥तहां सत्त्व रज तम ये तीनों गुण जो तुमसे कहे गये सो उसी परमेश्वरके समझनेको कि उसकी एक अविद्या मायाके तीनों भागबराबर तीन गुण कहातेहैं(कि जैसाएकसौ उनासीश्लोक में अव्यक्त का स्वरूपकहा उसी को अविद्या समझो) तीनोंगुणकहेतिनमें रजोगुण तमोगुणइन दोही के आवेश करके यहपरमेश्वर आपही सृष्टि रूपहोकर सदापहिया कीतरह चक्कर खाताहुआ घूमता रहताहै यहभी तुमकोमैंसमझाय चुका एकसौ चौबीस का श्लोकदेखो॥ १८२ ॥ वही अनादि पुरुष परमेश्वर आदि वाला भी शरीर धारण करनेसे कहाता है कि जब प्रकृति के परिणामसे विकार सहित होताहै और लिंगों तथा इंद्रियों से देखने छुइ सकने योग्य रूप होता है यह भी तुम से पहिले मैं कहिचुका तहां फिर फिर जाके उन्हीं प्रकरणों को शोचो समझो (यहां लिंग और इंद्रियां,जो लिखो गई तहां इंद्रियां तो प्रसिद्धहैं कि उन्हीं से सब रूप देखे सुने

छुये जातेहैं और लिंग नाम है चिह्नका और इसी हेतु से देह कोभी लिंग कहते हैं कि वह जीवका स्वरूप समझने योग्य एक चिह्न है क्योंकि जो देह रूपी चिह्नकुछ न हो तो फिर जीव का लक्षण भी किसके सहारे से समझा जाय ॥ १८३ ॥

१७९ अधिकोक्तिः—ऊपर लिखी हुई उत्पत्ति में यह विशेषता भी समझने के योग्यहै कि तीनों गुण मिले हुये बराबर का नाम अव्यक्त कहा गया तो बुद्धि जो अव्यक्त से उत्पन्न हुई तिसमे भी तीनों गुण का प्रभाव होता है परंतु इतना अंतर होजाता है कि बुद्धि में तीनों गुण होने परभी सतोगुण अधिक होता है क्योंकि अव्यक्त नामकी प्रकृति में चैतन्य परमात्मा की छाया घुसने से अव्यक्त उमड़ि चलता है (जैसे किसी नाद या गड़हिले भरेहुये में कोई चीज औरभी डारने से उसका जल उमडि के बहि चलता है तैसेही तीनों गुण से बराबर भरे हुये अव्यक्त में चिच्छाया का प्रवेश होने से सतोगुण बढ़ि जाता है क्योंकि चैतन्य की छाया केवल सतोगुणमयी होतीहै तिसके प्रभावसे अव्यक्तकाभी सतोगुण उमड़ि चलताहै) इसी हेतुसे बुद्धि जो उसमेंसेउत्पन्नहुई तिसमें रजोगुण तमोगुण तौ बराबरहैं सतोगुण सबसे अधिकऔर उसी सतोगुणके प्रभावसे बुद्धिमें ज्ञानकीशक्ति रहाकरतीहै और इसीहेतु से बुद्धि परमात्माकी इच्छारूप कहाती और प्रमाण इसका धन्वन्तरिका वचनहै= यथा=ततोऽभवन्महत्तत्त्वंबुद्धितत्त्वापराभिधम् त्रिगुणंसत्त्वबहुलं निर्मलंस्फटिकोपमम् चिच्छायाप्राप्तचैतन्यंतदिच्छामयमीरितम्=अर्थात्—तिसअव्यक्तनाम प्रकृतिसे महत्तत्त्व पैदा होती हुई कि जिसका दूसरानाम बुद्धि तत्त्व भी होताहै वह तीनों गुणों से युक्तहै पर तौभी उसमें सतोगुण बहुत है क्योंकि चैतन्य पुरुष की चिच्छाया प्राप्त होनेसे चैतन्य होजाती और बड़ी निर्मल साफ बिल्लौरी पत्थर के समान चमकदार और उसी चैतन्य पुरुष की इच्छामय कहाती है कि जिधर को वह इच्छा दौड़ाना चाहै उधरीको दौड़तीहै=उसी त्रिगुणमयी बुद्धिका परिणाम (जैसेदूधकादहीहोजाना) जो विकारभी कहाताहै तिसका तेज खैंचिकर अहंकार की उत्पत्ति होतीहै इसीसे वह अहंकार भी तीन भाँतिका सात्त्विक राजस तामस जुदा जुदा होताहै (परन्तु अहंकारको उत्पन्नकरनेवाली बुद्धिमे सतोगुण अधिकहोना जो कहिचुके सो नहींरहिता किन्तु रजोगुण का तेज अधिक होजाता है) इन तीनिमें जो तामस अहंकार कहा तिसके तेजसे पांचतन्मात्रों की उत्पत्ति होती है फिर उन्हीं से आकाश आदि पाँच भूतोंकी उत्पत्ति०और एकसौ उनासी मूलश्लोक मे सबसे पीछे जो चकार आया तिसके ध्वन्यर्थ से यहाँ जो शेषरहे दोभाँतिके अहंकार सात्त्विक तथा राजस इन दोनों

के विकारसे परिणाम होकर जो तेज खिंचा तिससे दो भाँतिकी इन्द्रियाँ पैदा हुईं अर्थात् सात्विक अहंकारके तेजसे पाँचज्ञानेन्द्री और राजस अहंकार के तेजसेपाँच कर्मेन्द्री(यहाँ भी अहंकार और इन्द्रियोंको केवल एक पुरुषके देहमध्ये नहीं समझना किन्तु सृष्टिके प्रारंभ में समष्टिरूपसे जो अहंकार और इंद्रियाँ सब सृष्टिका एक मशाला पैदा कियागया तिसका यहाँ चर्चाहै फिर उसी समष्टिकी राशिमें से व्यष्टि रूप करि करि सब सृष्टिकी रचना करीजाती है) ॥ १७९ ॥ अब स्वर्गजानेवालोंका मार्ग उनके कर्मोंके आधीन आगे कहेंगे ॥

(स्वर्गगामिनांमार्गः)

पितृयानोऽजवीथ्याश्चयदगस्त्यस्यचान्तरम् । तेनाग्निहोत्रिणोयांतिस्वर्गकामादिवंप्रति १८४
येचदानरताःसम्यगष्टाभिश्चगुणैर्युताः । तेपितेनैवमार्गेणसत्यव्रतपरायणाः१८५

अर्थः—अजवीथी का और अगस्त्य का जो अन्तर है सो पितृयान है तिससे अग्निहोत्री स्वर्गको जातेहैं स्वर्ग की कामना रखनेवाले=और जे दानमें रत रहिनेवाले तथा आठगुणोंसे संयुक्त भी और सत्यके व्रतमें परायणहों वे भी उसीमार्गसे जातेहैं= अर्थात्—अजवीथी अमरमार्ग जो आकाश में देवतोंकी सड़कहै बुद्धिमानोंको दिखाई देतीहै कि रूप उसका आकाश दक्षिणमार्ग में (मूलपूर्वषाढउत्तराषाढ) इनतीनों के उदयवाले सब तारे मिलिकर अजवीथी वनी कहाती यह तारागण के शास्त्रोंका सिद्धांतहै•इस अजवीथीसे लेकर अगस्त्य के उदय होने योग्य ठिकानेतक बीचका जो अंतरहै वही (पितृयान) पितरोंका रास्ताहै कि जहाँसे पितृलोक में जाते आते रहितेहैं•उसी पितरोंके रास्ते होकर अग्निहोत्री लोग स्वर्ग में जाने पातेहैं कि जिन्होंने स्वर्ग देखने या भोगने की कामना से वेदोक्त अग्निहोत्रोंकी उपासना करी हो ॥१८४॥ और जे कोई सत्पुरुष दानदेना आदि स्मार्त कर्मोंमें अच्छे ढंगसे दम्भछोड़ि के निष्कपट तत्पर हुयेहों उसीमार्गसे जातेहैं•और वे भी कि जो आठगुण सेवन करने वालेहों अर्थात् (दया•क्षांति•अनसूया•शौच•अनायास•मंगल•अकार्पण्य•अस्पृहा) ये आठ लक्षण जो गौतम आदि आचार्योंके आदेश किये प्रसिद्ध हैं सो जिनमें हों वे भी उसी मार्गसे जातेहैं•और वे भी कि जो लोग सत्य बोलनेके व्रत में रंगे रहिते हों उसी मार्गसे जातेहैं ॥ १८५ ॥

अब नीचे उन सिद्धों की व्यवस्था कही जायगी जो बारबार अपना वही उत्तम जन्म आकर लेतेहैं अर्थात् किसी और योनिमें कभी नहींजानेपातेहैं यहभी एकविशेष

ढंग.उसी सर्व शक्तिमान् की इच्छा से नियमात्मक जानों केवल कर्मोंकी प्रधानता इसमें नहीं क्योंकि ईश्वर की सत्तामें एकसे एक नई अनूठी बात होतीहै इसी हेतु से कोई उसकी इच्छाका अंत नहीं पाताहै और इसीसे वेदोंकी श्रुतियां भी नेति नेति की पुकार किया करती हैं ॥

(पुनरावर्त्तिनोलोकाः)

तत्राष्टाशीतिसाहस्रामुनयोगृहमेधिनः। पुनरावर्तिनोबीजभूताधर्मप्रवर्तकाः १८६

अर्थः-तहाँ अट्ठासी हजार मुनीश्वर गृहमेधी सर्वधर्मोंके प्रवर्तक बीजभूत होके रहिते जो पुनरावर्ती होतेहैं=अर्थात्-यह संदेह खडा होताथा कि प्रलय के होजाने बाद पढ़ानेवालों के मिटिजाने से नवीन सृष्टि में नवीन देहोंको वेद विद्या आदिका बोध कुछ न होने से अग्निहोत्र आदिकर्म कैसे होसकते होंगे कि जिन धर्मोंके होने विना कैसे स्वर्ग मिलिसक्ता होगा-इसका समाधान समझाते हैं कि-तहाँ पूर्वोक्त पितरोंके मार्गवाले देशमें (प्रलयके समयपरभी) अट्ठासी सहस्र मुनीश्वर जो गृहस्थ धर्मके जाननेवाले (पंचयज्ञ आदि नित्य नैमित्तिक धर्मोंकी साधना करनेवाले) सब सामग्री साथलिये तबतक वहां टिकतेहैं कि जबतक दूसरी सृष्टिका प्रारंभहोय॰फिर वहाँसे आकर अपना वही जन्म यहाँ पातेहैं कि जैसा कुछ पहिली सृष्टिमें था इसी हेतुसे पुनरावर्ती कहाते हैं कि फिर फिर लौटि आना होता है॰वेही आकर सृष्टि के नवीन लोगोंको वेद विद्या आदि सिखलाकर धर्म मार्गमें प्रवृत्त करते हैं (फिर क्रम क्रमसे पढ़ने और पढ़ानेवाले और भी उत्पन्न होते रहिते हैं कि जैसे एक दीपक से असंख्य दीपक जुड़ते रहिते हैं) इसीलिये धर्मरूपी नवीन वृक्षको उपजानेवाले बीज भूत वे अट्ठासी हजार मुनि कहाते हैं क्योंकि,जो येही अट्ठासी हजार बीज संचित न रहिते तो फिर अग्निहोत्र आदि कर्म यहां क्योंकर जारी होसकते और धर्मरूपी वृक्षोंकी बढ़वारी भी बीजोंविना कैसे होती ॥ १८६ ॥

इसी भाँतिके और भी मुनि होतेहैं सो अगिले श्लोकों में देखो ॥

(अन्येपिस्वर्गामिनो मुनयः)

सप्तर्षिनागवीथ्यंतर्देवलोकंसमाश्रिताः। तावंतएवमुनयःसर्वारम्भविवर्जिताः १८७
तपसाब्रह्मचर्येणसंगत्यागेनमेधया। तत्रगत्वावतिष्ठन्तेयावदाभूतसंप्लवम् १८८
यतोवेदाःपुराणानिविद्योपनिषदस्तथा। श्लोकाःसूत्राणिभाष्याणियच्चकिंचनवाङ्मयम् १८९
वेदानुवचनंयज्ञोब्रह्मचर्य्यंतपोदमः। श्रद्धोपवासःस्वातंत्र्यमात्मनोज्ञानहेतवः १९०

अर्थः-सप्त ऋषि जो आकाश में उदयहोते दीखपरतेहैं॰नागवीथी अर्थात् ऐरा-

के विकारसे परिणाम होकर जो तेज खिंचा तिससे दो भाँतिकी इन्द्रियाँ पैदा हुई अर्थात् सात्त्विक अहंकारके तेजसे पाँचज्ञानेन्द्री और राजस अहंकार के तेजसेपांच कर्मेन्द्री(यहाँ भी अहंकार और इन्द्रियोंको केवल एक पुरुषके देहमध्ये नहीं समझना किन्तु सृष्टिके प्रारंभ में समष्टिरूपसे जो अहंकार और इंद्रियाँ सब सृष्टिका एक मशाला पैदा कियागया तिसका यहाँ चर्चाहै फिर उसी समष्टिकी राशिमें से व्यष्टि रूप करि करि सब सृष्टिकी रचना करीजाती है) ॥ १७९ ॥ अब स्वर्गजानेवालोंका मार्ग उनके कर्मोंके आधीन आगे कहेंगे ॥

(स्वर्गगामिनांमार्गः)

पितृयानोऽजवीथ्याश्चयदगस्त्यस्यचान्तरम् । तेनाग्निहोत्रिणोयांतिस्वर्गकामादिवंप्रति १८४
येचदानरताःसम्यगष्टाभिश्चगुणैर्युताः । तेपितेनैवमार्गेणसत्यव्रतपरायणाः१८५

अर्थः—अजवीथी का और अगस्त्य का जो अन्तर है सो पितृयान है तिससे अग्निहोत्री स्वर्गको जातेहैं स्वर्ग की कामना रखनेवाले=और जे दानमें रत रहिनेवाले तथा आठगुणोंसे संयुक्त भी और सत्यके व्रतमें परायणहों वे भी उसीमार्गसे जातेहैं= अर्थात्—अजवीथी असरमार्ग जो आकाश में देवतोंकी सड़कहै बुद्धिमानोंको दिखाई देतीहै कि रूप उसका आकाश दक्षिणमार्ग में (मूलपूर्वाषाढउत्तराषाढ) इनतीनों के उदयवाले सब तारे मिलिकर अजवीथी बनी कहाती यह तारागण के शास्त्रोंका सिद्धांतहै•इस अजवीथीसे लेकर अगस्त्य के उदय होने योग्य ठिकानेतक बीचका जो अंतरहै वही (पितृयान) पितरों का रास्ताहै कि जहाँसे पितृलोक में जाते आते रहितेहैं•उसी पितरों के रास्ते होकर अग्निहोत्री लोग स्वर्ग में जाने पातेहैं कि जिन्होंने स्वर्ग देखने या भोगने की कामना से वेदोक्त अग्निहोत्रोंकी उपासना करी हो ॥१८४॥ और जे कोई सत्पुरुष दानदेना आदि स्मार्त कर्मोंमें अच्छे ढंगसे दम्भछोड़ि के निष्कपट तत्पर हुयेहों उसीमार्गसे जातेहैं•और वे भी कि जो आठगुण सेवन करने वालेहों अर्थात् (दया•क्षांति•अनसूया•शौच•अनायास•मंगल•अकार्पण्य•अस्पृहा) ये आठ लक्षण जो गौतम आदि ऋषीश्वरोंके आदेश किये प्रसिद्ध हैं सो जिनमें हों वे भी उसी मार्गसे जातेहैं•और वे भी कि जो लोग सत्य बोलनेके व्रत में रंगे रहिते हों उसी मार्गसे जातेहैं ॥ १८५ ॥

अब नीचे उन सिद्धों की व्यवस्था कही जायगी जो बारंवार अपना वही उत्तम जन्म आकर लेतेहैं अर्थात् किसी और योनिमें कभी नहींजानेपातेहैं यहभी एकविशेष

तथैव=पुष्याश्लेयातथादित्यावीथीचैरावतीस्मृता=अर्थात्–पुनर्वसु पुष्य श्लेषा इन तीनों के जितने तारे हैं आकाश में सो सब मिलिके ऐरावती वीथी कही है=एवं=मूलाषाढोत्तराषाढाश्रजवीथ्यभिशब्दिता=अर्थात्–मूल पूर्वाषाढ उत्तराषाढ इन तीनों के सवतारा मिलि के अजवीथी कही गई सो यह एकसौ छहासी के श्लोक में आईथी इत्यादि अनेक और हैं पर यहां केवल नागवीथी का प्रयोजन है सो ऊपर लिख चुके॥ ०॥ यद्यपि संदेहों को मिटाते चलेआते हैं तथापि यहां औरभी नवीन शंकायें खड़ी हुईं कि जब ईश्वर आपही सर्व शक्तिमान् है तब उसको धर्म कर्म और वेद विद्या आदि के बीज संचित करनेकी क्या भीड़परी और क्या ऐसी अटकात ठहरी जो संसारी किसानों की तरह वह बीज संचय करवाता है क्या जैसे और बड़ी दुर्लभ चीज़ें उसकी इच्छा से उत्पन्न हुईं और होतीहैं तैसे इनको नहीं उत्पन्नकरसक्ता बल्कि बीजतो असंख्य सब चीज़ों के उसीकी इच्छा से कारण बिनाभी उत्पन्न होते हैं–और दूसरी यह शंकाहै कि प्रलय के होजाने में सब सृष्टि निरालोक होजाती है कि जिसके पीछे दिशायें और आकाश वायु आदि सब उत्पन्न किये जाते हैं तब जाकर कहीं दूसरी सृष्टिका प्रारंभ होताहै तो फिर क्या ऐसी दशामें स्वर्ग बनारहता है कि जिसमें अट्ठासी हज़ारसे दूने मुनीश्वर जाकर टिकतेहैं–और तीसरी यहशंका है कि ये मुनीश्वर पुनरावर्ती कहे गये जो पुनः पुनः सृष्टियों के प्रारंभ में सदैव कैसे लौटि आते हैं क्या ब्रह्मा की आयुसे भी अधिक इनकी आयु होती है जो सदा सब सृष्टियों की आदि में येही लौटि आते हैं–समाधान सुनो ईश्वर वही कहाता है जो (कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं वा समर्थः सईश्वरः शक्तित्रय समन्वितः) इन तीन भांति की शक्तियों से भरा पुराहो अर्थात् जो किसीसे भी न होसके तिस अपूर्व कर्म के करने को समर्थ होय•और जो होनेवाली अमिट कोई बात्ती है तिसे मेटि देने को समर्थ होय•और अन्यथा कर्तुं वा किंतु तीसरी यह शक्ति है कि जो कोई बात एकही प्रकार से होती है तिसको भी अन्य प्रकार से करसके और वा शब्दसे के विकल्पसे उस मुख्य प्रकार सेभी करसके अर्थात् जिसमें दोनों तरह स्वाधीन होवें कि चाहें तब और तरहसे करनेलगे या उसी एकप्रकार से होने देवे•इसका यह दृष्टांत यादिकरो कि जैसे मनुष्यके शरीर में सींग और पूंछ नहीं होतीहैं यह एकही प्रकार नियमात्मक और सबको मालूम है परन्तु ईश्वर ने अपनी अन्यथा करण शक्ति के प्रभाव से शृङ्गीऋषि आदि मनुष्यभी सींगवाले बनाकर दिखलाये यह कथन बाक़ी न रक्खा कि सींग होही नहीं सकते हैं ऐसेही [illegible] से पूंछ वाले भी मनुष्य उसने ब-

वत हाथीका रास्ता जो अश्विनी भरणी कृत्तिका नक्षत्रोंके सब तारे मिलि के उत्तर मार्ग में नागवीथी कहाती है वीथियोंका वृत्तान्त अधिकोक्ति में) सप्त ऋषि और नागवीथी का जो बीचरहा स्वर्ग लोकमें तहांभी उतनेही अट्ठासीहजार दूसरे मुनिलोग जाकर टिकते हैं कि जबतक प्राकृत किस्म का प्रलय होतारहिताहै ये मुनिलोग भी गृहस्थी झगड़ोंसे बचेहुये केवल ज्ञानके स्वरूप और तपस्या ब्रह्मचर्य्यसे संयुक्त होते हैं सब संग छोड़े हुये और मेधा नामकी बुद्धिसे संयुक्त होतेहैं कि जो कुछ पहिलेदेखा सुना तिसकी धारणा बनी राखैं किन्तु भूलें नहीं॥१८७॥१८८॥जिससे फिर अगिली सृष्टिके प्रारम्भमें•चारों वेद•पुराण•विद्यायें•उपनिषद•श्लोक•सूत्र•औरभाष्यजोसूत्रों की व्याख्यारूप होतेहैं•औरभी जोकुछवाणीरूप शास्त्रहोतेहैंमीमांसा वैद्यकज्योतिष आदि सो सबउन्ही मुनिसमूहोंसे प्रवृत्त होताहै अर्थात जो एकसौ छहासीके श्लोकमें गृहस्थी धर्म्म जाननेवाला एकमुनि समूहकहा दूसरा जो गृहस्थी जंजालोंसे बचाहुआ समूह इसी जघेपर दर्शाया गया इन्हीं दोनों समूह से सब धर्म्म कर्म्म और वेदविद्या आदिजारी होतेहैं इसीलिये ये सब धर्म्म प्रवर्त्तक भी कहाते हैं॥१८९॥इसी हेतुसे वेद अनित्य नहीं कहाजाता क्योंकि प्रलय कालमें भी नाश उसका नहीं होताहै–इसी लिये जो कुछ वेदों के वचनानुसार हो•यज्ञ•ब्रह्मचर्य्य•तप•दम•श्रद्धा•उपवास•स्वा-तंत्र्य अर्थात मुक्ति मार्गकी साधना•सो सबआत्मज्ञानके हेतुहैं–अर्थात जो वेदनित्य और सनातन ठहिरा तो उसके द्वारा जो जो धर्म्म कहा गया सो उसवेदकी प्रबलता सेही परमात्माका स्वरूप दर्शनकरानेवाला सत्यहै सदेहको ठिकानाइसमेंनहीं१९०॥

जबकि वेद नित्य और सर्वथा प्रमाण भूत ठहिरा तो सभी आश्रम के लोगों को वह वेद नाना प्रकारों से जानना और सेवन करना चाहिये तिसका प्रकार अगिले श्लोकों से दर्शावैंगे–यहां पहिले इन्हीं श्लोकों की अधिकोक्ति देखो ॥

१८७ अधिकोक्तिः–वीथियों का प्रसंग ऊपर आयाथा सो वीथी अनेक भांति की होती हैंकितु वीथी नामहै रास्ते का–यहां सिर्फ नागवीथी का चर्चा था उसके पासभी ऐरावती और गजवीथी नामसे दो वीथी और है सो बीचमें और दाहने वामे फटिकर तिराहा (वीथीत्रय) कहाता है एक एक वीथी तीन तीन नक्षत्रों के सबतारे मिलि कर कहाती है जैसा विष्णु पुराण का यह वचनहै कि=अश्विनीकृत्तिकाया म्यानागवीथीति शब्दिता=अर्थात–अश्विनी भरणी कृत्तिका इन तीनों के सबतारे मिलिकर नाग वीथी कही=औरभी=रोहिण्यार्द्रामृगशिरोगजवीथ्यभिधीयते=अर्था-त–रोहिणी मृगशिर आर्द्रा इन तीनों के तारे मिलि के गजवीथी कही जाती है=

में• फिर दक्षिणायन के लोकमें• फिर पितरों के लोकमें• फिर चन्द्रमा के लोकमें (इन सब देवतोंसे सत्कार पाने पीछे) फिर वायुके लोकमें जाकर वायुरूप होताहै• फिर वर्षाके लोकमें जाकर वृष्टिरूप होताहै•फिर जलके लोकमें आकर जलहीका रूप होके पृथ्वीपर आजाता है• फिर उस जलसे धरती में नानाअन्न औषधीकारूप होकर जीवोंके आहारद्वारा वीर्यरूप होजाता है•फिर वीर्यभी संसारी योनिमें पड़िके कोईसा गर्भरूपहोजाताहै•फिर वह गर्भ इसी संसारमें पैदाहोकर वेहीदुखसुखभोगता है कि जो कुछ शेषकर्मोंके प्रभावसे उस योनिमें भोगनेयोग्य ठहिरेहों॥१९५।१९६॥ जोकोई अच्छी होशियारी से ये दोनों मार्ग नहीं जानता किन्तु दोमें से किसी एक मार्गमें जाने योग्य उपायरूपी धर्मोंको नहीं सम्हारता है सो दंद शूकनाम सर्पआदि की योनि में जाताहै या पतंग टीड़ी आदि की योनि में या कीट झींगुर आदि की योनिमें या कृमि जो विष्टाआदिमें सूंडी परजातीहैं तिनकी योनिमें होताहै॥ १९७॥

अनंतरोक्त नीचयोनि में जानेको बचाना चाहैं तिनके लिये उत्तम योग साधनेकी उपासना अगिले परिच्छेद में दर्शावेंगे॥

अथ-अणिमाद्यष्टविभूतिप्रापकयोगाभ्यासनिरूपणादि मोक्षस्वरूपविवेकोनामविंशःपरिच्छेदः २०॥

इस परिच्छेद में योगाभ्यास रूपीमोक्षका प्रकार जानाजायगा कि जिसके सिद्ध होजाने में अणिमा आदि विभूतें भी मिलसकती हैं—और योगाभ्यास के उपरान्त इतर प्रकारोंसे भी मोक्षहोताहै वो भी वर्णन होंगे

(उपासनायाःप्रकारःयोगाभ्यासः)

ऊरुस्थोत्तानचरणःसव्ये न्यस्योत्तरंकरम्। उत्तानंकिंचिदुन्नाम्यमुखंविष्टभ्यचोरसा १९८
निमीलिताक्षःसत्त्वस्थोदन्तैर्दन्तानसंस्पृशन्। तालुस्थाचलजिह्वश्चसंवृतास्यःसुनिश्चलः १९९
संनिरुध्येन्द्रियग्रामंनातिनीचोच्छ्रितासनः। द्विगुणंत्रिगुणंवापिप्राणायाममुपक्रमेत् २००
ततोध्येयःस्थितोयोऽसौहृदयेदीपवत्प्रभुः॥ धारयेत्तत्रचात्मानंधारणांधारयन्बुधः २०१

अर्थः—दोनों जाँघपर उताने दोनों चरण स्थापित किये जो (पलौथीमारना) पद्मासन बांधनाभी कहाता है•वामे हाथ चितकिये हुये पर दाहनाहाथ चित किया

प्रत्यक्ष पासकते हैं ॥ तहां वनमें उनकी योग साधना दीक्षहोजानेपर, जिसमार्गसे जा॰ कर परमधाम तक पहुंचतेहैं सो मार्ग अगिले श्लोकों से दर्शाया जायगा॰ और दूसरा मार्ग वह भी कि जिसके द्वारा स्वर्ग जीतनेवालेपुरुष जाकर फिर यहीं लौटिके आतेहैं सो आगे कहाजायगा ॥ १९२ ॥

(परंब्रह्मप्राप्तिमार्गस्वरूपंदेवयानं)

क्रमात्तेसंभवंत्यर्चिरहःशुक्लंतथोत्तरम्। अयनंदेवलोकंचसवितारंसवैद्युतम्१९३
तत्तस्तान्पुरुषोऽभ्येत्यमानसोब्रह्मलौकिकान्। करोतिपुनरावृत्तिस्तेषामिहनविद्यते१९४

अर्थः—वे लोग (जिनका चर्चा एकसौबानवे श्लोकमें आचुका है) क्रमक्रम से इन स्थानोंको पहुंचते और टिकते जातेहैं कि टिकने मात्रसे इन्हीं लोकोंके देवतोंके समान तवतक रूपभी पलटताजाता और वेही सब देवता उनको अपनासा रूपतेजदे देकर मार्गकी रक्षा तथा सहायता साथ आगेको पहुंचाते जातेहैं तिनकेनाम समझो कि—अर्चिस् अग्निकालोक॰अहर् दिनकालोक॰शुक्लपक्षकालोक॰उत्तरायन कालो॰ क॰देवलोक॰ सवितृसूर्यलोक॰वैद्यु त बिजुलीकालोक॰अर्थात् ये सब लोक मुक्तिका मार्गहैं और यही रास्ता देवयानभी कहाताहै तिसमें बड़ेबड़े सुख सत्कारोंसे वे लोग चलेजाते हैं कि जिनकी योग साधना पूरी सिद्धिको पहुंचिगई हो—ततः सबसे पीछे वही सत्यनारायण पुरुष जो प्रथम मनसे ध्यान कियागयाथा आगे आकर इनसब योगधारियोंको ब्रह्मलौकिक बनाता है अर्थात् अपने सत्यरूपी परमधामके लोकमें उसी जथेके समान इनका रूपकरिके बसाताहै कि फिर उनको इहां संसार में नहीं आना होताहै॥ आगे एकरास्ता और भी दर्शावेंगे कि जिसमें जानेवाले फिर यहीं लौटिके आतेहैं ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

(पूर्वोक्तपितृयानस्वरूपं)

यज्ञेनतपसादानैर्येहिस्वर्गजितोनराः। धूमंनिशांकृष्णपक्षंदक्षिणायनमेवच १९५
पितृलोकंचंद्रमसंवायुंवृष्टिंजलंमहीम्। क्रमात्तेसंभवंतीहपुनरेवव्रजंतिच १९६
एतयोनविजानातिमार्गद्वितयमात्मवान्। दंदशूकःपतंगोवाभवेत्कीटोऽथवाकृमिः १९७

अर्थ—शास्त्रोक्त विधानों से यज्ञ तप दानों के बलसे जे कोई स्वर्ग जीतनेवाले पुरुष होतेहैं तिनका मार्ग स्वर्गफल भोगे पीछे इस क्रमसे है कि—प्रथम अग्नि की छोड़ि उसके धूमलोक में जातेहैं॰फिर निशा रात्रिके लोकमें॰फिर कृष्णपक्ष के लोक

हकी बजाई जाती है उतनी पंद्रह मात्राओं से प्राणायाम अधम कहाता है मध्यम उससेदूना कहा और श्रेष्ठ उससे तिगुना होताहै तैसेही उत्तम मध्यम नीच धारणाभी कहातीहैं कि जैसे प्राणायामों से साधी गईहों किंतु तीन तीन प्राणायाम से एकएक धारणा कही गई है तैसी तीन धारणा से एक योगभी तैसाही उत्तम या मध्यम या अधम योग होता है कि जैसी धारणा योगीने निज शक्तिके अनुसार साधीहो•ऐसा योग एकबार भी जो रोज रोज साधै सो योगी पुरुष कहाताहै•जो बारंबार अहर्निश ऐसे योगों का अभ्यास किया करताहो वही पूरा पूरा योगाभ्यासी होगा ॥२०१॥

पूरे पूरे योगाभ्यास के सिद्ध होजाने में जो शक्ति आदि फल होते हैं तिसके लक्षण आगे कहेंगे॥

(योगस्यसंसिद्धिलक्षण)

अंतर्धानंस्मृतिःकांतिर्दृष्टिःश्रोत्रज्ञतातथा। निजंशरीरमुत्सृज्यपरकायप्रवेशनम्२०२
अर्थानांछंदतःसृष्टिर्योगसिद्धिर्हिलक्षणम्। सिद्धेयोगेत्यजन्देहममृतत्वायकल्पते २०३

अर्थः—अंतर्धान•स्मृति•कांति•दृष्टि•श्रोत्रज्ञता•तथा अपने शरीरको छोडि के पराये शरीर में प्रवेश होजाना•और इच्छासे अर्थोंकी सृष्टि करलेना• यह सब योगसिद्धि का लक्षणहै और योगसिद्ध होजाने में देहको त्यागतेहुये अमृतत्व के लिये भी हकदार होताहै—अर्थात्—अणिमानामकी विभूति जिसका यह लक्षणहै कि अत्यंत सूक्ष्म रूप धर सकताहै जिसको और कोई न देखिसके वह सबकोदेखै यह अंतर्धान सिद्धि कहातीहै•स्मृति भी एक विभूतिहै कि जैसे मनुआदि महाऋषीश्वर उन पदार्थों को यादि करसक्ते थे जिनका यादि करना या देखना सुनना इन्द्रियोंके वशका न हो क्योंकि इन्द्रियाँउन्हीं वस्तुओंको ग्रहणकरसकतीहैं जो प्रत्यक्ष हो किन्तु स्मृतिरूपी सिद्धिवाला गुप्तपदार्थोंका स्मरण करसकताहै•कांति नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाय सो चाहैं तैसा कुरूप होनेपरभी अति सुन्दरकांति जैसी देवतोंकी चमक दमक होतीहै धारण करसकताहै•दृष्टिनामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाती है वह बीती हुई और होनेवाली अगिली पिछली बातोंको दूरसे भी प्रत्यक्ष देखता है• श्रोत्रज्ञता नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाती है सो अतिशय दूर देशमें भी जो बड़े बारीक शब्द किन्तु छिपीहुई बातचीत होरही हों तिनको ध्यानदेने से प्रत्यक्ष सुनता है•पर काय प्रवेश नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजातीहै सो चाहै तब अपना देह छोडि के दूसरे किसी के देह में प्रवेश होजाता है अर्थात् जैसा चाहै तैसारूप धारलेता है•

हुआ घरिके (अर्थात्हथेलीपर हथेलीधांभिके) फिर हृदयकेसमीप हाथोंको भेड़िके औरमुहको थोडासा ऊंचाकरिके॥१९८॥ आंखैंमीचेहुये आप सत्वस्थहोके (अर्थात् काम क्रोध आदिको छोड़े हुये सतो गुणमें स्थित होके) दांतोंसे दांत जुदे किये हुये मुहको मूंदेहुये जीभको तालुवे में अडिगगयांभे आप सुनिश्चल होय (जो देह कहीं से हिलै कांपै नहीं॥ १९९॥ सब इन्द्रियोंके समूहको उनके विषयोंसे खींचि के ऐसे आसनपर बैठाहो जो बहुतनीचा और बहुत ऊचा भी नहो (अर्थात् ऐसासमान आसन होय जिससे चित्तको विक्षेप न होसके) फिर दूना और तिगुना भी प्राणा-यामको आरम्भ करै (कि जिससे प्राणवायु निज वश में आजाय॥२००॥तिसपीछे इस प्रभुका ध्यान करना जो हृदयमें यह दीपके समान जोति रूपसे अचल विराज-मानहै (जिसका प्रसंग १११ एक सौ ग्यारह श्लोकसे उत्पन्न हुआथा) फिरयह बुद्धिमान योगी तहाँ अपने हृदय बीच आत्मा को मन के सन्मुख धारणा धरते हुये ध्यान में धरै (धारणा का स्वरूप अधिकोक्ति में॥ २०१॥

२०१ अधिकोक्ति:—जिस धारणा का चर्चा किया कि धारणा धरते हुये साथ ही साथ आत्मा को ध्यानमेंदेखैं—तिस धारणाका यह लक्षणहै कि चित्तका रोकना और उसके साथ नाभि चक्रसे लेकर नाक आगे तक विचरनेवाले प्राण वायु को वशमें राखना•भला कितनी देरतक ऐसी धारणा करनी तिसके समयका यह नियम है जाँघका घूंटा हिलाकर उँगुरियों से चुटुकी (छोटिका) बजाने में जितना स-मय लगता है सो एक छोटिका नामकी मात्रा कहाती है•ऐसी पंद्रह मात्रा तक जो प्राणायाम किया जाय सो तो नीच तुच्छ कहाता है•जो तीस मात्रा तक प्राणायाम साधा जाय सो मध्यम कहाता है•जो पैंतालिस मात्रातक प्राणायाम थांभा जाय सो उत्तम होताहै•इसीलिये मूल श्लोक में (द्विगुणं त्रिगुणं वापि) यह कहा था कि दूना और तिगुना भी प्राणायाम का अभ्यास करै अर्थात् नीच मध्य फिर उत्तम इसी क्रम से तीनौं प्राणायामको एकही धारणामें साधै सो यह एकही धारणा कहा-ती है (अथवा साधक पुरुष की शक्ति के अनुसार तीनौं उत्तम या तीनौं मध्यम या तीनौं अधम प्राणायाम हों) फिर ऐसी तीन धारणा साधने से योगधारणा नाम होता है=तथाच शास्त्रांतर वचनं=संधम्य छोटिकां दद्यात्कराग्रं जानु मण्डले मात्राभिः पंचदशभिः प्राणायामोऽधमःस्मृतः मध्यमोद्विगुणःश्रेष्ठस्त्रिगुणोधारणातथा त्रिभिस्त्रिभिःस्मृतैकैकाताभिर्योगस्तथैवच= अर्थात्—जो नियम दर्शाया गया तिसका यह प्रमाण वचनहै कि—जितनी देर में दोनौं घूंटे और हाथकी अंगुरी घुमाय के चु-

अपने शरीरको चाहै तैसा (गुरु) गरुआभारी बोझिल बनाइलेता है जैसे हनूमान्जी लक्ष्मणाके जिवाउनेको सजीवन मूल लेनेगये तव असंख्य औषधियों में उसको नहीं पहिँचानि सके तिससे अपने शरीरको इतना भारी बोझिल बनाया कि समस्तपर्वत को उखाडि के अपने शरीरपर धरिलासके-४लघिमा विभूतिवाला अपने शरीरको चाहैं तैसा(लघु)हल्का बनाइलेताहै जो उडिकरचाहैं तिस ऊंचेसे ऊंचेलोकमेंजासके-५ईशिता विभूतिवाला ईश बनिसक्ताहै अर्थात् चाहैं तहाँ किसी समाज में या किसी प्रवल मनुष्यके ऊपर भी ईशकी तरह आज्ञा चलाइ सक्ताहै कि उसके ईशित्वके प्रभाव से हर कोई आज्ञा मानिलेता है•यहाँतक कि स्थावर वृक्ष पत्थर आदि भी आज्ञा उसकी मानते हैं कि जिनपर चलाना चाहै•केवल आपही नहीं किन्तु जिस किसी को चाहै तिसके ऊपर भी ईशित्वका प्रभाव आरोपित करके आज्ञा दायक बनादेवै और इसीप्रकार अन्य विभूतियोंवाले भी अपने समानशक्ति औरोंको देस कतेहैं जितनी देरतक देना चाहै-६वशिता विभूतिवाला अपने वशित्व के प्रभावसे चाहै तिसको वशीभूत करसक्ता पर आप किसी के वश मे नहीं आता किन्तु सदा स्वतन्त्र बना रहिता है-७ प्राप्ति नामकी विभूतिवाला चाहै तहाँ अति दूर स्थानतक शीघ्र पहुँचि सक्ताहै-८प्राकाम्य नामकी विभूतिवाला जैसी कामनाकी इच्छा करै सो इच्छा पूरीहोतीहै॥ पहिले श्लोक मे कामावसायिता नाम जो आठवीं विभूति सबसे अधिक प्रतीत होतीहै तिसको अधिक नहीं समुझना किन्तु इसीदूसरे श्लोकमें जो गरिमानाम तीसरी विभूति कही सोई अधिक समझना क्योंकि गरिमा ऐश्वर्यों मे गिनती नहीं मानीगई है- और कामावशायिताका प्रयोजन यद्यपि प्राकाम्य के समानही देखिपरताहै तथापि दोनोंमें भेदहै कि प्राकाम्य तो केवल उसीकी इच्छा पूरी करनेवाली विभूतिहै और कामावसायिताका यह तात्पर्य है कि सिद्ध पुरुष जो कुछ अन्य जीवोंके लिये अपने संकल्पसे (अवसाय) निश्चय करार देवै कि अमुक प्राणी को मै धनी या राजा या पुत्रवान् या काना या कोढी करदेना चाहताहू सो अवश्य करि दिखाऊंगा वही करि दिखाताहै चाहैं निपट वध्याके पुत्र पैदा करवावै इत्यादि अपनी बुद्धिसे समझना=ये आठो विभूतियाँ साक्षात् परमेश्वरके ऐश्वर्य हैं इसी हेतु महादेव आदि बड़े बडे सब ईश्वर इन विभूतियों से सर्वथा आठो अग भरे पुरे होतेहै और इन्द्रादिक लोकपालआदि सब देवता इन विभूतियोंसे बहुत या थोडाही यथायोग्य भरे रहिते किन्तु उनमे जन्मके सायही ईश्वरकी दीहुई स्वाभाविक सिद्धि आतीहैं-इनके सिवाय सन्यासी आदि पूरे योगीश्वर अपनी योग साधना के

सबसे बड़ी एक यह विभूतिहै कि जिनपदार्थोंकी इच्छाहो वही सवरचिसके अर्थात उन पदार्थोंका मुख्यबीज और कारण आदि उपस्थित न होनेपर भी रचना करिलेता है जैसे विश्वामित्रने दूसरी सृष्टि रचिके दिखलाई थी या जैसे वशिष्ठ जमदग्नि आदि ने बड़े बड़े राजाओंकी पहुनई सेना सहित विना सामग्री के करदी थी इत्यादि॰योग सिद्धिकी यही पहिंचानि है कि जिसको ये सर्व विभूति या इनमें से विरली कोई सिद्ध होजाय तिसको योग सिद्ध हुआसमझो तिसके पीछे यह फल होताहै कि जब योगी अपना देह त्यागै तभी साक्षात्कार ब्रह्म में लय होनेवाला अमृत मोक्ष भी होता है॥ २०२॥ २०३॥

२०२अधिकोक्तिः—ऊपर चर्चाकरी विभूतियोंका ऋद्धि और सिद्धिभी नामहै इन कीमुख्य संख्या तो आठही नामोंसे विख्यातहै फिर उन्हीं आठके और भी अनेक भेद होतेहैं तिनके भी जुदे जुदे नाम रखिलिये जातेहैं जैसे योगीश्वरने इन्हीं दो श्लोकोंमें कुछ नामकहे=अथ विभूतीनां नामानि यथा=अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा। ईशित्वंचवशित्वंच तथाकामावसायिता—इत्यष्टैश्वर्याणि=श्लोकांतरंतु=अणिमामहिमाचैव गरिमालघिमातथाईशितावशिताचैवप्राप्तिःप्राकाम्यमेवच= अर्थात—आठविभूतियोंके ये नामहैं कि—१अणिमा॰२लघिमा॰३प्राप्ति॰४प्राकाम्य॰ ५महिमा॰६ईशित्व॰७वशित्व॰८कामावसायित्व॰ये आठौ सब जुदे जुदे एकही एक ऐश्वर्य भी कहातेहैं कि इनमें जिस किसीपर दोही एक ऐश्वर्य हों तिसको भी कुछ ईश्वर अर्थात ईश्वरका समीपी भाई बन्धु समझना क्योंकि जैसे इनके नामहैं तैसेही अर्थोंके अनुरूप अनूठे कामोंकी सिद्धि वशमें रहितीहै॰ दृष्टांत जैसे आठवीं विभूति कामावसायिताका यह अर्थहै कि काम जो मनकी कामनाहै चाहैं जैसे संकल्प से उत्पन्न कीजाय तिसको तत्कालही अवसाय नाम निश्चय करदेती है अर्थात जिस कार्यकी चाहना करै सो सब सिद्ध होताहै=दूसरे श्लोक में केवल एक इसीनामका अन्तरहै और विभूति दोनोंमें आठ बराबर हैं तिनके अर्थ ये हैं कि—१अणिमा विभूति वाला पुरुष जब चाहै तब ऐसा (अणु) छोटा बनजाताहै कि पत्थरकी चट्टान में भी घुसिजासके जिसमें वायुतक नहीं घुसिपाताहै इसी अणिमाके प्रभावसे देवता और सिद्धलोग अति सूक्ष्मरूप बने फिरते हैं कि जिसे कोई देखि नहीं पाता—२ महिमा विभूतिवाला चाहैतैसा(महान)बड़ा डीलडौल बढाइ सक्ताहै जैसे लंकाको जातेसमय हनुमान ने सुरसाके सन्मुख अपना डीलबढाया और वामन अवतारवाले प्रभुने बलि राजको छलने के निमित्त अपना डील बढाया था इत्यादि—३ गरिमा विभूतिवाला

अपने शरीरको चाहै तैसा (गुरु) गरुआभारी बोझिल बनाइलेता है जैसे हनूमानजी लक्ष्मणके जिवाउनेको सजीवन मूल लेनेगये तब असंख्य औषधियों में उसको नहीं पहिंचानि सके तिससे अपने शरीरको इतना भारी बोझिल बनाया कि समस्तपर्वत को उखाड़ि के अपने शरीरपर धरिलासके—४लघिमा विभूतिवाला अपने शरीरको चाहैं तैसा(लघु)हलुका बनाइलेताहै जो उडिकरचाहैं तिस ऊंचेसे ऊंचेलोकमेंजासके—५ईशिता विभूतिवाला ईश बनिसक्ताहै अर्थात् चाहैं तहां किसी समाज में या किसी प्रबल मनुष्यके ऊपर भी ईशकी तरह आज्ञा चलाइ सक्ताहै कि उसके ईशित्वके प्रभाव से हर कोई आज्ञा मानिलेता है•यहांतक कि स्थावर वृक्ष पत्थर आदि भी आज्ञा उसकी मानते हैं कि जिनपर चलाना चाहै•केवल आपही नहीं किन्तु जिस किसी को चाहै तिसके ऊपर भी ईशित्वका प्रभाव आरोपित करके आज्ञा दायक बनादेवै और इसीप्रकार अन्य विभूतियोंवाले भी अपने समानशक्ति औरोंको देसक्तेहैं जितनी देरतक देना चाहैं—६वशिता विभूतिवाला अपने वशित्व के प्रभावसे चाहै तिसको वशीभूत करसक्ता पर आप किसी के वश में नहीं आता किन्तु सदा स्वतंत्र बना रहिता है—७ प्राप्ति नामकी विभूतिवाला चाहैं तहां अति दूर स्थानतक शीघ्र पहुँचि सक्ताहै—८प्राकाम्य नामकी विभूतिवाला जैसी कामनाकी इच्छा करै सो इच्छा पूरीहोतीहै॥ पहिले श्लोक में कामावसायिता नाम जो आठवीं विभूति सबसे अधिक प्रतीत होतीहै तिसको अधिक नहीं समुझना किन्तु इसीदूसरे श्लोकमें जो गरिमानाम तीसरी विभूति कही सोई अधिक समझना क्योंकि गरिमा ऐश्वर्यों मे गिनती नहीं मानीगई है— और कामावसायिताका प्रयोजन यद्यपि प्राकाम्य के समानही देखिपरताहै तथापि दोनोंमें भेदहै कि प्राकाम्य तो केवल उसीकी इच्छा पूरी करनेवाली विभूतिहै और कामावसायिताका यह तात्पर्य है कि सिद्ध पुरुष जो कुछ अन्य जीवोंके लिये अपने संकल्पसे (अवसाय) निश्चय करार देवै कि अमुक प्राणी को मै धनी या राजा या पुत्रवान् या काना या कोढी करदेना चाहताहूं सो अवश्य करि दिखाऊंगा वही करि दिखाताहै चाहैं निपट वंध्याके पुत्र पैदा करवावै इत्यादि अपनी बुद्धिसे समझना=ये आठो विभूतियां साक्षात् परमेश्वरके ऐश्वर्य हैं इसी हेतु महादेव आदि बड़े बड़े सब ईश्वर इन विभूतियों से सर्वथा आठो अग भरे पुरे होतेहैं और इन्द्रादिक लोकपालआदि सब देवता इन विभूतियोंसे बहुत या थोड़ाही यथायोग्य भरे रहिते किन्तु उनमें जन्मके साथही ईश्वरकी दीहुई स्वाभाविक सिद्धि आतीहैं—इनके सिवाय संन्यासी आदि पूरे योगीश्वर अपनी योग साधना के

प्रभावसे यदि कोई एक दोहीको सिद्ध करिपातेहैं सोउनमें भी अद्यापिहोतीहैं दृष्टांत जैसे सैकरों वा हजारों की सामग्री उधार मगाकर बड़ा भंडारा किया फिर पीछेसे खाली तुंबी कमण्डलको औंधा करिके रुपये उलटदिये वह सभी सौदावालों को दे-दियेगये पर आप उसी तुंबी और लँगोटीके सिवाय कुछ आडंबर साथ नहीं राखते• दूसरा दृष्टांत जैसा किसी दुखियाने बूझा कि बाबाजी मेरे पुत्रको सोरहवर्ष बीते कि वह घरसे निकसि गया कभी उसकी खबरतक न मिली जानें कहां होगा•उत्तरदिया कि बचा तेरापुत्र अमुक विदेशमें था अब फलाने शहरमें आगया है बारहवेंदिन तेरे पासभी आवैगा सोई सब सत्यहुआ इत्यादि पूरे सिद्धलोग पृथ्वीपर अनेकहैं पर ऐसे लोग अपने आपेको छिपाये रहाकरते हैं क्योंकि संसारीलोग एकहू का भला होता देख सिद्धों की वाणी सत्यजानिके उनको चैन नहीं लेनेदेते किन्तु घेरते और अपने अपने दुखहेतुसे सताते हैं—योग साधना के विनाभी ईश्वरकी इच्छासेही विरले लोग सिद्धियोंको साथलिये पैदाहोतेहैं उनकी पहिले जन्मकी तपस्या साथ आकर यहां सिद्धिका फल देतीहै यद्यपि मूलश्लोकों में योगीश्वरके उच्चारण किये नाम अत्रोक्त आठोंसे मिलते नहींहैं तथापि वेनाम भी सब इन्हीं आठ विभूतियोंका विकार हैं सो इन्हींसे उत्पन्न होतेहैं सदेह न करना चाहिये॥२०२॥२०३॥

पूर्वोक्त प्रकारोंसे यज्ञ दान तपस्या आदि जिन लोगोंने नहीं किया और योग साधना भी करनेकी शक्ति जिनमें न हो तो ऐसे लोग जो अपने सत्वकी शुद्धि किया चाहें तिनकेलिये सुगम उपाय भी दर्शावेंगे सो अगिले श्लोकोंसे देखना॥

(उपायांतरंच)

अथवाप्यभ्यसन्वेदंन्यस्तकर्मावनेवसन्। अयाचिताशीमितभुक्परांसिद्धिमवाप्नुयात् २०४

अर्थः—अथवा (जोपूर्वोक्त नियम योग आदि न होसके तो) न्यस्त कर्माहोकर (अर्थात् सब कर्मों का त्यागी और विशेष कर निषिद्ध कर्मों का त्यागी होकर) वन मे निरुपद्रव स्थानपर बसता हुआ और शक्तिके अनुसार वेदको अभ्यास करते हुये विना मांगे जो प्राप्त होय उसी को परिमान से (थोड़ा थोड़ा क्षुधा निवारण के अनुमान से) भोजन करिके आयुको वितावै जिससे सत्वकी शुद्धि होजाय औरयथा शक्ति पूर्वोक्त आत्मा की उपासना में भी चित्तको लगायेरहै तो यह पुरुषभी मुक्ति के लक्षण वाली परम सिद्धि को पावता है॥ २०४॥

मुक्ति जो पदार्थ है सो केवल सन्यासी योगीको नहीं किंतु गृहस्थी भी मोक्षपद

को जातेहैं सो अब नीचे कहेंगे—इसी लिये अध्यात्म ब्रह्मकी उपासना वाले प्रकार ध्यान योगआदि जो जो कुछ वर्णन किये तिनकी साधनाका अधिकारी गृहस्थी सब से प्रथम है जो उससे बनिआवै—अर्थात् संसारी सामग्री छोड़िके संन्यासी होजाने से ही ब्रह्मकी उपासना का अधिकारी नहीं किंतु गृहस्थ में रहितेभी अधिकारीहोता है—तिससे अध्यात्मविद्याका प्रकरण जो ६२ बासठिकेश्लोकसे लेकरअबतकसंन्यासी के प्रसंगमें दर्शायागया सो सब गृहस्थीकोभी पढ़नाऔरअभ्यासकरनाचाहिये॥

(गृहस्थस्यापिमुक्तिर्भवति)

न्यायागतधनस्तत्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः। श्राद्धकृत्सत्यवादीचगृहस्थोपिहिमुच्यते २०५

अर्थः—गृहस्थी कि जिसके न्यायमार्ग सेही धन आता हो अन्याय से नहीं•और अतिथि प्रियहो किंतु आये हुये अभ्यागतों का सत्कार नित्य निरंतर करताहो•और श्राद्धकर्ता हो अर्थात् नित्य श्राद्ध और नैमित्तिक आदि श्राद्धों के अनुष्ठान में तत्पर बना रहिताहो•और सत्यही बचन बोलनेका स्वभावहो•और तत्त्वज्ञान (जैसा चौंसठि श्लोक से लेकर अभी तक वर्णन होतारहा तैसे आत्मतत्त्व के ध्यान) में भी विचार पूर्वक लगा रहिता हो•ऐसा गृहस्थी पुरुषभी मोक्षपद को पहुँचताहै=तिससे यही न समझ लेना कि ऊपर जो अध्यात्म विद्या संन्यासी के प्रसंग में कहीगई उससे केवल संन्यासी मुक्ति पाता होगा ॥ २०५ ॥

इति अध्यात्मप्रकरणं यह प्रकरण बहुत बड़ाहै कि आठवें परिच्छेदसे लेकर यहाँ तक बारह तेरह परिच्छेदों में पूराहुआ ॥

आचार कांडके प्रारंभ में यह कहाथा कि छे प्रकारके स्मार्त धर्महैं सो सबतीनों कांडमें वर्णन कियेजायँगे (वर्ण धर्म•आश्रम धर्म•वर्णाश्रम धर्म•गुणधर्म•साधारण धर्म•निमित्त धर्म•) अर्थों सहित लक्षण इनके आचार कांडके प्रथम श्लोकमें देखो इन में पाँच धर्म तो अबतक वर्णन होचुके केवल निमित्त धर्म शेषरहा सो अब आगे से प्रायश्चित्तों के स्वरूप द्वारा दर्शावेंगे किंतु निमित्त धर्म का यह अर्थ है कि जो करना चाहिये सो न किया जैसे उचित अवधि पर यज्ञोपवीत नहींकिया यद्वा उचित समयपर कन्याका द्विरागमन करना रोकदिया इत्यादि नानाप्रकारहैं जिनके न करने का दोष अथवा जो न करना चाहिये सो निषिद्ध कर्म किया जैसे अगम्यागमन आदि नाना प्रकार हैं जिनके करने का दोष•ये दोनों भाँति के दोषजोहैं सोई निमित्त माने जाते हैं कि इनको मिटाने के निमित्त से जो कुछ प्रायश्चित्त करना

प्रभावसे यदि कोई एक दोहीको सिद्ध करिपातेहैं सोउनमेंभी अद्यापिहोतीहै दृष्टांत. जैसे सैकरौं वा हजारौं की सामग्री उधार मगाकर बड़ा भंडारा किया फिर पीछेसें खाली तुंबी कमण्डलको औंधा करिके रुपये उलटदिये वह सभी सौदावालों को देदियेगये पर आप उसी तुंबी और लँगोटीके सिवाय कुछ आडंबर साथ नहीं राखते॰ दूसरा दृष्टांत जैसा किसी दुखियाने बूझा कि बावाजी मेरे पुत्रको सोरहवर्ष बीते कि वह घरसे निकसि गया कभी उसकी खबरतक न मिली जानें कहां होगा॰उत्तरदिया कि बचा तेरापुत्र अमुक विदेशमें था अब फलाने शहरमें आगया है बारहवेंदिन तेरे पासभी आवैगा सोई सब सत्यहुआ इत्यादि पूरे सिद्धलोग पृथ्वीपर अनेकहैं पर ऐसे लोग अपने आपेको छिपाये रहाकरते हैं क्योंकि संसारीलोग एकहू का भला होता देखि सिद्धों की वाणी सत्यजानिके उनको चैन नहीं लेनेदेते किन्तु घेरते और अपने अपने दुखहेतुसे सताते हैं—योग साधना के विनाभी ईश्वरकी इच्छासेही विरले लोग सिद्धियोंको साथलिये पैदाहोतेहैं उनको पहिले जन्मकी तपस्या साथ आकर यहाँ सिद्धिका फल देतीहै यद्यपि मूलश्लोकों में योगीश्वरके उच्चारण किये नाम अनोक्त आठौंसे मिलते नहींहैं तथापि वेनाम भी सब इन्हीं आठ विभूतियोंका विकार हैं सो इन्हींसे उत्पन्न होतेहैं संदेह न करना चाहिये ॥२०२॥२०३॥

पूर्वोक्त प्रकारोंसे यज्ञ दान तपस्या आदि जिन लोगौंने नहीं किया और योग साधना भी करनेकी शक्ति जिनमें न हो तो ऐसे लोग जो अपने सत्त्वकी शुद्धि किया चाहैं तिनकेलिये सुगम उपाय भी दर्शावैंगे सो अगिले श्लोकौंसे देखना ॥

(उपायां तरंच)

अथवाप्यभ्यसन्वेदंन्यस्तकर्मावनेवसन्। अयाचिताशीमितभुक्परांसिद्धिमवाप्नुयात् २०४

अर्थः—अथवा (जोपूर्वोक्त नियम योग आदि न होसकै तो) न्यस्त कर्मा होकर (अर्थात् सब कर्मों का त्यागी और विशेष कर निषिद्ध कर्म्मों का त्यागी होकर) वन में निरुपद्रव स्थानपर बसता हुआ और शक्तिके अनुसार वेदको अभ्यास करते हुये विना मागे जो प्राप्त होय उसी को परिमान से (थोड़ा थोड़ा क्षुधा निवारण के अनुमान से) भोजन करिके आयुको वितावै जिससे सत्वकी शुद्धि होजाय औरयथा शक्ति पूर्वोक्त आत्मा की उपासना में भी चित्तको लगायेरहै तो यह पुरुषभी मुक्ति के लक्षण वाली परम सिद्धि को पावता है ॥ २०४ ॥

मुक्ति जो पदार्थ है सो केवल संन्यासी योगीको नहीं किंतु गृहस्थी भी मोक्षपद

एवं मदिरा पीने वाला अपने योग्य नरकों को भोगे पीछे गदहा की योनि में या पुल्कस प्रतिलोम जाति (जो निषाद नाम एक मछेहरे के बीज से शूद्रीके पेटमें उत्पन्न होती है तिसके) यहाँ जन्मता तथा ऐसेही वेन एक महानीच जाति होतीहै तिसमें जन्म पाता है इसमें संदेह नहीं ॥२०७॥ सोना हरनेवाला अपनेयोग्य नरकों को भोगे पीछे कृमि कीट पतंग रूपपाताहै अर्थात मांस विष्टा गोबरआदिमें बारीक सूंडी जो अनेक तरह की उत्पन्न होते सो कृमि कहाते और उनसे कुछमोटे वड़े बिना हाड़ बिना परों के तुच्छ जीव चींटी दीमक आदि अनेक भाँति के सब कीट कीड़े कहातेहैं और टीडी ततैया आदि अनेक तरहके परवाले जीव उड़ने वाले पतंग कहाते हैं तिन में जन्म पाता है—एवं गुरुतल्पग जो गुरानी आदि पूज्य स्त्रियाँ गमन करनेवाला महापातकी है सो अपने योग्य नरकों को भोगने पीछे क्रमसे तृण गुल्म लता तीनोंका रूप जाकर होताहै अर्थात कांस डाभ आदि अनेक तृण होतेहैं तथा गुल्म भी गुच्छाके आकार वृक्ष जैसे सरो या मूंज आदि वड़े छोटे अनेक भाँति होते हैं तथा वनमें लता बेलिभी बड़ी छोटी अनेक भाँति होतीहैं इन तीनों में क्रमसे जन्म पाता है (इसी प्रकार ऊपर के ब्रह्महत्यारे आदिमें क्रमसे सब योनि मिलनी समभि लेना जोउनके लिये कहिचुके किंतु जैसा विकल्प उनमे लिखागया तिसका नियम नहींरहा क्योंकि क्रमसे यह कथन उन सबही का अध्याहार है ॥ २०८ ॥

२०७ अधिकोक्तिः—दोनों श्लोक में योगीश्वर के कहे नियम सर्वथा उस दशा पर आरूढ़ कियेगये कि जो इच्छा बिना ऐसे महापातक हुयेहैं—अन्यथा—इच्छा सहित इन्हीं पापों के करनेवाले इनसे भी अधिक दुखदाई योनियोंमें जन्मते हैं= यथाह मनुः=श्वसूकरखरोष्ट्राणांगोऽजाविमृगपक्षिणाम चंडालपुल्कसानांचब्रह्महायोनिमृच्छति॥ कृमिकीटपतंगानांविड्भुजांचैवपक्षिणाम हिंस्राणांचैवसत्वानांसुरापोब्राह्मणोव्रजेत ॥ लूताहिसरटानांचतिरश्चांचांबुचारिणाम हिंस्राणांचपिशाचानां स्तेनोविप्रःसहस्रशः ॥ तृणगुल्मलतानांचक्रव्यादांदंष्ट्रिणामपिक्रूरकर्मकृतांचैवशतशो गुरुतल्पगः=अर्थात्—जानि बूझिके इच्छा पूर्वक महा पाप करनेवालों की अपेक्षा मनु कहिते हैं कि उन मे से ब्रह्म हत्यारा अपने योग्य नरक भोगे पीछे•कुत्ता•सुअर• गदहा•ऊंट•बैल•बकरा•मेढा•और वनके मृग•पक्षी• और चण्डाल•पुल्कस•इन सब की योनि अनेक बार पाताहै॥ एवं मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण भी•कृमि•कीट•पतंगों में और विष्टा खानेवाले कौवा आदि पक्षियोंमे और हिंसक जीवोंमें जाकर जन्मता है॥ एव चोरी करने वाला ब्राह्मण भी•मकरी आदि जाल पूरने वाले जीव•सांप•

आवश्यकहो वही प्रायश्चित्त का नियम है सो निमित्त धर्म कहा जाताहै तिसका प्रारंभ अगिले परिच्छेद से होगा—तहाँ प्रथम उसके अधिकारी लोग वर्णन होंगे कि प्रायश्चित्त किनको करना आवश्यक है॥

——*——

अथ-प्रायश्चित्तापेक्षायांकर्मविपाकस्वरूप विवेकोनाम एकविंशः परिच्छेदः २१

इस परिच्छेद में प्रायश्चित्तों का प्रारंभ करनाचाहिके उसके योग्य अधिकारियों का कर्म विपाक वर्णन होगा जो प्रायश्चित्त करनेसे बचिगये हों॥

(कर्म विपाकः)

महापातकजान्घोरान्नरकान्प्राप्यदारुणान्। कर्मक्षयात्प्रजायंतेमहापातकिनस्त्विह २०६

अर्थः—महापातकों से उत्पन्न घोर दारुण नरकों को पायके कर्म भोग नाश होने से वेही महा पातकी यहाँ जन्मतेहैं—अर्थात्—ब्रह्महत्याआदि पांच महा पातक जो आगे कहे जायँगे तिनके करने वाले महापातकी कहातेहैं तिनके जुदे कर्मों के अनुरूप जो जो नरक स्थान महाघोर भयंकर दारुणदुख मिलनेवाले नियत होतेहैं तिनमें जायके निज निज अवधितक भोगने से कर्म भोगों का अंत होजाने पीछे शेष पापों के प्रभावसे वेही नारकीलोग इहाँ संसार में फिर आकर शूकर शृगाल आदि खोटी योनियोंमें वारंवार जन्मते रहिते हैं अर्थात् अनेक जन्मोंतक पीछा उनका नहीं छूटने सकताहै॰तथैव उपपातकी आदि भी निज कर्मोंके अनुरूप योनि पाते हैं सो सब आगे वर्णन करेंगे ॥ २०६॥

(कर्माधीन योनि भेदाः)

मृगश्वशूकरोष्ट्राणांब्रह्महायोनिमृच्छति। खरपुल्कसवेनानांसुरापोनात्रसंशयः २०७

कृमिकीटपतंगत्वंस्वर्णहारीसमाप्नुयात्। तृणगुल्मलतात्वंचक्रमशोगुरुतल्पगः २०८

अर्थः—ब्रह्महत्यारा अपने योग्य नरकों को भोगे पीछे मृग हरिण आदि बनजीवोंकी योनि या कुत्ता सूकर ऊँटों की योनि पाता है अर्थात् जिसके जैसे कर्मोंका प्रभाव ऊंच नीच होता है तैसीही योनिभी इन्हीं में से ऊँचीनीची उसको मिलतीहै—

एवं मदिरा पीने वाला अपने योग्य नरकों को भोगे पीछे गदहा की योनि में या पुल्कस प्रतिलोम जाति (जो निषाद नाम एक मछेहरे के वीज से शूद्रीके पेटमें उत्पन्न होती है तिसके) यहाँ जन्मता तथा ऐसेही वेन एक महानीच जाति होतीहै तिसमें जन्म पाता है इसमें संदेह नहीं ॥२०७॥ सोना हरनेवाला अपनेयोग्य नरकों को भोगे पीछे क्रमि कीट पतंग रूपपाताहै अर्थात मांस विष्टा गोवरआदिमें वारीक सूंडी जो अनेक तरह की उत्पन्न होते सो क्रमि कहाते और उनसे कुछमोटे वड़े विना हाड़ विना परों के तुच्छ जीव चींटी दीमक आदि अनेक भांति के सब कीट कीड़े कहातेहैं और टीड़ी ततैया आदि अनेक तरहके परवाले जीव उड़नें वाले पतंग कहाते हैं तिन में जन्म पाता है—एवं गुरुतल्पग जो गुरानी आदि पूज्य स्त्रियाँ गमन करनेवाला महापातकी है सो अपने योग्य नरकों को भोगने पीछे क्रमसे तृण गुल्म लता तीनोंका रूप जाकर होताहै अर्थात कांस डाभ आदि अनेक तृण होतेहैं तथा गुल्म भी गुच्छाके आकार वृक्ष जैसे सरों या मूंज आदि वड़ छोटे अनेक भांति होते हैं तथा वनमें लता वेलिभी वड़ी छोटी अनेक भांति होतीहैं इन तीनों में क्रमसे जन्म पाता है (इसी प्रकार ऊपर के ब्रह्महत्यारे आदिमें क्रमसे सब योनि मिलनी समझि लेना जोउनके लिये कहिचुके किंतु जैसा विकल्प उनमें लिखागया तिसका नियम नहींरहा क्योंकि क्रमसे यह कथन उन सबही का अध्याहार है ॥ २०८ ॥

२०७ अधिकोक्तिः—दोनों श्लोक में योगीश्वर के कहे नियम सर्वथा उस दशा पर आरूढ़ कियेगये कि जो इच्छा विना ऐसे महापातक हुयेहों—अन्यथा—इच्छा सहित इन्हीं पापों के करनेवाले इनसे भी अधिक दुखदाई योनियोंमें जन्मते हैं= यथाह मनुः=श्वसूकरखरोष्ट्राणांगोऽजाविमृगपक्षिणाम चंडालपुल्कसानांचब्रह्महायोनिमृच्छति॥ क्रमिकीटपतंगानांविड्भुजांचैवपक्षिणाम हिंस्राणांचैवसत्वानांसुरापोब्राह्मणोव्रजेत ॥ लूताहिसरटानांचतिरश्चांचांबुचारिणाम हिंस्राणांचपिशाचानां स्तेनोविप्रःसहस्रशः ॥ तृणगुल्मलतानांचक्रव्यादांदंष्ट्रिणामपिक्रूरकर्मकृतांचैवशतशो गुरुतल्पगः=अर्थात—जानि बूझिके इच्छा पूर्वक महा पाप करनेवालों की अपेक्षा मनु कहिते हैं कि उन में से ब्रह्म हत्यारा अपने योग्य नरक भोगे पीछे•कुत्ता•सूअर• गदहा•ऊंट•बैल•बकरा•मेढ़ा•और वनके मृग•पक्षी• और चण्डाल•पुल्कस•इन सब की योनि अनेक वार पाताहै॥ एवं मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण भी•क्रमि•कीट•पतंगों में और विष्टा खानेवाले कौवा आदि पक्षियोंमें और हिंसक जीवोंमें जाकर जन्मता है॥ एवं चोरी करने वाला ब्राह्मण भी•मकरी आदि जाल पूरने वाले जीव•सांप•

सरट अर्थात् गिरगिट•और तिरछे उड़नेपैरनेवाले जलचर जीव•और हिंसा करनेवाले अनेक जीव•और पिशाच•इनमें हजारों वार जन्मता है॥ एवं गुरुतल्पग पुरुष•तृग• गुल्म•लताओं में•और मांसभक्षी क्रव्याद राक्षस गिद्ध आदि में•और दाढ़ वाले सिंह व्याघ्र वाराह आदि में भी•और कसाई आदि क्रूर कर्म्म करनेवालों में सैकरों वार जन्म लेता है॥०॥ ये चार भाँति के महापातकी होतेहैं सो कहे गये पाँचवां इनका मददगार भी महापात की होता है यह दोसौ सत्ताइस के श्लोक में विवेचन होगा तहाँ समझ लेना॥०॥ येही महापातकी लोग इतने खोटेजन्म पाने पीछे जब कभी फिर मनुष्ययोनिमें आतेहैं तहाँ भी इनपापोंका वचाहुआ अंशांश पीछा नहींछोड़ता है अर्थात् उसकी यह पहिचान है कि जन्म के साथही कोई महारोग लगाआता है सो व्यौरे वार अगिले श्लोकोंसे दर्शावेंगे॥ २०७॥ २०८॥

(मानुष्येपिजन्मनिदुरितशेषेणैव चयरोगादियुक्ताजायंते)

ब्रह्महाक्षयरोगीस्यात्सुरापःश्यावदंतकः। हेमहारीतुकुनखीदुश्चर्मागुरुतल्पगः २०९
योयेनसंवसत्येषांसतल्लिंगोऽभिजायते। अन्नहर्ताऽऽमयावीस्यान्मूकोवागपहारकः २१०
धान्यमिश्रोऽतिरिक्तांगःपिशुन:पूतिनासिकः। तैलहृत्तैलपायीस्यात्पूतिवक्त्रस्तुसूचकः २११

अर्थः—ब्रह्महत्यारा फिर मनुष्य योनिमें आनेपर जन्मके साथही या थोड़ी उमरमें क्षयी रोगसे संयुक्त होताहै जोप्रायश किसी औषधी से जीता नहींजासक्ताहै इसीको जन्म रोगी कहा करतेहैं—ऐसेही निषिद्ध मद्यों का पीनेवाला पूर्वोक्त रीति से नरक आदि भोगने पीछे मनुष्य योनि में फिर आकर जन्म के साथही श्यावदंत होता है अर्थात् काला पीला मिलेहुये भद्दे वर्ण के दाँत उसके राक्षसी दाँतोंके समान होते हैं इसीसे पहिंचाना जाताहै कि पूर्व जन्मों में निषिद्ध मदिरा पानकरी थी—इसीप्रकार जन्मांतर में ब्राह्मण का सुवर्ण हरनेवाला फिर मनुष्य योनि में आनेपर कुनखीहोता है अर्थात् उसके वीसो नख कोड़ियों के समान बुरे विगड़े होते हैं—इसी प्रकार गुरुदारागामी अपने कर्मोंके नरक भोगने और उक्त योनियोंमें रहिआनेपीछे मनुष्य योनि में फिरि आनेपर दुश्चर्मा होताहै अर्थात् सब देहकी खाल उसकी बुरे कोढ़से विगड़ीहुई होतीहै॥२०९॥पाँचवां वह कि जो इनचारोंमें जिस किसीके साथ सहायता देने आदि प्रकारों से वसा हो सोभी उसीके समान नरक जन्म राजरोग आदि भोगने वाला होता है (यहाँतक स्थूल रूप से जो पाँच महापापी कहे उन्हींमें चोरों के कुछ और भी विशेष भेद आगे दर्शाते हैं कि) चोरों में जो अन्न का हरनेवाला

होय सो जन्मांतरमें आमयावी अर्थात् मंदाग्नि से संयुक्त महारोगी होताहै कि जिस को अन्न कभी पचता नहीं—एवं वाणी हरनेवाला जो किसी की अति प्रयोजनवाली वार्ता चुपके सुनिके चुरावै और विद्या संबंधी पुस्तक चुरावै या कोईसी मूल रूपी विद्या गुरु के दिये बिना किसी औरही के द्वारा वार्ता प्रसगसे चुराकर मगावै ऐसा वाग पहारक पुरुष जन्मांतर में गूंगा होकर जन्मता है ॥ २१० ॥ धान्यमिश्र जो मिलेहुये धान्य सतनजा आदि का हरनेवाला है सो अति रिक्तांग होता है अर्थात् यातौ कोई अंग उसका हीन हो या कोई अंग अधिक हो जैसे छे अँगुरी आदि का होना—एवं पिशुन चुगुलीखोर जो पराये सच्चे दोषको भी जहाँ तहाँ सुनाते फिरने का स्वभाव राखै सो पूतिनासिक रोगी होता है कि उसकी नाक से पीनसकी दुर्गंधि आयाकरै यह पहिँचान है—एवं तैल हरने वाला जन्मांतर में तेलही का पीनेवाला जन्तु विशेष होताहै जैसे दीपक में तेल पीनेको बहुतेरे जन्तु आतेहैं यद्वा मनुष्य हो के शरीर में कोई कर्म ऐसा कि जहाँ वारंवार तेलही मुहमें देनापरै सो समझलेना—एवं सूचक जो तर्कना की युक्तियों से पराये में दोषों की कल्पना सूचित करता या सो पूतिवक्त्र होके जन्म लेताहै अर्थात् सदा उसके मुहसें से दुर्गंधिआया करती है कि जिसपर कोई औषध भी नहीं चलिसक्ती है ॥ २११ ॥

२०६ अधिकोक्तिः—ऊपर श्लोकों में जो भाव वर्णन किया तिसका प्रमाण मनुके अग्रोक्त वचनसे भी ठीकहै=यथा=यद्वातद्वापरद्रव्यमपहृत्यबलान्नरः अवश्यंयाति तिर्यक्त्वंजग्ध्वाचैवाहुतंहविः=अर्थात्—जो कुछ हो सोई सही पराया द्रव्य कैसाहू प्रबलता से हरिके वह अवश्यही तिरछी योनियों में जन्मता है तथा औरों का होमाहुआ हविष्य खाइके भी तिर्यक् योनियोंमें जाता है (इसमें हविष्य कहिने से हर किसी तरहका धर्म सबंधी या पूजा संबंधी धन समझलेना और होमाहुआ कहिने से संकल्प कियाहुआ पुण्यके निमित्त किसी को सौंपा धराआदि समझलेना) इस वचनसे तात्पर्य यहठहिरा कि पापोंके नरक भोगने पीछे या विरला थोड़ पापवाला नरक भोगे बिना भी तिर्यक् योनि मे अवश्य जाताहै तिसपीछे मानुष योनिमें आके राजरोगी भी होता है=अथवा जैसा आगे दोसौ सत्तरह के श्लोक में दर्शावैंगे तैसा कोई दरिद्र आदि महा दुःख रूपी चिह्न उनमें होता है—इसी लिये उपपातकों का विपाक आगे और भी लिखतेहैं सो देखना और यह भी समझलेना कि यद्यपि ईश्वर की माया के सामने कोई एक सा निर्विकल्प नियम नहींहै कि वह निःशेषलिखा जाय अर्थात् हलुकेपतरे मोटे आदि पापोंके भेद से चाहैं तबचाहैं तैसी नियत योनि

का भी अलट पलट होजाता है तथापि उसको कभी न भी अंत में मनुष्य योनि भी अवश्य आकर मिलतीहै तभीउसके कर्मविपाक भी पहिचाने जातेहैं और भाग्यवश होकर उनका उपाय भी इसी मानुष योनिमें होसक्ताहै अन्यत्र नहीं क्योंकि कर्म्मों को उत्पन्न करने योग्य धरती एक यही मानुष देह होतीहै कि जैसा पहिले भी इसी मानुष देह से पाप कर्म हुयेथे ॥ २०९ ॥ २१० ॥ २११ ॥

(मनुष्येतरयोनिष्वपि दुरितचिह्नानिभवन्ति)

परस्ययोषितंहृत्वाब्रह्मस्वमपहृत्यच। अरण्येनिर्जलेदेशेभवतिब्रह्मराक्षसः २१२
हीनजातौप्रजायेतपररत्नापहारकः। पत्रशाकंशिखीहृत्वागन्धान्छुच्छुन्दरीशुभान् २१३
मूषकोधान्यहारीस्याद्यानमुष्ट्रःकपिःफलम्। जलंप्लवःपयःकाकोगृहकारीह्युपस्करम् २१४
मधुदंशःपलंगृध्रोगांगोधाऽग्निंबकस्तथा। श्विलीवस्त्रंश्वारसन्तुचिल्लीलवणहारकः २१५

अर्थः—पराई लुगाई को हरिके या ब्राह्मण का धन कोई सा सोनेके बिना हरि के ऐसे वन में जाके ब्रह्मराक्षस (एक भूत विशेष जो किसीको न देखि परै) होता है कि जहां पीने को जलभी नहीं ॥ २१२॥ पराये रत्नोंको हरनेवाला हीन जातिमें उत्पन्न होता है—साग जो अनेक पत्तोंका होताहो तिसको हरनेवाला मोरहोता है—उत्तम अतर आदि सुगन्धों की वस्तु चुरानेवाला छछूंदरि होता है कि वेही सुगन्धें उसकी देहसे दुर्गन्धि होकर फैलती हैं ॥ २१३ ॥ धान्योंका हरने वाला मूसा होता है—सवारी को हरने चुराने वाला ऊंटका जन्म पाताहै—फलहरने वाला वानर का जन्म—जलहरने वाला जलचर पक्षियोंका जन्म—दूध हरनेवाला कौवेका जन्म—घर की सामग्री चलनी चाकी आदि हरनेवालागृहकारी नामकीडा होताहै कि जोगीली माटी लाकर कुप्पीके समान घरचिनताहै कुम्हारी और लखहरी भी कहाताहै २१४॥ मधुसहत आदि हरने वाला दंश डांश माछड की योनि पाता है—पलंमांस को हरने वाला गिद्ध होता है—गऊ आदि हरनेवाला गोधा गोही का जन्म पाता—अग्निको हरनेवाला वगलेकी योनि में जाताहै—कपडा हरनेवाले श्विवी अर्थात उनकी देह में सुपेदकोढ़केधब्बेहोतेहैं—गांड़े आदिकारस हरने वाला कुत्ता होताहै—नमकहरनेवाला झिल्लीझंकारनाम झींगुरहोताहै जो रातिमें बड़े ऊंचे स्वरसे चिल्लायाकरता ॥२१५॥

२१३अधिकोक्तिः—ऊपर इसी श्लोक में जो हीनजाति में जन्म होना कहा था तिस के मध्ये मनुका यह वचनहै कि=मणिमुक्ताप्रवालानिहृत्वालोभेनमानवः विविधानिचरत्नानिजायतेहेमकर्तृषु=अर्थात—मणि मोती मूंगा आदि विविधि भांति के रत्नों को लोभी मनुष्य हरने वाला जन्मांतरसे हेम कर्त्तयोंमें अर्थात सुनार रणभरिया

ढवेरे आदि वर्णसंकर जातियों में उत्पन्न होता है ((यही मनुका बचन प्रमाण देकर प्राचीन टीकाकारने ऐसा अर्थ कियाहै कि (हीनजातौ हेमकाराख्यायांपक्षिजातौ) अर्थात हेमकारी नाम से कोई एक पक्षी चिड़िया की जाति में उत्पन्न होगा)) परंतु इस व्याख्या को आधुनिक लेखक अपने ध्यान से प्रमाण में नहीं लासका आगे जो कुछ हो सो सही ॥ २१३ ॥

(अभिप्रायविशेषादन्येपिकर्मविपाकाः)

प्रदर्शनार्थमेतत्तुमयोक्तंस्तेयकर्मणि। द्रव्यप्रकाराहियथातथैवप्राणिजातयः २१६

अर्थः-प्रदर्शन के लिये मैंने भी यह इतना चोरी मध्ये कहा द्रव्योंके प्रकार जैसे अनंत हैं तैसे प्राणियों की जातें भी=अर्थात-योगीश्वर याज्ञवल्क्य (जिनके मुख से थोड़े अक्षरोंवाले थोड़ेशब्द निकसेहैं जिसका अर्थ वड़े विस्तार वाला वड़ेविज्ञानियों के समझने योग्य होताहै) आपही सब ऋषीश्वरोंको समझातेहैं कि मैंने यहथोड़े ही श्लोकों से प्रदर्शन एक नमूना मात्र समझाने के लिये केवल चोरी मध्ये कहा (किंतु चोरीके सिवाय पाप और भी अनेकहै) और चोरी में भी केवल यही द्रव्य या येही प्राणी नहीं हैं जो मैंने कहि सुनाये क्यों कि संसारमें जैसे द्रव्योंके प्रकार भेद असंख्य तैसे प्राणियों की जातें भी अनंत हैं जो सब के सब नहीं सुनाये जासक्ते हैं तिससे इसी नमूना के अनुसार अपनी बुद्धिसे समझते रहिना यहा और भी स्मृतियाँ जो संसार में अनेक है तिनमे से जो जो बातें विशेष हों सो लेते रहिना ॥ २१६ ॥

२१६अधिकोक्तिः-इसी नमूना के अनुसार समझते रहिना•इसका दृष्टांत जैसे काँसा हरनेवाला हंस होगा•अथवा इसढगसे कि जिस कामकी वस्तु जिसने हरीहो (जिस कामकी हानि किसी को पहुँचीहो) उसी कामके भंग होजाने वाला लक्षण उसको प्राप्त होगा•दृष्टांत जैसेघोडा हरनेवालेको टाँग लूलीहोगी या जूता हरनेवाला उसका घोड़ा जाकर बनेगा इत्यादि वहुधा भेद अपार है•॥•स्मृतियों में जो जो बातें विशेष हों सो लेते रहिना इसका भी दृष्टांत जैसे शंखस्मृति में शंखनामा मुनि ने विरली बातों पर विशेषता दर्शाई है=तथाचाहशंखः=ब्रह्महाकुष्ठी तेजसापहारी मण्डली देवब्राह्मणाक्रोशकःखलतिः गरदाग्निदावुन्मत्तो गुरुप्रतिहंताऽपस्मारी गोघ्न श्चांधः धर्मपत्नींमुक्त्वाऽन्यत्रप्रवृत्तः शब्दवेधीप्राणिविशेषःकुण्डाशीभगभक्षो देवब्राह्मणस्वहरः पांडुरोगीन्यासापहारीचकाणः स्त्रीपरायेोपजीवीषंढःकौमारदारत्यागीदुर्भगः मिष्टैकाशीवातगुल्मी अभक्ष्य भक्षको गण्डमाली ब्राह्मणीगामीनिर्वीजो क्रूरकर्मा

वामनः वस्त्रापहारीपतंगः शय्यापहारीक्षपणाकः शंखशुक्त्यपहारीकपालीदीपापहारी कौशिकःमित्रध्रुक्क्षयी मातापित्रोराक्रोशःखण्डकार इति=अर्थात्-शंखमुनिने कहा है कि•ब्रह्महत्यारा कोढ़ी भी होता है (तात्पर्य्य इसका यह कि जैसा ब्रह्मघ्न का क्षयीरोग होना में कहिचुका कोई नियम नहीं किन्तु विरला कोढी भी होताहै ऐसेही सबके साथ विकल्प भेदोंको समझते रहिना) धातुओं का हरनेवाला मण्डली होता अर्थात् उसकी देहमें चक्रमण्डल के आकार कोढ होता है (धातुकहिनेसेसिर्फ सोना आदि लोहा पर्य्यंतही न समझली किन्तु पारा फिटकरी हरिताल हिंगुल गेरु मनसिल आदि भी अनेक जो जो पर्वत की खानिसे उत्पन्न हों सो सब समझलेनो) देवता या ब्राह्मण को खोंटा वचन कहिने वाला गंजा होताहै-विषदेने वाला और आगि लगानेवाला दोनों भ्रष्टबुद्धि सिड़ी विक्षिप्त होतेहैं-गुरुओंके वचन को अपनी तर्कसे काटने उड़ानेवाला अपस्मारनाम मृगी रोगसे संयुक्त होताहै (कि जिसमिरगी के आते समय सब शरीर की सावधानी भूलिजाती है यथार्थ से यही उसका प्रतिकार ठीकठीक है) गऊको मारनेवाला अन्धा होता है-विवाहिता पत्नी को निपट छोड़िके और स्त्रियों में प्रवृत्ति करनेवाला शब्दवेधी नामसे कोई नीच जन्तु होता है जो शब्दही के प्रभाव से वेधा जाता है-कुण्डाशी पुरुष अर्थात् पतिके जीवते जिस स्त्रीनें जारके बीजसे जो पुत्र पैदाकिया हो सो कुण्ड कहाताहै ऐसे किसी कुण्ड के हाथसे जो कोई अन्नभोजन करै या कुण्ड की छठी दसूठनि आदि में भोजनकरै सो कुण्डाशी एक प्रकारका पापी होताहै वही जाकर जन्मांतर में भगभक्ष प्राणी होता है अर्थात् (भगनाम यहाँ योनि और गुदा का भी समझना तथा भगनाम स्त्री और पुरुषों के वीर्यका भी होता है तहाँ) भगंदर आदि दुष्ट रोगों में कीड़े जो परते हैं सो भगभक्ष कहाते हैं क्योंकि सड़ेगले वीर्य्य को या रक्त मांसको भक्षण करतेहुये उसी जघे रहितेहैं ऐसा जन्म उस कुण्डाशी को मिलता है-देवता का द्रव्य और ब्राह्मण का द्रव्य हरनेवाला पाण्डुरोगी होताहै-न्यास धरोहरिका हरनेवाला काना होता है (धरोहरि भी दोभाँतिकी होतीहै एकतौ दिखाइके सौंपीहुई दूसरी मुदोंह की जो चीज सौंपी जाय या कहिकर कहीं गाड़िदीजाय तिनका हरनेवाला न्यासापहारी कहाता) स्त्रियों को बेचिबेचिकर या बिकवाइकर दलालीसे जीविका रोजिगार करनेवाला निपट नपुंसक होताहै-कौमार अवस्था (सोरह वर्षकेलगभग) वाली भार्य्या को त्यागनेवाला दुर्भग होता है अर्थात् महादरिद्री कुरूप कुबड़ी आदि सब तरह से दुर्भागी-मीठी आछी वस्तुको अकेलाही दिखायकर खानेवाला तथा स्वकीय बच्चे

आदिसे छिपाइकर खानेवाला वायगोलाके असाध्य रोगसे अत्यंत पीड़ित होताहै-अभक्ष्य वस्तु जो खाने योग्यनहीं तिनको खानेवाला गराडमाली अर्थात कंठमालाके रोगसे संयुक्त होताहै (इन बातों में ये भेद भी सर्वत्र लगे हुये हैं कि जिसने थोड़ा ही अभक्ष्य खाना खाया हो तिसकारोग दवा करने से दबिजायगा पर जिसने अच्छा निर्भय होके सदा सेवन कियाहोगा तिसका रोग भी असाध्य होकर सदा बनारहिता है) क्षत्री आदि अन्य वर्ण का मनुष्य जो ब्राह्मणी से गमन करनेवाला हो निर्वीजी अर्थात वीर्य्य से विहीन और वंशसन्तान से विहीन होता है(सर्वत्र केवल यही नियम नहीं है कि जन्मांतर में जाकर फलहो किन्तु बहुधा पाप ऐसे तीव्रहोतेहैं कि जिनका इसी देहमेंफल होताहै फिरआगले जन्मोंको भी खायजाताहै इसबातका वृत्तांत पहले एक सौ तेंतीस के श्लोकमें लिखचुके तहाँ देखो सोसर्वत्र समझते रहिना) क्रूरकर्म जो अनेक भाँति के सब जीवों को दुखदेना आदि भयंकर होतेहैं तिनका करनेवाला बौना होता है अर्थात बिलंदिया डील जो सबकामों में निकम्मा और किसी की निगाह में कुछ नहीं जँचता है-वस्त्रों का हरनेवाला पतंग जाकर होता है अर्थात टीड़ी ततैया आदि उड़नेवाला जन्तु-पलँग बिछौना आदि शय्या सेजकी सामग्रीहरने-वाला क्षपणक होता है अर्थात नंगा निर्लज्ज फिरा करता है कि जिसके घर ठौर ठिकाना कपड़े आदि कुछ भी नहीं-शंख सीपी आदि चीज़ोंका हरनेवाला कपाली होताहै अर्थात नकली अघोरी जो मनुष्यकी खोपड़ी लिये फिरता और उसी में सब जातिकी जूठखाया करताहै-दीपापहारी जो देवताके स्थानपर या कहीं पथिकोंको आरामको प्रकाश किये हुये दीपक उठालेजाने का हमेशाही अभ्यास रखताहो सो उल्लू चिड़ियाका जन्म पाता है जो दिनभर अँधेराभोगै-मित्रों से द्रोह तथा धोखा धड़ी करनेवाला क्षयी रोग से संयुक्त होता है-माता पिताको गाली देने और क्रूर वचनों से घुड़कने वाला खराडकार के घर जन्म पाता है अर्थात दीवार बनाना वा धरतीखोदना या लकड़ी पत्थरकाटना आदि नीचधंधेवाले सबखगडकार कहातेहैं-यह सब शंखजीने कहा॥०॥इसके सिवाय जो कुछ गौतमने विशेषता कही सो अब आगेसे दर्शाते हैं-यथाह गौतमः-अनृतवाग्उल्वणः मुहुर्मुहुःसंलग्नवाक् जलोदरोदार त्यागी कूटसाक्षीश्लीपदी उच्छिन्नजंघाचरणः विवाहविघ्नकर्त्ताछिन्नोष्ठःअवगूरणो छिन्नहस्तः मातृघ्नोऽन्धः स्नुषागामीवातवृषणः चतुष्पथे विराणूत्रविसर्जनान्मूत्रकृच्छ्री कन्यादूषकःषंढः ईर्ष्यालुर्मशकः न्यासापहारीअनपत्यः रत्नापहारीअत्यंतदरिद्रःविद्या विक्रयीपुरुषमृगः वेदविक्रयीद्वीपी बहुयाजकोजलप्लवः अयाज्ययाजकोवराहः अन-

संन्निसभोजीवायसःनिर्घ कभोजीवनरः यतस्ततोऽश्नन्मार्जारःकक्षवनदहनात्खद्योतः दारुकाचार्योमुखविगन्धिः पर्युषितभोजीकृमिः अदत्ताऽऽदायीवलीवर्दः मत्सरीभ्रमरः अग्न्युत्सादीसएडलकुष्ठी शूद्राचार्यःश्वपाकः गोहर्त्तासर्पः स्नेहापहारीक्षयी अन्नापहारी अजीर्णी ज्ञानापहारीमूयकः चण्डालीपुल्कसीगामी अजगरः प्रव्रजितागमनेमरुपिशाचः शूद्रीगमनेदीर्घकीटः सवर्णाऽभिगामीदरिद्रः जलहारीमत्स्यः क्षीरहारीवलाकः वार्धुषिकोऽङ्गहीनः अविक्रेयविक्रयीगृध्रः राजमहिषीगामीनपुंसकः राजाक्रोशको गर्दभः गोगामी मण्डूकःअनाध्यायाध्ययनेशृगालः परद्रव्यापहारीपरप्रेष्यःमत्स्यवधेगर्भवासोइत्येतेऽनुर्ध्वगवनाः इति=अर्थात्–गौतमजी कहिते हैं कि–मिथ्यावादी पुरुष गिलविली वोलीसे संयुक्तपैदा होताहै पर जो झूठबोलनेका बारंबार अभ्यास रखताहो सोनिपट हकला पैदाहोताहै–स्त्रीकात्यागनेवाला जलोदर महारोगसे पीड़ित होताहै–कूटसाक्षी जो जालसाजीसे गवाहीदेतारहा वह श्लीपद रोगीहोताहै कि जिसकापावँ हाथीके पैर समानरोगीहो और जाँघपैरभी कराहूटाहोताहै–जिसने किसीके विवाहमें भंगडाला हो सोफटे ओठ या गालकटा होताहै–अवगोरणी जो घुड़की साथ मारनेको हाथ या डंडाआदि उठावनेका अभ्यास रखताहो तिसकाहाथ लुंज या कटाहोगा–माताकोमारनेवाला आँखों से अंधा सूराहोताहै–पुत्रकीवधूगमनकरनेवालेकेआँड़ोंमें सोजाकआदि वातरोग महाभयंकर होतेहैं–चौराहामें विष्ठा मूत्र करने वा फेंकनेवाले को मूत्रकृच्छ्ररोग चिनिग प्रमेह–कन्यादूष जो कन्यादूषितकरै वा दूषणलगावै सो जन्महीसे नपुंसक पैदा होताहै–ईर्षालू जो पराई उन्नति आदिको देखि सुनिके न सहिसके सो मशक योनिमें माछर होताहै–माता पिता से विवाद रखनेवाला अपस्मारी मृगीरोगसे संयुक्त–न्यास धरोहरि हरनेवाला संतानसे विहीन होगा–रत्नों का हरनेवाला महादरिद्री होगा–विद्या विक्रयी जो मजूरी लेकर विद्यापढ़ावै सो पुरुष मृग अर्थात् मनुष्यों में गीदड़ के तुल्य ओछा होगा–वेदको बेचनेवाला वाघ बघेरा चीता होगा–बहुयाजक जो बहुतसी जातों को बलिदान आदि यजन पाथाईकर्म कराताहो सो जलमें तैरनेवाला पक्षी होगा–अयाज्य अति नीचजातें जिनको यजन करानेका निषेध हो तिनको पाथाई करनेवाला सूअर की योनि में जाताहै–विना नौताहुआ जो आपही जाकर भोजनकरै सो कौवाहोगा–मीठीवस्तु अकेला खाय सो बंदरहोगा–जहाँ तहाँ बिना विचारे खाताफिरै वो बिलारहोगा–जो जंगल के घास फूस और बन में आगि लगावै सो जुगुनू पटवीजना जंतु होताहै–दारुकाचार्य किन्तु शिल्पी चित्रकार आदि मंदजातोंका आचार्य बनै सो मुखविगन्धिनाम कोढ़ाहोताहै

जो तेलको बहुधा पियाकरता है मुखमें उसके दुर्गंधि बहुत आतीहै जो किसी चीज़में मुहलगावे तो तत्काल उस चीज़में दुर्गंधि आने लगतीहै इसी हेतु उस कीड़े के नाम भी तैलपायी मुखविष्टा आदि कहेजाते हैं—पर्युषित भोजी जो पक्वान्नके सिवाय धरे वासी आदि बुसे अन्नभोजनकरै सो कृमिका जन्मपाताहै—अदत्त आदायी जो विना दई वस्तुको आपहीलेले सो वैलहोगा—मत्सरी जो अति क्रोधी और ईर्ष्यावान् हो सो भौंरा होगा—अग्न्युत्सादी जो दवी हुई अग्नि को उखाड़ि के छेदि कोंचि विगाड़ै सो मंडल कोढ़ीहोगा—शूद्रों को आचार्य वनिके वेदोक्त यज्ञकरावै सो श्वपाकजाति होता है कि जंगलों में रहिते हुये कुत्तोंको पकाकर खातेहैं—गऊहरनेवाला सांप होगा—घी तेल आदि चिकनाई हरनेवाला क्षयीरोगसे असाध्य होताहै—अन्नोंको हरनेवाला मंदाग्निरोग से अजीर्णवान् होगा—ज्ञानापहारी जो किसी को उचित समयपर ज्ञान देना बोधकराना योग्यथा सो जानि बूझिकार न दे तो निपट गूंगा पैदाहोगा—चांडाली और पुल्कसी नीच स्त्रियों का गमन करनेवाला अजगर होगा—संन्यासिनी के साथ भोग करने से मरुतदेश में पिशाच होगा जहां झंझावायु तथा रेत आदिके सिवाय जल फल फूल वृक्ष आदि कुछनहो—शूद्रीकेसाथ मैथुनकरनेसे बड़ाकीड़ाहोगा—अपने वर्णकी स्त्रियां गमनकरनेसे दरिद्रीहोगा—जलहरनेवाला बड़ामत्स्यमगरसुंसघड़ियाल आदिहोगा—दूधहरने वाला वगुलाहोगा—वार्धुषिक जो बहुतकड़ा विआज किस्ति आदिसे लेकर जीविका करै सो अंगहीनहोगा—जिनवस्तुओं का वेचना निषेधकिया गया तिनका वेचनेवाला गृध्रहोगा—राजकी रानीसाथ मैथुनकरनेवाला पुरानपुंसक पैदाहोगा—राजाको खोटावचनसुनानेवाला गदहाहोगा—गऊ आदि पशुओंकी योनि में मैथुन करनेवाला मेढ़क होगा—अनाध्यायजिन तिथियों में वेदपढ़ने का निषेधहै तिनमें पढ़ने से सियार होगा—छोटीमोटी पराई चीजें हरनेवाला पराया प्रेष्यधावक हुकुम वरदारहोगा—मत्स्य मछरी आदि जलजीवों का वध करनेसे उन्हीं के गर्भ में वसना होगा यद्वा उस गर्भ में कि जो स्त्रियोंका गर्भ कई वर्षोंतक नहीं वाहर आता है—येइतने जो कहेगये सो सवके सव ऊपर स्वर्ग में नहीं जाने पातेहैं यहांतक जीने कहा॥ ० ॥ जैसा यह पुरुषों के अवलम्बसे चर्चाकिया तैसास्त्रियां भी उनपापोंको करनेवालीं उन्हीं जातों में स्त्रियां जाकर होती हैं जहां पुरुषोंका जन्म होना कहा गया इसके मध्ये मनुका अग्रोक्त वचन देखो=यथाहमनुः=स्त्रियोप्येतेनकल्पेनहृत्वा दोष मवाप्नुयुः एतेषामेवजंतूनां भार्यात्वमुपयांतिताः=अर्थात्—स्त्रियां भी इसी तौर से उक्त द्रव्योंको हरिके उन्हीं दोषोंको पावैं किन्तु इन्हीं पूर्वोक्त प्राणियों की घर

वाली जाकर होती हैं ॥ अधिकोक्ति पूरी हो चुकी तथापि इसके साथ एकशास्त्रार्थ रूपी निर्णय करना शेषरहा सो जुदा नीचे लिखते हैं ॥ २१६ ॥

गूढ़ाभिप्रायानांनिर्णयः—दोसै नौ (२०९) श्लोकपर ध्यानकरो वहांसे लेकर यहांतक कर्मोंके विपाकसे क्षयीरोग आदि जो अनेक दोषोंके चिह्न होने लिखेगये सो इसलिये कि ब्रह्महत्यारे आदिअनेकपापी लोगोंकोभय सूक्ष्मिपरनेसे प्रायश्चित्तों पर दृष्टि पहुंचे—अन्यथा यह प्रयोजन उसका नहींहै कि क्षयी आदि रोगोंवाले मनुष्योंको वे प्रायश्चित्त करायेजायें जो (द्वादशवार्षिकव्रतआदि) बारहवर्ष आदि के विधान आगे आवेंगे॰और यह प्रयोजन भी नहींहै कि उसभांतिके रोगियोंको पापी समझके संसर्ग छूनाआदि उनसे न कियाजाय—क्योंकि—प्रायश्चित्त के विधान जो आगे कहेजायेंगे सो पापोंका क्षय होनेके निमित्त होंगे किन्तु इसके लिये नहींहैं कि पहिले पापोंका खोटाफल प्रारब्ध हुआ सोभी नाशहोसके या विनादेखे विनाजाने समझे पूर्वजन्मोंके अदृष्ट पापहू नाशहों—क्योंकि इसपर एक न्यायका दृष्टांतहै कि जैसे किसी धनुषसे छूटाहुआ बाण निशानापर लगनेमध्ये न उसधनुष और धनुषवाले से कुछवास्ता रखताहै न उसके किये और उपायोंसे छूटे पीछे कोईसी अपेक्षा रखताहै (अर्थात ठीक निशानाके सन्मुख छोड़ि दिये पीछे जो चाहै कि अब निशाने पर न लगै या गैर निशाने से छूटे हुयेको चाहै कि यह ठीक निशानेपर लगै इसका कोई इलाज उसके काबूमें नहीं रहिता यह तात्पर्य है) और यह भी नहीं कि उससे प्रारब्ध हुये खोटे फलका विनाश चाहिकर धनुष का तोड़ना शोचा जाय क्योंकि कुम्हारके चाक हथेला दण्ड आदि (जो न्यायमतसे निमित्तकारण कहाते हैं तिन) का विनाश करनेसे भी वे करवा और हांडी आदि नहीं नाश होसकते हैं जो उन्हीं निमित्त कारणोंके प्रभावसे बनिचुके॰ और इसीप्रकार नैसर्गिक स्वाभाविक महारोग जो बुरे नख होना आदि जन्महीसे उत्पन्नहोचुके तिनका प्रत्यानयन वापिस होजाना शक्तिसे बाहरहै—क्योंकि—बिना देखेहुये पहिले महापापोंका प्रतिकार नरकभोगना और तिरछी योनियों में बहुतेरे जन्मलेकर उनके दुःखों को भोगे पीछे सबसे अखीर यहीफल शेषरहा सो बुरेनख होने आदिसे प्रत्यक्षमेंआया तिसके उत्पन्नहोनेमात्रसेही उसकेउत्पन्न करनेवाले कारणभूत पहिले पापोंका नाशहोजाताहै॰कि जैसे लकड़ियोंमें जेवरीसे मथिकर घसिकर अग्नि उत्पन्नहोताहै उसके उत्पन्न होतेही लकड़ियाँ जलिकर नाश होजातीहैं (अर्थात उनलकड़ियोंके विनाशके लिये कोई दूसरा उपाय करना फजूलहै) तैसेही जिन विनादेखे पापोंकाफल प्रत्यक्षमें आचुका तिनका वि-

नाश चाहिकर कोईसा प्रायश्चित्त करना आवश्यक नहीं है॰और न इसके लिये प्रायश्चित्त है कि लोकाचार परस्पर जाति विरादरी के व्यवहार वर्तावे उन कुनखी आदि रोगियों से होसकें क्योंकि प्रायश्चित्त किये विना भी अच्छे विवेकी लोग कुनखी दुश्चर्मा आदि रोगियोंसे व्यवहार नहींत्यागतेहैं यह परंपरासे चलाआताहै॰ किन्तु अभी अनतर जैसा कहिचुके कि लकड़ियों की तरह पहिले पापोंका नाश होचुका तौ फिर विरादरी के व्यवहार में भी क्या दोष रहा जिसके लिये प्रायश्चित्त की जरूरत होय॥ ०॥ कदाचित् यह तर्कना उठाईजाय कि वशिष्ठ मुनिने कुनखी आदि रोगियों को प्रायश्चित्त करना क्यों कहा जैसा यही आगे वचन है=तथाच वशिष्ठः=कुनखीश्यावदंतश्चकृच्छ्रं द्वादशरात्रंचरेत=अर्थात्–खोटे नखोंवालाकुनखी और बुरे दाँतोंवाला श्यावदंतभी बारह दिनका कृच्छ्रव्रतसाधै=सो यह वशिष्ठजी का कहा नियम एक नैमित्तिक धर्महै उस भाँतिका कि जैसे क्षामवती आदि यज्ञों का करना केवल शांतिदायक होताहै अर्थात् वशिष्ठका यह वचन कुछ पहिले पापोंके विनाशसंध्ये नहींहै न जातीय व्यवहारोंके निमित्तहै॥ ०॥ क्षामवती इष्टि इसनाम से वेदों में यज्ञ विशेष कहाहै बल्कि उसप्रकारके और भी सामान्ययज्ञ जुदे नामोंसे कहेहैं॰इसका प्रसंग प्रायश्चित्ततत्त्व में भविष्यत्पुराणके प्रमाणसे दृष्टांतदेकर आया है=यथा=क्षामवत्यादिनायद्वत्कर्मणांप्रतनापतेदैवदोषादकरणेजांतेदोषकदम्बकेहोमे नैकेनदोषाणांसर्वेषांक्षयमादिशेदितिभविष्ये–एवंचएकप्रायश्चित्तेनानेकदोषक्षयाय क्षामवतीष्टिःसर्वत्रदृष्टांतःइतिप्रायश्चित्ततत्त्वं=अर्थात्–हे राजन् दैवयोगसे जिस किसी को नित्य नैमित्तिक धर्म कर्म्मोंके न करने में अनेक दोषों का समूह पैदा होजानेपर क्षामवती आदि कोई एक इष्टिकरनेसे सब दोषोंकी शांति एकसाथ जैसे होजातीहै तैसे सब ग्रहोंके दोष एक होमसेही क्षयहोते हैं यह आदेशकरै॰ यह भविष्यत्पुराण में कहाहै–इसीप्रकार जहां एकही प्रायश्चित्त से अनेक पापोंके क्षयहोनेका प्रसंग हो तहां तहां सर्वत्र क्षामवती इष्टि यहदृष्टांतहै यह प्रायश्चित्ततत्त्वमें कहाहै॥ इसी प्रकार वशिष्ठका वहवचन एक शांतिरूप समझना॥ २१६॥

(वर्णितस्यैवात्रसारांशः)

यथाकर्मफलंप्राप्यतिर्यक्त्वंकालपर्ययात्। जायंतेलक्षणभ्रष्टादरिद्राःपुरुषाधमाः २१७
ततोनिष्कल्मषीभूताःकुलेमहतिभोगिनः। जायंतेविद्ययोपेताधनधान्यसमन्विताः २१८

अर्थः–यथाकर्मका फल तिर्यक्त्व भी पाइके कालके पर्यय से पुरुषों में अधम

होतेहैं कुलक्षण से कुरूप और दरिद्री=तिससे निष्कल्मय हुये बड़े कुल में भोगी जन्मतेहैं जो विद्यासे संपन्न और धनधान्यसे भरेपुरे होतेहैं=अर्थात्–कर्मोंका विपाक जो अबतक सुनातेरहे उसी सबका तोड़ निचोड़ यहां इकट्ठाकरिके समझातेहैं कि–जैसा जैसा जिनका खोटाकर्मथा तिसकाफल नरकभोग और तिरछी योनिका जन्म भी पाइकर कालकी चालिसे अतिकालमें पापकर्मोंके क्षीणहीन होजानेसे मनुष्य की योनि में भी आकर अधम ओछे पुरुषोंका जन्म लेतेहैं कि जहां दरिद्री धनहीन और कुनख दुश्चर्म आदिखोटे चिह्नोंसे कुरूपभी होतेहैं॥२१७॥ततःतिसके भी अनंतर (उक्तभोगोंकेभोगनेसे) पापोंसे छुटकारा पाये हुये वेही प्राणी (अपने किसी पूर्व जन्मांतर के संचित पुण्यकर्म जो प्रशंसित पापों की वेगसे रोकमें आगये थे तिनकी आड़ मिटिजाने और सत्प्रभाव उदय होनेसे) फिर अगिले जन्मसे बड़े किसी उत्तम कुलमें भोगी पुरुष होके जन्मलेते हैं कि जहां विद्या आदि गुणोंसे संयुक्त और धन धान्यसे भी संपन्न हों=परन्तु=यह नियम सिर्फ उन्हींका समझना जिनका पहिला पुण्य अधिक होतेहुये पापोंके उत्पन्न होनेसे रोक में आगया हो॰ अन्यथा जिनका पहिला पुण्य भी संचय नहीं केवल पापी हों वे फिरभी अगिले जन्मोंमें दरिद्रीआदि मंद पुरुष होतेहैं कि जबतक बीचमें कोईसा सत्कर्म उनसे न बने॥ २१८॥

इतिकर्मविपाकानांसंक्षिप्तानिलक्षणानि॥

——*——

अथ–प्रायश्चित्ताधिकारिलक्षणविवेकोनाम

द्वाविंशःपरिच्छेदः२२॥

इस परिच्छेद में उन पुरुषोंके लक्षण कहे जायँगे कि जो तत्काल प्रायश्चित्त करनेके अधिकारी होतेहैं॥

(प्रायश्चित्ताधिकारिणः)

विहितस्याननुष्ठानान्निंदितस्यसेवनात्। अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणांनरःपतनमृच्छति २१९

तस्मात्तेनेहकर्तव्यंप्रायश्चित्तंविशुद्धये। एवमस्यांतरात्माचलोकश्चैवप्रसीदति २२०

अर्थः–विहितके न करनेसे और निंदितके सेवनसे इंद्रियोंके अनिग्रहसे भी मनुष्य

दोषी होताहै=तिससे उसको इहाँ इसी देहमें पापोंसे शुद्धहोजानेकेलिये प्रायश्चित्त करना चाहिये ऐसे प्रकार से इस मनुष्यका भीतरला आत्मा भी प्रसन्न रहता और संसार भी इसकेऊपर प्रसन्न होताहै=अर्थात्–मनुष्योंको लोकरीतिसे और शास्त्रकी आज्ञासे भी नित्य नैमित्तिक धर्म जो कुछ करना उचित है (दृष्टांत जैसे संध्योपासन आदि पंचयज्ञ जो हैं सो नित्य कर्म हैं तथा तीसवां श्लोकसे आदिलेकर अशुद्धों का स्पर्श होजाने में स्नानआदिकरना कहा सो नैमित्तिकधर्मथा याउससेपहले मृतकोंकी शुद्धिकरना जो कहा गया वह भी नैमित्तिक था या कन्याका विवाह और गौनाभी उचित समयपर करदेना कहा सो भी नैमित्तिक धर्मथा इत्यादि औरभी समझने)सो विहित कहाताहै तिसके न करनेसे मनुष्य दोषीहोताहै तथैव निंदितकर्मोंके करनेसे भी दोषी होताहै) निंदितकर्म सब शास्त्रोंमें और लोक मेंभी प्रसिद्धहैं अभक्ष्य भक्षण या चोरी या जोरी आदिबुरेकर्म) और इन्द्रियोंको वशमें न रखनेसेभीदोषीहोताहै॥ २१९॥ तिसकारणसे उस दोषीको तत्काल उसीदेहसे कि जिसमें दोष खड़ाहुआ हो दोषको मिटानेके प्रयोजनसे प्रायश्चित्त करनाचाहिये जिससेउसके भीतरले आत्मा की शुद्धिसे प्रसन्नता और संसारी लोग भी प्रसन्न होते हैं॥ २२०॥

२१९अधिकोक्तिः–यहाँ पर वादी पुरुष तर्कना खड़ी करता है कि जब ऐसा निषेध पहिले होचुकाहै कि इन्द्रियोंके सब अर्थों में कामना सहित न प्रवृत्त होय और यहाँ भी २१९ श्लोकमें निन्दित कहने से इन्द्रियोंके निषेध सिद्धहोसक्तेथे तो फिर जुदा पद ऐसा क्यों कहागया कि इन्द्रियोंके अनिग्रह से भी–तहाँ–विज्ञानेश्वर उत्तर देतेहैं कि इन्द्रियों की प्रसक्ति के निषेधकी और सक्तजघे जुदीबातके प्रतिषेध की एक रूपता नहीं होतीहै स्नातक के व्रतोंमें पाठ आजानेसे तहाँभी ये व्रत धारण करै इस व्रत शब्दके अधिकारसे और इन्द्रियोंकेभोग निषेधका संकल्पनकार सुनने से पक्काहोता है वह दोनों तरह से भी ठीकहै तिससे जुदापद कहागया॥ पुनःवादी–क्योंजो उचित के न करनेसे दोषी होताहै यहकहाँसे निश्चितहुआ अग्निहोत्रआदि की प्रेरणा जो सिर्फ पुरुष का उदयरूपी अनुष्ठान है प्रथम उसीका न करना कुछ दोषकी हेतुताको नहीं सिद्ध करताहै क्योंकि वह प्रेरणा विषयएक संबंधी अनुष्ठान की पुरुषार्थता (मर्दानगी) के ज्ञानमात्र का निश्चय कराने वालीहै तो वह प्रेरणा उतनेही प्रयोजन करके प्रवृत्ति को युक्ति होनेके हेतुसे न करनेका दोष रूप कारण भी नहीं कहती है क्योंकि जिसको करनेकी समर्थ न होगी वह अपने पुरुषार्थ रूप उदयसे हाथ धोबैठैगा और यह भी है कि यद्यपि अनुपपत्ति (असंगति) के दूरकरने

में भी प्रवृत्तिकी सिद्धिके लिये अर्थांतर कल्पना होतीहै तब भी निषेध किये दोषके परिहार के प्रयोजन से उस के त्यागने की पुरुषार्थता (मर्दानगी) की सिद्धि में भी फलांतर कल्पना होतीहै यह किसी काभी सम्मत नहीं है इसमेंभी सम्भ्रमहै कि जैसे निषिद्ध आचरणोंमें अर्थवाद (निषिद्धकी निन्दारूपी प्रशंसा) से जानेहुये दोष के छोड़देनेसेही पुरुषार्थत्व होताहै•तैसे आदेश कियेहुये उचित कामोंमें अर्थवाद(उचित की स्तुतिरूपी प्रशंसा) से समझेहुये नकरनेसे उत्पन्न होनेवाले दोषकी परिहारार्थता कैसे नहीं पहुँचे–ऐसे नहीं–सुनो–अग्निहोत्र आदि विधानों में सर्वत्र वैसेही अर्थवाद नहीं है और २१९वाले श्लोकमें स्मृति भी ऐसी नहीं है कि विहित का अनुष्ठान न करनेसे मनुष्य पतित होताहै और वाक्यांत से प्रमाण किये कार्य्य में अन्य वाक्यसे अर्थवाद भी नहीं सम्भव होता है यद्वा कभी कहीं दोनोंवाक्य एकही से होनेमें अर्थवाद सिद्ध होभी जाओ तौभी विहितका न करना जो अभाव रूपहै (अर्थात् नहींका कोईरूप हीनहीं)सो किसी और कार्य्यके उत्पन्न करनेको समर्थ नहीं होता–अत्रापि वितर्कः–क्योंजी (ज्वरेचैवातिसारेचलंघनंपरमौषधं) बुखार और दस्तोंमें भी लंघन करना बडीदवाई होतीहै जैसा यह वैद्यक शास्त्र के वचन से भोजनका न होना रूपी जो लंघन है सो ज्वर की शांतिरूप कार्य्यांतरको उपजाताहै तैसावह भी किसी और कार्य्य को उत्पन्नकरै ऐसा क्योंनहीं मानाजाता–ऐसेनहीं–क्योंकि जिससे इसमें भी कुछ लंघनसे ज्वरकी शांति नहींहै•तौफिर क्याहै ज्वरके नाशको रोकनेवाले भोजन का अभाव होने में पेट की अग्नि से परिपाक होकर उसी परिपाक से उत्पन्न हुई धातुओं (वात पित्त कफों तथारसरक्तादिकों)कीसमताआदि माननीचाहिये तिसते (विहितस्याननुष्ठानान्नाः पतनमृच्छतीतिकथमस्याःस्मृतेर्गतिः) अर्थात्–उचित के न करनेसे मनुष्य पतित होताहै इस वचनकी गति कैसेहोय सो कहना चाहिये–कहते हैं–अग्निहोत्र आदि विषयों के अधिकार की न सिद्धिरूप कलङ्क के अभिप्राय से यह दोष नहीं है–पुनःशङ्का–क्योंजी ये अग्रोक्त मनुके वचन कैसे अपने अर्थोंमें ठीक होंगे–यथाहमनुः–वांताश्युल्कामुखःप्रेतोविप्रोभवतिविच्युतः अमेध्यकुणपाशीचक्षत्रियःकटपूतनः मैत्राक्षज्योतिकःप्रेतोवैश्योभवतिपूयभुक् चिलासकस्तुभवतिशूद्रोधर्मात्स्वकाच्च्युतः=अर्थात्–संन्यासी जो गृहस्थी आश्रम छोडिके संन्यास धारण करै फिर उन्हीं गृहस्थीवाले कामोंको करनेलगै सो वांताशी(र्दकियेहुयेको फिर खानेवाला) कहाता है और मरनेपीछे उसी दोषके प्रभावसे उल्कामुखी योनिमें जन्मता है अर्थात् लोखड़ी लोमड़ी जिसकी जीभ में ऊँकसी ज्वाला उठती रहती और प्रायः र्दकिये

हुयेकोभी चाटतीहै तिसकी योनिमें वांताशी जन्मपाताहै और विद्वान् विप्र जो अपने धर्म्म कर्म्मसे गिरिजाय सो प्रेतयोनि होताहै अर्थात् प्रेतों में उल्कामुखप्रेत जिनका मुख अग्नि के तुल्य जलता रहता है तिससे अधिक पीडा उनको मिलती है इसी से वह प्रेत भी औरोंकी वमन चादि चाटि मुंहठंढा करते फिरते हैं तिसकी योनिमें वह विप्र जाताहै जो नित्य और नैमित्तिक धर्म्म कर्म्मों का त्याग करदेताहै और क्षत्रीका धर्म्म यद्यपि उचित मांस खानेका नियत है तथापि जो कोई क्षत्री अशुद्ध जीवों के मांस या मरे जीवों के मांस खानेलगै वह मरने बाद मुर्दा ढकेलने वाली चाण्डाल जाति या मरेजीवोंको खानेवाले गिद्ध काक आदि योनि में जन्मता है और गुदा से व्यवहार प्रकाश करनेवाला वैश्य या मिशोंसे कपटका व्यवहार फैलानेवाला वैश्य याब्राह्मण से द्यूत खेलिके धन हरनेवाला वैश्य भी मरने पीछे पीवराद भोगनेवाला कीडा या मलिन प्रेत जाकर होताहै और शूद्र अपने मुख्य धर्म्म से च्युत हुआ मरने के बाद जाकर विलासक वा विलास नाम एक अशुभजाति विशेष (वेश्याओं का भडुआ जो प्रसिद्ध है) सो होताहै =ये मनुके सर्व वचन विहित के न करने का दोष जतानेवाले हैं सो कैसे घटत होतेहैं–कहते हैं–जैसे रद्द किये को खाते हुये ऊँक से जलते मुखवाले दुःख तैसे इसको भी विहित (उपदेश किये हुये शास्त्रोक्त) के न करनेवालेका पुरुषार्थ सिद्ध न होनेसे॰सो यह न करने की निन्दा अनुष्ठान करने में रुचि उत्पन्न होनेके लिये समझनी तिससे कुछ विरोध नहीं है–अथवा पूर्व जन्म के खोटे आचरणोंके भेजेराग आलसआदि जो उचित अनुष्ठानके विरोधीहोके वांताशी और उल्कामुख प्रेतत्व आदि दुःख पैदाकराते हैं तिससे भावही सिद्ध ठहरा किन्तु कहीं भी अभाव का कारणत्व कोई नहीं यह मानना चाहिये–क्योंजी–यह मानना चाहिये सो माना परन्तु पुंश्चली बंदर गर्दभ इनका देखाहुआ और झूंठादोष लगाये हुये आदि औरोंमें भी उचितका न करना आदि निमित्तोंमें सेकिसी एकहूके अभावसे कैसे दोष लगताहै और उसके अभाव में प्रायश्चित्त का विधान किया गया–कहते हैं–सुनो इससेही पापक्षय होनेके लिये प्रायश्चित्त के विधानसे जन्मांतर से आचरण किये निषिद्ध सेवन आदि तिससे पैदा पाप अपूर्व प्रेरित हुआ मिथ्या अभिशाप आदि तिसके निमित्त प्रायश्चित्तसे दूरीकरण हेतु मननहीं अनुष्ठित हुआ यह कल्पना दोष है क्योंकि पुरुष के प्रयत्न से अपेक्षा नहीं रखने में कार्यरूप पापकी उत्पत्ति संगत नहोनेसे और न पुंश्चली आदिमें प्राप्त प्रयत्नअन्य पुरुषसे पापकी उत्पत्ति है कर्ताओं केसमूह योग्य नियम से धर्म अधर्म दोनों का होना है तिससे प्रायश्चित्त

में तीन निमित्त जो गिनाये सो गिनना ठीकही है जैसा मनुका वचन यह प्रमाण है=तदाह मनुः= अकुर्वन्विहितंकर्मनिंदितंचसमाचरन् प्रसक्तश्चेंद्रियार्थेषुप्रायश्चित्तीयतेनरः=अर्थात्–विहित कर्म कोनकरते हुये और निंदित कर्मको आचरण करते हुये और इंद्रिय भोगोंमें लगाहों सोभी नर प्रायश्चित्तीहोताहै=इसमें नरशब्द कहनेसे वर्ण और अनुलोमों के सिवाय प्रतिलोम जातियोंको भी प्रायश्चित्त का अधिकार पहुँचता है क्योंकि साधारण धर्मोंमें अहिंसा आदि जोजो धर्म उनके लिये उचित हैं तिनका व्यतिक्रम उनसेभी होना संभवहै(प्रायश्चित्तकाशब्दभीपापोंके क्षयहेतुक जो नैमित्तिक कर्म विशेष हैं तिनमें रूढ़है) और प्रायश्चित्तका समस्त प्रकरणमात्रभी नैमित्तिक धर्म माना जाता है•तिसमें अर्थवाद के द्वारा किसी पापका क्षय सिद्ध हो जाने परभी प्रायश्चित्तस्वीकार कियाजाताहै उसन्यायसेकि जैसे पुत्रजन्मके होनेसेही पितरों की संतुष्टि होजातीहै तथापि जातेष्टि कर्म करना स्वीकार किया जाता है कि अतिशय संतुष्टि होय परंतु ऐसा नियम होनेपरभी यह तात्पर्य नहींहै कि कोई इस कामना से भी प्रायश्चित्तकरे कि उसके करने से मुझसे कोई पाप आगेको नहोने पावै तो यह आगंतुक पापों की रोक उससे नहोगी न इस अपेक्षा से प्रायश्चित्तकरना चाहिये क्योंकि यह फिर कामना का विषय ठहर सक्ता है सो नहीं केवल नैमित्तिक धर्म समझना चाहिये और करना भी अवश्य चाहिये क्योंकि न करने से यह दोष है=यथा=चरितव्यमतोनित्यंप्रायश्चित्तंविशुद्धये निंद्यैर्हिलक्षणैर्युक्ताजायंतेऽनिष्कृतैनसः इत्यकरणे दोषः=अर्थात्–पाप करने वाले प्रायश्चित्तों के विना जाकर निंद्य लक्षणों सहित अंग भंग होके जन्म पाते हैं इस हेतु से नित्यही कि जब जब कभी पाप होजायँ तभी उनकी शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये यह बहुत आवश्यक जानो ॥ २१९ ॥ २२० ॥

---*---

अकृतप्रायश्चित्तानांयेयेनरकाभवंतितेषांनामप्रकाश कोयंपरिच्छेदःत्रयोविंशः२३॥

इस परिच्छेद में उन्हीं नरकोंकेनाम और स्वरूप भी प्रकाश किये जायँगे जो प्रायश्चित्त न करनेवालोंको होतेहैं और प्रायश्चित्त करनेके फल विशेष भी जो लाभ होतेहैं सो भी इसके बीचमें दर्शावेंगे॥

(प्रायश्चित्ताकरणेदोषः)

प्रायश्चित्तमकुर्वाणाःपापेषुनिरतानराः। अपश्चात्तापिनःकष्टान्नरकान्यांतिदारुणान् २२१

अर्थः–पापों में निरत नर पछितावा न करके प्रायश्चित्त न करते हुये दारुणनरकों को जातेहैं=अर्थात्–शास्त्रके अर्थोंसे विपरीत कर्मों के द्वारा उत्पन्न हुये पापोंमें लगे भये मनुष्य उनपापोंके होजानेका उद्वेग मानिकर ऐसा पछिताउ भी नकरैं कि हमसे यह दुष्कर्म्म हुआ और पीछे उसका प्रायश्चित्त भी नकरैं सो सब लोग महाभयंकर नरकोंको भोगतेहैं जो सहे नहीं जासक्ते॥ इससे यह तात्पर्य ठहरा कि धर्मवान् की यही पहिचान है जब उससे कोई पापलाचारी धोखे आदि से होजाय तब तत्काल उसका पछितावा करै और धर्मशास्त्र के विचारसे प्रायश्चित्तका निर्णय करावै कि मुझसे यह पापहुआ इसका क्या प्रायश्चित्त है सो करूं॥ २२१॥

(नरकनामस्वरूपाणि)

तामिस्रलोहशंकुंचमहानिरयशाल्मली। रौरवंकुड्मलंपूतिमृत्तिकंकालसूत्रकम् २२२
संघातंलोहितोदंचसविषंसंप्रपातनम्। महानरककाकोलमजीवनमहापथम् २२३
अवीचिमंधतामिस्रंकुंभीपाकतथैवच। असिपत्रवनंचैवतापनंचैकविंशकम् २२४
महापातकजैर्घोरैरुपपातकजैस्तथा। अन्विताय्यात्यचरितप्रायश्चित्तानराधमाः २२५

अर्थः–ये इक्कीस नाम नरकों के अपने स्वरूपही के समान हैं कि जैसा जिसका रूप होता है तैसाही नाम जानो सो सब सुनाते हैं कि–१तामिस्र नाम नरक उस जघे का नाम है जहां अंधकार के सिवाय कुछ नहीं न कुछ खानेपीने आदि की सामग्री है जिसमें(पराया धन पराई स्त्री पराये बच्चे हरनेवाले महा पापियोंको)यमके दूतले जाकर छोड़िआतेहैं–२लोहशंकु उसजघेकानामहै जहांइरतर्फलोहेकीपैनीकीलेंगड़ी होती हैं उन्हींमें चोहीघांव रहो आती है तिनके वीच भिंचकर घुमारहता है कहीं

निकसने को अच्छा मार्ग नहीं—३ महानिरय उसजघे का नाम है जहाँ सदा दुःख हैं—४ शाल्मली उसजघेका नामहै जहाँ सेहके काँटे भरे रहते हैं सो देहमें छेदा करते—५ रौरव उस जघेका नाम है जहाँ निरंतर रोनेकी आवाज भयंकर सुनी जाती और यह आप भी रोता है—६ कुड्मल उसजघेका नामहै जहाँपापी निरंतर कुटापिटा करते हैं—७ पूति मृत्तिक उस जघेका नामहै जहाँ सड़ोंकीचड़का दहदलभराहोता उस में महा दुर्गंधि आया करती है कि जिससे नाक भी सड़ने लगे—८ कालसूत्र उसजघे का नाम है जहाँ कालके रूप असंख्य सूत नये होतेहैं उनमें घुसतेहुये अंग ऐसे कटि कटि गिरते हैं जैसे कुम्हार के हाथका तग्गा चाकसे बासन काटि लेताहै—९ संघात उस जघेका नामहै जहाँ अनेक जनोंके द्वारा मारपरतीहैं—१० लोहितोद उस जघेका नामहै जहाँ रक्तकी नदीभरी रहती है उन्हींमें डूबता फिरता है—११ सविष उस जघे का नामहै जहाँ सब तरहके विष भरे होते हैं उन की हवा नाक आदि में घुसि के बड़ा बेहोश कर देती और देहको सुजाइ देती है—१२ संप्रपातन उसका नाम है जहाँ जाकर ऊँचे ऊँचे चढ़िकर बारम्बार गिराया जाताहै कि देह का भुसहोजाय—१३ महानरक भीसक स्थान है कि जहाँ नानाभाँति की पीड़ा और दुःख मिलाकरते हैं—१४ काकोल उस जघेका नाम है जहाँ पापी को बड़े बड़े बनकोआ खूबनोचते मांस खाते हैं—१५ अजीवन उस जघे का नामहै जहाँ सबतरह के मुर्दों के ढेर लगे होते और धरती में सर्वत्र बिछे होते हैं उन्हीं में घुसि के पापी को अवधि काटनी होतीहै—१६ महापथ उसका नाम है जहाँ पापीको लम्बे सूने मार्गके सिवाय कुछ और नहीं मिलता न कोई प्राणी बतानेवाला केवलसूने मार्गहीको काटे चलाजाता वह कटता नहीं न उसका अंत आताहै—१७ अवीचि नाम और अवीचिमयभी नाम उस नरक का है कि जहाँ सुख रूपी अवकाश का अवलम्ब कहीं भी नहीं मिलता इस नरक में प्रायश झूंठी गवाही देनेवाले भेजेजाते तहाँनीचा शिरकियेहुये लटकाये वा छोड़ि दिये जातेहैं—१८ अंधतामिस्र नाम नरक यह तामिस्रसे भी बहुत बढ़ियाहै कि जहाँ पर महा निविड घनेरा अँधेरा और अनेक भाँतिके भयउत्पन्न होतेहैं तिसमें महा पापी को यमके दूत छोड़ि आते हैं वह पापी निज आप भी अंधा होकर वहाँ टटोलताफिरता है—१९ कुम्भीपाक वह नरक है जहाँ छोटे मुहड़ेके मटकेमें तैल गरम किये यमके दूत पापियों को घुसेड़ देतेहैं छोटे मुहड़ेसे निकसने नहीं पाते और इतना गर्मतेल होताहै कि निपट प्राण नहीं जानेपाते किन्तु पड़े पड़े उबाल खाया करता है इसमें प्रायश ऐसे पापी जातेहैं जिन्होंने जीतेहुये जीवोंको अग्नि आदिमें जलाया

भना—२० असिपत्रवन वहनरकहै कि एकवन में तलवारकी धारावालेपत्ते टपकाते रहैं तिसमें यमके दूत उन पापियों को लेजातेहैं जिन्होंने वेदकामार्ग अपना धर्म छोड़ के पाखण्ड मतलियाहो वहाँ उनको चमड़े की रस्सियों से पीटते हैं तब जहाँ तहाँ भागते हुये ऊपरसे वनके पत्ते गिरगिर मांस काटतेहैं तब अत्यंत विलाप करता है—२१ तापन वह नरक है जहाँ नीचे धरती भी तपाये लोहे के समान तथा रेत बालू भी भाड़ के समान और ऊपर से करोड़ों सूर्य्य के समान घाम और लूंकी लपट सी वायुके झकोरे जिसमें गरम रेत बरसताहोताहै—येइक्कीसनाम नमूना मात्रसे दर्शाये इनसे उपरालभी अनेक नरक होतेहैं सो सब समुझलेने॥ २२३॥ २२४॥ इनमें वेही अधम लोग जाते हैं जो महा पातक या उपपातकों से उत्पन्न दोषों से युक्त होकर प्रायश्चित्तनहीं आचरते हैं॥ २२५॥

प्रायश्चित्त करनेसे कौन पातकी नरकनहीं जाता यह विशेषता आगेकहिते हैं॥

(प्रायश्चित्तस्यविशेषफलं)

प्रायश्चित्तैरपैत्येनोयदज्ञानकृतंभवेत्। कामतोऽव्यवहार्यस्तुवचनादिहजायते२२६॥

अर्थः—जो अज्ञानता से किया पाप होय सो प्रायश्चित्तों से दूर होता है कामना से किये पाप में वचन के बल से व्यवहार योग्य होता है=अर्थात्—जो पाप सिर्फ धोखासे होगया हो सो उन प्रायश्चित्तोंसे मिटजाता है जो आगे कहे जायँगे परंतु जो इच्छा सहित जानि बूझिके पाप किया जाय वह नहीं मिटता है (अर्थात् नरक आदिका भोग भोगना जन्मांतरमें अवश्य होगा) तथापि इच्छासे पापकरनेवालों को यह लाभ है कि प्रायश्चित्त करदेने से उसी प्रायश्चित्त के वचन रूपीविधानके बलसे संसारी व्यवहारों के वर्तावे योग्य होजाते हैं नकरने से पंच और भाइयों के व्यवहार योग्यभी नहीं रहते॥ २२६॥

२२६ अधिकोक्तिः इस अधिकोक्ति में शास्त्रार्थ के प्रकारसे अर्थवादका स्वरूप निर्णय करेंगे कि प्रायश्चित्त करने का अधिकार किसको है—इसीलिये यह तर्क है कि (प्रायश्चित्तों से पाप दूर होता है जो अज्ञानता से हुआ हो यह मूल श्लोकमें कहा गया) इसके जोड़ा में यह कहना योग्य था कि (ज्ञानसे कियाजाय सो नहीं दूर होताहै) इसके स्थल पर मूल श्लोकमें यह कहा गया कि (कामसे जो पाप किया जाय सो नहीं नाश होता है) ऐसा कथन इसलिये है कि ज्ञान और काम दोनों बराबर समुझे जायँ अर्थात् परस्पर दोनों में भेद नहीं तैसा यह वचन है

कि (विहितंयदकामानां कामात्तद्द्विगुणंभवेत) बिनाचाहे पापवालों का जो प्रा-
यश्चित्त कहागयाहो तिससे दूना चाहके पाप करने सदये किया जाय–तथा (अबु-
द्धिपूर्व क्रियायामर्द्धं प्रायश्चित्तं) बिना जाने जो अपराधवाली क्रियाहोय तिसमें आधे
प्रायश्चित्त चाहिये–तथा (म्लेच्छेनाधिगताशूद्रा स्वज्ञानात्तुकृच्छ्रत्रयंचरेत कृच्छ्रत्रयंप्रकु-
र्वीत ज्ञानात्तद्द्विगुणंभवेत) जहां म्लेच्छ से शूद्री पकड़ी गईहो किसीतरह अज्ञान से
तो वह शूद्रिणी तीनबार कृच्छ्र व्रत नामका प्रायश्चित्त करे जो शूद्राको जानते हुये
म्लेच्छ ने पकड़ा होतो उससे दूना प्रायश्चित्त छः कृच्छ्र व्रत सावे॰ इत्यादि बहुधा
बचनों से ज्ञान और कामना इन दोनों का बराबर प्रायश्चित्त देखिपरने से दोनोंका
एकही फल ठहिरा क्योंकि विषयज्ञान मामले का वाकिफ होना और चाहकरना
इन दोनों सेही स्वतंत्र प्रवृत्ति नियत हुई और होती है (अर्थात् खुद अख्तियारी से
अमल करना शास्त्र में इन्हीं दो बातों से ठहिराया गया है कि या तो उस अमर से
वाकिफहो या उस अमरसे खुद गर्जीराखे ये दोनों एकसां समझे जाकर खुद अख्ति-
यार ठहिरें कि शास्त्र की आज्ञा नहीं मानी) क्योंकि इन दोनों में किसी एक के
होने बिना स्वतंत्र प्रवृत्ति असंभव और मोहतमिल है तिससे जो कुछ अपराध ज्ञान स-
हित किया वह कामना सेभी किया समझा जायगा क्योंकि होनेसेही परंतु ज्यादि
भी ऐसी दशाओंमें नहीं कही जासक्तीहै. जिसे चोर बटमार आदि की प्रबलता में
दबा हुआ कोई पुरुष उस विषय को यद्यपि जानता है कि शस्त्र फेंकने से मनुष्य
मारा जायगा जिसका मारना महापाप है परंतु मारने की कामना उसके भीतर से
नहींथी तो इस दशामें ज्ञानका होना कामना नहीं समझा जायगा क्योंकि ज्यादि
उसकी नहीं थी और जोकि यह कहावत न्याय शास्त्र में प्रसिद्ध है कि सुखमें भी
रुपहिला भ्रांति से कांच का रखना ठहिरे तहांभी यथार्थ ज्ञानके नहोने से उसविष
य की कामना का भी न होना सिद्ध हुआ इस तरहसे अज्ञान और कामना का भी
परस्पर योग सिद्ध होताहै ॥ पूर्ववितर्कः–क्योंजी यह कहना ठीकनहींहै कि प्राय-
श्चित्तों से पाप दूरहोताहै क्योंकि पापदूरहोनेसे कर्मोंका फल भी नाश हो जायगा
तब कर्मझूंठे ठहिरेंगे-ऐसा नहीं सुनो जैसेपापोंकी उत्पत्ति शास्त्रके वचनोंसे प्रमाण
होती है वैसे उनका विनाश भी शास्त्र के वचनों से प्रमाण है इसमें किसी दूसरे
प्रमाणका ढूंढना जरूरतनहींहै इसीलिये गौतमने यही अर्थ उलटफेरके कथन द्वारा
दर्शायाहै–यथा) तत्रप्रायश्चित्तंकुर्यान्नकुर्यादितिमीमांसते) अर्थात्–तहां जानकर
पाप करने से प्रायश्चित्त करे या नकरे यह गौतमने कहा क्योंकि इसमे विचार से

निर्णयकियाजाताहै कि(नकुर्यादित्येकेनहिकर्म्मक्षीयते)विरलेमुनि कहतेहैं न करै क्योंकि पापकर्म्मका नाशही न हुआ तो करनाफजूलहै और(कुर्यादित्यपरे)कोई यह अनेक मुनि कहते हैं–क्योंकि(पुनः स्तोमेनेष्ट्वापुनः सवनमायांतीतिविज्ञायते) फिर भी प्रायश्चित्त के बाद स्तोम नामक यज्ञ सावन करने से उक्त पापी लोग फिर भी सवन को आइ पहुँचतेहैं अर्थात् द्विजाती के धर्म्म मे मिलाये जासक्ते हैं कि जिससे ज्योतिष्टोम आदि कर्म्म करनेके अधिकारी होजाते हैं ऐसा विचार यह मीमांसा से जाना गया है•इसका प्रमाण और भी अग्रोक्त वचन है कि (व्रात्यःस्तोमेनेष्ट्वाब्रह्मचर्यंचरेदुपनयनत इतिसर्वंपाप्मानंतरति भ्रूणहत्यांयोऽश्वमेधेनयजतइति) व्रात्य जो पंचायती कर्म्म धर्म्मों से गिरगयाहो वह स्तोमयज्ञ करके यज्ञोपवीत करावे तिसके अनन्तर फिर ब्रह्मचर्य्यका आचरण कियाकरै तो इस प्रकार से सब पापोंको तरि जाता है जैसे अश्वमेध करने वाला भ्रूणहत्या को पार उतरता है–यह वर्णन केवल अर्थवाद मात्र नहीं है किंतु विरले किसी योग्य अधिकारी का विशेषण ढूंढने के निमित्तमें रात्रिसत्र नामक न्याय की रीतिसे अर्थवादके फलहीकी कल्पनाहै इससे योगीश्वरके मूल श्लोकमे वह पद ठीकहै कि प्रायश्चित्तोंसे पाप नाशहोताहै॥ अब वितर्कः–क्योंजी कामनासेकियेपापमें प्रायश्चित्तके अभावसेकैसेव्यवहारयोग्यहोगा औरप्रायश्चित्तका अभाव अगिले वचनोंसे प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै–यथा (अनभिसंधिकृतेऽपराधेप्रायश्चित्तं इतिवशिष्ठः) तथा (इयंविशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतोद्विजं कामतोब्राह्मणवधेनिष्कृतिर्नविधीयते इतिमनुः) अर्थात्–वशिष्ठ ने यह कहाहै कि प्रायश्चित्त उस अपराध मे चाहिये जो बदिके प्रतिज्ञा से न किया हो•तैसाही मनु ने यह कहा कि यह विशुद्धि उसको कही गई जो ब्राह्मण को इच्छा बिना मारिके पापी हुआहो किन्तु इच्छासे ब्राह्मण का बधकरनेमें निष्कृति नहींहोती है॥ समाधान–सुनो जैसा तुमने समझा सो नहीं है क्योंकि अगिले वचनों को समझो–यथा (यःकामतोमहापापं नरःकुर्यात्कथंचन नतस्यनिष्कृतिर्दृष्टाभृग्वग्निपतनादृते) तथा (विहितंयदकामानां कामात्तद्द्विगुणंभवेत्) अर्थात्–जो आदमी किसीप्रकार भी कामना से महापाप करै तिसकी निष्कृति नहीं देखी गई है सिवाय दोबातों के कि यातो बहुत ऊंचे पर्वत से गिरै या अग्नि के ज्वालामें कूदि परै तो यह एक मारणांतिक प्रायश्चित्त देखागया है• तथैव दूसरा यह वचन है कि जो बिना चाहे पाप करने वालों को प्रायश्चित्त कहा हो यदा चाहना से करने वाले को दूना होय तो यह कामना से पाप करने वालेको भी प्रायश्चित्त करना पाया गया अर्थात् यही

नियम नहीं है कि निपट प्रायश्चित्त करे नहीं• और ऊपर जो वशिष्ठ का वचन तुमने सुनाया तिसमेंभी विना इच्छा पाप करनेवाले को प्रायश्चित्त कहागया परंतु यह निषेध उसमें नहींहै कि इच्छा से करने वालेको प्रायश्चित्त नहीं और जो मनु का वचन तुमने सुनाया उसमें निष्कृति से उसका मोक्ष नहीं होता यह तात्पर्य है कुछ निपट प्रायश्चित्त करने का निषेध नहीं है क्योंकि प्रथम तो उसी वचन के अंत में मरणांतिक प्रायश्चित्त करना कहाया फिर वैसे औरभी अनेक वचनों में तात्पर्य पाये जाते हैं॥

पुनरपिवितर्कः– क्यों जी जब कामना से पाप करने वालेको भी प्रायश्चित्त करना ठहरा तो फिर उसका पाप भी क्यों नहीं नाश होता है और जो पापही नाश नहीं होता तो फिर पंचों में संसारी व्यवहार उसका कैसे सिद्ध होता है॥ समाधान– सुनो यद्यपि प्रायश्चित्त दोनों दशा पर आरूढ है तथापि प्रायश्चित्त के फलमें भेद है सो शास्त्र के द्वारा समझा जाता है जैसा कि अज्ञानता से किये पाप में सर्वत्रही पापका क्षय होता है पाप चाहै छोटे या बड़े हों–परंतु जहां गौतमके बताये महापातक आदि पापों में जिस पापी का संसारी व्यवहार भी भैयापन और पंचायत से छुटिजाना कहा है सो ख़ासकर इतने हैं=यथाह गौतमः=ब्रह्महा सुरापो गुरु तल्पगो मातृपितृयोनिसंबंधगाः स्तेननास्तिकनिंदितकर्माभ्यासीपतितात्यागपतितत्यागिनः पतिताः पातकसंयोजकाश्च=अर्थात्–ब्रह्महत्यारा • सुरापीने वाला• गुरुओं कीस्त्री गामी•माता या पिता की योनि में विवाह संबंध करने वाला•चोर•नास्तिक•किसी निंदित कर्म को वारंवार करने वाला• पतित को नहीं छोड़ने वाला• अपतित को त्यागि देनेवाला•आपहीपतित हो• पातक संयोजक जोपापकर्मकी सहायतादें वेभी• ये सभी पतितहोतेहैं अर्थात् इससे भैयापन और पंचायती व्यवहार छूटिजातेहैं–अब ऊपर की वार्तापर ध्यान करो कि इतने जो पतनीय कर्मकहे इनमें भी दो भेद होते हैं कि एक तो विना इच्छा इन्हीं कर्मों को किया हो दूसरा इच्छा सहित जानि बूझि के करै तिस जानि बूझि के करने वाले को प्रायश्चित्त करनेसे छूटा हुआ संसार व्यवहारमात्र मिलजाता है परंतु पापोंका नाश नहींहोता यह भेद है परंतु यह तात्पर्य नहींहै कि पापोंका क्षयनहींहोता तो व्यवहार भी असंगत होजाय क्योंकि पापकी दो शक्ति होती हैं एकतो नरक भोग उत्पन्नकरने वाली दूसरी संसारी व्यवहार निरोध करने वाली• तिन में पहिली का विनाश न होनेपरभी दूसरीकाविनाश होना असंगत नहीं है तिसने पापका विनाश नहोने परभी संसारी व्यवहार जारीहो

जाना अयुक्त नहीं है यदि प्रायश्चित्त होजाय—और जो अप्रोक्त मनुका वचनहै कि (अकामतःकृतेपापे प्रायश्चित्तविदुर्बुधाः कामकारकृतेप्याहुरेकेश्रुतिनिदर्शनात्) विना चाहे पाप होजाने में पण्डितों ने प्रायश्चित्त कहा और कामना से किये हुये पाप में भी विरले लोग श्रुति की आज्ञा से बताते हैं—सो इस वचन का भी यहीतात्पर्य है कि इच्छा सहित किये पाप में भी प्रायश्चित्त पहुँचताहै परंतु यह तात्पर्य नहीं है कि पाप भी नाश होसकेगा—फिरभी अपनी ऊपरको पहिलीबातपर ध्यान करो कि—गौतम के गिनाये पतनीय कर्मों के दो भेद जो कहिचुके तिनको छोडि के उनसे उपरान्त जोजो अपतनीय पापकर्म्म होते हों कि जिनसे संसारी व्यवहार नहीं रुकता हो तिनको यदि इच्छा से भी कियाहो तोभी प्रायश्चित्त करने से पाप नाश होजाता है इसका प्रमाण आगे मनुका यह वचन है कि (अकामतःकृतंपापंवेदाभ्यासेनशुध्यति कामतस्तुकृतंमोहात्प्रायश्चित्तैःपृथग्विधैः) अपतनीय कर्मों में जो विना चाहे पाप किया हो सो वेदका अभ्यास पाठकरने से शुद्ध जाताहै कदाचित मोह के अँधेरे से इच्छा सहित किया हो सोभी उन पापों के जुदे लिखे प्रायश्चित्तों से विनाश होता है—फिर भी अपने ऊपरले मुख्य प्रयोजन पर ध्यान करो कि—पतनीय कर्मों के दो भेद जो गौतम के वचन से कहिचुके उनका बहुत बड़ा भेद जो इच्छा सहित किये पापोंका ठहर चुका—तिसमें भी विरले प्रायश्चित्त से पापों का क्षय होता है कि जो जो मरणांतिक प्रायश्चित्त किये जायँ क्योंकि देह त्याग होजाने से संसारी व्यवहार आदि कोईहा दूसरा फल मिलना शेष नहींरहा तिससे पाप का नाश ही फल उत्पन्न होता है=तथाह आपस्तंबः=नान्यस्मिन्लोकेप्रत्यापत्तिर्विद्यते कल्मषन्तुनिर्हण्यते=अर्थात्—देहत्यागरूपी प्रायश्चित्त से फिर लोकमें कोईभी प्राप्ति उसके लिये नहीं विद्यमान रहती है तिससे पाप भी मारा जाताहै॥ २२६॥

महापातकआदि पापोंके भेद आगे वर्णन होंगे सोसब अगिले परिच्छेदमें देखो॥

अथपंचमहापातकिनांपातकभेदेनस्वरूपलक्षणादि निर्णयकारकोऽयंपरिच्छेदश्चतुर्विंशः २४॥

———※———

इस परिच्छेद में पाँचो महा पातकियों के जुदेनाम और लक्षण भेद उनके किये पातकोंके अनुरूप निर्णय होंगे॥

(महापातकिनः)

ब्रह्महामद्यपःस्तेनस्तथैवगुरुतल्पगः। एतेमहापातकिनोयश्चतैःसहसंवसेत् २२७

अर्थः—ब्रह्महा•मद्यप•स्तेन•तथैव•गुरुतल्पग•और जो कोई तिनके साथबसै इतने महापातकी होतेहैं—अर्थात्—यद्यपि इनके अर्थ बहुत बड़ेहैं तौभी समष्टि व्यष्टि रूप से जुदेनाम धरनेका यह तात्पर्यहै कि छोटासा एकनाम कहने से अनेक अर्थसमझे जायँ—तहाँ—ब्राह्मण का हता मारने वाला ब्रह्महा वह कहाता जिसने शस्त्र आदि किसी प्रकारसे ब्राह्मण के प्राण हरेहों चाहैंप्राण हरनेयोग्य उपाय करतेके साथही प्राण गयेहों या उस कालके बाद किसी काल में उसी उपाय के प्रभावसेही प्राण छूटेहों—मद्यप उसे समझना जिसने निषिद्धमदिरापीहो—स्तेन चोरकानामहै परयहाँ उस चोर को समझना जो ब्राह्मण का सोना हरै—गुरुतल्पग उसे कहतेहैं जो गुरुओं की तल्पशय्यापर गयाहो यहाँशय्यासेज कहनेसे भार्याके पासगया यहतात्पर्यहै—इतने चारिमनुष्य महापातकी कहेजातेहैं और वहभी महापातकीहै किजो इनचारिमें किसीके भी साथबसै— मूलश्लोकमें तथैव यहतथा औरव शब्दजोआया सो इसलिये है कि तैसेही प्रकार वाले और भी जो कोई पुरुष होते हों तिनको भी महापातकी समुझि लेना को अधिकोक्ति मे देखो २२७॥

२२७अधिकोक्तिः—(ब्राह्मणसुवर्णापहरणं महापातकमित्यापस्तंबः) अर्थात्—आपस्तंबने कहा है कि ब्राह्मण का सोना किसी प्रकारसे हरलेना महा पातकों में गिनती है—यहां यद्यपि केवल सोना कहा परन्तु यह रोकनकदी मात्रका उपलक्षण समझना क्योंकि ब्राह्मण की चाँदी चुराना कहींजुदा नहीं कहा तिनसे यहद्रूषण आता है कि रुपये चाहै सहस्रतक हरै तौभी महापातक न होगा पर सोना केवल बीस रुपये का हरने से महापातक है और भी इसी तर्कनासे मणिग्रों का हरना भी

महापातक समझ लेना—कदाचित् कहो कि आपस्तंब के वचन में नहीं है इसका उत्तर-योगीश्वर के वचन में सोना भी नहीं है• किंतु सुवर्ण शब्द तक्करीका भी वाचक है ॥ ब्रह्महत्या आदि पापों को पातक इस हेतु से कहा कि (पातयंति इतिपातकाः) मनुष्य को लोक धर्मसे गिराय देतेहैं इसलिये पातक इनका नामहै औरमहा शब्द जोड़ने से उनकी बड़ाई ज़ाहर होती है कि महापातक बहुत बड़े होते हैं तिनका उत्पादककर्ता महा पातकी कहता है और उसको सहायता देने आदि कारणों से या बिना कारणके भी जोकोई उसके साथवसै सोभी महापातकी होताहै यह न्याय भी उस भांति से समझना जैसा २६१ दो सौ इकसठि मूल श्लोक में (एभिस्तु संवसेद्योवैवत्सरंसोपितत्समः) यही कहा आवैगा कि इनके साथ जो कोई एक सालभर निवासमात्र करै सो भी इनके समान दोषीहोजाताहै ॥ १॥ मूलश्लोक में तथा शब्द जो आयाया सो और प्रकारसे भी पापके कर्ता लोग अनुग्राहक प्रयोजक आदि होते हैं तिनका भी संग्रह मानलेने के लिये आया था तिनके लक्षण यहां समझाते हैं कि—अनुग्राहक उसका नामहै जोधनप्राणोंके भयसे भगेहुयेको याबिनाभगेहीकिसी को घेरिके मारनेवाले के तर्फ पहुँचावै जिससे मारनेवाला उसको मारिसके अथवा ऐसाकरै कि मारनेवाले को बचावै या उसको अपनी रक्षामेंरावै कि जिससे मारि सकनेकी दृढ़ता उसकी होजाय तौ भी अनुग्राहकने सहायताकारी कहाती है• इसी लिये मनुने फौजदारी के व्यवहार में उनको भी मारनेका फलभागी होनाकहाहै जो मारनेवालेके साथ पकड़ने घेरनेवाले आदि ग्राहक हों (ग्राहक अर्थात् अनुग्राहक) यथा=बहूनामेककार्याणांसर्वेषांशस्त्रधारिणाम् यद्येकोघातयेत्तत्रसर्वेतेघातकाःस्मृताः अर्थात्—बहुत मनुष्य एकही साथ कार्य करनेवाले शस्त्र बांधेहों तिनमें यद्यपि कोई एकही शस्त्र चलाकर घातकरै तहां सब साथवाले भी घातक ठहिरें•इति अनुग्राहकलक्षणं—इसीप्रकार—प्रयोजक आदि सहायकोंको फलभागी होना आपस्तंब ने दर्शायाहै=यथा= प्रयोजयिताऽनुमंताकर्ताचेतिस्वर्गनरकफलेषुकर्मसुभागिनो यो भूयआरभतेतस्मिन्फलविशेषः=अर्थात्— प्रयोजक और अनुमंता और स्वयंकर्ता भी ये तीनोंही जैसा कर्महो तैसे फलके भागीहोतेहैं कि स्वर्गफल मिलनेवाला कर्म हो तिसमें स्वर्गभागी या नरक फलमिलनेवाला कर्महो तिसमें नरकभागी और जो कोई मुखियाबनिके कर्मका आरम्भ कराता या करता है तिसको मुख्यतासे विशेषफल होता है—इस वचन में जो नाम कहे तिनके भी लक्षण समझाते हैं कि—प्रयोजिता यां प्रयोजकनाम उसकाहै जो अपने प्रयत्न से किसी को ऐसे किसी कार्यमें प्रवृत्त

कारै जो नहीं उसमें प्रवृत्त होसक्ता था—सो यह प्रयोजक पुरुष तीनभाँति के होते हैं १ आज्ञापयिता २ अभ्यर्थयमान ३ उपदेष्टा—इनमें आज्ञापयिता आज्ञादेने वाला कहाता है जो आप बड़ा आदिमी हो अपने से नीचे नौकर आदि किसी को आज्ञादेवै कि तू जाकर मेरे अमुकशत्रुको मारडालना तो यहहुक्मरूपी प्रयोग उसने किया तिससे प्रयोजक आज्ञापयिता उसका नामठहिरा १ —दूसराअभ्यर्थयमान उसका नाम है जो आप असमर्थ हो तिससे किसी समर्थ से प्रार्थना विनती करै कि आप अपनी शक्तिसे मेरे अमुक शत्रुको मारडालें तो मैं भी तुम्हारा अमुक रीतिसे प्रतिकार करूंगा सो यह प्रार्थनारूपी प्रयोग उसीका ठहिरा जिसने विनती आदिके बलसे उसे कार्य में लगाया तिससे अभ्यर्थयमान प्रयोजक उसका नाम ठहिरा २ (ये दोनों सिर्फ अपने मतलबके लिये प्रयोजक होतेहैं) तीसरा उपदेष्टा उपदेश करने वाला होताहै वह अपने मतलब के विनाही उपदेश देताहै कि तू अपने शत्रु अमुक मनुष्य को इस तौरसे मारना तो शीघ्र तेरे काबू में सुगमता से आसकेगा इत्यादि मर्म भेद बतलाने वाला निज उपदेशके द्वारा उसको कार्यमें प्रवृत्त करता है तिससे यह उपदेष्टा प्रयोजक नाम कहाता है ३=आप स्तंबके ऊर्ध्वोक्त वचनमें अनुमंता जो सहायक दर्शाया तिसका यह लक्षण है कि वह किसी को कार्य में लगे हुये कोही अधिक प्रवृत्त करता है सो भी दो प्रकार का होताहै कोई अपने मतलब के लिये कोई पराये मतलब को अनुमनन करिके उसका उत्साह बढ़ाता है—इसमें तत्त्व निर्णय करने के निमित्तसे शंकारूपी तर्कना खड़ी करते हैं कि—अनुमनन करने वाले को हिंसा का हेतु कैसे पहुँचि सक्ता है क्योंकि न उसने कोई सामग्री प्राण विनाश करने वाली मारने वालेको समर्पण करी न पूर्वोक्त प्रयोजक पुरुषोंकी तरह साक्षात् कर्ता को प्रवृत्ति उत्पन्न करिके सहायता करी किंतु केवल (प्रवृत्तका प्रवर्त्तक होना) यह लक्षण इसका कहागया तिसका तात्पर्य भी यही प्रतीत होताहै कि जब कोई किसीको मारताहो या मारने का पूरा उपाय सिद्ध करताहो तिसको देखि सुनिके ऐसा कहि देना कि तुमने अच्छा विचार किया तो इस प्रकार का अनुमनन कर देनेसे हिंसाके कर्म तक हेतु इसका नहीं पहुँचता है क्योंकि इतना (अनुमनन) उस बात का पसंद करना न होनेसे भी कर्ता अपनी क्रिया पूरी करसक्ता था तिससे ऐसा अनुमनन भी व्यर्थही ठहिरा चाहें स्वार्थ या परार्थ दो में कोई एक हो—इसका—समाधान सुनो॰ जहां कोई राजा या चौधरी आदि किसी प्रधान या स्वामी के पराधीन रहिके आप अपने मनसे किसी काम के करने में प्रवृत्त हो

तौ भी उस प्रवृत्ति के भंग होजाने के भयसे यद्वा दण्ड आपरनेके भयसे अपने कर्त्तव्यमें शिथिल ढीला होके राजा आदि स्वामी से या उस प्रकार के औरही किसी समर्थ से हिम्मति बाँधने की अनुमति चाहता हो तहां (यह काम तुमने अच्छा सोचा बेखटकेकरो) इतनी हिम्मति के बँधाने से उसका ढीलापन जाता रहिता है कि जिस ढीलापन से उस कामके करनेतक हाथ उसका नहीं पहुँचता इसी हेतुसे हिंसा कर्म्म का फल भी हिम्मति बँधाने वाले अनुमता को पहुँचता है ॥ ० ॥ इनके सिवाय एक और भी निमित्ती नाम अपराधी होताहै अर्थात् यद्यपि साक्षात्कार अपने देहसे हत्या नहीं करता है पर हत्या होनेका निमित्त हेतु वही उत्पन्न करता है इसढंगसे कि ब्राह्मणका अपमान बड़ी क्रूरतासे करना या घुड़कोदेनी ताड़नाकरनी या धन छीनिलेना आदि प्रकारों से इतना क्रोध पैदा करावे कि वह जिस के ऊपर अपघात करिके आपही मरजाय तौ यह क्रोधका दिलानेवाला निमित्त कर्त्तानामक ब्रह्मघाती ठहेरता है और उसी क्रोधके दिलानेद्वारा हिंसाका फलभागी भी होता है क्योंकि उसके मरजाने का हेतुरूप निमित्त इसीने उत्पन्न किया=यथाह विष्णुः= आक्रुष्टस्ताडितोवापिधनैर्वापिप्रयोजितः यमुद्दिश्यत्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्= तथा=ज्ञातिमित्रकलत्रार्थंसुहृत्क्षेत्रार्थमेवच यमुद्दिश्यत्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् =अर्थात्—जब कोईगालीगलौज या खींचाखाँची कियाहुआ या पीटाहुआ या धनों से विमुख कियाहुआ जिसके नाम निशानपर अपने प्राण त्यागिदेवै तिसको ब्रह्मघातक कहितेहैं=तैसेही=कुळजाति कलंक लगने आदि प्रयोजनोंसे या प्रिय मित्रके बाबत या स्त्रियों के निमित्त से या प्यारे खेत आदि स्थानों के निमित्त से झगड़ा उठनेमे जिसके ऊपर नामलेकर अपनेप्राणखोदेवै तिसको ब्रह्मघातक कहितेहैं=इस वार्त्ता में=यह विचार करना आवश्यकहै कि जब किसीका अपमान गाली आदिसे कियाजाय या धनसे दुर्भागी कियाजाय तब उसके प्रत्यक्षमें क्रोध न देखिपरनेसे भी यहनहीं कहाजासक्ता है कि क्रोधवाला कारण कोई नहीं या वह वृथाही मरगया क्योंकि मनुष्योंके स्वभाव नाना भाँतिसे विचित्र होतेहैं विरले पुरुष अतिशय थोड़े कारणसे भी बहुत बड़ा क्रोध उत्पन्न करिलातेहैं तिनमें कुछ दोषरूपी हेतुनहीं कहा जासक्ताहै इसी प्रकार बहुतेरे बहुत बड़े अपमान आदि कारण में भी अपना भीतरी क्रोध नहीं जाहर करतेहैं तिसते क्रोध प्रत्यक्षमें न देखि परनेसे भी मरजानेमें क्रोधका हेतु पक्का होताहै=आवश्यक न्यायः इस अधिकोक्ति मे अनु ग्राहक प्रयोजक आदि जो जो सहायक वर्णन कियेगये तिनको मुख्य पापीसे या उस पाप कर्म्म से समी-

प्रता की दशा ढँकी छिपी होने या खुल्लम होनेके अनुसार और पराये में पहुँची हुई सहायता की छुटाई बड़ाईके भी अनुसार उसके फलकी छोटाई बड़ाईसे प्रायश्चित्तमें भी छोटाई बड़ाई आदिभेद कल्पित करने चाहिये क्योंकि आपस्तंब के वचनमें ऐसा (योभूयआरभतेतस्मिन् फलविशेषः) कहचुके हैं कि जो मुखिया बनिके काम का आरम्भकरै तिसमें विशेष फल होताहै—इसके दोएक उदाहरण भी समझातेहैं कि—अनुग्राहक यद्यपि हंताकी प्रार्थनाविना आपही खुद अख्तियारीसे हिंसा के कार्य में सहायक बनाहो तौभी उस के हाथ से साक्षात् प्राणविनाशवाला व्यापार ढाल तलवार की चोटलगाना आदि कुछ न हुआहो तिसते और इसतेभी कि साक्षात्कर्त्ता की तरह मुख्यता से हिंसाका कार्य्य उसने आपनहीं आरम्भ कियाहो तो कर्त्ताकी अपेक्षा उसको दण्डरूपीफल थोड़ा तथा प्रायश्चित्त भी थोड़ा पहुँचताहै यहन्याय निर्मित कियागया—एवं—प्रयोजक यद्यपि मारसकने मध्ये कर्त्ता की स्वतंत्र प्रवृत्ति को उत्पन्न करता है (अर्थात् मारनेवाले को यही उतारू करवाता है यह बड़प्पन इसमें प्रत्यक्ष देखिपरता है) तौभी यह करना उसका ढँका छिपा प्रायश दूरिही से होता है तिसते अनुग्राहक से भी थोड़ा फल इसको पहुँचि सक्ताहै अर्थात् दण्ड और प्रायश्चित्त इसको उसते भी कम होना चाहिये यही न्याय ठहिरा—एवं—इन्हीं प्रयोजक तीनि भांति में से एक पराए अर्थ उतारू होने वाला जो उपदेष्टा कहा गया या तिसको अन्य प्रयोजकों से भी थोड़ा फल प्रायश्चित्त पहुँचता है क्योंकि वह खास करि अपने मतलबको नहीं प्रवृत्त हुआ (इनके सिवाय २४३ की अविकोक्ति में पैठीनसि मुनिके वचन से कुछ और भी इसी प्रकार के सहायक प्रोत्साहक आदि नामोंसे आवेंगे और सब तरह के सहायकों के साथी सहायक जताए जायँगे तिनका भी दण्ड या प्रायश्चित्त इनकी अपेक्षा न्यूनाधिक शोचना होगा सो यहां वहां दोनों स्थान का पाठ मिलाकर शोचि लेना) अत्रच ऊहापोह वितर्कः—भला जो प्रयोजक पुरुष के एक हाथके समान प्रयोज्य वह पुरुष है जिसको प्रयोजक ने अपनी प्रेरणा से किसी कामपर उतारू किया (जैसा मनकी प्रेरणासे हाथोंको किसी काम पर उतारू करते हैं) तो उस उतारू किये हुये प्रयोज्य पुरुष को फल मिलना ठीक नहीं है क्योंकि जब विराने लगानेसे लगे हुये को फल का संबंध ठहिरा तो फिर इसी न्यायसे तलाव आदि बड़ी इमारतों के कार्य में तैनात कियेहुये दरोगा मिस्तरी ठेकेदार आदि जो मजूरीसे प्रवृत्त होते हैं तिनकोभी उसकार्यके स्वर्गादिफल जो कुछ होतेहैं तिनमें फल पानेका प्रसंग जाना जाताहै (सो यह प्रसंग शास्त्रों की मर्यादा

मे आपत्तिरूपी दोष माना जाता है) अब संदेह का निवारण कहिते हैं सुनो•शास्त्रोक्त फल कार्यमे लगाने वाले प्रयोक्ता को होय इस न्यायसे अधिकर्ता स्वामीको पहुँचने योग्य फल उत्पन्न करने के हेतुसे कूप तडाग देव मंदिरका बनाना आदि होता है पर दरोगा या मिस्तरी आदि कारीगर इन कामोंके बनाने आदिमें स्वर्गफल प्राप्त होने आदिके मालिक नहीं होते क्योंकि स्वर्ग आदि फल पानेकी कामना से काम नहीं किया मजूरी मिलने की कामना से करतेहैं वही फल मिलताहै•और इसमेंभी यही दूसरा भेदहै कि दरोगा और कारीगर आदि भी बिराने प्रयुक्त कियेहुये अहिंसा के अधिकारी होतेहैं कि किसी प्राणीको हिंसा नहोने पावै इस ढगसे कामकरना तहां जो उन लोगोंसे व्यतिक्रम होजाय किंतु किसी मनुष्यके प्राण खोएजायँ तौ उस व्यतिक्रम करने के दोषमे फलभागीभी होतेहैं यह न्यायभी समानभया-एवं-अनुमंता पुरुषको प्रयोजको से भी थोड़ा फल प्रायश्चित्त पहुँचना उचित है क्योंकि प्रयोजक वाले व्यापारसे वह बाहर गिनाजाता है तिससे और इससे भी कि उसका अनुमत रूपी कर्म जो है सो उन सबके कामोंसे छोटाहै–एव–निमित्तकर्ता जो विष्णु के वचनमें उपराल ब्रह्मघातक ठहिराएये कि यद्यपि हथियार से नहीं मारा परंतु कुवचन सुनाना आदि कोई उपद्रव रूपी निमित्त पैदा कियाहो जिनसे आपही अपने प्राण उसको त्यागि देने परे•ऐसे निमित्तकर्ता भी अपराधी अधिक होते हैं•ऐसे निमित्त कर्ताओंको अनुमंतासेभी थोड़ा फल प्रायश्चित्त पहुँचना है•क्योंकि यद्यपि मरनेपर उतारू होने योग्य क्रोधरूपी कारण उसीने उत्पन्न किया परंतु निपट मार डारने के विचार से नहीं उद्यत हुआ था तिससे यह ढँका छिपा घातक ठहिरा यही न्याय निश्चित कियागया इसमें कुछ सदेह योग्य नहीहै=तथापि=वादी अपनी वाचालतासे वितर्क वाद खडा करता है कि भला जब ढँके हुये कोभी हत्या होने का कारण पहुँचिगया तौ फिर उसके माता पिताकोभी हत्यारा पुरुष पैदा करनेके सम्बन्धद्वारा हत्या करनेका प्रसंग दोष कहिना चाहिये कि वेभी एक ढँकेहुये हत्यारे और वेभी प्रायश्चित्त करें क्योंकि हत्या करनेवाला पुरुष पैदा करचुके थे–उत्तर–सुनो पहिले होचुकने मात्रसे नहीं कारण पहुँचताहै किंतु कारणको ठीक कारणता स युक्ति भी देखी जातीहै अर्थात् कारणभी वही माना जासक्ताहै जहां उसका कार्य का गुण भी उसीके अनुकूल देखिपरे (इसपर एक मीमांसाका दृष्टांतहै जो रथंतर नामय वेदमंत्रोंसे सोमयाग रूपी न्याय कहाजाता है तहां जैसे वह सोमयाग अपने स्वरूपदर्शमे नहीं कारण होताहै तैसे हेतुदोष रूपी व्यभिचारसे) माता पिता में उस

कारण कारणका लक्षण नहीं पहुँचताहै इसते इसमें प्रसंग दोष न कहिना चाहिये –इसी न्यायसे वह नियमहै कि जहां धर्मकी इच्छा से बनवाए कूप वावडी आदि में प्रमाद गफलतसे गिरिके जो ब्राह्मण आदि कोई मरजाय तहां खोदवानेवालेका दोषनहीं क्योंकि उसने किसी डूबना चाहि के नहीं खोदवाया था (पर यह नियम उसमें नहीं कि जहां ऐसा प्रसिद्ध करिके डूबे कि इसने यहाँ कूप बनवाया इसीहेतु से मैं प्राण दिये देताहूं इसते कहीं कुआ खोदाने वाले को भी कारण की कारणता पहुँचती है) तौभी इसकारणत्वसे हिंसाका हेतु उसको नहीं पहुँचता है उस प्रकारसे कि जैसे माता पिता यद्यपि घाती पुरुषके उत्पन्न करनेवाले कारण होतेहैं तथापि उन्होंने इस अपेक्षासे नहीं पैदा किया कि यह अमुक पुरुषके प्राणघात करै–और भी विरली दशा ऐसीहैं कि उनमें प्राणहिंसा का योग होतेहुये भी परोपकारके लिये उतारू होनेमें वचनके प्रभावसे ही दोष नहीं है=यथाह संवर्तः=बंधनेगोश्चिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने यत्नेकृतेविपत्तिश्चेत्प्रायश्चित्तंनविद्यते • औषधंस्नेहमाहारंददद्गो ब्राह्मणादिषु दीयमानेविपत्तिःस्यान्नसपापेनलिप्यते • दाहच्छेदसिराभेदप्रयत्नैरुप कुर्वताम् प्राणसंत्राणसिद्ध्यर्थंप्रायश्चित्तंनविद्यते=अर्थात्–संवर्त मुनिका वचनहै कि –गऊको बाँधते हुये चिकित्साके अर्थसे या अटका हुआ गर्भ छुटानेमें यत्नसे काम करनेमें भी जो प्राण जातेरहे तो प्रायश्चित्त नहीं लगताहै–दवाई या घी दूध आदि अच्छा भोजन ब्राह्मण आदि किसी को देते खिलाते हुये देनेके समय पर भी प्राण जातेरहैं तौ वह देनेवाला पापी नहीं कहाताहै–प्राण बचानेके लिये पशु या मनुष्य के भी रोगहेतुसे किसी अगमें तपाए लोहेसे दाग देना या फोडा गुमडा आदि चीरना काटना या रक्तपातके लिये नस्तर लगाना इत्यादि कामोंको बड़े प्रयत्नोंसे उपकार करते हुये प्राण चलेजानेसे भी प्रायश्चित्त नहीं लगता है–सो ये नियम भी उनवैद्यों के निमित्त है जो उन रोगोंके लक्षण उत्पत्ति आदि निदानमें निपुणहों•अन्यथा जो मूर्ख अज्ञानी होते ऐसा व्यतिक्रम करें तिनके लिये (भिषङ्मिथ्याचरन्दाप्यः) इ- त्यादि वचनोंसे मनु आदि ऋषीश्वरोंने दोषभी दर्शाया है ॥ ० ॥ इनके सिवाय जहां क्रोध करानेके योग्य गाली गुपतार आदि नकरते हुयेका भी नाम लेकर कोई उन्माद आदि रोग हेतुओंसे अपने प्राण विनाशकरै तहांभी उसका दोषनहीं है जिसका नाम लियागया वरन उसीका अपराधहै कि जिसने वृथा प्राण त्यागेहों=यथात्रवचनं=अ कारणंहयःकश्चिद्द्विजःप्राणान्परित्यजेत्, तस्यैवतत्रदोषःस्यान्नतुयंपरिकीर्तयेत्=अ- र्थात्–जो कोई द्विज अपने प्राणोंको कारणके बिना त्यागिदेवै उसमें उसीका दोष

ठहिरे पर उसका नहीं कि जिसका उसने वृथा नाम धरा हो—तथैव—जहां ठीकही गाली गुपतार आदि कोई सा कारण क्रोध उपजानेवाला उत्पन्न कियागयाहो जिस के हेतुसे छुरी आदि अपने अंगमें घुसेड़कर जबतक मरा न हो उसके क्रोधका उपजाने वाला पुरुष धनदेने आदि किसी प्रकारसे प्रसन्नकरि संतुष्ट करिलेवै कि जिससंतुष्टि के प्रभावसे बहुत मनुष्योंके सामने ऊँची आवाजसे पुकारिके सुनाय देताहै कि अब मेरे मरजानेमें भी खोटावचन सुनानेवाले अमुक मनुष्यका कुछ दोष नहींरहा मैं स-तुष्टहुआ फिर चाहै वह मरजाय या जीतारहै दोनों दशामें उसको दोष नहीं लगता सो यह दोषका न रहिनाभी वचनके प्रभावसेही जैसा यह आगे विष्णुका वचन है =यथाह विष्णुः=उद्दिश्यकुपितोहत्वातोषितःश्रावयेत्पुनः तस्मिन्मृतेनदोषोऽस्तिद्वयो रुच्छ्रावणेकृते=अर्थात्—क्रोध करायाहुआ कोई जिसका नामलेकर अपने प्राणोंको विनाश कर संतुष्ट कियाहुआ सबोंको सुनाइ देवै कि मैं सन्तुष्ट हुआ और वह अप-राधीभी अपने अपराधको सुनाइदेवै कि मैने इसका यह अपमान किया था लेकिन अब अमुक प्रकारसे सन्तुष्ट करदिया तौ इनदोनों के ऊँचे स्वरसे सुनाइ देने बाद जो मरजाय तौभी हत्याका चिह्न उसमें नहींरहा ॥ २२७ ॥

इसअधिकोक्तिमें महापातकियोंके प्रसंगसे ब्रह्मघातीके साथी लोग अनुग्राहक प्रयोजक आदि जो जो कहेगए तिन सबकी बडाई छोटाईके अनुसार प्रायश्चित्तों में न्यूनाधिक विशेषता जैसी चाहिये सोदोसौतेंतालिस २४३ की अधिकोक्तिमें देखना व्यौरे वार वर्णन करेंगे ॥ २२७ ॥

॥ जैसा ऊपरले परिच्छेदमें महापातकों का स्वरूप समुझाया तैसा निचले परि-च्छेदमें अतिपातक और पातकोंका स्वरूप कहा जायगा अर्थात् महापातक सबसे बड़े प्रधानहैं अतिपातक उनसे कुछ नीचे केवल उन्नीस बीस के अंतर समान समुझे जातेहैं तथा पातक अतिपातकोंसे भी कुछ नीचेहैं या बराबर सिर्फ नामहीका भेदहै• इन सबकी बडाई छोटाईका विशेष भेद आगे दोसौबयालिस २४२ की अधिकोक्ति में देखना क्योंकि वहांपर अनेक ऋषियोंके वचन इकट्ठे कियेजायँगे तिनमें चौदह तक भेद इन्हीं पापोंके होजायँगे ॥

——※——

अथातिपातकपातकयोःस्वरूपादर्शकोऽयंपरिच्छेदः पंचविंशः २५॥

इस परिच्छेद में अतिपातक और पातकों के लक्षण भेद कहेजायँगे कि जिनसे अतिपातकी और पातकी का स्वरूप पहिँचाना जाय॥

(ब्रह्महत्यासमपापानि)

गुरूणामध्यधिक्षेपोवेदनिंदासुहृद्वधः। ब्रह्महत्यासमंज्ञेयमधीतस्यचनाशनम् २२८॥

अर्थः–गुरुओं का अतिशय अधिक्षेप०वेदोंका निंदा०मित्रका वधकरना०पढ़ेहुये वेदका भुलाइदेना०ये पाप ब्रह्महत्याके समानजानने=अर्थात्–गुरुओंके सन्मुखउनके निरादर वाला कोई कठोरवचन बोलना या किसी प्रकारसे अपमान करना या किसी उत्सवके समयपर नहीं बुलाने आदि मार्गोंसे तिरस्कार करदेना या उनके मुहपीछे किसीके आगे कोईसी निंदाकरना आदि सबलक्षण अधिक्षेपमें गिनती होते हैं औ शेष व्यवस्था अधिकोक्तिमें–वेदकी निन्दा जो नास्तिकताका पक्षलेकर करै–मित्र चाहे ब्राह्मणके सिवाय किसी वर्णका हो तिसको प्राणोंसे विनाश देना–वेदका भुलाइदेना आलस्य आदि कारणोंसे या और किसी शास्त्रके विनोद से भी–ये सब कार्मएकहीएकजुदेब्रह्महत्याकेसमानपातकहोतेहैं अर्थात् उससेकमतीनहीहैं॥२२८॥

२२८ अधिकोक्तिः–गुरूणामाधिक्येनाधिक्षेपः अनृताभिशंसनं (गुरोरनृताभिशंसनमितिमहापातकसमानीतिगौतमस्मरणात्) एतच्चलोकाविदितदोषाभिशंसनविषयं (दोषंबुध्वानपूर्वंपरेषांसमाख्यातास्यात् सव्यवहारेचैनंपरिहरे दित्यापस्तम्बस्मरणात्) अर्थात्–गुरुओं का अधिक अधिक्षेप जोकहिचुके तिसके लक्षणमें अनृताभिशंसन भी समुझिलेना कि शिष्य अपने गुरुओंका कोई असत्यदोष मुखसे न कहे क्योंकि (गौतमने गुरुका अनृताभिशंसन भी महापातकोंके समान कहाहै) परंतु इस वचनका यह तात्पर्य नहीहै कि गुरुका असत्यदोष न कहै पर सत्यदोष मुखसे कहै किंतु इसका यह तात्पर्य है कि गुरुके पातकसम्बन्धी जिसदोषको संसारी लोगोंने नहीं जाना तिसको शिष्यादिवर्ग अपने मुखसे न प्रकाशकरै जैसा इसपर (आपस्तंब का यह वचनहै कि गुरुका दोष जानिके औरोंके सामने पहिले समुझाने वाला न बने न आपही पहिले व्यवहारों मध्ये इसको त्यागि देवै) तात्पर्य यह ठहिरा कि

जो आपही सबलोग जानि जायँ और संसारी व्यवहारसे गिराने लगें तो फिर सबके साथमे शिष्यादिक दोषी न ठहिरेंगे अन्यथा जो शिष्यही पहिले प्रकाश करने लगें या व्यवहारसे गिराने लगें तो वह शिष्य ब्रह्म हत्या करनेका पातकं माना जाकर उससे प्रायश्चित्त कराया जाय तथा प्रायश्चित्त करने से पहिले व्यवहारों से भी त्यागि दिया जाय—अब ऊपरकी वार्तापर ध्यानकरो कि गुरुका दोष यद्यपि सचाहै परन्तु जब तक सबलोगोंने नहीं जाना तब तक झूंठेकी बराबरहै तो इस दशा में जो शिष्य प्रकाश करै सो झूंठा दोष प्रकाशकिया कहाता है इसी लिये (अनृताभिशंसन) यह नाम धरागया ॥ २२८ ॥

॥ अब आगे सुरापान महापापके समान पाप कहेजायँगे इसके मध्ये यहभी याद राखना कि जो जो पाप समानके नामसे दर्शाये जातेहैं उन सबका एक मुख्य नाम अति पातक समझते रहिना जो परिच्छेदके प्रारम्भमे लिख चुके हैं ॥

(सुरापानसम पापानि)

निषिद्धभक्षणंजैह्म्यमुत्कर्षेचवचोऽनृतम्। रजस्वलामुखास्वादःसुरापानसमानितु २२९

अर्थः—निषिद्ध चीजों का भक्षण जैसी लहसुन आदि अनेकहैं—जैह्म्यकुटिलता का नाम है जो अनेक तरह से होती है जैसे किसी की प्रशंसा द्वारा निंदा दर्शानी या और के बहाने से औरोंको दुर्वचन सुनाना या और किसी काम के बहानेसे औरही कोई छल उत्पन्न करना या और किसी मनुष्य का नाम और प्रतिरूप बनाकर उसके प्यारे किसी चाहने वाले संबंधी को जाकर धोखा देना आदि—उत्कर्ष के स्थलपर असत्यबोलना दृष्टांत जैसा राज घर आदि में वरणी प्रतिष्ठा लाभ आदिके निमितपर में चारों वेदविज्ञाताहूँ इस भाँति कोईसो असत्य कहिना—रजस्वला नारीका मुह चूमना— ये प्रत्येक पाप जुदे जुदे सुरापीने के समान महापातक होते हैं ॥ २२९ ॥

२२९ अधिकोक्तिः—निषिद्ध चीजों का खाना महापातक उस दशा में होताहै जो जानि बूझिके खाय किंतु बिना जाने खा लेने से पापमात्र या उपपातक में गिनती और प्रायश्चित्त उसका छोटा है• इसीलिये मनु के अग्रोक्त वचन हैं=यथा=छत्राकं विड्वराहंचलशुनंग्रामकुक्कुटम् पलांडुंगृंजनं चैवमत्याजग्ध्वापतेन्नरः=अमत्यैतानिषट्जग्ध्वाकृच्छ्रं सांतपनंचरेत् यतिचांद्रायणंवापिशेषेषूपवसेदहः=अर्थात्—छत्राकजिसके नाम धरती फूला कठफूला कुकुरमुता गोवरछत्ता आदि देशभेदसे अनेकहैं•विड्वरा•, ह विष्टा खानेवाला सूअर•लहसुन• वस्तीका मुर्गा• प्याज•गाजर•इनको जानसहित

खाकर मनुष्य पतित होय अर्थात् जाती धर्मसे छूटि जाय इसका प्रायश्चित महापातकों में देखो=येही छः चीजें विनाजाने खाकर कृच्छ्रसांतपनकरै यदि वा चांद्रायण व्रतकरै जैसी दशाहो उसके अनुसार सोचा जाय इनके सिवाय जो नाम दूषित चीजें छोटी छोटी अनेक हैं तिनको विनाजाने खाकर एकही दिनका व्रतकरै॥०॥ जैह्म्य कौटिल्य जो महा पातकों में सुरापान के समान गिनागया जिसके रूप लक्षण छोटे बड़े कर्मभेद से अनेक भाँति होते हैं तहां मूल श्लोक में जैह्म्य शब्द के साथ कोई विशेषण यद्यपि नहींहै तिससे सामान्य सवतरह की कुटिलता सुरापान के समान समझी जाती है और यहभी समझा जाता है कि छोटे बड़े किसी प्रकार की प्रतिष्ठावाले साथ कुटिलताहो–तथापि ऐसा तात्पर्य नहीं है॰किंतु उसी जैह्म्य शब्द से बहुत बड़ी कुटिलता मानी जाय चाहे छोटेही मनुष्य साथ करी जाय यह तात्पर्य है और यहभी तात्पर्य है कि वह कुटिलता चाहै छोटीहो परन्तुबहुत बड़े के साथ अर्थात् गुरु के साथ करीगई हो तौभी सुरापान के समान मानी जाकर बड़ा प्रायश्चित्त भी कराया जाय–प्रयोजन की वार्ता केवल इतनीथी सो लिखीगई अब आगे इसपर वाद विवाद है कि–सामान्य शब्द से इतनी बड़ी विशेषता कैसे मानी जासक्ती है॰ इसका यह उत्तर है कि जब सुरापान के योग्य बड़ा प्रायश्चित्त इसपर आरूढहुआ तो वह छोटी कुटिलता पर नहीं माना जासक्ताहै–क्योंकि–कुटिलतारूप निमित्त है प्रायश्चित्त उसका नैमित्तिक धर्महै और न्याय तथा मीमांसा में यह भी एक नियम है कि जैसे निमित्त की बड़ाई छोटाई से नैमित्तिक धर्मकी कल्पनाकरी जातीहै तैसे नैमित्तिक स्वरूपकी पर्यालोचनासे निमित्तकाभी बड़ापनयाछोटापनका विशेष ज्ञान होजाता है–इसपरयह दृष्टान्तहै कि–जैसेजिसकिसीके कुलमें दो अग्नि की सेवा क्रमागत चलीआती हो वह अपने प्रमाद गफलत आदिसे बुझाइ डारै उस को फिर स्थापना करनीचाहिये तहां वह पुरुष प्रायश्चित्ती भी होता है॰इसमें यह सोचना है कि दोअग्निबुझे तिससे दो निमित्त ठहरे विना कहे उनके नैमित्तिक भी दोही समझे जायँगेजैसे किसीनेदोजगह होम करनेको दो वेदीरचिके आज्ञादीही कि हवि पहुँचाना तहां दो हविसेमाविना कहेभी दो हवि पहुँचाने सिद्ध होतेहैं तैसे दो अग्नि जोबुझे तिनके फिर उत्पन्न करनेवाले स्थापना के कर्मभी दोही समझे जातेहैं जबकि नैमित्तिक दो विधि ठहरीं तो फिर दो विधियों की बलवत्ता से निमित्त रूप अग्निभी दोही समझे जातेहैं अर्थात् जैसा यह निमित्त और नैमित्तिक दोनोंकापरस्पर धर्म प्रसिद्ध है–तैसे उस कुटिलता के नैमित्तिकरूपी बड़े प्रायश्चित्तके प्रभाव से

हो कुटिलता रूपी निमित्त में बडाई कल्पित करना योग्य है॥ और छोटी मोटी कु-टिलता का प्रयोजन आगे उपपातकों में देखना॥ २२९ ॥

(सुवर्णस्तेयसमपापानि)

अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणंतथा। निक्षेपस्यचसर्वंहिसुवर्णस्तेयसंमितम् २३०

अर्थः—घोड़ा•रत्न•मनुष्य•स्त्री•धरती•हालकी बिआनी दूधवाली गऊ•इनकाहर-ना तथा धरोहरि का हरना यह सब सुवर्ण की चोरीतुल्य महापातक हैं॥ २३० ॥

२३० अधिकोक्तिः—इस वचन में रत्नशब्द जोहै तिसका अर्थ उनरत्नों से नहीं मिलना जो हीरा लाल आदि जवाहिरात पत्थर की जाति में प्रसिद्ध और सोने की अपेक्षा उनका बहुत मोल होता है इसका यह दृष्टांत देते हैं कि और मणिओं से गोमेद मणि थोड़े मूल्यकी होतीहै तिसकाभी यदि बहुत उत्तम किस्मकी होतीसोने से दूना मोल होता है या मूंगा के मोल बराबर (शुद्धस्यगोमेद मणेस्तु मूल्यं सुवर्णतो द्वैगुणमाहुरेके अन्येतथा विद्रुमतुल्यमूल्यं) तिससे उनरत्नोंकी चोरी तो मुख्यम-हापापों में समझना जो २२७ श्लोक वाली अधिकोक्ति से कहिचुके—और यहां इसी रत्न शब्दको उस अर्थ में लगाना कि जो वस्तु अपनी जिन्सि जातिमें अति उ-त्तमहो सोई रत्न कहाती है जैसा (अश्वरत्न) कहिने से घोड़ों में अति उत्तम घोड़ा समझा जाय—और जो यह अश्व घोड़े का नाम कहा तिसके उपलक्षण में हाथी भी समझ लेना बल्कि सवारी मात्र जो उत्तम होतीहैं तिनकी भी चोरी सुवर्णकी चोरी तुल्य ठहिरानी क्योंकि घोड़ा आदि ये भी सब चीजें नगदीके समानहैं—यद्यपिटीका कार ने ऐसा अर्थ कियाहै कि घोड़ा आदि ये सभी चीजें यदि ब्राह्मणकी हरीजायँ और धरोहरि जो सुवर्ण से उपराल हरीजाय तभी सुवर्णकी चोरीतुल्य पातक ठहि-राना परंतु इसमें यह भ्रांति भी होती है कि येही सब चीजें यदि ब्राह्मणते उपराल किसीवर्ण की हरी जायँ तो किस पातक में गिनतीकरैं कहीं दूसरा नियम इसका ठीक ठीक नहींहै तिससे यह व्यवस्था समझि लेनीकि येही चीजें यदि ब्राह्मण की हरीजायँ तबतो चीजोंकी उत्तमता का विवेक न करनाचाहिये किंतु घोड़ा या गऊ आदि उत्तम या अनुत्तम किसीप्रकार कीहो तौभी सुवर्ण की चोरी तुल्य ठहिराना• जहां ब्राह्मण से उपराल किसी येही चीजें हरीजायँ तहां चीजोंकी उत्तमतापर वि-चार करना चाहिये कि जो घोडा बहुतउत्तम हो या गऊ दूधदेती हुई हालकी बि-यानीहो इसीतरह सबचीजें जो अपनीजातिमें रत्नभूत ठहिरैं तो इसदशामें भी सुवर्ण

की चोरी तुल्य पाप समझना अन्यथा जो येही चीजें बहुत कीमती या अति उत्तम न हों और ब्राह्मण से उपरान्त किसी की हों तो उनकी चोरीका पापइससे आगले परिच्छेद में जाकर देखना जहां उपपातक वर्णन होंगे॥ अब दोसौ इकतीसके श्लोक में गुरुभार्या भोग महापाप के समान पातक दर्शावेंगे॥ २३०॥

(गुरुतल्पसमपापानि)

सखिभार्याकुमारीपुस्वयोनिष्वंत्यजासुच। सगोत्रासुसुतस्त्रीषुगुरुतल्पसमंस्मृतम्॥ २३१॥

अर्थः—सखा मित्र होताहै तिसकी पत्नी में•कुमारी कन्याओं में जो उत्तम जाति हों•स्वयोनि अपनी बहिनोंमें•अंत्यजाचांडालियोंमें•सगोत्रा अपने समान गोत्रवालियोंमें•सुत स्त्री पुत्र वधुओंमें•जो कोई संगम करै तो यह गुरुतल्पगमनके समान महा पातक होते कहेहैं॥ २३१॥

२३१अधिकोक्तिः—कुमारीके प्रसंगसे व्यवहारकांडमें यह वचन आया था (स कामाखनुलोमासुनदोयस्त्वन्यथादमः—दूयगोतुकरच्छेद उत्तमायांवधस्तथा) कि जो कन्या कामसे पीड़ित होके निज इच्छासेही पुरुषको चाहै और अनुलोम जातिहो अर्थात पुरुषसे नीचेवर्ण कीहो तो इस दशामें उस पुरुष का कुछदोष नहीं है परन्तु जहां इससे अन्यथा डौलहोय कि पुरुष नीचा और कन्या उत्तमजाति की या नीची जाति होनेपर भी कन्याने कामपीड़ा और इच्छा अपनी न उत्पन्न कीहो तहां पुरुष दोषी होकर दण्डपावै=और हाथसे दूषित करनेमें हाथ कटायाजाय जो उत्तमजाती कन्या में ऐसा कियाहो तो उस पुरुषको वधदण्ड दियाजाय—जिस अपराध में दंड बड़ा होताहै उसमें प्रायश्चित्त भी बड़ा कराया जाता है यह तात्पर्य ठहिरा—इन्हीं दो वचनोंके आशयसे विज्ञानेश्वरने मूलश्लोकमें भी उत्तमजाती कन्या ठहिराई॥०॥ मूलश्लोकमें जिन स्त्रियोंका सङ्गम गुरुतल्पके समान कहा सोभी उसदशामें समझना जहां योनिमें वीर्यभी सींचाहो•अन्यथा जो वीर्यपात होनेसे पहिले लौटिगयाहो तो वह पाप भी गुरुतल्पकी बराबर नहीं किन्तुथोड़ाही प्रायश्चित्त कराने योग्य ठहिरै क्योंकि मनुने वीर्यपातकेही लक्षणसे गुरुतल्प के समान पाप ठहिराया है=यथा= रेतःसेकःस्वयोनीषुकुमारीष्वंत्यजासुच सख्युःपुत्रस्यचस्त्रीषुगुरुतल्पसमंविदुः=अर्थात— वीर्य सींचना अपनी बहिनों में•कुमारियों से•चंडालियों में•मित्र की स्त्रियों में•पुत्र की स्त्रियोंमें•गुरुतल्पके समान कहिते हैं॥ ० ॥ योगीश्वरने मूल श्लोक में सगोत्रा स्त्रियां कहीं पुत्रकी बधूभी सगोत्राहोतीहै उनको फिर दुबारा पुत्रवधूके नामसेकहिना

कुछ आवश्यक नहींथा परंतु इबारानामभरूसेसे उसके मध्ये बहुत बड़ादोष औरबहुतबड़ा प्रायश्चित्त दर्शायाहै ॥ ० ॥ एकसो उनतीस श्लोकसे आदि लेकर ब्रह्म हत्या आदि के समान समझाने वाले जो वचन हैं तिनका यही तात्पर्य है कि गुरुओं का अधि क्षेप आदि जो जो कर्म यहां तक बताये गये तिनमें वही ब्रह्महत्या आदिका प्रायश्चित्त कराना समझा जाय तहां यह शंका खड़ी होतीहै कि वेदकी निंदा आदि जो छोटे छोटे दोष हैं तिनमें ब्रह्महत्या आदि के बहुत बड़े प्रायश्चित्त कराने योग्य नहीं समुझि परते हैं—इसका यह समाधान है कि ऐसा उलटा मतसमुझो किंतु बड़े प्रायश्चित्त का उपदेश होनेसे उपदेश की प्रबलासे ही दोषका बड़ापन पाया जाता है—क्योंकि वह वचन केवल ब्रह्महत्या आदि प्रायश्चित्त ही के अतिदेश मध्ये नहीं किंतु दोषों की बड़ाई सिद्ध करने केभी निमित्त है—जिससे कि जो केवल वही दर्शाना अभीष्टहोता तौ जुदा जुदा ऐसे भेदसे न कहिते कि ब्रह्महत्या के समान या गुरु तल्पके समान या सुवर्णस्तेय के समान या सुरापान के समान अर्थात् सभीको सामान्य भाव ऐसा कहिदेते कि ये सभी महा पातक हैं॥ ० ॥ और भी यह विशेषता है कि सम शब्दसे उपदेश किये प्रायश्चित्त भी सर्वत्र कुछ कमती करिके आदेश कियेजाते हैं बराबर नहीं•इसपर यह दृष्टांत है कि जैसा न्याय और व्याकरणके प्रयोगों में यह नियमरक्खागयाहै कि(लोकराज समोमंत्री)इत्यादि ऐसे अन्यवाक्यों में भी जिसकी उपमासम कहिके दीजातीहै वह प्रधानसे कुछ न्यून होताहै जैसे इसीवाक्यमे देखो कि यद्यपि मंत्रीको लोकराजके समानकहा तौभीप्रधान लोकराजकेसाथ मंत्री कहांतक बराबरी करसक्ताहै मंत्री औ राजाकी बराबरी कदापि नहीं—इसीप्रकार महापातक और उनसे दूसरे दर्जाके पातकोंमें परस्पर तुल्यता होनी अनुचितहै तिससे इनमें कुछन्यून अर्थात् एकपाद कमकरिके पायश्चित्त देनाचाहिये (इसका विशेषव्योरा २५२ की अधिकोक्तिके प्रारंभमें देखना) यह व्यवस्था इस प्रकारसे निश्चित हुई तौ फिर इसके विरोधी वचन शोचने चाहिये कि—याज्ञवल्क्य ने जिनपापोंको ब्रह्महत्याके समान कहा तिनको मनुने सुरापानके समान कहा= यथाहमनुः=ब्रह्मोज्झतावेदनिंदाकौटसाक्ष्यसुहृद्वधः गर्हितान्नाद्ययोर्जग्धिःसुरापानसमा निषट्=अर्थात् पढ़ वेदका छोड़िदेना•वेदकी निंदाकरना•जालसाजी से गवाहीदेना• मित्रको वध करना•निंदित चीजेंखाना•अनादि चीजें कि जिनकी पैदाइशका हाल नहीं मालूम तिनकाखाना•ये छःकामसुरापानके समानहैं—इनमें—वेदकाभुलाइदेना१ वेदकी निंदा २ मित्रकावध३ येतीनपाप वेहैं कि जिनको याज्ञवल्क्यजी ब्रह्महत्याके

समान कहिचुके•सो इस द्विविधा में यह तात्पर्य है कि चाहै ब्रह्महत्यावाला प्राय-श्चित्त कराया जाय या सुरापान वाला प्रायश्चित्त हो दोनोंका विकल्पहै कि जैसी दशा देखीजाय तिसके अनुसार दोमेंसे कोई एकप्रायश्चित्त किया जाय•इसीप्रकार अन्यवचनभी जहाँ कहींविरोधी मिलिजायँ तहाँ ऐसी युक्तियोंसे विरोध दूरकरदेना बुद्धिमानोंका कामहै॥ इसके सिवाय जो वसिष्ठका यहवचनहै कि (गुरोरलीकनिर्बंधेकृच्छ्रन्द्वादशरात्रंचरित्वासचैलस्नातोगुरुप्रसादात्पूतोभवति) गुरुके सामने झूठे वा अप्रिय वचनों से आग्रह करनेके पापमध्येबारहदिन का कृच्छ्रव्रत करिके पोछेसचैल स्नान किया हुआ गुरुके चरणोंमें माथाधरने और गुरुको प्रसन्नकरि आशीर्वाद लेने से पवित्र होताहै– सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसदशापर समझना जब धोखासे बिना जाने सिर्फ एकवार ऐसापापहुआहो॥ २३१॥ इनसे उपरान्त अभी और भी गुरुतल्प के समान महापातकहैं तिनका अतिदेश अगिले श्लोकों में दर्शाते हैं॥

(पुनश्चगुरुतल्पसमपापातिदेशः)

पितुःस्वसारंमातुश्चमातुलानींस्नुषामपि। मातुःसपत्नींभगिनीमाचार्यतनयांतथा २३२
आचार्यपत्नींस्वसुतांगच्छंस्तुगुरुतल्पगः। लिंगंछित्वावधस्तत्रसकामायाःस्त्रियाअपि २३३

अर्थः–पिताकी बहिनको• माताकी बहिनको•मामीको•और इन सबकी पुत्रवधूको• जो नातेसे बहिन होती हो तिसको• आचार्यकी बेटीको•तथा आचार्यकी पत्नीको• अपनी बेटीको• गमनकरता हुआ (गुरुतल्पग) गुरुगामी ठहरताहै तहाँ निपट लिंगेन्द्री काटिके राजा उसका प्राणवधकरै यहीदण्डरूपी प्रायश्चित्तहै और कुछ नहीं (केवल पुरुषही को दंड उसी दशामें जब उसने प्रबलता या धोखा आदि प्रकारों से ऐसाकिया हो अन्यथा) जहाँ उन स्त्रियोंने भी अपनी काम इच्छा आदि प्रकारोंसे इन पुरुषोंकाभोग अंगीकार कियाहो तो उसस्त्रीकाभी वधकियाजाय यही दंड और यही प्रायश्चित्त है॥ २३२॥ २३३॥

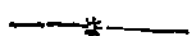
२३२अधिकोक्तिः–मातुश्च यह मूलश्लोकमें चकार जो आया तिसके अन्वर्थ से रानी और संन्यासिनि आदि जो नहीं गिनाई तिनका भी संग्रह कियाजाता है क्योंकि उनको नारदने गिनाहै=यथाह नारदः=मातामातृष्वसाश्वश्रूमातुलानीपितृष्वसा पितृव्यसखिशिष्यस्त्रीभगिनीतत्सखीस्नुषा दुहिताऽऽचार्यभार्याचसगोत्राशरणागता राज्ञीप्रव्रजिताधात्रीसाध्वीवर्णोत्तमाचया आसामन्यतमांगच्छन्गुरुतल्पगउच्यते शिश्नस्योत्कर्तनात्तत्रनान्योदंडोविधीयते=अर्थात्–माताऔर माताकीबहिनमावसी•

सासु•मामी•पिताकीवहिनबूआ•चचाकीस्त्री•मित्रकीस्त्री•शिष्यकीस्त्रीबहिन•वहिन कीभनेलीचाहैवहकिसीकीकन्या वास्त्रीहो•पुत्रकीवधू•बेटी•आचार्यकीपत्नी•सगोत्रा अपने गोत्रभरकोई स्त्रीमात्रहो•शरणागता जो कहींसेभगी वहीरक्षा समुझिके अपनी छायामें कुछ समय वितानेको टिकी हो• रानी जो राजकरनेवाले राजाकी भार्याहो (किंतु सामान्य क्षत्राणी जातिमात्र न समझनी क्योंकि उसके गमन मध्ये जुदाप्राय-श्चित्तकहागयाहै)प्रव्रजितासंन्यासिनिआदि साधिनी•धात्रीवाय जिसनेदूधपिलाकर पालाहो•साध्वी जो किसीव्रतादिक नियमोंकीसाधनामेंतत्परहो•वर्णोत्तमाब्राह्मणी• इनमें से किसी एकहीको गमनकरताहुआ पुरुष गुरुभार्यागामी कहाता है लिंग उस का कटवाय डारने के सिवाय कोई और दंड ऐसानहींहै जिससे उस के प्राणबचैं= परन्तु=यह लिंगच्छेद और बधरूपी दण्ड ब्राह्मण से उपरांत मनुष्यको सूचितहुआ है- क्योंकि (नजातुब्राह्मणंहन्यात्सर्वपापेष्ववस्थित मितितस्यवधनिषेधात्) ब्राह्मण को कदापि न मारे सब तरहके पापों पर आरूढ होने में भी यह उसके मारने का निषेध सर्व शास्त्र में उपस्थित है तिससे• तथापि उक्त कुकर्मों का प्रायश्चित्त यही बधरूपी जो लिखचुके तिसका विरोध दूरकरने वाली व्यवस्था आगे उसस्थल पर लिखी जायगी जहां गुरु तल्पीके प्रायश्चित्त का प्रकरण आवै (२५९श्लोक पर देखना) ध्यान करो कि २२८ दोसौ अट्ठाइस मूलश्लोक से लेकर यहांतक छः श्लोकों में गुरुओं का अधिक्षेप आदि पुत्री गमन पर्यंत जो कुकर्म वर्णनहुये सो सब महापातकों का अतिदेश हैं (सद्यही पतन का हेतु होने से पातक कहे जाते हैं) तदाह यमः=मातृष्वसामातृसखीदुहिताचपितृष्वसा मातुलानीस्वसाश्वश्रूगत्वासद्यःपतेन्नरः=अर्थात्- मातृष्वसा मावसी• माताकी सखी भनेली• बेटी• पिताकी वहिन• मामी• वहिन• सासु•मनुष्य इनको गमन करिके सद्यःतत्काल ही पतित होय अर्थात् जाती और लौकिक धर्मकर्मों से गिराया जाय ॥ गौतमने कुछ औरभी पातकी पुरुष कहेहैं=यथा=मातृपितृयोनिसंबंधांगस्तेननास्तिकनिन्दितकर्माभ्यासि पतितात्यागिनःपतिताःपातकसंयोजकाश्च=अर्थात्-माता या पिताके योनि संबंधी रिश्तेदारों में विवाह करिलानेवाला•चोरीकरने वाला•नास्तिक जो जाती धर्मकोन मानै•निंदित कर्मों का अभ्यास रखने वाला दुर्जीवी• पतितको नहीं त्यागै सोभी• पातकोंका संयोग करावै सोभी• ये सभी पुरुष पतित होतेहैं-गौतमने इन पातकियों को महापातक और उपपातकों के बीच में गिनती कियाहै तिससे ये ऐसेहैं कि महापातकियों से कुछ न्यून और उपपातकियों से कुछ ऊंचे पापवाले समझे जाते हैं=तथाच

वचनं=महापातकतुल्यानिपापान्युक्तानियानितुतानिपातकसंज्ञानितन्न्यूनमुपपातकम=अर्थात्-जो पाप महापातकों के तुल्य या केवल पापही के नाम से दर्शाए होवे सब पातक नाम कहाते हैं उनसे भी जो न्यून हों सो उपपातक जानो=यह नियम अ-गिरा के वचन से भी सिद्ध होता है=यथाहांगिरा:=पातकेषुसहस्रंस्यान्महत्सुद्विगुणं तथा उपपापेतुरीयस्यान्नरकंवर्षसंख्यया=अर्थात्-नरकोंकी अवधि जाननेसठये वर्षों की संख्या से• पातकों में हजार वर्ष नरक भोगे तथा महापातकों में उससे दूना दो सहस्र वर्ष और उपपापों में चौथा भाग २५० दोसौ पचास वर्ष नरक होता है यह नियम जानो॥ २३२॥ २३३॥

इस प्रकारसे चौबीसवें परिच्छेदमें महापातकोंका स्वरूपकहाऔर पचीसवेंपरिच्छेद मेंपातकोंकास्वरूपकहाअबअगिलेपरिच्छेदमेंसबसेछोटेउपपातकजुदेनामोसेदर्शावेंगे॥

अथ उपपातकादीनांस्वल्पपापानांविवेक विषयोऽयंपरिच्छेदःषड्विंशः २६॥



इस परिच्छेद में तीसरे दर्जावाले उपपातक और उनसे भी छोटे अनुपातक आदि दर्शाए जायेंगे॥

(गोवधाद्युपपातकानि)

गोवधोव्रात्यतास्तेयमृणानांचानपाक्रिया। अनाहिताग्निताऽपण्यविक्रय:परिवेदनम् २३४

अर्थः- गोवध• व्रात्यता• चोरी• ऋणोंका उद्धार न करना• अनाहिताग्नित्व• अपण्यविक्रय• परिवेदन• ये प्रत्येक जुदा जुदाही उपपातक होते हैं यह दोसौ बया-लीस के श्लोक में जाय कर कहेंगे तहां देखो=अर्थात्- गऊ को मारडारना यह गोवध एक उपपातक है-व्रात्य वह कहाताहै कि यज्ञोपवीत जिस अवधिके भीतर करना लिखा है उस अवधि को उलांघि जाय-स्तेय चोरी सामान्य जो ब्राह्मणके सुवर्ण से उपराल और दोसौतीस मूलश्लोकमें लिखे उसके समान द्रव्य (घोडा रत्न मनुष्य स्त्री धरती गऊ निक्षेप) इनसेभी उपराल कोई द्रव्यचुरावे या लेभागे याछीने या लूटे-ऋणका उद्धार न करना अर्थात्सोना चांदीआदि किसीसेलेकर न देनातथैव

देव ऋषि पितरोंके ऋण उद्धार न करने–अनाहिताग्नित्व अर्थात् जिसके कुलमें अग्नि स्थापनका अधिकार है सो अग्निको नहीं स्थापै तो यह भी उपपातक है–अपण्य जो नहीं बेचने योग्य चीजें कि जिनका निषेध छत्तीसवें मूलश्लोकसे आदि लेकर हो-चुका तिनको बेचै तौ यह उपपातक होताहै–परिवेदनदोष उसकानाम है कि जेठेभाई का विवाह न होकर पहिले छोटेभाईका विवाह कियाजाय और जेठेभाईके अग्नि का स्थापन न होतेहुये छोटाभाई अग्नि स्थापनकरै तो छोटे को परिवेदन पापहोता है–ये सब एक एक उपपातक होतेहैं ॥ २३४ ॥

२३४ अधिकोक्तिः–मूलश्लोक में यहकहाथा कि स्थापनाका अधिकार कुलमें होते हुये जो अग्न्याधान को न राखै सो उपपातकी होताहै–इसमें एक तर्कना है–क्यों जो ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंकी अनुज्ञा देनेवाली श्रुतियाँ अपने अंगभूत अग्नि को सिद्ध होने के लिये अग्निका आधान स्थापन अवश्यही प्रयुक्तकर वातीरहि-तीहैं यहबात मीमांसा मे प्रसिद्ध है–तो इसनियमसे यह बातभी स्वतः पाईजाती है कि जिसके कुल में अग्नियोंसे प्रयोजनहोगा तिसको उसके उपायरूपी आधान में स्वतः प्रवृत्ति होतीरहेगी जैसे हरतरहकेधन संचय करनेवालों में जिसको नाजलेनेकी गर्जहै वह नाजहीपर उतारूहोगा॰और जिसके कुलमें अग्नियोंसे प्रयोजन कुछनहीं है तिसकी प्रवृत्ति उसके आधानपर न होगी॰तो फिर कैसे अनाहिताग्नित्वकादोष ठहिराआगया= समाधान–सुनो इसी मूलश्लोकरूपी वचनसे(कि जिसमें उपपातक दर्शानेद्वारा आधानकी आवश्यकता ठहिराईगई तिससे)नित्यश्रुतियोंभी और अधि-कारवाला पुरुष भी अविशेषता से आधानके प्रयोजक होते हैं अर्थात् स्थापनाको प्रयुक्ति करवाते और करते भी रहिते हैं यही स्मृतियोंके बनानेवालों का अभिप्राय पायाजाताहै ॥ २३४ ॥

(अन्यानिचउपपातकानि)

भृताद्ध्ययनादानंभृतकाध्यापनंतथा। पारदार्यंपारिवित्त्यंवार्धुष्यंलवणक्रिया २३५ ॥
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधोनिंदितार्थोपजीवनम्। नास्तिक्यंव्रतलोपश्चसुतानांचैवविक्रय २३६ ॥

अर्थः मजूरीदेकर वेदपढना–मजूरीलेकर वेदपढाना–पारदार्य पर स्त्री से भोग(पर स्त्री उनको समझना जो पहिलेदो परिच्छेदोंमे वर्णन होचुकीं तिनसे उपरान्त हों)–पारिवित्त्य अर्थात् सहोदर छोटेभ्राता का विवाह प्रथम होजाय तो जेठे विना विवाहे को परिवित्तिदोष लगता है सो यह एक उपपातक है (इसदशा मे छोटेको परिवे-

दनके नामसे उपपातक होता है सो २३४ केश्लोक में कहिचुके) वार्धुष्य कर्म्म जो उस प्रकारसे व्याजवृद्धि की जीविका करे जिसका निषेध है—लवण क्रिया अर्थात् खानिसे नमक सोरा आदि अपने हाथसे बनाना एक उपपातकहै ॥ २३५ ॥ स्त्रीका वध करना चाहैं ब्राह्मणी आदि कोईजातिहो (परंतु रजस्वला आदि आत्रेयी स्त्रियों को छोड़िके यह नियम समझना आत्रेयीके दोषलक्षण दोसौ इक्यावन की अधिकोक्तिमें देखना) शूद्रका वधकरना एक उपपातकहै—वैश्य या क्षत्री जो किसी यज्ञ आदि दीक्षा में दीक्षित नहीं तिनका वध करना उपपातक है—निंदित अर्थोंसे उपजीवन करना अर्थात् जीविका करनेका जो प्रकार राजाने नहीं स्थापित किया और लोकमें भी निंदितहो तिसके द्वारा—नास्तिक्य उसका नामहै कि हठपूर्वक ऐसा कहै कि परलोक आदि झूंठी कल्पना है—व्रत का लोप करना दृष्टांत जैसे ब्रह्मचारी होकर स्त्रीसे प्रसंगकरै—सुतानांविक्रय अर्थात् लड़का लड़की आदि संतान वेचना—ये सभी बातें एक एक उपपातक हैं ॥ २३५ ॥ २३६ ॥

(अन्यानिच उपपातकानि)

धान्यकुप्यपशुस्तेयमयाज्यानांचयाजनम् । पितृमातृसुतत्यागस्तडागारामविक्रयः २३७
कन्यासंदूषणंचैवपरिविंदकयाजनम् । कन्याप्रदानंतस्यैवकौटिल्यंव्रतलोपनम् २३८

अर्थः—धान्य सब तरह के नाज की चोरी—कुप्य सीसा रांग पीतल आदि छोटी धातुओं की चोरी—उन पशुओं की चोरी जो दोसौ तीस २३० मूल क में लिखे हुये कीमती घोड़ा हाथी आदि या हाल की वियानी दूध देती उत्तम गऊ से उपराल गऊ आदि हर किस्मके पशु जो कमकीमत समझे जाते हैं—अयाज्य शूद्र आदिया व्रात्य दोष वाले त्रैवर्णिक भी हों अथवा जाति या कर्मों से दूषितहों तिनको यजन करावै अर्थात् उनकी पुरोहिताई पाधाई करै तो यह भी उपपातक है—अपतित माता पिता या पुत्रों को पालनासे त्यागै अर्थात् घरसे निकासिदेवै तो यह उपपातक है—तड़ाग वागीचा धर्मशाला आदि जो पुण्य के निमित्त से वनाये गये यद्वा कुल का नाम रहिने के लिये वनाए हों तिनका वेचिदेना ॥ २३७ ॥

कन्या को दूषित करना अर्थात् भीतर विनाही अँगुरी आदि से योनि विगाना या औरही किसी प्रकार से छेड़ छाड़ करना उपपातक है और यह भी कि यदि किसी कुमारी कन्या को ऐसा कोई दोष लगावै जिससे विवाह रुकिजाय (कुमारी से सम्भोग करना इस पाप से बड़ापातकहै जिसको २३१ श्लोक में गुरुतल्पकेसमान

कहिचुके हैं)–परि विन्दक पुरुष को विवाह कर्म आदि कोई सा यजन कराना (परिविन्दक उसको समझना जो जेठे पुत्रको विवाहे विना छोटेका विवाह करै या जेठी पुत्री विवाहे विनालघुरी का विवाह करै तिनको विवाह करानेवाला पण्डित भी उपपातकी होताहै)–परिविन्दक पुरुष को कन्यादान करिके देनाभी उपपातक है–कौटिल्य कुटिलता के लक्षण पहिले दोसौ उनतीस मूल श्लोक में लिखि चुके तहां देखो परतु वहांपर बहुत बडी कुटिलता का प्रयोजन था कि जिसका न्याय निर्णय उसी की अधिकोक्ति मे दर्शाया गया॰किंतु यहां छोटी मोटी कुटिलता करै सो उपपातक है बल्कि इस प्रकार से भी भेद किया गयाहै कि वहांपर अपने गुरु के साथ कुटिलता करने का तात्पर्य था यहां जो औरों के साथ कुटिलता करै सो उपपातकहै छोटी बडी से कुछ भेद नहीं पर विवेकी पुरुष दोनों प्रयोजनके मीज़ान से न्याय करै–व्रत का लोप करना उपपातक है यद्यपि दोसौ छत्तीस मूलश्लोक में व्रत लोप करना कहिचुके परंतु यहां पर अग्राह्य और अप्रतिषिद्ध सामान्य छोटे व्रतोंका प्रयोजन है दृष्टांत जैसे श्रीहरि चरणों के दर्शनकिये विना तांबूलआदि कुछ नहीं खाताहूँ यह मेरा नियम है इसको बहुत दिन साधने पीछे छोडि देना आदिस-मझने क्विंतु २३६ के श्लोक में स्नातक ब्रह्मचारी आदिके व्रतभंग होने कहेथे यहां स्नातक व्रतवाले स्वल्प नियमों की भी पहुँच नहीं मानी गईहै क्योंकि स्नातकों के छोटे व्रतलोप होजाने मध्ये मनुने छोटा प्रायश्चित्तही जुदा कहा है कि एक दिन भोजन का त्याग रखै यही प्रायश्चित्त है॥ २३८ ॥

(अन्यानिच उपपातकानि)

आत्मनोऽर्थेक्रियारंभोमद्यपस्त्रीनिषेवणम् । स्वाध्यायाग्निसुतत्यागोबांधवत्यागएवच २३९
इंधनार्थंद्रुमच्छेद स्त्रीहिंसौपधजीवनम् । हिंस्रयंत्रविधानंचव्यसनान्यात्मविक्रयः २४०
शूद्रप्रेष्यंहीनसख्यंहीनयोनिनिषेवणम् । तथैवानाश्रमेवासःपरान्नपरिपुष्टता २४१

अर्थः–अपनेही आत्मा के अर्थ रसोई आदि पाक लक्षण वाली क्रियाओं का आरम्भ करना–मद्यपीने वाली स्त्री जो अपनी भार्या भी हो तिसका सेवन भोगआदि –स्वाध्याय अर्थात् अपना याद जो गीता आदि कोईसा नैत्तिक चला आताहो तिस का त्यागिदेना–अग्नि जो जिसके घर श्रौत वा स्मार्त सदा रहती हों तिनका उठाइ देना–सुतत्याग अर्थात पुत्रका संस्कार आदि न करनेसे त्याग करना–बांधवोंकात्याग अर्थात् ऐश्वर्यके होतेहुये चचा मामा फूफू आदि बांधवों की रक्षा न करनी ॥२३९॥

ईंधनके लिये गीला वृक्ष काटना हवनसे उपरान्त निमित्तों में–स्त्री के द्वारा उपजीवन करना अर्थात् द्रव्यलेकर परपुरुषोंसे संयोग कराना आदि और स्त्री धनका हरिलेना आदिभी इसीमें समझना–हिंसाके द्वारा उपजीवन करना दृष्टांत जैसे पशु पक्षी आदि जीव पकड़िके बेचना आदि–औषधीसे उपजीवन अर्थात् जंगल से जरी बूटी लाकर बेचना और वशीकरण आदि प्रयोगोंके मार्गसे औषधी देना कि इसका तिलक लगानेसे अमुक वशमें आजायगा इत्यादि क्योंकि सूखी औषधी हाटके द्वारा बेचनेका दोष नहींहै यह निर्णय पहिले अपराधविक्रयके प्रकरणमें होचुका और मुख्य तात्पर्य उसका यहहै कि उसमें कोई विष रूप औषधी किसी अज्ञानीको न देदीजाय–हिंसकयंत्र जीवोंके प्राण विनाश करनेवाली कलोंका बनाना तथा तेल पेरने आदि की कलें जारी करना अपने नामसे–व्यसन मृगया शिकार आदि अठारह प्रसिद्ध हैं आचार मर्यादा परिपाटीके राजधर्म प्रकरणमें देखोवे सब जुदेजुदे अठारह उपपातक समझने–आत्मविक्रय अपना शरीर जन्मभर के लिये बेचिदेना या धनलेकर दास होजाना आदि जिसमें निपट पराधीन होजाय ॥ २४० ॥ शूद्रप्रेष्य अर्थात् शूद्रकी अति छोटी नौकरी जिसमें सँदेसा आदि पहुँचानेकी छोटी सेवा करनीहो–हीनसख्य अर्थात् हीनोजातिसे मित्रता करनी या हीनकर्म करनेवालेसे मैत्रीकरनी आदि–हीन योनिका सेवन करना अर्थात् वेश्या आदि जो साधारण सबजनोंकी स्त्री होतीहैं तिन का भोग और विना विवाही जो अपनेही वर्णकी हो तिसका भोग भी हीनयोनिकी सेवा गिनीजाती है–अनाश्रमका वास अर्थात् ब्रह्मचारी या गृहस्थी या वानप्रस्थ या संन्यासी इनमें किसीके भी आश्रमसे नमिलना अधिकोक्तिमें देखो–परान्नपरिपुष्टता अर्थात् केवल पराये अन्नसे शरीर पालना किंतु दशदिन किसीके घर खाया दोदिन किसीके इसीरीतिसे अवस्थाको वृथाखोदेना कभी अपना चौका चूल्हा बनाकरनहीं बैठनाएकउपपातकहै–इसीप्रकार ऊपरलिखी सभीबातेंजुदे जुदेउपपातकहैं॥ २४१ ॥

२३९ अधिकोक्तिः–(अघंसकेवलंभुंक्तेयःपचत्यात्मकारणात) यह वचनहै कि जो कोई केवल अपनेही निमित्तसे रसोईमें पकाता है वह केवल पापही का भोजन करताहै अन्न मतसमझना इसीप्रमाणसे मूलश्लोक में कहागया कि अपनेही निमित्त से जो पाक चढावै सो उपपातक है ॥ ० ॥ अनाश्रमवास का विशेष तात्पर्य यहहै कि प्रायः गृहस्थी जो कल्याणभार्य होजाय उसको शीघ्रही दाराग्नि संग्रह करना आचार मर्यादा में कहिचुके हैं और भी यह वचन है कि (अनाश्रमीनतिष्ठेतदिनमेकमपिद्विजः) द्विजातीमात्र कोई पुरुष एक दिन भी विना आश्रम के न रहे अर्थात

यातो किसी औरही आश्रम का सहारा लेवै या शीघ्र अपना विवाह करिके गृहस्थ का आश्रम साधै परन्तु यह नियम केवल उसके लिये है कि जो विवाह करने का अधिकारी सचाहोय अर्थात् पुत्र लाभकी कामना शेषहोय या रति भोग की इच्छा शेषहोय यद्वा गृहस्थवाले धर्मोंका आराधन करना चाहे किंतु इनमेंसे कोई बात जिस के चित्तमें नहो अर्थात् जिसके पुत्रपौत्र आदि मौजूदहों या इनके मौजूद न होने पर भी शरीरसे बूढा शिथिल होय या शिथिलताके न होनेपर भी कामभोग की इच्छा शेष न होय यद्वा किसी विशेष परमधर्मरूपीकार्यमें संलग्नहोनेसेगृहस्थकाआडंबर नहींरोपाचाहे तो वहपुरुषविवाहकरनेका अधिकारीनहींहैजोअधिकारीनहीं उसको उपपातकभी न है॰॥ तथाचविज्ञानेश्वराचार्यः–अगृहीताश्रमत्वंसत्यधिकारे॥ २४१ ॥

(अन्यानिच उपपातकानि)

असच्छास्त्राधिगमनमाकरेष्वधिकारिता। भार्यायाविक्रयश्चैषामेकैकमुपपातकम् २४२

अर्थः–असत् शास्त्रोंका विचारनाअभ्यासकरना(असत्शास्त्रउनकानामहै जो चार्वाक आदि नास्तिक जनोंके शास्त्र हैं जिन में विरोधीरीतें होती हैं) आकर खानि जो सुवर्ण आदि सब चीजों के उत्पत्तिस्थान कहाते हैं तिनमें राजकी आज्ञासे ठेका आदि अधिकार करना–भार्या का बेचना–इन सबमें कि जो जो कर्म कुकर्म गोवध आदि दोषसे चौंतीस श्लोक से लेकर यहां तक वर्णन किये सो एक एक जुदे उपपातक है॥ २४२॥

२४२ अधिकोक्ति–योगीश्वर के वचनों से उपपातक लिखेगये–परन्तु–मनुने और भी निमित्तदर्शाए हैं तिनके नाम भेद भी जातिभ्रंश कर आदि पातक वरे हैं= यथाह मनुः=ब्राह्मणस्यरुजःकृत्वाघ्रातिरघ्रेयमद्ययोः जैह्म्यंपुंसिचमैथुन्यंजातिभ्रंशकरस्मृतम॰ खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा सङ्करीकरणंज्ञेयंमीनाहिमहिषस्य च॰ निंदितेभ्योधनादानंबाणिज्यंशूद्रसेवनम् अपात्रीकरणंज्ञेयमसत्यस्यचभाषणम्॰ कृमिकीटवयोहत्यामद्यानुगतभोजनम् फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यंचमलावहम् (अतोन्य निमित्त जात प्रकीर्णकं कथ्यते)=अर्थात्–ब्राह्मण के शरीर में चोटलगाना॰न सूंघने योग्य अपवित्र चीजों तथा मद्यका सूंघना॰ जैह्म्यकुटिलता॰ पुरुष की गुदासे मैथुन करना॰ये सब जाति भ्रंश कर पाप कहाते हैं–गदहा ऊंट घोड़ा मृग हाथी इनका वध करना तथा बकरी भेड़का बधकरना और जलके मीन सर्प भैंसा इनका वधकरना ये सब सङ्करीकरण पाप कहाते हैं–निंदित कर्मों के मार्ग से धनका लेना तथा निंदित

वाणिज्य और शूद्रकी सेवा करना ये सब अपात्रीकरण पाप होतेहैं जैसे असत्य बोलनेकी भाँति–कृमि कीट पक्षी इनकी हत्या और मद्यानुगत भोजन अर्थात् जो चीजें बनाने वा परस्पर मिलानेसे मद्यके अनुरूप होजातीहों तिनका भोजन करना फलकी चोरी ईंधन की चोरी फूलोंकी चोरी और धीरज राखनेके स्थलपर धैर्य छोड़िदेना ये सब मलावह नामके पाप कहातेहैं (इनके सिवाय जो पापरूपी निमित्तकोई उत्पन्न हों सो प्रकीर्णक कहाते हैं) ॥ ० ॥ वृद्धविष्णुने सभी प्रायश्चित्तों के निमित्त रूपी पाप यथाक्रमसे (उत्तरोत्तर) पीछे पीछे छोटे करिके जुदे संज्ञा भेदोंसे दर्शाएहैं जोसब चौदह भेदहोते हैं–तथाच वृद्धविष्णुः=ब्रह्महत्यासुरापानं ब्राह्मणसुवर्णापहरणं गुरुदारगमनमिति महापातकानि तत्संयोगश्च–मातृगमनंभगिनीगमनं दुहितृगमनंस्नुषागमन मित्यतिपातकानि–यागस्थस्यक्षत्रियस्यवैश्यस्यच रजस्वलायाश्चांतर्वत्न्याश्चात्रिगोत्रायाश्चाविज्ञातस्यगर्भस्य शरणागतस्यचघातनं ब्रह्महत्यासमानि–कौटसाक्ष्यं सुहृद्वध इत्येतौसुरापानसमौ–ब्राह्मणस्यभूमिहरणं सुवर्णस्तेयसमं–पितृव्यमातामहमातुलनृपपत्न्यभिगमनंगुरुदारगमनसमं–पितृष्वसृ मातृष्वसृ गमनं श्रोत्रियर्त्विगुपाध्याय मित्रपत्न्यभिगमनंचातिपातकसमं–स्वसुः सख्याः सगोत्राया उत्तमवर्णायारजस्वलाया.शरणागतायाः प्रव्रजितायानिक्षिप्तायाश्च गमनमित्येतान्यनुपातकानि–अनृतवचनंसमुत्कर्षे राजगामिच पैशुन्यंगुरोश्चालीकनिर्बन्धो वेदनिंदाअधीतस्यत्यागोऽग्निपितृमातृसुतदाराणांच अभोज्यान्नभक्षणं परस्वापहरणं परदारागमनमयाज्यानांचयाजनं व्रात्यताभृतकाध्यापनं भृताद्ध्ययनादानं सर्वाकरेष्वधिकारो महायंत्रप्रवर्तनंद्रुमगुल्मवल्लीलतौषधीनां हिंसयाजीवनमभिचार मूलकर्मसुच प्रवृत्तिरात्मार्थं क्रियारंभोऽनाहिताग्निता देवर्षि पितृणा मृणस्यानपाक्रिया असच्छास्त्राधिगमनं नास्तिकता कुशीलवता मद्यप स्त्री निषेवणमित्युपपातकानि–ब्राह्मणस्य रुजःकरणमघ्रेयमद्ययोर्घ्रातिर्जैह्म्यंपशुपुंसिच मैथुनाचरण मित्येतानिजातिभ्रन्शकराणि–ग्राम्यारण्यपशूनांहिंसनं संकरीकरणं–निंदितेभ्योधनादानं वाणिज्यं कुसीदजीवनमसत्यभाषणं शूद्रसेवनमित्यपात्रीकरणानि–पक्षिणांजलचराणांचघातनं कृमिकीटघातनं मद्यानुगतभोजनंमलावहानि–यदनुक्तंतत्प्रकीर्णकं=अर्थात्–विष्णुमुनि की बड़ी स्मृति में क्रम से सभी पापों के बड़े छोटे इतने भेद किये गए हैं कि–ब्राह्मण की हत्या • सुरापीना • ब्राह्मण का सोना हरना • गुरु की दारा भोग करना • ये महापातक हैं १ और इनकी सिलाति वाला भी महापातकी होता है–माता या भगिनी या बेटी या पुत्रकी वधू गमन करना यह अतिपातक हैं अर्थात् महापातकों से कुछनीचेर

यज्ञ में लगे हुये क्षत्रीका वध करना तथा वैश्यभी यज्ञ में लगे हुये का वध करना या रजस्वला नारीका वध करना या गर्भवती का वध करना या अत्रिमुनि के गोत्र वाली किसी प्रकार की स्त्रीका वध करना या बिनाजाने गर्भका वध करना या अपने शरणा-गत का घात करना ये सभी पाप ब्रह्महत्या के समान हैं ३ जालसाजी की गवाही या मित्र का वध करना ये दोनों पाप सुरापान के समान हैं ४ ब्राह्मण की धरती हरना सुवर्ण की चोरी के समान है ५ चचा या नाना या मामा या राजा इनकी पत्नी से अभिगम करना गुरुदार गमन महापाप के समान है ६ पिताकी बहिन या माता की बहिन से गमन करना तथा श्रोत्रिय जो वेद की किसी शाखा के पढ़ने में त-त्पर हो रहा यद्वा पढ़िचुके पीछे उसके अनुसार षट्कर्मों में निरत ब्राह्मणहो या ऋत्विक् या गुरु जो अपने मुख्य गुरु से उपरान्त कोई सामान्य गुरुमाना हो या उपाध्याय या मित्र इनमें किसीकी पत्नी से अभिगम करना ये अति पातक के समा-न हैं ७ बहिन की सखी या अपनी सगोत्रा किसी स्त्री से या अपना से ऊँचेवर्णवा-ली स्त्री से या रजस्वला चाहें निज अपनीही भार्या हो तिससे या शरणमें आई टिकी हुई किसी स्त्रीसे या संन्यासिनि आदि साधिनी से या किसीने कोई स्त्री अपने धरो-हर की रीति से सौंपी तिसके साथ भी गमन करना ये सब इतने अनुपातक हैं ८ उ-त्कर्ष के स्थान में असत्य बोलना (उत्कर्ष के स्थान यज्ञ मंडप राजद्वार तीर्थ स्थान सभा पंचायत आदि अनेक हैं सो समझ लेने) वह पिशुनता जो राज तक पहुँचे॰ गुरुके साथ प्रतिज्ञा पूर्व हठकरना॰ वेदकी निंदा करना॰ पढ़ेहुये वेदका छोड़ि देना॰ अग्नि की सेवा छोड़ि देनी॰ पिता या माता या पुत्र या भार्या इनको छोड़ि देना॰ नखाने योग्य चीजों को खाना॰ पराया धन हरना अर्थात् चोरी करना और अपने भागी या साझी आदि का उचित भाग न देना॰ पराई भार्याका भोग॰ अयाज्योंको यजन कराना॰ संस्कार विहीन व्रात्यहोके रहना॰ मजूरी से वेद पढ़ाना॰ मजूरीमात्र देकर वेद पढ़ना॰ सब खानियों में अधिकार लेना जिसमें प्रायश प्राणियोंकोहिंसा संभव हो॰ बड़ी कलों का जारी करना कि जिनके द्वारा प्रायश जीव हिंसा अवश्य होतीहै॰ बड़ेवृक्ष या गुल्म झाड़ी या बेलियावों या छोटी औषधोंकेवृक्ष इनकोकाटि के हिंसा द्वारा जीविका करनी (इनके काटने से प्रथमतौ उन्हीं का विनाश और बहुधा जीवोंका विनाश और अनेकप्राणियों का सुख मिटिजाता है जो उनसेहोता था इसीलिये औषधी केवल प्रयोजन मात्रको तोड़िलानी कही है समूल वृक्ष नहीं उखाड़े) अभिचार वाले कर्म जो अथर्व वेदके द्वारा मारण मोहन वशीकरण उचा-

दन आदि मंत्र यंत्र होतेहैं तिनमें प्रवृत्तिकरना भी पाप है• अपने आत्माके निमित्तसे रसोईआदि क्रियाका आरम्भ• अधिकारके होतेहुये अग्निको नहीं स्थापन करना• देवता या ऋषियों वा पितरों का ऋण नहीं शोधना• असत शास्त्र नास्तिकजनों के बनाये हुये तिनको पढ़ना विचारना• कुशीलवता अर्थात कुशील खोंटे स्वभाव के द्वारा नट नर्तक आदि वाली जीविकावृत्ति धारण करनी मद्यपीनेवाली स्त्रीसेसंभोग करना ये सब उपपातक हैं ६ ब्राह्मण के देहमें घाव करना या चोटलगाना• नसूंघने योग्य मैली चीज औ मद्य इनका सूंघना• जैह्म्य कुटिलता• पशु में या पुरुष में मैथुन करना ये सब इतने पाप जातिभ्रंशकर कहातेहैं १० गावँके या वनके पशुओं को हिंसा करनी यह संकरीकरण पाप कहाता है ११ निंदित कसाई•चंडालआदि मनुष्यों से और निंदित प्रकारों से धन लेना या चोर आदि दुष्टों से धन लेना और उनके साथ वाणिज्य करना•व्याजसे जीविका करनी• असत्य बोलना• शूद्रकी सेवा करनी ये सब इतने पाप अपात्री करण कहाते हैं १२ पक्षियों वा जलचर जीवों का घात करना तथा कृमि कीट इन जीवों का घातकरना• मद्यानुगत भोजन करना जो चीजें किसी रीतिसे बनाने या परस्पर मिलाने से मद्यके अनुरूप होजाती हैं ये सब इतने पाप मलावह कहाते हैं अर्थात मलके धारण करानेवाले १३ जोकुछ इस पाठ में न कहाहो और वही उपराल भगड़ा आनि परै तो प्रकीर्णक उनका नामकहा जाता है १४ ॥ ० ॥ कात्यायन ने सब पापों के मुख्य पांचही भेद कहे उनका भी दर्शाना इसजगह पर आवश्यक है कि ऊँच नीच का भेद समझाजाय=यथाह कात्यायनः=महापापंचातिपापंतथापातकमेवचप्रासंगिकंचोपपापमित्येयंपंचकोगणः= अर्थात–महापाप१अतिपाप२पातक३प्रासंगिक ४ उपपाप५यह पांच भेदोंसे इनका गण कहा=इस क्रमके अनुसार इतना भेदहै कि योगीश्वर के बताये महापाप के समान जो पाप हैं जिनको विष्णु ने अतिपाप समान और अनुपाप के नाम से बताया तिनको कात्यायन जी ने पातकही के नामसे उच्चारण किया इत्यादि धर्मकारों के देश भेदकी अपेक्षासे कल्पना भेद पायाजाताहै ॥ अथ शास्त्रार्थः–इसके मध्ये यहभी एक शास्त्रार्थ के मार्ग से तर्कना खड़ी होतीहै कि–पातक उपपातक आदि निचले दर्जावाले पापों में पतन (गिरजाने) का हेतु पूरा न होनेसे पातकत्व (गिराइदेना)कैसे सिद्ध होताहै•जबकि उनमेंभी पतनकाहेतु पायाजाय तौफिर (मातृ पितृयोनि सम्बंधांग) इत्यादि गौतम का वचन जो२२६ दोसौ छबीसकी अंकवोक्तिमें आयाथा उसमें जो गिनती गिनाई सो अनर्थक ठहरतीहै तहां जो ऐसेसमाधान कियाजाता है

कि यद्यपि पातकोंमें तत्कालही पातित्य उस तरहसे नहींहोताहै कि जैसे महापातक और उनके समानपातकोंमें सद्यहीपतनहोजाताहै तथापि बारंबार अभ्यासकी अपेक्षा से उनमें भी पातित्य (गिराइदेने) का हेतु होना कुछ विरुद्ध नहींहै क्योंकि उसी पूर्वोक्त गौतमके वचनमें (निंदितकर्माभ्यासी) निन्दितकर्मका अभ्यास बारम्बार करने वालाभी गिनती हुआहै तिससे यह समाधान किया करते हैं सो ऐसा नहीं माना जा सक्ताहै क्योंकि अभ्यासका भी निरूपण उसकी तौलके द्वारा करना उचितहै अथवा जो तौलकी विशेषता बिना ऐसाही साधारण अंगीकार कियाजाय कि एकबारके सिवाय जब दोबार किया तोभी अभ्यासहै तैसा सौबार किया तौभी अभ्यास है तो इस अंगीकारमें यह दोष आताहै कि जैसे (दिनमें सोना या गऊका बधकरना दोनों बराबर होतेहैं) जो दिनमें दोबार सोया और जिसने सौबारमें सौ गौऐं मारीं तिनदोनों का एकहीसा बराबर पातित्य होवै॥ समाधान इसका सुनो–धर्मशास्त्रमें बहुधाकरके अर्थवाद खड़ा करनेसे भी एकप्रकारका पाप लगता सुनतेहैं (जैसा आचारकांडमें मनु के दो वचनहैं सो देखो कि॰-१ श्रुतिस्मृतीउभेनेत्रे इत्यादि और २ तेउभेयोऽवमन्येत हेतुशास्त्राश्रयात इत्यादि) अर्थात नास्तिकता दोष लगताहै–और–उस निन्दितकर्म रूपी छोटे दर्जेके पापमें जो बड़ा प्रायश्चित्त पहुँचने का तर्क तुमने उठाया तिसका यह तात्पर्यहै कि बारबार अभ्यास करते हुये जबतक महापातकसे तुल्यता होजाय उतना अभ्यास पातित्य (गिराइदेने) का हेतु ठहिरताहै तभी उसको बड़े प्रायश्चित्त का अधिकार पाया जाता है अन्यथा छोटे प्रायश्चित्त का अधिकार–और दिनमें सोना आदि जो छोटे उपपातकहैं कि जिनसे केवल कर्ताकेही पुण्य पराक्रमकी हानि होतीहै किसी दूसरेकी कुछ हानि या पीड़ा होती नहीं सम्भव ऐसे छोटे उपपापों में सहस्रबारभी अभ्यास करनेसे महापातकसे तुल्यतानहीं होतीहै इसहेतु उनमें पातित्य नहीं होताहै–और विरले उपपातक आदि ऐसेहैं कि उनमें दोही चार वा दस पांच बारके अभ्यास होनेसे पातित्य लगिजाताहै–इसका दृष्टांत जैसे बूढे मातापिता या अदान पुत्र पुत्री या सुशीला भार्या घरसे निकासिदेना उपपातक कहागयाहै यद्यपि वचन प्रभावसे तो यही अर्थहै कि निकासि देतेसार तत्कालही पातक लगा तो भी महापातकसे तुल्यता होनेकी अपेक्षासे यह तात्पर्यहै कि एक दो दिनके लिये निकासि देनेमात्रसे पातित्य नहीं लगि सक्ताहै उपपातकमें गिनती रहिसक्ता है परन्तु जो बारम्बार सदा सर्वदा ऐसा कियाकरै या देर दिनके लिये निकासि देय तो यह भी पूरापातक होजायगा कदाचित निपट निकासि देवै कि फिर अपने पास न आवे

दे तो यह भी महापातक तुल्य होजायगा इत्यादि प्रकारों से अभ्यास का निरूपण कियाजाता है और यही उसको तोलहै• तिससे वही नियम ठीकहै कि उपपातक आदि छोटे दर्जाके पापोंमें अभ्यासको अपेक्षासे पतन [गिरजाने] का हेतुपैदा होता है ॥ २४२ ॥ ध्यान करना चाहिये कि योगीश्वरने पापोंके मुख्य तीनिही भेद कहे जिनके तीन परिच्छेद जुदे किये गये ऐसेही कात्यायन ने पांच भेद कहे वृहद्विष्णुने उन्हींका विस्तार करिके चौदह भेद कहे परंतु तात्पर्य सबका एक है प्रायश्चित्त के विचारनेमें मुख्य योगीश्वरका बांधा क्रम देखना चाहिये कदाचित उसमें सन्देह या झगड़ा बाकी रहिजाय तब अधिकोक्ति में चौदह प्रकारों का मीलान करिके संदेह मिटाइलेना विवेकियोंका कामहै क्योंकि जिन ऋषीश्वरोंने बहुतसेना भेदकिये सो केवल इसलिये हैं कि पापोंकी बडाई छोटाई शीघ्र समुझीजाय॥ २४२ ॥

यहांतक व्यवहार वर्तावेकी सुगमताके लिये प्रायश्चित्तों के निमित्तरूपी पापों को संज्ञा भेद से वर्णन करचुके अब आगे उनके नैमित्तिक रूपी प्रायश्चित्त कहे जायँगे तिनमें ये सब संज्ञा काम आवैंगी ॥

अथ ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्त विवेकानां प्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः सप्तविंशः२७

———*———

इसपरिच्छेदमें ब्रह्महत्यारूपी महापापके प्रायश्चित्तवर्णन होंगे औरब्रह्महत्याके अनेक भेद हैं कि एकही ब्राह्मण मारा या अनेक मारे या धोखासे मारा या जानिबूझि के मारा या वदिकेमारा और प्रथम मारा कईवार पहिले भी ब्रह्महत्याकरचुका इत्यादि कर्ताओं के भेदसे भी नियम कियेजायँगे ॥

(ब्रह्महत्यायांप्रायश्चित्तस्य द्वादशवार्षिकादि नियमाः)

शिरःकपालीध्वजवान्भिक्षासीकर्मवेदयन् । ब्रह्महाद्वादशाब्दानिमितभुक्शुद्धिमाप्नुयात् २४३

अर्थः–शिरका कपाल (खपरा) जिसके हाथमें कपालही की ध्वजालेकर अपने किये कर्मको पुकारतेहुये भिक्षामांगि खातेहुये थोड़ाभोजन एकवार खाइके वारह वर्ष नियम साधनेसे ब्रह्महत्यारा शुद्धहोय ॥ २४३ ॥

२४३अधिकोक्तिः–आधीखोपड़ी खपराबनाइके हाथमेंलेना कहा शेषखोपड़ी

लाठी आदिके सिरेपर बाँधिके ध्वजा बनानीकही तिसकोभी ऊँची किये बगल में दबायेरहै—यह खोपड़ी उसी ब्राह्मणकी लेनी कही जिसको मारिके हत्याराबनाहो (कृत्वाशवशिरोध्वजमितिमनुः) मनुने यहकहाहै कि मुर्दाके शिरकी ध्वजाबनाकर लेजाय= ब्राह्मणोब्राह्मणंघातयित्वातस्यैवशिरः कपालमादायतीर्थान्यनुसंचरेदिति शातातपः=अर्थात्—ब्राह्मण ब्राह्मणकोमारिके उसीकेमूड़काखपरा हाथलेकर तीर्थों में विचरै यह शातातपनेकहा—परन्तु जो उसका शिर न मिलै तो औरही किसी मरे ब्राह्मणका लेआवे उसकी ध्वजाबनावे (खट्वांगकपालपाणिरितिगौतमोपि) गौतमने भी कहाहै कि खट्वांग और कपाल हाथमें हो—खट्वांगनाम यद्यपि खाटकेपावे पट्टी आदि किसी एक अंगकाहै परंतु यहां केवल ध्वजाका प्रयोजन है तिससे गौतम ने यह तात्पर्य दर्शाया है कि खाटकी पाटी में खोपड़ी बाँधिके ध्वजाबनावे (खट्वांग यद्यपि समस्त नरपंजर अर्थात् मनुष्यकी माजरिकाभीनामहै पर उससे कुछ प्रयोजन यहाँ नहींहै) (कपालआदिका धारण करना यह केवल हत्यारेका तुकमा चिह्न है अर्थात् उस खोपड़ी के खपरा में न भोजन करनेका प्रयोजन है न भिक्षा मागनेका— क्योंकि (मृन्मयकपालपाणिर्भिक्षायैग्रामंप्रविशेदितिगौतमः) गौतमने उन्हीं गौतम ने यहभी कहाहै कि मट्टीका ठीकरा हाथमेंलेकर भिक्षाकेलिये बस्तीमेंघुसै अन्यथा जंगल आदिमें रहाकरै=तथाचमनुः=ब्रह्महा द्वादशाब्दानिकुटिंकृत्वावनेवसेत् कृतवा पनोवानिवसेद्ग्रामांतेगोव्रजेऽपिवाआश्रमेवृक्षमूलेवासर्वभूतहितेरतः=अर्थात्—मनुने ये नियमकहेहैं कि ब्रह्महत्यारा बारहवर्षतक कुटी बनाइके वनमेंबसै अथवा यह संभव न हो तो बालमुड़ाये वा जटारखाएहुये किसीग्रामके समीपरहै या गोव्रजमें कि जहाँ बहुत गौओं की चराईवाले जंगल में निवास हो या किसी प्रसिद्ध जंगलके बनेहुये आश्रमों में टिके अथवा वृक्षके नीचे रहिके सर्वभूतों की भलाईवाले आचरण करै (उक्तवचनोंमें कृतवापनोवा) इसविकल्पसे कि मूड़मुड़ाएहुये वा बिनामुड़ाये यह तात्पर्य निकसताहै कि चाहैं जटा रखावे इसलिये संवर्तने कहाहै कि (ब्रह्महाद्वादशाब्दानिवालवासाजटीध्वजी) ब्रह्महत्या करनेवाला बारहवर्षतक उनके वस्त्रोंको ओढ़ै औरजटारखावै और ध्वजासाथरक्खै=तथा उसका यहभी नियमहै कि भिक्षासे निर्वाह करै धनकोसाथनबाँधै=यथाह आपस्तंबः=लोहितकेनखंडशरावेणग्रामभिक्षार्थंप्रविशेत्=अर्थात्—भिक्षाकेलिये गावँमें प्रवेशकरै ताँबा पीतलकापात्र कटोरा आदि लेकर या फूटेमट्टीके बासनका खपरा सकोरा सरावाआदि (ताँबा पीतल या मट्टीका खपराआदि यहपात्रका विकल्पभी जातिकी उँचाई निचाईकी अपेक्षामें पायाजाता

है और जो यह तर्कनाकरीजाय कि जातीधर्म उससे छूटा हुआ है जबतक प्रायश्चित्त पूराहोकर शुद्धिहोजाय क्योंकि सबधर्मोंसे गिरगया विशेषकर जातीधर्म से अवश्यही छूटरहाहै तो इसतर्कनाके सन्मुख तांबा या मट्टीका विकल्पभी व्यर्थठहिरताहै तिससे ब्राह्मणकोतांबा शूद्रकोमट्टी क्षत्रीवैश्यको पीतलआदि समझने) भिक्षामागने का भी यहनियमहै कि ऐसा विचार न करै कि इसघरमें अच्छामिलैगा इसमें नहीं तिससे इसमेंमागों इसमें नहीं किन्तु विनाविचारकिये सातहीघर मागै उनमें जो कुछ मिलजाय उसी से निर्वाह करै=यथाहवशिष्ठः=भिक्षार्थंप्रविशेत्सप्तागारारायसंकल्पितानिचरेद्भैक्ष्यं=अर्थात्–भिक्षाकेलिये सातघरोंमें जावै और विना विचारकिये घरोंमें मांगै (एककालाहारइतिचवशिष्ठः) और उन्हीं वशिष्ठने यहकहाहै कि एकदिनमें एकहीबार आहारकरै तिससे सायंकालपर भिक्षा मागनी चाहिये= सो यह भिक्षा ब्राह्मणआदि वर्णोंमें मागनीचाहिये=तदाहसंवर्तः=चातुर्वर्ण्येचरेद्भैक्ष्यंखट्वांगीसंयतात्मवान्=अर्थात्– चारवर्णोंमें भिक्षाकरै खट्वांगनाम कपालकीध्वजा साथलिये रहै और अपने आत्माको अच्छीतरह वशमें राखेरहै=तथा (वेश्मनोद्वारितिष्ठामिभिक्षार्थीब्रह्मघातकःइतिपराशरः) इसप्रकारसे अपनाकर्म सबको सुनाता रहै कि मैं ब्रह्मघातक घरकेद्वारपर खड़ाहूं भिक्षाकेलिये किन्तु घरोंके भीतर न घुसै यह पराशरने कहा॥ ० ॥ भिक्षामांगनेकी रीति जो कही गई सोभी उस दशामें आचरणकरै कि जहां वनके मूलफलोंसे गुजारा न होसके क्योंकि संवर्तका यह वचनहै (भिक्षार्थंप्रविशेद्ग्रामंवन्यैर्यदिनजीवति) जब कि वनके फलमूल आदिसे न जीसके तो भिक्षाके लिये गांवँमेंघुसै=और भी हत्यारेको इस बारहवर्ष की अवधितक ब्रह्मचर्यके नियम करनेचाहिये=तदाहगौतमः=खट्वांगकपालपाणिर्द्वादशवत्सरान्ब्रह्मचारीभिक्षायैग्रामंप्रविशेत्कर्माचक्षाणःपथोपक्रमेत्संदर्शनादार्यस्यस्थानासनाभ्यां विहरन्सवनेषूदकोपस्पर्शी शुद्ध्येत्=अर्थात्खट्वांगध्वजा हाथमेंलिये बारहवर्षतकब्रह्मचारीहोकेरहै भिक्षाकेलिये गांवमेंघुसै अपनीहत्या सुनातेहुये तात्पर्य इसका यहीहै कि भिक्षाकी जरूरत विना गांवमेंनजावै और बस्ती में जातेसमय या वनमे स्थानआसनपर टिकतेहुयेआर्यपुरुषों के वचनरूपी निदर्शनसे उपायका आरम्भ करतारहै जो जो कुछ आर्यपुरुषबतावैं और वनमें विहार करतेहुये जहां तहां जलाशय पाकर स्नानकरनेका नियमराखै तो बारहवर्ष पूरेहोनेबाद शुद्धहोताहै॥ ० ॥ हत्यारेको ब्रह्मचारी होनाकहा तिसका यह तात्पर्य ठहिरा कि जो बातें ब्रह्मचारीको निषिद्धहैं तिनका त्याग यहभीराखै वेबातें आचारकांडमेंब्रह्मचर्यके प्रकरणमेंवर्णनहोचुकीतहांदेखो=इसीलियेशंखनेयहकहाहै

कि=स्थान वीरासनी मौनी मौंजी दण्डकमंडलुः भिक्षाचर्याग्निकार्यंचकूष्मांडी भिःसदाजपः—तस्यभवेदितिशेषः=अर्थात्—स्थानपर वीरासन जमाये मौनसाधे मौंजी धारणकिये दंड और कमंडलुभी लियेहुये भिक्षामांगि निर्वाहकरना और अग्निकार्य भी होम आहुति करना कूष्मांडियोंसे सदाजपकरै=ऊपर गौतमके वचनसे यह कहा गया कि वनोंमें सर्वत्रजलाशय पाकर स्नानकरनेका नियमराखे•तहां स्नानके विधान से उसके अंगभूत मंत्रादिकी प्राप्ति समझी जातीहै कि जो स्नानकरै तो मंत्रोंका भी उच्चारण करै—तथैव(शुचिनाकर्मकर्तव्यं)पवित्र होके सबकर्मकरने चाहिये यहवचन सर्वत्र सब कर्मोंपर साधारण भावसेंआरूढहै तिससे भी यहबात पाईजातीहैकिप्रायश्चित्तरूप.व्रतचर्यामेंतत्पर होनेसे उसव्रतको अंगभूत जो शौचकी सपत्तिहैतिसकेलिये स्नानोंकी तरह सन्ध्योपासन भी करना चाहिये तिसका भी यह प्रमाण है कि संध्या करना सबकर्मोंके साथ पहिलेही आवश्यकहै जिसपर दक्षका यह वचन प्रमाण है कि=संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हःसर्वकर्मसुयदन्यत्कुरुतेकर्मनतस्यफलभाग्भवेत्= अर्थात्—सन्ध्याकर्मसे विहीन जो पुरुष है सो नित्यप्रति अशुद्ध रहिता और सब तरह के कर्मोंमे अयोग्य होताहै अर्थात् जबतक संध्या कर्मनकरै तबतक देव पितर आदि सम्बन्धी कोई कर्म करनेका अधिकारी नहीं ठहरता है क्योंकि ऐसा पुरुष जो कुछ कर्म थोड़ा बहुत करै भी तो उस कियेका फलभागी नहीं होताहै यह ईश्वरकी आज्ञा रूपी वचनका प्रभावहै (तो इसके बिना हत्यारे का ब्रह्मचर्य आदि व्रतभी निष्फल जासक्ताहै) और इसमें यह शंका खड़ी न करनी चाहिये कि पहिले वचनोंमें पातक लगनेसे पातकी का पतन (गिरजाना) कहा गया था कि वह द्विजाती धर्म कर्मों से गिरजाताहै अर्थात् द्विजत्वके कर्मोंकी हानि खडी होतीहै और सन्ध्याकर्मभी द्विजाति कर्मोंमे मुख्य गिनाजाताहै तिससे उसकी अप्राप्ति होनीचाहिये—क्योंकि उसपतित (गिरेहुये) कोही व्रतचर्याका उपदेश कियागया तिस व्रतका एक अंग संध्या कर्म भी करना सूचित होगया—इसलिये अब इसबात पर ध्यान देनाचाहिये कि जैसे द्विजातियोंके मुख्य तीनधर्म कहेगयहैं कि शास्त्रपढना १ सबतरहके यज्ञपूजन करने२ दानदेना३ और ब्राह्मण जो सबसे बडा द्विजातीहै तिसके छैकर्म अर्थात् तीनतो येही जो लिखेगये और तीन इनसे उपरान्त कि एक शास्त्र का पढाना सुनाना कर्मों को आज्ञा देना आदि१ दूसरा यज्ञादि कर्म कराना२ तीसरा दानलेना भी३ इत्यादि और भी संसारी व्यवहार जो द्विजातियोंके दशकर्म या श्राद्ध आदि होतेहैं जो इस व्रतचर्या के अंग भूत नहींहैं तिनकी हानि होजातीहै कुछ उतनी रोक से सबकी नहीं क्योंकि

तीसरेमें तिगुना करनाकहा चौथामारने में अपराधीका निस्तार किसीप्रकारसे भी न हैं॰सो इसनियमका यह तात्पर्य है कि प्रत्येक पापके निमित्तपर पहिलेकी अपेक्षा अगिलेमें प्रायश्चित्तकी आवृत्ति बढती जाय कि जितना प्रायश्चित्त पहिले पापमें कराया गयाहो तिससे दूना उसीपापके दुबाराहोनेमें इसीतरह तिबारामें सबसे प्रथम की अपेक्षा तिगुना करायाजाय॰ यद्यपि एकसाथ एकही प्रायश्चित्तवाला पहिला अर्थ इसमें नहीं सिद्धहुआ परन्तु जैसे इसमें नैमित्तिक दूना आदि बढताहै तैसा इसीके न्यायसे अर्थात् यही वाक्यभेदका दृष्टांत लेकर दो तीन ब्राह्मण एक साथ भी जो नैमित्तिक शास्त्र का विचार है तिसकी आवृत्ति के अनुवादसे यह निश्चित भया कि चौथा ब्राह्मण मारने मध्ये उस प्रायश्चित्त का न करना आया गया क्योंकि करने से निस्तारनहीं होताहै तथापि यह वचन उसवार्त्ता मध्ये नहीं है कि कालान्तर से दूसरा ब्राह्मण मारनेमें प्रायश्चित्तका अनुष्ठान पहिलेकी अपेक्षा दूना आदि कराया जाय॰ क्योंकि मनु और देवल के उक्तवाक्य से इसबात में वाक्य भेद रूपी प्रसंगदोष पायाजाताहै तिससे—दोतीन ब्राह्मण मारडारनेमें भी बारहवर्ष आदि कोईसा प्रायश्चित्त एकहीबार कियाजाय यही समझमें आताहै क्योंकि (यहांएक मीमांसाका दृष्टांतहै कि) जैसे अष्टाकपाल होमहै जो आठ मट्टीके खपरोंमें चरुधरि के होमहोताहै इसकामनासे कि मेरे सब घरोंमें कभी आगि न लगै उसमें यह नियम नहींहै कि अनेक घरोंके जलिजानेके निमित्त उतने जुदे होम किये जायँ किन्तु एक साथ अनेकघर जलने मध्ये एकहीबार अनुष्ठान कियाजाता है ऐसे कामवती आदि और भी अनेकयज्ञहैं जो इसीप्रकार एकजातिके अनेक निमित्तोंपर एकहीबारकिये जातेहैं—तथाच मिताक्षरा(यथा—अग्नयेक्षामवतेपुरोडाशमष्टाकपालंनिर्वपेत्—इत्यादि गृहदाहादिनिमित्तेषुचोदितानांक्षामवत्यादीनांयुगपदनेकेष्वपि गृहदाहादिनिमित्तेषु नकृदेवानुष्ठानं) तैसे यहां भी दो तीन हत्याका प्रायश्चित्त एकहीबार किया जाय=

समाधान— इसकानिर्णय सुनो—वचनके विरोधमें न्यायनहीं सिद्धहोताहै और वचन जो मनु और देवलका लिखा गया वह दो तीन ब्राह्मणोंके मारने में प्रायश्चित्त के अनुष्ठानकीआवृत्ति बढाने परही आरूढहै परऐसा होनेमें न्यायलभ्य जो(तंत्रानुष्ठान) एकसाथ व्रतचर्याका करना तिससे रोकाहुआ आवृत्तिका विशेष करनेवाला न्याय होजावै और इससे अन्यथा शास्त्रोंकी पहुंच का अनुवाद खड़ाकरने से अनर्थक ल-क्षण होजाने सकताहै और वाक्यभेदका चर्चा जो चलाया सोकुछ वाक्यभेदभी नहीं है क्योंकि मनुदेवलके उस वचन में चौथे ब्राह्मणको आदिलेकर जो बहुत मारेजायँ

तिसवधका चर्चाछोडिकर जहाँ दोहोतीन मारेजायँ तिनका दूनातिगुना आवृत्तरूपी प्रायश्चित्तका विधानहै(क्योंकि चौथेको आदिलेकर चौगुना पचगुना छौगुनाआदि होसकनेकी शक्तिसे भी बाहरहै) तिससे वचनोंमें एकहीअर्थ समझने योग्य तात्पर्यहै कुछ भेद नहींहै अर्थात (चतुर्थेनास्तिनिष्कृतिः) चौथेके मारनेमें प्रायश्चित्त से उद्धार नहींहोता इस कथनसे पांचवां छठा आदि सब समझेजाते हैं कि बहुतों के मारने से दोष बहुत बड़ाहै जो प्रायश्चित्त से नहीं मेटाजासक्ता है यही आशय देवल आदि ऋषियोंके इसवचनसे भी ठीकहै कि (यत्स्यादनभिसंधायपापकर्मसकृत्कृतम् तस्येयनिष्कृतिर्दृष्टाधर्मवद्भिर्मनीषिभिः) जो पाप एकवार कियाहो और विना कामनाके इच्छारहित होगयाहो तिसका यह प्रायश्चित्तरूपी निस्तार बहुतसेधर्मज्ञ बुद्धिमानों ने निर्णय किया और प्रायशलोक में ऐसाही वर्ताव देखा— और विलक्षण दोष जिनके परस्पर लक्षण एकसे नहो और बड़े छोटेहो तिनका क्षयहेतु प्रायश्चित्त एक साथ नहीं सिद्ध किया जाता है—इन सब कारणोंसे इस प्रकारके अपराधों में दोष के बड़ा पनसे और कार्य्यों के विलक्षण भावसे भी प्रत्येक पापके निमित्त पर जुदे जुदे प्रायश्चित्तकी फेरी होनी ठीकहै—औरक्षामवती आदि विधान जिनका स्वरूप और प्रयोजन दोसौ सतरह२१७की अधिकोक्तिमें कहिचुके कि एकही वारकरनेसे अनेक पाप क्षय होतेह,तिनमेंभीउनअनेक कार्योंकी विलक्षणताके विनाही,एकसाथविधान होनायोग्यहै कि जब एकही लक्षणवाले अनेक पाप हों(इसका भी दृष्टांत जैसे पंच यज्ञोंके त्यागरूपीपापके निमित्तपर क्षामवती आदि नैमित्तिक विधान करना चाहा तहां यद्यपि पांचयज्ञोंके स्वरूप सबजुदे जुदेपांच होतेहैं तथापि लक्षणसबका एकही माना जायगा क्योंकि वे सभी नित्यकर्म कहातेहैं) यहचर्चायहां प्रसंग मात्रसे किया गया=और जोवचनअभीलिखचुके(चतुर्थेनास्तिनिष्कृति)चौथामारडारनेमेंनिष्कृति नहींहोतीहै सोयह महापातकोंकेविषयपरआरूढहै क्योंकिपापकेअतिबड़ापनसे प्रायश्चित्तका अभाव इसमें कहागया तिससे—और इसीसेशूद्रका अन्नखाना आदि छोटे पापोंमें चौथीवारसेभी अधिकबहुतवारके अभ्यासकरनेपरभी उसकेअनुरूपप्रायश्चित्त की पुन पुन (आवृत्ति) फेरी से कल्पना होनी चाहिये किंतु प्रायश्चित्तका अभाव इनमें न चाहिये ॥ ८ ॥ बारह वर्षका व्रत वर्णन किया सो यह मुख्य मारनेवाले के निमित्तमें कहा गया क्योंकि ब्रह्महा नाम उसीका कहिचुके हैं—अर्थात अनुग्राहक प्रयोजक आदि हत्यारे के सहायक जो दोसौ सत्ताइस २२७ वाली अधिकोक्ति के प्रारंभ में दर्शागये तिनका जैसा दोषहो या जितनी सहायता हत्यारे को मिली हो

हानिका जो वचनहै सो जहां उसके प्रयोजनकी प्राप्ति देखीजाय तहां मानाजासक्ता है कि–हत्यारेसे न कोई पढ़े न उससे किसी कर्मकी आज्ञा बूझै न उसके द्वारापूजन आदि कोई कर्मकरें न उसको दानदेवें (यहां भी फिर वही विचार करनाहोगा कि उसको दानदेनेके निषेध से भिक्षा देनेका निषेध न समुझि लेना क्योंकि भिक्षा का विधान उसके निमित्तपर लिखचुके हैं तिससे भिक्षा देना एक वाचनिक धर्म है) इसी प्रकार न कोई हत्यारे को पढ़ावै न यज्ञ आदि कोई सा कर्मद विधान उसको करावें न करनेकी आज्ञादेवें न संभायराखें न रासरमौआरि का सम्बन्ध राखें न उस से कुछदान लेवें न विवाह आदि सम्बन्ध उससे करें–अब ऊपरकी प्रकृति वार्ता पर ध्यान करो कि–हत्यारेकी व्रतचर्या जो मनु और याज्ञवल्क्य और गौतम आदि ऋ- षीश्वरोंकी नियत करीहुई बारहवर्ष की अवधिसे एकही है कुछ जुदे जुदे ग्रन्थों से जुदी तरह नहीं है किंतु अविरोधी मत परस्पर सबका एकहीहै–तिसका यहउदाहरण समुझिलेना चाहिये कि जैसे इसी २४३ के श्लोकमें (भिक्षाग्रोकर्मवेदयन्) यह यो- गीश्वरने कहा कि अपना कर्म पुकारते हुये भिक्षा भोजन करे और कुछ नहीं कहा तौ यह अपेक्षा शेषरही कि भिक्षा मांगनेका कैसा पात्रहो या किनके घर मांगनीचाहिये या कितने घरोंमें॰ तहां यह शेष अपेक्षा आपस्तंब आदिके उन वचनोंसे पूरीहोजाती है जो (लोहितकेनखंडशरावेण इत्यादि) पहिले लिखचुके हैं सो यह कोईसा वि- रोध नहींहै=इसीलिये सब ऋषीश्वरों का एकही कल्पना रूपी उपदेश होनेसे विरले संग्रहकारोंने अपने ग्रन्थमें यह लिखा है (मनुगौतमाद्युक्तेतिकर्त्तव्यतायाःपरस्पर सापे क्षत्वेपिविकल्पइति तदनिरूप्यैवोक्तमिति मंतव्यमितिविज्ञानेश्वरः) अर्थात् मनु गौ- तम आदिकी कही इस कर्तव्यताके परस्पर एकसी होने परभी विकल्प समुझाजाता है॰ सो यह विकल्प समुझने वालोंने व्यवस्था निरूपण किये विनाही कहि दियाहै यह समुझिलेना ऐसा विज्ञानेश्वरने कहा कि जिनका निरूपणकियाहुआ मिताक्षरा नाम ग्रन्थहै–अब ऊपरसे वर्णन किये हुये सबका तोड़ यहां करतेहैं कि–इसी उक्त प्रकारसे बारह वर्षकी व्रतचर्या पूरीकरिके ब्रह्महत्यारा शुद्धिको पहुँचे अर्थात् फिर भी पहिलेकी तरह अपने सब धर्म कर्मोंमें लगायाजाय ॥ ० ॥ यह व्यवस्था जोकही गई सो इच्छा विना किसी धोखा आदि औरही कारणसे ब्राह्मण मारडारने में समुझनी क्योंकि=मनुका यहवचन पहिले लिखि चुकेहैं (इयंविशुद्धिरुदिताप्रमाप्या कामतोद्विजम् कामतोब्राह्मणवधेनिष्कृतिर्नविधीयते) कि यह विशुद्धि उसके लिये कहीगईहै जो कामनाके विना ब्राह्मण मारिके हत्यारा हुआहो किन्तु कामना से वध

करने में निस्तार नहीं होता=अप्राप्यर्थवादः—इसमें यह सोचना चाहिये कि बिना इच्छा मारडारने मध्ये जो विशुद्धि कहीगई तहां क्या दो तीन ब्राह्मणों के मारने में प्रायश्चित्त का (तंत्रत्व) एकीभाव कहिके (आवृत्ति) उसको फेरेभी ठहिराय कि फिर फिर किया जाय॰ तहां कोई ऐसा मानते हैं कि (ब्रह्महाद्वादशाब्दानि) इसमें ब्रह्मशब्द है सो एक और दो और बहुत भी ब्राह्मणोंपर जाति वाचकता से साधारण आरूढ़है तिससे जो एक ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्तहै वही दूसरे और तीसरे में भी समुझाजाय॰तहां एक ब्राह्मणके मारनेनिमित्तसे एक प्रायश्चित्तका अनुष्ठान होनेमें यहकियागया यह नहीं ऐसी तकरारपर यह कहिनेको सामर्थ किसीको नहींहै कि॰ तरह तरहके देश जुदे जुदे प्रभावोंवाले काल अनेक लक्षणोंवाले हत्याके कर्ता लोग नानाभाँति उनके किये कर्मोंकी युक्तियां जिनमें विलक्षण चिह्नोंसे जुदे अनेक दोष फिर इच्छा या बिना इच्छासे मारनेका अनुबंध यह उपराढ़है तहां यह विशेष कारण सबसे जुदाहै कि इन सबके जुदे भेदों से निर्णय कियेबिना या इस अपेक्षासे कि भेद के बिनाही उन सबका विशेष कोई चिह्न हाथ आजाय सो नहीं हाथ आता है तिस कारणसे (तंत्रानुष्ठानहीसे अर्थात् एकही बार बारहवर्षकी व्रतचर्याकरनेसे पापनाश होजानेवाले कार्य की सिद्धि ठहरानी ठीकहै॰जैसा इसपर यह दृष्टांत है कि तंत्र रूपी (अर्थात्दोयातीनोंकोएकहीबार) अनुष्ठानोंसे प्रयाज आदि यज्ञोंके द्वारा अग्नि संबंधी आदि देवताओंमें तंत्ररूपहीसे अनेकोंके उपकारवाले कार्योंकी सिद्धिहोतीहै- और ऐसा न कहिना चाहिये कि दो तीन ब्राह्मणों के वधमें पाप के गरुआपन से गौतमका वचन लेनाहोगा यथाहगौतमः (एनसिगुरुणिगुरूणिलघुनिलघूनि)अर्थात् बड़ेपापमें बड़ेप्रायश्चित्त औरछोटेमें छोटेइसवचनसेद्विबारातिबाराहोजुदेप्रायश्चित्तों का करना ठीक होगा इसहेतुसे कि (विलक्षण) अर्थात्) जिनके लक्षण आपस में एकसे नहीं ऐसे दोकार्योंकी सिद्धि एकसाथही कभी नहींहोती—ऐसा किसलिये न कहिनाचाहिये कि यह गौतमका वचनहै (आवृत्तिविधायक)फेरे करवानेवाला नहीं अर्थात् दो तीनवार जुदे प्रायश्चित्त करनेकी आज्ञा इसमें नहींहै॰ किन्तु एक समयपर एकसाथ बैठेहुये बड़े छोटे पापोंकी व्यवस्था दर्शानेवाला ठीकहै और यह भी न कहिना चाहिये कि दूसरा ब्राह्मण मारने से मिलकर पहिले पापमें बड़ापन होसक्ताहै सो नहीं क्योंकि इसबातका प्रमाण कहीं नहींहै॰बल्कि जो मनु और देवलका एकही यहवचनहै (विधेःप्रथमिकादस्माद्द्वितीयेद्विगुणंभवेत् तृतीयेत्रिगुणं प्रोक्तंचतुर्थेनास्तिनिष्कृतिः) कि इसपहिले अपराधपर कहे विधानसे दूसरेमें दूनाहोय

तिसके अनुसार उनके प्रायश्चित्तोंकी बड़ाई छोटाई कल्पित करनी चाहिये अथवा जहां सहायता की विशेष तोल नाप न होसके तहां यह सामान्य एक नियम है सो लेना चाहिये कि अनुग्राहक पुरुष हत्यारेके प्रायश्चित्तमें चौथाई कम करे तिससे जहां हत्यारेको बारहवर्ष नियतहैं तहां उसको नौवर्ष की व्रतचर्या करनी चाहिये और प्रयोजक पुरुष हत्यारेसे आधा कमकरे तिससे उसके बारह वर्षके नियम साथ छेवर्षकी व्रतचर्या करनी चाहिये और अनुमन्ता पुरुष को आढाई पाद कम करके डेढपाद करना चाहिये तिससे उसको बारह वर्षके स्थलपर४॥ साढेचार वर्षकी व्रतचर्या करवाई जाय और निमित्ती पुरुष हत्यारेसे चौथाई तीनवर्ष की व्रतचर्याकरे= अतएवसुमन्तुः—तिरस्कृतो यदाविप्रोहत्वाऽऽत्मानंमृतोयदि निर्गुणःसाहसात्क्रोधाद्गृहक्षेत्रादिकारणात् त्रैवार्षिकंव्रतंकुर्यात्प्रतिलोमांसरस्वतीम् गच्छेद्वापिविशुद्ध्यर्थंतत्पापस्येतिनिश्चितम्=अत्यर्थंनिर्गुणोविप्रोह्यत्यर्थंनिर्गुणोपरि क्रोधाद्व्रियतेयस्तु निर्निमित्तंतुभर्त्सितः वत्सरंत्रितयंकुर्यान्नरःकृच्छ्रं विशुद्धये(गुणावद्ब्राह्मणस्तु वर्षेणैकेनैव शुद्ध्यति तदपिसुमंतुः) केशश्मश्रुनखादीनां कृत्वातुवपनंवने ब्रह्मचर्यंचरन्विप्रोवर्षेणैकेनशुद्ध्यति=अर्थात्—सुमंतुने निमित्तीके भी कई भेद कियेहैं कि—जब कोई गुणवान ब्राह्मण अपमान किया हुआ देहको विनाशिके जिसके निमित्तसे मरजाय या निर्गुण ब्राह्मण घर खेत आदि छिन जानेसे साहस करि क्रोधसे जिस किसी के निमित्त पर मरजाय सो निमित्ती पुरुष तीन वर्ष का व्रत करे या इस पापकी शुद्धिके लिये सरस्वती नदीकी धाराके सन्मुख उतने वर्ष यात्रा करे यह निश्चित हुआ=यद्वा=अतीव निर्गुण ब्राह्मण हो सो अत्यन्त निर्गुणी किसी मनुष्यके ऊपर क्रोधसे मरजाय जो घर खेत आदि किसी झगड़ेवाले निमित्त के विनाही घुड़की ताड़ना आदिसे सताया या लज्जित किया गया तो जिसके ऊपर यह मरजाय सो पुरुष अपने पापकी शुद्धिके लिये तीनवर्षतक कृच्छ्रनामक व्रतकरे तो शुद्धहोय(कदाचित्गुणवान्ब्राह्मणके ऊपर किसीनिमित्तसे निर्गुण ब्राह्मणअपघात करे तोनिमित्ती गुणवानब्राह्मण एकहीवर्षमें ब्रह्महत्या का व्रत करिके शुद्ध होजाता है यह भेदभी सुमंतुने कहाकि) विद्वान् क्रियावान् विप्र एकवर्षसे पवित्र होताहै बाल दाढी मूछ नख आदिका मुंडन करायके वनमें ब्रह्मचर्य से आचरण करतेहुये ॥ ० ॥ जैसा यह अनुग्राहक प्रयोजक आदिकों का क्रम कहागया इसी मार्गसे यथायोग्य उनको भी प्रायश्चित्त कल्पना करनी चाहिये जोकि इन प्रधान अनुग्राहक प्रयोजक आदिके साथी अनुग्राहक प्रयोजक आदिवनेहों•इस व्यवस्थाका मूल यही आपस्तंबका वचन है जो२२०दोशो

सत्ताइस की अधिकोक्ति में व्योरेवार अर्थसे लिखिचुके केवल मूलमात्र यहांफिर भी लिखे देतेहैं कि (प्रयोजयिताऽनुमंताकर्त्ताचेति स्वर्गनरकफलेषुकर्मसुभागिनो यो भूयआरभतेतस्मिन्फलविशेषः) ॥ ० ॥ तथैव प्रोत्साहक उत्साह दिलाने वाले आदि कुछ औरभी अपराधी होते हैं तिनको भी दंड और प्रायश्चित दोनों विधि कल्पना करनी चाहिये=तदाह पैठीनसिः=हंतामंतोपदेष्टाच तथासंप्रतिपादकः प्रोत्साहकःसहायश्चतथमार्गानुदेशकःआश्रयःशस्त्रदाताचभक्तदाताविकर्मिणाम उपेक्षकःशक्तिमांश्चदोषवक्ताऽनुमोदकः अकार्यकारिणास्तेषांप्रायश्चित्तंप्रकल्पयेत यथाशक्त्यनुरूपञ्चदण्डंचैषांप्रकल्पयेत=अर्थात–हंता•मंता•उपदेष्टा•संप्रतिपादक(औरकुकर्मियोंका) प्रोत्साहक•सहायक•मार्गानुदेशक•आश्रयदाता•शस्त्रदाता•भक्तदाता• उपेक्षक जो शक्तिमान् हो• दोषवक्ता•अनुमोदक• ये सब अकार्य कारी होते हैं तिनका जुदाजुदा प्रायश्चित्त निरूपण करै और उनकी यथाशक्तिके अनुरूप तथा कर्मोंकी गुरुता लघुता के अनुरूप उनको दंड भी निरूपण करै=यहां=पैठीनसि के बताये अपराधियोंकी जो नाम संज्ञा लिखीगई तिसके अर्थ समझने चाहिये कि—सबसे प्रधान हंता मारनेवाला ठहिरता है—और मंता अनुमंता कोभी कहिते हैं कि जिसके दो भेद पहिले २२७ दोसौ सत्ताइस की अधिकोक्ति में लिखिचुके तथापि अर्थांतर से इसमें कुछ विशेषता है कि वह अनुमंता प्रवृत्त हुये को प्रवृत्ति करता है सोभी अपने या परायेमतलबकेलिये किंतु यह मंतापुरुष बिना प्रवृत्तकोभी प्रवृत्त करताहै सोभी उपेक्षासे किजिस में न अपना मतलब न अपने किसीमित्रकाहो(इसका यहदृष्टांतहै किदो एकदुर्जनोंने आकर ऐसाकहाकि आपकेसमीपही अमुक देवदत्तका निवासहै हमलोग उसके साथ ऐसा उपद्रव किया चाहतेहैं जोआप इसमें दखलदेकर हरज नकरें अर्थात् निपट कुछ दखल न करें बल्कि गुलशफाडा के होनेपरभी चुपचाप होके अजानबनि जायँ तो हमारा यह काम अच्छा बनिजाय बसऐसी प्रार्थना को जिसने मानिलिया वही मंता मानने वाला कहाया सो अनुमंता से कुछ विशेष अपराधी जानों क्योंकि धर्म मर्यादा के अनुसार इसको यह चाहिये था कि प्रार्थनाकरने वालोंको निषेधकरता और साफ कहिदेता कि मैं ऐसे अनर्थ को नहीं मानि सक्ता बल्कि उनकोकिसी प्रकार भय सुनाकर हिम्मति तोड देता और समर्थों के सन्मुख उसका प्रकाशभी करदेता कि ऐसा उपद्रव मेरे समीप न होने पावै तो कदापि न होसक्ता)—उपदेष्टाके लक्षण २२७ की अधिकोक्ति में लिखिचुके हैं कि वह तीनि भांति के प्रयोजकों में एक उपाय का उपदेश बताने वाला होता है—संप्रतिपादक उसका नामहै जो मारने

वाले को जरूरी उपाय सामग्री आदिका अवसर ठौर ठिकाना तैयार करै जैसे जहरमि-ली मिठाई बनाकर लादेना या जिसको मारना चाहते हैं तिसको किसी बहाने से बुलाकर मौजूद करदेना आदि सिद्धि के अनेक ढंग होते हैं—प्रोत्साहक तर्गीबदेनेवाला कहाता जो हंता को अतिशय उत्साह दिलाकर बुरा करने पर उतारू करै इसको प्रयोजिता भी कहितेहैं—सहायक जो साथ रहिकर सहायता करै इसीको २२७वाली अधिकोक्तिमें अनुग्राहक इस नामसे लिखचुके हैं ठीक ब्यौरा उसी जगह देखो—मार्गानुदेशक जो मारने वालों को साथलेकर मार्ग बतावै अर्थात् जिसको लूटा मारा चाहते हैं तिसके ठिकाने तक पहुँचावै—आश्रयदाता जो घातियों को उनकी घात ठीक लगने के लिये अपने पास टिकावै—शस्त्रदाता जो तलवार छुरी या फांसी जहर आदि मौत के औजार घातियों को देवै—भक्तदाता जो विकर्मियां घातियों को भोजन देकर उनको मजबूत करै—उपेक्षक जो आप शक्तिमान् बलवानहोकर ठीकअवसरपर पुकार सुनिके उपेक्षा करके चुपकारहिजाय उद्रवहोते देखै वासुनै परवावा करिके दुष्टों को मारै भगावै नहीं—दोषवक्ता जो घातियों को भेदबतावैकि जिस को मारना चाहते हो वह अमुक समयअमुक ठिकानेबैठताहै तहां अमुकहोशियारी आदिदोषके प्रभावसे तुम्हारा काबू न चलैगारातिको या दिनमें अमुकठिकानेवहनशा पीके सोताहै तभी तुम्हारा कार्य बनैगा इत्यादि याइसरीति से दोषों को सुनावै कि उसके बेटा या भाई से इन दिनों पूरा बैरहै जो तुम उनको अपनी राहमें मिलालो तो बड़ी सुगमता से कार्य बनि सक्ताहै इत्यादिकोईसा दोषभेद बतावै सो दोषवक्ताहोता है—अनुमोदक जो घाती का अनुमोदन इस प्रकार से करै कि जो काम तुमने करना विचारा वह मैंने भी पसंद किया अवश्यकरो—येसभीविकर्मी अकाजकरनेवालेहोतेहैं यथा योग्य सबके लियेदण्ड और प्रायश्चित्तका निरूपण करैयहपैठीनसि का कथन है॥०॥ इन्हीं पूर्वोक्त नियमोंके अनुसार जहां बालक बूढ़े आदि अपराधी यदि साक्षात्कार आपही कर्ता बने हों तौभी उनको मूचित प्रायश्चित्त से आधा करने की आज्ञा देनी चाहिये=तदाहांगिराः=अशीतिर्यस्यवर्षाणि बालोवाप्यूनषोडशः प्राय श्चित्तार्धमर्हंति स्त्रियोरोगिणएवच=तथाऽवचनांतरन्तु=तथाऽवर्गिद्वादशाद्वर्षादशी तेरूर्ध्वमेववा अर्धमेवभवेत्पुंसां तुरीयंतत्रयोषिताम्=अर्थात्—अंगिरा ने कहा है कि जिसकी अवस्था अस्सीवर्ष पूरी होचुकी सो बूढ़ा समझना और बालक सो१६वर्षसे कमहो तिसको समझना,यद्वा विकल्पसे बारह वर्षके भीतर भी बाल अवस्था होती है ये लोग आधा प्रायश्चित्त करने के योग्यहैं और स्त्रियां जो पूरी अवस्था की हों

बालक बूढ़ा नहीं सोभी अर्ध प्रायश्चित्तके योग्यहैं तथैव रोगी पुरुष भी बूढ़ेके समान आधा करने के अधिकारी होतेहैं=ऐसाही दूसरा यह वचन है कि-तद्वत् बारह वर्षके भीतर और अस्सी वर्षसे ऊपरभी पुरुषोंको आधा प्रायश्चित्तहोय तहां स्त्रियों को चौथाई करवाया जाय क्योंकि पहिले वचनमें स्त्रीपनसे आधा कहाथा अब यहां उनके वृद्धापन और बालपनसे आधेका आधा रहिगया (बालकपनके दोभेद इस हेतु से कहेगए कि सोरह वर्ष पूरे होनेपर गृहस्थी के व्यवहारभार सौंपे जातेहैं तबसे पूरा पुरुष गिनाजाता है सोरहके भीतर बाल अवस्था मानी जातीहै क्योंकि संसारी व्यवहारोंकी निपुणता नहीं आतीहै•परन्तु बिरला सोरहके भीतर भी डीलडौल और बुद्धि की चतुरतासे अति निपुण होजाता और व्यापार आदिके धंधे साधन करता है तिससे ऐसा सोरहके भीतरभी पूरे प्रायश्चित्तके योग्य माना जासक्ताहै तिससे यह बारहवर्ष के भीतर बालक मानाजाता है और बारहके भीतरही आधे प्रायश्चित्तकी योग्यता इसको रहिती है किन्तु बारहवर्ष पूरे होनेसे ऊपर यह पूरे प्रायश्चित्तका भागीहोता है)=और भी यह भेदहै कि=बारहवर्ष के पहिले जिसका उपनयन कर्म जनेऊ आदि न हुआहो तिसके लिये आधेका आधा सिर्फ चौथाई व्रतचर्या प्रायश्चित्त की चाहिये=तदाह विष्णुः=स्त्रीणामर्धंप्रदातव्यं वृद्धानांरोगिणांतथा पादोबालेषुदातव्यःसर्वपापेष्वयंविधिः=अर्थात्–निरोगिनि पूरी स्त्रियों को आधा प्रायश्चित्त देना कहा तथा बूढ़े पुरुष औ रोगी पुरुषों को आधा कहा बालकों को चौथाई देना चाहिये सभी पापोंमें यह विधि जानो (यहां चौथाईकी अपेक्षामें बालक उन्हींको समुझना जिनका संस्कार न हुआहो क्योंकि पहिले वचनों में आधा देना कहि चुके हैं तहां उपनीत बालक समुझना होगा) इस प्रश्नकी अपेक्षामें कि अज्ञान बालकोंसे क्योंकर प्रायश्चित्तकी साधना होगी यह उत्तरहै कि अगिला वचन देखो=यदाहशंखः=ऊनैकादशवर्षस्यपंचवर्षात्परस्यच प्रायश्चित्तंचरेद्भ्रातापितावाऽन्यःसुहृज्जनः (इत्येवं प्रतिपाद्यपश्चादुक्तंच) अतोबालतरस्यास्य नापराधोनपातकम् राजदण्डोनतस्यास्ति प्रायश्चित्तंनविद्यते इति (तदपि सम्पूर्ण प्रायश्चित्ताभाव प्रतिपादनपरं न पुनः सर्वात्मना तदभाव प्रतिपादनपरं इति मिताक्षराकारः) अर्थात्–शंखने कहाहै कि पांच वर्षसे ऊपरका बालक जो ग्यारह वर्षके भीतर अवस्थामें हो तिसके किसी अपराध के होनेमें प्रायश्चित्त उसका भाई या पिता या कोई और हितूही सो करै (यहकहि कर पीछे यह भी कहा कि) अतः इस पांच वर्षसे भी नीचे अति बालक जो कोईसा पापकरै तो उसका न अपराध कोईजुर्महै न पातक (उसको जातिसे गिराना) है न

उसके लिये राजदंड है न प्रायश्चित्तहै (इसपर मिताक्षराकारने यह भी लिखाहै कि यह नकारोंवाला शंखका वचनहै सो भी संपूर्ण प्रायश्चित्तका अभाव दर्शानेवाला बेशक है परन्तु.यह नहीं कि बिल्कुलही प्रायश्चित्त न कियाजाय क्योंकि) शास्त्र में एक यह वचन है कि ब्राह्मण कहीं न माराजाय जहां मारेजाने के समय पुकार हो उसको सुनि कर भी सबलोग दौड़िके बचावैं किन्तु जहाँतक पुकार की आवाज पहुँचतीहो उस दरपेके भीतर जो कोई कहीं मौजूदहो यह उजर नहीं कर सक्ते हैं कि हम इतनी दूरथे या हम अमुक आश्रम संन्यासी आदि कोई थे हमको कुछ सम्बन्ध न था•दूसरा यह वचनहै कि तिससे ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य भी सुरा न पीवैं इत्यादि ऐसे और भी वचनहैं इनमें अवस्था की विशेषता लिये बिनाही जातिमात्रके अधिकार प्रकट किये हैं तिससे उस पांचवर्षसे नीची अवस्थाके अपराधी बालोंके बदले प्रायश्चित्त उनके पिता भ्राता आदि को करना चाहिये कि जिससे पापों के द्वारा उनका प्रारब्ध न बिगड़ने पावे (किन्तु पिता या भ्राताको अपराधी का प्रतिनिधि होना कहा तिसका यह कारण है•वेद और धर्मशास्त्र में पिता का अधिकार है कि पुत्रोंको जन्म देकर पाले फिर संस्कार करै वेद विद्यामें चतुर बनावै और सदाकेलिये उनकी जीविका वृत्ति भी कायम करदेवै•जहां पिता नहो तहाँ जेठे भाईको यह सब करनेका अधिकार होता है क्योंकि पिताके पदपर जेठा पुत्र स्थापित होता है•जहाँ जेठा भाईभी न हो तहाँ बालकों की रक्षाके अधिकारी उनके कुटुंब या नाते रिश्तेके लोग रक्षक होतेहैं कि जिनको तन धन आदि सर्वथा रक्षा करनेका अधिकार न्याय मार्गसे पहुँचता हो) जहांपर प्रायश्चित्तों का सन्निपात आनि परै तहाँ का निर्वाह आगे लिखते हैं ॥०॥ सन्निपातका यह उदाहरण है कि जैसे किसी पुरुषने एकजगह एक ब्राह्मण मारा तिसका पूरा प्रायश्चित्त उसको लगा और दूसरीजगह वही अपराधी किसी ब्रह्मघाती का प्रयोजक आदि सहायक बना तिस अपराधका पूराप्रायश्चित्त नहींहै अर्थात् आधा तिहाई चौथाई जो कुछ विचार से उसके जिम्मे ठहरै सो ऊना प्रायश्चित्त भी करना चाहिये तो यह.बड़े छोटे प्रायश्चित्तों का सन्निपात कहाता है तहाँ बारह वर्ष आदि का जो बड़ा प्रायश्चित्त है तिसके बीच आइ परने वाला प्रयोजयित्व आदिसे सहायता संबन्धी जो छोटा प्रायश्चित्तहो सो विनाकिये भी प्रसंग नामक मर्यादासे कियेके समान माना जाता है अर्थात् एकही अनुष्ठान से दोनों कार्यकी सिद्धि होजाती है (धर्मशास्त्रमें प्रसंगमर्यादा इसीका नामहै कि एक प्रधान कार्य करनेसे उसका प्रासंगिक भी दूसरे पुरुषका सम्बन्धी कार्य बिना किये

भी सिद्ध हुआ माना जाय) परन्तु इससे यह शंका न करनी चाहिये कि जब यही निर्वाह की मर्यादा ठहिरी तो इसके प्रभाव से सामान्य विशेष के समुझे बिना भी छोटे कल्पका अनुष्ठान करनेसे बडेभी प्रायश्चित्तकी सिद्धि बिना किये होजायाकरै• क्योंकि इसी शंका की अपेक्षा से इस निर्वाह के और भी तात्पर्य पाए जाते हैं कि प्रथम तो जहाँ देशकाल दोनोंके कुछ अन्तरसे बड़े छोटे दो प्रायश्चित्त लगेहोंगे तहाँ दोनोंही भिन्न भिन्न अनुष्ठान कराए जायँगे तिससे यह निर्वाह की मर्यादा केवल उसी जगहपर समुझनी चाहिये कि जहां एक साथही दोप्रायश्चित्त किसी पर आरूढ हुयेहों अर्थात् अति स्वल्पकालके बीचमें कुछ आगे पीछे आरूढ हुयेहों तहांभी उन के निर्वाहका विचार आगे पीछे लगने के अनुसार नहीं किया जासक्ता है कि जो पहिले छोटा लगाहो तो पिछला बडा भी उसके करनेसे सिद्धहुआ मानाजाय किन्तु यही नियम सिद्ध होताहै कि बड़े प्रायश्चित्तके करनेसे छोटा प्रायश्चित्त प्रसगमात्र से सिद्धहुआ माना जायगा चाहें कोईसा पहिले या कोईसा पीछे उत्पन्न हुआहो कुछ इसपर नियम नहीं है–और–यह भी तर्क न करनी चाहिये कि चैत्रके वध करने से उपजे पापके विनाशको अनुष्ठान किये हुये से कैसे उस पापकी निवृत्ति होगी जो विष्णुमित्रका मरवाना चाहने से उत्पन्नहो–क्योंकि चैत्र आदिकी अपेक्षा यहांनहीं है–इससे यह समुझना चाहिये कि जैसे कामनाके नियोगोंकी सिद्धि के लिये और स्वर्ग प्राप्त होनेके लिये भी अनुष्ठान किये आग्नेय आदि कर्मों से नित्य नियोग भी सिद्ध होजातेहैं तैसे यहां भी बड़े प्रायश्चित्तमें छोटे प्रायश्चित्तका करना सिद्धहोता है ॥ अब इससे आगे दो एक पंचायती व्यवस्था कही जायँगी क्योंकि यहां तक तो मनु याज्ञवल्क्य आदिके वचनों में विरोध कुछ नहीं था परन्तु अंगिरा आदि कुछऋ-षीश्वरों के ऐसे वचन आगे आवेंगे कि जिनसे परस्परभी कुछ विरोध देखने में आता है और अबतक जो व्यवस्था सिद्ध होचुकी तिससेभी निराला मार्ग उनका प्रतीतहोता है उन सबको इसी०व्यवस्थाके अनुकूल सिद्ध करनेकेलिये सब ऋषियोंकी पचायती तोड मरोडसे व्यवस्था कही जायगी कि जिसमें सबकी रियाअत कुछ कुछ बनी रहै॥०॥पंचायती अनुकल्प–ये अनुकल्प उनके लिये कहे जायँगे कि जो कोई प्रा-यश्चित्त की साधना में अशक्त हों परन्च धनसे कुछ सपन्न हों–तहाँ–एक अंगिरा का वचन है (गवांसहस्रंविधिवत्पात्रेभ्यःप्रतिपादयेत् ब्रह्महाविप्रमुच्येतसर्वपापेभ्य एवच)अर्थात्–एक सहस्र गौएँ जुदे योग्यपात्रों का विधि से समर्पण करैं तो ब्रह्म घाती ब्रह्महत्या से और सबतरह के पापों से छूटि जाय–सो यह सहस गौओं का

दान उस दशापर आरूढ़ है कि जहां गुणवान् ब्राह्मण यज्ञमें बैठा हुआ माराजाय जैसा२५२ दोसौ बावन श्लोकमें योगीश्वर कहेंगे (द्विगुणांसवनस्थेतुब्राह्मणोव्रतमादि शेत) कि बारह वर्ष से दूना चौबीस वर्षका व्रत उसको आदेश करें जिसने यज्ञस्थ ब्राह्मण माराहोय) तहां जो चौबीस वर्षकी व्रतचर्या करसकनेमें असमर्थहो तिसको पूर्वोक्त हजार गऊका दानकरना सूचित हुआ है क्योंकि वह प्रायश्चित्त बहुतबडा है–अन्यथा जहां सिर्फ बारह वर्ष का व्रतप्रारंभ किये पीछे कभी पूरा करनेमें असमर्थ पाई जाय तहां सहस्र गऊदान करना नहीं सूचित है क्योंकि उसके लिये केवल ३६० तीनसौ साठि गोदान की योग्यता पाई जाती है क्योंकि वहां बारहवर्ष की व्रतचर्या में बारह बारह दिनके अनुष्ठान वाले अनेक प्राजापत्योंके फल सिद्ध होतेहैं तिनकी सब गिनती जोड़नेसे ३६०तीनसौ साठि प्राजापत्यहोते हैं तिनकी साधनाअशक्ति मे न होसकने से तीनसौ साठि गऊदानकी योग्यता पाई जातीहै (प्राजापत्य क्रियाऽशक्तौधेनुंदद्याद्विचक्षणः गवामभावेदातव्यंतन्मूल्यंवानसंशयः) यह भी एक नियम है कि जिसको किसी हेतुसे प्राजापत्य करनेकी आवश्यकता ठहरीहो और वह करने में अशक्त हो तहां विवेकी पुरुष दूध और बच्छा सहित गऊदान करें तो प्राजापत्य करने का फल पावै जो गऊ ना मौजूद हों तो निःसंदेह उनका मूल्य देना चाहिये–इस न्याय के अनुसार जो प्रत्येक प्राजापत्यके बदले एक गोदान कियाजा तो तीनसौ साठि प्राजापत्यों के प्रतिस्थान तीनसौसाठि गऊ चाहिये पर एक हजार गऊ देना इसमें नहीं चाहिये क्योंकि न्याय वही कहाताहै जो जिसके योग्यकाम या वस्तु हो उसीसे योग उसका किया जाय (यह तर्कना इसमें शेष रहीकिप्राजापत्य के विधान में इतना विशेष नियम है कि बारह दिन में पूरा करिके पीछेतीन दिन उपवास भी होता है और यहां जो न्याय अभी लिखिचुके तिसमें बारह वर्षके सभी दिन हिसाब में जोड़े गये उपवासों के निमित्त से तीनि वर्षे और चाहिये तब तीनसौ साठि प्राजापत्य पूरेहों सो किसलिये अधूरे गिनती किये गये॰ इसका यह समाधान है कि प्रायश्चित्ती पुरुष को वनमें रहिना वनफल खाना जटा रखाना आदि अनेक भांति के तपकरने होते हैं तिनसे तीन दिनके उपवास विनाभी उसका प्राजापत्य अधूरा नहीं ठहरता किन्तु पूरेके तुल्यमाना जाता क्योंकि इसके निरंतर अनेक प्राजापत्यके समान व्रत होतेहैं वह तीनदिन अधिकवाला नियम उसकेलिये समझना जो सिर्फ एकही दो प्राजापत्यकरै ॥ ० ॥ और जो शंखने बारहवर्ष प्रायश्चित्त की व्रतचर्या पूरी करने परभी सहस्र गोदान करने कहे तिसका भी निर्णय

समझ लेना उचित है=यथाह शंखः=पूर्ववदमतिपूर्वंचतुर्वर्णोषुविप्रंप्रमाप्य द्वादश वत्सरान् यद्वीन्सार्धसंवत्सरंचव्रतान्यादिशेत्तेयामते गोसहस्रं तदर्धंतस्यार्धं तदर्धंद द्यात्सर्वेषांवर्णानां मानुपूर्व्येणेति=अर्थात्–पहिले नियम के समान अज्ञानतासेहोगये पापों मध्ये चारों वर्णोंमे समझना कि ब्राह्मण को मारिके बारह वर्ष क्षत्री को मारिके छः वर्ष वैश्य को मारिके तीन वर्ष शूद्रको मारिके डेढवर्षकेव्रत आदेश करें तिनकेसमाप्त होनेके अंतमें उसीवर्णक्रमसे हजार गऊतिसकी आधी पांचसौ तिसकी आधी अढाई सौ तिसकीआधी सवाउसौ गऊदान करे॰सो यह व्रत और गोदानदोनो कर्मकी आज्ञाआचार्य कुलप्रधान आदि उत्तमपुरुषोंको मारनेमध्ये समझनीक्योंकि दो बात मिलके बहुत बड़ा कर्म ठहरा तिससे उत्तम पुरुषों का विषय समझना– इस वचन में जो प्रायश्चित्त के बड़प्पन से उत्तम पुरुष के मारने मध्ये पापका बड़ापन प्रकटकियागयातिसके प्रमाणकी अपेक्षापरदान और हिंसाका फलपुरुषहीकी उत्तमता से दक्षनेभी दर्शाया है तिसको यहां लिखते हैं=यथाह दक्षः=सममब्राह्मणे दानंद्विगुणंब्राह्मणब्रुवे आचार्येशतसाहस्रंसोदर्येदत्तमक्षयम—समद्विगुणसाहस्रमानंत्यंचयथाक्रमम् दानफलविशेषःस्याद्धिंसायांतद्वदेवहि=अर्थात्–दक्षने कहाहै कि अब्राह्मणको देनेसे समानफल और ब्राह्मणब्रुव को देनेसे दूनाफल और आचार्य ब्राह्मणको देनेसे सैकरों हजारफल होतेहैं और सहोदर भाईको देनेमें अक्षयफलअर्थात् जिसका अंतनहीं होता ऐसा बड़ा फल मिलता है इसी वचनकी व्याख्या आगे अर्थांतर से फिर होगी क्योंकि दो अर्थ इसमें होते हैं) समान और दूना और हजारों और अनत ये चारों भाँतिके फल यथा क्रमसे दानमें विशेषता रखते हैं तैसेही यथा क्रमसे हिंसा करने में भी विशेषता रखते हैं कि जैसे उत्तमको मारा होगा तैसा अधिक पाप होगा उसीके अनुकूल प्रायश्चित्त भी अधिक ठहिराया जाताहै (इस वचनमें अब्राह्मण और ब्राह्मणब्रुव जो कहेगये॰तहां छः भांतिके अब्राह्मण कहाते हैं=तदाह शातातपः=अब्राह्मणास्तुषट्प्रोक्ता ऋषिणातत्ववेदिना अद्योराजभृतस्तेषां द्वितीयःक्रयविक्रयी तृतीयोबहुयाज्यःस्याचतुर्थोग्रामयाजकः पंचमस्तुभृतस्तेषांग्रामस्यनगरस्यच अनादित्यांतुयःपूर्वांसादित्यांचैवपश्चिमाम नोपासीतद्विजःसन्ध्यांसषष्ठोऽब्राह्मणःस्मृतः=अर्थात्–तत्त्व जानने वाले ऋषियों ने छः अब्राह्मण कहे तिनमें पहिला तो राज का पलाऊ भृतक दूसरा क्रय विक्रय करने वाला तीसरा बहु याजक जो बहुत से समूहों में पाधाई करै चौथा ग्रामयाजक जो गावँमें सब जातियों को पुरोहिताई राखै पांचवां जोग्रामया नगरमें मजूरीकरै छठा वहकि यद्यपि इनकामों

को नकरताहो परन्तु साँझ सवेरे संध्या कर्मकी उपासना न रखताहो येछहू अब्राह्मणकहातेहैं और ब्राह्मण ब्रुव उसका नाम है जो ब्राह्मणत्व के संस्कार चिह्न आदि सब राखता हो तथापि नित्य नैमित्तिक धर्मोंका आचार नकरताहो और आचार्य अनेक तरहके होते हैं जैसे मंत्रोंकी व्याख्या सहित श्रुति स्मृति का पढाने वाला अथवा किसी उत्तम संप्रदाय का आचारी जो अन्यलोगों को भी आचार के मार्ग पर चलावे इत्यादि=औरभी=आपस्तंबने बारह वर्ष की व्रतचर्या सामान्य कहिकर पीछे एक विशेष वचन कहाहै=यथा=अस्मिन्नेवविषये॰ गुरुंहत्वा श्रोत्रियंवा एतदेव व्रतमुत्तमादुच्छ्वासाचरेत् (तत्र यावज्जीवमावर्त्यमानेव्रते यदा त्रैगुण्यं चातुर्गुण्यं वा सम्भाव्यते तदा तत्रासमर्थस्य बहुधनस्यायं दान तपसोः समुच्चयो द्रष्टव्य इति मिताक्षराकारः) अर्थात्—आपस्तंब ने यह कहा कि इसी बारहवर्ष की अपेक्षा में गुरुको मारि के या श्रोत्रिय को मारिके यही पहिले दर्शाया हुआ व्रत उत्तम श्वासापर्यन्त आचरै अर्थात् जब तक जीवन की श्वासा बनी रहै तब तक करे केवल बारहवर्ष से प्रयोजन नहीं है परंतु एतदेव यही व्रत बारह वर्ष वाला जो इशारा किया तिससे बारहवर्षों काभी तात्पर्य कुछलेना चाहिये॰इसी गूढहेतुसे मिताक्षराकार ने व्यवस्था इसपरलिखीहै कि(तहाँ जबतक जीवै तब तक बारह बारह वर्षों की कई आवृत्तियां करतेहुये आयुको बितावै इसी हिसाब के अनुसार जहां ऐसा संभव देखि परै कि प्रायश्चित्ती की अवस्थाइतनी शेष है तिसमें दो या तीन या चार आवृत्तिहोसकेंगी इसकादृष्टांत जैसे अनुमानहै कि छत्तीसवर्ष अभीजीवैगा तो बारह तिया छत्तीस इसमें तीन आवृत्ति होसकेंगी तहां प्रायश्चित्ती एकही दो आवृत्ति पूरी करिके असमर्थ होजाय और बहुत धनवानहो तिसके लिये यह दान और तपस्या दोनों का समुच्चय समुझना चाहिये कि एक दो आवृत्ति जो करिगुजारी सो तपस्या ठहिरी और उसकी शेष अवस्थाके अनुमानसेदो या तीन आवृत्तिजो करने योग्य बाकी रहीं तिनके पलटे में दान करदेना चाहिये पावै॰यह सब तात्पर्य आपस्तंब और पूर्वोक्त शंख तथा दक्ष के इन तीनों वचनके मिलानसे ठहिरा॰क्योंकि वर्तमान आपस्तंबके वचनमें दानका चर्चा नहींहै अर्थात् ऊपरके दो ऋषियोंसे यह तात्पर्य लियागया कि शंखने ब्रह्महत्यापर एक हजार गऊ दान करना कहा और दक्षने यह भेद किया कि अब्राह्मण मारने को ब्रह्महत्या में समान दान करना चाहिये कि जो हजार गऊ शंख ने बताई और॰ब्राह्मण ब्रुवके मारनेमें दूना दान दोहजार गऊका और आचार्यके मारने में सौ हजारकी संख्यासे उस मरे हुयेके सहोदर भाईको दियाजाय तो यह दान अक्षय ही

जाता है॰सो यह इतना बडादान केवल इसी दशा पर ठहिराया गया है कि जहां प्रायश्चित्ती पूरा धनवानहो और आपस्तंब के वचनानुसार (जनमकोटी कोश्मात) जन्म भरेका यावज्जीवन प्रायश्चित्त ठहिरै जिसको वह पूरा पूरा न कर सक्ताहो तब यह विचार किया जाय–इस व्यवस्थाको शियाम्रतसे पूर्वोक्त दक्षका वचन यहाँ दुबारा अर्थांतर से दर्शातेहैं कि (समसत्राह्मणेदानंद्विगुणंब्राह्मणब्रुवे आचार्येशतसाहस्रसो दर्येदत्तमक्षयं) इसकाअर्थ अभी इसीजगह लिखि चुकेहैं कि अब्राह्मण की हत्या में समदान करना कि जितना शंखने कहा हो और ब्राह्मण ब्रुवकी हत्यामें उससे दूना दान करना और आचार्य की हत्या में सौहजार की सख्यावाला दान जो उन्हीं के सगे भाइयोंको दियाजाय तौ अक्षयफल करताहै (यह सदेह न करना कि जो अर्थ इसका पहिले लिखि चुके सो ठीकथा या यह ठीकहै क्योंकि दोनों सत्यार्थ हैं पर वहां उसी अर्थसे प्रयोजन था यहां इसीसे प्रयोजनहै)॥०॥ व्यवस्था पंचायत– व्यवस्था की पंचायत वाद विवाद से इस लिये यहाँ लिखते हैं कि सुमंतु और पराशर आदि अनेक मुनीश्वरों के वचन जो कुछ पहिले लिखि चुके और बहुधा दोसौ पचास २५० की अधिकोक्ति तक देखते रहिना लिखे जायँगे तिनमें बारह वर्ष की अवधि छोड़ि के औरही और नियम पायेजाते हैं॰ तिनकी व्यवस्था विषय भेदसे कल्पना करी जायगी– तहाँ– उस पंचायत में सबसे प्रथम नैयायिक वाचालता से यह तर्कना खड़ी होती है कि–प्रायश्चित्तों में बारहवर्ष आदि अनेक तरह के कल्प जो जो मानेगये तिनकी व्यवस्था कहांसे जानीगई और किसकारण से बाँधीगई॰ लेकिन यह उत्तर हम न मानेंगे कि बारहवर्ष आदिका विधान बताने वाले वचनों से जानी और बाँधीगई क्योंकि उनमें प्रतीति नहीं लासक्ते हैं॰ और यह भी न कहिना चाहिये कि परस्पर प्रमाणों से जानेहुये बड़े छोटे कल्पों मे रुकावट रूपीबाधखंडा न होसके इसकारण से व्यवस्था में विषयभेदकी कल्पना करीजाती है यह उत्तर इस हेतु से न मानेंगे कि जिसबाध की रुकावट दूरकरना चाहते हो सो अच्छीतरह इन प्रकारों से भी दूर होसक्ता है कि यातो विकल्प या समुच्चय या अगांगीभावका सहारा लियाजाय॰ अर्थात (विकल्प इसका नामहै कि बड़ छोटे सभी कल्पों मे चाहैं इसको करो या उसको करना) और (समुच्चय यह कहताहै कि सभी कल्प ठीकहैं इसको भी करो फिर उसको भी करना) और (अगांगीभाव दो शब्द मिलिके अंग और अंगीबना संबबहै सो अगांगीभाव कहाता है दृष्टांत जैसे देहमें शिर या धड़ प्रधान अंगीहोता और शेष हाथपैर आदि सब उसी

अंगीका अंगहै तैसे यहाँ भी समझना कि सबसे बड़ा बारहवर्षरूपी कल्प जो है सो प्रधान अंगी और उससे निचले कल्प सब उसी अंगीके अंगहैं तौ भी प्रथम बड़े का अनुष्ठान करिके छोटेभी सब अंगमानिके साधेजायँ) इन तीनोंमें कोई एक मार्गभी स्वीकार करने से उक्त बाध नहीं खड़ा रहिसक्ता॰ तिससे विषय भेदपर व्यवस्था की कल्पना वृथाठहिरैगी—सुनो उत्तर कहितेहैं व्यवस्था भेदोंमें कुछ बारहवर्षवाले और सुमन्तु आदि के दर्शाये विषम कल्पोंका विकल्प नहीं कल्पित होताहै कि चाहैं इसको करो या उसको करो क्योंकि विकल्पका सहारा लेनेमें बड़े कल्पोंका अनुष्ठानहोना संभव न रहिनेसे अनर्थक दोषका प्रसंग आताहै कि जब इच्छाके आधीन होजाय तौ फिर बड़े कल्पका करना कौन चाहै॰ और ऐसा भी न कहिना चाहिये कि चन्द्रग्रहण की तरह छोटे बड़े दोनोंकी विषमता में भी विकल्प की सिद्धि पाई जासक्तीहै क्योंकि उसकी उपमादेना तौ दूररहा प्रथम उस ग्रहण में भी विकल्प का होना ठीक नहीं है अर्थात् जो किंचिन्मात्र भी ग्रहण का देखिपरना संभव हो फिर चाहैं पीछे न देखि परो तौ भी ग्रहण होगा ऐसा मानिके सूतक आदि का स्वीकार करना उचित है विकल्प नहीं माना जासक्ता है कि चाहैं सूतकमानौ या मतमानौ (इस उपमाको झूंठी कहिनेका यह तात्पर्य है कि जब एक ग्रन्थके गणितसे चन्द्रग्रहणका न देखि परना सिद्धहोताहै दूसरे गणितसे कुछ ससीसा देखि परने की ठहिरती है तहां दोनों की विषमता ठहिरती है और इसी में विकल्प का संदेह खड़ा होताहै तथापि विकल्प नहीं माना जासक्ताहै अर्थात् जहाँ दोनोंके विचारसे चन्द्रग्रहणका देखि परना सिद्ध होजाता या दोनों से न देखि परना पाया जाता हैं तहां विषमता के न होनेसे आपही विकल्प का प्रसंग नहीं आताहै) अथवा उसी चन्द्रग्रहण में पूराकरनेकी दृष्टिसे प्रारम्भ किया जो अतिरात्रनामा यज्ञ हो तिसके लिये यह कल्पना करनी चाहिये कि ग्रहण देखिपरनेसे शीघ्रही स्वर्गादिफल सिद्ध होगा कदाचित् न देखि परा तौ भी कुछ विलंब से वही स्वर्गफल प्राप्त होगा किंच और किसी तरह से विकल्प अंगीकार करने में अनर्थ होजानेका प्रसंग खड़ा होताहै कि यदि प्रथम से उसका न देखिपरना मानिके सूतकआदि विधिके त्याग पूर्वक भोजन आदि कियागया और भोजन करते ग्रहण देखि परने लगा तब कितना बड़ा अनर्थ होगा या अतिरात्रयज्ञ जिसका दोनों दशा में अवश्य फलहोता तिसको विकल्पका सहारा लेकर न करना आदि अनर्थ खड़े होते हैं—और—समुच्चय से काम चलसक्ता तुमने कहा वहसमुच्चय भी इसमें ठीकनहीं किन्तु उपदेश और अतिदेशके द्वारा प्राप्ति

हुये विना समुच्चय नहीं संभव होताहै क्योंकि उपदेशकेद्वारा समझोहुई जो निरपेक्षा है तिसके बाधका प्रसंग आता है—और—तीसरा अगांगी भावका सहारा लेना तुमने जताया सो अंगांगी भावहू इसमें नहीं है क्योंकि श्रुति आदिसे उसका भाव विनियोगकरनेवाले कोई नहींहै अर्थात् किसी ने अगांगी भावका स्वीकार करना कहा नहीं—इसीसे उन सब कल्पोंके परस्पर उपमर्द होना जो सभव है तिसका परिहार कर देनेके लिये विषय व्यवस्था की कल्पना करनी उचित है वह भी विशेषकर जाति और शक्ति और गुण वन आदि की अपेक्षा से कल्पना होनी चाहिये क्योंकि इसी विधि का प्रमाण भी देवलने कहा है=यथा=जातिशक्तिगुणापेक्षंसकृद्बुद्धिकृतंतथा अनुबंधादिविज्ञायप्रायश्चित्तंप्रकल्पयेत्=अर्थात्—अपराधी तथा जिसके साथ अपराध किया गया इनकी ऊंच नीच जातिके विचार से तथा उनकी शक्ति और गुण की अपेक्षा से और यहभी कि अपराध यही एकवार हुआ या पहिले भी कारचुका है तथा यह अपराध सिर्फधोखे में होगया यद्वा बुद्धिसहित किया और भी अपराधी के अनुवंध अवस्था आदि भेदों को जानि के विज्ञानी पण्डित प्रायश्चित्त कायम करें क्योंकि इन भेदोंके समझे विना प्रायश्चित्त बताने में अवश्य कुछ अनर्थ खड़ा होगा॥ २४३॥

इसी दोसौ तेंतालिस २४३के श्लोक और उसकी अधिकोक्ति में यहां तक ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्तमध्ये जोकुछ नैमित्तिक दर्शाया गया तिसके मध्यमकालमें भी समाप्त होजानेवाली अवधि समझाना चाहतेहैं सो अगिले परिच्छेदमें देखना॥

अथ असंपूर्णद्वादशवार्षिकेऽपिकलितत्फलसिद्ध्यवधिविवेकविषयकोऽयंपरिच्छेदः अष्टाविंशः २८

—*—

इसपरिच्छेद में यह विवेक जाना जायगा कि जो अवधि बारह वर्षकी कहिचुके जिसका किसी प्रायश्चित्तीने प्रारम्भ करादिया हो वह बीचमें भी किसी समय पूरी होजाती और पूरे किये का फल देतीहै॥

(आरब्धनैमित्तिकस्यसमाप्त्यवधिः)

ब्राह्मणस्यपरित्राणाद्गवांद्वादशकस्यच। तथाश्वमेधावभृथस्नानाद्वाशुद्धिमाप्नुयात् २४४

अर्थः—एक ब्राह्मण के परित्राण से या बारह गौओं की प्राणरक्षा से भी यद्वा

अश्वमेधमेंभी अवभृथ नाम का स्नानकरनेसे भी शुद्धि को पावै—अर्थात्—जहां किसी प्रायश्चित्तीने बारह वर्षका प्रायश्चित्त या दूनी अवधि चौबीस वर्षका प्रारम्भकिया हो और उसके बीचमें किसी समय दैवकी इच्छासे ऐसा वानक वनिजावै कि वनमें किसी ब्राह्मण को चोर बटमार मारेडारते हों या सिंह वाघ वन वाराह आदि कोई फाड़े डारता हो और प्रायश्चित्ती ऐसा देखि के तत्काल अपने प्राण का लालच छोड़े हुये उसके ऊपर जाइ गिरै और किसी कठिनता के साथ उसके प्राण बचावै तौ वह उसीसमय शुद्ध होजाताहै अर्थात् जो कुछ वर्ष बाकी रहिगई तिनका पर्यटन किये विनाही पूराफल सिद्ध होजाता है वह अपने घर लौटि आवै—इसी प्रकार जो बारह गौओं के प्राण चाहैं एक बार या दो तीन बार में बचावै तौ वहभी पूरी अवधिका फल उसी समय पाकर शुद्ध होजाता है (इसकी जो विशेषता है सो अधिकोक्ति में देखो) अथवा जहां किसी राजा आदि ने अश्वमेधका प्रारम्भ किया हो तिसका अंगभूत जो अवभृथ नासका स्नान विधान उसके यजमानको कराया जाता है तिसके ठीकसमयपर यदि प्रायश्चित्ती पहुंचिकर आपभी उस विधिसे स्नानकरै तौ भी अवधि पूरी हुये विना ब्रह्महत्या से छुटकारा मिलजाता है (इसका भी विशेष व्योरा अधिकोक्ति में देखना ॥ २४४ ॥

२४४ अधिकोक्तिः—ब्राह्मण या गौओंकी रक्षाकरनेमें जो अपनेप्राणखोवैसमभि के उतारू हुआ कदाचित् रक्षा न करिपाई पर उसके साथ आप भी मरिगया हो तौ भी शुद्ध होजाताहै अर्थात् शेष प्रायश्चित्तका पातक उसकेसाथ नहीं जाताहै॰ यही अभिप्राय मनुके वचनमें प्रत्यक्षहै=यथाहमनुः=ब्राह्मणार्थेगवार्थेवासद्यःप्राणान्परित्यजेत् मुच्यतेब्रह्महत्यायागोप्तागोर्ब्राह्मणस्यवा=अर्थात्—ब्राह्मण के अर्थ या गौओंकेअर्थ जो शीघ्र अपने प्राणखोदेवै सो ब्रह्महत्यासे छुटकारा पाइजाताहै और वह भी जो गऊ या ब्राह्मणकी रक्षा करिके आप मरा या बचिगया हो (इसमें जुदे जुदे दो डौल कहे गयेहैं कि यातौ रक्षा करतेहुये अपने भी प्राण खोदेवै चाहैं रक्षा न करिसका तौभी अपने पातकसे शुद्धहोके मराठहरता है अन्यथा जो रक्षाभी करि पावै और आप माराजाय या बचिजाय सो भी शुद्ध होताहै ॥ ० ॥ विराने अश्वमेध में स्नान करना कहा सो भी अपने पापको छिपाये विना उजागर करिके और यज्ञके यजमान आदि से आज्ञा पाकर करना कहा है=तदाह मनुः=शिष्ट्वावाभूमिदेवानां नरदेवसमागमे स्वमेनोऽवभृथेस्नात्वा हयमेधीविमुच्यते (भूमिदेवाब्राह्मणाऋत्विजस्तेषांनरदेवेनराज्ञायजमानेनसमवाये स्वीयमेनःपापंशिष्ट्वाविख्याप्यअश्वमेधावभृथे

स्नात्वाशुध्येत् यदित्तैरनुज्ञातोभवतीत्यभिप्रायः) अर्थात्–यज्ञकरनेवाला नरदेव राजा तिसके और सवनीते में आयेहुये राजालोग तथा भूमिदेव ब्राह्मण जो यज्ञका विधान करवाने वाले ऋत्विज आदि इन सबके समाज में अपने पापका वृत्तांत और इतने दिन प्रायश्चित्त करते बीते इतने बाकी रहे सब सुनाइ के स्नान की अभिलायामात्र मनसे प्रकट करें किन्तु मुखसे न उचार करें इस दशामें यजमान और विद्वान अपनी धर्मज्ञा संमति से इसका कल्याण सोचिकरस्वतः स्नानोंकी आज्ञा देदेवें तो उस अश्वमेध में अवभृथ विधिसे स्नानकरिके शुद्ध होताहै=यही नियम शंखने दर्शाया है= यथा=अश्वमेधावभृथंगत्वा॰ऽनुज्ञातःस्नात्वासद्यःपूतोभवति=अर्थात्–अश्वमेध में अवभृत के समय पर जाइ के तहाँ अनुज्ञा पाया हुआ प्रायश्चित्ती स्नान करिके सद्यही तत्काल शुद्ध होताहै=इन वचनोंमें अश्वमेधावभृथकी समस्या कहीजानेके उपलक्षण से और भी अनेक यज्ञ जैसे अग्निष्टुत नाम जोअग्निष्टोमका रूपांतर विशेष होताहै और अग्निष्टुत के अंतर्गत पंचदशरात्र आदि यज्ञ जो अग्निष्टुत की समाप्ति पर्यंत उसके अंगभेद हों तथा सर्वमेध आदि जो वेद में प्रसिद्ध हैं तिनमें से किसी एक यज्ञमें जाकर अवभृथ स्नान करिके पवित्र होसक्ता है जो दैवकी इच्छा से वानक ऐसा मिलिजाय किन्तु अश्वमेधसे उपरालु यज्ञों में शुद्धिपाने का प्रमाण गौतमका वचन है कि (अश्वमेधावभृथेवान्ययज्ञेऽप्यग्निष्टुदंतश्चेदित्यादिः) अश्वमेध के अवभृथ में वा और किसी यज्ञमें भी जो अग्निष्टुत अंत कहाता हो स्नान करें=यह सब नियम उसीकेलिये समझना जोबारह वर्षकी व्रतचर्याकरनेमें लगिरहाहो और बीचमेंकदाचित् ब्राह्मणकी रक्षा आदि दैवयोगसे बनिपरे तो उसव्रतचर्याकी अवधिपूरीहोजायगी–परन्तु यहतात्पर्य नहींहै कि प्रायश्चित्तका आरम्भ न करिके अपनीस्वतंत्रतासे इन्हींकामोंकोढूंढ़ै कि यहभी एक प्रकारके प्रायश्चित्त होंगे–क्योंकि–शंखनेसन्देह मिटाइके स्पष्ट यही कहाहै=यथा=द्वादशेवर्षेशुद्धिप्राप्नोत्यंतरावा ब्राह्मणंमोचयित्वागवांवाद्वादशानांपरित्राणात् सद्यएवाश्वमेधावभृथस्नानाद्वापूतोभवति=अर्थात्–बारहवाँवर्ष पूरा होने से शुद्धिको पाताहै अथवा बीचमें भी ब्राह्मण को मौतसे छुड़ाकर शुद्धहोताहै अथवा बारह गौओंकी रक्षा करने से यद्वा अश्वमेध में अवभृथ विधि का स्नान करने से सद्यही पवित्र होताहै=इसी लिये=मनुने यह डौल बांधा है कि प्रथम तो मुंडन कराइ के वनमें वसे इत्यादि बारह वर्षकी गुण विधि में तत्पर कराने पीछे वह विधानकहा जो अधिकौतिके शुरूमें लिखि चुकेहैं कि ब्राह्मणके अर्थ या गौओं के अर्थ अपनेप्राण खोदेवै इत्यादि अश्वमेधके स्नान पर्यंत बीचमेंकहिकर तिस

पीछे यहदर्शायाहै कि जिसको बीचमें ब्राह्मणकी रक्षा आदिकोई प्रकारन वनिआवै सो बारह वर्षपूरेकरै=यथा–एवंदृढव्रतोनित्यंब्रह्मचारीसमाहितःसमाप्ते द्वादशेवर्षेब्रह्महत्यांव्यपोहति=अर्थात्–इसप्रकार व्रतको मजबूतीसे थांभेहुये नित्यंप्रति ब्रह्मचारी बनाहुआ चित्तको सावधानरखिकर बारहवां वर्षसमाप्तहोनेमेंब्रह्महत्या दूरकरदेताहै ॥ ० ॥ जो नियम अभी कहिचुके उसपर वादी तर्क उठाता है कि ब्रह्महत्या से छुटिकर शुद्धि पावै यह उसी लपेट के साथ कहागया है जो ब्राह्मणकी रक्षाकरना आदि कई प्रकार या बारह वर्षकी व्रतचर्या करना सबदशा में शुद्धि पासक्ताहै तिससे सब कार्य्योंसे एकही तुल्य फल ठहिरा इसन्यायसे अपराधी को स्वतंत्रताहोनी–योग्य है कि वह चाहै तिस प्रकार से अपना पीछा छुड़ासके अर्थात् निज इच्छा से कोई एक प्रायश्चित्त इनमें से करै परन्तु ऐसा नहीं उचित है कि ब्राह्मण की रक्षा आदि प्रकारोंको बारह वर्षोंका अंगत्व माना जाय किवेभी उसी प्रधान कर्म का अंगहैं और अंगत्वभी नहीं सिद्ध होताहै क्योंकि प्रधान कर्मका विरोधी (बीचही में रोकिदेनेवाला) होने से भी अंग नहीं कहा जासक्ता है किन्तु अंग वही होता है जो प्रधान का अनुग्राहक (पीछा पकड़ने वाला साथ देने वाला) हो और यह विधान भी बारह वर्ष आरंभ करने वाले का नहीं है जिससे कि उसी कार्य का जुदा विधानपायाजाता है–इसपर यह दृष्टांत भी मीमांसा के अनुसार है कि जैसे सत्र नामक यज्ञ करने पर उताख होकर विश्वजित यज्ञसे यजनकरै यह सत्रके प्रयोगमें प्रवृत्तहुये का उसके पूरे करने में असमर्थ का विश्वजित विधान एकदृष्टान्त है इससेभी स्वतंत्रता का होना ही युक्त पायाजाताहै कि जैसा (आगे दोसौ सैंतालिस २४७ श्लोक से आदिलेकर) अग्नि में गिरके मरजाना• तीरन्दाजों का निशाना बनिके मरजाना आदि जो कल्प कहे जायँगे तिनमें भी यह शंका न करनी चाहिये कि वेभी बारह वर्षके प्रारम्भ और समाप्ति के बीचमें लिखे पड़े गयेहैं तोवेभी बारहवर्षोंका एक एक अंग होंगे इससे वे सभी कल्प बारह वर्ष के बीचमें करने होंगे इससे कि यद्यपि पाठबीच में आया पर उनके बीचमें होनेपर भी उनका प्रयोजक (लगानेवाला) जो नहीं जाना जाता और प्रयोजन की आकांक्षा भी बारह वर्षों से जुदी देखि परतीहै तिससे परस्परउनका अंग और अंगीपना नहीं साबित होसक्ताहै जबकि अंगांगित्व साबित नहुआ तो बारह वर्षों के बीच उनका साधन भी आवश्यक नहीं ठहिरा–इसपर भी मीमांसामें दृष्टान्त है कि–जैसे वेदमें सामिधेनी ऋचाओं के प्रकरण में अग्निचित्कर्म की ऋचाएँ भी वर्तमान हैं तिनके दो भांति के कर्म हैं कि अग्निसमिंधन और अग्निप्रकाशनये दोनों

कर्म अग्निहीके साथहोते हैं तहांभीअग्नि रूप एकही कार्यके हेतुसे सामिधेनी ऋचाओं के साथ उनका अंगत्व नहींमाना गया है—और बारह वर्ष की व्रतचर्या मध्ये ठीकठीक उनका पाठहू बीचमें नहींहै जो अग्निमें प्रवेश होजाना आदि जुदे कल्पहैं क्योंकि वशिष्ठ गौतम आदि अनेक ऋषियों ने बारह वर्ष का चर्चा छेड़नेसे प्रथमही उनको लिखाहै और यही स्वतंत्रता जाहर करदेने के लिये मनुने हरएक वाक्यों के साथ विकल्प दर्शानेवाला वा शब्दभी लगाया है कि (लक्ष्यंशस्त्रभृतांवास्याद प्रास्येदात्मानमग्नौवा)या तो शस्त्रधारियोंका निशाना बने या शरीरको अग्निमें भस्म करे इत्यादि और उन्हींमनुजी ने प्रत्येक प्रायश्चित्त के साथ एवमेवं ऐसेही ऐसे यह प्रकार साधे यह ऐसा उपसंहार भी लगाया है तिससे भी सब जुदे जुदे प्रतीत होतेहैं और यहभी साफ कहा है कि (अतोऽन्यतममास्थायविधिंविप्रःसमाहितः ब्रह्महत्याकृतेपापंव्यपोहत्यात्मवित्तया) इनमें से किसी एक विधिपर आरूढ हो ब्राह्मण अपने चित्तको सावधानराखे आत्मवेत्ता होके रहे तो ब्रह्महत्या के निमित्त का पाप जो है सो दूरहोजाता है—वादी सबका तोड़ करताहै कि इनसब कारणोंसेमेरी समझमें यह आता है कि अग्नि मेंजलजाना आदि प्रायश्चित्तोंमें स्वाधीनता प्रत्यक्ष बहुतहोकरहै कि अपनीइच्छाके अनुसार कोई एकविधान साधे और इसीसे ब्राह्मण गऊकीरक्षा आदिवाले विधानों में भी बारहवर्षका अंगत्व नहीं सिद्धहोता है क्योंकि उनका और इनकाभी फल एकहीठहिरा कि ब्रह्महत्यासे छुटिजाताहै तिससे भेद मानना नचाहिये= उत्तर कहिते हैं सुनों=परिहृतमेतद्दत्तराब्राह्मणंमोचयित्वा इत्यादिनाशंखवचनेनांगत्वावगमात् अंगस्यैवसतःप्रधानद्वारेणफलसंबंधः नचप्रधानविरोधः यतोब्राह्मणत्राणावधिकस्यैवव्रतानुष्ठानस्य फलसाधनत्वंविधीयते इतिनविरोधः=अर्थात्—सबकुछ कहा पर यहतो छोड़िही दिया जो शंखके वचन में कि बारह वर्ष के बीचही में ब्राह्मण को मौत से बचाइ के इत्यादि व्यवस्था कही तिससे साफ साफ बारह वर्षों का यह अंग पाया जाता है और अंगहीके होते हुये प्रधान के द्वारा उसमें फल होता है और बीचहीमें प्रधान कर्म का त्याग होजानेपरभी प्रधानका विरोध इसमें नहीं है क्योंकि उस अनुष्ठान का पूरा फल ब्राह्मण के प्राण बचाने की ही अवधि तक विधान किया गयाहै तिससे कोई विरोध इसमें नहींहै॥ २४४॥ ब्राह्मण गऊकी रक्षा तथा अश्वमेध का स्नान जैसेकहेगये तैसे उनकेसाथी कुछ औरभी शेषहैं सो अगिले श्लोकोंमें देखना॥

———※———

(पूर्वोक्तानांशेषप्रकाराः प्रायश्चित्तभेदाः)

दीर्घतीव्रामयग्रस्तंब्राह्मणंगामथापिवा । दृष्ट्वापथिनिरातंकंकृत्वावाब्रह्महाशुचिः २४५
आनीयविप्रसर्वस्वंहृतंघातितएववा । तन्निमित्तक्षतंशस्त्रैर्जीवन्नपिविशुद्ध्यति २४६

अर्थः–बहुतअतिलंबे और तीव्र रोगोंसे ग्रसे ब्राह्मणको अथवा ऐसी गऊको मार्ग में देखि निरोग करिके भी ब्राह्मन शुद्ध होताहै=अर्थात्–कुष्ठ आदि महारोगों से यदि कोई ब्राह्मण या गऊ दुखी देखै उसको औषधी झारबूटीआदि किसी अपनी युक्ति से चिकित्सा करिके निरोगीकरै तो वहभी तत्काल शुद्ध होकर छुटकारा पावै, किन्तु बारह वर्ष पूरे करनेसे अपेक्षा कुछनहींरही॥२४५॥ और भी यदि ब्राह्मणके हरे हुये सर्वस्वको ल्याइकर देवै या चाहे घायलहोके मरजाय या उसधनके निमित्त शस्त्रों से घायल होकर जीतारहे तौभी शुद्ध होजाताहै=अर्थात्–ऊपरले श्लोक में दो प्रकार से शुद्ध होना कहा इसमें तीनप्रकार से कहाहै कि जिस किसी ब्राह्मणका कोई सावनचोरों आदि किसी बलवान् ने हरा हो तिससे दुःखी देखि के यातो सबधन छीनिके ल्यादेवै या उसधनकेलिये युद्धकरिके प्रायश्चित्ती आप माराजाय या घायल होके मरनेके समान होजाकर भी जीतारहे चाहे धनको नहींलासका तौभी शुद्ध होजाताहै॥ २४६॥

२४६ अधिकोक्तिः–वादी ने फिर इसमें भी यह तर्क उठाया है कि एकसौच-वालिसके श्लोकमें ब्राह्मण गऊकी रक्षा करनी कहिचुके थे अब यहां दुबारा फिर क्योंकहा–तिसका यह उत्तर है कि हां सत्यकहा वहां और यहां भी इसका यह तात्पर्य है कि वहां तो अपने प्राण खोइ कर भी रक्षाकरनी कही थी और यहां केवल चिकित्सा या मंत्र यंत्र आदि उपायोंसे रक्षाकरनी कही कि जिसमें अपने प्राणोंको संदेह नहीं यह दोनोंमें विशेषता है–इसी अभिप्राय से मनुने यह कहाहै कि (विप्रस्यतन्निमित्तेवाप्राणालाभेविमुच्यते) ब्राह्मण के प्राण बचाइ के या उसके निमित्त अपने प्राण खोइके छुटकारा पाजाताहै॥ २४५॥ दोसौ छयालिस में जो शस्त्रोंका बहुवचनहै सो इसलिये कि एकही घावखाकर भागिपरै तो यह प्रायश्चित्ती बारह वर्षकी अवधि पूरी किये बिना शुद्ध न होगा अर्थात् जो बहुत से घाव अपने देह पर खाकर भी न भागा और मरने के तुल्य होकर दैवकी इच्छा से जीता रहिगया हो तिसकी अवधि अभी पूरी होगई मानी जायगी–इसीहेतु मनुने ऐसा वचन कहाहै कि (त्र्यवरप्रतिरोद्धावासर्वस्वमवजित्यवा)तीन वा तीनसे अधिक डाकुओंको रोकनेवाला

वने अर्थात् बहुतो को रोकने लडने से माराजाय या बहुत घायलहोके दैव योग से बचिजाय फिर चाहे धन को न छीनि पावै तौ भी शुद्धि होजायगी क्योंकि छीनि पाउनेवालाकाम उसने सद्भावसे किया अथवा चाहे एकबाण वा ईंट तक भी देहमें न लगीहो और डाकू चाहें अनेक वा एकही हो परन्तु सबधन उनसे छीनके ब्राह्मण को ल्यादेवै कि जिसका जितना चोरो ने लूटा था तौभी यह प्रायश्चित्ती शुद्ध होजावै ॥ ये पांचों भांतिके कल्प भी ऐसेहैं कि इनमें अपराधीकी इच्छासे स्वाधीनता नहींहै कि बारह वर्षोंकी व्रतचर्या प्रारम्भ किये बिना प्रथमसेही गऊ ब्राह्मण की चिकित्सा या लूटा हुआ धन छीनि के शुद्ध होजानेका अधिकारी बने किन्तु दो सो चवालिस की २४४ कीअधिकोक्ति के अंत में जो कुछ निपटारा सिद्ध होचुका सो यहांभी समझ लेना ॥ २४६ ॥

अगिले परिच्छेदमें प्रायश्चित्तके अनुकल्प कहेजायँगे कि जो बारह वर्ष की व्रतचर्या करना न चाहे सो इनको करै ॥

अथ प्रायश्चित्तान्तरानुकल्पप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेद

२९ ऊनत्रिंश ॥

——*——

इसपरिच्छेदमें ब्रह्मवधके कुछ और भी प्रायश्चित्त कल्पनाहोंगे कि उनमें प्रायश्चित्ती को स्वाधीनता भी रहिरैगी कि चाहें यह करो या वह करो—यद्यपि बारहवर्षके स्थानी भूतकल्प कहेजायँगे तथापि उनमें भी अपराधीकी विशेषता अनुसार विषय भेदसे विचार करना होगा सो अधिकोक्तियो में देखना ॥

(अग्निप्रवेशरूपप्रायश्चित्तान्तर)

लोमभ्य स्वाहेत्येवहिलोमप्रभृतिवैतनुम् । मज्जान्तांजुहुयाद्वापिमन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् २४७

अर्थः—यद्वा (लोमभ्य स्वाहा) इत्यादि ऐसे इनमन्त्रो से यथाक्रम रोम आदि मज्जा पर्यन्त तनु (शरीर) को होमही करै=अर्थात्—इस वाक्यमें वापि यद्वा शब्द उस पक्ष से दूसरा पक्ष दर्शाने वाला है कि जो बारह वर्षका पक्ष पहिले कहि चुके और हि शब्द इस निमित्त है कि अन्य स्मृतियों मे त्वचा आदि जो व्योरेवार प्रसिद्धहैं सोभी

समझिलेना क्योंकि यहां केवल रोमा आदि कहिके संक्षेप किया गयाहै–इससे यह अभिप्राय ठहिरा कि यदि बारह वर्षकी व्रतचर्या न करना चाहै तो यह करै कि अग्नि में अपने शरीर को होमै सो किस विधान से कि (रोमा॰ त्वचा॰ रक्त॰ मांस॰ मेदा॰ स्नायु नसैं॰ हाड॰ मज्जा) ये आठ वस्तु होम की सामग्री मानै और इन्हीं से प्रत्येक जुदे द्रव्यका स्वाहांत मंत्र बनावै सो अधिकोक्ति में देखो ॥ २४७ ॥

२४७ अधिकोक्तिः–शरीरके धातुरूपी होम की सामग्री से जुदे जुदे आठो मंत्र बनाकर वशिष्ठ ने प्रकाश किये हैं=यथाह वशिष्ठः=ब्रह्महाग्निमुपसमाधायजुहुयात् लोमानिमृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युंवाशय इतिप्रथमां १ त्वचंमृत्योर्जुहोमित्वचामृत्युं वाशय इति द्वितीयां २ लोहितंमृत्योर्जुहोमिलोहितेन मृत्युंवाशय इतितृतीयां ३ मांसानिमृत्योर्जुहोमि मांसैर्मृत्युंवाशय इति चतुर्थीं ४ मेदोमृत्योर्जुहोमि मेदसामृत्युं वाशय इति पंचमीं ५ स्नायूनिमृत्योर्जुहोमि स्नायुभिर्मृत्युंवाशय इतिषष्ठीं ६ अस्थीनिमृत्योर्जुहोमि अस्थिभिर्मृत्युंवाशय इति सप्तमीं ७ मज्जांमृत्योर्जुहोमि मज्जाभिर्मृत्युंवाशय इत्यष्टमीम् ८,=अर्थात्–वशिष्ठ ने यहकहा है कि ब्रह्महत्यारा पुरुष अग्नि का बहुत बड़ा कुण्ड अपने समीप नियत करिके इन आठो चीजके आठ मंत्रों से आठ होम करै (इसी हेतु मूल श्लोक में योगीश्वर ने (लोमप्रभृति) रोम आदि आठ द्रव्य जताये और (लोमभ्यःस्वाहा) ऐसे मंत्र बताये तिनको भी इन्हीं वशिष्ठ के बताये मंत्रों में इस रीति से जोड़ै कि) लोमानिमृत्योर्जुहोमिलोमभिर्मृत्युंवाशय लोमभ्यःस्वाहा १ यह एक मंत्रबना इसी प्रकार आठो मंत्र बना लेवै=इस पर एक विचार है कि लोमभ्यस्वाहा कहिने से रोम आदि द्रव्यही देवता समझे जाते हैं क्योंकि जैसे (गणेशायस्वाहा सूर्यायस्वाहा इत्यादि) चतुर्थी विभक्ति से देवता के मंत्र कहेजातेहैं कि गणेश के लिये स्वाहा या सूर्यके अर्थ स्वाहा–तैसे यहां रोमों के अर्थस्वाहा खालके अर्थ स्वाहा इनमें रोमखाल आदि आठो धातु देवतारूप प्रतीत होते हैं तथापि देवतारूप नहीहैं क्योंकि (रोम आदि शरीर को होमै) इस कथन से उनकी द्रव्यरूपही कल्पित कियाहै और द्रव्यही से होम सिद्धहोताहै विना द्रव्यके नहीं और (लोमभिर्मृत्युं वाशय)इत्यादि वशिष्ठ के मंत्रोंमें मृत्युही को हवि की आहुति बताने से देवता वहां मृत्यु इसमें प्रधान है जो अग्नि के द्वारा रोमादि हवि खायगी–इसीसे–यह तात्पर्य ठहिरा कि फरसा गंडासा आदि शस्त्रसे अपनी सामर्थ्यके अनुसार उक्त रोमा आदि अपने शरीर से जुदे करि करि मृत्यु के नामसे आठो होम करिके पीछे सर्व शरीर अग्नि में झोंकि देवै (इतना यह संदेह अभी शेष है कि एक मंत्रसे एकही

आहुति वा अनेक या अष्टोत्तर शत आदि कोई संख्या भी नियत करै क्योंकि आठ होम करने कहे पर इसकेमध्ये कोईसंख्या नहींबांधी तिससे एकहोम एकहीआहुति का प्रतीत होताहै) इसका समाधान यहहै कि (संख्या का नियम बांधना कर्ता के स्वाधीन रहा कि प्रत्येक मंत्रकी आहुति जितनी करसके वही संख्या आठोंकी जुदी जुदी राखै इसीलिये यह लिखचुकेहैं किअपनी सामर्थ्यके अनुसार लोमखालआदि उपाड़े=यहाँ श्रीमद्विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि रोम खाल आदि का हवि रूपी द्रव्य ठीकठीक सिद्धहुआ इसमें कुछ सदेहनहीं परंतु किसीविरले टीकाकारोंने प्रथमऐसा अर्थ लगायाथा कि मूलमें होमकेलिये कोईद्रव्यनहीं आदेशकिया तिससे इनमंत्रोंसे घीका होम करना चाहिये॰सो वह निरूपण किये विना घीका होम कहा तिससे उस अर्थका आदर न करना चाहिये ॥ ० ॥ मूलश्लोक में (जुहुयात्) होमें इसप्रयोग सेही अग्निका नाम लिये बिना उसका प्रयोजन सिद्ध होजाता है कि होम करै तो अग्नि भी अवश्य चाहिये परन्तु वशिष्ठ के वचन में जुहुयात् होने पर भी (अग्निं उपसमाधाय)यहद्वारा कहागयाहै कि अग्निकोपासराखिके होमकरै तो इसद्वारा के लेखसे लौकिक अग्निकी ध्वनि पाई जातीहै कि उसमें होम करै और यही बात उचितहै क्योंकि जो पुरुष अग्निमानहोके पतितहुयेहों तिनके अग्नि भी पतित हो जातेहैं तिससे वे पतिताग्निपुरुष कहाते और उनकेलिये एकविधानकहागयाहै कि जिसके हेतु से उनकोभी लौकिकाग्नि सेही प्रयोजन आपस्तंबः=यथाहोशना=आहिताग्निस्तुयोविप्रोमहापातकभाग्भवेत् प्रायश्चित्तैर्नशुध्येततदग्नीनांतुकागतिः वैतानप्रक्षिपेतोयेशालाग्निंशमयेद्बुधः =कात्यायनस्तु =महापातकसंयुक्तोदैवात्स्यादग्निमान्यदि पुत्रादिःपालयेदग्नीन्युक्तस्त्वादोषसंक्षयात् प्रायश्चित्तनकुर्याद्यःकुर्वन्वाम्रियतेयदि गृह्यंनिर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम्=अर्थात्–जो ब्राह्मण (आहिताग्नि) अग्निमान् है वह महापात की होजाय और प्रायश्चित्तों से न शुद्धहोवे तिसके अग्नियों की क्यागति होगी (सो कहिते हैं कि) उसका वैतान जो वेदकी विधिसे स्थापनकिया विस्तारहै सामग्री उपकरण औजार आदि सो सब जलप्रवाह में हत्यारा या कोई और ज्ञानी छोड़ि आवै तथा शाला के अग्निको बुझाइ डारै= कात्यायन भी कहिते हैं कि=जो अग्निमान् है वह दैवयोगसे यदि महापातकी होजाय तो उसका कोई पुत्र वा शिष्य आदि अग्नियोंको पालै फिर दोषी भी अपना दोष मिटाने के वादिसे पालै॰अथवा यदि ऐसा हो कि प्रायश्चित्तको न करै यद्वा प्रायश्चित्त प्रारम्भ करिके मरजाय तो गृह्य अग्नि को बुझावै और श्रौत को जल में

सब सामग्री सहित छोड़ि आवै ॥ ० ॥ पूर्वोक्त होमका शेष कार्य अब कहिते हैं कि शक्तिके अनुसार होम कियेपीछे अग्निमें सबशरीर झोंकना कहाशो तीनवार उठि उठि के औंधे मुख गिरना चाहिये=तदाह मनुः=प्रास्येदात्मानमग्नौ वासमिद्धेत्रिरवाक्शिराः=अर्थात्-जो पूर्व कल्पोंको न करै तो अच्छे प्रज्वलित अग्निमें शरीरकोही औंधे मुख तीनवार झोंके=गौतम ने कुछ और भी विशेषता इसमें करी है कि(प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिरवस्यातस्य) ब्रह्मघ्न को प्रायश्चित्त यह है कि अवस्यात नाम लंघन किये हुये का अग्नि में प्रवेश करना तीन वार उठि उठि कर (लंघन इस लिये कहा कि शरीर दुर्बल और शुद्ध होजाने से अग्नि उसको शीघ्र भस्म करसके) तैसेही काठकी शाखावालोंकी यह श्रुतिहै कि (अनशनेन कर्शितोऽग्निमारोहेत्) लंघन से दुर्बल होकर अग्निपर सवारहोवै=अब यह विचार भी कर्तव्य है कि यह मरजानेका प्रायश्चित्त उसकेलियेहै जिसने कामनासे इच्छासहित महापाप किया हो जैसा अंगिराकी विचली स्मृतिका वचन है=यथाह मध्यमांगिराः= प्राणांतिकंचयत्प्रोक्तंप्रायश्चित्तंमनीषिभिः तत्कामकारविषयंविज्ञेयंनात्रसंशयः= तथा =यःकामतोमहापापंनरःकुर्यात्कथंचन नतस्यशुद्धिर्निर्दिष्टाभृग्वग्निपतनादृते= अर्थात्-अंगिराने कहाहै कि जो जो मरणांतिक प्रायश्चित्त बुद्धिमानों ने कहे सो सब कामकारोंका विषय समझना इसमें संदेह नहींहै=तैसे=मत्र यहवचनहै कि जो आदमी किसी तरह कामना से चाहिकर महापाप करै तिसकी शुद्धि नहीं होती कहीहै सिवाय पर्वतके शिखर आदि ऊंचेसे गिरने से या अग्निमें गिरनेविना=यह प्रायश्चित्त जो इसी २४७ भरमें कहा गया सो बारह वर्षोंके विनाही स्वतंत्र किया जाताहै अर्थात् इससे पहिले परिच्छेदमें जो ब्राह्मणकी रक्षा आदि कहेगये तिनकी तरह बारह वर्षोंके साथ करना नहीं सूचित हुआहै ॥ २४७॥

(शस्त्रसंपातमध्ये स्थितिरूपंप्रायश्चित्तांतरं)

संग्रामेवाहतोलक्ष्यभूतःशुद्धिमवाप्नुयात्। मृतकल्पःप्रहारार्तोजीवन्नपिविशुद्ध्यति २४८

अर्थः-अथवा लड़ाईके बीच लक्ष्यभूत होके माराजाय तौभी शुद्धि को पावै या शस्त्रोंके प्रहारसे अतिपीडित मरनेके तुल्य होजाकर दैवयोग से जीवता रहि कर भी शुद्ध होताहै=अर्थात्-जहां कहीं दुतर्फा युद्ध होताहो या सीखनेवाले निशाना लगातेहों इत्यादि जिस ठिकाने पर बहुतसे बाण आदि शस्त्रों का पात होता हो उसी जगे प्रायश्चित्ती जाकर युद्ध वालोंका निशाना बनिके बीचमें बैठे कि जिससे दुतर्फा चले हुये बाण आदि शस्त्र उसके ऊपर लगैं तहां मरजाय तो यह शुद्ध होजाताहै यहां

बहुत घायल होकर मरनेके समान मूर्च्छा पाकर पीछे दैवकी इच्छा से यदि होश में आजाय तौ यह जीता रहिजाने पर भी शुद्ध होजाता है॥ २४८॥

२४८ अधिकोक्तिः—निशाना बनिके बैठे इसमें राजा आदि किसी प्रबल की प्रबलता रूपी आज्ञासे प्रयोजन नहींहै अर्थात् आपही अपनी इच्छासे धनुष आदि शस्त्र विद्याके योद्धाओंसे प्रार्थना प्रकट करै कि मैं प्रायश्चित्तीहूं इसलिये तुम्हारा निशाना बना चाहता हूं=यथाह मनुः—लक्ष्यंशस्त्रभृतांवास्याद्विदुषामिच्छयात्मनः= अर्थात्—शस्त्रधारी विद्वानोंका लक्ष्य बनै अपनी इच्छासे॥ यह प्रायश्चित्त जो मरणांतिक रूप ठहिरा तिससे यह सबके लिये नहीं किन्तु उसके लिये समझना जो प्रायश्चित्ती आप क्षत्रीहो और इच्छा सहित ब्राह्मणको मारा हो बल्कि जिस क्षत्री में यज्ञ करनेकी समर्थहो तौ अश्वमेध आदि यज्ञोंसे विकल्प भी होसक्ताहै क्योंकि मूल श्लोक में अपि शब्द जो आया तिसके ध्वन्यर्थसे ऐसा क्षत्री अश्वमेध आदि यज्ञों से भी शुद्ध होताहै=तदाहमनुः=यजेतवाश्वमेधेनस्वर्जितागोसवेनच अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वात्रिवृताऽग्निष्टुतापिवा=अर्थात्—पूर्व कहे कल्पोंको न करसके तौ अश्वमेधसे यज्ञ करै या स्वर्गजित् नाम यज्ञकरै या गोसव यज्ञ करै या अभिजित् यज्ञ या विश्वजित् यज्ञोंसे यजन करै या त्रिवृत् नाम यज्ञसे या अग्निष्टुत् नाम यज्ञसे प्रायश्चित्तकरै— इनमें एक अश्वमेधका यज्ञ केवल सार्वभौम क्षत्रीको सूचितहै जो सब धरतीके राजाओं पर आज्ञाकारक महाराजाधिराजहो-क्योंकि पराशर ने ऐसा कहा है (यजेतवाश्वमेधेनक्षत्रियस्तुमहीपतिः) कि जो क्षत्री सब धरतीका पति होय वह अश्वमेध से यजन करै (नासार्वभौमोयजेतेत्यसार्वभौमस्यप्रतिषेधदर्शनाच) और जो सार्वभौम न हो सो अश्वमेध न करै क्योंकि हरकाई अश्वमेधका अधिकारी नहीं यह प्रतिषेध भी देखा जाताहै=सार्वभौम को यह अश्वमेध रूपी प्रायश्चित्त उस दशा में कि जहां इच्छा सहित हत्या आदि करने से मरणांतिक प्रायश्चित्त ठहिरा हो (इससे यह बात भी स्पष्ट होगई कि सार्वभौम से उपरान्त राजाओंको अश्वमेधके सिवाय जो अन्ययज्ञों के नाम कहे सो सब समझने) सार्वभौमके सधमें यह वचनभी यमस्मृति का प्रमाण है कि=महापातककर्तारश्चत्वारोमतिपूर्वकम् अग्निंप्रविश्यशुद्ध्यंतिस्थित्वावामहतिक्रतौ=अर्थात्—चारो महापातकी जो जानि बूझिके पाप करने वाले हुये हों सो अग्निमें प्रवेश करिके शुद्धि होतेहैं कि जैसा २४७ में वर्णन होचुका अथवा महायज्ञ जो अश्वमेधहै तिसमें बैठके शुद्धहोते हैं सो यह अधिकार सार्वभौम को कहिचुके तिससे उसको अग्निमें प्रवेश करना आवश्यक नहीं रहा किन्तु जिनको अश्वमेधक

अधिकार नहीं तिनको अग्निका अधिकार ठहिरा—क्योंकि यमस्मृतिके वचनद्वारा अग्निमें मरजाना और अश्वमेध करना दोनों फल बराबर सिद्धहुये ॥ ० ॥ और अनेक यज्ञ जो स्वर्जित आदि ऊपर दर्शाएगए तिनका अधिकार तीनोंवर्णोंमें जो आहिताग्नि पुरुषहों और पहिले भी यज्ञ कर चुकेहों उन्हींको आवश्यक है (सबको नहीं) सो उनके लिये बारह वर्षोंसे विकल्पहै कि चाहैं बारह वर्ष की व्रतचर्या करैं या वही यज्ञकरैं जो पहिले कभी किया हो—परन्तु ऐसा नहीं कि प्रायश्चित्तही के निमित्त पर स्वर्जित आदि यज्ञ करना चाहिके अग्निका स्थापन करैं या पहिला यज्ञ करैं• क्योंकि जोपतित होचुका उसको द्विजातियोंवाले कर्मका अधिकार नहींरहा•और तर्कभी न करनी चाहिये कि जैसे दोसौ तैंतालिस २४३ की अविकोक्तिमें संध्योपासन करनेका अधिकार सिद्ध किया था तैसे उसकी तरह अग्निका स्थापन और प्रथम यज्ञका करना भी अविरुद्ध ठहिराया जाय• सो यह तर्क इस हेतुसे न करनी चाहिये कि वहाँ तौ यह तात्पर्य था कि सभी कर्मोंके प्रारम्भमें शरीरकी शुद्धि करनी आवश्यक होतीहै वह शुद्धि स्नान और संध्यासे होतीहै जब कि प्रायश्चित्ती को स्नान करना उस अविकोक्तिमे कहागया तौ यह बात आपही सिद्ध होजाती है कि शुद्ध होनेके लिये स्नान करना कहा तिससे स्नानकी अंगभूत संध्याभी अवश्य करनी शेष रही सो करनी चाहिये—और यहां यह प्रयोजनहै कि अग्निका स्थापन और पहिला यज्ञ ये उस पिछिले यज्ञके अंगभूत नहींहैं जो प्रायश्चित्त रूपी करना कहा तिससे उसका शेष कर्मभी ये नहींहैं जो संध्योपासनकी भाँति तत्काल करिलेना जातीकर्म से अविरोध माना जासकै•क्योंकि यहां यही तात्पर्यहै कि जिसके अग्निकी स्थापना का अधिकार होनेसे नित्यप्रति अग्निहोत्र कर्म होता रहा और दोषी होजानेसे पहिले कोईसा यज्ञ भी उसने किया हो तिसको यह अधिकार पाया जाता है कि बारह वर्ष वाले प्रायश्चित्त के बदले उसी यज्ञ को फिरि करै जिसको पहले कभी किया था—अश्वमेधके उपरान्त जिन यज्ञोंका करना जिन लोगों पर ठहिराया गया तिनके लिये यह विचार भी करना आवश्यक है कि साक्षात् हन्ता पुरुष को बारह वर्ष के बदले पूरी दक्षिणा से कराया जाय और उसके सहायक•आदि जिस किसी को आधा प्रायश्चित्त के वर्षका ठहिराहो तिसको आधी दक्षिणा से और जिसको चौथाई तीनवर्ष के बदले यज्ञ ठहिरा हो तिसको चौथाई दक्षिणासे कराया जाय इत्यादि अपनी बुद्धि से व्यवस्था कल्पित करि लेनी चाहिये ॥ २४८ ॥

———

(अन्यच्चप्रायश्चित्तांतरम्)

अरण्येनियतोजप्त्वात्रिर्वैवेदस्यसंहिताम्। शुद्ध्येतवामिताशीत्वाप्रतिस्रोतःसरस्वतीम२४९

अर्थः–वनमें नियताहार होके वेदकी संहिता को तीनवार जपिके भी शुद्ध होय यद्वा मिताहारी होके स्रोत स्रोतके प्रति सरस्वती को जाइके भी शुद्ध होय=अर्थात थोड़े भोजनका एकसा नियम बाँधि के निर्जन वन में किसी पुनीत स्थानपर वेद संहिताकी तीन आवृत्ति पाठकरै या उसी तरह थोरे प्रमाण का भोजन भिक्षा खाते हुये पूर्व देशमें प्लक्षनाम उपद्वीप के झरने से यात्रा प्रारम्भ करिके पश्चिम समुद्र तक पहुँचे फिर वहाँसे झरने और स्रोतोंके सहारे रास्तालेकर सरस्वती नदीको पहुँचे तो शुद्ध होजाता है इसमें बारह आदि वर्षोंका कुछ नियम नहीं रहा किन्तु जितने दिनम उक्त कार्य होसकैं वही नियम है॥ २४९ ॥

२४९अधिकोक्तिः–इसप्रायश्चित्त वालेको वह भिक्षालेनीचाहिये जो हविष्य में गिनती हो जैसे हेमंतिका आदि मुन्यन्न बहुधा होतेहैं क्योंकि (हविष्यभुग्वानुच रेत्प्रतिस्रोतःसरस्वतीम) मनुने यह कहाहै कि हविष्य भोजन करते हुये स्रोत स्रोत के द्वारा सरस्वतीको चलाजाय अथवा इस वचनका यह अर्थहै कि नित्यंप्रति हवन करिके उसका शेष बचाहुआ हविष्य भोजन करै किन्तु भिक्षा मध्ये कुछ हविष्य का नियम नहीं॥ वेद संहिताका जप करना कहा तीन बार सो मंत्र और ब्राह्मण रूप संहिता समझनी और संहिता लेनेसे वेदका पद क्रम इसमें नहीं सूचित किया किन्तु केवल मंत्र ब्राह्मणात्मक संहिता का पाठ करना चाहिये॰सो यह प्रायश्चित्त केवल उसी पर आरूढ है जो वेद पढ़ा हुआ विद्वान हो और निर्धनी भी हो॰जिसने आप गुणवान होकर निर्गुण ब्राह्मणका वध किया हो और इच्छा बिना धोखा से वध कियाहो॥ दूसरा सरस्वती को जाना कहा सो निर्गुणी विद्या विहीन हत्यारा जो धनसे भी हीनहो जिसने किसी निर्गुणी ब्राह्मणको मारा हो तिसके लिये आवश्यक जानो क्योंकि (तिरस्कृतोयदाविप्रोनिर्गुणोम्रियतेयदीत्यादिनासुमन्तुवचन स्यदर्शितत्वात्) ये सुमंतु के वचन पहिले२४३की अधिकोक्ति में लिखेगये तिनको भी देखो–और जो मनुका यह वचनहै (जपित्वाऽन्यतमंवेदंयोजनानांशतंव्रजेत्) कि अन्यतम किसी एक वेद को जपिकर सौ योजन (चारसौकोस) की यात्रा भी करै सो भी यह वही प्रकारहै जो वनमें संहिता जपना कहागया मनुके इस वचन में सौ योजनकी यात्रा अधिकहै सो चलसकने में समर्थहो तिसकेलिये समझना तहाँ वेद

का जप एकही आवृत्ति है अर्थात् जहाँ मात्रा करनी नहीं कही उसमे तीन आवृत्ति पाठ करना कहा ये दोनों बात एकसी बराबर हैं कुछ भेद नहीं॥ अब जो बड़े धनवान् हों तिनके लिये विकल्प नीचे कहेंगे॥ २४९॥

(धनाढ्यानांप्रायश्चित्तान्तरंच)

पात्रेधनंवापर्याप्तंदत्त्वाशुद्धिमवाप्नुयात्। आदातुश्चविशुद्ध्यर्थमिष्टिर्वैश्वानरीतथा २५०

अर्थः–यद्वा पात्रमें ठीक धन देकर शुद्धि को पावै। तथा उस धनका प्रतिग्रह लेने वालेकी विशुद्धि के लिये वैश्वानरी इष्टि करनी चाहिये अर्थात् वैश्वानर देवता है जिसका ऐसा यज्ञकरे॥ २५०॥

२५० अधिकोक्तिः–पात्र ब्राह्मण वह कहाता है जो दान देने योग्य पात्र हो जिसके लक्षण शास्त्रों मे प्रसिद्ध और आचार मर्यादा मे कहिचुके हैं तैसेको धन धरती गऊ आदि उसके जीवन पर्याप्त ठीक ठीक देवै कि जिसते वह अपनी अवस्था भरका निर्वाह विधिपूर्व करसके॥ १॥ जिस पात्रने इस हत्याका प्रतिग्रह अंगीकार करिके लिया हो उसको भी अपने आत्मा की शुद्धि के अर्थ वैश्वानर यज्ञ करना चाहिये सो यह नियम अग्नि होत्रीपात्र का समझना किन्तु जो अनाहिताग्निपात्र होय सो अपने उस देवता का होमकरै जिसकी उपासना रखता हो (यएवाहिताग्ने र्धर्मःसएवौपासनिकस्येतिगृह्यकारवचनात्) क्योंकि गृह्य सूत्रके संग्रहकार ने लिखा है कि जो आहिताग्नि अग्निहोत्री कावर्म है वही उपासनीय देवतावाले का धर्म है बराबर समझो॥ पात्रेधन वा यह विकल्प वाची वा शब्द जो मूल श्लोक में आया तिसके स्वन्यर्थ से यह सूचना है कि इतना धन नहीं तौ सामग्री सहित घरही दान करें=यदाहमनुः=सर्वस्ववावेदविदेब्राह्मणायोपपादयेत् धनवाजीवनायालंगृहवासपरिच्छदम्=अर्थात्–मनु ने तीन कल्प कहे हैं कि यातो अपना सर्वस्व जितना धन घरमें सचितहो सब वेदवेत्ता ब्राह्मण को समर्पण करें या उस ब्राह्मण की जिंदगी भरके अनुमान धनदेवे या निज मकान घरकी सामग्रियोंसे संयुक्त भरापुरा दान करें तब शुद्ध होय=इसमें भी यह विषय व्यवस्था करनी आवश्यकहै कि सुपात्रको धन का देना कहा सो उस विषयमें समुझना जहाँ मारनेवाला निर्गुण और धनवान् हो तथा निर्गुणको माराहो और इसी हत्यारेके यदि पुत्रादिक वश न होंतो जैसा मनुने सर्वस्व दान कहा सोभी उचित है और जो उसके पुत्रादि वश हों तो सामग्री सहित घर देना उचितहै सर्वस्व नहीं पर ब्राह्मणकी आयु भरके योग्य धनदेना यह वधके

उपस्थितहोते भी उचितहै ॥ पराशरस्तु=चातुर्विद्योपपन्नस्तुविधिवद्ब्रह्मघातके समुद्र सेतुगमनंप्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् सेतुबन्धपथेभिक्षांचातुर्वर्ण्यात्समाहरेत् वर्जयित्वा विकर्मस्थान्छत्रोपानद्विवर्जितः अहंदुष्कृतकर्मावैमहापातककारकः गृहद्वारेषुतिष्ठा मि भिक्षार्थीब्रह्मघातकः गोकुलेषुचगोष्ठेषुग्रामेषुनगरेषुच तपोवनेषुतीर्थेषुनदीप्रस्रव णेषुच एतेषुख्यापयन्नेनः पुण्यंगत्वातुसागरम् ब्रह्महाविप्रमुच्येत स्नात्वातस्मिन्महो दधौ ततःपूतोगृहंप्राप्यकृत्वाब्राह्मणभोजनम् दत्वावस्त्रपविरासा पूतात्माप्रविशेद्गृ हम्=गवांवापिशतंदत्वा चातुर्विद्यायदक्षिणाम् एवंशुद्धिमवाप्नोति चातुर्विद्यानुमो दितः=अर्थात्—जहां चारों वेद आदि विद्यासे संपन्न ब्राह्मणही किसी विधि विधान के विज्ञाता ब्राह्मणको घातक करे तहां यह प्रायश्चित्त आदेश किया जाय कि स-मुद्रके पुल तक यात्राकरे और सेतुबन्ध रामेश्वरके मार्गमें चारों वर्णोंके घरोंसे भिक्षा मांगे परन्तु खोटे कर्म करने वालोंसे न मांगे और उनको साथ नलेकर और छत्री जूता छोड़े हुये इस रीतिसे मांगे कि मैं महापातकी कुकर्मा ब्रह्मघाती हूं घरके द्वार खड़ा हूं भिक्षा पानेको और भिक्षा मांगनेके समयसे उपरांत भी जहां तहां गौओंके समूह पास जंगल और गौओंकी रक्षायसके स्थानों पास तथा ग्रामों वा कसबों और बड़े शहरों में होकर जहां निकसनाहो और तपोवन जहां वनमें तपस्वी रहिते हों तिनमें तथा तीर्थके स्थानोंमे और नदीके घाट वा झरना सोता आदि कोईसा आश्रमहो तहां सर्वत्र अपना पाप सुनाते हुये पुनीत सागर समुद्र सेतुबन्धको पहुँचिके उस महोदधि मे स्नान करिके हत्यारा मुक्तिपावै वहांसे पवित्र हुआ अपने घर जाइके ब्राह्मणभो-जन कराइके पवित्र वस्त्र आदि दान देकर शुद्ध हुआ अपने घर मे घुसै=अथवा=यह न होसके तो एकसौ गौवें विधि विधानसे चारवेदके विज्ञाताको दक्षिणा देकर भी शुद्ध होताहै क्योंकि चातुर्विद्य दानपात्र के आशीर्वचनों से शुद्धि प्राप्त होती है—सो यह दोनों कल्प भी उसीके समान समुझने जैसा योगीश्वरके मूलश्लोकमें कहागया कि जो धनवान और विद्यासे हीनहो तो धनदान करै वैसा यहां विद्वान् हत्यारे का चर्चाहै कि यातो समुद्रको यात्रा करे या एकसौ गौऐं दानकरै ॥ १ ॥ जोकि सुमन्तु का यह वचन है कि=ब्रह्महासंवत्सरकृच्छ्रंचरेदधः शायी त्रियवणी कर्मावेद को भैक्षाहारो दिव्य नदीपुलिन सग्रामाश्रम गोष्ठ पर्वत प्रस्रवण तपोवन विहारीस्यात्स्था न वीरासनी संवत्सरे पूर्णे हिरण्यमणि गोधान्य,तिलभूमि सर्पी षि ब्राह्मणेभ्योददत् पूतोभवति—तदपिहतुमूर्खरप्रवनवतोज्ञाति माङ्गव्यापादनेद्रष्टव्य=अर्थात्—सुमन्तु ने जो कहा कि—ब्रह्महत्यारा एकवर्ष भर कृच्छ्रव्रत करै धरती मे सोवै तीनो संध्या मे

अपनी जाति के साथ किये जायँ या छोटी जातों के साथ किये जायँ उनके मध्ये चौथाई आदि कम करिके सबी आदिका नियम इस वचनमें ठीकरहा (चार प्रकार के साहस मनुष्य मारडालना १ प्रबलता से चोरी करना लूटना आदि २ पराई स्त्री के साथ प्रबलता करनी ३ प्रतिलोम गालीदेना आदि कुवचन ४) इन अपराधों में चौथाई आदि कमका नियम नहीं होसक्ता यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ तथैव मूर्द्धाविसिक्त आदि अनुलोम जातों का प्रायश्चित्त उनके दंडके अनुरूप विचारना चाहिये (दंड प्रणयनं कार्यं वर्णा ज्ञात्युत्तरावरैः) यहवचन व्यवहारकांडमें आचुका है इसीसेउनका दण्ड विचार होता है प्रायश्चित्त इस रीतिसे विचारा जाय कि जहां मूर्द्धाविसिक्त ने ब्राह्मणका वध किया हो तो उसको ब्राह्मणसे अधिक और सबीसे न्यून प्रायश्चित्त चाहिये तिससे बारहवर्ष के जगह अठारह वर्ष निश्चितहुये इसी नमूनासेऔरोंकोभी समुझि लेना और स्त्री बालक बूढ़ा रोगी होनेआदिके विचार सबके साथकरने जो पहिलेलिखचुके हैं ॥ इसी मार्गसे प्रतिलोमोत्पन्न जातोंका प्रायश्चित्त बढ़ाकर ऊहा करलेनाचाहिये॥ तथैव आश्रमके निवासियों को अंगिराने विशेषता दर्शाईहै=यथा ह्यंगिराः=गृहस्थोक्तानिपापानिकुर्वंत्याश्रमिणोयदि शौचवच्छोधनंकुर्युरर्वाग्ब्रह्मनिदर्शनात=अर्थात-गृहस्थोंके मध्ये कहे पाप जो ब्रह्मचारीआदि आश्रमीलोगभी करें तो अपने अपने शौचके तुल्य पापोंका शोधन प्रायश्चित्त करें यह ब्रह्मनिदर्शन से पहिलेसमुझना(ब्रह्मके निदर्शनसे अर्थात ब्रह्मज्ञानसे पहिले॰इसबातका यह तात्पर्यहै कि जब तक अपने आश्रम धर्मोंकी साधनासे पूरे सिद्ध न होचुकेहों केवल अभ्यास किया करतेहों तभी तक अपने शौचके अनुसार वेही प्रायश्चित्त करें जो गृहस्थोंके निमित्त कहेगए और आगे कहेजायँगे परन्तु जो विरला कोई ब्रह्मचारी या वानप्रस्थ य यती संन्यासी अपने धर्मकी साधना अति कालसे करते करते योग धारणा आदि पूरी सिद्धिको पहुंचिके ब्रह्मज्ञानमें पूरा और ब्रह्मस्वरूप की तन्मयतामें दृढ़ होगया हो उसके लिये यह गृहस्थोंवाले प्रायश्चित्त नहींहैं क्योंकि प्रथम तो ऐसे महात्मा से महापाप होना भी सम्भव नहींहै तथापि जो कदाचित्काल जगदीश की इच्छासे कोई सा निमित्त आनि परै तब उनका नैमित्तिक प्रायश्चित्त भी उन्हीं के हाथ में हरवक्त रहिता है कि बहुतर प्राणायाम आदि योगोंकी धारणा से विशुद्ध होंगे और अपने आप विशुद्धि करनेपर आरूढहोंगे यद्वा अपने आप उपेक्षा देखिपरनेमें उन्हीं के परिकर वालोंको प्रेरणा उनपर होगी कि जैसे गृहस्थी को गृहस्थी पतित कहिकर त्यागि देताहै अर्थात गृहस्थी मात्रको प्रेरणा उनपर उचित नहीं) इस प्रकार के

विशिष्टोंको छोड़िकर शेष आश्रमियोंकी शौच के तुल्य कहा तिसका यह तात्पर्य है (एतच्छौचंगृहस्थानां द्विगुणंब्रह्मचारिणाम त्रिगुणंतुवनस्थानांयतीनांतुचतुर्गुणं) इस वचन से आचार मर्यादा में कहिचुके हैं कि यह शौच का प्रमाण कहा सो गृहस्थोंका जानना और ब्रह्मचारियों को इससे दूना चाहिये वानप्रस्थों को तिगुना चाहिये यती संन्यासियों को चौगुना—इसी के तुल्य प्रायश्चित्त भी दूना तिगुना चौगुना समुझिलेना ॥ परन्तु ब्रह्मचारीको सोरह वर्षकी अवस्था उपरान्त दूना चाहिये क्योंकि (बालोवाप्यूनषोडशः) सोरहसे कम अवस्थामें बालक कहाता है (प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति) बालक बूढे आदि आधे प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं यह पहले कहिचुके ॥ ० ॥ यह शंका न करनी चाहिये कि यती को बारह वर्ष का चौगुना अरतालीस वर्ष करनेका अवकाश मिलसकना सम्भव नहीं क्योंकि इतनी अवस्था उसकी कहां रही बीचहीमें देह छूटिकर प्रायश्चित्त पूरा न होगा तिससे प्रारम्भ न करना चाहिये—सुनो प्रारम्भ करना चाहिये क्योंकि प्रारम्भ करिके मरजाने पर भी पापका विनाश होजाता है—तथाच हारीतः—प्रायश्चित्तेव्यवसितेकर्तायदिविपद्यते पूतस्तदहरेवासौ इहलोकेपरत्रच—व्यासोप्याह—धर्मार्थंयतमानस्तु नचेच्छक्नोतिमानवः प्राप्नोभवतितत्पुण्य मत्रनैवास्तिसंशयः—अर्थात्—प्रायश्चित्त करने पर निश्चय से उतारू होनेमें जो कर्ता मरजाय तो वह उसी दिन पवित्र होजाता है इसलोक और परलोक में भी यह हारीतनेकहा और—व्यासभी कहिते हैं कि—धर्म के निमित्त यत्न करता हुआ यदि कोई पुरुष न करसके तौभी उसके किये तुल्य पुण्य फल मिलता है इसमें संदेह नहीं ॥ २५० ॥

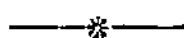
॥ अब निचले परिच्छेद में और भांतिके पातकमें भी इसी ब्रह्महत्या वाला प्रायश्चित्त अति देश किया जायगा ॥

—*—

स्नानकरै अपना कर्म सुनाता रहै भिक्षा भोजन करै दिव्य नदियों के किनारे और नदियों के संगम स्थानपर और जहां तपस्वियोंके आश्रम हैं गौओंका निवास हो पर्वत के आश्रम और झरने और तपोवन हैं सबमें विहार करतारहै स्थानपर टिके तहां आसन का वीर होके रहै इसतरह एकवर्ष पूरा होनेपर सोना चाँदी मणिगऊ अन्न तिल धरती घी ये चीजें ब्राह्मणों को दान करता हुआ पवित्र होजाता है—सो यह नियम भी ऐसे विषयपर समझना जहां मारने वाला मूर्ख और धनवान्‌होऔर अपने वर्ण जाति मात्र की हत्या करीहो॥ और जो वसिष्ठ का यह वचनहै (द्वादशरात्रमब्भक्षोद्वादशरात्रमुपवसेत) कि बारह दिन जलपीके रहै फिर बारह दिनकोरा उपवास करै • सो यह कल्प ऐसे विषय पर आरूढ़है कि जहां मन से ब्राह्मण का मारडालना चाहि के मारने गया फिर आपही कुछ सोचि के विना मारे लौट परा हो जैसा २५२ मूलश्लोक में कहेंगे तहां देखना॥ और जो यदृशिंशत मतका वचन है (यंहतुब्राह्मणंहत्वाशूद्रहत्यात्रतंचरेत चांद्रायणंवाकुर्वीत पराकद्वयमेववा इति तदप्रत्यानेय पुंस्त्वस्यसप्रत्ययवधेद्रष्टव्यं) किनपुंसब्राह्मणको मारि के शूद्रकी हत्यावाला व्रतकरै या चांद्रायण करै या दो पराक साधै— सोयह उस विषय पर विचारना कि जहां मरे ब्राह्मण की नामर्दी निपट असाध्य हो अर्थात पुंसत्व चिकित्सा आदि से न होने योग्य ठहिरै और प्रत्यय सहित वध किया गया हो—इसी विषयपर अप्रत्यय वध होने मध्ये बृहस्पतिका वचन है (अरुणायाःसरस्वत्याःसंगमेलोकविश्रुते शुद्ध्येत्त्रिषवणस्नायीत्रिरात्रोपोषितोद्विजः)अर्थात— अरुणा और सरस्वतीके संगमका स्थल जो लोकमें प्लक्षद्वीप से विख्यात है तिसमें त्रिकाल स्नान करने और तीनरात्रि निराहार व्रतकरनेसेद्विजाती शुद्धहोताहै—इसीप्रकार और भी स्मृतियोंके वचन ढूंढ़िकर जो विषम हों तिनकी व्यवस्था बुद्धिमानोंसे कल्पित करनी चाहिये जो परस्पर समान हों तिनका विकल्प मानना चाहिये॥ ०॥ ध्यान करो कि बारह वर्षकी आदिलेकर धनदान पर्यंत जो प्रायश्चित्त लिखे गये सो सब केवल ब्राह्मण हत्यारे के निमित्त में समझने किन्तु क्षत्री आदिके लिये दूना आदि नियम समझना सो अंगिराके वचनमें देखो=यथाहांगिराः=पर्षद्यावाब्राह्मणानांतुसाराज्ञांद्विगुणामता वैश्यानांत्रिगुणाप्रोक्तापर्षद्वच्चव्रतंस्मृतम=अर्थात—ब्राह्मणोंकीपर्षत सभाका परिमान जितनाहो उससे दूना राजाओंकी सभाका और त्रिगुणा साहूकार वैश्योंकी सभामध्ये कहाहै और पर्षद् के समान सबका व्रत भी होय दूना तिगुना—इसबातों से यह तात्पर्य ठहिरा कि जिस दशा में दो ब्राह्मणों के परस्पर एकमारा

जानेमें दोनोंके गुण लक्षण आदि विचार से जो प्रायश्चित्त ठहिरे वही प्रायश्चित्त उसी गुणवाले क्षत्री को दूना उपदेश किया जाय जिसने उसी गुण वाला ब्राह्मण मारा हो तथा वही प्रायश्चित्त उसी गुणवाले वैश्यको तिगुना उपदेश किया जाय जिसने उसी प्रकारका ब्राह्मण मारा हो और इसी मर्यादासे यहभी नियम निश्चित्त हुआ कि जो जो प्रायश्चित्त ब्राह्मणोंके परस्पर नियतहोचुके वही प्रायश्चित्त उत-नेही परिमाणसे उस दशामें क्षत्री आदिको भी दिये जायँ कि जब उनके अपने वर्ण-मात्रमें परस्पर कोई उसी वर्णका मनुष्य माराजाय (इसका विशेष व्योरा नीचे चतु-र्विंशतिके वचन से भी समझना) और इसी मर्यादासे जहां क्षत्री वैश्य या वैश्यओर शूद्र में ऊंचे नीचे के विरुद्ध से ऊचा मारा जाय तहां भी दूना आदि आदेश करना जैसा ब्राह्मण ओर क्षत्री आदिके मध्ये अभी कहिचुके–यह सब दोष की बड़ाई के अनुसार प्रायश्चित्तों की कल्पना होतीहै जहाँ कहीं दोष की बडाई छोटाई पहिं-चानने में संदेह खडा होय तहाँ दण्डकी बड़ाई से भी दोषकी बड़ाई समझी जातीहै जैसा व्यवहार में कहचुके हैं कि (प्रतिलोमापवादेषु द्विगुणास्त्रिगुणोदमः वर्णानामा नुलोम्येचतस्मादर्धार्धहानितः)अर्थात् प्रतिलोम अपवादोंमें कि जहां नीचावर्ण ऊंचे वर्ण का अपराध करे तहां दूना तिगुना दण्डहै अर्थात् शूद्र जो वैश्यका अपराधी होय तिस पर दूना जो क्षत्री का अपराधी होय तिसपर तिगुना इसी तरह वर्णोंके अनुलोम अपराध में कि जहां ऊँचा वर्ण नीचेका अपराधी होय तहां आधा आधा दण्ड घटजाताहै यह व्यवहार मर्यादा परिपाटीमें देखो ॥ ० ॥ और जो चतुर्विंशति मतका वचन है कि (प्रायश्चित्तयदाम्नात ब्राह्मणस्यमहर्षिभिः पादोनक्षत्रियःकुर्या दर्धंवैश्य समाचरेत् शूद्रःसमाचरेत्पादमशेषेष्वपिपाप्मसुइति तत्प्रतिलोमानुषितचतु-र्विधसाहसव्यतिरिक्तविषय मितिविज्ञानेश्वर.) अर्थात्– चतुर्विंशति मत वालोंने कहाहै कि महर्षियोंने जो प्रायश्चित्त ब्राह्मणको बताया वही प्रायश्चित्त चौथाई कमकरिके क्षत्री करे और वैश्य आधा करे शूद्र चौथाईकरे यह अशेषसभी पापोंमें समुझना•इसपर विज्ञानेश्वर व्यवस्था देते हैं कि यह नियम उन पापों को छोडि के समुझना जो अपराध प्रतिलोम छोटी जातोंने ऊँची जातोंकेसाथ कियेहैं और उनको भीछोड़िके समुझना जो चारभाँति के साहस व्यवहारकांड में लिखे गये क्योंकि जो ऊँची जातोंके साथ किये गये तिनका प्रायश्चित्त ऊपर अङ्गिरा के वचन से दूना तिगुना ठहेर चुका और साहस चाहे किसी के साथ किये जायँ तौभी बड़े अपराध हैं उनका भी दूना तिगुना ठहिराना चाहिये इनसे उपरान्त और सब अशेष पाप जो

अथक्वचिद्ब्रह्मवधादन्यत्रापिब्रह्मवधप्रायश्चित्ता तिदेशप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः त्रिंशः३०॥



इस परिच्छेदमें पूर्वोक्त ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त विरले उनपापों पर भी अतिदेश दिया जायगा जो साक्षात् ब्रह्मवध नहीं है॥

(यागस्थक्षत्रियघातकादिष्वतिदेशः)

यागस्थक्षत्रियविड्घातीचरेद्ब्रह्महणिव्रतम्। गर्भहाचयथावर्णंतथाऽऽत्रेयीनिषूदकः २५१

अर्थः—यज्ञकर्म पर आरूढ क्षत्री या वैश्यको घात करनेवाला ब्रह्महत्या का व्रत करै एवं गर्भका मारनेवाला यथा वर्णके अनुसार तथा (आत्रेयी) रजस्वला आदि स्त्री का वध करनेवाला भी वर्णके अनुसार प्रायश्चित्त करै॥ २५१॥

२५१ अधिकोक्तिः—यहां याग शब्दसे सोमयाग लिया गया है कि सोमयाग की दीक्षा प्रारम्भ होनेसे लेकर समाप्ति पर्यन्त मध्यकाल में जो क्षत्री या उस भांति यज्ञमें लगे हुये वैश्यको मारै सो ब्रह्म हत्यारे भध्ये बारह वर्ष आदि व्रत कहा गया वही करै (ब्रह्महणिपुरुषेयद्व्रतमुक्तंद्वादशवार्षिकादितदेवचरेत्)—यद्यपियाग शब्दसे सब यज्ञ समुझे जातेहैं तथापि यहां सोमयागही मानागयाहै क्योंकि (सवन गतौचराजन्यवैश्यावितिवासिष्ठे सवनत्रयसंपाद्यस्य सोमयागस्यैवनिर्दिष्टत्वात्) वसिष्ठ की स्मृति में सोमयागही का निर्देश इस रीतिसे हुआ है कि सवन में लगे हुये क्षत्री वैश्यको इत्यादि कहिकर तीन सवनसे पूरा होने योग्य सोमयाग दर्शाया है—इसमें भी—बड़े छोटे व्रत बारहवर्ष आदि के जैसे ब्रह्महत्या पर कहेगए तैसे बड़े छोटे आदि यहां भी हन्ताकी जाति शक्ति गुण आदिकी अपेक्षा से विचार कर लेने चाहिये—ऐसेही गर्भका वध करने और आत्रेयीका वध करनेमें भी समुझना—परन्तु—इसविषय पर कोई प्रायश्चित्त वह नहीं आरूढहै जो मरणांतिक अग्निमें जलिजाना आदि कहे गए थे क्योंकि योगीश्वरने मूलश्लोकमें व्रत करना कहागया है इसी कारणसे यह व्यवस्था सिद्ध होतीहै कि जिसने विना इच्छाके वध कियाहो तिसको बारह वर्षका व्रत रहा और जिसने इच्छा से चाहिके वध किया हो तिसको मरणांतिक प्रायश्चित्तके बदले बारहवर्ष का दूना चौबीस वर्ष व्रतही आदेश कियाजाय सोभी

है (अत्रि मुनि के गोत्र की सब स्त्रियों कोभी आत्रेयी कहितेहैं रजस्वला होनेबिना भी उनके मारने का विशेष पाप समझना जैसा रजस्वलाका कहिचुके) यथाह विष्णुः=अत्रिगोत्रांवानारीम=यह बातभी अगिले वचन में स्पष्ट है=यथा=ब्राह्मणगर्भवधे ब्राह्मणयात्रेयीववेचब्रह्महत्याव्रतं (अत्रक्षत्रियगर्भवधे क्षत्रियाऽऽत्रेयीवधेचक्षत्र हत्याव्रतमेवमन्यत्रापि) अर्थात्–ब्राह्मण का गर्भ वध करने में और ब्राह्मणी जो आत्रेयी रजस्वला या साक्षात् अत्रिके कुलकी हो तिसके वध करने में ब्रह्महत्या का व्रत करे (इसमें इसी रीति से यह भी जोड़ि लेना कि क्षत्री का गर्भ वध करने और क्षत्राणी जो आत्रेयी रजस्वला हो तिसके वध करनेमें क्षत्री की हत्या वाला व्रत करै इसी तरह वैश्यआदि मेंभी जोड़ि लेना) यह प्रयोजन यहां नहींहै कि रजस्वला मारी गईहो क्योंकि यद्यपि ऊपर के वर्णनमें आत्रेयी ऋतुस्नाता मात्र प्रतिपादन करीगई तथापि ऐसा मत समझना किंतु इस वार्ता का यह तात्पर्य है कि जितनी अवस्था तक रजो धर्म होता बना रहे उस अवस्था के भीतर जो वध करै तो यह आत्रेयी वध कहावै क्योंकि अनेक संतान होनी संभवथीं अर्थात् जिस स्त्री का मासिकधर्म निपट बंद होगया हो सो आत्रेयी नहींहै उसके बधकरने में सामान्य स्त्री वध कहावै और प्रायश्चित्त भी उपपातकों वाला करना ठहिरै क्योंकि निपट कोई भी संतान होने की आशा नहीं रही यही न्याय दाय भाग के अनुसार ठीक ठीक है• अन्यथा जो केवल उन्हीं तीनि दिवसों में गर्भ होना सम्भव जानि के आत्रेयी ठहिराओगे तब यह अत्यंत प्रवल दूषण खड़ा होगा कि यदि रजस्वला होने से पांच दिन पहिले उसकावध किया जाता तौभी अनेक गर्भ होना संभव थे क्योंकि अभी दश वर्षतक जीवतीरही आती उसमें १२० एकसौ वीस वार रजोधर्म्म होता और अनेक सन्तान होसक्तीं फिर क्योंकर उसके हन्ता को छोटा सा प्रायश्चित्त कराया जाय) इस व्यवस्था की सूक्ष्मता पर दृष्टि देनी चाहिये कि यद्यपि स्त्रियों की हत्या पुरुषोंसे आधी कहिचुके तथापि आत्रेयी वध करने से पुरुषकी बराबर हत्या होती है॥ ० ॥ योगीश्वर के मूलश्लोक में (गर्भहाच) यह चकार जो फालतू रहा तिसके छन्दर्थ से झूंठी गवाही देने वाले आदिभी समझने=यथाहमनुः=उक्त्वाचैवानृतंसाक्ष्ये प्रतिरभ्यगुरुंतथा अपहृत्यचनिक्षेपंकृत्वाचस्त्रीसुहृद्वधं=अर्थात्–जिन मुकद्दमात में असत्य बोलनेसे किसी वर्णके मनुष्यको मौत दण्ड मिलना सम्भवहो ऐसी गवाहीमें असत्य बोलिके और गुरुके साथ क्रोध करिके और ब्राह्मणकी धरोहरि हजम करिके और स्त्री तथा मित्रका वध करिके ब्रह्महत्याका व्रतकरै–इसमें जैसे असत्यकी विशेषता

बहुत बड़ी कही और गुरुसे क्रोध करना भी विशेय है और वरोहरि भी ब्राह्मण की ठहिराई तैसे स्त्रियांभी विशेय लक्षणवाली समझनी क्योंकि प्रायश्चित्त बहुत बड़ा है तिससे आहिताग्नि पुरुष अग्निहोत्रीकी भार्या और पतिव्रत आदि गुणसे संयुक्त जो स्त्री हो और सवनस्था जो यज्ञपर समुद्यत होरहीहो तिसका वध समझो सब स्त्रियों का नहीं (क्योंकि आत्रेयीको अभी ऊपर कहिचुके और उससे उपराल्न अनार्त वा स्त्रियां उपपातकों में गिनतीहैं तिससे इन दोनोंसे उपराल जो विशेय लक्षण वाली हों तिनका वध मनुने दर्शाया है तिसका स्पष्ट व्यौरा आगे अंगिरा और पराशर के वचनों में देखो) यथाहांगिरा:=आहिताग्नेर्द्विजाग्र्यस्यतथापत्नीमनिंदिताम् ब्रह्म हत्याव्रतङ्कुर्यादात्रेयीघ्नस्तथैवच=सवनस्थांस्त्रियहत्वाब्रह्महत्याव्रतंचरेदितिपराशरोपि =अर्थात्–द्विजातियोंमें अग्रगण्य अग्निहोत्री की पत्नी तथा और जो पतिव्रत आदि गुणोंसे अनिंदितहो तिसको और आत्रेयीको मारने वाला ब्रह्महत्या का व्रत करै यह अंगिराने कहा=सवनस्था जो किसी प्रकारके यज्ञ पर उतारुहो ऐसी स्त्रीको मारिके ब्रह्महत्याका व्रतकरै यह पराशरने कहा–इन वचनोंसे यह तात्पर्य ठहिरा कि सवनस्था स्त्री और अग्निहोत्रिणी और पतिव्रता और आत्रेयी इनको मारने वाला ब्रह्म हत्याका प्रायश्चित्त करै यह अतिदेश कहागया इसी से यह बातभी स्पष्ट हुई कि दोसौ छत्तीस २३६ मूलश्लोक में जोस्त्रियों का वध कहाया सो इन उत्तम स्त्रियों से उपरालका समझना=यहांभी=वादी तर्क उठाता है कि (ब्राह्मणोनहंतव्यः) ब्राह्मण न मारना चाहिये यह निषेधका वचन जो नियत है तिसमें कोई ऐसा चिह्न नहीं है जिससे लिंग वचन आदिकी विशेय विवक्षा जानीजाय और ब्राह्मणकी जातिभी स्त्री पुरुष दोनों मिलिके विना विशेयताके होती है• उस निषेध का अति क्रम करने के निमित्त पर प्रायश्चित्त की विधि जो (ब्रह्महाद्वादशाब्दानि) इत्यादि पहिले कहि चुके सो स्त्री पुरुष दोनोंकी जुदी जुदी हत्यापर पहुँचतीहै तौ फिर किसलिये आत्रेयी को मारने वाला यह अतिदेश वचन कहागया–सुनो–इसलिये कहा गया कि ब्राह्मणीमें ब्राह्मणत्व के होते हुये भी जो ब्राह्मणी आत्रेयी नहो तिसके वध होने में महापातकोंका प्रायश्चित्त निकासि देनेके लिये वचन कहागया इसीसे दोसौछत्तीस श्लोकसे उपपातकोंमें उसका पाठ और प्रायश्चित्तभी उपपातकों वाला सूचितहुआ है (और अतिदेश वाले जो अपराध हैं तिन में केवल प्रायश्चित्तही का अतिदेश दिया गयाहै किन्तु पातित्य का अति देश नहीं इससे पतित का त्याग आदि कार्य इसमें नहीं होता इति विज्ञानेश्वराचार्यः ॥ २५१ ॥

अब नीचे यह कहेंगे कि मारनेको जाइके लौटि आवै सोभी व्रतकरै और किसी हत्यामें दूना व्रत करना होगा॥

(अहननेपिकचित्प्रायश्चित्तंहननेतुक्कचिद्द्विगुणं)

चरेद्व्रतमहत्वापिघातर्थंचेत्समागतः। द्विगुणंसवनस्थेतुब्राह्मणेव्रतमादिशेत् २५२

अर्थः—न मारिके भी व्रतकरै जो घातके लिये पास आयाहो। सवनस्थ ब्राह्मण के मारनेमें द्विगुण व्रत आदेश करै=अर्थात्—यथावर्णके अनुसार यह संबन्ध पहिले श्लोक में से चला आताहै कि यदि कोई किसीको शस्त्र लेकर मारने उसके समीप तक गया हो और विना मारे कुछ सोचि के लौटिआवै या उसके न मिलने से घात खाली चलाजाय तो यह हत्यारा होइगा तिससे जिस वर्णके मनुष्य को मारने गया उसी वर्णकी हत्या में जो प्रायश्चित्त का व्रत लिखा है सो इसको करना चाहिये ब्रह्महत्या या क्षत्रहत्या आदि के प्रायश्चित्त करै शेष अधिकोक्तिमें देखो। सवनस्थ अर्थात् सोमयाग में स्थित होते ब्राह्मण को जिसने मारा हो तिसके लिये बारह वर्ष आदि का दूना व्रत बताया जाय॥ २५२॥

२५२ अधिकोक्तिः= सृष्टश्चेद्ब्राह्मणवधे अहत्वा पीति गौतमः=अर्थात्—गौतमने भी कहा है कि जो ब्राह्मण के वध करने में गयाहो फिर चाहे किसी हेतुसे नमारि पावै तौभी वही पाप है जो मारने में होता—अत्रवितर्कः—क्यों जी मारडारने और न मारनेमें भी एकही प्रायश्चित्त तो नहीं ठीक है—यह सत्य कहा इसी लिये औपदेशिकों से आतिदेशिकों की न्यूनता अनुसार उनमें चौथाई कम करिके ब्रह्महत्या आदि के व्रत होते हैं जो बारह वर्ष आदिके कहे गये यह प्रपंच पहिले २३१ दोसोइकतिस की अधिकोक्ति में लिखि चुके तहां देखो (औपदेशिक विषय वे कहाते हैं कि जिनके ऊपर मुख्यतासे उपदेश किया गया हो जैसे ब्रह्महत्याके ऊपर बारह वर्ष आदिके अनेक उपदेश किये गयेहैं और आतिदेशिक विषय वे कहाते हैं जिनके ऊपर मुख्यता से उपदेश नहीं कियागया किसी और का उपदेश लेकर उस पर भी उतार दिया गया सो अतिदेश होताहै उसी अतिदेश के प्रभाव से वह विषय भी आतिदेशिक कहाता है जैसे २५१ के श्लोक वाले विषय पर ब्रह्महत्या का अतिदेश उतार दिया गया तिससे वह विषय आतिदेशिक होइगा यह पूर्वार्ध की अधिकोक्ति पूरी हुई अब आगे उत्तरार्ध की कहेंगे। सवनस्थ के मारेजाने में दूना व्रत कराना कहागया तहां मूलश्लोकमें यद्यपि सवनस्थ ब्राह्मणके साथ कोईविशेषण

ऐसा नहीं है कि जिससे उसका गुणवान् या निर्गुण होना आदि विशेष चिह्न पायाजाय या हंताके विशेषण जाति आदि कुछ समझे जायँ• तथापि दोसौतेंतालिस२४३की अधिकोक्ति और दोसौ सताइस२२७की अधिकोक्तिमें पहिलीकही रीतोंसे यहांभी सवनस्थ ब्राह्मण और उसके हंताकी जाति शक्ति गुण विद्या आदि और बड़े छोटे व्रतों की अपेक्षासे व्यवस्था निर्णय करनी चाहिये क्योंकि मुख्यनिय जो एक स्थलपर कहाजाता है वही सर्वत्र काम आता है•इन बातों का दृष्टान्त जैसे अति बूढ़े या बालकने मारा तो उनको बूढ़ापन और बालपनके हेतुसे चौबीस वर्ष की आधी बारहवर्ष रहिगई इत्यादि=इसी दोसौबावनके श्लोकमें उपदेश और अतिदेश दोनों मवजूदहैं तिनको सोचो कि उत्तरार्द्धमें सवनस्थके मारनेपर जो दूना प्रायश्चित्त बताया सो तो साक्षात् उपदेशहै किसीका अतिदेश इसमें नहीं है तिससे यह पूराही प्रायश्चित्त कराया जायगा केवल मारनेवाले की अवस्था आदि के अनुसार रिआयत होगी और नहीं-और इसी मूलश्लोक पूर्वार्द्धमें जो मारने को पहुंच के न मारिपावे तिसके लिये जो ब्रह्महत्या वाले व्रतका आचरण कहा सो उपदेश नहींहै अर्थात् अतिदेश उतार दियाहै तिससे यद्यपि पूरे बारह वर्षका अतिदेश कहा तो भी पूरा नहीं कराया जाय किन्तु चौथाई कम करिके नौवर्ष का व्रत कराना होगा यही तात्पर्य दोसौ इकतीसकी अधिकोक्ति में दर्शाइ चुके सो सर्वत्र समझते रहिना॥०॥ दूसरी यह व्यवस्था याद रक्खोकि ब्रह्महत्या के समान जोपाप दोसौ अट्ठाइस मूल श्लोकसे गुरुओंका अधिक्षेप आदि कहेगए सो सब आतिदेशकों से भी कुछ हलुके पापहैं तिससे उनमें बारह वर्ष आदि का आधा कम करिके व्रत करायाजाय क्योंकि एक चौथाई तो आतिदेशिकमें कम होचुकी ये उनसे भी हलुके छोटे पातकहैं॥२५२॥

इति ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्त प्रकरणं॥

इस प्रकरण में समस्त दश परिच्छेद हैं इक्कीस से तीसतक तिनमें तेईस तक तीन परिच्छेद परलोक और नरक आदि के स्वरूप मध्ये नियत हैं चौवीसवें परिच्छेद से पांच महापातकियों के लक्षण कहि कर यहां तक ब्रह्महत्या का निपटारा किया गया--अब आगे सुरापान महापाप का प्रायश्चित्त और यथा क्रमसे सभी पापोंके प्रायश्चित्त कहे जायँगे॥

अथ सकाम सुरापान महापातक प्रायश्चित्त विवेको नाम परिच्छेदः एकत्रिंशः ३१

——*——

इस परिच्छेद में उन महापापों के प्रायश्चित्त जाने जायँगे जो निषिद्ध मदिराके इच्छा सहित पीने से होते हैं अर्थात् उत्तम और मध्यम और हुरा इनसे उपरालूसभी मद्यों के॥

(सुरापान प्रायश्चित्तानि)

सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसामग्निसंनिभम् । सुरापोऽन्यतमंपीत्वामरणाच्छुद्धिमृच्छति २५३

अर्थः—मदिरा॰जल॰घृत॰गोमूत्र॰दुग्ध॰अग्निकेसमान तपेहुये इनमें किसी एकही को पीकर सुरा पीनेवाला मरजाने से शुद्ध होताहै=अर्थात्—जिसने सुरापान कियाहो तिसका यही प्रायश्चित्त है कि मदिरा आदि पांच द्रव्यों में से किसी एकही को गरम करि खूब तपाइके पीजावै जिससे हृदय जलि के मरजाय तब शुद्धि उसकी होय॥२५३॥

२५३ अधिकोक्तिः—गोमूत्र के साथ कहिने से घी दूध भी गायके लेने चाहिये तथा मूत्र गऊका हो बैलका नहीं—यह पीना उसको भीगे वस्त्र पहिन के करनाचाहिये=तदाह पैठीनसिः=सुरापआर्द्रवासाश्च अग्निवर्णांसुरांपिवेत्=अर्थात्—सुरापीने वाला पापी भीजे वस्त्र पहिने हुये अग्निके समान खूब तपी हुई सुराको पीवै=प्रचेताने लोहेका पात्रभी कहाहै=यथा=सुरापोऽग्निवर्णां सुरामायसेनपात्रेणावापिवेत्= अर्थात्—सुरा पीनेवाला अग्निके रूपसमान तपाई हुई सुराको लोहेके वासनसे पीवै तब शुद्ध होय=यह प्रायश्चित्त भी उसको हैकि जिसने एकही वार सुरापी हो=तदाहांगिराः=सुरापानंसकृत्कृत्वाअग्निवर्णांसुरांपिवेत्=अर्थात्—एकही वार सुरा पीकर यह प्रायश्चित्त करै कि अग्नि के समान सुरापीवै=औरजो वशिष्ठका यह वचनहै कि (अभ्यासेतुसुरायाअग्निवर्णांसुरांपिवेद्द्विजः) अभ्यास से वारम्बार सुरा के पीने में द्विजाती अग्नि के तुल्य सुरा पीवै सो यह वचन मुख्य सुरा से उपरालू मद्यों के अर्थात् गौड़ी और माध्वी के पीने मध्ये समझना॥ सुरापान का प्रायश्चित्त जो

कहागया सो उस दशापर आरूढ समझना कि जिसने इच्छा सहित सुरा पी हो क्योंकि अगिले वृहस्पति के बचन से यही तात्पर्य है=यथाह वृहस्पतिः=सुरापाने कामकृतेज्वलन्तींतांविनिक्षिपेत् मुखेतयाविनिर्दग्धे मृतः शुद्धिमवाप्नुयात्=अर्थात्— इच्छा से सुरापान करने में जलती हुई सुराकोही मुखमें छोड़े तिससे हृदय जलि जाने से मरिके शुद्ध होय=और जो मनु का वचन है कि (सुरांपीत्वाद्विजोमोहाद॰ ग्निवर्णांसुरांपिवेत्) इसमें जो मोहसे पीकर॰ऐसा कहा सो इसलिये कि शास्त्रार्थके तात्पर्य को न जानिके जिसने पीहो॥०॥ इसमेंयह विचारनाचाहियेकि सुराशब्दजो है सो सभी मद्यमात्रपर आरूढहै या गौडीगुड़की बनी माध्वी महुआकी बनी पैष्टी धान आदि पिसान की बनी केवल इन्हीं तीन मद्यों पर अथवा इनमें भीकेवल पैष्टी पर आरूढ है—तहां—कितने एक विरले ऐसा कहिते हैं कि सुरा शब्द सभी मद्योंका बोध॰ क है इस तर्कसे कि वशिष्ठ का वचन जो ऊपर लिखि चुके तिसमें सुराका अभ्यास जो बार बार का पीना कहा वह गौड़ी १ माध्वी २ पैष्टी ३ तीनों से उपरान्त छोटेम- द्यों परभी प्रयुक्त ठहिरा—तिससे बड़े छोटे सभी मद्य सुरा कहिने से समझे जासक्ते हैं—और यहशंका नकरनी चाहिये किवह प्रयोगहीगौण मध्यमहै क्योंकि सभीमद्यों से मद पैदा होनेकी शक्तिरूपी उपाधिसे सर्वत्र मुख्यताही सिद्ध होनेमें गौणत्व कहिना अन्याय ठहिरता है सो यह न्याय अयुक्तहै ठीकनहीं क्योंकि पुलस्त्यमुनि के वचनों को देखो=यथाह पुलस्त्यः=पानसंद्राक्षमाधूकं खार्जूरंतालमैक्षवम् मधूत्थंसैरमारिष्टंमैरे यंनालिकेरजम् समानानिविजानीयान्मद्यान्येकादशैवतु द्वादशन्तुसुरामद्यंसर्वेषामध मंस्मृतम्=अर्थात्—ये मद्योंके नामहैं कि पानस जो कटहर के दूधसे बनता हो १ द्राक्ष जो दाखसे बने २ माधूक जो महुआसे बने ३ खार्जूर मद्य छुहारे खजूरसे बनता है ४ ताल मद्य जो ताड़ीसे बनता है ५ ऐक्षव जो ईख गन्नेका बनताहै ६ मधूत्थ सहतसे ७ सैर जो सीरासे बने ८ आरिष्ट जो सट्ठा और अनेक फल फूलोंके अरिष्टसे बनता है ९ मैरेय जो सिराहेशकी प्रक्रिया से धात की फूल आदि कई चीजों से बनता है १० नालिकेरज नारिअर के दूधसे बनताहै ११ इन ग्यारह मद्योंको एकसा बराबर जानें कोई इनमें कम दर्जेका नहींहै और बारहवां सुरा मद्यहै जो सबसे अधम ओछा कहा गयाहै इस प्रकारसे पुलस्त्यने सुराको एक प्रकारकी विशेषता निर्देश करी है इसमें भी सुरा शब्दका प्रयोग मद्यमात्र सभीमें गौण पायाजाता है=दूसरे लोग यों कहिते हैं कि=पैष्टी गौडी माध्वी ये तीन भांति मुख्य जो प्रसिद्धहैं इन्हींमें सुराशब्द निरूढ है सर्वत्र नहीं क्योंकि यह तर्क देखो (यद्यप्यनेकत्रसुराशब्द प्रयोगोदृश्यते तथापि

कृत्रानादित्वं इतिसंदेहे•गौडीमाध्वीचपैष्टीचविज्ञेया त्रिविधासुरा• इति मनुवचनात् गुड़ पिष्ट मधु विकारेष्वनादित्वनिर्धारणात् तत्रैवमुख्यत्वंयुक्तं) अर्थात् (सुरा शब्द का प्रयोग यद्यपि अनेक मद्योंपरदिखाई देताहै तथापि जो ऐसा संदेह कियाजाय कि ठीक ठीक अनादित्व किन मद्योंपर मिलताहै तहां यह सोचना चाहिये कि मनु ने गौड़ी पैष्टी माध्वी तीन भाँतिकी सुरा दर्शाई हैं तिससे गुड़ पिसान महुआ इनके बने विकारों में आदित्व प्राचीनता स्वीकार करने से उन्हीं तीनि पर मुख्यता ठीक आतीहै) परन्तु ऐसा होनेसे भी मद उत्पन्न करनेवाली शक्तिकी कल्पना अनेक मद्यों पर करना कुछ दोष नहींहै क्योंकि मदशक्ति की उपाधिका सहारा लेने से मद्य का त्याग करना और कराना बहुत सुगमहै•इसीलिये यह वचन है (यथैवैकातथासर्वानपातव्याद्विजोत्तमैः) कि जैसी एक तैसी सबै द्विजोत्तम लोगों को न पीनी चाहिये यह वचन तीनों सुराका बराबर दोष जताताहै पर गौड़ी माध्वी दोनों को कुछ पैष्टी के बराबर नहीं जताता है•वचनमें द्विजोत्तम शब्द जोहै सो द्विजाती मात्रका उपलक्षण है—यह दूसरोंका मतभी ठीक नहींहै क्योंकि पुलस्त्य का वचन ऊपर लिखचुके उस में सुरा मद्यको सबसे अवम कहिकर गौड़ी माध्वीसे भी जुदाई प्रकट करी है तिससे— तथैव (सुरावैमलमन्नानांपाप्माचमलमुच्यते) यह वचन है कि सुरा निश्चय करिके अन्नोंका मलहै और पाप भी मल कहाताहै•इस वचनसे यह तात्पर्य पाया गया कि सुरा उसीको कहिना चाहिये जो धान आदि अन्नके कीट से बनती हो किन्तु गौड़ी माध्वी जो गुड़ और महुआसे बनतीहैं तिसमें सुरा शब्दकी प्राप्ति इसी हेतुसे नहीं ठहर सक्तीहै कि ये दोनों वस्तु रस रूपहैं कुछ अन्नमें गिनती नहीं बल्कि सौत्रामणी नाम एक यज्ञ वेद विहित है कि जिसमें ब्राह्मणको भी सुरा पीनी कहीहै पर वहां भी अन्न हीके रसमें सुरा शब्द श्रुतियोंने कहाहै•इन सब तर्कोंसे यह निश्चित भया कि पैष्टी जो है सोई मुख्य सुराहै और गौड़ी माध्वी दोनोंमें सुरा शब्द गौण मध्यम है—और यह तर्क जो ऊपर लिखा था कि मनुक्ते वचनसे गौड़ी माध्वी पैष्टी तीनोंमें सुरा शब्द की प्राचीन निर्धारणा स्वीकार करै सोभी ठीक नहींहै जिससे कि यह विषय कुछ शब्दानुशासन की तरह अर्थ संपादन करनेका सम्बन्ध नहीं रखता है केवल प्रयोजन की बातसे सम्बन्ध रखता है इससे प्रायश्चित्तकी बड़ाई पर ध्यान करो कि प्रायश्चित्त बहुत बड़ा कहा गयाहै तिससे गौड़ी और माध्वीमें सुराशब्दका प्रयोग गौण रूपसे समझना•इसरीतिसे नतो अनेकजघेशक्तिकी कल्पनारूपीदोषरहा न उपाधिका आश्रय लेना परा न इसमें द्विजोत्तम शब्दसे द्विजातीमात्र का उपलक्षणठहरा—इसी

लिये यह वचन है कि=सुरावैमलमन्नानांपाप्माचमलमुच्यते तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्चनसुरांपिबेत्=अर्थात्–निश्चय हुआ कि सुरा जो है सो अन्नोंका मलहै और मलहै सो पाप कहाताहै तिससे ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य भी सुराको न पीवैं–इस वचन में केवल पैष्टी सुराका निषेध तीनों वर्णों के लिये किया गया है परन्तु गौड़ी आदि सुराओं और मद्यों का निषेध केवल ब्राह्मण के संबंध पर नियत है क्षत्री वैश्य को नहीं निषेध है•क्योंकि मनुका यह वचन देखो (यक्षरक्षःपिशाचान्नंमद्यंमांसंसुरासवम् तद्ब्राह्मणेननात्तव्यंदेवानामश्नताहविः) अर्थात्–यक्ष राक्षस पिशाच इनका आहार है मद्य मांस सुरा आसव सो यह चीजें ब्राह्मणको न खानी चाहिये जो देवताओं का हवि खानेवाला प्रसिद्धहै–इसमें भी सुरा आदि चीजों का निषेध मनुने केवल ब्राह्मणकी विशेषता पर कियाहै तिससे–और अग्रोक्त वृद्धविष्णु का वचन है कि (माधूकमैक्षवंसैरंतालंखार्जूरपानसे मधूत्थंचैवमाध्वीकं मैरेयंनालिकेरजम् अमेध्यानि दशैतानिमद्यानिब्राह्मणस्यतु) अर्थात्–ये दश मद्य हैं कि माधूक १ ऐक्षव २ सैर ३ ताल ४ खार्जूर ५ पानस ६ मधूत्थ ७ माध्वीक ८ मैरेय ९ नालिकेरज १० ये दश मद्य ब्राह्मणको सदाही अपवित्र हैं–इसमें भी ब्राह्मणकोही प्रतिषेध कियागयाहै–एवं–वृद्धयाज्ञवल्क्यने भी क्षत्री वैश्य दोनोंको दोषका नहोना दर्शाया है=यथा=कामादपिहिराजन्यो वैश्योवापिकथञ्चनमद्यमेवसुरांपीत्वा नदोषंप्रतिपद्यते=अर्थात्–क्षत्री या वैश्य ये किसी प्रकार कभी इच्छासे भी चाहिकर मद्य वा सुरा पीकर दोषी नहीं होतेहैं=अब इस व्यवस्थाके तोड़पर ध्यान धरो कि इसप्रकार उक्त वचनोंमें ब्राह्मण के लिये मद्यमात्रका निषेध ठहिरा तथापि यह मनुका जो वचनहै कि (गौडीमाध्वीचपैष्टीच विज्ञेयात्रिविधासुरा यथैवैकातथासर्वा नपातव्याद्विजोत्तमैः) इसमें जैसी एक तैसी सबैं यह कहिके जो गौड़ी और माध्वी दोनोंका जुदा निर्देश ठहिराया सो उनके दोषकी बड़ाईसे सुरा केही समान दर्शाने के लिये ठहिराया और द्विजोत्तम इस में ब्राह्मणहीको समुझना किन्तु तीनों वर्णोंको नहीं ॥०॥ सुराका निषेध जो ब्राह्मण आदिको ठहिरा सो बिना जनेऊ के लड़कों तथा बिना विवाही कन्याओं को भी होताहै कि लड़का लड़की भी न पीवैं क्योंकि यह वचन है (तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्चनसुरांपिबेत् इतिजातिमात्रवचनेनेननिषेधात्) अर्थात्–ब्राह्मण क्षत्री वैश्य भी सुराको न पीवैं इसमें जातिमात्रको निषेध कियाहै कि ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्य न पीवैं तो उनके लड़का लड़की भी उसी जातिमें शामिल हैं–इसीलिये अग्रोक्त मनु का वचन है कि (सुरांपीत्वाद्विजोमोहा दग्निवर्णांसुरांपिबेत्) इसमें द्विज शब्द

तीनों द्विजातियों पर आवश्यक है कि ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्यभी सुरा पीकर यह प्रायश्चित्त करें क्योंकि जब ऊपरले निमित्तरूपी वचनमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों का नाम लेकर सुरा पीनेका निषेध करचुके तो फिर यहां भी उसके वास्ते दार नैमित्तिक विधिके वचनमें द्विज शब्द तीनों वर्णोंके प्रायश्चित्त पर आरूढ हुआ•जब कि इस रीतिसे दोनों संबंध में जातिमात्र को निषेध पक्का हुआ तब लड़के लड़कियां क्योंकर जातिमात्रसे बाहर समुझे जायँ—इसपर—एक मीमांसाका दृष्टांत है कि (यथा २ऽभ्युदितेष्ट्यांयस्यहविर्निरूप्तंपुरस्ताचन्द्रमा अभ्युदेति इतिनिमित्तवाक्ये हविर्मात्राभ्युदयस्य निमित्तत्वावतो तत्सापेक्षनैमित्तिकवाक्ये ग्रूयमाणमपित्रेधा तन्दुलान्विभजेदिति तन्दुलग्रहणं तन्दुलादिस्वरूपहविर्मात्रोपलक्षणं) अर्थात (जैसे अभ्युदय रूपी यज्ञमें जिसके हविस् यथा विभागोंसे धरागया तिसके आगे पूर्णचन्द्रमा उदय होताहै इस फलके जतानेवाले निमित्तरूपी वाक्यमें सकल हविमात्र चन्द्रमा उदय होनेका निमित्त होता है यह समुझिलेनेमें इसीके संबंधी नैमित्तिक वाक्य में यद्यपि ऐसा कहाजाय और सुनिपरै कि तन्दुलोंको तीनजघे विभागकरो तो यह केवलतन्दुल कहिना भी तन्दुल आदि सभी साकल्य हविमात्र का उपलक्षण होताहै कि तन्दुल तिल जौ घृत शर्करा मेवा आदि मिलेहुये साकल्यको तीन जघे विभागकरनाचाहिये) क्योंकि तन्दुलोंमें सभी चीज शामिलहैं और तन्दुल नाम अनेक चीजोंके संघको भी कहिते हैं तैसे तीनोंवर्ण कहिनेसे उसीजातिमें लड़का लड़कीभी शामिलहैं कुछ जुदा नाम धरनेकी जरूरत नहींथी•परन्तु जातिमात्रके पुरुषोंसे लड़का लड़कियोंमें इतना भेदहै(पादोबालेप्रदातव्यःसर्वपापेष्वयंविधिः) सभी पापों में यह विधिहै कि बालकों को एक चौथाई प्रायश्चित्त देनाचाहिये—इसवचनके तात्पर्य से बालकोंको मरणांतिक प्रायश्चित्त उस दशामेंभी नहीं है कि जब उन्होंने इच्छा से चाहिकर सुरापान कियाहो परंतुमरण के पलटे उस चौथाई को दूना करिके छःवर्षका व्रत करानाचाहिये कि जैसा आगे २५४की अविकोक्तिमें दर्शावेंगे तैसा यहांभी समुझिलेना और दूना कराने मध्ये अंगिराका वचनहै कि=विहितंयदकामानांकामात्तद्द्विगुणंचरेत्= अर्थात—विना इच्छा किये पापवालों को जो कुछ प्रायश्चित्त कहागया हो वही उनको दूना करवाया जाय जिन्होंने इच्छा से पाप किया हो•यही व्यवस्था बूढे या रोगी आदि में जोड़लेनी चाहिये=तथैव (यक्षरक्षःपिशाचानांमद्यं मांसंसुराऽऽसवम तद्ब्राह्मणेननात्तव्यंदेवनामश्नताहविः) इस वचन में मद्य भी ब्राह्मण की जातिमात्र की निषेध है तिससे विनाजनेऊ के बालक सुरा और मद्यभी न पीवें यह व्यवस्था सिद्ध

होचुकी–तथापि थोड़ासा तर्कवाद है कि–कैसे विना जनेऊको दोष बताया (प्रा गुपनयनाद्‌ कामचार वादभक्षाः इति गौतम वचनाद्‌) तथामद्यमूत्रपुरीषाणांभक्षणे नास्तिकश्चनदोषस्त्वापंचमाद्वर्षादूर्ध्वंपित्रोः सुहृद्गुरोरितिकुमारवचनाचदोषाभावा वगतेः) अर्थात्–गौतम का वचन है कि बालक जनेऊ से पहिले चाहे तैसे रहैं फिरैं चाहैसो मुखसे बकैं चाहैसो भक्षण करैं तौ कुछ दोष नहीं है) तथैव (कुमारकावचन है कि मद्य या मूत्रया विष्टा इनके भक्षण करनेमें कोई दोष नहींहै पांचवर्षके भीतर और पांच के उपरांत जो ऐसा करैं तौ उनके पिता माता बड़े भ्राता आदि मित्रजनों तथा गुरुओं को दोष है• तौ यह कैसे कहा कि बालक भी मद्य पीवैं तौ दोष है प्रायश्चित्तभी कराना होगा=इस का समाधान कहिते हैं=सुनो सुरा और मद्य इनके निषेध वाले वचन में जातिमात्र के लिये जो निश्चय होचुका तिससे वह निषेध की प्रवृत्ति रोकी नहीं जा सक्ती है जिससे बालकों वाले नियम स्वीकार किये जायँ– ऐसाही स्मृत्यंतर में यह निषेध का वचन है कि (सुरापाननिषेधस्तुजात्याश्रयइति स्थितिः) सुरा पीने का निषेध जो है सो समस्त जातिमात्र के आश्रयभूत है यही मर्यादा जानो अवस्था भेदका प्रयोजन इसमें नहीं है–इसी हेतुसे(पादोबालेषुदातव्य सर्वपापेष्वयंविधि रितिसर्वपापेषुसुरापानादिषु इतिवचनात्‌ पादएवसुरापानेप्रायश्चित्तं) चौथाई बालकों को देना चाहिये सुरापान आदि सभी पापों में यह विधि जानो इसवचन से चौथाई प्रायश्चित्त सुरा पीने में ठीक रहा• इच्छा सहित पीने में चौथाई का दूना कर्तव्य होगा=तथैव=सुरा से उपरान्त मद्यपीने में भी ज्ञानकर्णमें प्रायश्चित्त कहाहै=यथाह्जातूकर्णः=अनुपेतस्तुयोबालो मद्यमोहात्पिबेद्यदि तस्यकृच्छ्रत्रयं कुर्यान्माताभ्राता तथापिता=अर्थात्–विना जनेऊका बालक जो अज्ञानता से मद्य पीलेवै तिसका पिता या माता या भ्राता तीन कृच्छ्र व्रत करैं–तिससे यह बात सिद्ध हुई कि (चाहे सो भक्षण करैं) इत्यादि गौतम का वचन जो अभी ऊपर लिख चुके सो कुछ विशेष कर सुराके नाम से भी नहींहै न सुरा और मद्यके ऊपर उसका तात्पर्य कुछ पहुँचताहै अर्थात्‌ सुरा और मद्य आदिसे उपरान्त निषिद्ध अन्नादिक जैसे सूखी और बासी भोजन आदि के विषयपर आरूढ है=और कुमार का जो वचन कहा सो केवल इस आशय पर आरूढहै कि जो पाँचवर्षके भीतर अतिशय अज्ञानता में यदि कोई वस्तु मलीन भक्षण करि बैठे तौ अत्यन्त दोष नहीं है पर थोड़ा दोष उसमें भी अवश्य होता है=इसीलिये मनुने यह कहा है कि उपनयन कर्मसे पहिले जो कुछ बालक से दोष हुआहो तिसका प्रायश्चित्त वही उपनयन

दयंतुतस्योक्तंप्रत्यहंकायशोधनम्=अर्थात्—यही व्रत सद्यप्रकार छर्दि किये पीछे और पंचगव्य उसका शरीर शुद्धकरने को रोज रोज पीना कहाहै—परंतु ऐसा तात्पर्य स-मझना अच्छा नहीं है कि यह पंचगव्य का पीना साक्षात् सुराके पीने मध्ये ठीक है परन्तु जिसने उस वासनमें धरा हुआ या डारिके जल पियाहो जिसमें कुछ थोड़ी सुरालगी लिपटी गंधसी आतीहो तिसके लिये छर्दि करना और पंचगव्य पीना शुद्ध आवश्यक नहीं—क्योंकि जलके संसर्ग में होजाने से भी सुरा का सुरापन नाश नहीं होता है तिससे•इसपर यह दृष्टांतहै कि जैसे दहीमिलायेहुये घीमेंसे घी का भावनहीं मिटि जाता है (इसीलिये न्याय जानने वालोंने कहा है कि दही के छींटे लगा घी पीने वालों को घृतपान करै या निश्चय करने किन्तु पृषदाज्यके पीवै या न कहिने चाहिये अर्थात् पृषदाज्य उसी घी का नाम है जिसमें दहीकेबूंद छींटे गयेहैं ॥ ० ॥ और जो आपस्तम्ब का वचन है कि=स्तेयंकृत्वासुरांपीत्वा गुरुदारांचगत्वा ब्रह्म-हत्यांकृत्वा चतुर्थकालंमितभोजनोयोऽभ्युपेयात् सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां विहरन्त्रिभिर्वर्षैः पापंव्यपनुदति=एवंयत्त्वंगिरोवचनं=महापातकसंयुक्तावर्षैःशुद्ध्यंति त्रिभिः=अर्थात्—आपस्तम्बने यह कहा कि चोरी करिके सुरापीके गुरुभार्या गमन करिके ब्राह्मणका वध करिके तीनिवर्षमें पाप नाश होता है जो पापी सवनयज्ञ के अनुकल्पको पहुँचै अर्थात् स्थान और आसनकी बैठक सब छोड़ेहुये तीनि वर्ष तक विचरता हुआ निरन्तर नियमसे चौथेका संध्यासे पहिले थोड़ासा भोजन प्राणधारण मात्र किया करै तो यह एक यज्ञही का अनुकल्प होजाता है• अथवा ऐसा अर्थ लगताहै कि (सःपापात्मापुरुषः वनानुकल्पंअभ्युपेयात्) वह पापी अपना स्थान आ-सन छोड़ हुये वनके अनुकल्पको अर्थात् वनको नहीं परन्तु वनके अनुरूप बेहड़ गो व्रज आदि जंगलोंमें तीनि वर्षतक सायंकाल थोड़ भोजन करिके पापमोचन परमेश्वर का भजन कियाकरै•तौभी उसी अर्थके समान ठहरा क्योंकि पहिले अर्थमें भी सवन यज्ञ करनेका उपदेश नहींहै यह आपस्तंबका कथन है=ऐसाही अंगिराका यहकथन है कि=महापातकोंसे संयुक्त हुये पापीलोग तीनिवर्षोंसे पवित्र होतेहैं—इन दोवचनों में जो तीनि वर्षोंका नियम बांधागया सोभी उसीके अनुरूपहै कि जैसा मूलश्लोक में योगीश्वरने पीना आदि खानाकहा तिससे सिर्फ मूलश्लोककी विवक्षा वाले पापों पर इन वचनोंको जोड़लेना पर सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ जोकि यमने दो प्रायश्चित्त और भी कहेहैं सो देखो=यथा=दृहस्पतिसवनेनेष्ट्वासुरापोब्राह्मणःपुनः समत्वंब्राह्मणैर्गच्छे दित्येषावैदिकीश्रुतिः (तथा) भूमिप्रदानंयःकुर्यात्सुरांपीत्वाद्विजोत्तमः पुनर्नचपिबेत्तां

तुसंस्कृतःसविशुद्ध्यति=अर्थात्-बृहस्पतिके नामसे सवन करिके सुरापीनेवाला ब्राह्मण फिर भी ब्राह्मणोंके साथ बराबरी दर्जेमें आजाताहै यह वेदकी श्रुति से प्रसिद्ध है=तथैव=जो ब्राह्मण सुरा पीकर संस्कार कराइके भूसिदान करै और फिर कभी उसको न पीवै तौ यज्ञोपवीत संस्कारसे संयुक्त होके शुद्ध होजाता है-सो ये दोनों भी उसी पहिलेके साथ मिलिकर एकही विषय समझना कि तीनि वर्ष पीना आदि भक्षण किये पीछे यह सवन या संस्कार और भूसिदान करना होगा (अथवा बृहस्पति सवन करना जो कहा तिसका बारहवर्षोंके साथ बदल भी होसक्ता है कि जैसा पूर्वार्द्ध मूलश्लोकमें योगीश्वरने बारहवर्ष ब्रह्महत्याके व्रतवाले को कहे और उन्हीं बारहवर्ष की योग्यता जिसको ठहिरै और वही अपराधी बहुत धनवानहो तौ अधिक दक्षिणा वाला बृहस्पतिसवन करिके छुटकारा पासकै यह तात्पर्यहै॥ ०॥ इस व्यवस्थामेंभी स्त्रियां और बालकबूढेआदिको तीनवर्षकाआधाडेढवर्ष व्रतदेनाचाहिये और बालक जो विना जनेऊका अनुपनीतहो तिसको चौथाई अर्थात् नौ महीने का व्रतदेना चाहिये इत्यादि पहिली रीतोंसे कल्पना करलेनी चाहिये॥ ०॥ एक जो मनु का यह वचन है कि (कणान्वाभक्षयेदब्दं पिण्याकंवासकृन्निशि सुरापानापनुत्यर्थंवालवासाजटी ध्वजी) छरे कूटे अन्नकी कनकी या पीना एकवर्षभर एकही बार सदा रात्रिमें भक्षण कियाकरै सुरापानका दोष मिटानेके लिये) इसमें जो एकही वर्षकहा सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने विना समझे जलके धोखे मुखमें डालिके सिर्फ तालूतक पंचो हुईको उलटि दीहो=इसपरभी तर्कनाहै कि=द्रवचीजें जो पीनेयोग्य पतलीहोती हैं तिनका घूंटिजाना पान कहाता है और घूंटिजाना कंठ के नीचे उतर जाना प्रसिद्धहै कुछ तालूके संयोग मात्रसे पीना या घूंटिजाना नहीं सिद्धहोताहै फिर कैसे मनुके वचनमें सुरापानापनुत्यर्थं यह कहिके पीजानेके निमित्त प्रायश्चित्त रखाया गया-सुनो-जिस तालू आदिमें पहुँचने विना पीनेकी क्रिया नहीं चलसक्ती है तिससे पानक्रियाके निषेध से तालू आदि में पहुँचना भी निषिद्ध किया है• इसी कारणसे यद्यपि ठेठ पीलेने विना महापातक नहीं सिद्धहोता तथापि पीलेनेके निषेधसे उसका अंगभूत तालू आदिका संयोग भी प्रतिषिद्ध ठहिरा क्योंकि तालू तक पहुँचनेमें भी दोष मौजूदहै उस दोषके होनेसे प्रायश्चित्त भी अवश्य होताहै इसका यह प्रमाण भूत दृष्टांत है कि जैसे (चरेद्व्रतमहत्वापिघातार्थंचेत्समागतः) इस वचन में जैसा कहिचुके हैं कि ब्राह्मणको मारडारना सोचिके गया हो फिर चाहैं न मारिपावै तौ भी प्रायश्चित्त करै जैसा मारडारने के निषेध से उसका अंगभूत जो नि-

व्यंतुतस्योक्तंप्रत्यहंकायशोधनम्=अर्थात्—यही व्रत मद्यपकरै छर्दि किये पीछे और पंचगव्य उसका शरीर शुद्धकरने को रोज रोज पीना कहाहै—परंतु ऐसा तात्पर्य समझना अच्छा नहीं है कि यह पंचगव्य का पीना साक्षात् सुराके पीने मध्ये ठीक है परन्तु जिसने उस बासनमें धरा हुआ या डारिके जल पियाहो जिसमें कुछ थोड़ी सुरालगी लिपटी गंधभी आतीहो तिसके लिये छर्दि करना और पंचगव्य पीना कुछ आवश्यक नहीं—क्योंकि जलके संसर्ग में होजाने से भी सुरा का सुरापन नाश नहीं होता है तिससे इसपर यह दृष्टांतहै कि जैसे दहीमिलायेहुये घीमेंसे घी का भावनहीं मिटि जाता है (इसीलिये न्याय जानने वालोंने कहा है कि दही के छींटे लगा घी पीने वालों को घृतपान करै या निश्चय करने किन्तु पृषदाज्यके पीवै या न कहिने चाहिये अर्थात् पृषदाज्य उसी घी का नाम है जिसमें दहीकेबूंद छींटे गयेहैं ॥ ० ॥ और जो आपस्तम्ब का वचन है कि=स्तेयंकृत्वासुरांपीत्वा गुरुदारान्गत्वा ब्राह्मणहत्यांकृत्वा चतुर्थकालंमिति भोजनोयोऽभ्युपेयात् सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां विहरन्त्रिभिर्वर्षैः पापंव्यपनुदति=एवंयत्त्वंगिरोवचनं=महापातकसंयुक्तावर्षैःशुद्ध्यंति तेत्रिभिः—अर्थात्—आपस्तम्बने यह कहा कि चोरी करिके सुरापीके गुरुभार्या गमन करिके ब्राह्मणका वध करिके तीनिवर्षमें पाप नाश होता है जो पापी सवनयज्ञ के अनुकल्पको पहुँचै अर्थात् स्थान और आसनकी बैठक सब छोड़ेहुये तीनि वर्ष तक विचरता हुआ निरन्तर नियमसे चौथेका संध्यासे पहिले थोड़ासा भोजन प्राणधारण मात्र किया करै तो यह एक यज्ञही का अनुकल्प होजाता है• अथवा ऐसा अर्थ लगताहै कि (सःपापात्मापुरुषः वनानुकल्पंअभ्युपेयात्) वह पापी अपना स्थान आसन छोड़ेहुये वनके अनुकल्पको अर्थात् वनको नहीं परन्तु वनके अनुरूप बेहड़ गोव्रज आदि जंगलोंमें तीनि वर्षतक सायंकाल थोड़ भोजन करिके पापमोचन परमेश्वर का भजन कियाकरै•सोभी उसी अर्थके समान ठहिरा क्योंकि पहिले अर्थमें भी सवन यज्ञ करनेका उपदेश नहींहै यह आपस्तंबका कथन है=ऐसाही अंगिराका यहकथन है कि=महापातकोंसे संयुक्त हुये पापीलोग तीनिवर्षोंसे पवित्र होतेहैं—इन दोवचनों में जो तीनि वर्षोंका नियम बांधागया सोभी उसीके अनुरूपहै कि जैसा मूलश्लोक मे योगीश्वरने पीना आदि खानाकहा तिससे सिर्फ मूलश्लोककी विवक्षा वाले पापों पर इन वचनोंको जोड़िलेना पर सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ जोकि यमने दो प्रायश्चित्त और भी कहेहैं सोदेखो=यथा=बृहस्पतिसवनेनेष्ट्वासुरापोब्राह्मणःपुनः समत्वंब्राह्मणैर्गच्छेदित्येयावैदिकीश्रुतिः (तथा) भूमिप्रदानंयःकुर्यात्सुरांपीत्वाद्विजोत्तमः पुनर्नचपिवेत्तां

तुसंस्कृतःसविशुद्ध्यति=अर्थात्-वृहस्पतिके नामसे सवन करिके सुरापीनेवाला ब्राह्मण फिर भी ब्राह्मणोंके साथ बराबरी दर्जेमें आजाताहै यह वेदकी श्रुति से प्रसिद्ध है= तथैव=जो ब्राह्मण सुरा पीकर संस्कार कराइके भूमिदान करै और फिर कभी उसको न पीवै तौ यज्ञोपवीत संस्कारसे संयुक्त होके शुद्ध होजाता है-सो ये दोनों भी उसी पहिलेके साथ मिलिकर एकही विषय समझना कि तीनि वर्ष पीना आदि भक्षण किये पीछे यह सवन या संस्कार और भूमिदान करना होगा (अथवा वृहस्पति सवन करना जो कहा तिसका बारहवर्षोंके साथ बदल भी होसक्ता है कि जैसा पूर्वोक्त मूलश्लोकमें योगीश्वरने बारहवर्ष ब्रह्महत्याके व्रतवाले को कहे और उन्हीं बारहवर्ष की योग्यता जिसकी ठहिरै और वही अपराधी बहुत धनवानहो तौ अधिक दक्षिणा वाला वृहस्पतिसवन करिके छुटकारा पासकै यह तात्पर्यहै॥ ०॥ इस व्यवस्थामेंभी स्त्रियां और बालक बूढ़ेआदिकी तीनवर्षका आधा डेढ़वर्ष व्रतदेनाचाहिये और बालक जो बिना जनेऊका अनुपनीतहो तिसको चौथाई अर्थात् नौ महीने का व्रतदेना चाहिये इत्यादि पहिली रीतोंसे कल्पना करलेनी चाहिये॥ ०॥ एक जो मनु का यह वचन है कि (कणान्वाभक्षयेदब्दं पिण्याकंवासकृन्निशि सुरापानापनुत्यर्थंवालवासाजटी ध्वजी) छरे-कूटे अन्नकी कनकी या पीना एकवर्षभर एकही बार सदा रात्रिमें भक्षण कियाकरै सुरापानका दोष मिटानेके लिये) इसमें जो एकही वर्षकहा सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने बिना समझे जलके धोखे मुखमें डालिके सिर्फ तालूतक पंचो हुईको उलटि दीहो=इसपरभी तर्कनाहै कि=द्रवचीजें जो पीनेयोग्य पतलीहोती हैं तिनका घूंटिजाना पान कहाता है और घूंटिजाना कंठ के नीचे उतर जाना प्रसिद्धहै कुछ तालूके संयोग मात्रसे पीना या घूंटिजाना नहीं सिद्धहोताहै फिर कैसे मनुके वचनमें सुरापानापनुत्यर्थं यह कहिके पीजानेके निमित्त प्रायश्चित्त ठहराया गया-सुनौ-जिस तालू आदिमें पहुँचने बिना पीनेकी क्रिया नहीं चलसक्ती है तिससे पानक्रियाके निषेध से तालू आदि में पहुँचना भी निषिद्ध किया है• इसी कारणसे यद्यपि ठेठ पीलेने बिना महापातक नहीं सिद्धहोता तथापि पीलेनेके निषेधसे उसका अंगभूत तालू आदिका संयोग भी प्रतिषिद्ध ठहिरा क्योंकि तालू तक पहुँचनेमें भी दोष मौजूदहै उस दोषके होनेसे प्रायश्चित्त भी अवश्य होताहै इसका यह प्रमाण भूत दृष्टांत है कि जैसे (चरेद्व्रतमहत्वापिघातार्थंचेत्समागतः) इस वचन में जैसा कहिचुके हैं कि ब्राह्मणको मारडारना सोचिके गया हो फिर चाहैं न मारिपावै तौ भी प्रायश्चित्त करै जैसा मारडारने के निषेध से उसका अंगभूत जो नि-

संस्कार होता है=यथाह मनुः=गार्भैर्होमैर्जातकर्मचूडामौञ्जीनिबंधनैः बैजिकंगार्भिकं चैनोद्विजानामपमृज्यते=अर्थात्–द्विजातियों के गर्भ में आतेहुये जो गर्भ संस्कार संबंधी होम होते हैं तिनसे और जन्म होनेसे जातकर्म और मुंडनआदि चूडाकर्म और मौंजीवन्धन आदि यज्ञोपवीत कर्म इन कर्मोंके होनेसे पिता के बीज का दोष और माताके गर्भरक्तका दोष और बालपनकी अज्ञानतासे जो कुछ पाप लडके ने किया हो सो भी दूर होजाता यह द्विजाती लोगोंका विधानहै॥ अविकोक्तिफलं–अत्र समस्त अविकोक्तिका निपटारा यह समुझना चाहिये कि पैष्टी सुरा का निषेध तीनों वर्णों को जन्महीसे लेकर निश्चितहुआ और ब्राह्मण को जन्महीसे लेकर सभी मद्यमात्रका निषेधहै परन्तु क्षत्री और वैश्यको पैष्टीसुरा छोडिके गौड़ी आदिका निषेध किसी भी अवस्थामें नहींहै और शूद्रको न सुराका प्रतिषेधहै न किसी मद्यमात्र का निषेध है–इसी के अनुसार प्रायश्चित्तों का विचार करना चाहिये॥ २५३॥ यहाँ तक इच्छा सहित सुरा पीनेके प्रायश्चित्त सब कहे गए अगिले परिच्छेद में इच्छा विना धोखे आदिसे पीने मद्ये कहेंगे॥ २५३॥

अथ अकामतः सुरा मद्यादीनां पाने प्रायश्चित्त विवेको द्वात्रिंशः परिच्छेदः ३२

इसपरिच्छेदमें कामना और इच्छाके विना धोखे आदिसे सुरा पीजाने के प्रायश्चित्त कहे जायँगे॥

(सुरापानेप्रायश्चित्तांतराणि)

वालवासाजटीवापिब्रह्महत्याव्रतं चरेत्। पिण्याकंवाकणान्वापिभक्षयेत्रिसमानिशि॥२५४

अर्थः–यद्वा बालों का वस्त्र धारण किये जटा रखाये ब्रह्महत्या का ही व्रत आचरे। अथवा तीनवर्ष रात्रि में पीना या अन्न के कणों कोही भक्षण करें=अर्थात्–दोषोंमेंपन२५३श्लोकसे कहे प्रायश्चित्त यदि होने संभव नहीं तो गऊ बकरी आदि के ऊन से बुना कंबल ओढ़ि के जटा रखाकर इस विशेष चिह्न के साथ पूर्वोक्तब्रह्म-

हत्या वाला व्रत बारह वर्षका करै ॥ † ॥ अथवा तीन वर्ष तक तिलों की खलि पीना तिसके पिराडवना के रात्रि में खाया करै दिन में निराहार व्रत किया करै यद्वा चावलों की कनकी या समा आदि सुन्यन्न को रात्रि में चबाकर तीनि वर्षे काटै ॥ २५४ ॥

२५४ अधिकोक्तिः—ऊन वस्त्र के उपलक्षण में चीर और वक्कल भोजपत्र आदि भी समझने क्योंकि प्रचेता का वचनहै=यथा=सुरापगुरुतल्पगौ चीर वल्कल वाससौ ब्रह्महत्याव्रतंचरेयाताम्=अर्थात्—सुरापीनेवाला और गुरु भार्या गामी ये दोनों चीर वस्त्रयावक्कल देह में लपेटे हुये ब्रह्महत्या वाला व्रत बारह वर्षकरैं(चीरफटे पुराने वस्त्रों केचीथड़े कहातेहैं) जटा रखाना कहा तिससे बाल मुडाने का निषेध पायागया=ब्रह्म हत्या का व्रत करना कहा तिसके साथ वालों का वस्त्र आदि जो अधिक दर्शाया तिसका यह तात्पर्य है कि ब्रह्महत्या में खोपडी की ध्वजा बनानी जो कहिचुके तिसका वर्जित करना इसमें सिद्ध हुआ=यह प्रायश्चित्त भी उसके लिये आवश्यक है जिसने सुरा मद्यकी इच्छा विना जल के धोखे पीलिया हो क्योंकि (इयंविशुद्धि-रुदिता प्रमाप्याकामतोद्विजं) ब्रह्महत्या के स्थलपर इस नियम से बारह वर्ष कहे गयेथे कि जिसने विना इच्छाके ब्राह्मण मारा हो उन्हीं बारह वर्षों का अतिदेश यहां उतारा गया तौ यहां भी वही उपाधि लगी रही कि जिसने इच्छा विना मद्य पियाहो=यहां यद्यपिव्रतका अतिदेश उतारागया तिससे दोसौबावन२५२अधिको-क्ति के प्रारंभ में चेताई हुई दोसौ इकतिस २३१ की अधिकोक्ति वाले नियम से चौथाई कसकरिके प्रायश्चित्त ठहरता•परंतु सुरापान महा पातकों में गिनती हो-चुका है तिससे अतिदेश के होनेपर भी पौना नहीं किंतु पूराही बारह वर्षका व्रतक-राया जाय• इसपर वृद्ध हारीत का यह वचन भी प्रमाण है कि (द्वादशभिर्वर्षैर्महा पातकिनःपूयंते)सबतरह के महापातकी बारह वर्षों से शुद्ध होतेहैं तिससे यह उपदेश ही रहा अतिदेश नहीं ठहिरा जो पौना किया जाता ॥ † ॥ तीनि वर्षवाले प्रायश्चि-त्तमें जो पीना या कनकी चावनी कही सो रात्रि में एकहीबारका नियमहै बारंबार नखाय यही बात अगिले वचन में स्पष्ट है=यथामनुः=कणान्वाभक्षयेदब्दंपिण्याकं वासकृन्निशि=अर्थात्—रात्रि में एकहीबार वर्षमात्र भर पीना या तंडुल के किनके भ-क्षण करै—यह पीना आदि उसका भोजन कहा गया है तिससे और कोई वस्तु न भोजन करै• यह प्रायश्चित्तभी उसीके निमित्त में समझना जिसने जलके धोखे सुरा पान किया हो•सो यह साधना भी तब करै कि पहिले उलटी रद करिके हृदय शुद्ध करचुकै क्योंकि व्यासका यह वचन है कि=एतदेवव्रतंकुर्यान्मद्यपप्रच्छर्दनेकृते पंचरा-

न्यंतुतस्योक्तंप्रत्यहंकायशोधनम्=अर्थात्–यही व्रत मद्यपकरै छर्दि किये पीछे और पंचगव्य उसका शरीर शुद्धकरने को रोज रोज पीना कहाहै–परंतु ऐसा तात्पर्य समझना अच्छा नहीं है कि यह पंचगव्य का पीना साक्षात् सुराके पीने मध्ये ठीक है परन्तु जिसने उस वासन मे धरा हुआ या डारिके जल पियाहो जिसमें कुछ थोड़ी सुरालगी लिपटी गंधभी आतीहो तिसके लिये छर्दि करना और पंचगव्य पीना कुछ आवश्यक नहीं–क्योंकि जलके संसर्ग मे होजाने से भी सुरा का सुरापन नाश नहीं होता है तिससे•इसपर यह दृष्टांतहै कि जैसे दहीमिलायेहुये घीमेंसे घी का भावनहीं मिटि जाता है (इसीलिये न्याय जानने वालोंने कहा है कि दही के छींटे लगा घी पीने वालों को घृतपान करै या निश्चय करने किन्तु पृषदाज्यके पीवै या न कहिने चाहिये अर्थात् पृषदाज्य उसी घी का नाम है जिसमें दहीकेबूंद छींटे गयेहैं ॥ ० ॥ और जो आपस्तम्ब का वचन है कि=स्तेयंकृत्वासुरांपीत्वा गुरुदारांचगत्वा ब्रह्महत्यांकृत्वा चतुर्थकालांमितभोजनोयोभ्युपेयात् सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां विहरन्त्रिभिर्वर्षैः पापंनयपनुदति=सवंयस्त्वंगिरोवसनं=महापातकसंयुक्तावर्षैःशुद्ध्यंति तेत्रिभिः=अर्थात्–आपस्तम्बने यह कहा कि चोरी करिके सुरापीके गुरुभार्या गमन करिके ब्राह्मणका वध करिके तीनिवर्षमें पाप नाश होता है जो पापी सवनयज्ञ के अनुकल्पको पहुँचै अर्थात् स्थान और आसनकी बैठक सब छोड़ेहुये तीनि वर्ष तक विचरता हुआ निरन्तर नियमसे चौथेका संध्यासे पहिले थोड़ासा भोजन प्राणधारणा मात्र किया करै तो यह सब यज्ञही का अनुकल्प होजाता है• अथवा ऐसा अर्थ लगताहै कि (सःपापात्मापुरुषः वनानुकल्पंअभ्युपेयात्) वह पापी अपना स्थान आसन छोड़हुये वनके अनुकल्पको अर्थात् वनको नहीं परन्तु वनके अनुरूप बेहड़ गोव्रज आदि जंगलोंमें तीनि वर्षतक सायंकाल थोड़ भोजन करिके पापमोचन परमेश्वर का भजन कियाकरै•सोभी उसी अर्थके समान ठहिरा क्योंकि पहिले अर्थमें भी सवन यज्ञ करनेका उपदेश नहींहै यह आपस्तंबका कथन है=ऐसाही अंगिराका यहकथन है कि=महापातकोंसे संयुक्त हुये पापीलोग तीनिवर्षोंसे पवित्र होतेहैं–इन दोवचनों मे जो तीनि वर्षोंका नियम बांधागया सोभी उसीके अनुरूपहै कि जैसा मूलश्लोक में योगीश्वरने पीना आदि खानाकहा तिससे सिर्फ मूलश्लोककी विवक्षा वाले पापों पर इन वचनोंको जोड़िलेना पर सवन नहीं ॥ ० ॥जोकि यमने दो प्रायश्चित्त और भी कहेहैं सोदेखो–यथा=बृहस्पतिसवनेनेष्ट्वासुरापोब्राह्मणः पुनः समत्वंब्राह्मणैर्गच्छेदित्येयावैदिकीश्रुतिः (तथा) भूमिप्रदानंयःकुर्यात्सुरांपीत्वाद्विजोत्तमः पुनर्नचपिवेत्तां

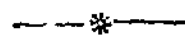
तुसंस्कृतःसर्वविशुद्ध्यति=अर्थात्–बृहस्पतिके नामसे सवन करिके सुरापीनेवाला ब्राह्मण फिर भी ब्राह्मणोंके साथ बराबरी दर्जेमें आजाताहै यह वेदकी श्रुति से प्रसिद्ध है=तथैव=जो ब्राह्मण सुरा पीकर संस्कार कराइके भूमिदान करै और फिर कभी उसको न पीवे तो यज्ञोपवीत संस्कारसे संयुक्त होके शुद्ध होजाता है–सो ये दोनों भी उसी पहिलेके साथ मिलकर एकही विषय समझना कि तीनि वर्ष पीना आदि भक्षण किये पीछे यह सवन या संस्कार और भूमिदान करना होगा (अथवा बृहस्पति सवन करना जो कहा तिसका बारहवर्षोंके साथ बदल भी होसक्ता है कि जैसा पूर्वाद्धं मूलश्लोकमें योगीश्वरने बारहवर्ष ब्रह्महत्याके व्रतवाले को कहे और उन्हीं बारहवर्ष की योग्यता जिसको ठहिरे और वही अपराधी बहुत धनवानहो तो अधिक दक्षिणा वाला बृहस्पतिसवन करिके छुटकारा पासके यह तात्पर्यहै॥ ० ॥ इस व्यवस्थामेंभी स्त्रियां और बालक बूढेआदिको तीनवर्षकाआधाडेढवर्ष व्रतदेनाचाहिये और बालक जो बिना जनेऊका अनुपनीतहो तिसको चौथाई अर्थात् नौ महीने का व्रतदेनाचाहिये इत्यादि पहिली रीतीसे कल्पना करलेनी चाहिये॥ ० ॥ एक जो मनु का यह वचन है कि (कणान्वाभक्षयेदब्दं पिण्याकंवासकृन्निशि सुरापानापनुत्यर्थंवालवासाजटी ध्वजी) कूटे कूटे अन्नकी कनकी या पीना एकवर्षभर एकही बार सदा रात्रिमें भक्षण कियाकरै सुरापानका दोष मिटानेके लिये) इसमें जो एकही वर्षकहा सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने बिना समझे जलके धोखे मुखमें डालिके सिर्फ तालुतक पहुंची हुईको उलटि दीहो=इसपरभी तर्कनाहै कि=द्रवचीजें जो पीनेयोग्य पतलीहोती हैं तिनका घूंटिजाना पान कहाता है और घूंटिजाना कंठ के नीचे उतर जाना प्रसिद्धहै कुछ तालूके संयोग मात्रसे पीना या घूंटिजाना नहीं सिद्धहोताहै फिर कैसे मनुके वचनमें सुरापानापनुत्यर्थं यह कहिके पीजानेके निमित्त प्रायश्चित्त रखाया गया–सुनो–जिस तालू आदिमें पहुँचने बिना पीनेकी क्रिया नहीं चलसक्ती है तिससे पानक्रियाके निषेध से तालू आदि में पहुँचना भी निषिद्ध किया है• इसी कारणसे यद्यपि देह पीलेने बिना महापातक नहीं सिद्धहोता तथापि पीलेनेके निषेधसे उसका अंगभूत तालू आदिका संयोग भी प्रतिषिद्ध ठहिरा क्योंकि तालू तक पहुँचनेमें भी दोष मौजूदहै उस दोषके होनेसे प्रायश्चित्त भी अवश्य होताहै इसका यह प्रमाण भूत दृष्टांत है कि जैसे (चरेद्व्रतमहत्वापिघातार्थंचेत्समागतः) इस वचन में जैसा कहिचुके हैं कि ब्राह्मणको मारडारना सोचिके गया हो फिर चाहै न मारिपावै तो भी प्रायश्चित्त करै जैसा मारडारने के निषेध से उसका अंगभूत जो नि-

प्रचय करिके पहुँचना आदि तिसका भी निषेध होनेसे प्रायश्चित्त कहा गया तैसा पीजानेके निषेध से तालूतक पहुँचाना निषिद्ध हुआ॥ ० ॥ एक बौधायनका वचन है कि=त्रैमासिक ममत्या सुरापाने कृच्छ्राब्दपादंचरित्वापुनरुपनयनमिति=दूसरा यमका वचन है कि=सुरांपीत्वाद्विजंहत्वारुक्मंहृत्वाद्विजन्मनः संयोगंपतितैर्गत्वा द्विजश्चान्द्रायणंचरेत=तीसरा वृहस्पतिका वचन है कि=गौड़ीमाध्वींसुरांपैष्टींपीत्वा विप्रःसमाचरेत् तप्तकृच्छ्रं पराकंचचांद्रायणमनुक्रमात् (तदित्वितयमप्यनन्यौषधसाध्य व्याध्युपशमार्थपानेवेदितव्यं प्रायश्चित्तस्याल्पत्वात्=अर्थात्—विना जाने सुरापान में एक वर्ष के कृच्छ्र व्रतकी चौथाई तीन महीने करिके पीछे उपनयन संस्कार करे यह बौधायन का कथन है=और यमस्मृति का यह वचन है कि=सुरा पीकर ब्राह्मण को मारिके ब्राह्मण का सोना चुराय के पतितों के साथ संयोग संसर्ग में जाइके ब्राह्मण चांद्रायण व्रतकरे=और वृहस्पति का यह कथनहै कि=गौड़ी १ माध्वी २ पैष्टी सुरा ३ को पीकर ब्राह्मण यथा क्रम से तप्तकृच्छ्र १ पराक २ चांद्रायण ३ इनको करै प्रत्येक पर एकएक समझ लेना (सो यह बौधायन आदि के तीन वचन वाले प्रायश्चित्तों को उस रोगी के निमित्त में समझना जिसका रोग सुरा के सिवाय किसी औषध से न जाता दीखै और सुरा पीनेसे साध्य जानिके वैद्यने पिलाई हो चाहें विना जाने या कहिकर पिलाईहो क्योंकि इनवचनोंमें प्रायश्चित्त अतिछोटे कहेगये हैं तिससे॥ ० ॥ जब कहीं सुराका मिला हुआ सूखेही रस का अन्न कोई भक्षण करै विनाजाने तिसका फिर उपनयन कर्म यज्ञोपवीत होना चाहिये=यदाह मनुः=अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रंसुरासंसृष्टमेवच पुनःसंस्कारमर्हन्तित्रयोवर्णाद्विजातयः= अर्थात्—विनाजाने विष्ठा या मूत्र मुहमें जाय या सुरा से संसृष्ट कोई सूखो वस्तु जैसे सुरा के सूखेपात्र में धरीगई हो इत्यादि तिसको मुह में धरिके तीनों द्विजाती लोग फिर संस्कार होने के योग्य हैं॥ ० ॥ जबकोई सूखे सुराके वासन में धरा हुआजल पीलेवे तब शातातप का कहा प्रायश्चित्त करे=यदाह शातातपः=सुराभांडोदकपाने छर्दनंघृत प्राशनमहोरात्रोपवासश्च=अर्थात्—सुरा के पात्रमें धरा जल पीनेमें छर्दि उलटी करै घी चाटै और एक दिन राति का उपवास भी करै=इसी मध्ये बौधायन का जो वचन है कि=सुरापानस्ययोभांडेष्वपःपर्युषिताःपिबेत् शंखपुष्पीविपक्वंतुक्षीरंस तुपिबेत्त्र्यहम=अर्थात्—सुरापीने के पात्र में धरा हुआ जल अनेक दिनका जो कोई पीलेवे सो शंखपुष्पी (शंखाहूली) में खूब औटे हुये दूध को तीन दिन पीवे—सो यह अधिक विधान इसी हेतु से जानो कि अनेक दिनका धराजल पीने में शातातप

का कहा वमन घी उपवासये तीनों पहिले करिके पीछे दूधभी तीनदिन पीवै=इसी जल को विना चाहे जिसने कई वार धोखा से पिया हो तिसके लिये मनु ने पांच दिनका प्रायश्चित्त कहा है=यथा=अप:सुराभाजनस्थामद्यभांडस्थितास्तथा पंचरात्रं पिबेत्पीत्वा शंखपुष्पीशृतंपयः=अर्थात्–सुराके पात्रमें धरेहुये तथा मद्यके पात्रोंमें धरे जल पीकर पांचदिनतक शंखपुष्पीका औटाया दूधपीवै तब शुद्धहोय ये पांचदिनभी शातातप की कही विधि करनेसे उपराल् करनेहैंगे=जो कि विष्णुने सातदिन कहे हैं कि–अप:सुराभाजनस्थाः पीत्वासप्तरात्रंशंखपुष्पी शृतंपयःपिबेत्=अर्थात्–सुरा के भाजनमेंधरे हुये जलपीकरशंखपुष्पी मिलाकर औटा दूध सातदिन पीवै॰सो यह सात दिन उसके लिये कि जिसने जानिबूझि के पिआहो और शातातपकी कही विधि करिके पीछेउपरालूदूध पीवै=और जिसने जानिबूझिके अनेकवार पिआहो तिसके लियेदृहद्यमकावचनहै=यथाहदृहद्यमः=सुराभांडस्थितंतोयं यदिकश्चित्पिबेद्विजः सद्वादशाहंक्षीरेणापिबेद्ब्राह्मींसुवर्चलाम्=अर्थात्–सुराके भाडमेंधरेजलको यदि कोई द्विजाती पीलेवै सो वारह दिन तक दूधमें औटी हुई ब्राह्मी बह्मनेटी सुवर्चला औषधी जो वही शंखपुष्पीहै तिसको पीवै यह भी शातातपकी विधिसे उपराल् करनाहोगा ॥ ० ॥ सुरा पिये हुयेके मुखकी दुर्गंधि सूंघने मध्ये मनुका वचन है=यथा=ब्राह्मणस्यसुरापस्य गंधमाघ्रायसोमपः प्राणानप्सुत्रिरायम्य घृतंप्राश्यविशुध्यति=अर्थात्–जहां कोई सोमप सोमयज्ञमें सोमपीने पीछे किसी सुरापियेहुये ब्राह्मण के मुख की गंधि सूंघे सो जलमें खड़ा होके तीनवार प्राणायाम करिके और घी चाटिके विशुद्ध होताहै (इसमें शातातपकी विधिसे कुछ संबंध नहीं) यह नियम केवल सोम यज्ञ करनेवालेका उस दशामें समझना कि जब विना जाने धोखामें गंध सूंघी हो किन्तु जानि बूझिके सूंघनेमें यही उसको दूना कर्तव्य होगा–इसीके अनुसार जो सोमयाजी या सोमपीनेवाला न हो तिसने गंधि सूंघीहो उसके लिये कल्पना कर लेनी चाहिये इसरीतिसे कि (घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः) इस वचन से सुरा और मद्यकी वास का सूंघना तथा न सूंघने योग चीजोंका सूंघनाभी जाति भ्रंशकर पापोमें गिनती होचुकाहै तिस से इसमें जाति भ्रंशकर पापोंका प्रायश्चित्त देनाचाहिये जो मनुने कहा है=यदाह मनुः=जातिभ्रंशकरंकर्म कृत्वाऽन्यतमसिच्छया चरेत्सांतपनंकृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया=अर्थात्–जातिभ्रंशकर जो जो कर्म पहिले कहिचुके उनमें से किसी एकही कर्मको जानि बूझिके कियाहो तो कृच्छ्रसांतपन व्रतकरै जिसने विनाजाने अनिच्छा से कियाहो सो प्राजापत्य व्रतकरै ॥ २५४ यहां तक मुख्य सुरापान के प्रायश्चित्त

कहेगए अब अगिले परिच्छेदमें सुरासे उपराल् मद्योंके पीनेमध्ये कहेंगे ॥ २५४ ॥

अथसुरावर्जितमद्यानां पानविषये प्रायश्चित्तांतर प्रदर्श कोऽयंपरिच्छेदः त्रयस्त्रिंशः ३३ ॥



इस परिच्छेदमें उस भाँतिके मद्यपान मध्ये प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो मुख्य सुरासे उपराल् मद्य होतेहैं ॥ मद्य उनका नामहै जिनमें सुरा के समान मद नशा होताहो-और मद्यसे उपराल् जो अभक्ष्य वस्तू होती हैं तिनके प्रायश्चित्त का चर्चा दोसौ छप्पन की अधिकोक्ति मे ॥

(सुरेतरमद्यपानप्रायश्चित्तं)

अज्ञानात्सुरांपीत्वारेतोविण्मूत्रमेवच । पुनःसंस्कारमर्हंतित्रयोवर्णाद्विजातयः २५५

अर्थ:-अज्ञानतासे जलके धोखे जो कोई मद्यरूपी सुरापीवै या पुरुष का वीर्य या मूत्रको मुखमें जानेदे सो तीनोंवर्णों के द्विजाती लोग पुनः संस्कार उपनयन होने के योग्य होते हैं ॥ २५५ ॥

२५५ अधिकोक्तिः-मिताक्षराकार इसपर व्यवस्था देतेहैं कि तप्तकृच्छ्रका प्रायश्चित्त करनेके बाद अनन्तर पुनः संस्कार यज्ञोपवीत होनाचाहिये परन्तु तीनोंवर्णों को यह संस्कार वीर्य और मूत्रहीके पीनेमें समझना किन्तु मद्यपान मध्ये केवल ब्राह्मण का पुनः संस्कार होनाचाहिये क्योंकि क्षत्री और वैश्यको मद्यपीने की अनुज्ञा सिद्ध होचुकीहै २५४ की अधिकोक्तिमें देखो तिससे इन दोनोंको केवल तप्तकृच्छ्र करना होगा-और यहां जो मूलश्लोकमे सुराशब्द आया तिससे मद्य समझना मुख्य सुरा नहीं क्योंकि प्रायश्चित्त बहुत छोटाहै तिससे और इससेभी कि अज्ञानतासे मुख्य सुरा पीजानेपर चान्द्रवर्य का प्रायश्चित्त पहिली अधिकोक्ति में कहिचुके हैं-इसी हेतुसे गौतमने इस विषयपर मद्य शब्दहीका वर्ताव कियाहै कि जिससे संदेह न उठै= यथाह गौतमः=अमत्यामद्यपानेपयोघृतमुदकंवायुं प्रतित्र्यहतप्तानि पिबेत्सतप्तकृच्छ्रः ततोऽस्यसंस्कारो मूत्रपुरीषकुणपरेतसांप्राशनेच=अर्थात्-विना जाने मद्य पान करने में तीन तीन दिन ये चीजें गरम करि करि पीवै कि पहिले तीन दिन दूध फिर तीन दिन घृत फिर तीनदिन जलही गरम पीवै फिर तीनदिन केवल वायु जो सूर्यके आताप

से स्वतः तप्त हुईहो तिसे पीके रहै सो यह तप्त कृच्छ्र नाम का प्रायश्चित्त कहाता है यह करने पीछे इसका उपनयन संस्कार भी कियाजाय तब शुद्ध होताहै और यही प्रायश्चित्त उपनयन सहित उनकोभी कराना कि जिसने मूत्र या विष्ठा या पीवराधि वगैरे कोई सड़ाईंधि या पुरुषका वीज भक्षण कियाहो—इसी पर और भी वचनांतर है कि (तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलान् प्रतित्र्यहंपिवेदुष्णानसकृत्स्नायीस माहितः) अर्थात्—ब्राह्मण जो तप्तकृच्छ्र करना चाहै सो जल और दूध और घी और हवा इन प्रत्येकको तीन तीन दिन गरम करिके पीवै तबतक एकही बार स्नान किया करै=पराशरने इन चीजोंका परिमान विशेषभी कहा है=यथा=षट्पलंतुपिवेदंभस्त्रि पलंतुपयःपिवेत् पलमेकंपिवेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते=अर्थात्—तप्तकृच्छ्रव्रत उसका नामहै जो छेपलकी तौलसे जलपीवै तीनिपल दूधपीवै एकपल घी पीवै आगे तीनि दिन केवल वायुभक्षण कहिचुके हैं=और जो मनुका यह वचनहै कि (अज्ञानाद्वारु णींपीत्वा संस्कारेणविशुद्ध्यति) विना जाने वारुणी मदिरा पीकर संस्कार होने से विशुद्ध होताहै) सो इसमें भी वही तात्पर्यहै कि पहिले तप्तकृच्छ्रकी साधनाकरिके तबसंस्कार कियाजाय क्योंकि गौतमके वचनसे मुताबिक होना चाहिये (पुनःसंस्कार द्विवारा जनेऊ करना कहाताहै) सो यह आश्वलायन आदि कर्मकांडियों के बांधे क्रमसे करना चाहिये कि जैसा (अथोपेतपूर्वस्यकृताकृतंकेशवपनं मेधाजननंचानिरु क्तंपरिदानं कालश्चतत्सवितुर्वृणीमहे इतिसाविन्रीम) प्रथम वेदीके पास बैठारे हुये का मुंडन कियाजाय चाहैं बाल बड़े हों या नहीं दोनों दशामें रखे और विना रखेबाल सर्वथा कृताकृत पवन कियाजाय फिर मेधाजनन कर्म कियाजाय जिससे उत्तमबुद्धि उत्पन्न होय फिर अनिरुक्त कर्म कियाजाय फिर परिदान कर्म होय फिर कालकर्म तत्सवितुः इत्यादि॥ ०॥ जिसने जानि बूझिके मद्यपान कियाहो तिसको वसिष्ठोक्त विधिसे प्रायश्चित्त देना चाहिये=यथाहवसिष्ठः=मत्यामद्यपानेत्वसुरायाःसुरायाश्चा ज्ञानेकृच्छ्रातिकृच्छ्रौघृतप्राशनं पुनःसंस्कारश्च=अर्थात्—सुरा के विना उपरान्त मद्य जानि बूझिपीने में कृच्छ्रनामक व्रतकरै और साक्षात् सुराका अज्ञानतासे पीनेमें भी अतिकृच्छ्र व्रतकरै और दोनोंके व्रतकिये पीछे घी चाटै और दुबारा संस्कारकरावै= अथवा (असुरामद्यपायीचान्द्रायणंचरे दितिशंखोक्तविकल्पं) सुरा विहीन मद्य का पीनेवाला चान्द्रायण व्रतकरै यह शंखमुनिका कहा विकल्प भी कियाजासक्ता है (यहां जिन व्रतोंके नामही केवल कहेगए तिन सबके विधान आगे आवैंगे तहां ब्यौरा समझिलेना क्योंकि चान्द्रायण व्रत एकही नामहै उसके चारिभेद होतेहैं एवं

प्रायश्च बारहदिनके नियम साथ कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र ये दोनों जुदेव्रतभीहोतेहैं,तथा कृच्छ्रातिकृच्छ्र दोनों मिलिके एक तीसरा जुदा होताहै और भी छै दिन का कृच्छ्रादि होताहै फिर कृच्छ्रहीके नामसे कृच्छ्रसान्तपन आदि व्रत होते हैं तिससे इनका बिस्तार लिखनेको यहां पर अवकाश नहींहै ॥ ० ॥ जिसके सिर्फ मुखहीमें मद्यपहुँचा हो गलेकेनीचे नउतरा हो तिसके लिये छैदिनका व्रत आपस्तंबके विधानसे विचारना चाहिये=यदाहापस्तंबः=अभक्ष्याणामपेयाना मलेह्यानांचभक्षणे रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तंकथंभवेत् पद्मोदुम्बरबिल्वानांपलाशस्यकुशस्यच एतेषामुदकंपीत्वाषड्रात्रेणविशुद्ध्यति=अर्थात्—नखानेकी न पीनेकी न चाटनेकी निषिद्ध चीजों के भक्षण करिजानेमें तथा पुरुषका बीज और मूत्र और बिष्ठा इनके भक्षण करनेमें प्रायश्चित्त कैसे होवै सो कहिते हैं कि•पद्म•उदुंबर गूलर• बेल• पलाशढाख• कुशा• इनपत्तोंका जल औटिके छैदिन तक पीने से पवित्र होता है—सो यह नियम सिर्फ ताड़ी आदि मद्योंके विषयपर समझना कि जैसे गुड़ मूत्त आदि धोखा से मुहमें जाते मार ,थूकि दिया तैसे ताड़ी आदि मद्यको मुहमें जातेमार थूकि दियाहो तिसकी शुद्धि छैदिन में होजायगी=अन्यथा गौड़ी और माध्वीको बिनाजाने मुखमें डारिके बिना घूंटेजो थूकिदेइ तिसके लिये जैसा वसिष्ठ के वचनमें ऊपर (अबुद्धया: सुरायाप्रचाज्ञानतः) यह लिखि चुके सो कृच्छ्रातिकृच्छ्र सहित दुबारा संस्कार और घृत का चाटना भी कराना होगा ,(परंतु यह संदेह न करना कि पहिली अविकोक्ति में तालू तक पहुँचने मध्ये मनुके वचन से एक वर्षभर पीना खाना कहा था यहां कोंकर थोड़ा रहिगया• क्योंकि वहां सबसे बड़ी पैष्टी सुरा का प्रायश्चित्त कहा और यहां उससे छोटी गौड़ी माध्वी का प्रसंग है तिससे थोड़ा रहिगया बल्कि (उन्हीं गौड़ी और माध्वी को जानि बूझि एकबार के निपट पीजाने मध्ये (पिण्याकंवाकणानवापी तियैवार्षिकं) यह दोसौ चौवन के उत्तरार्द्ध से कहिचुके तैसा तीनि वर्ष तक पीना खाकर प्रायश्चित्त करना चाहिये—और जिसने अपनी चाहना तथाकामनासे उन्हीं गौड़ी या माध्वी को बारम्बार पीने का अभ्यास कियाहो तिसके लिये वसिष्ठ का दर्शाया मरणांतिक प्रायश्चित्त चाहिये जैसा २५३ दोसौ त्रेपन की अविकोक्तिमें लिखि चुकेहैं कि (अभ्यासेतुसुरया अग्निवर्णांसुरांपिबेन्मरणात्पूतोभवतीतिवशिष्ठ:) सुरा के बारम्बार अभ्यास पूर्वक पीने में यही प्रायश्चित्त है कि अग्नि के समान लाल तपाई हुई सुराकोही पीवे जो हृदय जलिकर मरजाने से पवित्र होता है• इसमें सुराकहिनेसे गौड़ी और माध्वी सुरासे प्रयोजनहै किंतु पैष्टी सुराका अभिप्राय

इसमें नहीं है– क्योंकि पैष्टी सुरा सबमें मुख्य होती है तिसके एकही वार पीनेपर मरणांतिक प्रायश्चित्त २५३ दोसौ त्रेपन श्लोक और इसीकी अधिकोक्तिसे कहि चुके हैं तिससे ॥ • ॥ मद्य धरने के सूखे वासन में भरा हुआ जल विनाजाने एकही वार पीनेमें वृहद्यमका कहा प्रायश्चित्त विचारना=यदाह वृहद्यमः=मद्य भांडस्थि तंतोयंयदिकश्चित्पिवेद्द्विजः कुशमूलविपक्वेनत्र्यहंक्षीरेणवर्तयेत=अर्थात–मद्य के भांडमें धराहुआ जलजो कोई द्विज पीवै सो दूधमें कुशा की जडका क्वाथ पकाय के तीन दिन पीवै=विना जाने अनेक वार पीते रहिने में वसिष्ठ का कहा प्रायश्चित्त विचारना=यदाहवसिष्ठः=मद्यभांडस्थितंतोयंयदिकश्चित्पिवेत्द्विजः पद्मोदुंबरविल्वा नांपलाशस्यकुशस्यचएतेषामुदकंपीत्वात्रिरात्रेणविशुध्यति=अर्थात– मद्यके भांड में धराजलजो कोई द्विजपीवे सो•पद्म•गूलर•वेल•ढाख•कुशा•इनकाकाढा रोजपीकर तीन दिनमें शुद्ध होताहै=जानते हुये पीलेनेमें विष्णुकाकहा प्रायश्चित्त विचारना= यदाह विष्णुः=मद्यभांडस्थितंतोयं पीत्वापंचरात्रंशंखपुष्पीशृतंपयःपिवेत=अर्थात– मद्यके वासन का जल पीके पाँच दिनतक शंखपुष्पी का औटाया दूध पीवै–जानते हुये वार वार पीने से शंखजीका कहा विचारना=यदाहशंखः=मद्यभांडस्थितंतोयंपी त्वासप्तरात्रंगोमूत्रंयावकंपिवेत=अर्थात–मद्यभांडका जल पीके गोमूत्र लाखये सात दिनतक पीवै=जिसने अत्यंत अभ्यास कियाहो किंतु जानतेहुये बहुत दिनतकपिआ हो तिसकेलिये हारीत का कहा प्रायश्चित्त विचारना=यथा हारीतः=मद्यभांडस्थि तंतोयंयदिकश्चित्पिवेद्द्विजः द्वादशाहंतुपयसापिवेद्ब्राह्मींसुवर्चलाम=अर्थात–मद्य-पात्रका धरा जल जोकोई द्विज पीवै सो दूधमें औटिके ब्राह्मी वह्मनेटी नाम सुवर्चला का पंचांग वारह दिनतक पीवै तव शुद्ध होय (सभी इन वचनों में द्विज शब्द जो आया सो केवल ब्राह्मण का वोधक है) क्योंकि क्षत्री और वैश्य को मद्यका नि-षेध नहीं है यह पहिले कहि चुके हैं दोसौ त्रेपन आदि श्लोकों में देखो) मद्य के पात्र में धरे जलके मध्ये जो जो वचन यहांपर लिखे गये सो मत्र गौड़ी माध्वीके पात्र में धरे जलका विषय समुझना क्योंकि प्रायश्चित्त के बड़ापन से यही तात्पर्य देखता है तिससे ताड़ी आदि छोटे मद्यों के सूखे पात्रका धरा जल पीने मध्ये कृत्य न्यून कल्पना करनी चाहिये ॥ २५५ ॥

यहांतक पुरुषों के प्रायश्चित्त कहेगये अब आगे जो स्त्रियां मदिरा पीवें तिनके प्रायश्चित्त दर्शावेंगे ॥

(स्त्रीणांसुरापाने प्रायश्चित्तानि)

पतिलोकंनसायातिब्राह्मणीयासुरांपिबेत् । इहैवसाशुनीगृध्रीसूकरीचोपजायते २५६

अर्थः—जो ब्राह्मणी सुरा पीवै सो पतिके लोक को नहीं जाती है वह इसीलोक में कुतिया गिद्धिनी सूकरी होके जन्मती है=अर्थात्—ब्राह्मणी आदि तीनों द्विजाति-यों की भार्या यद्यपि पतिकी सेवा आदि अनेकपुण्य करने वाली हो तौभी जोसुरा पीवै तो पतिके पुण्य लोकों को नहीं जाने पाती है इसी लोक में कुत्ता आदि ति-र्यक् योनियों में वारवार क्रम से जन्म पाती है ॥ २५६ ॥

२५६ अधिकोक्तिः—मूल श्लोक में योगीश्वर ने केवल ब्राह्मणी शब्द रक्खाहै तौभी मिताक्षराकारने व्यवस्थाको अपेक्षा से तीनों वर्णोंकी भार्या अर्थ कियाहै इस हेतुसे कि आचार मर्यादा परिपाटीमें ५७ मूलश्लोक से आवश्यक निर्वाह निश्चित होचुकाहै कि ब्राह्मणके ब्राह्मणीआदि चारोंवर्णों की भार्याभी होती हैं क्षत्रीके क्ष-त्राणी आदि तीनिवर्णों की भार्याभी होतीहैं वैश्यके वनैनी आदि दोवर्णोंकी भार्याभी होतीहैं(शूद्रके केवल शूद्रा भार्याहोतीहै) इसीन्यायसे यहांभी जिसद्विजातीकेजितनी भार्याएँ होनीकहीगईं तिनसबहीका उपलक्षण एकब्राह्मणी कहिनेसे लियाहै इसका इसीसे दृष्टांत समझो कि ब्राह्मणी भार्या अर्थात् ब्राह्मणकी भार्या चाहैं क्षत्रीवर्णा या वैश्यवर्णा या शूद्रवर्णा की कन्या हो तौभी सुरा पीने से पतिका लोक न पावैगी इसी प्रकार क्षत्री और वैश्य की भार्याएँ समझलेना=इसीआशयपर मनुका वचन है,कि= पतत्यर्द्धंशरीरस्ययस्यभार्यासुरांपिबेत् पतितार्द्धशरीरस्यनिष्कृतिर्नविधीयते=अर्थात्-जिस किसीकी भार्या सुरापीवै तिसके शरीरका आधा भाग पतित होजाताहै पति-त हुये आधे शरीर की निष्कृति नहीं होती है—क्योंकि धर्म अर्थ काम इन तीनों में स्त्री पुरुष दोनों का साथही अधिकार होने से दोनों का एकही शरीर माना गयाहै तिससे भार्या रूपी आधा शरीर पतित होजाता और इसीसे उसकी शुद्धि नहीं होती है—तिससे द्विजाती मात्र की भार्या ब्राह्मणी आदि को सुरा न पीनी चाहिये यह प्रतिषेध सिद्ध हुआ—यह वचन पहिले आचुका है २५३ की अधिकोक्ति में देखो (तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्चनसुरांपिबेत्) कि ब्राह्मण क्षत्री वैश्यभी सुरा न पीवैं इसमें पुरुषही या स्त्री न पीवै यह लिंग भेद नहीं किया तिससे तीनों वर्णोंकी समस्त जातिमात्र को निषेध ठहिरा कि पुरुष और स्त्री और बालकभी न पीवैं॰इसी वचन से तीनोंवर्णोंकी भार्याओं का निषेध सिद्धहोचुका था तो फिर दुबारा भार्याओं को

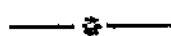
विशेषता यहां इसलिये कही गई समुझो कि द्विजातियों के कदाचित् शूद्री भार्या हो तिसको भी सुरा न पीना चाहिये—इन सब कारणों से यह बात सिद्ध हुई कि द्विजातियों की भार्या चाहें शूद्री पर्यंत किसी वर्णकी हों सो कदाचित् सुरा पीवें तो उनको भी, अपने पुरुषों से आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये (२५४ दोसौ चौवन की अधिकोक्ति में भी लिखि चुकेहैं कि स्त्रियां और बालक बूढे आदि को आधा प्रायश्चित्त देना चाहिये वही तात्पर्य सर्वत्र और यहां भी समुझे रहिना) परन्तु जो शूद्रकी भार्या सुरा पीवै तो उसके लिये शूद्र के समान सुरा पीने का निषेध नहीं है तिससे प्रायश्चित्त भी आवश्यक नहीं है ॥ ० ॥ और जो २२९ दोसौ उनतीस मूल श्लोक वा उसकी अधिकोक्ति में निषिद्ध चीजों का भक्षण करना भी सुरापान के समान कहा गया है तिनके भक्षण करने में सुरापान ही का प्रायश्चित्त आचरण करना चाहिये अर्थात् सुरा पीजाने मध्ये जो कुछ प्रायश्चित्त जिसके लिये जितना करना कहा हो वही उससे आधा करै जिसने निषिद्धचीजें भक्षण करीहों यह पहिले कहिचुके हैं ॥ २५६ ॥

इतिसुरापान प्रायश्चित्त प्रकरणं



॥ इस प्रकरण में इकतिस से तेंतीस तक तीन परिच्छेदों से मुख्य सुरापान और अमुख्यसुरापान और मद्यपान के समस्त प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था कहीगई अबआगे चोरीकरने मध्ये चोरोंके प्रायश्चित्त कहे जावेंगे ॥

अथ सकामस्वर्णापहारिप्रायश्चित्तानांभेदाविवेचकोऽयं परिच्छेदःचतुस्त्रिंशः ३४ ॥



इस परिच्छेद में उन प्रायश्चित्तों का भेद विवेचन किया जायगा जो इच्छा और कामना से ब्राह्मणका सुवर्ण आदि हरने के पापों पर आवश्यक होतेहैं ॥

(स्वर्णापहार प्रायश्चित्तं)

ब्राह्मणस्वर्णहारीतुराज्ञेमुशलमर्पयेत। स्वकर्मख्यापयंस्तेनहतोमुक्तोपिवाशुचिः २५७

अर्थः—ब्राह्मणका सोना हरनेवाला चोर अपने कर्म (चोरी) को सुनाता हुआ (आपहीजाकर) राजाको मूसल समर्पण करै (उसी मूसर से राजा करके वहचोर)

निपट माराहुआ या छोड़ि दिया हुआ भी पापसे छुटिजाता है=अर्थात्—यहीउसका प्रायश्चित्त है कि आपही राजाको शस्त्र समर्पण करे फिर चाहें राजा अपने न्याय विचार से उसको निपट मारिही डारे या दंड देकर छोड़ि देवै तो भी शुद्ध होजाताहै अन्य या नहीं ॥ २५७ ॥

२५७ अधिकोक्तिः—सोना हरनेका शब्द कहिने से इतनी बातें सूचित करी हैं कि चाहें स्वामीके सन्मुख या औरही किसीके सन्मुख हरलिया हो या स्वामी की आँखि पीछे हरा हो या जबरदस्ती से छीना हो या चोरों की तरह चुराया हो—परन्तु उन बातोंको छोड़ि के समझना कि उसने खरीदने आदि प्रकारों से हरा हो जिसमें निज उसीका स्वत्व (हक्कमालिकियत) किसी हेतु से पहुँचता हो ॥ ० ॥ मूसल समर्पण करै यद्यपि यह सामान्य भाव से किसी लोहा लकड़ी आदि के विशेषण बिना कहागया है तथापि जाहरहै कि मारने के निमित्त देना कहा तिस-से मारनेमें समर्थ लोहे आदि का मूसल समझना=इसी हेतु मनुने यह कहा है कि= स्कन्धेनादायमुशलंलकुटंवापिखादिरम् असिंचोभयतस्तीक्ष्णम् आयसंदंडमेववा=अर्थात्—काँधेपर मूसर या खैर का डण्डा लाठी लेकर या तलवार जो दुधारा खाँडा दोनों ओरसे तीक्ष्ण पैनी धारवालीहो यद्वा लोहेका डण्डालाहो=शंखनेभी विशेषता इसपर कही है=यथा=सुवर्णस्तेनःप्रकीर्णकेशआर्द्रवासा आयसंमुशलमादायराजानमुपतिष्ठेदिदंमयापापंकृतमनेन मुशलेनमांघातयस्वेति सराज्ञाशिष्टःसन्पूतोभवति=अर्थात्—सुवर्णका चोरवाला छिटकाए और भीजे वस्त्र पहिने लोहेका मूसरलेकर राजा के पास जाय खड़ाहो कि यह पाप मैंनेकिया इस मूसरसे मुझे मारडालो यह सुनि के राजासे ताड़ना पाया हुआ पवित्र होताहै ॥ ० ॥ उस चोरका मारना भी बारम्बार चोटोंसे नहीं किन्तु एकही बार करना चाहिये=इसीलिये मनुने कहा है कि (ततो मुशलमादायसकृद्धन्यात्तुतंस्वयं) चोर की बात सुने पीछे राजा आपही मूसर लेकर अपने हाथसे एकही बार उसको मारै॰ इस प्रकार एकही बार मारने से मौत पाकर शुद्ध होय यद्वा उस एकही चोटमें मरनेसे बचिकर जीवतेहुये भी शुद्ध होजाता है= तैसाही संवर्तने कहाहै=ततोमुशलमादाय सकृद्धन्यात्तुतंस्वयम् यदिजीवतिसस्तेनस्ततः स्तेयाद्विशुध्यते=अर्थात्—तिसकेबाद राजाआपही मूसरलेकर उसको एकहीचोटमारै जो उस एकचोटमें वह चोर जीवता बचिजाय तौभी चोरीकेपाप से विशुद्धहोजाताहै (ऐसाही ब्रह्महत्याकेप्रायश्चित्त मध्ये २४ चौबीसोंअड़तालिस मूलश्लोकमें कहाया कि (मृतकल्पःप्रहारार्त्तोजीवन्नपिविशुद्ध्यति)=यहां=वादी अपनी तर्क से शंका खड़ी

करता है। क्योंजी ऐसा अर्थ क्योंनहीं लगाते कि, राजा यदि विना मारेको छिदे तौभी शुद्ध होजाय क्योंकि मूल श्लोक में यहभी अर्थ ठीक ठीक होसक्ता है=सुनो यद्यपि ठीक होसक्ता है तथापि (अघ्नन्नेनस्वीराजा॰इतिगौतमीये ताहृशमकुर्वतोराज्ञोदोषाभिधानात्) न मारते हुये पापी राजा हो॰यह गौतम के वचन में राजा को दोष कहा है तिससे नहीं वैसा अर्थ लगाते हैं- अच्छा होउ राजा को दोष, तौभी निषेध के उलंघने वाले राजा ने, स्नेह, दया भाव आदि किसी हेतु से छोडदिया न मारा: तौ कैसे नहीं शुद्ध होगा=सुनो ऐसा होने में (वृथाही) अकारण अशुद्धि का आपरना होता है- क्योंकर होता है छुटिजाने के पीछे बारह वर्ष आदि को किसी अनुष्ठानसे शुद्धि करना स्वीकार करने से वृथा॰अशुद्धि न रहेगी॰ सोभी यह आशय अच्छा नहीं क्योंकि मूल श्लोक में (मुक्तःशुचिः) बचिकर छुटकारा होनाही शुद्धि का हेतु कहा गया है तिससे (मुक्तोवामरणाज्जीवन्नपिविशुद्ध्येदितिप्राच्येवव्याख्यान्याय्यासो) वही पहिली व्याख्या श्रेय है कि मूसल आदि मारने में मरने से बचिगया जीवते हुये भी शुद्ध होजाता है ॥ ० ॥ यह मरणांतिक प्रायश्चित्त सभी वर्णों के चोर को समझना किन्तु केवल ब्राह्मण हीको नहीं क्योंकि (ब्राह्मणसुवर्णहारी) यह मूल श्लोक में कहागया, सो विना किसी विशेषता केसामान्य भाव कहा हैकि ब्राह्मण का सोना हरने वाला कोई जाति वर्ण का नियम कुछ नहीं है, और महापातकों वाले परिच्छेद में सभी आदि कोभी महापातकित्व अविशेषता से कहिचुके हैं और उनके लिये कोई जुदा प्रायश्चित्त भी वर्ण के अनुसार नहीं कहागया=इस दशाके होतेपरभी जो मनु के वचन में (सुवर्णस्तेयकृद्विप्रः) यह विप्रही का नाम धरागया, सो भी समस्त नरमात्र का उपलक्षण है कि सबसे मुख्य ब्राह्मण को कहि दिया तब और, सबकोई भी न बाकी रहे॰वल्कि इसी मनु वचन के पहिले प्रकृत वर्णन में (प्रायश्चितीयतेनरः) यही नर शब्द आचुका है जो, सम्पूर्ण मनुष्य मात्रका वाचक होताहै- और भी यह प्रमाण है कि पातकरूपी निमित्तों का यह वचन है (ब्रह्महत्यासुरापानस्तेयंगुर्वंगनागमः) इसमें कोई विशेषता न कहीगई कि ब्राह्मण या क्षत्री आदि कौन करे॰ तिससे सभी मनुष्य मात्रपर आरूढ जानो॰ जब कि इस निमित्तरूपी वचन में सभी मनुष्योंका तात्पर्य सुनिचुके तौ फिर इसी वचनका सबंधी जो नैमित्तिक वचन है कि (सुवर्णस्तेयकृद्विप्रः) इसमें विप्र शब्द सुना जानपरभी सर्व मनुष्यों का उपलक्षण माना चाहिये कि जैसा इसके पूर्व संबंधी वचन मे सुनचुके क्योंकि ब्राह्मण सबमें प्रधान है उस प्रधान का नाम कहिने से अप्रधान भी

सब समझि लिये जातेहैं यहाँ भी मीमांसाका वही दृष्टांतहै जो२५ इकी अविकोक्ति में ढ्योरेवार लिखिचुके तहां देखो कि तंडुलका नाम कहिने से होमका सर्वसाकल्य समझि लेते हैं) तैसा इसमें भी विप्र के उपलक्षण से सकल मनुष्यमात्र समझे जाते हैं॥७॥ससस्त्रादिसे मारना कहा सो ब्राह्मण चोरसे उपरान्त समझना चाहिये क्योंकि ("नजातुब्राह्मणंहन्यात् सर्वपापेष्वपिस्थितम्" इतिमानवेब्राह्मणवधनिषिद्धत्वात्) मनुस्मृति में यह निषेध है कि ब्राह्मण को कदाचित भी न मारे यद्यपि सबतरह के पापोंपर आरूढ हो-तथापि जो कभी किसी राजाने निषेध को न मानिके मारि दिया तोभी शुद्ध होताहै क्योंकि आगिला वचन देखो उसमें वधके द्वारा ब्राह्मण को भी शुद्धि होना कहा है=यथा (वधेनशुद्ध्यतिस्तेनो ब्राह्मणस्तपसैववाइतिविकल्पाभिधानात्) अर्थात-वध होने से चोर शुद्ध होताहै पर जो ब्राह्मण हो तो तपस्या से भी शुद्ध होता है यह विकल्प कहा गया है कि या तो वध होने से या तप करने से भी॥ ०॥ परन्तु तपसैववा इसमें एव शब्द जो टीका अर्थदेता है तिसकीधांतिसे कुछ ब्राह्मण चोरके वधका निषेध निपट नहींहै कि वह वधसे शुद्ध न होगा केवल तपसे शुद्ध होगा क्योंकि यह एवकार इस लिये है कि जो वध न हो तो केवल तपसे भी शुद्ध होता है और भी इस अर्थ की ध्वनि देखो चाहिये कि जो वधसे शुद्ध न होना मानाजाय तो फिर (तपसाएववा) यह विकल्प की या और हो दोनों किसकेसाथ जोड़ी जायँ किन्तु केवल एकही विधि में विकल्प नहीं सिद्ध होताहै-और यह भी नहीं कहि सक्ते हैं कि दंड के अभिप्राय से विकल्प माना जाय क्योंकि दंडका आदेशही नहीं किया गया और भी यह विरोध है कि (एकार्थास्तुविकल्पेरन्निति न्यायेनैकार्थानामेवविकल्पोब्रीहियवयोरिवनचदंडतपसोरेकार्थत्वं दंडस्यदमनार्थत्वात् तपसश्चपापक्षयहेतुत्वात्) अर्थात्-जिन दोनोंका एकहीसा प्रयोजन हो वेही परस्पर विकल्प में काम आवें इस न्यायसे एकही अर्थ वालोंका विकल्प होताहै धान और जो की तरह• दंड और तपका एक प्रयोजन नहीं है क्योंकि दंड तो दमन के प्रयोजन से किया जाताहै तपस्या पापोंका क्षय करने के लिये होतीहै तिससे दोनों का एक अर्थ नहीं ठहिरा-और-यह भी इसमें विचार है कि (वधेनशुद्ध्यतिस्तेनोब्राह्मणस्तपसैववा) यह पहिला पाद सामान्य विषय और दूसरा पाद विशेष विषय है कि जो केवल ब्राह्मण पर आरूढ है तो भी सामान्य और विशेष दोनों का परस्पर विकल्प नहीं सिद्ध होताहै अर्थात सामान्य विषयिक वधके साथ विशिष्ट विषय तपका विकल्प नहीं बनता है-किन्तु ऐसा विकल्प वाक्य नहीं होता है कि

ब्राह्मणोंको दही देना चाहिये यांकौडिन्य मुनिको मट्ठा•तिससे दोनोंका सामान्य ही विषय हो॥५०॥ अथवा इसरीतिसे भी व्यवस्था हैकि इस चोरीके विषयवाले प्रकृत प्रायश्चित्त में राजाआदि क्षत्रीकोभी ब्राह्मणके वधका निषेध नहींहै क्योंकि (सुवर्णस्तेयकृद्विप्रः) मनुने इस वचन में विप्रही को कहिकर पीछे (गृहीत्वामुशलं राजासकृद्धन्यात्तुतंस्वयं) तं ब्राह्मणं यह सर्वनाम शब्द के द्वारा चर्चा किये ब्राह्मण ही को परामर्श लेकर एकबार मारने का विधान किया है तिससे• इसमे कदाचित यह कहो कि ब्राह्मण को मारनेका निषेध वचन ऊपर कहिचुके हैं•तिसका तात्पर्यही कुछ और कि (नजातुब्राह्मणंहन्यात्सर्वपापेष्वपिस्थितं) यह मारनेका निषेध प्रायश्चित्त बाबत नहीं किन्तु प्रायश्चित्त से उपरान्त दंड देने की रीति से मारने का निषेध सिद्ध होताहै क्योंकि प्रायश्चित्तके मध्ये साक्षात मूसर आदि लेकर मारनेका आदेशहै जो कहा गया॥०॥ यह मरण पर्यन्त का प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो बुद्धिपूर्व सुवर्ण हरनेपर आरूढहै•क्योंकि अंगिराकी विचली मध्यम स्मृतिका यह नियम है कि=मरणांतिकंचयत्प्रोक्तं प्रायश्चित्तमनीषिभिः तत्तुकामकृतेपापेविज्ञेयं नात्रसंशयः=अर्थात्–बुद्धिमानोंने मरणांतिक जो प्रायश्चित्त कहीं कहा हो सोसर्वत्र कामनासे किये हुये पापमें समझना इसमें संदेह कुछ नहींहै॥०॥ इस प्रायश्चित्त के प्रसंग में सुवर्णका हरनाजो कहागया वह सुवर्ण भी एक परिमाण विशिष्ट तौल का नाम है कि इतना सोना हरने से सुवर्ण की चोरी कहावै कुछ सोने की जाति हीका नाम नहीं तिससे वह तौल भी समझनी चाहिये सो लिखते हैं=यथा=जालसूर्यमरीचिस्थंत्रसरेणूरजःस्मृतम् तेऽष्टौलिक्षातुतास्तिस्रोराजसर्षपउच्यते गौरस्तुतेत्रयः षड्भिर्यवोमध्यस्तुतेत्रयः कृष्णलः पंचतेमाषस्तेसुवर्णस्तुषोडश= अर्थात्–आचार मर्यादा के अन्त में जो मान की परिभाषा योगीश्वर आप कहिचुके उसके दोही श्लोको से यहां प्रयोजन है कि–घरों के जालीदार झरोखो में सूर्यकी किरणों जो घुसती है तिनमे जो बहुत हलुके छोटे अति सूक्ष्म किनुके से उड़ते देखि परते हैं वही त्रसरेणु रज कहाते है वे आठ मिलि के एक लीख कही जाती है तीन लीखें मिलि के राजसर्षप अर्थात राई कहातीहै तीन राई मिलिके पीली सरसों होतीहै छः सरसो मिलके एक मध्यम जौ कहाता है तीन जौ मिलि के एक कृष्णल अर्थात घुंघुची की तौल ठहिरती है ऐसी पांच घुंघुची मिलिके एकमासा होता है इन्हीं सोरह मासे का एक सुवर्ण अर्थात लोक म अशर्फी कहाती है–इसी तौल के अनुसार इतना सोना हरने से सुवर्ण की चोरी कहाती है (क्योंकि योगीश्वर आपही यह

परिभाषा पहिले नियत कर चुके) इस हेतु से जहां कहीं ऐसा लिखि चुके हो कि ब्राह्मण का सुवर्ण चुराना महापातक होताहै तहां सर्वत्र इसी परिभाषा को समझि लेना कि इन्हीं मासोंसे सोरहमासे सोना चुरानेका तात्पर्य है (क्योंकि जोकोई ग्रन्थ-कार अपने निर्मित किये ग्रन्थ में कोईसी परिभाषा या परिमाण विशेष नियत क-रते हैं सो निष्फल या निष्प्रयोजन कभी नहीं होती किन्तु उसी ग्रन्थ की आदि से अन्त तक वर्ताव में आता है) और यहभी नहीं कहिसक्तेहैं कि यह मान परिभाषा संसारी व्यवहारों के लिये कही गई क्योंकि लोक में उसका वर्ताव नहीं है लोक व्यवहार के मासे तोले आदि जुदे होते हैं यह केवल स्मृतिकारों की प्रवृत्ति एक निराली होती है—इसी लिये न्यायज्ञों ने यह कहा है कि संज्ञा और परिभाषा इन-की उपस्थिति अपने अपने कार्य के समय पर आवश्यक होतीहै कि जहां उसका प्रयोजन आनि परै तयैव नाम भी अपने गुण या फल के उपयोग से अर्थवाला ठ-हिरता है जैसे पद्रह घी इत्यादि में—तिससे यह भी नहीं कहि सक्ते हैं कि योगीश्वर ने यह मान परिभाषा केवल व्यवहारकाण्ड की उपयोगी सिर्फ जुर्माने के वर्ताव को नियत करी होगी क्योंकि इसका कोई प्रमाण कहीं नहीं है कि यह परिभा-षा केवल उसी काम के लिये नियत हुई और जब कि कोई प्रमाण की विशेषता न ठहिरी तो फिर समस्त ग्रन्थ मात्र पर वर्ताव उसका आरूढ़ हुआ—क्योंकि दण्डदे-नाभी केवल इसलिये होता है कि वह अपराधी दमन होकर आगेको सावधान ह-जाय सो ऐसा ठीक ठीक दमन उस दशा में नहीं होसक्ता जो जुर्माने का कोई परि-माण विशेष नियत न होता (किसी पर दसगुना दंड होजाता किसी पर चौथाई भी न होता) तिससे स्मृतियों में परिभाषा रूपी याददाश्त लिखी जाती है—इसीप्रकार प्रायश्चित्तों के मुआमिले में न्यूनाधिक रीति से व्यभिचार दूर करने के लिये परि-भाषा रूपी याददाश्त का उपयोग होता है—तिससे सर्वथा यही सिद्धांत आकर ठहिरा कि सोरह मासे का सुवर्ण (अशरफी) भर तौलसे सोना हरना महापातक है उसीके निमित्त मरणांतिक आदि प्रायश्चित्तों का विधान है ॥ ० ॥ इसी के संबन्ध में यह न्याय भी विशेषहै कि ब्राह्मण कोदो तीन आदि मासेभर सोनेके हरनेमें महापातक न होगा किन्तु उपपातक होगा कि जैसे क्षत्री आदि का सुवर्ण हरने से उपपातक होता है—सो यह न्याय भी षट्त्रिंशन्मतके ग्रन्थमें ब्यौरे वार कहा है—यथा—वाला-ग्रमात्रेऽपहृते प्राणायामसमाचरेत् लिख्यामात्रेपिचतथाप्राणायामत्रयंचरेत् राजसर्षप-मात्रेतुप्राणायामचतुष्टयम् गायत्र्यष्टसहस्रंचजपेत्पापविशुद्धये गौरसर्षपमात्रेचसावित्रीं

वै दिनं जपेत्. यवमात्रे सुवर्णस्य प्रायश्चित्तं दिनद्वयम्. सुवर्णकृष्णलं ह्येकमपहृत्य द्विजोत्तमः कुर्यात्सांतपनं कृच्छ्रं तत्पापस्यापनुत्तये. अपहृत्य सुवर्णस्य माषमात्रं द्विजोत्तमः गोमूत्रयावकाहारस्त्रिभिर्मासैर्विशुद्ध्यति सुवर्णस्यापहरणे वत्सरं यावकी भवेत् ऊर्ध्वं प्राणांतिकं ज्ञेयमथवा ब्रह्महा व्रतम् (इदं च वत्सरं यावकाशनं किञ्चिन्न्यूनसुवर्णापहारविषयं. सुवर्णापहारे स्वस्वादिमहास्मृतिषु द्वादशवार्षिकविधानात्) अर्थात्—बालकी नोक भर सोना हरने में प्राणायाम करै तब शुद्ध होय यही प्रायश्चित्त है. तथा एक लीख बराबर सोना हरने में तीनबार प्राणायाम करै (ध्रुवः पंडितः) राई बराबर सोना हरने में चारि प्राणायाम करै, और आठहजार गायत्रीभी जपै उस पापकी निवृत्तिके लिये. सरसों बराबर सोना हरने में आठप्रहरभरि गायत्री जपै. एक जौ भरि सोना हरने में दो दिनका प्रायश्चित्त करै. एक कृष्णल घुंघुची बराबर सोना हरने में वह द्विजोत्तम सांतपनकृच्छ्रव्रत करै उसपापकी शुद्धिके लिये. एक मासेभर सोना हरिके वह द्विजोत्तम गायत्री जपके सिवाय तीनिमासतक गोमूत्र और यावक अर्थात् लाखका रस इनदोही का आहारकरै तब शुद्ध होय. सुवर्ण अर्थात् सोरहमासे सोना हरने में एकवर्षतक यावक खाइके रहै. इससे अधिक सोना हरने में प्राणांतिकप्रायश्चित्त जानो कि जैसे कहीं लिखचुकेहों अथवा ब्रह्महत्यावाला व्रतकरै (यह एक वर्षतक यावक आहारकरना कहा सोभी कुछ कमती सोरहमासेके हरनेमध्ये समझना. क्योंकि पूरे सुवर्णके हरने मध्ये मनुआदि बड़ीबड़ी स्मृतियोंमें बारहवर्षका प्रायश्चित्त लिखाहै तिससे—बलिक—जबर्दस्तीसे छीननेआदि प्रकारोंमें सुवर्णकेपरिमाणसे कम सोनाभी हरनेमें मरणांतिक प्रायश्चित्तहोताहै=यथा=बलाद्येकासकारेणगृह्णंतिस्वंनराधमाः तेषांतुबलहर्तॄणां प्राणांतिकमिहोच्यते. (सुवर्णपरिमाणादर्वागपीत्यभिप्रेतं) अर्थात्—जे कोई अधम नर इच्छासे जबर्दस्ती धन हरते हैं तिन जबर्दस्ती हरने वालोंको इसमें प्राणांतिकही प्रायश्चित्त कहाहै (सुवर्ण के परिमाण से भीतर भी हरने में यह अभिप्राय जानो) वरन सोनेके उपलक्षण से चांदी आदि सब समझि लेने ॥ ० ॥ यह चोरी का प्रायश्चित्त जो कुछ कहा गया सो हरा हुआ धन स्वामी को देकर करना होताहै विना वापिस किये नहीं=तथाच वचनं=स्तेये ब्रह्मस्वभूतस्य सुवर्णादेः कृते पुनः स्वामिनेऽपहृतं देयं हर्त्रा विकादशाधिकम्=अर्थात्—ब्राह्मण के स्वत्वभूत सुवर्ण आदि किसी धन को चोरी करने में फिर हरनेवाले करके आपही स्वामीको हरा हुआ देदेना चाहिये (तु अव्ययोऽत्रपक्षांतरे समुच्चये नियोगे विनिग्रहे च तस्मात्) यदि हर्ता स्वयं न ददाति तदा एकादशगुणं हर्त्रा दाप्य इति तात्पर्यार्थः) अर्थात् जो हरने वाला हरे हुये धनको आप ही

न वापिस करे तब राजा उसपर ग्यारह गुणा दिवावे परन्तु ऐसा अर्थ नहींहै कि वह आपही ग्यारहगुणा देनेलगे क्योंकि अपहृतहरत्यादिय यह प्रयोग श्लोक में साफ है कि हरा हुआ धन धनीको देदेवै—बल्कि-मनुके भी अग्रोक्त वचन से उतनाही देनेका अर्थ है कि जितना चुराया हो=यथा=चरेत्सांतपनंकृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये=अर्थात्—जो हराहो सो निःशेष देकर अपनी शुद्धिकेलिये सांतपन कृच्छ्र व्रतकरै=और ग्यारह गुणा राजा दिवावै यह कहिचुके सो यह एक दंडकी रीति से दिवाना कहा कुछ प्रायश्चित्त का संबंध उसमें नहीं समझना क्योंकि दंडके प्रकरण में भी ऐसा कहिचुके है (शेषेष्वेकादशगुणंदाप्यस्तस्यचतद्धनं) कि बाकी सूरतों में उसकावह धन भी ग्यारह गुना करिके दिलावे॥ ० ॥ जहां कहीं अशक्ति से राजा मारने को असमर्थ हो तहां वसिष्ठजीका कहा प्रकार करना=यथाह वसिष्ठः=स्तेनःप्रकीर्णकेशो राजानमभियाचेत ततस्तस्मैराजौदुंबरंशस्त्रं दद्यात्तेनात्मानंप्रमापयेत् मरणात्पूतोभवतीतिविज्ञायते (औदुंबरंताम्रमयं) अर्थात्—बाल छिटकाये हुये चोर राजा के पास जाकर याचना करै कि मैंने यह महापाप किया मुझे प्रायश्चित्त देनाचाहिये यह सुनिके राजा उसे औदुंबर नामका शस्त्र विशेष जो तांबेका बना समझा गयाहै सो देवे उसीसे वह चोर अपने शरीरको घातकरै मरनेसे पवित्र होताहै यह जाना गया—यद्यपि उन्हीं वसिष्ठने दूसरा भी प्रायश्चित्त कहाहै कि=निष्कालकोगोघृताक्तो गोमयाग्निनापादप्रभृत्यात्मानं प्रमापयेन्मरणात्पूतोभवतीति विज्ञायते=अर्थात्—निःकालकनाम समस्त बाल मुड़ाये हुये गऊका घी शरीरमें लपेटेहुये गऊके गोबरके कण्डोंकी प्रदीप्त अग्निमें पैरोंको आदि लेकर सब शरीर भस्म करै तो मरनेसे पवित्र होताहै यह जाना गया—सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने गुरु या श्रोत्रिय या यागस्थ ब्राह्मण आदिका द्रव्य हराहो यद्वा क्षत्री आदि हरने वाला हो तिसके लिये भी ॥ ० ॥ तथैव अश्वमेव आदि यज्ञ करने से भी शुद्धि होनी कही है जैसा प्रचेताने मरणांतिक प्रायश्चित्त पहिले दर्शायकर पीछे से कहाहै कि(इष्ट्वा वाऽश्वमेधेनगोसवेनवाविशुध्येत) यद्वा अश्वमेध से या गोमेध से यजन करिके भी शुद्ध होय॰सो यह प्रायश्चित्त उनके लिये समझना जो वैश्य वा क्षत्री आदि हरने वाले अपराधीहों॥२५७॥अबअगिलेपरिच्छेदमें अनिच्छासे हरनेवालोंकेप्रायश्चित्तकहेंगे॥

—※—

कि जिसने बिना कामना के सुवर्ण चुराया हो क्योंकि (इयविशुद्धिरुदिता प्रमाप्या कामतोद्विज इत्यकामतो विहितस्यैव द्वादशवार्षिकस्यातिदेशात्) बिना कामना केही द्विज मारने सम्बे जो बारह वर्ष नियत हुयेथे उन्हीं का अतिदेश यहां दिया गया तिससे=अथापि वितर्क—क्योंजी बिना कामना के अपहारही नहीं सम्भव होताहै क्योंकि जिसको अपहार करने की कामना नहीं वह अपहारही क्यो करेगा•तौफिर अकामकार का विषय कैसे यहाँ कहिते हो—सुनो जब किसीने बिना कहे उसके कपड़ेकी गाँठि में बाँधि दिया अथवा किसी कपड़े में बँधाहुआ सुवर्ण आदि कहींपरा पाइकर लेलिया यद्वा चाँदी आदि अन्य द्रव्य जानिके हरा और तत्कालही किसी औरको देदिया या खोइदिया परन्तु मालिकको तलाश करिके नहीं वापिस किया तब यह कामना के बिनाभी अपहार होता है॥ ० ॥ जो कोई तांबे आदिको रसवेध आदि लागों के योग से बनाये हुये सुवर्ण का रूपमात्र कृत्रिम कूट को हरे तिसपर यह प्रायश्चित्त न चाहिये क्योंकि सुवर्ण की मुख्य जातिका समवाय न होनेसे और यह कारण है कि मुख्य वस्तु के सदृश रूप होने मात्र से उस नकली मे असलकी गुण धर्म नहीं होते हैं• यद्यपि ऐसाही नकली सोना जो सोना नहीं है तिसको सोने की भ्रान्ति से अर्थात् सोना समझके हराहो तथापि यह सुवर्ण की चोरी वाला प्रायश्चित्त इसमें नहीं चाहिये क्योंकि उसने सोना नहीं चुराया तिससे—और यहभी न कहिना चाहिये कि जैसा दोसौ बावन के पूर्वार्द्ध से यह कहाया कि (चरेद्व्रतमहत्वापि घातार्थंचेत्समागतः) ब्राह्मणके मारने को गयाहो तौ न मारि पानेमेभी प्रायश्चित्त करै तैसा यहां भी दोष मानना चाहिये कि सोना हरने वाला द्रव्य उसने किया पर नहीं सोना हरि पाया तौभी दोषी उसी कामका ठहिरै• यह इस हेतुसे न कहिनाचाहिये कि वह सुवर्ण के हरने पर नहीं प्रवृत्त हुआ असुवर्णपर प्रवृत्त हुआ (औरयह इसका विषय न कहिना चाहिये कि ब्राह्मण से उपरान्त कोई अब्राह्मण सोनाचुराने पर उतारू हुआ हो) और जो यह वचन है कि=इदमनसापापध्यात्वाप्रणवपूर्वव्या हृतीर्मनसाजपेद्वव्याहृत्याप्राणायामंविराचरेत्प्रवृत्तौकृच्छ्रं द्वादशरात्रंचरेत्=अर्थात्—यह पाप मनही से विचारि के न किया हो तौभी प्रणव सहित व्याहृतियों को मनसे जपै और व्याहृति से तीनि बार प्राणायाम आचरै और जो उस पाप के करने पर प्रवृत्त भी होगया हो तौ बारह दिनका कृच्छ्र व्रत करै•सो यह वचनभी उसी दशापर आरूढ है कि जो कोई मुख्यही द्रव्य आदि पर प्रवृत्त हुआ हो असुख्य का तात्पर्य इसमे नहीं है—तिससे ऐसा नकली सोना बिना जाने हरनेसे प्रायश्चित्त का निमित्त

नहीं ठहिर सक्ता है० परंतु जैसा ऊपर कहिचुके कि चाँदी आदि के ज्ञान से मुख्य सोना हरे या गांठि में बँधा हुआ आदि तौ वह बिना कामना का अपहार कहाता है उसमें प्रायश्चित्त भी करना होगा। इसी पहिले विषय पर कि विना कामना के सुवर्ण जिसने हराहो और विना राजा के जताये शुद्ध होना चाहे और अपहर्त्ता पुरुषव अतिशय धनवान् हो तौ अपनी देह की बराबर तौलि के सोना दान करै अथवा देह की बराबर सोना जिसके पास न हो और पूर्वोक्त में कही व्रतचर्या भी बार वर्ष करने की समर्थ जिसको न हो तौ ब्राह्मण को आयु भर उसका कुटुंब पालनहो सकने योग्य धनदान करै कि जिससे ब्राह्मण उसपर संतुष्ट होय॥ ०॥ जब किसी निर्गुणी स्वामी का द्रव्य हरा हो तौ व्यासजीका कहा नौवर्षका प्रायश्चित्त करै (एतदेवव्रतंस्तेनःपादन्यूनंसमाचरेत्) अर्थात् व्यास ने कहा है कि यही व्रतचोर करै चौथाई कम करिके अर्थात् बारह की चौथाई तीनि छोड़ि के नौ वर्ष करै= और जहां कहीं इसी प्रकारका धन ऐसा कोई हरै जो भूखों मरते कुटुम्ब की रक्षा हेतुसे हरने गया हो तहां अत्रिमुनिका कहा छेवर्षका प्रायश्चित्त या स्वर्जित् आदि यज्ञ या तीर्थों की यात्रा करावै=यथाहात्रिः=षडब्दंवाचरेत्कृच्छ्रं यजेद्वाक्रतुनाद्विजः तीर्थानिवाभ्रमन्विद्वांस्ततःस्तेयाद्विमुच्यते=अर्थात्–द्विजाती ऐसी चोरी में यातौ छेवर्षका कृच्छ्रव्रत करै या क्रतुयज्ञसे यजन करै या विद्वान् हो तौ तीर्थोंका भ्रमण करै तब चोरी के पापसे छूटै (इसमें लेख बढ़िजाने के भयसे आधुनिक लेखक इस तर्कपर आरूढ़ न होसके कि प्राक्तन संग्रहीताने क्या सोचिके ऐसा कहा होगा कि जिसका कुटुम्ब भूखों से मरता था वही स्वर्जित् आदि यज्ञभी कर सकैगा–तथापि उत्तर इसका बहुत सुगमहै कि सिर्फ यज्ञही करने नहीं कहे और प्रकार के भी प्रायश्चित्तोंका विकल्प कहाहै कि इनमें से जो कुछ करसकै सोईकरै)॥ ०॥ जब कोई अपहर्त्ता अपहार करने के साथही तत्काल ऐसा पछितावा करै कि मैंने बहुत बुरा किया इस पछितावेके साथ अपना हराहुवा द्रव्य उसके स्वामीको प्रत्यर्पण करै या छोड़ि भागै सो आपस्तंब का दर्शाया चौथे काल में एकबार भोजन तीन वर्ष तक खावैऔर एक ठिकाने पुरश्चरण की रीति के अनुसार बैठै अथवा अंगिरा मुनि का कहा तीनि वर्ष का वज्र नामक प्रायश्चित्तकरै=यहां भी= वादी तर्क उठाता है कि स्वामी को वापिस करदेने या छोड़ि भागने में अपहार की धातुवाला अर्थ सिद्ध हो जाने अर्थात् हरना साबित होजानेसे कैसे प्रायश्चित्तमें छोटाईकी रिआयत करीगई और जो यों कहो कि हरना साबित न हुआ तौ फिर प्रायश्चित्त का निपट न होना

चाहिये तौभी प्रायश्चित्तको छोटाई उचित नहींहै—सुनो ऐसा नहीं हरना जोहै तिस के धनका उपभोग आदि फल भोगनेसे हरना सिद्ध होताहै तिससे उपभोग के पहिले निवृत्ति होजाने में उत्तम और पूरे अपहारका अर्थ नहीं सिद्ध होताहै तिसके न होनेसे प्रायश्चित्तमें सूक्ष्मत्व कमी करना ठीकहै अन्याय नहीं जैसे न पीने योग्य चीजोंको पीते साथ मुहसे उलटी करदेनेमें छोटे प्रायश्चित्त दियेजाते हैं तैसा न्याय यहां भी समझना चाहिये=पुनरपिचिन्त्यः—वादी फिर भी छेड़ करताहै कि ऐसा होने में भी यों कहिसक्ते हैं कि चोरके हाथमेंसे जबर्दस्ती अपना धन छीनिके लेलेने में भी चोरने उस धनका उपभोग वर्ताविका फल नहींपाया तिसके न होनेसे सूक्ष्म प्रायश्चित्तपहुँचनेका प्रसंगदोष आताहै कि जैसा न्याय अभी ऊपर कहिचुके—सुनो ऐसानहीं उसके त्यागि देनेमें आपही चोरकी तर्फसे प्रवृत्ति नहीं रहेरतीहै तिससे और फल भोग पर्यंत जो अपहार है तिसमें स्वतः उसीका प्रवृत्त होना सिद्ध होताहै तिससेभी तुम्हारी तर्कनहीं ठीक है॥ ०॥ और जहां चांदी तांबा आदि मिला सोना हराजाय तहां यह छोटा प्रायश्चित्त नहीं कराया जासक्ताहै क्योंकि मिला हुआ होनेमें सुवर्ण का सोना पन नहीं नष्ट होसक्ता है जैसे घीमें दही मिलाने या दहीके छीटे देनेसे घृतका प्रभाव नहीं जासक्ता है तिससे ऐसी दशामें बारह वर्ष काही प्रायश्चित्त कराना ठीक है॥ ०॥ जहां कहीं प्रत्यक्ष सोनेके तुल्य चमकीला कोई औरही द्रव्य हराजाय तहां यद्यपि यह शंका खडी होतीहै कि उसमें छोटा प्रायश्चित्त चाहिये तथापि उसमें अत्रोक्त तीनवर्ष आदिके प्रायश्चित्तोंकी पहुँच नहींहै क्योंकि सुवर्ण नहीं हरागया तिससे• परन्तु उसमें उपपातकों वाला प्रायश्चित्त होगा कि जैसा उपपातकों के प्रकरण में वर्णन किया जाय तहां देखना॥ ०॥ जो कि आपस्तंब का यह वचन और है कि (स्तेयंकृत्वासुरांपीत्वाकृच्छ्रंसंवत्सरंचरेत्) कि चोरी करिके या सुरा पीके एक वर्षभरि का कृच्छ्र व्रतकरै•सो यह उसके लिये समझना कि जिसने सोरह माष सुवर्णके भीतर एक माषसे अधिक परिमाणका द्रव्य चुरायाहो॥ ०॥ जोकि सुमंतु ने कहाहै कि (सुवर्णस्तेयीमासंसावित्र्याष्टसहस्रमाज्याहुतीर्जुहुयात्प्रत्यहं त्रिरात्रमुपवासंतप्तकृच्छ्रेणचपूतोभवति) सुवर्ण हरनेवाला एक महीना तक रोज रोज आठ हजार गायत्रीके मंत्रसे घीकी आहुतिका होमकरै और पीछेसे तीनदिन निपट निराहार उपवास करै तब शुद्धहोय या बारहदिनके तप्तकृच्छ्रसेभी शुद्ध होताहै•सो यहनियम उसके साथ विकल्प (बदल) किये जासक्ते हैं कि जो दोसौ सत्तावन २५७ की अधिकोक्तिमें षट्त्रिंशन्मतके वचनोंसे एक मायभर सोना हरने मध्ये तीन महीना गो

मूत्र और यावक पीना कहाया• तथापि इतना भेद समुझिलेना कि यहां तो इच्छा सहित चुराने मध्ये तीनमहीने कहे और यहां एक महीना या बारह दिवस केवल अनिच्छासे हरने मध्ये नियत हुये ॥ ० ॥ सुमन्तुने एक दूसरा भी यह कहाहै कि (सुवर्णास्तेयीद्वादशरात्रंवायुभक्षःपूतोभवति) सोना चुराने वाला केवल वायु को पीकर बारह दिनकाटे और कुछ न करे तौभी शुद्धहोताहै• सो यह उसके लिये समझना जो केवल मनके विचारसे अपहार करनेपर उतारूमात्र हुआ परन्तु आपही अपहार करने से निवृत्त होगया किन्तु नहीं कियाहो ॥ ० ॥ यहां भी स्त्री बालक बूढे आदि जो चोरहों तिनसे जो जो प्रायश्चित्त कहिचुके सो सब आधे आधे करवाने चाहिये ॥ ० ॥ जिन चोरियोंको दोसौ तीस २३० मूलश्लोक में घोडा रत्न मनुष्य आदि को सुवर्णकी चोरीके समान कहिचुके तिनके चुरानेवालों को अशोक्त प्रायश्चित्तों से आधा करवाना चाहिये उनमें भी यदि स्त्री या बालक बूढे आदि चोर हों तिन पर आधेका आधा चौथाई करवाना होगा ॥ ० ॥ और ये वचन चतुर्विंशतिमतकेहैं कि= रूप्यंहृत्वाद्विजोमोहाच्चरेच्चांद्रायणाव्रतम् गद्याणादशकादूर्ध्वमाशतात्तद्विगुणंचरेत् आसहस्रात्तुत्रिगुणमूर्ध्वंहेमविधिःस्मृतः सर्वेषांधातुलोहानांपराकन्तुसमाचरेत धान्यानां हरणेकृच्छ्रं तिलानामैंदवंस्मृतम् रत्नानांहरणेविप्रश्चरेच्चान्द्रायणव्रतम् (याद रक्खो कि गद्याण एक वांटहै सो वैद्यक परिभाषा में यद्यपि दवाइयों की तौल मध्ये ६४ चौंसठिगुंजा भरि होताहै तथापि यहां धर्मशास्त्रमें ४८ अड़तालिस रत्तीभरि गद्याण कहाताहै सिर्फ चांदी की तौल मध्ये उसका प्रयोजन है कि) जो कोई द्विज मोह अज्ञानतासे रूपा चाँदी हरै दश गद्याणके भीतर और पूरे दशगद्याण हरनेमें भी चांद्रायण व्रतकरै और दश गद्याणसे ऊपर सौगद्याण तक चाँदी हरै वह दोबार चांद्रायण करै और सौगद्याण से लेकर हजार गद्याण तक चाँदीहरे सो तिगुना चांद्रायण करै इसके ऊपर सोने वाली विधि कही है अर्थात् पूरे हजार गद्याण या इससे भी अधिक चाँदी हरै तिसके लिये सुवर्णकी चोरीवाले प्रायश्चित्त बारहवर्ष आदि के समझने और तांबा लोहा पीतल आदि सब धातुओं की चोरी करिके पराक नाम काव्रत प्रायश्चित्त करै और नाजों के हरने मध्ये कृच्छ्र व्रत करै और तिलोंके हरने मध्ये चांद्रायण व्रत करै तथा रत्नों की चोरी मध्ये ब्राह्मण चांद्रायण व्रत करै–इन वचनोंमें जोहजार गद्याणसे अधिक चाँदी चुरानेका प्रायश्चित्त सुवर्णास्तेयकेसमान कहा सोभी सोनेका बड़ापन दर्शानेके निमित्त है पर उसकी निवृत्तिकेलियेनहींहै– और जो रत्नोंके हरने मध्ये सिर्फ चांद्रायण कहा सोभी हजार गद्याणसे कम चाँदी

के मूल्य वाले रत्नों को समझना किन्तु हजार से लेकर ऊपर अधिक मूल्य के रत्नों में सुवर्ण की चोरी समान प्रायश्चित्त होंगे ॥ २५८ ॥

इति सुवर्णस्तेय प्रायश्चित्त प्रकरणं ॥

——*——

(यह प्रकरण केवल चौंतीस पैंतीस दो परिच्छेदों से पूरा हुआ अब आगे गुरु-दार गामीके प्रायश्चित्त कहे जायँगे)

अथ जनन्यादि गुरुदार गमन प्रायश्चित्तानां भेद प्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः षट्त्रिंशः ३६

——*——

इस परिच्छेद में केवल उन्हीं पातकों के प्रायश्चित्त भेद कहे जायँगे जो देह जननी या पिता की सवर्णा आदि भार्या या उनके तुल्य जेकोई अन्य स्त्रियांमानी जाती हैं तिनके सकाम और अकाम गमन करनेसे होतेहैं या भोग करने पर उतारू होकर लौटि जाने से भी जो पाप होतेहैं ॥

(सकामगुरुतल्पगानां प्रायश्चित्तं)

तप्तेयःशयनेसार्धमायस्यायोषितास्वपेत् । गृहीत्वोत्कृत्यवृषणौनैर्ऋत्यांचोत्सृजेत्तनुम् २५९

अर्थः—तप्त लोहे के शयन पर लोहे की स्त्री साथ सोवै या दोनों वृषण काटि हाथ मे लेकर निर्ऋति दिशा में तनु को त्यागै—अर्थात्—दोसौ सादि के श्लोक मेंगुरु तल्पग नाम कहेंहै उसीका संबंध यहां परभी विद्यमान है कि जिसने गुरुदारा गमन करीहो उसका यही प्रायश्चित्तहै —कि निपट लोहेके बनेहुये पलँगपर लोहेकी बनी हुई मूर्ति भी साक्षात् स्त्री के आकार हो यह दोनों खूब अग्निमें तपाये जायँ जो अग्निही के समान लाल होकर अग्नि का रूप होजायँ तिसपर इस जलती हुई मूर्ति को चिपट कर सोवै किन्तु इसी तरह देह को जलाइ के मरजाय तब शुद्ध होय॥ अथवा दूसरा यह प्रायश्चित्त है कि आपही अपने लिंग समेत दोनों आँड़ जड़ से काटिके दोनों हाथकी अंजुरी में लेकर दक्षिण पछाँह के कोने वाली नैर्ऋत्य दिशा मे तहां तक सूधा चलाजाय कि जहां पर प्राण छूटिके देह गिरि परै किन्तु बीच में न थँभे कहीं इस रीति से देह छोड़ै तब शुद्ध होय ॥ २५९ ॥

२५६ अधिकोक्तिः=लोहेकीस्त्री साथ सोते समय पहिले अपना पापसवलोगों को ऊँची आवाज से सुनाइ देवे कि मैंने गुरुभार्या गमन किया तिसकी शुद्धि को यह प्रायश्चित्त करताहूँ (गुरुतल्पोऽभिभाष्यैनः इति मनुः) क्योंकि मनुने ऐसाकहा है गुरुतल्पग अपना पाप सुनाइ के लोह शय्या पर चढ़े =और यह भी एक नियम है कि जैसे स्त्री को आलिगन किया था उसी तरह लोहे की मूर्ति को लिपिटाइके सोवे• जैसा वृद्धहारीत ने कहाहै कि=गुरुतल्पगोमृन्मयी मायसींवास्त्रियःप्रतिकृतिमग्निवर्णां कृत्वाग्न्यायसशयने अयोमय्याचीप्रतिकृत्या कृत्वातामालिग्यपूतोभव-ति=अर्थात्–काले लोह के बने पलँग तपेहुये पर मिट्टी या लोहेकी स्त्री की नकली मूर्ति अग्नि के वर्ण समान तपी हुई लाल करिके उस लोहे की मूर्ति साथ आलिगन कम करिके मरने से पवित्र होता है=तथा बालों को सर्वथा मुडाइके सब देहमें घी लपेटिके यह शयन करना चाहिये=यथाह वशिष्ठः=निष्कालकोघृताभ्यक्तस्तप्तांस्त्रीं मृन्मयींपरिष्वज्य मरणात्पूतोभवतीतिविज्ञायते=अर्थात्–सब देह के बाल वा रोमा पर्यंतमुडाये और घी लपेटे हुये मट्टीकी तपाईहुई स्त्री को खूब आलिगन करिके मर-जानेसेही पवित्र होताहै यह जानागया(यहां केवल मट्टी कही तौभी लोहे और मट्टी का विकल्प बदल समझलेना क्योंकि लोहा भी मृद्दिकार धातु होता है दोनोंमें कुछ भेद नहीं है ॥ ० ॥ अग्रोक्त मनुके वचनमें लोहेके पलँग पर सोना या लोहे की मूर्ति को चिपटाना कि लोल करना ये दोनों बात जुदी जुदी प्रतीत होती है=यथाह मनु= गुरुतल्पोऽभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमयेसूर्मी ज्वलंतींवाश्लिष्यमृत्युनासविशुध्यति= अर्थात्–गुरु तल्प पापी अपने पाप को सुनाइ के तपाये हुये लोहे के शयन पर सोवे या जलतीहुई मूर्ति को अंग से लगाय के मौतही से विशुद्ध होता है• इसमें या शब्दके विकल्प से साफ दो जुदी बातें होगई कि चाहे यह करो या वह–तौभी मिताक्षराकार ने व्यवस्था इस पर दीहै कि मनु के इस वचन का अविरोधीसहारा चाहि कर योगीश्वर के मूलश्लोक में भी ऐसा न समझि लेना कि दो जुदे प्राय-श्चित्त हैं क्योंकि (आयस्यायोषितास्वपेत) जब यह कहागया कि लोहे की स्त्री साथ सोवे तब यहभी समझना चाहिये हां कि कहां सोवे तिसका यही सबब है कि लोहेके शयन पर सोवे तिससे दोनों बातका सबंध परस्पर मिलाहुआ एकहै एकही प्रायश्चित्त समझना कि जैसा पहिले कहिचुके• यह पूर्वार्द्ध की व्यवस्था हुई॥ अब उत्तरार्द्ध पर ध्यान धरो कि दूसरे प्रायश्चित्त मध्ये मनुने भी लिङ्ग और आंड काटने कहे हैं=यथा=स्वयंवाशिश्नवृषणावुत्कृत्याधायचांजलौ नैऋतींदिशमातिष्ठेदानिपा

तार्दाजह्मगः=अर्थात्=जो पहिला कहा न करसके तो आपही लिंग और वृषणोंको काटि के अंजुरी में धरिके नैऋत्य कोने की दिशामें टेढ़ो चालिके बिना सूधा चला जाकर शरीर गिरपरनेकी जगह पर थँभे=यह चलाजानाभी पीछि पीछे घूमिके न देखे विना करना चाहिये=अथाहतुःशंखलिखितौ (सुरेशांगम्रप्टयसावृक्कल्यानवेक्षमाणो व्रजेत्) अर्थात्–शंख और लिखितमुनि दोनों भाइयोंने निज निज ग्रन्थमें एकही वचन कहाहै कि० छुरी छुरासे लिंग और आंड काटिके पीछे को न देखताहुआ सूधा चला जाय=तथा यह वशिष्ठका अग्रोक्त वचन है कि जहां प्राण छूटनेलगैं उसीजगे थँभै कहीं बीच में न रुके=यथा=सवृषणांशिश्नमुत्कृत्यांजलावाधायदक्षिणाभिमुखो गच्छेद्यत्रैवप्रतिहतस्तत्रैव तिष्ठेदाप्रलयादिति=अर्थात्–आंड सहित लिंगको काटिके अंजलीमें धरिके दक्षिण दिशाके सन्मुख मरनेपर्यन्त चलाजाय जहांकहीं दीवार टीले आदिके धक्कासे गिर परै उसी जगे प्राण छूटने तक थँभे=जैसा नारदने दण्ड देने की अपेक्षा से भी लिंग काटना कहा है=तथाच=आसामन्यतमांगच्छन्गुरुतल्पगउच्यते शिश्नस्योत्कर्त्तनात्तत्रनान्योदंडोविधीयते=अर्थात्–इतनी स्त्रियां जो मैंने गिनाई इनमें किसी एकको गमन करते हुये गुरुतल्पग रहिताहै तहां शिश्न काटिलेनेके सिवाय और कुछ दण्डभी नहीं दिया जाताहै अर्थात् उसका यही प्रायश्चित्त और यही दंड है ॥ ० ॥ इस प्रकार दण्ड देनेके लिये जो लिंग आदि किसी अंगका काटना होताहै सोभी पापहीके विनाश हेतु होताहै–इसी मरणांतिक दंडका अभिप्राय लेकर मनु ने यह कहाहै कि (राजभिर्धृतदंडास्तुकृत्वापापानिमानवाः निर्मलाःस्वर्गमायांतिसंतःसुकृतिनोयथा) पाप करनेवाले मनुष्य प्रायश्चित्त के विना राजाओंसे ठीक दण्ड दिये हुयेभी निर्मल होकर स्वर्गमें आतेहैं जैसे सुकृत करनेवाले सत्पुरुष स्वर्गमें जाते हैं–इस नियमसे यह तात्पर्य है कि जहां राजा केवल धनदण्ड जुर्माना लेकर छोड़ि दे तहां उस दण्डसे उपरान्त प्रायश्चित्त भी लगता है–क्योंकि उन्हीं मनुने यह वचन भी कहा है कि=प्रायश्चित्तंतुकुर्वाणाःसर्ववर्णायथोदितम् नांक्याराज्ञाललाटेस्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम्=अर्थात्–जिन पापोंपर जैसा प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहाहै तिसको ठीक ठीक करनेवाले सभी वर्णों के लोग केवल उत्तम साहस आदि धन दण्ड लेकर छोड़ि दियेजायँ किन्तु राजाको उनके माथेपर दागदेनाआदि कोईसा चिह्न न करना चाहिये अर्थात् इस चिह्नके निषेध से समस्त देहदंडों का उपलक्षण प्रकट किया है कि मारना पीटना आदि कोईसा देहदण्ड न देना चाहिये ॥ ० ॥ मूलश्लोकमें यो-गीश्वरने दो प्रायश्चित्त कहे दोनों मरणांतिक हैं इनमें कोईसा एक प्रायश्चित्तकरने

से गुरुतल्पगामी शुद्ध होता है=गुरुतल्पगामी कहा इसमें गुरु शब्द जो है सो मुख्य वृत्तिसे पितामें वर्त्तमान समझा जाताहै क्योंकि मनुने बड़े पुरुषोंका गुरुत्व समझाने मध्ये यह कहाहै कि=निषेकादीनिकर्म्माणि यःकरोतियथाविधिसम्भावयतिचान्नेन सविप्रोगुरुरुच्यते=अर्थात्–निषेक नाम गर्भमें बीज धरना आदि सभी संस्कारकर्मों को जैसी उनकी विधि होतीहै तिस रीतिसे जो कोई करताहै और अन्नसे भी पोषण करता है वही गुरु कहाता है॰तो यह मुख्य गुरु पिता ठहिरा–इसी तरह योगीश्वर ने भी निषेक आदि कर्मोंके अभिप्रायसे ऐसा कहाहै (सगुरुर्यःक्रियाःकृत्वावेदमस्मै प्रयच्छति) अर्थात्–आचारमर्यादामें कहिचुके हैं कि वह गुरु है जो सब संस्कारों की क्रियाएँ करिके लड़केको वेद विद्या देताहै॰ये सभी काम पिताके करने से होते हैं–क्योंजी–गुरु शब्दका वर्त्ताव अन्य पुरुषों में भी देखि परताहै जैसा आचार मर्यादा परिपाटी में (उपनीयगुरुःशिष्यं) इत्यादि मूलश्लोक से आचार्य को भी गुरु कहा था॰ और भी यह वचन है कि (स्वल्पंवाबहुवायस्ययुतस्योपकरोतियः तमपीहगुरुंविद्यादित्युपाध्याये) इसमें उपाध्यायकोभी गुरु ठहिरायाहै कि थोड़ा या बहुत जिसका पढ़ने सुनने में उपकार जो करता है तिसको भी गुरु जानो–व्यासजी ने भी इसको गुरुओं में गिना है=यथा (गुरुवो मातृ पितृ पत्याचार्य विद्यादातृ ज्येष्ठ भ्रातऋत्विजोऽभयत्राताऽन्नदाताचेति) अर्थात्–माता पिता पति आचार्य्य विद्या का दाता जेठे भैये ऋत्विज अभय देके रक्षा करने वाला प्राणों के संकट से और अन्नदाता भी कि जिसके सहारे से उदर पूर्ण होती हो ये सब गुरु हैं अर्थात् बड़े हैं और इसी मान्यता के योग्य हैं॰देखो पिता के सिवाय येभी सब गुरु ठहिरे और अनेकों में गुरु के अर्थ की कल्पना होना कुछ दोषभी नहीं क्योंकि जिस मान्यताओर पूज्यता के निमित्तसे गुरुशब्दकी प्रवृत्ति ठहिराई गई वह मान्यता और पूज्यता का निमित्त इन सबही में कुछ न कुछ लगा हुआ है बल्कि उस मान्यता का निमित्तत्व योगीश्वर ने आचार मर्यादामें दर्शाया भी है कि (एतेमान्यायथापूर्वमेभ्योमातागरीयसी) इतने जो गिनाये सोसभी माननीयहैं तथापि जिससे जो पहिले कहा वह उस से अधिक मान्य होता है और माता इन सबसे बड़ी पूजनीयहै–इसने प्रथमसभी को मान्य कहिकर माता उनसे भी बड़ी ठहिराई–और (उपाध्यायाद्दशाचार्यआचार्याणां शतंपिता) जैसा यह वचन है कि उपाध्याय से दश गुणा आचार्य बड़ा और आचार्यों में पिता सौ गुना सो इस कथन के अनुसार उपाध्याय से अधिक आचार्य है तिससे भी पिता अतिशय बड़ा इससे पिताकोही यदि मुख्य कहा चाहै सोन

कहिना चाहिये क्योंकि ऐसीअतिशय मुख्यता आचार्यमें भी कही है यथा (उत्पा दकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदःपिता) किंतु देह उत्पन्न करनेवाला और वेद विद्या देकर देह को योग्यता देनेवाला ये दोनों पिता होतेहैं तिनमे वेदकादेनेवाला पिताश्रेष्ठहै— तिससे पिता और आचार्य दोनों में बराबरी के सिवाय कोई विशेष लक्षण किसी. एक में न रहिरा—बल्कि गौतमनेभी आचार्यही को श्रेष्ठ गुरु कहा है (आचार्यः श्रेष्ठोगुरूणां) कि सब तरह के गुरुओं में आचार्य गुरु श्रेष्ठहै—और भी यह तर्क है कि जो ऐसे वचनों के अनुसार अतिशयित्व से ही पिता की मुख्यता बताते हो तो फिर (सहस्रमिति वचनान्मातुरेव गुरुत्वंस्यात) जिस वचन में ऊपर पिता को सौगुना कहा था उसके शेष पाठ में माता को हजार गुणा कहा है तिससे पिता को भी छोडि कर माताकोही मुख्य गुरु मानना चाहिये—भला यहभी कोई नियम नहीं रहिरा किसी वचनमें कोई बड़ा किसीमें कोई तिससे जो जो गुरु कहेगये सो सबही गुरु हैं यह मानिके ऐसी व्यवस्था लगानी चाहिये कि इन सबही की पत्नियों का गमन करना गुरु दारगमन मानाजाय तो यह व्यवस्था निर्दूषित होजाय=सुनो ये सब तर्कें तुम्हारी ठीक हैं तथापि गर्भ में बीज धरना यह सबसे बडी बातहै इसीलिये (नि षेकादीनिकर्माणि) इत्यादि मनुका वचन जो हम लिखचुके उसमें मनुने बीजबोने वाले पिताकाही गुरुत्व प्रतिपादन किया है और किसी का अधिकारही उसमें नहीं पहुँचताहै—और तुमने जो व्यास और गौतमके वचन ऊपरसुनाये सो गुरुओंकी सेवा पूजा आदि करने की विशेषता से पिता से उपरान्त गुरुओं की स्तुति प्रशंसा पर आ- रूढ हैं॥ तिससे गर्भाधानकी प्रधानता द्वारा पिता का गुरुत्व दर्शानेवाले मनुके वचन से यह ठीकभया कि पिताही मुख्यगुरु है औरोंको अमुख्य गुरु समझना—इसीहेतुसे— वसिष्ठने (आचार्य पुत्रशिष्यभार्यासुचैवं• इत्याचार्यदारेष्वातिदेशिकं गुरुतल्पप्राय- श्चित्तमुक्तं) इसवचनमें एवं कहिकर आचार्यकी स्त्रियाँ भोग करने पर गुरुतल्प प्राय- श्चित्तका अतिदेश उतार दियाहै—तैसेही शातकर्णी आदि ग्रन्थकारोंनेभी (आचार्या देस्तुभार्यां सुगुरुतल्प व्रतचरेत) इत्यादि वचनों से कहा है कि आचार्य आदिकी भार्याओं से संगम करने वाला गुरुतल्प का व्रत करै कि जैसा मुख्य पितारूपी गुरु की स्त्रियां भोगने वालेको उपदेश किया गया—अब सोचो कि जब—ऐसी दशापरभी आचार्य आदिको मुख्य गुरु समझा जाय तो वही प्रायश्चित्त इसमें पहुँचै जो मुख्य गुरु सम्बंधी उपदेश किया गया है॰ तिससे यह दोष खड़ा होता है कि आचार्य आदि के नाम पर अति देश जो उतारागया सो अनर्थक रहिरै—इन्हीं सब कारणों से साफ

साफ पिता की ही स्त्रियां कहिकर नियम बाँधा है (पितृदारान्समारुह्यमातृवर्ज्यं नराधमः) कि जो कोई अधम नर निज माता को छोड़ि पिता की अन्य दाराओं पर चढ़िके इत्यादि० सो गुरुदार गामी कहाता है=ऐसाही=यट्त्रिंशन्मत में कहा है कि (पितृभार्यांतुविज्ञाय सवर्णांयोऽधिगच्छति) पिता की सवर्णाभार्या को जानि के अधिगमन करै इत्यादि० सो गुरु दार गामी होता है— इन वचनोंसेभी निषेक गर्भाधान करने वाला पिताही मुख्य गुरु ठहरा ॥ ० ॥ यह गुरुत्व जो पिता पर आरूढ़ हुआ सो चारो वर्ण में अविशिष्ट एकसा समुझना क्योंकि गर्भाधान सभी वर्णों में एकसा होताहै — इन कारणों से (सविप्रो गुरुरुच्यते) गर्भाधान वाले मनु के वचन मे यह विप्र शब्द जो आयाथा सो भी एक मुख्यता का उपलक्षण है॥ तिससे पिताकी पत्नी गमन करनाही महापातक है (यहाँ निज जननी से उपरान्त विमाता आदि का चर्चा है इसी लिये माता शब्द नहीं कहा पिता की पत्नी शब्द कहा गया) गमनका अर्थ भी चरम धातुके विसर्गतक सिद्ध होताहै कि जिसने वीर्य भी गिराया हो—इसी हेतुसे यह नियम है कि वीर्यपात से पहिले जो लौटि परा हो तो महापातक नहीं सिद्ध होता है अर्थात् पातक सिद्ध होता है तिसके भी दो भेद हैं कि एक तौ इच्छासहित पास पहुँचा दूसरे जो इच्छा विना पास जा पहुँचा हो इसभेदके अनुसार आगे इसी अधिकोक्तिमें बारह और छवर्षके दो जुदे प्रायश्चित्त कहेजायँगे मरणांतिक नहीं अत्रोक्तप्रायश्चित्तानांविभागः—मुख्य गुरु जो पूर्वोक्तव्यवस्था से पिता ठहिरा तिसकी अन्य पत्नी में जानिकर वीर्य सींचने से महापातक होताहै उस महापातक में वही दोनो प्रायश्चित्त सूचित हुयेहैं कि जिनको इसी दोसौउनसठि २५९ मूलश्लोक से कहिचुकेदोनों मरणांतिक विधान हैं दोमें से कोई एक अनुष्ठान कियाजाय० कदाचित् विनाजाने धोखा आदि से वीर्यपात किया हो तिसके लिये मरणांतिक नहीं किन्तु बारह वर्षकी व्रतचर्या है सो आगे बढ़िकर शंखजीके वचन में देखो— परन्तु ठेठ जननी में अज्ञानता आदि धोखे से भी वीर्यपात करने पर वही दोनो मरणांतिक प्रायश्चित्त है—किन्तु जननी की सौति जो पिता और जननी की सवर्णा हो या केवल पिता की सवर्णा हो या केवल जननी की सवर्णा हो या जननी से उत्तम वर्णा हो या पिता से भी उत्तम वर्ण की हो तिसमें जानि के वा इच्छासे वीर्यपात करनेपर वही दोनो मरणांतिक प्रायश्चित्त हैं (अर्थात् नीचेवर्ण की विमाता के भोग मध्ये अगिली अधिकोक्ति में व्यवस्था कही जायगी) यहां केवल जननी और सवर्णा तथा उत्तमवर्णा सौतिका प्रसंगहै इसी मध्ये यट्त्रिंशन्मत

का यह वचन है कि (पितृभार्यांतुविज्ञायसवर्णांयोऽभिगच्छतिजननींचाप्यविज्ञाय नामृतःशुद्धिमाप्नुयात) पिता की भार्या सवर्णा को जानिके जो गमन करता है या जननी को विनाजाने सो मरजाने विना शुद्धि नहीं पाताहै ॥ कदाचित् कोई जननी में इच्छासाथ गमन करै तिसके लिये वशिष्ठ का दर्शाया प्रायश्चित्त है=यथा=नि-ष्कालकोघृताभ्यक्तोगोमयाग्निनापादप्रभृत्यात्मानमवदाहयेत्=अर्थात्–सबदेहके रोम और बाल मुड़ाये घीलगाये गऊ के गोबरवाले कंडों की अग्नि के समूह में पैरों को आदि लेकर थोड़ा थोड़ा देह क्रमसे सब जलावै= जननी या जननीकी सौति सवर्णा या उत्तम वर्णा में कामना के विना भी बारबार मोहसे अभ्यास गमन होने में यही प्रायश्चित्त है जो वशिष्ठ ने कहा (सवर्णा और जननी दोनों के शेष प्रायश्चित्त जो मरणांतिक नहींहैं सो आगे शंखके वचन में देखना) और सवर्णा विमाता जो व्य-भिचारिणी हो तिसके मध्ये अगिली अधिकोक्ति के प्रारम्भसे देखो ॥ शंका क्योंजी (मातुःसपत्नींभगिनीमाचार्यतनयांतथाआचार्यपत्नींस्वसुतांगच्छंस्तुगुरुतल्पगः) माता की सौति•बहिन•आचार्य की बेटी • आचार्य की पत्नी• अपनी बेटी• इनको गमन करते हुये भी गुरुतल्पग होताहै–इस वचनमें माताकी सौति पर भी अतिदेश उतारा गयाहै तिससे सौति के गमन में उपदेशक प्रायश्चित्त ठीक नहीं समझाजाताहै= सुनो अभी जो यद्वशिष्ठमतका वचन लिखा गया है उस मे माताकी सौति सवर्णा कही तिससे इस वचन में हीन वर्णा सौतिका अभिप्राय ठहरा तिसपर अतिदेशका उतारना भी विरोध नहींहै ॥ ० ॥ ये प्रायश्चित्त और नियम जो कुछ कहे गये सो सब मुख्यही पुत्रपर आरूढ है क्योंकि और जो अनेक तरह के बनाये हुये नकली पुत्र होतेहैं सो केवल पुत्रोंवाले कार्यही करनेका अनुकल्प होतेहैं ठीक ठीक पुत्रत्व उनमें नहीं होता=यथाहमनुः=क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादशयथोदितान पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः=अर्थात्–क्षेत्रजआदि जो ग्यारहपुत्र गिनाये तिनको मनीषी लोग पुत्रके प्रतिनिधि इसलिये कहते हैं कि संसारी कामधंधे लोप न होजायँ॥०॥ माता और विमाता आदि जो पिता की पत्नी ऊपर कही गईं तिनमें जो स्त्री पुरुष दोनोंकी चाहना से परस्पर संगम हुआ हो तहां एकही प्रायश्चित्त है जो इसी दोसौ उनसठि २५९ मूल श्लोक में पूर्वार्द्ध से कहा गया=जहां पुरुष ने आपही उत्साह दिलाकर संगम होने पर स्त्री को उतारू किया हो तहाँ भी एक प्रायश्चित्त है जो इसी दोसौ उनसठि के उत्तरार्द्ध से कहा गया क्योंकि पाप की चाहना में अधिकता होनेसे प्रायश्चित्तका बड़ापन होताहै=जहाँ=स्त्रीने स्वतः पुरुष को उत्साह देकर सं-

गम किया हो तहाँ ऐसे पुरुषको मनु वचनके अनुसार दोमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त देना चाहिये यथाह मनुः (गुरुतल्प्योऽभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये सूर्मीं ज्वलतीं वाश्लिष्यमृत्युनासविशुध्यति) अर्थात् गुरुतल्प गामी अपनापाप सुनाइ के तपे हुये लोहेके शयन पर सोवै या दूसरा यह कि लोहेकी बनी स्त्री जलती हुईको लिपटाइ के मौतही से वह शुद्ध होताहै) इन दोमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त जो मौजूद दशाके अनुसार ज्ञानमानों के विचार में आवे सो कराया जाय ॥ ० ॥ यह व्यवस्था एक जुदीहै कि जैसा शंखने द्वादश वार्षिक प्रायश्चित्त कहाहै=अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः एककालंसमश्नीयाद्वर्षेतुद्वादशेगते रुक्मस्तेयीसुरापश्चब्रह्महागुरुतल्पगः व्रतेनैतेनशुद्ध्यंतिमहापातकिनस्त्विमे=अर्थात्– धरती में लेटे जटा रखावे पत्ते मूल फल भोजनकरे सोभी नियमसे एकहीवार भोजन करे अन्न आदि कुछ न खाय इस रीतिसे बारहवां वर्ष बीति जानेपर इस व्रतसे ये सब इतने महापातकी शुद्ध होते हैं कि सोना चुरानेवाला॰ सुरापीनेवाला॰ ब्रह्म हत्यारा॰ गुरुदारगामी भी–सो यह शंखोक्त सर्वसामान्य प्रायश्चित्त भी यहां गुरुदारगामी के लिये उस दशापर विचारना कि समवर्णा या उत्तम वर्णा पिता की भार्या इच्छा बिना किसी धोखे आदि से भोगी हो–इसीमें जो कामना से संगम करनेपर उतारू होकर वीर्य सींचने से पहिले लौटि गयाहो तिसकेलिये यही प्रायश्चित्त आधा किन्तु छेवर्षका विचारना–और इसीमें जो इच्छा बिना संगम करने पर उतारू होकर वीर्यपात से पहिले लौटि परा हो तिसके लिये चौथाई किन्तु तीनि वर्षका यही प्रायश्चित्त देना चाहिये=और= यही प्रायश्चित्त पूरा बारह वर्षका उसको देना चाहिये जो अपनी खास जननी मे कामनासे उतारू होकर वीर्यपात से पहिले घूमि गयाहो॰यदि उसी जननी में कामना के बिना उतारू होकर वीर्यपात से पहिले घूमिगया हो तिसके लिये यही प्रायश्चित्त आधा छे वर्षका देना चाहिये इत्यादि कुछ और भी जैसी ओछी दशा हो तैसी ओछी अवधि चाहिये सो सब अगिली आविकोक्ति में ब्योरेवार कल्पना कीजायगी बल्कि पिताकी सवर्णा भार्या जो व्यभिचारिणी हो तिसके भी संगम का प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥ ० ॥ जो कि संवर्त्तने वीर्य सींचने से पहिले लौटिजाने मध्ये बहुत छोटा प्रायश्चित्त कहाहै कि (पितृदारान्समारुह्यमातृवर्जंनराधमः इत्यादिनासमारोहणमात्रेतप्तकृच्छ्रउक्तःतहीनवर्णापितृदारेषुरेतःसेकादर्वाग्द्रष्टव्यः) अर्थात्–कोई अधमनर माताके उपरान्त पिताकी दाराओं पर चढि कर फिरजाय इत्यादि पूरे वचन से चढ़ने मात्र में तप्त कृच्छ्र व्रत करना कहाजिसकी साधना सिर्फ बारहदिनमें होतीहै–सो यह

प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना कि जिसने पिता से हीने वर्णवाली भार्याओंमें संगम करनेपर उतारू होकर वीर्यपातसे पहिले छोड़िदिया किन्तु पूरा संगम न करने पाया हो-ये सब नियम ब्यौरेवार अगिली अधिकोक्ति में क्षत्रिया वनेती शूद्रा जो पितासे ओछे वर्णकी विमाता हों तिनके जुदेजुदे प्रायश्चित्त पूरे और ओछे भोगभेद से तथैवइच्छा और अनिच्छा वा परस्पर इच्छाके भेदसे भी कहे जायँगे-अर्थात् गुरु दारा भोग संबंधी पातक भेद अनेक अभी उपरालुहैं कि जिनके प्रायश्चित्त इस अधिकोक्ति में नहीं कहे सो सबअगिली में दर्शावेंगे॥ २५९ ॥

(गुरुतल्पातिदेशादिप्रायश्चित्तानि)

प्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रंसमावागुरुतल्पगः। चांद्रायणंवात्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम् २६० ॥

अर्थः-अथवा गुरुतल्पगामी कृच्छ्प्राजापत्य तीन वर्ष करै॥ या तीन महीना चान्द्रायण करै और वेदकी संहिता भी अभ्यास करै=अर्थात्-इस ग्रन्थ के अन्तमें सभी अनुष्ठानोंके स्वरूप कहे जायँगे तहां कृच्छ्प्राजापत्य नामका व्रतभी कहाजाय गा तिसको तीनवर्ष करै (अत्र समाः इत्यमराचार्यमतेन वर्षवहुत्वेज्ञेयः) या तीन महीनामें तीन चान्द्रायण व्रत यथोक्त विधिसे पूरे करै उन्हीं तीन महीना तक वेदकी संहिता को बारम्बार पाठ करतारहे किन्तु नियत महीनोंमें पाठकी जितनी आवृत्ति होसकें सो निरन्तर करै तब शुद्धहोय• विशेष ब्योरा अधिकोक्तिमें देखो॥ २६०॥

२६० अधिकोक्तिः (इस प्रकरणमें सर्वत्र गुरुशब्द को पिताही समझना) यह तीनिवर्षका प्राजापत्य भी उसकेलिये विचारना जो ब्राह्मणीका पुत्र होकर पिताकी शूद्रापत्नी इच्छा सहित भोगै किन्तु अनिच्छासे धोखा आदि में वीर्यपात करने पर एकही वर्षका प्रायश्चित्तहै सो आगे वढ़कर मनु और सुमन्तु के वचनों से देखना काँटोंके वृक्ष वाली शाखा बगल में दाबिके सोउना आदि कहेंगे तथैव उसके लिये विचारना जो ब्राह्मण पिताकी वनेती भार्यामें धोखेसे एकवार गमनकरै (आगेइसी अधिकोक्तिके बीचमें (गमनेगुरुभार्यायाःपितृभार्यागमेतथा) यह वृद्धमनुका वचन देखो-उत्तरार्द्ध मूलश्लोकसे तीनि महीनेका उसके लिये विचारना जो पिताकी सवर्णापत्नी व्यभिचारिणीहो तिसको बिना जाने धोखामें गमनकरै-जो इसी सवर्णा व्यभिचारिणी से इच्छा साथ चाहिके गमन करै तिसके लिये उशना का निर्मित किया प्रायश्चित्त देखै=यथा=गुरुतल्पाभिगामी संवत्सरंब्रह्महत्याव्रत वराषासान्वा तप्तकृच्छ्रं चरेत्=अर्थात्-गुरुतल्पगामी एकवर्ष भर ब्रह्म हत्या मे कहा व्रत करै या

एक छमाही भर तप्तकृच्छ्र करे ॥ ० ॥ जिसने आप ब्राह्मणीका पुत्रहोते पिताकी स-त्रिया भार्या जानिबूझि गमनकरीहो तिसके लिये दोसौ बत्तीस मूलश्लोक में उतारे हुये गुरुतल्पके अतिदेश हेतुसे बारहवर्षका पौना नौवर्ष प्रायश्चित्त विचारना होगा (इन बारहवर्षों का नियम इससे पहिली अधिकोक्ति के अन्त में लिखि चुके तहां देखो अधःशायी जटाधारी इत्यादि शंखके वचनसे) उसीकी पौनी नौ वर्ष यहां स-मझनी• इसपर एक दलीलहै कि यहांपर क्षत्रिया भार्याके गमनमध्ये नौवर्ष नियत करीगई और (मातुःसपत्नींभगिनीमाचार्यतनयांतथा) इस दोसौ बत्तीसके श्लोक में माताकी सौति सामान्य भावसे कहीहै तिसका हेतु यहां क्षत्रिया सौति पर घटाया गया क्या कारणहै सो कहो- सुनो इस दोसौ बत्तीस वाले श्लोक में सामान्य वचन होनेपर भी सवर्णा गुरुभार्याका विषय नहीं मानिसक्तेहैं क्योंकि अभी इससे पहिली अधिकोक्तिमें सवर्णा गुरुभार्याके इच्छा सहित गमन मध्ये मरणांतिक प्रायश्चित्त कहिचुके और कामनाके बिना गमनहोनेमध्ये शंख वचनसे बारहवर्षका कहिचुके तिससे दोसौ बत्तीस मूलश्लोक में जो माताकी सौति कही सो क्षत्री आदि हीन वर्णा की समझनी कि जिसके भोगमध्ये बारहवर्षों का पौना प्रायश्चित्त कहा (इस बात का निर्णय पहिली अधिकोक्तिमें भी निरूपिचुका तहां शंका वाले पाठको देखो) और जो इसी क्षत्रिया विमातामें कामनासे बारम्बार का अभ्यास करै तिसके लिये कण्वस्मृतिके अनुसार मरणांतिक प्रायश्चित्त चाहिये=यथाह कण्वः=मत्यागत्वा गुरोर्भार्यांपुनःक्षत्रसुतांद्विजः॥ अंडाभ्यांरहितंलिंगमुत्कृत्यसमृतःशुचिः=अर्थात्=ब्राह्मण अपने पिताकी भार्या जो क्षत्री की बेटीहो तिसको दुबारा इच्छा सहित गमन करै सो पहिले दोनों आँडकाटै फिर लिंग काटै तब मरनेसे शुद्धहोय (यद्यपि इस वचन में ऐसा अर्थभी लगताहै कि पिताकी सवर्णा भार्याको एकवार या पिताकी क्षत्रिया भार्याको अनेक वार जानिबूझि गमनकरै सो इसमें भी पूर्वोक्त नियमोंसे विरोधनहीं है क्योंकि सवर्णाके मध्ये लिंग काटना पहिले भी कहिचुके है सो एकवार में सम-झना जो क्षत्रियाके मध्ये कहा सो अनेकवारके अभ्यासमें समझना और इसीसे प्र-योजन यहां विशेषहै) इसी क्षत्रिया विमाताको अज्ञानतासे एकवार वा अनेकवार भोगने मध्ये जो प्रायश्चित्त है सो आगे इसी अधिकोक्ति में यमके और जातूकर्ण्य के वचनोंसे जुदे दोनोंको देखो ॥ ० ॥ इसी व्यवस्थामें यह नियम है कि जब कोई पातकी लिखे प्रायश्चित्तको न करना चाहे तब उस प्रायश्चित्तके बदले यही दंडहै कि जैसा दोसौ इकतिस और दोसौ बत्तीस और तेतीस मूलश्लोकों में योगीश्वर ने

कहा है (छित्वालिंगंवधस्तस्यसकामायाःस्त्रियाअपि) कि उन श्लोकों वाला कोई अपराधी यदि प्रायश्चित्त करना अस्वीकार करे तौभी उसका लिंगकाटिके प्राणांत वध कियाजाय यही दंड और यही प्रायश्चित्त है (यदि स्त्रीने अपनी ओरसे उत्साह देना आदि कामना खड़ी करीहो या दोनोंकी परस्पर इच्छासे संगम हुआहो तहां उस स्त्री का भी योनिच्छेदन पूर्वक वधकिया जाय अर्थात् जहां पुरुष जोरावरीसे स्त्री की इच्छा बिना कामकरे तहां स्त्री का वध नहीं चाहिये ॥ ० ॥ जहां कहीं पिता के बनेनी भार्याहो तिसको ब्राह्मणी का पुत्र इच्छा सहित भोगे तहां छवर्षका प्रायश्चित्त चाहिये—इसी आशयसे यह स्मृत्यन्तर वचनहै कि=ब्राह्मणीपुत्रस्यक्षत्रिया यांमातरिगमनेपादहान्याद्वादशवार्षिकमेवमन्यवर्णास्वपि=अर्थात्—ब्राह्मणीकापुत्र अपनी विमाता क्षत्रिया में जो गमन करे तिसको चौथाई कम करिके बारह वर्ष वाला जो वर्ष का प्रायश्चित्त है (मरणांतिक नहीं) ऐसेही अन्य वर्णों की विमाता में समझना कि ब्राह्मणी के पुत्र ने पिता की बनेनी भार्या भोगी हो तहां दो चौथाई कमी करिके छे वर्ष का प्रायश्चित्त कराया जाय॰ ऐसेही ब्राह्मण पिता की शूद्री भार्या हो तिसको ब्राह्मणी का पुत्र भोगे तहां तीन वर्ष का प्रायश्चित्त कराया जाय—यहां तक ब्राह्मणी के पुत्र की व्यवस्था पूरी होचुकी॰अब क्षत्रिया आदि के पुत्रों की व्यवस्था जुदी जुदी कही जायगी॰ तिसके मध्ये सर्वत्र यहयाद राखो कि पहिली अधिकोक्ति में ठेठ जननी और सवर्णा विमाता की व्यवस्था जो कहिचुके सो सबके लिये चारों वर्णों में बराबर है दृष्टान्त,जैसे सत्री पिता के दूसरी क्षत्राणी भार्या हो तो वह सवर्णा विमाताहुई या शूद्र पिताके दूसरीशूद्री हो तो सवर्णा विमाता हुई या वैश्य पिता के दूसरी बनेनी हो तो पुत्रों की सवर्णा विमाता हुई इसी दृष्टांत से अनुलोम प्रतिलोम वर्णसंकर जातियों में भी समझना यह चर्चा एक याद रखने के प्रसंग से किया गया ॥ ० ॥ जैसी ऊपर ब्राह्मणी के पुत्रकी व्यवस्था कही तैसे जो क्षत्रिया माता का पुत्र होकर ब्राह्मण पिताकी बनेनी भार्या भोगे तिसको नौवर्ष का प्रायश्चित्त विचारना॰ जो वही पुत्र अपने ब्राह्मण पिता की शूद्री भार्या भोगे तिसको छः वर्षका प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ इसी न्याय के अनुसार बनेनी के पुत्र की व्यवस्था है कि जो बनेनी का पुत्र होकर अपने ब्राह्मण पिताकी शूद्री भार्या भोगे तिसको भी नौवर्षका प्रायश्चित्त जानो—परन्तु जो वही बनेनी का पुत्र अपने ब्राह्मण पिता की दूसरी भार्या बनेनीको बारम्बार के अभ्यास पूर्व इच्छा सहित भोगे तिसको मरणांतिक प्रायश्चित्त है=तदाह लौगाक्षिः=गुरो

भार्य्यांतुयोवैश्यां मत्याभच्छेत्पुनःपुनः लिंगाग्रंछेदयित्वातु ततःशुद्धेत्सकिल्बिषात्= अर्थात् जो पिता की बनेनी भार्याको जानि बूझि बारम्बार भोगै सो लिंगका समग्र भाग कटवाइके उस पापसे विशुद्ध होय (यही व्यवस्था अनंतर उक्त क्षत्रिया पुत्र में भी जोड़िलेनी कि जो क्षत्रिया का पुत्र अपने ब्राह्मण पिताकी दूसरी भार्या क्षत्रिया को जानिबूझि बारम्बार भोगै सोभी लिंग कटाय के शुद्ध होय• और यही व्यवस्था इसी रीति से शूद्री के पुत्र में भी जोड़ि लेनी) और वही बनेनी का पुत्र जो ब्राह्मण पिता की शूद्री भार्या को जानि बूझि कामनासे बारम्बार भोगै तिसके लिये बारह वर्ष का प्रायश्चित्त है कि जैसा उपमन्यु ने कहा=पुनःशूद्रयां गुरोर्गत्वाबुद्धाविप्रः समाहितः ब्रह्मचर्यमदुष्टात्मा सचरेद्द्वादशाब्दिकम्=अर्थात् बारम्बार पिता की शूद्री भार्यामें ज्ञान सहित गमन करिके वह बारहवर्ष का ब्रह्मचर्य अच्छाचित्तलगा कर साधै तब शरीर उसका शुद्ध होय (यद्यपि इस वचन में कर्त्ता का उद्देशक विप्र शब्द है तथापि यहाँ वैश्य का प्रयोजन है क्योंकि ब्राह्मण के लिये इसी २६० के मूल श्लोक द्वारा तीनिही वर्ष नियत होचुके हैं तिससे) और बनेनी का पुत्र होकर पिता की सवर्णा भार्य्या भोगै तिसका नियम पहिली अधिकोक्ति में हो-चुका है कि सवर्णा या उत्तमवर्णा विमाता भोगै तिसको मरणांतिक प्रायश्चित्तभी उसी अधिकोक्ति में लिखिचुके ॥०॥ ब्राह्मणी का पुत्र होकर जो क्षत्रिया विमाता में अज्ञानतासे धोखेमेंगमनकरै तिसकेलिये यमकाकहा प्रायश्चित्तहै=यथाहयमः=का लेऽष्टमेवाभुंजानोब्रह्मचारीसदाव्रती स्थानासनाभ्यांविचरंस्त्रिरह्नोभ्युपयन्नपः अधः शायीत्रिभिर्वर्षैस्तदपोहेतपातकम्=अर्थात् तीनिवर्षतक चारघड़ीदिनसेरहेपरआठवां समय होता है तिसमें भोजन का एक बार नियम राखै इन्द्रियों को जीति कर ब्रह्म-चारी बनै और ब्रह्मचर्यके व्रतभी साधै और स्थान तथा आसन इन दोनों को छोड़ि के विचरते हुये दिन में त्रिकाल स्नान करते हुये धरती में सोवै तब तीनि वर्षों से वह पातक दूर होय=कदाचित्=इसी ने एकबार से उपरालू दुबारा आदि अज्ञानता से ही गमन कियाहो तिसके लिये जातूकर्ण्य का कहा प्रायश्चित्त विचारना=यथाह जातूकर्ण्यः=गुरोःक्षत्रसुतांभार्य्यांपुनर्गत्वात्वकामतः अंडमात्रंसमुत्कृत्यशुद्ध्येज्जीवन्मृतो-पिवा=अर्थात् पिता की भार्या जो क्षत्री की बेटी हो तिसको एक बार से उपरालू दुबारा आदि बिना चाहे गमन करै सो अंड पर्यंत मात्र लिंग खूब काटिके अर्थात् आंडों को छोड़ि सिर्फ आंडों के ऊपर से लिंग मात्र काटि के मरजाय या जीवता रहिजाय दोनों दशा में शुद्ध होजाता है—इस वचन में निपट मर जाना नहीं कहा

ने उत्साह देकर पुरुष को मोहित कियाहो तहां पुरुष अति कृच्छ्र व्रत करे॰ ये सब उसीदशामें समझने जहां संगम न हुआहो किन्तु वीर्य सींचने से पहिले लौटिपरेहों॰ इन प्रायश्चित्तोंमें कोई महीना आदिकी अवधि नहीं कही तिससे इनकी वही अवधि समझनी कि जितने दिनों मे एक अनुष्ठान पूरा होताहो जैसा चान्द्रायण एक महीना भरमें होताहै कृच्छ्र अतिकृच्छ्र ये बारह दिनमें होतेहैं॥ ० ॥ जो ब्राह्मण अपने पिताकी बनेनी भार्यामें जानिबूझि संगम करने पर कामनासे उतारू होकर वीर्य सींचनेसे पहिले घूमिगयाहो तिसके लिये भी कण्वमुनिका कहा प्रायश्चित्त है=यथाह कण्वः=तप्तकृच्छ्रं पराकंचतथासांतपनंगुरोः भार्यांवैश्यांसकृद्गत्वाबुद्ध्यासमचरेतद्द्विजः=अर्थात्–ब्राह्मण अपने पिताकी वैश्याभार्या के पास एक बार ज्ञान सहित जाइके तप्तकृच्छ्र या पराक या सांतपन व्रतकरे–इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्थाहै कि जहां पुरुषने आपही उत्साह दिलायाहो तहां पराक व्रतकरे जिसको स्त्रीने उत्साह देकर मोहित कियाहो सो सांतपन व्रतकरे जहां दोनोने परस्पर प्रीति उभारीहो तहां पुरुष तप्तकृच्छ्र व्रतकरे॰ये सब उसी दशापर आरूढहैं कि संगम न होने पायाहो वीर्य सींचनेसे पहिले जुदे होजायँ=इसी प्रकार–जो कामना के विनाही न जानिकर संगम करनेपर उतारू होकर वीर्य सींचनेसे पहिले फिरजाय तिसके लिये प्रजापतिका वचनहै=यथाह प्रजापतिः=पंचरात्रतुनाश्नीयात्सप्तरात्रंवातथैवच वैश्यांभार्यांगुरोर्गत्वा सकृदज्ञानतोद्विजः=अर्थात्–ब्राह्मण निज पिताकी बनेनी भार्या पास एकबार विना जानेबूझे जाइके निपट निराहार व्रत पांच या सात या आठदिन करे–इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्था है कि जिसको स्त्रीने उत्साह दियाहो सो पांच निराहार करे जहां दोनो ओरसे परस्पर प्रीति उठीहो तहां पुरुष सात निराहार करे जिस पुरुष ने स्त्री को उत्साह दियाहो सो आठदिन तक निरन्तर निराहार करे॰ये सब उसी दशापरहै कि संगम न हुआहो वीर्य सींचनेसे पहिले घूमि जायँ॥ ० ॥ जो ब्राह्मण अपने पिता की शूद्री भार्यामें जानि बूझि कामनासे उतारू होकर वीर्यसींचनेसे पहिले विचलि जाय तिसके लिये जाबालिमुनिका वचन है=यथा=अतिकृच्छ्रं तप्तकृच्छ्रं पराकंचतथैवच गुरोःशूद्रांसकृद्गत्वाबुद्ध्या विप्रःसमाचरेत्=अर्थात्–ब्राह्मण अपने पिता की शूद्रीभार्या पास जानिबूझि कामनासे एकवार जाइके अतिकृच्छ्र या कृच्छ्र या पराक व्रत आचरे–इसमे भी इसरीतिसे व्यवस्थाहै कि जिसको स्त्रीने मोहित कियाहो सो अतिकृच्छ्र करे जहां दोनोकी इच्छा से प्रीति उठीहो तहां पुरुष तप्तकृच्छ्र करे जिस पुरुषने स्त्रीको आपही रावत दिलाईहो सो पराक नामा व्रतकरे॰ ये सब उसी

दशापर समझने कि जहां संगम न होनेपायाहो–इसीप्रकार–जहाँ कामनाके विना संगम करनेपर उत्साह होकर वीर्य सींचनेसे पहिले घूमिगयाहो तहां दीर्घतमस् नाम ऋषिका वचनहै सो देखो=यथा=प्राजापत्यंसांतपनंसप्तरात्रोपवासकम् गुरोःशूद्रयांस ऋद्गत्वाचरेद्विप्रःसमाहितः=अर्थात्–ब्राह्मण अपने पिताकी शूद्री भार्या में कामना के विना एकबार पहुँचिके प्राजापत्य करे या सांतपन करे या सात दिन निराहार उपवास करे–इसमें यह व्यवस्था है कि जिस पुरुष को स्त्रीने उत्साह देकर मोहित कियाहो सो प्राजापत्य करे जहां दोनो ओरसे परस्पर प्रीति उठीहो तहां पुरुष सांतपन व्रतकरे जिस पुरुषने स्त्री को आपही उत्साह दिया हो सो सात दिन निराहार उपवास करे॰ये सब उसी दशापर होसकतेहैं कि जहां संगम न होने पाया हो॥ ०॥ इन्हीं प्रकारोंसे और भी जो स्मृतियोंके वचन उपराल मिलें तिनकी भी विषयभेदा व्यवस्था ऊहा करनी चाहिये=और=पुरुषोंकी तरह स्त्रियों को भी महापातक बराबर है अर्थात् जिन स्त्रियोंके साथ जिन पुरुषोंको महापातक होना कहा उनपुरुषों के साथ उन स्त्रियोंको भी बराबर महापातक लगता है=तथाच कात्यायनः=एषदोष पृचशुद्धिश्च पतितानामुदाहृता स्त्रीणामपिप्रसक्ताना मेषएवविधिःस्मृतः=अर्थात्–यह दोष और उस दोषकी शुद्धि भी पतितों की कही, और यही विधि उनमें फँसी हुई स्त्रियोंको भी होतीहै–इस नियमसे कि जो स्त्रियां काम की चाहना से उत्साह होकर पूरे महापापकी दशातक पहुँचीहो तिनको भी मरणांतिक प्रायश्चित्त वही है कि जो पुरुषको कहिचुके इसमें कुछ भेद नहींहै–इसीलिये योगीश्वरने दोसौबत्तीस तेंतीस श्लोकों में (छित्वालिंगंवधस्तस्य सकामायाःस्त्रियाअपि) पहिले पुरुष को वध प्रायश्चित्त कहिके कामातुर स्त्रियोंकोभी वही मरणांतिक विधिकहीहै॥ ०॥ जो स्त्री कामातुर होने विना अनिच्छा से इन पुरुषों के फंद मे आगई हो तिसके लिये मरणांतिक प्रायश्चित्त नहीं है परन्तु मनु का कहा नियम है=यथा= एतदेव व्रतंकार्यंयोषित्सुपतितास्वपीति द्वादशवार्षिकमेवार्द्धंकल्पनीयम्=अर्थात्–यही व्रत बारह वर्ष का पतित स्त्रियों को भी कराना चाहिये इस नियम से बारह वर्ष का आधा छः वर्ष कल्पना किया जाय (क्योंकि स्त्री और बालक बूढे आदिको आधा व्रत कराने का नियम पहिले दृढ होचुका है) यह सब नियम यहां तक मुख्य महापातकपर कहा गया जिसका लक्षण २२७ दोसौ सत्ताइस मूल श्लोकमें गुरुतल्प गामी कहा गयाथा॥०॥ उसके बादि दोसौ इकतिस २३१ मूल श्लोकमें मित्र की भार्या कुमारी कन्या आदि स्त्रियों मे गमन करना भी गुरुतल्प के समान पाप

किन्तु दैवेच्छा से जीवते बचिजानेका भी विकल्पहै तिससे आंडोंका जड़से काटना भी नहीं कहा (इसी क्षत्रिया विमाता को जानि बूझि इच्छा सहित गमन करने की दोनोंदशा किन्तु एकबार या अनेक बार सध्ये दोनों प्रायश्चित इसी अधिकोक्ति की आदि में कहिचुके—और फिर भी आगे इसी अधिकोक्ति में उसका प्रायश्चित्त कहेंगे जो क्षत्रिया विमाता में गमन करने पर उतारू होकर वीर्य सींचे विना लौटिगया हो॥०॥ एवं पिता की वनैनी भार्यामें ब्राह्मणी का पुत्र होकर जो विना इच्छा के धोखा से गमनकरै तिसके लिये याज्ञवल्क्यजी ने जो इसी दोसौसादि मूल श्लोक पूर्वार्धसे त्रैवार्षिक प्राजापत्य कहा सो करवाना चाहिये और यहीप्रमाण वृद्ध मनुके वचनसे मिलताहै=तथा चवृद्धमनुः=गमनेगुरुभार्यायाःपितृभार्यागमेतथाअब्दत्रयमकामात्कृच्छ्रं नित्यसमाचरेत्—अर्थात्=गुरुकी भार्या या पिताकी दूसरी भार्या हीनेवर्ण की इच्छा विना भोगे सो तीनिवर्षतक नित्य प्रतिकृच्छ्र व्रत करताहै किन्तु वीच में अन्तर कभी न परने देय तव शुद्धहोय=और जो इसी वनैनी विमाता में अज्ञानता से वार वार गमन कियाहो तो हारीत का कहा जीवन पर्यंत ब्रह्मचर्यरूपी प्रायश्चित्त है=यथा हारीतः=अभ्यस्यविप्रोवैश्यायांगुरोरज्ञानमोहितः षडंगब्रह्मचर्यंच संचरेद्यावदायुषम्=अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिताकी वनैनी भार्यामें अज्ञानता से भूला हुआ यदि वार बार संगमका अभ्यासकरै और पीछे भेद जाना जाय तव यह प्रायश्चित्तहै कि जवतकजीवै तवतक षडंग वेद पाठ की धारणारखै और ब्रह्मचर्यसेरहै किसीस्त्रीसे संगम न करै (इसी वनैनी विमाताको इच्छा सहित भोगनेमध्ये छः वर्ष काप्रायश्चित्त ऊपर कहि चुके हैं इसीअधिकोक्ति में स्पष्टयंतरवचनहैही॥०॥ एव पिता की शूद्री भार्या में ब्राह्मणी का वेटा विना जाने गमन करै तिसके लिये मनु का कहा प्रायश्चित्त है=यथा=खट्वांगीचीरवासावाश्मश्रुलोविजनेवने प्राजापत्य चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकंसमाहितः=अर्थात्—मनुष्य की खोपड़ी लाठी आदि लकड़ी के सिरेपर जहां हड्डीका नाम है खट्वांग जो ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त में कहिचुके तिस को लिये हुये और पुराने चीथड़े या भोज पत्र आदि बक्कल पहिरे लपेटे हुये दाढ़ी मूछ आदि सब जटा रखाये हुये निर्जन वन में एकला एक वर्षतक ठीक ठीक विधि से कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करै तब शुद्ध होय—अथवा—यह नहीं तौ दूसरा सुमनु का कहा प्रायश्चित्त करै=यदाह सुमनुः=गुरुदाराभिगामीसंवत्सरं कण्टकिनींशाखांपरिष्व ज्यावः शायीत्रिषवणाभैक्षाहारः पूतोभवति=अर्थात्—गुरु भार्या में गमन करने वाला एक वर्ष भर वेरी बबूर आदि कांटों वाले वृक्ष की लदीशाखा टहनी बगल में दाबि

चिपटाय के धरती में सोवै त्रिकाल स्नान किया करै भिक्षासे पेटभरै तब शुद्धहोय—और—जो एक बार के सिवाय दुबारा तिबारा आदि बार बारका अभ्यास किया हो तो मनुका कहा प्रायश्चित है=यथा=चांद्रायणंवात्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः=अर्थात्—बार बारका अभ्यास करिके तीन महीना तक निरन्तर चांद्रायण व्रतकरै तब शुद्ध होय (इसमें यह शंका न करना कि एकबारके भोगमध्ये बारह महीनेका प्रायश्चित और बारबार के अभ्यास में सिर्फ तीनि महीने कहे क्योंकि उस एक वर्ष की अपेक्षा ये तीन महीने बहुत कठिन हैं इस हेतुसे कि चांद्रायणमें एक एक ग्रास अन्न बढ़ाया घटायाजाताहै ऐसा निरन्तर तीनि महीनेतक साधना उसकी अपेक्षा कठिन है जो एक वर्ष तककाँटों की शाखा आदि कहागया) इसी शूद्रा विमाताकी जानि बूझि कामनासे भोगने मध्ये तीनिवर्ष का प्रायश्चित्त इसी अधिकोक्तिके प्रारम्भमें और पहिलीअधिकोक्तिके अन्तमेंभी कहिचुके तहां देखौ॥०॥ और जो ब्राह्मणीका पुत्रहोकर क्षत्रिया विमातामें कामनासे जानिबूझि उतारू होकर वीर्यसींचनेसे पहिले घूमिगयाहो तिसकेलिये व्याघ्रोक्त प्रायश्चित्त है=यथाह व्याघ्रपादः=कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं चतथाकृच्छ्रातिकृच्छ्रकम् चरेन्मासत्रयंविप्रःक्षत्रियागमनेगुरोः=अर्थात्—पिता की क्षत्रिया भार्या के पास ब्राह्मणी का बेटा यदि पहुँचै सो कृच्छ्रवाअतिकृच्छ्रवा कृच्छ्रातिकृच्छ्र तीनि महीना करै—इसमें इसरीति से व्यवस्था है कि जिस पुरुष को स्त्रीने अपनी ओर से उत्साह दिलाकर मोहित किया हो तिसको तीन महीना कृच्छ्र प्राजापत्य करना चाहिये जो दोनों की इच्छा से परस्पर प्रीति उठीहो तो पुरुषको अति कृच्छ्र व्रत करना तीन महीना चाहिये जहां पुरुषही ने स्त्री को तरग़ीब दी हो तहां ऐसे पुरुष को कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत तीन महीने करना चाहिये•ये सब तीनों उसी दशापर कहे गये हैं कि जहां संगम न होने पाया किन्तु वीर्य सींचने से पहिले लौटि परेहों=इसी प्रकार—जहां क्षत्रिया विमाता में कामना के बिना किसी धोखे से संगम करने पर उतारू होकर वीर्य सींचने से पहिले बोध होजाने आदि कारणों से लौटि परा हो तहां कण्व मुनिका कहा प्रायश्चित्त है=यथाह कण्वः=चांद्रायणं तप्तकृच्छ्रमतिकृच्छ्रं तथैवच सकृद्गत्वागुरोर्भार्यामज्ञानात्क्षत्रियांद्विजः=अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिता की क्षत्रिया भार्या के पास बिना जाने बूझे एकबारभी जाइकेचांद्रायण करै या तप्त कृच्छ्र करै या अतिकृच्छ्र करै—इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्था है कि जिस पुरुषने आपही स्त्री को उत्साह दियाहो सो चांद्रायण करै जहां दोनों में बराबर प्रीति उभरी हो तहां पुरुष को तप्त कृच्छ्र करना चाहिये जहां सिर्फ स्त्री

कहा गयाथा जो समान कहिने मात्रसे कुछ नीचा समझागया है तिनमें और दोसो बत्तीस तेंतीस श्लोकों में जो जो स्त्रियां बुआ मामी आदि गिनाई जिनका गमन करना गुरुतल्प के अतिदेश में ठहिराया गया वहभी गुरुतल्प से कुछ नीचा पातक है तिनमें भी यदि कोई पुरुष वीर्य सींचे तिसके लिये भी वही बारह वर्षका प्रायश्चित्त है इस हिसाब से कि जिसने विना जाने धोखा में एकही राति गमन किया हो तिसको बारह वर्ष का आधा छः वर्ष प्रायश्चित्त दिया जाय–और जिसने एक राति से उपरान्त भी जानि बूझि बार बार ऐसा किया हो तिसको बारह वर्ष का पौना नौवर्ष दिया जाय–इसमें भी यह विशेष कर विचार है कि यद्यपि इनपापों को गुरुतल्प से कुछ न्यून कहा इसी हेतुसे प्रायश्चित्त भी कम किया गया तथापि जो इन्हीं स्त्रियों में अत्यन्त ही अभ्यास कियाहो तौफिर इसमेंभी वही मरणांतिक प्रायश्चित्त कराया जाय जो पहिली अधिकोक्ति में कहा गया इसीलिये योगीश्वर ने उसी दोसो तेंतीसमें यह कहाहै कि (लिंगंछित्वावधस्तस्यसकामायाःस्त्रियाअपि) परंतु उन श्लोकों से गिनाई हुई स्त्रियों में माता की सौति भी कही गई है तिसकी व्यवस्था पहिली अधिकोक्तिमें और वर्तमान अधिकोक्ति मेंभी ऊपरवर्णन होचुकी है तिससे विमाताले उपरान्त स्त्रियां जोइन चर्चा किये तीनि श्लोकों में हैं तिनका नियम यहां पर लिखा गया समझना और उनमें अत्यन्त अभ्यास करने वाले को मरणांतिक जो बताया तिसका प्रमाण वृहद्यमका यह वचन है=यथा=रेतःसिक्त्वा कुमारीषुस्वयोनिष्वंत्यजासुच सपिंडापत्यदारेषुप्राणत्यागोविधीयते=अर्थात्–कुमारी कन्या चाहैं किसी की भी उत्तम जातिहो और अपनी भगिनी और अंत्यजा चांडालियां और अपने सपिंडों की पुत्र वधुओंमें वीर्य सींचिके प्राण त्यागही प्रायश्चित्त है॥ ०॥ इस व्यवस्था में अंत्यजातों स्त्रियों का भोग भी गुरुतल्प के समान पातक ठहरायागया और अंत्यजाके कईअर्थ होतेहैं तिससे मिताक्षराकार ने व्यवस्था इस पर दीहै कि इस मौके पर अंगिरा मुनि के कहे अंत्यजों की स्त्रियां समझनी= यथाह मध्यमांगिराः=चांडालःश्वपचःक्षत्तासूतोवैदेहिकस्तथा मागधाऽऽयोगवौचैव सप्तैतेन्त्यावसायिनः=अर्थात्–चंडाल॰ श्वपच॰ क्षत्ता॰ सूत॰ वैदेहिक॰ मागध॰ आयोगव॰ ये सात जातें अंत्यावसायी किन्तु अन्त्यज कहाती हैं तिनकी स्त्रियों से भोगकरना अधिक अशुद्धता के हेतु से गुरुतल्प के समान महापाप ठहिरा॰ परन्तु (रजकश्चर्मकारश्चनटोवरुडएवच कैवर्तमेदभिल्लाश्चसप्तैतेंत्यजाःस्मृताः) इसवचनमें यम के कहे सात अंत्यज ये प्रसिद्ध हैं कि॰ धोबी॰ चमार॰ नट॰ वरट॰ कैवर्त॰ मेद॰ भिल्ल॰

ये सातो अत्याजाति हैं सो इनको इस ऊपरकी व्यवस्थामें न शामिल करना क्योंकि इनके मध्ये छोटा प्रायश्चित्त है सो आगे उपपातको के साथ पारदार्य परिच्छेद में देखना=और ऊपर की व्यवस्था में जिन अत्यजाओं का प्रयोजन है तिनके लिये मनुने भी बहुत बड़ा प्रायश्चित्त हेतुगर्भित वचन के द्वारा प्रकाश किया है=यदाह मनु =चांडालान्त्यस्त्रियगत्वाभुक्त्वाचप्रतिगृह्यच पतत्यज्ञानतोविप्रोज्ञानात्साम्यतुगच्छति=अर्थात्–कोई ब्राह्मण बिना जाने चाण्डाल और अन्त्यजों की स्त्री में गमन करिके याउसके हाथ से कुछ खाइके या उसस्त्रीको घरिणी बनानेके लिये प्रतिग्रह लेके पतित होजाता अर्थात् जाती धर्मसे गिरजाता है और जिसने जानि बूझि के इच्छा सहित ऐसा कियाहो सोउन्ही चडालोकी समता को पहुँचता अर्थात् निपट चडाल होजाताहै–अब इनदोनो बातको जुदीजुदी सोचो कि जो पतितहोताहै सोतो प्रायश्चित्त करिके शुद्ध होसक्ता है दूसरा जो निपट चडालोमे मिलिगया वह प्रायश्चित्तसेभी नहीं शुद्ध होताहै अर्थात् उसकेलिये कोई प्रायश्चित्त नहीहै मरजाने के सिवाय–तिससे यह व्यवस्था नियत हुई कि जिस ब्राह्मण से बिना जाने धोखेमें ये पापहुये हो सो पतितहोने के हेतुसे पतितो वाला प्रायश्चित्त पूरा बारहवर्ष साधै तब शुद्ध होय• और दूसरा जिसने जानि बूझि इच्छासहित चण्डालीसाथबहुतदिनोतक सगम या खाना पीना या घरमेरखिलेना विवाह करलेना आदि किया हो वह शुद्ध होनाचाहै तो बारहवर्षोंसे अधिक मरणांतिक प्रायश्चित्तहै तिसकोकरै क्योंकि प्रायश्चित्तकी अपेक्षासेमोतके बिना उसकी शुद्धि ससारमें नहीहै=परन्तु येदोनो बहुतबडे प्रायश्चित्त जो कहे गये सो बहुतदिनोके अभ्यासपर समझना किन्तु एकरात्रिभरके अभ्यासमें यद्यपि कई बार सगम हुआ हो तौभी ये प्रायश्चित्त न होंगे क्योंकि, एक रात्रिकेअभ्यास मध्ये मनुने तीनि वर्षका प्रायश्चित्तकहा है=यथा=यत्करोत्येकरात्रे णवृषलीसेवनाद्द्विज तद्भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यंत्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति=अर्थात्–ब्राह्मण जो पापवृष लीके सेवनसे एक रात्रिभरमे उत्पन्न करता है सो तीन वर्ष भिक्षा खाइके जप करतेहुये दूर होजाताहै•इस व्यवस्थासे यहतात्पर्यठहिरा कि चडालीका सगमआदि कोई काम जिसने बिना जाने सिर्फ एक राति भर किया हो तिसको तीनि वर्ष का प्रायश्चित्त है और बहुत दिन सेवन करने वाले को बारह वर्ष का प्रायश्चित्त है और जिसके लिये मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा उसने जो अतिकाल का अभ्यास न किया हो किन्तु जानि बूझि के इच्छा से दोही चार दिन अभ्यास करिके पछिताया हो कि मुझ को शुद्ध होना चाहिये तो उसको भी मरणांतिक प्रायश्चित्त के

बदले सिर्फ बारह वर्षका व्रत करना चाहिये कि जिससे फिर जातिमें मिलसके और प्राण हानि भी न हो परन्च बहुत दिनोंके अभ्यास में मरणांतिक जो लिखचुके वही नियम है॥ ०॥ यहां मनु के वचन में वृषली कही सोभी चांडाली समझनी क्योंकि अन्य स्मृतियों में पांच भांति की वृषली कहीं उनमें चांडाली भी गिनतीहैं) तथाच स्मृत्यंतरे=चांडालीबंधकीवेश्यारजस्थायाचकन्यका ऊढायाचसगोत्रास्याद्वृषल्यःपंच कीर्तिताः=अर्थात्–चांडाली १ बंधकी जो स्वैरिणीहो २ वेश्या ३ जो कन्याकुमारी अपनेपिताकेघर कपडोंसेहोनेलगी वह किसीको विवाहीजाय तोभी वृषलीकहातीहै ४ रजस्वला न होनेपरभी जो कन्या अपने सगोत्रीको विवाहीजाय सोभी वृषलीकहाती है ५ ये पांचवृषली कहीगईहैं (परन्तु इनमेंसे केवल चांडालीकाप्रयोजन ऊपरले मनु केवचनमेंसमझना पांचोंको नहीं क्योंकि योगीश्वरनेभी२३१ मूलश्लोकमें अत्यजामात्र कहीहै=इसके सिवाय जहां सिर्फ एकहीवार चांडाली आदि भोगी अर्थात् एकरात भर नहीं सेवन किया केवल दो घरिकामात्र संगम किया हो तिसके लिये अग्रोक्त यमादिस्मृतियों का वचन देखो=यथाह यमः=चांडालपुल्कसानांतुभुक्त्वागत्वाचयोषितम् कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम्=अर्थात्–चांडाल और पुल्कसजातियोंकी स्त्रीको जानते हुये पास जाइके या केवल भोगमात्र करिके एक वर्षभर कृच्छ्र व्रतसाधे परन्तु जो बिनाजाने पास गयाहो या केवल भोगमात्र कियाहो तौ दोमहीना के दो चांद्रायण करे (व्यवस्थापर ध्यानकरो कि चांडालियोंके पास जानामात्र या भोगमात्र दो बातें कहीं तिनमें केवल भोग तौ मुहूर्त्त भरमें निपटिजाताहै इससे अधिक सेवन कुछ न कियाहो यह तात्पर्य है और पास जाना भोग के बिना भी बैठने आदि प्रकारोंसे प्रीति जोडना यह अनेकवारके अभ्यास द्वारा एकवारके संगम की बराबर अपवित्र करसक्ता है तिससे दोनोंबात एकसी बराबर ठहरीं इसीलिये दोनो पापका एकही प्रायश्चित्त कहा केवल ज्ञान और अज्ञानताके भेदसे दोतरहके व्रतकहे॥०॥ ध्यानकरो कि जिस अत्यजा चांडाली के सम्बन्धे यह व्यवस्था सब कही तिसके साथ दोसौ इकतिस मूलश्लोकमें (सखिभार्याकुमारीषुस्वयोनिष्वत्यजासुच) भगिनी आदि और भी अनेक अगम्या लिखी गईहैं तिससे भगिनी आदिसे संगम करनेमें भी यही व्यवस्था समझिलेनी=और इस व्यवस्थामें जहां जहां केवल मरणांतिक प्रायश्चित्त कहागया तहां तहां सर्वत्र अग्निमें गिरिके जलजाना समझि लेना॰ और इसका प्रमाण यह कात्यायनका वचनहै कि=जननींचभगिनींचसखसुतांतथैवच स्नुषायां गमनचैवविज्ञेयमतिपातकम् अतिपातकिनस्त्वेते प्रविशेयुर्हुताशनम्=अर्थात्–जननी

या भगिनी या निजवेटी या वेटाकी वधू इनमें गमन करना अति पातक जानो सो इतने सब लोग जो अतिपातकी होजायँ वे अग्निमें प्रवेश करें (इस वचनके अनुसार भी यह विचार करना सूचितहै कि जननीके एकही वार गमन करनेसे अग्निमें गिरना और भगिनी आदि शेष स्त्रियोंको कईवार गमन करनेसे अग्निमें गिरना सिद्ध होताहै क्योंकि यह वार्त्ता पहिले कई स्थलोंपर निर्णय होचुकीहै कि मातृगमन महापातकहै और भगिनी आदिका संगम यह उसीका अतिदेश होने से अतिपातक है महापातक नहींहै तिससे दोनोंकी तुल्यता एकसी वरावर होनी उचित नहींहै ॥ ० ॥ इसी व्यवस्थाके विचारमें यह भी ध्यान करना कि वृहद्यमका एकवचन विशेष है यथा (चांडालींपुल्कसींम्लेच्छींस्नुषांचभगिनींसखीम् मातापित्रोःस्वसारंचनिक्षिप्तां शरणागताम् मातुलानींप्रव्रजितांस्वगोत्रांनृपयोषितम् शिष्यभार्यांगुरोर्भार्यांगत्वाचांद्रायणांचरेत) अर्थात्–चंडाली• पुल्कसी• म्लेच्छिनी•पुत्रवधू•भगिनी• सखीमहचरी वह कि जिस स्त्रीको जिस पुरुषके साथ एकसी अवस्था होने के हेतु से या औरही किसी कारण या बिना कारण भी प्रायश रहिना फिरना होताहो और मित्रकी पत्नी भी सखी होतीहै• माताकी वहिन• पिता की वहिन• निक्षिप्ता जो किसी भयादिक सन्देहसे धरोहरिके तौर सौंपीहुई अपने यहां रहितीहो•शरणागता जो देशके उपद्रव आदि कारणोंसे कुछ दिनके लिये अपनी रक्षा चाहिकर शरणमें आ टिकीहो•मामी• प्रव्रजिता संन्यासिनि आदि• स्वगोत्रा अपने गोत्र भर की कोई स्त्री हो अर्थात तीन पीढ़ी या सातशाख भीतर जहांतक परस्पर एकही पुरुषका कुल मानाजाताहो परंतु उसको स्वगोत्रा न समझनी कि जैसे एकही ऋषि गर्ग भारद्वाज आदि गोत्रवाले कहीं दूर बसतेहों तिनकी स्त्रियोंका विचार पर स्त्री गमनके प्रकरणमें आवैगा• राजा या ग्रामके ठाकुरकी भार्या• शिष्यकी भार्या• गुरुकी भार्या यहांपर गुरुशब्दसे आचार्य हीको समझना किन्तु पितानहीं• इन स्त्रियोंके पास जाइके चान्द्रायण व्रतकरै जो एक महीनामें पूरा होताहै–और एक अंगिराका यह वचनहै कि (पतितांत्यस्त्रियोगत्वाभुक्त्वाचप्रतिगृह्यच मासोपवासंकुर्वीतचांद्रायणमथापिवा) अर्थात्–पतित स्त्री जो किसी महापातक या पातकसे पतित होचुकीहो अथवा पतित जातों की स्त्रियां और अन्त्य चंडाल आदि जातोंकी स्त्रियां पास जाइके या उनके हाथ का कुछ खाइके या उनको परिग्रहमें लेकर एक महीने भर उपवास करै या चांद्रायणकरै तबशुद्ध होय–सो यह अंगिरा और वृहद्यमकी दोनो व्यवस्था गुरुतल्पके अतिदेशपर उतारी गईहैं और इनमें लिखे प्रायश्चित्तोंको उस दशापर समझना कि पुरुष अपनी अज्ञा-

नतासे भोग करनेपर उतारू होकर वीर्य सींचनेसे पहिले घूमि गया हो किन्तु पूरा भोग नहीं किया इसी तरह अंगिरा के वचन से परिग्रह में लेनेको समझि लेना कि विवाह फेरेमात्र पूरी रीतिसे न होनेपायाहो तभी तक यह थोरा प्रायश्चित्त है—और भी संवर्त का यह वचन है कि (भगिनींमातुराप्तांचस्वसारंचान्यमातृजाम एतागत्वा स्त्रियोमोहात्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत) अर्थात्—माताके उदरसे प्राप्त हुई सगी बहिन और विमातासे उत्पन्न हुई सौतेली बहिनको और इनसे पहिले जो स्त्रियां कहीं इनस्त्रियों के पास तक अज्ञान, मोह से जाइ के तप्तकृच्छ्र व्रत करै—सो यह प्रायश्चित्तभी गुरु तल्प के अतिदेश म०रे ऐसी दशा पर समझना कि विना जाने और विना चाहे अ-ज्ञानमोहसे सगम करने पर उतारू होकर वीर्य सींचनेसे पहिले ज्ञान होजानेमें लौटि गया हो क्योंकि इन सभी वचनोंमें पास जानामात्र कहाहै पूरा भोग नहीं कहा॥०॥ कदाचित् येही सब, स्त्रियां कि जिनके भोग मध्ये ऊपर से गुरुतल्प का अतिदेश उतारते चलेआते हैं उनमें जो कोई भी अत्यन्त व्यभिचारिणी हों तिनको पूरी रीति से भोगने मध्ये वही दोनों प्रायश्चित्त होंगे जो अभी ऊपर वीर्य सींचे बिना करने कहिचुकेसो इस क्रमसे किये जायँगे किजिसने उनमेंसे किसी व्यभिचारिणी को जानि बूझि कामना से वीर्य सींचा हो सो चांद्रायण करै और जिसने अपनी रिश्तेदारी को न जानिकर केवल व्यभिचारिणी समझते हुये वीर्य सींचाहो सो तप्त कृच्छ्र करै तब शुद्ध होय—इनके सिवाय—उन स्त्रियों को भोगनेमें गुरुतल्प दोषनहीं है जो सामान्य सबलोगोंके भोग निमित्त सब देशोंमें कुछ वेश्या, जन पातुर भगतानी रामजनी आदि नामों से प्रसिद्ध होती हैं तिनको यद्यपि गुरूने भोगाहो तौभी उनके भोगने से गुरुतल्प दोषी नहीं ठहिर सक्ता है जैसा व्याघ्रपाद का यह वचन है कि (जाय्युक्तपारदार्यंचकन्यादूषणमेवच साधारणस्त्रियोनास्तिगुरुतल्पत्वमेवच) अर्थात्—नट नर्तक बेड़िनी आदि जिन जातों में यह रीति प्रसिद्ध है कि अपनी स्त्रियां और बेटियाँ पराये पुरुषों को मिलाइके या उनके सन्मुख नचाइके जीविका करते हैं तिनकी स्त्रियों से संगम करना पर स्त्री सगम नहीं है तथैव उनकी कुमारियों से सगम या किसी प्रकार की छेड छाड करना कन्या दूषण के अपराध में गिनती नहीं तथैव साधारण स्त्रियां जो रामजनी भगताइन आदि नामों से सामान्य सब लोगों के भोग निमित्त से सब देशों में अवश्य कुछ होती हैं तिनका सगम गुरुतल्प दोष नहीं बल्कि गुरुतल्प के अतिदेश में भी गिनती नहीं चाहे उनको गुरु पहिले भोगिचुकाहो या न हो दोनों दशा में यह नियम है॥इसी प्रकार और भी स्मृतियों के वचन प्राय-

श्चित्त की व्यवस्था वाले मिलें जिनसे ऊँच नीच का अन्तर देखि परै तो उनकी भी व्यवस्था ऊँचे नीचे विषय भेदसे कल्पना करनी चाहिये कि जिससे कुछ विरोध न रहै॰ क्योंकि बहुधा वचनों की ग्रन्थ वृद्धि जाने के सन्देह से यहांपर नहीं लिखा तो इस न लिखनेसे भी जोवचन कहीं देखिपरें तिनको निरर्थक न समझिलेना॥ २६०॥

(इतिगुरुतल्पप्रायश्चित्तप्रकरणं)

———※———

इस प्रकरण में अगम्यागमन मात्र केवल एक विषय होनेके हेतुसे परिच्छेद भी एकही रहा अब अगिले सैंतीसके परिच्छेदमें संसर्ग दोषके प्रायश्चित्त कहे जायंगे॥

अथ पूर्वोक्त महापातकिनां सर्वसंसर्गज महापातकस्य प्रायश्चित्त प्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः सप्तत्रिंश ३७

———※———

इस परिच्छेदमें संसर्गी पुरुष के प्रायश्चित्त कहे जायंगे संसर्गी यद्यपि पांचमा महापातकी होनेसे एकही मानाजाता है तथापि यह चारप्रकार का होताहै क्योंकि ब्रह्महा॰मद्यप॰सुवर्णस्तेयी॰गुरुदारगामी॰ इनचार महापातकियों में जिसका संसर्ग उसने किया हो॥

(संसर्गेऽतिदेशः)

एभिस्तुसंवसेद्योवैवत्सरंसोपितत्सम । २६१

पूर्वार्द्धश्लोक

अर्थ.—इन करके जो वर्षभर सम्यक् बसै सोभी उसके समान है—अर्थात्—ऐसेजो ब्रह्महत्यारे आदि ४ महापातकी कहेगये इनके साथ जो कोई एकवर्ष मात्र अच्छी तरह बसै किन्तु इन चारोंमें जिस किसी के पास बसै या साथ रहिकर किसी तरह का बर्ताव आचरण करै सो उसीके समान ठहिरै अर्थात् उसी के निमित्त में लिखे हुये प्रायश्चित्तको करै यह अतिदेश उतारा गया इसी अतिदेशके प्रयोजनसे उसके समान होना मूलश्लोकमें कहा (किन्तु पातकत्वके अतिदेश निमित्त नहीं क्योंकि

पातकत्वका अतिदेश(यश्चतैःसहसंवसेत)यह दोसौ सत्ताइस २२७ मूलश्लोकमें चौथे पादसे कहिचुके तिससे यहां केवल प्रायश्चित्तका अतिदेश उतारनेको उसके समान कहागया) और भी यह विशेषताहै कि यद्यपि अतिदेश उतारागया तिससे चौथाई कम करिके प्रायश्चित्त होग्य था तौभी कम न करना चाहिये किन्तु पूराही बारह वर्ष आदि जो अवधि मुख्य पापीको नियत हुईहै सो इसको भी करायाजाय क्यों कि यह संसर्गी पुरुषभी साक्षात् महापातकी कहागया है दोसौ सत्ताइस मूलश्लोक में देखो कि पांचोंका बराबर दर्जा ठहर चुका—परन्तु—इतना अन्तर है कि महापातकियोंके समान प्राण हानि वाले प्रायश्चित्त की आज्ञा इसको नहीं है यह आगे वर्णन होगा तहां समझिलेना अधिकोक्ति में॥ २६१॥

२६१ अधिकोक्तिः—इसी पूर्वार्द्ध मूलश्लोकमें अपि शब्द जो आया तिससे यह तात्पर्य है कि जैसे इन महापातकियों का संसर्गी उनके समान कहा तैसे और भी अतिपातकी और पातकी और उपपातकी आदि जो जो पतित होते हैं तिनमें से जिस किसी के साथ कोई संसर्ग करै सो उसी के समान ठहिरै और उसी के समान प्रायश्चित्त करै=इसीलिये मनुने बड़े छोटे सभी पापों के प्रायश्चित्त कहिकर पीछे से यह वचन कहा है (योयेनपतितेनैषांसंसर्गंयातिमानवः सतस्यैवव्रतंकुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये) अर्थात् इन सभी प्रकार के पतितों में जिसकिसी के साथ जो कोई संसर्ग में जाता है वह उसीके समान होता है तिससे उसका संसर्ग दोष मिटाने को उसी का व्रत करै=विष्णु ने भी सामान्य भाव से उपपातकी आदि पापीमात्र के संसर्ग में उन्हीं का प्रायश्चित्त भजना दर्शाया है कि (पापात्मनायेनसहयःसंसृज्यते सतस्यैवव्रतंकुर्यात्) जिस पापी के साथ संसर्ग जो करै सो उसी का व्रत करै=इसी लिये मनुने सामान्य पापी मात्र का निषेध किया है कि (एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थंकंचित्समाचरेत्) किसी भी एनस्वी के साथ कोईसा व्यवहार न करै कि जबतक उसका निर्णय और शुद्ध न होजाय=तथैव एनस्वी कोभी यह शिक्षा दईहै कि (नसंसर्गंभजेत्सद्भिःप्रायश्चित्तेऽकृतेसति) प्रायश्चित्त किये विना शुद्ध लोगों से अपना संसर्ग न करै॥ ०॥ पतित के संसर्ग से यह बारह वर्ष आदि का प्रायश्चित्त जो करना ठहिरा सो जानि बूझि के संसर्ग करने पर आरूढ है जैसा देवल का वचन है कि=पतितेनसहोषित्वाजानन्सवत्सरंनरः मिश्रितस्तेनसोऽब्दांतेस्वयंचपतितोभवेत्=अर्थात्—पतित को जानते हुये उसके साथ एक वर्ष मिला हुआ बसिकर मनुष्य वर्ष पूरा होजाने बादि आपही पतित होवै॥ अथाज्ञानकृत संसर्ग प्रायश्चित्तं॥ जिसने विना जाने

अज्ञानतामें संसर्ग कियाहो तिसकेलिये वशिष्ठकाकहा प्रायश्चित्तहै=यथा=पतितसंयोगेतुब्राह्मणेन वेदाध्यापनेनयौनेनवा सौवेशावायास्तेभ्य.सकाशान्मात्राउपलब्धास्तासांपरित्यागस्तैश्चनसंवसेदुदीचींदिशंगत्वाऽनश्नन्संहिताध्ययनमधीयानःपूतोभवतीतिविज्ञायते=अर्थात्–पतित के संयोग मे विद्वान् ब्राह्मण पुरोहित आदिने जो कुछ मात्रायें दक्षिणादिक आदि पतितों के विवाह आदि कर्म कराइ के या वेद पढ़ाने आदि पूजा पाठसे या होम यज्ञ कराने आदि से पाई हों तिनका परित्याग अर्थात् भूखे दुखे को देदेवे याकिसी तड़ाग मंदिर आदि की मरम्मतिमें समर्पण करें और उनके साथ निवास आदि कर्मोंके संबंध न राखे और उत्तर दिशामे पवित्रधरती पर जाइके भोजन का त्याग कियेहुये वेदकी संहिता का पाठ यथा विधि से करता हुआ पवित्र होजाता है यह जाना गया (यद्यपि इसमें कुछ अवधि नहीं कही गई कि भोजनका त्याग कितने दिनकरै तथापि यह सिद्धान्त पाया जाताहै कि जितने दिनमें संहिताका एकही पाठ पूरा होसके वही अवधि जानों क्योंकि पाठकी अनेक आवृत्ति करना नहींकहा ॥०॥ संसर्गिणांसंसर्गिणश्च–मुख्य महा पातकियोंके संसर्ग से पूरा महापातक संसर्गी को होताहै यह निर्णय किया गया परन्तु निर्णय वाले वचनोंका यह तात्पर्य नहीं है संसर्गी के संसर्गी तीसरे को भी महापातकलगै इसी से यह नियम है कि संसर्गी से जिन लोगों का संसर्ग अर्थात् हेल मेल होजाय तिनको द्विजातियों वाले कर्म धर्म की हानि नहीं पहुँचती है अर्थात् जातिसे गिरि जाना आदि जैसा मुख्योंके संसर्गी को होताहै तैसा संसर्गी का संसर्गी तीसरा पुरुष जाती धर्मसे नहीं गिरायाजाता है तोभी कुछ प्रायश्चित्त इसको भी अवश्य लगताहै (और इसमें यह तर्कना या शंका न कहिनी चाहिये कि जिसको जाति से गिराना नहीं है तिसको प्रायश्चित्त क्यों लगता है) क्योंकि ऊपर जो मनुका वचनलिखा गया कि एनस्वी,अर्थात् पापी मात्र किसी के साथ कोई व्यवहार न करें जबतक उनके निर्णय से प्रायश्चित्त होकर शुद्ध न होजाय•सो इस वचन में सभी पापी मात्र के निषेध के द्वारा पाँचवें महापातकी संसर्गी का भी संसर्ग हेलमेल करना निषिद्ध ठहिर चुका तिससे उसका हेलमेल करनेवाला यद्यपि जाति से नहीं गिराया जाय तोभी प्रायश्चित्त करना ठीकही सूचित हुआ है–परन्तु इस तीसरे को पूरा प्रायश्चित्त नहीं किन्तु चौथाई कम करिके तीनपाद होना चाहिये जैसा यह व्यासजी का वचन है कि=योयेनसंवसेद्वर्षसोपितत्समतामियात् पादहीनंचरेत्सोपितस्यतस्यव्रतंद्विजः=अर्थात्–एकवर्ष जो कोईद्विजाती जिसके साथ हेलमेल करै सोभी तिसको

बराबरी को पावै और वह उसी वाला व्रत चौथाई कम करै ॥ ० ॥ जैसा यह दूसरे संसर्गी को कहा गया तैसा इसके हेलमेल से तीसरे को फिर उसके हेलमेल से चौथे को भी यह नियम है कि जानि बूझि इच्छा से हेल मेल करने वाले तीसरे को दो पाद कम करिके दोहीपाद अर्थात् आधा प्रायश्चित्त कराना चाहिये और चौथेको जानि बूझि हेल मेल करने के दोष में तीनि पाद कमकरिके सिर्फ एकही चौथाई करना चाहिये=इस में यह शंका है कि एक संसर्गी को पूरा व्रत करना कहा कि जैसा बारहवर्षका ब्रह्महत्यारे आदिको कहिचुकेथे फिर दूसरे संसर्गीको पौनाबताया और तीसरे को आधा और चौथे को चौथाई इसका क्या कारणहै कि एकसंसर्गीपर मुख्य पातकियों से कुछभी रिआयत न कीगई•सुनो २२७ मूलश्लोक देखो उसको भी पांचवां महापातकी कहिचुके तिससे उन्हीं चारों की बराबर प्रायश्चित्त उस पर चाहिये और रिआयत उसपर इतनीबड़ी कीगई कि साक्षात् ब्रह्महत्यारेआदि चारों को इच्छा सहित पाप करने मध्ये मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा गया था सो इसको नहींहै अर्थात् इच्छासहित उनका हेलमेल करनेमें उन्हींको बराबर व्रतकरना इसको कहागया जो उनको इच्छा बिना पाप होजानेपर बारहवर्षका व्रत ठहरा था क्योंकि (सतस्यैवव्रतंकुर्यात्) इस वचन के तात्पर्यमें उसके व्रतही का अतिदेश दियागयाहै मरजानेका नहीं क्योंकि मरजाना व्रत शब्दके उच्चारणमें नहींहै• तिससे यह व्यवस्था आकर सिद्ध हुई कि जिसने कामनासे चाहिकर हेलमेल कियाहो तिसके लिये बारह वर्षकी व्रतचर्या प्रायश्चित्त है जिसने बिना इच्छा के संसर्ग किया हो तिसको बारह का आधा छैवर्ष व्रत करना चाहिये—इसी प्रकार दूसरे तीसरे आदि संसर्गियों को इच्छा सहितके मुआमिलेपर एकएक चौथाई कमहोती चलीजाय और अनिच्छा के हेलमेल मध्ये उससे आधा समझि लेना ॥ ० ॥ अथसंसर्गलक्षणं—संसर्ग अर्थात् हेल मेलका चर्चा जो अब तक किया गया वह संसर्ग भी कर्मोंके निबंध भेदसे अनेक तरह का होताहै जैसा बृहस्पतिने कहाहै कि=एकशय्या१८८सनं२पंक्ति३भांडे४पक्वान्न५मिश्रणम् याजना६ध्यापने७योनि८स्तथाचसहभोजनम् ९ नवधासंकरःप्रोक्तो नकर्तव्योऽधमैःसह=देवलोपि=संलापस्पर्शनिश्वास सहयानासनाशनात् याजनाध्यापनाद्यौनात्पापंसंक्रमतेनृणाम्=अर्थात्—एकही खाटपर दोनोंका पौढ़ना १ तथा एक आसनपर बैठना २ एकपांतिमें भोजन करना आदि ३एकही साथ बासनकपड़े आदि मिलाकर वरना ४ एक साथ मिलाकर अन्न पकाना ५ याथाई पुरोहिताई के तौर से यजन आदि कर्म कराना ६ वेद विद्या पढाना ७ योनि का संबंध विवाह

करना ८ एकथाली वा एक चौकेमें साथ भोजन करना ९ यही नौ भांति का एक अर्थात् ससर्ग हेलमेल कहा गया है कि अधर्मी के साथ न करना चाहिये यह बृहस्पतिकी सबसे बडी स्मृतिका नियमहै=देवलने भी कहा है कि=सलाप अर्थात् परस्पर पासही भिडिके प्रेम आदिकी वातचीत करने से और स्पर्श उसको छूने से और उसकी श्वासकी वायु वाफ लगनेसे और एक साथ यात्रा करने एक सवारी पर बैठने से और एक साथ आसन खाट आदिपर बैठने सोनेसे और एक साथ भोजन करने से और यजन आदि कर्म कराने तथा वेद विद्या पढानेसे और यौन सबंध कन्यादेने या लेनेसे इतनी वातोसे मनुष्योपर पाप चढिजाताहै (इन वचनों में जैसा विवाह यौन सबंधका दोष दोनो ओर से दर्शाया गया कि उसको कन्या देना या उसी से आप लेना तैसा सभी बातों का नियम समभि लेना कि विद्या पढाना या उसीसे पढना खवयजन उसको कराना या उसके द्वारा आप करना इसीतरह और वातोको समझना) अब यह वात जाननी चाहिये कि इनमेंसे कौन सा हेलमेल कितने दिनमें पतितकर देताहै तिसके लिये वृहद्विष्णु आदिके वचन आगे देखो॥ ०॥ वृहद्विष्णु=सवत्स रेणपतितेनसहाचरन्नेकयानभोजनासन शयनैर्योनसौवमुख्यैस्तुसबधै सद्यएवपतति= अर्थात्–एकसवारी• एकपांतिमे भोजन• एकही आसनपर•एकहीशयन पलँगआदि पर• पतितके साथ इन चारों प्रकारसे आचरण करता हुआ पुरुष एकवर्ष में पतित होताहै और योनिके सबध से• स्रुवाके सबध से• मुखके सबध से• तत्काल पतित हो जाताहै (यहां योनि का सबंध कन्या देना या लेना तथा स्रुवे का सबध होम यज्ञ आदि उसको करवाना या उसके द्वारा आप करना तथा मुख्य सबध जो मुख से उत्पन्न होय किन्तु वेद विद्याका पढाना या उससे आप पढना भी कहाता है) और इसी श्लोकमें जो एक भोजन कहा सो केवल एक पांति में बैठि भोजन करने मात्र को समझना किन्तु एकही चौके वा एक थालीमें साथ भोजन मत समझना क्योंकि एक वर्ष में पतित होना कहा गया तिससे और साथ भोजन करने वाला तत्काल पतित होजाता है तिससे भी• वल्कि उसी समय तत्काल पतन होजानें मध्ये देवल का यह वचन प्रमाण है कि (याजनयोनिसवध• स्वाध्याय सहभोजनम् इत्यासद्य. पतत्येवपतितेननसशयः) अर्थात्–याजन कर्म जो पहिले स्रुवेके नाम से कहि चुके और वही पहिला कहा योनिका सवध और स्वाधाय पढना पढाना और एकसाथ भोजन करना पतितके साथ इनकामोका संबध जोडि के तुरन्तही पतित होजाता किन्तु जातिसे गिरजाता है इसमें कुछ सदेह नही और यह भी नहीं कि ये चारो

काल इकट्ठे करै सोई पतित होवै किन्तु इनमेंसे किसी एकही संबंधके जोड़नेसार जातिसे छुटिजाताहै—इस बातका प्रमाण भी सुमन्तुका यह वचन है कि (यःपतितैः सह यौनमुखस्त्रौवाणां संबंधानामन्यतमसंबंधंकुर्यात् तस्याप्येतदेवप्रायश्चित्तमिति) जो कोई पतितोंके साथ॰ योनि॰ मुख॰ स्रुवे॰के संबंधोंमें किसी एक संबंध को जोड़ै तिसको भी यही प्रायश्चित्त है जो मुख्य पतितोंके लिये हम कहिचुके—परन्तु पहिली चार बातें एक सवारीआदि जिनसे एकवर्ष भरतक हेलमेल होनेमें पतन होना कहाथा सो सबकोसब चारोंसे संबंध जोड़नेसेही पतन होताहै जुदी एकसे नहीं॰ क्योंकि उनके लिये ऊपर वृहद्विष्णु का वचन देखो तहां (एकयानभोजना॰नशयनैः)यह इतरेतर युक्त निर्देश किया गया था तिससे किसी एक दोके अनुसार संसर्गी अपने जाती धर्मोंसे नहीं गिर सक्ताहै॰ तथापि एकही दोके सेवनसे दोषका हेतुखड़ा होता है प्रमाण इसमें पराशर का वचन आगे देखो (आसनाच्छयनाद्यानात्संभाषात्सह भोजनात् संक्रमंतिहिपापानितैलविंदुरिवांभसि) अर्थात् पराशर ने इस वचन में जुदे जुदे एकही एकसे पापका हेतु जाहिर कियाहै कि आसन बैठने से या खाट आदिपर साथ सोने से या सवारी पर साथ बैठने से या वार्तालाप से या समीप बैठि भोजन करने से पाप इसतरह चढ़ि आते हैं कि जैसे जल में तेल का बूंद फैल जाता है—इनके सिवाय (संलाप स्पर्श निःश्वास) इत्यादि देवल के वचन में कहेहुये येही तीनों हेलमेल अर्थात् पास भिड़के विशेष वार्तालाप करना और देहसे देह भिड़ाना और मुहकी बाफ अपने ऊपर लगनेदेना यह तीनों बात बहुत छोटीहैं तिससे इनमें किसी एकही के होने मात्र से संसर्गी का जाति से छूटना आदि पतन कभी नहीं होता न इनका कोई जुदा नियम है क्योंकि ये तीनों बात अधिक हेल मेल से उन्हीं चारों के साथ में उत्पन्न होती हैं कि जिनसे एक वर्षभरके हेल मेल में पातित्य होनाकहि चुके यह समझ लेना॰परन्तु पापरूपी दोष मात्र इनसे भी होता है कि जैसा पहिले देवल के वचन में पाप का चढ़िआना कहा गया था ॥ ० ॥ तात्पर्य निर्णयः—इस व्यवस्था से यह तात्पर्य ठहरा कि जिसने (संलाप॰स्पर्श॰निःश्वास) इन तीनि के विना सवारी आदि चारों भांति के संसर्ग एक वर्ष भरि किये हों तिसको पूर्वोक्त बारह वर्षका प्रायश्चित्त पांचवां भाग छोड़िके करना चाहिये॰और जिसने ये तीनों बात भी उनके साथ अधिक हेल मेल से करी हों तिसको एक वर्ष वीति जाने पर बारह वर्ष का पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये॰ इस रीतिसे योगीश्वर का यही मूल श्लोक (एभिस्तुसंवसेद्योवैवत्सरंसोपितत्समः) कि इनके साथ जो कोई एक वर्ष

अच्छी तरह बसै सोभी उसके समान पातकी ठहिरै और उसीका प्रायश्चित्त करै— यहभी उन्हीं सवारी आदि चारिही बातो के हेतमेल पर ठीक रहा जिनमें एक वर्ष मे पतित होना कहि चुके अर्थात् जिनसे तत्काल पतित होजाना कहा तिनके मध्ये योगीश्वर का मूल श्लोक नहीं है॰ इसी आशय पर मनुका यह वचन है कि (संवत्सरेण पततिपतितेनसहाचरन् याजनाध्यापनाद्यौनान्नतुयानासनाशनात्) अक्षरार्थ इसका यही है कि एक वर्ष से गिरजाता है गिरे हुये के साथ आचरण करते हुये याजन अध्यापन से योन से नहीं सवारी आसन भोजन से—प्रत्यक्ष तो व्याकरण काव्य दोनो मार्ग से यह अर्थ अनमेल है इसी से भाषा मे भी ठीक नही समझि परा कि यह क्या कहा और इसी लिये मिताक्षराकार ने इस वचन के ऊपर बहुत कुछ अर्थवाद खडा किया है कि जिसका लिखना कुछ यहां पर आवश्यक, नहीं बल्कि निरर्थ जानि के छोड़ दिया गया तथापि केवल प्रयोजन की बात लेनी आवश्यक है तिसके लिये व्यवहित योजना का सबंध मानि लेना कि (पतित के साथ सवारी॰ बैठका और बैठका के उपलक्षण से खाट आदि शय्या॰ और एक पंक्ति मे भोजन इन चारो के हेतु से आचरण करते हुये एक संवत की अवधि से पतित होता है परन्तु होम यज्ञ और पढना पढाना और योनि के सबन्ध विवाह से नहीं एक संवत में पतित होता है अर्थात् इनसे तुरन्तही पतित होता है जैसे ऊपरले अनेक वचनो से अर्थ सिद्ध होचुका तैसा इसमें भी वही तात्पर्य है कुछ और नहीं क्योंकि इसमे ढँका हुआ तात्पर्य है उन वचनो में खुला हुआ सिर्फ इतना भेद है अन्यथा धर्म शास्त्रमे एक वचन के लिये अनेक वचनो की स्पष्ट व्यवस्था नही उलटी चल सक्ती है॥ ०॥ सिद्धांतार्थ निर्णय—जबकि यह व्यवस्था ठीक हुईकि विवाहभोजन आदि चारबातोसे तुरन्त पतित होजाताहै और सवारी में बैठनेआदि चार बातो से निरन्तर एक वर्ष भर अभ्यास करने में पतित होता है तो फिर इसके लिये यह बात भी आवश्यक है कि एकवर्ष के पूरे ३६० तीनसौसाठि दिनकी गिनती करनी चाहिये इसका यह तात्पर्यहै कि जिसने कोई महीने संसर्ग करिके बीचमें कहीं चलेजाने आदि कारणो से छोडिदिया फिर कभी आकर उसीका संसर्गकिया तिसका हिसाब जोडना चाहिये जोडने से भी ३६० तीनसौ साठि दिवस जिसके पूरे नहो तो फिर पतित वाला पूरा प्रायश्चित्त भी उसको नही चाहिये किन्तु औरही रीति से प्रायश्चित्त कराना चाहिये कि जैसा गारो पराशर के वचनो से पाया जाय=यथाह पराशर =संसर्गमाचरन्विप्र पतितादिष्वकामत पचाहवादशाहवाहवादशाहमथापिवा

मासार्द्धंमासमेकंवामासत्रयमथापिवा अब्दार्द्धमेकमब्दंवाभवेदूर्ध्वंतुतत्समः (अत्रप्रायश्चित्तभेदाः) त्रिरात्रंप्रथमेपक्षेद्वितीयेकृच्छ्रमाचरन् चरेत्सांतपनंकृच्छ्रं तृतीयेपक्षएवतु चतुर्थेदशरात्रंस्यात्पराकःपंचमेततःयच्चेचांद्रायणंकुर्यात्सप्तमेत्वैन्दवद्वयम् अष्टमेचतथा पक्षेषण्मासान्कृच्छ्रमाचरेत्=अर्थात्—ब्राह्मण किसी पतितआदिके साथबिना चाहे यदि भूलमेंसंसर्गकोआचरै यदि पांच वा दशदिन या बारहदिन या एकपाख वा एक महीना वा तीनमहीने वा एकछमाही वा पूराएकवर्ष तिसकेउपरांत उसीपतितकेसमान आप होजाताहै (इनकेजुदे प्रायश्चित्तोंकेभेदहैं कि) जिसका प्रथमपखवाराके भीतर संसर्ग हो सो तीनदिन व्रतादि प्रायश्चित्त करै• जिसका संसर्ग दूसरे पखवारामें आ पहुँचाहो सो कृच्छ्रव्रत करै•जिसका तीसरेपाखमें पहुँचि गया हो वह सांतपन कृच्छ्र करै• चौथे पाखमें संसर्ग पहुँचाहो सो दशरात्र प्रायश्चित्त करै•पांचवें पाख में संसर्ग पहुँचाहो तो पराक नामका प्रायश्चित्तकरै छठेपाखतक पहुँचाहो तो एकमहीनाचांद्रायण करै• सातवें पाख तक संसर्ग हुआ हो तो दो महीना चांद्रायण का आठवें पक्षतक संसर्गभयाहो तो छैमहीनेभर कृच्छ्र व्रतकरै॥ अथापिकामकृतसंसर्गप्रायश्चित्तं जिसनेजानिबूझि कामनासेसंसर्गकियाहो तिसकोसुमंतुने प्रायश्चित्त विशेषकहेहैं=यथाहसुमंतुः=पंचाहेतुचरेत्कृच्छ्रं दशाहेतप्तकृच्छ्रकम् पराकस्त्वर्द्धमासेस्यान्मासेचांद्रायणंचरेत् मासत्रयेप्रकुर्वीतकृच्छ्रं चांद्रायणोत्तरम् षाण्मासिकेतुसंसर्गेकृच्छ्रंत्वब्दार्द्धमाचरेत् संसर्गेत्वाब्दिकेकुर्याद्दब्दंचांद्रायणंनरः=अर्थात्—पांच दिनके संसर्ग में कृच्छ्र व्रत साधै और दशदिन के संसर्ग में तप्त कृच्छ्र करै एक पाखभर संसर्ग किया हो तो पराक व्रत करै एक महीना भर संसर्ग किया हो तो चांद्रायण करै तीन महीना के संसर्गवाला कृच्छ्रात्मक चांद्रायण करै छै महीना के संसर्ग में एक छमाहीभर कृच्छ्र व्रतकरै एक वर्ष के भीतर संसर्गवाला मनुष्य एक वर्ष तक चांद्रायण करै (इसमें जो पूरे एक सालके संसर्गपर एकही सालका प्रायश्चित्त कहागया तिसको छमाही से ऊपर और बारह मासके भीतर वाले संसर्गोंपर समझना क्योंकि पूरे वर्षके पूरे वा पूरेसे अधिक संसर्ग मध्ये मन्वादिक ऋषीश्वरोंने बारहवर्ष कहेहैं जिसका वर्णन पहिले होचुका सो निरर्थक न रहिहै ॥ अत्रापिनियमांतर व्यवस्थासाधनं—इस व्यवस्थामें यह बात सिद्ध होचुकी है कि एक पाखमें पतितके साथ मिलके भोजन करने या पतितकी लड़की या लड़केसे विवाह संबंध करने या होम यज्ञ आदि पावाईके कर्म करने कराने या पतितसे विद्याका संबंध पढ़ने पढ़ानेसे तुरन्त पतित होजाता है•तथापि इन्हीं चारो संसर्गोंके मध्ये एक बृहस्पति के वचन में छमाही भर

संसर्ग करनेसे पातित्य लगना कहा है=यथाह बृहस्पतिः=षण्मासिकेतुसंसर्गेयाजना ध्यापनादिना एकत्रासनशय्याभिःप्रायश्चित्तार्द्धमाचरेत्=अर्थात्—छे महीनेके याजन अध्यापन आदि चारों में किसी एक संसर्ग के होने में तथा एकही बैठका सोउना आदि से भी आधा प्रायश्चित्त करै अर्थात् जो पतितके बारहवर्षहों तो संसर्गी को छे वर्ष चाहिये—सो इस नियम को ऐसी दशा पर जोड़ना चाहिये कि जहां संसर्ग करनेकी इच्छा तो नहीं थी परन्तु अत्यन्त आपत्ति आनि.परनेसें घरही. के पातकी साथ भोजनका संसर्ग करना परा या केवल पंच महायज्ञ आदि में.यजन का संसर्ग या पतित अपना बेटा भतीजा आदि अंगही गिना जाता हो तिसको पढ़ाना या योनिका संबंध निज पतित की बेटी बहिन आदि के सिवाय उसके कुल में किसी गैर कन्या वा गैर लड़के से किया गयाहो तहां तत्काल के सिवाय छः महीनातक संसर्ग बना रहिने से पातित्य और उसके लिये आधाही छः वर्ष का प्रायश्चित्त क-राना ठीक होगा और शेष बातें एक सवारी आदि चारों कि जिनका पहिले एक वर्षभर पूरे से अधिक संसर्ग रहिने सध्ये बारहवर्ष का प्रायश्चित्त कहा गया उन्हीं को इस वचन में आधा कहा सो यह स्वतः ठीक ठीक है कि छः महीना के संसर्ग से आधा रहिगया—यहां तक महापातकियों के संसर्गी को प्रायश्चित्त वर्णन हो चुके ॥ अथातिपातक्यादीनां संसर्गप्रायश्चित्तविचारः—इसी पूर्वोक्तडौलमार्ग का सहारा लेकर उनसे नीचे अति पातकी आदिका संसर्ग देखनाचाहिये कि जहां कहीं बेटी या बहिन या पुत्रकी वहू गमन करने वाले अति पातकी का संसर्ग जि-सने कियाहो तहां चाहिके संसर्ग करनेवालेको नौवर्ष का प्रायश्चित्त और विना चाहे संसर्ग करने वाले.को उससे आधा साढ़े चार वर्ष का करना चाहिये=एवं= जहां मित्र या चचा की दारा आदि पूर्वोक्त स्त्रियां जिनसे पातकमात्र होता.कहा गयाथा तिनको गमन करने वाले पातकी पुरुष का संसर्ग जिसने किया हो तहां कामना से संसर्ग करैया को छः वर्ष और विना कामना के संसर्ग वाले को तीनवर्ष का प्रायश्चित्त करना चाहिये=इसी प्रकार=जहां उपपातकी आदि छोटे पापियों का संसर्ग जिसने किया हो तहां कामना से संसर्ग करने वाले को उन्हीं का प्राय-श्चित्त तीन महीना और कामना विना संसर्ग वाले को उससे आधा डेढ़ महीना व्रत करना चाहिये ॥ स्त्रीणामपिसंसर्गप्रायश्चित्तं— पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंको भी महा-पातकी आदि के संसर्ग से पातित्य बराबर होता है=यदाह शौनकः=पुरुषस्ययानि पतननिमित्तानिस्त्रीणामपितान्येव ब्राह्मणीहीनवर्णसेवायामधिकंपततीति=अर्था-

त-जाति से गिरजाने के जो जो निमित पुरुष को होते हैं वही सब स्त्रियों को भी होतेहैं और ब्राह्मणी होकर जो हीनवर्ण की सेवा करै सो पुरुषसे भी अधिक पतित होती है यह शौनक ने कहा=इस हेतुसे उनको भी महापातकी आदि पापियों से जिस किसी प्रकार के पापी साथ हेल मेल होजाय उसी पापी के लिये जो कुछ प्रायश्चित्त ठीक होय तिससे आधा करवाना चाहिये क्योंकि स्त्रियों को पुरुषों से आधाकरना कहिचुके हैं=इसी प्रकारबालक बूढे रोगिओंको भी समझौ कि जिसने कामनासे चाहिके संसर्ग कियाहो तिसको मुख्य पापीसे आधा और विना कामना के संसर्ग वाले को चौथाई करना चाहिये=तथा जो बालक विना जनेऊ का हो तिसको कामना के संसर्ग में चौथाई और विना कामना के संसर्ग में आठवां भाग प्रायश्चित्त चाहिये यह व्यवस्था का मार्ग है।॥ २६१ ॥ यह पूर्वार्ध की अविको-क्ति पूरीहुई अब दूसराअर्द्धा अगिले परिच्छेदमें शामिल होगा कि जिसमें पतितकी कन्या विवाहि लेनेकी आज्ञा भी विरली दशा मध्ये दीजायगी ॥ २६१ ॥

अथ पतितसंसर्ग प्रतिषेधात्प्रतिषिद्धस्य यौनसंबंधस्य प्रतिप्रसव निदर्शकोऽयं परिच्छेदः अष्टात्रिंशः ३८

—※—

इस परिच्छेद में पहिले निषेध का कुछ थोड़ासा प्रतिप्रसव दियाजायगा अर्थात ऊपर के परिच्छेद में पतित की कन्या से विवाह करना भी निषेध किया गया था तिसके साथ विवाह विरली दशामें करिलेना योग्य होता है उस विरली दशा का स्वरूप कहा जायगा ॥ प्रतिप्रसव इसी का नाम है कि जो बात पहिले मने कर चुके हों उसमें थोड़ीसी करने को भी आज्ञा दीजाय ॥

(यौननिषेधेप्रतिप्रसवः)

कन्यांसमुद्वहेदेषांसोपवासामकिंचनाम् २६१

अर्थः—इनकी कन्या को सोपवासा को अकिंचना को भलेही विवाहि लेवै= अर्थात्—इन्हीं पूर्वोक्त पतितों की कन्या जो पतित होनेकी दशा में उत्पन्नहुई हो तिसको यदि इच्छा किसीकी हो तो वेखटके विवाहि लेवै कुछ दोष नहीं है परन्तु इस रीति से विवाहनी चाहिये कि निराहार उपवास करी हुई और अकिंचना कि

जिसके साथ कपड़े गहिना आदि उसके बाप का कुछ न लिया जाय (और निराहार उपवास का यह तात्पर्य है कि जितना पतित बाप आदिसे संसर्ग रहाहो उसके अनुसार पंचगव्य आदि से संक्षेप यथाशक्ति प्रायश्चित्त करवाइके विवाहनी चाहिये) और विवाहि लेवै इस कथन का यह तात्पर्य है कि पतितके हाथ से कन्या दान आदि करवाइके न लेवें क्योंकि उसको जाती धर्मोंका अधिकार नहींहै तिससे आपही जिस कन्या ने पतितका संसर्ग छोडि के विवाहकी इच्छा करीहो तिसको पतित के घर से उपरान्त किसी देवस्थान आदि में शास्त्रोक्त मर्यादा से विवाहि लेवें तो इस रीति से उस विरोध की शंका भी नहीं खड़ी होसक्ती है कि पहिले परिच्छेद में पतितों की कन्यासे यौन संबंध का निषेध कियागया था फिर क्योंकर उसी कन्या से विवाह करना कहा गया॥ २६१॥

२६१ अधिकोक्तिः–जो व्यवस्था ऊपर कही गई तिसको वृद्ध हारीतने विशेष ब्यौरा से स्पष्ट करिके दर्शाया है=यथा=पतितस्यकुमारींम्विवस्त्रामहोरात्रमुपोषितांप्रातःशुक्लेनाहतेनवाससाच्छादितांनाहमेतेषांनममैतेइतित्रिरुच्चैरभिदधानांतीर्थे स्वगृहेवोद्वहेत्=अर्थात्–पतित की कुमारी कन्या को विना वस्त्रों के एक दिन राति उपास करी हुई को प्रातःकाल होतेसार नवीन शुक्ल वस्त्रको धोवती पहिनाइ ओढ़ाइके उसकन्याकेमुखसेतीन बार ऊँचेशब्दसे ऐसाकहवाइके कि (आजसे न मैं इन सबकी न ये सब घरवाले मेरे रहे) तिस पीछे कन्या लेजाइके किसी देवालय आदि तीर्थ में या अपने घरपर यथा विधान से विवाह करे॥ ०॥ मूल श्लोक में (एषां कन्यांसमुद्वहेत्) यह कहा गया कि इनकी कन्या को चाहें विवाहि लेवें तिसका यह तात्पर्य ठहिरा कि सिर्फ कन्या चाहें इन्हीं रीतों से विवाहि लेवें परन्तु पतित के लड़कोंको अपनी कन्या न देवें कि जो जो लड़के अपने पतितपिता भ्राता आदि में संसर्गी बनेरहे हों या पतित होनेकी दशा में उनके पतित वीर्य से उत्पन्न हुयेहों– इसीलिये वसिष्ठने कहा है कि (पतितेनोत्पन्नःपतितोभवति अन्यत्रस्त्रियाः साहिपरगामिनीमातृरिक्थमुपेयात्) पतितसे उत्पन्न होय सोभी पतित होताहै परन्तु कन्या के सिवाय पुत्रही को समझना क्योंकि वह स्त्रीकी जातिहै पराये घर जाने योग्यहै माता का धनांश उस मे अधिक होने से माता का धन पावैगी थोड़ाधा प्रतिप्रसव इसी हेतुसे यहठहिरा किलड़का लड़की दोनोंसे यौन संबंधका निषेध पहिले किया था उसमें केवल पुत्रीसे यौन संबंध की आज्ञा यहां दीगई॥ ०॥ मूल के अर्थोंमेंयह कहा गया कि पतित होने की दशा में जो पतित के वीर्य से उत्पन्न कन्याहो ति-

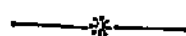
सको इन रीतों से विवाहि लेवै–इस कथन का प्रत्यक्ष यही तात्पर्य है कि प्रायश्चित्त का स्वीकार और उद्योग जिसने नहीं किया और पत्नीने भी संसर्ग उसका नहीं छोडा ऐसीदशामें जो गर्भ रहिकर कन्या हुईहो फिर गर्भ रहे पीछे चाहेपतित पुरुष प्रायश्चित्तकरने चला गयाहो तौभी वह कन्या पतित वीर्यसे होचुकी तिस को उक्त रीतों से विवाहि लेने में कुछ दोष नहीं है–परन्तु इसी गर्भ से जो पुत्र पैदा हुआहो तिसको कोई अपनी कन्या देकर यौन संबंध से संसर्ग न करें यह निषेध पूरंपूर है=औरभी=इसी कथन का यह तात्पर्यहै कि जिस किसीने प्रायश्चित्त का प्रारंभ ही करदियाहो परन्तु जबतक पूरा न हो तबतक उसको शुद्धि नहींप्राप्तहोती है और वह प्रायश्चित्त अपने ग्राम नगर के समीपही किसी जंगल या गोव्रज देवस्थल आदि में आरम्भ किया गयाहो ऐसी दशा में यद्यपि ब्रह्मचर्य से जितेंद्रीहोके रहिने का आदेशहै और पत्नीको भी पतित पतिसे संसर्ग करनेका निषेध है तथापि जो दोमें से कोई एक या दोनों दंपती कामातुर होके धर्म मर्यादाका अतिक्रम करें अर्थात् निकट होने से दर्शन के वहाने मिलिके संगत करें और इसी दशामें जो पतित वीर्य से गर्भ रहिजाय तहां पत्नीभी संसर्ग दोषसे पतित हुई ठहिरैगी और इसी गर्भ से यदि पुत्रपैदा होजाय सोभी पतित होगा तिस पतितको कोई अपनीकन्या न देवै यह पहिले परिच्छेद के अनुसार यौन संबंध से संसर्ग का निषेध ठहिरा•परंतु जो इसी गर्भसे कन्या पैदा हुईहो तिसको उक्त रीतों से विवाहि लेने में कुछ दोष नहीं है यह इसी परिच्छेद के अनुसार प्रतिप्रसव ठहिरा=औरभी=इसी कथन का यह तात्पर्य है कि जिस किसीने निपट प्रायश्चित्त करनाही स्वीकार न कियाहो अर्थात् जाति विरादरी से छुटा रहिना स्वीकार करलिया और उसकी पत्नी आदि परिवारने भी उसको नहीं छोड़ा इसी हेतसे उसका घरकुटुंब सभी पतित ठहिरे और इसी हेतु से उसके लडका लडकी विवाह से रुके रहिके बहुत बडे हुये होंगे (चाहें पतित होनेकी दशा में उत्पन्नहुये यद्वा पहिले अच्छी दशामें होचुकेथे कुछ इसका नियम नहीं क्योंकि जो पहिले पैदा होचुके हैं वेभी संसर्गी बने रहिने से उसके समान पतित ठहिरे) तहां उसके लड़कों को कोई अपनी कन्या न देवै यह पहिले परिच्छेद से यौन संबंधका संसर्ग निषेध होचुकाहै सो ठीक रहा और लड़कियाँ जो सयानी होचुकीं तिनको इसी परिच्छेद वाली प्रतिप्रसवकी मर्यादा से लिखी हुई रीतों के अनुसार जो चाहो सो विवाहिले इसमें दोष नहीं है (स्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि) यह वचन केवल इसी दशाके निमित्त पर आरूढ है सर्वत्र नहीं॥ ०॥ इसमें दोष

नहीं बल्कि एक प्रकार का अत्यंत सूक्ष्म और प्रबल पुराय प्राप्त होता है क्योंकि दोषाभाव तो इसी परिच्छेद के वचनोंसे संसिद्ध है और पुराय इस ध्वन्यर्थ से उत्पन्न होता है कि जैसे धर्मात्मा लोग बिरानी कन्या सयानी न होने पावै शीघ्र उद्धारकर देने के लिये आप द्रव्य देते और दूसरोंसे दिवाते हैं इसकी बराबर कोई और पुराय नहीं है जो अपनी या बिरानी कन्या उचित समयपर सत्पात्र को देदीजाय–तिससे इस पुरुष को वही पुराय होगा जो बहुतबड़े प्रतिबंधसे रुकीहुई कन्या का उद्धार करें या और से करावें–परन्तु इसके साथ यहभी एक प्रतिज्ञाहै जो ऊपरले वचनों में वृद्धहारीतने दर्शाई कि (आजसे न मैं इन सबकी न ये सब घरवाले मेरेहे) यह तीनि बार कन्या के मुखसे पंचों के सन्मुख उच्चारण कराइ लेवै अर्थात् कन्या भी अपने हृदय से ऐसा विवाह चाहती हो और उसके घरवालेभी यही चाहतेहैं किसी तरह का दावा झगड़ा शेष न रहि जाय और घरवाले कभी कन्याकोदेखने मिल-ने आदि के अधिकारी न रहें क्योंकि पतितोंसे संसर्ग अपेक्षित नहींहै केवल कन्या का उद्धार करना एक धर्म है यदि कन्या इन्हीं नियमों पर आरूढ होकर पक्की हो और धर्म तथा अधर्म दोनों को समुझतीहो सो सब नियम ये सयानी और होशदार कन्या से संबंध राखते हैं अबूझ बचों से नहीं यह सिद्धांत है॥ २६१॥

इतिसंसर्ग प्रायश्चित्त प्रकरणं

इस प्रकरण में सैंतीस और अड़तीस दो परिच्छेद हैं जो ऊपर होचुके॥ अब यह बात सोचनी चाहिये कि यहाँ पर उन दोही परिच्छेद में निषिद्ध संसर्ग का चर्चा था उसी चर्चा के प्रसंग से अगिले परिच्छेद में भी उस भांति के प्रायश्चित्त कहे जायँगे जो निषिद्ध संसर्ग (खोटेसंयोग) से उत्पन्नहुये प्रतिलोम जाती अति नीच मनुष्यों का वध करने वाले पर आरूढ हों॥

अथ प्रातिलोमानांवध प्रायश्चित्तस्वरूपस्यच पुनःस्त्री शूद्रादीनांमत्रीनांप्रायश्चित्तकरणेऽधिकारस्यच प्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः ऊनचत्वारिंशः ३९



इस परिच्छेदमें दो नियम विशेष कहे जायँगे कि प्रथम जो प्रतिलोम जाती पुरुषोंका वधकरनेवाले त्रैवर्णिकहों तिनके प्रायश्चित्त विशेष कहे जायँगे-फिर-स्त्री और शूद्र और प्रतिलोम जन्मा सूत मागध आदि जातें जो वेद आदि मंत्रोंके अधिकारी नहींहैं या अधिकार होते भी जो मंत्रज्ञानसे विहीनहों तिनको प्रायश्चित्त करनेका अधिकार विशेष रीतिसे दर्शाया जायगा कि मंत्रोंके विना भी करसक्ते हैं इत्यादि॥

(अवकृष्टवधप्रायश्चित्तं)

चांद्रायणंचरेत्सर्वानवकृष्टान्निहन्यतु । २६२ पूर्वार्द्धश्लोकः॥

अर्थः-सभी अवकृष्टोंको मारिके चांद्रायण करै=अर्थात-प्रतिलोम जन्म होने से खींचिकर दूर निकासे हुये सूत मागध आदि जनों में से किसी एकही पुरुष को प्राणों सहित वध करिके एक महीनेका चांद्रायण व्रतकरै तब शुद्धहोय।॥२६२॥

२६२ अधिकोक्तिः-जैसा इस पूर्वार्ध मूलश्लोकमें योगीश्वरने नियम कहा तैसा शंखने भी कहाहै=यथा=सर्वेषामवकृष्टानांवधेप्रत्येकंचांद्रायणं=अर्थात-सभी अवकृष्टोंके वधमें प्रत्येक जुदे जुदेके मारने मध्ये एक चांद्रायण करै॥ और जो अंगिरा का यह वचनहै कि (सर्वांत्यजानांगमनेभोजनेचप्रमापणे पराकेणविशुद्धिःस्यादित्यांगिरसभाषितम्) सबही अंत्यजों के साथ मिलिके कहीं जाने आने या उनके पास बैठिके भोजन करने या उनके प्राण वध करने में पराक व्रत करने से विशुद्धि होय, यह अंगिराने कहा॰ सो इस वचनमें ऊपरले चांद्रायण को मिलाइके यह व्यवस्था समुझिलेनी कि जहां इच्छा सहित जानि बूझि के वध किया हो तहां सूत आदि सबके वधमें प्रत्येक चांद्रायण चाहिये और इच्छा विना वध होनेमध्ये केवल सूत जातिके मारनेमें पराक व्रत करना चाहिये जो बारह दिनमें पूरा होताहै यही पराक

व्रत पौना करिके नौरोजका वैदेहको मारने में करना चाहिये और यही पराक व्रत आधा सिर्फ छेदिनका चंडालके मारने में करना चाहिये-एवं मागधके वध करनेमें भी यही पराक चौथाई कम करिके नौरोज करना चाहिये और क्षत्ताके वध करने में आधा सिर्फ छः दिन करना चाहिये और आयोगवके वध करने में भी दोही पाद अर्थात् छेदिन व्रत करना चाहिये—इन्हीं भेदोंके अनुकूल इसी मार्गसे चांद्रायण में भी भेद कल्पना करनी चाहिये कि जिसको कामनासे वधकरले मध्ये करनाकहा॥ और एक ब्रह्मगर्भका यह वचन है कि (प्रतिलोमप्रसूतानां स्त्रीणांमासावधिस्मृतः अन्तरप्रभावानांचसूतादीनांचतुर्द्वियट्) अर्थात्—प्रतिलोम जातियों की स्त्रियां वध करनेवाले को एक महीने का व्रत कहा और उन्हीं सूतादि प्रतिलोम जातियों के पुरुष वध करने में चार दो छे महीने व्रत समझना—सो यह इतना बड़ा प्रायश्चित्त आवृत्ति के निमित्त पर आवश्यक है कि जिसने तर ऊपर लगातार दो तीन पुरुष मारे हों तिसके लिये और इसमें जो चार दो छे मास कहे तिनको जातियों की बड़ाई छोटाई के क्रमसे नहीं कहे किन्तु उनकी बड़ाई छोटाई की योग्यता पर संयुक्त करिके आगे के पीछे व्यवहित मार्गसे समझिलेने अर्थात् सूतजाति के पुरुष वध करने में छे महीने और वैदेह जातिके वध करने में चारि महीने चंडाल जातिके वध करनेमें दोमहीने प्रायश्चित्त करै—तथा मागध जातिके पुरुष वधकरने में चारि महीने और क्षत्ताजातिके पुरुष वधकरनेमें दोमहीने और आयोगव जातिके पुरुष वध करने में भी दोमहीने प्रायश्चित्त करै तब शुद्ध होय—इस व्यवस्था में यद्यपि किसी प्रायश्चित्त का नाम नहींकहा सिर्फ महीनोंकी तादाद कही तथापि चांद्रायण व्रत समझना जो एक महीनेमें एक पूरा होताहै दोमें दो इत्यादि॥ २६२॥

अब आगेउत्तरार्द्ध मूलश्लोकसे यह बात सिद्ध होगी कि स्त्री और शूद्र आदि जो जो मंत्र आदि विद्याके अधिकारी नहीं सोभी अपने योग्य प्रायश्चित्तों को मंत्रों के विनाही कर सकेंगे॥

(शूद्रादिकर्तव्यमंत्रप्रायश्चित्तं)

शूद्रोऽधिकारहीनोपिकालेनानेनशुद्धयति २६२

अर्थः—शूद्र अधिकारसे हीनहै तौभी उक्तअवधिके काल सेही शुद्ध होगा—अर्थात्—अबतक यह संदेह खड़ा रहाथा कि प्रायश्चित्तों के नैमित्तिक व्रत जो बहुधा कहे गये या आगे कहेजायेंगे सो प्रायश जप पाठ आदि प्रकारों से करने कहे गये-तहां

जो पुरुष विद्या पढे नहीं या स्त्री और शूद्र आदि अनेक जातें जो निपट मंत्र विद्या के अधिकारी नहीं तिनको उन प्रायश्चित्तों का करना संभव नहीं होगा क्योंकि (जिन कर्मों में घी का दर्शन अर्थात् घीमें अपने मुँह की छाया देखना आदिकोई नियम विशेष लगाहो उन कर्मों में अंधे पुरुषों का अधिकार नहीं सिद्ध होता है) इस न्यायसे विद्या विहीन आदि उन प्रायश्चित्तों के अधिकारी ही न होंगे-यह संदेह मिटाने को अब कहितेहैं कि॰यद्यपि शूद्र आदि बहुतेरे मनुष्य जपआठ आदि करने के अधिकारी नहीं तौभी इसी काल से संशुद्ध होते हैं जो बारह वर्ष आदि के काल नियम कहे गये (यद्यपि मूल में शूद्रही मात्र कहा तौभी यहशूद्र कहिना त्रै-वर्णिक स्त्रियों तथा प्रतिलोम जाती पुरुषों का भी उपलक्षण है ॥ २६२ ॥

२६२ अधिकोक्तिः-यद्यपि शूद्र आदिको गायत्री आदिके जप करने असंभव हे जो प्रायश्चित्तों में होतेहैं तौभी इनको नमस्कार रूपी जो मंत्र है वही जप करना चाहिये इसीलिये स्मृत्यंतर वचन से यह कहा है कि (उच्छिष्टंचास्यभोजन मनुज्ञा तोऽस्यनमस्कारोमंत्रः) शूद्रकेलिये तीनि वर्णाकी जूठनि भोजनकहा और नमस्कार एक मंत्र है-अथवा यह न माना जाय तौभी वचन की प्रबलता से जप आदिकिये विनाही व्रत करै यह तात्पर्य है कि जैसा यह अंगिराका वचन है=यथा=तस्माच्छूद्रंसमासाद्यसदाधर्मपथेस्थितम् प्रायश्चित्तंप्रदातव्यंजपहोमविवर्जितम्=अर्थात्-शूद्र को किसी जपमें अधिकार नहींहै तिससे जो सदा धर्मके मार्गपर चलनेवाला शूद्रहो तिसको किसी प्रायश्चित्तके अवसर पर आरूढ करिके जप होम से रहितही प्राय-श्चित्त देना चाहिये=उन्हीं अंगिराने इसकेलिये दूसरा भी प्रकारदर्शाया है=यथा=शूद्रःकालेनशुद्ध्येतगोब्राह्मणहितेरतः दानैर्वाप्युपवासैर्वाद्विजशुश्रूषयातथा=अर्थात्-प्रायश्चित्तकी अवधि भर कहे कालसेही शूद्र शुद्ध होताहै जो गऊ ब्राह्मणके हित में लगा रहे अथवा नियत काल भर अनेक दानों के करने से यद्वा उपवासों से और तीनो वर्णोंकी निर्लोभ सेवा शुश्रूषा करनेसे भी शुद्ध होता है=और जो मनु का यह वचनहै कि (नचास्योपदिशेद्धर्मंनचास्यव्रतमादिशेत्) अर्थात् शूद्रको न धर्मका उ-पदेश देना न कोई व्रत आदेश करना-इसपर मिताक्षराकार कहिते हे कि यह उ-पसन्न शूद्रके विषय पर आरूढ वचन है कुछ यहां इस वचनसे तात्पर्य नहींलेनाहै=इसी प्रकार=एकस्मृत्यंतर यह वचन है कि (कृच्छ्रारायेतानि॰ नार्याणि सदावर्णत्रयेणतु कृच्छ्रेष्वेतेषुशूद्रस्यनाधिकारोविधीयते) इतने कृच्छ्रव्रत जो कहेगए सोसदा तीनो वर्णोंको करने चाहिये किन्तु इतने कृच्छ्रोंमें शूद्रका अधिकार नहीं कहा-सो

यह निषेध काम्यकृच्छ्रोंके अभिप्रायसे किया गया है कि शूद्र इनको कामना से न साधै किन्तु प्रायश्चित्त मध्ये शूद्रको करनेका निषेध न समझना इसीलिये सदाशब्द का प्रयोगहै कि त्रैवर्णिक लोग जब चाहैं तब सदाही करसक्ते हैं शूद्र सदा नहीं=इन सभी वचनोंसे यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि तीन वर्णोंकी तरह स्त्री और शूद्र और प्रतिलोम जातोंको भी प्रायश्चित्तके व्रत करने चाहिये=और जो गौतमका यह वचन है कि (प्रतिलोमा धर्महीना) सोभी यह प्रायश्चित्त का संबंधी नहीं किन्तु इसके उपरान्त यज्ञोपवीत आदि विशेष धर्मों की अपेक्षा मध्ये कहा समझना ॥ २६२ ॥

इतिशूद्राद्यवकृष्टजातिपर्यंतप्रायश्चित्तप्रकरणं ॥

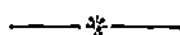
यह प्रकरण केवल उनतालिसके एकही परिच्छेदसे पूराहुआ दूसरा इसमें नहींहै॥

इत्यशेष महापातकादि प्रायश्चित्त प्रकरणानां बृहत्प्रकरण ॥

समस्त महापातकोंके अगिले पिछले कई प्रकरणों के परिच्छेद मिलानेसे यहां तक उन्नीस परिच्छेद होतेहैं क्योंकि बीसवें परिच्छेद तक ब्रह्मविद्याकी समाप्तिहुये पीछे इक्कीसवें परिच्छेदसे लेकर तीसवें तक दश परिच्छेदों में अनेक भेद होनेपरभी केवल ब्रह्महत्याके नाम से प्रकरण पूरा किया था–तिस पीछे इकतीसवां परिच्छेद लेकर यहां उनतालीसवें तक नौ परिच्छेदोंमें छोटे छोटे कई प्रकरण भेद किये उन सबहीको मिलाकर यहां (अशेष महापातकोंके) नामसे दृहत् प्रकरण मानागया कि जिसमें कुल १९ उन्नीस परिच्छेद हैं ॥

॥ जैसे २४२ दोसौ बयालिसकी अविकोक्ति में पापोंके अनेक भेद तेरह चौदह तक दर्शाइकर उनमें से मुख्य पांच भेद माने गयेथे कि महापातक १ अतिपातक २ पातक ३ उपपातक ४ अनुपातक ५—इनमें से महापातकों के प्रायश्चित्त ऊपर के प्रकरणमें वर्णन कियेगये उनके साथ अतिपातक और पातकोंके भी प्रायश्चित्त प्रदर्शित होतेरहे (और कुछ शेष रहाहोगा सो आगे कहीं दर्शावैंगे) परन्तु महापातकों का निःशेष वर्णन होचुका ॥ अब अगिले परिच्छेद से उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायँगे॥

अथोपपातक विषये गोहत्यायाः प्रायश्चित्तैकदेश प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः चत्वारिंशः ४०



इस परिच्छेद में उस प्रकार की गोहत्या के प्रायश्चित्त भेद कहे जायँगे कि जो गाय अति उत्तम स्वामी की नहो और वह गाय आपभी सामान्य जाति मात्र सेही गऊ कहातीहो विशेष गुणवाली गऊ न हो तिसका वध बिनाचाहे दैवयोगसे यदि किसी से होजाय-क्योंकि विशेष गुण वाली गऊ जो उत्तम स्वामी की हो तिसका वध होने मध्ये बड़ेप्रायश्चित्त है सो अगिले परिच्छेदों में हारीत आदि के वचनोंसे दर्शाये जायँगे (गाय की जाति मात्र में वृषभकाभी उपलक्षण वर्तमानहै) इस गोवधके अनेक भेदहैं तिससे इसके प्रायश्चित्त भी चार परिच्छेदों में जाकर पूरेहोंगे= २३४ मूल श्लोक से लेकर २४३ श्लोक तक पचास के लगभग उपपातक वर्णन हुयेहैं उनमें गोहत्या यह सबसे पहिला एक उपपातक है ॥

येही ५० नहीं किन्तु औरभी बहुत हैं ॥

(गोघ्नस्यप्रायश्चित्तं)

पंचगव्यंपिबेद्गोघ्नोमासमासीतसंयतः । गोष्ठेशयोगोऽनुगामी गोप्रदानेनशुद्ध्यति२६३
कृच्छ्रंचैवातिकृच्छ्रंचचरेद्वापिसमाहितः । दद्यात्त्रिरात्रंचोपोष्यवृषभैकादशास्तुगाः २६४

अर्थः—गोघ्न पुरुष महीना भर संयत होके गोष्ठ में सोवै गौओं के पीछे फिरै पंच गव्य पीवै फिर एक गऊदान करिके शुद्ध होताहै=अथवा पंचगव्यके पीने बिनाही इन्हीं सब नियमों से महीना भर कृच्छ्र व्रत करै यद्वा उन्हीं नियमों से महीना भर अति कृच्छ्र करै यद्वा उन्हीं नियमों से महीना भर संयत रहेपीछे तीन दिन उपवास करिके दसगौओंके साथ ग्यारहवाँ साँड़वृषभदान करै तब शुद्ध होय ये सब चारि प्रायश्चित्तकहे तिनको ब्राह्मण आदि वर्णोंके भेदसे व्यवस्था करिके कहेंगे सो सब अधिकोक्ति में देखना ॥ २६३ ॥ २६४ ॥

२६३ अधिकोक्तिः—इन चारोंप्रायश्चित्तोंमें कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र भी कहेगये तिनकालक्षण समझलेनाचाहिये जिससे इनकीव्यवस्था जोवर्णनहोगी सोभीसमझी जाय—तहां कृच्छ्र नाम है प्राजापत्य और सांतपन आदि अनेक व्रतों का जो कष्ट के

साथ साधनहोते हैं क्योंकि कष्टहीका नाम कृच्छ्र होताहै–तिससे यहां पर कृच्छ्र कहिने से प्राजापत्य समझना जिस कर्मका प्रजापति देवताहोता है उस प्राजापत्यका यह लक्षण है कि (त्र्यहंप्रातस्त्र्यहंसायंत्र्यहमद्यादयाचितम्त्र्यहंपरंचनाश्नीयात्प्राजापत्यमितिस्मृतम्) तीन दिन सवेरे और तीनदिन सांझको किंचित् अन्नखाय और तीन दिन बिना मांगे जो कुछ आजाय सो खाय फिरपीछे तीन दिन कुछ भी न खाय यह बारह दिनका प्राजापत्य कहाता है इसको कृच्छ्रभी कहिते हैं=इससे आधा छः दिन का कृच्छ्रार्द्ध भी कहाता है (सायंप्रातस्तथैकैकंदिनद्वयमयाचितम् दिनद्वयंचनाश्नीयात्कृच्छ्रार्द्धंसोऽभिधीयते) अर्थात्–उसी पूर्वोक्तप्रकार से एक दिन सांझ को एक दिन सवेरे किंचित् अन्न खाय फिर दो दिन बिना मांगे जो कुछ आजाय सो खाय तिस पीछे दोदिन कुछभी न खाय सो कृच्छ्रार्द्ध कहलाता है इसको लघु प्राजापत्यभी कहिना चाहिये=अतिकृच्छ्र इनसे जुदा व्रत है तिसका यह लक्षण है (एकैकंग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणित्रीणिपूर्ववत् त्र्यहंचोपवसेदंत्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः) अर्थात्–पूर्वोक्त किसी रीति से नौदिन तक एक एक ग्रास भोजन करे फिर तीन दिन कोरा उपवास करे यह अतिकृच्छ्र करते हुये द्विजाती का विधान है ॥ ० ॥ मूल श्लोकों की व्यवस्था अब कहिने का प्रारंभ करतेहैं कि–पंचगव्यका विधान जो शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है उसीतरह बनाकरउतनाहीपीवै किन्तु पेट भरोआनहीं पर यही उसकाआहाररहै कुछ और भोजन नहीं और (संयतः) अर्थात् शास्त्रोक्त सब नियमों को साधे हुये गौओं के गोष्ठ गौंहरे में सोया करे प्रातःकाल उठ कर उन्हीं गौओं के साथ जाकर पीछे फिरे अर्थात् गौवें जहां विश्राम लें तहां आपभी थँभि जाय जहां उनको कोई ऊँचे नीचे की अड़चल हो तहां युक्ति से उतारें कि उनको विपत्ति न होने पावै इत्यादि अनेक विधि हैं, तिनको करतेहुये फिर सांझ को साथजाकर गोष्ठमें उनकी उचित सेवाकिये पीछे धरती पर सोवै और बाकी मूल श्लोकों के अर्थ में देखो॰ यह विधि तो सर्वत्र लगीरहेगी पर अगिले प्रायश्चित्तोंमें पंचगव्यका आहार छूटि जायगा क्योंकि कृच्छ्र प्राजापत्य आदि व्रत करने कहे उन्हीं की विधि वर्ती जायगी यह समझ लेना१॥ दूसरा प्रायश्चित्त जिसकानाम कृच्छ्रकहा तिसको प्राजापत्य समझना–इसी हेतुसे जाबालिमुनिने महीनाभर प्राजापत्य करना यह जुदा प्रायश्चित्त दर्शायाहै=यथाह जाबालिः=प्राजापत्यंचरेन्मासंगोहंताचेदकामतः गोहितोगोऽनुगामीस्याद्गोप्रदानेन शुद्ध्यतीति=अर्थात्–एकमहीना प्राजापत्य कृच्छ्रव्रतकरै और गौओंकी भलाई वाले काम करतेहुये उनके पीछे फिरै तिस पीछे गोदान करके शुद्ध होताहै पर वही द्वि

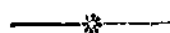
जिसने इच्छा विना किसी धोखे आदि कारणसे गऊ मारीहो—यह दूसरे प्रायश्चित्त का स्वरूप जो मूलश्लोकमें कहाथा तिसका निर्णय कियागया २ ॥ इन्हीं प्रकारोंसे महीनाभर अतिकृच्छ्र व्रतकरै यह तीसराहै ३ ॥ इन्हीं प्रकारोंसे महीना भर गोसेवा किये पीछेग्यारह गऊ वृषभ देनेकाहै वह चौथाहै४ ॥ इनमें किसप्रायश्चित्तको कौन करै यह व्यवस्था आगे देखो ॥०॥ जो विशेष गुणवाली गऊ न हो किन्तु सामान्य जातिमात्रसेही गऊकहातीहो और सामान्य ब्राह्मणकीहो जो केवल जातिहीसे ब्राह्मणकहाताहो तिसको विनाइच्छाके वधकरनेवाला पुरुष चौथेप्रायश्चित्तकोकरै जिसमें महीना भर गोसेवा किये पीछे तीन दिन उपवास करिके दशगऊ एक आंड़ वृषभ देना कहागया (उत्तम स्वामीकी गऊ तथा उत्तम गुण वाली गऊ मारने मध्ये बड़े प्रायश्चित्तहैं सो हारीत आदिके वचनों से अगिले परिच्छेदमें आवैंगे तिससेयहां सामान्य जाति गऊ और सामान्य जाति ब्राह्मण उसका स्वामी कहा गया यह विशेषता समझि लेनी चाहिये) ४ उसी प्रकारकी गऊ जो क्षत्री स्वामीकी हो तिसको इच्छा विना मारनेवाला पहिले प्रायश्चित्तको करै जिसमें पंचगव्य पीना कहाथा• तिसपर मिताक्षराकारने यह व्यवस्था भी आरोपित करीहै कि महीनाभर पंचगव्य का आहार बहुतही थोड़ा करना होताहै तिससे वह भी महीना भर उपवास के तुल्य ठहरता है तिस हेतु से उसमें भी कृच्छ्रार्द्ध रूपी छः दिनके आधे प्राजापत्य पांच माने जासक्तेहैं अर्थात् (छपंजेतीस) छे छे दिनके उपवासोंका एक एक लघु प्राजापत्य कल्पना करलेसे पांच कृच्छ्रोंका अभ्यास ठहरता है तिसमें एक एक कृच्छ्रके साथ एक एक गोदानकी पांच गऊ होतीहैं तथा एक उस गऊको समझना जो महीनाके पीछे देनी कही थी तिससे कुल छे गऊ होतीहैं जो क्षत्रीकी गऊ मारने मध्ये दान करनी ठहरीं तौभी उनसे कम संख्या ठहरी जो ब्राह्मण की गऊ मारने मध्ये एक बैल दश गऊ देनी कहीं अर्थात् ऐसा हिसाब लगानेसे भी यह प्रायश्चित्त उससे छोटा ठहरा• तिसपर यह तर्कनाहै कि ब्राह्मणकी गऊ मारने मध्ये इतना बड़ापन क्योंरक्खागया• इसका यह उत्तर है कि (देवब्राह्मणराज्ञांतुविज्ञेयंद्रव्यमुत्तमम् इतिनारदेनतत्तद्द्रव्यस्योत्तमत्वाभिधानात्) देवता और ब्राह्मण और राजा इनका द्रव्य उत्तम होताहै यह नारदने कहा और (गोषुब्राह्मणसंस्थासुिति दंडभूयस्त्वदर्शनाच) व्यवहारकांड में ब्राह्मण की गऊ मध्ये दंडभी अधिक देखनेमें आताहै तिससे भी यहां ऐसा बड़ापन रक्खागया ९ ॥ उसी प्रकारकी गऊ जो वैश्यकी हो तिसको इच्छा विना वध करने वाला महीना भर अतिकृच्छ्र नामक तीसरा प्रायश्चित्त करै और उसी प्रकार गौओं

को सेवा आदि भी महीनाभर करने पीछे पांच गोदान अर्थात् धेनुकल्प विधान से धेनुका अनुकल्प पांच प्रकारसे करे इनमें एक गऊ साक्षात्कार अपने स्वरूपहीसे देनी होगी जैसा योगीश्वरने महीनाके अन्तमें एक गोदान करना कहा ३॥ उसीप्रकारकी गऊ जो शूद्र स्वामीकीहो तिसको इच्छा विना मारनेमें दूसरा प्रायश्चित्त कृच्छ्र नामक अर्थात् प्राजापत्य व्रत एक महीनाभर करे और गौओं की सेवा शुश्रूषा आदि करने पीछे दो धेनुकल्प और एक गऊ साक्षात्कार दानकरै २ (इसी प्रकार जिसमें छे गौओंका विधान पहिले लिखचुके तहां भी पांचधेनुके अनुकल्प और छठा साक्षात्कार गोदान समझिलेना• परन्तु जिसमें दशगऊ एक आंडू वृषभ कहिचुकेतहां धेनुकल्प नहीं किन्तु साक्षात्कार सभी गौयें समझनी ॥ ० ॥ यह व्यवस्था एक उपराल याद रखनी चाहिये कि येही चारों प्रायश्चित्त जो साक्षात्कर्ता अर्थात् गोवध करनेवाले पर कहेगये सो कर्त्ताके अनुग्राहक और प्रयोजक और अनुमन्ताओंमें बड़े छोटे भाव की तरतमता देखिभाल के पूर्वोक्तही विषय में संयुक्त करने चाहियें कि जहाँ उनकी इच्छा और चाहना विना सहायता करनी परी हो ॥ ० ॥ इसी गोहत्या मध्ये जो विष्णुके कहे तीनि व्रतहैं कि (गोघ्नस्यपंचगव्येन मासमेकंपलत्रयं प्रत्यहंस्यात्पराकोवाचांद्रायणमथापिवा) गोहत्या करनेवाले को एकमहीना भर तीन पलके परिमान पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त चाहिये अथवा पराकव्रत करना चाहिये अथवा चांद्रायण करना चाहिये) ये तीनो प्रकार उसी के समान हैं कि जैसा याज्ञवल्क्यने पंचगव्य कहा सो जिसके लिये करना उचित ठहेरचुका उसी के निमित्तमें इनको भी समझिलेना=और जो कश्यपजीने कहाहै कि (गांहत्वातच्चर्मणाप्रावृत्तोमासंगोष्ठेशय स्त्रिषवणस्नायी नित्यंपंचगव्याहारः) गाय को मारिके उसकी खालको ओढ़ि कर गौंहरे में सोया करै त्रिकाल स्नान भी कियाकरै नित्यं प्रति पंचगव्य पीताहै) यह भी पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यजीके बताये पंचगव्यवाले प्रायश्चित्तका विषय है कि इसको भी उपराल बातें उसमें मिला लेनी चाहिये=एवं शातातप का वचन भी खुलाना है कि (मासंपंचगव्याहारः) एक महीना पंचगव्य का आहार करै—यह भी याज्ञवल्क्यजीके बताये पंचगव्य वाले व्रतके समानहै=और जो शंख तथा प्रचेताने एकही वचन कहा है कि (गोघ्नःपंचगव्याहारः पंचविंशति रात्रमुपवसेत्सशिखंवपनंकृत्वागोचर्मणाप्रावृतोगाश्चानुगच्छन्गोष्ठेशयोगांचदद्यात्) गाय मारनेवाला पचीसदिन पंचगव्य खायके उपवास करै चोटी सहित मुंडनकराय के गऊकी खाल ओढे हुये गौओंके पीछे फिरै गोष्ठमें राति काटै और पीछे से गऊ

दान करै) यह भी पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यजीके एक महीनावाले अतिकृच्छ्रके समान है कि इसमें से उपरालु नियमलेकर उसमें जोड़े जासक्ते हैं॰ और भी याज्ञवल्क्य ने दोसौ चौसठिके उत्तरार्द्धमें जो तीनदिनका व्रत करिके ग्यारह गऊ दानकरना कहा तिसके साथभी अग्रोक्त ग्रंथ प्रचेतावाले नियम उसदशामें जुड़िसक्ते हैं जो गऊ मारनेवाला अत्यन्त गुणावाहो यह मिताक्षराकारने व्यवस्था कही ॥०॥ इसी पहिले विषयपर कि जिसमें पंचगव्य का आहार कहागयाथा कदाचित् वही प्रायश्चित्त जिसको करनाचाहिये और पंचगव्य उसपर न पियाजाय अथवा न मिलसके तिसकेलिये कश्यप का कहा एक दूसरा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये जो कश्यपने महीनाभर पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त पहलेकहिकर दूसरा यहकहाहै कि (यष्ठेकालेपयोभक्षोवागाच्छं तीस्त्वनुगच्छेतासुसुखोपविष्टासु चोपविशेन्नातिप्लुवंगच्छेत्तान्निविषमेनावतारयेन्ना ल्पोदकंपाययेदन्तेब्राह्मणान्भोजयित्वातिलधेनुंदद्यादितिद्वष्टव्यम्) अर्थात्—जो पंचगव्यपीना न होसके तो छठेकालमें केवल दूधपीवे और चलतीहुई गौओंकेपीछेचलै और वे गऊ जब आरामसे बैठैं तब आपहू उनके निकट बैठे और अतिशय दहदलके पानीमें न लेजाय उनको ऊँचे नीचे टीलोंमें नहीं निकासै किन्तु सूधे मार्गसे निकासै और थोड़े जलमें नहीं पिआवै अच्छे निर्मलपानीमें पिआवै इसतरह प्रायश्चित्तकी अवधि पूरीकरिके अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजनकराय तिलधेनुका दानकरै (केवल दूध पीनाजो प्रायश्चित्तकेनिमित्तोंपर बताया तिसका यहतात्पर्यहै कि जीभस्वादुकेअर्थ उसमें मीठा कुछ नहो) जो विरला पुरुष ऐसा भी न करसके तिसके लिये अग्रोक्त पैठीनसि का बताया अनुकल्प विचारना चाहिये=यथाह पैठीनसिः (गोघ्नोमासंयवाग्वंप्रसृततंदुलस्पृतां भुंजानोगोभ्यःप्रियंकुर्वन्शुध्यति) अर्थात्—गऊ मारने वाला एक महीना तक एक पसर तंदुल रांधिके उसका दलिया खाते हुये गौओं का हित प्रिय करते हुये शुद्ध होता है ॥ ० ॥ सुमंतु ने जो प्रायश्चित्त कहा है कि (गोघ्नस्य गोप्रदानंगोष्ठेशयनं द्वादशरात्रंपंचगव्यप्राशनंगवानुगमनंच) गोहत्यावालेको गऊका दान गोशाला में सोना बारह दिन पंचगव्य चीखना गौओं के पीछे फिरनाभी योग्य है=और जो संवर्त ने कहा है कि (सक्तुयावकभैक्षाशीपयोदधिघृतंसकृत् एतानिक्रम शोऽश्नीयान्मासार्द्धंतुसमाहितःब्राह्मणान्भोजयित्वातुगांदद्यादात्मशुद्धये) पंद्रह दिन सावधान होके सत्तुआ या गोमूत्रमें रांधे यवोंका यावक दलिया भिक्षा भोजनकरते हुये गायके दूध दही घी येभी क्रम से प्रत्येक दिन एक एक बार चाटतारहै फिर ब्राह्मणों को भोजन कराइके अपने शुद्धहोने के लिये गोदान करै=और जो बृहस्पतिने

कहाहै कि (द्वादशरात्रपञ्चगव्याहार) बारहदिन पञ्चगव्यका आहारकरै सो शुद्धहोय— यहतीनों प्रायश्चित्तभी याज्ञवल्क्यजीकेकहे महीनाभरके प्राजापत्यके समानसमझने चाहियें यहमिताक्षराकारकाकथनहै अथवा जोगऊ मरनेकेतुल्य आपहीथी तिसकी हत्याकरनेवालेके निमित्तमेंसमझलेने क्योंकि प्रायश्चित्त बहुतछोटेहैं अथवा जिसने गऊको बहुत ऊँचेनीचे चढाइ घेरि पीटि पादिके त्रासमात्र दिया हो जिससे रोगपैदा होकर कुछ दिन बाद आपही गऊ मरजाय तिस हत्या के निमित्त में इन प्रायश्चित्तो को विचारना चाहिये ॥ अधिकोक्तिके प्रारम्भसे यहां तक जो कुछ प्रायश्चित्तोंके भेद वर्णन हुयेसोसब केवल उसी दशापर आरूढहैं कि विना इच्छा के जिसपर गऊ दैवयोग से मरगई हो—तथापि उत्तम स्वामी की उत्तम गऊ जिसपर विना इच्छा के मरगई हो तिसके बड़े प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में सकाम वधके साथ भी प्रसंग से दर्शाये जायँगे तत्रैव देखो ॥ इत्यकामगोवधविचारः ॥ अगिले परिच्छेद में सकाम गोवध के प्रायश्चित्त कहे जायँगे (तथापि उसमें हारीत आदि कई एक ऋषियों के बताये प्रायश्चित्त निष्काम गोवधके ऊपर भी आवेंगे) और यह चर्चाभी उसी परिच्छेद में आवेगी कि इस परिच्छेद में दर्शाये प्रायश्चित्त भी सकाम गोवध में द्विगुण किये जासक्ते हैं अर्थात् केवल वही नहीं कि जो अगिले परिच्छेद में सकाम वधके नामसे वर्णन होगे—अगिले परिच्छेद में कोई मूल श्लोक इस हेतुसे न आवैगाकिवह पाठभीइसी अधिकोक्तिके शेष वक्तव्यमें गिनतीहै ॥२६३॥२६४॥

अथोपपातकेषु सकामगोहत्यायाश्च विशिष्ट स्वामिक गोहत्यायाश्च प्रायश्चित्तप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः एकचत्वारिंश ४१



इस परिच्छेद में उस प्रकार के प्रायश्चित्त कहे जायँगे कि जिसने जानि बूझि इच्छा सहित उसी प्रकार की गाय मारी हो जैसी गऊ दैवयोग से मरजाने के प्रायश्चित्त ऊपरले परिच्छेद में कहि चुके—तिस पीछे इसी परिच्छेद में बढिया प्रायश्चित्तभी दर्शावेंगे जो उत्तम स्वामी की उत्तम गऊ दैव योगसे मरजाने सध्ये और जानि बूझि इच्छा सहित मारने सध्ये दोनों दशापर दो भांति के होवे ॥

जहां इसी प्रकार की गऊ जिसका पहले कथन होचुका है कि जिसमें कोई विशेष उत्तमता वाले गुणका चिह्न नहो और जातिसे सामान्य ब्राह्मण की गऊहो तिस को कोई इच्छा सहित चाहिकर वधकरै तिसके लिये अग्रोक्त मनु का कहा प्रायश्चित्त विचारै कि जैसा मनुने एक महीना चौथे काल में जौका दलिया राँधि पीना कहा और दो महीना हविष्य भोजन चौथे काल करना कहा इस तरह तीन महीना गोसेवा तथा ग्यारह गऊ दान यह सब मिलाकर यद्यपि तीनि महीने का एकही प्रायश्चित्त प्रतीत हुआहै तथापि मिताक्षराकारने इसीके तीनि प्रायश्चित्तभी माने और सबके छे महीना जोड़ि दियेहैं कि पहला एक महीने का दूसरा दोमहीनेका तीसरा तीनि महीनेका जुदा प्रायश्चित्त है सो इस अंतरको मनुके वचनों से बुद्धिमान पुरुष विचार करैंगे=यथाहमनुः=उपपातकसंयुक्तोगोघ्नोमासंयवान्पिबेत कृतवापोवसेद्गोष्ठेचर्मणार्द्रेणसंवृतः चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणांमितम गोमूत्रेणाचरेत्स्नानंद्वौमासौनियतेंद्रियः दिवाऽनुगच्छेत्तास्तुतिष्ठन्नूर्ध्वंरजःपिबेत शुश्रूषित्वानमस्कृत्वारात्रौवीरासनंव्रजेत तिष्ठंतीष्वनुतिष्ठेत्तुव्रजंतीष्वप्यनुव्रजेत आसीनासुतथासीतनियतोवीतमत्सरः आतुरामभिशस्तांवाचौरव्याघ्रादिभिर्भयैः पतितांपंकलग्नांवासर्वप्राणैर्विमोक्षयेत उष्णेवर्षतिशीतेवामारुतेवातिवाभृशम नकुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वातुशक्तितः आत्मनोयदिवान्येषांगृहेक्षेत्रेऽथवाखले भक्षयंतींनकथयेत्पिबंतंचैववत्सकम अनेनविधिनायस्तुगोघ्नोगाअनुगच्छति सगोहत्याकृतंपापंत्रिभिर्मासैर्व्यपोहति वृषभैकादशागाश्चदद्यात्सुचरितव्रतः अविद्यमानेसर्वस्वंवेदविद्भ्योनिवेदयेत (संतत्रितयंयाज्ञवल्कीयमासंप्राजापत्य॰ मासंपंचगव्याशन॰ वृषभैकादशगोदानयुक्तत्रिरात्रोपवासरूप॰ व्रतत्रितयविषयं यथाक्रमेणाद्रष्टव्यमित्यत्रमिताक्षराकारः)= अर्थात्–मनुने यह कहाहै कि इच्छासहित गोवध करनेवाला उपपातकी प्रथम एक महीना जौ का दलिया राँधि पीवै और मुंडन कराइके गोष्ठ गौंहरेमें टिकै कि जहां सैंकरों हजारों गऊ का समूह किसी जंगल में रहिता हो परन्तु मरी गऊ का गीला चमड़ा ओढ़िके टिकै (मिताक्षराकारने इसी इतनेको जुदाएक प्रायश्चित्त मानाहै) और दिन के चौथे काल में दो महीना तक ऐसा भोजन थोड़ासा करै जिसमें खारी नमक आदि कुछनहो किन्तु अलोना फीका भोजन होय और जितना थोड़ानियम सावै उतनाही नित्य निरन्तर भोजन करै न्यूनाधिक नहीं अर्थात पहिले महीना में जौका दलिया पीवै फिर दूसरे तीसरे दो महीना यह पिछला कहा भोजन करै तो यह पूरे तीनि महीनेका एकही प्रायश्चित्त ठहिरै और इन्हीं पिछले दोमहीना भर

गोमूत्रसे स्नान भी किया करै सब इन्द्रियों को जीति के वशमें राखै (मिताक्षराकार इसको भी जुदा एकप्रायश्चित्त बतातेहैं) और दिनमें उन गौओंके पीछे पीछे फिरता रहै जहां कहीं खडी होकर टिकिजायँ तहां आप भी खड़े रहिकर ऊपर को मुह पसारि उड़ती गोधूलिकी रज पीनेलगै फिर सन्ध्या समय उनकी सेवा शुश्रूषा अच्छे करिके और पुनः पुनः दंडवत् प्रणाम नमस्कार और प्रदक्षिणा आदि उपचार किये पीछे रातिमें उनके समीपही वीरासन बाँधि घुटुनोंके भर चौकस बनिके रहै कि जिससे गोयके भीतर जो खडीहोयँ तिनकेपास आपभी खड़ा होजाय और जो टहलती हों तिनके पीछे आप भी टहिलनेलगै और जो बैठीहों तिनके पास आपहू बैठिजाय इसीतरह जब गौयें सोजायँ तब आपहू धरतीपर सोवै यह सब आचार मामूली तौरसे मत्सरता को छोड़िके निरन्तर कियाकरै औरभी ये नियम उपरालूराखै कि जब कभी किसी गऊको कुछ रोगसे आतुर देखै या पानीसे भीगीदेखै या मूतगोबरसे चिपको देखै या चोर व्याघ्र आदि किसीके डरसे भयभीत देखै या गिरपडी देखै या कीच दहदल में लिपी वा फँसीदेखै तो इन सबको प्राणोंसे बचावै इसप्रकारसे कि चाहे ग्रीष्मकाल की लू चलतीहो या तीव्रवर्षा होती हो या बहुत जाड़ेका पाला परता हो या झंझा वायु तथा भयानक आंधी चलतीहो तौभी दुखी गऊकीरक्षा अपनीशक्ति की बराबर किये विना अपने देहकी रक्षा न करै (यहां गऊ कहिनेसे उसकी जाति मात्रसे गोपुत्रोंको रक्षाभी समझनी इसका दृष्टांत जैसे किसी बोझित गाड़ीका बैल गिरिके गाड़ी से दबा फँसा हो तहां आपही गाडीमें कंधा देकर बैलको दुख पीड़ासे उभारै इत्यादि) और भी यह नियम राखै कि चाहैं निज अपने या और किसीकेघर में या खेतमें या खलिहानमें कुछ खातीहो या बछरा छुटा दूध पीताहो तौ मालिकों से न कहै•इस कहीगई समस्त विधिसे जो कोई गौ मारनेवाला गौओं के पीछे शरण में जाताहै सो गऊहत्यासे किये पापको तीन महीनों से दूर करदेताहै अर्थात् पहिले एक महीना जौका दलिया फिर पीछे दो महीना अलोना कुछ और भोजन ये तीन महीने जो कहिचुके उन्हींका इसजघे उपसहार है और उन्हींके साथ यहविधि सब दर्शाईगई तिससे आदिसे अन्ततक एकही प्रायश्चित्तहै दोतीनक जुदेनहीं (मिताक्षराकार ग्रन्थोक्ततीन महीने सबसे जुदेमानिके इसको भी जुदा तीसरा प्रायश्चित्त बताते हैं पर आधुनिक अनुवादक ऐसा नहीं कहिसक्ता क्योंकि उस एकही प्रायश्चित्तका सबंध मिलाचला आताहै जो विधि कुछ बाकीरही सो आगे देखो कि) जिसने तीन महीना तक अच्छीतरह व्रतका आचरण किया हो सो पीछे से दशगऊ ग्यारहवां

एक आंड़ू वृषभ दानकरै परन्तु जिसकेपास ग्यारह गऊदान करने योग्य द्रव्य न हो वह अपना सर्वस्व अर्थात् जो कुछ थोड़ीबहुत सामग्री वर्तनभांडे कपड़े पशुआदि घर में हो सो सब लेकर वेदके विज्ञाता विद्वान् विप्रोंको समर्पणकरै तौभी शुद्ध होजाता है ॥ ०॥ अंगिराने इसी मनुके कहे प्रायश्चित्त के साथमें कुछ और भी आधिक्य दर्शायाहै अर्थात् ऐसा लिखा है कि तीन महीने मनुका कहा प्रायश्चित्त सावै पर उसके साथ इतना और करै कि (अक्षारलवणांरूक्षं षष्ठेकालेऽस्यभोजनम् गोमतीं वाजपेयिद्यामोङ्कारंवेदमेवचव्रतवद्धारयेद्दण्डंसमंत्रांचैवमेखलाम्) अर्थात् इसपापीको मनुका कहा प्रायश्चित्त करतेहुये छठे काल में भोजन करना चाहिये जो खार की वस्तुनहो अलोनी हो रूक्षनहो और गोमती नामक वेदमंत्र की विद्याका जपकरै जो गायत्री प्रसिद्धहै यहा न वनिआवै तो केवल ओंकार जपै अथवा विद्या में पूरी शक्ति हो तौ वेदकी संहिता पाठकरै और व्रतके नियम की भांति दंड भी धारण करै तथा मन्त्रक्रिया सहित मेखलाभी धारणकरै—मिताक्षराकार कहितेहैं कि इतना अधिक बढ़ाकर अंगिराने मनुके प्रायश्चित्त में बड़ापन ठहिराया तौ इस बड़ेकोभी इसी विषयपर विचारना चाहिये कि जिस पर मनुका प्रायश्चित्त करना कहिचुके तिसमें इतनी और भी विशेषता समुझिलेनी कि जिसने मोटी ताजी या तरुण अवस्थाकी कलोरि आदि थोड़े गुणसे अतियुक्त गऊ मारीहो तिसकेलिये यह प्रायश्चित्त का बड़ापन अंगिरा के वचनानुकूल विचारा जाय—जबकि—मनु और अंगिरा के कहे ये दोनो प्रायश्चित्त केवल उसकेलिये ठहिरे कि जिसने सामान्य ब्राह्मणकी सामान्य गऊ इच्छासहित मारीहो—तौ फिर जिसने सामान्य क्षत्रीकी गाय या सामान्य वैश्य की गाय या शूद्र की गाय इच्छासहित मारी हो तिनकी क्या प्रायश्चित्त विचारा जाय सो आगेदेखो ॥ ० ॥ (विहितंयदकामानांकामात्तद्द्विगुणंचरेदितिन्यायःप्रसिद्धः) जो कुछ प्रायश्चित्त अनिच्छासे पापहोजानेपर कहा गयाहो वही इच्छासहित पाप करनेवाला दूना प्रायश्चित्तकरै यह न्याय घंटाघोष है तिससे जिसने क्षत्री या वैश्य या शूद्रकी गाय मारीहो तिनको वेही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त यहां इच्छा सहित मारने के निमित्त पर दूने अर्थात् दोहरे करने चाहिये जो पहिले परिच्छेद में अनिच्छा से इन्हीं तीनो वर्णों की गाय मारने मध्ये जुदे जुदे तीनो कहिचुके हैं वहांपर योगीश्वरके (२६३ । २६४) मूल श्लोकों का अर्थ देखो॥ शंका—क्योंजी गोहत्या सब एकसी बराबर होनी चाहिये अभी ऊपर जो अंगिराके बताये प्रायश्चित्त में मोटी ताजी कलोरि आदि लक्षणों की परख लगाई गई वह क्या बात है—

सुनो(अतिबालामतिकृशामतिवृद्धांचरोगिणीम हत्वापूर्व्वविधानेनचरेदर्द्धव्रतंद्विजः) यह वचन आगे आवैगा कि अति बालक बचा या अत्यन्त दुर्व्वल शरीर की या अति वूढी या अति रोगिनि जो स्वतः मरनेवाली होरहीथी इनको मारने से द्विजाती को उस से आधा व्रत करना चाहिये जो पहिले पूरी गाय के मारने मध्ये विधान होचुका है–तो इसी व्यवस्था के अनुरूप यहां मोटी ताजी जुवान अवस्था आदि उत्तम गुण के ऊपर प्रायश्चित्त में बढ़ापन कियागया सो अविरुद्ध जानो॥ ०॥ अथविशिष्टस्वामिगोहत्याप्रायश्चित्त=हारीत मुनिका यह वाक्य है कि=गोघ्न स्तचर्म्मोर्ध्ववालपरिधाय • इत्यादिना मानवी स्थिति कर्तव्यता मभिधायोक्तं • ऋ- षभैकादशाश्चगादत्वा त्रयोदशेमासेपूतोभवति• तत्सवनस्थश्रोत्रियगोवधेऽकाम कृतेद्रष्टव्य=अर्थात्–गऊ मारने वाला उसी गऊ का चमड़ा जिसके वाल ऊपर को रक्खे सो पहिनके•इत्यादि वचनके द्वारा यही मनुकी कर्तव्यता है सो कहि कर हा- रीतने पीछेसे दशगऊ एक आंडू वृषभ देकर तेरहवें मासमें पवित्र होना कहाहै–सो यह बारह महीनेका प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना कि जिसने सवन-यज्ञमें लगे हुये श्रोत्रिय ब्राह्मणकी गऊको इच्छा विना किसी धोखे आदि कारणसे वधकिया हो॥ ०॥ और जो वशिष्ठका यह प्रायश्चित्त है कि=गांचेद्धन्यात्तस्याश्चर्मणार्द्रेण परिवेष्टितः षण्मासान्कृच्छ्रंतप्तकृच्छ्रंवातिष्ठेत्र वृषभंवेहतौदद्यात्ता• स्मितिवशिष्ठेन कृच्छ्रतप्तकृच्छ्रानुष्ठानषण्मासिकमुक्तंतद्धारीतीयेनसमानविषय=अर्थात्– यदि गऊ मारडाले तो उसके गीलेही चमड़े से अपना देह ढांकि ओढ़िके छै महीना भर कृच्छ्र और तप्तकृच्छ्र दोनो तरहके व्रत कियाकरै (इस रीतिसे कि पहिले कृच्छ्रव्रतका एक अनुष्ठान करिके फिर तप्तकृच्छ्र का अनुष्ठान करै फिर कृच्छ्रका फिर तप्तकृच्छ्र का इसी तरह सकलितरूपसे निरन्तर करतारहै) और वृषभके मारनेमें गऊदानभी देवै– यह वशिष्ठने छमाही के दोनों व्रतकहे सोभी हारीतके समान मुआमिले पर समझि लेना कि जैसा हारीतका बारहमासी व्रत सवनस्थ श्रोत्रिय ब्राह्मणकी गऊ मारनेपर कहागया तैसा यह छमाही व्रत सवनस्थ किसी क्षत्रीकी गऊ मध्ये विचारना चाहिये जो विना इच्छाके वध कियाहो॥ ०॥ और जो देवलका कहा प्रायश्चित्तहै कि= गोघ्न-षण्मासांस्तचर्म्मपरिवृतोगोग्रासाहारो गोव्रजनिवासीगोभिरेवसहचरन्प्रमुच्यते= अर्थात्–गऊ मारनेवाला छै महीना उसी का चमड़ा ओढिके गऊग्रास का आहार करै और गौओंके गोंहरेमें निवास करै और गौओंके साथ फिरतारहै सो तिस पाप से छुटिजाताहै (इसमे गोग्रासका आहार कहा तिसका यह तात्पर्य कि प्रायश्चित्ती

गुणों से भी उत्तमहो यह एक व्रत ठहिरा) फिर इस बातका प्रमाण भी मिताक्षरा कार देतेहैं कि अप्रोक्त सवणायके विशेषणोंको बृहस्पतिने भी ऐसे कहाहै कि॰गर्भवती और कपिला और दुधार और होमके निमित्त दूध देनेवाली और सुव्रता गऊ कि जिसका दर्शन पूजन आदि सत्कार व्रतके नियम साथ कियाजाताहो ऐसी गाय को तलवार आदिसे वध करिके दुगुना व्रतकरे जो बृहस्पति पहिले सामान्य गऊ के मारने पर कहिचुकेहैं तिससे॰ यह विशेष लक्षणवाली गऊके वध करने में विशेष प्रायश्चित्त देखा गयाहै तिससे ऊपरली व्यवस्थाको अनर्थक मत समझना यह मिताक्षराकारोंने कहा॰ फिर कहिते हैं कि (इसी हेतुपर प्रचेताने भी ऐसा कहा है कि॰ गर्भवती नारी और गर्भवती गाय तथा बालक और बूढ़ेका वध करनेवाला भ्रूण हत्या भागी होताहै इस हेतुसे इसी प्रकारके गोवधपर ब्रह्महत्यावाला व्रत भी उन्हीं प्रचेताने अतिदेश उतारा है कि गाभिन आदि गाय का वध करिके ब्रह्महत्या पर कहे व्रतको करे॰ इनबातोंको देखनेसे स्वतः सिद्ध होताहै कि इतना बड़ा प्रायश्चित्त जो सहस्र गोदान सहित कहागया वह सामान्य गऊके वधपर नहीं चाहिये॰यहां तक यमके कहे एकही बड़े प्रायश्चित्तका निर्णय पूरा हुआ)=तैसाही यम का कहा दूसरा व्रत अन्नके गोशत १०० दान सहित दो महीनेवाला जो ऊपर कहिचुके तिसको कात्यायनके कहे तीनि वर्ष वाले प्रायश्चित्त के साथही जोड़िके धनवान् हत्यारेपर आरूढ किया जासक्ताहै यदि कोईसी अप्रोक्त विशेषता भी पापमें पाई जाय अन्यथा नहीं ॥०॥ एक और व्यवस्थाहै कि गौतम ने जो प्रायश्चित्त॰ एक आँडू वृषभ और सौ गायके दान सहित तीनिवर्षका प्राकृत ब्रह्मचर्य रूपी॰ वैश्यका वध करनेवालेको उपदेशिक प्रधानतासे कहिकर पीछे गोहत्या पर भी उसीका अतिदेश उतार दिया है (गांचहत्वावैश्यवर्दति) इस वचन से—यद्यपि—यहां विचार से यह तात्पर्य ठीक होताहै कि ऊपर जहां सवनस्थ क्षत्री और सवनस्थ वैश्य दोनों की गाय वध होनेपर एकही प्रायश्चित्त केवल शंखजीके वचनसे कहागया तहां पर इस प्रायश्चित्तको सवनस्थ वैश्यकी गाय मारनेमध्ये धनवान् हत्यारेपर आरूढ करै अर्थात उसीग्रंथोक्तके साथ इसका बदलधनवान् हत्यारेपर ठहिरायाजाय निर्धन पर नहीं—परन्तु—विज्ञानेश्वर मिताक्षराकारके विचारसे किसी वैवार्षिक व्रतमें कहीं नव्वे९० धेनुके साथगौतमोक्त१०१ एकसौएक जोड़नेसे१९१ नौवास दोसौसंख्या होती हो या नहो तौभी हजार गऊ सहित दोमहीना वाले व्रतसे यहगौतमका छोटा देखि परताहै तिसहेतुसे इसगौतमके कहेप्रायश्चित्तकोउसप्रकारकी गोहत्यापरसमझिलेना

कि जिस गऊ का स्वरूप इससे पहिले परिच्छेद में कहिचुके परन्तु उस परिच्छेद में लिखे प्रायश्चित्तों से यह गौतम का बड़ाहै तिससे यह भेद है कि वैसेही स्वरूप वाली गऊका वध कोई इच्छा सहित करै तिसकेलिये समझना अथवा उसीस्वरूप की गऊ यदि गर्भ सहित किसीने इच्छा विना धोखे आदि से वध करी हो तिसके लिये भी समझना॰और भी जैसी उत्तम गऊ भवनस्थ स्वामीकी हालहीके वर्णन में कहीगई सो यद्यपि गर्भ रहितहो और इच्छाविना मारीगई हो तौभी कात्यायनका कहा तीनिवर्षका प्रायश्चित्त कराना चाहिये अर्थात् जो ऐसी उत्तमगऊ गर्भवती हो तौ इच्छाविना मारीजाने में भी इसी कात्यायनके तीनि वर्षोंसाथ हजारगऊ या सौगऊका दान भी दो महीने के प्रायश्चित्त सहित जोड़िलेना चाहिये जो हत्यारा धनवान् होय यह सब ऊपर वर्णन होचुकाहै परन्तु जिसमें बहुत गौओंका दानहो सो धनवान्का प्रायश्चित्तहै निर्धनको सर्वस्व दानकरना आदि उसकी दशाके अनुसार उपाय सोचिलेना ॥ ० ॥ अथशस्त्रविशेषैर्गोहनन प्रायश्चित्तनिर्णयः—जिस-किसीने जैसे शस्त्रोंसे गायमारी हो तिसके भी जुदे जुदे प्रायश्चित्तोंका निर्णय यहाँ यम के वचनों से लिखते हैं=यदाहयमः=काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावःशस्त्रैर्वानिहतायदि प्रायश्चित्तंकथंतत्र शस्त्रेशस्त्रेविधीयते काष्ठे सांतपनंकुर्यात्प्राजापत्यन्तुलोष्टकेतप्त-कृच्छ्रं तुपाषाणे शस्त्रेचाप्यतिकृच्छ्रकम् प्रायश्चित्तेततश्चीर्णेकुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्-त्रिंशद्गावृषभंचैकंदद्यात्तेभ्यश्चदक्षिणाम्=अर्थात्—जो लाठीलकड़ी या मट्टीकाढीम या पत्थरों से गौयें मारीहों या शस्त्रों से तिनका प्रायश्चित्त कैसेहो॰तहां जुदे जुदे हथिआर पर विधान किया जाताहै कि जहाँ काठसे मारीहो तहाँ सांतपन व्रत करै ढलेसे मारीहो तौ प्राजापत्यकरै पत्थरसे मारै सो तप्त कृच्छ्र करै लोहेके हथिआरसे मारीहो तौ अतिकृच्छ्र करै और प्रायश्चित्तों के पूरे होनेपर ब्राह्मण भोजन करावै औरतीस गौयें तथाएक वृषभऔर दक्षिणा भी उन्हीं ब्राह्मणोंको दानकरै यहविधि इतनी सबके पीछे लगीहै यह समुझिलेना—सो ये यमके कहे व्रत छोटेहैं तिससे ऐसी दशापर समुझिलेना कि जहाँ लकड़ी पत्थर आदिसे गऊको बहुत मारने परभी गऊ प्राणोंसे बचिगईहो तौभी इतना प्रायश्चित्त कराना चाहिये अथवा यदि गऊ इन्हीं हथिआरोंसे मरगई हो तौभी पूर्वोक्त प्रकारोंसे प्रायश्चित्त कायम किये पीछे उसी में इन वचनों की विशेषता जोड़िलेनी चाहिये इसका यह दृष्टांत है कि जैसे जिस-किसीपर पूर्वोक्त कात्यायन के वचनों से तीनि वर्ष का प्रायश्चित्त विचार में ठहिराहो या उसकेसाथ हजार या सौगौयें देनी ठहरी हों तहां यदि वह भी सांतिव

गुणों से भी उतसहो यह एक व्रत ठहिरा) फिर इस बातका प्रमाण भी मिताक्षरा कार देतेहैं कि अप्रोक्त सवणायके विशेषणोंको वृहस्पतिने भी ऐसे कहाहै कि•गर्भवती और कपिला और दुधार और होमके निमित्त दूध देनेवाली और सुव्रता गऊ कि जिसका दर्शन पूजन आदि सत्कार व्रतके नियम साथ कियाजाताहो ऐसी गाय को तलवार आदिसे वध करिके दुगुना व्रतकरै जो वृहस्पति पहिले सामान्य गऊ के मारने पर कहिचुकेहों तिससे• यह विशेष लक्षणवाली गऊके वध करने में विशेष प्रायश्चित्त देखा गयाहै तिससे ऊपरली व्यवस्थाको अनर्थक मत समझना यह मिताक्षराकारोंने कहा• फिर कहिते हैं कि (इसी हेतुपर प्रचेताने भी ऐसा कहा है कि• गर्भवती नारी और गर्भवती गाय तथा बालक और बूढेका वध करनेवाला भ्रूण हत्या भागी होताहै इस हेतुसे इसी प्रकारके गोवधपर ब्रह्महत्यावाला व्रत भी उन्हीं प्रचेताने अतिदेश उतारा है कि गाभिन आदि गाय का वध करिके ब्रह्महत्या पर कहे व्रतको करै• इनबातोंको देखनेसे स्वतः सिद्ध होताहै कि इतना बड़ा प्रायश्चित्त जो सहस्र गोदान सहित कहागया वह सामान्य गऊके वधपर नहीं चाहिये•यहां तक यमके कहे सकही बड़े प्रायश्चित्तका निर्णय पूरा हुआ)=तैसाही यम का कहा दूसरा व्रत अन्नके गोग्रास १०० दान सहित दो महीनेवाला जो ऊपर कहिचुके तिसको कात्यायनके कहे तीनि वर्ष वाले प्रायश्चित्त के साथही जोड़िके धनवान् हत्यारेपर आरूढ किया जासक्ताहै यदि कोईसी अप्रोक्त विशेषता भी पापमें पाई जाय अन्यथा नहीं ॥०॥ एक और व्यवस्थाहै कि गौतम ने जो प्रायश्चित्त• एक आँड़ू वृषभ और सौ गायके दान सहित तीनिवर्षका प्राकृत ब्रह्मचर्य रूपी• वैश्यका वध करनेवालेको उपदेशिक प्रधानतासे कहिकर पीछे गोहत्या पर भी-उसीका अतिदेश उतार दिया है (गांचहत्वावैश्यवदिति) इस वचन से—यद्यपि—यहां विचार से यह तात्पर्य ठीक होताहै कि ऊपर जहां सवनस्थ क्षत्री और सवनस्थ वैश्य दोनों की गाय वध होनेपर सकही प्रायश्चित्त केवल शंखजीके वचनसे कहागया तहां पर इस प्रायश्चित्तको सवनस्थ वैश्यकी गाय मारनेमध्ये धनवान् हत्यारेपर आरूढ करै अर्थात उसीशंखोक्तके साथ इसका बदलधनवान् हत्यारेपर ठहिरायाजाय निर्धन पर नहीं—परन्तु—विज्ञानेश्वर मिताक्षराकारके विचारसे किसी वैवार्षिक व्रतमें कहीं नव्वेद•धेनुके साथगौतमोक्त१०१एकसौएक जोड़नेसे१९१गौकम दोसौसंख्या होती हो या नहो तौभी हजार गऊ सहित दोमहीना वाले व्रतसे यहगौतमका छोटा देखि परताहै तिसहेतुसे इसगौतमके कहेप्रायश्चित्तकोउसप्रकारकी गोहत्यापरसमझिलेना

कि जिस गऊ का स्वरूप इससे पहिले परिच्छेद में कहिचुके परन्तु उस परिच्छेद में लिखे प्रायश्चित्तों से यह गौतम का बड़ाहै तिससे यह भेद है कि वैसेही स्वरूप वाली गऊका वध कोई इच्छा सहित करै तिसकेलिये समभना अथवा उसीस्वरूप की गऊ यदि गर्भ सहित किसीने इच्छा विना धोखे आदि से वध करी हो तिसके लिये भी समभना•और भी जैसी उत्तम गऊ सवनस्थ स्वामीकी हालहीके वर्णन में कहीगई सो यद्यपि गर्भ रहितहो और इच्छाविना मारीगई हो तौभी कात्यायनका कहा तीनिवर्षका प्रायश्चित्त कराना चाहिये अर्थात् जो ऐसी उत्तमगऊ गर्भवती हो तो इच्छाविना मारीजाने में भी इसी कात्यायनके तीनि वर्षोंसाथ हँजारगऊ या सौगऊका दान भी दो महीने के प्रायश्चित्त सहित जोड़िलेना चाहिये जो हत्यारा धनवान् होय यह सब ऊपर वर्णन होचुकाहै परन्तु जिसमें बहुत गौओंका दानहो सो धनवान्का प्रायश्चित्तहै निर्धनको सर्वस्व दानकरना आदि उसकी दशाके अनुसार उपाय सोचिलेना ॥ ० ॥ अथशस्त्रविशेषैर्गोहनन प्रायश्चित्तनिर्णयः—जिस किसीने जैसे शस्त्रोंसे गायमारी हो तिसके भी जुदे जुदे प्रायश्चित्तोंका निर्णय यहाँ यम के वचनों से लिखते हैं=यदाहयमः=काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावःशस्त्रैर्वानिहतायदि प्रायश्चित्तंकथंतत्र शस्त्रेशस्त्रेविधीयते काष्ठे सांतपनंकुर्यात्प्राजापत्यन्तुलोष्ठकेतप्त-कृच्छ्रं तुपाषाणे शस्त्रेचाप्यतिकृच्छ्रकम प्रायश्चित्तेततश्चीर्णेकुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् त्रिंशद्गावृषभंचैकंदद्यात्तेभ्यश्चदक्षिणाम=अर्थात्—जो लाठीलकडी या मट्टीकाढीम या पत्थरों से गौयें मारीहों या शस्त्रोंसे तिनका प्रायश्चित्त कैसेहो•तहाँ जुदे जुदे हथिआर पर विधान किया जाताहै कि जहाँ काठसे मारीहो तहाँ सांतपन व्रत करै डलेसे मारीहो तो प्राजापत्यकरै पत्थरसे मारे सो तप्त कृच्छ्र करै लोहेके हथिआरसे मारीहो तो अतिकृच्छ्र करै और प्रायश्चित्तों के पूरे होनेपर ब्राह्मण भोजन करावै औरतीस गौयें तथाएक वृषभऔर दक्षिणा भी उन्हीं ब्राह्मणोंको दानकरै यहविधि इतनी सबके पीछे लगीहै यह समुझिलेना—सो ये यमके कहे व्रत छोटेहैं तिससे ऐसी दशापर समुझिलेना कि जहाँ लकड़ी पत्थर आदिसे गऊको बहुत मारने परभी गऊ प्राणोंसे बचिगईहो तौभी इतना प्रायश्चित्त कराना चाहिये अथवा यदि गऊ इन्हीं हथिआरोंसे मरगई हो तौभी पूर्वोक्त प्रकारोंसे प्रायश्चित्त कायम किये पीछे उसी मे इन वचनों की विशेषता जोड़िलेनी चाहिये इसका यह दृष्टांत है कि जैसे जिस किसीपर पूर्वोक्त कात्यायन के वचनों से तीनि वर्ष का प्रायश्चित्त विचार में ठहिराहो या उसकेसाथ हजार या सौगौयें देनी ठहरी हों तहाँ यदि यह भी साबित

के विधानमें यद्यपि एक ग्रास वही कहा गयाहै जो एक बार बड़े मुहवाले आदिमी के मुहमें जासके अथवा मुर्गीके अंडे समान अन्नका परिमान भी कहदिया है तथापि छेमहीने तक इतने अन्नसे देह थांभना संगत नहीं है तिससे यहां गोग्रास कहि कर गऊके मुहका लखना दर्शायाहै कि जितना अन्न गऊके मुहमें एक बार आसक्ता हो उतना खाकर प्रायश्चित्तका व्रतसाधे) यह देवलमुनि का कहा छमाही व्रत भी पूर्वोक्त हारीतके समान विषयपर समझिलेना कि जैसे उसमें सवनस्थ ब्राह्मणकी गऊ कहीगई तैसे इसमें सवनस्थ किसी वैश्यकी गऊ वध करने मध्ये इसी प्रायश्चित्तको ठहिराना जो इच्छा विना गऊ मारी हो ॥ अत्रापिसकामवधप्रायश्चित्तं–जिसने कामनासे चाहिकर सवनस्थ श्रोत्रियकी गऊ मारीहो तिसको अग्रोक्त कात्यायनके वचनसे तीनिवर्षका व्रतजानो=यथाह कात्यायनः=गोघ्नस्तचर्मसंवीतोवसेद्गोष्ठेऽथवा पुनः गाश्चानुगच्छेत्सततंमौनीवीरासनादिभिः वर्षशीतातपक्लेशवर्षाक्षिपंकभयार्दिताः मोक्षयेत्सर्वयत्नेन पूयतेवत्सरैस्त्रिभिः=अर्थात्–कात्यायन ने कहा है कि गऊ मारने वाला उसीके चमड़ासे देह ढांकेहुये वनमें गौव्रजके ठिकाने अथवा गोंहरेमें वसै और तीनि वर्ष तक निरन्तर गौओंके पीछे फिरै तथा मौन साधे और वीरासन होके रात्रि में बैठाहुआ गौओंकी चौकसाई आदि सेवा करते हुये वर्षा शीत आताप तीनोंऋतु के क्लेशोंको आप सहिकर उन्हीं क्लेशोंसे भयभीत गौओं को सब यत्नों से बचाता रहै सो तीनि वर्षोंसे पवित्र होताहै–यह तीनि वर्षोंका प्रायश्चित्त उसी हारीतवाले विषय पर विचारना चाहिये कि जिसने सवनस्थ श्रोत्रिय ब्राह्मण की यज्ञ संबंधी गायको इच्छा सहित माराहो तिसके लिये–परन्तु–जो उस गऊमें थोड़ी बहुत कोई सी विशेषता भी उस तरहकी मौजूदहो जैसी आगे यम और बृहस्पतिके वचनों साथ कही जायँगी तो उस विशेषता पर इसी प्रायश्चित्तके साथ दूसरा वहभी जोड़िलेना होगा जो आगे यमके वचन में गो शत १०० दान सहित दोमास का व्रत आवैगा॰ यह विशेषता याद रखनी चाहिये कि जो हत्यारा धनवान हो तिसके लिये ऐसा नियम है ॥ ० ॥ सवनस्थ क्षत्री और वैश्यकी गाय मारने मध्ये अगिला एकही प्रायश्चित्त है=यदाह शंखः=पादन्तुशूद्रहत्यायामुदक्यागमनेतथा गोवधेचतथाकुर्यात्परस्त्रीगमनेतथा=अर्थात्–पूर्वोक्त महापातकोंमें दर्शाये बारह वर्ष वाले व्रत का एक चौथाई प्रायश्चित्त शूद्रका वध करनेमें तथा रजस्वलासे संगम करनेमें और गायका वध करने तथा पराई स्त्रीसे संगम करनेके पापोंमें भी करै–सो यह तीनि वर्ष का प्रायश्चित्त जिस विषयपर कात्यायनका अभी ऊपर लिखि चुकेहैं उसीपर इसको समझि

लेना कि जिसने सवनस्थ क्षत्री या सवनस्थ वैश्यकी गाय मारीहो–किन्तु वैश्य को गऊ मध्ये विरले कर्मके श्रग कमकरिके इसी प्रायश्चित्तको करवाना यदा हत्यारा धनवान्हो तो कुछ दूर आगे बढिकर (गांचहत्वावैश्यवदितिगौतमः) यह गौतमका वचन जहां आवै तहां इसको अर्थों सहित व्यवस्था देखि भाल कर यहां वैश्य की गायमध्ये उसको भी विकल्प से समभि लेना कि ऊँच नीच दशा के अनुरूप वही किया जाय या अर्धोक्त किया जाय परन्तु अवधि तीनि वर्ष की दोनो मे बराबर है केवल विधानका विकल्प लेना होगा॥ ०॥ पूर्वोक्त सवनस्थ श्रोत्रिय की गाय मारने मध्ये एक और भी विशेष प्रायश्चित्त है कि–यमने जो अंगिरा मुनि की कही कर्तव्यता पहिले दर्शाइके सहस्र गऊ दान और गोशत १०० दानरूपी दो प्रायश्चित्त दो दो महीनाकी अवधि वाले कहेहैं उनका भी निर्णय यहां करना चाहिये=यदाह यम =गोसहस्रशतवापिदद्यात्सुचरितव्रतः अविद्यमानेसर्वस्ववेदविद्भ्योनिवेदयेत् (तत्र यदासवनस्थश्रोत्रियातिदुर्गत बहुकुटुंबब्राह्मणसबधिनीं॰ कपिलां कर्मांगभूतां गर्भिणीं बहुक्षीरतरुणामाद्यदिगुणशालिनीम॰ निर्गुणोधनवान् सप्रयत्न खड्गादिनाव्यापादयति तदागोसहस्रयुक्त द्वैमासिककुर्यादित्येकव्रत मितिमिताक्षराकारा.)गर्भिणीं कपिलांदोग्ध्रींहोमधेनुचसुव्रताम खड्गादिनाघातयित्वाद्विगुणव्रतमाचरेदिति विशि ष्टायांगविवाहस्पत्येप्रायश्चित्तदर्शना दितिच मिताक्षराकारा॰ (अतएव प्रचेतसा॰ स्त्रीगर्भिणी गोगर्भिणी बाल वृद्ध वधेषु भ्रूणहाभवतीति ईदृग्विधमेव गोवधमभिसधाय ब्रह्महत्याव्रतमतिदिष्ट इत्येकस्यैवव्रतस्यनिर्णय॰)=तथाद्वितीयव्रत॰ धान्य गो शत १०० दानयुक्त द्वैमासिकमेव कात्यायनीय व्रत विषये धनवतो द्रष्टव्य मित्यपि मिताक्षराकाराः=अर्थात–यह सब निर्णय यमके कहे दोनो व्रतोका मिताक्षराकार लिखते हैं कि॰ यमने अंगिरामुनिकी कही दोमासकी कर्तव्यता दर्शानेके साथ ऐसा कहा है कि–इस व्रतका अच्छा आचरण किये पीछे एक हजार गाय अथवा एक १०० सौ गाय दानकरै यदि उसके पास इतना न हो तो अपना सर्वस्व लेकर वेदके विज्ञाता विप्रोको निवेदन करदेवै (तहां मिताक्षराकार कहिते है कि पहिला एक सहस्र गाउदान वाला प्रायश्चित्त दोमासका उसको करना चाहिये जो आप निर्गुण और धनवान् होते इच्छा सहित बड़े उपायोसे तलवार आदि शस्त्रोसे॰ उसगऊ का वधकरै जिसका मालिक श्रोत्रिय ब्राह्मण बड़े कुटुम्बसे धनहीन दुर्गति में घिरा होनेपर भी सवनयज्ञमे लगाहो॰ और वह गाय भी निज आप कपिला वर्ण से और यज्ञमे कर्मांग भूत मानी गई और गर्भसे सयुक्त और बड़ी दुधार और तरुणाई आदि

होजाय कि पत्थरों से मारीगई तो फिर उन्हीं तीनि वर्षोंतक तप्त कृच्छ्रव्रत वारंवार करतारहे इसीतरह और भी समुझिलेना परन्तु केवल यहीव्रतकरना असंगतहै॥२६३॥ २६४॥ इन्ही श्लोकोंकी अविकोक्ति के शेष पाठमें यह परिच्छेद है ॥

——*——

अतिवृद्धबालादिगोहनन–बहुकर्तृभिर्हननाद्यनेक गोवध भेदानां प्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः द्विचत्वारिंशः ४२

इस परिच्छेद में गोहत्या के छोटे मोटे अनेक भेदों से प्रायश्चित्त वर्णन होंगे– अर्थात् अति बूढ़ी बालक आदि मारने का प्रायश्चित्त १ और गर्भ गिराने मारिदेनेका प्रायश्चित्त २ एकगायको अनेक मिलिकेमारैं तिनका प्रायश्चित्त ३ रूँधि घेर अनेक गौओंको एकही कोईमारै तिसका प्रायश्चित्त ४ पुण्यके हेतुसेभी अति आहार आदि खुलाइके मारै तिसका प्रायश्चित्त ५ गाय मरजाने योग निमित्त करनेवाले का प्रायश्चित्त ६ इतने उक्त भेदोंके प्रायश्चित्त इसी क्रमसे लिखे जायँगे ॥

(अतिवृद्धरोगिण्यादिवधप्रायश्चित्तं)

अतिवृद्धामतिकृशामतिबालांचरोगिणीम् हत्वापूर्वविधानेनचरेदर्धव्रतंद्विजः ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्यादद्याद्धेमतिलांस्तथा=अर्थात्–अतिशयबूढ़ीया अतिशय बचा या अतिशय दुर्बल या अतिशय रोगिणि गायको इच्छा विना दैवयोगसे यदि कोई द्विजाती पुरुषवधकरै सो उसव्रतका आधा प्रायश्चित्त करै जो चालिसकेपरिच्छेद मे निरोगिनिआदिपर कहिचुके–या–जिसने इच्छासहित ऐसीहत्या करीहो सो आधा नहींकिन्तु इन्हीं व्रतोंको पूरा पूरा करै जो विना इच्छाके निरोगिनि आदिकावध होजाने मध्ये चालिसवें परिच्छेद में कहिचुके अथवा उन व्रतों को आधा करै जो इकतालिस के परिच्छेद मे इच्छासहित गोहत्यापर कहिचुके=इसी व्यवस्थामें=बचा के मरने मध्ये बृहत्प्रचेता ने छोटे प्रायश्चित्तों के प्रयोजन से विशेष भेदभी दर्शाये हैं कि बचा कितनी अवस्था का हो=यथाह=एकवर्षेहतेवत्सेकृच्छ्रपादोविधीयते अबुद्धिपूर्वपुंसःस्यादर्द्धपादस्तुद्विहायनेत्रिहायनेत्रिपादःस्यात्प्राजापत्यमतःपरम=अर्थात्–

गाढ़ प्यार से राखते हुयेभी एक वर्ष का बचा पुरुष की अज्ञानता में यदि आपही मरजाय (अवनहीं जाना जासक्ता है कि भूख पियास आदि किस हेतु से मेरी गफ़लत में मरगया) ऐसी दशा में केवल कृच्छ्र प्राजापत्य व्रतका एक पाद चौथाई व्रतकिया जाता है जो तीनिही दिनमें निपटि जाय॰ इसी प्रकार दो वर्षका बचा मरजाने में दो पादव्रतकिया जाय जो छे दिन में निपटे॰ इसी ढग से तीन वर्ष का बचा मरजाने से तीनि पाद व्रत कियाजाय जो नौ दिनमें निपटे (अतःपरंप्राजापत्य) जो तीनिवर्ष से अधिक अवस्था का बचा मराहो तो पूराही प्राजापत्य व्रत करना चाहिये जो बारह दिनमें होता है (इससे ऊपर के वचनों में जो अति बालक बचा के मरने पर बड़े प्रायश्चित्तोंका आधा व्रत करना कहा जो यहां के पूरे से भी बहुत बड़ा व्रतहोता है तिसका यह कारण है कि (वहाँपर हत्वा और यहां पर वत्थेइते) इन क्रियाओं के अर्थ भेद सोचो कि वहाँ तो इच्छा बिनाभी पुरुष के हाथ से बचा मरने का प्रायश्चित्तहै यहांपर गफ़लतसे आपही मरजाने मध्ये छोटे प्रायश्चित्तहैं ॥ ० ॥ गोगर्भनिपातनप्रायश्चित्तं–गर्भिणी गाय मारनेसे गर्भके हतहोजानेमें पापका दूसरा निमित्त खड़ा होताहै कि इसपर दो प्रायश्चित्त कराने चाहिये सो इस गर्भके प्रायश्चित्त पर एक जुदी व्यवस्था है जो षट्त्रिंशन्मत नामके शास्त्र में विशेष ब्योरासे वर्णन करी गई है=यथा=पादउत्पन्नमात्रेतुद्वौपादौदृढतांगते पादोनंव्रतमुद्दिष्टहत्वागर्भमचेतनम् अंगप्रत्यंगसंपूर्णोगर्भेचेतःसमन्विते द्विगुणंगोव्रतंकुर्यादेषागोघ्नस्यनिष्कृतिः=अर्थात–गर्भजो पेटमें हालही जमि चुकाहो तिसके माताके साथ हनन होजाने में सवाया प्रायश्चित्त कराना चाहिये परन्तु जो गर्भ कुछ मजबूत भी होचुका हो तिसके मध्ये ड्योढ़ा प्रायश्चित्त और जिस गर्भ को चेतना अवतक नहीं उत्पन्नहुई पर बढ़वारी में पूरा पिंड होचुका हो तिसके मध्ये पौनदूना अर्थात तीनपाद अधिक प्रायश्चित्त चाहिये परन्तु जो गर्भ अपने अंग और प्रत्यंगों से युक्त होकर चेतना से भी संयुक्त हो अर्थात पेटमें चलता फिरता भी हो तिसके वध होजाने से पूराही दूना प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि उसका और एक उसकी माता का यह दोनों निरन्तर एक साथही दूनी अवधिमें साधन किये जायँगे दोबारमें नहीं–अथवा किसी दशा मेंयदि गर्भका विनाश होकर माता बचिजाय तहां माताके निमित्तका प्रायश्चित्त छोड़िके इसी उक्त हिसाब से एक पाद या दोपाद या तीनि पाद या पूराही प्रायश्चित्त किया जाय किन्तु ऊर्ध्वोक्त छोटे बचे वाले छोटे प्रायश्चित्त इसमें उचितन होंगे॥ ० ॥ बहुकर्तृकहननप्रायश्चित्तं–जहां अनेकों ने मिलिकर गऊ मारी हो

तिसके मध्ये संवर्त्त और आपस्तंब दोनोंने एकही तुल्य विशेषता कहीहै=यथा=एका चेद्बहुभिःकाचिद्दैवाद्व्यापादिताक्वचित् पादंपादंतुहत्याया श्चरेयुस्तेपृथक्पृथक्= अर्थात्–कोई एकही गऊ कहीं दैवयोगसे बहुतों ने मारीहो तो वे सभी हत्यारे लोग प्रायश्चित्तकी एक एक चौथाई जुदेजुदे आकर करैं परन्तु यह नियम उसी दशापर समझा जासक्ता है कि जहां मारनेवाले अधिक संख्यामें चाहैं तितनेहैं पर चारसे कमनहैंक्योंकि दोके उपरान्त तीनि को आदिलेकर बहुत्व कहाताहै जहां तीनिही पुरुषोंने मारीहो एक एकपाद करने से तीनिही पाद प्रायश्चित्तकेहोंगे चौथाशेष रहिजायगा तिससे दो या तीनि पुरुषोंके होनेमें दो दो पाद उसीप्रायश्चित्तकेकराये जायँ जो उस भाँतिकी गऊमध्ये पहिले वर्णन होचुकाहै एवं पांच पुरुषोंको आदि लेकर निःसंदेह एक एक पाद कराया जाय और जैसा एक गाय पर कहिचुकेतैसा जहां दोगौओंको अनेक मिलिकेमारैं तिनसे दो दोपाद प्रायश्चित्त कराना चाहिये– परन्तु तीनि आदि अनेक गौओं को अनेक जने मिलिके मारैं तहां निर्विकल्प यही नियम जानों कि मारने वाले सब जुदे जुदे तीनि पाद अर्थात् पौन पौन प्रायश्चित्त आचरैं–यह सब नियम इच्छा के विना वध करने का समझना क्योंकि श्लोक में दैवात् दैवयोग से मरजाना कहा गया=तिससे=जहां इच्छा सहित अनेकोंने मिलि के एक गाय का वध कियाहो तहां सब जुदे जुदे पूराही प्रायश्चित्त करैं कि जैसे सब यज्ञ कार्य में अनेकों का मिलाप प्रत्येक जुदे पुरुष को व्यापार साधन करनेका पूरा फल होता है तैसे ये सब हत्यारे भी पूरे पापके भागी होते हैं बल्कि व्यवहार काण्ड में (एकंघ्नतांबहूनांतुयथोक्ताद्द्विगुणोदमः) यह दण्ड के स्थलपर कहा गयाहै कि यदि एकही मनुष्य को बहुत जने मिलिके मारैं तिन सबको दूना दण्डदेना चाहिये जो मनुष्यके मारनेका दण्ड लिखाहो तिससे–इस प्रमाण से भी सब जुदे जुदों को पूरा प्रायश्चित्त सूचित होताहै ॥ ० ॥ रोधादिनापिगोसमुदायहननप्रायश्चित्त–रूँधने बाँधने आदि प्रकारोंसे एकही ने बहुतसी गौऐं मारडाली हों तिसके मध्ये संवर्त्त और आपस्तंब दोनोंने एकही तुल्य विशेषता कहीहै=यथाहतु=व्यापन्नानांबहूनांतुरोधनेबंधनेतथा भिषङ्मिथ्योपचारेचद्विगुणंगोव्रतंचरेत्=अर्थात्–रूँधने या बांधने में जो बहुतसी गौऐं मारडालै• और भी विरोधी चिकित्सा के उपचार में जो गाय बैल मरजाय तिसको भी दूना प्रायश्चित्त करना चाहिये यही नियमहै– अर्थात् ऐसी दशामें बहुतोंके मरजाने परभी प्रत्येक जीवहानि का जुदा प्रायश्चित्त नहींकियाजासक्ताहै (और तंत्रात्मक न्याय की प्रधानतासे एकभी नहींकरनायोग्य)

तिससे इसीअयोक्त वचन के बलसे दुगुनाही व्रत करना चाहिये कि जैसी प्रतिया वाली एकगाय के मरजाने पर पहिले वर्णन होचुका हो उसी प्रतिया वाली एक जनेसे अनेक मरजायँ तिनमें सिर्फ दूनाकरै॰तथैव इसी अयोक्त वचन के वलसे गौओं का चिकित्सक भी विरोधी दवादारू आदि करने से इच्छा विनाही अनेक वा एक भी गऊका प्राण विनाशै सो दूना व्रत करै–यहां पर इच्छा विनाभी गोवध होजाने में बहुत बड़े प्रायश्चित्तों का दुगुना करना कहा तिसका हेतु केवल बहुत गौएं एक साथही मरजाना समझ लेना॰अन्यथा रोध बंधन आदि से एकही मरजाने सच्चेछोटे प्रायश्चित्त हैं सो अगिले परिच्छेद में देखना ॥ ०॥ आहाराद्याधिक्येनापिगोहननप्रायश्चित्तं–पशुवैद्यसे उपराल जो कोई केवल उपकार के निमित्त से ही विपरीत औषध आदि कुछ देकर इच्छा विनाभी यदि प्राण हरै तिसके सध्ये व्यास का अयोक्त वचन है=यदाह व्यासः=औषधंलवणंचैव पुण्यार्थमपिभोजनम् अतिरिक्तं नदातव्यं कालेस्वल्पंतुदापयेत अतिरिक्तेविपत्तिश्चेत्कृच्छ्रपादोविधीयते=अर्थात्–दवाई या नमक जो पशुओं को दियाजाता है या कोई अपने पुण्यकेलिये अच्छा भोजन श्राद्धके पिंड आदि वा सूखानाज आदि कुछ खवानाचाहै सो अनुचित समय पर भूख परिमान और डील डौल के अनुमान से अधिक न खवावै यह शिक्षा देकर कहिते हैं कि नमक हलदी तेल आदि कोई चीज हितके लिये रोज रोज कल्प के विधान से जो देनी परै सोभी उचित परिमान से कुछ कम करिके ठीक समय पर देना चाहिये जो हजम होके गुण करसके–अन्यथा जहां बहुत खवाइ देने आदि से यदि गायकी प्राण हानि होजाय तहां कृच्छ्र व्रतको एक चौथाई प्रायश्चित्त कराया जाता है॥ ०॥ निमित्तकर्तुः प्रायश्चित्तप्रसंगात् रोधादिषुविशेषोक्तिः–अंगिरा ने रोधबंधन आदि से मरने में विशेषता कही है तिसका व्योरा समझना चाहिये=यथाहांगिराः=पादमेकंचरेद्रोधेद्वौपादौबंधनेचरेत् योजनेपादहीनंस्याच्चरेत्सर्वं निपातने इति (तद्व्यवहितव्यापारिणोनिमित्तकर्तृविज्ञेयंनसाक्षात्कर्तुः=अर्थात्–रुँधि के मारने में एक चौथाई व्रत करै और बांधने से मारने में आधा प्रायश्चित्तकरै और दोहने को बछरा जोड़ने से अर्थात् जोंघ में जुवा रहिजाने आदि किसी हेतु से मरजाने में एक चौथाई छोड़ि शेष तीनि पाव प्रायश्चित्तकरै और निपातन अर्थात् ऊँचे नीचे गिराइके मारने में पूराही प्रायश्चित्त करै (यह तीनि महीना वाले मनु के कहे प्रायश्चित्त की योग्यता यहां नसमझनी जो २६५ की अधिकोक्ति में कहि चुके हैं) यह अंगिराने कहा–सो उसकेलिये समझना जो साक्षात्कार हत्यारा न हो

किन्तु—निमित्त कर्त्तारूप होय–निमित्त कर्त्ता का स्वरूप ब्रह्महत्या के प्रकरण में आचुका है कि ब्राह्मण का मारना नहीं चाहता था पर किसी तरहसे खिझाने लगा या गाली आदि अपमान करनेलगा तिससे ब्राह्मण आप उसके हेतुसे मरगया तो वह निमित्तकर्त्ता हत्यारा ठहिरा–तैसा यहांपर भी समझलेना कि यद्यपि गाय को मारना नहीं चाहा परन्तु ऐसा कोई निमित्त पैदा कि जैसा अपने घर खेत आदि पर आती देखि संकट का मार्ग होतेहुये तीव्र वेग से खेदिकर ललकार मारी या गाय का पीछा किया जिससे वह घबड़ा कर किसी ऊँचे नीचे या जल अग्नि आदिमें आपही गिरिके मरी तो यह निमित्तीहत्यारा ठहिरा• यहा इन ढंगों से भी मौतका निमित्त होता है कि जंगल में चराते या बांधते छोरते समय ग्वालिया को किसी तरह का झूंठ धोखा देवे कि इधर के मुंजवन में तेरा एक बछा कुत्ते खींचे लिये जाते हैं जल्दी दौड़ वह घबड़ा कर उधर भागा इधर सिंह वा भेड़िये ने आकर एक गाय मार डाली तो यह धोखा देने वाला यद्यपि साक्षात् हत्यारा नहीं है पर निमित्ती हत्यारा ठहिरा इत्यादि नाना प्रकार से निमित्त पैदा होसक्ते हैं किन्तु (साक्षात् हत्यारा जो रूंधिबांधि आदि किसी प्रकार से बहुत गाय मारे तिसको दूना प्रायश्चित्त ऊपर कहिचुके हैं संवर्त्त और आपस्तंब के वचन में देखो)–यहां पर–मिताक्षराकार कुछ औरही प्रकारसे मुख्य कर्त्ता और निमित्ती कर्त्ता के लक्षण भेद बताते हैं और ऐसा कहिते हैं कि दोनोंका भेद उन्हीं अंगिराने दर्शाया है सो उनका दूसरा वचन आगे देखो=यथाहांगिराः (पाषाणैर्लकुटैर्वापि शस्त्रेणान्येनवाबलात् निपातयंतियेगास्तुतस्सेंकुर्युर्व्रतंहिते तथैवबाहुजंघोरु पार्श्वग्रीवांप्रिमोटनैरिति) इस वचनका अर्थ तो प्रत्यक्ष यहीहै कि–पत्थरों या लाठियों या और किसी शस्त्र से जबर्दस्ती जे कोई गौयें विनाश करें वे पूराही व्रतकरें तथा वे भी पूरा व्रतकरें जो गायकी बाहें जांघ घूटे पँशुली आदि और गर्दन खुर चरण इनको मिरोड़ा देकर मारें (यद्यपि सब तरहके गोवध परप्रायश्चित्त वर्णन होचुके हैं तिससे इस कुमेल विशेषणों वाले वचनसे प्रयोजन भी कुछ नहींरहा क्योंकि जिसने दुर्जनता से इच्छा सहित गाय मारनी चाही तिसने चाहें तैसे मारी सर्वथा हत्यारा ठहिरा उसके लिये दुगने और बड़े बड़े प्रायश्चित्त कहिचुके तो फिर यहां पूरा और अधूरा कहिना व्यर्थहै) इस थोथरी दशाके होनेपर भी हमारे परमपूज्य गुरु मिताक्षराकार अपना मनमौजी नाटक इसी वचनके साथ आगे लिखते हैं कि जितने प्रत्यक्ष एकही अर्थ ऊपर लिखागया उसमें पहिला वचन खींचिकर दो भेद खड़ेकरते हैं सो देखो=यथा

हुर्मिताक्षराकाराः (अयैतदुक्तंभवति पाषाणखड्गादिभिर्ग्रीवामोटनादिनावायेगां निपातयंति तेसाक्षाद्धन्तारस्तेष्वेव कृत्स्नंप्रायश्चित्तं• येतुव्यवहितरोध बंधादिव्यापारयोगिनस्तेर्निमित्तिनः तेषांनकृत्स्नव्रतसंबंधः किन्तु तदवयवैरेवपादद्विपादादिभिरिति• तत्ररोधादीनांव्यवहितव्यापारत्वाविशेषेपि क्वचित्पादं क्वचिद्द्विपादं पादोनंक्वचिदितियुक्तं)=अर्थात्–यहाँ अंगिराके वचनपर ऐसा कहीं कहा है कि पत्थर तलवार आदिसे या गर्दनि मिरोड़ने आदि प्रकारोंसे जो लोग गायको विनाश करते हैं वे साक्षात् मारनेवाले हत्यारे कहाते हैं उन्हीं में पूरा प्रायश्चित्त चाहिये• और जे कोई ढँकेहुये रोध बंधन आदि उपाय मिलाने वाले हों सो निमित्ती कहाते हैं उनके लिये पूरे व्रतकी योग्यता नहींहै किन्तु रोध बंधन आदि पूर्वोक्त उसके अंश भेदोंसेही एक पाद या दोपाद आदि व्रत चाहिये जैसा इन्हीं अंगिराके पहिले वचन में ऊपर कहिचुके• तहां रोध बंधन आदि जोजो निमित्त कहेगए तिनमें यद्यपि ढँके उपायों का विशेषण कोई नहींहै तौभी उस वचनको यहाँपर निमित्तीके साथ मिलानेकी गरजसे अग्रोक्त वचनके अनुसार वहाँ भी यही समझिलेना कि ढँकेहुये उपायों वाले निमित्तीके लिये वहां एकपाद दोपाद कहीं तीनपाद प्रायश्चित्त ठीक होगा (ध्यानकरो यह दूसरी भाँति के निमित्ती वाली व्यवस्था अंगिरा के पहिले वचनसे खींचिके बनाई गई जिस निमित्तीकी गर्ज़ से उस ऊपरले पहिले वचन का सचा अर्थ भी बिगड़ने लगा• क्योंकि यहाँ पर ढँके हुये उपाय करने वाला निमित्ती ठहिराया गया ढँकेहुये उपाय भी ऐसे ढंगोंसे होतेहैं कि जैसे जिस मार्ग में रात्रिको बेखटके गौयें निकसा करतीहों उसी मार्गमें कोई दुर्जन ऐसा ढँका उपाय रचिराखै कि जैसी हाथी पकड़नेको औगी पाटी जातीहै उसमें गिरिके गाय मरजाय अथवा बहुतसे सूखे घास फूसके स्थानपर जहांगौयें सोती बैठतीहों तहाँ कोई दुष्ट जो छिपि के आगि लगादेवै जिससे गौयेंजलिमरें तौ यह दोनों भाँतिके ढँके निमित्ती ठहिरैं परन्तु ऐसे दुर्जन आततायियोंको क्योंकर एक पाद दो पाद आदि छोटे प्रायश्चित्त कहेजासक्ते हैं किन्तु ऐसे महापापियोंको द्विगुण चतुर्गुण प्रायश्चित्त कहेजायँ सो भी थोड़े हैं–और ऊपर (पादमेकंचरेद्रोधे इत्यादि) इस अंगिरा के वचन में जो निमित्ती सातेरह तिनके निमित्त सब खुल्लमहुआ करते हैं जिनसे प्रायश हरकोई धोखा नहीं खासक्ता और यथार्थमें उनके किये खुल्लम निमित्त इस बांछासे नहींहोते कि गायको मरवाइ डारैं केवल वे अपनी दिल्लगी या क्रोधके स्वभाव से निमित्त पैदा करते हैं तिसमें दैवयोगसे यदि गायके प्राण चलेजायँ तिससेनिमित्ती ठहिरके एक

दो पाद आदि प्रायश्चित्तके भागी होजाते हैं-इसके सिवाय-उस ऊपर के निर्लेप वचनको खींचिके ऐसे वचनके साथ जोडिलेना जिसमें पत्थर हथियार आदिसे और गर्दन आदि अंगोंको तोडि मडोरिके मारने वाले निर्दयी कसाइयोंका चर्चाहै यह कोई बात न्यायात्मक नहीं देखि परतीहै बल्कि विचारसे वह पत्थर आदिवाला वचन अपने मूलरूपहीमे निरर्थक है तिससे इतनी बडी व्यवस्थामें कोई ठीकठीक सारांश नहीं पाया गया=अथवा=ऊपर जो मिताक्षराकार ने संस्कृत व्यवस्था में यह लिखाहै कि (येतुव्यवहितरोधबंधादिव्यापारयोगिनः तेनिमित्तिनः तेषांतत्स्वमतसंबंधः) इस पंक्ति का ऐसा अर्थ लगाया जाय कि-जे कोई लोग व्यवहित अर्थात् दीवार आदि किसीआडमें या दूसरे सूनेमकान गोंडरेघेरे आदिमें गौओंको छुद्दा छविके या रस्सी आदिसेबाँधिके आप जुदे स्थनआदि पर व्यापार बंधोंका योग प्रबंध करते रहैं कि जिन बंधोंकी भूलमें अकेली बँधी गौओंके प्राण किसी प्रकारसे जातेरहैं तो यह भूलवाले रक्षक या मालिक निमित्ती होतेहैं अर्थात् साक्षात् हत्यारे तो नहींहैं परन्तु निमित्त रूपी हत्याके प्रायश्चित्ती होतेहैं क्योंकि बेखबरीका निमित्त उनपर ठहिरा-फिर इस अर्थके अनुसार अंगिराके सबसे पहिले वचनमें इस तरहसे व्यवस्था जोडीजाय कि रूंधनेसे मरीहोय तो एकपाद व्रत करें (यह एकपाद २२॥ साढे बाइस दिनमें होताहै) जो बँधीहुई मरी होय तो दोपाद किन्तु आधा प्रायश्चित्त करें जो रोगमें बचा बँधा रहिजानेसे मरीहोय तो तीनपाद व्रतकरें जो ऊँचे नीचे गिरायके मारीहो तो पूरा प्रायश्चित्त करें जैसा हाथसे मारने सह्ये कहिचुके हैं-तो इस व्याख्यासे सारांश यद्यपि निकसता है (तथापि दूसरे पत्थर लाठी हथियार वाले असंगत वचनको इसके साथ जोडना कुछ सारांश नहीं है क्योंकि वैसे मारनेवाले निपट कसाई समझने चाहिये तिनके लिये प्राणांतिक प्रायश्चित्तकी योग्यता पाई जातीहै क्योंकर पूरा व्रतमात्र उनको कहैं) और दूसरा यह विरोध खडा होताहै कि जिस प्रकारके निमित्ती इस व्याख्यामें कहेगए तिन के लिये भूलमात्रका प्रायश्चित्त आगे पराशरके वचनसे छोटासा प्राजापत्य मात्र सभीको एकसाँ कहा जायगा और संवर्तके पहिले वचनमें बडे प्रायश्चित्तको चौथाई और आधा और पौना कहे गए तिनकी चौथाई भी (साढेबाइस दिन) प्राजापत्य से बहुत बडी होतीहै फिर आधा और पौना यहाँ भूल गफ़लत के ऊपर कैसे उचित ठहिरै-तिससे जिस प्रकारके निमित्ती ऊपर संवर्त वाले पहिले वचनके साथ ही लिखिचुके तिनके लिये तत्रोक्त प्रायश्चित्त ठीक प्रतीत होतेहैं क्योंकि वे निमित्त

पैदा करने के हेतुसे एक प्रकारके मध्यम अपराधी समझेजाते हैं यह जानों॥ और शूने मकानमें अकेली बँधी रहिना आदि छोटी छोटी बातें ऐसी बहुत हैं जिनसे भूल वा अज्ञानतामें मरजाने के छोटे छोटे प्रायश्चित्त हैं सो सब अगिले परिच्छेद मे पराशर और आपस्तंब और संवर्त आदिके वचनोंसे देखना॥ २६५॥ इसी मूलश्लोक वाली टीकासे यह पाठ चला आता है॥ २६५॥

अथबंधनयोक्त्रदाहवाहादिकर्मसुबहुविधव्यतिक्रमभेदोपपातकानांप्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः त्रिचत्वारिंश ४३॥

इस परिच्छेदमें केवल विरली बातें छोड़िके सर्वथा अनपेक्षित गोमरणकाचर्चाहै कि यद्यपि किसीने मारना या मरना नहींचाहा परतु दैवयोगसे बाँधने छोड़नेजोड़ने जोतने वाहने दागने आदि जरूरी कर्मोंके धंधोंमें व्यतिक्रम होजानेसे कोईबैल गाय मरजाय तहां रक्षक या स्वामीको उपेक्षाके पलटे कुछ प्रायश्चित्त करना होता है• तिसके भेद सबक्रमसे आगे आवेंगे—तहां प्रथम बांधने छोरने आदि बातोंका १ फिर दागने वाहने आदि का २ फिर घंटा बांजके मरने का ३ जंगल आदिमें रखवारी को भूलका ४ कहीं चिकित्सा आदि करते मरजाने का दोषाभाव ५ कहीं हाड़ आदि टूटिके न मरने में भी प्रायश्चित्त ६ विरानी मारी गायके मोल देने का नियम ७ गोवधके पहिले तीनों परिच्छेद वाले प्रायश्चित्तोंका निर्णय वर्णोंके भेदसे ८ फिर स्त्री बालक बूढे रोगी आदिके प्रायश्चित्त भेद ९॥

(वन्धन योक्त्रादिभिर्मरणेप्रायश्चित्तं)

ऊपरले परिच्छेद में जो अंगिराके वचनसे गाय बाँधते दुहते आदि समयपर मर जाना कहा सोतो केवल उपरालू निमित्ती का प्रायश्चित्त था कि यदि कोई गैर किसी निमित्त को उन्हीं समयों पर उत्पन्न करे—अर्थात्—इस परिच्छेद में साक्षात् प्रधान कर्ताके प्रयोजन से बाँधने छोरने आदिके नियम कहेजायँगे कि—बैल या गौओं की नाथ गरखोल आदि बंधनसे यदि किसीके प्राण भी जातेरहें तिसका प्रायश्चित्त

पराशरनेकहाहै=यथाह पराशरः=गवांबंधनयोक्त्रैस्तुभवेन्मृत्युरकामतः-अकामकृतपापस्यप्राजापत्यंविनिर्दिशेत प्रायश्चित्तेततश्चीर्णेकुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्अनडुत्सहितांगांचदद्याद्विप्रायदक्षिणाम(अयंचप्राजापत्योयदिरोधादिकंकृत्वातज्जन्यप्रमादपरिजिहीर्षयाप्रत्यवेक्षमाणआस्ते तदाद्रष्टव्यः अकामकृतपापस्येति विशेषणोपादानादितिमिताक्षराकाराः)=अर्थात्–जो बांधने जोड़ने आदि कारणोंसे बैल वा गौओंकी मौत विनाकामनाकेहोजाय तो इसअकामकृतपापका प्रायश्चित्त प्राजापत्यकराया जाय जो सिर्फ बारह दिन में एक होता है फिर प्रायश्चित्त पूरा होजाने बादि ब्रह्मभोज करै और आंडू वृषभ सहित एक गोदान तथा और भी दक्षिणा ब्राह्मणों को देवै–इस वचन में बंधन गरखोल आदि और योक्त्र बैलों के जोत इन दोही नाम के होने परभी तृतीया विभक्तिके बहुत्व से प्रयोग रक्खा गया तिसका यह तात्पर्य है कि इन्हीं दोबातों के तुल्य जो और बातें होतीहैं तिनकोभी समुझि लेना कि जो जो पहिले सवर्त के वचन में भी आचुकी हैं रूंधना बांधना आदि और इसी प्रकारकी और बातोंको भी लोक-वार्ता से सोचि लेना जिनमें केवल भूल गफलतसे मरजाना होसक्ताहो तिससे श्लोक में बहुत्व का कुछ दोष नहीं बल्कि (गवांबंधनयोक्त्राद्यैः) ऐसा पाठ भी होसक्ता है–मिताक्षराकार इस पराशरके वचन परभी व्यवस्था देते हैं कि (यह प्राजापत्यरूपी छोटा प्रायश्चित्त उसकेलिये समझना जिसने गौओंको प्रयोजनवाले रोध बंधनआदिमें रखकर उनके उपद्रवोंकी रखवारी करने को आप भी मौजूद रहा हो ऐसी दशा में जो किसी उपद्रव के उठने से गाय बैल मर जाय क्योंकि श्लोकमें अकामकृत पापका विशेषणहै तिससे) परन्तु (जो आप चौकसी के लिये मौजूद न रहाहो और गैरहाजिरी में उपद्रव उठिके गाय मरीहो तो इस निमित्ती के लियेभी वेही पूर्वोक्त सवर्त के वचन वाले प्रायश्चित्त चौथाई वा आधा वा पौना वा पूरा जो कुछ दशा के अनुसार ठीकहो सो करवाया जाय-सोयहचौथाई आदि पूरे तीन महीना वाले प्रायश्चित्त से लेनीचाहिये अर्थात् एकपाद के २२॥ साढे बाइस दिन होते हैं दोपाद के पैंतालिस ४५ दिन तीन पाद के सवा दो महीने और पूरे के तीन महीने यह भी मिताक्षराकारों ने कहाहै यथा (त्रैमासिकपादिकंत्विदविक द्वाविशत्यहर्गोवधव्रतकुर्यादितिमिताक्षराकाराः)=यहांभी=निर्णय करने का स्थलहै कि पराशरके वचनमें (अकामकृतपापस्य) इस विशेषणसे यह बात नहीं सिद्ध होती है कि जो कोई उपद्रवों का बचाना चाहिके गौओं की रक्षा करने पर समुद्यत रहा तोभी दैवयोगसे कोई गाय मरजाने में उसके ऊपर प्रायश्चित्त लगाया

जाय क्योंकि धर्म की मर्यादा भी लोकवर्ता से विरोधी नहींहोती बल्कि लोकहीसे सब धर्म सिद्ध होते हे कहीं ऐसा नहीं देखाकि स्वतः दैव योग के उपद्रवों में गायमर जाने परभी रक्षक यामालिक पर प्रायश्चित्त लगायाजाय जबकि वह अपनी ओरसे चौकसाई पर मौजूद बना रहा तो फिर दैवीगति के उपद्रवो में उसका क्या दोष है (इसके लिये (यंत्रणेगोश्चिकित्सार्थे इत्यादि) यह सवर्त्त का वचन आगे आवैगा सो चार पांच पाठों को छोड़िके कुछ दूर जाकर ढूंढो तहां अर्थोंको देखिके सदेह जाता रहेगा) तिससे पराशरके वचन में तात्पर्य केवल यहीहै कि जिसके सन्मुख मौजूद न रहिने आदि भूल गफलतमें उपद्रव खड़ा होनेसे यदि कोई गाय मरजाय तो हाजिर न रहिने के प्रमाद का अपराध उसपर आता हे इसीसे अकामकृत पाप उसका ठहिरा कि गाय मरजाने की कामना उसके नहींथी परन्तु कामनाके विना भी गफ़लत से पाप उसने कमाया तो यह छोटा पाप ठहिरा इसीलिये बारह दिन का प्राजापत्य और वृषभ गायका जोड़ा दान और दक्षिणा सहित ब्रह्मभोज करना पराशर ने कहा (यह निर्णय पहिले सवर्त्त के वचन वा नी व्याख्या में भी सब से अन्त में आचुका तहां देखो॥ ० ॥ अतिदाहवाहनादिभि र्मरणेगुरुप्रायश्चित्तं–जहां किसी को दाह देनेके प्रयोजन में अत्यत दाह दियाजाने या अतिशयवाहने जोतने आदि वहुधाऐसे कामोंमे उन दवनसे कोई गाय बैल मरजाय तिसके प्रायश्चित्त ऊपरले प्रायश्चित्तसे बडे हैं सो आपस्तवके वचनसेदेखो=यथाहआपस्तव = अतिदाहातिवाहाभ्यांनासिकाछेदनेतथा नदीपर्वतसरोधेमृतेपादोनमाचरेत् (अन्तु लक्षणमात्रेपि योगिनिवाहेन दोषः) अन्यथांकनलक्षाभ्यांवाहनेमोचनेतथासायसगो पनार्थचनदुष्येद्रोधवधने इतिपराशरस्मरणात्(अकनस्थिरचिह्नकारणलक्षणांप्रतोप लक्षणावाहनेशास्त्रोक्तमार्गेणेतिमिताक्षरा=अर्थात्–दाह जो गरम लोहेसे पशुओं का रोग मिटानेआदि के निमित्त कियाजाताहै सो अत्यन्त करनेसे या वाह जो हलवाहन आदि मे जोतना प्रसिद्ध हे सो अत्यन्त करायाजाय तिससे या नाथ लगाने को नाकछेदने मे या नदी पर्वतआदि कठिन स्थानो में रोकने से यदि गऊ वृषभ कोई मरजाय तहां तीनि महीने वाले प्रायश्चित्त का एक पाद छोड़िके तीन पाद प्रायश्चित्त करें (परन्तु इसमें जो चिह्न करने मात्र का जरूरी दाह दिया जाय जिससे प्राण हानि न होसके तो कुछ दोष नहीं हे) क्योंकि पराशरके इसवचन से नियम है किआंकने और चिह्न करनेमें जोपशुओंका बन्धन करना परताहै तिससे अन्यत्र उपरान्त तथा वाहन सवारी आदि में वृषभ जोड़ने या सांड छोड़ने या सध्या समय

रक्षा में राखने के लिये जो रूँधना और बाँधना होय तिसका दोष नहीं है (आंकना वह कहाता है जो पक्का चिह्न करना होय हमेशाके लिये और लक्षण वह कहाताहै जो अभी हालके लिये कोई चिह्न करना होय यह मिताक्षराकारोंनेकहा तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि आँकना तो वही समझना जो रोग मिटाने आदि के निमित्त से दाह दिया जाय और लक्ष शब्द से लक्षण उसको समझना जो साँड पहिचानने का चिह्न या बैलों की गिनतीके नम्बर अंक आदि दागे जातेहैं अर्थात् दोनों में लोहा गरम से दागना होता है सिर्फ जरूरी प्रयोजन दो जुदे जुदे होते हैं तिससे अंकन और लक्षणकाभेद कियागया कुछ हमेशा और हालका तात्पर्यठीक नहीं है॰ और वाहन सवारी आदि में जोड़ने बाँधने का जो दोष नहीं कहा सो भी जितनालोक और शास्त्र के अनुसार उचित हो उससे अधिक में दोषभी होता है॥ ० ॥ यद्यपि गऊ वृषभकी रक्षा के निमित्त बाँधि राखने का दोष नहीं बताया तौभी विरले या बहुधा बंधन ऐसेहैं कि उनसे बाँधनेमें दोषकी उत्पत्ति होतीहै तिससे व्यास जी ने उन बंधनों से बाँधने का निषेध भी दर्शाया है=यथाह व्यासः=ननालिकेरेणनशाणेनबालैर्नचापिमौञ्जेननबन्धशृङ्खलैः एतैस्तुगावोननिबंधनीयावध्वाऽनुतिष्ठेत्परशुंगृहीत्वा कुशैःकाशैश्चबध्नीयात्स्थानेदोषविवर्जिते=अर्थात्–न तो नारियर कीजटा वक्कल आदिकी बनी रस्स से न सनकी बनी रस्सीसे न बालोंकी रस्सीसे न मूजकी रस्सी से बाँधे न ऐसी किसी मेखला चमड़े आदि की बनीसे बाँधे जिससे पैर फँसिकर चलना फिरना बन्दहोय यद्वा उस मेखलासे न बाँधे जिसमें अनेकपशु एक हीमें फाँसेजायँ (मेखला या शृंखला वही कहातीहै जो जँजेरेके आकारहोय) इतने प्रकार केबंधनोंसेगऊ वृषभ न बाँधने चाहिये और जो इन्हींसे बाँधे तो इतनी बड़ी चौकसाईकरे कि फरसा गँडासाआदि हाथ में लेकर उनकेपास पहिरादेवे कि यदि साँपअग्नि आदिका उपद्रव कुछ उठ खड़ाहो तो तत्काल बंधन काटि दिये जासकें जिससे प्राण हानि न होने पावे–इसीलिये यह आज्ञा है कि कुश काँस की रस्सी से बाँधै जिसको उपद्रवके समय आपही तोड़ि भागें बल्कि ऐसी जगहमें बाँधे जहां उपद्रव न उठिसके या उठनेपरभी प्राण बचाइसकें खत्ती आदिमें न गिरजायँ॥ ० ॥ अथघंटादिदोषमरणे प्रायश्चित्तं=तत्राह आपस्तंबः=घंटाऽऽभरणदोषेणविपत्तिर्यदिगोर्भवेत् कृच्छ्रार्द्धंतुभवेत्तत्रभूषणार्थंहितत्स्मृतम्=अर्थात्–गले बंधे घंटा की आवाज सुनिके सिंह आकरगाय मारें या पहिनाये हुये भूषण के लालचसे चोर डाँकू आदि गऊ मार जायँ तहां घंटा और भूषण पहिराने वाले स्वामीको कृच्छ्र व्रतका

आधा प्रायश्चित्त चाहिये यह दोनों बात भुयरा बाँधने के निमित्तसे पाप हुआ कहाता है ॥ ० ॥ अतिदोहनादिभिर्मरणेप्रायश्चित्तं=तदप्याह आपस्तंबः=अतिदोहातिदमनेसंघातेचैवयोजने बध्वाशृंखलपाशैश्चमृतेपादोनमाचरेत्=अर्थात्–अति दूध दुहिलेने से यदि गऊ या बछरा मरजाय तिसके पाप में और प्रबल गाय वृषभ की शिक्षा हेतु से अत्यंत दमन करने में अर्थात् उचित शिक्षासे अधिक ताड़न पीड़न करते यदि मरजाय तिसके पाप में भी और आपस के संघात में खबर न लेनेसे लड़ि भिड़के मरजाय तिसके पापमें और गरखोल आदिबंधनमें उलझिके मरजाय तिस बेखबरी के पाप में और दुहिते समय बछरा जोड़ने छोरने के व्यतिक्रम या बैलोंको रथ आदि में जोड़नेके व्यतिक्रम से दो में एक मरजाय तिसके पापमें और लोहेकी जँजीर या रस्सी आदि की सरकफुंद से बाँधने में फाँसी लगिके मरजाय तिसकेपाप में० इतने उक्त निमित्तों पर निमित्ती हत्यारा पुरुष एक चौथाई कम करिके तीन पाद प्रायश्चित्त करे=यह पौना प्रायश्चित्त भी कृच्छ्र प्राजापत्य का समझना जो अभी घंटा के दोष में केवल आधा कहिचुके क्योंकि आपस्तंब के ये दोनों वचन साथही मिले पाये हैं ॥ ० ॥ रक्षणादिव्यतिक्रमतोऽपिमरणेप्रायश्चित्तं–उन्हीं आपस्तंबने जंगल आदि में रक्षाके व्यतिक्रमसे मरजानेमें भी स्वामी को प्रायश्चित्त करना कहा है क्योंकि स्वामीने चतुर मिहनती गोपालको नहीं सौंपी यही उसपर निमित्त ठहिरा=यथाह=जलौघपल्वलेमग्नामेघविद्युद्धताऽपिवा गर्तायांपतिताऽकस्माच्छ्वापदेनाभिभक्षिताप्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रं गोस्वामीव्रतमुत्तमम्॥ शीतवाताऽऽहता वास्याद्बद्धं वनहतापिवाशून्यागारउपेक्षायांप्राजापत्यंविनिर्दिशेत्=अर्थात्–बहुतजल के ताल तलैयोंमें डूबी या अति वर्षा और बिजली की मारी मरजाय या गड़हिले खाई आदि में गिरिके मरे या अचानक सिंह व्याघ्र आदि भक्षण करिजाय तौ उस गाय का मालिक उत्तम रीति विधान से कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करे ॥ अथवा अति शीत पाला के परने या झंझा वायु आँधी के चलने से या जेठकी लूसे मरी हो या बंधनकी अलबेट फाँसीलगिजानेसे मरीहो या सूनेघरमें अकेली बँधीहोनेकी उपेक्षासे भूखी प्यासी आदि होकरचाहे किसी तरहसे मरीहो तौ प्राजापत्य करना चाहिये क्योंकि येबातें सब स्वामीकीगफलत से उत्पन्न होतीहैं परन्तु यह पूराप्रायश्चित्त उसीको करना चाहिये जो किसी बड़े कार्य में न लगाहो किन्तु जोस्वामी किसी कार्य में लगाहुआ व्यग्र हो तिसको आधा करना चाहिये और शेष आधा गोपालपर आरूढ़ कियाजाय=सो इसआधेका प्रमाणभी अग्रोक्त विष्णुका वचन

है=यदाह विष्णुः=पल्वलौघमृगव्याघ्रश्वापदादिनिपातने श्वभ्रप्रपातसर्पाद्यैर्मृतेकृच्छ्र
संमाचरेत् अपालत्वात्तत्कृच्छ्रःस्याच्छून्यागारउपप्लवे=अर्थात्–विष्णुने कहाहै कि
छोटे मोटे ताल तलैयां जहां जलके भीतर बहुत छिपीहों तिनमें डूबिके मरे या वन
के बड़ पशुओंसे या बाघसे या भेड़िया कुत्ता आदि किसी से मारीजाय या धरती
पोलीके छिद्रमें खुरचलाजानेसे गिरिकेमरै या सांप आदि कोई विषैल जीव काटै
तिससे मरै तौ उस गऊका मालिक आधाही कृच्छ्रव्रत आचरै•परन्तु जो मालिक
ने रक्षक सार्थाकिये विना छोड़िदीहो या जहां जहां जो खुद रक्षाकरनी योग्य थी
सो मालिकने न करीहो और इन्हीं उक्तप्रकारोंसे यदि गऊमरीहो तौ फिर पूराही
कृच्छ्रव्रत करना चाहिये तथैव जो सूने घरमें बांधीहुई किसी उपद्रव से मरजाय तौ
भी स्वामीको पूराकृच्छ्रव्रत करना चाहिये (अब ऊपरसे मिलाकरदेखो कि आप-
स्तंबके वचनसे यह विष्णुजीका वचन तुल्यात्मक होगया ॥ क्वचिद्गोप्राणहानौ-
तुनदोषः–कहीं यहभी एकधर्महै कि जो कोईचाहै मालिकहो या गैर उसीगऊके
उपकार निमित्तसे किसी व्यापारमें समुद्यत हुआहो उसमें गऊ यद्यपि मरजाय तौ
भी उसको दोष नहींहै अर्थात् प्रायश्चित्त करने की जरूरत नहीं•सो यह दोषका न
होना केवल वचन के प्रभाव सेही सिद्ध होताहै कुछ और दलील की जरूरत इसमें
न होगी और वह वचन है संवर्तमुनिका=यथाहसंवर्तः=यंत्रणेगोश्चिकित्सार्थेमूढगर्भ
विमोचने यत्नेकृतेविपत्तिःस्यान्नसपापेनलिप्यते (यंत्रणंव्याध्यादिनिर्यातनार्थं सं-
दंशांकुशादिप्रवेशनं) तथा–औषधंस्नेहमाहारंदद्द्गोब्राह्मणेद्विजःदीयमानेविपत्तिश्चे
न्नसपापेनलिप्यते ग्रामघातेशरौघेणवेश्मभंगान्निपातने–तथा–दाहच्छेदसिराभेदप्र
योगैरुपकुर्वतामद्विजानांगोहितार्थंचप्रायश्चित्तंनविद्यते=अर्थात्–रोगवाली गऊकी
चिकित्साके अर्थमें यंत्रणाकर्म करतेहुये या अटकेहुये गर्भके निकासने में यत्नकरते
समय या उस यत्नके होचुके पीछेही यदि गऊ मरजाय तौ वह करने वाला पापी
नहीं ठहरता है (यंत्रणाकर्म उसका नामहै जो किसी बड़ गूमड़ कीरे आदि के नाश
करनेको गरम सँड़ासी आदिसे दागैं या अंकुश कील कांटा आदि चुभावैं और उसी
यन्त्रणा शब्द से रक्षणा बंधन कर्म का अर्थ लियाजाताहै)–तथैव एक यह वचन है
कि=दवाई या घी तेल आदि चिकनाई या दूध रबड़ी आदि या बहुत अच्छाभोजन
किसी गऊको या ब्राह्मणको देते खिलातेहुये यदि उसकी मौतहोजाय तौवह देने
खिलानेवाला कोई द्विजाती पापीनहीं ठहरताहै क्योंकि उसने पुण्यकी अभिलाषा
से यहकिया–परन्तु पहिले परिच्छेदमें (औषधंलवणंचैवपुण्यार्थमपिभोजनंअति

रिक्तनदातव्यंइत्यादि) यह व्यासका वचन जो आचुका उसमें गाय की खुराक से अधिक भोजन अच्छा भी खवाना प्रतिषिद्ध होचुका तिससे–यहां भी पचि सकने के अनुमान माफिक देनेसेही यदि कोई गाय मरजाय तिसमें दोषाभाव समझना–अन्यथा ज्ञानमान पुरुष जो सूखानाज पेटभरि तानि के खवावे जिससे गाय पेट फूलि के मरजाय तौ फिर उसी पहिले व्यासवाले वचनके अनुसार प्रायश्चित्त भी अवश्य करना होगा=तथैव गऊ का मालिक या रखवाला उस दशा में भी नहीं पापी होता है जो गावँपर धरि चढ़ि आने से गावँ माराजाय उसमें चाहैं बाणों के समूह से गऊ मारीजाय या घर टूटने फूंकिजाने आदि से मारीजाय=तथैव एक यह वचन है कि=रोगवती आदि गऊके हितके लिये गरम लोहे सेदाहदेने या गूमड़ा आदि चीरने या फस्त खोलने आदि प्रकारों से उपकार करने वाले द्विजातियों को विपत्ति होजाने पर भी प्रायश्चित्त नहीं लगता है=ऐसाही पराशर ने भी कहा है कि=अतिवृष्टिहतानांचप्रायश्चित्तंनविद्यते कूपखातेचधर्मार्थंगृहदाहेचये मृताः ग्रामदाहेतथाघोरेप्रायश्चित्तनविद्यते=अर्थात्–जो गौयें कहीं अति वर्षा के होनेसे मरजायँ यहांपर भयानक प्रलयरूपी वर्षा समुझिलेनी कि जिसका प्रबन्ध सब लोगोंसे न होताहो) या धर्मके निमित्त कोई कूप तड़ाग आदि खोदा गयाहो तिसमे गिरिके मरजायँ या घरमें आगि लगिजानेसे मरजायँ,या सब गावँ में आगि लगिजानेसे या अतिशय घोर उपद्रव किसी भांतिका उठिखड़ा होने से मरजायँ तौ इन गौओंके मालिक या रखवाले या कूप तलाव के बनवाने वालोंको प्रायश्चित्त नहीं लगताहै=परन्तु=यहां निपट प्रायश्चित्तका न लगना सिर्फ उन्हीं पशुओं की मौत होजाने मध्ये माना जासक्ताहै जो बंधनके विना छुटा रहितेहों और दैवयोगसे कहीं आगिलगिजाने आदि किसी उपद्रवसे मरजायँ•अन्यथा जो बंधनमें रहितेहों और इन्हीं प्रकारोंसे मरजायँ तिनके मध्ये आपस्तंबकी विशेषता लेनीचाहिये=य-थाह आपस्तंबः=कांतारेष्वथदुर्गेषुगृहदाहेखलेषुच यदितत्रविपत्तिःस्यात्पादएकोवि-धीयते=अर्थात्–ऐसे किसी वनमें या पहाड़ीकोट आदिमें कि जहांमार्ग बड़ादुर्गमहो या घर खलिहान आदि में आगि लगिजानेसे यदि वहां गौओं की मौत अचानक होजाय तौ स्वामी रक्षक आदि अधिकारीको एक चौथाई प्रायश्चित्त करना चा-हिये (यह चौथाई उस प्रायश्चित्तकी समझनी जो ऊपर कहीं आपस्तंबके वचन में कृच्छ्रप्राजापत्य करना कहिचुके॥ क्वचित्प्राणहान्यभावेऽपिप्रायश्चित्तं–कहीं कहीं गायकेप्राण बचिजाने परभी प्रायश्चित्त होताहै यदि हाड आदि टूटेहों=य-

था=अस्थिभंगंगवांकृत्वालांगूलच्छेदनंतथा पाटनंदंतशृंगाणांमासार्धंचयवान्पिबेत्= अर्थात्–गौओंके हाड़ोंको तोड़िके या पूंछ उनकी काटिके या दाँत और सींगों को उखाड़िके एक पखवाराभर जौका दलिया रांधिके पीवे तथा उक्त नियमों को भी साधे=इसी वार्तापर अंगिराने कुछ और भेद कियाहै=यथा=शृंगदंतास्थिभंगेवाचर्म निर्मोचनेपिवा दशरात्रंपिबेद्वज्रंस्वस्थापियदिगौर्भवेत् (अत्रतुवज्रशब्दवाच्यंक्षीरादि वेतनमुक्तंतदशक्तविषयमिति मिताक्षराकाराः) अर्थात्–सींग दाँत हाड़ टूटिजाने या खाल उधिड़जाने में यद्यपि गऊको आराम होजाय तौभी तोड़नेवाला दशदिन तक वज्रपीकर प्रायश्चित्त साधे (वज्रनाम यद्यपि तालमखाने और सुपेदकुशोंकाभीहोता है परन्तु आचार्योंने दूधका फेना और दूधआदि पीके रहिनेयोग्य आधारोंका नाम वज्र कहाहै•और इसके साथ यहभी आशय दर्शायाहै कि यह दशदिनकीथोड़ी अ-वधि और दूधआदि पीना उस प्रायश्चित्तीके निमित्तमें समझना जो अशक्तहो यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥०॥ हतगोसमानमूल्यदानंच–यह प्रायश्चित्त जो जो क हिचुके सो पीछेकरे किन्तु मरीहुई गऊके समान दूसरीगऊ यहा वैसीगऊके बरा-बरमोल उसके स्वामीको प्रथम देकर प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करे=तदाहपराशरः= प्रमापणेप्राणभृतांदद्यात्तत्प्रतिरूपकम् तस्यानुरूपंमूल्यंवादद्यादित्यब्रवीन्मनुः=अ-र्थात्–गऊआदि प्राणियोंके मारडारनेमें वैसाही प्राणीलाकर स्वामी को समर्पण करे अथवा वैसा जीव न मिलसके तो उसके अनुमान जितना मोल उचित हो वही देवै यह मनुकीआज्ञा पराशरने कही=एवंमनुने आपभी यह दण्डकेप्रकरणमेंकहा है कि=योयस्यहिंस्याद्द्रव्याणिज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा सतस्योत्पादयेत्तुष्टिंराज्ञेद द्याचतत्समम्=अर्थात्–जो कोई जिसकिसी की कोई चीज बिगाड़े या विनाशै सो उसकीसंतुष्टि उत्पन्न करे किन्तु जैसेहो तैसे उसका राजीनामा प्रकाश करे और उसी द्रव्यकी बराबर वह राजमेंभी जुर्माना भरे ॥ ० ॥ उक्तप्रायश्चित्तानांसर्ववर्णभेदे-नप्राप्तिनिर्णयः–यहां तक पूर्वोक्त प्रायश्चित्त मात्र जो गोवध के मध्ये वर्णनकिये गयेसो सब केवल ब्राह्मण प्रायश्चित्ती के निमित्त में समझने किन्तु जो क्षत्रीआदि कोई अन्यवर्ण हत्यारेहैं तिनके लिये वृद्धविष्णुने विशेषता प्रकट करीहै=यथा= विप्रेहसकलंदेयंपादोनंक्षत्रियेस्मृतम् वैश्येऽर्धंपादएकस्तुशूद्रजातिषुशस्यते=अर्थात्– जहां जहां जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गया सो ब्राह्मण हत्यारेसे पूराकरवाना चा-हिये और क्षत्री से वही प्रायश्चित्त एक चौथाई कम कराना और वैश्यों से आधा और शूद्र जातोंमें सिर्फ चौथाई करवाना श्रेष्ठ होताहै (यहां गोवध के प्रायश्चित्त

में जो ब्राह्मण पर अधिकता राखी गई सो इस हेतु से कि ब्राह्मण सब धर्मों की मूलहै यदि मूलही बिगड़ि जायगी तौफिर संसार रूपी धर्मवृक्ष क्योंकर खड़ारहेगा तिससे मूलको सुधारना मुख्य धर्महै जिससे अन्य वर्णोंको शिक्षा प्राप्तहोती है)= एक जो अंगिरा का वचन इससे विपरीत प्रतीत होताहै कि=पर्षद्याब्राह्मणानांतुसा राज्ञांद्विगुणामता वैश्यानांत्रिगुणाप्रोक्तापर्षद्वच्चव्रतंस्मृतम=अर्थात–ब्राह्मणोंकीसभा जितनी होती है राजाओं की उससे दूनी होनी कही और वैश्यों की तिगुनी कही और पर्षद सभा के तुल्य उनके व्रत भी होने कहे हैं (सो इस वचन में व्रत शब्द से प्रायश्चित्त का तात्पर्य न लेना चाहिये क्योंकि यह वचन दंडके प्रकरण में प्रतिलोम नालियों मध्ये जहां, वाग्दंड और वाक्पारुष्य आदि के अपराधी प्रतिलोम ज्ञातीहुये हों तिसके विषय पर आरूढ है॥ ० ॥ अथ स्त्रीबालवृद्धादीनां प्रायश्चित्तविवेकः–जैसा हीन वर्णों के पुरुषों में हीन प्रायश्चित्त दर्शाया गया तैसा ही स्त्री औरबूढे और बालक तथा रोगियों के लिये उन पुरुषों से भी आधा प्रायश्चित्त चाहिये कि जिन वर्णों को जितना कम करिके कहिचुके और जो बालक अनुपनीत अर्थात् संस्कार से विहीन हो तिसके लिये आधे का आधा सिर्फ चौथाई प्रायश्चित्त चाहिये• ये सब नियम पहिले वर्णन होचुके हैं सो यहां भी समझि लेने=शिरोमुण्डनं–स्त्रियों के लिये पराशरने कुछ और भी विशेषता दर्शाई है= यथा=वपनंचैवनारीणांनानुव्रज्याजपादिकम नगोष्ठेशयनंतासांनवसीरन्गवाजिनम सर्वान्केशान्समुद्धृत्यछेदयेदंगुलद्वयम सर्वत्रैवहिनारीणांशिरसोमुण्डनंस्मृतम=अर्थात्– स्त्रियोंको प्रायश्चित्त की दशा में न मुण्डन कराना चाहिये न विदेशों का फिरना और जप पाठ आदि चाहिये जो विद्याकी सवधी बातहैं और गोशालामें सोना कहा सो भी न चाहिये और गऊका चमड़ा ओढना जो पुरुषोंको कहिचुके सोभी न चाहिये किन्तु यह करना चाहिये कि सब केशोंको हाथसे पकड़ि इकट्ठे ऊँचेकरिके दो अंगुरमात्र कतरि डालें तो यही उनका मुण्डन है जो सभी ऐसे कामों में सर्वत्र उनका शिरसे मुड़िजाना कहलाता है=एवं=पुरुषों के मुण्डन मेंभी संवर्त ने विशेष भेद प्रकट किये हैं=यथाह संवर्तः=पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादेश्मश्रुणोऽपिच त्रिपादेतु शिखावर्जंसशिखंतुनिपातने=अर्थात्–जिस पुरुषको एक चौथाई प्रायश्चित्त करने की योग्यता ठहिरी हो तिसके कंठसे लेकर पैरों तक रोमा मुड़वाने चाहिये यही उसका मुण्डन है जिसको आधा प्रायश्चित्त करना ठहिराहो तिसकी मूछ दाढीभी मुड़ानी चाहियेजिसको तीनपाद प्रायश्चित्तकी योग्यता ठहिरीहो तिसको केवल

चोटी छोड़िके सब देहके रोमा और बाल भी मुड़ाने चाहिये जिसने गऊका पूराही निपात किया अर्थात् जिसको पूरा प्रायश्चित्त करना ठहिरा हो तिसकी चोटी सहित सब देह मुड़ानी चाहिये ॥ श्रीमन्मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर आचार्य कहिते हैं कि इसी रीतिसे और भी जे कोई स्मृतियोंके अधिक वचन मिलजायँ तिनकी विषय व्यवस्था अपनी बुद्धिसे विचार लेनी चाहिये परन्तु इसी मार्गके सहारे से कि जैसा डौल हमने बांधा ॥ इतिगोवध प्रायश्चित्तप्रकरण इस प्रकरण में गोवध के जुदे जुदे भेदोंसे चारि परिच्छेद हैं चालीसवेंको आदि लेकर ४३ तेंतालिसतक पूरे हुये॥२६३॥२६४॥ इन्हीं दो श्लोकोंकी अधिकोक्तिके शेष पाठमें यह परिच्छेदहै॥

॥ अब अगिले परिच्छेदसे लेकर व्रात्यता आदि सभी उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहे जायँगे तिनपर प्रायश गोहत्यामें कहे प्रायश्चित्तों का अतिदेश उतारते रहेंगे और कुछ कुछ उनके जुदे प्रायश्चित्तभी दर्शाते रहेंगे सो सब उन्हीं ठिकानोंपरदेखना॥

अथोपपातकसामान्येषुसर्वेषु-पूर्वोक्तगोवधप्रायश्चित्तस्यातिदेशप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदःचतुश्चत्वारिंशः ४४

इस परिच्छेदमें पूर्वोक्त गोवधके प्रायश्चित्त लेकर साधारण सभी उपपातकोंपर अतिदेश उतारा जायगा कि उन हरएकके जुदे प्रायश्चित्तों से उपरान्त उनपर गोहत्या वाले प्रायश्चित्तभी विकल्पसे लाग सकेंगे-परन्तु विरलोंपरनहीं भी लागसकेंगे केवल अपने जुदेही उपदेशिक प्रायश्चित्तउनपरलगेंगे ॥

(सर्वोपपातकेष्वतिदेशः)

उपपातकशुद्धि स्यादेवचान्द्रायणेनवा। पयसावापिमासेनपराकेणाथवापुन. २६५

अक्षरार्थः—सब उपपातकसे शुद्धि होय या चांद्रायणसे या दूधके साथ एक महीना से अथवा पराकसेही ॥ २६५ ॥

अपभिप्रायः—२३४ दोसौ चौंतीस आदि २४२ तक नौ मूलश्लोको से जो जो उपपातक दर्शाए थे उनमे सबसे पहिला गोवध कहा था तिसके प्रायश्चित्त कई परिच्छेदोंसेपूरे हुये अब यहां व्रात्यता आदि सभी उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहिना

चाहते हैं—तिसके लिये चालीसवें परिच्छेद में जाकर २६३ दोसौत्रेसठि आदि मूल श्लोकोंके अर्थ और अधिकोक्तिकोभी देखो कि वहांपर योगीश्वरने जो कुछकहाथा उसी प्रायश्चित्तका अतिदेश यहां शेष उपपातकोंपर उन्हीं योगीश्वरने उतारा है—कि—एवं इसीप्रकार जैसा गोवधमें कहिचुके तैसा प्रायश्चित्त करने से शेष उपपातकोंकी भी शुद्धि होसक्तीहै॰परन्तु जो ऐसा करना न चाहे तो चांद्रायणके करने से भी शुद्धि होतीहै जिसका स्वरूपकहीं आगे कहाजायगा॰अथवा एक महीना दूधपीने का नियम साधनेसे भी उपपातकों की शुद्धि होजाती है अथवा पराकनाम का व्रत करनेसे भी शुद्धि होती है॥ २६५॥

२६५अधिकोक्तिः—यहां उपपातकोंके प्रायश्चित्तमध्ये जो अतिदेश दियागया तिसकीसामर्थ्यसे पूर्वोक्तप्रायश्चित्तोंमें विरली बातोंका कमकरना भी पायाजाताहै कि जोजोबातें ठेठकर गोवधसेही सबधरखतीहै इसका दृष्टांत जैसे गऊका चमड़ा ओढना या गौओंके पीछेपीछे सेवाकरते फिरना इत्यादि बातें खासकर गोहत्याकेही प्रायश्चित्तमें उचितहोंगी सभी उपपातकोंमें नहीं—क्योंकि जो सभी उपपातकोंपर आवश्यकहोतीं तो फिर२६३दोसौत्रेसठिसे जो कुछ प्रायश्चित्त कहिचुके सो केवल गोघ्न पुरुषकेनामसे न कहेजाते किन्तु सभी उपपातकी पुरुषोंकेनामसे कहेजाते—इसीलिये अतिदेशकी सामर्थ्यका चर्चा यहां कियागया कि यद्यपि अन्य उपपातकोंपर गोवधवाले प्रायश्चित्त कियेजासक्ते हैंतथापि उसकी सभीबातें सर्वत्रनहीं स्वीकार होसक्तीहैं अतिदेशका स्वभाव यही होताहै॥ ० ॥ यहां जो २६५ मूलश्लोक में चार प्रकारके व्रत कहेगये तिनको उस प्रकारके उपपातकों पर समझना चाहिये जो इच्छाबिना धोखा आदिसे होगये हों तिनमें अपराधीकी शक्ति के अनुसार इन चारों मेंसे कोई एक व्रतकराना चाहिये कि जिसका बोझ उससे उठिसके—अन्यथा—जिसने जानिबूझि इच्छासे कोई एकउपपातक कियाहो तिसकेलिये मनुकाकहा तीनि महीने का प्रायश्चित्त विचारना चाहिये=यथाहमनुः=एतदेवव्रतंकुर्युरुपपातकिनो द्विजाः अवकीर्णिवर्ज्यंशुद्ध्यर्थंचांद्रायणमथापिवा=अर्थातमनुजी पहिले तीनि महीना का जो प्रायश्चित्त कहिचुके है उसी का अतिदेश अन्य उपपातकों पर दर्शाते हैं कि—यही तीनिमहीनेका व्रतहै सो और सब द्विजाती जो जो उपपातकी हुये हों सो अपनी शुद्धिकेलिये करें अथवा चांद्रायण करें जो उनका उपपातक छोटा होय तो परन्तु यह नियम अवकीर्णीको छोड़ि के समुझना अर्थात अवकीर्णी भी एक उपपातकी होता है पर उसके लिये जुदा प्रायश्चित्त कहेंगे वही उसको चाहिये—अव-

कीर्णी इसकानामहै (ब्रह्मचार्यवकीर्णीस्यात्कामतस्त्स्त्रियंव्रजन्) ब्रह्मचारी होकर जो कामकी अपेक्षासे स्त्री गमनकरै या इसप्रकारका और कोई यती आदि अपना व्रत भंगकरै सो अवकीर्णी कहाताहै—योगीश्वरने२३६ के मूलश्लोकमें(व्रतलोपश्च) इतने पदसे अवकीर्णीका स्वरूप दर्शायाहै॥ ०॥ जबकि योगीश्वर और मनुकेदोनों के अतिदेश मौजूदहैं तौ इन वचनों के प्रभावसे यह प्रायश्चित्तका अतिदेश उनसभी जनोंपर आरूढ समुझना चाहिये कि जो जो उपपातकों के गणा में नाम आये फिर चाहें उनमें किसीका जुदा प्रायश्चित्त भी कहागयाहो अथवा विरलोंकेलिये कोईजुदा प्रायश्चित्त न कहाहो तौभी यह अतिदेश सबकेलिये समझना केवल अवकीर्णीको छोड़के॥ ०॥ यहां एक तर्कवादहै कि जिनकेलिये कोई जुदा प्रायश्चित्त न कहा जाय उन्हींके निमित्त यह सामान्य अति देशरूपी प्रायश्चित्त मानना उचित होता तौ ठीकथा क्योंकि जो सबकेलिये मानागया तौ यह दोष खड़ा होताहै कि जिनका नाम लेकर जुदे प्रायश्चित्त कहे जायँगे उन प्रायश्चित्तों का बाध अर्थात् रुकावट इन्हीं सामान्य प्रायश्चित्तोंके अति देशद्वारा पाईजातीहैं कि जब सभीको सामान्य अतिदेश देचुके तौ फिर विरलोंको जुदे प्रायश्चित्त बतानेका ठिकाना कहां रहा= इसका यही उत्तरहै कि=ऐसा नहीं क्योंकि जैसा तुमने कहा या समझा तैसा होने में यह दूषणहै कि जब केवल उन्हीं के लिये अतिदेश होता तौ फिर उनका पाठही जुदा रक्खाजाता अर्थात् वैसे दूसरी भांति के उपपातकियों में मिलाकर उनके नाम जो रखिचुके सो अनर्थक हुयेजाते हैं•इसके सिवाय जो सामान्य भावसे उपपातकों के गणामें नाम लिखेगये तिनका अन्य स्मृतियों में जुदा प्रायश्चित्त मिलताहै•तथैव जो उपपातकोंके गणामें विरलेनाम नहीं कहे तिनके भी प्रायश्चित्त इसमें लिखेदेखि परते हैं इसका दृष्टांत जैसे अयाज्योंका याजक एक उपपातकी लिखिचुकेहैं (२३७ के मूलश्लोकमें देखो) तिसका प्रायश्चित्त आगे दोसौनवासी मूलश्लोक में (त्रीन्कृच्छ्रानाचरेद्व्रात्ययाजको–अभिचरन्नपि) यह कहेंगे इसकेसाथ अभिचारकाभी वही प्रायश्चित्त कहिदिया है कि जिस अभिचार नामका उपपातक अपने गणामें कहीं नहीं आयाथा इसीप्रकार शरणागत के त्यागनेका अधिक प्रायश्चित्त उसी दोसौ-नवासी मूलश्लोक में देखना ये सभी बातें मिटि जावें और झूंठी ठहिरें जो तुम्हारे उक्त विचार के अनुसार मानाजाय•और यहभी नियम नहींहै कि जो जो उपपातक विशेष किसी एकनामसे लिखेगये उनका प्रायश्चित्त जहां लिखा गया तहां खास २ विशेष उसी पूर्वोक्त नामसे लिखा हो इसका भी दृष्टान्त पहिले दोसौचालीस

मूलश्लोकमें (इंधनार्थद्रुमच्छेदः) इस पदको देखो कि यह एक उपपातकहै विशेष कर वृक्षकाटनेकेहीनाससे लिखागया• फिर इसका प्रायश्चित्तजाकर दोसौछिहत्त• रि२७६ मूलश्लोकमेंदेखो कि (वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदनेजप्यमृक्शतं) वृक्ष•गुल्म• लता• वीरुध• इन चारोंमें किसी के काटने मध्ये एकसौ ऋचा जपनी कही हैं–इन बातोंके ऐंचपेंच से यहसार समझिलेना कि उपपातकों के समस्त प्रकरण में कोई सा एकही क्रम ऐसा सुधा नहीं है कि जिसके द्वारा मालाके गुरिआ समान गिनती गिनाई जासके–तिससे–यही सिद्धान्त ठीकहै कि दोसौचौंतीस मूलश्लोकमें व्रात्यता को आदि लेकर दोसौब्यालिस मूल श्लोकतक भार्या के बेचने पर्यंत जो जो उपपातक हैं तिनकेलिये प्रायश्चित्त भी चाहे इसी ग्रन्थ के शास्त्रमें या और किसी ग्रन्थ में जो कुछ लिखेपायेजायँ सोभी और यहां जो २६५ के मूल श्लोक से चार प्रकार के प्रायश्चित्त कहे वे भी उनमें मीलानकरिके परस्पर उनकी समता और विषमता और बड़ाई छोटाईकेविचारसे विकल्पनियतकरै यद्वा विषयभेदसे विभागकरना और चाहिये–और वे अन्य स्मृतियोंके कहे प्रायश्चित्त भी व्रात्यता आदिके पाठका क्रम लेकर आगे उन्हींके साथ जोड़ेजायँगे तहां तहां सर्वत्र देखना ॥ २६५ ॥

इत्युपपातकसामान्यप्रायश्चित्तानि

इसी दोसौ पैंसठिवाली अधिकोक्तिकापाठ बहुत लम्बा है सो आगे आगे अनेक परिच्छेदों में जाकर पूराहोगा कि जबतक (२६६) मूलश्लोक न मिले क्योंकि मिताक्षराकारने इसी (२६५) परटीका बहुत बढायाहै तिसके अनेक परिच्छेद किये जायँगे कि उनमें जुदे जुदे उपपातकोंकी व्यवस्था लिखीजाय ॥

यह भी यादराखना कि यद्यपि इस परिच्छेद में सभी उपपातकों के नामसे सामान्य प्रायश्चित्त कहेगये हैं तथापि बहुतेरे उपपातकोंपर अप्रोक्त प्रायश्चित्तोंकी पहुंच न होनेसे अपवाद मानाजायगा इसका दृष्टान्त जैसे अवकीर्णी ब्रह्मचारी आदि के लिये ये प्रायश्चित्तनहींहैं एवपरदारगामीकेलिये येप्रायश्चित्त नहींहै तिससे उनके लिये बड़े बड़े औरही प्रायश्चित्त जुदे परिच्छेदो मे दर्शायेजायँ तहां समझि लेना ॥ २६५ ॥

———*———

अथोपपातकिनां-व्रात्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदःपंचचत्वारिंशः ४५॥

—*—

इस परिच्छेदमें व्रात्यपुरुष के प्रायश्चित्त कहे जायँगे—व्रात्य उसका नाम है जो तीनिवर्णोंका पुरुष जनेऊआदि संस्कारसे हीनहोनेके कारण—व्रात जो समूह संस्कृत पुरुषोंका या उसकी जातिमात्रका समूह व्रात है तिससे गिरिजाय अर्थात् असंस्कृत होनेसे पतितठहिरै वहीव्रात्यकहाजाताहै तिसको व्रात्यतादूरकरदेनेके प्रायश्चित्तहैं॥

(व्रात्यप्रायश्चित्तं)

व्रात्यता एक उपपातक जो २३४ दोसौ चौंतीस मूलश्लोक में दर्शाया तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने २६५ दोसौपैंसठिके मूलश्लोकमें अतिदेश मार्गसे सूचन कर दिया अब जुदा कुछ न कहेंगे—परन्तु—अन्य मुनीश्वरों के कहे प्रायश्चित्त यहां लिखने आवश्यक हैं तहां पहिले मनुका कहा देखो=यदाह मनुः=येषांद्विजानांसावित्री नानूच्येतयथाविधि तांश्चारयित्वात्रीन् कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत्= अर्थात्—जिन द्विजाती वर्णोंको गायत्री का उपदेश उचित समय पर यथोक्त विधिसे नहीं किया जाता है (वेहीव्रात्यकहिलाते हैं) उनका उपनयन जब करनाहो तो उनसे तीनि कृच्छ्र व्रत कराइके जैसी विधि होतीहै उसी तरहसे उपनयन करावै=यमने भी यही कहा है=यथा=सावित्रीपतितायस्यदशवर्षाणिपंचच सशिकंवपनंकृत्वा व्रतंकुर्यात्समाहितः एकविंशतिरात्रंचपिवेत्प्रसृतयावकम् हविष्यंभोजयित्वैवंब्राह्मणान्सप्तपंचच ततो यावकशुद्धस्यतस्योपनयनंस्मृतम्=अर्थात्—जिस ब्राह्मणके जन्मसे पंद्रह वर्ष पूरेतक सावित्री पतित हुई हो अर्थात् गायत्री को शिक्षा न मिली हो (तिसकी संज्ञा व्रात्य होतीहै) उसका जब उपनयन करना होय तब शिखा सहित मुंडन पहिले कराइके इक्कीस दिन सावधान होके व्रतकरै तब तक एक पसर भरि जौका दलियारांधि माड़ पिया करै तिस पीछे बारह ब्राह्मणोंको खीरि पूरी आदि हविष्य भोजन कराइके तब उस यावक पीकर शुद्ध हुयेका उपनयन करना कहा है—यहां पर इस बातको सोचो कि मनु और यमके कहे येही दोनों प्रायश्चित्त उमके बराबर हैं कि जैसा

योगीश्वरने २६५ मूलश्लोकमें एक महीना दूध पीना कहा क्योंकि यद्यपि योगीश्वर याज्ञवल्क्यने व्रात्यताके नामसे कोई जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा परन्तु सामान्य भावसे मूलश्लोकमें सभी उपपातकोंकी शुद्धिहोना कहिचुके हैं=इसी व्रात्यतामध्ये=वशिष्ठजीने कुछ बढ़िया प्रायश्चित्त कहा है तिसका तात्पर्य भी कुछ और है सो देखो=यथाह वशिष्ठः=पतित सावित्रीकउद्दालकव्रतंचरेत् द्वौमासौयावकेन वर्त्तयेन्मासंपयसापक्षमा॰मिक्षयाऽष्टरात्रंघृतेन षड्रात्रमयाचितेन त्रिरात्रमब्भक्षोऽहोरात्रमुपध सेदश्वमेधावभृथंगच्छेत् व्रात्यस्तोमेनवायजेतेति=अर्थात्–जो पुरुष सावित्री से पतित होय सो उद्दालक व्रतकरै कि दो महीना यावक पीकेरहै फिर एक महीना गऊका दूध पीके रहै फिर एक पाख आमिक्षा पीके रहै फिर एक अठवारा गऊ का घी चाटिके रहै फिर छेदिन विना मांगे जो कुछ पाजाय उसीको भोजन करै पर मुहसे न मांगे फिर तीनि दिन केवल जल पीके रहै फिर एक दिन कोरा उपवास निर्जल करै तब अश्वमेधके अवभृथ स्नानकी तुल्यताको पहुँचै यद्वा (अश्वमेधके साक्षात्कार अवभृथ स्नानमें जाकर शुद्धहोय सो यह देशकालके अनुकूल अवसर वनि परे का नियम है सर्वत्र नहीं क्योंकि अश्वमेध हरकोई नहीं करसक्ता है न हरएक समयपर ऐसा बानक मिलसक्ता है कि विराने अश्वमेधमें जाकर करै) यद्वा ये बातें भी नहों तो व्रात्यस्तोम नामक वेदोक्त यज्ञ करै तब शुद्ध होय तिस पीछे उपनयन किया जा सक्ता है अन्यथा नहीं=इस प्रायश्चित्त में यावक पीना कहा गया सो गोमूत्र में जो रांधिके उसका गाढ़ा माड़ मसलिके छानिलिया जाताहै तिसका नाम यावक होता है जिसपर निपट गोमूत्रका रँधा यावक न पियाजाय सो निर्वाह के लिये थोड़े गोमूत्रमें जलको मिलाकर पकावै•परन्तु जहां कहीं पहिलेभी यावक नाम आचुकाहै तहां तहां सर्वत्र ठीक यही अर्थ समझना किन्तु जो कुछ और लिखा गया हो सो नहीं–इसी प्रायश्चित्तमें आमिक्षा पीनाभी कहागया सो छालके जमाये तरुण दही का नाम आमिक्षा कहा जाताहै प्रायश्चित्त में यहभी गऊके दूधका जमाया हुआ पीना चाहिये॥ अत्रसर्वपांव्यवस्थाच यहां पर• मनु•योगीश्वर• यम• वशिष्ठ•इन सबके कहे ऊँचे नीचे प्रायश्चित्तों की एकमार व्यवस्था यह समझि लेनी चाहिये कि–जिस किसी ब्राह्मण या क्षत्री आदि वर्णों की आठ वर्ष आदि जो कुछ अवधि यज्ञोपवीतकी होतीहै वही अवधि जिसके उपनयन करानेवाले आदि किसी के न होने या न मिलनेसे हटि गई हो तिसके हटिजाने से थोड़े काल पीछे जो उपनयन करना परै तब तो २६५ मूलश्लोकमें योगीश्वरके कहे चारो प्रायश्चित्तों में कोई

एक प्रायश्चित्त करनेवाले की शक्तिके अनुरूप देना चाहिये और उसके साथ यम की कई नियम भी मिलालेने चाहिये=और जिसके सब सामग्री मौजूद होतेहुये अनापत्काल में भी बेपरवाही की उपेक्षासे वह अवधि बीतिगईहो तिसके लिये ऊपर मनुके कहे तीनि कृच्छ्रोंका तीया प्रायश्चित्त कराना चाहिये=और जो इसी अनन्तर चर्चावालेको इतना काल बीति गया हो कि अपनी मुख्य अवधि से दूना जो गौणकाल माना जाताहै सोभीबीतिजाय (इसका दृष्टान्त जैसे ब्राह्मणकी ठीकठीक साढ़ेसात वर्षकी मुख्य अवधि होतीहै तिसको पूरे पंद्रह वर्ष बिना जनेऊ के बीति जायँ इसी प्रकार क्षत्री आदिको उसकी अवधिसे दूना समझिलेना) तिसके लिये वशिष्ठका दर्शाया उद्दालक नामी व्रत करवाना या व्रात्यस्तोम नामी यज्ञ कराना चाहिये=इनके सिवाय जिस किसीके बाप दादे आदि भी बिना जनेऊके रहि गये हों (जैसे संप्रति बहुधा क्षत्री और वैश्य भी अनेक पीढ़ियों से असंस्कृत चलेआते हैं तिनका यह चर्चा है कि) उनके लिये आपस्तंबका कहा प्रायश्चित्त कराना=यथा ह्यापस्तंबः=यस्यपितापितामहावनुपनीतौस्यातां तस्यसंवत्सरंत्रैविद्यकंब्रह्मचर्यंयस्य प्रपितामहादेर्नानुस्मर्यतेउपनयनं तस्यद्वादशवर्षाणित्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यमिति=अर्थात्-जिसका बाप और दादा भी असंस्कृत रहिके मरे हों ऐसा पुरुष जो अपना संस्कार करानेपर समुद्यत होय तो उसको एक वर्ष भर त्रैविद्यक नाम का वेदोक्त ब्रह्मचर्य व्रत करना चाहिये और जिसके परदादे आदिकी भी यह ठीक यादि न हो कि उनके संस्कार जाने हुयेथे या नहीं तो यह पुरुष बारहवर्षका त्रैविद्य ब्रह्मचर्य साधै तिस पीछे अपना संस्कार करावै तो फिर आगेको उसके बेटा पोता आदि कुलमात्र के संस्कार बिना प्रायश्चित्त किये जारी होसक्ते हैं (यह बात भी कुछ बहुत बड़ी नहीं है जो कोई अपने कुलका उद्धार करना चाहै सो घरमें एक बड़ा बूढ़ा इस प्रायश्चित्त की साधना करिके अपने कुलमें लुप्तहुये संस्कारोंको जारी करावै क्योंकि अपने आगामी कुलके कल्याणहेतु अगिले बड़े बूढ़े बहुत बड़िया तप करतेथे उसी तप के प्रभाव से उनकी अविच्छिन्न सन्तति अद्यापि सुख भोगती है—अन्यथा जो वर्त्तमान कालमें बहुतसे असंस्कृत क्षत्री और वैश्य भी केवल मनके आकर्षण से पुरोहित पाधाओंकेद्वारा बहुधा सभा जोड़िके यह वाद विवाद करते हैं कि हमारा संस्कार होनेमें क्या दोषहै सो यह केवल उनका तुपकपड़नहै क्योंकि पुरोहितपाधा आदिमें कुछ ठीक ठीक उत्तर इसका नहीं बनिआता है जैसे जल के जीव स्थल की बातोंको क्या जानिसक्ते हैं कुछसे कुछ उत्तर दिया करतेहैं कितनेही अपनी धुनमें

आकर जनेऊकी माला जैसे गुलूकंठी के समान पहिराइ भी देते हैं ॥ २६५ ॥ इसी मूलश्लोकसे यह पाठ चला आता है ॥

इतिव्रात्यप्रायश्चित्त

अथ स्तेयोउपपातकयुक्तपुरुषस्यप्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः षट्चत्वारिंशः ४६



इस परिच्छेद में उन चोरोंके प्रायश्चित्त कहे जायँगे जो सुवर्णस्तेयी से उपरान्त हों—अर्थात उस चोरी के करने वाले हो जो उपपातक कहाती है कि जिसका स्वरूप २३४ मूलश्लोक में आचुका—किन्तु उन चोरोंका प्रयोजन यहां नहीं है जो पहिले ब्रह्महत्यारे आदि महापातकियो में गिनती हुये थे—क्योंकि यहां उपपातकों का प्रकरण है ॥

(स्तेयप्रायश्चित्त)

ध्यान करना चाहिये कि २६५ मूलश्लोकमें योगीश्वरके कहे चारों प्रायश्चित्त सामान्य सभी उपपातकों पर नियत हुये तिससे उपपातक सबंधी चोरी में भी उन चारोंकी पहुँच देखि परती थी परन्तु मनुके कहे प्रायश्चित्तसे उस पहुँचका अपवाद सिद्ध होताहै कि योगीश्वर वाले चारों प्रायश्चित्त एक चोरी को छोडि कर अन्य उपपातको पर आरूढ होंगे अर्थात चोरी के उपपातक में मनुका कहा प्रायश्चित्त विचारना होगा=तथाचाहमनु = धान्यान्नधनचौर्य्याणिकृत्वाकामाद्द्विजोत्तमः स जातीयगृहादेवकृच्छ्राब्देनविशुद्ध्यति (द्विजोत्तमस्यसजातीयो ब्राह्मणस्तस्यैवातोविप्रप रिग्रहे ब्राह्मणस्यहर्तुरिदंप्रायश्चित्त क्षत्रियादेस्स्वल्पकल्प्य) =अर्थात—धान्य जो नाज साव कोई सा हो और अन्न जो तैयार सिद्धान्न आटा दालि चाउर आदि हो और धन शब्दसे चांदी तथा तांबा पीतलि आदि समझने इन चीजो की चोरी जो इच्छा सहित जानि बूझि कोई ब्राह्मण होकर किसी सजातीके अर्थात ब्राह्मण के घर करै यदि इतनो वालें सब इसी तरह ठीक ठीकहो तो वह ब्राह्मण एक वर्ष भर कृच्छ्रव्रत करिके शुद्ध होताहै (इस बातका यह तात्पर्य ठहिरा कि इतना बड़ा प्रायश्चित्त केवल ब्राह्मणके निमित्त कहा गया है यदि क्षत्री आदि नीचे वर्ण वाले

चोरहों तो उनके लिये कोई प्रायश्चित्त कल्पित करने चाहिये-क्योंकि (अष्टापा द्यंस्तेयकिल्विषंशूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषांप्रतिवर्णं विदुषोऽतिक्रमेदंडभूयस्त्व० मितिक्षत्रियादेरपहर्तुर्दण्डाल्पत्वस्यदर्शनात्) इस वचन में क्षत्री आदि होने वर्णों के चोरोंको दंड भी थोड़ा कहा देखि परता है कि-चोरीका दण्ड अठगुण तक बढ़ता है जिस चोरी में जितना दण्ड शूद्रपर ठहिरै उसी चोरी में औरों को प्रत्येक ऊँचेवर्ण पीछे दूना दूना दण्ड बढ़ाया जाय अर्थात् जो वैश्य ने चोरी करीहो तौ दूना दण्ड और क्षत्रीने करी हो तौ चौगुना दण्ड और ब्राह्मण चोर हो तौ अठगुणा दंड इसी लिये (अष्टापाद्यंस्तेयकिल्विषं) यहपदकहा गया०इसके सिवाय प्रत्येक वर्णमें जो कोईविदुष ज्ञानी यहा पंडितहो वहीधर्ममर्यादाका अतिक्रमकरै तिसपर उक्तहिसाब सेभी अधिक दंड बढ़ायाजाय) तिससे इसीदंडके अनुसार प्रायश्चित्तभीऊँचेवर्णपर अधिक लगाना चाहिये-तैसाही यह वचनभी प्रसिद्धहै (विप्रेतुसकलंदेयंपादोनंक्षत्रियेस्मृतमित्यादि) अर्थात्जो कुछ प्रायश्चित्त कहींसामान्य लिखाहोसो ब्राह्मणसे पूरं पूरकरवानाचाहिये क्षत्रीसेपौना और वैश्यवर्णसे आधाकरवाना चाहिये शूद्रसे चौथाई-इसमें प्रायश्चित्तभी एकएकचरण घटाकरदेनाकहाहै यहसर्वनियम ब्राह्मणके घरमें चोरीकरनेके प्रायश्चित्तमध्ये कहागया॥०॥ कदाचित् क्षत्री आदि नीचे वर्णों के परिग्रह में जाकर चोरीकरी हो तो इस न्यूनतासे भी दंडके अनुसार प्रायश्चित्त में कुछ कमी करनी चाहिये सो यह कमी उसमेंसे करनी होगी जो ऊपर एकवर्षभर का कृच्छ्रव्रत कहिचुके हैं-अर्थात् जो ब्राह्मणने क्षत्रीके कब्जे में चोरी करी हो तौ वर्ष भरके स्थान छमाहीका प्रायश्चित्त चाहिये०यदि वैश्यके कब्जेसे चोरी करीहो तौ तीनमहीनेका गोवधवालाव्रत चाहिये जो (२६३। २६४) इन मूलश्लोकोंकी अधिकोक्ति में लिखिचुके हों तहां देखो० यदि शूद्रके परिग्रह में जाकर ब्राह्मण चोरीकरै तो एक महीनेका पूरा चांद्रायण व्रत करना चाहिये०यह सब नियमसिर्फ ब्राह्मण चोरके मध्ये कहागया इसी रीतिसे यदि क्षत्रीआदि कोई चोर किसी ऊँचे नीचे वर्णकी चोरीकरै तहाँ भी पूर्वोक्त नियमोंसे विचारकरि लेना चाहिये जिसमें ठीक ठीक व्यवस्था पावै॥ ०॥ ऐसा भी न समझिलेना कि चोरी छोटी बड़ी चाहै जैसीहो सब में येही प्रायश्चित्त होंगे किन्तु ये प्रायश्चित्त केवल दशकुंभ परिमान धान्य हरने मध्ये नियतहैं-क्योंकि दशकुम्भसे अधिक धान्य हरनेमध्ये मनुने उत्तम साहसका दण्ड देना कहा है (धान्यंदशभ्यः कुम्भेभ्योहरतोदमउत्तमः) कुम्भके परिमाण अनेक तरहके शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं परन्तु जो धर्मके अनुकूल हो सो यहां पर

समझना और यथार्थसे कुम्भनाम लोकमें मटकेका प्रसिद्ध है तथापि इसकापरिमाण बहुतहै तिससे डिहराडिहरियाका नाम सामान्य भावसे कुम्भ समझिलेना ऐसेदश कुम्भकेभीतर नाजहरनेमध्ये ये प्रायश्चित्त ऊपर कहेगये-और (धान्यान्नधनचौर्याणि)इसमनुकेवचनमें ऊपर जो धान्यकेसाथअन्न और धनकीचोरी कहिचुकेतिसका भीपरिमाण उतना समझिलेना जो दश कुंभ धान्यकेमोल बराबर हों अधिकनहीं= इस परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गयासो सब कामकार-विषय समझना कि जिसने कामनासे विचारिके चोरीकरीहो उसीपर ये प्रायश्चित्त पहुँचते हैं॥ ० ॥ अकामकृत चौर्य प्रायश्चित्तं- जिसने चोरी कामना के विना केवल धोखा आदि कारणों से करीहो तिसके लिये तीनि महीने वाला गोवध का प्रायश्चित्त चाहिये जो कि (२६३ । २६४) इन मूल श्लोकों की अधिकोक्ति में लिखि चुके तहां देखो=यहांपर बहुत बड़ेविचार का यह स्थ गहै कि (तथा—मनुष्याणांचहरणोस्त्रीणांसेत्रगृहस्यच कूपवापीजलानांचशुद्धिश्चांद्रायणेनतु—इतिसार्द्धशत द्वयपणलभ्यजलापहारे इदंचांद्रायणं प्राप्तमपीतरगोवधव्रतनिवृत्त्यर्थंविधीयते इति मिताक्षराकाराः तावन्मूल्यजलापहारे पानीयस्यहरणस्यचतन्मूल्यद्विगुणोदण्ड इति पंचशत इतिच मिताक्षराकाराः)=अर्थात्—मनुष्योंका हरना स्त्रियों का हरना खेत ज़मीन का हरना घर मकान का हरना कूप बावड़ी आदि जलों का छीनना इन पापों में चांद्रायण करने से भी शुद्धि होती है—इस वचन को दर्शाय कर मिताक्ष-राकार कहिते हैं कि २५० अढाई सौ पण मोल या महसूल प्राप्त होसकने योग्य जलाशय के हरिलेने में यह उक्त चांद्रायण यद्यपि पहुँचता है तौभी दूसरा गोवध वाला व्रत जो हम दर्शाइचुके तिसकी निवृत्ति इस चांद्रायण से ठहिरतीहै और उतनेही मोल वाले जलके हरने मध्ये कहीं यह भी कहा है कि पानी और तृणफूस के हरने में उस चीज के मूल्य से दूना दंड चाहिये तो इस हिसाब से पाँच सौ पण का दंड पाता है क्योंकि अढाई सौ पण मोल अभी कहिचुके हैं तिससे दूने पाँचसौ पण दंड समझ में आताहै (यहां पण कहिने से वही रुपया समझिलेना जोजिस राज से चलता हो अन्यथा चाँदी के पण का और ताँबे के पणका परिमाण आ-चार मर्यादामें देखो वहीटीकहै) इतना कहिकर फिरभी मिताक्षराकार इसीबात पर यह लिखते हैं कि (तथेतिचांद्रायणविषये पंचशतपण दंड विधानात्तावत्परि-माणदंड चांद्रायणयोर्विधादौसहचरित्वात् तथा कृच्छ्रातिकृच्छ्रे त्वयोः पणपंच शत तथेति चांद्रायणविषये पंचशतपणदंडविधानाच॰ एतच्चक्षत्रियादि द्रव्यापहारे

द्रष्टव्यं इतिचमिताक्षराकाराः)=अर्थात्–फिर कहिते हैं कि उसी उक्त चांद्रायणके मध्ये पाँच सौ पणदंड ठीक होनेसे उतने परिमाण का दंड और चांद्रायण इनदोनों का गोवध आदि उपपातकोंमें सहचार सिद्ध होने तथा२६४ मूल श्लोक में कहेगये कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र के साथ अश्वोक्त चांद्रायण से पांच सौ पण का योग पाया गया क्योंकि यहाँपर चांद्रायण के मध्ये पाँच सौ पण दंड कहा जानेके हेतुसे=यह भी सब नियम क्षत्रीआदि वर्णोंके धन हरने मध्ये विचारने चाहिये किन्तु ब्राह्मण का धन हरने मध्ये आगे देखना=यद्यपि=सार ढूंढने वाले को सर्वत्र सारही देखि परता है यह नियम अभंग है–तथापि इस बात को हरकोई साफ साफ नहीं कहि सक्ता है कि यहाँपर इन बातों की विलोड़ से मिताक्षराकार ने क्या सार निकासा किन्तु जिसने कहा वही समझा तौभी कुछ सारनहीं पाया गया इसीलिये बातयही है कि जिसका सार हर किसी के प्रत्यक्ष आवै परन्तु हमको उनका लिखा सेरना योग्य नहीं था॥ ०॥ ब्राह्मण संबंधी धनके हरने में यह वचन लेना होगा कि= निक्षेपस्यापहरणंनराश्वरजतस्यच भूमिवज्रमणीनांचरुक्मस्तेयसमंस्मृतम्–तथा–द्रव्याणामल्पसाराणांस्तेयंकृत्वाऽन्यवेश्मनः चरेत्सांतपनंकृच्छ्रन्तन्निर्यात्यात्मशुद्धये। इत्यनेनाल्पप्रयोजनत्रपुसीसादिद्रव्यापहारविषयेस्तेयसामान्योपपातकप्रायश्चित्तापवाद इदंचचांद्रायणनिमित्त सुतार्द्धतृतीयप्रस्थमूल्यस्य पंचदशांशाद्धत्रपुसीसाद्यपहारे प्रायश्चित्तं चांद्रायण पंचदशांशत्वात्तस्यइतिच मिताक्षराकाराः=अर्थात्–धरोहरि या सौंप का हरना तथा मनुष्य का हरना तथा घोड़े का हरना तथाचाँदी का हरना तथा धरती का हरना तथा बालक या हीरे का हरना तथा मणिओं का हरना यह सब सुवर्ण की चोरी तुल्य कहाता है–तथा–थोड़े सार वाले द्रव्यों की चोरी किसी और के घरसे करिके अपनी शुद्धिके लिये यह चुराया यद्वा छीनाहुआ द्रव्य वापिस देकर सांतपन कृच्छ्र व्रत आचरै–इसमें थोड़े सारकी वस्तु कहिने मात्र से थोड़ासा काम देसकने योग्य लोहा सीसा रांग आदिद्रव्यों के हरने का विशेष चिह्न देने से यह बात सिद्ध होती है कि जितनी तरह की चोरी सामान्य भाव से उपपातकों में गिनती हैं तिनसबके लिये जो कुछ प्रायश्चित्त कहीं कहा हो तिसका अपवाद इस ख़फ़ीफ़ चोरीमें समझना अर्थात् उस प्रायश्चित्तको बड़ासमझिके इन थोड़े प्रयोजन वाली वस्तुओं की चोरी पर नहीं आरूढ़ करना चाहिये (और इस ख़फ़ीफ़ चोरी का परिमान कहां तक समझा जाय इस प्रश्न का यह उत्तर है कि) यह सांतपन कृच्छ्र व्रत ऐसी ख़फ़ीफ़ चोरीका प्रायश्चित्त समझना

जो ऊपर के पाठ में चांद्रायण प्रायश्चित्त के निमित्त पर २५० अढाई सौ पण के मोल योग्य चोरी कही गई थी उसका तीसवाँ भाग चोरी करीहो अर्थात् आठ पण के लगभग मोल वाले राँग सीसा लोहा आदि चुराये हों ॥ ० ॥ इसी प्रकार विरले द्रव्यों की विशेषता (ख़सूसियत) से भी उन प्रायश्चित्तों का अपवाद (इ-स्तस्नाऽ) समझना जो सामान्य (आम तौरसे) उपपातकों पर आरूढ़कियेगयेहें इसका ब्यौरा आगे देखो=भक्षभोज्या पहरणेयानशय्यासनस्यच पुष्पमूलफलानांच पंचगव्यंविशोधनम्=अर्थात्–चावने खाने की वस्तु हरने में या चढने और सोउने और बैठने की चीजें हरने में या फूल मूल फल कन्द आदि के हरने में पचगव्यका पीना प्रायश्चित्त है–यह एक दिन का प्रायश्चित्त है सो केवल एक वार पेट भर भोजन करनेयोग्य भक्ष भोज्यकी वस्तु चुराने मध्ये समझना किन्तु अनियत परिमान से चाहें जितनी हरने मध्ये नहीं क्योंकि यह बात अगिले पैठीनसि के वचनसे साफ स्पष्ट होती है=यथाह पैठीनसिः=भक्ष्यभोज्यान्नस्योदरपूरणमात्रहरणेत्रिरात्रमेकरात्रं वापचगव्याहारेति=अर्थात्–खाने चवाने आदिके अन्न जो पेट भरनेमात्र परिमान से हरे तिसको तीन वा एकही दिन पचगव्य पीकेरहिना प्रायश्चित्तहै–ध्यानकरो केवल पेटभरनेयोग्य अन्नहरने मध्ये तीन वा एकही दिनका विकल्प दर्शाया तिससे दोनों वार सवेरे साँझ पेट भर सकने योग्य हरने में तीनदिनका प्रायश्चित्त और एक ही वार पेटभरनेयोग्य हरने का एकदिन प्रायश्चित्त ठहिरा–और जिसवचनमें भक्ष्य भोज्यका नाम आया उसीमें यान शैया आसन पुष्प मूल फल ये भीकहे अर्थात् इनका भी वही पचगव्य का पीना प्रायश्चित्त ठहिरा तिससे भोजन के साथ गिनती होनेसे इनकाभी वही परिमाण समझना कि जितने मोलका भोजनहोताहो और उसी रीति से इनमेंभी दोनोंतरह का प्रायश्चित्त समझलेना कि एकवार पेट भरनेयोग्य अन्नके मोल वरावर जो इन चीजोंकी कीमत ठहिरे तो एकही दिन पचगव्य पीनाचाहिये जो दोनोंवार पेट भरने योग्य अन्नके मोलवरावर इनचीजों का मोल ठहिरे तो इनमें भी तीनदिन पचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त जानो अर्थात् यही न्याय सर्वत्रहै कि चोरी करी हुई वस्तु के थोड़े वहुत परिमाण के अनुसार प्रायश्चित्त की छोटाई वड़ाई कल्पित करी जाय=इसी प्रकार यह वचन है कि (तृणकाष्ठद्रुमाणांच शुष्कान्न स्यगुडस्यच तैलचर्मामिषाणांच त्रिरात्रस्यादभोजनम्–इत्येषांचतृणादीनां भक्षादि त्रिगुणत्रिरात्रप्रायश्चित्तस्यदर्शनात्तत्त्रिगुणमूल्यार्घाणामेतत्प्रायश्चित्त)=अर्थात्–फूल काठ वृक्ष सूखाअन्न गुड तेल चमड़ा माँस इनके हरने में तीन दिन निराहार

व्रत करै–इस वचन में फूस घास आदि सभी के हरने मध्ये भोजन आदि पूर्वोक्त चीजों से तिगुना तीन दिनका प्रायश्चित्त है तिसके देखने से यह ठीक हुआ कि भोजन आदि पूर्वोक्त चीजों के मोलसे तिगुने मोल वाली अवोक्त चीजों का यह प्रायश्चित्त चाहिये=इसी प्रकार यह वचनहै कि (मणिमुक्ताप्रवालानांताम्रस्यरजतस्य अयस्कांस्योपलानांचद्वादशाहंकणान्निता–अत्रापिभक्षादिद्वादशगुणप्रायश्चित्तदर्शनात् तन्तुल्यद्वादशगुणमूल्य मणिमुक्ताद्यपहारिणस्तत्प्रायश्चित्तमिदंद्रष्टव्यं)= अर्थात्–मणि मोती मूंगा तांबा चांदी लोहा कांसी रत्न पत्थर आदि इनके हरने मध्ये बारह दिन धानों के कन खाइके रहिना यही व्रत प्रायश्चित्तहै–इसमेंभी उस से बारह गुणा व्रतदेखि परता है कि जो भक्ष्य भोज्य आदि में एकदिनका कहाथा तिससे यह बात यहां ठहिरी कि उन चीजों का मोल परिमान जैसा वहांपर कहि चुके तिससेबारह गुणे मोलवाली अवोक्तचीजें चुरानेका यह बारहदिन प्रायश्चित्त जानों=इसी प्रकार यह वचनहै कि (कार्पासकीटजीर्णानां द्विखुरैकखुरस्यच पक्षिगंधौषधीनांचरज्ज्वाश्चैवत्र्यहंपयः–अत्रापिभक्ष्यादिचित्रिगुणप्रायश्चित्त दर्शनात्तत्त्रिगुणमूल्यानामपहारस्वैतत्प्रायश्चित्तंयतः द्रीयसाणद्रव्यन्यूनाधिकभावेन प्रायश्चित्तालपत्वमहत्वंकल्प्यमेव)=अर्थात्–रुईकी भरी रजाई गदेला आदि पुराने वस्त्र औरदोखुरवाले तथा एकखुरवाले जीवोंके बालआदि और पक्षीकेपर खाल आदि वा समेह छोटे पक्षी और सुगन्ध की चीजें तथा दवाइयोंकी चीजें तथा रस्सीआदि इनकी चोरी मध्ये तीन दिन दूधपीके रहिना प्रायश्चित्त है–इसमें भी पूर्वोक्तभक्ष्य भोज्यादि से तिगुना प्रायश्चित्त देखिपरता है तिससे उन चीजों के तत्रोक्त मोलसे तिगुने मोल वाली अवोक्त चीजें हरने पर यह प्रायश्चित्त समझना क्योंकि यह सर्वत्र आवश्यक है कि चोरी किये हुये द्रव्य के न्यून वा अधिक होने अनुसार प्रायश्चित्त की लघुता गुरुता कल्पना कीजाय=चोरियों के प्रायश्चित्त जोकुछयहां तक लिखे गये सो सब उस दशा में होसक्ते हैं कि पहिले अपहार किया हुआ धन धनी को प्रत्यर्पणकरै तिस पीछे प्रायश्चित्त करै इसका प्रमाण यह अग्रोक्त विष्णु का वचन है (दत्वैवापहृतद्रव्यंस्वामिनेव्रतमाचरेत्) अर्थात् चुराया धन स्वामीको देही बार प्रायश्चित्त करै बिना दिये नहीं ॥ २६५ ॥

इसी मूल श्लोक से यह पाठ चला आता है

(इतिचौर्यप्रायश्चित्तं)

अथ ऋणानामनपाक्रिया या अनाहिताग्नितानिताग्निताश्च अपण्यविक्रयस्य चत्रयाणामुपपातकानां प्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयं सप्तचत्वारिंशः परिच्छेदः ४७॥

इस परिच्छेद में तीनि उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायँगे कि पहिले ऋण उद्धार न करने के पाप में अर्थात् ऋण लेकर पचाइजाने का प्रायश्चित्त–फिर अनाहिताग्निता में कि जिसके कुल मे अग्नि स्थापन करने का अधिकार भी नही राखैं तिसके पापका प्रायश्चित्त–फिर अपण्य विक्रयमें कि जिन चीजोंका बेचना प्रतिषिद्ध है तिनको वेचनेके पापका प्रायश्चित्त कहा जायगा॥ इन तीनोंके स्वरूप २३४ मूल श्लोक मे देखो॥

(ऋणस्याशोधन प्रायश्चित्तं)

ऋणका उद्धार करदेना व्यवहार मर्यादा में कहिचुके हैं कि (पुत्र पौत्रैऋणांदेयं) बेटा पोता को भी वाप दादा का ऋण देना चाहिये–तिसके उद्धार न करने में उपपातक लगने से प्रायश्चित्त करना होता है–तथा (जायमानोवैब्राह्मण) इत्यादि ऋचा में वैदिक ऋण भी तीनि भाँति के देव ऋषि पितर इनके निमित्त देने होतेहैं तिनके उद्धार न करनेसेभी प्रायश्चित्ती होता है–इन सबके लिये वेही प्रायश्चित्तहैं जो २६५दोसौ पैंसठिमूलश्लोक में सामान्य भाव सभी उपपातकों पर चारभाँति के दर्शाइचुके उनमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त कर्ता की शक्तिके अनुरूप करानाचाहिये–उनके सिवाय मनुने और प्रायश्चित्त भी कहा है=यथा=इष्टिंवैश्वानरींचैवनिर्वपेद-ब्दपर्यये लुप्तानांपशुसोमानांनिष्कृत्यर्थमसंभवे=अर्थात्–लोप हुये देव यज्ञों के असंभव दशा म एक वर्ष वीति जाने पर निष्कृति प्राप्त होने के लिये वैश्वानरी यज्ञ कोविस्तारै–इतिऋणानांप्रायश्चित्तं॥ ० ॥ अथअनाहिताग्नित्वप्रायश्चित्तं–अनाहिताग्निता भी एक उपपातक है जिसका स्वरूप २३४ मूलश्लोक में वर्णन होचुका–उसके लिये भी वही चारों प्रायश्चित्त हैं जो २६५ मूल श्लोक में दर्शाए गये–परन्तु यहां यह नियमहै कि जिसके कुलमें अग्निस्थापना का अधिकारचला

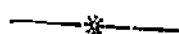
आता है ऐसा पुरुष यदि किसी आपत्काल के हेतुसे एकवर्ष भर अग्नि का यजन पूजन न करसके सो उस वर्ष के उपरांत उन्हीं चारो प्रायश्चित्त में से कोई एक प्रायश्चित्त अपनी शक्ति के अनुसार साधे जो एक महीना में होना लिखिचुके हैं= किन्तु जिसके कोई प्रबल आपदा नहींथी अच्छे भलेमें एक वर्षभर अग्निका पूजन बन्द कियाहो तिसको मनुका कहा मैंमासिक प्रायश्चित्त करना चाहिये-यदाह मनुः (एतदेवव्रतङ्कुर्युरुपपातकिनोद्विजाः अवकीर्णिवर्जेशुद्ध्यर्थंचांद्रायणमथापिवा) इसकाअर्थ दोतीपैंसदिकी अग्निकोक्रमेंदेखो वहां तीनिमहीने लिखिचुकेहै ॥ कदाचित कोई वर्षके भीतरही प्रायश्चित्तकियाचाहै तिसकेलिये कार्ष्णा जिन मुनिका वचनहै=यथाह कार्ष्णाजिनि =कालेत्वाधायकर्माणिकुर्याद्विप्रोविधानतः तदकुर्वन्त्रिरात्रेणमासिमासिविशुद्ध्यति-अनाहिताग्नोपित्रादौयस्तमारा सुतोयदि सहिव्रात्येन पशुनायजेत्तन्निष्क्रयायतु=अर्थात-ब्राह्मण किसी समयपर कर्मोंको स्थापन करिके साधे यदि उन्ही कर्मोंका नियमछूटिजाय तौ हरएकमहीनापीछे तीनदिनकाव्रतकरने से शुद्धहोताहै अर्थात यदि एकमहीना कर्म छूटिजाय तौ तीनदिनका व्रतचाहिये दो महीनापर छौदिन इत्यादि क्रमसे-दूसरा यहनियमहै कि जिसकेपिता और जेठेभ्राता या दादा आदि कोई अग्नि की स्थापना बिना जीते बैठे हो ऐसा पुत्र जो अग्निका स्थापन यजन करना चाहै तौ उन बड़ो के पराभव दोषका भागीहोकर प्रायश्चित्ती होताहै तथापि ऐसे उत्तम कामको प्रवृत्त करना आवश्यकहै किजिसको बड़ पुरुषो ने मेटि दिया था तिससे इस दोषकी शुद्धि के लिये व्रात्यपशु नाम का वेदोक्त यज्ञ करिके तब आरम्भ करै इस व्यवस्थाका अन्यर्थ यहभीहै कि जिसके जेठेभाई पिता आदि मरचुकेहै सो ऐसा यज्ञ किये विनाही अग्निका स्थापन कर सकैगा=उन्हीं कार्ष्णा जिन मुनिने एकाग्नि पुरुष के मध्येभी विशेषता कहीहै=यथा=कृतदारोगृहेज्येष्ठोयोऽनादध्यादुपासनम् चांद्रायणचरेद्वर्षप्रतिमासमहोपिवा=अर्थात-जिसघर में जेठा पुरुष विवाहिता स्त्री सहित हो जिसके केवल वैवाहिक अग्नि होती है सो यदि उपासन अग्नि की नहीं स्थापै न उसकी उपासना करै सो प्रत्येक वर्ष पीछे एक महीना चान्द्रायण किया करै यद्वा प्रत्येक महीना पीछे एक दिवस निराहार उपवास किया करै तब शुद्धि होय-इत्यनाहिताग्निप्रायश्चित्त ॥ ० ॥ अथअपण्य विक्रयप्रायश्चित्त-जिन चीजो का बेचना शास्त्र से निषिद्ध है तिनको बेचै सो अपण्य विक्रय नाम उपपातक से संयुक्त होता है यह २३४ मूल श्लोक में कहिचुके तिसके प्रायश्चित्त यद्यपि सामान्य भाव से वही पाये जाते हैं जो २६५ मूलश्लोक

में चार प्रकार वर्णन होचुके तथापि स्मृत्यंतरमें विशेषताके साथ प्रायश्चित कहा है=यथाहारीतः=गुड तिल पुष्प मूल फल पक्वान्न विक्रये सोमपानं सोमकृच्छ्रः—लाक्षा लवण मधु मांस तैल क्षीरदधिघृतगंधतक्रचर्मवाससामान्यतमविक्रयेचांद्रायणं—तथा ऊर्णाकेश केशर भूधेनु वेश्माश्मशस्त्र विक्रयेचभक्तमांस- स्नाय्वस्थिशृंग नखशुक्ति विक्रये तप्तकृच्छ्रः—हिंगुगुग्गुलहरितालमनः शिलांजनगैरिकक्षारलवणमणिमुक्ता प्रवालवैणववेणुमृन्मयेषुचतप्तकृच्छ्रः—आराम तडागोदपानपुष्करिणी सुकृतविक्रये त्रिषवणस्नाय्यधःशायी चतुर्थकालाहारीदशसहस्रजपनसंवत्सरेणपूतोभवति हीनमानोन्मानसंकरसंकीर्णविक्रयेचेति—अर्थात्—गुड• तिल• फूल• कन्दमूल• फल•पक्वान्न बेचने में सोमपान अर्थात् जल पीके सोमकृच्छ्र व्रतकरै तब शुद्ध होय—और• लाख• नमक• सहत•मांस•तेल•दूध•दही• घी•सुगन्ध• छाछि• चमड़ा• कपड़ा•इनमें कोई एक चीज बेचने वाला चांद्रायण करै—तथा• ऊन• बाल• केशर• धरती• गऊ• घर• पत्थर• हथियार• इनके बेचने और•रोटी भात आदि खाने चीजें• मांस• नसें तांति आदि• हाड़• सींग• नख• सीप घोंघी आदि• इनके बेचने वाला तप्तकृच्छ्र व्रत करै— और• हींग• गुगुल• हरिताल• मनसिल• सुरमा• गेरू• लाख• नमक• मणि• मोती• मूगा• बांस की बनी टोकरी आदि• बांस• मट्टी के बासन• इनका बेचने वाला भी तप्त कृच्छ्र व्रतकरै तब शुद्ध होय—और• बाग बगीची• तालाब• कुआ•कमल आदि सहित पक्का जलाशय• अपना किया हुआ कोई सुकृत पुण्य• सुकर्म आदि•इनका बेचने वाला यह प्रायश्चित्त करै कि सांझ सबेरे दुपहर तीनों काल में स्नान करते रहिकर धरती पर शयन करै सायकाल चौथे पहर भोजन करै और दस हजारमंत्र जपते हुये एक वर्ष पूराकरै तब शुद्ध होय और यही प्रायश्चित्त उसको करानाचाहिये जो घटिया बांटों से बेचै या बांट पूरे होने में भी तराजू की झोंक से घटि बेचै या घटिया मोल वस्तु उत्तम वस्तु में मिला कर बेचै या और जिन्स की चीज दूसरी चीज में मिलावै जैसे घी तेल का मिलाना आदि=इस प्रकार और भी शंख विष्णु आदि के कहे वचनों से युक्त प्रायश्चित्त की विशेषता से कहा है—तहां साधारण उपपातकों पर जो जो प्रायश्चित्त २६५ मूल श्लोक से कहे गये उनकी भी पहुँच यहां अपण्य विक्रयपर होतीहै तिससे यहडौल समझि लेना कि जिसने आपत्काल के हेतुसे अपण्य विक्रय किया हो तिसके लिये उसी २६५ मूल श्लोक से दर्शाये चार भांति के योगीचर वाले प्रायश्चित्तों में कोई एक चुनिकर कर्ताको शक्ति के अनुसार कराना चाहिये परन्तु जिसने अनापत्काल अच्छी दशा में अपण्य विक्रय

कि याहो तिसको उसी अविकोक्ति के प्रारम्भ में मनुका कहा तीनि महीने वाला प्रायश्चित्त देना ॥ २६५ ॥

इसी मूल श्लोक के टीका से यह व्यवस्था चली आतीहै जिसके कई परिच्छेद होचुके और आगे भी अनेक होयँगे ॥ २६५ ॥

अथ परिवेत्तृ परिवित्त्यादीना मुपपातकिनां भृतकाध्यापकादीनांच प्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः अष्ट चत्वारिंशः ४८



इस परिच्छेद में परिवेत्ता और परिवित्ति आदि कई उपपातकियों के प्रायश्चित्त कहे जायँगे जो सबके सब एकही परिवेदन कर्म्म के सम्बन्ध से पापी होते हैं जिस परिवेदन का स्वरूप २३४ मूल श्लोकमें कहिचुके हैं—और इन्हीं के प्रसंग से अग्रेदिधिषू दिधिषू आदि सगी बहिनोंके विवाहकी व्यवस्थाआवैगी कि उनके पति और वे बहिनें भी उपपातक से युक्त होकर प्रायश्चित्त के भागी सब होते हैं= और सबसे पीछे भृतकाध्यापक आदि उपपातकियों के प्रायश्चित्त कहेजायँगे कि जो मजूरी लेकर वेद पढ़ावें या देकर पढ़ें ॥

(परिवेदनप्रायश्चित्तं)

परिवेदन एक उपपातक है जिसका स्वरूप २३४ मूल श्लोक में आचुकाहै उस का करने वाला परिवेत्ता कहाता है तिसका विशेष प्रायश्चित्त वशिष्ठ जीने कहा है=यथा=परिविविदानः कृच्छ्राति कृच्छ्रौचरित्वातांतस्मै दत्वापुनर्निविशेत तांचैवोपयच्छेतेति=अर्थात्—परिविविदान छोटा भ्राता जो जेठे का विवाह विनाहुयेही अपने लिये किसी कन्या का फलदान सगाई आदि स्वीकार करै यद्वा किसी प्रकार से कोई कन्या कहींसे अपना विवाह करने के निमित्त से लावै तो यहपरिवेत्ता कहाता है इसको परिवेदन रूपी दोष लगता है कि जेठे का अपमान किया तिससे यह कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र नामक दोनों व्रत करिके वह कन्या उस जेठे को देकर फिर विवाह करै (अर्थात् जैसे ब्रह्म चारी भिक्षा माँगि लाता है उसका धर्म

यही है कि गुरुका अपमान मिटाने के लिये गुरु के आगे लाकर धरता है कि यह भिक्षा आपके लिये लाया हूँ तहां गुरुका यह धर्म है कि उसी को आज्ञा देता है कि लेजाकर भोगो तैसेही) उस अपनी लाई कन्या को जेठे भ्राताके समर्पणकरै कि यह तुम्हारे विवाह के लिये लायाहूँ तहां यदि जेठा उसी को आज्ञादेवै तब उसकन्या से विवाह करै–यह तो केवल वररक्षा फलदान आदि करदेनेका प्रायश्चित्त कहा–परन्तु जिसने सब सवियाँ विवाह भी करडाला हो तिनके प्रायश्चित्त बड़ेबड़े हैं सो आगे हारीत आदि के वचनोंसे देखो=हारीत ने ऐसा कहा है कि=ज्येष्ठेऽनिविष्टेकनीयान्निवशमानः परिवेत्ताभवति परिवित्तिर्ज्येष्ठः परिवेदनीकन्या परिदायीदाता परियष्टायाजकः तेसर्वेपतिताः संवत्सरं प्राजापत्येनकृच्छ्रे णपावयेयुः=एवंशंखोपि=परिवित्तिःपरिवेत्ता चसंवत्सरंब्राह्मणगृहेषुभैक्ष्यंचरेयाताम (तदुभयमपिकामकारेणकन्यापित्राद्यनुज्ञातोद्वाहविषयं प्रायश्चित्तस्यगुरुत्वात्)=अर्थात्–जेठे के विवाहे विना छोटा विवाह करै सो परिवेत्ता होता है और जेठा परिवित्ति कहाता है कि उसका अपमान हुआ और वह कन्या परिवेदनी कहाती है कि उसके हेतु से दोनों भ्राता दोषी हुये और कन्या का दान करने वाला परिदायी कहाताहै कि उसीने तीनों को दोषी किया और ब्याह कराने वाला पण्डित परियष्टा कहाता है कि उसने इतने दोषियों को यजन कराया ये सभी लोग पतित होते हैं यदि एक वर्षमात्र का प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत जुदेजुदे साधैं तब शुद्धहोयँ=ऐसेही शंखनेभी कहा है कि=परिवित्ति और परिवेत्ता दोनों एक वर्ष भर ब्राह्मणों के घर भीख मांगि पेट भरा करैं तब शुद्ध होयँ (सो यह दोनों के वचन वाले प्रायश्चित्त उस दशा पर समझने कि जहां कन्या के पिता आदि का लुभाया यद्वा अपने पिता की आज्ञा दियाहुआ छोटा भ्राता कामना से विवाह निपट करचुका हो क्योंकि प्रायश्चित्त के बड़ापन से यही तात्पर्य है=यहां तक जो लिखा गया सो तो ज्ञानमान और स्वाधीन वर की व्यवस्था है=अन्यथा=जो अज्ञान वर पिता आदि के अधीन रहिते पिता आदिकी दीहुई कन्या साथ कामना से विवाह करचुका तिसको २६५ की अधिकोक्ति में लिखे मनु के वचनसे तीनि महीनेका प्रायश्चित्त चाहिये और पिता पण्डित आदि पर वेही व्रत आरूढ होंगे जो ऊपर की व्यवस्था में लिखचुके–और–जिस वर ने इन बातों का बोध न होने में निपट अज्ञानता से विवाह अपना किया चाहै पिता के आधीन रहिते या अपने ही स्वाधीन कियाहो तिसको २६५ मूल श्लोक में योगीश्वर के कहे चारि प्रायश्चित्तों में कोई एक दशा और शक्ति के अनुसार क-

रना चाहिये और ऊपर इसी परिच्छेद में वशिष्ठ के वचन से कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दो प्रायश्चित्त जो कहिचुके तिन में भी इसका अधिकार से चाहैं उन्हीं को विकल्प से करै (पर दोनों एक साथही करने कहे हैं केवल एक नहीं) सो इस अज्ञान वर को एकही करना चाहिये और कन्या को वर से आधा व्रत कराया जाय=इसी अज्ञानताके मुआमिले पर यमने सबके लिये सुगमता करी है=यदाह यमः=कृच्छ्रोद्योःपरिवेद्येकन्यायाःकृच्छ्रएवच अतिकृच्छ्रं चरेद्दाताहोताचांद्रायणंचरेत्=अर्थात्–परिवित्ति और परिवेत्ता इन दोनों को परिवेदन की दशा में क्रम से कृच्छ्र और अति कृच्छ्र करने चाहिये तथा कन्या को भी कृच्छ्र व्रत करना चाहिये कन्यादान करने वाला अति कृच्छ्र करै और होता जिसने फेरे करवाये सो पण्डित चांद्रायण व्रत करै (जैसी यह छोटे बड़े भाइयों की व्यवस्था कही तैसे बड़ी छोटी बहिनों के विवाह पीछे आगे होजाने में भी उपपातक होता है तिसके प्रायश्चित्त आगे की व्यवस्था में देखो॥ ०॥ अथान्येषामपि प्रायश्चित्त मिदमेव–इस परिच्छेद में यहां तक जोजो कुछ प्रायश्चित्त कहेगये सो औरों परभी समान भाव समझिलेना जो पर्य्या हिताग्नि आदि कई एक उपपातकी और होते हैं क्योंकि इन सबका प्रायश्चित्त एकही साथ कहा भी गयाहै कि जैसा आगे गौतम के वचन में देखना=यदाहगौतमः=परिवित्ति परिवेत्,पर्याहित,पर्याधात,अग्रेदिधिषु, दिधिषूपतीनां,संवत्सरंप्राकृतब्रह्मचर्य्यमिति=अर्थात्–परिवित्ति और परिवेत्ता वेही कि जिनके लक्षण ऊपर कहिचुके और पर्याहित वह जेठा भाई कि जिसके अग्नि स्थापना न होते हुये छोटा भाई अग्निस्थापन करि बैठे और पर्याधात यही छोटा भ्राता है कि जिसने जेठे भाई के न होते अग्निस्थापन करलिया और अग्रेदिधिषू आदि तीनों के लक्षण आगे मनु के वचन से कहेंगे तब देखना तिन सबके उपपातकों का प्रायश्चित्त एक वर्ष भरि प्राकृत ब्रह्मचर्य्य गौतम ने कहा (इन सबको एक साथ कहे जाने से समानता ठहिरी इसी हेतु जिन प्रायश्चित्तों को ऊपर कहिचुके तिनकोप-हुंच इनमें भी होसक्ती है) उनके सिवाय जो प्रायश्चित्त अब आगे कहे जायँ तिनको भी समझना जैसा कि अग्रेदिधिषूपति आदि का प्रायश्चित्त वशिष्ठ जीने कहा है=यथा=अग्रेदिधिषूपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत तांचैवोपयच्छेत दिधिषूपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौचरित्वातस्मैदत्त्वा पुनर्निविशेतेति (अग्रेदिधिष्वादेर्लक्षणं स्मृत्यंतरेऽभिहितंयथा–ज्येष्ठायांयद्यनूढायां कन्यायामूह्यतेऽनुजायासाग्रेदिधिषूर्ज्ञेयापूर्वातुदिधिषूःस्मृतेति) तत्राग्रेदिधिषूपतिः प्राजापत्यंकृत्वा तामेवज्येष्ठांपश्चाद-

न्येनोढामुद्वहेत• दिधिषूपतिस्तुकृच्छ्रातिकृच्छ्रौकृत्वातोढांज्येष्ठांकनीयस्याःपूर्ववि प्रेन्द्रेदत्वान्यामुद्वहेदिति मिताक्षराकाराः=अर्थात–वशिष्ठ ने यह कहा कि अग्रे दि-धिषूपति बारह दिन का कृच्छ्रव्रत करिके विवाह करे और उसको भी अपने पास लाकर स्वीकार करे• तथा दिधिषू का पतिभी कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र दोनो करिके उसके लिये दीहुई को फिर विवाहे (इस बात के मध्ये अग्रे दिधिषू आदि का ल-क्षण भी मनुस्मृति में कहा है यथा–यदि जेठी कन्या के विवाह विना जो छोटी बहिन विवाहिली जाय वही छोटी अग्रे दिधिषू नाम जानों और पहिली जो विना विवाही रही जेठी सो दिधिषू कहाती है(तहां मिताक्षराकार यह व्यवस्था दर्शाते हैं कि अग्रे दिधिषू का पति जिसने छोटी को विवाहि के अपने ऊपर दोष लिया सो प्राजापत्य करिके उसी जेठी बहिन को जो पीछे किसी औरने स्वीकार करी हो तिसे विवाहि लेवे• और दिधिषू का पति भी कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों व्रत करिके अपनी स्वीकार करी जेठी छोटी के पहिले विप्रेन्द्रको देके और कन्या विवाहे यह मिताक्षराकारों का कथन है=इस व्यवस्था में ऊपर की संस्कृत जो वशिष्ठ के वचन से लेकर लिखिचुके उसी के अनुरूप अर्थ लिखे गये–परन्तु बहुधा विज्ञानी इसके समझने में भ्रांति खड़ी करेंगे तिससे फिरभी निर्णय करना परा–तहां ऐसा समझि लेना कि यद्यपि अग्रे दिधिषू पति को कृच्छ्र व्रत करना कहा तथापि इसको कृ-च्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों व्रत चाहिये क्योंकि अधिक दोषी यही है और दिधिषूपतिके लिये जो दोनों व्रत कहे तिस के लिये एक कृच्छ्रही चाहिये क्योंकि उसमें दोष थोड़ाहै और यही न्यायकी रीति है (अन्यथा संस्कृत व्यवस्थामें नहीं कहि सकते कि लेखक प्रमाद से वैपरीत्य हुआ हो या किस हेतु से) इसके सिवाय ऊपरली व्यवस्था को ऐसी दशापर समझना कि जब किसीने पहिले छोटी बहिन से सगाई मात्र करीहो और उसकेबादि किसी दूसरेने बड़ी बहिनसे सगाईमात्र करीहो किन्तु विवाह किसीका न हुआहो क्योंकि विवाहके होजानेपीछे विवाही कन्या किसी दूसरे को देना यह लोक शास्त्र दोनों से विरुद्ध है और ऊपर की व्यवस्था में दूसरे को देना लिखा गया है–तहां खुलासा अर्थ इसरीतिसे लगाना कि अग्रेदिधिषूपति वही है जिसने जेठी बहिन की सगाई हुये विना छोटी बहिन से सगाई करी तिस को अपने उपपातक पर कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों प्रायश्चित्त करने बादि पहिले वह जेठी बहिन भी विवाहिलेनी चाहिये जो दिधिषू होजानेके दोषसे किसीने स्वीकार न करी हो या स्वीकार किये पीछे यह दशा सुनिके सगाई छोड़िदी गई हो–इसी

रना चाहिये और ऊपर इसी परिच्छेद में वशिष्ठ के वचन से कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दो प्रायश्चित्त जो कहिचुके तिन में भी इसका अधिकार से चाहें उन्हीं को विकल्प से करे (पर दोनों एक साथही करने कहे हैं केवल एक नहीं) सो इस अज्ञान वर को एकही करना चाहिये और कन्या को वर से आधा व्रत कराया जाय=इसी अज्ञानता के मुआमिले पर यमने सबके लिये सुगमता करी है=यदाह यमः=कृच्छ्रोढ योःपरिवेत्रेकन्याया.कृच्छ्रएवच अतिकृच्छ्रं चरेद्दाताहोताचांद्रायणंचरेत=अर्थात्–परिवित्ति और परिवेत्ता इन दोनों को परिवेदन की दशा में क्रम से कृच्छ्र और अति कृच्छ्र करने चाहिये तथा कन्या को भी कृच्छ्र व्रत करना चाहिये कन्यादान करने वाला अति कृच्छ्र करे और होता जिसने फेरे करवाये सो पण्डित चांद्रायण व्रत करे (जैसी यह छोटे बड़े भाइयों की व्यवस्था कही तैसे बड़ी छोटी बहिनों के विवाह पीछे आगे होजाने में भी उपपातक होता है तिसके प्रायश्चित्त आगे की व्यवस्था में देखो॥ ०॥ अथान्येषामपि प्रायश्चित्त मिदमेव–इस परिच्छेद में यहां तक जोजो कुछ प्रायश्चित्त कहेगये सो औरों परभी समान भाव समझलेना जो पर्याहितामि आदि कई एक उपपातकी और होते हैं क्योंकि इन सबका प्रायश्चित्त एकही साथ कहा भी गयाहै कि जैसा आगे गौतम के वचन में देखना=यदाहगौतमः=परिवित्ति परिवेत्,पर्याहित,पर्याधात्,अग्रे दिधिषु, दिधिषूपतीनां,संवत्सरंप्राकृतब्रह्मचर्य मिति=अर्थात्–परिवित्ति और परिवेत्ता वेही कि जिनके लक्षण ऊपर कहिचुके और पर्याहित वह जेठा भाई कि जिसके अग्नि स्थापना न होते हुये छोटा भाई अग्निस्थापन करि बैठे और पर्याधात् यही छोटा भ्राता है कि जिसने जेठे भाई के न होते अग्निस्थापन करलिया और अग्रेदिधिषू आदि तीनों के लक्षण आगे मनु के वचन से कहेंगे तब देखना तिन सबके उपपातकों का प्रायश्चित्त एक वर्ष भरि प्राकृत ब्रह्मचर्य गौतम ने कहा (इन सबको एक साथ कहे जाने से समानता दरिशे इसी हेतु जिन प्रायश्चित्तों को ऊपर कहिचुके तिनकोपहुँच इनमें भी होसक्ती है) उनके सिवाय जो प्रायश्चित्त अब आगे कहे जायँ तिनको भी समझना जैसा कि अग्रेदिधिषूपति आदि का प्रायश्चित्त वशिष्ठ जीने कहा है=यथा=अग्रेदिधिषूपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत् तांचैवोपयच्छेत दिधिषूपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौचरित्वातस्मैदत्त्वा पुनर्निविशेतेति (अग्रेदिधिष्वादेर्लक्षणस्मृत्यन्तरेऽभिहितयथा–ज्येष्ठायांयद्यनूढायां कन्यायामूह्यतेऽनुजायासाग्रे दिधिषूर्ज्ञेयापूर्वातुदिधिषू स्मृतेति) तत्राग्रे दिधिषूपतिः प्राजापत्यंकृत्वा तामेवज्येष्ठांपश्चाद्-

अथपारदार्योपपातकप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः एकोनपंचाशत्तमः ४९ ॥

इस परिच्छेदमें उसभाँतिके परस्त्री गमन पापोंका प्रायश्चित्त भेदकहा जायगा कि जो उपपातकों में गिनती है अर्थात उन स्त्रियोंकाचर्चा इसमें नहींहै जिनकेलक्षरा पहिले महापातकों में अगम्या गमनके रूप से वर्णनहुयेथे॥ यहां इस परदारा गमनके अनेकभेद कहेजायँगे तिन सबके जुदे प्रायश्चित्तभी दर्शाये जायँगे॥

(परस्त्रीगमनप्रायश्चित्तं)

पराईदारा भोगकरना उपपातक होताहै जिसका स्वरूप लक्षरा२३५मूलश्लोक में आचुकाहै और इसीसे सामान्य उपपातकों वाला तीनि मासका प्रायश्चित्त जो २६५की अविकोक्ति में मनुके वचन से आया था सो भी इसपर पहुँचता और उसी २६५ के मूलश्लोक में चारप्रकार प्रायश्चित्त योगीश्वर ने कहेथे उनकी भी पहुंच इसपर होसक्ती परन्तु गुरुदारागमन और उसके समान पचीसवें परिच्छेदमें भी इस का अपवाद कहाजाचुका है=तथैव अन्यत्र भी गौतम आदि ऋषियों ने विशेष पारदार्य के द्वारा भी अपवाद कहाहै (तिससे उन छोटे प्रायश्चित्तों की पहुँच इसपर नहींहै)=अत्राहगौतमः=द्वेपरदारेश्रोत्रियस्येति=तथावार्षिकंप्राकृतंब्रह्मचर्यं प्रस्तुत्यतेनैवेदमभिहितं=उपपातकेषुचैवमिति=अत्रेयंव्यवस्था (ऋतुकालेकामतोजातिमात्रब्राह्मणीगमनेवार्षिकप्राकृतब्रह्मचर्यं—तस्मिन्नेवकालेकर्मसाधनत्वात द्विगुणाश्लाघ्यब्राह्मणयागमनेद्वैवर्षं प्राकृतब्रह्मचर्यं—तादृश्यायेवश्रोत्रियभार्यायागमनेत्रीणिवर्षाणिप्राकृतब्रह्मचर्यं (यदाश्रोत्रियपत्न्यांगुणवत्यांब्राह्मण्यांत्रैवार्षिकं) तदातादृग्विधायामेवक्षत्रियायांद्वैवार्षिकं तादृश्यामेववैश्यायांवार्षिकमितिव्यवस्था इति मिताक्षराकाराः=अर्थात—गौतमने यह कहा कि—दोवर्ष पराईदारामें तीनि श्रोत्रिय को दारामें=तथा पहिले वार्षिक प्राकृत ब्रह्मचर्यको प्रधान कहकर उन्हीं गौतम ने यह कहा कि=इसीतरह उपपातकों में भी वार्षिक ब्रह्मचर्य होय=इसके ऊपर मिताक्षराकार व्यवस्था नियत करतेहैं कि=मासिक ऋतुकाल में कामकी चाहना से

प्रकार वह जेठी वहिन जो दिधिषू ठहेर गई तिसके साथ जिस किसीने धोखे से व्याह करली हो तिसको अपने उपपातक पर यह करना चाहिये कि प्रथम तो कृच्छ्र व्रत प्राजापत्य को आचरे फिर उस जेठी बहिन दिधिषू की सगाई छोड़ि छोटी का विवाह न होने से पहिले उसी को देनी चाहिये जिसने पहिले छोटी से सगाई करी अथवा यह बालक न वनिपरे तो किसी ज्ञानी विप्रेंद्र को देकर आप किसी और निर्दोषा कन्या से विवाह करै (परन्तु किसी विप्रेंद्रको देना यह मिताक्षरा-कारों का लेख है अर्थात् वशिष्ठ के वचन से यह चर्चा नहीं है) इतिपरिवेदनप्रायश्चित्तं ॥ आगे इसी परिच्छेद में अन्य उपपातकों का प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥ ० ॥ अथ भृतकाध्यापकभृताध्यापितयोः प्रायश्चित्तं–इन दोनों का लक्षण २३५ मूल श्लोक में कहिचुके हैं=प्रायश्चित्तं यदाह विष्णुः=(पयसा ब्रह्म सुवर्चलांपिवेदित्यभिकृत्यविष्णुनोक्तं–भृतकाध्यापनंकृत्वाभृताध्यापितकस्तथा अनुयोगप्रदानेनत्रीन्पक्षान्नियतःपिवेत्=अर्थात्–विष्णुने किसी प्रायश्चित्तमें दूधसे ब्रह्मसुवर्चलाका पीना पहिले कहिकर पीछे वही प्रकार इनके मध्येभी कहाहै कि–मजूरी देने लेने आदि अनुयोग के प्रदान से विद्या पढ़िकर या पढ़ाइ के दोनों पुरुष उपपातकी होते हैं सो तीन तीन पाखतक नियत व्रत होके दूध में औटी हुई ब्रह्मसुवर्चलापीवें तब शुद्ध होयँ=इसीलिये=मनु के प्रमाण से स्मृत्यंतर में कहाहै कि (दत्तानुयोगानश्येतुःपतितान्मनुरब्रवीत्) पढ़ने वाले से मजूरी आदि अनुयोग जिनको दिये जायँ तिनको मनु जी पतित कहिचुके हैं=यहां भी इस व्रत के साथ पूर्वोक्त व्रतों को मिलाकर कर्त्ताओंकी शक्ति आदिकी अपेक्षासे यथोचित विकल्प सोचिलेना चाहिये यह मिताक्षरा कारोंने कहा ॥ २६५ ॥

इसी मूल श्लोकसे पाठ अबतक चला आताहै ॥ २६५ ॥

(इति भृतकाध्यापक प्रायश्चित्तं)

——*——

विधानादेकस्यामेव गमनाभ्यासेनेदंप्रायश्चित्तं किन्तुप्रतिगमनंपादपादन्यूनंकल्प्यं) एतत्सर्वंकामकारविषयं=अर्थात्-आपस्तंबने कहाहै कि जो कोईपुरुष अपने सवर्ण पुरुष की सवर्णाभार्या (जो पहिले किसीकी भार्या न होचुकी हो अर्थात् उसीकी विवाहिता हो तिस) में एकहीवार यदि संगमकरै तो बारहवर्षवाले अगम्यागमनके प्रायश्चित्तकी एकचौथाई तीनिवर्ष प्रायश्चित्त उसपर लगताहै इसीक्रमसे बारबार के अभ्यास में एकएक पाद बढ़ताजाताहै कि दो रात्रिके संगम से आधा प्रायश्चित्त और तीनि रात्रि के संगम से तीनि पाद चौथी रात्रि के संगमसे सभी बारहवर्षों का पूरा प्रायश्चित्त चाहिये (यह आपस्तंबका प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्त गौतम के कहे तीनिवर्षोंकी बराबरहै क्योंकि गौतमने तीनि वर्ष केवल एकबारके संगमपर कहेहैं और यहाँ अन्यन्य पूर्विकाके बारबार गमन करनेमें बारहवर्ष कहेगये) अकामकृतगमनप्रायश्चित्तं-यहसब जोकुछ यहांतक प्रायश्चित्तकहेगये सोकामकी इच्छा से संगम करनेमध्ये समझने=परन्तु जहां कहीं=कामकी चाहना बिना किसी धोखे आदिसे उसीप्रकारकी स्त्रियोंमें संगम होगया हो जैसाजैसा ऋतुकाल आदि लक्षण ऊपर कहिचुके तहाँ वेही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त सब अपनेअपनेमौकेपर आधेआधे कियेजायँगे ॥०॥ ऋतुकालंविनागमने-जहां कहीं ऋतुकालके बिना संगमकिया जाय तिसकी व्यवस्था अब कहते हैं कि=जब कोई ब्राह्मण किसी जातिमात्र की ब्राह्मणीमें ऋतुकालके बिना कामकी इच्छासाथ गमन करै तब मनुका कहा तीनि महीनेवाला प्रायश्चित्त करायाजाय जो२६५दोसौपैंसठिकी अधिकोक्ति में लिखि चुकेतहां देखो ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना किसी ब्राह्मणकी क्षत्रिया विवाहिता यावैश्या विवाहिता भार्या जो सामान्य जातिमात्रसे प्रसिद्धहो पतिव्रतआदि किसी गुणसे युक्त न हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण कामकी चाहनासे बिगड़ै सो उन्हीं मनु का कहा दोमहीना चांद्रायण और वैश्याकी अपेक्षासे एक महीना चांद्रायणकरै॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई क्षत्री किसी गैर क्षत्रीकी विवाहिता क्षत्राणी या बनेनी भार्यामें कामकी चाहनासे बिगड़ै सो क्षत्राणी की अपेक्षा दोमहीना चांद्रायण और बनेनीकी अपेक्षा एक महीना चांद्रायण करै तथा शूद्रा में बिगड़ने मध्ये इससे आधा समझिलेना ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई वैश्य किसी गैर वैश्य की विवाहिता बनेनीमें कामकी इच्छासे बिगड़ै सोदोमहीने चांद्रायणकरै जो वैश्य की विवाहिता शूद्रामें बिगड़ै सो एकमहीना चांद्रायणकरै॥ ० ॥ अगम्यकामकृतगमने-जहां कहीं इन्हीं सब स्त्रियोंमें येही उक्त पुरुष काम की इच्छा बिना कि-

जो कोईब्राह्मणमात्र किसी जातिमात्र ब्राह्मणीसे गमनकरै तो एकवर्षभरका प्राकृत ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त कराया जाय—और उसी ऋतुकाल में गर्भरूप कर्मका साधन होसकने से दोगुणवाली स्त्री ठहिरतीहै ऐसी दोगुणवाली ब्राह्मणीसे गमन करने में दो वर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्य कराना चाहिये—तैसेही लक्षणवाली श्रोत्रिय की भार्या साथ गमन करने में तीनिवर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्य कराना चाहिये (जब श्रोत्रिय की पत्नी ब्राह्मणी गुणवती में गमन करनेसे तीनिवर्ष प्रायश्चित्त ठहिरा) तो इसीहेतुसे वैसे लक्षणवाली ब्राह्मण की पत्नी क्षत्राणी गमन करने में दोवर्षका प्रायश्चित्त चाहिये और उसी लक्षणवाली ब्राह्मणकीपत्नी बनेनी गमन करनेमें एकवर्षचाहिये यह मिताक्षराकारों ने व्यवस्था कही फिर कहते हैं कि—इसी न्यायके समान दृष्टि देनेसे ब्राह्मणकी शूद्रामें भी गमनकरनेसे छेमहीनेका प्राकृत ब्रह्मचर्य कल्पनाकरना चाहिये—इसी न्यायके अनुसार शंखने भी चारौवर्णा की स्त्रियां ब्राह्मण की विवाहिता कहिकर वर्ण क्रमसे प्रायश्चित्त में कमी दर्शाई है—यथाहशंखः—वैश्यायामवकीर्णःसंवत्सरंब्रह्मचर्यंचियवर्णांचानुत्तिष्ठेत् सत्रियायांद्वेवर्षेत्रीणिब्राह्मण्यां(वैश्यायांशूद्रायांब्राह्मणापरिणीतायामितिवर्णक्रमेणह्रासोदर्शितः—अर्थात्—बनेनी से बिगड़ा हुआ ब्राह्मण वर्षएकभरब्रह्मचर्यसाधै और त्रिकाल स्नानकियाकरै सत्रियामेंबिगड़ा हुआ दोवर्ष ब्रह्मचर्यकरै ब्राह्मणी में बिगड़ाहुआ तीनिवर्ष करै॰और ये बनेनी या शूद्रा आदि जो कही सो किसी ब्राह्मणकी विवाहिता हों उन्हींका यह चर्चाहै अर्थात् जो वर्णबेढारी ब्राह्मणके घरमें तिनका प्रायश्चित्त कहीं आगेकहाजायगा—इसी न्यायके आधीन—कोई क्षत्री किसी सत्रीकी विवाहिता सत्रिया या बनेनी या शूद्रा जो वैसेही पूर्वोक्त ऋतुकाल आदि लक्षणों वाली हों तिनमें बिगड़े सो वर्णक्रम से दोवर्ष या एकवर्ष या छमाही भर प्राकृत ब्रह्मचर्यसाधै तब शुद्ध होय—इसी प्रकार—कोई वैश्य किसी वैश्य की विवाहिता बनेनी या शूद्रा जो पूर्वोक्त लक्षणों वालीहों तिनमें बिगड़ै सो वर्ण क्रमसे एकवर्ष या एक छमाही ब्रह्मचर्यकरै तब शुद्ध होय—इसीप्रकार—कोई शूद्र किसी गैर शूद्रकी विवाहिता शूद्री भार्यामें बिगड़े सो छमाहीभर ब्रह्मचर्य साधै—गोतमके वचनसे लेकर यहां तक जो कुछ नियम कहेगये सो सब केवल एकबार पराई भार्या में बिगड़ने मध्ये समझना यही तात्पर्य अगिले आपस्तंबके वचनसे पायाजाताहै तिसको देखो—यथाहापस्तंबः—सवर्णायामनन्यपूर्वायांसकृत्संनिपातेपादःपतत्येवमभ्यासेपादःपादश्चतुर्थेसर्वमिति (एतदपिगोतमीयत्रिवार्षिकेणसमानविषयं अनन्यपूर्विकायांचतुरभ्यासे द्वादशवार्षिक प्रायश्चित्त

विधानादेकस्यामेव गमनाभ्यासेनेदंप्रायश्चित्तं किन्तुप्रतिगमनंपादपादन्यूनंकल्प्यं) एतत्सर्वंकामकारविषयं=अर्थात्-आपस्तंबने कहाहै कि जो कोईपुरुष अपने सवर्णा पुरुष की सवर्णाभार्या (जो पहिले किसीकी भार्या न होचुकी हो अर्थात् उसीकी विवाहिता हो तिस) में एकहीवार यदि संगमकरै तो बारहवर्षवाले अगम्यागमनके प्रायश्चित्तकी एकचौथाई तीनिवर्ष प्रायश्चित्त उसपर लगताहै इसीक्रमसे बारबार के अभ्यास में एकएक पाद बढ़ताजाताहै कि दो रात्रिके संगम से आधा प्रायश्चित्त और तीनि रात्रि के संगम से तीनि पाद चौथी रात्रि के संगमसे सभी बारहवर्षों का पूरा प्रायश्चित्त चाहिये (यह आपस्तंबका प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्त गौतम के कहे तीनिवर्षोंकी बराबरहै क्योंकि गौतमने तीनि वर्ष केवल एकवारके संगमपर कहेहैं और यहां अन्यन्य पूर्विकाके बारबार गमन करनेमें बारहवर्ष कहेगये) अकामकृतगमनप्रायश्चित्तं-यहसब जोकुछ यहांतक प्रायश्चित्तकहेगये सोकामकी इच्छा से संगम करनेमध्ये समझने=परन्तु जहां कहीं=कामकी चाहना विना किसी धोखे आदिसे उसीप्रकारकी स्त्रियोंमें संगम होगया हो जैसाजैसा ऋतुकाल आदि लक्षण ऊपर कहिचुके तहां वेही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त सब अपनेअपनेमौकेपर आधेआधे कियेजायँगे ॥०॥ ऋतुकालंविनागमने-जहां कहीं ऋतुकालके विना संगमकिया जाय तिसकी व्यवस्था अब कहते हैं कि=जब कोई ब्राह्मण किसी जातिमात्र को ब्राह्मणीमें ऋतुकालके विना कामकी इच्छासाथ गमन करै तब मनुका कहा तीनि महीनेवाला प्रायश्चित्त करायाजाय जो२६५दोसौपैंसठिकी अधिकोक्ति में लिखि चुकेतहां देखो ॥ इसीतरह ऋतुकालके विना किसी ब्राह्मणकी क्षत्रिया विवाहिता यावैश्या विवाहिता भार्या जो सामान्य जातिमात्रसे प्रसिद्धहो पतिव्रतआदि किसी गुणसे युक्त न हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण कामकी चाहनासे बिगड़ै सो उन्हीं मनु का कहा दोमहीना चांद्रायण और वैश्याकी अपेक्षासे एक महीना चांद्रायणकरै॥ इसीतरह ऋतुकालके विना कोई क्षत्री किसी गैर क्षत्रीकी विवाहिता क्षत्राणी या वनेनी भार्यामें कामकी चाहनासे बिगड़ै सो क्षत्राणी की अपेक्षा दोमहीना चांद्रायण और वनेनीकी अपेक्षा एक महीना चांद्रायण करै तथा शूद्रा में बिगड़ने मध्ये इससे आधा समझिलेना ॥ इसीतरह ऋतुकालके विना कोई वैश्य किसी गैर वैश्य की विवाहिता वनेनीमें कामकी इच्छासे बिगड़ै सोदोमहीने चांद्रायणकरै जो वैश्य की विवाहिता शूद्रामें बिगड़ै सो एकमहीना चांद्रायणकरै ॥ ० ॥ अथान्यकामकृतगमने-जहां कहीं इन्हीं सब स्त्रियोंमें येही उक्त पुरुष काम की इच्छा विना कि-

सो धोखेआदि हेतुसे गमन करिदेवे हों तहां ऊर्ध्वोक्त तीनमहीने आदि प्रायश्चित्तों के स्थानपर इनके वदले यथाक्रमसे जो जो प्रायश्चित्त इनसे छोटेहोने चाहिये तिनका स्वरूप (२६३ । २६४) मूलश्लोकों में कहिचुके हैं परन्तु यहां उनका क्रम इसरीतिसे लेना कि ग्यारहवां अंड्डूयक्ष दशांगऊवाला प्रायश्चित्त यहां के तीनि मासके स्थानपर लेना और यहां जिसको दोहीमासका प्रायश्चित्त कहागया हो तिसकेलिये इच्छाविना गमन करनेसम्बधे एकमहीना पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त ठहिराना और यहां जिसको एक महीनेका चान्द्रायण कहागया तिसकेलिये इच्छा विना गमन करनेके हेतुसे एक महीनेका प्राजापत्य ठहिराना=इनके सिवाय शूद्रा के गमनसम्बधे जो कामनासहितपर एकमहीना व्रत कहिचुके वही कामना से रहित भोगमें आधा करिके एकपाख ठहिराना चाहिये=इसी लिये संवर्त्तने ऐसा कहाहै कि=शूद्रयांतुब्राह्मणोगत्वामासंमासार्धमेववा गोमूत्रयावकाहारस्तिष्ठेत्तत्पापमुक्तये॰ इत्यकामतोऽर्धमासिकमित्यभिप्रेतं=अर्थात्–ब्राह्मण शूद्रीमें गमन करिके एकमहीना वा आधा महीनाभरगोमूत्रमें पकाया जौका दलिया खाकर व्रतकरै॰सो यह आधा महीना विना कामनाके भोगसम्बधे अभिप्राय सोचि के कहा है=और भी यह कहा है कि=ब्राह्मणश्चेदपेक्षापूर्वकंब्राह्मणदारानभिगच्छेन्निवृत्तधर्मकर्मणः कृच्छ्रोनिवृत्तधर्मकर्मणोति (कृच्छ्रइतितद्ब्राह्मणभार्यायांशूद्रायांद्रष्टव्यंद्विजातिस्त्रीषुचर्विप्रोढा सुविहित्त्वंव्यभिचारितासु अवुद्धिपूर्वगमनेवा=अर्थात्–यदि ब्राह्मण काम क्रीडा की अपेक्षा से चाहिकर किसी ऐसे ब्राह्मण की दारा में संगम करै जो धर्म्म कर्म्मों से विहीन हो और संगम करनेवाला ब्राह्मण भी धर्म कर्मों से विहीनहो तो इसदशा में कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत कराना चाहिये (सो यह दारा शब्द सामान्य होनेपर भी शूद्र जाति की दारा पर आरूढ समझना अर्थात् शूद्रजाती कन्या यदि ब्राह्मणको विवाही गईहो क्योंकि प्राजापत्य नामक प्रायश्चित्त के छोटापन से यहीबात पाई जातीहै दूसरे धर्म कर्मों से विहीन कहा तिससे भी यही बात सिद्ध होती है कि अपने जाती धर्मकर्म छोड़िके शूद्रा कन्यासे विवाह कियाहो तिस दारामें यदि कोई ओछा ब्राह्मण काम क्रीड़ा की अपेक्षा से गमनकरै तिसपर यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये) और (व्यभिचरितायांगमने) इसीवचन मे ब्राह्मणस्यदारान् दाराओंका वहुत्व कहाजानेसे दूसरा अर्थ यहभी सिद्ध होताहै कि (जिन ब्राह्मण के क्षत्रिया और वैश्या दारा विवाहिता हों या ब्राह्मणी दारा होय परन्तु वे सबदारा दो तीन वार तक व्यभिचारसे वदनाम होचुकी हों तिनमे यदि कोई धर्म्म कर्म्म से विहीन

ब्राह्मण काम क्रीड़ा की अपेक्षा से गमन करै तिसपर भी यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि दारायें यद्यपि ऊँचे वर्णों की कन्या ठहिरीं परन्तु व्यभिचार से बदनाम दो तीन बार होचुकीथीं तिससे बहुत बड़े प्रायश्चित्त की जरूरत भोगनेवाले पर नहीं रही और पूर्वोक्त शूद्रा भार्या यद्यपि नीच वर्ण की कन्या ठहिरी तथापि व्यभिचार से बदनाम नहीं थी इसलिये उसके भोग मध्ये इन्हीं तीनों को बराबर प्रायश्चित्त कहा) और भी इसी वचन में दाराओं का बहुत्व कहा जाने से तीसरा अर्थ यह भी सिद्ध होता है कि (तीनों ऊँचे वर्ण की कन्या जो ब्राह्मण की विवाहिता दारा हों और व्यभिचार की बदनामी भी उनमें जाहर नहो तिनमें कोईब्राह्मण विनाजाने या अपनी भार्याके धोखे आदि से सगम करै तिसपर भी यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि धर्म कर्म से विहीन पुरुष की भार्या उसको कहिचुके और भोगने वाला भी धर्म्म कर्म्म से विहीन कहागया था ॥ ० ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण की दाराओं मध्ये यदि कोई गैर ब्राह्मण विना जानेहु व्यभिचार करै तिसमे भी संवर्त ने दो भेद से प्रायश्चित्त कहा है=यथाह संवर्तः=विप्रास्त्वजानतागत्वाप्राजापत्यसमाचरेत्=अर्थात्–उत्तम गुणवान् ब्राह्मण की दाराओं में विना जाने गमनकरिके प्राजापत्य समाचरै (इस वचन में• समाचरेत्• इतने पदके दो तरह से अर्थ लगते हैं कि प्राजापत्य जो बारह दिनमें एक पूरा होता है तिसको सम्यक् अच्छी विधि से आचरै यह एक तरह का अर्थ ठहिरा–दूसरा अर्थ ऐसाहै कि प्राजापत्य नामक जोव्रत हैं बारह दिनवाला तिसको समा चरेत् एक वर्ष भर निरन्तर आचरै क्योंकि समा संज्ञा एक वर्ष की होती है सो इस दो भाँति का यह भेद है कि जहां गुणवान् ब्राह्मण की भार्या व्यभिचारिणी हो तिसमें विनाजाने जो सगमकरै सो केवल एकही प्राजापत्य करिके शुद्ध होजाय• जहां उसी गुणवान् ब्राह्मण की भार्या निष्कलंक हो तिसमें विना जाने यदि कोई गैर ब्राह्मण संगम करै सो निरन्तर एक वर्ष भर अनेक प्राजापत्यकरै तब शुद्धहोय॥०॥ रानी सन्यासिनिआदि अनेक उत्तमस्त्रियां जिनका गमन करनेवालेकी इन्द्री कटवाना पहिलेकहिचुके २३२ दोसौ बत्तीस की अधिकोक्ति में नारद के वचन देखो अथवा इन्द्री कटवाने विनाभी बारहवर्ष आदि केबड़े बड़े प्रायश्चित्त उसको ऐसी दशापर आरूढहोचुके हैं कि जहां उन स्त्रियोंने आपही पुरुष को उत्साह देकर मोहित किया हो• उन्हीं स्त्रियों के भोग मध्ये यहां पर बहुत छोटा सा प्रायश्चित्त यमने कहा सो अब लिखते हैं तिसका यह कारण है कि वहां तो कलंक से रहित अतिशय शुद्ध स्त्रियों का चर्चा था और यहांपर

कोटा प्रायश्चित्त इसलिये है कि यदि वेही स्त्रियां पहिले व्यभिचार भी करचुकी और बदनाम हों तिनको यदि कोई पुरुष कामकी चाहना से भोगै यद्वा काम की चाहना विना उन्हीं स्त्रियों ने उत्साह देकर फाँसलिया हो तो यह एक उपपातक है तिसपर यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये किन्तु इन्ही कारवाला आदि कुछ नहीं= यथाह यमः=राज्ञींप्रव्रजितांवात्रींसाध्वींवर्णोत्तमामपि कृच्छ्रद्वयंप्रकुर्वीतसगोत्रामभिगम्यच=अर्थात्-रानी• संन्यासिनि आदि साधिनी• धात्री धाइ जिसने अपने को दूध पिलाकर पाला हो• साध्वी जो नेम धरम आदि से संयुक्त हो वर्णोत्तमा जोअपने से ऊँचे वर्ण की स्त्रीहो• सगोत्रा जो अपने गोत्र भर में दूर नाते की हो• इनके पास जाइके दो कृच्छ्र प्राजापत्य करनेचाहिये (केवल उसीदशामें कि यदि स्त्रियाँपहिले से व्यभिचार में प्रसिद्ध हों और पुरुष ने किसी धोखा आदि अज्ञानतामें संगम एक वार कियाहो अन्यथा इसके बड़े बड़े प्रायश्चित्तहैं जैसा अनन्तर अभी लिखिचुके सो देखो॥ ० ॥ ऊपर के पाठ में यह चर्चा आचुका है कि (ये सब दारा दो तीन वार तक व्यभिचार से बदनाम होचुकी हों) तहां यही तात्पर्य था कि चौथीवार जिन के व्यभिचार की बदनामी न सुनीहो तिनके मध्ये तद्योक्त प्रायश्चित्त है-अन्यथा जो चौथीवार किन्तु चौथे पुरुष से बदनाम हुईहो वह स्वैरिणी और पांचवें से बन्धकी आदि होजाती है (चतुर्थैस्वैरिणीप्रोक्तापंचमेबंधकीमता) फिर चाहैं किसी कुलकी हो इसका नियम नहीं रहिता=स्वैरिण्यादिपुगमने-ऐसी स्त्रियोंमें यदि कोई ब्राह्मण जाके बिगड़ै तो फिर तद्योक्त से थोड़ा प्रायश्चित्त चाहिये=यथा हर्षांवः=स्वैरिण्यांवृषल्यामवकीर्णःसचैलंस्नात्वोदकुंभंदद्याद्ब्राह्मणाय वैश्यायांचचतुर्थकालाहारो ब्राह्मणान्भोजयेद्यवसभारंचगोभ्योदद्यात् क्षत्रियायांत्रिरात्रोपोषितो घृतपात्रंदद्यात् ब्राह्मण्यांषड्रात्रोपोषितोगांदद्यात् गोष्ववकीर्णःप्राजापत्यंचरेत् अनु- लिखिचुके तैसे कुलक्षणा वाली वृषली अर्थात् शूद्रकी भार्या जो कोई ऐसीहो तिस में जो कोई ब्राह्मण जाकर एक वार बिगड़ै सो वस्त्रों सहित स्नान करिके जल का भरा घट ब्राह्मण को दान करै यही प्रायश्चित्त है• एवं जो बनेनी कोई स्वैरिणी प्रसिद्ध हो तिसमें जाकर एक वार ब्राह्मण बिगड़ै सो एक दिन का व्रत करिके चौथे काल संध्यासे पहिले थोड़ा भोजन करै दूसरे दिन यथाशक्ति संख्या से ब्राह्मणोंको भोजन करावै और शास्त्रोक्त परिमानसे एकभार घास लेकर गौओंकोदेवै• एवं क्षत्री की भार्या क्षत्राणी कोई स्वैरिणी प्रसिद्ध होय तिसमें कोई ब्राह्मण एक वार यदि

संगम करै सो तीनिदिन उपवास करिके घीका भरा पूर्णपात्र दान करै• एवं ब्राह्मणी जो स्वैरिणी प्रसिद्ध होय तिसमें कोई गैर ब्राह्मण एकबार संगम करै सो छैदिन उपवास करिके गऊदानकरै तब शुद्धहोय• एवं जो गौओंकेसाथ मैथुनकरै सो प्राजापत्य करै तब शुद्ध होय• एवं अनूढा कन्याचाहैं किसीवर्णकी होय जो विवाहके न होने से पिताके घर में रहिते रजोवती होकर पीछे स्वैरिणी होगई हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण एकवार संगम करै सो एक भारके परिमाण से धान कोदों आदि का पयार गौओं को देकर सीसा लोहाभी दान करै तब शुद्ध होय यह शंख जीने कहा ॥ ० ॥ और इसी उक्त विषय पर षट्त्रिंशत मत के ग्रन्थ में भी ऐसा प्रायश्चित्त कहा है कि ब्राह्मणींबन्धकींगत्वाकिंचिद्दद्याद्द्विजातये राजन्यांचेद्धनुर्दद्याद्वैश्यांगत्वातुचैलकम शूद्रांगत्वातुवैविप्रउदकुंभंद्विजातये दिवसोपोषितोवास्याद्दद्याद्विप्रायभोजनम्= अर्थात्–बंधकीके कुलक्षण ऊपर कहिचुकेहैं कि चौथाछोडि पांचवेंपुरुषकेघरवैठै यद्वा पाँचवेंसेव्यभिचार करै सो बंधकी कहाती है–ऐसे कुलक्षणवाली कोईब्राह्मणी जो बंधकी प्रसिद्धहोय तिसमें यदि एकवार कोई गैरब्राह्मण जाकर विगड़ै सो कुछ एक दान ब्राह्मणको देकर शुद्ध होसक्ता है• एवं क्षत्राणी जो क्षत्रीकी भार्य्या बंधकी होय तिसमें एकवार कोईब्राह्मण जाकेविगड़ै सो एकधनुष दानकरै• एववैश्यानी जो वैश्यकीभार्या बंधकीहोय तिसमें कोईब्राह्मण एकबारजाके विगड़ै सो एक वस्त्रदान करै• एवं शूद्रा जो शूद्रकी भार्या कोई बंधकी होय तिसमें कोई ब्राह्मण एक बार जाके विगड़ै सो जलका भरा घट ब्राह्मणको दानकरै अथवा एकदिन उपासकरिके ब्राह्मणको जिमाइ देवै तौ शुद्ध होजाय (यद्यपि इस व्यवस्था में पहिली शंख मुनि की व्यवस्थासे कुछ भेद भी प्रतीत होताहै परन्तु दोनोंका विकल्प समझि लेना कि प्रायश्चित्ती पुरुषकी दशाके अनुसार दो बातोंमें जो एक सम्भव होय सो करवाना चाहिये ॥ ० ॥ अथगर्भधारण प्रायश्चित्त (अनुलोमव्यवायेगर्भे द्विगुणंयदिसा अतिदूषितान प्रतिलोमगानभवति तदैव–अन्यजाति गमनमात्रेपि द्वैगुण्यं) अर्थात्– उसी मैथुनका चर्चा है जो अनुलोम रास्तेसे होय किन्तु नीचे वर्णकी स्त्रियोंमें ऊँचे वर्णके पुरुष या समान वर्ण के स्त्री पुरुष दोनों व्यभिचार करैं तिनका जो कुछ प्रायश्चित्त जिस क्रमसे पहिले कहिचुकहैं वही सब अपने अपने स्थलपर यहां आकर दूने किये जायँगे यदि मैथुन से गर्भ धारण भी होगया हो• परन्तु यह नियम केवल उन्हीं स्त्रियोंका समझना जो अति दूषित बहुत बदनाम नहीं और प्रतिलोम पुरुषोंसे व्यभिचार जिनका न हुआहो (प्रतिलोमका व्यभिचार वही कहाता है जो

नीचे वर्णोंके पुरुषों से ऊँचे वर्ण की स्त्रियां करें) इसी प्रकार गर्भ रहिने विना भी पूर्वोक्त प्रायश्चित्त दूने कियेजाते हैं जो अन्य जातिमें व्यभिचार मात्र होय अर्थात पहिले जो जो कुछ प्रायश्चित्त जिस वर्णके पुरुषको जिस वर्ण की स्त्री साथ गमन करने मध्ये कहिचुके हैं वही दूना उस दशामें करना होगा जो उसी वर्ण का पुरुष उक्त स्त्रीके वर्णसे भी नीचे वर्णकी स्त्री साथ व्यभिचार करै यद्वा ऐसे वर्णके समान कोई अन्य जाति ऐसीहो जो वर्णोंमें उपराल होय ॥ ० ॥ प्रतिलोमदूषितास्वपिगर्भधारणे=प्रतिलोमदूषितासु अंत्यावसायिस्त्रीषुच चांडालीगर्भेयथागुरुतल्पव्रतं तथा किंचिन्न्यूनंतारतम्यकल्प्यं–चांडालीगमनेवार्षिकं तद्गर्भेगुरुतल्पव्रतंवैवज्ञेयं (इदं प्रायश्चित्तजातंगर्भानुत्पत्तिविषयं=अर्थात–द्विजातियोंकी स्त्रियां जो प्रतिलोम नीचे वर्णों से बिगडी हों तिनमें यदि कोई समान वर्ण वाला पुरुष या उनसे ऊँचे वर्ण वाला पुरुष ऋतुकालमें संगम करिके गर्भधारणकरै अथवा साक्षात्कार अंत्यावसायी जो चंडाल आदि होतेहैं तिनकी स्त्रियोंके ऋतुकाल में संगम करिके किसी वर्णका पुरुष अपने बीजसे गर्भधारण करै तो इन दोनों दशा में वह प्रायश्चित्त विचारना चाहिये कि जैसे चांडाली में गर्भधारण करने से गुरुतल्प रूपी महा पाप दूर करने वाला व्रत होताहै तैसा तरतमके अनुसार कुछ न्यून प्रायश्चित्त होय–तिनका यह दौलहै कि चांडाली में संगम करने मात्रसे एक वर्षवाला व्रत कराना और चांडाली में गर्भ जमि जाने से साक्षात गुरुतल्प रूपी पाप समझना तथापि प्रायश्चित्त उससे कुछ घटाइकर देना चाहिये जो गुरुतल्पके ऊपर व्रतरूपी कहागया हो प्राणत्याग रूपी नहीं (गर्भके मध्ये जो कुछ प्रायश्चित्त यहां तक लिखा गया सो सब केवल उसी दशापर आरूढ है कि यदि गर्भ रहिकर पैदा न होवै किन्तु पैदा होजानेमध्ये आगे देखो ॥ ० ॥ गर्भस्यजननविषये गर्भके उत्पन्न होजाने में उससे भी दूना प्रायश्चित्त चाहिये जो कुछ गर्भके जमने मध्ये ठीकहोय=तदाह विज्ञानेश्वराचार्यः=तदुत्पत्तौतु यदिष्येण यत्प्रायश्चित्तमुक्तं तदेवतत्र द्विगुणंकुर्यात (गमनेतव्रतंयत्स्यादगर्भेतत द्विगुणंचरेदित्युशनसःस्मरणात=अर्थात–इस परिच्छेदके प्रारंभ से लेकर जो जो कुछ प्रायश्चित्त जिस वर्णके स्त्री पुरुषोंका व्यभिचार होने मध्ये लिखि चुके हों उन्हींके गर्भ रहिजाने पर वेही प्रायश्चित्त दूनी तादाद से करने कहे और वेही प्रायश्चित्त उन्हीं स्त्री पुरुषोंके गर्भका जन्म होजाने पर उससे भी दूने करवानेहोंगे अर्थात व्यभिचारकी तादादसे चौगुने करने होंगे क्योंकि उशनामुनिका यह वचन है कि (जितना व्रत संगम करने पर कहाहो उसीको गर्भके जमिजाने पर दूनाकरै)

इसी न्यायसे यह नियम ठहिरा कि गर्भका जन्म होजाने पर उसी को चतुर्गुणा करें ॥ ० ॥ शूद्रिनिके गर्भ उपजाने मध्ये चतुर्विंशतिमत ग्रन्थमें कुछ और भी विशेषता वर्णन हुई है=यथा=वृषल्यामभिजातस्तुत्रीणि वर्षाणि चतुर्थकालसमयेनक्तभुंजीतेति=अर्थात–वृषली जो शूद्रिनी है तिससे ऊँचे वर्णका पुरुष जो अपने वीज से गर्भ रूप होके जन्म धरे सो तीनि वर्ष भर सदा राति में चौथे काल के समय पर अर्थात डेढपहर राति गये पीछे आधीरातके भीतर भोजनका एकवार नियम राखै तो शुद्ध होजाता है=और=जो मनु का यह वचन है कि (शूद्रांशयनमारोप्यब्राह्मणोजात्यधोगतिम जनयित्वासुतंतस्यां ब्राह्मणयादेवहीयते) अर्थात–शूद्रा को अपनी सेजपर सोवाइके ब्राह्मणअधोगतिको पहुँचता है और उसमें निपट सतान पैदा करवाइ के निपट ब्राह्मणत्वके लक्षणसेही मिटिजाताहै) सो यह मनुका वचन कुछ प्रायश्चित्त की बढाई छुटाईके निमित्त पर नहींहै केवल पापकी बढाई जाहर करनेके निमित्त पर आरूढ है• क्योंकि निपट ब्राह्मणपनेसे नहीं जाता रहिता किन्तु प्रायश्चित्तसे शुद्ध होकर ब्राह्मण वना रहिता है जो आगेको फिर कभीऐसा न करै–और यहभी याद राखना कि,इस वचनमें उसका चर्चा नहींहै जो कोई ब्राह्मण किसी शूद्रकी कुमारी कन्यासे अपना विवाह करिके घर वसावै या सन्तान पैदा करावै या सेज पर सोवावै क्योंकि वह एक निंद्य विवाहोंका धर्ममार्ग जुदाहै उसमें कुछ प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं परती• तिससे यहां केवल वह शूद्रा समझिलेनी जो किसी शूद्रकी विवाहिता भार्याहो तिससे गर्भ धरने आदिका यह प्रायश्चित्त है क्योंकि यह परिच्छेदही पराई भार्या गमन करने मध्ये वर्णन होरहा है इसी से पारदार्य पाप के प्रायश्चित्त इनका नाम है ॥ यहां तक पारदार्य्य के जो कुछ प्रायश्चित्त कहेगये सो सब अनुलोम व्यभिचार मध्ये कहेगये हैं कि नीचे वर्ण की स्त्री और ऊचे वर्ण के पुरुष हों यद्वा दोनों एकही वर्ण के हों अब आगे प्रतिलोम मैथुन की चर्चा होगी ॥ ० ॥ अथप्रतिलोमव्यवायेप्रायश्चित्त–ऊँचेवर्णकी स्त्रियों में यदि नीचे वर्णवाले कोईपुरुष व्यभिचारकरैं तहां सर्वत्र वधरूपी प्रायश्चित्तहै व्रतरूपीनहीं=तथाचवचन=प्रातिलोम्येवधःपंसोनार्याः कर्णादिकर्त्तनम=अर्थात–विपरीत वर्णों के व्यभिचार में पुरुषका वधकरना प्रायश्चित्तहै और स्त्रीके नाक कान आदि उत्तम अंग काटना=इसकेमध्ये=वृद्धप्रचेताका जो वचन आगे लिखतेहैं तिसमे कुछभेदहै=यथाहवृद्धप्रचेताः=शूद्रस्यब्राह्मणींमोहाद्गच्छतःशुद्धिमिच्छतः पूर्णमेतद्व्रतंदेयमाता यस्माद्धितस्यसा पादहान्याऽन्यवर्णासुगच्छतः सार्ववर्णिकमितद्वादशवर्षाणितदेश

कं तस्यभार्याभिगत्याभिगच्छतोवेदितव्यं मोहादितिविशेषणोपादानादितिमिताक्षराकाराः=अर्थात्–शूद्रपुरुष जो ब्राह्मणी में मोह (अज्ञान) से गमन करै सो अपनी शुद्धि चाहे तौ यही सार्व वर्णिक जो बारहवर्षका व्रत पहिले कहागया पूरा पूरा उसको देनाचाहिये क्योंकि ब्राह्मणी उसकी माताकहातीहै-किन्तु माता में व्यभिचारउसने किया तिससे•इसीप्रकार ठकुरानी या बनेनी आदि किसी और वर्णकी स्त्रीमेंव्यभिचार शूद्रनेकिया हो तौ वर्णक्रमसे एकएक पाद घटाकर प्रायश्चित्तकरै (यहइस वचनमें जो वधको बचाइकर बारहवर्षवाले पूर्वोक्त व्रतका अतिदेश उतारा गया सो इसहेतुसे कि ब्राह्मणीको समझे बिना अपनी भार्याके धोखेसे संगमकरि बैठाहो तिसको वधरूपी प्रायश्चित्त न देनाचाहिये क्योंकि मोहात यह अज्ञानता का बोधकशब्द भी श्लोकमें मौजूदहै तिससे ठकुरानी आदि औरोंमें भी अज्ञानतासे व्यभिचार करने मध्येयह प्रायश्चित्त समझना•अन्यथा इसप्रतिलोम व्यभिचारमें वधरूपी जो प्रायश्चित्त कहिचुके वही ठीकहै ॥ ० ॥ संवर्तनेअत्यन्तव्यभिचारिणी का प्रतिलोम प्रायश्चित्त कहा है=यथा=कथंचिद्ब्राह्मणींगच्छेत्क्षत्रियोवैश्यएववा कृच्छ्रंसांतपनंवास्यात्प्रायश्चित्तंविशुद्धये शूद्रस्तुब्राह्मणींगच्छेत्कथंचित्काममोहितःगोमूत्रयावकाहारोमासेनैकेनशुध्यति (इतितदत्यंतव्यभिचारिणीविषयं=अर्थात्–कदाचित् क्षत्री या वैश्य ब्राह्मणीसे गमनकरै सो क्षत्री अपनी शुद्धि के लिये कृच्छ्र प्राजापत्य करै और वैश्य अपनी शुद्धि चाहिकर कृच्छ्र सांतपन व्रतकरै•कदाचित् कोई शूद्र कामसे मोहित होकर ब्राह्मणी में संगमकरै सो एक महीनाभर गोमूत्रमें पकाया जौका दलिया खाय तब शुद्धहोय (सो यह अत्यंत व्यभिचारिणी जो प्रसिद्धहोय तिस ब्राह्मणीका चर्चा है•अन्यथा इस प्रतिलोम व्यभिचार में वधरूपी प्रायश्चित्त जो कहिचुके वही ठीक है ॥ अब आगे जो उत्तम जाती पुरुष अंत्यजा में संगम करैं तिनके प्रायश्चित्त देखो ॥ ० ॥ अंत्यजागमनप्रायश्चित्तं–वृद्धसंवर्तने अंत्यजाके संगमका भी प्रायश्चित्त कहाहै=यथा=रजकव्याधशैलूषवेणचर्मोपजीविनाम एतास्तुब्राह्मणोगत्वाचरेच्चांद्रायणद्वयम्) इतीदंब्राह्मणस्यकामतः सकृद्गमनविषयंक्षत्रियादीनांतुपादह्रीनंकल्प्यं=अमैवापस्तंबेनोक्तं (म्लेच्छीनटीचर्मकारीरजकीवरुडीतथा एतासुगमनंकृत्वाचरेच्चांद्रायणद्वयमिति)=अर्थात्–धोबीरँगरेजछीपी आदि• व्याध चिड़ीमार आदि• शैलूष नट नर्तक आदि नीच जातैं• वेण नामक अति नीची वर्णसंकर जातैं• चर्मोपजीवी चमार नीची खटीक आदि जो चमड़ा के काम से जीवन करैं• इनकी स्त्रियों में ब्राह्मण यदि एक बार गमन करै वह दो

मास के पूरे दो चान्द्रायण करै तब शुद्ध होय (जैसा यह ब्राह्मण को कामना से एक वार संगम करने मध्ये कहा तैसा क्षत्री आदि पुरुषों को एक एक पाद कम करिके विचारना चाहिये=इसी वार्ता के मध्ये आपस्तंवने भी कहाहै कि (म्लेच्छ देशों की और अत्यन्त नीच अपवित्र जातों की स्त्रियाँ म्लेच्छी कहाती हैं तिनमें और नटिनी चमारी रजकी वरुडी आदि महानीच जाति की स्त्रियां इनमें त्रैवर्णिक पुरुष गमन करिके दो चांद्रायण करै तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ अन्त्यजोंके स्वरूप भेद उन्हों बृहत्संवर्त ने कहे हैं=यथा=रजकश्चर्मकारश्च नटोवरुडएवच कैवर्तमेदभिल्लाश्चसप्तैतेऽन्त्यावसायिनः=रजक• चमार• नट• वरुड• कैवर्त• मेद• भिल्ल• येसात जातें अन्त्यावसायी अर्थात् अन्त्यज नाम से कहाती हैं इन्हींके संभोग मध्ये प्रायश्चित्त ऊपर कहे गये=इनके सिवाय=चण्डाल आदि और भी सात अन्त्यज इनसे भी अधिक नीच होते हैं तिनकी स्त्रियों के संभोग मध्ये वहुतवड़ा प्रायश्चित्तहै सो २६० की अधिकोक्ति में गुरुतल्प प्रायश्चित्त के साथ में कहिचुके तहां देखो–किन्तु–यहां पर लिखी हुई अंत्यजा स्त्रियों में जो एकही के मैथुन पर प्रायश्चित्त कहागयाहो सो इन सबही स्त्रियोंके मध्ये समझि लेना क्योंकि सब एकही साथ एक सी दर्शाई गई=इस वातका प्रमाण आगे उशनाका वचन है=यथा=वहूनामेकधर्माणामेकस्यापियदुच्यते सर्वेषांतद्भवेत्कार्यं मेकरूपाहितेस्मृताः=अर्थात्–वहुतसे ऐसे लोग जिनका एकहीसा वर्ताव या धर्महोय तिनमें किसी एकही के लिये जो कुछ कहाजाय वही कार्य उन सबके लिये होताहै क्योंकि सब एकही रूप हैं तिससे ॥०॥ चांडाल्यादिष्वकामकृतगमने अन्त्यजा भोगनेकी इच्छा न होतेहुये धोखाआदि से यदि कोई इनको भोगै तिसके मध्ये आपस्तंवने कहाहै=यथा=चंडालमेदश्वपचकपालव्रतचारिणाम् अकामतःस्त्रियोगत्वा पराकव्रतमाचरेत्=अर्थात्–चंडाल• मेद• श्वपच• कपाल व्रतचारी जो कपालका चिह्न पास राखनेका व्रत रखतेहैं कापालिक जाति उसका नामहै यहभी एक अंत्यजोंकी जाति विशेष होती है इनकी स्त्रियां जो हृदय की इच्छा विना एकवार भोगै सो पराक नाम व्रतकरै जो वारह दिन में पूरा होता है परन्तु यह भी नियम नहीं है कि पराक व्रत एकही आवृत्ति करै=संवर्त का यह वचन है कि=रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम् स्त्रियोविप्रोयदागच्छेत्कृच्छ्रंचांद्रायणंचरेत्=अर्थात्–रजक• व्याध• शैलूष• वेणु• वंसफोर की जीविका वाले• चमड़ाकी जीविका वाले इनकी स्त्रियोंमें यदि कोई ब्राह्मण एक वार गमन करै सो कृच्छ्र चांद्रायणका प्रायश्चित्त आचरै (यह वचन उसी दशापर आरूढ है

कि जैसा आपस्तंबका इच्छाके विना भोग होजाने सद्ये कहिचुके=जोकि शातातप का यह वचन है कि (कैवर्तीं रजकींचैववेणुचर्मोपजीविनीम् प्राजापत्यविधानेनकृच्छ्रेणैकेनशुद्ध्यतीति) अर्थात्—कैवर्त जो धीवर और जालवाले मछेहरे तथा मल्लाह कहाते हैं तिनकी स्त्री कैवर्ती॰ रजकी रंगरेजिन छीपिनि धोबिनि आदि॰ बाँस की जीविका करनेवाली बंसफोरिनि आदि॰ चमड़ाकी जीविका वाली चमारी मोचिनि आदि॰ इनमें व्यभिचार करनेवाला पुरुष प्राजापत्यके विधानसे एकही कृच्छ्रकरिके शुद्ध होताहै जो सिर्फ बारह दिन का प्रयोग है (इस वचन का यह तात्पर्य है कि वीर्य सींचनेसे पहिले जो फिरि परै तिस पर यह छोटा प्रायश्चित्त लगाया जाय= और जो=उशनाका यह वचन है कि=कापालिकान्नभोक्तृणांतन्नारीगामिनांतथा ज्ञानात्कृच्छ्राब्दमुद्दिष्टमज्ञानादैंदवंस्मृतम्॰ इतितदभ्यासविषयं=अर्थात्—कापालिक जातिका अन्न खानेवाले और उनकी स्त्रियोंमें संगम करनेवालोंको ज्ञानपूर्वक ऐसा करनेमें एकवर्ष भर कृच्छ्र व्रत करना कहा और विना जाने ऐसा करने पर चांद्रायण करना कहा॰ सो यह अभ्यासका विषय समझना कि जिसने बार बार ऐसा किया हो तिसके लिये यह बड़ा प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ चांडाली गर्भ प्रायश्चित्त जहाँ कहीं ऊर्ध्वोक्त चंडाली आदि स्त्रियों में संगम करनेसे गर्भ जमिजाय तहां बारह वर्षका प्रायश्चित्त है=यदाहोशनाः (चाण्डाल्यांगर्भमारोप्य गुरुतल्पव्रतंचरेत्) अर्थात्—चण्डाली आदि में गर्भधारण करिके गुरुतल्प रूपी महापातकवाला बारह वर्षका व्रतकरै तब शुद्धहोय=और जो=आपस्तंब का यह वचन है कि=अन्त्यजायां प्रसूतस्यनिष्कृतिर्नविधीयते निर्वासनंक्षतांकस्यतस्यकार्यमसंशयम (तदेतत्कामकार विषयं)=अर्थात्—अन्त्यजा नामक महाचाण्डाली (दृष्टांत भंगिनि आदि) में जोकोई चार वर्णोंका पुरुष अपने बीज से गर्भरूप होकर जन्म धरै तिसकी निष्कृति नहीं कराई जातीहै अर्थात् उसका प्रायश्चित्त कोई नहींहै कि जिसके करनेसे फिर भी अपनी जातिमें मिलिसकै॰ तिससे निःसन्देह उसका यही कार्यहै कि माथेपर कुकर्म की निशानी पक्की रीति से मजबूत दागदेकर निर्वासन रूपी दण्ड दियाजाय अर्थात् उनको देश निकाला देकर किसी ऐसे द्वीप (टापू) के वनमें वास करायाजाय जो प्रत्येक राज्योंके अधिकार में कोई एक दुर्गम भूभाग कालापानी आदि नामों से विख्यात होता और इसी निमित्त रहा आता है कि बहुत बड़े अपराधी लोग वहां छोड़दिये जायँ (सो यह आपस्तंब का वचन केवल उस दशा पर आवश्यक है कि जिसने काम की इच्छा से चांडाली को जानते हुये ऐसा किया हो अन्यथा जिसने

चांडालों को जाने बिना किसी और धोखा आदि से गर्भ धारण किया हो तिसके लिये ऊर्ध्वोक्त उशना के वचन से बारह वर्षका प्रायश्चित्त है कि जिसको साधन करिके फिर जाति में मिलि सक्ताहै ॥ ० ॥ अन्त्यजों के चौदह भेद पहिले लिखि चुके हैं उनमें सात जातें अभी ऊपर अन्त्यजागमन प्रायश्चित्त के पाठ में वृहत्संवर्त्त के वचनसे लिखी गई (रजकश्चर्मकारश्चनटोवरुडएवच कैवर्तमेदभिल्लाश्चसप्तैते अंत्यजाःस्मृताः इति यमस्तु) यही वचन यमका है कि जैसा वृहत्संवर्त का लिखि चुके तहां अर्थों सहित इसको देखो=और इनसेभी अधिक नीच सात जातें अंत्यजों की और हैं (चंडालःश्वपचःक्षत्तासूतोवैदेहकस्तथा मागधाऽऽयोगवौचैवसप्तैतेऽन्त्यावसायिनः इत्यंगिराः) यह मध्यम अंगिरा का वचन दोषी सादि की अधिकोक्तिमें आचुका तहां अर्थों सहित इसको देखो उन्हीं सात में चंडाल श्वपच आदि में भंगी भी एक प्रकार का अन्त्यावसायी जाति होता है॰ उन्हीं चंडाल आदि अन्त्यजोंकी स्त्रियों में गर्भ पैदा करने का यह चर्चा ऊपर लिखा गया कि जानते हुये तो कुछ प्रायश्चित्त नहीं केवल वनवास रूपी दण्डहै परन्तु अज्ञानता से उनके गर्भ धरने मध्ये बारह वर्षका प्रायश्चित्तहै वह दण्ड नहीं=यद्यपि अन्त्यावसायी सात भांतिके चंडाल और श्वपच आदि कहे गये तथापि अन्त्यावसायी एक जुदी जाति भी ख़ासकर इसी नामसे होता है जो मुर्दों के ऊपर का फेंका हुआ वस्त्र आदि लेनेकी आशासे श्मशानको बरपर सदा विचरता फिरताहै यहभी एक भंगियोंमें से भेदविशेष होता है-यथाह मनुः (निषादस्त्रीतुचंडालात्पुत्रमंत्यावसायिनं श्मशानगोचरंसूतेवाह्यानामपिगर्हितं) अर्थात्=निषाद जातिकी स्त्री चण्डाल के बीज से अन्त्यावसायी नामक पुत्र को उत्पन्न करती है जो अपना उदर भरने को चिताकी श्मशान धरती पर विचरता है ॥ ० ॥ यहां पर प्रसंग से यह बात दर्शाते हैं कि यद्यपि चारों वर्णों में शूद्रभी अन्त्यज कहाताहै तथापि यहां शूद्रवर्णका प्रसंग नहीं केवल अधमजातों का प्रसंग है और अन्त्यज वा अन्त्य जातिका अर्थभी सिद्धांत में यकड़ी होताहै कि जैसा अभी ऊपर सात भांति या चौदह भांतिके अन्त्यज वर्णन होचुके तहां देखो-उसी अन्त्या जाति का घरमें घुसि आना भी प्रतिषिद्ध है कि उस घर वाले ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और शूद्र कोभी प्रायश्चित्त करना कहा है=तथाच प्रायश्चित्ततत्वं=अंत्यजातिरविज्ञातोनिवसेद्यस्यवेश्मनिसवैज्ञात्वातुकालेनकुर्यात्तस्यविशोधनम् चांद्रायणंपराकोवाद्विजातीनांविशोधनम् प्राजापत्यंचशूद्राणांतथासंसर्गदूषणे येस्तत्रभुक्तं पक्वान्नंकृच्छ्रंतेषांविनिर्दिशेत् तेषामपिचयैर्भुक्तंतेषामर्द्धंविधीयते तेषामपिचयैर्भुक्तं

कृच्छ्रपादोविधीयते इति=अर्थात्–अन्त्याजाति चौदह भाँति में किसी प्रकार का मनुष्य जो विना जाना हुआ किसी अच्छी जाति के धोखें से जिसके घरमें टिके निवास करै सो घर वाला जब कुछ दिनों के बादि उसको अन्त्यजाति जानिपावै तभी जानिकर उस जगह को अच्छी तरह शोधै(कि जैसा आचार मर्यादा परिपाटी के द्रव्य शुद्धि नामक प्रकरण में भूशुद्धि का प्रकार वर्णन हुआ था उसी रीति से इस घर को शोधै) और काल के अनुसार शोधै अर्थात् जो चंडाल आदि थोडीदेर घुसिके उसी समय लौटि गया हो तबतो केवल उस प्रकार की लीपा पोती आदि शुद्धिकरै कि जैसा इसी प्रायश्चित्तकांड के तीसवें ३० मूल श्लोक और उसकी अ- विकोक्ति में चराडाल आदि अनेकोंके छुइजाने पर स्नान आदि क्रिया करिके शुद्ध हो जाना वर्णन होचुका है–परन्तु जो उस घरकी धरती में चराडाल आदि के घुसने से किसी प्रकार की मलीनता आदि चिह्न भी होगया हो(या चराडाल आदि बहुत दिन तक टिका हो तो फिर ३१ इकतीस मूल श्लोक वाली अविकोक्ति के विचार से और आचार कांड मे लिखी हुई पाँचप्रकार की भूशुद्धि के अनुसार कुछ सूतक- रूपी कालभी मानना और उन्हीं पांचप्रकारोंमे जो कोईसा प्रकार शोधनके योग्य समुझा जाय तिसका वर्तावाभी करना चाहिये–इतना शोधन करनेके उपरांत प्रा- यश्चित्त भी यह करना कहाहै कि ब्राह्मण का घरहो तो उसको चांद्रायण करना चाहिये जो क्षत्री अथवा वैश्यका घरहो तो क्षत्री को दो पराक और वैश्य को एक पराक व्रत करना चाहिये जो शूद्र का घरहो तो शूद्र को प्राजापत्य करना चाहिये और उसको भी प्राजापत्य करना चाहिये जो उस घरकी शुद्धिहुये विना किसीवर्ण का मनुष्य जाकर बैठा हो या घर वाले के साथ प्रायश्चित्त करने से पहिले कुछ संसर्ग मेल मिलाप किया हो और जिन मनुष्यों ने उस दूषित घरमे बैठि के पक्कान्न भोजन कियाहो उनको कृच्छ्र व्रत करना चाहिये और उन पक्कान्न खाने वालोंका भोजन और मनुष्योंने कियाहो तिनको आधा कृच्छ्र करना चाहिये और इन आधे वालों का अन्न जिन मनुष्योंने खाया हो तिनको चौथाई कृच्छ्र करना चाहिये॥ इसपर ध्यान देना चाहिये कि जब ऐसी छोटी दशापर इतना प्रायश्चित्त है तौफिर जिन मनुष्यों ने साक्षात् चराडालोंमे सगम करिके गर्भ धारण किया तिनको बारह वर्ष का प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो कुछ बड़ा नहीं है॥ ऊपर जो वर्णन होचुका उसमे चराडाल नामसे प्रायः कसाई आदि समझने और श्वपच नामसे प्रायः भंगीऔर मलीन कंजर आदि समझने जो कुत्ते कोभी मारि पकाय खाजाते हैं और अन्त्या-

वसायी नाम का अर्थ अभी अनन्तर लिखिचुके हैं कि वह श्मशानमें रहिकर मुर्दों का उतारन लिया करता है इत्यादि सब चौदह भेदों के लिंगार्थ लोक बर्ताव में प्रसिद्ध हैं सो समझि लेने ॥ अब आगे के परिच्छेद में स्त्रियों के प्रायश्चित्त कहे-जायँगे ॥ २६५ ॥ इसीमूलश्लोकवाले टीकासेयहपाठ अबतकचलाआताहै ॥२६५॥

अथस्त्रीणां परपुरुष व्यभिचारोपपातकप्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पंचाशनमः ५०

इस परिच्छेद में स्त्रियोंके प्रायश्चित्त कहे जायँगे कि जो स्त्रियाँ पराये पुरुषों के साथ व्यभिचार से उपपातक उत्पन्न करें सो किस रीति से शुद्ध होयँ॥

(व्यभिचरितस्त्रीषु प्रायश्चित्तं)

स्त्रीणामपिसवर्णानुलोमव्यवायेपुरुषस्योक्तं चिवार्यिकादि तदेवभवतीतिमिताक्षरा ॥

अर्थात् पहिले परिच्छेदमें जो प्रायश्चित्त परस्त्री संगमकेमध्येपुरुषोंकेलिये कहि चुकेहैं वहीतीनिवर्ष आदि के प्रायश्चित्त स्त्रियोंकोभी योग्यहैं परन्तु उन्हीं सूरतोंमें कि जैसा अपने वर्ण का संगम या अनुलोम सगम कहिचुके हैं कि ऊँचे वर्ण का पुरुष और नीचे वर्ण की स्त्री हो (यत्पुंसःपरदारेषुतच्चैनांचारयेद्व्रतमितिमनुः) यह मनुका वचन प्रमाण है कि जो कुछ प्रायश्चित्त पुरुष को पराई दाराओं में संगम करने का कहाहो वहीव्रत स्त्रीसे उसी सगम के दोष पर करावे यह मिताक्षराकार ने व्यवस्था कही ॥०॥ परन्तु जहां प्रतिलोम मार्ग से मैथुन हुआहोय कि ऊँचे वर्ण की स्त्री और नीचे वर्ण का पुरुष होय तहां प्रायश्चित्त में भेद है सो वशिष्ठ के वचन से देखो=यदाह वशिष्ठः=शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्वीरणैर्वेष्टयित्वाशूद्रमग्नौप्रास्येत ब्राह्मण्याःशिरसिवपनंकारयित्वासर्पिषाऽभ्यज्यनग्नांगौरखर मारोप्य महापथ मनुसंव्राजयेत्पूताभवतीति॰ वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेल्लोहित दर्भैर्वेष्टयित्वा वैश्यमग्नौप्रास्यब्राह्मण्याःशिरसिवपनं कारयित्वा सर्पिषाऽभ्यज्य गौरखरमारोप्य महापथ मनुसंव्राजयेत्पूताभवति॰ राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपर्णैर्वेष्टयित्वा राजन्यमग्नौप्रास्येत ब्राह्मण्याःशिरसिवपनंकारयित्वासर्पिषाऽभ्यज्यनग्नांगौरखर

मारोप्यमहापथ मनुसंव्राजयेत्पूताभवतीति विज्ञायत इति–एवं वैश्यो राजन्यां शूद्र श्चराजन्या वैश्ययोरिति (पूताभवतीति वचनाद्राजवीथि परिव्राजन मेवदंडरूपंप्रा यश्चित्तांतर निरपेक्षंशुद्धिसाधनमितिदर्शयति इति मिताक्षरा=अर्थात–वशिष्ठ जी कहिते हैं कि जहां शूद्र पुरुष ब्राह्मणी गमन करै तौ उसे फूस पतैल पतावरि से ल- पेटि बाँधिके शूद्र को प्रदीप्त बहुतसी अग्नि में छोड़ि देय और ब्राह्मणी का शिर मुड़ाइके सब देहमें घीलगाइके कपड़ों बिना नंगी करिकै गोरखर नाम जो पंजाबी गदहा प्रसिद्ध है तिसपर चढ़ाइ के महापथ राज मार्ग रूपी सड़कों पर घुमावै तौ पवित्र होती है• एवं वैश्य जो ब्राह्मणी गमन करै तिसको लाल कुश काश डाभ से लपेटि बांधिके उस वैश्य को अग्नि में छोड़िके ब्राह्मणीका शिर मुड़ाय घी लगाय नंगी करिके गोरखर पर चढ़ाइ राजमार्गों में घुमावै सो पवित्र होती है• एव क्षत्री जो ब्राह्मणी गमन करै तिसको शर पत्रों के सरपत्ते से लपेटि बाँधि जलती अग्नि में गिराइके ब्राह्मणी का मूड़ मुड़ाइ सब देह में घी लगाय नंगी गोरखर पर चढ़ाइके सड़कों पर घुमावै सो पवित्र होती है यह जाना गया–इसी प्रकार वैश्य जो क्षत्रा- णी में संगम करै या शूद्र क्षत्राणी और बनैनी में संगम करै तिनकी भी यही व्यव- स्था समझि लेनी (पवित्र होती है इस कथन से वशिष्ठ ने यह दर्शाया है कि राज मार्ग में घुमाना ही दंडरूप प्रायश्चित्त है किसी दूसरे प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं रही यह मिताक्षरा कार का विचार है) परन्तु महापथ संज्ञा केवल राज मार्गही की नहीं किन्तु हिमालय के उत्तर जाके स्वर्गारोहण नाम से जो मार्ग बद्रीनाथजी से आगे प्रसिद्ध है तिसको मुख्यता के साथ महापथ कहिते हैं (बल्कि राज मार्गों का नाम एक उपलक्षण से महापथ कहा गया है यह भेद जानों) तिससे गोरखर पर चढ़ाइ के उस पाला रूपी देश में जहां तक गोरखर के जासकने का मार्गमिलै तहांतक घुमाइ लावै तौ उस पवित्र भूमिपर भ्रमण करने से शुद्ध होसक्ती है यह व- शिष्ठ जी का तात्पर्य पायाजाता है• अन्यथा सड़कों पर घुमाने वाला अर्थ जो मिताक्षरा के अनुसार लिखागया सो यह लोक में गदहा पर चरिके हाँढाना प्रसिद्ध है इससे केवल पारलौकिक शुद्धि यद्यपि होसक्ती हो तौभी इस प्रकार से हँढाई हुई नारी को लोक में कोई उत्तम नर घर में लेलेना स्वीकार नहीं करसक्ता है तो फिर किस अर्थ को यह शुद्धि ठहिरी• अगर इसका उत्तर ऐसे दिया जाय कि स्व- र्गारोहण वाली शुद्धि भी प्रयोजन की साधक नहीं दिखाई देती है क्योंकि उस भूमि पर जाके कोई जीता नहीं लौटता बल्कि वेही लोग जाते हैं जो ईश्वर निमित्त अपना

देह छोड़ना चाहते हैं दृष्टान्त मवजूद है कि पांडवों ने जाकर उसी हिमालय पर अपने देह छोड़े हैं• तो इस उत्तर से भी इसी में जोति देखि परती है कि जिनको उस नारी का लौटिके घर में लेना स्वीकार होगा वे तहांतक लेजायँगे कि जहांतक पाला से देह नहीं गिरता है•अन्यथा जो लोग नारीका अपराध बहुत जानिके घरमें लेना नहीं चाहेंगे और यहभी नहीं चाहेंगे कि हँढाइ के त्यागी हुई फिरभी सर्वत्र कुकर्म ही करती फिरे वे अवश्यही पूरे महापथ में छोड़ि आवेंगे कि जैसे पांडव लोग स्वर्ग को गये तैसे यह नारीभी पापों से छुटिके स्वर्ग जायगी• इसी अर्थ से दोनों मुट्ठी में मोदक देखि परते हैं कदाचित् ऐसा अर्थ न होता तो फिर गोरखर पर चढाने की जगह केवल खर गदहा कहा जाता किन्तु गोरखर इसी हेतुसे बताया है कि बहुत चलिसक्ता और दढदेशों में जासक्ता है—और वशिष्ठने यह इतना कठिन प्रायश्चित्त जो कहा सो केवल कामना से चाहिकर व्यभिचार करने पर कहा है—क्योंकि इससे पहिले परिच्छेद में (प्रातिलोम्येवधःपुंसो नार्याःकर्णादिकर्तनं) यह वचन आचुका है कि प्रतिलोम व्यभिचार में पुरुष का बध किया जाय और नारी के कान आदि काटेजायँ और तात्पर्य इसका सर्वत्र यही समझे रहिना कि प्रतिलोम मैथुन जो कामना चाहिकर किया जाय तिसका प्रायश्चित्त कोई ऐसा नहींहै जिससे शुद्ध होकर स्त्री फिर घरमें आसके• सिर्फ उस दशा में शुद्ध होसक्ती है कि दैवगति से राज विग्रह आदि में फँसिकर बिगडी हो तिसके प्रायश्चित्त आगे सभीऋषीश्वर वर्णन करेंगे जैसा इसी जगह संवर्त का वचन देखो ॥ ० ॥ अथनिष्कामप्रतिलोम व्यभिचारस्य शुद्धिः=यदाह संवर्तः=ब्राह्मणयकामागच्छेच्चेत्क्षत्रियवैश्यमेववा गोमूत्रयावकैर्मासात्तथासार्द्धाद्विशुद्ध्यति (कामतस्तुद्विगुणाकर्तव्यं कामात्तद्विगुणंभवेदितिवचनादिति मिताक्षराकारास्तद्युक्तं=अर्थात्-ब्राह्मणी जो इच्छा के बिना दैव योग से क्षत्री या वैश्य में जाकर फँसे सो क्षत्री के मध्ये एक महीना भर गोमूत्र के रँधे जो भोजन करने से और वैश्य की अपेक्षा डेढ महीना जौ का दलिया गोमूत्र में रँधा खाकर व्रत राखने से शुद्ध होती है (मिताक्षराकार ने इस पर यह भी कहा है कि जो इच्छा से जाकर फँसी हो तो इससे दूना व्रत करै क्योंकि इच्छा सहित पापके मध्ये दूना करने का नियम शास्त्र में प्रसिद्ध है) सो यह दूने का नियम ठीक नहीं है इसका निर्णय आगे सकाम मैथुन के चर्चा में देखना ॥ ० ॥ यद्विशन् मत के ग्रंथ विशेष में ब्राह्मणी आदि सभी स्त्रियों के जुदे प्रायश्चित्त कहेहैं=यथा=ब्राह्मणीक्षत्रियवैश्य सेवायामतिकृच्छ्रकृच्छ्रातिकृच्छ्रौचरेत्•

क्षत्रिययोषिताब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायांकृच्छ्रार्द्धं प्राजापत्यमतिकृच्छ्रं• वैश्ययोषिताब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायां कृच्छ्रपादःकृच्छ्रार्द्धप्राजापत्यं• शूद्राया.शूद्रसेवनेप्राजापत्यं ब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायांत्वहोरात्रं त्रिरात्रं कृच्छ्रार्द्धमिति=अर्थात्–ब्राह्मणी यदि एक रात्रि भर क्षत्री या वैश्य की सेवामें जाफँसै तो क्षत्री के व्यभिचारमध्ये अतिकृच्छ्र व्रतकरै औरवैश्यके व्यभिचार बावत कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों भाँति के व्रत करै तब शुद्ध होय• एवं क्षत्री की योषिता यदि एक रात्रि भर ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्य की सेवा में जाफँसै तो ब्राह्मण के व्यभिचार मध्ये आधा कृच्छ्रकरै क्षत्री के व्यभिचार मध्ये प्राजापत्य पूरा करै वैश्य के व्यभिचार मध्ये अतिकृच्छ्र करै• एवं वैश्य की योषिता यदि एक रात्रि भर ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्य की सेवा में जाफँसै तो ब्राह्मण के व्यभिचार बावत कृच्छ्र की चौथाई प्रायश्चित्त करै क्षत्री के व्यभिचार बावत कृच्छ्र का आधा व्रत करै वैश्य के व्यभिचार बावत प्राजापत्य पूरा करै• एवं शूद्र की योषिता यदि एक रात्रि भर गैर शूद्र की सेवा में जाफँसै तो प्राजापत्यकरै और ब्राह्मण के व्यभिचार में जाफँसै तो एक दिन राति भर व्रत करै और क्षत्री की सेवा में जाफँसै तो तीन दिनका व्रत करै और वैश्यकी सेवा में जाफँसीहो तो आधा कृच्छ्र करै जो छः दिन में होसकैगा–इन प्रायश्चित्तों के छोटापन से प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि दैव योगसे क्षण मात्र फँसिजाने बावत ये प्रायश्चित्त हैं तिससे एक राति भर लिखि चुके सो ठीक नहीं ॥ ० ॥ शूद्रसंगमेपिक्वचित्शुद्धिरुक्ता=तदाह वृहत्प्रचेताः=विप्राशूद्रेणसंपृक्तानचेत्तस्मात्प्रसूयते प्रायश्चित्तंस्मृततस्याःकृच्छ्रं चांद्रायणत्रयम् (एतदनिच्छंत्यां स्वपतिभ्रांत्यावावेदितव्यमित्यत्राभिप्रायः) चांद्रायणेद्वेकृच्छ्रश्चविप्रायावैश्यसेवने कृच्छ्रचांद्रायणेस्यातांतस्याःक्षत्रियसंगमे–क्षत्रियाशूद्रसम्पर्केकृच्छ्रन्चांद्रायणद्वयम् चांद्रायणसकृच्छ्रन्तुचरेद्वैश्येनसंगता–शूद्रंगत्वाचरेद्वैश्याकृच्छ्रन्चांद्रायणोत्तरम्–आनुलोम्ये प्रकुर्वीतकृच्छ्रन्पादांतरोपितम्=अर्थात्–वृहत्प्रचेताने विरले क्रिया विहीन देशोंके आचार हीन तीनों वर्णों का हित सोचिके उनकी स्त्रियों की शुद्धि शूद्र के व्यभिचार में भी होती कही है कि–ब्राह्मणी जो शूद्र के साथ इच्छा बिना या अपने पतिके धोखे से फँसि जाय और उससे गर्भ यदि न रहिने पाया हो तौ इस दशा में उस ब्राह्मणी के लिये प्रायश्चित्त कहा है कि कृच्छ्रात्मक तीनि चांद्रायण करै•इसी प्रकार जो वैश्यकी सेवा में जाफँसी हो तिसको दो चांद्रायण और उनके बादि एक कृच्छ्र भी करना चाहिये• इसीप्रकार जो क्षत्रीके संगमें जाफँसीहो तिसको कृच्छ्रात्मकदोचांद्रायण

करने चाहिये—ऐसेही जो क्षत्री की भार्या किसी शूद्र के संपर्क में जाफँसी हो तिसको दो कृच्छ्रात्मक चांद्रायण करने चाहिये और जो क्षत्राणी किसी वैश्य के साथ फँसी हो सो एक चांद्रायण और एक कृच्छ्र नाम का जुदा प्रायश्चित्त करे—ऐसेही वैश्यकीभार्या जो किसीशूद्रसे फँसिगईहो सो एक चांद्रायण के पीछे एक कृच्छ्र व्रत भी साधे तब शुद्ध होय—और जहां अनुलोम रीति का मैथुन होय कि पुरुष ऊँचे वर्ण का और स्त्री नीचे वर्ण की तहां कृच्छ्र व्रत वर्णक्रम से एक एक पाद घटा कर करे ॥ ० ॥ गर्भस्थितौचक्वचिच्छुद्धिःप्रोक्ता—ध्यान करो कि विरले देश विशेष के वर्ताव और तत्रत्य मनुष्यों की प्रकृति चर्य्या के अनुसार उनके निर्वाह सोचि के चतुर्विंशति मत नाम के ग्रन्थ विशेष में गर्भ रहिजाने पर भी प्रायश्चित्त से शुद्धि होनी कही है=यथा=विप्रगर्भेपराकस्यात्क्षत्रियस्यततऐन्दवम् ऐन्दवपूचपराकञ्चवैश्यस्याकामकारतः शूद्रगर्भेभवेत्त्यागश्चाण्डालोजायते यतः गर्भस्रवेवातुदोषेश्चरेच्चांद्रायणत्रयम् (अकामकारतइतिविशेषणोपादानात् कामकारेपुनःपराकादिकंद्विगुणंकुर्यादिति मिताक्षरातद्युक्तं=अर्थात्—ब्राह्मण से गर्भ रहा हो तो पराक व्रत करे जो बारह दिन में होता है जो क्षत्री से गर्भ रहा हो तो चांद्रायण करे जो वैश्य का गर्भ रहा हो तो चांद्रायण और पराक दोनों करने चाहिये यह सब कामना के विना दैवयोग से सगम होकर गर्भ रहिजाने के प्रायश्चित्त हैं और शूद्र से गर्भ रहिजाने से स्त्री का त्यागही किया जाय प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं है क्योंकि शूद्र के गर्भ से चाण्डाल पैदा होता है तिससे अन्यथा जो गर्भ रहिकर कुछ दिन पीछे गिरजाय तौभी शरीर के भीतर उस गर्भ का रस फैलने से शरीर की सातों धातु में दोष पहुँचिजाने के हेतु से उस दोष की शुद्धि तभी होती है जो लगातार तीन महीना के चांद्रायण करे (मिताक्षराकारकहिते हैं कि इच्छाविना के भोग मध्ये ये प्रायश्चित्त कहे गये तिससे जहां स्त्रीने कामना से सगम करिके गर्भ धराहो तहां ये प्रायश्चित्त दुगुने कराने चाहिये सो यह दुगुने का नियम ठीक नहीं है इसका ब्यौरा पहिले भी लिखि चुके और फिर भी कहीं आगे लिखा जायगा ॥ ० ॥ जहां यह शूद्रका गर्भ गिरने नहीं पायाकिंतु दशवे महीना तक पेट में रहिकर जन्म पावे तहां फिर निपट प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं रहिती क्योंकि स्त्री का त्यागही किया जाता है=तथाह वशिष्ठः=ब्राह्मणक्षत्रियविशांभार्याःशूद्रेणसंगताः अप्रजाताविशुद्ध्येतिप्रायश्चित्तेननेतराः=अर्थात्—दैवयोग से ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इनकी भार्यायें यदि शूद्र से बिगडें तो जिनके गर्भ का प्र-

सूत न होने पावै वेही प्रायश्चित्तसे शुद्ध होजाती हैं जिनके प्रसूत होवे वे नहीं शुद्ध होसक्ती हैं॥ ० ॥ सगर्भायाः शूद्रादि संगमे नियमाः—यदि कोई द्विजाती की भार्या अपने पतिके वीज से गर्भवती होते हुयेभी शूद्रआदि से व्यभि चार में फँसि गई हो तिसके लिये स्मृत्यंतर में विशेष नियम कहे हैं=यथा= अन्तर्वत्नीतुयानारी समेता कम्यकामिना प्रायश्चित्तंनकुर्यात्सायावद्गर्भोननिःसृतः जातेगर्भेव्रतंपश्चात् कुर्यान्मासंतुयावकम् नगर्भदोषस्तस्यास्तिसंस्कार्यःसयथाविधि=अर्थात्—यदिकोई गर्भवती नारी किसी कामी पुरुष ने प्रवलता से पकडि के भोगी सो स्त्री तव तक प्रायश्चित्त न करै कि जवतक उसका गर्भ जन्म लेकर वाहर न निकसै (क्योंकि गर्भ की दशा में प्रायश्चित्त कराने से गर्भ गिर जाने की शंकाहै तिससे) जव गर्भ उसका जन्म लेचुके तिस पीछे एक महीना भर व्रत करै तिसमें गोमूत्रके रँधे जौका माड़ पीके रहै पर उस पैदा हुये गर्भ में कुछ दोष नहीं है क्योंकि शास्त्रोक्त विधि से उसका सस्कार करना चाहिये॥ ० ॥ इन में जो कोई स्त्री अपने उद्धतपन से प्रायश्चित्त न करै तव (नार्याःकर्णादिकर्तनं) यह वचन पहिले लिखिचुके हैं तिसका वर्ताव किया जाय कि ऐसी नारी के नाक कान आदि उत्तम अंग काटिके कुरूप करै इस दंड के साथ उसका त्याग किया जाय यह तात्पर्य है॥ ० ॥ अन्त्यज चांडालादिव्यभिचारेपिकचित्प्रायश्चित्ते नशुद्धिः—और भी विरले देश विशेषों की अपेक्षा से तत्रत्य मनुष्यों के व्यवहार अनुसार उनके निर्वाहोंके निमित्तसेविरली स्मृतियों में अन्त्यज से व्यभिचार होजाने में भी द्विजातीकी स्त्रियां प्रायश्चित्तकरिके शुद्ध होजातीकही हैं=यथास्मृत्यन्तर वचनं=रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः ब्राह्मण्येतान्यदागच्छेदकामादैंदवत्रयमिति=अर्थात्—रजक• व्याध• शैलूष• वेणु से• चमड़ासे उपजीवन करनेवाले इनके साथ जो ब्राह्मणी इच्छाके विना एकवार संगम करै सो तीनि चांद्रायण करिके शुद्ध होती है—इन्हीं अन्त्यजों की वावत इससे वडा भी प्रायश्चित्त आगे सालभर का कहा जायगा—यहांपर (यहतर्क न करना कि इसमें केवल ब्राह्मणीकही ऊपर द्विजातीकी स्त्रियां ऐसा क्यों लिखिचुके किन्तु जव सवसे उत्तम ब्राह्मणी शुद्ध होसक्ती तव क्षत्राणी वनेनी कहांरहीं वल्कि ब्राह्मणी को तीनि चांद्रायण कहेगये तो क्षत्राणी को दोही और वनेनी को एकही चांद्रायण से और शूद्राको पन्द्रह दिन के व्रत करने से शुद्धि प्राप्त होसकैगी तिससे तर्कना को अवकाश इसमें नहीं है)=इसी प्रकार=इनसे भी अधिक मलीन चण्डाल आदि अन्त्यजोंके व्यभिचारमें भी प्रायश्चित्तसे शुद्धिहोनी विरली स्मृतियोंनेकही

है=यथा=चांडालंपुल्कसंम्लेच्छंश्वपाकंपतितंतथा ब्राह्मण्यकामतोगत्वाचांद्रायण चतुष्टयम=अर्थात्–चाण्डाल•पुल्कस• म्लेच्छ• श्वपाक• पतित जो चारि प्रकार के महापातकी वर्णन होचुके• इन के फंदा मे ब्राह्मणी बिना इच्छाके फँसि कर चार चांद्रायण करै (इसका भी वही अनुक्रम है कि सत्राणी तीनिही चान्द्रायण करै वैश्यकी भार्या दोही करै शूद्र की भार्या एकही करै) परन्तु जैसा मिताक्षराकारोंने इन वचनों पर यह कहा है (अकामतइतिवचनात्कामतोद्विगुणंकल्प्यं) कि इन वचनों में अकाम संगम के मध्ये जो प्रायश्चित्त कहागया सो कामनाके व्यभिचार मे दूना करवाना चाहिये–इस व्यवस्था पर आधुनिक लेखक संमत नहीं देसक्ते हैं क्योंकि मूल स्मृतिकारों ने केवल अनिच्छा के व्यभिचार पर प्रायश्चित्त से शुद्धि होनी कही है इच्छा के व्यभिचार में प्रायश्चित्तसे भी ऐसे महामंद पातकी शुद्धि होनी संभव नहीं है जो ऐसा होसक्ता तो मूलमें भी कुछ प्रायश्चित्त भेदकी स मस्या करीजाती तिससे ऐसी स्त्रियों का परित्याग ही सूचित किया है बल्कि इसी प्रकार का अगिला वचन देखो उसमें भी दैवयोगसे यह नीच संगम होजानेका प्रायश्चित्तहै=तथाच=चांडालेनतुसंपर्कंयदिगच्छेत्कथंचनसशिखवपनंकृत्वाभुंजीयाद्या वकौदनम् त्रिरात्रमुपवासःस्यादेकरात्रंजलेवसेत् आत्मनासंसितेकूपेगोमयोदककर्दमे तत्रस्थित्वानिराहारा सात्रिरात्रंततःक्षिपेत् शंखपुष्पीलतामूलंपत्रंवाकुसुमंफलम् क्षीरे सुवर्णसमियंक्वाथयित्वाततःपिबेत् एकभुक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवतीभवेत् वहिस्ताव न्निवसेद्यावचरतितद्व्रतम्। प्रायश्चित्तेततश्चीर्णेकुर्याद्ब्राह्मणभोजनमगोद्वयंदक्षिणां दद्याच्छुद्धंस्वायंभुवोऽब्रवीत्=अर्थात्–यदिकथंचन कभीदैवयोगसेवलात्कारकिसी चांडालके साथ संपर्कमें कोई नारीजाफँसीहो तो वहचोटीतक बालोंको मुडावे और गोमूत्रके पके जौ का भातखायके तीन रात्रि उपवासकरै फिर ऐसेंकिसीकूपकेजलमे एकरातिभर वसै जो उसकोगले से वैठेहुये जलहोय अथवा किसी तडावआदितीर्थके जल में वसै और अपनी वरावर गहिरे खुदे गड्डहिले में जो कूपहीके आकार खोदा जाकर उसमें गायका गोवर और जल छोडिके खदड़ कीचड़ वनाइ जाय उस कीचड़ में वैठिके तीन रात्रि निराहार वितावै तिसके वादि शंखपुष्पी (ब्राह्मी घास वल्लनेरी जिसके फूल शंखही के आकार होते हैं तिस) के फल फूल मूल आदि पचांग लेकर दूध में पकावै और पकते समय कुछ सोना उसमें छोड़ि देय फिर पीछे सोना अशरफी आदि जोकुछ होय सो निकासिके उस दूधको खूब गरम गरम तीन दिन तक पीवै फिर इसके वादि रात्रि में एक बार भोजन करनेका व्रतराखै सो तब

तक कि जबतक मासिक रजोधर्म से पुष्पवती फिरके होय और तबतक मुख्य घर से बाहर किसी गोंहरे आदि उचित स्थान में निवासकरै कि जबतक यहप्रायश्चित्त पूरा होय• फिर इसके पूरे होजानेपर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करायके दो गाय दान करै और दक्षिणा बांटिके तब शुद्ध होती है यह नियम स्वायंभू मनु आपही कहिगयेहैं। अत्रसकाममैथुननिर्णयः। यहां इनदोनों बातपर ध्यान देना चाहिये कि यद्यपि चांडाल के संगम से भी स्त्रियों का शुद्ध होजाना स्वायंभू मनु ने कहा परन्तु यह कैसी एक लाचारी दशा का संगम है कि जब किसी चांडाल ने दैवयोगसे बलात्कार घेरि लियाहो दूसरे इसलाचारी परभी कैसाप्रबल प्रायश्चित्त दर्शाया है कि जिसको देखने सुनने से चित्त गवाही देता है कि हां ऐसा करने से बेशक स्त्री का शरीर शोधन होजायगा और यहीआशय ऊपरले मुनि वचनोंका सर्वत्रहै कि दैव योगसे राजविध्वंस या गदर लूटि फूटि आदि की दशा में यदि ऐसी विपत्ति किसी स्त्री पर आनि परै तौ इन प्रायश्चित्तोंसे शुद्धि मानी जासक्ती है• तौ इस घंटाघोष के होते हुये भी यह कैसे माना जासक्ता है कि जो स्त्री अपने काम भोगकी इच्छासे आपही जाकर चण्डालोंसेभी मैथुन करवावै सो छोटे प्रायश्चित्तों को दूना साधन करिके घरमें आवैरै (यहदूना करनेका नियम केवल अपने सवर्णी पुरुषके मैथुनमें और अनुलोममार्गके मैथुनमें न्यायात्मक माना जासक्ताहै) यह दूने का नियम प्रतिलोम द्विजातीके मैथुनपरभी नहींशुभदायकहै फिरशूद्र और शूद्रसे भी उतरिके चण्डालआदि अधमजातों से कामिनीकी कामनाका मैथुन•जिस चांडालको एक चमर की लंबाई के भीतर मार्ग चलते समय समीप निकसि जाने का निषेध पहिले होचुका है सो तीसवीं अधिकोक्ति में देखो—हम इस व्यवस्था का पूरा निर्णय परिच्छेद के अन्त में अवकाश पाकर लिखेंगे यहांपर अवकाश नहींहै—और इसी परिच्छेद के प्रारम्भ से जो पंक्ति लिखी गई हैं तिनको लेकर वशिष्ठ के कहे प्रायश्चित्त को भी देखो फिर इस दूने की व्यवस्था भी सोचना कितना अंतरहै॥०॥ अंत्यजव्यवायेप्रायश्चित्तांतरन्तु—अंत्यजों के व्यभिचार मध्ये तीनिही महीनाके तीन चांद्रायण ऊपर लिखिचुकेहैं तिनके मध्ये ऋष्यशृंगने बारहमासकाप्रायश्चित्त करना कहा है=यथाहऋष्यशृंगः=संप्रक्तास्यादयांत्यैर्यासाकृच्छ्राब्दंसमाचरेत् (अथ अव्ययोऽथसंशये) =अर्थात्—ऋष्यशृंग जी कहते हैं कि जहां इसप्रकारका संशय खड़ा होजाय कि नागहानी जब कोई द्विजातीकी भार्या या शूद्रहीकी भार्या अंत्यजाती रजक व्याध आदि पुरुषोंसे फँसिजाय या उन पुरुषोंकी प्रबलतासे कुछदिन

मिलिके वासकरै (यतःसंपृक्त शब्दःसंवद्धेमिश्रितेचतस्मातसंपृक्तास्यादित्यस्यायमेवा र्थः) वह स्त्री एकसालभर कृच्छ्रव्रत अच्छे विधिकेसाथ आचरै तव शुद्धहोय-इसका निर्णय सोचना चाहिये कि पहिले जो अंत्यजोंके मैथुन में तीनिही महीना के व्रत कहिचुके सोतो केवल एकवारके मैथुन मध्ये कहाथा और यहां जो वारह महीना कहे सो लाचारीसे परवश होकर कुछदिन उनके फन्दमें निवास करना पराहो तिस हेतुसे यह वड़ा प्रायश्चित्त कहा-इसमें भी पूर्वोक्त रीतिसे यह जौनहै कि(ब्राह्मणी पूरे वारहमास करै क्षत्राणी इसकी चौथाई छोडिके नौमासकरै और वनेनी दोपाद छोडिके एक छमाहीभर व्रत करै और शूद्रकी भार्या हो सो तीनि महीने व्रत करै) यहां भी ऋष्यशृंगजीके कहे वारहमहीनोंको पहिले तीनि महीनोंकी अपेक्षा वहुत जानिके हमारे प्राचीन संग्रहकार ने यहकहिदिया है (कामतःसकृद्गमनेइदं) कि यह वड़ा प्रायश्चित्त एकहीवार कामनाके साथ संगम करनेमध्ये समझना-सो इस कामना और इच्छाके व्यभिचारपर कदापि संमत नहीं देसकते हैं न किसी ऋषी-श्वरने अपने किसी मूल वचन में यहभाव दर्शाया है तिससे इच्छा विना दैवयोग से कुछदिन उनकेसाथ निवास करना छोटो वातहै और इच्छा साथ एकहू वारका सं-गम वहुत वड़ी वातही नहीं वल्कि वहुत वड़ा अनर्थहै कि जिसका कोई प्रायश्चित्त त्यागिदेनेके सिवाय सूचित नहींहै॥०॥ सगर्भायाश्चांडालादिव्यवायेनियमाः- उन्ही ऋष्यशृंगजीने उस दशाके भी नियम कहेहैं कि जव कोई गर्भिणीनारी किसी अंत्यज चंडाल आदिने भोगीहो=यथाहऋष्यशृंगः=अंतर्वत्नीतुयुवतिःसंपृक्ताचांत्ययो-निना प्रायश्चित्तंनसाकुर्याद्यावद्गर्भोननिःसृतः नप्रचारंगृहेकुर्यान्नचांगेषुप्रसाधनम नशयीतसमंभर्त्रानवाभुंजीतवांधवैः प्रायश्चित्तंगतेगर्भेविधिंकृच्छ्रादिकंचरेत हिरण्य मथवाधेनुंदद्याद्विप्रायदक्षिणाम=अर्थात-ऋष्यशृंगने ऊपरले प्रायश्चित्तके साथही इस विधिको भी लिखाहै कि-यदि कोई गर्भवती युवती नारी अंत्यज के साथ फँ-सिजाय सो प्रायश्चित्तको तवतक न करै कि वहपातकागर्भ वाहर न निकसिपावै क्योंकि ऐसी दशामें प्रायश्चित्त करनेसे गर्भका गिरजाना आदि उपद्रव खड़ाहोना संभव है और तवतक प्रायश्चित्तके विना घरके कामधंधे और घरमें चलना फिरना भी न करै और कंघी सुरमा आदि अंगोंकेसंस्कारभी न साधे और भर्त्ताके साथभी न सोवैतथा वंधुआदि कुटुम्बकेसाथ भोजनभी न करै फिर उसगर्भका जन्महोजाने वादि वही पूर्वोक्त एक सालभरका कृच्छ्रव्रत आचरै और पीछेसे ब्रह्मभोजकराइके सुवर्ण या गोदान की दक्षिणा देवै ॥ ० ॥ अथप्रायश्चित्ताकरणपरिणामः-यहां यह

त्यागरूपी प्रायश्चित्त कहा तैसा सब तरहके चंडालों से मैथुन करानेवाली स्त्री को प्राणत्याग रूपी प्रायश्चित्त सूचित है बल्कि यह बात इस परिच्छेद के प्रारम्भ में खुद मिताक्षरा कारही कहिचुके हैं कि जो जो प्रायश्चित्त पहिले पुरुषोंको कहे गये वेही तीनिवर्ष आदिके प्रायश्चित्त उन पापोंकी करनेवाली स्त्रियों को भी सूचित है बल्कि (यत्पुंसःपरदारेषुतच्चैनांचारयेद्व्रतं) यह मनुका वचन भी मिताक्षराकारने प्रमाण दियाहै तिससे हम दूने प्रायश्चित्त में नहीं संमतिदेसक्तेहैं—हाँ—दूने का नियम प्रायश्च नरहत्या गोहत्या और चोरीआदि पापकर्मोंपर जैसा जहाँ लिखचुके सो सब ठीकहै पर इसमें नहीं और इसी द्विविध आशयके हेतुसे योगीश्वर याज्ञवल्क्य पहिले कहिचुके हैं कि(प्रायश्चित्तैरपैत्येनोयदज्ञानकृतंभवेत्कामतोव्यवहार्यस्तुवचनादिहजायते २७६)इस दोनों छब्बीस के ठिकाने पर जाकर अर्थ देखो इसका यही तात्पर्य्य है कि प्रायश्चित्तोंसे वहपाप दूर होजाता है जो अज्ञानता से बनिगयाहो और जो कामनासे जानतेहुये पापकियाहो तिसमें प्रायश्चित्त करने से भी पापतो नहींमिटसक्ताहै परन्तु संसार में मनुष्यों के साथ व्यवहार आदि संबंध जोड़नेके योग्य होजाताहै (इसीलिये दूनातिगुना आदि करायाजाताहै) पर इसमें इतना भेदहै कि (वचनादिहजायते) वचन के बलसे व्यवहार योग्य होताहै अर्थात् जिसकिसी पापकी बाबत मुनीश्वरों ने वचन दियाहोगा कि इसमें दूना आदि करने से व्यवहार के योग्य होसके उसीपापमें उसख़ास वचनकेबलसे प्रायश्चित्त करिके संसारी व्यवहारों के लायक होजायगा सर्वत्र सभीपापोंमें ऐसा नियम नहीं है—तो इस व्याख्याके अनुसार ठीकठीकहै कि हत्या आदिमें जहां जहां दूनेका वचन पाया तहांतहां प्रायश्चित्त करिके संसारी व्यवहार करसक्ताहै अन्यथा स्त्री व्यभिचारिणी के मध्ये दूनेका वचन कोई नहींमिला सो कैसे घरके व्यवहार योग्यहोसके=केवल एक शूद्रीके लिये दूना करनेका यहवचन मिला है कि (म्लेच्छेनाभिगताशूद्राह्यज्ञानात्तुकथंचन कृच्छ्रत्रयंप्रकुर्वीतज्ञानात्तुद्विगुणंभवेत्) अर्थात्—किसी शूद्रकी शूद्रिनी भार्या यदि कदाचित् नागहानी अपनी अज्ञानतासे म्लेच्छ से फँसि जाय सो अच्छीतरह तीनिकृच्छ्र साधै पर जो जानिबूझि फँसीहोय सो दूने व्रतकरै तो संसारी घरके काम योग्यहोजाय—इसवचनमें (शूद्राहि) हि अव्यय विशेषअर्थ पर आरूढ होनेसे भी केवल शूद्राकी ख़ुसूसियत रक्खीगई है कि शूद्रा के सिवाय किसी द्विजाती की भार्या को यह दूनेका अधिकार नहीं समुझना और इसदूनेकी अधिकारी केवल ओछे शूद्रों की भार्य्या समुझिलेनी कि जिनकी जाति में बरेजा

आदिभी होताहा—सो यहवार्त्ता केवल ओछी जाति का घरबसा रहिने को निर्वाह सोचिके कही अन्यथा जो शूद्र उज्ज्वल जातोंमें गिनती होनेसे घरेजा आदि निषि-द्धाचार कुछ न करतेहों तिनकी स्त्रियोंको यहभी नहीं सूचित है फिर उत्तम तीनि वर्णों की का कथा २६५ ॥ इसी दोसौपैंसठि मूलश्लोक वाली टीका से यह पाठ चलाआता है २६५ ॥ इतिपारदार्यभेदेपरपुरुषसंगमपरिच्छेदः॥

इतिपारदार्यप्रायश्चित्तप्रकरणं॥



यह प्रकरण केवल उनचास ४९ पचास ५० इन दोही परिच्छेदों मे पूराहुआ (और यहभी यादरक्खो कि)

उनतालिस ३९ परिच्छेद को आदि लेकर ४३ तेतालोस परिच्छेदके अन्ततक चारि परिच्छेदों मे गोवध का प्रकरण पूराहुआया—तिसके बादि ४४ चवालिसके आदि लेकर ४८ अड़तालिस तक पांच परिच्छेदों में ऐसे फुटकर विषय वर्णनहुये थे जिनका एक एक प्रकरण एकही परिच्छेद मे बल्कि विरले परिच्छेद में दोदो तीन तीन विषयतक छोटे होनेके हेतु से समाने तिससे उनके प्रकरणों का कुछनाम जुदा न होसका॥

अथ·परिवित्ति·वार्धुष्य·लवणक्रियोपपातकत्रयाणांप्राय श्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः एकपंचाशत्तमः ५१॥



इस परिच्छेद मे छोटे छोटे तीनि भाँति के उपपातकों का जुदा जुदा प्राय-श्चित्तकहा जायगा—अर्थात् एक तो परिवित्ति दोष का फिर वार्धुष्य वृत्तिके दोषका फिर तीसरा लवण क्रिया रूपी दोष का—इन तीनों के लक्षण सब अपनी अपनी जगह पर देखना॥

(पारदार्य॰ पारिवित्त्यं॰ वार्धुष्य॰लवणक्रिया २३५)

ये चारोंनाम दोसौपैंतीस वाले मूल श्लोकमें आचुकेहैं तिनमेंसे पारदार्य नाम का उपपातक ऊपरले दो परिच्छेदों मे वर्णन होचुका=अब=उससेअगला पारिवि-

त्य नाम जो दोष है सो जिस पुरुष में होय तिसको परिवित्ति कहिते हैं उसके सब लक्षण और प्रायश्चित्त भी ४८ अठतालीस के परिच्छेद में परिवेदन कर्मके प्रसंग साथ वर्णन करचुके तहां देखो—तथापि यहांकिससे उसका नाम आनिपरनेके हेतुसे मिताक्षराकार ने संक्षेपचर्चा लिखाहै सो देखो—परिवित्तिप्रायश्चित्तविषयः= तदाह विज्ञानेश्वरः=परिवित्तिप्रायश्चित्तानामपि परिवेत्तृप्रायश्चित्तवद्व्यवस्था विज्ञेया इयांस्तुविशेषः परिवेत्तुर्यस्मिन्विषये कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ तत्रपरिवित्तेः प्राजापत्यं (परिवित्तिःकृच्छ्रंद्वादशरात्रं चरित्वापुनर्निर्विशेत्तांचैवोपयच्छेदिति वशिष्ठस्मरणात)=अर्थात—श्रीमद्विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार कहितेहैं कि—परिवित्ति पुरुष के प्रायश्चित्तों की जरूरत अगर किसी को आनि परै तौ उनकी भी व्यवस्था परिवेत्ता के प्रायश्चित्त समान जानिलेनी कि जैसी परिवेत्ता की व्यवस्था अरतालिसवें ४८ परिच्छेद में कही गईथी पर इतना दोनों में अन्तर है कि जिस विषय पर परिवेत्ता को कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दो प्रायश्चित्त करने लिखे हैं उसी विषय पर परिवित्ति को बारह दिनका प्राजापत्य करावैं—क्योंकि वशिष्ठ जी ने यह कहा है (कि परिवित्ति पुरुष अपना दोष मेटने को बारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके फिर अपना व्याह कहीं ढूंढि के करै अथवा उसी कन्या को अपने विवाह में स्वीकार करै यदि छोटे भ्राता ने इसको निपट समर्पण करदी होवै कि जिस कन्याके साथ छोटे ने अपना व्याह रोपि लिया था जिससे ये दोनों दोषी ठहिरे) अन्यथा जहां छोटे का विवाह निपटिचुके पीछे यह दोष का चर्चा खड़ाहुआ हो तहां उस कन्याका समर्पण करना शेष नहीं रहा तिससे जेठा परिवित्ति अपना व्याह ढूंढिके करै यही अर्थ है• और छोटे का विवाह नहीं निपटि चुके में भी यह अर्थ बना रहिता है कि छोटेने प्रायश्चित्त करिके अपनी सगाई बड़े भ्राता को समर्पण करी कि आपहीइस कन्या से विवाह अपना कीजिये परन्तु उस बड़े ने अपने बड़ापन से फिर उसी छोटे को अपनी तर्फ से पूरी पूरी आज्ञादेकर आशीर्वादसे अभिनन्दित किया कि हमने तुम्हारी दीहुई भेट को हार्द भावसे स्वीकार करलिया पर अब तुम्हीं अपना व्याह करो फलो फूलो• तब इस दशा में भी जेठे को ढूंढिकर इतना शीघ्र अपना व्याह करना चाहिये कि उस छोटे से पहिले इसका होजाय और उस छोटे को भी अपना व्याह तवतक रोकना चाहिये कि जब तक जेठे का पहिले हो जाय—येसब अर्थ ऊपरले वशिष्ठ के ही वचन के व्यन्यर्थ हैं• वशिष्ठ और गौतम आदि मुनीश्वरों के वचन ऐसे स्वल्पाक्षर और अनन्त अर्थोंवाले होते हैं कि थोड़ो सी पंक्तिपर इतने बल्कि

इतने से भी अधिक अर्थ फैलते हैं=इस व्यवस्था को अर्तालिस के परिच्छेद में मिलाकर समझिलेना क्योंकि विस्तार इसका उसी में लिखिचुके हैं इतिपरिवित्तिप्रायश्चित्त समाप्तम् ॥

(अथवार्धुष्य लवणक्रिययोः प्रायश्चित्तं)

वार्धुष्य और लवणक्रिया नामों के अर्थ समझा चाहो सो २३५ मूल श्लोक देखो ये दोनों जुदे उपपातक हैं योगीश्वरने जैसे परिवित्ति का कुछ प्रायश्चित्त नहीं कहा तैसे इनका भी कुछ नहीं कहा•परन्तु परिवित्ति का वशिष्ठ जी ने अच्छी तरह से दर्शाया था सो लिखागया•इन दोनोंका छोटा विषय समझिके और भी मुनीश्वरों ने कुछ नहीं कहा तिससे इनके परिच्छेद भी जुदे नहीं नियत होसक्ते हैं तथापि उपपातकों में गिनती होचुकी है इस हेतुसे २६५ दोसौपैंसठि मूलश्लोक और उसकी अधिकोक्ति मे सामान्य प्रायश्चित्त जो सभी उपपातकोंके निमित्तपर दर्शायचुके उन्हीं को इनके लिये विचारना सो सब चवालिस के परिच्छेद में जाकर देखो— यही डौल मिताक्षरा कारने प्रकाश किया है=यथा=वार्धुष्यलवणक्रिययोस्तुमनुयोगीश्वरोक्तसामान्योपपातक प्रायश्चित्तानिजातिशक्ति गुणाद्यपेक्षयायोज्यानि= अर्थात्—वार्धुष्य और लवण क्रिया इन दोनोंके लिये मनु और योगीश्वर केकहे साधारण उपपातकोंवाले प्रायश्चित्त दोषीकीजाति और शक्ति सामर्थ्य और गुणों को आदि लेकर विशेषताकी अपेक्षासेबड़े छोटेप्रायश्चित्त सोचिके लगाने चाहिये कि जैसे२६५मूलश्लोक में योगीश्वरने कहे प्रायश्चित्त कहे और उसी अधिकोक्ति में मनुके वचनोंसे जुदे प्रायश्चित्त लिखे गयेहैं उनमे से अपेक्षा के अनुरूप चुनिकर समझिलेने इनकी यही व्यवस्था है कुछ और नहीं ॥ २६५ ॥ यहाँतक उसी दोसौ पैंसठिवाले मूलश्लोकको टीकासे अनेक परिच्छेद होकर लिखेगये अब उसकाशेष पूरा होगया तिससे आगिले परिच्छेद मे दोसौछासठिका प्रारम्भ होगा॥ २६५ ॥

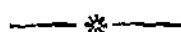
इस छोटेसे परिच्छेद मे भी जुदे जुदे तीनि विषय अति छोटे होनेके हेतु से समा गये कि जिनके परिच्छेद भी जुदे न होसके फिर प्रकरण तो बहुत बड़ी बातहै सो क्योंकर होता—तौभी कुछ प्रकरणका नाम होना चाहिये ॥

इतिपारिवित्त्यादिविषयत्रयप्रकरण॥

पर कृपापात्रनकी दृष्टिराखै• शरीरको शुद्धराखै•सत्यबोलै•अपनी किसी इन्द्री को कुमार्गपर न चलनेदेय•और अनेक हितोंके प्रवृत्तकरनेपर उतारू बनारहै अनेकहित वेही कहलाते हैं जिनके जारी करनेसे अनेक संसारी जीवोंकाहित होताहो दृष्टांत जैसे पिआऊ लगवाना या अन्नका सदावर्त लगाना या किसी औरही से उपकार कराइ देना या तालाव कुआ बागीचा पथिकाश्रम धर्मशाला आदिवनाना ये सभी वृत्त कहातेहैं॥ यहांतक तो इच्छासे चाहे विना मारडारने के प्रायश्चित्तकहे॥०॥ अथ सकामवधप्रायश्चित्तं–जिसने कामना से विचार सहित किसीको मारडाला हो तिसके प्रायश्चित्त ऊपरलोंसे बड़े हैं सो आगे हारीत आदिके वचनोंसे कहेंगे=यथाह वृद्धहारीतः=ब्राह्मणःक्षत्रियंहत्वाषड्वर्षाणिव्रतंचरेत् वैश्यंहत्वाचरेदेदंव्रतंत्रैवार्षिकंद्विजः शूद्रंहत्वाचरेद्वर्षंवृषभैकादशाश्चगाः=अर्थात्=ब्राह्मण कामना से चाहिकर क्षत्री का वध करै सो छः वर्ष भर व्रत करै एवं वैश्यको मारिके ब्राह्मण तीनवर्ष का व्रत करै एवं शूद्र को मारिके एक वर्ष भर व्रत करै और व्रत के वादि एकआंडू वृषभ तथा दसगाय दान करै (मारने वाला जैसा इस वचन में स्पष्ट भाव से ब्राह्मण कहागया तैसा इस परिच्छेद भरमें ऊपरली सभी व्यवस्था में ब्राह्मण समझि लेना चाहिये जहां नाम लेकर नहीं कहा तहांभी यही तात्पर्य हैइसका व्योरा परिच्छेद के अन्त पर जाके देखो ॥ यह सामान्य क्षत्री आदि की व्यवस्था कही जो शास्त्र आदि पढे कुछ नहीं ॥ ० ॥ कामतःश्रोत्रियक्षत्रियादि वधप्रायश्चित्तं–उन्हीं वृद्धहारीत ने फिर भेद किया है कि जे कोई क्षत्री आदि शास्त्रोंको पढतेहों या पढि चुकेहों तिनका वध करनेवाले के प्रायश्चित्त ऊपरलोंसे बड़े हैं (श्रोत्रियपूराविद्या वौ भी कहाता है जो अनेक शास्त्र पढने में तत्पर होरहाहो और ऐसा पूरा विद्वान भी श्रोत्रिय कहलाता है जो वेद शास्त्र पढाहो या सब शास्त्रों में कुछ अच्छा वोध राखता हो)=यथाहवृद्धहारीतः=तुरीयोनंक्षत्रियस्यवधेब्रह्महणोव्रतम् अर्धंवैश्यवधेक्षत्तुरीयंवृषलस्यतु=अर्थात्–जिसने श्रोत्रिय गुणवान क्षत्री को इच्छा सहित मारा हो सो ब्रह्महत्या परकहे गये व्रतको चौथाई कम करिके तीन पादके नौवर्ष आचरै• एवं श्रोत्रिय वैश्यको जिसने चाहिकर माराहो सो आधे व्रतको छः वर्ष भर आचरै• एवं बहुश्रुत शूद्रको (कि जिसने वेद शास्त्र के अधिकार विना भी संसार में बहुधा शास्त्र की मर्यादा विद्वानों से सुनी समझी हो और अपने जाती धर्म से निपुण हो तिसको) जिसने वधकिया होय सो चौथाई के तीन वर्ष भर प्रायश्चित्त करै तब शुद्धि उसकी होती है (इसमें भी मारने वाला ब्राह्मण समझना) क्योंकि हारीत के

समान वशिष्ठ ने भी यही प्रायश्चित्त कहा तिसमें खुलासा ब्राह्मण कानाम भी कहि दिया है=तथाच वशिष्ठः=ब्राह्मणोराजन्यंहत्वाऽष्टौवर्षाणिव्रतंचरेत् षड्वैश्यंत्रीणिशूद्रमिति=अर्थात्–कोई ब्राह्मण क्षत्री को मारि के आठ वर्षभर व्रत करै और वैश्य को मारिके छः वर्षभर व्रत करै और शूद्र को मारि के तीनि वर्ष व्रत आचरै ॥ ० ॥ उभयगुणसंपन्नक्षत्रियादिवध प्रायश्चित्तं–जब कोई क्षत्री दोनों गुणसे युक्तहो अर्थात् ऊर्ध्वोक्त प्रकार वाले लक्षणों से श्रोत्रिय और वृत्तस्थ भी होय तिसको मारडारने में आपस्तम्ब का कहा बारह वर्ष वाला प्रायश्चित्त चाहिये=यदाह मिताक्षराकारः (यदातुश्रोत्रियोवृत्तस्थश्चभवति तदापूर्वयोर्वर्णयोर्वेदाध्यायिनंहत्वेत्यापस्तम्बोक्तद्वादशवार्षिकन्द्रष्टव्यमितिमिताक्षरा)=अर्थात्–जोमारागयाक्षत्री जहां श्रोत्रिय और वृत्तस्थ भी होता है तहां आपस्तंबके उस वचनको देखना जिसमें (ब्राह्मण क्षत्री इन पहिले दो वर्णों में जोकोई वेद पढा होय तिसको मारिके बारहवर्ष व्रत करै इत्यादि यही वचन पहिले तीसवें परिच्छेद में २५१ की अधिकोक्ति में भी देखिके उसी से इसी का वध होनेपर विचारो=याद रक्खो कि=जहां जहां केवल जाति क्षत्री लिखीहो कोई उत्तमगुण विशेष जिसमें नहीं बताया तिसको ऐसा समझि लेना कि राजा आदि उत्तम क्षत्रियों में छः प्रकार के गुण होते हैं सोउसमें नहीं हैं तिससे जाति मात्र क्षत्री कहा ॥ यही व्यवस्था जो केवल क्षत्री के नाम से कही गई सो इस प्रकार के दो गुणों वाले वैश्य के मारे जाने में भी जोडि लेनी पर बारह वर्षों के स्थान पर आठ वर्ष का प्रायश्चित्त लगाना यही न्याय का स्वरूपहै ॥ ० ॥ श्रोत्रियस्यप्रारब्ध यागेचवधप्रायश्चित्तं–जहां कोई क्षत्री आदि श्रोत्रिय होय उसी श्रोत्रिय ने किसी यज्ञका प्रारम्भ रोपाहो ऐसी दशामें यदि कोई ब्राह्मण उसको मार डारै तहां उस हत्यारे ब्राह्मण को वही ब्रह्महत्या वाला व्रतकरना चाहिये जो दोसौ इक्यावन २५१ मूल श्लोक से तीसवें परिच्छेद में योगीश्वर आप कहिचुके हैं कि (यागस्थक्षत्रिय विड्घातीचरेद्ब्रह्महणिव्रतं) यज्ञ करते हुये क्षत्री या वैश्य को वध करने वाला ब्रह्महत्यापर दर्शाये व्रत को बारह वर्ष करै (याउस क्षत्री और वैश्य में कुछ औरके गुण समझे जायँ तौ बारह वर्ष से कमतीवाले व्रतभी जो ब्रह्महत्या के प्रकरण में उपस्थित हैं तिनकाभी विकल्प से वर्तावा करै) और इसमें यद्यपि क्षत्री वैश्य दोनों की अपेक्षा पूरा बारह वर्षका व्रत कहा तौभी वैश्य की अपेक्षा इसको एक तिहाई छोड़िके आठ वर्षों का व्रत समझि लेना और इसी प्रकार ब्रह्महत्या के छोटे प्रायश्चित्तों में भी वैश्यके मध्ये कुछ भेद कल्पित करना

अथक्षत्रियादिवर्णत्रयवधोपपातकानांप्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदःद्विपंचाशत्तमः (५२)॥



इस परिच्छेद में क्षत्री वैश्य शूद्र इन तीनि वर्णों में से किसी पुरुष को यदि कोई मारडाले सो उपपातकी होताहै तिसके सब जुदेप्रायश्चित्त कहेजायँगे=क्योंकि सत्ताइस परिच्छेद में केवल ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त कहे और उनतालिस परिच्छेद में प्रतिलोम जातें जो चारोंवर्णों से उपजीं सूत मागध वैदेहक आदि वर्णसंकर होतीहैं तिनकावध करनेके प्रायश्चित्त कहे गये= केवल बीचके तीनों वर्ण क्षत्री आदिका वध कहिना बाकी रहा था सो इस बावन के परिच्छेद में दर्शाते हैं॥

(क्षत्रियादिवधप्रायश्चित्तं)

ऋषभैकसहस्रागादद्यात्क्षत्रवधेपुमान्। ब्रह्महत्याव्रतंवापिवत्सरत्रितयंचरेत् २६६॥
वैश्यहाब्दंचरेदेतद्दद्याद्वैकशतंगवाम्। पाण्मासान्शूद्रहाप्येतद्धेनूर्दद्याद्दशाथवा २६७॥

अर्थः—पुरुष किसी क्षत्रीका वध करनेमें एक आँड़ऋषभ और सहस्र गायँ दान करै (तब शुद्धहोय यही प्रायश्चित्त है अथवा यह न करसकै सो) ब्रह्महत्यावाले व्रतकोही तीनिवर्षभर आचरै॥ २६६॥ यही ब्रह्महत्यावाला व्रत एकवर्षभर वैश्य का वध करनेवाला आचरै अथवा एक आँड़ ऋषभ और एकसौगौयें दानकरै=यही व्रत शूद्रका वध करनेवाला पुरुष छमाहीभर करै अथवा हालकी बिआनी बच्चा सहित दशधेनुका दानकरै) हालकी बिआनी यह धेनु शब्दका व्वन्यर्थ है)॥२६७॥

२६६अधिकोक्तिः—दोसौछत्तीस मूलश्लोक में कहिचुके हैं कि (स्त्रीशूद्रविट्क्ष त्रवधः) स्त्री•शूद्र•वैश्य•क्षत्री• इनका वध करना उपपातक जुदे चार ४हैं—इनमें से स्त्रियोंके वधका प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में योगीश्वर कहेंगे और शेषतीनोंके प्रायश्चित्त इन्हींदोनों श्लोकोंमें योगीश्वरने इसहेतुसे जुदेकरके दर्शायेहैं कि दोसौ पैंसठि२६५ मूलश्लोकवाले सामान्य प्रायश्चित्तोंको इनपरभी निरपेक्षमत समुझि लेना कि उन्हीं छोटे प्रायश्चित्तोंसे निर्वाह इनपापोंका होजाय—क्योंकि क्षत्रीवैश्य शूद्र ये तीनों सब एकहीसे बराबर नहीं होतेहैं अर्थात् इनमें भी उत्तम मध्यम आदि

कई भेद अपने गुणोंके प्रभावसे सर्वत्र होतेहैं तिनकावध होजानेसे प्रायश्चित्तों के भी कई भेद करने होंगे–तहां किसी निकृष्ट भेदका वध होने में तदोक्त प्रायश्चित्त भी कदाचित काम आसक्तेहैं सो आगे समझिलेना=और=यहां जो श्लोकों के अर्थ में व्यवस्था कही गई तिसको भी ऐसे भेदपर जोडना कि जहां उस मारे गये पुरुष में केवल क्षत्री आदि जातिही कहिलाना एक गुण होय किन्तु दूसरी कोई विशेषता उसमें नहो और मारनेवालेने इच्छाके विना दैवयोगसे वधकिया हो क्योंकि (अ-कामतस्तुराजन्यंविनिपात्येतिप्रक्रम्य एतेयामेवप्रायश्चित्तानांमानवेऽभिधानात) मनुस्मृति में भी• कामना के विना क्षत्री को मारिके• यह अनुक्रम पहिले आरम्भ करिके इन्हीं प्रायश्चित्तोंका वर्णन किया गयाहै तिससे यहां भी वही तात्पर्य है= और यहां जो गौओंकादान या व्रतरूपी तपस्या करना कहा तिसकी व्यवस्था ह-त्यारेकी शक्तिके अनुसार सोचिलेना॥ ईषद्वृत्तस्थचत्रियादीनांव्यवस्थाभेदः–जिन क्षत्री आदिमें कुछ थोडासा वृत्ताचार भी प्रसिद्धहोय तिनको मारडारनेमें ऊपरवालोंसे कुछ बड़े प्रायश्चित्त चाहिये (क्योंकि ऊपरके छोटे प्रायश्चित्त केवल जातिमात्र के एकही गुणपर कहेगये)अत्राहमनुः–तुरीयोब्रह्महत्यायाःक्षत्रियस्यवधेस्मृतः वैश्ये ऽष्टमांशोवृत्तस्थेशूद्रेज्ञेयस्तुषोडशः=अर्थात्–मनुने यह कहाहै कि वृत्तस्थ क्षत्री का वध होने में ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त कहाहै जो बारह वर्षकी चौथाई तीनि वर्ष होतेहैं एवं वृत्ताचारसे संयुक्त वैश्यके वधमें ब्रह्महत्याका आठवांभाग जो डेढवर्ष होताहै सो करना चाहिये तद्वत शूद्रके वधमें ब्रह्महत्याका सोरहवांभाग जो नौमास होतेहैं समझना (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यद्यपि क्षत्री के बावत इस वचन में तीनिहीवर्ष कहेगये तौभी जो वृत्तस्थ क्षत्री माराजाय तो फिर डौढदेकर साढेचार वर्षका प्रायश्चित्त कराना चाहिये क्योंकि ऊपरकी व्यवस्थाकी अपेक्षा यहां सभी प्रायश्चित्त डौढेहोजाने उचितहैं–और यहां जो वृत्ताचारसे संयुक्त या वृत्तस्थ यह विशेषण दियागया सो कुछ जातिसे अपेक्षा नहीं रखताहै केवल एक शरीर से सं-बंध राखता है चाहे किसी जातिका पुरुष हो अपने शिष्टाचार से संयुक्त होय सो वृत्तस्थ कहाताहै इसके भी लक्षण मनुने कहेहैं–यथा(गुरुपूजाघृणाशौचंसत्यमिन्द्रियनिग्रहः प्रवर्त्तनंहितानांचतत्सर्वंवृत्तमुच्यते) अर्थात्–गुरुओंकीपूजा• घृणादया• शौचक्रिया•सत्य•इंद्रियोंका वशमें राखना•हितोंका प्रवर्तनभी•यह सबमिलाकर जो आचरण उसका वृत्त कहाता है जो कोई इनका अभ्यास राखे और खु नासा यह भावार्थहै कि जो कोई पुरुष अपनासे बड़ोंका सत्कार हमेशा किया करै•असमर्थों

यह न्याय का स्वरूप है ॥ और तीसवें परिच्छेद को भी देखो कि वहांपर या ग-स्थका अर्थ यद्यपि सोमयागमें बैठा माना गयाहै तथापि यहां उस वचनको नहीं मानना किन्तु यहांपर उपपातकोंका प्रकरण वर्तमानहै तिससे सामान्य हरतरहका यज्ञ समझि लेना और इसी से यहभी इतना भेद है कि (वहांपर दैवयोग से मारने मध्ये पूरा व्रतकरना और चाहिकर मारने मध्ये इसीका दूना करना कहागया परन्तु) यहाँ कामना से चाहिकर मारने मध्ये पूरा एक प्रायश्चित्त और दैवयोगसे मारने मध्ये उससे आधा कल्पित किया चाहिये क्योंकि यह व्यवस्था केवल किसीतरह का यज्ञ करने के विचार से प्रारम्भ मात्र पर दर्शाई गई कि जो क्षत्री या वैश्य अब तक यज्ञ करने में न बैठिपाया और प्रथमही माराजाय॰ किन्तु॰ निपटयज्ञ पर बैठे हुयोंकी व्यवस्था अब नीचे दर्शातेहैं ॥ ० ॥ यागस्थश्रोत्रियचत्रियादिवधप्राय-श्चित्तं–जहां कोई क्षत्री आदि जो अपनी विद्यामें श्रोत्रिय होय वहीश्रोत्रियकिसी यज्ञको करिरहाहो और इसयज्ञस्थको यदिकोई ब्राह्मणमार डारे तिसहत्यारे ब्रा-ह्मणको अग्रोक्त गौतम का बताया प्रायश्चित्त है जिसमें दान और तपदोनों करने होतेहैं=यदाह गौतमः=ब्राह्मणस्यराजन्यवधे षडवार्षिकंप्राकृतब्रह्मचर्य मृषभैक सहस्राश्चगादद्यात वैश्यवधेत्रिवार्षिकमृषभैकशतागाश्चदद्यात शूद्रवधेसंवत्सरिक मृषभैकाद शाश्चगा दद्यात्=अर्थात्–ब्राह्मण को क्षत्री का वध करनेमें प्राकृत ब्रह्मचर्य छः वर्ष भर करना कहा है तिसके पीछे एक आंडू वृषभ और हजार गौयें भी दानकरै॰ तथा वैश्य का वध करनेमें तीनि वर्ष का वही ब्रह्मचर्य करै तिसके बादि एक आंडूवृषभ और सौ गाय भी दान करै॰ तथा शूद्र का वध करने में एक साल भर ब्रह्मचर्य सावै तिस पीछे एक आंडू वृषभ और दश गाय भी दानकरै (प-रन्तु यह व्यवस्था उस हत्यारे पर आरूढ है कि जिसने विना जाने धोखा से वध कियाहो) क्योंकि अगिले वचन में शंखने भी इसीके समान व्यवस्था कही तिसमें अज्ञानता से वध करनेका निमित्त भी प्रकाश करिके कहि दियाहै=यथाह शंखः= पूर्ववदमतिपूर्वं चतुर्षुवर्णेषुप्रमाप्यद्वादशषट्त्रीन् सार्धवत्सरंचव्रतान्यादिशेत् तेषामन्ते गोसहस्रंचततोऽर्द्धंतस्यार्धमर्धंदद्यात सर्वेषामानुपूर्व्येणेति=अर्थात्–शंखने इस रीति से कहाहै कि हम जैसा पहिले अज्ञानतासे वध करने का प्रायश्चित्त कहिचुके उसी पहिलेके तुल्य इसमें भी अमति पूर्वक समझना कि जिस विप्रने चारो वर्णोंमें किसी को मारिके हत्या कमाई हो तो ब्राह्मण आदि सभी के वधमें अनुक्रम से इन प्राय-श्चित्तोंका आदेश करै कि बारहवर्ष॰ छैवर्ष॰ तीनिवर्ष॰ डेढवर्ष (तो इस क्रमसे क्षत्री

के वधमें छेवर्ष का व्रत साबित हुआ) फिर इनके पूरे होजाने बादि उसी क्रमसे एक सहस्र गोदान• पाँच सौ गौएँ• अढाई सौ गाय• सवाउसौ गायें दान करें (इनमें भी केवल ब्राह्मण हत्यारे के प्रायश्चित्त कहे समझने)=(परन्तु इस भेद की समाधि कुछ नहीं लिखी जासक्ती है कि असल मिताक्षरा में शंखमुनि का यही वचन दो सौ उनचास २४९ मूलश्लोक वाली टीकामें किस हेतुसे और तरह फिर यहाँपर किस हेतुसे और भाँति लिखा गया वही आधुनिकोंको लिखना परा यद्यपि हेतु यह प्रत्यक्ष है कि वहां तो महापातकों के प्रसंगमें ब्राह्मणका वध होनेपर व्यवस्था लेनी स्वीकार थी और यहाँपर उपपातकों के प्रसंग में केवल श्रोत्रिय यागस्थ क्षत्री का वध होने पर व्यवस्था की रचना करनी स्वीकार है• और यद्यपि यह कारण भी प्रमाण है कि मुनीश्वरों के वचन स्वल्पाक्षर तथा अनन्त अर्थों वाले होते हैं तथापि हम ऐसे पाठान्तर वाले भेदको मनोज्ञ नहीं कहि सक्ते हैं किन्तु ऐसे भेदसे यहभ्रांति खड़ी होतीहै कि जाने शंखजीने किस पाठको मुखसे उच्चारण किया था) = अथ मिताक्षराकारः–इदंचद्वादशवार्षिकं गौतमीयविषयमेव किंचिन्न्यूनगुणोक्षत्रिये गुणाधिकयोर्वैश्यशूद्रयोश्चद्रष्टव्यं (स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधःइत्युपपातकमध्येविशेषतः एव पठितत्वेनोत्सर्गापवादन्यायगोचरत्वाभावादुपपातकसामान्यप्राप्तान्यपि प्रायश्चित्तान्यत्रयोजनीयानि) तथदुष्टक्षत्रियादीकामतोव्यापादितेमासत्रं त्रैमासिकं द्वैमासिकं चांद्रायणंच वर्णक्रमेणयोज्यम–अकामतस्तुयोगीश्वरोक्तं त्रिरात्रोपवास सहितमृषभैकादशगोदानं• मासपंचगव्यशनं• मासिकंचपयोव्रतं यथाक्रमेणयोज्य म=अर्थात–गौतम शंख इन दोनों के वचन ऊपर दर्शाने के बादि मिताक्षराकार कहिते हैं कि–यह बारह वर्ष भी गौतमके समानही विषय समझना सो कुछेक न्यून गुणवाले क्षत्रीके वधमें और बहुत गुणवाले वैश्य शूद्रोंके वधमें विचारना चाहिये और इनके सिवाय उन प्रायश्चित्तोंको भी यहां लाकर जोड़ना चाहिये जो चवालिसके परिच्छेद में सामान्य उपपातकों के मध्ये कहे गए थे यद्यपि वे छोटे प्रायश्चित्त हैं परन्तु (स्त्री• शूद्र• वैश्य• क्षत्री• इनका माराजाना विशेषतासे उपपातकों में गिना गयाहै और विशेषके साथ अपवाद वाला न्याय भी इस स्थलमें नहींदेखि परता है तिससे उन सामान्य प्रायश्चित्तोंकी पहुँच भी यहांपर पाई जातीहै• बाकी रही यह तर्कना कि वे प्रायश्चित्त बहुत छोटेहैं तिसके लिये यह अग्रोक्त व्यवस्था कल्पितकरो)अथदुष्टक्षत्रियादिवधप्रायश्चित्तानुक्रमत्व–किन्तु मिताक्षराकार हीआप कहितेहैं कि क्षत्री आदि तीनों वर्णके मनुष्योंमें जो कोई दुराचारीहोयँ तिन

को यदि कोई ब्राह्मण इच्छा सहित मारडारै तो इस क्रमसे प्रायश्चित्त सावै कि उस ४४ के परिच्छेद वाली अविकोक्तिमें लिखे प्रायश्चित्तोंमें मनुका कहा तीनि महीने वाला दुर्वृत्त क्षत्रीके वधपर करै और दोमहीने वाला दुर्वृत्त वैश्य के वध पर करै और एक महीनेवाला चांद्रायण दुर्वृत्त शूद्रके वधमें करै=परन्तु जिसने कामना के विना दैवयोगिक वध कियाहो तो उस परिच्छेदमें मूलश्लोकसे योगीश्वरके कहे प्रायश्चित्तोंको इस क्रमसे सावै कि तीनि दिनके उपवास सहित ग्यारह गाय बैल के दानवाला प्रायश्चित्त दुर्वृत्त क्षत्रीके वधपर करै और एक महीने पंचगव्य भोजन करने वाला प्रायश्चित्त दुर्वृत्त वैश्यके वधपर करै और एक महीना गाय का दूध पीके व्रत करनेवाला प्रायश्चित्त दुर्वृत्त शूद्रके वधपर करै॥ अथ ब्राह्मणेतरकर्तृकवधप्रायश्चित्तं–मिताक्षराकार अब दूसरी याद दिलाते हैं कि (एतच्चप्रागुक्तं व्रतजातं ब्राह्मण कर्तृके क्षत्रियादिवधेद्रष्टव्यं) यह परिच्छेदकी आदि से यहां तक पहिला वर्णन प्रायश्चित्तोंका व्रतरूपी सर्वथा ब्राह्मण हत्यारे के निमित्तमें समझना कि जब उसने क्षत्री आदि किसी वर्णकी हत्या करीहो तिसके प्रायश्चित्त कहेगए हैं क्योंकि मनु गौतम हारीत इनके वचन जो पहिले वर्णन होचुके तिनमें ब्राह्मण का नाम साफ़ साफ़ कहागया है यथा (अकामतस्तुराजन्यं विनिपात्यद्विजोत्तमः इति मनुः) तथा (ब्राह्मणस्यराजन्यवधेषड्वार्षिकं इतिगौतमः) तथा (ब्राह्मणःक्षत्रियंहत्वाषड्वर्षाणिव्रतंचरे दितिहारीतः)=इस हेतुसे=जहां क्षत्री आदि कोई हत्यारेहोवें और इन्हीं क्षत्री आदि तीनि वर्णोंमें किसीका वध कियाहो तहां क्रमसे एक एक चौथाई घटाकर उन्हीं पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंसे व्यवस्था कल्पित करीजाय यह सिद्धांत है और इसीपर अग्रोक्त विष्णुका वचन प्रमाण है=तदाह स्म विष्णुः=विप्रेतु सकलंदेयं पादोनंक्षत्रियेस्मृतं वैश्येऽर्द्धमेकपादस्तु शूद्रजातिषुशस्यते=अर्थात्–जो प्रायश्चित्त कहागया सो ब्राह्मण से पूरा करवाना चाहिये और क्षत्री से एक पाद कम कराना कहागयाहै वैश्यपर आधा करवाना और शूद्रसे एक चौथाई करवाना यही ठीक है (परन्तु इस कम कियेहुये को भी प्रातिलोम्य वधको दशानें दूने तिगुने दंडवाला न्याय सोचना होगा) क्योंकि मनोक्त विष्णु के वचनका यहां तात्पर्य केवल इतना लेनाहै कि जिस क्षत्रीने क्षत्रीको मारा हो तो उस प्रायश्चित्त से चौथाई कमकरै कि जैसे गुणवाले क्षत्रीके मारनेपर ब्राह्मणको जितना प्रायश्चित्त कहागया हो० और जिस क्षत्रीने वैश्यको माराहो सो उस प्रायश्चित्तसे आधाकरै कि जितना उस भांतिका वैश्य मारनेपर ब्राह्मणको लिखिचुके हैं० और जिस क्षत्री

ने शूद्र का वध किया हो सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई व्रत करै कि जितना उस प्रकार का शूद्र मारने पर ब्राह्मण को करना कहिचुके—इसी प्रकार—जिस वैश्य ने किसी वैश्य को मारा हो सो उस प्रायश्चित्त से आधा कम करै कि जितनाउसी योग्यता वाले वैश्य के मारने पर ब्राह्मण को करना कहा गया॰ और जिस वैश्य ने किसी शूद्रका वध किया हो सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई व्रत साधै कि जितना उसी भांति का शूद्र वध करने पर ब्राह्मण को लिखिचुके हैं—इसी प्रकार—कोई शूद्र जो किसी शूद्र का वधकरै सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई भागसाधै कि जितना उसी योग्यता वाले शूद्र का वध करने पर ब्राह्मण को करना कहा है= अन्यथा=जहां शूद्र किसी वैश्य या क्षत्रीका वधकरै यहा वैश्य किसी क्षत्रीका वध करै तो यह प्रातिलोम्य वध कहिलाता है इसके मध्ये चौथाई आदि कम करने की व्यवस्था इस रीति से लगाई जायगी कि अभी जितना प्रायश्चित्त शूद्रका वध करनेमध्ये शूद्रकेलिये निश्चितहोचुकाहै (कि ब्राह्मणवाले प्रायश्चित्तकी चौथाई करै)सो उसीचौथाईका दूनाव्रत शूद्रसे उसदशामें करवानाहोगा कि जबउसनेकिसी वैश्यकावधकियाहो और उसीचौथाईका चौगुना किन्तु पूराव्रत उसदशामेंकरवाना कि जबशूद्रने क्षत्रीका वधकियाहो—इसीप्रकार—जहां वैश्यने क्षत्रीका वधकियाहो तहां वैश्यको पूरापूराव्रत करनाहोगा कि जितना ब्राह्मणको कहिचुके क्योंकि वैश्य का वधकरने मध्ये वैश्यको आधा करना कहिचुके तिस आधे का दूना फिर पूरा ही क्षत्री के वध पर करना चाहिये यही न्याय का स्वरूप है॰ और इन्हीं अर्थों से यह विष्णु का वचन यहां माना जासक्ता है अन्यथा नहीं=और भी इस व्यवस्था का प्रमाण पूरा चाहिकर उनतीसवें परिच्छेद में २५० दोसौ पचास मूल श्लोक वाली अधिकोक्ति का सबसे पिछला पाद देखो जहांपर दूने तिगुने प्रायश्चित्त का प्रसङ्ग छोड़िके अंगिरा के वचन से चतुर्विंशति के वचन तक अच्छा निर्णय किया गया है वही तात्पर्य यहां भी लेलेना होगा क्योंकि ये दोनों स्थल एकही रूप हैं अन्तर केवल इतना है कि वहांपर बहुत बड़े पापों का प्रकरण है यहां उनसे छोटे पापों का प्रकरण है तिस छोटाई से प्रतिलोम अपराधों में यह अपूर्व शक्ति नहीं आसक्ती है कि उत्तम क्षत्री को मारि के शूद्र चौथाई प्रायश्चित्त करै (हां यही विष्णु का वचन तैंतालिस ४३ के परिच्छेद में गोवधके निर्णयपर मिताक्षराकार ने आपही लिखा सोतो बहुत ठीक है क्योंकि वहां पर उसी न्याय की योग्यता पाई गई और वहां पर एकही सूधे अर्थ से काम चलसक्ताया) और वहांपर जैसा

एक अंगिरा का वचन पीछे से लिखा वही यहांपर भी लिखा है कि (यत्वंगिरो वचनं–पर्यद्यात्राह्मणानांतुसारान्नांहिगुणासता वैश्यानांत्रिगुणाप्रोक्तापर्यद्वच्च व्रतं स्मृतमिति तत्प्रातिलोम्येनवाग्दंडपारुष्यादिविषयं–इसीको यहांपर किन्हीने आदि शब्द छोड़िके (वाग्दराडपारुष्यविषयमित्युक्तं गोवधप्रकरणे) ऐसालिखि दियाहै– इसी आदि शब्द के लगे रहिने से प्रयोजन का अर्थ बना हुआथा कि वाक्पारुष्य गाली देना आदि और दराडपारुष्य लाठीदराडाचलाना आदि और उसचर्चा किये आदि शब्दसे तीसरा काम निपट मार डारना सिद्धहोताहै अर्थात् ये तीनों बात जो प्रतिलोम उलटे मार्ग से करी जायँ तहां यह अंगिरा का वचन बहुत ठीक है–परंतु किसी विद्वान् ही ने यहांपर उस आदि शब्द को निकासि डारा तिससे तीसरानिपट वध का अर्थ जाता रहा केवल दोही बातों पर अंगिरा का वचन समझा गया॰ सो उस विद्वान् की चतुराई केवल इस हेतुसे उत्पन्न हुई होगी कि ऊर्ध्वोक्त विष्णु के वचन में उसने सूधा सूधा वही अर्थ समझा जो गोवध के स्थल पर सूचित होचुका था इसी लिये गोवध की समस्या भी यहां की पंक्ति में जताई है॰ सो यहव्यौरा विज्ञाता जनों को समझना चाहिये कि ऊँचे वर्णों को नीचे वर्ण गाली आदि कुवचन कहें या डंडा लाठी आदि हथियार कुछ दिखावैं या चलावैं तिसपर दूने तिगुने दराड और प्रायश्चित्त भी कहिचुके तो फिर निपट मारडारना जो सबसेबड़ा काम है तिसमें यह विपरीत कैसे माना जासके कि शूद्र सबीको मारि के चौथाई प्रायश्चित्त करे ॥ ० ॥ अथमूर्धाभिषिक्तादीनां व्यवस्था–विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि जैसे वध कहे गये तिनसें मूर्धाभिषिक्त आदि वर्णसंकर जो हत्यारे बनैं तिनके लिये ये प्रायश्चित्त नहीं हैं क्योंकि उनमें क्षत्रीपना या वैश्यपन आदि लक्षण नहीं हे तिससे उनके योग्य लिखे दराडों के अनुसार इसी भाँति के वध में पूर्वोक्त प्रायश्चित्तों का घटाउ बढ़ाउ व्यवहार कांड में दर्शित किया गयाहै कि (दराडप्रणाय संकार्यवर्णानात्युत्तरावरैः) यह वचन जहां पर आया हो तहां इसकी व्याख्या जाकर देखो फिर उसीके अनुसार प्रायश्चित्त की कल्पना करो ॥ २६६ ॥ २६७ ॥

इतिचत्रियादीनांवधनिर्णयः

—:—

अथमंदस्त्रीवधोपपातकप्रायश्चित्तप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः त्रिपंचाशत्तम (५३)

इसपरिच्छेद में उन स्त्रियोंके वध करने सबने प्रायश्चित्त कहे जायँगे कि जिनका मार डारना केवल उपपातकों में गिनती होय- अर्थात उत्तम गुणसे हीन वंध्या आदि या किंचित् व्यभिचारसंयुक्त या अत्यन्त स्वैरिणी आदिखोटी विख्यातहैं तिन सबके वधपर योग्यता के अनुसार छोटे बड़ेप्रायश्चित्त भी दर्शावेंगे॥

(स्त्रीवध प्रायश्चित्तं)

दुर्वृत्तब्रह्मविट्क्षत्रशूद्रयोषाःप्रमाप्यतु। दृतिधनुर्बस्तमविंक्रमाद्दद्याद्विशुद्धये २६८

अर्थः-ब्राह्मण आदि चारों वर्णों में जिस किसीकी स्त्रियां जो दुर्वृत्ता स्वैरिणी हैं तिनको यदि कोई वध करै सो वध करिके इस क्रमसे प्रायश्चित्त करै कि ब्राह्मणी के सध्ये एक दृति अर्थात् जल भरने की मुषक दान करै और क्षत्राणी की अपेक्षा एक धनुष दान करै और वनैनीकी अपेक्षा एक वस्त बकरा दान करै और शूद्रिणी की हत्या बावत एक अवि मेढ़ा दान करै तव शुद्ध होय॥ २६८॥

२६८अधिकोक्ति:-मिताक्षराकार कहिते हैं कि योगीश्वर के कहे प्रायश्चित्त अतिशय तुच्छ हैं सो केवल उन स्त्रियों के वध पर समझि लेना जिन्होंने प्रतिलोम नीचे वर्ण या नीची जातें चण्डाल आदि के वीज से संतान पैदा करी हो औरइंता पुरुष ने इच्छा विना इनका वध किया हो=और=जहां कोई इन्हीं स्त्रियों को कामना से वध करै तहां ब्रह्मगर्भ का कहा प्रायश्चित्त लेना होगा=यदाह ब्रह्मगर्भः=प्रतिलोमप्रसूतानांस्त्रीणामासांवधःस्मृतः अन्तरप्रभवानांचसूतादीनांचतुर्विधः= अर्थात्-ब्राह्मणी आदि चारों वर्णोंकी स्त्रियां जो प्रतिलोम नीचीजातोंके वीजसेगर्भ लेकर प्रसूत करैं या वर्णों के परस्पर नीचे वर्णों का वीजलेकर जो सूत आदि पैदा करैं या सूतादिक प्रतिलोमोंका वीजलेकर पैदाकरैं इनसबका वधकरना कहा गया है (औरयही वध इच्छा के साथ किया होताहै) तिससे इनकावध करनेमें चार वो छःमास का प्रायश्चित्त चाहिये-सो इस क्रम से कि ऐसी ब्राह्मणीके वध में छः महीना और ऐसी क्षत्रियाके वधपर चार महीने और ऐसी वनैनी के वधपै दोमहीना

और इसी न्याय के अनुसार ऐसी शूद्राके वध में भी एक महीना का प्रायश्चित्त करै तब शुद्ध होय=अन्यथा=जहां गर्भ रहिजाना मात्र या अतिशय व्यभिचार ही देखि भाल जिसने ब्राह्मणी आदि किसी स्त्री का वध कियाहो तिसके मध्ये अंगिरा का अग्रोक्त वचन है=यदाहांगिराः=जलकोशंचकूपंच ब्राह्मण्याः प्रतिपादयेत् वधेधेनुःक्षत्रियायावस्तोवैश्यावधेस्मृतः शूद्रायाश्चाविकंवेश्यांहत्वादद्याज्जलंनरः= अर्थात्–ब्राह्मणी मारने की हत्या में जलकोश मुशक और कूप भी दान करै तथा क्षत्रानी की हत्या में दुधार गाय दान करै तथा वैश्या बनेनी की हत्या में एक बड़ा बकरा दान करै तथा शूद्रा के वध में आविक ऊन का बुना कम्बल दान करै और पांचवीं वेश्या को मारि के मनुष्य जल दान करै तब शुद्ध होय (यहां जलकादान जो कहा सो जलाशय में जाकर अंजली देना मत समझना किन्तु पिआउ लगाइ देना या पशु पक्षी आदि को जहां जल न मिलता हो तहां जलका प्रबन्ध करदेना आदि अनेक प्रकारोंसे जलदेना समझि लेना) और (ऊपर ब्राह्मणीके मध्येजहां कूपका दान करना कहागया तहां भी कूपशब्दके कई अर्थ होतेहैं कि एक तौजल भरने का कुआ प्रसिद्ध है फिर छोटे मोटे कुण्ड आदि जलाशय गड़हिले आदि भी कूप कहिलाते हैं और कूप कुप्पा भी कहाता है जिसमें घीतेल भरा करते हैं सो इन सभी अर्थोंको समझि लेना कि जैसी कुछ प्रतिष्ठा की योग्यता वाली ब्राह्मणी व्यभिचारके हेतुसे वध करीहोय तैसेही उत्तम मध्यम आदि कूपोंके अर्थ मानिलेने अर्थात् जहां बहुत बड़ी प्रतिष्ठा वाली ब्राह्मणी मारी होय तहां बहुत अच्छा पूरा कुआ बनवा कर दान करना चाहिये इत्यादि कहीं घी का भरा कुप्पा कहीं छोटा मोटा कुण्ड गड़हिला आदि सभी प्रयोजन के अर्थहैं और मुशक सब के साथ लगी रहेगी क्योंकि दोनों वस्तु देनी कहीं॥ अथमिताक्षरा (यदातुवैश्यकर्मणाजीवन्तीं व्यापादयति तदाकिंचिद्दे यं० वैशिकेनकिंचित्०इतिगौतमस्मरणात्–वैशिकेनवैश्य कर्मणा जीवन्त्यांव्यापादितायां किंचिद्दे यं) अर्थात्–मिताक्षरामें इस पंक्तिसे यह कहागया है कि जब कोई व्यभिचारिणी आदि चाहे किसी वर्णकी हो किन्तु बनियापन दूकानदारी के कामसे जीविका रखतीहो तिसको मारडारै तौ इस हत्या में कुछ देना चाहिये क्योंकि (वैशिकेनकिंचित्) यह गौतमने कहा है कि वैशिक से जीवन चलानेवाली के वधमें कुछ देना० फिर इन्हीं सात या साढ़े छः अक्षरों पर व्याख्या भी लिखदीहै कि वैशिक जो वैश्यों वाला कर्महै तिससे जीविका वाली के मारनेमें कुछदेना=हम इस व्यवस्थाको इन कारणों से अस्वीकार करते हैं कि

प्रथम तो गौतमका वह वचन पूरा पूरा यहांपर दिया जाता जिसका यह एक पद छे अक्षर वाला लिखागया तो उसका अभ्यन्तर देखाजाता• फिर इस बात का भी आश्चर्य नहीं है कि गौतमने इसपद में ऊपरले अंगिराके समान वेश्याओंवाले कर्म से जीविका करता दर्शायाहो जिसके अर्थकी प्राप्ति इसमें प्रत्यक्षहै और इसीलिये वेश्याको अतिशय तुच्छ मानिके अंगिरा ने जलदेना मात्र प्रायश्चित्त बताया तैसा गौतमने किंचित कहा इस किंचितसे किसी वस्तुका नामही प्रकट नहीं होता और अतिशय थोड़े का नाम किंचित होता है कि जिसका परिमान भी नहीं कहा जा सक्ता है तो फिर क्या वस्तु और कितनी देनी चाहिये इस बात के समझे विना प्रायश्चित्त क्योंकर पूरा होसक्ता है–इसके सिवाय यह विरोध है कि चारों वर्णों के लिये यह एकही बात कही इससे भी अन्याय खड़ा होसक्ताहै• सबसे ऊपर यह विरोध है कि वैश्यवाले कर्मकी जीविका मध्ये किंचित कुछ कहि दिया तो फिर शूद्रकी जीविका वाले कर्मसे या क्षत्री और ब्राह्मणकी जीविकावालेकर्मसे जीविका करतीहों तिनका वधहोने में क्या क्या उत्तर दियाजाय•तिससे यहां वैश्यआदि किसीके कर्मका प्रसंग लाना निपट वृथाहै न उसके चर्चासे कोईसा प्रयोजन देखि परता है• क्योंकि यहां व्यभिचारिणी आदि खोटी स्त्रियोंकी व्यवस्था वर्णन हो रही है तिसमें जो बणिज व्यापारका विशेषण जोड़ें तौभी यह एक प्रकार का प्रतिष्ठा वाला चिह्न खड़ा होनेसे उलटा दूषण पैदा होताहै कि उसी प्रतिष्ठाके अनुसार कुछ बड़ा प्रायश्चित्त कहाजाता• तहां ऐसे निरादरके साथ किंचित कुछ कहि देना किस प्रकारसे न्यायात्मक मानाजाय• तिससे साफ निश्चित होताहै कि गौतमने वेश्याके वधका प्रायश्चित्त निरादर के साथ प्रकट किया होगा फिर चाहैं वह बजारू वेश्या होय यद्वा घरू स्त्रियां वेश्या के तुल्य जीविका करने लगें जो प्रायः खानगीके नामसे प्रसिद्ध होतीहैं ॥ ० ॥ अथसामान्योपपातकप्रायश्चित्तानामत्यतिदेशः–मिताक्षराकार कहिते हैं कि पहिले जो ४४ चवालिस परिच्छेद में २६५ दोसौ पैंसठि मूलश्लोक और उसीकी अधिकोक्तिमें साधारण उपपातकों पर गोवध वाले प्रायश्चित्तोंका अतिदेश उतारा गयाथा उसकी पहुँच यहां भी आवश्यक है–तिससे–जहां क्षत्री आदि नीचे वर्णोंके पुरुषोंमें ब्राह्मणी आदि ऊँचे वर्णों की स्त्रियां प्रतिलोम व्यभिचारसे दूषित हुईहों तिनको यदि कोई मारडारे तिसकी शुद्धिके लिये उसी परिच्छेद केद्वारा पूर्वोक्त गोवध के प्रायश्चित्त लगाने चाहिये और उनमें जो बड़ापन छोटापन देखिपरै सो सब यहां भी ब्राह्मणी आदि वर्णों के

भेदसे लगाइलेना=परन्तु इस परिच्छेद की सभी व्यवस्था जो वर्णन होचुकीं तिनमें हन्ता पुरुष मारनेवाला जो प्रायश्चित्ती होताहै तिसकी जातिभेद से प्रयोजन कुछ नहींहै कि उक्त प्रायश्चित्तों में चौथाई आदि किसी वर्ण को न्यूनाधिक विचारा जाय जैसा पहिले परिच्छेदों में भेद किया गया था ॥ २६८ ॥ अब निचले आधे श्लोकसे उन स्त्रियोंका चर्चा किया जायगा जो अतिशय खोंटी नहीं ॥ २६८ ॥

(ईषत्व्यभिचारितावधप्रायश्चित्तं)

अप्रदुष्टांस्त्रियंहत्वाशूद्रहत्याव्रतंचरेत् २६९ (पूर्वार्ध.)

अर्थः–अप्रदुष्टा स्त्रीको मारि के शूद्र की हत्या वाला व्रत आचरै=अर्थात्–दुष्टा खोंटी और प्रदुष्टा अति खोंटी कही जातीहै जो अतिखोंटी नहो वही अप्रदुष्टा समझि लेनी और तात्पर्य इसका यहीहै कि यद्यपि व्यभिचार से दूषित होचुकी परन्तु ऐसी अब तक न हुई जो अपने खोंटा पन से विख्यात होजाती अर्थात् लुकी छिपी व्यभिचार में होने से ईषद्व्यभिचारित ठहरी• ऐसी ब्राह्मणी आदि का जो कोई वधकरै सो शूद्रकी हत्यापर लिखा हुआ छमाहीका व्रतकरै या दश गाय दूध देती हुई दान करै जैसा दोलो सरसठि २६७ के उत्तरार्द्ध मूल श्लोक में कहि चुके॥ २६९ ॥ इति पूर्वार्द्ध श्लोकः ॥

२६९ अधिकोक्तिः–यहां मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह छमाही वाला व्रत उसके लिये विचारना कि जिसने ऐसी ब्राह्मणी को इच्छाके बिना घात कियाहो और यही छमाही व्रत उसके लिये विचारना कि जिसने ऐसी क्षत्राणी को इच्छा पूर्वक वध किया हो और जिसने इच्छा सहित ऐसी बनेनी का वध किया हो सो दश गाय दूध देती हुई दान करै और जिसने इच्छा सहित ऐसी शूद्रा का वध किया हो तिसके लिये चवालिस ४४ परिच्छेद के अनुसार साधारण उपपातकों पर कहागया एक महीने पचगव्य पीके रहिने वाला व्रत बताना चाहिये–परन्तु जो कोई इच्छा सहित ऐसी ब्राह्मणीका वधकरै तिसको बारहमहीने व्रत करना चाहिये और जो ऐसी क्षत्राणी को विना इच्छाके वधकरै तिसको तीनि महीने व्रत चाहिये तथा ऐसी बनेनीको विना इच्छाके वधकरै तिसको डेढमहीना व्रत करना चाहिये तथा ऐसी शूद्राको इच्छा विना जो वधकरै तिसको डेढमहीने से आधा २२॥ साढे बाइस दिनका व्रत करना चाहिये–ये सब अर्थ आगिले प्रचेता के वचन से स्पष्ट होते हैं=यथाह प्रचेताः=अतृतुमतींब्राह्मणींहत्वा कृच्छ्रान्दयरामा

सान्त्रेति क्षत्रियांहत्वावत्सरमासान्मासमत्र ववेति वैश्यांहत्वासासद्वयसार्द्धं मासवेति शूद्रां हत्वासार्द्धमासमार्द्धसंवित्सरल्याराजिवेति=अर्थात्–जो ब्राह्मणी आत्रिकधर्मसे ऋतुमती कभी न होतीहो तिसका वध करिके एक वर्षभर कृच्छ्रव्रत आचरै अथवा छमाही मात्र (यहां विकल्पका यही तात्पर्य है जो अविज्ञोक्तिके प्रारम्भमें कहिचुकेहैं कि विना इच्छाके वध करनेवाला एक छमाही व्रतकरै तौ यह बारह महीनेवाला कृच्छ्र व्रत इच्छा सहित वध करनेवाले पर चाहिये सो यह भी ऊपर लिखि चुकेहैं• इसी तरह आगे क्षत्राणी आदिमें भी विकल्पोंको समझि लेना• और सबके साथ यहभी जोड़िलेना कि जो ऋतुमती कभी न होतीहो) क्षत्राणीको मारिके छेमास या तीनि मास व्रत करै एव बनैनीको मारिके तीनि महीने या डेढ महीना व्रत करै एव शूद्रा को मारिके डेढ महीना या पौन महीना व्रतकरै=इसमें भी मारनेवाला पुरुष चाहे किसी वर्णका होय प्रायश्चित्त सबके लिये एकसे बराबर हैं यह समझिलेना॥०॥ एक हारीतके वचनमें प्रायश्चित्त बड़े होनेके हेतुसे कुछ भेद विशेषहै सो देखो= यथाहहारीत=षड्वर्षाणिराजन्ये प्राकृतब्रह्मचर्यंत्रीणिवैश्येसार्द्धंशूद्रे (इतिप्रतिपाद्य पुनरुक्तवान्) क्षत्रियवद्‌ब्राह्मण्यां वैश्यवत्क्षत्रियायां शूद्रवद्वैश्यायांशूद्रांहत्वानवमा-सान् (तदपिकर्मसाधनत्वादिगुणयोगिनीनां कामतोव्यापादनेद्रष्टव्य अकामतस्तुस र्वत्राद्धकल्प्य आद्वेष्व्यांतुप्रागुक्तमिति मिताक्षराकारा)=अर्थात्–हारीत ने पहिले पुरुषोंके वधका प्रायश्चित्त कहाहै कि–क्षत्रीके वधसे छै वर्ष प्राकृत ब्रह्मचर्य और तीनि वर्ष वैश्य के वध में और डेढ़वर्ष शूद्र के वध में यही ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त है (यह कहिके फिर हारीत ने कहा है कि) क्षत्री के समान ब्राह्मणी के वध में और वैश्यके समान क्षत्राणीके वधमे और शूद्रके समान बनैनीके वधसे समझिलेना और शूद्रिनीको मारिके नौमासका ब्रह्मचर्य साधै (इस पर मिताक्षराकार कहितेहैं कि हारीतके बताये ये बड़े प्रायश्चित्त भी ऐसी उत्तम स्त्रियोंके वधपर समझिलेना जो कर्मका साधन होसकने की सम्भावना आदि उत्तम गुणोंसे संयुक्त होयँ तिनको इच्छा सहित जब किसी ने वध किया हो–अन्यथा यदि इच्छा के विना दैवयोग से वध कियाहो तौ इन प्रायश्चित्तोंका आधा आधा व्रत सबके साथ कल्पित करिलेना– और आत्रेयी लक्षण की स्त्रियों के वध का प्रायश्चित्त पहिले तीसवें परिच्छेद में कहिचुके तहां देखो यह मिताक्षराकारोंने सब कहा (परन्तु इसका ब्यौरा आगे सिद्धांत वाले पाद में देखो कि जिन स्त्रियों का नाम निकम्मी कहा जाय उन्हीं के वधसे ये हारीत वाले बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं) इस परिच्छेदका सर्व सिद्धांत आगे

देखो॥ सर्वस्यैवसिद्धांतः—अब इस बातका सिद्धांत सोचना है कि उन्हीं ब्राह्मणी आदि का वध करने सद्ये तीसरे परिच्छेद में बड़ेबड़े वेही प्रायश्चित्तलिखिचुके हैं जो ब्राह्मण आदि पुरुषों का वध करने में बारह वर्ष आदिके होते हैं—फिर उन्हीं ब्राह्मणी आदिके वध पर यहां छोटे पापठहिरा कर छोटे छोटे प्रायश्चित्त कहे गये तिसका क्या कारण है—इसका यही कारण है कि यहां सब निकम्मी और खराब स्त्रियोंके वध का प्रकरण जुदा किया गया है•इनमें निकम्मी तो उनको सम झना जो नि पट वन्ध्या होयँ या वंध्या यद्यपि नहीं थी पर बुढ़ापा आदि कारणों से रजोधर्म होना बन्द होगयाहो जिससे आगेको संतान पैदाहोनेकी आशा न रही हो तो ये दोनों तरहकी निकम्मी समझी जातीहैं फिर इन्हीं में से तीसरा भेद और है कि जिसका मासिक ऋतुधर्म निपट बन्द तो हुआ नहीं लेकिन बन्दहोनेवाला होरहा है तिससे कभी कभी दो चार महीने थँभिकर जारी होजाता है इसी ढँगसे वर्ष दो वर्ष पीछे निपट वन्द भी होजाता है तब तक यह आधी निकम्मी कहला-ती है क्योंकि बीचमें दैवाधीन संतान पैदा होसकनेकी संभावना वर्तमान है•परन्तु इन तीनोंमें किसी प्रकारके व्यभिचारका दोष कुछ न हो और तीसरे परिच्छेदमें चर्चाकिया सवन यज्ञ वा अग्निहोत्रवाला उत्तम गुणभी इनमें न हो तो ये तीनों साधारण भावसे निकम्मी कहिनी चाहिये (इन्ही तीनोंके वधका प्रयोजन हारीत के अनंतरोक्त वचनवाले प्रायश्चित्तों में समझिलेना) निकम्मीके सिवाय दूसरी खराब स्त्रियां भी व्यभिचारिणी आदि कई तरह से बदनाम होती हैं तिनके वध पर जुदे जुदे सबछोटे प्रायश्चित्त लिखिचुके तिनको इसी परिच्छेद के प्रारम्भ से आदि लेकर २६८ दोसौ अरसठिकी अधिकोक्ति भरमें देखो=फिर=यह सोचो कि निकम्मी और खराब इन दोके बीचमें तीसरी भांतिकी स्त्रियां भी कुछ होतीहैं अर्थात् निकम्मीसे कुछ मध्यम और खराब खोटीसे कुछ उत्तम तिससे दोनोंके बी-चमें ठहिरी (यहां खराब और खोटीका एकही अर्थ है क्योंकि खोटी यह देशी-भाषा और खराब उसका पर्याय यावनी शब्द है) दोनों के बीचमें ठहिरी तिससे इसका प्रायश्चित्त भी बीचही में लिखागया सो दोसौ उनहत्तरि २६९ के पूर्वार्द्ध से देखो कि (ईषत् व्यभिचारिता) यहीनाम इसका धरागया=समस्त परिच्छेद में इसक्रमसे इन तीनों हंताओंके प्रायश्चित्त धरेगएहैं कि सबसे पहिले अतिखोटी और खोटियोंके १ फिर बीचमें ईषत् व्यभिचारिता के २ फिर सबसे पीछे हारीत के वचन में निकम्मी स्त्रियोंके ३ इनतीनो में निकम्मी सबसे अच्छो समझिलेना

क्योंकि इनमे व्यभिचार आदि दूषण कुछनहीं है और बीचवालीको इसलिये कुछ मध्यम ठहिराया है कि यद्यपि वह वन्ध्या भी न हो अथवा होय तौ भी कुछ तर्क इस पर नहीं है और यद्यपि वह अनार्तवा भी न हो किन्तु मासिक ऋतुधर्म उसके निरन्तर जारी होताहो अथवा न होताहो तौभी कुछ तर्क इसपर नहींहै परंच थोड़े से व्यभिचारमें एकही दो वार अपने सवर्णी किसी पुरुषसे या ऊँचे वर्णसे केवल इतना दूषित हुईहो जिसको भितरिया लोगोंने जाना कोई वाहरका बदनाम न कर सकाहो न किसीने प्रायश्चित्त उसपर करवाया हो तौ इसका वध करने वाले पर वही प्रायश्चित्त आरूढ होगा जो २६९ के पूर्वार्ध आदि से कहा गया (पर इसमें भी यह विशेषता है कि यदि ऐसी स्त्री से प्रायश्चित्त करवाया गया हो तौ फिर प्रायश्चित्तसे पवित्र होकर यह भी निकम्मी स्त्रियोंके बराबर समझी जायगी और प्रायश्चित्त कराने के बादि यदि कोई मार डारै तिसको हारीत वाला बड़ा प्रायश्चित्त करना होगा) अथवा जो इसके रजोधर्म जारी होता हो तौ फिर यह भी प्रायश्चित्त करने के बादि आत्रेयी मानी जायगी जिस आत्रेयी का वध करने पर बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं सो सब तीसवे परिच्छेद में देखो (आत्रेयी वही कहाती है जिसका मासिक धर्म हमेशा अपने समयपर जारी होताहो)=अब=तीसवे परिच्छेद का सिद्धान्त सुनो कि उसमें भी चाहे किसी वर्णकी हो पर इतने उत्तम लक्षणों से संयुक्त स्त्री का वध करने पर पूरे पूरे प्रायश्चित्त हैं कि एक तौ आत्रेयी १ दूसरी पतिव्रता २ तीसरी सवनस्था जो सवन यज्ञमे लगीहो ३ चौथी अग्निहोत्रीकी भार्या चाहै आत्रेयी के लक्षण से संयुक्तहो या नहो ४ (इन चारोंसे उपरान्त जो बाकीरहीं सो सब यहां ५३ परिच्छेदमें आगई)=इनके सिवाय=उसी तीसवें परिच्छेदमें (गर्भ हाच यथावर्णा) यह कहाहै कि गर्भका विनाश करने वाला भी जिस वर्ण का गर्भ विनाशै उसी वर्णकी पुरुष हत्या वाला व्रत करै–सो यह तात्पर्य यहां ५३ के परिच्छेद में भी लेलेना होगा कि चाहे व्यभिचारिणी आदि कैसीही दुष्टाहो पर अपने पतिके बीजसे गर्भधारण कियेहोय तिसका वध करनेमें गर्भका विनाश होजाने पर उपरोक्त प्रायश्चित्तसे उपरान्त उस परिच्छेदमें वर्णन करी गर्भकी व्यवस्था भी लेनी होगी और उसमें जो गर्भका प्रायश्चित्त हो सो भी करना होगा क्योंकि इन दोनों परिच्छेदों का संबंध परस्पर मिला भुलासा एकही है ॥ २६९ ॥ यह पूर्वार्ध की अधिकोक्ति कही अब इसी मूलश्लोक का उत्तरार्द्ध अगिले परिच्छेद में जा पहुँचेगा–और यहांपर हिंसा वाले प्रायश्चित्तों का प्रसंग चला आता है तिसमे मनुष्यों

की हिंसा अवतक वर्णन करी• आगे इसीके प्रसंगसे मनुष्योंके उपरान्त हाथीआदि बड़े जीवोंसे लेकर लीख भुनका पर्यन्त सब तरह के प्राणियोंकी हिंसा वाले प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में जुदे वर्णन करेंगे कि वे पातक यद्यपि योगीश्वरकी विवक्षासे सभी उपपातकों में गिनती होचुके हैं यह व्यौरा २३४ मूलश्लोक से आदि लेकर देखो• परन्तु मनु और विष्णु आदि कई ऋषीश्वरोंने इन पापों का छोटापन समझिके उपपातकोंसे भी छोटे भेद इनके माने और भेदोंके जुदे नाम कल्पितकिये हैं सो सब २४२ की अधिकोक्ति में समुझो॥ ऊपर जो इसी २६९ के पूर्वार्ध मूल श्लोकमें शूद्रकी हत्यावाला प्रायश्चित्त छेमाही और दश गायका दान जो स्त्रियों हत्यापर कहिचुके वही अगिले परिच्छेद वाले उत्तरार्ध मूल श्लोक में भी तु शब्द के संबंधसे अतिदेश दियाजायगा यह याद रक्खो॥ २६९॥ इतिपूर्वार्धः॥

इतिब्राह्मणेतरनरहिंसाप्रकरणं॥

यह प्रकरण दो परिच्छेदों में अर्थात् बावन ५२ और त्रेपन ५३ में पूरा हुआ॥

अथनरेतरसर्वप्राणिहिंसोपपातकप्रायश्चित्तप्रकाश कोऽयपरिच्छेदः चतुःपंचाशत्तमः (५४)

इस परिच्छेदमें मनुष्यसे उपरान्त सब जीवोंकी हिंसा मध्ये प्रायश्चित्त उनके जुदे भेदों के साथ कहे जायँगे जो हाथी को आदि लेकर मच्छर लीख पर्यंत भुनगा सेभी अति छोटे जीव संसार में होतेहों॥

(सूक्ष्मलघुजंतुसमूह वधप्रायश्चित्तं)

अस्थिमतांसहस्रंतुतथाऽनस्थिमतामऽनः २६९

अर्थः-हाड़वालोंका एक हजारा और बिन हाड वालों का एक अनस् गाड़ा भरि मारिके भी=अर्थात्-छोटी मछरी आदि तुच्छ जीव उस भांति के कि जिनके कुछ हाड़ भी होतेहों तिनको एक सहस्र संख्याके अनुमान जो कोई किसी प्रकार से विनाशै सोभी वही प्रायश्चित्त करै (जो स्त्री वध के ऊपर पूर्वार्ध मूलश्लोक से पहिले परिच्छेदमें अतिदेश देचुके हैं कि शूद्र की हत्यावाला छमाही ब्रह्मचर्य या

दश गायका दान करे) क्योंकि यहां उत्तरार्धमें तु अव्यय के योगसे उसकी प्राप्ति चली आती है—और उसी प्रायश्चित्तको वह भी करे जो एक अनस् गाड़ा छकड़ा भरके अनुमान उन जीवोंका विनाश करे जिनके हाडही नियत न होतेहो दृष्टांत जैसे जोक वर्ताती गेना गिंडार गिँजाई मक्खी ततैये वर्र झींगुर खटमल चींटे दीमक आदि बहुधा योनि होती हैं॥ २६६॥

२६६ अधिकोक्ति—इस २६६ के उत्तरार्धमें तु अव्यय के अर्थसे उसी प्रायश्चित्तका अतिदेश उताराग्याहै जो ऊपरले परिच्छेद मे पहिलेअर्द्धसे कहिचुके हे(शूद्र हत्या व्रतं चरेत्)कि शूद्रकी हत्या मध्ये जो२६७ दोसौ सरसठि मूलश्लोक में छमाही ब्रह्मचर्य या दशधेनुदेना कहाया वही इसहत्यापरभी करे परंतु यहाँ एक हजार छोटे जीवोंकी हत्याका नियम कियागयाहै तिससे जो अधिक जीवमारेसो उससे भी कुछ बड़ा प्रायश्चित्त करे इसीप्रकार विना हाड वालो को गाड़ी भरसे अधिक मारे सो अधिक प्रायश्चित्त करें यह तात्पर्य है और जो एकही दो चार आदि जीव मारे हाडवाले या विना हाडवालो मे तिसको प्रत्येक जुदे जीव का प्रायश्चित्त आगे २७५ दोसौ पचहत्तर मूलश्लोकसे योगीश्वर कहेगे तहाँ देखो= और—जो मनुका एक बचन मिताक्षरा मे धराहै कि कृमि कीट वयो हत्या॰ इत्यादि सलिनी करणीय पापों की गिनती किये पीछे—तप्त स्याद्यावकस्त्र्यहं—यह प्रायश्चित्त सबका एक साथ कहागयाहै कि तीन दिन गरमगरम यावक पीवे तब शुद्ध होय) सो यह प्रायश्चित्त यद्यपि ऐसे धर्मात्मा पुरुष पर आरूढहै जो प्रायश छोटेजीवों की हत्या से भयमानता हो यद्वा किसी प्रयोग पूजन में लगा हो तिसकी ग्लानि मिटाने के लिये केवल एकही छोटा जंतु हाड़ो या विनहाड़ो वाला मरजाने पर यह प्रायश्चित्त है कि जिससे उसके मन को शुद्धि होसके) क्योंकि इसी मनुके वचन मे विना हाड़ो वाले कृमि कीटभी कहे गये और इसी में हाड़ो वाले वयस पक्षी भी कहे गये किन्तु दोनों का जुदा भेद या जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा—इसपर असल मिताक्षरा में यह न्याय लिखाधराहै कि ऊपर योगीश्वर के कहे हाडवाले और विना हाड़वाले अतिशय सोदिष्ट बहुत सूक्ष्म जंतु समुझने जैसे लीख जुआ मच्छर खटमल आदि जिनका एक हजारा या गाड़ाभर मारने पर छेमाही प्रायश्चित्त है क्योंकि हाड़ो या विन हाड़ो वाले स्थूल जंतु एकही के मारने पर मनुने तीन दिन गरम यावक पीना कहा है—हम इस न्याय को इस हेतुसे सुडौल नही समुझते हैं कि मिताक्षरा पहिले हाडवालो का दृष्टांत छकलास के-

काला भौंरा आदि कहिचुकी जो इंद्रयान से अधिक भी स्थूल होता है फिर यहां इसन्याय पर लीख जुआं मच्छर आदि समुझाती है जिनका एक छकड़ाभर मारा जाना एकही पुरुष के हाथसे कदापि संभव नहीहै फिर वही मिताक्षरा मनुके वचन में कृमि कीटों को स्थूलरूप कहती है—यथा (शतवक्षोदियजतुविषय स्यविधान स्थिगुणादिजन्तुवधेतुकृमिकीटवधेहत्येत्यादिना मलिनीकरणीयान्यभिधाय मलिनीकरणेषुतप्त स्याद्यावकस्त्र्यहमितिमनूक्तप्रक्ष्यर्थमिति मिताक्षरा) इसीपंक्ति की व्याख्या ऊपर लिखी गई सो समझि देखो इस न्याय से कुछ सार नहीं मिला॥२६९॥अब दो श्लोकोंपरिके श्लोकमें इनसे बड़े जीवोंकी हत्या बावतकहेंगे॥२६९॥

(मार्जारादि वध प्रायश्चित्त)

मार्जारगोधानकुलमंडूकांश्चपतत्रिण । हत्वात्र्यहंपिबेत्क्षीरंकृच्छ्रंवापादिकंचरेत् २७०

अर्थः—मार्जार॰ गोधा॰ नकुल॰ मंडूक॰ पतत्रि॰ इनको मारिके तीनि राततक दूध पीके रहै या एक पाद कृच्छ्र करै—अर्थात्—बिल्ली॰ गोह॰ नेउरा॰ मेंढुका॰ और पतत्रि उड़ने वाले पक्षी काक चाष घुघुआ आदि (जिनके नाम किसी मूल श्लोक में न कहेगये) इनका एकही एक जीव घात जो कोईकरै सो तीनि राति तक थोड़ा दूध पीके व्रत करै या कृच्छ्र व्रत प्राजापत्य की चौथाई व्रतकरै यहभी तीनि दिन में होगा॥ २७० ॥

२०५८६

वाय पक्षी और मेडुका भी मारिके या कुत्ता और गोह और उल्लू और काकोंको एक साथ मारिके अथवा इनमें एकही किसी जीवकी अनेक सख्या मारिके शूद्र की हत्यावाला व्रत आचरे जो छमाही भरका शूद्र के वधपर कहिचुके हैं (यहां यह ध्यान करो कि मनू का यह वचन मार्जार आदि वाला अनेक जीव मारने पर छमाही प्रायश्चित्त बताता है और योगीश्वर का मार्जार आदि॰वाला केवल एक प्राणी मारने पर तीन दिन प्रायश्चित्त कहिचुका कि जिसके मध्ये मनु के ऊपर ले वचन में अनेक प्रायश्चित्तों के अधिक भेद भी दर्शाये गये) इन सबसे निराला एक वशिष्ठ का वचन है=यदाह वशिष्ठः=श्वमार्जारनकुलमडूकसर्पदहरमूषकान् हत्वाकृच्छ्रं द्वादशरात्रंचरेत् किंचिद्दद्यात्=अर्थात्–वशिष्ठने जो बड़ाप्रायश्चित्त कहा है कि–कुत्ता॰ बिल्ली॰नेउरा॰ मेडुका॰ सांप॰ दहर कांटेदार पहाड़ी वनमूसा॰ मूषक मूसा॰ इन प्रत्येक जुदे जीवों का एक प्राणविनाशके बारह दिन का कृच्छ्र अर्थात् प्राजापत्य आचरे (ये बारहदिन उससेचौगुने होतेहैं जो तीनदिनमनु और योगीश्वर कहिचुके तौ इस चौगुने का यही प्रयोजन है कि जिसने इच्छा सहित दुबारा तिबारा वधकियाहो तिसकेलिये यह प्रायश्चित्त है २७० ॥

(हस्त्यादिवध प्रायश्चित्त)

गजेनीलवृषा पंचशुकेवत्सोद्विहायनः। खराजमेषेषुवृषोदेयः क्रौंचेत्रिहायनः॰ २७१

अर्थः–हाथी में पांच नीले वृषभ॰ शुकपक्षी में द्विहायन बछरा॰ खर अज मेष इनमें एक वृषभ॰ क्रौंच पक्षी में त्रिहायन बछरा दातव्य है=अर्थात्–जिसने हाथी माराहो सो पांच काले बैल दान करे॰ जिसने तोता पक्षी का वध कियाहो सो दो वर्ष का बछरा दान करे॰जिसने गदहा माराहो सो एक आंडूबैल॰ और बकरा मारने वालाभी एकबैल॰तथा मेढा मारनेवालाभी एकवृषभदानकरे॰ जिसने क्रौंचनाम सारस पक्षीका वध कियाहो सोतीनिवर्षकी अवस्था वाला बछरा दानकरे २७१ ॥

२७२अधिकोक्ति–यद्यपि तोता और सारस ये हाथी आदि के बराबर डील डौलमेंभी नहीं और जातिसेभी पक्षीहैं चौपायेसे मेल इनकानहींहै तथापि इन दोनों की उत्तमता से बड़ापन जाहर करने के लिये बड़े चौपायों के साथ में कहे गये)= इसपर एक मनुके वचन से कुछ और भी विशेषता है=यदाह मनुः=वासोदद्याद्धयंहत्वापंचनीलान्वृषान्गजम् अजमेषावनड्वाहंखरंहत्वैकहायनम्=अर्थात्–घोड़ा मारि के जैसा घोड़ा होय तैसा उत्तम मध्यम आदि वस्त्र दानकरे और हाथी को मारिके

पाँच नीले बैलों का दान करै तथा बकरा या मेढा को मारिके एक एक आँड़ूवृ-षभ दान और गर्धव को मारिके एक वर्षका बछरा दान करै तब शुद्ध होय (यो-गीश्वर के मूल वचन में गदहा के सध्ये पूरा वृषभ देना कहा गया और यहाँ पर उसके सध्ये एक वर्ष का वछरा कहा सो इस दो भाँतिमें विकल्प गदहा को उत्तम मध्यम जाति के ऊपर समभि लेना॥ २७१॥

(हंसवानरगृध्रादि वधप्रायश्चित्तं)

हंसश्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखण्डिनः। भासंहत्वाचदद्याद्गामक्रव्यादस्तुवत्सिकाम्॥ २७२

अर्थः—हंस• श्येन• कपि• क्रव्याद• जलचर• स्थलचर• शिखण्डी• इनको और भासको भी मारिके गायँ दानकरै=अक्रव्यादोंको मारिके बछिया वा कलोरिगाय दानकरै=अर्थात्—हंस जो अलभ्य पक्षी विख्यातहै सो अथवा उसी प्रकारके वतक आदि और भी होते हैं• श्येन बाज का नाम है• कपि वंदर प्रसिद्ध है• क्रव्याद उन जीवों का नामहै जो मांस खायँ (वे जल स्थल आकाश वृक्षादि के निवासी कई भाँति होतेहैं• शिखण्डी मोर का नाम है• भास भी एक पक्षी इसी नामसे प्रसिद्धहै• इनमें से किसी एकही का वध करै सो एक गाय दान करै—और जो क्रव्याद नहीं किन्तु मांसको न खाने वाले जल स्थल दोनों जगहके निवासी जीव तिनमेंसे किसी एकहीको मारै सो कलोरि बछिया दानकरै (अक्रव्याद और क्रव्यादों के विशेष नाम अधिकोक्ति में॥ २७२॥

२७२ अधिकोक्ति—अक्रव्याद माँसके न खानेवाले वन जीवोंमें हरिण आदि अनेक मृग होतेहैं उड़ने पक्षियों में खजर आदि अनेक पक्षी होते हैं—क्रव्याद मांस खाने वाले भी दो तीन भेदके होते हैं कि वन के मृगजीवों में शृगाल व्याघ्र आदि अनेक और पक्षियों में आकाशी कंक चील गृध्र आदि अनेक तथा जलके जीव भी मगर आदि अनेक मांस के खवैया होते हैं—इनसे उपरान्त जल के निवासी बगुला आदि समझने और स्थलके चरने फिरने वाले भी बलाका आदि बहुत होतेहैं=इन्हीं सब जीवोंके वधकी बाबत मनुने भी इसी प्रकारसे विशेष भेद कियाहै=यदाहमनुः= हत्वाहंसबलाकांचवकवर्हिणमेवच वानरश्येनभासौचस्पर्शयेद्ब्राह्मणायगाम् क्रव्या दस्तुमृगान्हत्वाधेनुंदद्यात्पयस्विनीम् अक्रव्यादेवत्सतरीमुष्ट्रं हत्वातुकृष्णलम्=अर्था-त्=हंस• बलाका• बगला• मोर• वानर• श्येन• भास• इनमें किसीको मारिके एक गाय ब्राह्मण को देवै और क्रव्याद वा मृगों को मारिके दूध वाली गाय दान करै

और जो अक्रव्याद जीव मारा हो तो कलोरि बछिया दानकरे और ऊंटको मारिके कृष्णल अर्थात सोने की रत्ती दानकरे॥ २७२॥

(उरगोरगवराहाश्व क्रोयानांवधे)

उरगेष्वायसोदंडोपंडकेत्रपुसीसकम्। कोलेघृतघटोदेयउष्ट्रेगुंजाहयेऽशुकम् २७३

अर्थः—उरग नाम सरीसृप जाति मात्र से किसी एक जीकेमारने मध्ये लोहेका दण्ड दान करे जिसका अग्रभाग पैनी नोकदार होय॰ पडक हिजरा के मारने मे जस्ता सीसा राँग दान करे॰ कोल सूकर के वध करने में घी का भरा घट दान करे॰ ऊँटको मारने में गुंजा अर्थात सोने की कृष्णला रत्ती दान करे॰ घोड़े को मारे तो उसकी उत्तमता आदि के अनुरूप वस्त्रों का दान करे॥ २७३॥

२७३ अधिकोक्तिः=लोहे का दण्ड ब्राह्मण को भोजन कराइके दक्षिणा में देना चाहिये यह व्यवस्था आगे २७५ की अधिकोक्तिमें देखो जहां (हत्वा मूषक मार्जार इत्यादि) पराशर का वचन मिले उसका अर्थ विचारो॥ पडक वालीव्यवस्था यहां देखो—पंडकंहत्वापलालभारत्रपुसीसकवादद्यादितिस्मृत्यतरदर्शनात् पलालभारवाद्यात् त्रपुसीसकचमाषपरिमितंदद्यातइतिमिताक्षराकाराः=अर्थात्=मिताक्षराकार कहिते है और किसी स्मृति मे यह वचन देखा गयाहै कि पडकका वध करिके यातो एक बोझ धान कोदों के पयार का दानकरे या सीसा राँगा दानकरे तिससे पयार का बोझ भी विकल्प से समझि लेना और सीसे राँगे का परिमान कुछ नहीं कहा गया है तिससे एक मासेभर देना चाहिये (चाहैं यह पांचहीकोड़ी का माल क्यों न होताहो) भला इस अतिशय तुच्छ प्रायश्चित्तको एकओर धरो॰ प्रथम इस नामही पर संदेह रूपी तर्कवाद है कि (पंडकोलिंगहीनःस्यात्सस्काराई प्रचनैवसः इतिदेवल वचनेनसामान्येनैव स्त्रीपुलिंगरहितोनिर्दिष्टः) अर्थात्—देवल का यह वचन है कि जो बालक स्त्री या पुरुषों वाले प्रधान लिंग चिह्न से विहीन पैदा होय सो पडक अर्थात निपट नपुंसक होता है उसका कुछ संस्कार भी जनेऊ मूड़न आदि न करना चाहिये=यद्यपि—यह वचन सर्व सामान्य बोधक है तथापि इस वचन के अनुसार यहांपर गाय वृषभ नपुंसक या ब्राह्मण जाति का नपुंसक न समझि लेना क्योंकि इनके वध का प्रसग इनकी जाति के प्रकरणों में आचुका समझना—इसी प्रकार क्षत्री आदि का प्रसग उनके प्रकरणों में आचुका होगा—और यहां पर पडक नाम सामान्य कहा गया है कि जिसमें हरकिसीका अर्थात्लि-

या जासके– तिससे यह कहिने में ठीक ठीक आसक्ता है कि गृहस्थ के घरों में मौजूद नपुंसकों का चर्चा छोड़ो किन्तु निपट नपुंसकोंका समूह एक जुदाभी होता है जिसमें हर एक जाति शामिल होजाने से ब्राह्मण क्षत्री आदि का कुछ भेदऔर नियम बाक़ी नहीं रहिता उन्हीं का यह प्रसंग है जो लोक में हिजरा इस नाम से विख्यात हैं–परन्तु–मिताक्षरा ने यहांपर यह भी निश्चय किया है कि मृग और पक्षियों का प्रसंग वर्त्तमान है नरचर्चा यहां पर नहीं है तिससे पंडक शब्दसे मृगऔर पक्षी ही नपुंसक बताये होंगे–तथापि–मर्यादा परिपाटी उत्तर देती है कि हिजरा ओं का समूह भी ऐसे निकृष्ट प्राणियों में प्रसिद्ध है कि जिसको मनुष्योंके प्रकरण में गिनती न करसके और इसी हेतु से उसको तिर्यक् योनि के समान मानि के यहां पर लाकर मृग पक्षियों के साथ वर्णन किया होगा बल्कि मृग पक्षियों की अपेक्षा देंकुदरीके साथ उसके वध्ये अतिशय तुच्छ प्रायश्चित्त दर्शाया तो इसबात का अचंभा नहीं है (कि जैसा हाथी आदि चौपायों के साथ में तोता और मोर छोटे पक्षियों की उत्तमता दर्शाने के निमित्तसे मिलाकर प्रायश्चित्त कहेथे २७१ मूल श्लोक देखो उसी न्याय से अचंभा यहां नहीं है) और जो इस बात को न-मानो तो फिर यह उत्तर देना चाहिये कि ऋषीश्वरों ने हिजरों का चर्चा किस परिच्छेद में वर्णन किया तहां देखें यदि नहीं कहीं कहा तो फिर यहीहै–अन्यथा-यह उत्तर भी देना चाहिये कि आपने वनवासी मृग पक्षी जो नपुंसक बताये सो क्योंकर पहिंचाने जासक्तेहैं कि नपुंसक हैं या नहीं इसकी क्या परीक्षा (हां केवल बनाये हुये दोपाए पशु ऐसे हैं जो पहिचाने जाते हैं कि बकरा खस्सी और घोड़ा आख़ता और बैल बधिया आदि सो इनका यहां वन्यजीवोंके साथमें प्रसंग नहीं) कदाचित् प्रसंग भी ज़बर्दस्ती मानि लिया जाय तो फिर ये खस्सी आदि बड़े क़ीमती प्रयोजन वाले होते हैं तिनपर यह तुच्छ प्रायश्चित्त भी नहीं सूचित होता–तिससे यह पंडकसंज्ञा केवल हिजरा पेशेवालोंकी समुझना बल्कि इसी विषयपर मनुका एक वचनहै उसमें साफ साफ षंढसंज्ञा कहीहै जो विशेष कर मनुष्यही की बोधक प्रतीत होतीहै=यथाहमनुः=अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः पलालभारकं षंढे सैसकं चैवमाषकम्=अर्थात्–सर्प सरीसृपजातिका कोई जीवमारै सो काठ और लोहेसे बनी अभ्रिदानकरै जो जहाज नौकाआदिका मैल कीचड़ साफकरनेके लिये लोहालकड़ीकीबनी कुदालकहातीहै और षंढ जो निपटनपुंसकहो तिसका वध करनेमेंएकबोझपयारकादानकरै और एकमासेभर सीसारांगाभीदानकरै॥ २७३ ॥

(दानाशक्तौप्रायश्चित्तांतराणि)

तित्तिरौतुतिलद्रोणं। गजादीनामशक्तुवन्॥ दानंदातुंचरेत्कृच्छ्रमेकैकस्यविशुद्धये २७४॥

अर्थः—तीतुर पक्षीका वध करने में तिलोंका द्रोण दानकरै (अर्थात् अधिकोक्ति में कहे द्रोण भरि तौलिके तिल देवै। हाथी आदि सब जीवों की जुदी हत्यापर जो जो कुछ दान करना लिखिचुके सो निर्धन होनेके हेतु से जो कोई उसके देने में असमर्थहोय सो प्रत्येक जुदी हत्याकी विशुद्धि होनेके योग्यही कृच्छ्र आचरै॥ २७४॥

२७४ अधिकोक्तिः=द्रोणस्यपरिमानं यथा=अष्टमुष्टिभवेत्किंचित्किंचिदष्टौतु पुष्कलम् पुष्कलानितुचत्वारिआढकःपरिकीर्तितः चतुराढकोभवेद्द्रोणइत्येतन्मान लक्षणम्=अर्थात्—धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंमें इस रीतिसे द्रोण कहा गयाहै कि आधी छटांक के अनुमान कोई धान्य जो मुट्ठी में आसके सो मुट्ठी कही जाती है• आठ मुट्ठी भर एक किंचित कहाता है सो पाउ भरिका समझना ऐसे आठ किंचितोंका एक पुष्कल होताहै वह दोसेरके उन्मान होगा ऐसे चारि पुष्कलोंका एक आढक होताहै यह आठसेरके अनुमान होगा ऐसे चार आढकोंका एक द्रोण कहाजाता है जो ३२ बत्तीस सेरके लग भग होताहै इतने तिल दानकरै जिसने तीतुर माराहो। ऊपर मूलश्लोक में दानके बदले कृच्छ्र करना कहा गया तहां यदि कृच्छ्रका विशेष कर वही एक प्रधान अर्थ माना जाय कि बारह दिन के प्राजापत्य का नाम कृच्छ्र कहिते हैं तो यह दोष खड़ा होताहै कि हाथीके मारने में भी वही बारह दिन और वही तोताके मारनेमें भी कियाजाय सो यह न्यायका मार्ग ठीकनहीं माना जा सक्ता है (कि सब धान बारह पसेरी के भाव) तिससे कृच्छ्र शब्दका सर्व सामान्य वह अर्थ लियाजायगा कि कष्टसे साधनकिये तपका नाम कृच्छ्रहै चाहे तप छोटा होय या बड़ाहोय—इसी नियमसे छोटी बड़ी हत्याओं की शुद्धि के योग्यही कृच्छ्र होसक्ता है—तो इस मार्ग से यह न्याय ठहिरा कि हाथी की हत्यापर जहां पांच बैल देनेकहे तिनको न देसके सो दोमास भर गोमूत्रमें रँधे जवोंका यावक खायके कृच्छ्र तपकरै तो बारहदिन वाले पांच प्राजापत्यकी बराबर प्रायश्चित्त ठहिरै एवं गदहा आदि के बधपर जहां एकही बैल देना कहा तिसको न देसकने में एकही प्राजापत्य करै जो बारह दिनमें होता है एवं जहां तीनि वर्ष का बछरा देना कहा तहां नौ दिनमें तीनिपाद प्राजापत्य करै जहां दो वर्ष का बछरा देना कहा तहां छः दिन में आधा प्राजापत्य करै जहां २७२ के श्लोक में गायदेनी कही तहां चौबीस

दिनमें दो प्राजापत्य करै जहाँ कलोरि देनीकही तहाँ एक पखवारेका उपवासकरै जहां २७३ के श्लोक मे घीसे भरा घडा देनाकहा तहां तो दिन में पौन प्राजापत्य करै जहां वस्त्रकादान करना कहा तहां घोड़ेकी बडाई आदिके अनुसार एकमहीने वाला चांद्रायण या चौबीस दिनका या पद्रह दिनका व्रत करै जहां लोहे का दंड देना कहा तहां तीनदिनका व्रतकरै जहां तिलोंका दान करना कहा तहां तीनदिन का उपवास करै(फिर इन व्रतोंका परिवर्तन बदल भी जिस रीतिके व्रतों साथ धर्म शास्त्रके विज्ञाता पुरुष विचारि के ठहिरावैं सोभी दोषीकी दशाके अनुसार कोम-लताके निमित्त माना जासक्ता है) और भी (जिन जीवोंके नाम यद्यपि नहीं लिखे गयेहैं तिनके मध्ये २७५ दोसौ पचहत्तरिका मूलश्लोक देखो परन्तु जे कोई जीव इन्हींके समान समझेजायँ जिनकेनाम यहां तक लिखिचुके तौफिर इसी व्यवस्था के अनुरूप उन जीवोंकी उपमा इनमें से ढूंढि मिलाइ के निज बुद्धि से प्रायश्चित्त कल्पित करलेना चाहिये ॥ ० ॥ सामान्य कृच्छ्र शब्द की व्यवस्था जैसी अनेक भेदों से लिखि चुके तिसका प्रमाणभी अग्रोक्त गौतमका वचन देखो=यदाहगौत-मः=संवत्सरःषण्मासाश्चत्वारस्त्रयोद्वावेकश्चतुर्विंशत्यहोद्वादशाहःषडहस्त्र्यहोऽहोरात्र इतिकालनाएतेऽन्येवाऽत्तिदेशोविकल्पेनक्रियेरन्नेनसिगुरुणिगुरूणिलघुनिलघूनीति= अर्थात्–एकवर्ष•एक छमाही•चारमहीना•तीनमहीना• दोमहीना•एकमहीना•चौ-बीसदिनका•बारहदिनका•छःदिनका•तीनदिनका•एक दिनरातिका भी तप होताहै यह कृच्छ्रोंकी कलना अर्थात् गणना गिनती कही (पर इतनेही नहीं किन्तु और भी अनेक गिनतीके होतेहैं तिससे) ये इतने या और जे कोई कृच्छ्र तप होते हों तिनको अति देशके स्थलोंपर विकल्पसे वर्ते किन्तु बड़े पापमेंबड़े कल्प और छोटे पापमें छोटे कल्पों को यथा योग्य सोचिके ॥२७४॥

(अतिसूक्ष्मजंत्वादिवधप्रायश्चित्तं)

फलपुष्पांतरसजसत्वघातेघृताशनम् । किंचित्सास्थिमतादेयंप्राणायामस्त्वनास्थिके २७५

अर्थः–फल• पुष्प• अंत•रसोंसे उत्पन्न प्राणिओं के घातमें घीचाटना=अर्थात्–गूलर आदि बहुधा फलोंमें और महूआ आदि बहुधा फूलोंमें बहुत नन्हे जीव होतेहैं और बहुत दिनोंकी धरीहुई खानीपीनी चीजें और लकड़ीआदि चीजों के बीचमेंभी छोटे जन्तु होजातेहैं तथा मीठे खटमधुरे आदि रसों से भी जीव पड़िजाते हैं • इन जीवों का प्राण विनाशि के घीचाटिजाना उतना कि जितने से मनकी शुद्धि प्राप्त

होसक्के यही प्रायश्चित्तहै। हाड़वालों के घातमें कुछ दान करना चाहिये बिन हाड़ वालोंके घातमें प्राणायाम=अर्थात्–फल फूल आदिसे उपराजू जो प्रत्यक्ष कुछ बड़े जीव होतेहैं जिनका नाम कहीं नहीं लिखा क्योंकि संसार में अनन्त जीव हैं सबके जुदेनाम कहाँ तक लिखे जायँ तिनके मध्ये सामान्य रीतिसे एकही दो प्रायश्चित्त दर्शाते हैं कि–यदि हाडोंवाला कोई एक जीव केकलागेंगटा आदि विनाश किया हो तौ प्रत्येक जीवके मध्ये कुछ कुछ अन्न वा नगदी आदि दानकरे•यद्वा बिन हाड़-वाला कोई छोटाजीव भींगुर ततैया आदि विनाशकियाहो तौ प्रत्येक जीवकेमध्ये एकप्राणायाम जैसा संध्याकेउपासनमें होताहै सोकरे तिससेशुद्धिहोजातीहै॥२७५॥

२७५ अधिकोक्ति=घृताशनेतुमिताक्षरा–पूर्वार्ध में जहां घीका चाटना कहा तिसके मध्ये मिताक्षरा में यह व्यवस्था है कि निपट घीखाय के एकदिन उपवास करे क्योंकि प्रायश्चित्तोंका रूपहै तपस्या सो किंचित् घी चाटने से नहीं मानी जा-सक्तीहै• यहीबात अंगिराके अग्रोक्त वचनसे पाई जातीहै=यथाहांगिराः=प्रायोनाम तपःप्रोक्तंचित्तंनिश्चयउच्यते तपोनिश्चयसयुक्तप्रायश्चित्तंतदुच्यते=अर्थात्–प्राय-स्–चित्तइन दो शब्दोंका अर्थ है कि प्रायस् तप कहाता है चित्त निश्चयका नाम है सो तप और निश्चय मिलिकर प्रायश्चित्तनाम धरागयाहै–तिससे किंचित् घी चाटना ठीक नहीं यह मिताक्षराकारोंने कहा–और मूलश्लोक में साफ साफ यही कहाहै कि (घृताशनंकिंचित्) और (देयंकिंचित्) अर्थात् किंचित् शब्दकी यो-जना पूर्वार्ध उत्तरार्ध दोनों अद्धोंमें प्रत्यक्षहै तौ इसद्विविधा से दोनों तरहसे व्यवस्था समझिलेनी कि जहाँ थोड़ेसेफलफूल आदिके जीव मरें तहाँ किंचितही घी चाटने में शुद्धि होजायगी परन्तु जहाँ कुछ अधिकजीव मरेहों तहां निपट घी खायके उप-वास करना भी उचितहै। वही किंचित् देयके साथहै कि हाड़ोंवाला कोई एकही जीव मरजाने में किंचित् देना चाहिये तहां किंचित् कुछ का अर्थ तो प्रधान है कि कुछ दान करनाचाहिये चाहें अन्न या नगदी आदि जो कुछ बनिपरे फिर उसी कि-ञ्चित्का दूसरा अर्थ आठ मुठ्ठी भी कहाता है जैसा (अष्टमुष्टिभवेत्किञ्चित्) यह २७४ की अधिकोक्तिमेंभी आचुका है कि आठ मुट्ठी भरनाज किञ्चित् कहाताहै जो केवल पाउ भरके अनुमान होसक्ता है–इसपर मिताक्षराकार कहिते हैं कि जो धान्य आदि कोई नाज दानकरे तौ एक जीवकी हत्यापर यही आठ मुट्ठी भर देना चाहिये जो नगदी दानकरे तौ उसी किञ्चित् के अभिप्राय से तांबेका एक पण एक जीवकी हत्यापर देना चाहिये•क्योंकि (अस्थिमतांवधेपणोदेयइतिसुमंतुः) सुमन्तुने

दिनमें दो प्राजापत्य करै जहां कलोरि देनीकही तहां एक पखवारेका उपवासकरै जहां २७३ के श्लोक मे घीसे भरा घडा देनाकहा तहां तो दिन में पौन प्राजापत्य करै जहां बछकादान करना कहा तहां घोड़ेकी बड़ाई आदिके अनुसार एकमहीने वाला चांद्रायण या चौबीस दिनका या पद्रह दिनका व्रत करै जहां लोहे का दंड देना कहा तहां तीनदिनका व्रतकरै जहां तिलोंका दान करना कहा तहां तीनदिन का उपवास करै(फिर इन व्रतोंका परिवर्तन बदल भी जिस रीतिके व्रतों साथ धर्म शास्त्रके विज्ञाता पुरुष विचारि के ठहिरावैं सोभी दोषोंकी दशाके अनुसार कोमलताके निमित्त माना जासक्ता है) और भी (जिन जीवोंके नाम यद्यपि नहीं लिखे गयेहैं तिनके मध्ये २७५ दोसौ पचहत्तरिका मूलश्लोक देखो परन्तु जे कोई जीव इन्हींके समान समझेजायँ जिनकेनाम यहां तक लिखचुके तौफिर इसी व्यवस्था के अनुरूप उन जीवोंकी उपमा इनमें से ढूंढि मिलाइ के निज बुद्धि से प्रायश्चित्त कल्पित करलेना चाहिये ॥ ० ॥ सामान्य कृच्छ्र शब्द की व्यवस्था जैसी अनेक भेदों से लिखि चुके तिसका प्रमाणभी अग्रोक्त गौतमका वचन देखो=यदाहगौतमः=संवत्सरःषरामासाश्चत्वारस्त्रयोद्वावेकश्चतुर्विंशत्यहोद्वादशाहःषडहस्त्र्यहोऽहोरात्र इतिकालनाएतेऽन्येवाऽतिदेशेविकल्पेनक्रियेरन्नेनसिगुरुणिगुरूणिलघुनिलघूनीति= अर्थात्–एकवर्ष•एक छमाही•चारमहीना•तीनमहीना• दोमहीना•एकमहीना•चौबीसदिनका•बारहदिनका•छःदिनका•तीनदिनका•एक दिनरातिका भी तप होताहै यह कृच्छ्रोंकी कलना अर्थात् गणना गिनती कही (पर इतनेही नहीं किन्तु और भी अनेक गिनतीके होतेहैं तिससे) ये इतने या और जे कोई कृच्छ्र तप होते हों तिनको अति देशके स्थलोंपर विकल्पसे वर्ते किन्तु बड़े पापमेंबड़े कल्प और छोटे पापमें छोटे कल्पों को यथा योग्य सोचिके ॥२७४ ॥

(अतिसूक्ष्मजंत्वादिवधप्रायश्चित्तं)

फलपुष्पान्नरसजसत्वघातेघृताशनम् । किंचित्सास्थिमतांदेयंप्राणायामस्त्वनास्थिके २७५

अर्थः–फल• पुष्प• अंत•रसोंसे उत्पन्न प्राणिओं के घातमें घीचाटना=अर्थात्–गूलर आदि बहुधा फलोंमें और महूक आदि बहुधा फूलोंमें बहुत नन्हे जीव होतेहैं और बहुत दिनोंकी धरीहुई खानीपीनी चीजें और लकडीआदि चीजों के बीचमेंभी छोटे जन्तु होजातेहै तथा मीठे खट्टमधुरे आदि रसों में भी जीव पडिजाते हैं • इन जीवों का प्राण विनाश के घीचाटिजाना उतना कि जितने से मनकी शुद्धि प्राप्त

होसके यही प्रायश्चित्तहै। हाड़वालों के घातमे कुछ दान करना चाहिये विन हाड़ वालोंके घातमे प्राणायाम=अर्थात्—फल फूल आदिसे उपराल जो प्रत्यक्ष कुछ बड़े जीव होतेहैं जिनका नाम कहीं नहीं लिखा क्योंकि संसार में अनन्त जीव हैं सबके जुदेनाम कहां तक लिखे जायँ तिनके मध्ये सामान्य रीतिसे एकही दो प्रायश्चित्त दर्शाते हैं कि—यदि हाड़ोंवाला कोई एक जीव छिकलागोंगटा आदि विनाश किया हो तो प्रत्येक जीवके मध्ये कुछ कुछ अन्न वा नगदी आदि दानकरै॰यदा विन हाड़-वाला कोई छोटाजीव झींगुर ततैया आदि विनाशकियाहो तो प्रत्येक जीवकेमध्ये एकप्राणायाम जैसा संध्याकेउपासनमें होताहै सोकरै तिससेशुद्धिहोजातीहै॥२७५॥

२७५ अधिकोक्ति=घृतप्राशनेतुमिताक्षरा—पूर्वार्ध में जहां घीका चाटना कहा तिसके मध्ये मिताक्षरा में यह व्यवस्था है कि निपट घीखाय के एकदिन उपवास करै क्योंकि प्रायश्चित्तोंका रूपहै तपस्या सो किंचित् घी चाटने से नहीं मानी जा-सक्तीहै॰ यहीबात अंगिराके अप्रोक्त वचनसे पाई जातीहै=यथाहांगिराः=प्रायोनाम तपःप्रोक्तंचित्तंनिश्चयउच्यते तपोनिश्चयसंयुक्तंप्रायश्चित्तंतदुच्यते=अर्थात्—प्राय-स—चित्तइन दो शब्दोंका अर्थ है कि प्रायस् तप कहाता है चित्त निश्चयका नाम है सो तप और निश्चय मिलिकर प्रायश्चित्तनाम धरागयाहै—तिससे किंचित् घी चाटना ठीक नहीं यह मिताक्षराकारोंने कहा—और मूलश्लोक में साफ साफ यही कहाहै कि (घृतप्राशनंकिंचित्) और (देयंकिंचित्) अर्थात् किंचित् शब्दकी यो-जना पूर्वार्ध उत्तरार्ध दोनों अद्धामें प्रत्यक्षहै तो इसविविधा से दोनों तरहसे व्यवस्था समझिलेनी कि जहाँ थोड़ेसेफलफूल आदिके जीव मरैं तहाँ किंचितही घी चाटने में शुद्धि होजायगी परन्तु जहाँ कुछ अधिकजीव मरेहों तहां निपट घी खायके उप-वास करना भी उचितहै। वही किंचित् देयके साथहै कि हाड़ोंवाला कोई एकही जीव मरजाने में किंचित् देना चाहिये तहाँ किंचित् कुछ का अर्थ तो प्रधान है कि कुछ दान करनाचाहिये चाहे अन्नया नगदी आदि जो कुछ बनिपरै फिर उसी कि-ञ्चितका दूसरा अर्थ आठ मुट्ठी भी कहाता है जैसा (अष्टमुष्टिभवेत्किञ्चित्) यह २७४ की अधिकोक्तिमेंभी आचुका है कि आठ मुट्ठी भरनाज किञ्चित् कहाताहै जो केवल पाउ भरके अनुमान होसक्ता है—इसपर मिताक्षराकार कहिते हैं कि जो धान्य आदि कोई नाज दानकरै तो एक जीवकी हत्यापर यही आठ मुट्ठी भर देना चाहिये जो नगदी दानकरै तो उसी किञ्चित् के अभिप्राय से तांबेका एक पण एक जीवकी हत्यापर देना चाहिये॰क्योंकि (अस्थिमतांवधेपणोदेयइतिसुमंतुः) सुमन्तुने

से सांपकी जुदीजाति है शायद इसीको दुमुही कहिते हों•इनमें किसी एकही की हत्याकरै सो ब्राह्मणोंको भोजन करावै और पूर्वोक्त रीतिका बनाहुआ लोहेकादंड दक्षिणादेवै ॥ पराशर कहितेहैं कि•सेही•कछुवा•गोह• खरहा• शल्यकी• इनकी हत्यामें बैंगन और गुंजा गोंघुचीके पत्ते आदि खाइके व्रतकरै सो एकदिन राति भर में शुद्ध होताहै ॥ पराशरकहिते हैं कि•मृग हरिण•रोझी वनजीव जो वृक्षपर चढ़ि जानेवाले वानर विपखपरा आदि होतेहैं•वराह•भेड़•बकरा• भेड़हा•शृगाल• रीछ• तरसू तेंदुआ तरख•इनमें किसीकी हत्याकरै सो एक प्रस्थ परिमान तिलोंका दान करै और पूर्वोक्तरीतिसे वायुको पीकर तीनदिनतकव्रतकरै ॥ पराशरकहितेहैं कि• हाथी•भेड़ा•घोड़ा•ऊँट•गवय नीलगाय रोझ इनमें किसीकीहत्याकरै सो एकदिन रातिका उपवास और तीनो संध्या के समय तीर्थ स्नान प्राणायाम करै ॥ पराशर कहितेहैं कि•गदहा•वन्दर• सिंह•चीता•बाघ•इनमें किसीको हत्याकरै सो तीनदिन राति वायु को पीके निराहार उपवास करै और इन सभी पूर्वोक्त प्रायश्चित्तों के पीछेसे यथाशक्ति सत्यासे ब्राह्मणोंको भोजनकरावै यह विशेष नियम सर्वसबके साथ समुझिलेना=और=यह भी यादराखना कि जिन जीवोंकेनाम इस व्यवस्था में न लिखेहैं और लोकमें नाम जिनका प्रसिद्ध होय तो उन जीवों की हत्यापर इस व्यवस्थासे वेही प्रायश्चित्त ढूंढ़िलेना कि जो जो उन जीवोंके तुल्य डील डौलवालों के नामसे इसमें लिखेहैं वनजीवों के साथ वनजीवोंकी उपमा और जल जीवोंकी पक्षियों के साथ पक्षियों के डीलडौल या उनके आचरण आदि एक से मिलाकर कामचलाना यह न्यायका स्वरूप है=इसीप्रकार=औरभी विशेष स्मृतियोंके वचन कहीं देखि परें तिनको भी न्यूनाधिक विषय भेदसे कल्पना करिके समझिलेना और परस्पर वचनों का विरोध बचाते रहिना २७५ ॥ यह व्यवस्थाभी इसी दोसौ पचहत्तर अधिकोक्ति का शेष है २७५ ॥

इतिनरेतरसर्वप्राणिहिंसाप्रकरणं॥

इस प्रकरणमें एकही यह चौवनका परिच्छेद है दूसरा नहीं॥

सब जीवोंकी हिंसा वर्णन होचुकी अब अगिले परिच्छेद में इसी हिंसाके प्रसंग से वनवृक्ष आदि काटने तोड़ने उखाड़ने के प्रायश्चित्त वर्णन होंगे क्योंकि यह भी एक जड़ स्थावरोंको दुखदेना या विनाश करदेना जड़जीवोंकी हिंसाहै और इसका उद्देश भी २४० दोसौचालिस मूलश्लोक से उपपातकों में आचुकाहै उसकी संबंधी

और जरूरी अन्यबातोंको भी खींचके यहां दर्शावेंगे कि जिनकाचर्चा वहांपर न होसकाहो सो सब आगे देखो ॥

अथवृक्षगुल्मलतादिसर्ववनस्पतिछेदनोपपातकप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदःपंचपंचाशत्तम (५५) ॥

इसपरिच्छेद में सबतरहकी वनस्पति वृथा काटने या तोडने वा उखाड़डारने आदि किसी प्रकारसे विनाश करदेने मध्ये प्रायश्चित्त कहे जायँगे चाहैं बड़े वृक्ष हों या गुल्म लता वीरुध आदि छोटी ओषधियें पर्यंत कोईसी वनस्पतिहोय ॥

(वृक्षादिछेदनप्रायश्चित्त)

वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदनेजप्यमृक्शतम्। स्यादोषधिवृथाछेदेक्षीराशीगोऽनुगोदिनम् २७६ ॥

अर्थः–वृक्ष•गुल्म•लता•वीरुध इनको काटने में ऋचाओं का शतक जपनाहोय तथा ओषधिके वृथा काटनेमें एकदिन गौओंके पीछे फिरके दूध पीवै=अर्थात्–फल देनेवाले,आंब कटहरआदिके पेड़ और गुल्म जो वनबागोंमें भाड़ी हुआकरतीहैं लता जो हरतरहकी वेलिफल देनेवाली प्रसिद्ध होयँ एवं वीरुध जो वन में बड़ी मोटी वेलि अधिक फैलती हैं इत्यादि और भी इसी नमूनेपर समझिलेना•इनमें से कुछ प्रयोजन बिना अर्थात् यज्ञादि जरूरी कामों के बिना जो कोई कुछ काटे,या तोड़े वा उखाड़े तिसको गायत्रीआदि पवित्र ऋचाओंका एक सैकरा जपना चाहिये=तथैव=जो वन की या वस्ती के समीप उत्पन्न होनेवाली हरतरह की ओषधियों में किसी पेड़को रोगादि प्रयोजन के बिना उखाड़डारे या तोड़े तिसको यह प्रायश्चित्त है कि प्रातःकाल से सांझतक गौओंकी नरिहाई के पीछे पीछे उनकी उचित सेवाकरता फिरे पुनि रात्रि में थोड़ासा कचादूध पीके व्रतराखे तब शुद्धहोय ॥ २७६ ॥

२७६अधिकोक्ति–यज्ञादि कामों के बिना•इस कथन का यह तात्पर्य है कि रोजके जरूरी पचयज्ञोंके निमित्त फलफूल आदि या सूखी लकड़ी तोड़ने का दोष नहींहै–और दूसरा यह तात्पर्य है कि तोड़ने काटने का दोष जो कहा गया सो भी केवल उन वृक्षादिकोंकी अपेक्षापर आरूढ है जो अपने फल फूल पत्र छालि गोंद आदिसे संसारका उपकार करतेहैं–इसकेमध्ये यह वचन भी प्रमाणहै कि=फलदानांतुवृक्षाणांछेदनेजप्यमृकशतमगुल्मवल्लीलतानांतुपुष्पितानांचवीरुधाम्=अर्थात्–

साफ यही कहाहै कि हाड़वाले जीवोंकी एक हत्यापरसक=इसपण शब्दके यद्यपि कई अर्थ होतेहैं कि सोने की अशरफी या चाँदी का रुपया या तांबेका पैसा जो जिस राजके व्यवहार में चलता हो (क्योंकि पण और नाणक ये दो नाम सिक्के सरकारीके हैं) परन्तु यहाँ छोटे प्रायश्चित्तपर तांबेकापण समझना उचितहै और पैसा यद्यपि सोरहमासेका होताहै तिसको भी तांबेकापण समझतेहैं तथापि शास्त्र की मर्यादासे रुपयेकी सोरहकला अर्थात् आनेपण समझने क्योंकि तांबेके पणोंमें एक आनाही प्रधानहै=किन्तु इसप्रायश्चित्तमें जोकुछ उचितजानो सो मानो तहां यदि आद मुद्दी नाम के विकल्प को सोचे तबतो उसके जवाब में केवल तांबे का पैसा समझि परताहै अन्यथा जो शास्त्रके व्यवहारपर ध्यान दियाजाय तो फिर तांबेका पण ठीक ठीक एक आना ठहिरताहै—परन्तु इन बातोंकी अपेक्षा जैसा योगीश्वरने मूलश्लोकमें कहा तैसा ज्योंका त्यों यही किञ्चिदर्थ ठीकया कि जो कुछ इच्छा में समाय सो थोड़ा बहुत दान करै—तिसके ऊपर धान्य और हिरण्य नाम धरिके फिर ऐसे छोटे अर्थ दर्शायेगये इस व्याख्याकी जरूरत कुछ नहीं थी कि (अस्थि मतां कृकला दादि प्राणिनां प्रत्येक वधे किंचित् स्वल्पं धान्य हिरण्या दिकं देयं तत्र किंचिदिति यदा हिरण्यं दीयते तदा पणमात्रं• अस्थिमतांवधेपणोदेय इति सुमंतुस्मरणात्•यदातुधान्यंदेयंतदाऽप्रसृतिदेयं अप्रसृतिभवेत्किंचिदिति स्मरणादिति मिताक्षरा) अर्थ इसके सब ऊपर लिखचुके ॥ २७५ ॥ अब नीचे वह व्यवस्था लिखी जायगी कि जब किसी जीव ने किसी तरह का अपराध किया अर्थात् खेत खाय जानाआदि नुकसान या ऊपरसे हगिदेना आदि किसीतरह का दुखदिया हो ऐसेही नाना भांतिके उपद्रव कहाते हैं जो किसी जीवने कुछ कोई सा उपद्रव किया तिसके पलटे क्रोध में आकर जिस किसीने उस जीव को मारडारा हो तिस के लिये भी अति छोटे प्रायश्चित्त हैं सो नीचे देखना ॥

(अथ अपराधप्रकरणतिकारे सर्वजंतुवधप्रायश्चित्तं) ॥

अत्राह पराशरः—हंसबारसचक्राह्वक्रौंचकुक्कुटघातकः मयूरमेषौहत्वाचएकभक्तेन शुद्ध्यति मुद्गरटिट्टिभंचैव शुकंपारावतंतथा । आडिकांचवकंहत्वाशुद्ध्येन्नक्तभोजनात् चापकाककपोतानां शारितित्तिरघातकः अन्तर्जले उभेसंध्येप्राणायामेनशुद्ध्यतिगृध्र श्येनविहंगानां सुलूकस्यचघातकः अपक्वाशीदिनंतिष्ठेत्त्रिकालंमारुताशनः हत्वामुष कमार्जारसर्पाजगरडुंडुभान् । प्रत्येकंभोजयेद्विप्रान्लोहदण्डश्चदक्षिणा सेधाकच्छपौ

घानां शशशल्यकघातकः हंताकफलं गुंजाशी अहोरात्रेणशुद्ध्यतिमृगरोहिवराहाणा मविकावस्तघातनेगृध्यजंबूकऋक्षसाणांतरक्षूणांच घातकःतिलप्रस्थश्वमेदद्यादृायुभक्षो दिनत्रयमगजमेयतुरगोष्ट्रगवयानांनिपातनेप्रायश्चित्तमहोरात्रंत्रिसंध्यंचावगाहनम् खरवानरसिंघानां चित्रकव्याघ्रघातकः शुद्धिमेतित्रिरात्रेणब्राह्मणानांचभोजने रिति= अर्थात्–पराशर कहितेहैं कि–हंस•बरक•सारस•चकवा•क्रौंच अर्थात्सारससे जुदा एकक्ररर वा कुररीपक्षी प्रसिद्धहै औरकहींकहींलोकमें टोंक या कोंचवक आदिजो पक्षी हैं तिनको क्रौंचकहिते हैं ये सब लम्बी गर्दनिकेहोतेहैं• मुरगा•मोर•मेढा• इन की हत्याकरिके एकहीवार भोजनके नियमसे शुद्ध होजाता है॥ मुद्गपक्षी जो देश भेदी नामोंसे मोगा मोगदर मूसर कहाताहै•टिट्टिभ टिटिहिरी•सुवा• पारावत कबूतर आदि• आंडिका अनेकजीव जो धरतीपर अंडा धरतेहैं• बगुला•इनको मारिके रात्रिमें भोजन करनेका नियम राखने सेशुद्धहोताहै (इनदोनों प्रायश्चित्तके साथ २७४ की अधिकोक्तिवाली व्यवस्थाके अनुसार छोटे बड़े कृच्छ्रोंकेदिन भी जोड़ि लेना कि वहांपर जिसजीकी हत्यामें जितनेदिन कृच्छ्र करना समुझिपरै उतने दिन तक यह रात्रिमें भोजन वा एकवार भोजनका नियम समझिलेना सोभी उसदशामें कि यदि अपराध के प्रतिकारमें पाप वनिगया हो अन्यथा जानि बूझि हत्या करने से उसी अधिकोक्ति के अनुसार उतनेदिन कृच्छ्रही करना चाहिये• इसीप्रकार यहांके अगिले प्रायश्चित्तोंपर युक्ति सोचिलेना (पराशर कहितेहैं कि•चाष पक्षी जो संसारमें नीलकंठ इसनामसे प्रसिद्धहै अतिसुन्दर और सोनेकेवर्ण सरीखो पीली चोंचवाला•कौआ•पिंडक पिंडखुरी• मैना• तीतर• इनको मारनेवाला सांझ सबेरे दोनों संध्याके ठीक ठीक समयपर जलमें खड़ाहोके प्राणायाम करिके शुद्धहोताहै इसमें भी ऊपरली युक्तिको यथा योग्य सोचिलेना॥ पराशर कहितेहैं कि•गिद्ध• बाज आदिपक्षी जोजो बहुतऊंचे आकाशमें उड़तेहैं•उलूक उल्लू घुग्घू•इनकोहत्या करिके एकदिन इस तरह उपवास करै कि आंचकोपकी वस्तु कुछ न खाय केवल कचेफल खायके रहै फिर दूसरे दिन सबेरे सांझ दोनो समय कुछ भी न खाय केवल वायु हवा पीके रहै इसकी यह रीतिहै कि जहां वन बाग सड़क आदिमें बहुत उत्तम फलफूल आदिकी सुगन्ध वायु बहितीहो तहां उसके सन्मुख एक योजन अर्थात् चारकोसतक हवाको मुखनाक आदि छिद्रोंमें लेता चला जाय तब शुद्धहोय यह योजनभर चलाजाना २७० की अधिकोक्ति मे मनुके वचनसे लिखिचुके तहां देखो॥ पराशर कहिते हैं कि•मूसा•बिलती•सांप•अजगरडुंडुभ डोडा सांप इसनाम

किसी तरह का गुण उपकार रूपी फल देने वाले वृक्षों के काटने में और इसी प्रकार के फल देने वाले गुल्म वल्ली लताओं के काटने में तथा पुष्पित वीरुधों के अर्थात् जिनमे कोई अन्य प्रकार से फल नहीं देख परता हो तथापि जो वीरुत्र झरबेरी वेलि आदि केवल फूलों से लदे हुये दिखलाइ वनकी शोभा को बढ़ाते हों तिनके भी काटने में प्रायश्चित्त चाहिये=इसके सिवाय जो बातें प्रयोजनकी संसार में प्रसिद्ध है दृष्टान्त जैसे खेत खोदना या हलसे जोतना आदि ऐसे प्रसिद्ध प्रयोजनों में औषधीका वृक्ष कटिजाना आदि दोषमें गिनती नहीं है क्योंकि हल खींचने आदिसे जो कुछ दोष उत्पन्न होताहै तिसका प्रायश्चित्त वहीहै जो खलयज्ञ कहाता है अर्थात् नाजकी राशि तैयार होने तक अनेक तरहसे किसान लोग अन्नादिवस्तुओंका दान पुण्य जो कुछ उनकेलिये शास्त्रमे लिखाहै सो करतेरहितेहैं उसीसे दोष दूरहोजाता है—एवं गऊआदि पशुओंका पालनकरनेके निमित्त जो घासआदिकाटी जातीहै उसमें भी प्रयोजनके हेतुसे कुछ दोष नहींहै क्योंकि पशुओं का पालन कर्म भी पंचयज्ञोंका एक अंगभेदहै=और भी वशिष्ठजीका जो वचनहै सो इसी प्रयोजनपर निषेध और प्रति प्रसवके साथही कहा गयाहै=यथाह वशिष्ठः=फलपुष्पोपभोग्यान् पादपान्नहिंस्यात् कर्षणाकरणार्थंचोपहन्यादिति=अर्थात्—फल फूल आदि किसी प्रकारसे भोगने योग्य वृक्षों को न काटे यह निषेध किया॰ परन्तु जोतने के हेतु से धरती साफ करनेके लिये काटे भी यह निषेध कियेहुये का प्रतिप्रसव कहा ॥ ० ॥
परन्तु जहां कहीं स्थान विशेष के हेतुसे काटने पर अधिक दण्ड कहा गयाहो तहां उनके काटने में प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्त से अधिक लगाया जाता है=यथोक्तं=चैत्य श्मशानसीमासु पुण्यस्थानेसुरालये जातद्रुमाणांद्विगुणो दमोवृक्षेतुविश्रुते=अर्थात्—चैत्य जो ऊँचे वृक्ष अस्तल (स्थल) आदि पर पुराने खड़े होतेहैं या मुर्दा फुंकनेकी धरती श्मशान पर होते हैं या सीमाके चिह्न मानेजाते हैं या राह घाट पथिकों के विश्राम योग्य होतेहैं या जिनसे ग्रामोंका दूरी अन्तर कोस योजन आदि जाना जाता है या जिनके नीचे जगत में पशुओंको छाया मिला करती है या जिन बड़े वृक्षों के विशेषणसे किसी ग्राम नगर मुहल्ला देवस्थान खेत कूप आदिका नामही विख्यात या कोई अति प्राचीन वृक्ष किसी कोरे मैदानमें केवल अपने नामसे विख्यात होय जिसके होनेसे पुराने कालका प्राचीन चिह्न माना जाताहो या देवालय आदि पुण्य स्थानमे कोई वृक्ष नवीनही अपने आप पैदा हुआ या लगाया गयाहो इत्यादि वृक्षों के काटने में दूना दण्ड होताहै कि जितना साधारण वृक्षों के काटने पर लिखा हो

तिससे-तो इस दराडके अनुसार प्रायश्चित्त भी दूना करवाया जाय जितना लिखि चुकेहैं तिससे ॥ ० ॥ एकसौ ऋचाका जप करना जो कहागया सो केवल पढे लिखे द्विजातियों का विषय है तिससे स्त्री और शूद्र आदि के लिये जपके स्थान पर दंड के अनुसार दो रात्र आदि व्रतही आदेश किया जाय ॥ ० ॥ दोसौ पैंसठि २६५ मूल श्लोक और उसी की अधिकोक्तिसे चवालिस ४४ परिच्छेदमें जो जो प्रायश्चित्तों के स्वरूप सब सामान्य उपपातकोंपर अतिदेश उतारे गएथे और इस परिच्छेद की व्यवस्था भी उपपातकों में गिनती होचुकी है तिससे उन प्रायश्चित्तों का अतिदेश भी इसपर जोडि लेना चाहिये• और यद्यपि वे प्रायश्चित्त बहुत बडे हैं तथापि यहां ऐसे विख्यात पेड़ों के काटने मध्ये दूने किये विनाही आरूढ होसक्ते हैं• अन्यथा इन वृक्षों से उपरान्त सामान्य वृक्षों को वारम्वार काटने के अभ्यास पर भी आरूढ होसक्ते हैं ॥ २७६ ॥

पुंश्चली स्त्रियां और वानर आदि बहुधा दांत वाले जीवों का मारना जो ऊपर चर्चा किया गया तिसके साथ यहभी सभव है कि जिसको मारनेपर उतारू कोई होताहै तो वह भी क्रोधमें आकर प्रायः काटि खाताहै इसी प्रसंग से यह बातें यहां पर आकर्षण करी गई है कि यदि कोई ऐसे जीवों से काटि खाया जाय तिसको प्रायश्चित्त करना चाहिये फिर चाहे तैसी दशामें काटा गयाहो कुछ मारनेके स• मय परही यह नियम आरूढ नहीहै किन्तु काटिखाने से अशुद्धि जो उत्पन्न होती है तिसका प्रायश्चित्त अगले परिच्छेद मे देखना ॥

अथपुंश्चलीवानरखरादिदंष्ट्रिजीवैर्दष्टपुरुषस्यप्राय श्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः षट्पञ्चाशत्तमः ५६

—※—

इस परिच्छेद से उस पुरुष के प्रायश्चित्त कहे जायँगे जो किसी मलीन पशु पक्षी आदि जीव या मनुष्यही से काटिखाया जाय तिसकी अशुद्धि प्रायश्चित्त करने के विना नहीं मिटती है ॥

(खरवानरकाकादिदष्टस्य प्रायश्चित्त)

पुंश्चलीवानरखरैर्दष्टश्चोष्ट्रादिवायसैः । प्राणायामंजलेकृत्वाघृतंप्राश्यविशुद्ध्यति २७७

अर्थ -पुंश्चली अति व्यभिचारिणी नारी या वंदर या गदहा या ऊँट आदि

मलीन पशु या कौआ आदि मलीन पक्षी यदि मारने आदि किसी दशा में जिसको काटिखायँ सो इनसे दष काटा हुआ जलमें खड़ा होकर प्राणायाम करिके और पीछेसे घी चाटिके शुद्ध होजाता है ॥ २७७॥

२७७ अधिकोक्तिः—मूल में जो आदि शब्द आया तिससे और भी कुत्ता जम्बूक आदि कटखन्ने मलीन जीवोंको समझिलेना जो इस भाँतिके होतेहैं=यथाहमनुः= श्वशृगालखरैर्दष्टोग्राम्यैःक्रव्याद्भिरेवच नराश्वोष्ट्रवराहैश्चप्राणायामेनशुद्ध्यति=अर्थात्—कुत्ता॰ गीदड़॰ खर॰ इनसे काटा हुआ या जो ग्राम के रहैया बिल्ली आदि मांस खानेवालों से काटाजाय या आदिमी काटि खाय या घोडा ऊँट सूअर इनसे काटा हुआ द्विजाती पुरुष प्राणायाम करिके शुद्ध होजाताहै=यह घीका चाटना जो कहि चुके सो केवल भोजन के अभिप्राय पर समझना कि सिर्फ घी चाटिके व्रत करै क्योंकि प्रायश्चित्त तपका रूप होतेहैं और तप उसीका नामहै जिससे देह को कुछ ताप संताप पहुँचै=और यह एकही प्राणायाम जो कहिचुके सो बीमार आदि असमर्थ के निमित्त में समझना क्योंकि सुमन्तुने स्नान विधि और तीनि प्राणायाम कहे हैं=यदाह सुमन्तुः=श्वशृगालमृगमहिषाजाविक खरकरभनकुलमार्जार मूषिकाप्लवककाकपुरुषदष्टानामापोहिष्ठायादिस्नानं प्राणायामत्रयंचेति=अर्थात्—कुत्ता॰गीदड़॰ वनमृग॰ भैंसा॰ बकरा॰ भेड़ा॰ गदहा॰ हाथी॰ नेउरा॰ बिल्ली॰ मूसाघूंस॰ प्लवक जो बगुलाकी सूरतिके अनेक छोटी बदक से होतेहैं॰ कौआ॰ मनुष्य॰ इनसे काटे हुये पुरुषोंको आपोहिष्ठा आदि ऋचाओंसे अभिषेक स्नान और तीनि प्राणायाम करने चाहिये=यहां तक जो प्रायश्चित्त कहा सो केवल तोंदीसे नीचे किसी अगमें थोडा सा काटा जाय॰ अन्यथा किसी ऊपरले अंगमें काटै या तोंदीसे नीचे भी कुछ अच्छी तरह काटै तिनके प्रायश्चित्त कुछ बड़े हैं सो आगे अंगिरा के वचन से देखो ॥ ० ॥ यदाहांगिराः=ब्रह्मचारीशुनादष्टस्त्र्यहंसायंपिबेत्पयः गृहस्थश्चेत्द्विरात्रतुएकाहंयोऽग्निहोत्रवान् नाभेरूर्ध्वंतुदष्टस्यतदेवद्विगुणंभवेत् स्यादेतत्त्रिगुणं वक्त्रेमस्तके चचतुर्गुणम्=अर्थात्—यदि ब्रह्मचारी कुत्ता आदि किसीसे काटा जाय सो तीन दिन स्नान प्राणायाम सहित ऐसा व्रत करै कि सांझको दूध पीकेरहै और जो गृहस्थ काटा जाय तो वह दोही दिन का व्रत करै और जो गृहस्थों मे अग्नि होत्री पुरुष काटा जाय सो एकही दिन दूध पीने का व्रत करै॰ परन्तु यह तीनों का नियम केवल उसी दशा में समझना जो नाभि से नीचे काटि खाया हो—किन्तु—नाभि से ऊपर काटि खाने में येही सब तीनों को अपने अपने व्रत दुगुने करने चाहिये और

जो मुखमें काटिखायाहो तो वेही व्रत तिगुने करने चाहिये और जो माथेपर काटा गया हो तो वेही व्रत चौगुने करें तब शुद्धहोय॥ ये प्रायश्चित्त ब्राह्मण के निमित्त पूर्वपूर्वकहेगयेहैं इनमें से क्षत्रीको पौन और वैश्य को आधाप्रायश्चित्त देनाचाहिये और शूद्र को यदि कुत्ते आदि कोई जीव काटें तब उसके लिये वृद्धव अंगिरा मुनि का कहा विधान बतलाया जाय=यदाह वृद्धांगिराः=शूद्राणांचोपवासेनशुद्धिर्दानेनवापुनः गांवादद्याद्वृषचैकंब्राह्मणायविशुद्धये=अर्थात्–शूद्रों की शुद्धि केवल उपवास या दान करने मात्र से होती है परन्तु जो उत्तम अङ्गों में काटा हो तो एक गाय या बैल का दान करे॥ ०॥ इनसे उपरान्त जो एक सौ प्राणायाम का प्रायश्चित्त है सो उस दशा पर समझना कि मुख मस्तक आदि उत्तम अंग पर काटने से लार आदि मल ओठों से छुइगया हो=यदाह वशिष्ठः= ब्राह्मणस्तुशुनादष्टोनदींगत्वासमुद्रगाम् प्राणायामशतंकृत्वाघृतंप्राश्यविशुद्ध्यति=अर्थात्–ब्राह्मण यदि उत्तम अंग में कुत्ता आदि से काटा जाय सो समुद्र में मिली हुई किसी दीर्घ नदी में जाकर स्नान करे तहां जलमें प्राणायामों का सैकरा पूरा करिके पुनि घी चारिके विशुद्ध होता है॥ ०॥ अथस्त्रीणांविशेषः–स्त्रियां यदि कुत्ता आदि से काटी जायँ तिनके लिये जुदे प्रायश्चित्त हैं=तदाह पराशरः=ब्राह्मणीतुशुनादष्टाजम्बूकेनवृकेणवा उदितंग्रहनक्षत्रंदृष्ट्वासद्यःशुचिर्भवेत्=अर्थात्–ब्राह्मणी जो कुत्ता या शृगाल भेड़हाआदि किसी से काटी जाय सो काटने के बादि आनेवाली रात्रिमें ग्रह नक्षत्रों को उदय हुये देखि के तत्काल शुद्ध होजाती है किन्तुउदयहोनेतक उपवास राखै=और=जोकिसीप्रकार के व्रतआदि नियमों की साधनामें लागरही हो तिसकेलिये औरभी विशेषता उन्हीं नेकहीहै=तदप्याहपराशरः=त्रिरात्रमेवोपवसेच्छुनादष्टातुसव्रता सघृतंयावकंभुंक्त्वा व्रतशेषंसमापयेत्=अर्थात् जो व्रतों में लगीहुई कोई नारी कुत्ता आदिसे काटीजाय सो बीचमें उसव्रतादिक नियमको थांभिकर तीनिदिनघीके साथअलोना जौका दलिया खायकेउपवासकरै तिसपीछे अपनेबाकीनियमकोसमाप्त करै=एवं=रजस्वलास्त्रियों के निमित्तमें पुलस्त्यमुनिने विशेषनियम कहाहै=यथाहपुलस्त्यः=रजस्वलायदादष्टा शुनाजम्बूकरासभैः पञ्चरात्रंनिराहारापञ्चगव्येनशुद्ध्यति ऊर्ध्वन्तुद्विगुणंनाभेर्वक्त्रेतु त्रिगुणन्तथा चतुर्गुणंस्मृतंमूर्ध्नि दष्टेऽन्यथाप्लुतंभवेत्=अर्थात्–रजस्वला यदि कुत्ता गीदड़ गदहा आदि से काटीजाय तो वह काटनेके दिनसे लेकर पांच रात्रि तक निराहार व्रत करती और पञ्चगव्यको लेतीहुई रहिकर शुद्ध होती है–परन्तु जो नाभि से ऊपरले अंग में काटीजाय सो इससे दूना दश दिनका व्रतकरै और मुहमें जो

काटी जाय सो तिगुना किन्तु पखवारा भर व्रत करै और मूड़ पर काटी जाय सो चौगुना बीस दिन का व्रत करै तब शुद्ध होय॰ रजस्वलासे अन्यत्र कोई साधारण स्त्री जो काटीजाय सो केवल स्नानसे भी शुद्ध होसक्ती है (रजस्वला स्त्रियों के नियम बहुतबड़े हैं तिनको वैद्यक शास्त्र भावप्रकाश आदि बड़ग्रन्थोंमें देखो उन्हीं नियमों के हेतुसे यहां भी उसके लिये बड़े प्रायश्चित्त कहेगये हैं कि ऐसे प्रायश्चित्तों से शरीरकी शुद्धि उसकी न करी जाय तो फिर कुत्ते और चण्डाल आदि के स्वभाव लक्षण वाली सन्तान पैदा होगी ॥

पुरुषेष्वपि विशेषः—जहां कुत्ता आदि ने निपट काटा तो न होय पर केवल शरीरको सूंघा या चाटलिया हो तिसकेमध्ये शातातपने छोटा प्रायश्चित्त कहाहै =यथाहशातातपः=शुनाघ्रातावलीढस्य नखैर्विलिखितस्यच अद्भिःप्रक्षालनंशौचम- ग्निनाचोपचूलनम्=अर्थात्—कुत्ताबिल्लीआदिने देहकोसूंघा या चाटाहो या नख पंजों से खरोंचदिया हो तिसकेलिये जलसे धोयडारना और पीछेसे आंचमें सेंकिडारना यही शौच रूपी प्रायश्चित्तहै ॥ ० ॥ जहां कहीं कुत्ता आदि के काटने नघोटने से व्रण घाव होजाय अथवा हथियार आदि और ही किसी चोटसे घाव होके पकि जाय तिसमें राध पड़जाने से कीड़े भी परें तिसके बाबत मनु ने प्रायश्चित्त विशेष कहाहै=यथाहमनुः=ब्राह्मणस्यव्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे कृमिरुत्पद्यतेयस्य प्राय श्चित्तकथम्भवेत् गवांमूत्रपुरीषेणत्रिसन्ध्यंस्नानमाचरेत् त्रिरात्रंपंचगव्याशीत्वधोना भ्याद्विशुद्ध्यति नाभिकण्ठांतरोद्भूते व्रणेचोत्पद्यतेकृमिः षड्रात्रंतुत्र्यहंपंचगव्यापान मितिस्मृतम्=अर्थात्—जिस ब्राह्मणके घावके द्वारा रक्त राध पीब होजाने में कीरी पैदा होवें तिसका प्रायश्चित्त कैसे होय (घावपूरि जाने के बादि) गौओं के मूत्र और गोबर से तीन दिन तक त्रिकाल स्नान किया करै और पंचगव्य मिलाइ के पिया करै तो उस दशा में शुद्धि होजायगी कि जिसके नाभि से निचले अंगों में राध कीड़े परे हों॰ अन्यथा जिसके तोंदी से गले तक बीचके धड़ में कहीं परेहों तो कृमिके परने बाबत छः दिन और विना कृमि के राध हो जाने बाबत तीनिही दिन पंचगव्यका पीना आदि सब करै=इस व्यवस्थामें इतना भेद विशेष है कि जिसके कुत्ता आदि किसीके काटनेसे घाव होकर कृमिपड़े हों सोतो काटने मात्रके निमित्त का प्रायश्चित्तपहिले करिके तिसपीछेराधि और कृमिके मध्येअपोक्तप्रायश्चित्त को भीकरै॰परजिसके केवल चोटआदिकुछहथियारसे घावहोकरपीब याकृमिपरे हों सो केवल अपोक्त प्रायश्चित्त करै जो तीन दिन पंचगव्य पीना आदि कहा॥०॥

ये प्रायश्चित्त भी ब्राह्मणके निमित्तपर कहेगये तिससे ब्राह्मणको पूरपूर और क्षत्री को पौना और वैश्यको आधा और शूद्रको चौथाई मात्रदेनाचाहिये यही इसमें न्याय का स्वरूप है–इतिश्वादिदष्टस्यप्रायश्चित्तानि ॥ इस परिच्छेद मे कुत्ता कौआ वानर गदहा आदिसे केवल काटिखाने या चोंच पजासे न घोंटिजाने का प्रसग है–अन्यथा ब्राह्मण आदि तीनि वर्णोंकी नैत्तिक शरीर शुद्धिके प्रायश्चित्त चौथे परिच्छेद में सर्व सामान्य वर्णन होचुके तहीं तीसवें मूलश्लोक और उसीकी अधिकोक्तिमें अच्छी तरह देखो कि सब तरहकी अशुद्ध वा मलीन चीजों के छुइजाने तथा रजस्वला नारी और चंडाल आदि अधम मनुष्योंको छुइजाने तथा कौआ चील्ह गीध चिमगादर आदि और कुत्ता बिल्ली गर्दभ ऊँट सुअर आदि अशुचि जीवों के छुइजाने मात्र के छोटे छोटे प्रायश्चित्त हैं जिनसे नित्यप्रति शरीर शुद्धि बनी रहि सक्ती है ॥ २७७॥

इतिश्वादिदष्टस्य प्रायश्चित्तानि ॥

इतिस्थावरहिंसादि प्रकरण॥

(इस प्रकरण में पचपन ५५ और छप्पन ५६ के दोही परिच्छेद हैं)

ऊपरले परिच्छेदमें काटिखानेका चर्चा था जिससे शरीर की एक धातु अर्थात (त्वचा) खाल कटिजाती है और उसीसे दूसरी धातु रक्त और तीसरी धातु मांस और चौथी धातु मेदा और पांचवीं धातु हाड़ और छठी धातु मज्जातक बिरलेघाव से कटिजाती या गलिके राधि होजाती है तभी कीड़ परते हैं यह सब उसीके ध्वन्यर्थ मे वर्णन होगया अर्थात जो राधि और कीरा परनेके प्रायश्चित्त कहेगये सो सब इन्हीं बातोंकी हानिपर समझने–तहां एक सबसे अन्त का सातवां धातु शुक्र वीर्य है तिसकी हानिका प्रायश्चित्त आगिले परिच्छेद में जाकर सब से जुदा कहा जायगा क्योंकि उसकी हानि भी जुदे प्रकारोंसे होती है कुत्ता काटने आदिके द्वारा नहीं होती ॥

जपिडारै।अशुचि देखने में साविनीजपै और चपलतासे झूंठ बोलि के भी=अर्थात्-किसी अपवित्र चीज वा ठिकानेका दर्शन अचानक होजाय तो अपने स्थानपर आकर आसन बिछाने आदि विधिके साथ बैठिकर सविता देवता सूर्यनारायण की ऋचा (तत्सवितुःइत्यादि) एकमालाजपै तथा इसी गायत्रीको वह पुरुष जपै जिसने हासी ठट्ठा आदि की चपलता में झूंठ बहुत बोला हो (इसका यह तात्पर्य है कि हासी आदिके विना अकस्मात् झूंठ जिसने बोलाहो तिसको इससे बड़ा प्रायश्चित्त चाहिये और जिसने किसी मामिलेपर असत्य बोलाहो तिसके बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं सुरापानवाले प्रकरण में कहिचुके और बड़ापनका रूपदेखौ२२९के श्लोक वा उसीकी अधिकोक्ति में ॥ २७९ ॥

२७९ अधिकोक्तिः—यहव्यवस्था जो कहीगई सो ऐसी दशापर समझनी कि जहां जलमें छाया और अशुचिस्थान वा वस्तु देखने या हासी आदिमें झूंठ बोलने का बचाव होसक्ते हुये न किया हो अन्य या अपने प्रयत्न से बचाव करते हुये भी बचाव न होसका हो तिसकेलिये अग्रोक्त मनुवचनके अनुसार केवल आचमन करना सूचित होताहै=यदाहमनुः=सुप्त्वाक्षुत्वाचभुक्त्वाचनिष्ठीव्योक्त्वानृतानिचपीत्वाऽपोऽध्येष्यमाणश्चआचामेत्प्रयतोऽपिसन्=अर्थात्—सोइके॰कुछ मूली गांडा आदि खाइके॰छींक आजानेसे॰ खँखार थूकनेसे॰ विनाचाही लाचारी की असत्य बोलने से॰कोई पतरीचीज रस दूध आदिजल पर्यंत पीनेसे॰पढ़ना आदि पाठ करनेसे॰ इन सबसे जब निपटै तभी आचमन अर्थात् अच्छीतरह कुला करै यही प्रायश्चित्त है= इसके सिवाय जो संवर्तका वचन है कि=क्षुतेनिष्ठीवनेचैवदंतश्लिष्टेतथाऽनृते पतितानांचसंवादेदक्षिणंश्रवणंस्पृशेत्=अर्थात्—छींकनेपर॰थूकनेपर॰दांतमें कुछलगाहोने पर॰तथा असत्य के सुननेपर॰पतितों के साथ बात कहिनेपर॰ दाहिनाकान अपना स्पर्श करडारै—सो यह कानका छूनामात्र किसी अतिशय थोड़े प्रयोजनोंपर अथवा जहां निपट जलकी प्राप्ति न होसके तहांपर समझना कि अबलाचारी में और क्या होसक्ता ॥ २७९ ॥

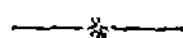
योगीश्वरने२३६ दोसौछत्तीस मूलश्लोक में सभी वैश्य शूद्र और स्त्रियोंका वध गिनती कियेके बाद (निंदितार्थोपजीवन और नास्तिकता) येदोनों उपपातक दर्शाये थे तिनका भी प्रायश्चित्त इसीस्थलपर क्रमसे कहिना चाहिये सो लिखते हैं॥

निंदितार्थोप जीवनके अर्थमें स्त्री वा पुरुष आदिका बेंचना भी समझना॥

(निंदितार्थोपजीवनस्यनास्तिक्यस्यचप्रायश्चित्त)

इन दोनोका मुख्यस्वरूप२३६मूलश्लोक में देखो परन्तु यहांपर नास्तिक शब्द से भी वेदकी निन्दा करनेके द्वारा उपजीवन ठहिरायागया है–इनके प्रायश्चित्तय- द्यपि योगीश्वरने जुदेनहीं कहे तथापि २६५ दोसोपैंसठि मूलश्लोक और उसी की अधिकोक्ति में योगीश्वर और मनुके कहे सामान्य उपपातकोंवाले प्रायश्चित्त जो ४४के परिच्छेद में वर्णन होचुके हैं वेही सब इनकेमध्ये दोषीकी जाति और शक्ति गुण दोषकी तौलके अनुरूप यथायोग्य समझलेना–परन्तु–वशिष्ठने इन दोनोकी अपेक्षापरजुदे प्रायश्चित्तभीदर्शायेहैं=यथाहवशिष्ठः=नास्तिक कृच्छ्रन्द्वादशरात्रंचरि त्वाविरमेन्नास्तिक्यात नास्तिकवृत्तिस्त्वतिकृच्छ्रमिति=अर्थात–नास्तिकताकीवात चीतकरनेवाला बारहदिन कृच्छ्रव्रत करिके नास्तिकताकी बातोंसे हाथखींचे और जिसने उसी नास्तिकता से जीवनकी वृत्ति खड़ी करी होय सो अति कृच्छ्र करिके उस वृत्तिसे हाथ खींचे–सो यह प्रायश्चित्त भी एकहीबार नास्तिकता करनेवालेपर चारुढहैअर्थात४४परिच्छेदवाले बड़े प्रायश्चित्त उसकेलिये समझना जिसनेनास्ति कता का बहुत दिन अभ्यास किया हो=इसके सिवाय जिसने बड़ी दृढता के साथ बहुतकालतक नास्तिकता सेवनकरीहोय तिसकेलिये आगेशंखऔर हारीतकेवचन देखो॥ ०॥ यदाह शंखः=नास्तिकोनास्तिकवृत्तिः कृतघ्नःकूटव्यवहारीमिथ्याभिशं सी इत्येतेपचवत्सरंब्राह्मणगृहेभैक्ष्यचरेयुः=हारीतेनतु=नास्तिकोनास्तिकवृत्तिरि- तिप्रक्रम्य पंचतापोऽभ्रावकाशजलशयनान्यनुतिष्ठयुरिति ग्रीष्मवर्षाहेमंतेष्विति= अर्थात–शंखने यह कहा है कि॰ नास्तिक॰ नास्तिकवृत्तिवान॰ कृतघ्न जो किसीके किये उपकार को मेटैं॰ कूट व्यवहारी जो खानी पीनी चीजों में मिलावटकरै॰ मि- थ्याभिशंसी जो सच्चे पर झूठा पाप लगावे॰ये पांचों एकवर्ष भर ब्राह्मण के घरोंमें भीख मांगि खाया करें और सच्चे नियम साधें तब शुद्ध होयँ=हारीत नेभी नास्तिक और नास्तिक वृत्ति आदिके नाम धरिके उन सबकेलिये तीनि भांति से तपस्या- रूपी प्रायश्चित्त कहे हैं कि॰ग्रीष्मकाल में पचाग्नि तपैं और वर्षाकाल में बरसते हुये मेघों को शूने आकाश के नीचे बैठिके मूड़पर झेलें और हेमंत शीत ऋतु में जलाशय की प्रवाह धारा में बैठिके ध्यान करैं=शंख और हारीत दोनों का कथन मिलाइ के यह तात्पर्य ठहिरा कि एक सालभर ऐसा तप करते हुये ब्राह्मणों के

अथवीर्यस्कंदनाद्युपपातक प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः सप्तपंचाशतमः (५७)



इस परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तोंका स्वरूप कहा जायगा जो देहका सातवां धातु शुक्र वीर्य किसी तरह से बिगाड़ि देनेमें होते हैं या जलमें मुह छाया देखि लेनेपर या कोई अशुचि वस्तु देखि लेनेपर या निंदित उपजीवन या नास्तिकता खड़ीकरने पर प्रायश्चित्त कराये जातेहैं॥

(वीर्यपातप्रायश्चित्तं)

यन्मेद्यरेतइत्याभ्यांस्कन्नंरेतोऽभिमंत्रयेत् स्तनान्तरंभ्रुवोर्मध्येतेनानामिकयास्पृशेत् २७८॥

अर्थः—(यन्मेद्यरेतः) इत्यादि इन दो मंत्रों से गिरे हुये रेतसको अभिमंत्रित करै उस अभिमंत्रित कियेसे अनामिका से लेकर स्तनों के बीच और दोनों भौंहके बीच स्पर्श करै=अर्थात्—मनुष्यको ब्रह्मचर्यसे रहना उचितहै कि देहके वीर्यकी हानि न होने देवे यदा गृहस्थी होय सो भार्याके सम्भोग विना वीर्यको निरर्थक न गिरावे॰ इसपर भी कदाचित कामदेवकी प्रवलता अपने हठसे या स्वप्न आदि और ही किसी दशामें वीर्यपात होजाय तव यह एक प्रकारका उपपातक आरूढ होताहै तिसकी शुद्धिके निमित्त यह प्रायश्चित्तहै कि—(तन्मेरेतःपृथिवी॰अरक्षापुनर्मामेरिविन्द्रिय) इन दो ऋचाओं का स्वरूप जैसा वेदोक्त मंत्रोंमें उपस्थितहै तैसा दोनों को पढ़िकर अपने गिरेहुये रेतस्वीर्यको तत्कालही अभिमन्त्रित करै फिर सवसे छोटीअगुनियों के पासवाली अनामिका उँगुरी से किंचिन्मात्र लेकर मंत्रोंको पढतेहुये हृदयमें विभूतिकी तरह लगावे और, माथेके नीचे दोनों भृकुटीके बीचमें छुआवे तिस पीछे स्नानआदि शौचक्रिया जो उचितहोय सो करै तव इसउपपातकसे शुद्धहोताहै२७८॥

२७८ अधिकोक्तिः—श्रीमन्मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर कहते हैं कि मूल श्लोक में ठीक ठीक अर्थ यही है जो लिखा गया परन्तु विरले टीका कारोंने यह तात्पर्य मानिकर कि गिरा हुआ वीर्य फिर छूना न चाहिये क्योंकि अशुचि होजाता है तिससे इस असली अर्थको छोड़िदो और ही अर्थ लगायाहै कि—मूलमें तेन शब्दसे अंगूठा मान क्योंकि बहुधा अनामिका के साथ अंगूठा भी कुछ उठाने छूनेमें भरने

आदि में चलताहै तिससे अँगूठा और अनामिका दोनोंकी चुटकी बुद्धिस्थ बनाकर हृदय आदि में छुआनी किंतु वीर्य को न छूना चाहिये (किन्तु मूल में अगुष्ठ शब्द जोड़ने से एक अक्षर बढ़िकर छन्दोभंग होजाता तिससे अगुष्ठको तेन शब्दही से निर्देशकिया होगा यह तर्कना खड़ी करी है) सो यह अर्थ असत् है क्योंकि बुद्धि के भीतर कोई छिपाहुआ अगूठा कहीं नहींदेखा सुनाहै बल्कि यह प्रत्यक्ष दूषणाहै कि जो शब्द उसके पास है तिसको छोड़िके अर्थ से बुद्धिस्थ अँगूठे को लाकर उसमें जो है—इसकेऊपर तर्कशास्त्रमें यहमसल प्रसिद्धहै कि (गम्यमानस्यचार्थस्यनैवदृष्टंविशेषणम् शब्दांतरैर्विभक्त्यावाधूमोऽयज्वलतीतिवत्) जिसअर्थकी प्राप्तिहोय तिसके विशेषणको नहींदेखा शब्दोंके अंतरसे यहा विभक्तिसेही कहिदिया सो उस न्याय केतुल्य ठहिरताहै कि बिना प्रमाणोंके धुआँ जलताहै कहिदियाजाय—विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि अशुचि होने के हेतु से रेतस् को छूने की अयोग्यता नहीं सिद्धहोती है क्योंकि जो रेतस् को अशुद्ध माना तो शरीर भी उसकाल में अशुद्ध ही होता है तो फिर छूने से क्या परहेज तिसपर यह कि प्रायश्चित्त रूपी विधान किया गया और मंत्रो के पढ़ने की आज्ञा ठहिराई तोफिर छूनेमें अयोग्यता कहां रही बल्कि योग्यता ठहिरी॰ इसका भी दृष्टांत है कि जैसे सुरा पीने वाला उसके पीने से पतित होता है फिर भी प्रायश्चित्त के निमित्त पर गरम करिके वही सुरा पिलानी कहिचुके हैं सुरापान के प्रायश्चित्तों वाले प्रकरणमें देखो॰ तिससे वही अर्थ ठीक है॥ ०॥ यह प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो केवल गृहस्थ को उस दशा में समझना कि जहां इच्छा किये बिना निरर्थक वीर्यका पात होय॰ ब्रह्मचारीके लिये जागते सोते दोनों दशा मध्ये बड़े प्रायश्चित्त आगे आवेंगे—और—मनु का यह वचन है कि=गृहस्थःकामत कुर्याद्रेतसः स्कंदनंभुवि सहस्रंतुजपेद्देव्या.प्राणायामैस्त्रिभिःसहेति॰ तत्कामकारविषय=अर्थात्—गृहस्थी पुरुष यदि इच्छा से वीर्य्य का पात धरती पर करे सो तीन प्राणायामो सहित गायत्री के हजार मंत्र जपे—यह वचन खुलासा है किजिसने इच्छासे चाहिकर वीर्यपात कियाहो सोयह प्रायश्चित्त करै॥२७८॥

(जलांतःप्रतिविम्बदर्शनादिप्रायश्चित्त)

मयितेजइतिच्छायांस्वांदृष्ट्वाम्बुगतांजपेत् । सावित्रीमशुचौदृष्टेचापल्येनानृतेऽपिच २७९॥

अर्थः—जलमें पहुची अपनी छाया (मुखकाप्रतिविम्बआदि) देखिके॰मयितेज इन्द्रिय॰इस वेदोक्तपूरे मंत्रको (यथाशक्ति एकसे आदिलेकर कुछ कुछ) उसीसमय

प्रधान व्रत वीर्य धातु का रोकना है उस धातु का निकासि डारना अवकीर्ण (वि-थोरि देना खिंडाइ देना फैलाइ देना यही अवकीर्ण) कहाता है. जिसने धातु का अवकीर्ण किया सो अवकीर्णी ठहिरा इसीलिये योगीश्वर ने मूल श्लोक में कहा है कि–ब्रह्मचारी होके यदि किसी भी योषिता नारी में गमनकरै सो अवकीर्णी होता है वह निर्ऋति देवता के निमित्त गदहा पशु का बलिदान करिके उसका नैर्ऋत नाम याग करै तब शुद्ध होय ॥ २८० ॥

२८०अधिकोक्तिः–गदहा नामसेही पशु समझा जाता फिर उसके साथ मूल में पशुक्यों कहागया•इसका यह तात्पर्यहै कि(अथपशुकल्पइत्याश्वलायनादिगृह्योक्त पशुधर्मप्राप्त्यर्थं),आश्वलायन आदि के गृह्यसूत्र में इसी रीति से कहागया है कि अथपशुकल्पः जहां इतना लिखा देखा और समझागया कि गर्दभयाग करनाचा-हिये सो उस प्रकार के पशुधर्म्म की पहुंच समझी जानेके लिये दुबारा पशु शब्द दिया गयाहै ॥ ० ॥ गर्दभयाग जो करना बताया सो वनके समीप चौराहेपर लौकिक अग्नि से करना चाहिये क्योंकि वशिष्ठ ने साफ साफ यही कहा है कि=ब्रह्मचारी स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नौरक्षो दैवतंगर्दभंपशुमालभेतेति वशिष्ठः= अर्थात्ब्रह्मचारी यदि स्त्रीके पासजाय तौ वनमें चौराहेपर लौकिक अग्निमें राक्षस देवके निमित्त गदहा पशु को होम करै (क्योंकि गदहा पशु का देवता राक्षसही होते हैं वे उसी अपने पशु के मांससे प्रसन्न होते हैं उन्हीं राक्षसों का प्रसन्न करना आवश्यक ठहिरा कि जिससे फिर आगे को अपनी राक्षसी प्रकृतिका असर ब्रह्म-चारी पर कभी न उतारें जिससे उसे स्त्री संगम की इच्छा उत्पन्न होसकी हो•आलं-भन वेदोक्त वध कहाता है उसी से फिर होम याग किया जाता है यह तात्पर्य समझलेना) इसी याग में यह और विधान है कि रात्रि में करना चाहिये और गदहा एक आंखि वाला काना लेआना चाहिये=तदाह मनुः=अवकीर्णीतुकाणेनरासभेन चतुष्पथे पाकयज्ञविधानेनयजेतनिर्ऋतिंनिशि=अर्थात्–मनुका यह वचन है कि अवकीर्णी ब्रह्मचारी काने गदहासे चौराहेमें जाकर वहां रात्रिमें निर्ऋति जो राक्षसों का प्रधान अधिपति देवताहै तिसका यज्ञकरै पर कच्चे मांससे न करै किन्तु पाकयज्ञ के विधान से करै जिससे निर्ऋति अच्छेप्रसन्न होयँ ॥ ० ॥ पशुयज्ञका बानक न बनि परै तौ खीरहीसे होम करै यह उसका अनुकल्प है क्योंकि अगिले वशिष्ठ के वचन से यहबात सिद्धहै=यदाहवशिष्ठः=निर्ऋतिंवाचरुंनिर्वपेत्तस्यजुहुयात् कामायस्वाहा कामकामायस्वाहा निर्ऋत्यैस्वाहारक्षोदेवताभ्यःस्वाहेति=अर्थात्–निर्ऋतिपशु नहो

घर से भिक्षा लेकर भोजन किया करें तब शुद्ध होयँ सो यह इतना बड़ा कठिन प्रायश्चित्त केवल उनके लियेहै कि जिन्होंने नास्तिकता आदि बड़ी दृढताकेसाथ बहुत कालतक अभ्यास किया हो॥२७९॥ इसी दोसौ उनासीवाली ऊपरली अधिकौफ़्का शेष पाठ यहभीहै केवल विषय जुदा होनेसे स्थापना भेदकियागयाहै॥

योगीश्वर ने २३६ मूल श्लोक में नास्तिक्य से अनंतर (व्रतलोप) इस कर्म के नामसे अवकीर्णी ब्रह्मचारी का उपपातक दर्शाया था उसका प्रायश्चित्त भी योगीश्वर आपही अगिले श्लोक से प्रकाश करते हैं॥

अथ अवकीर्णब्रह्मचार्यादीनां शुक्रहानौ प्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः अष्टपंचाशत्तमः(५८)



इस परिच्छेद में उनके प्रायश्चित्त कहे जायँगे जो ब्रह्मचारी आदि अवकीर्णी होगये हों अर्थात् मुख्य तो अवकीर्णी ब्रह्मचारी कहा गयाहै परन्तु उसके उपलक्षणसे वानप्रस्थ और सन्यासी आदि यतीपुरुषोंके प्रायश्चित्त भी वर्णन होंगे क्योंकि वीर्य का थांभनारूपी ब्रह्मचर्य इन सबही के होता है–अथवा इनमेंसे कोई अपना आश्रय छोड़ि भागे या घर बसावे–यद्वा शास्त्रीय मरणकेधर्मोंसे भागे तिसके प्रायश्चित्तहैं–अथवा मरने के प्रसंगमें अशास्त्रीय मरण पर गृहस्थी आदि कोईभी उपस्थित होय या निपट मरजाय तिसके भी॥

(ब्रह्मचारिणोऽवकीर्णित्वस्य प्रायश्चित्तं)

अवकीर्णीभवेद्गत्वाब्रह्मचारीतुयोषितम्। गर्दभंपशुमालभ्यनैऋतंसविशुद्ध्यति २८०

अर्थः–ब्रह्मचारी योषिता पास जाय के अवकीर्णी होय॰ सो नैऋत गदहा पशु को आलम्भन करिके शुद्ध होता है–अर्थात्–ब्रह्मचारी दो तरह का होता है एक उपकुर्वाण विद्यार्थी दूसरा नैष्ठिक जो सदा के लिये ब्रह्मचर्य बना राखे यह आचार मर्यादा परिपाटी में उसके नियमों सहित वर्णन होचुका तहां देखो–यहां जो कोईसा ब्रह्मचारी उन्हीं नियमोंका भंग करै तिसने व्रत का लोप किया कहाता है उसका एक निन्दा के साथ जुदा नाम अवकीर्णी धरा गया है क्योंकि सबसे

प्रधान व्रत वीर्य धातु का रोकना है उस धातु का निकासि डारना अवकीर्ण (विथोरि देना खिंडाइ देना फैलाइ देना यही अवकीर्ण) कहाता है जिसने धातु का अवकीर्ण किया सो अवकीर्णी ठहिरा इसीलिये योगीश्वर ने मूल श्लोक में कहा है कि–ब्रह्मचारी होके यदि किसी भी योषिता नारी में गमनकरै सो अवकीर्णी होता है वह निऋति देवता के निमित्त गदहा पशु का बलिदान करिके उसका नैऋत नाम याग करै तब शुद्ध होय ॥ २८० ॥

२८०अधिकोक्तिः–गदहा नामसेही पशु समझा जाता फिर उसके साथ मूल में पशुक्यों कहागया•इसका यह तात्पर्यहै कि(अथपशुकल्पइत्याश्वलायनादिगृह्योक्तपशुधर्मप्राप्त्यर्थं),आश्वलायन आदि के गृह्यसूत्र में इसी रीति से कहागया है कि अथपशुकल्पः जहां इतना लिखा देखा और समझागया कि गर्दभयाग करनाचाहिये सो उस प्रकार के पशुधर्म्म की पहुंच समझी जानेके लिये दुबारा पशु शब्द दिया गयाहै ॥ ० ॥ गर्दभयाग जो करना बताया सो वनके समीप चौराहेपर लौकिक अग्नि से करना चाहिये क्योंकि वशिष्ठ ने साफ साफ यही कहा है कि=ब्रह्मचारी स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नौरक्षो दैवतंगर्दभंपशुमालभेतेति वशिष्ठः= अर्थातब्रह्मचारी यदि स्त्रीके पासजाय तो वनमें चौराहेपर लौकिक अग्निमें राक्षस देवके निमित्त गदहा पशु को होम करे (क्योंकि गदहा पशु का देवता राक्षसही होते हैं वे उसी अपने पशु के मांससे प्रसन्न होते हैं उन्हीं राक्षसों का प्रसन्न करना आवश्यक ठहिरा कि जिससे फिर आगे को अपनी राक्षसी प्रकृतिका असर ब्रह्मचारी पर कभी न उतारैं जिससे उसे स्त्री संगम की इच्छा उत्पन्न होसक्ती हो•आलंभन वेदोक्त वध कहाता है उसी से फिर होम याग किया जाता है यह तात्पर्य समझलेना) इसी याग में यह और विधान है कि रात्रि में करना चाहिये और गदहा एक आंखि वाला काना लेआना चाहिये=तदाह मनुः=अवकीर्णीतुकाणेनरासभेन चतुष्पथे पाकयज्ञविधानेनयजेतनिऋतिंनिशि=अर्थात–मनुका यह वचन है कि अवकीर्णी ब्रह्मचारी काने गदहासे चौराहेमें जाकर वहां रात्रिमें निऋति जो राक्षसों का प्रधान अधिपति देवताहै तिसका यज्ञकरै पर कच्चे मांससे न करै किन्तु पाकयज्ञ के विधान से करै जिससे निऋति अच्छेप्रसन्न होयँ ॥ ० ॥पशुयज्ञका बानक न बनि परै तो खीरहीसे होम करै यह उसका अनुकल्प है क्योंकि आगिले वशिष्ठ के वचन से यहबात सिद्धहै=यदाहवशिष्ठ=निऋतिंवाचरुंनिर्वपेत्तस्यजुहुयात कामायस्वाहा कामकामायस्वाहा निऋत्यैस्वाहारक्षोदेवताभ्यःस्वाहेति=अर्थात–निऋतिपशुनहो

तो विकल्प से निर्ऋति के नामसे चरु खीरही बोवै किन्तु निर्ऋति के नामसे होमै कि जैसे स्वाहांतचारक मंत्र में लिख दियेहैं तिनसे होमै॥ ०॥ श्रीमन्मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह तपके बिना केवल यागमात्र कहा सो उसकेलिये समझना जो पर वश कहीं घिरा फँसा असमर्थ होते अवकीर्णी हुआहो. अन्यथा जो समर्थ ब्रह्मचारी अवकीर्णी हुआ होय तिसके लिये गौतम का कहा पशुयाग या चरुहोम तपस्या सहित उचित होगा=यदाह गौतमः=गर्दभेनावकीर्णी निर्ऋतिचतुष्पथेयजेत् तस्या जिन मूर्ध्ववालंपरिधाय लोहितपात्रे सप्तगृहान् भैक्ष्यंचरेत्कर्माचक्षाणः संवत्सरेण शुद्ध्यतीति=अर्थात्-अवकीर्णी होजाय सो गदहा से निर्ऋति देवको चौराहे परपूजे किन्तु पूर्वोक्त रीति से होम करै फिर उस गर्दभ के बचेहुये पूरे चमड़े को बालऊपर हो रखकर पहिर ओढिके तांबे के पात्र में सात घरों से अपना कर्म सुनातेहुये भिक्षा मांगाकरै तब एकपूरे वर्ष भरमें शुद्ध होता है=और उसके साथ त्रिकाल स्नान और एकही बार सायंकाल भोजन करने का नियम भी अग्रोक्त मनुके वचन से जोड़ना=यदाह मनुः=एतस्मिन्नेनसिप्राप्ते वसित्वागर्दभाजिनम् सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्यं स्वकर्मपरिकीर्तयन् तेभ्योलब्धेनभैक्ष्येणवर्तयन्नेककालिकम् उपस्पृशंस्त्रिषवणमब्देन सविशुद्ध्यति=अर्थात्-इस अवकीर्ण पापके प्राप्त होने में वह अवकीर्णी गदहाका मृगछाला ओढिके अपना कर्म सुनाते हुये सात घरों से भिक्षा मांगते उनसे जो कुछ मिले उसी भिक्षा से एक समय भोजन का वर्ताव करतेहुये और हररोज त्रिकाल स्नान करते हुये एक वर्षसे विशुद्ध होता है (यह एक वर्ष की तपस्या वाला प्रायश्चित्त भी सिर्फ उसके लिये आवश्यक है जिसने किसी ऐसे अश्रोत्रिय ब्राह्मणकी भार्या में संगम किया हो जो विद्या आदि किसी प्रतिष्ठा से विख्यात नहीं था या ऐसे किसी श्रोत्रिय वनियाँ की भार्या में संगम किया हो जो पढ़ा गुना भगत वा औरही किसी प्रतिष्ठासे विख्यात बनियां हो) इसका तात्पर्य भी आगे देखा॥०॥ जिस ब्रह्मचारी ने ऐसी कोई ब्राह्मणी या क्षत्राणी संगम करी हो कि जो स्त्रियां निज अपनेही उत्तम गुणसे विख्यातहों अथवा यद्यपि स्त्रियां अपने गुणसे विख्यात नहीं परन्तु श्रोत्रिय ब्राह्मणकी और श्रोत्रिय क्षत्री की भार्याहों तिनहीं में अवकीर्ण हुआहो॰तो इस ब्रह्मचारी अवकीर्णी के लिये क्रमसे तीन वर्ष और दो वर्ष का तप चाहिये अर्थात् तीनवर्ष उस ब्राह्मणी केमध्ये जो केवल अपने गुणसे विख्यात वा विख्यात पतिकी भार्या हो और दो वर्ष उस क्षत्राणीके मध्ये जो केवल अपने गुण से विख्यात वा विख्यात पति की भार्या हो॰ व्यवस्था ठीक यही है और इसके

सबतात्पर्य अगिले शंख औरलिखितके एकहीवचनसे उत्पन्नहोतेहैंसमुभो=यथाहतुः शंखलिखितौ=गुप्तायांवैश्यायामवकीर्णः संवत्सरंत्रिषवणमनुतिष्ठेत क्षत्रियायांद्वेवर्षे ब्राह्मण्यांत्रीणिवर्षाणीति=अर्थात्–परदार बनेनी मे अवकीर्ण होय सो एक संवत पर्यन्त त्रिकाल स्नान पर आरूढ होय एवं पर्दा मे रहिनेवाली क्षत्राणी में अवकीर्ण हुआ होय सो दो वर्षभर त्रिकाल स्नान और पर्दावाली ब्राह्मणीमें अवकीर्ण हुआ हो सो तीनि वर्ष भर त्रिकाल स्नानसाथै (त्रिकाल स्नानके साथ जो पशुयाग और भिक्षा आदि ऊपर कहिचुके सो सब इसमें भी समझि लेनी ॥ ० ॥ अंगिरा का यह वचन सबसे जुदा है कि=अवकीर्णनिमित्तन्तुब्रह्महत्याव्रतचरेत् चीरवासास्तुषण्मासांस्तथामुच्येतकिल्बिषात्=अर्थात्–अवकीर्ण होजाने के निमित्त में भी ब्रह्महत्या के समान व्रत एक छमाही भर चीरवासा होकर (भोजपत्र आदि वृक्षोंके बक्कल पहिन कर) आचरै तब उस पापसे छूटै ॥ सो यह छमाही भी उसी प्रकार उसी विषय पर समझनी कि जिस विधिके साथ जिस विषय पर ऊपरले मनु गौतम आदि वचनों में एकवर्ष भर तप करना कहिचुके किन्तु भेद इतना है कि यह छमाहीवाला वर्षसे आधा व्रत उस दशामें करवाना कि जब कोई ब्रह्मचारी अपनी इच्छाके विना कुचाल स्त्री का मोहित किया हुआ लोभमें आकर अवकीर्ण हुआहो और ऊपरले पूरे वर्षभर के प्रायश्चित्त उसके हैं कि जिसने संगम करनेका उद्योग आपही किया हो और उनसे पहिले जो मूलश्लोकसे आदि लेकर सिर्फ तप के विना पशुयागही करना कहिचुके सो उसके हैं कि जब कोई ब्रह्मचारी अपनी स्वाधीनता के विना कहीं घिरा फँसा परवश होकर अवकीर्ण होय॥ ० ॥ जब कोई ब्रह्मचारी किसी वर्णकी अत्यन्त स्वैरिणी में अवकीर्ण होजाय तब ये प्रायश्चित्त नहीं किन्तु छोटे प्रायश्चित्त हैं वे भी शंख लिखित दोनों भाइयोंने जुदे करिके कहे हैं=यथाहतुःशंखलिखितौ=स्वैरिण्यांवृषल्यामवकीर्णः सचैलस्नानमुदकुंभं दद्याद्ब्राह्मणाय • वैश्यायांचतुर्थकालाहारो ब्राह्मणानभोजयेत् यवसभारंचगोभ्योदद्यात्•क्षत्रियायांत्रिरात्रमुपोषितोघृतपात्रंदद्यात् • ब्राह्मण्यांषड्रात्रमुपोषितोगांचदद्यात् • गोष्ववकीर्णःप्राजापत्यंचरेत् • षंढायामवकीर्णःपलालभारंसीसमाषकंचदद्यादिति=अर्थात्–वृषली शूद्रिनी जो स्वैरिणी होगई हो तिसमें ब्रह्मचारी जाकर अवकीर्ण हुआ होय सो सचैलस्नान करिके जलका भरा घट ब्राह्मणको दानकरै इसीसे शुद्ध होजाताहै• एव स्वैरिणी बनेनीमें अवकीर्ण होजाय सो दिनभर उपवास करिके चौथे कालमें भोजन करै दूसरे दिन ब्राह्मणोंको जिमावै और घासका एक भार (पलालांदेसइस्तेनुभारसे

कंप्रकीर्तितं) अर्थात् बांजारू खांड आदिकी तोल में पला जो तीन साढ़े तीन मन तक देशभेदसे प्रसिद्ध होता है तिसके अनुमान भर घास भी गौओंको देवै॰ एवं स्वै-रिणी क्षत्रिया ठकुरानी में अवकीर्णा होजाय सो तीन दिन रातिका उपास करिके घीका भरा पूर्णपात्र दानकरै॰ एवं स्वैरिणी ब्राह्मणी में अवकीर्णा होजाय सो छे दिनका उपवास करिके गोदान भी करै किन्तु चकारके स्वन्यर्थसे पहिले ब्राह्मणों को भोजन करावै तिस पीछे गोदान करै॰ एवं यदि कोई ब्रह्मचारी विद्यार्थी आदि जाकर गौओंकी योनिमें अवकीर्णा हुआ होय सो बारह दिनका प्राजापत्य व्रत आ-चरै तब शुद्धहोय॰ एवं षंढा नपुंसकी नारी कि जिसके योनिका आकार पूरा पूरा नहीं होता है कि जिसमें गर्भका धारणा न होसकै इसीसे वह नारी भी षंढा अर्थात् हिजरी कहाती है तिसमें यदि कोई ब्रह्मचारी जाकर बिगड़ै सो एकभार मात्र धान या कोदोंका पयार और एक मासाभर सीसा या रांगा दानकरै ॥ ० ॥ अवकीर्णी के प्रायश्चित्त जो कुछ मूलश्लोकसे लेकर यहां तक वर्णन हुये सो सब तीनों वर्णों के ब्रह्मचारीको समान हैं अर्थात् एकसां समझिलेना चाहैं ब्रह्मचारी ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्यही क्यों न हो प्रायश्चित्त में न्यूनाधिक भेद न होगा—इसका प्रमाण भी शांडिल्यमुनिका वचन है=यदाह शांडिल्यः=अवकीर्णीद्विजोराजा वैश्यश्चापि खरेणतु इष्ट्वाभैक्ष्याशिनोनित्यं शुद्ध्यन्त्यब्दात्समाहिताः=अर्थात्—अवकीर्णी ब्रह्म-चारी चाहैं विप्र या क्षत्री या वैश्य भी कोई हो सब खर पशु से यज्ञ करिके नित्य प्रति भिक्षा मांगि खायाकरैं तौ समाहित रहिते एक वर्षभर में शुद्ध होतेहैं अर्थात् समाहित सावधानीसे न रहिकर वर्षके भीतर प्रायश्चित्तके बीचमें भी फिर किसी दिन अवकीर्णा होनेलगै तौ उस प्रायश्चित्त से भी शुद्ध न होगा (यहां तक तौ स्त्रीके संभोग से अवकीर्णा होने का चर्चा है अब आगे स्त्री के विना भी विगड़ने का चर्चा होगा ॥ ० ॥अथस्त्रीसंभोगंविनापिवीर्यस्कंदनप्रायश्चित्तं—जब कोईब्रह्मचा-री स्त्री संगम के बिना भी कामदेव की प्रबलता से रात्ति या दिन में और सोते या जागते हुये वीर्य धातु को छोड़ै तिसके लिये वशिष्ठ ने केवल पूर्वोक्त यज्ञही करना कहा है=यथाह वशिष्ठः=एतदेवरेतसःप्रयत्नोत्सर्गेदिवास्वप्नेचव्रतान्तरेषुचैवमिति=अ-र्थात्—यही नैर्ऋत याग जो पहिले प्रायश्चित्त में कहिचुके सो अंगों के उपाय से भी वीर्य्य की हानि करदेने में और दिन में और स्वप्न में भी वीर्य निकसिजाने पर करना॰ और व्रतान्तरों में भी इसी प्रकार अर्थात् कृच्छ्र चांद्रायणआदि व्रत प्राय-श्चित्तों में जहाँ तहाँ ब्रह्मचर्य साधन करने को अतिदेश किये गये हैं उनके बीच

में भी यदि सोते वा जागते किसी दशा में बीर्य का अवकीर्ण होय तोभी पूर्वोक्त रीति से नैर्ऋत यागही करै=परंतु=सोते समय अपनी इच्छाबिना दैवयोगहीसे वीर्य गिर जाय तौ फिर उक्त नैर्ऋत याग नहीं किंतु मनुका कहा प्रायश्चित्त करै=तदाह मनुः=स्वप्नेसिक्त्वाब्रह्मचारीद्विजःशुक्रमकामतः स्नात्वार्कमर्चयित्वात्रिःपुनर्मामित्यृचञ्जपेत्=अर्थात्–द्विजाती मात्र किसी वर्णका ब्रह्मचारी स्वप्नेमें निज इच्छाके विना वीर्यको सींचिके प्रातःकाल स्नान करिके और सूर्यकी यथोक्त अर्चा करिके तीनि वार (पुनर्माम) इत्यादि ऋचा जपै• इसीसे शुद्ध होजाता है॥ यहां तक ब्रह्मचारी का प्रसंग था अब नीचे बानप्रस्थ आदि जो ब्रह्मचर्य से रहिते हैं तिनका वर्णन किया जायगा=परन्तु ब्रह्मचारी अवकीर्णी होजाने के प्रायश्चित्त जो कुछ ऊपर लिखेगये सो सब उन स्त्रियों के संभोग में समझना जो गुरु की दाराओं से उपराल अगम्याहां और उनसे भी उपराल अगम्याहां जिनका चर्चा गुरुदाराके समान कहिकर २३१ दोसौ इकतीस मूलश्लोकसे लेकर दोतीन अधिकोक्तों में वर्णन होचुका है-क्योंकि उन स्त्रियोंके भोग मध्ये बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं जो बारह वर्ष को आदि लेकर कई भाँति से दर्शाये गयेथे ब्रह्मचारीको भी उन स्त्रियोंके संगमसे वेही बहुत बड़े प्रायश्चित्त वलिक उनसे भी दुगुने करने होंगे–क्योंकि बहुत वडा पाप जो बारह वर्ष आदिके व्रतोंसे शोधन होने योग्यहो सो इस छोटेसे अवकीर्णी वाले प्रायश्चित्त से मिटिजाना संभव नहींहै और यह भी नहीं कहिसक्ते हैं कि खास कर ब्रह्मचारी के लिये यही छोटासा प्रायश्चित्त कहागया है इससे बड़ा उसको कहीं भी न चाहिये–क्योंकि गृहस्थीसे उपराल आश्रमोंको दुगुने आदि प्रायश्चित्तोंका अधिकार ब्रह्महत्याके प्रकरणमें दर्शित होचुका है–और यहभी नहीं कि ब्रह्मचारीको अगम्यागमनका प्रायश्चित्त जुदा करना चाहिये क्योंकि ब्रह्मचारी को स्त्रीमें अवकीर्ण होनेका प्रायश्चित्त अगम्यागमनके भीतरही समझा गया है इससे कि उसको सदा ब्रह्मचर्यसे रहिना चाहिये॥ २८०॥ इसी अधिकोक्तिका बचा हुआ फालतू पाठ नीचे जुदा भी स्थापन किया जायगा॥ २८०॥

(अथवानप्रस्थादीनां ब्रह्मचर्यखंडने संन्यासादि व्रतभंगेच ब्रह्मचारि प्रायश्चित्तातिदेशः)

बानप्रस्थके सब धर्म सातवें परिच्छेद में पैंतालिस मूलश्लोकसे वर्णन होचुके हैं उसी बानप्रस्थ या सन्यासी यती आदि किसी और पूरे तपस्वीका ब्रह्मचर्य खंडित

हो जाय अर्थात् वीर्यका अवकीर्ण होजाय तहां उन्हीं सब रीतोंसे ब्रह्मचारी वाले प्रायश्चित्त करने होंगे कि जैसे कई भेदोंसे ऊपर वर्णन होचुके परन्तु इनको कुछ अधिकताके साथ करने होंगे=तदाह शांडिल्यः=वानप्रस्थोयतिश्चैवस्कन्दनेसतिकामतः पराकत्रयसंयुक्तमवकीर्णिव्रतंचरेत्=अर्थात्—वानप्रस्थ और यती संन्यासी और चरव के ब्रह्मचर्यसे अन्य प्रकारके तपस्वी लोगभी कामदेवके (स्कन्दन में) खिंडि जाने में (चाहैं स्त्री संभोग द्वारा या इसके विनाही खिंडि जाने में) सर्वत्र सब तरह का अवकीर्णी ब्रह्मचारी वाला व्रत ये भी आचरैं पराकों के तीया सहित अर्थात् ब्रह्मचारीकी अपेक्षा इनको तीनि पराक व्रत फालतू करने चाहिये क्योंकि इनका दर्जा भी ब्रह्मचारीसे बड़ाहै—परन्तु पापकर्मकी व्यवस्था सब इनके लिये भी ऊपर की अधिकोक्ति में विचारना ॥ ० ॥ गार्हस्थ्यपरिग्रहेच—जब कोई संन्यासी (वा नैष्ठिक ब्रह्मचारी) या वानप्रस्थ अपने सन्यास आदि आश्रमको छोड़िकर भागेहुये गृहस्थी बनिजायँ तिनका प्रायश्चित्त भी सवर्तने प्रकाश किया है=यदाह संवर्तः=संन्यस्यदुर्मतिः कश्चित्प्रत्यापत्तिंचरेद्यदि सकुर्यात्कृच्छ्रमश्रांतःषड् मासान्प्रत्यनन्तरम=अर्थात्—जब कोई कुबुद्धी पहिले संन्यासीहोकर पीछे उसी छोड़े हुये गृहस्थकी फिर प्रत्यापत्ति सग्रह करै तिसको यह चाहिये कि वह गृहस्थी में अश्रांतही किन्तु टिके थँभे विनाही विश्राम लेनेसे पहिले छे महीने भर अनन्तर कृच्छ्र व्रत साधै कि जिसके बीच कभी अन्तर न परने पावै तिससे शुद्ध होकर (अगिले पराशरके कहे जात कर्म आदि संस्कार करिके) फिर गृहस्थी में शामिल रहिसक्ता है=तथाच पराशरः=यःप्रत्यवसितोविप्रोप्रव्रज्यातोविनिर्गतः अनाशकोनिवृत्तश्चगार्हस्थ्यंचेच्चिकीर्षति सचरेत्त्रीणिकृच्छ्राणित्रीणिचांद्रायणानिच जातकर्मादिभिःसर्वैःसंस्कृतःशुद्धिमाप्नुयात्=अर्थात्— पराशर ने इस नियम को इस रीति से दृढ किया है कि—जो कोई विप्र सन्यासी होके संन्यास धर्म से निकसि कर उस आश्रम से (प्रत्यवसित) गिर जाय॰ या जिसने बहुत दिनों के लिये अनाशक निराहार व्रत धारण किये हो तिनकी झोंक न सहिकर बीचही में लौटि परै अर्थात् व्रत छोड़ि के आहार करने लगै॰ इत्यादि कोई भ्रष्ट धर्मा सन्यासी आदि गृहस्थ आश्रम लेने की इच्छा करै सो पहिले तीनि कृच्छ्र प्राजापत्य करै फिर तीनि चांद्रायण करै (ये दोनो व्रत ऊर्ध्वोक्त सवर्त वाले छमाही कृच्छ्रके साथ विकल्पसे बदल किये जासक्ते हैं अर्थात् उस एकही को करै या इन दोनों को करै) तिसपीछे जातकर्म आदि सब कर्मों से उसी तरह सस्कार करावै कि जैसे बच्चे का जन्म होने बादि किये जाते हैं

क्योंकि इसका भी यह नया जन्म है तिससे सब संस्कारों से शुद्ध होकर गृहस्थ में शामिल रहिने योग्य होजायगा—यह लाचारी दर्जे का निर्वाह कहा गया है कि जिससे संसारी व्यवहार मात्र चल सकै— अन्यथा—पारलौकिक फल भोग में यह पाप नहीं मिटता है इस बातका प्रमाण भी वशिष्ठ का अग्रोक्त वचन है= यदाह वशिष्ठ: (यस्तुप्रव्रजितोभूत्वापुनः सेवेतमैथुनं षष्ठिवर्षसहस्राणिविष्ठायांजायतेकृमि:) अर्थात—जो कोई सन्यासी आदि होकर पीछे फिर मैथुन का जोड़ा सेवै वह परलोकों मे साठि हजार वर्ष तक विष्ठा में कृमि का जन्म धरता है (इसके मध्ये २२६ दोषों छब्बीस का मूल श्लोक भी देखो)=यहांजो पराशर के वचन में केवल विप्र शब्द है सोभी अपनी प्रधानता से तीनो वर्णों का उपलक्षण है क्योंकि इस व्यवस्था में ब्रह्मचारी के समान तीनों वर्णों के संन्यासी को प्रायश्चित्त एकसौ हैं कुछ वर्णों के भेदसे न्यूनाधिक नहीं किये जायँगे यह समझि लेना॥ इसकेसिवाय कुछ ऐसे भी संन्यासी आदि भग्न व्रत होते हैं जो प्रायश्चित्त करिके भी गृहस्थो में शामिल करलेने योग्य नहीं होते तिनका वृत्तान्त आगे देखो॥ ०॥ अथामरण संन्यासिव्रतभगस्यप्रायश्चित्तं=तदाहयमः= जलाग्न्युद्बंधनभ्रष्टाःप्रव्रज्याऽनाशकच्युताः विषप्रपतनप्रायाःशस्त्रघातच्युताश्चये नैवैतेप्रत्यवसिताःसर्वलोकवहिष्कृताः चांद्रायणेनशुद्ध्यंतितप्तकृच्छ्रद्वयेनच=अर्थात—जे कोई सन्यासी वानप्रस्थ आदि तपस्या कियेपीछे अति बूढा होजाने पर अथवा बीचहीमें किसी भयानक रोगग्रसितता आदि हेतुसे अपना देहत्यागिदेनेका उपाय सोचिकेजलमें डूबैयाअग्निमेंकूदै या फांसी फंदे में लटकै तहां भयभीत होकर प्राणों को न देसकै तिससे उसका व्रतहो भ्रष्ट हो जाता है• एवं प्रव्रज्या नाम संन्यासका भेष लेकर निषट अनाशक व्रतरोपा होवै कि अन्नादि कुछ न खाकर तप करैंगे यद्वा केवल एकदो फलही खाकरसदा तप करैंगे ऐसे सदा के नियम छोड़ि भागने से भी व्रत का भंग होता है• अथवा अनाशक वह कि जिसने देह त्यागि देनेके निमित्त पर नियम लेकर आहार छोड़ि दिया हो फिर मरनेसे पहिले अन्न खाने लगा तो यह भी अनाशकच्युत कहाताहै• एवं जिन्होंने देह त्यागने की सत्य प्रतिज्ञा से विष खाया हो या ऊंचे पर्वत पर चढिके नीचे गिरने गये हों या बीरों की तीरन्दाजी आदि निशानों के बीचमें आ पहुँचे हों और प्राणों के भयसे भागि परें या विष खाने बादि उपायों से उलटीकर डारैं या पर्वत से गिरे विना उतरि आवैं तो ये सब के सब ऐसे हैं कि प्रायश्चित्त करने परभी (प्रत्यवसितानकार्याः) फिर गृहस्थ में शामिल करने योग्य नहीं किन्तु

सब लोगों से बाहर किये जाते हैं• तथापि व्रत भंग होजाने के दोषमें यह प्रायश्चित्त उनको आवश्यक है कि एक चांद्रायण और दो तप्तकृच्छ्र करिके शुद्ध होते हैं जिससे अपने पूर्वोक्त लपही में यथासंभव लगे रहिअवैं—इति शास्त्रीय मरणाच्युति प्रसंगः॥ ० ॥ अथाशास्त्रीयमरणस्यैवसाक्षात्कारस्यप्रायश्चित्तं—अनन्तर जो प्रायश्चित्त कहागया तिसमें शास्त्रीय मरण का प्रसंग था जिसकी समस्या सातवें परिच्छेद में ५५ पचपन मूल श्लोक और उसकी अविकोक्ति से प्रकाशित हुईथी उस रीति से मरने वाला सन्यासी आदि आत्मघाती नहीं कहाता बल्कि मरजाने पर निश्चय सहित समुद्यत होकर जो मरने से भागि परै तो वह सब लोगों में निंदित और प्रायश्चित्ती भी इस हेतु से होजाता है कि उसको आधे मुर्दा के समान अपवित्र जाना करतेहैं इसीका प्रायश्चित्त ऊपर कहागया—अब—उनकेप्रायश्चित्त कहा चाहतेहैं जो गृहस्थी आदि कोई अच्छे भले में किसी पर क्रोध करने आदि कारणों से अपने प्राण खोवें तो यह अशास्त्रीय मरना कहिलाता है क्योंकि वृथा मर जाने की आज्ञा शास्त्र में नहीं है इसीसे वह आत्मघाती भी ठहिरताहै—यथाह वशिष्ठः—जीवन्नात्मत्यागीकृच्छ्रं द्वादशरात्रंचरेत्त्रिरात्रंचोपवसेदिति—अर्थात्—जीवन् सन्•जोकोई मनुष्य जीवते रहिने की शक्ति मौजूद होतेहुये अपने देहका त्यागीवनें अर्थात् किसी उपाय से मरजाय या मरने लगे तो बारह दिन का कृच्छ्र व्रतआचरै वा तीनि दिन उपवास करै (इसमें मरजाय लिखने से निपट मरिगया न समझि लेना किन्तु छुरी आदि शस्त्र अपने देह में घुसेरके मरने से बचिगया समझना जिस पर बारह दिनका कृच्छ्र कराया जायगा• इसी लिये वशिष्ठ के वचन में (आत्मत्यागी—जीवन्सन्) ऐसा अन्वय भी लगता है कि देह का त्यागी बनिके जीवता बचिजाते हुये बारह दिन का कृच्छ्र वा तीन दिनका उपवास कराया जाय) इसमें वा शब्द के विकल्प से तीनि दिनका उपवास मात्र उसके लिये समझना कि जिसने शस्त्र घुसेरिलेना आदि मरनेका काम अबतक नहींकिया सिर्फ मरजाने योग्य निश्चय मुह से कहिकर कियाहो या शस्त्र लेकर दिखलाया वा जल के पासखड़े होकर डूबने का लक्षण प्रकट किया हो इत्यादि बहुत भाँति से समझिलेना• इसी प्रकार मरते हुये बचि जानेकी भी बहुत भाँति समझिलेनी जिससे थोड़ी बहुतपीडा या चोट भी आचुकी हो दृष्टान्त जैसे जल में खूब गोते खाकर बचिगया वा छुरी घुसेरि के जीवता बचिगया या विष खाकर उसके वेग में दबि जाने आदि जीवता बचिजाय वा अग्नि में कूदि कर खाल आदि जलि जाने पर जीवता बचिगया हो·

इत्यादि=तथाच मिताक्षरा (अत्राध्यवसायमात्रे त्रिरात्र शस्त्रादिक्षतस्यद्वादशरात्रंकृच्छ्रमिति व्यवस्था)—इस व्यवस्था में यह प्रश्न वाकी रहा कि जे कोई उक्त प्रकारों से निपट मरिही गये हों तिनके इस आत्मघात रूपी पापका प्रायश्चित्त कोंकर होसक्ता है कौन करे किन्तु वे करने वाले आपतो मरिगये इसका क्या उत्तर है—इसका यह उत्तर है कि उनके पुत्रादि सपिण्ड जो धनके अधिकारी आदि समीपी हितकर्त्ता समझेजाते हैं वेही उसकी शुद्धि चाहिकर प्रायश्चित्तभी करेंगे-यह प्रायश्चित्तभी यमके उसी वचनसे उत्पन्न होताहै कि जो इस व्यवस्थासे अनंतर पहिले संन्यासी के व्रतभंगपर लिखिचुके यहां फिर भी लिखाजाता है कि यहां परअर्थही उसका अन्य प्रकार से लगावेंगे=यदाह यमः=जलाग्न्युद्बन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्याऽनाशकच्युताः विषप्रपतनप्रायाःशस्त्रघातहताश्चयेनैवैतेप्रत्यवसिताःसर्वलोकवहिष्कृताःचांद्रायणेनशुद्ध्यन्तितप्तकृच्छ्रद्वयेनच=अर्थात्—जे कोई इच्छा सहित जलमें डूबिके वा अग्निमेंकूदि के वा फंदा लगाइ के अपने देहसे भ्रष्ट होके गिरिजायँ अर्थात् निपट मरिहीं जायँ अथवा विदेश में पते ठिकाने विना प्रव्रज्या अटन करते घूमते फिरते मरजायँ या किसी पर अनाशक धन्ना देकर विना खाये मरजायँ या विष खायके मरजायँ या ऊँचे वृक्षादि पर चढ़िजाकर गिरके मरजायँ (या प्रायशब्दके ध्वन्यर्थ से इसी भांति का कोई और उपाय करिके मरजायँ) या कोई शस्त्र अपनेमारि के मर गये हों यह इतने आत्मघाती पुरुष प्रत्यवसित नहीं होते किन्तु मुक्ति नहीं पाते और सब लोकों से बाहर किये हुये भूत प्रेतोंकी देह धरे फिरा करतेहैं परंतु एक चांद्रायण और दो तप्तकृच्छ्र व्रतों का फलपाने से शुद्ध होकर मुक्त होजाते हैं तिससे उनका पुत्रादिक अधिकारी यथोचित नारायणवलि पुत्तलविधान आदि शास्त्रोक्त क्रिया करने पीछे इन प्रायश्चित्तों को आचरे जिससे आत्मघातियोंकी प्रेतयोनि छूटिकर मुक्ति प्राप्त होसके=अत्रोक्त आत्मघातियों के स्वरूप जो अच्छीतरह देखना चाहो सो इस प्रायश्चित्त काण्ड के प्रारम्भ से आशौच के प्रकरण में ५—६—२१ पांचवां और छठा और इक्कीसवां मूल श्लोक तथा उन्हीं तीनों अधिकोक्तों को विचारो ॥ २८० ॥ इसी दोसौ अस्सी वाली ऊपरली अधिकोक्ति का फालतू पाठ यह भीहै सो विषय जुदा होनेसे स्थापना भेद किया गयाहै ॥ २८० ॥

अवकीर्णी ब्रह्मचारी के प्रसंगसे विरले और भी अनुपातकरूपी पापोंके प्रायश्चित्त बीचमें दर्शायेगये—अब नीचे फिर अपने क्रम से प्रायश्चित्त कहेजायँगे अर्थात् दोसौछत्तीस के मूलश्लोक मे योगीश्वर ने (व्रतलोपश्च) यह पद कहाया ति

सका अर्थ अनेक तरहके व्रतों का खण्डन प्रकट करता है तिसमें से कुछेक व्रत भंग ऊपर अवकीर्णत्व को आदि लेकर वर्णन होचुके और बाक़ीरहे व्रतभंगों के प्रायश्चित्त आगे दोसौइक्यासी मूलश्लोक से आदि लेकर कहेजायँगे इसीलिये योगीश्वर ने व्रतलोप नाम रक्खाथा कि इसमें बहुतसे अर्थों की गुंजायश पाईजाय–इसी से–यह तर्कना करनी वृथा है कि योगीश्वर ने उपपातकोंके जैसे नाम धरेथे उनमें से कितनेही नामों के जुदे प्रायश्चित्त क्यों नहीं कहे जो ४४ चवालिस परिच्छेद के द्वारा गुज़ारा करना परताहै–क्योंकि योगीश्वरने ऐसे अनेकार्थ नामधरे हैं जिन के कई भेद होकर जुदेजुदे नामोंमें कईभाँतिके प्रायश्चित्त मिलते हैं फिर क्योंकर उसी मुख्य नाम से प्रायश्चित्त मिलसके–इसका यह दृष्टांतहै कि जैसा उसी दोसौ छत्तीस मूलश्लोकमें (निंदितार्थोपजीवनं) यह एकनाम धरागया है इसका अर्थ मिताक्षरा में यह कियागया है कि (अराजस्थापितार्थोपजीवन) इन दोनों का तात्पर्य यहठहरा कि उपजीवन रोज़गार का धंधा उसभाँति का कि जिसको राजाने धर्म के अनुसार निन्दितकियाहो–सो इसभाँतिके निन्दित कियेहुये भी अनेक धन्धेहोते हैं जैसा स्त्रियों को खरीदकर बेचना लड़का लड़कियोंको कहींसे लेआकर बेचना अथवा वेद शास्त्रोंकी निन्दा के द्वारा जीविका करना आदि अनेक भेद हैं तिनभेदों के जुदेजुदे प्रायश्चित्त जहाँकहीं लिखेहों सो सब निन्दितार्थके उपजीवन मे गिनती होंगे जैसा आगे सुतविक्रय प्रायश्चित्तके प्रसगमें स्त्रीपुरुषोंका बेंचना (बर्देफरोशी) भी आवेगी इत्यादि अपनी बुद्धि से समझना–यह वार्त्ता यहां विस्तार देकर इसी लिये कहीगई कि थोड़ी समझवाले को भी सदेह न रहे ॥ अवकीर्णी होनेबिना भी ब्रह्मचारी के कुछ और प्रायश्चित्त हैं सो नीचे देखो ॥

——※——

अथब्रह्मचारिणोव्रतनियमानांभंगेपिप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः एकोनषष्ठितम (५९)॥



इस परिच्छेद में ब्रह्मचारी के उन प्रायश्चित्तों का वर्णनहोगा जो ब्रह्मचारीके व्रत भंग होजाने पर उसको करने चाहिये–अर्थात–आचार मर्यादा परिपाटी में ब्रह्मचर्य का व्रत साधन करने के अनेक नियम कहेगये थे उन्हीं मेंसे यदि कोईनियम खण्डितहोजाय जैसे मधुमांस आदि खाइलेना या जनेऊ अशुद्ध होजाना आदि के प्रायश्चित्त बताये जायँगे॥

(ब्रह्मचर्यव्रतभगानांप्रायश्चित्तानि)

भैक्ष्याग्निकार्येत्यक्त्वातुसप्तरात्रमनातुरः। कामावकीर्णइत्याभ्यांजुहुयादाहुतिद्वयम् २८१
उपस्थानंततःकुर्यात्समासिंचत्वनेनतु। मधुमांसाशनेकार्यःकृच्छ्रःशेषव्रतानिच २८२
प्रतिकूलंगुरोःकृत्वाप्रसाद्यैवविशुद्ध्यति। कृच्छ्रत्रयंगुरुःकार्योम्रियतेप्रहितोयदि २८३

अर्थः–अनातुर होते सातदिन भैक्ष्य अग्निकार्य दोनों त्यागिके (कामावकीर्ण इत्यादि दोनों मत्रों से) दो आहुतिहोमे–अर्थात–यदि कोई ब्रह्मचारी किसी रोगसे पीड़ित न होते हुये अपने भिक्षा धर्मको और अग्निके नैत्तिक होमको भी निरन्तर सात दिन तक न करै तो इस छोटे अनुपातक पर यह प्रायश्चित्त करै कि (कामावकीर्णोस्म्यवकीर्णोस्मिकामकामायस्वाहा१ कामावपन्नोस्म्यवपन्नोस्मिकामकामायस्वाहा२)इन्हींवेदोक्त दो मंत्रोंसे आहुति होमै(यद्यपि मूलश्लोकमें सिर्फ दो आहुति का भी अर्थ पायाजाताहै कि एकएक मत्रसे एकही आहुतिकरै तथापि ऐसा नहीं किन्तु सख्याका नियम न मिलनेपर एकएक मन्त्रसे एक एक अष्टोत्तरी मालाभरि आहुतें छोड़ै तिससे भी आहुति द्वयका अर्थ सिद्व होजाताहै ॥ २८१ ॥

तिस पीछे (समासिचतु–इत्यादि) इस मंत्रसे उपस्थानभी करै–अर्थात–उर्ध्वोक्त आहुतें देचुकने वादि (समासिचतु मरुतः समिन्द्रः सहृहस्पतिः समायमग्निः सिचन्तां यशसा ब्रह्मवर्चसेन–इत्यनेनमत्रेणाग्निमुपतिष्ठेत्) इस पूरे मत्रसे अग्नि के सन्मुख खड़े होके उपस्थान पढै मद्य मांस खालेने में कृच्छ्र करना फिर शेष व्रत भी करने चाहियें–अर्थात–जिस ब्रह्मचारीने दगा धोखेसे मदिरा या मांस खाइ लिया

हो सो बारह दिनका कृच्छ्र व्रत करिके तिस पीछे अपने शेष रहे मामूली व्रतों को भी साधै ॥ २८२ ॥

गुरुका प्रतिकूल करिके उसे प्रसन्न ही करिके शुद्ध होताहै=अर्थात्–जिस ब्रह्मचारी वा विद्यार्थीने गुरुकी उचितआज्ञा न मानने आदि प्रकारोंसे कोई काम गुरु से प्रतिकूल (उसकी अपेक्षासे विपरीत) कियाहो तिसका दोष केवल गुरु के चरणोंमें शिर धरने आदि प्रकारसे प्रसन्न करदेनेसेही मिटिजाताहै उसका यही प्रायश्चित्तहै † कार्यसे भेजा हुआ मरै तो कृच्छ्रत्रय गुरु करै=अर्थात्–यहां ब्रह्मचारीका प्रसंगथा तिससे उसका गुरुसे सम्बन्ध पाइ कर गुरुका भी प्रायश्चित्त कहिना परा कि–यदि कोई गुरु ब्रह्मचारी आदि किसी शिष्यको किसी जरूरी काम के लिये कहीं ऐसी भयाकुल अंधेरी रातिमें भेजै कि जहां चोर डाकू सर्प्प बाघ आदि प्राण हारी चिन्ह मौजूदहों और भेजा हुआ शिष्य उन्हीं प्रकारोंसे मरजाय तौ उस भेजने वाले गुरुको तीन कृच्छ्रव्रत करने चाहिये•इसका चर्चा अधिकोक्ति में अच्छीतरह देखि लेना ॥ २८३ ॥

२८१ अधिकोक्तिः–तीनौ मूल श्लोक में प्रायश्चित्तोंके चार भेदहैं इस तौरसे कि डेढ़ श्लोकमें एकही भेदहै फिर बाकी तीन भेदोंका सिर्फ आधा आधा श्लोक है तिनके बीच बीच † ऐसा चिन्ह लगायागयाहै उसी क्रमसें उनकी अधिकोक्तिको अब देखो २८१ श्लोकमें ब्रह्मचारीकी बीमारीके न होतेहुये सात दिन तक भिक्षा वृत्ति और अग्निकी सेवा छोड़िदेने पर प्रायश्चित्त कहागया•तिसका यह ध्वन्यर्थ ठहिरा कि यद्यपि रोगी नहीं था परन्तु गुरुकी सेवा आदि कामोंकी बहुताइत में गाफिलहोके भिक्षा और अग्निकार्यको छोड़ाहो तिसको वहप्रायश्चित्त जो लिखि चुके सो करनाचाहिये–और जिसने गुरु सेवा आदिकार्य के भी न होतेहुये निरोगी होकर सात दिन तक वृथाही निज धर्म्मको छोड़ि दिया हो तिसको यह छोटा प्रायश्चित्त नहीं है अर्थात् वह मनुके वचनानुसार करै=यदाहमनुः–अकृत्वाभैक्ष्य चरणमसमिध्यचपावकम् अनातुर सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतचरेत्=अर्थात्–निरोगी ब्रह्मचारी सात दिन तक भिक्षावृत्तिको न करिके या अग्निको समिन्धन हीन करिके अवकीर्णी ब्रह्मचारीवाला व्रत आचरै जो २८०मूल श्लोकसे वर्णन होचुका=यहां पर=व्रत भंग होजानेका प्रसंगहै तिससे जनेऊ टूटिजाने वा अशुद्ध होजाने आदि अनेक बातोंके प्रायश्चित्त भी दर्शाते हैं ॥

यज्ञोपवीतादि नाशेतु=हारीतः=मनोव्रतपतीभिश्च तिस्रआज्याहुतीर्हुत्वापुन

र्यथार्थप्रतीयादसकृत असङ्क्ष्यभोजनेऽभ्युदितेऽभिनिर्मुक्तोवान्ते दिवास्वप्नेनग्न स्त्री दर्शनेनग्नस्वापेश्मशानमाक्रम्य हस्त्यादीनारुह्यपूज्यातिक्रमेचैताभिरेवजुहुयात अग्नि समिन्धने स्थावर सरीसृपादीनांवधे यद्देवादेवहेडनमिति कूष्माण्डीभिस्त्रिरात्रमाज्यं जुहुयात भगिावासोगवादीनां प्रतिग्रहे सावित्र्यष्टसहस्रं जपेदिति=अर्थात्–हारीत ने इतनी बातों के प्रायश्चित्त इकट्ठे कहे हैं कि–यज्ञोपवीत किसी प्रकारसे खण्डित होजाय तब (मनोव्रतपतीभिः इत्यादि ऋचाओं से) तीनि तीनि आहुतें असकृत अनेकवार होमिके फिर यथार्थ रीतिसे मंत्र पढ़िके जनेऊ बदलिडारै, अर्थात यज्ञोपवीत धारण करनेका जो मंत्र प्रसिद्ध है इसीको पढ़िकर पहिरै और इन्ही उक्त ऋचाओं से आहुतें उन पापोंमें भी होमै कि जब किसी असत नीच आदिकी भिक्षा भोजन करी हो जिनका अन्न खाना ब्रह्मचारी को मने है यद्वा ब्रह्मचारी होके अभ्युदित किन्तु सूर्यके उदय होते समय सोता रहिकर उस कालके यथोचित कर्म की हानि करीहो यद्वा अभिनिर्मुक्त किन्तु सूर्य्य के अस्तकाल में निद्राके वशीभूत होके सायंकाल के यथोचित कर्मोंकी हानि करीहो या वमन कियाहो या दिन में सोगयाहो या नंगी स्त्री को देखिलियाहो या आपही नंगा सोया किन्तु सोते समय धोती खुलि गईहो यद्वा श्मशान मुर्दघट की धरती पर चला फिरी करि आयाहो या घोड़ा आदि किसी पशु यान पर सवारी करीहो यद्वा किसी पूज्य गुरु आदि का अतिक्रम (बेअदबी) करि बैठाहो तौ भी उन्हीं मनो व्रत आदि ऋचाओं से आहुतें होमै तब शुद्ध हुआ ठहिरै और होम आदिमें अग्नि समिन्धन कर्म अर्थात लकड़ी आदि का जलाना तिसके साथ किसी प्रकारके जीव स्थावर जो लकड़ी के भीतर या धरती के भीतर ही एक ठिकाने टिके रहिते हों या सरीसृप सांप आदि रेंगने फिरनेवालेही जलिकर मरजायँ तौ इस गफलतसे उत्पन्न हुये पापका प्रायश्चित्त यह चाहिये कि तीनि रातोंमें घी की आहुतें होमै सो इन मंत्रोंसे कि (यद्देवादेवहेडनं इत्यादि) वेदोक्त ऋचायें जो ऋग्वेदमें कूष्माण्डीके नामसे अनेक ऋचा प्रसिद्धहैं तिनसे होमै तब शुद्ध होय और जिस किसी ब्रह्मचारी ने भगिा या कपड़े या गाय आदि पदार्थोंका प्रतिग्रह लेलिया होय वह सावित्री के आठ हजार मंत्र जपै यह सब हारीतने दर्शाया•इसका पहिला प्रायश्चित्त (मनोव्रतपती इत्यादि) समस्यावाली ऋचाओंसे बताया तहां यह व्यौराहै कि (मनोज्योतिरित्यादि मनो लिंगाभिस्त्वमग्ने व्रतपाअसीत्यादि व्रतलिंगाभिरित्यर्थः) और भी (पुनर्यथार्थप्रतीयात्) यह कहाथा तिसका भी यहतात्पर्य है कि यदि ब्रह्मचारीका जनेऊ कुछ

विशेष खण्डित होजाय किन्तु निपट टूटिके गिरजाय या और ही कोई प्रकार ऐसा होजाय जिससे निपट विनाशहीके तुल्य समझा जाय तहां पुनर्यथार्थका यह अर्थहै कि जैसा पहिले जनेऊ हुआथा उसीप्रकारकी विधिसे पुनः संस्कार कराइके यज्ञोपवीत ग्रहण करै॰अन्यथा जब केवल अशुद्धमात्र होजाय किन्तु पूरम्पूर खण्डित न हुआहो तब उक्त आहुतियोंकी होमिके जनेऊका प्रसिद्ध मंत्र पढ़िके बदलि डारै॥

यज्ञोपवीतं विना भोजनादि करणेतु=मरीचिः=ब्रह्मसूत्रंविनाभुंक्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथवा गायत्र्यष्टसहस्रेणप्राणायामेनशुद्ध्यति=अर्थात्–कांधे पर जनेऊके न होने या खण्डित होनेकी दशामें जिसने भोजन कियाहो या शंका लघुशंकासे विष्ठा मूत्र का त्याग कियाहो सो यथोक्त रीति से प्राणायाम करिके गायत्री मंत्र आठ हजार जपि कर शुद्ध होताहै (इसमें भी जनेऊ का बदलना समुझि लेना), यह मरीचिमुनिने कहा–यहां तक एक साथही डेढ़ श्लोक की अधिकोक्ति पूरी होचुकी॥ २८१॥

अब दो सौ बयासी का उत्तरार्द्ध मूलश्लोकवालाअर्थ देखौ कि मद्य मांस खाइ लेने पर कृच्छ्रकरना लिखचुके सो केवल उन्हीं मांसोंकेखालेनेमें समुझना जो खरगोश आदि खाने के योग्य उत्तम जीव कहाते हैं=तदाह वशिष्ठः=ब्रह्मचारीचेन्मांसमश्नीयोच्छिष्टभोजनीयं कृच्छ्रन्द्वादशरात्रंचरित्वाव्रतशेषं समापयेदिति=अर्थात्–उत्तम पुरुषों के खाने योग्य मांस को यदि ब्रह्मचारी खालेवै तौ बारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके तिस पीछे अपने शेष व्रत का साधन करै (इस में बारह दिन की अवधि कही जाने से यह तात्पर्य सिद्ध होता है कि ये बारह दिन अज्ञानता से मांस खालेने पर नियत हैं॰ कदाचित कोई जानि बूझिके मांस भक्षण करै या बिना जाने ही वारम्बार भक्षण करै सो इससेभी कठिन अतिकृच्छ्र वा पराकआदि प्रायश्चित्त साधै तब शुद्ध होय) और इसी तरह अभक्ष्य जीवों का मांस खाइ लेने में अतिशय कठिन प्रायश्चित्त देखे जायँ यह वशिष्ठ ने दर्शाया है=फिर=उन्हीं वशिष्ठ ने रोगी होनेकी दशापर मांस खाने का विधान भी दर्शायाहै=यथा=सचेद्व्याधीयीत कामंगुरोरुच्छिष्टंभैषज्यार्थंसर्वंप्राश्नीयादिति= अर्थात्–वह ब्रह्मचारी यदि ऐसे रोग से व्याधित होजाय जिसकी औषधी मांस के सिवाय और कुछ न ठहिरै (दृष्टांत जैसे पक्षाघात वातव्याधि में कबूतर का मांस वैद्य बतावै इत्यादि) तौ उस मांसको गुरुका जूठाकरिके खाय यदा ऐसा असंभव हो तौ गुरुकी आज्ञा लेकर चिकित्सा के निमित्त में सब कुछ खाय–इसमें–सब खायका यह तात्पर्यहै कि मांस लहशुन आदि जो जो चीज अभक्ष्य हैं और उन्हीं से रोग शांति हो सक्ती हो तौ गुरु की

आज्ञा लेकर निःसंदेह भक्षण करे और उसके भक्षण से रोग नाश होजाने बादि सूर्यनारायण को उपस्थान करै=यदाह बौधायनः=येनेच्छेच्चिकित्सितुंसयदाऽगदोभवति तदोत्थायादित्यमुपतिष्ठेतहंसःशुचिषदिति=अर्थात्—नरोगीब्रह्मचारी जिसवस्तु से चिकित्सा करनेकी इच्छा करै तिससे जब कभी वह निरोगी होजाय तबउठिके उस दोष के मिटाने को (हंसःशुचिषत्) इत्यादि वेदमंत्रसे सूर्यके सन्मुख उपस्थान पढ़ै=इन वचनों की सामान्य आज्ञा से यह भी समझि परता है कि यदि वैद्य ने रोगी से कहे विना किसी औषधी में मधु मद्य भी रोगी को खवाया हो तो इसका दोष रोगी पर कुछ नहीं है अर्थात् रोगी ने जानि बूझिके निषिद्ध औषध जोखाई हो तिसका प्रायश्चित्त रोग मिटिजाने बादिकरै—इसके दृष्टान्तपर मिताक्षराकार ने वशिष्ठ का यह वचन भी दर्शाया है कि (अकामोपनतंमधुवाजसनेयकेनदुष्यतीति वशिष्ठस्मरणात्) जैसा वाजसनेय नामक यज्ञ में उपस्थित लोगों के आगेयदि विना मांगे चाहे मधु मद्य बँटता हुआ आकर स्वतः मिलिजाय तौ उस जगह पर लेलेने का दोष नहीं है यह वशिष्ठ ने कहा) तैसा रोग की दशा में भी यदि चाहे विना वैद्य के देने से खालेना परादो तिसका दोष नहीं=यह ब्रह्मचारी के व्रत भंग होने का प्रसंग पाइकर थोड़े से प्रायश्चित्त यहांपर लिखे गये—किन्तु रोग होने के विना यदि कोई कुछ अभक्ष्य भक्षण करै वा सूतक आदि अशुद्धिमें किसीका अन्न खाय तिनके प्रायश्चित्त आगे अभक्ष्य भक्षण के प्रकरण में सर्व सामान्य कहेजायँ तहां देखि लेना= और=जो कदाचित् किसी ब्रह्मचारी को कुत्ता आदि काटै वा कौआ आदि छुइ जाय तिसका प्रायश्चित्त २७७ की अविकोक्ति में देखौ तहां विशेष कर अंगिरा का वचन ढूंढो ॥ यह दोसौ बयासी का उत्तरार्द्ध पूरा होगया ॥ २८२ ॥ अब दोसौ तिरासी मूलश्लोक देखौ कि उसके पूर्वार्धमें गुरुके प्रतिकूल करने का प्रायश्चित्त गुरु का प्रसन्न करना कहिकर उसी ब्रह्मचारी के प्रसंग से गुरु को भी प्रायश्चित्त करना उत्तरार्धमें कहा गया—तहां कुछ सन्देह यद्यपि नहीं है क्योंकि (कृच्छ्रं त्रयं गुरुः) इतने पद का अर्थ यही है कि तीनि कृच्छ्र गुरुकरै तथापि मिताक्षरा में (कृच्छ्रत्रय) पद के ऊपर उलटी भांति खड़ी करी है तिसकी भी चार पंक्ती धरे देतेहैं देखौ=यथा=तदाचगुरुः कृच्छ्रादीनां प्राजापत्यादीनां त्रयंकुर्यात् नपुनस्त्रयःप्राजापत्याः तथासतिपृथङ्निवेशिनीसंख्याऽनुपपन्नास्यात् नचैकादशप्रयाजान्यजतीतिवदावृत्यपेक्षासंख्येति चतुरस्रं स्वरूपपृथक्त्वेसंभवत्यावृत्यपेक्षाया अन्याय्यत्वात् यदीयमुत्पन्नगतासंख्यास्यात् तदास्यादपिकथंचिदावृत्यपेक्षा किन्तु

र्यातिगतेयस्यतस्तिस्याहुतिर्जुहोतीति वस्त्वस्वरूपपृथक्त्वापेक्षयैवत्रित्वसंख्याघटना युक्ता—ये पंक्तियां—केवल विद्वानोंका वाग्विनोद है वेही सोचिके देखेंगे कि इनसे क्या क्या सार निकसा—किन्तु सर्व्वजनों के समझने योग्य वही पाठ है जो ऊपर २८३ के अर्थ लिखि चुके और वही प्रधान अर्थ है—अथवा—यहां की भान्ति जनक पंक्तियों से इतना सार लिया जासक्ता है कि जैसा (२७४ के उत्तरार्द्ध मूल श्लोकवाली अधिकोक्ति में कृच्छ्र शब्द के सामान्य लक्षण कहेगये थे कि) एक वर्ष छमाही से लेकर घटते घटते छः दिन तीन दिन एक दिन का भी कृच्छ्र व्रत होता है इनमें से जहां जैसे बड़े या छोटे की योग्यता समझी जाय तहां तैसाही किया जाय—सो इस व्यवस्था के अनुसार गुरु के प्रायश्चित्त में भी छोटे या बड़े कृच्छ्रों के स्वरूप यदि माने जायँ तौ भी तीनि कृच्छ्रों के स्वरूप मिलि कर कोई सी बड़ी या छोटी संख्या दिनों की हो जायगी अन्यथा सीधा अर्थ जैसा योगीश्वरने निष्कपट प्रयोग दर्शाया तिससे तीनि कृच्छ्रों के (बारहतिया) छत्तीस दिन होते हैं तिनसे कोईसा अन्याय नहीं प्रतीत होता है• क्योंकि गुरु के लियेयह एक बड़ी ताकीद रक्खी गई है कि ऐसे प्राणहानि वाले स्थान पर शिष्य को न भेजै• फिर भी जहां गुरुने ताकीद को न सोचि कर अतिक्रम किया होय जिससे शिष्य के प्राणही नाश होजायँ•तहां ऐसे गुरुपर छत्तीसदिनका प्रायश्चित्त बहुत बड़ा नहीं है जिसके लिये अप्रोक्त पंक्तियों का सहारा लिया जाय जिसमें छत्तीस दिन से कुछ न्यून अवधि पाई जाय इसमें कोई सार नहीं है॥ २८३॥

यह आशय भी विदित होना चाहिये कि चौबीसवां परिच्छेद को आदि लेकर यहां तक बहुधा परिच्छेदों में हिंसा के प्रायश्चित्त वर्णन होते रहे अर्थात् कहीं ब्रह्महत्या कहीं नरहत्या कहीं गोहत्या कहीं नारी वध कहीं गर्भिणी का वध कहीं अन्य भांति के पशु आदि जीवों की हिंसा बल्कि इस दोसौ तिरासी में भी शिष्य की हिंसा उसको भेजिदेने के बहाने से दर्शाई गई—सो इन पूर्वोक्त सर्वहिंसाओं का अपवाद आगे दोसौ चौरासी मूल श्लोक में दर्शावैंगे—यद्यपि जहां जहां ब्रह्महत्या गोहत्या आदिका वर्णन किया गया तहां भी ग्रंथांतर के वचनों से अपवाद छूटका स्वरूप देतेरहेहैं—परन्तु यहांपर मूल श्लोक से योगीश्वर आपही छूट दर्शावैंगे कि ऐसी अमुकामुक दशाओं में हिंसा होजाने परभी हिंसा नहीं कहाती है॥

(पूर्वोक्तसकलहिन्साऽपवादः)

क्रियमाणोपकारेतुमृतेविप्रेनपातकम् २८४(इत्यर्थमेव)

अर्थः–उपकार करते हुये विप्रके मरने में पातक नहीं है=अर्थात्–जहां गुरु या वैद्य आदि किसीने उसीके उपकार हेतु कहीं भेजा या उसका रोग मिटाने को वैद्य ने चिकित्सा करी हो जिससे कोई ब्राह्मण भी मरजाय तौभी कुछ प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं है ॥ २८४ ॥

२८४ अधिकोक्तिः–यह चौरासी का अङ्क ऊपरले दोसौ तिरासी से संबन्ध राखता है अर्थात् इसके द्वारा गुरु के प्रायश्चित्त पर (अपवाद) नामछूट सूचित करी है कि जब गुरु ने अपने कामको न भेजा हो किन्तु उसी शिष्य का उपकार सोचि कहीं भेजा हो जहां जाकर ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी आदि कोई ब्राह्मण मरजाय तौ इस दशा में उस गुरुपर न दोष है न प्रायश्चित्त की जरूरत है=यहीचौरासी का वचन उस गुरु के सिवाय वैद्य आदि उपकारियों से भी सबन्धित है तिससे उनके भी उपकारों में मरजाने का अपवाद रूप यही अर्थ लगाया जाता है कि वैद्यक अनुसार जिस वैद्य ने किसी को कुछ औषध वा पथ्य या कोईसा अन्न आदि अपने हाथसे खिलाया वा बताया हो रोगीका उपकार चाहिकर ऐसी दशामें यदि कोई ब्राह्मण भी मरजाय तौभी वैद्य दोषी नहीं है न उसपर प्रायश्चित्तकी अपेक्षाहै (इस व्यवस्थामें विप्र या ब्राह्मण का मरजाना कहा सोभी सबजीवोंका उपलक्षण मानागया कि क्षत्री आदि कोई आदमी या पशु गाय बैल घोड़ा आदि मे भी जिस किसीकी भलाई चाहिकर चिकित्सा आदि कोई कर्म कियाजाय या उसीसे करवाया जाय तिसके मरजाने मे भी दोष नहीं है–इसी लिये गोवध प्रायश्चित्तों के प्रकरण मे (यंत्रणे गोश्चिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने यत्नेकृतेविपत्तिःस्यान्नसपापेनलिप्यते) इत्यादि अनेक वचन लिखचुके तहां देखो ॥ २८४ ॥

अमुक दशा में हिंसा का दोष नहीं लगताहै यह कहा गया इसीके प्रसगसे यह बात भी उत्पन्न भई कि जब कोई किसीपर झूंठा पाप लगावे कि इसने मेराअमुक मनुष्य या गऊ आदि को मार डारा या अगम्यागमन किया या मदिरा पान करी इत्यादि झूंठा दोष लगाने का प्रायश्चित्त आगे देखो ॥

---*---

र्पातिगतेयमत्रतस्तिस्त्रआहुतिर्जुहोतीति वस्त्वस्वरूपपृथक्त्वापेक्षयैव त्रित्वसंख्याघटना युक्ता–ये पंक्तियां–केवल विद्वानोंका वाग्विनोद है वेही सोचिके देखेंगे कि इनसे क्या का सार निकसा–किन्तु सर्व्वजनों के समझने योग्य वही पाठ है जो ऊपर २८३ के अर्थ लिखि चुके और वही प्रधान अर्थ है–अथवा–यहां की भ्रान्ति जनक पंक्तियों से इतना सार लिया जासक्ता है कि जैसा (२७४ के उत्तरार्द्ध मूल श्लोकवाली अधिकोक्ति में कृच्छ्र शब्द के सामान्य लक्षण कहेगये थे कि) एक वर्ष छमाही से लेकर घटते घटते छः दिन तीन दिन एक दिन का भी कृच्छ्र व्रत होता है इनमें से जहां जैसे बड़े या छोटे की योग्यता समझी जाय तहां तैसाही किया जाय–सो इस व्यवस्था के अनुसार गुरु के प्रायश्चित्त में भी छोटे या बड़े कृच्छ्रों के स्वरूप यदि माने जायँ तो भी तीनि कृच्छ्रों के स्वरूप मिलि कर कोई सी बड़ी या छोटी संख्या दिनों की हो जायगी अन्यथा सीधा अर्थ, जैसा योगीश्वरने निष्कपट प्रयोग दर्शाया तिससे तीनि कृच्छ्रों के (बारहतिया) छत्तीस दिन होते हैं तिनसे कोईसा अन्याय नहीं प्रतीत होता है• क्योंकि गुरु के लियेयह एक बड़ी ताकीद रक्खी गई है कि ऐसे प्राणहानि वाले स्थान पर शिष्य को न भेजै• फिर भी जहां गुरुने ताकीद को न सोचि कर अतिक्रम किया होय जिससे शिष्य के प्राणही नाश होजायँ•तहां ऐसे गुरुपर छत्तीसदिनका प्रायश्चित्त बहुत बड़ा नहीं है जिसके लिये अप्रोक्त पंक्तियों का सहारा लिया जाय जिसमें छत्तीस दिन से कुछ न्यून अवधि पाई जाय इसमें कोई सार नहीं है ॥ २८३ ॥

यह आशय भी विदित होना चाहिये कि चौबीसवां परिच्छेद को आदि लेकर यहां तक बहुधा परिच्छेदों में हिन्सा के प्रायश्चित्त वर्णन होते रहे अर्थात कहीं ब्रह्महत्या कहीं नरहत्या कहीं गोहत्या कहीं नारी वध कहीं गर्भही का वध कहीं अन्य भांति के पशु आदि जीवों की हिंसा बल्कि इस दोसौ तिरासी में भी शिष्य को हिंसा उसको भेजिदेने के बहाने से दर्शाई गई–सो इन पूर्वोक्त सर्वहिंसाओं का अपवाद आगे दोसौ चौरासी मूल श्लोक से दर्शावेंगे–यद्यपि जहां जहां ब्रह्महत्या गोहत्या आदिका वर्णन किया गया तहां भी ग्रंथांतर के वचनों से अपवाद छूटका स्वरूप देतेरहेहैं–परन्तु यहांपर मूल श्लोक से योगीश्वर आपही छूट दर्शावैंगे कि ऐसी अमुकामुक दशाओं में हिंसा होजाने परभी हिंसा नहीं कहाती है ॥

(पूर्वोक्तसकलहिन्साऽपवादः)

क्रियमाणोपकारेतुमृतेविप्रेनपातकम् २८४(इत्यर्थमेव)

अर्थः-उपकार करते हुये विप्रके मरने में पातक नहीं है=अर्थात्-जहां गुरु या वैद्य आदि किसीने उसीके उपकार हेतु कहीं भेजा या उसका रोग मिटाने को वैद्य ने चिकित्सा करी हो जिससे कोई ब्राह्मण भी मरजाय तौभी कुछ प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं है॥ २८४ ॥

२८४ अधिकोक्तिः-यह चौरासी का अङ्का ऊपरले दोसौ तिरासी से संबन्ध राखता है अर्थात् इसके द्वारा गुरु के प्रायश्चित्त पर (अपवाद) नामछूट सूचित करी है कि जब गुरु ने अपने कामको न भेजा हो किन्तु उसी शिष्य का उपकार सोचि कहीं भेजा हो जहां जाकर ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी आदि कोई ब्राह्मण मरजाय तो इस दशा में उस गुरुपर न दोष है न प्रायश्चित्त की जरूरत है=यहीचौरासी का वचन उस गुरु के सिवाय वैद्य आदि उपकारियों से भी संबन्धित है तिससे उनके भी उपकारों में मरजाने का अपवाद रूप यही अर्थ लगाया जाता है कि वैद्यक अनुसार जिस वैद्य ने किसी को कुछ औषध वा पथ्य या कोईसा अन्न आदि अपने हाथसे खिलाया वा बताया हो रोगीका उपकार चाहिकर ऐसी दशामें यदि कोई ब्राह्मण भी मरजाय तौभी वैद्य दोषी नहीं है न उसपर प्रायश्चित्तकी अपेक्षाहै (इस व्यवस्थामें विप्र या ब्राह्मण का मरजाना कहा सोभी सबजीवोंका उपलक्षण मानागया कि स्त्री आदि कोई आदमी या पशु गाय बैल घोड़ा आदि में भी जिस किसीको भलाई चाहिकर चिकित्सा आदि कोई कर्म कियाजाय या उसीसे करवाया जाय तिसके मरजाने में भी दोष नहीं है-इसी लिये गोवध प्रायश्चित्तों के प्रकरण में (यंत्रणे गोश्चिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने यत्नेकृतेविपत्तिःस्यान्नसपापे र्नलिप्यते) इत्यादि अनेक वचन लिखिचुके तहाँ देखो॥ २८४ ॥

अमुक दशा में हिंसा का दोष नहीं लगताहै यह कहा गया इसीके प्रसंगसे यह बात भी उत्पन्न भई कि जब कोई किसीपर झूंठा पाप लगावे कि इसने मेराअमुक मनुष्य या गऊ आदि को मार डारा या अगम्यागमन किया या मदिरा पान करी इत्यादि झूंठा दोष लगाने का प्रायश्चित्त आगे देखो॥

———*———

अथमिथ्या भिशंसनादिदोषस्यप्रायश्चित्तप्रकाश कोऽयंपरिच्छेदः षष्ठितमः (६०)॥



इस परिच्छेद में मिथ्याऽभिशंसन दोषका प्रायश्चित्त उसकेलिये दर्शावेंगे कि जिसने किसी पर झूंठा पाप लगाया हो—और उसको भी कि जिसपर झूंठा पाप लगाया जाय—इन दोनों के प्रसंग से अपां क्तेयों के प्रायश्चित्त भी सामान्य कहे जायँगे॥

(मिथ्याऽऽरोपितदोषप्रायश्चित्तं)

मिथ्याऽभिशंसिनोदोषात्द्विःसमाभूतवादिनः मिथ्याऽभिशस्तदोषञ्चसमादत्तेऽमृषावदन् २८५॥
महापापोपपापाभ्यांयोऽभिशंसेन्मृषापरम् अब्भक्षोमासमासीतसजापीनियतेन्द्रियः २८६॥

अर्थः—द्रोहसे झूंठ अभिशंसन कर्ता समभूतवादी को दूना दोष और असृषा कहिते हुये मिथ्याभिशस्त का दोष भी अच्छीतरह लेताहै=अर्थात्—जब किसी का भाग्योदय प्रतिष्ठा की वृद्धि आदि उत्कर्ष को ईर्षा द्रोह से न सहिकर कोई द्रोही उसको झूंठा ही अभिशाप लगावै अर्थात् मनुष्यों के समाज में कोई सा बडा या छोटा पाप सुनावै कि उसने ब्रह्महत्या करी या मद्यपान वा अगम्यागमन वा गोवध आदि अमुक पाप किया तौ उस झूंठ लगाने वाले को वही पाप उससे दूना लगा ठहरता है जो पाप उसने मिथ्याही किसीपर लगाया—और जिसने किसीका सच्चा ही पाप प्रथम अगुआ बनिकर सब लोगोंके सन्मुख प्रकाश किया हो जिसपापको सबलोग नहीं जानतेथे तौ भी उसपापी के और जो पहिले संचित किये पाप हैं सो इस दोषवक्ता के ऊपर चढिआते हैं॥ २८५॥ महापाप या उपपापों से जो कोई पराये को मृषाही अभिशंसै सो एक महीना भर जितेन्द्र होके जलही का आहार करते हुये जपमें बैठै-यह उन्हींका प्रायश्चित्त है॥२८६॥

२८५ अधिकोक्तिः—वक्ता के ऊपर पाप चढि आते हैं इसीलिये आपस्तंब ने यह कहा है (दोषंबुध्वानपूर्वःपरेभ्यः पतितस्यसमाख्यातास्यात् परिहरेत्वेनंधर्मेषु) अर्थात्—किसी पतित का दोष देखि जानि के प्रथम देखने वाला और लोगों के सन्मुख व्योरा न कहै और व्यवहार के धर्मोंमें भी इसको ऐसी रीतिसे छोडै कि

जिससे सबके सामने ब्यौरा न कहिनापरै किन्तु अपने आपही युक्तिकेसाथ पतित से बचा रहे कि जब तक दोषीका दोष औरोंके द्वारा प्रकाश होय ॥ २८५ ॥ इन के प्रायश्चित्तमें महीनाभर जल पीके जप करना जो ऊपर कहिचुके वह जप भी शुद्धवतीनाम की ऋचाओं से करना चाहिये=यथाह वशिष्ठः=ब्राह्मणमनृतेनाभिशंस्य पतनीयेनोपपातकेनवामासमब्भक्षः शुद्धवतीभिरावर्त्तयेदश्वमेधावभृथंवागच्छेत्= अर्थात्-वशिष्ठने भी ऐसा कहाहै कि ब्राह्मणको असत्य पाप जो जाती धर्मसे गिर जाने योग्य महापातक या उपपातकमें गिनती होय तिससे दूषितकरिके यह प्रायश्चित्त करै कि शुद्धवती इसनामसे प्रसिद्ध जो ऋचा है तिनसे जप करै एक महीना तक जलहीके आहारसे उपवास राखै तब शुद्ध होय अथवा यह न होसके तो जहां कहीं अश्वमेध होता सुनै तहां जाकर उसके अवभृथनाम के अन्तिमस्नान में शामिल होजाय तो भी शुद्ध होजावे (इसमें जो महापाप और उपपाप कहा तिसके बीचमें अति पातक आदि और भांति के पाप जो कुछ होते हैं सो भी सब समुझि लेना) यह झूंठा दोष लगानेकी व्यवस्था जो लिखी गई सो सब उसके प्रायश्चित्तहैं कि जहां ब्राह्मण को किसी ब्राह्मण ने महापातक दोष लगायाहो=अर्थात् जहां कोई क्षत्री आदि इतरवर्णका मनुष्य होकर ब्राह्मणपर झूंठा पाप लगावे तहां उस क्षत्री आदि के लिये इन्हीं प्रायश्चित्तोंका दूना तिगुना आदि भार चढायाजाय सो उस न्यायसे कि जैसा (प्रतिलोमापवादेषुद्विगुणस्त्रिगुणोदमः) यह व्यवहार मर्य्यादा में दण्ड दूना तिगुना कहागया था=और जहां क्षत्रीआदि किसी नीचे वर्णको ब्राह्मण आदि ऊचे वर्णोंके मनुष्यने झूंठा पाप लगायाहो तहां (वर्णानामानुलोम्येन तस्मादर्द्धार्द्धहानितः) यह दण्डका प्रकार जैसा व्यवहार मर्य्यादामें लिखि चुके तिसके अनुसार यहां प्रायश्चित्त भी कम किया चाहिये=और जिसने सचा दोष प्रकाश कियाहो तिसकेलिये २८५वाली व्यवस्थाके अनुरूप केवल आधाही प्रायश्चित्त विचारा जाय॰ सो यह उससे आधा समुझना कि जितना झूंठा पर साबित किया जाय (यह तो महापापोंका दोष लगाने मध्ये नियम कहे गये) इन्हीं सब लिखे हुये नियमोंसे पौना पौना प्रायश्चित्त उनकेलिये विचारा जाय कि जिन्होंने अति पातक नामके पापों से दोष लगायाहो॰ और उनकेलिये आधा आधा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये कि जिन्होंने पातक लक्षण के पापोंसे दोष लगायाहो॰ और जिन्होने उपपातक लक्षणके पापों से दोष लगाया हो तिनकेलिये इन प्रायश्चित्तोंका चौथाई भाग देना चाहिये क्योंकि उपपातक रूपी क्षत्री आदि के वध

अथमिथ्या भिशंसनादिदोषस्यप्रायश्चित्तप्रकाश कोऽयंपरिच्छेदः षष्ठितमः (६०)॥

इस परिच्छेद में मिथ्याऽभिशंसन दोषका प्रायश्चित्त उसकेलिये दर्शावेंगे कि जिसने किसी पर झूंठा पाप लगाया हो—और उसको भी कि जिसपर झूंठा पाप लगाया जाय—इन दोनों के प्रसंग से अपां क्तेयों के प्रायश्चित्त भी सामान्य कहे जायेंगे॥

(मिथ्याऽऽरोपितदोषप्रायश्चित्तं)

मिथ्याऽभिशंसिनोदोषाद्द्विःसमाभूतवादिनः मिथ्याऽभिशस्तदोषञ्चसमादत्तेऽमृषावदन् २८५॥
महापापोपपापाभ्यांयोऽभिशंसेन्मृषापरम् अब्भक्षोमासमासीतसजापीनियतेन्द्रियः २८६॥

अर्थः—द्रोहसे झूंठ अभिशंसन कर्त्ता समाभूतवादी को दूना दोष और अमृषा कहिते हुये मिथ्याभिशस्त का दोष भी अच्छीतरह लेताहै=अर्थात—जब किसी का भाग्योदय प्रतिष्ठा की वृद्धि आदि उत्कर्ष को ईर्षा द्रोह से न सहिकर कोई द्रोही उसको झूंठा ही अभिशाप लगावे अर्थात मनुष्यों के समाज में कोई सा बड़ा या छोटा पाप सुनावे कि उसने ब्रह्महत्या करी या मद्यपान वा अगम्यागमन वा गोवध आदि अमुक पाप किया तो उस झूंठ लगाने वाले को वही पाप उससे दूना लगा ठहिरता है जो पाप उसने मिथ्याही किसीपर लगाया—और जिसने किसीका सचा ही पाप प्रथम अगुआ बनिकर सब लोगोंके सन्मुख प्रकाश किया हो जिसपापको सबलोग नहीं जानतेथे तो भी उसपापी के और जो,पहिले संचित किये पाप हैं सो-इस दोषवक्ता के ऊपर चढिआते हैं॥ २८५॥ महापाप या, उपपापों से जो कोई पराये को मृषाही अभिशंसै सो एक महीना भर जितेन्द्र होके जलही का आहार करते हुये जपमें बैठै-यह उन्हींका प्रायश्चित्त है॥ २८६॥

२८५ अधिकोक्तिः—वक्ता के ऊपर पाप चढि आते हैं इसीलिये आपस्तंब ने यह कहा है (दोषंबुद्ध्वानपूर्वःपरेभ्यः, पतितस्यसमाख्यातास्यात् परिहरेच्चैनंधर्मेषु) अर्थात—किसी पतित का दोष देखि जानि के प्रथम देखने वाला और लोगों के सन्मुख ब्योरा न कहै और व्यवहार के धर्मोंमें भी इसको ऐसी रीतिसे छोडै कि

जिससे सबके सामने ब्यौरा न कहिनापरें किन्तु अपने आपही युक्तिकेसाथ पतित से बचा रहे कि जब तक दोषीका दोष औरोंके द्वारा प्रकाश होय ॥ २८५ ॥ इन के प्रायश्चित्तमें महीनाभर जल पीके जप करना जो ऊपर कहिचुके वह जप भी शुद्धवतीनाम की ऋचाओं से करना चाहिये=यथाह वशिष्ठः=ब्राह्मणस्यानृतेनाभिशंस्य पतनीयेनोपपातकेनवामासमब्भक्षः शुद्धवतीभिरावर्त्तयेदश्वमेधावभृथंवागच्छेत= अर्थात्–वशिष्ठने भी ऐसा कहाहै कि ब्राह्मणको असत्य पाप जो जाती धर्मसे गिर जाने योग्य महापातक या उपपातकमें गिनती होय तिससे दूषितकरिके यह प्रायश्चित्त करे कि शुद्धवती इसनामसे प्रसिद्ध जो ऋचा है तिनसे जप करे एक महीना तक जलहीके आहारसे उपवास राखे तब शुद्ध होय अथवा यह न होसके तो जहां कहीं अश्वमेध होता सुने तहां जाकर उसके अवभृथनाम के अन्तिमस्नान में शामिल होजाय तो भी शुद्ध होजावे (इसमें जो महापाप और उपपाप कहा तिसके बीचमें अति पातक आदि और भांति के पाप जो कुछ होते हैं सो भी सब समुझि लेना) यह झूंठा दोष लगानेकी व्यवस्था जो लिखी गई सो सब उसके प्रायश्चित्तहैं कि जहां ब्राह्मण को किसी ब्राह्मण ने महापातक दोष लगायाहो=अर्थात जहां कोई क्षत्री आदि इतरवर्णका मनुष्य होकर ब्राह्मणपर झूंठा पाप लगावे तहां उस क्षत्री आदि के लिये इन्हीं प्रायश्चित्तोंका दूना तिगुना आदि भार चढायाजाय सो उस न्यायसे कि जैसा (प्रतिलोमापवादेषुद्विगुणास्त्रिगुणादमः) यह व्यवहार मर्य्यादा में दण्ड दूना तिगुना कहागया था=और जहां क्षत्रीआदि किसी नीचे वर्णको ब्राह्मण आदि ऊंचे वर्णोंके मनुष्यने झूंठा पाप लगायाहो तहां (वर्णानामानुलोम्येन तस्माद्दर्द्धार्द्धहानितः) यह दण्डका प्रकार जैसा व्यवहार मर्यादामें लिखि चुके तिसके अनुसार यहां प्रायश्चित्त भी कम किया चाहिये=और जिसने सच्चा दोष प्रकाश कियाहो तिसकेलिये २८५वाली व्यवस्थाके अनुरूप केवल आधाही प्रायश्चित्त विचारा जाय॰ सो यह उससे आधा समुझना कि जितना झूंठा पर साबित किया जाय (यह तो महापापोंका दोष लगाने मध्ये नियम कहे गये) इन्हीं सब लिखे हुये नियमोंसे पौना पौना प्रायश्चित्त उनकेलिये विचारा जाय कि जिन्होंने अति पातक नामके पापों से दोष लगायाहो॰ और उनकेलिये आधा आधा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये कि जिन्होंने पातक लक्षण के पापोंसे दोष लगायाहो॰ और जिन्होंने उपपातक लक्षणके पापों से दोष लगाया हो तिनकेलिये इन प्रायश्चित्तोंका चौथाई भाग देना चाहिये क्योंकि उपपातक रूपी क्षत्री आदि के वध

का जो प्रकरण लिखागयाथा उसमें (तुरीयोब्रह्महत्यायाःक्षत्रियस्यवधेस्मृतः) यही वचन कहागयाथा कि ब्रह्महत्यारूपी महापातक का प्रायश्चित्त जो बारह वर्षका होताहै तिसका चौथाई भाग क्षत्री के वधमें समुझना• तिससे यहां भी वही तात्पर्य है• और इस चौथाई से भी कुछ न्यून व्रत उनकोलिये लगाना कि जिन्होंने प्रकीर्ण लक्षण के पापोंसे किसीको दोष लगायाहो—इसी नियम का प्रमाण भी यह वचन है कि (शक्तिंचावेक्ष्यपापंच प्रायश्चित्तंप्रकल्पयेत) शक्ति और पाप की बड़ाई छोटाई देखिके प्रायश्चित्त लगावे ॥ ० ॥ इसके सिवाय जिसने झूंठा पाप लगाने का वारम्वार अभ्यास किया हो यहां अन्य लोगों को झूंठे साक्षी आदि बनाकर बड़ी दृढतासे महापापरूपीदोष किसी ब्राह्मणपर लगायाहो तिसकेलिये शंख और लिखितका बताया प्रायश्चित्तहै=यदाहतुःशंखलिखितौ=नास्तिकःकृतघ्नःकूटव्यवहारीब्राह्मणवृत्तिघ्नोमिथ्याभिशंसीचेत्येतेयड्वर्षाणिब्राह्मणगृहेषुभैक्ष्यंचरेयुःसंवत्सरं धौतभैक्ष्यमश्नीयुः षड्मासान्वागाअनुगच्छेयुरिति=अर्थात्—दोनों भ्राता मुनीश्वरोंने कहाहै कि एकनास्तिक•कृतघ्न•कूट व्यवहारी जो मिलावकी चीजें बेचै•ब्राह्मण की वृत्ति जीविका बिगाड़ने वाला• और मिथ्याभिशंसी जो किसी को झूंठा पाप लगावै• ये सभी इतने पापी लोग छै वर्ष भर ब्राह्मणों के घर भिक्षामांगैं या एक वर्ष टुकड़े मांगे हुये धोकर खायें या एक छमाही भर गौओंके पीछे फिरिके सेवा करें तव शुद्धहोयँ—ये बड़े छोटे तीनि प्रायश्चित्त भी अपराधकी बड़ाई छोटाई देखि के अपराधी पर आरूढ कियेजायँगे ॥ २८६ ॥ दोष लगानेवाले के प्रसंगसे उसके लिये भी प्रायश्चित्त आगे दर्शावेंगे कि जिसपर झूंठा पाप लगाया गयाहो उसका नाम अभिशस्त कहाजाताहै॥

(अभिशस्त प्रायश्चित्तं)

अभिशस्तोमृषाकृच्छ्रंचरेदाग्नेयमेवच। निर्वपेत्तुपुरोडाशंवायव्यंपशुमेववा २८७

अर्थः—मृषा अभिशस्त भी कृच्छ्र करै वा आग्नेय पुरोडाश बोवै या वायव्य पशुही को=अर्थात्—झूंठा पाप शाप जिसपर लगाया गया सो मृषाऽभिशस्त कहाता है उसको भी यह प्रायश्चित्त करना चाहिये कि प्राजापत्य नामका कृच्छ्र व्रतसाधै अथवा अग्निदेवता की प्रधानतासे उसीके नामपर साकल्य होमै अथवा वायुदेवता के नामसे वायव्य पशुयाग करै तव शुद्ध होय॥ २८७ ॥

२८७ अधिकोक्तिः—(वायव्यंश्वेतछागमालभेतेति श्रुतिदर्शनाच्छागस्यश्वेतत्व

र्णोपशुरवापिज्ञायते) अर्थात मूलश्लोक में यद्यपि वायव्य पशुका कोई नाम नहीं कहा तोभी यह श्रुति जो प्रसिद्ध है कि वायव्य पशुके नामसे सुपेद बकरा बलिदान करै) तिससे यहां भी सुपेद बकरा समझा गया है=मूलश्लोक में प्रायश्चित्तों के दो तीन भेद जो दर्शाये तिनमें कर्ताकी शक्ति और देश काल आदि का अविरोधी सम्भव जानिके विकल्प किया जासक्ता है कि इनमें से जिस भेदका अवसर ठीकमिले वही किया जाय ॥ ० ॥ इससे पहिली अधिकोक्ति के प्रारंभ से २८५ के बादि जो वशिष्ठ का वचन लिखा गयाथा तिसके अन्तमें वशिष्ठजीने (एतेनैवाभिशस्तोव्याख्यातः) यह इतना पद और भी लिखिकर यह अर्थ प्रकट कियाहै कि एकमहीना जल पीकर जप करना जो झूंठे पाप लगानेवाले को कहा वही उसको भी चाहिये जिसपर झूठा पाप लगाया जाय—सो यह एक महीनेका वडा प्रायश्चित्त अभिशस्त की अपेक्षा में उस दशापर आरूढ होसक्ता है कि जब उसने बहुत कालतक प्रायश्चित्त न कियाहो तब यह बड़ा करना चाहिये क्योंकि दण्डके प्रकरणमें भी ऐसा नियम है कि (संवत्सराभिशस्तस्यदुष्टस्यद्विगुणोदमः) अर्थात जब कोई दुर्जन एक साल भरसे कलंकित सज्ञाव किया गयाहो और वह कोईसा अपराध करै तब उस अपराध का जो दंड होताहो सो उसको दूना किया जाय ॥ ० ॥

पैठीनसि ने यह कहा है=अनृतेनाभिशस्यमानः कृच्छ्रञ्चरेत्मासपातकेषु महापातकेषुद्विमासम=अर्थात—असत्यपापसेशापित दूषित कियाहुआ पुरुषकृच्छ्रव्रत आचरै जो बारहदिनमें होताहै (परन्तु ये बारह दिन छोटे उपपापोंके अभिशाप में समझने क्योंकि)उपपातकोंके अभिशापमेंएक महीनाभर व्रतचाहिये औरमहापातकोंकेअभिशापमें दो महीने(इसमें भी ऊपरले वशिष्ठके वचन समान और कर्ताकी शक्ति आदि के अनुसार व्यवस्था कल्पित करनी चाहिये)=इसी प्रकार=और भी जे कोई वचन अभिशस्तकी अपेक्षा पर पायेजायँ तिनके बड़े छोटे प्रायश्चित्तों की व्यवस्था भी तात्कालिक देशकाल और शक्ति आदि के अनुसार शोचिके समुझि लेना=इसके सिवाय=मनुने एक सामान्य रीतिके प्रायश्चित्त भी दर्शाये हैं जो अभिशस्त आदि औरों पर भी आरूढ होस क्ते हैं=यथाह मनुः=यथान्नकालतामासंसंहिताजपएववा होमाश्चशाकलानित्य मपंक्त्यानांविशोधनम=अर्थात—अपक्तय वे पुरुष जिनका किसी कलंकसे पांतिमें बैठना भोजन करना आदि बंद होय ऐसे पुरुष अनेक तरह के कलंकी होते हैं उनमें एक अभिशस्त भी कुछ शोचि के गिनती कियागया है—तिन सबका विशोधन प्रायश्चित्त एक महीना भर (यथान्नकालता) अर्थात छटे

छठे दिन भोजन एक महीना भर करना अथवा यह न होसके तो संहिता का जप पाठही एक महीना भर करै अथवा साकल्य सामग्रीके होमही रोज करता रहे तो शुद्धि उनकी होजाती है ॥ ० ॥ इस ऊपर की व्यवस्था में मृषा अभिशस्त के प्रायश्चित्त जो कुछ कहे गये तिनपर बहुत कुछ सन्देह कियागया है कि जब झूंठाही अपवाद लगाया गया तो फिर उसका क्या दोषहै कि जिसके लिये प्रायश्चित्त करना कहा--इसका यही उत्तर है कि यद्यपि उसका दोष कुछ इस देह से नहीं पाया गया तौभी पहिले जन्मका पाप उसके ऊपर आनिके आरूढ हुआ कि जिसने महा पाप रूपी झूंठा कलंक उसपर आरोपित करवाया तिसकी शांतिके निमित्तमें प्रायश्चित्त उसपर ठहिरा•तिससे विरोध कोई सा नहीं है न शंका करने को अवकाश है--क्योंकि--जैसे घाव वा फोड़ा फुंसी आदिमें कोड़ पर जानेका प्रायश्चित्त पूर्वजन्म कृत पापोंका उदय देखि उनकी शांतिके निमित्त कहागया था ७७की अधिकोक्ति में देखो तैसा यह भी है ॥ २८७ ॥ दोसौ अस्सी मूलश्लोक से लेकर अपने नियम तोड़ि देनेका चर्चा चला आताहै तिससे निचले परिच्छेदमें भी नियम टूटिजाने के प्रायश्चित्त वर्णन होंगे कि जब किसी रजस्वला के नियम या पति का नियम या देवर जेठोंका उचित नियम टूटिजाय॥ २८७ ॥

अथ रजस्वलाद्यगम्यागमनस्य रजस्वलायाश्च नियम भङ्गस्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयम्परिच्छेदः एकषष्ठिः(६१)

—— ❀ ——

इस परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तों का प्रकाश किया जावेगा जो पुरुष को रजस्वला संगम करने में या भाईकी भार्या गमन करनेमें आवश्यकहै-और स्त्री जो रजस्वला होते परस्पर दो भिड़ि के नियम खोवै या कुत्ता वा चंडाल आदि मलीन जीवों को छुइके नियम तोड़ै तिसको आवश्यक हैं॥

(अगम्यागमन प्रायश्चित्तं)

अनियुक्तोभ्रातृभार्यांगच्छंश्चान्द्रायणञ्चरेत् । त्रिरात्रान्तेघृतंप्राश्यगत्वोदक्यांविशुद्ध्यति २८८ ॥

अर्थः-भ्राताकी भार्यामें नियुक्त किये विना गमन करते हुये चांद्रायण आचरै= अर्थात्-नियोग कर्मकी आज्ञा गुरु जनों से मिले विनाही यदि कोई अपनेछोटे या

बड़े किसी भाई की विधवा आदि भार्यामें गर्भदान के मनोरथ से संगम करै सो भी एक महीना भर चांद्रायण व्रत साधै तब शुद्ध होय॥ †॥ उदक्यामें जाइके तीनरात्रि के पीछे घृत चाटिके शुद्ध होता है=अर्थात्—उदक्या रजस्वला यद्यपि अपनी भार्या होय तिसमें संगम करिके तीनि दिन राति भर निराहार-उपवास किये पीछे चौथे दिन घी खानेसे विशुद्ध होता है॥ २८८॥

२८८ अधिकोक्तिः—भावजमें संगमका प्रायश्चित्त जो ऊपर लिखा सो केवल एकवारके संगम और इच्छाके विना संगम होनेपर समुझना=किन्तु=इच्छासे चाहि कर संगम या कईवार संगम कियाहो तिसके लिये शंखमुनिका कहा प्रायश्चित्त है=यदाह शंखः=परिविवित्तिःपरिवेत्ताच संवत्सरंत्राह्मणगृहेषु भैक्ष्यंचरेयातांज्येष्ठभार्यासिनियुक्तोगच्छंस्तदेवकानिय भार्यांचेति=अर्थात्—परिविवित्ति और परिवेत्ता भी एकवर्षभर ब्राह्मण के घरों में भिक्षामांगें तथैव अपने जेठे वा छोटेभाईकी भार्या में नियुक्त नहीं किया हुआ संगम करै सोभी इसी प्रायश्चित्तको आचरै॥ †॥ रजस्वला के संगमका जो प्रायश्चित्त ऊपर कहागया सो भी एकवार और चाहे विना संगम होजाने में समझना=किन्तु=कईवारके अभ्यासमें शातातपका कहा प्रायश्चित्त है=यदाह शातातपः=रजस्वलागमने सप्तरात्रं=अर्थात्—रजस्वला का संगम करने में सात रात्रिका व्रतकरै-और इच्छासे चाहिकर एकवार भी संगम करने में यही प्रायश्चित्त है=परन्तु=जिसने कामनासे चाहिकर कईवारका अभ्यास किया हो तिसके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त है=यथाह बृहत्संवर्तः=रजस्वलांतुयोगच्छेद्गर्भिणींपतितांतथा तस्यपापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रं विशोधनम्=अर्थात्—जो रजस्वलामें संगमकरै या गर्भवतीमें करै या पतिता जो महापातकोंसे संयुक्त हुईहो तिसमें संगम करै तो इसपापी के पाप शोधनेको अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त है=इनके सिवाय=जो शंख ने तीनि वर्ष का प्रायश्चित्त कहाहै कि=पादस्तुशूद्रहत्यायामुदक्यागमनेतथा=अर्थात्—बारहवर्ष वाले व्रतोंको चौथाई तीनिवर्ष भर शूद्र की हत्या पर करना चाहिये तथा उदक्या रजस्वलाके संगम पर भी (सो यह तीनि वर्ष चंडाली आदि अधम जाती रजस्वला के संगमपर और चंडाली आदि से उपराल अन्य स्त्रियां जो रजस्वलाहों तिनमें अत्यन्त कामनासे अतिकाल तक अभ्यास राखने मध्ये भी समझि लेना॥ ०॥ भाई की भार्या का संगम यहांपर छोटे उपपातकों में आकर जुदा वर्णन किया गया किन्तु भ्रातृपत्नीसे ऊपर जो रिश्तेमें अधिक पूज्य होतीहैं उन स्त्रियों के संगम का बहुत बड़ा प्रायश्चित्त है यह छत्तीसवें परिच्छेद में वर्णन होचुका तिससे यहां पर

श्चित्त है• परन्तु जो अपने वर्ण की या अपना से ऊँचे वर्ण की रजस्वला को दैव योग से भिड़ जाय सो तत्काल ही स्नान करि शुद्ध होजाय किन्तु उस को अन्तिम स्नान तक भोजन छोड़ने की जरूरत नहीं रही ॥ यहां तक रजस्वला ही रजस्वला से भिड़ें तिसका चर्चा था ॥ ० ॥ अब आगे चण्डाल आदि किसी अत्यन्त मलीन प्राणी से यदि कोई रजस्वला भिड़ जाय तिसके प्रायश्चित्त भी बड़े वशिष्ठ कहिते हैं=यथाह वृहद्वशिष्ठः=पतितांत्यश्वपाकेन संस्पृष्टाचेद्रजस्वला तान्यहानित्व-तिक्रम्यप्रायश्चित्तंसमाचरेत•प्रथमेऽह्नित्रिरात्रंस्याद द्वितीयेद्व्यहमेवतु अहोरात्रंतृतीयेऽह्निपरतोनक्तमाचरेत शूद्रयोच्छिष्टयास्पृष्टाशुनाचेद्व्यहमाचरेत=अर्थात्–पतित जो महा पातकों से दूषित हो• अन्त्यज अनेक तरह के• श्वपाक चंडाल•इनसे यदि कोई रजस्वला छुइ जाय सो अपने रजोधर्म के बाकी दिवसों को भोजन बिनाबिता-इके पीछे से प्रायश्चित्त करें• किन्तु रजोरक्त जारी होने के पहिले दिन छुइजाय सो तीन दिन का प्रायश्चित्त करें जो दूसरे दिन छुइजाय सो दो दिन प्रायश्चित्त करें तीसरे दिन छुइजाय सो एक दिन राति का व्रत करें इसके आगे जो चौथेदिन को आदि लेकर किसी दिन छुई होय सो एक राति ही भर का व्रत करें•और हाथ मुंह से जूठी शूद्रिनी ने यदि किसी रजस्वला को छुइलिया हो यद्वा कुत्ता ने छुइ लिया हो तो यह रजस्वला दोदिन का प्रायश्चित्त करें•इन प्रायश्चित्तके दिवसोंमें पंचगव्य का आहार करना मुचित है कि जैसा ऊपरले किसी प्रायश्चित्तमें कहि चुके हैं–परन्तु ये वशिष्ठ के कहे प्रायश्चित्त उस दशापर आरूढ हैं कि जब रज-स्वला ने जानि बूझि कर स्पर्शकिया हो=अन्यथा=बिना जाने दैव योग से छुइजाने मध्ये अग्रोक्त प्रायश्चित्त है=यथाह बौधायनः=रजस्वलातुसंस्पृष्टा चांडालांत्यश्ववा-यसैः तावत्तिष्ठेन्निराहारायावत्कालेनशुद्ध्यति=अर्थात्–जो कोई रजस्वला किसी प्र-कार के चंडाल वा अन्त्यज वा कुत्ता वा कौआ इनसे छुइजाय सो तबतक आहार कुछ न करें कि जब तक रजोधर्म के बाकी दिन बिताइकर शुद्ध होजाय=परन्तु= यदि कोई रजस्वला किसी रोग आदि के हेतु से असमर्थ होय जो कई दिन आहार के बिना न रहि सक्तीहो तिसके लिये उसी बौधायन ऋषिने दूसरा कहा है=यथा= रजस्वलातुसंस्पृष्टाग्रामकुक्कुटसूकरैः श्वभिःस्नात्वाक्षिपेत्तावद्यावच्चन्द्रस्यदर्शनम्=अर्था-त्–ग्राम के निवासी मुर्ग सुअर कुत्ते आदि मलीन जीवों से छुई रजस्वला तत्काल स्नान करिके तब तक भोजन न करें कि जब तक चन्द्रमा का उदय हुआ न देखे ॥ ० ॥ जब किसी रजस्वला को भोजन करते समय कुत्ता आदि कोई मलीन प्राणी

छुइ जाय तिसका प्रायश्चित्त विशेष और स्मृतियों में कहा है=यथा=रजस्वलातु भुंजानाचांत्यजादीन्स्पृशेद्यदि गोमूत्रयावकाहारायड्रात्रेणैवशुद्ध्यति अशक्तौकांचनं दद्याद्विप्रेभ्योवापिभोजनम्=अर्थात्–भोजन करती हुई रजस्वला यदि कुत्ता आदिवा चण्डाल आदि किसीको छुइजाय सो गोमूत्र में पकाये जौ का दलिया खायकेछः दिन में शुद्ध होती है जो ऐसा न करसके किसी रोग आदि के हेतु से सो कांचन का दानकरै या ब्राह्मणों को भोजन करावै (इसमें जो छःदिन दलिया खाना कहा सो भी उन दिनों से उपरान्त प्रायश्चित्त है कि जब तक रजोधर्म जारी बना रहै अर्थात् खातीहुई भिड़ जाने पर तत्काल स्नान करै और तब तक निराहार उपवास करै कि जबतक रजोधर्म का अन्तिम स्नान होय तिस पीछे यह छः दिन का प्रायश्चित्त है) क्योंकि ऊपर जो वृहद्वशिष्ठ ने प्रायश्चित्त कहे तिनमें विना खातेही छुइ जाने पर इतने दिन भोजन का निषेध होचुका है उसकी अपेक्षा यह अग्रोक्त दोष कुछ बड़ा है कि इस में खाते हुये चण्डाल आदि से छुइ गई ॥ ० ॥ जहां कहीं दो रजस्वला हो भोजन करते परस्पर जूठी भिड़जायँ तिनके मध्ये अग्रोक्त नियम है=यदाह अत्रिः=उच्छिष्टोच्छिष्टयस्पृष्टाकदाचित्स्त्रीरजस्वला कृच्छ्रेणशुध्यते पूर्वाशूद्रादानैरुपोषिता=अर्थात्–इस वचन में पूर्वा शब्द से हर एक ऊँचे वर्ण को समझना और शूद्रा शब्द के उपलक्षण से हरएक नीचे वर्ण को समझना जो परस्पर दो भिड़ी हों उन्हीं में यह ऊँच नीच का विचार है कि–जब कोई रजस्वला स्त्री जूठीहोते किसी जूठी रजस्वलासे भिड़ि जाय तब ऊँचे वर्ण वाली उपवास करी हुई कृच्छ्र व्रत करिके शुद्ध होती है और नीचे वर्ण वाली उपवास करी हुई अन्न वस्त्रादि दानों के करने से (उपवास करीहुई का यह अर्थहै कि रजोधर्म के जोकुछ दिन बाकी रहि गयेहैं तिनमें कोरा उपवास करै फिर अन्तिम स्नान होजानेबादि प्रायश्चित्त करै ॥ ० ॥ जब कोई रजस्वला जूठे ब्राह्मणोंको स्पर्श करै तिसके लिये अग्रोक्त नियम है=यदाह मार्कंडेयः= द्विजान्कथंचिदुच्छिष्टान्रजःस्त्रीर्यदिसंस्पृशेत् अधोच्छिष्टेत्वहोरात्रमूर्ध्वोच्छिष्टेत्र्यहंक्षिपेत्=अर्थात्–कथंचित् किसीप्रकारसे हाथ मुह जूठे ब्राह्मणों को रजस्वला स्त्री छुइ लेवै तौ यह रजस्वला यदि नीचे के अंगों में छुइ गईहो तौ एक दिन राति निराहारी रहै और ऊपर के अंगों में स्पर्श हुई हो तौ तीनि दिन उपवास करै ॥ ० ॥ इसके सिवाय यदि कदाचित् किसी रजस्वला को कुत्ता गर्दभ आदि कोई अशुभ जीव काटि खाय या नाक से सूंघि जाय अथवा काक चिमगादर आदि कोई नीच पक्षी छुइजाय तिसका प्रायश्चित्त २७७ दोसौ

भावज के सिवाय किसी और स्त्री का प्रसंग मत समझना केवल छोटी बड़ी दोनों भावजोंका प्रसंग है-तिसका यह कारण है कि आचारकांड में अरसठि उनहत्तरि के दो श्लोक मूलके देखो (अपुत्रांगुर्वनुज्ञातोदेवरःपुत्रकाम्यया सपिंडोवासगोत्रोवा घृताभ्यक्तऋतावियात ६८ आगर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथाभवेत अनेनविधिना जातःक्षेत्रजोऽस्यसुतोभवेत ६९) अर्थ ब्योरेवार इनके आचार मर्यादा में देखो कि क्षेत्रज पुत्रकी उत्पत्ति चाहिके गुरुजनोंकी आज्ञा से गर्भ रहिजाने की अवधि तक प्रत्येक ऋतुकाल में इसी विधिसे संगम करना कहा परन्तु गुरुजनोंको आज्ञा विना यदि कोई देवर या जेठभाईकी भार्यामें चाहें सन्तानकी अपेक्षासेही संगम करेंतौभी पतित होताहै यह इन्हीं श्लोकोंके अन्तमेंकहिचुकेहैं-तिसका प्रायश्चित्तइस कांड में आकर इसी दोसौ अट्ठासी मूलश्लोक से योगीश्वर ने प्रकट किया ॥ २८८ ॥ गुरुओंकी आज्ञा विना जैसी भाईकी भार्या अगम्या ठहिरी तैसी निज अपनी पत्नी भी रजस्वला होनेकी हालतमें अगम्या होतीहै तिससे इसी दोसौ अट्ठासीके उत्तरार्ध में उसकाभी प्रायश्चित्तकहा=रजस्वलाका छूनाजैसा पतिको निषिद्धहै तैसाओरभी सब लोगोंको निषिद्धहै तिन सबके प्रायश्चित्त पहिलेही तीसवें मूल श्लोकसे वर्णन होचुके तहां देखो=जैसा सब लोगोंको रजस्वला छूनेका निषेधहै तैसा रजस्वलाको भी और किसीका छूना प्रतिषिद्ध है तिससे यहांपर उसके भी प्रायश्चित्त अब दर्शाते हैं ॥ रजस्वलायांतुरजस्वलादिस्पर्शेप्रायश्चित्तं ॥ —तदाहवृद्धवशिष्ठः= स्पृष्टेरजस्वलेऽन्योऽन्यंसगोत्रेत्वेकभर्तृके ॥ कामादकामतोवापिसद्यःस्नानेनशुध्यती (असपत्न्योस्तुसवर्णयोरकामतःस्नानमात्रमितिमिताक्षरा) यतः—उदक्यातुसवर्णाया स्पृष्टाचेत्स्यादुदक्यया तस्मिन्नेवाहनिस्नात्वाशुद्धिमाप्नोत्यसंशयमिति मार्कण्डेयस्मरणात=अर्थात—दोरजस्वला जो सगोत्राहों और एकही पतिकी भार्या होकरपरस्पर वह इसको यह उसको स्पर्श करें चाहें इच्छासे चाहिकर या बिना इच्छाके छुवा छाई करी होय तौ भी तत्काल स्नान करिके शुद्ध होजायँगी यह वशिष्ठजीने कहा (और जो आपसमें सौतिसौति न हों पर एकही वर्णकी दोनों स्त्रियां रजोवतीहोयँ तिनके परस्पर बिना चाहे यदि छुवाछाई होजाय तौ ये भी स्नानमात्र करिके शुद्ध होजायँगी यह मिताक्षराने कहा) क्योंकि=मार्कण्डेयका यह कथनहै कि जो उदक्या किसी सवर्णा उदक्यासे छुइगईहो तौ उसी दिन स्नानकरिके शुद्धको प्राप्तहोजायगी इसमें सन्देहनहीं=और=जो सवर्णा दोनों होतेहुये इच्छासहित छुवाछाई करें तिनके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त है=यदाह कश्यपः=रजस्वलातुसस्पृष्टा ब्राह्मण्याब्राह्मणी

यदि एकरात्रंनिराहारा पंचग०थेनशुद्ध्यति=अर्थात्–यदि ब्राह्मणी रजस्वला होते किसी ब्राह्मणी रजस्वलासे इच्छा सहित भिड़जाय तो एक दिन रातिका निराहार व्रत करिके पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होतीहै ॥ ०॥ जहां जुदे वर्णोंकी दो उदक्या इच्छा सहित भिड़जायं तिनके प्रायश्चित्तोंकी विशेषता वड़े वशिष्ठने कही है=यथाहवृ-हद्वशिष्ठः=स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंब्राह्मणीशूद्रजाअपि कृच्छ्रेणशुद्ध्यतेपूर्वा शूद्री दानेनशुद्ध्यति–स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंब्राह्मणीवैश्यजाअपि पादहीनंचरेत्पूर्वापाद कृच्छ्रन्तथोत्तरा–स्पृष्टारजस्वलाऽन्योऽन्यंब्राह्मणीसत्रियास्तथा कृच्छ्रार्द्धाच्छुध्यते पूर्वात्तूत्तरावतर्द्धतः–स्पृष्टारजस्वलाऽन्योऽन्यंसत्रियाशूद्रजाअपिउपवासैस्त्रिभिःपूर्वा त्वहोरात्रेणचोत्तरा–स्पृष्टारजस्वलाऽन्योऽन्यंक्षत्रियावैश्यजापिच त्रिरात्राच्छुध्यतेपू-र्वात्वहोरात्रेणचोत्तरा–स्पृष्टारजस्वलाऽन्योऽन्यंवैश्याशूद्रीतथैवच त्रिरात्राच्छुध्यते पूर्वात्तूत्तरादिनद्वयात्•वर्णानांकामतःस्पर्शाच्छुद्धिरेषापुरातनी=अर्थात्– ब्राह्मणी और शूद्रा दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ि कर ब्राह्मणी कृच्छ्रव्रत करने से और शूद्री दान करनेसे शुद्ध होतीहै–यदि ब्राह्मणी और वनेनी दोनों रजस्वला होते पर-स्पर भिड़जायँ तो ब्राह्मणी एक पाद हीन कृच्छ्र करे और वनेनी एक पाद कृच्छ्र करे– जहां ब्राह्मणी और सत्राणी दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ि जायँ तहां आधा कृच्छ्र करिके ब्राह्मणी शुद्ध होती है सत्रिया उस आधे का आधा करिके– जहां सत्राणी और शूद्रा दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ें तहां तीनि उपवासों से सत्रिया और एक दिन रातिका उपवास करिके शूद्रा शुद्ध होती है–जहां सत्राणी और वनेनी दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ें तहां सत्राणी तीन दिन राति के उपवासों से और वनेनी एक दिन राति का उपवास करिके शुद्ध होती है–जहां ब-नेनी और शूद्रा दोनों रजस्वला होते परस्पर छुआछाई करें तहां तीनि दिन रातिके व्रतोंसे वनेनी और दो दिनके व्रतों से शूद्रिनी शुद्ध होतीहै•यह पुरातन कालकी म-र्यादा से वर्णों के परस्पर कामना सहित भिड़ जानेकीशुद्धि वड़े वशिष्ठ ने दर्शाई ॥ ० ॥ जहां कहीं कामना के विना दैव योग से ऊँचे नीचे वर्णोंकी रजस्वला पर-स्पर भिड़ जायँ तिनके प्रायश्चित्तों की विशेषता आगे अब कहिते हैं=यदाह वृद्ध-व्यासः=रजस्वलातुहीनवर्णारजस्वलांस्पृष्ट्वा नतावदश्नीयाद्यावन्नशुद्धास्यात् सवर्णा न्याधिकवर्णावास्पृष्ट्वा सद्यःस्नात्वाशुद्ध्यतीति=अर्थात्–यदि कोई रजस्वला अपना से हीन वर्णा रजस्वला को दैव योग से भिड़ि जाय तो भिड़ने के वादि तब तक न भोजनकरै कि जबतक रजोरक्त थँभिजाने कास्नान करके शुद्ध न होजायथही प्राय

मतहत्तरि की अधिकोक्ति में देखो तहां स्त्रियों का विशेष नामक पाठ ढूंढि के उसके बीच पुलस्त्य मुनि का वचन (रजस्वलायदादष्टाशुनाजंबूकरासभैः) इत्यादि दो श्लोक हैं सो अर्थों सहित ढूंढिलेना ॥ २८८ ॥

(इति व्रतलोप प्रकरणं)

इस प्रकरण में समस्त पांच परिच्छेद माने गयेहैं अर्थात सत्तावन ५७-परिच्छेद को आदि लेकर ६१ इकसठि परिच्छेद के अन्तपर्यंत यहाँतक सबका नाम व्रतलोप का प्रकरण कहा गया क्योंकि यद्यपि हरएक परिच्छेद में जुदेजुदे विषयों के भेद वर्णन हुये तथापि सबमें व्रत लोप होजाना ही तात्पर्य पाया गया ॥

अथसुतविक्रयाद्यनिष्टविक्रयोपजीवनाख्यस्य उपपातकस्य प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः द्विषष्ठितमः (६२)



इस विक्रय आदि खोटे विक्रयों से उपजीवन करने के पाप मिटाने योग्य प्रायश्चित्त कहे जायँगे—आदि शब्दसे स्त्री और कन्या तथा गायपुरुष आदि का विक्रय तथा देवालय पुष्प बागीचा तीर्थ तालाब आदि का विक्रय भी समझि लेना कि जिनका बेचना प्रतिषिद्ध है ॥

(सुतविक्रयादि प्रायश्चित्तं)

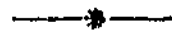
२३६ दोसौ छत्तीसवें मूल श्लोकमें व्रत लोप कहा गया था तिसका प्रायश्चित्त अवकीर्णी के नाम से कहिचुके उसके प्रसंग से कुछ और भी अनुपातक रूपी पापों के प्रायश्चित्त यहां तक दर्शाये गये—अब उस बात पर ध्यान करो कि उसी दोसौ छत्तीस के मूल श्लोक में (सुतानांचैव विक्रयः) यह संतान का बेचना एक उपपातक बताया था तिसके लिये योगीश्वर ने कोई प्रायश्चित्त नहीं दर्शाया तिससे ४४ चवालीस के परिच्छेदमें २६५ दोसौपैंसठि मूल श्लोक और उसकी अधिकोक्ति में सामान्य उपपातकों के प्रायश्चित्त जो वर्णन कियेगयेहैं उनमें मनु और योगीश्वर के कहे प्रायश्चित्त तीन महीनेआदि की अवधिवाले कईभेदहैं उन्हीं को

सुत विक्रय के पापमें यथायोग्य जोड़िलेना अर्थात् कर्ता की जातिशक्ति देशकाल आदि के विचारसे और इसकेभी विचारसे कि इच्छा सहित बेचा या विना इच्छा ही बेचना परा इत्यादि भेदों की ऊँच नीच पर उनमें से बड़े छोटे प्रायश्चित्तों की व्यवस्था कल्पित करलेनी चाहिये ॥ ० ॥ परन्तु जहाँ कहीं अकाल की विपत्ति में या और किसी भारी विपत्ति में इच्छा के विनाही लाचारी से सन्तान का विक्रय किया गया हो तहां उनसे छोटा प्रायश्चित्त है=तदाह शंखः=देवग्रहप्रतिश्रयोद्याना रामसभाप्रपातडागपुण्यसेतुसुतविक्रयंकृत्वातप्तकृच्छ्रं चरेत्=अर्थात्–देवगृह यद्वा देव ग्रह• प्रतिश्रय• उद्यान• आराम• सभा• प्रपा• तड़ाग• पुण्य• सेतु• सुत• इनका विक्रय करिके तप्त कृच्छ्र व्रत आचरे= अर्थात्–इस वचन में (देवगृह) ऐसा पाठ होने से देवता का मंदिर आदि अर्थ है और (देवग्रह) ऐसा पाठ होने से देवता के पात्र पार्षद आदि और यज्ञों के पात्र अर्थ होता है तिससे द्विपाठभी सार्थक है• प्रतिश्रय यज्ञस्थान का नाम है कि जिस जगह या जिस मकान में यज्ञ आदि किसी तरहका पूजा पाठ सत्कर्म सदा निरन्तर वा अन्तरसे होता रहिता हो किन्तु इन्हीं निमित्तों का स्थान जुदा होय सो प्रतिश्रय कहा जाता और पञ्चायती चौपार आदिभी प्रतिश्रय कहिलाता है• उद्यान बागीचा आदि• आराम किसी ऐसे उपवन का नाम है कि जिसमें राजाआदि बड़े मनुष्यों का मुसाफिरी पड़ाउ भी वृक्षादि की छाया से होता हो• सभा मर्दानी बैठक आदि कचहरी मकानों का नाम है• प्रपा पिआऊ जो निरन्तर मनुष्यों तथा पशुओं को पानी देती रहती हो• तड़ाग तालाव आदि• पुण्य कर्म जो अपना या अपनेबड़े पुरुषोंका पहिला किया प्रसिद्ध होय• सेतु जल के बंधान जो बड़े छोटे अनेक भाँतिके होतेहैं• सुत शब्दसे सन्तान मात्रका तात्पर्यहै कि चाहैं अपना बेटा होय या पोता परपोता धेवता भतीजा आदि कोई हो इसी लिये योगीश्वरने दोसौ छत्तीस मूलश्लोक में (सुतानांचैवविक्रयः) सुतों का बहुत्व करिके कहा था कि सब तरहके सुत समझे जायँ=इसी प्रकार=गाय और कन्या बेचनेका छोटा प्रायश्चित्त है=यदाह पराशरः=विक्रीयकन्यकांगांच कृच्छ्रं सांतप नंचरेत्=अर्थात्–कन्या वा गाय को (उसी प्रकार की विपत्ति जैसी ऊपर लिखि चुके तिसमें) बेचिके कृच्छ्रसांतपन व्रत आचरै ॥ ० ॥ परन्तु जिसने इच्छासे चाहि कर सुतका वा कन्याका विक्रय कियाहो तिसके लिये चतुर्विंशतिमत ग्रंथ का अ- ग्रोक्त प्रायश्चित्त है=यथा=नारीणांविक्रयंकृत्वाचरेच्चांद्रायणव्रतम् द्विगुणंपुरुषस्यै वव्रतमाहुर्मनीषिणः=अर्थात्–स्त्रियां चाहैं अपनी वा कहीं से हरिलाई हुई आदि

किसी प्रकारकी हों तिनको बेचनेवाला मासिक चांद्रायण व्रत करै तब शुद्ध होय और इसी प्रकार जिसने अपने वा पराये पुरुष का विक्रय किया हो तिस पर दूना प्रायश्चित्त चाहिये यह प्राचीन मनीषी लोगोंने कहा इस दशापर ४४ चवालिस परिच्छेद वाले प्रायश्चित्त भी यथायोग्य आरूढ होसक्ते हैं ॥ ० ॥ इन सब से उपरान्त जो पैठीनसिने सालभरका प्रायश्चित्त कहा तिसका आशय कुछ औरहै सोभी देखो=यदाह पैठीनसिः=आरामतडागोदपानपुष्करिणी सुकृतविक्रयेत्रिषवणस्नायी अधःशायी चतुर्थकालाहारःसंवत्सरेणपूतोभवति=अर्थात्—आराम • तड़ाग • उदपान• पुष्करिणी• सुकृत• इनमें से किसी को बेचने में विक्रेता पर यह प्रायश्चित्त है कि साल भर तक त्रिकाल स्नान करते हुये धरती पर शयन और दिनके चौथे काल में एक बार भोजन किया करै तब शुद्धहोय—यह इतना बड़ा प्रायश्चित्त ऐसी दशाओं पर आरूढ है कि जिसपर कोई आपत्ति नहो किन्तु विपत्तिके न होतेहुये चाहना करिके पुत्र आदि कोई वस्तु इनमेंसे बेंचीहो यद्वा एकही पुत्र जिसके होय तिसने बेंचि डाराहो वा जेठा पुत्र बेंचिदियाहो यद्वा कई पुत्र होनेपर भी उस पुत्र को बेचा हो जो अपने बेंचिदेनेका इन्कार भी आपही करता रहा अर्थात् उसी पुत्रकी इच्छा विना उसका विक्रय करडाराहो• इसी प्रकार कन्या और स्त्री आदिकी अपेक्षा में भी समझिलेना और गायकी अपेक्षा में यह समझिलेना कि जिसने ऐसे किसी दुष्ट के हाथ गाय बेंचीहो जहां जाकर खाने पीने आदिका दुख पावैगी ॥ २८८ ॥ यह भी इसी दोसौ अट्ठासी वाले मूलश्लोककी टीका वा अधिकोक्ति का शेष पादहै तिससे इसपर भी वही अंक लगाया गया कोई मूलश्लोक इसमें नहीं है ॥ २८८ ॥

सुत विक्रयसे उपरांत योगीश्वरने दोसौ सैंतीस २३७ मूलश्लोक में (धान्यकुप्यपशुस्तेय) अन्न और सीसा रांगा आदि धातुओंकी चोरी रूपी उपपातक नामवरा था—तिसके प्रायश्चित्तभी ४६ छेयालिसवें परिच्छेद में वर्णन होचुके क्योंकि वह परिच्छेद सब छोटी मोटी चोरियों के नामसेही नियत हुआ था कि जिसमें अन्न और धातुओं तथा पशुओंकी चोरी किन्तु मनुष्योंका हरण पर्यन्त वर्णन होगया= उसी दोसौ सैंतिस में (अयाज्यानां याजनं) यह भी एक उपपातक बताया था तिस के प्रायश्चित्त यहां तिरसठि परिच्छेद में योगीश्वर आपही दर्शावैंगे बल्कि इसके साथ और भी दो तीन उपपातकों के प्रायश्चित्त ॥

अथव्रात्ययाजनादिचतुर्विधोपपातकविशेषाणां प्रायश्चित्तप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः त्रिषष्टितमः (६३)



इस परिच्छेद में व्रात्य आदि अयाज्यों को यजन कराने वाले पण्डित कर्मकांडी का प्रायश्चित्त कहा जायगा और वेद का विप्लावन (छयाबखेर) करने वाले वेद पाठी का प्रायश्चित्त कहाजायगा और अभिचार (मारण उच्चाटन आदि प्रयोग विधि) करनेवाले मंत्र शास्त्री का प्रायश्चित्त और शरणागत की रक्षा न करनेवाले धनवान और जनवान और शूरमा का प्रायश्चित्त कहा जायगा॥

(व्रात्ययाजनादि प्रायश्चित्त)

त्रीन्कृच्छ्रानाचरेद्व्रात्ययाजकोऽभिचरन्नपि। वेदप्लावियवान्यब्दंत्यक्त्वाचशरणागतम् २८९

अर्थ:-व्रात्ययाजक तीन कृच्छ्र आचरै॰ अभिचरण करतेहुये भी यही। वेदप्लावी अब्दभर जौ खाय॰ शरणागतको त्यागिके भी यही=अर्थात-व्रात्य वेहैं कि जिन को गायत्री का उपदेश न होनेसे ४५ पैंतालिसके परिच्छेद में प्रायश्चित्त कहे गये थे उन प्रायश्चित्तों को न करनेवाले व्रात्यही रहे आते हैं तिनको यदि कोई पाधा पण्डित आदि किसी तरह का यजन पूजन करावै सो इस कर्मसे उपपातकी होता है वह तीन कृच्छ्रोंको साधै तब शुद्ध हुआ ठहिरै॰ तथा अभिचार कर्म रूपी प्रयोग करने वाला पण्डित यही तीन कृच्छ्रोंका प्रायश्चित्त करै। जो कोई वेदपाठी आदि वेदका विप्लावन करै सो एक सालभर जौका भात खाकर तप करै तब शुद्ध होय॰ तथा जिस किसी समर्थ ने अपनी शरण में आये हुये की रक्षा न करिके निकासि दियाहो या उसके शत्रुओंको सौंपि दियाहो सोभी एक वर्षभर जौका भात खाकर तप करै॥ २८९॥

२८९ अधिकोक्ति=अत्रमिताक्षरायथा (यस्तुसावित्रीपतितानांयाजनंकरोति सप्राजापत्यप्रभृतीनत्रीन्कृच्छ्रानाचरेत् तेषांचगुरुलघुभूतानांकृच्छ्राणाचरेत् तेषांच गुरुलघुभूतानांकृच्छ्राणां त्रित्वनिमित्त गुरुलघुभावेनकल्पनीय) अर्थात-सावित्री से पतितोंको यजन यज्ञादि जो कोई पण्डित करावै सो प्राजापत्य आदि नामोंके तीन

कृच्छ्र आचरै तिनमें भी बड़े छोटे रूपवाले कृच्छ्रोंका तीया ३ पाप रूपी निमित्तों की बड़ाई छोटाई देखिके कल्पना किया जाय=और=मूल के पूर्वार्ध में अभिचार कर्म कहा तिसका अर्थ अथर्वणवेद या तन्त्रके मार्ग से मारण उचाटन आदि प्रयोग समझिलेना कि जिनमें हिंसारूपी फल उत्पन्न होताहै (परन्तु हिंसाके प्रसंगसे उस भाँतिकी हिंसा मत समझिलेना जो धर्मशास्त्र में छे भांति के आततायियों के कर्म विषदेना आगि लगाना आदि प्रसिद्ध हैं क्योंकि उस हिंसाके प्रायश्चित्त महापातकों में गिनती बहुत बड़े होतेहैं) इस बातका प्रमाण भी वशिष्ठका यह वचनहै कि (य स्त्वभिचरन्पततीति वशिष्ठः) आततायियों के छे कर्मोंमें से कोईसा अभिचार करै सो पतित होजाता है॥ यहां केवल छोटे उपपातकों के प्रायश्चित्त हैं और मूल के पूर्वार्धमें अपि शब्दका योगहै तिसके ध्वन्यर्थसे अहीनको यजन करानेवाला पंडित और प्रेत कर्म करानेवाला पण्डित भी उसी तीन कृच्छ्र वाले प्रायश्चित्त के योग्य जाने गयेहैं-तथाच मिताक्षराकाराः (अपिशब्दोऽहीनयाजकांत्येष्टियाजकयोःसंग्रहार्थः) और इसी लिये मनुका वचन भी प्रमाणमें दियाहै=यदाह मनुः=व्रात्यानांयाजनंकृत्वा परेषामंत्यकर्मच अभिचारमहीनंचत्रिभिःकृच्छ्रैर्व्यपोहति (परेषामत्यर्थंत्यस्यंताभ्यासविषयं शूद्रांत्यकर्मविषयंवाप्रायश्चित्तस्यगुरुत्वात) अहीनोद्विरात्रादिद्वादशाहपर्यन्तोऽहर्गणयागः=अर्थात्-मनुने यह कहाहै कि व्रात्योंको यजन करावै या मृतकोंका प्रेतकर्म व्रात्योंके सिवाय अव्रात्योंको भी करावै या अभिचार प्रयोग करै करावै या अहीनको यजन करावै ये सब तीन तीन कृच्छ्रोंसे पाप धोय सकते हैं (औरोंका प्रेतकर्म जो इस वचन में कहा सो अत्यन्त और निरन्तर उसी में तत्पर होजाने पर यह तीनि कृच्छ्रका प्रायश्चित्त समझना किन्तु आपस की जरूरियात निर्वाह करानेके मध्ये कभी कभी जो प्रेतकर्म कराना परै तिसपर इतना बड़ा प्रायश्चित्त सूचित नहीं अर्थात उसमें यथा सम्भव शरीरकी शुद्धि और गायत्री का जप ही किया जाय॰ अथवा यह तीनि कृच्छ्रोंका बड़ा प्रायश्चित्त शूद्र आदि नीचजातों का प्रेतकर्म एकही दो बार करानेपर समझिलेना) और अहीनको यजन कराना जो एक उपपातक इसीमनुकेवचनमें दर्शाया गया सो दो रातको आदि लेकर द्वादशाह तक अहर्गण नामका एकयाग विशेष कहाताहै तिसकाकराने वाला पण्डित दोषी ठहिरताहै यहतात्पर्य समझना॥०॥ उद्दालकनामका एकव्रतविशेष जो कठिनप्रायश्चित्तहै सोपहिले वर्णनहो चुकाहै उसीकोशातातपने इस विषय परभी दर्शायाहै=यदाहशातातपः= पतितसावित्रीकान्नोपनयेन्न नाध्यापयेन्न यस्त्वेतानुपनयेदध्यापयेद्याज

येहा सउद्दालकव्रतंचरेत्=अर्थात्–गायत्री से पतित जो व्रात्य होयँ तिनको प्रायश्चित्त करानेविनाकोई पडितयज्ञोपवीतन करावै नपढ़ावै औरजोकई इनकोउपनय करावै या पढ़ावै या कोईसा यजन करावै सो उद्दालकनामी व्रत करै–यह कठिनव्रत उसके लिये समझना जो निषेध के प्रसिद्ध होने पर भी अपने हठ से ऐसा करै॥ ० ॥ यह तीनि कृच्छ्रों का प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो उन प्रायश्चित्तों का अपवाद निरादर छूट दर्शाता है जो ४४ चवालिस परिच्छेद में साधारण उपपातकों पर वर्णन किये गये थे तिनकी पहुँच यहां पर नहींरही परन्तु इन्हीं निमित्तों पर कि जोजो पाप यहां वर्णन होचुके=अर्थात् वे चवालिस परिच्छेद वाले प्रायश्चित्त कुछकुछ बड़े हैं तिनकी पहुँच यहां उस दशापर आरूढ है कि जिस किसी पंडित ने शूद्र आदि निपट अयाज्यों को यजन वा अध्यापन कुछ कराया हो॰ इसमें भी जिसनेहठ से ऐसा किया हो तिसपर उस ४४ परिच्छेद वाला तीन महीना को प्रायश्चित्त चाहिये जिसने धोखा या लाचारी आदि किसी हेतुसे शूद्र आदिको यजन कराया हो तिसपर योगीश्वर के बताये २६५श्लोक वाले प्रायश्चित्त चाहिये जिन में एक महीना दूध पीना आदि कहाथा॥ ० ॥ और जो प्रचेताने शूद्र याजकआदि दोषो के नाम धरने के साथ ऐसा कहा है कि=एते पंचतपोऽधाऽवकाश जलशयनान्यनुतिष्ठेयुः क्रमेणग्रीष्मवर्षाहिमंतेषुमासंगोमूत्रयावक मश्नीयुरितितत्कामतोऽभ्यासविषयं=अर्थात्–ये शूद्रयाजक आदि सब दोषी॰ पञ्चाग्नि तापना१ विनाछये अवकाश में बैठना २ जल में लेटना ३ तीनों वातक्रम से ग्रीष्मऋतु मे १ वर्षा ऋतुमें २ शीत ऋतु में ३ एक एक महीना भर आरोपित करें तब उस महीना भर गोमूत्र में रँधेजो का दलिया खाइके रहैं–सो यह प्रायश्चित्त उसके ऊपर आरूढ है जिसने हठ के साथ वार वार का अभ्यास किया होय॥ ० ॥ और एक यम का वचन है कि=पुरोधाःशूद्रवर्णस्यब्राह्मणोयःप्रवर्तते स्नेहादर्थप्रसंगाद्वातस्यकृच्छ्रोविशोधनम्=अर्थात्–यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र वर्णका पुरोहित वनै अथवा स्नेह प्रीति से या धन के लालच से हो पुरोहितों वाले कर्म का वर्ताव करै तिसकी शुद्धि एकही कृच्छ्र करने से होगी–सो यह एकही कृच्छ्र अशक्त के लिये समझना जो जीविका से असमर्थ होके ऐसाकरै॥ ० ॥ और एक पैठीनसिका वचनहै कि=शूद्रयाजकः सर्वद्रव्यपरित्यागात्पूतोभवति प्राणायामसहस्रेषुदशकृत्वोभ्यासेवेदितव्य (तदप्यकाम तोऽभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्–शूद्रको एकहीवार यजनकरानेवाला उससे मिला हुआ सव द्रव्य परित्याग करनेसे पवित्र होताहै पर जिसने दशवार कर्मकराने

का अभ्यास किया हो सो तीनि सहस्र प्राणायामोंके भी करने में पवित्र होगा यह जानना चाहिये–यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने इच्छा के विनाही वारवार का अभ्यास किया हो ॥ ० ॥ और एक जो गौतमका वचन है कि=निषिद्ध मंत्रप्रयोगेसहस्रवाकश्चेदिति निषिद्धानांपतितादीनांयाजनाध्यापनात्मकेमन्त्रप्रयोगे बहुशोऽभ्यस्तेप्राकृतंब्रह्मचर्यमुपदिष्ट (तत्कामतोऽभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्–निषिद्ध मनुष्य जो पतित आदि अनेक होते हैं तिनके लिये यजन अध्यापन रूपी मन्त्र का प्रयोग जो कोई सहस्रों वाणी से अर्थात् बहुत वारका अभ्यास करैं तिस को प्राकृत ब्रह्मचर्यका उपदेश गौतमने कियाहै (सो कामनारूपी इठसे अनेक वारके अभ्यास पर समझना यह मिताक्षराने कहा–यहांतक पूर्वार्द्ध की अधिकोक्ति पूरी हुई ॥ † ॥ अब उत्तरार्द्धका चर्चा है कि जो कोई वेदका विप्लावन करै या जोकोई रक्षा करने में समर्थ होते चोर आदि से उपरान्त किसी सज्जन को अपनी शरणामें आया देखि रक्षा न करै सोभी एक सालभर जौका दलिया खाइके तपकरै तब शुद्धहोय–यहां–वेदका विप्लावन यह कहाता है कि अनेक भांतिके खोटे अनध्याय जो होते हैं कि जिनमें वेद न पढ़ना चाहिये दृष्टांत जैसे पर्वत या चंडाल के कान जहां पहुंचिसकैं इत्यादि स्थान भेदसे वेदका पाठ करना निषेध फिर और भी निमित्तो के उत्पन्न होने मे काल भेद से भी पढ़नेका निषेध है फिर पर्यनुयोगरूपी मजूरीका दान देकर पढ़नेका निषेध है–किन्तु जहां जहां पढ़ने का निषेध है तहां तहां पढ़ने से वेदका विप्लावन कहाता है–पर्यनुयोगरूपी दानदेना मनुके इसवचन से भी निषिद्ध है कि (दत्त्वानुयोगानध्येतु.पतितान्मनुरब्रवीत्) अनुयोगों को देकर पढ़नेवालोंको पतित मनुने कहाहै ॥ ० ॥ और एक वशिष्ठ का यह वचन है कि= पतितचांडालशावश्रवणेत्रिरात्रन्नाश्नता आसीरनसहस्रपरमवातदभ्यस्यतः पूतोभवतीतिविज्ञायते इतिएतेनैवगर्हिताध्यापकयाजकाःव्याख्याता दक्षिणात्यागाच पूतोभवतीतिविज्ञायते इति (तद्बुद्धिपूर्वविषयं=अर्थात्–पतित•चंडाल•मुर्दाकि साथी• इनके कानमें आवाजपहुंचे ऐसे स्वरसे वेद पढ़नेवाले तीनदिन रातिभर मौन साधेहुये अन्न कुछ न खाके रहै और सहस्र (ओंकार) या (तत्सत्) यह मन्त्र अभ्यास करते हुये पवित्र होताहै यह जानागया सो इसी प्रायश्चित्त से निषिद्ध को पढ़ाने वाले और निषिद्ध को यजन करानेवालेभी व्याख्या कियेगये कि इनको भी वहीप्रायश्चित्त करना चाहिये और इनके लिये यह विशेषता है कि मिलीहुईदक्षिणात्यागि देनेसेभी शुद्ध होते हैं यह जानागया (सो यह प्रायश्चित्त जानिबूझि ऐसाकरने पर

आरूढ है ॥ ० ॥ एक यह यदृविशम्मतका वचनहै कि=चांडालयोश्रावकायोश्रुतिस्मृतिपाठेएकरात्रमभोजनमिति (तद बुद्धिपूर्वविषय=अर्थात–चण्डालके कानोंमें शब्द पहुँचने की जगह पर श्रुति वा स्मृतिका पाठ करने वाला एक दिन राति भर निराहार उपवासकरे–सो यह विनाजाने धोखासे ऐसीजगह पाठकरनेपर आरूढहै ॥०॥ जहां कहीं पढतेपढाते समय गुरु और शिष्य दोनों के बीचमें सांप मूसाआदि कोई जीव निकसाचलाजाय तहां उसी समय पढाना बन्द होकर अनध्याय होजाता है• तिसपरभीप्रायश्चित्त यमने कहाहै=यथाह यम•=सर्पस्यनकुलस्याथ अजमार्जारयोस्तथा मूषकस्यतथोऽस्यमडूकस्यचयोषित• पुरुषस्यैवकस्यापिशुनोऽश्वस्यखरस्यच अन्तरागमनेसद्यःप्रायश्चित्तमिदंस्मृणु त्रिरात्रमुपवासश्चत्रिरह्नश्चाभिषेचनम ग्रामान्तरवागतव्यजानुस्यांनाचसंशयः=अर्थात–सांप• नेउरा•बकरा• बिलार•मूसा• ऊद• मेढुका• या किसी प्रकारकी स्त्री• वा पुरुष• या कुत्ता• या घोड़ा• या गदहा• ये गुरु शिष्यके बीचमें आजायँ तौ तत्कालही यह प्रायश्चित्त चाहिये सो सुनौ तीन रात्रि उपवास भी और तीन दिन अभिषेक स्नान भी करै अथवा यह न हो तौ घुटनोंसे चलते हुयेदूसरे ग्रामकी यात्रा करनी चाहिये एक योजन मात्र इसमें सन्देह न करना चाहिये ॥ २८९ ॥

इत्ययाज्ययाजनवेदप्लावनादिप्रायश्चित्तचतुष्क ॥

अथपितृमातृसुतत्यागकन्यादूषणादिदशोपपातकप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः चतुष्षष्ठितमः (६४)

—✻—

इस परिच्छेद में दश ग्यारह उपपातकों के प्रायश्चित्त प्रकाश कियेजायँगे तिनमें प्रथम पिता माताका त्याग सुतका त्याग गुरुका त्याग• फिर कन्या सन्दूषणका प्रायश्चित्त• फिर• परिविन्दक याजन• उसको कन्यादान देना• कुटिलता करना• निज व्रतोंके नियम तोड़िदेना• आत्मार्थ पाक बनाना• मद्यप स्त्री घरमें होना• ये भी छे प्रकार उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायँगे ॥

यहांसे आगे जबतक२९० का मूल श्लोक न मिले तबतक यह समुझिलेना कि

ये चारों परिच्छेदोंकी व्यवस्था २८९ दोसौनवासीकी अधिकोक्ति के शेष पाठमें से चली आती है क्योंकि दोसौनवासी मूल श्लोकवाली टीका बहुत लम्बी चौड़ीहै तिसमेंसे जितनापाठ मूल श्लोकहीसे सम्बन्ध रखताथा उतनेकी अधिकोक्ति उसके रही सो ऊपरके परिच्छेद मे गई बाकी रहे पाठके चार परिच्छेद होंगे• तिस पीछे ६८ अरसठिके परिच्छेदमेजाके २९०दोसौनब्बेका मूलश्लोक आवेगा यह ब्योरा केवल जिज्ञासु विवेकियों के समुझाने को लिखा गया ॥

(पितृमातृसुतगुरुत्यागप्रायश्चित्तं)

अथाऽय याजनके बादि योगीश्वरने(पितृमातृसुतत्याग तडागारामविक्रयः२३७) ये दोसौसैंतीस मूल श्लोकमें दो उपपातकोंके नाम गिनती कियेथे पर इनके इन्हीं नामोंसे कोई प्रायश्चित्त जुदे नहीं दर्शाये–तिससे ४४चवालिस परिच्छेदवाले मनु और योगीश्वरके बताये साधारण प्रायश्चित्तोंको इनपर भी यथायोग्य जाति श-क्ति गुण निमित्तके स्वरूपों अनुसार कल्पित करलेना चाहिये=और=पिता माता सुतोंके निकासिदेने मध्ये और भी अपांक्तेय पुरुषोंवाले प्रायश्चित्त जोडिलेने चा-हिये ऐसा यह वचनहै कि=अकारणेपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा इत्यपांक्तेयम ध्यपाठात्तन्निमित्तमपिप्रायश्चित्तभवति=तदाहमनुः=षष्ठान्नकालतामास संहिताजप एववा होमाश्चसाकलानित्यमपांक्तानांविशोधनम=अर्थात्–प्रबल कारणकेउत्पन्न होने विना माता पिताका त्यागनेवाला या गुरुकोत्यागि भागनेवाला भी अपांक्तेय पुरुषोंमें गिनती है तिससे जो अपांक्तेयों के प्रायश्चित्तहैं सो इस त्यागनेवाले पर भी आरूढ कियेजायँ=अपांक्तोंके प्रायश्चित्त मनु ने कहे हैं कि=षष्ठान्न कालताके दो अर्थ होते हैं एक तो छठे दिन भोजनका नियम दूसर छठे समयका अर्थात् एक दिन में दो समय भोजन करना प्रसिद्ध है तिस हिसाब से अढाई दिनके पांच काल भोजन तक भोजन का त्याग राखनेबादि उस तीसरे दिनकी रात्रि में भोजन करें सो छठा अन्न काल होताहै बल्कि यही नियम सम्भव देखि परताहै क्योंकि पांच दिन कोरा व्रत करिके छठे दिन अन्नखाना बहुत दुर्घट देखिपरताहै• तथापि दोनों नियम ठीक समुझना किन्तु•मनु कहिते हैं कि एकमहीनाभर छठे दिनका या छठे समयका नियम साधैं अथवा वेद संहिताका जपहीकरैं परन्तु उस महीना भर नित्य प्रति साकल्यो से होम करते रहैं तब सब तरह के अपांक्तेयजन शुद्ध होते हैं (सब अपांक्तोंके नाम चिन्ह देखनेहो तो आचार मर्य्यादावाले काण्डमें श्राद्ध प्रकरणके

बीच १२१ एकसौइक्कीस मूलश्लोकसे १२२-१२३ तक तीन श्लोकोंकी व्यवस्था देखो तहांसवकेलक्षणकयनहोचुकेहैं॥ इतिपितृमातृसुतगुरुत्यागप्रायश्चित्तं ॥ सुत त्याग का प्रायश्चित्त आगे पैंसठि६५ के परिच्छेद में दूसरी भांतिसेभी आवेगा क्योंकि योगीश्वरने २३९ मूल श्लोकमें (सुतत्यागोवान्धवत्यागएवच) इस वाक्यसे दुवारा उसका जुदा रूप कहाथा ॥

तडागा राम विक्रयके प्रायश्चित्त कुछ विशेषता सहित ऊपरले ६२ बासठिके परिच्छेद में सुत विक्रयके साथ वर्णन होचुके तहां देखो=इसके अनन्तर योगीश्वर ने (कन्या सन्दूषणं) इस नामका उपपातक २३८ दोसौ अड़तीस मूल श्लोक में दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त जुदा यद्यपि योगीश्वर ने आप नहीं कहा तथापि यहां देखो ॥

(अथकन्यादूषणप्रायश्चित्तं)

कन्या संदूषणके लक्षण २३८ की अधिकोक्तिमें ठीक ठीक लिखिचुके हैं-मिताक्षराकार कहिते हैं कि सर्व सामान्य उपपातकोंकी प्रायश्चित्त मर्यादा जो ४४ चवालिस परिच्छेद में प्रकाश होचुकी है उसीमें से त्रैमासिक द्वैमासिक चांद्रायण आदि प्रायश्चित्त यहां पर उसके लिये लगाना जो कन्या का सवर्णी पुरुष होते कन्या दूषण पापका भागी बनाहो-परन्तु-जहां अनुलोम मार्गसे कन्यादूषण पाप हुआहो कि नीचे वर्णकी कन्या और ऊँचे वर्णोंका दोषी पुरुष होय तहां भी उसी परिच्छेद वाले प्रायश्चित्तों में योगीश्वर का बताया एक महीना भर दूधपी के व्रत कराना वहा प्राजापत्य कराना चाहिये क्योंकि (सकामास्वनुलोमासुनदोषस्त्वन्य थादमः) व्यवहार मर्यादाके दंडवाले प्रकरणमें ऐसी दशापर निपट दंडका न होना या थोडा दंड होना कहा गयाथा कि जहां ऊँचे वर्णोंका पुरुष और नीचे वर्णकी सकाम कन्यासे साक्षात संगम हुआ होय-और यहांपर कुछ कन्यासे संगम करने का प्रसंग नहीं केवल अँगुरी आदिसे या हाथोंसे अंगही दूषित करने का यह प्रायश्चित्त है तिससे जैसा कुछ बहुत या थोड़ाही दोष पायाजाय तैसा प्रायश्चित्तभी महीना भर दूधपीके व्रत कराना या बारह दिन का प्राजापत्यही करवाना समझि लियाजाय ॥ ० ॥ इसके सिवाय शंख और हारीत के दो वचन हैं तिनके ऊपर हेतु गर्भित व्यवस्था मिताक्षराकारने दर्शाई है सोभी देखो=यत्तुशंखेनोक्तं=कन्यादोषी सोमविक्रयीच कृच्छ्रमब्दचरेयाताम=यचहारीत वचनं=कन्याविक्रयी सोमविक्रयी

वृषलीपतिः कौमारदारत्यागीसुरासवपः शूद्रयाजकोगुरोःप्रतिहन्ता नास्तिकवृत्तिः कृतघ्नःकूटव्यवहारीमित्रध्रुक् शरणागतघातीप्रतिरूपकवृत्तिरित्येते पंचतपोऽभावकाशाञ्जलशयनान्यनुतिष्ठेयुर्ग्रीष्मवर्षाहेमन्तेषु मासंगोमूत्रयावक मश्नीयुरिति-तदुभयमपि क्षत्रियवैश्ययोःप्रातिलोम्येनदूषणेयोज्य-शूद्रस्यतुवधएव (दूषणेतुकरच्छेदउत्तमायांवधस्तथैवेति वधदर्शनादितिमिताक्षरा=अर्थात्-शंखने जो कहाहै कि कन्याका दोषी और सोम बेचनेवाला ये दोनों एक सालभर कृच्छ्र व्रत आचरें=और हारीतका जो वचनहै कि=कन्याका बेचनेवाला तथा सोमका बेचनेवाला और वृषली जो पाँच प्रकारकी कहिचुके तिनका पति और कुमार वा यौवन अवस्थामें पत्नीको त्यागि देनेवाला और सुरासव का पीनेवाला और शूद्रकी पुरोहिताई करनेवाला और गुरु का आदेश टालनेवाला और नास्तिकवृत्ति राखनेवाला और कृतघ्न जो किसी गैर का किया उपकार मेटै या अपना वा अपने बड़ोंका संचित पुण्य मेटिदेवै और छल का व्यवहार करनेवाला और मित्रसे दगा करनेवाला और अपनी शरण आयेहुये से विश्वास घात करनेवाला और प्रतिरूपकवृत्ति जो ब्राह्मण आदि किसी उत्तमका रूप धरिके उसकी वृत्ति जीवि का आदि की नकल उतारै ये सभी इतने अन्यायी पुरुष एक महीनाभर ग्रीष्मऋतुमें पचाग्नि तपैं और वर्षा ऋतु में बरसते समय शूने आकाशमें बैठाकरैं औ शीतऋतु एक महीना भर जलमें लेटि रहाकरैं तब तक तीनों मासभर गोमूत्रमें रँधे जौका दलिया खायाकरैं तब शुद्ध होयँ (यहांपर दगा करना केवल उपराळू बातों में समझना मारडारना नहीं किन्तु मित्रको मारडारना बहुत बड़ा पापहै २२८ मूलश्लोकमें देखो कि ब्रह्महत्याके समान महापातकोंवाले प्रायश्चित्त उसपर लगते हैं) मिताक्षराकार कहिते हैं कि ये शंख और हारीतके दोनो वचन कन्यादूषणके प्रयोजन से यहां पर लिखे गये इनमें कन्याके दूषण पर यह तीनि महीनेका कठिन प्रायश्चित्त क्षत्री और वैश्यके निमित्त में समझना कि जब इन्होंने अपनेसे ऊँचे वर्णकी कन्यासे दूषण कमाया हो-परन्तु जो शूद्रने ऊँचेवर्णों की कन्या दूषित करीहो तिसको शारीरिक दंडही देना उचित है क्योंकि व्यवहार मर्यादामें दंडके स्थलपर कहिचुके हैं कि (उत्तम कन्याको दूषित करनेमात्रसे हाथ काटेजायँ और इससे अधिक संगम आदिहोनेसे प्राणवध कियाजाय॰ तिससे उसका यही प्रायश्चित्तहै) पर हाथ काटना भी यह पूरे दूषणकी दशापर आरूढहै अर्थात् थोड़े दोषकी दशामें शारीरक दंड, ताड़न पीटन आदि समझना ॥ इतिकन्यादूषण प्रायश्चित्तं ॥

(अथोपपातकषट्कस्यप्रायश्चित्तविचारः)

कन्यादूषणसे लगता उसी २३८ मूलश्लोकमें योगीश्वरने (परिविदकयाजनं) इस नामका उपपातक प्रकाश किया था अर्थ इसका उसी जगे देखो-बल्कि उसी २३८ मूलश्लोक से लेकर (परिविन्दक को कन्यादान करना) (कौटिल्य पाप) (व्रतोके नियम तोड़िदेना) (आत्मार्थ पाक बनाना) (मद्यप स्त्रीका सेवन) येसब लगता लगता इसी क्रमसे नाम कहेथे-इन सबके प्रायश्चित्त ४५ चवालिस परिच्छेद के द्वारा यथा योग्य दोषोंकी बड़ाई छोटाई आदि शोचिके उनमें से बड़ेया छोटेहो प्रायश्चित्त सुविचारके साथ वर्तावा करने चाहिये • क्योंकि योगीश्वर ने इनके जुदे जुदे नामों से प्रायश्चित्तों की विशेषता नहीं कही तिससे उसी सामान्य मर्यादा से व्यवस्था कल्पित होसक्ती है—और—इनमें से परिविन्दकयाजी के प्रायश्चित्त ४८ अड़तालिसके परिच्छेदमें भी विशेष वर्णन होचुके है तिनको भी देखना और ज-रूरत पर लेना चाहिये और परिवित्तिके परिवेदन कर्मका प्रायश्चित्त उसी अड़ता-लिस परिच्छेदमें फिर ५१ इक्यावन परिच्छेदमें भी विशेषतासे वर्णन होचुके तहां दोनों जगह देखना—और—यहां के सात नामों में दूसरा उपपातक (परिविन्दक को कन्या ब्याहि देना) इसके प्रायश्चित्त यद्यपि चवालिस परिच्छेदमें से लेना कहा गया सो भी लिये जायँगे और ४८ अड़तालिसके परिच्छेदमें विशेष प्रायश्चित्त है सोभी शोचिके लेने होंगे यही इन दोनोंकी व्यवस्थामें भेदहै• बाकी पांच नामों के पापोपर केवल ४४ चवालिस परिच्छेदसे व्यवस्था लेनी होगी। इतिप्रायश्चित्तषट्कं॥

अथस्वाध्याय त्यागाग्नित्यागाद्युपपातकाष्टकस्य प्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पंचषष्ठि (६५)

इस परिच्छेदमें आठ उपपातको के प्रायश्चित्त कहे जायँगे—तिनमें पहिले अपने वेदांगभूत स्वाध्यायका परित्याग• फिर स्थापित अग्नियों में अग्निहोत्र का त्याग• फिर सुतादि सन्तानके संस्कार उचित समय पर न कराना और बधुओं का रक्षण पालन आदि न करना• तिन पीछे चार और हैं कि• स्त्रीसे जीविका करनी या हिंसा वाले कर्मसे जीविका करनी या औषधियोंसे वशीकरण आदि हिंसावाले कर्मकरने

और उनके द्वारा जीविका रखनी या हिंसकयंत्र कोल्हू आदि जारी कराना ये आठ उपपातक इस परिच्छेद में आवेंगे॥

(स्वाध्यायत्याग प्रायश्चित्तं)

योगीश्वरने २३९ दोसौ उनतालिस मूलश्लोकमें (स्वाध्यायका त्याग) यह एक उपपातक बताया था कि जो कोई आपने पढ़ वेद शास्त्रको या रोजके नये पढ़ापाठ को किसी दूसरे शास्त्रके सुनने आदि लालच में फँसिकर भुलाइ देवै या छोड़ि देवै सो उपपातकी होताहै–और उसीका दूसरा अर्थ यह भी लियागयाहै कि जो कोई दुर्व्यसनमें फँसिकर निपट भुलाइडारै या निरादर करिके निपट त्यागि देवै सो महापातकी होता है कि जैसा २२८ मूलश्लोक में देखो (अवीतस्यच नाशनं) यह लिखचुके तहां ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त उसी प्रकरणके अनुसार करनाहोगा परन्तु–जैसी सूरतिसे यहांपर उपपातकी ठहिराया गया तिसके लिये ४४ चवालिस परिच्छेदमें साधारण प्रायश्चित्तहैं तिनमें से तीन महीने या दोमहीने या एकमहीने आदि के प्रायश्चित्त कर्ताकी शक्ति आदि शोचिके यथायोग्य जोड़ि लेनाचाहिये क्योंकि इसके मध्ये योगीश्वर ने कोई जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा= और=वशिष्ठ ने यहकहाहै कि=ब्रह्मोज्झ्ताकृच्छ्रंद्वादशरात्रंचरित्वा पुनरुपयुंजीतवेदमाचार्यात(इत्ये तदत्यंतापद्वियर्मितिमिताक्षरा=अर्थात्–जो वेदको भुलाके त्यागि देवै सो बारहदिन कृच्छ्रव्रत करिके फिर आचार्यसे जाकर वेदपढ़ै(सोयह छोटा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने अत्यन्त आपत्तिमें भुलायाहो॥ इतिस्वाध्यायत्यागप्रायश्चित्तं॥

(अग्निहोत्रत्यागादिप्रायश्चित्तं)

ब्रह्मचारी या गृहस्थी जो कोई अग्निहोत्री होकर अग्निकर्मको त्यागिदेवै तिस का भी नाम उपपातकोंकी गिनती साथ योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने स्वाध्याय त्याग से लगमा २३९ दोसौ उनतालिस मूलश्लोकमें दर्शायाथा परन्तु कहीं जुदा प्रायश्चित्त उसका नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदवाले प्रायश्चित्तोंका सहारालेना होगा=परन्तु वशिष्ठजीने विशेषता भी दर्शाई है=यथाह=योऽग्नीनपविध्येत्सकृच्छ्रं द्वादशरात्रंचरित्वापुनराधेयंकारयेत (अत्रद्वादशरात्रग्रहणा मुत्तमकालापेक्ष या प्राजापत्यादि गुरु लघु कृच्छ्राणां प्राप्त्यर्थमिति मिताक्षरा) तत्र–मासद्वयेप्राजापत्यं मासचतुष्टयेऽतिकृच्छ्रः षड्मासोच्छ्रन्नेपराकः षड्मासादूर्ध्वंयोगीश्वरोक्तान्युपपातक

सामान्य प्रायश्चित्तानि कालाद्यपेक्षयायोज्यानि संवत्सरादूर्ध्वन्तु सानवंषैमासिक मिति व्यवस्था॰ इतिचमिताक्षरा=अर्थात्-वशिष्ठ ने यह कहाहै कि जो कोई स्थापित अग्नियों को निरादर करिके त्यागि देवै किन्तु उठाइ डारै या पूजन करना छोड़िदेवै सो बारहदिनका कृच्छ्र साधन करिके फिर स्थापन कर्म करावै (इसपर मिताक्षराकारकहते हैं कि इसमें बारह दिनकी अवधिबांधना भी सिर्फ उत्तमकालों की अपेक्षा दर्शाने के हेतुपर आरूढ है कि प्राजापत्य आदि बड़े छोटे कृच्छ्रोंको पहुंच पाईजाय अर्थात् केवल बारहदिनके नियमसे प्रयोजन यहां नहीं है) तिससे यहां यह युक्ति है कि-जिसने दो महीना अग्निका कर्म त्यागिदियाहो सो प्राजापत्यसाधै जिसने चार महीने त्यागिदियाहो सो अति कृच्छ्र करै जिसने छे महीने त्याग कियाहो सो पराकनामका प्रायश्चित्त करै॰ फिर जिसने छमाही से भी अधिक त्याग कियाहो तिसके सातवां महीना आदि लेकर बारह महीना के भीतर जैसा बहुत या थोड़ा काल ठहिरै तिसके अनुसार बड़े छोटे प्रायश्चित्त भी ४४ चवालिस परिच्छेदमें २६५ मूलश्लोकसे योगीश्वरके बताये लेकर जोड़िलेनेचाहिये फिर जिसने एकसालसे भी अधिक दिनोंतक अग्निका कर्म त्यागिदियाहो तिसके लिये उसी २६५ की अधिकोक्ति में मनुका कहा तीनि महीनावाला प्रायश्चित्त ढूंढना चाहिये॰ यह व्यवस्था भी मिताक्षराकार ही ने कही=फिर कहिते हैं कि यह व्यवस्था केवल उनकेलिये कहीगई कि जिन्होंने नास्तिकताका सहारालेकर अग्निको त्यागा होय कि इसके पूजने से क्या होताहै इत्यादि॰ इसका प्रमाण भी अग्रोक्त वचनहै=यथाहव्याघ्रः= योऽग्निन्त्यजतिनास्तिक्यात्प्राजापत्यंचरेद्द्विजः = अर्थात् जो कोई द्विज होकर नास्तिक्यसे अग्निकोत्यागै सो प्राजापत्यकरै ॥ ० ॥ ऊपरके प्रमाणसे यह तात्पर्य ठहिरा कि जिसने नास्तिकताके विनाभूल गफलति प्रमादसे अग्नि त्यागीहो तिसके लिये भरद्वाज के गृह्यशास्त्र में विशेषता कहीगई है=यदाहभरद्वाजः=प्राणायामशतमात्रिरात्रादुपवास स्त्याद्विंशतिरात्रात् अत ऊर्ध्वं मासपर्यन्तात्त्रिरात्रीरुपवसेदत ऊर्ध्वमासंवत्सरात्प्राजापत्यंचरेत् (अतऊर्ध्वंकाल बहुत्वेदोषगुरुत्वं (=अर्थात्-भारद्वाज ने कहा है कि तीनिही रात्रि के भीतर तक जिसने अग्निकर्म छोड़ा होय सो एक १०० सौ प्राणायाम करिके फिर अपना वही कर्म करै पर जिसने बीस दिनके भीतर तक त्यागाहो सो एकदिन उपवास करिके फिर कर्म करै इसके ऊपर साठि दिनके भीतर तक जिसने त्यागा हो सो तीन दिन राति का उपवास करै साठिके ऊपर जिसने साल भरके भीतर कि

सो अवधि तक त्यागाहो सो प्राजापत्यकरै (इसके ऊपर यह कालका बहुत्व केवल दोषका बड़ापन प्रकट करताहै ॥ ० ॥ जिसने आलस आदिके हेतुसे याद रहिते भी अग्निका कर्म त्याग किया हो तिसके लिये भी उन्हीं भारद्वाजने विशेषता जुदीकरीहै=यथा=द्वादशाहातिक्रमेत्र्यहमुपवासोमासातिक्रमेद्वादशाहमुपवासः संवत्सरातिक्रमेमासोपवासःपयोभक्षणंचेति=अर्थात्–बारहदिन कर्मकात्याग होनेमें तीनदिनका उपवास और महीनाभर अतिक्रम होजानेमें बारहदिनका उपवास और एकसालभर का अंतर होजाने में महीने भरका उपवास तथा दूधका आहार चाहिये ॥०॥ जिसने एकसाल से भी अधिक अवधितक कर्म छोड़ि दियाहो तिसके लिये हारीतने विशेष नियम कहे=यथा हारीतः=संवत्सरोत्सन्नेऽग्निहोत्रेचांद्रायणंकृत्वापुनरादध्यात् द्विवर्षोच्छन्नेचांद्रायणंसोमायनंचकुर्यात् त्रिवर्षोच्छन्नेसंवत्सरंकृच्छ्रमभ्यस्यपुनरादध्यादिति (सोमायनंवक्ष्यच्छ्रकांडेवक्ष्यते)=अर्थात्–एक वर्षभर अग्निहोत्र छूटिजाने में चांद्रायण व्रतकरिके फिर दुबारा आधान उसकाकरै दोवर्षभर छूटिजानेमें चांद्रायण और सोमायन भी करै तिस पीछे स्थापन उसकाकरै तीनिवर्षभर छूटिजानेमें एकवर्ष भर कृच्छ्र की बारंबार आवृत्ति किये पीछे फिर अग्नि का स्थापन करै (सोमायन का लक्षण आगे सब कृच्छ्रों के प्रकरण में कहा जायगा तब समझि लेना)–इसी विषयपर शंखने भी विशेषता जाहर करी है=यथा=अग्न्युत्सादीसंवत्सरंप्राजापत्यं चरेद्गांचदद्यात्=अर्थात्–अग्निको उठाय डारनेवाला उपपातकी एक सालभर प्राजापत्यों का आचरण करै और गोदान भी करै ॥

इत्यग्निहोत्रपरित्यागप्रायश्चित्तं

(सुतादिसंस्कारबंधुस्वजनत्यागप्रायश्चित्तं)

अग्नित्याग नामके लगभग उसी २३६ मूलश्लोक में योगीश्वरने (सुतकात्याग) दुबारा कहिकर (बांधवोंकापरित्याग) भी दर्शाया था०इन दोनोंके पापों के प्रायश्चित्त कहीं जुदे स्वरूपसे नहीं कहे तिससे उसी ४४चवालिस के साधारण परिच्छेद में से प्रायश्चित्त लेने होंगे तहां इतना भेदहै कि जिसने कामनासेहठके साथ सुतका या बंधुजनोंका परित्याग किया हो तिसकेलिये उस परिच्छेदमें २६५ दोसौपैंसठि की अधिकोक्ति से तीनमहीनेवाले गोहत्याके प्रायश्चित्त ढूंढ़ने चाहियें=और जिसने हठके बिना दैवगति से सुत बंधूका त्याग कियाहो तिसके लिये उसी परिच्छेदमें

२६५के मूलश्लोक से योगीश्वरके बताये चार प्रायश्चित्तों में कोई एक शक्ति या दोषके अनुसार चुनि के लेलेना चाहिये इनकी यही व्यवस्था है कुछ और नहीं= सुतका त्याग दुबारा कहा जानेसे यह तात्पर्य है कि ६४ परिच्छेद मे सुत पुत्र पोता पर पोता आदिको घरसे बाहर निकासि देनेका प्रसंगथा•और यहांपर घरमे रहिते भी बालक पुत्रोंके उचित संस्कार आदि करने से उपेक्षा रखनी यही उनका परित्यागहै•तद्वत बंधूजन असमर्थ वृद्ध चचा मामा आदि जिनका पालनकर्ता कोई और नहो तिनके रक्षण पालन करनेकी सामर्थ्य होते हुये भी जो कोई उनको नहींराखै किन्तु ऐसे बंधुओंकी दुर्गति होते आँखोसे देखैं या कानोंसे सुनिकर भी रक्षा करने का उपाय नहीं सोचै तिसके पापका प्रायश्चित्त यहां पर कहा गया॥ इतिसुत संस्कारादित्यागेबंधुरक्षणादित्यागेचप्रायश्चित्तं॥

(स्त्रीहिंसादिभिर्जीवनप्रायश्चित्तं)

बंधु त्यागसे अनन्तर २४० दोसौचालीस मूलश्लोकमें योगीश्वर ने (इन्धनार्थंद्रुम च्छेदः (वृक्षका निरर्थ काटिडारना जो दर्शाया था तिसके प्रायश्चित्त ५५पचपन के परिच्छेद में वर्णन होचुके तहां२७६मूलश्लोकसे योगीश्वरने आपही प्रायश्चित्त भी दर्शाया॥ फिर द्रुमच्छेद से लगाय२४० दोसौचालिस मूल श्लोकमें योगीश्वरने (स्त्रीकेद्वाराजीविकाकरना) और (प्राणियोंके बधसे जीविका करना)और (बशी करणकी औषधियोंसे जीविका) और (कोल्हूआदि यंत्रका जारीकरना)ये चार उप पातक इसीक्रमसे प्रकट कियेहैं—परन्तु इनके जुदे प्रायश्चित्त कहीं नहीं कहे तिससे इन सबकेलिये४४ चवालिसके परिच्छेदमें योगीश्वर औरमनुके कहेछोटेबड़े प्रायश्चित्त इनके कर्म दोषोंके अनुसारचुनिके समझिलेना॥ इतिप्रायश्चित्तचतुष्क॥

॥ इत्यौचित्यानांपरित्यागप्रकरणं॥

इस प्रकरण में सब चारि परिच्छेद हैं अर्थात ६२ बासठि परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर यहां पैंसठि के अंत लग चारों परिच्छेद इसी एक प्रकरण में गिनती हैं कि जिनमें सब तेईस चौबीस उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे गये सो केवल कन्या दूषणसे उपरान्त सभी ऐसेहैं कि जिनमें निज निज औचित्य छोड़ि देनेका निमित्त है तिससे सबका एकही प्रकरण है=कन्या सदूषण का निमित्त यद्यपि सबसे जुदे प्रकारका प्रत्यक्ष है तथापि बीचमें आजानेसे प्रकरण के बाहर नहीं जासक्ता॥

अथव्यसनासक्तिनामोपपातकप्रायश्चित्तप्रकाश कोऽयंपरिच्छेदःषटषष्ठितमः (६६)॥



इस परिच्छेदमें दुर्व्यसनोंकी चत्त पैदा होजानेके उपपातकपर प्रायश्चित्त कहे जायँगे॥ और उसीके प्रसंगसे सद्व्यसनोंका भी निर्णय किया जायगा॥

(व्यसनासक्तौप्रायश्चित्तं)

दोसौचालीस २४० मूलश्लोक में (हिंस्रयंत्र के लगमा (व्यसनानि) व्यसनोंका उत्पन्न होना भी एक उपपातक बताया था उन व्यसनों के स्वरूप लक्षण आचार कांडके अंतमें राजधर्म के प्रकरण में वर्णन होचुके हैं नाम उनके द्यूत जुआरीपन की चत लगिजाना• मृगया शिकार आखेट की निरन्तर चत लगी रहिना इत्यादि अठारह तो प्रधानता से प्रसिद्ध हैं फिर उनसे उपरान्त भी अनेक व्यसन होतेहैं–व्यसन भी अच्छे बुरे दोभेदसे होतेहैं–व्यसन चाहें दुर्व्यसन होय या सद्व्यसनहोय दोनों खोटे रहितेहैं क्योंकि यद्यपि सद्व्यसनमें कोई पाप नहीं होताहै तथापि उसके हेतु से अनेक पाप स्वतः भी उत्पन्न होसक्ते हैं इसका दृष्टान्त जैसा किसी को अतिदान करनेका व्यसन लगिजाय तिसके पास मांगनेवाले दानपात्र भी अत्यन्त आने लगते हैं यद्यपि पुण्य के लक्षण साथ यह व्यसन सबसे उत्तमसद्व्यसनहै कि जिसकेप्रभावसे स्वर्गफल प्राप्त होताहै तथापि व्यसन शब्द के अर्थसे ही व्यसन उसका नाम है कि जिस एकही कामकी चत्तसे सब उचित कामोंको भूलिजाय जैसा अतिदान करनेकी चत्तसे उचित कुटुम्बी जनोंका पालनपोषण भी छोड़िदिया अथवा इतनाराम तक पास नहीं रक्खा कि जिससे पंचयज्ञ वा केवल पाकयज्ञ आदि नित्य कर्म्मों की साधना होसके तभी इनकामों की हानिसे भी अनेक पापस्वतः जन्मते जाते हैं–इसी लिये–यह स्वन्यर्थ भी समझना योग्यहै कि हर कोई काम ऐसे पुरुषका किया हुआ व्यसनकी गिनतीमें नहीं आसक्ताहै जो अपने उचित धर्मोंको न भूलेंकिन्तुजो आवश्यक धर्मोंकी पालना करने से उपरान्त किसी सद्व्यसन को आवश्यकता के समान पालें सो व्यसनों की गिनती में नहींहै–इसका यह दृष्टांत है कि जैसे राजा अपने मुल्की मांली सबकामोंको अत्यन्त होशियारीमें तत्पर बनारहिते भी प्रजाका

प्राणहानि बचाने की आवश्यकता मानवघातुक जीवोंको आखेट भी करता रहै तो यह मृगयाकर्म व्यसनासक्ति में गिनती नहीं केवल जीवहिंसा में गिनती है तिसके लिये वन्य पशुहिंसाके प्रायश्चित्त प्रतीत होतेहैं परन्तु राजाका यहकर्म राजकर्मो की जरूरत में गिनती होजानेसे उसपर उसरीति के प्रायश्चित्त नहीं आरूढ होते हैं कि जैसे कृच्छ्र आदि व्रत लिखिचुके किन्तु राजापर दानरूपी प्रायश्चित्त आरूढ होतेहैं इसीलिये राजघरों में नित्यंप्रति निरन्तर अनेक महादान होतेरहितेहैं और भी पुरश्चरण होमयज्ञ आदि करनेवाले विद्वान् ब्राह्मण सत्कर्म करते रहिते हैं— परन्तु—यदि कोई राजा मृगया शिकार में आवश्यकसे उपरान्त भी ऐसा तत्पर हो जाय जो केवल इसी व्यसन में लयलीन रहिकर माली मुल्की आदि सब कामोंकी सुधिबुधि भुलाइडारे तो यह मृगयाकर्म उसका दुर्व्यसनमें गिनतीहै तब इस दुर्व्यसन का उपपातक मेटिदेनेके निमित्त प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ अथदुर्व्यसनप्रायश्चित्तं—यद्यपि योगीश्वरने कोई जुदा प्रायश्चित्त इसका नहींकहा तिससे४४ चवालिसके परिच्छेद में छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको योग्यको छोटाई बड़ाई अनुसार चुनिके लेलेने होंगे (यहां सब तरह के व्यसनमात्र समझिलेने जो अपने उर्व्वोक्त अर्थोंकी हद्दतक पहुँचेहों)परन्तु जो कोई अतिशय हठके साथ बारंबार दुर्व्यसनका अभ्यास करै तिसके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त हैं=यदाहबौधायनः=अथाशुचिकारीणिद्यूतमभिचारोऽनाहिताग्नेरुञ्छवृत्तिः समावृत्तस्यभैक्ष्यचर्यातस्यच गुरुकुलेवासऊर्ध्वंच तुर्भ्योमासेभ्योयश्चतमध्यापयतिनक्षत्रानिर्देशनंचेति द्वादशमासान्द्वादशार्धमासान्द्वादशद्वादशाहान्द्वादशषडहान्द्वादशत्र्यहांस्त्र्यहमेकाहमित्यशुचिकरनिर्देशः(इतिद्यूतेवार्षिकव्रतमुक्तंतदभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्—बौधायनके वचनसे ये सातकर्मअशुचिकर नामके उपपाप कहातेहैंकि—१द्यूत•२अभिचारप्रयोग•३अग्नि होत्री न होतेउंछवृत्ति फलेहुये दानेराहघाटसेचुगना•४समावृत्त जोवेदपढ़िकेगुरुकुल से लौटिचुकातिसका भीखमांगना• ५समावृत्त नामका उत्सवकार्य लौटि आने मध्ये होचुकाजिसका ऐसेविद्यार्थीकाफिरगुरुकुलमें रहिना•६समावृत्तविद्यार्थी जोअधकचालौटिआवै जोचारमहीने बीतिजानेबादि फिरि गुरुकुलमें घुसै तिमका पढ़ानेवाला गुरू भी इन पापोंमें गिनतीहै• ७ सातवां वहभी जो विना बुलाये विनाबूझे घर घर नक्षत्र आदि पंचांग सुनाता फिरै—इन सातोंके यथाक्रमसे जुदे जुदेसात प्राश्प्रिचत्तों की अवधी भी बौधायन अब कहिते हैं कि—बारह महीनेका ब्रह्मचर्य१—उससे आधा छमाही ब्रह्मचर्य२—एकसौ चवालिस दिनमें बारह प्राजापत्य३—बहत्तरि दिनमें

छेछे दिनके वारह कृच्छ्रार्ध४—छत्तीस दिनमें तीन तीन दिनके वारह प्रयोगयष्टान्न कालतावाले५—केवल तीन दिनका उपवास६—केवल एकदिन रातिका उपवास७= विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि इन सातोंका क्रम देखने से निश्चित होगया कि द्यूतकर्म जुआरीपनकी धत्त में एकवर्षका व्रत कहागया और द्यूतकर्म ऊर्ध्वोक्त दुर्व्यसनों में गिनती होचुका तिससे सभी दुर्व्यसनोंपर यह वर्षदिनका प्रायश्चित्त ठहिरा सो यह वारंवार हठकेसाथ अभ्यास करनेपर समझना (और यहभी समझे रहिना कि यद्यपि विद्यार्थी क्षत्री वैश्य भी होतेहैं तथापि अत्रोक्त सर्व कर्म विशेषकर ब्राह्मणसे अपेक्षा रखतेहैं तथैव जो आगे वचन कहेंगे तिसमें समझिलेना॥ ०॥ इसीके समान एक दूसरी व्यवस्थाहै=यदाहप्रचेताः=अनृतवाक्तस्करोराजभृत्योवृक्षारोपकवृत्तिर्गरदोऽग्निदोऽश्वरथगजारोहणवृत्तिः रंगोपजीवीश्वगणिकः शूद्रोपाध्यायोवृषलीपति र्भांडिकोनक्षत्रोपजीवीश्ववृत्तिर्ब्रह्मजीवी चिकित्सकोदेवलकःपुरोहितःकितवोमद्यपः कूटकारकोऽपत्यविक्रयीमनुष्यपशुविक्रेताचेति नानुद्धरेत्समेत्यन्यायतोब्राह्मणाव्यवस्थयासर्वद्रव्यत्यागेचतुर्थकालाहार·संवत्सरंत्रियवणाक्षुपस्पृशेयुःतस्यांतेदेवपितृतर्पणांगवाह्निकंचेत्येवंव्यवहार्याइति (तदपिवौधायनेनसमानविषयमितिमिताक्षरा= अर्थात्—प्रचेताने विशेषकर ब्राह्मणोंमें छव्वीस उपपातकी गिनायेहैं कि·असत्यबोली का अभ्यास राखनेवाला· चोरी करनेवाला· राजकादासत्व करनेवाला· वृक्ष लगाना आदि मालीकी वृत्ति जीविकाकरै· किसीको विषदेवै·आगि लगावै· कोचमानी या· रथमानी या· हाथीमानीसे जीविका·रँगरेजी वा छीपी आदि रँगसाजी से जीविका· कुत्ते वहुतपालै वेचै या उनकी गिनती रखवारी आदिपर नौकरहोय· शूद्रोंकी पाधाई पुरोहिताई करै·वृषलीभार्या जिसके घरमें होय·भांडिक जो राजद्वारों में तुरुही आदि शब्दोंसे कालसूचन करनेकी जीविकाराखै· नक्षत्रोपजीवी जो पंचांग नक्षत्र आदि सुनाते फिरते जीविका करै·श्ववृत्ति वह कि जो कुत्तोंकी तरह घर घर फिरते किसी तरहकी जीविकाराखै या ओछी सेवकाई नौकरी आदि करताहो· ब्रह्मजीवी जोब्राह्मणके कामोंमें मजूरीलेकर परिचारकवनै यद्वा ब्रह्म जो वेदहै तिसके विक्रय आदिसे जीविका करै· चिकित्सक जो फोड़ा फुंसी चीर फार आदि मैली चिकित्साकरै· देवल जो किसी देवालयका चढ़ावा खानेकी जीविका राखै· पुरोहित चाहैं किसी वर्णकाहो जो छठी दसूठनि आदि सूतकों का प्रतिग्रह लेनेकी वृत्ति राखता हो तिसका चर्चाहै (अदालतीसभा पुरोहितों का चर्चा इसमें नहीं कितव के दोअर्थ हैं एक छलिया जो छलसे ठगईवाले कामकरै दूसरा जुआरी

कितवं कहाता है॰ सद्यप नशेवाज॰ कूट कारक जो अदालती आदि व्यवहारों में झूंठी गवाही आदि जालसाजी करता कराता हो॰अपत्य विक्रयी जो अपनी संतान बेचताहो॰मनुष्यविक्रेता(बर्देफरोश)जो परायेस्त्री पुरुष कहींसे छलिकर वा खरीदि कर बेचताहो॰पशुविक्रेता जो पशुओंके क्रय विक्रयसे जीविका रखताहो॰ चकार के अन्वयर्थसे पक्षी आदिका बेचना भी समझिलेना—येऊदत्रोसनाम गिनानेवादि प्रचेता कहितेहैं कि इतने उपपातकी ब्राह्मण इनकामों में अच्छीतरह लीन हुये पीछे प्रायश्चित्तसे भी उद्धार होने योग्य नहीं किन्तु पुक्तिरूपी फलके भागी नहींहोसक्ते हैं तथापि ब्राह्मणत्व की व्यवस्थावाले न्यायसे इतना होसक्ताहै कि—इन कामोंसे जो कुछ द्रव्यलेचुके हों सो सब त्यागिके दिनके चौथेकाल में भोजनका नियम लेकर एकसालभर त्रिकाल स्नान कियाकरें और स्नानके अन्तमें देवतर्पण पितृतर्पण कियाकरें फिर गोग्रासदेना आदि आन्हिक नित्यकर्म भी किया करें तो इस करने से संसारी लोगोंसाथ व्यवहार शादी गमीके हेलमेल योग्य होजाते हैं (मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह प्रचेताकी दर्शाई व्यवस्था भी बोधायनके समान विषयपर समझिलेनी=और=मनुके कहे अपांक्तेय पुरुषोंवाले प्रायश्चित्त (जो माता पिता पुत्रोंके त्यागपर लिखिचुके हैं सो) भी यहां व्यसनकी व्यवस्था में लेलेने चाहिये= यदाह मनुः=षष्ठान्नकालतामासंसंहिताजपएववा होमाश्चशाकलानित्यमपांक्तानां विशोधनम्=अर्थात्—षष्ठान्नकालतानाम छठेदिन अन्न भोजन या तीसरे दिन संध्याकालसे पीछे भोजनका नियम एक महीनाभर साधे अथवा वेद संहिताका पाठ या गायत्रीका जपही एक महीनाभर करें तहां नित्यंप्रति होम करतारहै यह अपांक्तों का विशोधन प्रायश्चित्त है—इसका विशेष ब्योरा (पितृ मातृ सुत गुरु त्याग) के स्थलपर देखो=इनमें बड़े छोटे प्रायश्चित्तों के स्वरूप दोषी का दोष जैसा बड़ा या छोटा हो तिसके अनुरूप युक्ति से सोचिलेना ॥ इतिसर्वव्यसनानांप्रायश्चित्तं ॥

—:—

छठे दिनके बारह कृच्छ्रार्ध४—छत्तीस दिनमें तीन तीन दिनके बारह प्रयोगयठान्न कालतावाले५—केवल तीन दिनका उपवास६—केवल एकदिन रातिका उपवास७= विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि इन सातोंका क्रम देखने से निश्चित होगया कि द्यूतकर्म जुआरोपनकी बात में एकवर्षका व्रत कहागया और द्यूतकर्म ऊर्ध्वोक्त दुर्व्यसनों में गिनती होचुका तिससे सभी दुर्व्यसनोंपर यह वर्षदिनका प्रायश्चित्त ठहिरा सो यह बारंबार हठकेसाथ अभ्यास करनेपर समझना (और यहभी समझे रहिना कि यद्यपि विद्यार्थी क्षत्री वैश्य भी होतेहैं तथापि अत्रोक्त सर्व कर्म विशेषकर ब्राह्मणसे अपेक्षा रखतेहैं तथैव जो आगे वचन कहेंगे तिसमें समझिलेना ॥ ० ॥ इसीके समान एक दूसरी व्यवस्थाहै=यदाहप्रचेताः=अनृतवाक्तस्करोराजभृत्योवृक्षारोपकवृत्तिर्गरदोऽग्निदोऽश्वरथगजारोहणवृत्तिः रंगोपजीवीश्वगणिकः शूद्रोपाध्यायोवृषलीपति र्भांडिकोनक्षत्रोपजीवीश्ववृत्तिर्ब्रह्मजीवी चिकित्सकोदेवलकःपुरोहितःकितवोमद्यपः कूटकारकोऽपत्यविक्रयीमनुष्यपशुविक्रेताचेति नानुष्ठरेत्समेत्यन्यायतोब्राह्मणाव्यवस्थयासर्वद्रव्यत्यागेचतुर्थकालाहार.संवत्सरंनियवणासुपस्पृशेयु.तस्यांतेदेयपित्तपर्णांगवाह्निकंचेत्येवंव्यवहार्याइति (तदपिबौधायनेनसमानविषयमितिमिताक्षरा= अर्थात्—प्रचेताने विशेषकर ब्राह्मणोंमें छब्बीस उपपातकी गिनायेहैं कि•असत्यबोली का अभ्यास राखनेवाला• चोरी करनेवाला• राजकादासत्व करनेवाला• वृक्ष लगाना आदि मालीकी वृत्ति जीविकाकरें• किसीको विषदेवें•आगि लगावैं• कोचमानी या• रथमानी या• हाथीमानीसे जीविका•रँगरेजी वा छीपी आदि रँगसाजी से जीविका• कुत्ते बहुतपालें बेचें या उनकी गिनती रखवारी आदिपर नौकरहोय• शूद्रोंकी पाधाई पुरोहिताई करें•वृषलीभार्या जिसके घरमें होय•भांडिक जो राजद्वारों में तुरुही आदि शब्दोंसे कालसूचन करनेकी जीविकाराखें• नक्षत्रोपजीवी जो पंचांग नक्षत्र आदि सुनाते फिरते जीविका करें•श्ववृत्ति यह कि जो कुत्तोंकी तरह घर घर फिरते किसी तरहकी जीविकाराखें या ओछी सेवकाई नौकरी आदि करताहो• ब्रह्मजीवी जोब्राह्मणोंके कामोंमें मजूरीलेकर परिचारकबनें यहा ब्रह्म जो वेदहै तिसके विक्रय आदिसे जीविका करें• चिकित्सक जो फोड़ा फुंसी चीर फार आदि मैली चिकित्साकरें• देवल जो किसी देवालयका चढ़ावा खानेकी जीविका राखें• पुरोहित चाहें किसी वर्णकाहो जो छठी दसूठनि आदि सूतकों का प्रतिग्रह लेनेकी वृत्ति राखता हो तिसका चर्चाहै (अदालतोसभा पुरोहितों का चर्चा इसमें नहीं कितव के दोअर्थ हैं एक छलिया जो छलसे ठगईवाले कामकरै दूसरा जुआरी

आरूढ होगा कि जिसने बहुत काल शूद्र की सेवा करीहो अन्यथा थोडे काल की सेवा मध्ये४४ चवालिसपरिच्छेद वाले प्रायश्चित्त यथायोग्य चुनि कर लेने होंगे यह ऊपर भी लिखिचुके हैं—इसी प्रकार—आत्मविक्रय अपना देह किसी के हाथ बेंचिकर दास होजाना आदि भी समझिलेना कि जिसने आप बेचने का वचन मात्र पक्का कियाहो तिसपर सबसे छोटा प्रायश्चित्त फिर जिसने अपना देह दूसरे के परिग्रहमें फँसाही दिया तिसके छूटिआने पर कुछ बड़ा प्रायश्चित्त फिर जो कोई कुछ अवधि तक दूसरेके कब्जामें रहिकर छूटा तिसपर कुछ और बडा या जो कोई अति काल रहिके छूटै तिसपर अयोक्त तीनि वर्षोंका प्रायश्चित्त भी आरूढ होसक्ता है इत्यात्मविक्रयशूद्रसेवनयोः प्रायश्चित्त॥

(हीनमैत्री प्रायश्चित्तं)

शूद्रसेवाके लगभग २४१ दोसौ इकतालिस मूलश्लोकमें हीनजातिसे मित्रता करना (हीनसख्य) इस नामसे उपपातक दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने जुदा कुछ नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदों से छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको दोषके अनुसार चुनिके जोड़िलेना=मिताक्षरा कार कहिते हैं कि प्रचेताने जो ऐसा कहाहै कि=मित्रभेदकरणादहोरात्रमनश्नन् हुत्वापयःपिबेदिति(तदहीनसख्यभेदविषयं=अर्थात—मित्रोंमें भेद करानेके दोषसे एक दिन राति भर निराहार होकर अग्नि में होम करिके दूधपीवै (सो यह प्रायश्चित्त अहीन जाति के मित्रोंमें भेद कराने पर समझना (यद्यपि इस प्रकरणमें यह वचन लिखाजाने का प्रयोजन कुछ नहीं था तौभी जो महात्मा लोग लिखिचुके सो हमने भी लिखि दिया॥ इतिहीनजातिमित्रीकरण प्रायश्चित्त॥

(हीनयोनिसेवन प्रायश्चित्त)

हीनसख्यसे लगभग २४१ दोसौ इकतालिस मूलश्लोकमें (हीनयोनि सेवन) इस नामका उपपातक दर्शाया था परन्तु योगीश्वर ने उसका प्रायश्चित्त जुदा करिके नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको चुनिकर यहां दोषकी छोटाई बड़ाई सोचिके जोड़िलेना—परन्तु—हीनयोनिका सेवन भी कईभांति का होताहै कि एक तौ वेश्या आदि साधारण स्त्रियोंकाभोगभी हीनयोनिका सेवन है अथवा अपनेसे नीचे वर्णोंकी स्त्रियोंसे विवाह जिसने किया हो इत्यादि भेदों के

अथ आत्मविक्रयशूद्रसेवाद्युपपातकचतुष्टयस्य प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः सप्तषष्टिः (६७)॥

—*—

इस परिच्छेद में चार उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायँगे तिनमें प्रथम आत्मविक्रय और शूद्रकी सेवाका फिर हीन जातिकी मैत्री का फिर हीनयोनि सेवन करने का॥

(आत्मविक्रयशूद्रसेवनयोःप्रायश्चित्तं)

व्यसनों से लगाय दोसौ चालीस २४०।मूल श्लोक के अंत में (आत्म विक्रय) भी उपपातक फिर २४१ में (शूद्रप्रेष्य) भी उपपातक बतायाथा–इन दोनों के प्रायश्चित्त योगीश्वर ने जुदे करिके नहीं कहे–तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्त चुनिकर इनके दोषकी छोटाई बड़ाईपर जोड़िलेना=इसमें शूद्र सेवा के मध्ये एक बौधायनका वचन भी देखा गयाहै=यथा=समुद्रयानंब्राह्मणस्यन्यासापहरणांसर्वापराधेष्वंवहरणांभूम्यपनुवृत्तं शूद्रसेवायश्चशूद्रायामभिजायते तदपत्यंच भवतितेषांतुनिर्देशः चतुर्थकालोमितभोजनाःस्युरपोऽभ्युपेयुःसवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यांविहरंतएतैस्त्रिभिर्वर्षैस्तदपघ्नंतिपापम् (इतितद्बहुकालसेवाविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्–समुद्रकीयात्राजोजहाजपरहोतीहै•ब्राह्मणकीधरोहरिहर लेना•जोचीजें बेचनानिषिद्धहैं तिनसे व्यवहारकरना•भूम्यनुवृत्तंकर्म अर्थात् धरतीकाखोदनाभीतर घुसनाआदि अथवा(भूम्यपवृत्त पाठ होनेसे)पराङ्मुखहोजाना धरतीत्यागि देनावेचि देना आदि अर्थनिकसते हैं जो कुछहो सोसही• शूद्र जातिकीनौकरी करना•औरजो कोई शूद्रामें बीजदान करिके जन्म धरै•औरउसकेजोशूद्राकीसन्तानहोय•तिनसबके लिये यहआज्ञाहै कि दिनकेचौथे कालमें एकही बार थोड़ासाभोजनकरनेकानियम साधेहुये नित्यप्रति सवनकेतुल्य स्नानकियाकरैं अर्थात्जैसे यज्ञोंकाअंगभूतस्नान वेद के मंत्रोंसे अभिषेचन हुआ करता है वही सवन कहाताहै तैसा रोजकरैं और स्थान तथा आसनकी दृढतासे विचरते हुये इनने कर्मोंसे तीनि वर्षमें उन पापोंको खोसक्ते हैं विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार कहिते हैं कि इनमें से इस प्रकरणके प्रयोजन पर शूद्र की सेवा लेना आवश्यक है तिसके लिये यह तीनि वर्षोंका प्रायश्चित्त उस दशामें

आरूढ होगा कि जिसने बहुत काल शूद्र की सेवा करीहो अन्यथा थोड़े काल की सेवा मध्येर४ चवालिसपरिच्छेद वाले प्रायश्चित्त यथायोग्य चुनि कर लेने होंगे यह ऊपर भी लिखिचुके हैं—इसी प्रकार—आत्मविक्रय अपना देह किसी के हाथ वेचिकर दास होजाना आदि भी समझिलेना कि जिसने आप देचने का वचन मात्र पक्का कियाहो तिसपर सबसे छोटा प्रायश्चित्त फिर जिसने अपना देह दूसरे न परि- ग्रहमें फँसाही दिया तिसके छूटिआने पर कुछ बड़ा प्रायश्चित्त फिर जो कोई कुछ अवधि तक दूसरेके कब्जामें रहिकर छूटा तिसपर कुछ और बडा या जो कोई अति काल रहिके छूटे तिसपर अग्रोक्त तीनि वर्षोंका प्रायश्चित्त भी आरूढ होसक्ता है इत्यात्मविक्रयशूद्रसेवनयोः प्रायश्चित्त॥

(हीनमैत्री प्रायश्चित्तं)

शूद्रसेवाके लगभग २४१ दोसौ इकतालिस मूलश्लोकमें हीनजातिसे मित्रता क- रना (हीनसख्य) इस नामसे उपपातक दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने जुदा कुछ नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदमें से छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको दोषके अनुसार चुनिके जोडिलेना=मिताक्षरा कार कहिते हैं कि प्रचेताने जो ऐसा कहाहै कि=मित्रभेदकरणादहोरात्रमनश्नन् हुत्वापयःपिबेदिति(तदहीनसख्यभेदविष यं=अर्थात्—मित्रोंमें भेद करानेके दोषसे एक दिन राति भर निराहार होकर अग्नि में होम करिके दूधपीवै (सो यह प्रायश्चित्त अहीन जाति के मित्रोंमें भेद कराने पर समझना (यद्यपि इस प्रकरणमे यह वचन लिखाजाने का प्रयोजन कुछ नहीं था तौभी जो महात्मा लोग लिखिचुके सो हमने भी लिखि दिया॥ इतिहीनजा- तिमित्रीकरण प्रायश्चित्त॥

(हीनयोनिसेवन प्रायश्चित्त)

हीनसख्यसे लगभग २४१ दोसौ इकतालिस मूलश्लोकमें (हीनयोनि सेवन) इस नामका उपपातक दर्शाया था परन्तु योगीश्वर ने उसका प्रायश्चित्त जुदा करिके नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको चुनिकर यहां दोषकी छोटाई बड़ाई सोचिके जोडिलेना—परन्तु—हीनयोनिका सेवन भी कईभांति का होताहै कि एक तौ वेश्या आदि साधारण स्त्रियोंका भोगभी हीनयोनिका सेवन है अथवा अपनेसे नीचे वर्णकी स्त्रियोसे विवाह जिसने किया हो इत्यादि भेदों के

जुदे प्रायश्चित्त आगे दर्शाते हैं=यथाह शातातपः=ब्राह्मणोराजन्यापूर्वः कृच्छ्न्दा दशरात्रंचरित्वा निर्विशेत्तांचोपयच्छेत वैश्यापूर्वीतप्तकृच्छ्रं शूद्रापूर्वीतुकृच्छ्रातिकृच्छ्रं राजन्यश्चेद्वैश्यापूर्वः कृच्छ्रं द्वादशरात्रंचरित्वा निर्विशेत्तांचोपयच्छेदिति शूद्रापूर्वीत्वतिकृच्छ्रं वैश्यश्चेच्छूद्रापूर्वः कृच्छ्न्दादशरात्रंचरित्वातांचोपयच्छेदिति—तत्र (निर्विशेत्तांचोपयच्छेदिति कृच्छ्रानुष्ठानोत्तरकालं सवर्णापरिणयनादूर्ध्वं तांचराजन्यादिकामुपयच्छेदित्यर्थः) इदंचाज्ञानविषयं—ज्ञानतस्तूपपातकसामान्यप्रायश्चित्तं व्यवस्थितमेवद्रष्टव्यमितिमिताक्षरा=अर्थात्—शातातपने कहा है कि जिस ब्राह्मण के घरमें पहिले क्षत्राणी विवाहिता होचुकीहो वहीजब अपने वर्णमें विवाह करना चाहे तो यह उसके ऊपर दोषहै कि पहले नीचे वर्णमें विवाह किया इसी लिये सवर्णाको विवाहनेसे पहिले बारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके पीछे विवाह करे फिर उस क्षत्राणीको भी पासही रक्खे• इसीरीतिसे जो ब्राह्मण पहिले बनेनीसे विवाह करचुकाहो सो तप्तकृच्छ्र व्रत करिके सवर्णासे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी पास रक्खे• इसी रीतिसे जो ब्राह्मण पहिले शूद्रासे विवाहकरचुकाहो सो कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत करिके तब सवर्णासे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी रक्खे—क्षत्री जो पहिले बनेनीसे विवाह करचुकाहो सो बारह दिन कृच्छ्रव्रत करिके अपनी सवर्णासे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी पास रक्खे• जो क्षत्री पहिले शूद्रासाथ बिवाह करचुकाहो सो अतिकृच्छ्र करिके पीछे सवर्णासे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी पास रक्खे—वैश्य जो शूद्राके साथ विवाह करचुकाहो सो बारह दिन कृच्छ्रव्रत करिके तब सवर्णासे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी पास रक्खे—परन्तु मिताक्षराकार कहितेहैं ये छोटे प्रायश्चित्त केवल उनके लिये समझना जिन्हों ने नीचे वर्णकी कन्या बिनाजाने धोखा आदिसे विवाहिती होय—किन्तु जानतेहुये इच्छा सहित जिसने नीचे वर्णकी कन्या ग्रहण करीहोय तिसके लिये जैसा ऊपर लिखिचुके तैसा ४४ चवालिसके परिच्छेदसे सामान्य उपपातकों वाले प्रायश्चित्त चुनिकर लेने चाहिये॥ वेश्यादि भोगविषयेतु विशेषः—वेश्या आदि साधारण स्त्रियां जो सर्वजनोंके भोग निमित्तमें प्रसिद्ध होतीहैं तिनका भोग भी हीनयोनिका सेवन कहाता है—तिनका संगम यदि एकबार इच्छा बिना किसी धोखा से होगया हो तहां संवर्त आदि के कहे प्रायश्चित्त जोड़ने=यथा=पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते—तथा—वेश्यागमनजंपापंव्यपोहंतिद्विजातयः पीत्वासकृत्सकृत्तप्तं सप्तरात्रंकुशोदकम=अर्थात्—पशुकी योनि या वेश्याकी योनि में संगम करने पर प्राजापत्य

करना चाहिये–तथा–वेश्याके संगम से उत्पन्न पाप को द्विजाती लोग इस तरह से धोसक्ते हैं कि सात दिन तक एकही एकबार कुशाओंका ओटाया पानी खूब गरम पीके रहैं• यह अज्ञानताका प्रायश्चित्त कहा=परन्तु जिसने जानि बूझि के वेश्या में संगम कियाहो तिसके लिये ४४ चवालिस परिच्छेद वाले छोटे बड़े प्रायश्चित्त थोड़े या बहुत दिनके अभ्यास रूपी छोटे बड़े पापके अनुसार चुनिके समझिलेने–परन्तु–इसमें कुछ भेद अभी और है कि जिसने इच्छा सहित बारम्बार वेश्यागमन का अभ्यास कियाहो तहां (प्रतिनिमित्तंनैमित्तिकमावर्त्तते इतिन्यायात्) हरएक पापके ऊपर प्रायश्चित्तकी आवृत्ति बढती है इस न्यायसे) प्रत्येक पाप के ऊपर प्रायश्चित्तोंकी सख्या बहुत होती देखिके लोकाक्षि आचार्यने एक जुदाही नियम दर्शाया है=यथाह लौगाक्षिः=अभ्यासेहर्गुणात्द्विमासादर्वाग्विधीयते ततोमासगुणात्द्वियावत्संवत्सरंभवेत् तत.संवत्सरगुणायावत्पापसमाचरेदिति (इदमतिपूर्वविषयं=अर्थात्–जो कुछ प्रायश्चित्त एकबार के पाप करने पर कहा गयाहो तिसकी वृद्धि महीनाके भीतर कई बार पाप करने में उन्हीं दिवसों की संख्या साथ करी जायगी कि जितने दिनों पाप कियाहो फिर महीनासे उपरान्त एकसाल के भीतर में जितने महीने पाप कियाहो उन्हींकी सख्यासे गुणाकर प्रायश्चित्तोंकी आवृत्ति बढ़ाई जायँगी अर्थात् जितने महीने ठहिरें उतनेही प्रायश्चित्त करने परें फिर एक वर्षसे उपरांतमें जितने वर्ष तक पाप करता रहा हो उतनेही प्रायश्चित्त करने परें–सो यह नियम केवल उसके लिये समझना कि जिसने जानते हुये पाप किया हो=किन्तु=जिसने विना जाने बारम्बार पाप करनेका अभ्यास कियाहो तिसके लिये षट्त्रिंशतिमत नामके ग्रन्थ में विशेषता कही गईहै=यथा=सकृत्कृतेतुयत्प्रोक्तं त्रिगुणंतत्त्र्यहादिनैः मासात्पंचगुणप्रोक्तंपरमासाद्दशधाभवेत् संवत्सरात्पचदशंद्वयब्दात् द्विंशगुणाभवेत्ततोप्येवंप्रकल्प्यंस्याद्यातातपवचोयथा=अर्थात्–एकबार पाप करने में जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गयाहो सो तीन दिनके भीतरमें तद्रूप कियाजाय किन्तु तीन दिनोंसे उपरान्त महीनाके भीतर चाहे कितनेही दिवसों विनाजाने पाप किया हो तिसपर तिगुना प्रायश्चित्त चाहिये और महीनासे ऊपर छमाहोके भीतर विना जाने चाहैं कितनेही बार पाप कियाहो तिसपर पांचगुना प्रायश्चित्त चाहिये और छमाहीसे ऊपर पूरे सालके भीतर विना जाने चाहैं कितनेही बार पाप किया हो तिसपर दशगुणा प्रायश्चित्त चाहिये और एकवर्षसे ऊपर तीनिवर्षके भीतर विना जाने चाहैं कितनेही बार पाप किया हो तिस पर पन्द्रह गुणा प्रायश्चित्त चाहिये

तिसको जब संसारी व्यवहारोंमें शामिल होनेकी जरूरत समझी जाय और वेश्या के साथ भोजन करलेने आदि प्रकारोंसे बचा भी रहसकाहो=और जो गुरुतल्प से छोटे प्रायश्चित्त इसी यमके वचनमें दर्शायेगये सो सब यथायोग्य छोटे मोटे दोषों की दशाके अनुसार वेश्यागामीपर आरूढ किये जासक्ते हैं॥ इतिवेश्यादिहीन योनिसेवनप्रायश्चित्तं॥

अथ अनाश्रमवासादि सदसत्प्रतिग्रहांतोपपातक षट्कस्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदःअष्टषष्टितमः(६८)

इस परिच्छेद में छः प्रकारके उपपातकोंका प्रायश्चित्त दर्शाया जायगा-तिन में प्रथम अनाश्रमीका प्रायश्चित्त फिर पराचलोलुपका और असत्शास्त्रके अभ्यासीका और खानिके अधिकारीका और भार्या बेचनेवालेका फिर असत्प्रतिग्रह और सत्प्रतिग्रहलेनेका प्रायश्चित्त कहाजायगा॥

(अनाश्रमवासप्रायश्चित्तं)

दोसौ इकतालिस मूल श्लोकमें हीन योनि सेवनसे लगामा योगीश्वरने (तथैवानाश्रमेवासः) इस पदसें अनाश्रम वास रूपी उपपातक ठहिरायाथा विशेष ब्योरा इसका उसी २४१ की अधिकोक्तिमें देखो परंच जुदा प्रायश्चित्त कहीं नहीं कहा तिससे४४चवालिस परिच्छेदका सहारालेनाहोगा-परन्तु-हारीतने जुदाप्रायश्चित्त भी कहा है=यथा=अनाश्रमी संवत्सरं प्राजापत्यकृच्छ्रं चरित्वाऽऽश्रममुपेयात् द्वितीयेऽति कृच्छ्रं तृतीये कृच्छ्रातिकृच्छ्र मत ऊर्ध्वं चान्द्रायणमिति-एतदसम्भवविषयं सम्भवेतु सामान्योपपातक प्रायश्चित्तानि कामाकामतोव्यवस्थापनीयानीति मिताक्षरा=अर्थात्-अनाश्रमी उसका नामहै जो चार आश्रमों में किसी भी आश्रम का साथी न होय किन्तु भार्या मरजाने या प्रथमसेही विवाह न करनेसे निढंगरहि कर गृहस्थीके आश्रमको न थांभे न ब्रह्मचारी संन्यासी वानप्रस्थहोजाय ऐसापुरुष ठिकाना बांधेबिना चाहें तहां बैठिके या चाहें तिसकेपास पेट भरिके दिन काटै सो अनाश्रमी ठीक ठीकहै तिसकेलिये हारीतमुनि कहतेहैं कि-एकसाल भर अनाश्रमी

होके जहां तहां दिन काटे सो इस दोष के ऊपर प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत आचरण करिके किसी आश्रममें दाखिल होजाय•दूसरेसालतक अनाश्रमी होके रहा फिरा होय सो अति कृच्छ्र करिके आश्रम का स्वीकार करे• तीसरे साल तक अनाश्रमी फिराहोय सो कृच्छ्रातिकृच्छ्र करिके आश्रमथांभे•तीनवर्षसे भी अधिक जो अनाश्रमी रहाहो सो महीना भर चान्द्रायण करिके आश्रमका सहारालेवे— मिताक्षराकार कहितेहैं कि यहनियम हारीतवाला उसकेलिये समझना जिसका विवाहादि न होसकनेसे गृहस्थ आदि आदिआश्रमका विक्षेप लाचारीसे रहा हो•किन्तु जिसने विवाहआदि आश्रमों के डौल होसकतेहुये उपेक्षा करीहो तिसकेलिये४४चवालिस परिच्छेद में सामान्य उपपातकों वाले बड़े छोटे प्रायश्चित्त दोष दशा के अनुसार चुनिके जोडि लेने चाहिये=इस वार्त्ताका संक्षेप ब्योरा २४१ दोसौइकतालिस मूल श्लोकवाली अविकोक्तिमें लिखिचुके तहांदेखो॥ इत्यनाश्रमवासप्रायश्चित्तं॥

(परपाकरुचित्वादीनांप्रायश्चित्तचतुष्टयं)

अनाश्रमवास के लगता २४१में (परान्नपरिपुष्टता) इस पदसे परपाक रुचित्व कहिके २४२ दोसौबयालिस मूलश्लोकमें तीन उपपातकों के नाम और भी योगीश्वरने इसक्रमसे कहेहैं (असत् शास्त्रों का अधिगमन) (आकरेषु अधिकारता) (-भार्याविक्रय) अर्थ इनचारोंके उसी मूल श्लोकमें देखो—इन चारोंके प्रायश्चित्त कहीं जुदे करिके नहीं कहे गये हैं—तिससे ४४ चवालिस परिच्छेद में साधारण प्रायश्चित्त योगीश्वर तथा मनुके कहे छोटे बड़े चुनिकर इनके दोषोंकी छोटाईबड़ाई परजाति और शक्ति और गुणादिकों की अपेक्षासे व्यवस्थापन करलेने चाहिये ॥ इतिपरपाकरुचित्वादिभार्याविक्रयांतानांप्रायश्चित्तं॥

यहांतक सत्रैवदोसौनवासी मूलश्लोकवाली टीकाकाशेषपाठ चलाआता था कि जिसकाचर्चा ६४ चौंसठि परिच्छेदके प्रारम्भसमय लिखागया सो अबनिपटिगया ॥

(असत्प्रतिग्रहप्रायश्चित्तं)

दोसौबयालिस २४२ मूलश्लोक में (भार्यायाविक्रयश्च) इस चकारके स्वन्ययार्थ से बिना कहे भी उपपातक मन्वादिस्मृतियों के लिखे समझने कहिचुके हैं उसीकी अविकोक्तिमेंदेखो कि मन्वादिक ऋषीश्वरोंके दर्शायेनाम असत्प्रतिग्रहआदि अनेक जो वहांपर कहिचुकेथे उनके भी प्रायश्चित्त आगे यथा क्रमसे दर्शावेंगे तिनमें

और तीन वर्षसे उपरान्तमें बीसगुणा प्रायश्चित्त चाहिये-तिसपर भी ऐसी कल्पना करनी चाहिये कि जैसा शातातपके वचनमें इसी वार्ताका चर्चा कहीं आचुका हो विरोधशांतिः ध्यानकरो इस पिछले अङ्केमें कल्पना करनेकी आज्ञा कही तिसका यह तात्पर्य नहींहै कि इसी तरह बीसगुनेसे भी अधिक बढाते चले जायँ जैसी वर्ष अधिक देखें-क्योंकि ऐसा समझिलेनेसे बहुत बड़ा अन्याय खड़ा होता है-तिससे इसका यह तात्पर्य है कि यद्यपि इन वचनोंसे गुणा करनेके नियम निश्चित किये गये तथापि कहीं विरोधको देखिभाल इसमें भी न्यायात्मक कल्पना अपनीयुक्ति से करनी चाहिये जैसी शातातपके वचनसे कहींऐसा भी होचुकीहै-और सिद्धांत इसका यही है कि विरोध का दूर करना आवश्यक है-इसका दृष्टान्त जैसा इसी जघे पर विरोध सबजरहे कि तीनवर्षसे ऊपर चौथेवर्षमें भी बीस गुणा प्रायश्चित्त अज्ञानतासे पाप करैयापर ठहिरा कि जिसपर कोमलताकी अपेक्षाथी और उन्हीं चार वर्षोंमें केवल चौगुना प्रायश्चित्त जानिबूझि पापकरै या पर साबितहुआ कि जिसपर कठोरताकी जरूरत पाई जातीथी, यह बात ऊपर लीगासिवाली व्यवस्था में येखो इन दोनों के बीच अभी और भी अनेकधा विरोध पायेजासक्ते हैं तिन विरोधोंका निवारण करनेकी आज्ञा पिछले अङ्केसे दरशाईगई कि जिससे अन्याय न होनेपावे-तिसके लिये-ऊपर ले अर्थों में यह युक्ति सोचनी चाहिये कि जहां तीन दिनसे ऊपर महीनाके भीतर तिगुना करना कहा तहां भी सिर्फ चौथे दिन में तिगुना न कर देना किन्तु जैसे दिन थोड़े वा अधिक पाये जायँ तैसे सवाया डेउढ़ा दूना तक पन्द्रह दिनके भीतर फिर इसीतरह थोड़ा थोड़ा बढाते जाकर पूरे महीना तक तिगुना प्रायश्चित्त जोड़ना फिर पूरे कई महीने होजाने पर उन्हींकी संख्यासे गुणा करना कहिचुके हैं तहां भी यह सोचना कि दो महीने तकयही तिगुना राखनेसे न्याय ठीक होगा (अन्यथा दो महीनेमें दुगुना करानेसे दोही आवृत्ति रही जाती हैं) तिससे तीन महीने पूरे होजाने पर पांच गुणेका प्रारम्भ करना अर्थात् तिगुनेसे अधिक चौगुना चौथे पांचवें महीनाके भीतर और छठे महीनाके पूरे होने तक पांचगुनेका बर्त्ताव करना-फिर सातवें मासकेपूरे न होनेतक यही पांचगुना राखना तिस पीछे एक एक महीनाकी अधिकता होताजानेमें एक एक गुणा बढाते जाना अर्थात् आठवें मासमें छे गुना नववेंमें सात गुना दशवेंमें आठ गुना ग्यारहवेंमें नौ गुना बारहवेंमें दश गुना-इसीतरह पूरे वर्ष से उपरान्त जहां पन्द्रह गुणा प्रायश्चित्त तीनि वर्षके भीतरमें कहिचुके तहां भी दूसरी तीसरी दोवर्षोंके २४ महीनों

पर फैलावा अपनी बुद्धिसेकरना—फिर तीनवर्षसे उपरान्तमें जो बीसगुना कहिचुके सो भी केवल चौथी वर्षमें न समझि लेना किन्तु पांच वर्ष आदि लेकर बहुत वर्षों देखिपरने मे बीस गुनेका बर्त्तावा करना चाहिये इसके भीतर उसी पन्द्रह गुने का वर्त्तावा चलाआवेगा क्योंकि (ये चतुर्विंशति मत के श्लोकों वाली व्यवस्था कुछ वाचनिक प्रभावसे संयुक्त नहीं है कि जो कुछ वचनमें उच्चारण कियागया उसीपर आरूढ होना) इसीलिये इन श्लोकों ने आपही पिछले अद्धे से कहिदिया है कि इसमें न्यायकी दृष्टिसे कल्पना भी करनी चाहिये जिससे अन्याय न होसके–वरन इस अन्यायके बचानेके निमित्तसे दोषकी छोटाई बड़ाईपर भी ध्यान देकर यहकल्पना करनी चाहिये जो अभी लिखिचुके (आधुनिक अनुवादक इसबात से लाचार हैं कि प्राचीन संग्रहकारने निजन्याय दृष्टिसे चतुर्विंशति मतकी व्यवस्था अज्ञानता के पापमध्ये स्थापन करी और लैंगाक्षिवाली व्यवस्था को इच्छा सहितके पापोंपर स्थापन किया) इसके बादि मिताक्षरा कार फिर कहते हैं कि (यत्पुनःद्विषेःप्रायश्चित्तकादस्मात् द्वितीयेद्विगुणाचरेदिति प्रतिनिमित्तमावृत्तिविधायकं तन्महापातकविषयमित्युक्तंप्राक्) अर्थात्–यह वचन जो प्रसिद्ध है कि इस पहिलेकिये अपराध पर जो कुछ प्रायश्चित्त की विधि कही गई तिसके करचुकने के बादि जब उसी अपराध को फिर करें तब दूना प्रायश्चित्त कराया जाय इसी प्रकार तीसरी बार तिगुना करवायाजाय इत्यादि सो यह महा पातकोंपर आरूढ है इसका निर्णय पहिले ब्रह्महत्या आदि प्रकरणोंमें होचुका तिससे यहां इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है ॥०॥ पुनराहविज्ञानेश्वरः=यत्तुयमेनसाधारणस्त्रीगमनमभिधायगुरुतल्पव्रतमतिदिष्टं–गुरुतल्पव्रतकेचित्केचिचान्द्रायणव्रतम गोघ्नस्येचकान्तिकेचिचकेचिद्वेवावकीर्णिनः (इत्येतज्जन्मप्रभृतिसानुबन्धानवच्छिन्नाभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्–विज्ञानेश्वर आचार्य फिर कहते हैं कि यमने जो वेश्या आदि साधारण स्त्रियां गमन करनेके पाप पर गुरुतल्प महापापवाले प्रायश्चित्तका अति देश अगिले वचन से उताराहै कि–विरले आचार्य गुरुतल्पवाला व्रत बताते और विरले चान्द्रायण व्रत बताते और विरले गोहत्या वाले प्रायश्चित्त चाहना करते और विरले अवकीर्णी ब्रह्मचारी वाले प्रायश्चित्त ठहिराते हैं कि जैसा काने गदहा से नैर्ऋत याग करना आदि कहागयाथा० इनमेंसे गुरुतल्पीवाला व्रत केवल उसकेलिये समझना कि जो मनुष्य अपने जन्मसे सुधि सम्हारनेके साथही खुलाखुली वेश्याबाजीमें तत्परहोके हठके साथ निरन्तर अभ्यास करता रहिकर अपनी बहुत अवस्थाको बिताइचुका

से असत्प्रतिग्रह लेनेका प्रायश्चित्त यहां पर मूलश्लोक से योगीश्वर दर्शाते हैं॥

गोष्ठेवसन्ब्रह्मचारीमासमेकंपयोव्रतः। गायत्रीजाप्यनिरतःशुद्धयतेऽसत्प्रतिग्रहात् २९०

अर्थः—ब्रह्मचारी होके एक महीना गोष्ठमें वसते पयोव्रत करते गायत्री के जप में निरत होवे सो असत्प्रतिग्रह से शुद्ध होताहै=अर्थात्—जिस पंडित ने असत्प्रतिग्रह खोटादान लेलिया होय सो इस पापसे इस तरह शुद्ध होताहै कि बहुतसी गौओं के समूहवाले गौं हरे में महीना भर ब्रह्मचर्य की सावता सहित वसिकर केवल एकवार थोड़ा दूधपीनेका व्रतलेकर नित्यंप्रति संतत गायत्रीके जपमें लगा रहाकरै॥२९०॥

२९०अधिकोक्तिः=खोटादान उसको समझना जो दाताकी जाति नीच होने या जाति श्रेष्ठ होने पर कर्म नीच होनेसे भी दान असत् कहाता है—दृष्टान्त जैसे चंडाल आदि महानीचसे प्रतिग्रह लेना या कर्मोंसे महापातकी आदि पतित होय तिसका दिया प्रतिग्रह लेना=तथैवदेश और कालके योगसे भी खोटादान कहाताहै—दृष्टांत जैसे कुरुक्षेत्र के तीर्थमें यह देश ठहरा और ग्रहण आदि पर्वोंमें प्रतिग्रह लेना यही अनिष्ट कालके योगसे खोटादान ठहरा=तथैव निंदित द्रव्योंके स्वरूपसे भी प्रतिग्रह का खोटापन होताहै—दृष्टान्त जैसे मदिरा या भेड़ या मरे मनुष्यका शय्यादान या उभय तोमुखी गायकादान आदि अनेक दान अपनी वस्तु के स्वरूपही से असत् कहाते हैं (उभयमुखी गाय वह कहातीहै जिसके दोनोंओर मुख होयँ अर्थात् बिआते समय निकसते हुये बच्चे का मुह पीछे और आगे अपना मुह तिसका उसी समय दानकरने से उभय तोमुखीका प्रतिग्रहलेना परताहै)॥ ०॥ मिताक्षराकार कहितेहैं कि जो प्रायश्चित्त मूल श्लोक में कहा गया सो कुछ बड़ा देखि परता है तिससे यह ऐसे पुरुष पर आरूढ़ करना चाहिये जिसमें खोटे दान के दो दोष पायेजायँ (अर्थात् खोटे दान के चिह्न सब लिखिचुके तिनमें देखो) कि जिसने पतित या चण्डाल या रजस्वला आदि किसी खोटेके हाथसे खोटाही द्रव्य भेड़ बकरी आदि प्रतिग्रह लियाहो इसीदृष्टान्त से और भी दो दो वात मिलाकर समझिलेना कि दो वातोंके मिलापसे दोष सैंकड़ापन आजाताहै जैसे एकडाके पासएकडा धरनेसे ग्यारह वनिजाते हैं तिससे ऐसीदशामें यह बड़ा प्रायश्चित्त चाहिये—तहां—यद्यपि गायत्री के जपकी तादाद योगीश्वर ने कुछ नहीं कही परन्तु मनुने उसकी संख्या भी कहि दई है=यथा=जपित्वात्रीणिसावित्र्यासहस्राणिसमाहितः मासगोष्ठेपयःपीत्वामुच्यते ऽसत्प्रतिग्रहात्=अर्थात्—एक महीना भर नित्यंप्रति गायत्रीमंत्र के तीनि सहस्रजपि कर गौओं के गोहरे में ग्राम से बाहर निवास करते दूध पीकर व्रत करै सो इसअ-

सत्प्रतिग्रह के पाप से छुटि जाता है—अब दूसरी व्यवस्था देखो ॥ ० ॥ जिसनेकिसी न्यायवर्ती धर्मात्मा ब्राह्मण आदि श्रेष्ठ पुरुषसे खोटा प्रतिग्रह भेडा बकरा आदि कुछ लिया हो तिसपर एक वस्तु के खोटे स्वरूप ही का दोष पाया जाता है यद्वा धरती मकान आदि श्रेष्ठ चीजों का प्रतिग्रह पतित आदि महा पापी से या चण्डाल आदि अशुचि मनुष्यों से लिया हो तिस परभी एकही दोष पाया जाता है॰तिसके लिये यट्त्रिंशन्मत के कहे प्रायश्चित्त चाहिये=यथा=पवित्रेष्टया विशुद्ध्यंतिसर्वेघोराःप्रतिग्रहाः ऐन्दवेनमृगारेष्टयाकदाचिन्मित्रविन्दया देव्यालक्षजपेनैवशुद्ध्यन्तेदुष्प्रतिग्रहात=अर्थात—सब तरह के खोटे प्रतिग्रह जिनके लेने से महा घोर पाप होते हो तिनके भी लिवैया शुद्ध होते हैं पवित्रेष्टि के करनेसे अर्थात पवित्र नाम यज्ञोपवीत है तिसकी इष्टि करना पुनर्यज्ञोपवीत का सर्वथा संस्कार कराना यह तात्पर्य है॰ परन्तु जो प्रतिग्रह अत्यंत घोर न समझा जाय तो फिर इसी पवित्रेष्टि का अर्थ पवित्रारोपण या पवित्रारोहण इस नाम का यज्ञमाना जाय जिसका यह लक्षण है कि श्रावण महीना की शुक्ला द्वादशी के दिवस विष्णु देव के नाम से यज्ञोपवीत कर्म किया जाता है—जहां इससे भी हलुका प्रतिग्रह समझा जाय जिसके मिवही निन्दा करें तो इस दोष में ऐन्दव चांद्रायण व्रत करना चाहिये यद्वा मृगारेष्टि कर्म अर्थात याचना किये द्रव्यों से अमावस्या पूर्णमासी के वेदोक्त यजन कियाकरै तो भी शुद्ध होता है॰ अथवा यह न होसके तो गायत्री देवी का एक लक्ष संख्या जप ही करिके शुद्ध होता है जिसने असत्प्रतिग्रह लेलिया हो ॥ ० ॥जोकि वृद्धहारीत का यह वचन है=राज्ञःप्रतिग्रहंकृत्वामासमप्सुसदावसेत् यष्ठेकालेपयोभक्ष पूर्णेमासे विशुद्ध्यति तर्पयित्वाद्विजान्कामैःसततंनियतव्रतः (एतच्चपूर्वोक्तविषयाभ्यासेद्रष्टव्य अथवापतितादेःकुरुक्षेत्रेोपरागादौ कृष्णाजिनादिप्रतिग्रह विषयमितिमिताक्षरा= अर्थात— राजा से खोटा प्रतिग्रह लेकर ब्राह्मण को चाहिये कि एक महीना भर नित्यप्रति जल में बैठा रहा करै और एक पहर भर राति बीति जाने बाद थोड़ादूध पिया करै फिर महीना पूरा होजाने पर ब्राह्मणों को इच्छा भोजन से तृप्त करिके शुद्ध होता है (मिताक्षरा कार कहिते हैं कि हारीत का यह वचन उस प्रतिग्रह के विषय पर मानना कि जैसा पहिले अविकोक्ति के प्रारम्भ में दो दोषों का इकट्ठा होना लिखि चुके अथवा इस रीति से कि जिसने कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों पर ग्रहण आदि कठिन काल में महा पापी आदि पतितों से प्रतिग्रह लिया होय) इस व्यवस्था का यह तात्पर्य ठहिरा कि हारीत के वचन से जैसा कहा गया कि राजाका

प्रतिग्रह लेकर ऐसा प्रायश्चित्त करै सो यह कथन सब राजाओं के सब अच्छे भी प्रतिग्रहों पर न समझि लेना ॥ ० ॥ इसी प्रकार प्रतिग्रह का द्रव्य थोड़ा होने की दशा पर भी प्रायश्चित्त छोटा होना चाहिये सो भी हारीत की मध्यमस्मृति का वचन देखो=तथाच हारीत=मणिवासोगवादीनांप्रतिग्रहसो आविन्सष्ट सहस्त्रजपेत= मणियों वा वस्त्रों वा गाय आदि उत्तम चीजों के दान इन्हीं कीमती के अनुसार प्रतिग्रह लेनेमें आठ सहस्र गायत्री जपि डारै इसीसे शुद्ध होजाता है ॥ ० ॥ सत्प्रतिग्रहेपियथोचित प्रायश्चित्त–यदविज्ञानमत के ग्रन्थ में यह भी नियम कियाहै कि जिसने श्रेष्ठ प्रतिग्रह लिया हो सो भी कुछ प्रायश्चित्त करै=यथा=भिक्षामात्रेगृहीतेऽत्तिपुण्यमंत्रमुदीरयेत् प्रतिग्रहेषुसर्वेषु यथसंख्यप्रकल्पयेत=अर्थात्–जिस ब्राह्मण ने याचना करने से भिक्षामात्र का दान ग्रहण किया होय सो अति पुण्य मंत्र का उच्चारण करै अर्थात् अपने इष्टदेव का जो मुख्य मन्त्र है सो अति पुण्यमंत्र समझना अथवा जिसके कोई इष्टदेव न होय सो गायत्री का उच्चारण करै उच्चारण करना भी जैसी थोड़ी या बहुत भिक्षा ग्रहण करी होय तैसीही थोड़ी या बहुत मन्त्रों की संख्या भी नियत करै॰ परन्तु जिसने दानही की रीतिसे कुछ श्रेष्ठ प्रतिग्रह लिया होय सो उस प्रतिग्रह के द्रव्य में से छठा भाग पुण्य करै ॥ ० ॥ जबकि श्रेष्ठ प्रतिग्रह मे से भी छठा भाग देदेना ठहिरा तौफिर खोटे प्रतिग्रह का सर्व धन त्यागिदेना सिद्ध होगया और इसी का पक्षपात अगिले वचनसे भी स्पष्ट है=यदाह मनुः=यद्गर्हितेनार्जयंति कर्मणाब्राह्मणाधनम् तस्योत्सर्गेणशुद्ध्यन्तिजप्येनतपसैवचेति=अर्थात्– ब्राह्मण लोग जो निन्दित प्रतिग्रह आदि कर्म से धन सग्रह करते हैं तिसको पुण्य करदेने से ही शुद्ध होते हैं और इसके ऊपर जप तप करनेसेभी=इसीप्रकार= र= और भी स्मृतियों के वचन जो कुछ मिलैं सो सब प्रतिग्रह रूपी द्रव्य का सार और अल्पत्व महत्त्व से भी पूर्वोक्त सर्व विषयों पर युक्ति से व्यवस्थापन करलेने चाहिये इति सदसत्प्रतिगृह प्रायश्चित्त ॥

इत्यनिष्ट सग सेवनादि प्रायश्चित्तप्रकरण ॥

इस प्रकरण में छासठि सरसठि अड़सठि ये तीनि परिच्छेद हैं जिनमें सभीवार्त्ता ऐसी हैं जो खोटा सग से उन्हें आदि से सबन्ध राखती है ॥

अथ प्रासगिकीवार्त्ता ॥

विज्ञानेश्वर आचार्य एक श्लोक देकर कुछ और प्रायश्चित्तों का दर्शनाप्रारंभ

करते हैं—यथा (जात्याश्रयादिदोषेण निद्यानादेयशब्दतः योगींद्रोक्तव्रतव्रातंसांप्रत तुप्रतन्यते) अर्थात् अब योगीश्वर के कहे उन पापों के व्रतों का समूह, विस्तार करके दिखलावेंगे कि जिनको मुख से खुल्लम कहे विना २४२ दो सौ बयालिस मूल श्लोक में चकार के ध्वन्यर्थ से समस्या किये थे कि जो जो उनके हृदय के भीतर उद्गत (उभरे हुये) होरहे थे उनमे बहुधा पाप ऐसे हैं जो जाति वा आश्रय आदि दोषों से उत्पन्न होयँ अथवा नाम के शब्द ही से निंद्य और अनादेय अभक्ष्यपन समझा जाय॰ बल्कि बहुधा पाप और प्रायश्चित्तों की समस्या आचार मर्यादा परिपाटी में भी कई स्थलो पर योगीश्वर आपही प्रकाशकरचुके और मन्वादि मुनीश्वरों केभी अभिप्रायसे जो जो पापोंके लक्षण या प्रायश्चित्त गोलमोल कहिने वाकी रहि गये हैं तिन सबका व्रात समूह एकत्र संग्रह करिके आगे यथा क्रम से व्योरे वार दर्शावैंगे तब इस वार्ता का प्रयोजन खूब समझि लेना॥ यहां सर्व अभक्ष्यों का प्रकरण कहा जायगा॥ और यह भी याद रक्खो कि यद्यपि इस भक्ष्याभक्ष्य के प्रकरण में जुदे जुदे कई परिच्छेद होंगे परन्तु योगीश्वर का मूल श्लोक बिल्कुल्ल इसमें नहींहैक्योंकि यह व्यवस्था उपराल स्मृतियों के वचन लेकर संग्रह करी जायगी और यह भी ध्यान रहे कि इसमें की अनेक व्यवस्थायें जहाँ तहाँ पहिले भी वर्णन होचुकी हैं यह बात इस परिश्रम से जानी जासक्ती है कि ५९ उनसठि के परिच्छेद से लेकर यहांतक सभी परिच्छेदों को सोचि सोचि देखते चले आओ फिर इस भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण वाले परिच्छेदों को सोचि के समझो कि योगीश्वर इन बातों को बहुधा उन्हीं परिच्छेदो में कहिचुके हैं॰ परंतु यहां केवल खाने पीने के दोष पर यह सग्रह एकत्र किया जायगा॥ यह व्योरा केवल पाठकों के भ्रम दूर करने के हेतु लिखा गया॥

अथ जातिदुष्टाद्यन्न पानादीनां भक्षणदोषस्य प्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः एकोनसप्ततितमः ६९

——※——

इस परिच्छेद में उन अभक्ष्यों के खाने पीने का प्रायश्चित्तकहा जायगा जो अपनी जाति ही से खोटे जैसे पिआज लहसुन आदि अनेक चीजें और नन्दिनी गऊ

मतः भुक्त्वात्स्वभावदुष्टंचतप्तकृच्छ्रं समाचरेत्=अर्थात्–खाने पीनेका तैयार अन्न जो ससर्ग किसी ऊर्ध्वोक्त वस्तुसे छुइ जाकर दूषितहोजाय या बनाते समय क्रिया भ्रष्ट होकर दूषित हुआ होयतिसको इच्छाविना खाकर तप्तकृच्छ्र व्रत आचरै अथवा जो कोई अन्न आदि वस्तु अपने स्वभावही से दुष्ट कही जाती हो जैसी लहसुन पिआज आदि बहुतेरे नाम ऊपर लिखिचुकेहैं तिनकोही विना चाहे धोखा आदिसे अत्यन्त अभ्यास करिके खाया हो तौभी तप्त कृच्छ्र व्रत आचरै॰ अन्यथा छोटे छोटे प्राय॰श्चित्त जो ऊपर लिखिचुके तिनको एकहीबार खाइलेने आदि पर विचार करना ॥ ० ॥ परन्तु नील एकहीबार विना जाने भी खालेने में बड़ा प्रायश्चित्तहै=तदाहा-पस्तम्बः=भक्षयेद्यदिनीलींतुप्रमादाद्ब्राह्मणःक्वचित्चांद्रायणेनशुद्धिःस्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः=अर्थात्–नीली नील के वृक्षका साग आदि किसी प्रकार से यदि कहीं कोई ब्राह्मण धोखा आदिसेभी खाजाय सो महीनाभरका चांद्रायणकरनेसे पवित्र होताहै यह आपस्तम्बने कहा–परन्तु जिसने दोबारखाया तिसको दोचांद्रायण और तीनिवार वालेको तीन इत्यादि कल्पना समभि लेनी और एकहीबार जिसने इच्छा से जानि बूझि खाया होय तिसको भी दूना प्रायश्चित्त समझना ॥०॥ चौका ली-पना इत्यादि शुद्धि किये विना जो पाक बनायाजाय तिसको खा लेने परभी प्राय-श्चित्तहै=तथाचयद्विंशन्मतवचनम=शणपुष्पंशाल्मलंचकरनिर्मथितंदधि वहिर्वेदि पुरोडाशंजग्ध्वानाद्यादहर्निशम=अर्थात्–सनके फल फूल या सेमर के फल फूल या मथनिया विना हाथही से मथाहुआ दही या वेदीसे बाहर का पुरोडाश खालेवै सो दूसरेदिन आठपहरका निराहार व्रतसाधै और उस दिन भी न खाय तब शुद्धहोय= वेदी से बाहर का पुरोडाश अर्थात यहां वेदी चौकेका नाम है तिसके बाहर विना चौके बैठिके खाने और बनाने का निषेध है॰पुरोडाश यज्ञ सम्बन्धी अन्न आदिका नामहै कि जिस रसोईके अन्नसे परमेश्वरको भोगदेना अग्नि आदि देवता और अ-भ्यागतोंको जिमाना आदि रोजका कर्म होहै सोई पाकयज्ञ कहाताहै(विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि यह एक दिनराति के उपवास वाला छोटा प्रायश्चित्त भी ऐसे पुरुष पर समझना जिसने इच्छाके विना ऐसे कामोंको किया होय किन्तु जानि बूझि ऐसा करनेवाले पर प्रायश्चित्त भी दूना आदि बढाया जाय ॥ ० ॥ जहां किसीको पकड़ि के जबर्दस्ती से ऐसी चीजें खवाई हों या वैद्यने रोगीसे कहिकर खवाई हो कि इसके खाने विना यहरोग नहीं मिटिसक्ताहै=तदाह सुमन्तुः=लशुनपलांडुगृंजन कवकभक्षणे सावित्र्यष्टसहस्रेण मूर्ध्निसंपातान्नयेदिति (तद्बलात्कारेणानिच्छतो

भक्षणविषय तदेकसाध्यव्याध्युपशमार्थेवाभक्षणोद्देश्य मितिमिताक्षरा)=अर्थात्-सुमन्तुने कहाहै कि लहसुन पियाज गाजर कवक इनको खाने वाला गायत्री के आठ हजार ८ चोसे एक एक मंत्र पढ़िके जल के बूंद अपने मूह पर टपकने देवै तब शुद्ध होय (सो यह प्रायश्चित्त जबर्दस्ती खवाइ देनेमध्ये या उसके मध्ये समझना कि जिसकी बीमारी केवल वही चीज खानेसे जासके तिसने खाया हो यह मिता-क्षराकारों ने कहा) क्योंकि इसी हेतु से इस वचन के लगमा उन्हीं सुमन्तु ने यह कहाहै (एतान्येवव्याधितस्यभिषक्क्रियायामप्रतिषिद्धानिभवति यानिचैवं प्रकाराणितेष्वपिनदोषः) अर्थात ये लहसुन आदि सब चीजें वैद्य की चिकित्सा वाली क्रिया मे निषिद्ध नहींह और भी जो कोई इस प्रकार की चीजें या इस प्रकार की क्रिया विशेष होतीहो तिनमें भी दोष नहीं ॥ अब नीचे उन प्रायश्चित्तोकी व्यवस्था कही जायगी जो सधिनी आदि गायोके निषिद्ध दूध आदि जातिहीसे दूषित कहाते तिनके खाने पीनेमें करने होते हैं ॥ जातिहीसे दुष्ट वे कहाते हैं जो अपने जन्महो से खोटे ठहिरें जैसे लहसुन प्याज या नीचे सधिनी आदिके दूधोंको समझिलेना ॥

(अथ जातिदुष्ट सधिन्यादि चीरपाने प्रायश्चित्त)

इसके मध्ये मिताक्षराकारने यह व्यवस्था निर्मित करी है कि जिसने सधिनी आदि गायोंका दूध जानि बूझिके इच्छा सहित एक बार पिआ हो तिसके लिये वही तीन दिनका उपवास प्रायश्चित्तहै जो आचार मर्यादा वाले कांडमें योगीश्वर आपही १६९ एकसौ उनहत्तरि मूल श्लोक से सधिनीका दूध आदि निषिद्ध कहि कर १७४ एकसौ चौहत्तरि श्लोकमें कहिचुके और जिसने इच्छाके विना दैवयोग से एकही बार पिआ हो तिसके लिये एकहीदिन रातिका उपवास मनु की आज्ञा से विचारना अगिले वचनोसे=यथा=अनिर्दशायागोःक्षीरमौष्ट्रमैकशफतथा आवि कंसंधिनीक्षीर विवत्सायाश्चगो पयः आरण्यानांचसर्वेषां मृगाणांमहिषींविना स्त्री क्षीरंचैववर्ज्यानिसर्वशुक्तानिचैवहि दधिभक्ष्यचशुक्तेषुसर्वंचदधिसंभव मित्युक्त्वा गोये द्रूपवसेदहः इतिमनूक्तउपवासोद्रष्टव्य इतिमिताक्षरा=अर्थात्-बिआनी गाय जिस का बचा दश दिनका न होजाय तिसका सूतकी दूध तथा ऊँटनीका दूध तथा एक ही खुर वाले पशू घोड़ी गदही आदिका दूध तथा भेंडीका दूध तथा सन्धिनी अर्थात् हाल गाभिन हुई गाय भैंसका दूध तथा विना वचेवाली गाय का दुध तथा वन के सबही मृग जीवोंका दूध (केवल वन भैंसको छोड़िके) और स्त्री नारीमात्र का दूध

आदिके अनेक दूध जो अपनी जातिही से खोटे होतेहैंऔर स्वभाव दुष्ट मांस अनेक जोअपनी खासियत और जातिसे भी अनेक मांस दुष्ट होते हैं कि जिनका भक्षण मांसाहारियोंको भी निषिद्ध होता है॰ फिर इन सब के प्रसंग से औरभी बहुधा चीजों का चर्चा इसमें आवैगा ॥

(जातिदुष्टपलांडादिभक्षणप्रायश्चित्तं)

ऊपर चर्चा किये प्रसंग मेंसे यहां पहिले उन चीजों के खालेने का प्रायश्चित्त दर्शाते हैं जो पिआज आदि बहुधा चीजें अपनी जातिहीसे खोटी और म्लेच्छ जातीयों से वास्ता रखतीहैं—तहां—जिसने इच्छासहित एकहीवार उनचीजोंका भक्षण किया होय तिसका प्रायश्चित्त चांद्रायणहै योगीश्वर आपही आचार मर्यादाकांड में कहिचुके तहां (१७५ एकसौपचहत्तरिमूलश्लोक) देखो=और=जिसने इच्छा सहित खानेका अभ्यास कईवार कियाहो तिसके लिये भी योगीश्वर आपही यहां प्रायश्चित्त मर्यादा में (२२९ दोसौ उनतीस मूलश्लोकसे) इन चीजों को सुरापीने के समान कहिचुके तिनका प्रायश्चित्त ३१ इकतिस परिच्छेदमें सुरापानवाले प्रायश्चित्तों के समान ढूंढिकर देखो=परन्तु=जिसने इन्हीं पिआज आदि चीजों को इच्छाके विना धोखा आदिसे एकहीवार खायाहो तिसको सांतपन प्रायश्चित्त है सो भी अगिले वचनोंमें आवैगा=और=जिसने इच्छा विना कईवार खाया हो तिसके लिये (यतिचांद्रायण) इसनामका प्रायश्चित्त चाहिये जैसा अगिले वचन में कहाहै देखो=यदाहमनुः (अमत्यैतानियड्जग्ध्वाकृच्छ्रंसांतपनंचरेत् यतिचांद्रायणं वापिशेषेषूपवसेदहः) अर्थात्–ये पूर्वोक्त नामोंकी छेचीजें विना जाने खाइके कृच्छ्र सांतपन करै या यदि कईवार खाया हो तो यति चांद्रायण करै वाको जिन चीजों के नाम सहित कोई प्रायश्चित्त न कहा गया हो तिनको खाइलेने से एकही दिन उपवास करै ॥०॥ इन चीजोंके सिवाय विरले फल शाक आदि भी निषिद्ध हैं तिन का प्रायश्चित्त दृहद्यमने और मध्यम यमनेभी कहाहै=यथाह दृहद्यमः=खट्वावार्ता कुकुम्भीकव्रश्चनप्रभवाणिच भूतृणंशिग्रुकंचैवसुकंदंकवकानिच एतेषांभक्षणंकृत्वा प्राजापत्यंचरेद्द्विजः (इतितत्कामतःपूर्वाभ्यासविषयं– (मत्स्यांश्चकामतोजग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहंक्षिपेदितियोगीश्वरेणाकामतः सकृद्भक्षणोत्र्यहस्योक्तत्वात्) एवंयमो प्याह=तंडुलीयकुकुम्भीकव्रश्चनप्रभवांस्तथा नालिकांनालिकेरींचश्लेष्मातकफलानिच भूतृणंशिग्रुकंचैवखट्वाख्यंकवचंतथा एतेषांभक्षणंकृत्वाप्राजापत्यंव्रतंचरेत्

(इति तदपिमतिपूर्वाभ्यासविषयं=अर्थात्–खट्वा नाम कोलशिवी नामसे एक फली होतीहै जिसका आकार सुअरके पंजातुल्य होताहै•वार्ताक बैंगन•कुम्भी साग इसी नामसे विख्यात है जलके ऊपर पत्ते उसके फैलतेहैं इसीसे वारिपर्णी जलपाना भी कहातीहै•अश्चन प्रभव फलादिक वे कहातेहैं जो पैंवदी पैवन्दी वृक्षोंसे उत्पन्नहोयँ जिनकी कलम तरासिके दूसरे वृक्षमे जमाई जातीहै•भूतृण नामसे वे शाक समझने जो प्रायःधरतीपर फैलेहुये लोनियां आदि होतेहों (किन्तु रोहिष तृणको यहाँ मत समझना जो सुगन्धवाली घास होतीहै) •शिग्रु लालसहिँजना•सुकंदनाम पिआज• कवक नाम धीरती के फूलछत्राक•इतनों में किसीको खाइके द्विजाती पुरुषप्राजापत्य करे–सो यह प्रायश्चित्त उसके लियेहै कि जिसने इन चीजों के निषेध जानते हुये इच्छा सहित बहुत काल पहिले खानेका अभ्यास रक्खाहो क्योंकि (योगीश्वर ने आचार कांड में १७० एकसौ सत्तरि मूल श्लोकसे इच्छा सहित एकवार ऐसी चीजें खानेपर तीनदिनका उपवास कहाहै) तिससे यहाँ वृद्ध यमका कहा प्राजापत्य बारह दिनवाला बहुत कालसे खाते रहिनेके अभ्यासहीपर ठीकहै=इसीप्रकार मध्यम यमने जो यह कहाहै कि=चौराई और कुम्भीसाग और अश्चन प्रभव पैंवदी बेर आदि अनेक और नारी तथा नालिकेरी दोनो साग और लहसोरे और भूतृण जैसा ऊपले वचन में कहिचुके और लालसहिँजना और खट्वाख्य नाम कोलशिवी की फली और कवक छत्राक धरती के फूल इतनों में किसी एकहीका भक्षण करै सो प्राजापत्य व्रत आचरै–सो इस वचनकी व्यवस्था भी उसके लिये समझना जिसने जानि बूझिके इच्छा सहित बहुत कालसे खानेका अभ्यास किया हो=मिताक्षराकार कहिते हैं कि इन्हीं दोनो वचन मे लिखी चीजों की इच्छा बिना एकही बार धोखासे जिसने खाया हो तिसके लिये एकदिन का व्रत करना प्रायश्चित्त है (शेषेषूपवसेदहः) यह मनुका वचन कई स्थलपर आचुकाहै तिसके अनुसार यही चाहिये अधिक नहीं परन्तु जो कोई बिना जाने धोखा से दोतीनवार खाचुका हो तिसको उसी संख्यासे व्रत करने चाहिये और जिसने बिना जानेही अत्यन्त अभ्यास इनके खानेका किया हो तिसके लिये अगिले प्रचेता के वचनसे तप्त कृच्छ्रव्रत करवाना चाहिये क्योंकि उस वचन में स्वभावदुष्ट चीजों के खालेनेका चर्चा आवैगा वे स्वभावदुष्ट येही चीज हैं जो ऊपर के दो वचनमें जुदे जुदे नामों से कहिचुके ॥०॥ अन्नादि भोजनकी वस्तु जो किसी अशुद्धकी छुआछाईआदि कारणोंसे बिगड़ जाय तिसके खाइ लेनेका प्रायश्चित्त=यथाह प्रचेताः=स्वर्गदुष्टंयच्चान्नंक्रियादुष्टमका•

ये सब दूध पीने वर्जित हैं और सब तरहके शुक्त कांजी सिरका आदि भी वर्जितहैं जो पानी सहित चीजें सूर्यके आतापमें धरने आदि प्रकारों से खट्टा जल होता है• परन्तु दही और दहीका तोड़ आदि भी शुक्तों में गिनती है सो वर्जित नहीं है इसी लिये कहितेहैं सर्व शुक्तोंमें केवल दही खानेके योग्यहै और दहीसे जो कुछ बनाया उत्पन्न हुआहो सोभी खानेके योग्य है यह सब कहिकर मनुने पीछे से यह कहा है कि ऐसी और भी चीजें जिनके नाम लिखने बाकी रहिगये तिनके और इनके भी खाइ लेने में एक दिन रातिका उपवास करे ॥ ० ॥ इनके सिवाय पैठीनसिका जो वचन है और शंखका जो वचनहै उनदोनोंकी व्यवस्था ऐसे पुरुषपर आरूढ़ करना कि जिसने जानि बूझि कर इच्छा सहित बहुत काल तक पीने का अभ्यास किया हो=यदाह पैठीनसिः=अविखरोष्ट्रमानुषीक्षीर प्राशनेतप्तकृच्छ्रः पुनरुपनयनंच अनिर्दशाहगोमहिषी,क्षीरप्राशनेषड्रात्रमभोजनं सर्वासांद्विस्तनीनांक्षीरपानेष्यजावर्जमेत देव=शंखोपि=क्षीराणियान्यभक्ष्याणितद्विकाराशनेबुधः सप्तरात्रंव्रतंकुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः (इतियावक व्रतमुक्तं तदुभयमपिकामतोऽभ्यासविषयमिति मिताक्षरा= अर्थात्–भेड़ गदही ऊँटिनी नारी इनके दूध पीलेनेमें तप्तकृच्छ्रव्रत करिके फिर यज्ञोपवीत कर्मसे उपनयन भी कराना चाहिये और दश दिन के भीतर की बिआनी गाय भैसोंका दूध खाइलेनेमें, छै दिन तक निराहार व्रत करे और बकरी को छोड़ि कर बाकी,सब दो,थन,वालोंका दूध पीलेनेमे भी यही छै दिन का उपवास करे यह पैठीनसिने कहा=शंखने भी ऐसा कहाहै कि=जे कोई दूध अभक्ष्य कहाते हैं तिनको पीलेने या उनकी बनी कोई चीज खाइ लेनेमें सातदिन व्रतकरे (यह यावक भोजन करिके,सात दिनका व्रत शंखने कहा• सो यह दोनों ऋषीश्वरों की व्यवस्था उनके लिये समझना जिन्होने इच्छा सहित ऐसे दूधके पीनेका अभ्यास अनेकबार किया हो;यह मिताक्षराकारने कहा ॥ ० ॥ विष्ठाखानी,और दो बचा देनेवाली आदि कई प्रकारकी गायोंके और भी कुछ दूध पीने निषिद्ध हैं=तदप्याह शंखः=सन्धिन्यमेध्यभक्षायाभुक्त्वापक्षव्रतचरेदिति तदभ्यासविषय=सकृत्पानेतुविष्णुराह=गोअजमहिषीवर्जंसर्वाणिपयांसिप्राश्य उपवसेत अनिर्दशाहेतान्यपि सन्धिनीयमसूश्यन्दिनीविवत्सा क्षीरचामेध्यभुजश्च=अर्थात्–संधिनी जो गाभिन होजाय•अमेध्यभक्षा जो विष्ठाआदि खातीहो इनके दूध खाइके पखवारेका व्रतकरै• यह पन्द्रह दिन का व्रत उसी को समझना जिसने बारम्बार ऐसा,दूध पीनेका अभ्यास कियाहो=क्योंकि एकबार पी लेने मध्ये विष्णुने,एकही दिन उपवास बतायाहै कि=गाय बकरी भैंस इनको छोडि

इनसे उपरान्त सब जीवोंके दूध खाय पीकर एक उपवास करे और गाय बकरी भैंस इनके भी दशदिनका बचा न होनेके भीतर दूध पीकर यही उपवास करे और गार्भिन तथा दो बचा वित्राने वाली तथा बिन बचेवाली तथा बचा होतेहुये भी जो गर्भ लेनेकी इच्छासे स्पन्द रूपी चिह्न प्रकट करती हो तथा जो विष्ठा आदि अपवित्र चीजें खातीहो इनके भी दूध पीकर यही उपवास करे॥ ०॥कपिला गाय जो सुवर्ण के समान वर्णवाली खुर सींगों सहित कहातीहै उसका दूध ब्राह्मणके सिवाय अन्य वर्णोंको पीने में निषेध है जैसा यह अग्रोक्त वचन है कि (क्षत्रियश्चापिवैश्यस्तथोवै पयःशूद्रोऽथवापुनः यःपिबेत्कपिलाक्षीरं नततोऽन्योस्त्यपुण्यकृत) अर्थात्-सत्कर्म करने वाला क्षत्री और वैश्य अथवा शूद्रही जो कपिला गायका दूध पीवै तो उससे अधिक अपुण्यकर्ता कोई नहींहै-यद्यपि इसमें प्रायश्चित्त कुछ नहीं दर्शाया गया तथापि अपुण्य कहिकर दोष दर्शाया गया तिससे प्रायश्चित्त भी सूचित हुआ कि ब्राह्मणके सिवाय जिसने एकबार कपिलाका दूध पियाहो सो मनुके वचनसे एक दिन का उपवास करे-इसी प्रकार-और भी जो जो बातें ऐसी देखि परें कि जिनके नामसे कुछ प्रायश्चित्त नहीं कहा परन्तु उनके खाने पीनेका दोष प्रकट कियाहो तिनके खाने पीनेपर यही एक दिन का उपवास प्रायश्चित्त समझना (शेषेषूपवसेदहः) यही मनुका वचन है॥ अब नीचे उन चीजों के खालेने का प्रायश्चित्त कहा जायगा जो अपने स्वभावसे दुष्ट कहाती हों॥ इतिजातिदुष्टभक्षणपानप्रायश्चित्तानि

(अथस्वभावदुष्टमांसादिप्रायश्चित्तं)

जो जो मांस आदि अपने स्वभावहीसे दुष्ट कहाते हों तिनको इच्छा बिना धोखा आदिसे एकही बार जिसने खाइ लिया हो तिसको भी ऊपर चर्चा किया एकही दिनका उपवास रूपी साधारण प्रायश्चित्त मनुके वचन से कर्तव्य है-परन्तु-जिसने जानि बूझि इच्छा सहित एकबार भक्षण कियाहो तिसके लिये आचार मर्यादा कांड में १७१ एकसौ इकहत्तरि मूलश्लोक से लेकर १७४ एकसौ चौहत्तरि में योगीश्वर आपही जो लिखिचुके हैं (सोपवासस्त्र्यहंक्षिपेत्) कि तीन दिन निराहार उपवास करिके काटै० तहां देखो= और= जिसने इच्छा सहित अनेक बार खाया हो तिसके लिये (जग्ध्वामांसमभक्ष्यंतुसप्तरात्रंपयःपिबेदितिमनूक्तद्रष्टव्यं) यह मनुका कहा प्रायश्चित्त विचारना कि अभक्ष्यमांस को खाइके सातरात्रिभर दूध पीके व्रत करै-परन्तु यह प्रायश्चित्त उसके लिये नहीं है जिसने ग्राम सुअर

आदिका अतिमलीनमांस खायाहो किन्तु उसकेलिये मनुने दूसरे वचनसे तप्तकृच्छ्र करना कहाहै=यथा=क्रव्यादिस्सूकरोष्ट्राणांकुक्कुटानांचभक्षणे नरकाकखराणांनां तप्तकृच्छ्रंविशोधनं (इति मनुना जाति विशेषेण प्रायश्चित्त विशेषस्योक्तत्वात= अर्थात्–मनुने अतिमलीन मांसों के नाम से यह जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि–मांस भक्षी क्रव्याद प्रकृतिवाले अनेक पक्षी गिद्ध आदि होते हैं तिनका मांस यदि कोई मांसाहारी पुरुष भी खालेवै या विष्टाखानेवाले वसती में रहिनेवाले सुअरकामांस या ऊँटका मांस या मुर्गा आदि मलीन पक्षियों के मांस खालेवै या मनुष्यका मांस या कौआकी जातिवाले पक्षियोंकामांस खाइलेवै या गदहा आदि मलीन पशुओं का मांस खाइलेवै तिसके लिये तप्तकृच्छ्रव्रत कराना प्रायश्चित्त है=इन्हीं उक्तजीवोंके गूह मूत भक्षण करजाने में भी यही प्रायश्चित्त चाहिये जो इनके मांस पर कहिचुके यहबात अगिले वचन से देखो=यदाहत्हस्यः=दंराहैकशफानांकुक्कुटकाक योस्तथा क्रव्यादानांचसर्वेषामभक्ष्याये चकीर्त्तिताः मांसमूत्रपुरीषाणिप्राश्यगो मांसमेवच श्व गोमायुकपीनांचतप्तकृच्छ्रंविधीयते । उपोष्यवाद्वादशाहकूष्मांडैर्जुहुयाद्घृतम=अर्थात्–सुअर और (एकशफ) एकही खुरवाले घोड़ा गर्दभ आदि और काक तथा मुरगा और क्रव्याद जो मांस के खवैया बहुधा पक्षी तथा चौपाये भी होतेहैं और भी जेकोई जीव अभक्ष्य लिखे गयेहैं आचार मर्यादामें भी नाम उनके देखो तिन सबके मांस या गूह मूत खाइके या गोमांस को खाइके या कुत्ता गीदड़ बन्दर इनके भी मांस या गूह मूत खाइके तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त किया जाताहै अथवा बारहदिन उपवास करिके कूष्मांड मन्त्रों से घीका होम करै (इसमें छोटे बड़े दो प्रायश्चित्त विकल्प से कहे गये तिनके परस्पर यह व्यवस्था समझि लेनी कि जिसने इच्छा सहित एकहीबार भक्षण किया तिसको तप्तकृच्छ्र कराना और जिसने कईवारका अभ्यास किया तिसको बारह दिनका पराकव्रत कराइके कूष्मांड मन्त्रोंसे घीका होम कराना चाहिये ॥ ० ॥ इसी व्यवस्था के समान प्रचेताने प्रायश्चित्त कहाहै=यथा=श्वशृगालकाककुक्कुटपारावतवानरचित्रकचाषक्रव्यादखरोष्ट्रगजवाजिविड्वराहगोमानुषमांसभक्षणेतप्तकृच्छ्रमादिशेत सर्वामूत्रपुरीषभक्षणेत्वतिकृच्छ्र (इच्छाकामकारविषय=अर्थात्–कुत्ता•सियार• कौआ•मुर्ग•पारेवत बनका एकपशु• बन्दर• चीता•चाष पक्षी जो नीलकंठ कहाता है•क्रव्याद जो मांसके खवैया पक्षी आदि होतेहैं•गदहा•ऊँट•हाथी•घोड़ा• ग्रामवासी सुअर• गाय•आदमी•इनके मांस खाने में तप्तकृच्छ्र करायाजाय• इनके मूत गूह खाइ लेनेमें अतिकृच्छ्र करायाजाय

(यह प्रायश्चित्त कामनासे भक्षण करने पर समझना=और अंगिरावचन कामना विना धोखाआदि से भक्षण करजाने मध्ये समझना=यदाहोशनाः= नरमांसश्चमांसं चगोमांसंचाश्वमेवच भुक्त्वापचनखानांचमहासांतपनंचरेत्=अर्थात्–मनुष्य का मांस और कुत्ता और गाय और घोड़े और पांच नखवालोंके मांस भक्षणकरिके महासान्तपन व्रत आचरै ॥०॥ अंगिरा मुनिकी कही व्यवस्था में कुछ थोड़ासा भेदहै=यथा हांगिराः=बलाकाभासगृध्राखुखरवानरसूकराः दृष्ट्वचैषाममेध्यानिस्पृष्ट्वाचापोविशोधनम् इच्छयैषाममेध्यानिभक्षयित्वाद्विजातयः कुर्युःसांतपनंकृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया (एतद्भक्षितोद्गारितविषय॰ सांतपनशब्देनचात्रमहासांतपनमुच्यते अकामतःप्राजापत्यविधानादितिमिताक्षरा=अर्थात्–बलाका॰ भास॰ गीध॰मूसा॰ गदहा॰ बांदर॰ सुअर॰इनके गूह मूत मांस वसा चरबी आदि अपवित्र चीजें आंखोंसे देखि अथवा अंग से छुइकर जलसे स्नानआदि करडारना प्रायश्चित्त है परन्तु इन्हीं चीजोंको इच्छा सहित खाइके द्विजाती लोग सांतपनकृच्छ्रप्रायश्चित्त करें और इच्छाविना खाइके प्राजापत्य करें(मिताक्षराकार कहितेहैं कि इसमें जो इच्छाविना पर प्राजापत्य कहा तिससे सांतपन शब्दका अर्थ महा सांतपन समझना और यह प्रायश्चित्त भी उसके लिये समझना जिसने खाइके उद्गार डकारभी करीहो इसके कईअर्थ होतेहैं डकारिके पचाइजानाया बहुत खाइलेनेसे डकारका आना या डकारिके मुहसे उलटी के द्वारा उसीवस्तुका निकसनाआदि बुद्धिमान आपही समझिलें ॥०॥ उन्हीं अंगिराका दूसरावचन यहभीहै कि=नरकाकखराश्वानांजग्ध्वामांसंगजस्यच एषांमूत्रंपुरीषंवा द्विजश्चांद्रायणंचरेत्=अर्थात्–मनुष्य कौआ गदहा घोड़ा हाथी इनके मांस मूत गूह द्विजाती खाइके चांद्रायण करें=ऐसाही बृहद् यमका वचन है कि=शुष्कमांसाशने विप्रोव्रतंचांद्रायणंचरेत्=ब्राह्मण सूखामांस खाइलेनेमें चांद्रायणकरै(ये दोनोंवचन काकहा चांद्रायणभी उसकेलिये समझना कि जिसने कामनासे कईवार खाया हो= एक और इन सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है सो देखो=यदाहशंखः=भुक्त्वाचोभयतोदंतांस्तथाचैकशफानपि औष्ट्रं गव्यंतथाजग्ध्वाषड्मासान्व्रतमाचरेदिति (तत्कामतोऽत्यंताभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्–उभय तो दन्त जिन पशुओं के नीचे ऊपर दोहरे दांत होतेहों तिनका मांस या जिनके एकही खुर गोलहोता होय तिनकेमांस और ऊँट वा गाय बैल का मांस खाइ के छमाही भर व्रत आचरै (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह बड़ा प्रायश्चित्त उसपर आरूढ किया जा सक्ता है जिसने बहुत काल तक अत्यन्त अभ्यास किया हो=इससे भी बड़ा एक प्रायश्चित्तहै–तदुक्तस्मृ-

त्यन्तरे=नरश्वामांसंनराणांचविड्वराहंखरन्तथा । गवाश्वकुंजरोष्ट्राणांसर्वपांचनखं-तथा क्रव्यादंकुक्कुटंग्रास्यंकुर्यात्संवत्सरंव्रत ।(मितितदत्यंतानवच्छिन्नाभ्यासविषय मितिमिताक्षरा=अर्थात्–मनुष्योंका मांसखाय विष्टा खानेवाले सुअरका या गर्दभ का या गायका या घोड़े का हाथीका ऊँटका या सभी उनजीवोंका जो पांच नख-वाले पंजेदार होतेहैं या क्रव्यादोंका मांस खाय जो आपही मांस भक्षी जीव होतेहैं या मुर्गे और वस्तीके रहैया भी अनेक भांति के होतेहैं तिनका मांस खाय सो एक पूरे वर्षभर व्रत साधे (यह सालभरेका प्रायश्चित्त उसके लिये बताना जिसने बहुत कालसे निरन्तर अत्यन्त अभ्यास करिके खाया हो) इस प्रकरण में जहां जहां मूत गूह कहा गया हो सो उन जीवोंकी वसा चरबी वीर्य रक्त मज्जा आदि सब चीजोंका निषेध प्रकट करनेवाला उपलक्षण है इनचीजोंको खाजाने पर भी यही प्रायश्चित्त चाहिये=परन्तु=कानका मैल आदि छे भांति के मल होतेहैं तिनको भक्षण करने में आधा प्रायश्चित्त कल्पित करिलेना चाहिये ॥०॥ वाल आदि खाइलेने सभ्ये यह विज्ञन्मत ग्रन्थमें जुदाप्रायश्चित्त कहागयाहै=यथा=अजाविमहिषमृगाणांमसां-सभक्षणेकेशनखरुधिरप्राशनेबुद्धिपूर्वेत्रिरात्रमज्ञानादुपवासः=अर्थात्–बकरी भेड़ भैंस और वनके मृगजीव इनका कचा मांस खाइलेने या वार नख रक्त खाइलेने में जा-नते हुये तीनदिनका प्रायश्चित्त है विना जाने खाइजानेपर एकही दिनका उपवास करै=इसी बात पर प्रचेता का यह वचन है कि=नखकेशमूत्रलोयभक्षणेऽहोरात्रम भोजनाच्छुद्धि ।(रितितदप्यकामतःसकृत्प्राशनविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्–नख वार मट्टीका डेल इनको भक्षण करिजाने में एक दिन रातिभर व्रत करने से शुद्धि मानी जातीहै (सो यह एकदिनका व्रत एकहीवार विना जाने भक्षण करजाने सभ्ये समझना=इनके सिवाय=जो स्मृत्यंतर यह वचन है कि=केशकीटनखंप्राश्यमत्स्य कंटकमेवच हेमतप्तंघृतंपीत्वातत्क्षणादेवशुद्ध्यतीति (तन्मुखमात्रप्रवेशविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्–किसी के वाल या वारीक कीरे मक्खी आदि या नख आदि कोई मैल या मछरी का कांटाही भक्षण करिजाय सो तत्कालही सोने सहित घी को ऐसा गरमकरे जो सोनेके रंग सरीखा तपिजाय तिसको पीकर शुद्ध होजाताहै व्रतकी जरूरत नहीं रही(यह प्रायश्चित्त उसकेलिये समझना जिसने मुखमें प्रवेश होतेसार वाल या मक्खी आदिको उगल दिया हो किन्तु भीतर नहीं जाने दिया= कदाचित्=भोजन करते समय परोसीहुई थालीपर मक्खी बैठिके जीवती उड़िजाय यद्वा वाल घास फूस आदि ऐसाथोड़ासा गिरपरै जोदेखके निकासिडारा जासकेऐसे

अन्नके दूषित होजानेमध्ये प्रचेताकावचनहै=यथा=अन्नभोजनकालेतुमक्षिकाकेश दूषितम् अनंतरस्पृशेदापस्तश्चान्नभस्मनास्पृशे(दितिप्रासंगिकोऽयश्लोक =अर्थात्– भोजन के समयपर जो अन्न मक्खी या बालआदिसे दूषित होजाय तिसको अनन्तर तत्कालही(अमृतभव)इत्यादिपवित्रमंत्रोसे पढेहुए जलसेछींटे देकरचूल्हेकोशुद्धराखले करउसके चारोतर्फ छिरकावे तिससे शुद्धहोजाताहै(यह प्रसंग से श्लोक यहां लिखा गया किन्तु इसकी चर्चाका ठिकाना यहां नहींथा आगे कहीं आवेगा=कृमि कीट आदि जो अति सूक्ष्मतर कीरे भक्षणाकरैं तिसके मध्ये हारीतने जुदी व्यवस्था कही है=यथा=कृमिकीटपिपीलिकाजलौकःपतगास्यप्राशने गोमूत्रगोमयाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यतीति=अर्थात्–कृमि कीट या चेंटी या जलमें जो कीरेहोयँ या किसी उड़ने पतग टीड़ी चिड़िया आदिके पांख हाड़ खाइ लेवे सो तीनदिन राति में गोमूत्र और गोबर के आहार से व्रतकरिके शुद्ध होताहै॥ इस लिखे हुये कुल्ल डौलमें संक्षेपही से थोड़े पशुओंके नाम थोड़े उड़ने वालोंके नाम थोड़े जल जीवो के नाम लेकर बुरे मांस आदि पर प्रायश्चित्त कहे गये•संसारमे जीवोके अनन्त भेदहैं उन सभीके जुदे स्वरूप कहिकर नहीं लिखेजाते ग्रन्थ बहुतबड़ाहोकर पढना भी दुर्घट होजाय• तिससे इसथोड़ेही नमूनासे सबजीवोकी व्यवस्था अपनी बुद्धियोंसे विचारतेरहिना॥

अथोच्छिष्टाद्यशुचिप्राणिसंस्पृष्टस्याशुचिद्रव्यसंस्पृष्टस्यान्नपानादेर्भक्षणेच प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदःसप्ततितमः ७०

—※—

इस परिच्छेद मे अशुद्ध प्राणी और अशुद्ध चीजो से छुये भिड़े बिगड़े अन्न पान खानेपीनेके प्रायश्चित्त कहे जायँगे–तहां प्रथम किसीका जूठाखाना या जूठा पानी पीना आदिके प्रायश्चित्त हैं-तिसके अनन्तर अशुचिद्रव्यो से छुये बिगड़े का चर्चा है तहां पहिले मक्खी बाल आदि अन्नमें गिर परने या विष्ठा मांस आदिसे छुइजाने वा चंडाल रजस्वला आदि कुत्ता काग आदिसे छुइजाने के प्रायश्चित्त या जुदी पंक्ति में खाने आदि के फिर मुर्दा गिरि के सड़े गले कूप तलैया आदि का पानी न्हाने पीने के प्रायश्चित्त हैं॥

(परोच्छिष्टान्न भोजन प्रायश्चित्तं)

अत्रोच्छिष्टभक्षणे मनुराह=विडालकाकाखूच्छिष्टंजग्ध्वाश्वनकुलस्यच केशकीटा वपन्नचपिवेद्ब्राह्मीसुवर्चलाम (अत्रकालविशेषानुपादानादेकरात्रं॰ इदमकामतोद्रष्टव्यमितिमिताक्षरा=अर्थात्–बिल्ली॰ कौआ॰ मूसा॰ कुत्ता॰ नेउरा॰ इनकी जूठी कोई वस्तु और वह वस्तु कि जिसमें बार या कीरे आदि परेहों खाइ के ब्राह्मी सुवर्चला नाम औषधीका काढ़ा पीवे तब शुद्ध होय (इसमें यह नियम नहीं कहा कितने दिन पीवे तिससे एकही दिनका पीना समझा गया॰ यह प्रायश्चित्त उसीपर आरूढ़होगा जिसने विना जाने भक्षण कियाहो=और=जिसने जानि बूझिकामनासे भक्षण किया तिसके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त है=यदाह विष्णुः=पक्षिजग्धपदजग्धस्यरसस्यान्नस्य भूयसः संस्काररहितस्यापिभोजनेकृच्छ्रपादकम (इतितत्कामकारविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्–पक्षी वा कुत्ते आदिके बार बार जुठारे रस या अन्नको शुद्धि रूपी संस्कार करने विना खाइलेनेमें कृच्छ्रका चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये जो तीन दिनमें होगा (इसमें जो अन्नकी शुद्धिरूप संस्कार न होना दोष कहा गया तिसके होनेका प्रकार देखो आचार मर्य्यादा वाले काण्डमें १८८ एकसौ अट्ठासी मूल श्लोकसे) किन्तु(संस्कारश्चदेवद्रोणाग्यामित्यादिनां द्रव्यशुद्धिप्रकरणोक्तोद्रष्टव्यइति मिताक्षरा)=जिसने विना इच्छाके धोखा आदिसे बारम्बार ऐसा दूषित अन्नखाने का अभ्यास किया हो तिसके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त देखना=यदाह शातातपः= श्वकाकाद्यवलीढशूद्रोच्छिष्टभोजनेत्वतिकृच्छ्र (मितितदकामतोऽभ्यासविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्–कुत्ता कौआ आदि जीवोंकी चाटी जुठारी वस्तु या शूद्रकी जूठी होय तिसको भोजन करनेवाला अतिकृच्छ्र करे=इच्छा सहित बारम्बारके अभ्यास पर इससे भी बड़ा प्रायश्चित्त आगे देखो=यदाह शङ्खः=शुनामुच्छिष्टमेकभुक्त्वामासमेकंव्रतीभवेत् काकोच्छिष्टंगवाऽऽघ्रातंभुक्त्वापक्षव्रतीभवेत् (इतियावकव्रतमुक्तंतत्कामतोऽभ्यासविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्–कुत्तों का जूठा खाइ के एक महीना भर गोमूत्रका रँधा जौका भात खातेहुये व्रतकरै और कौवेका जूठा तथा गायका सूंघा चाटा अन्न खाइके एकपाख भर जौका यावक भोजन करते हुये व्रत करै तब शुद्ध होय॥ ०॥ ब्राह्मणका जूठा ब्राह्मण खाय तिसका भी प्रायश्चित्त बृहत विष्णु ने कहाहै=यथा=ब्राह्मणःशूद्रोच्छिष्टाशने सप्तरात्रंपञ्चगव्यंपिवेत् वैश्योच्छिष्टाशनेपञ्च रात्रं राजन्योच्छिष्टाशनेत्रिरात्रं ब्राह्मणोच्छिष्टाशनेत्वेकाह मिति (तत्कामकार

विषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्–ब्राह्मण जो शूद्र का जूठा कुछ खाय तो वह सात दिन पंचगव्य पीकर व्रतकरै जो वैश्यका जूठा कुछ खाय सो पांचदिन पंचगव्य पीके रहै जो क्षत्रीका जूठा कुछ खाय सो तीनदिन पंचगव्य पीवै जो ब्राह्मण का जूठा कुछ खाय सो एकदिन पंचगव्य पीवै (ये प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना जिसने इच्छा सहित इनका जूठा खायाहो=और=जिसने इच्छा सहित अनेकवार का अभ्यास कियाहो तिसके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त विचारना=यदाह मनुः=भुक्त्वासहब्राह्मणेनप्राजापत्येनशुद्ध्यति भुञ्जानःसहभुक्त्वान्नंतप्तकृच्छ्रेणशुद्ध्यति वैश्येनसहभुक्त्वान्नमतिकृच्छ्रेणशुद्ध्यति शूद्रेणसहभुक्त्वान्नं चान्द्रायणमथाचरेत्=अर्थात्–ब्राह्मण किसी ब्राह्मणकेसाथ एक थालीमें भोजन करिके प्राजापत्यसे विशुद्ध होताहै क्षत्री के साथमें कुछ खाइके तप्तकृच्छ्रसे पवित्र होताहै वैश्यके साथमें कुछ खाकर अतिकृच्छ्रसे पवित्र होताहै शूद्रके साथमें कुछ खाइके चान्द्रायण एक मास भर आचरै तब शुद्धहोय (येसवइच्छासे चाहिकर वारम्वार खाइलेनेमध्ये प्रायश्चित्तहैं=परंतु= जिसने इच्छा के विना एक वारही खायाहो तिसके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त हैं= यदाहशंखः=ब्राह्मणोच्छिष्टाशनेमहाव्याहृतिभिरभिमंत्र्यापः पिबेत्क्षत्रियोच्छिष्टाशनेब्राह्मीरसविपक्वेनव्यहंक्षीरेणावर्त्तयेत् विशोच्छिष्टाशनेत्रिरात्रोपोषितोब्राह्मीसुवर्चलांपिबेत् शूद्रोच्छिष्टभोजनेषड्रात्रमभोजनं(इतितदकामविषयं=अर्थात्–ब्राह्मण ब्राह्मणका जूठा खाइकर महाव्याहृतियों से जलको पढ़िकर पीलेनेसेही शुद्धहोजाता है क्षत्रीका जूठा खाइलेनेमे ब्राह्मी औषधीका रस मिलाइकर पकाये दूधको पीकर तीन दिन व्रत करै वैश्यका जूठा खाइलेने में तीन रात्रि व्रत करिके ब्राह्मी सुवर्चला औषधीका काढा पीवै शूद्रका जूठा खाइलेनेमे छे दिनतक निराहार व्रतकरै=और जिसने इच्छाकेविनाकईवारजूठाखायाहो तिसकेलियेइन्हीं प्रायश्चित्तोंकोदूना तिगुना आदि बढ़ाकर करवाना॥०॥अपवादविशेषः–जूठाखाना जो निषेधकियागया सोभी पिता आदिसे उपराल में समझना क्योंकि (पितुर्ज्येष्ठस्यचभ्रातुरुच्छिष्टंभोज्यमित्यापस्तम्बः) आपस्तंबका वचन है कि पिता और जेठे भाईका जूठा खानेमें दोष नहीं=और जो=वृहद्व्यासका यह वचन है कि=मातावाभगिनीवापिभार्यावाऽन्याश्चयोषितः नताभिःसहभोक्तव्यंभुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् (तत्सहभोजनविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्–माता बहिन भार्या या और कोई स्त्रियां जो रिश्तेमें होती हों तिन में किसीके भी साथ मिलिके न भोजन करै कदाचित् करि बैठा हो तिसको चांद्रायण करना चाहिये (इसके ऊपर मिताक्षरा की यह पंक्ति जो धरी गई कि यह

निषेध एकसाथ किन्तु एक वासनमें मिलिके खानेका किया सो यह कथन यद्यपि दीकहै) परन्तु इसका ध्वन्यर्थ ऐसा मत समझि लेना कि स्त्रियोंका जूठा लेकर जुदा बैठिके खानेसे कुछ दोष न होगा इसपर बहुत बड़ा शास्त्रार्थ खड़ा होता है जिसका लिखना यहां जरूरी और स्वीकार नहींहै॰ यद्यपि एक माता केवल स्वकीय जननी का जूठा खानेमें कुछ दोष नहीं प्रतीत होता है तथापि उसमें यह निबंध है कि जब तक यज्ञोपवीत रूपी संस्कार न हुआ हो तभी तक दोष नहीं तिससे आगे उसमें भी दोषहै=क्योंकि=सर्व सामान्य स्त्रीमात्रका जूठा या साथ मिलि खाने मध्ये आपस्तंब ने प्रायश्चित्त भी दर्शाया है=यथा=शूद्रोच्छिष्टभोजनेसप्तरात्रम भोजनंस्त्रीणांचेति= अर्थात्–शूद्र और स्त्रीमात्र का जूठा खाइ लेनेमें सातदिन का उपवास करें=इसके उ- परान्त=एक अंगिराका यह वचनहै कि=ब्राह्मण्यासहयोऽश्नीयादुच्छिष्टंवाकदाचन नवदोषंनमन्यन्ते सर्वएवमनीषिणः इति (तद्विवाहविषयमापद्विषयंवेतिमिताक्षरा= अर्थात्–जो कोई ब्राह्मण अपनी विवाहिता ब्राह्मणीके साथ वैदि कभी कुछखाय तौ इसमें दोष नहींहै सबही मनीषी पुरुष ऐसा मानतेहैं (सो यह केवल विवाहकाल का चर्चा है कि उसमें लहकौरि आदि खवाई जाती प्रसिद्ध है अथवा कभी आप- त्कालमें साथ खाना परै तिसका भी यह चर्चा जानो ऐसा मिताक्षराकार ने कहा) ब्राह्मणी कहिनेसे यह तात्पर्य ठहिरा कि जिसने अपनेसे नीचे वर्णकी कन्या साथ विवाह किया हो तिसको विवाहके समयभी भार्याके साथ न खाना चाहिये किंतु खाइ लेनेसे प्रायश्चित्त करना होगा॥ ०॥ अन्त्यजात्युच्छिष्टभोजनेतु–अंत्य जाती लोगों का जूठा खाइ लेनेमध्ये बड़े प्रायश्चित्त हैं=यदाह आपस्तम्बः=अन्त्यानां भुक्तशेषन्तु भक्षयित्वाद्विजातयः चांद्रंकृच्छ्रन्तदर्धंचब्रह्मक्षत्रविशांविधिः (अत्रचान्द्रं चांद्रायणं=अर्थात्–अन्त्य जातें जो चण्डाल और शूद्रों के बीचवाले नीच होते हैं तिनका जूठा खाइ के द्विजाती लोग इस क्रम से प्रायश्चित्त करें कि ब्राह्मण को चांद्रायण और क्षत्री को कृच्छ्र और वैश्य को आधा कृच्छ्र करना चाहिये॥ ०॥ अन्त्यजातियों से भी अधिक मलीन जो साक्षात् चण्डाल होते और अन्त्यावसायी नाम से कहाते हैं तिनका जूठा खाइलेने में ऊपरलों से भी अधिक बड़े प्रायश्चित्त हैं=तदाहांगिराः=चाण्डालपतितादीनामुच्छिष्टान्नस्यभोजने चान्द्रायणंचरेद्विप्रःक्ष त्रःसांतपनंचरेत् षड्रात्रंचत्रिरात्रंचवर्णयोरनुपूर्वशः (सान्तपनमत्रमहासांतपनमिति मिताक्षरा=अर्थात्–चाण्डाल और पतित ब्रह्महत्यारे आदि का जूठा अन्न खाइ लेनेमें ब्राह्मणहो सो चान्द्रायण करै क्षत्री महासान्तपन करै वैश्य छःदिनका कृच्छ्र

करे शूद्र तीन दिन उपवास करे=आपदितुविशेषः=आपत्काल में केवल ब्राह्मणका जूठा खानेके निमित्त पर जुदा एक नियम है=तदाहपराशरः=आपत्कालेतुविप्रस्य भुक्तशूद्रगृहेयदि मनस्तापेनशुद्ध्येत्तद्विपदांचशतंजपेत=अर्थात–अन्नका अकाल आदि किसी कठिन कालमें निज प्राणोंकी रक्षा हेतुसे केवल ब्राह्मण का जूठा खाना परा हो या शूद्र के घरमें वैदिके अपने हाथका बनाया अन्न खाने का निषेध है सो खाना पराहो तिसका दोष केवल मनमे बहुत पछितावा करने से ही मिटिजाता है परन्तु जो साक्षरदोष सो गायत्रीका सैकरा जपिकर शुद्ध होताहै (यह एक सैकरा एक दिनकेही दोष पर समझना किन्तु अनेक दिनके मध्ये इसी हिसाब से=परन्तु आपत्कालके बिना इससे जुदे नियमहैं सो आगे देखो॥ ०॥ पीतशेषजलपानेतु–वृद्ध शाता तपः=पीतशेषंचयत्किंचिद्वाजनेमुखनिःसृतम् अभोज्यंतद्विजानीयाद्भुक्त्वा चान्द्रायणंचरेत्इति(तदभ्यासविषयंयन्निमित्तस्यलघुत्वादितिमिताक्षरा=अर्थात–पीकर बचाहुआ जल पात्रमें जो छुटरहा या मुख से निकसाहुआ सो सब अभोज्य में गिनतीहै तिसको खाकर चान्द्रायण करे यह वड़े शातातपने कहा (इसपरमिताक्षराकार कहितेहैं कि यह दोष छोटाहै तिससे अनेक बार ऐसा जल पीनेसे दोष की वड़ाई समझीजानेमें यह बड़ा प्रायश्चित्त चाहिये नहीं तो एकहीवार पीने पर छोटा प्रायश्चित्त ढूंढना सो आगे देखो=यथा=पीतोच्छिष्टन्तुपानीयं पीत्वातुब्राह्मणःक्वचित् त्रिरात्रंतुव्रतंकुर्याद्वामहस्तेनवापुनः (एतद्बुद्धिपूर्वविषयंअकामतस्त्वर्द्धकल्प्यमितिमिताक्षरा=अर्थात–पीकर जूठे हुये पानीको कहीं कोई ब्राह्मण पीलेवे सो तीन दिन व्रत करे और बामे हाथसे भी पीकर यही तीन दिनका व्रत करे (इस पर भी मिताक्षराकार कहितेहैं कि यहतीनदिनका प्रायश्चित्त भी उसको चाहिये जिसने जानते हुये पिआहो किन्तु बिना जाने पीलेने पर इससे भी आधा सिर्फ डेढ़ दिनका व्रत चाहिये=ध्यान करो=यद्यपि मिताक्षराकार कहि चुके सो सब ठीकहै परन्तु न्यायका स्वरूप इसमें यहीहै कि पहिले वचन में शातातप ने महीने भरका चान्द्रायण कहा सो भी अनेक बार पीने पर नहीं किन्तु एकही बार पीलेने मध्ये कहा लेकिन अन्य वर्णोंका जूठा पीलेनेमध्ये कहा क्योंकि प्रायश्चित्त बड़ा होनेसे यही उसका तात्पर्य्य है और इस दूसरे वचन में तीन दिन का प्रायश्चित्त केवल अपना जूठा जो बचा पहिला धराहो तिसके पीलेने मध्ये कहाहै कि जैसा उसके साथही अपने बामे हाथसे पीलेने पर वही तीनि दिनका प्रायश्चित्त कहा– इसमें कोई तर्क उठावे कि अपना जूठा पीने में क्या दोष है जो तीन दिन प्रायश्चित्त

करे तिसका उत्तर भी यहीहै कि अपने वामे हाथमें क्या दोषहै जिसके द्वारा शुद्ध जल पीकर भी प्रायश्चित्त चाहिये॰ किन्तु धर्म्मशास्त्रका स्वरूप यहां यही है कि वचनसे प्रवृत्ति और वचनहीसे निवृत्ति मानीजाय ॥ ० ॥ दीपोच्छिष्टादितैलेतु- दीपका जला जूदा तेलखाइलेने मध्ये षटत्रिंशन्मतग्रन्थमें जुदाप्रायश्चित्तहै=यथा= दीपोच्छिष्टन्तुयत्तैलंरात्रौरथ्याहृतंतु यच्चअभ्यंगाच्च वर्याच्छयंभुक्त्वानक्तेनशुद्ध्यतीति= अर्थात्-तेल जो दीपक जलाकर जूदा बचा या अँधेरी राति रास्ते गली आदि की धरती पर गिराहुआ मूतिके रखलियाहो ऐसा बिना जला भी या देहमें लगाते जो वचिगयाहो तिसको भी खालेनेमें रात्रि व्रत करनेसे विशुद्ध होताहै ॥ यहां रात्रि व्रत (नक्तव्रत) नामसे समझना कि जिसकी जुदी एक विधि होतीहै • यथा (हविष्यभोजनंस्नानंसत्यमाहारलाघवमग्निकार्यमधःशय्यांनक्तभोजीषडाचरेत्)अर्थात्- दिनमें कुछ न खाइके चार घटी रातिगये पर थोड़ा भोजन करे सो नक्तव्रतकहाता है तिसके साथ छे बातों की भावना है कि दिनके सिवाय सायंकाल भी स्नान करे उस दिन असत्य कुछ न बोलें पेटभर न खाय अग्निमें खीरि पूरीका होमकरें वही आप खांय धरती पर सोवै तब यह नक्तव्रत कहाताहै (निशानक्तन्तुविज्ञेयंयामार्द्धं प्रथमेसदा) इस वचनसे चार घड़ी राति गये के भीतर अग्निका होम और भोजन करना संसिद्ध है॥ ० ॥ यहां तक अशुचि प्राणी करके छुई बिगाड़ी वस्तु खाने के प्रायश्चित्त कहे गये-अब नीचे अशुचि वस्तुसे भिड़ी छुई अन्नादिक वस्तु खाने के प्रायश्चित्त कहेजायँगे ॥ इत्यशुचिप्राणिसंस्पृष्टभक्षणप्रायश्चित्तानि ॥

(अथाशुचिद्रव्यसंस्पृष्टभोजनप्रायश्चित्तं)

अत्राहसंवर्त्तः=केशकीटोपपन्नन्तुनीलीलाक्षोपघातनमस्नाय्वस्थिचर्म्मसंस्पृष्टंभुक्त्वा तूपवसेदहः=तथाशातातपोपि=केशकीटावपन्नं रुधिरमांसास्पृश्यस्पृष्टभ्रूणहावेक्षित पतत्रिप्रवलीढश्वसूकरगवाघ्रातशुष्कपर्युषितत्रयाकरेवान्नहविर्याभोजनेतूपवासः पंच गव्याशनंचेति (एतद्योभयमपिअकामविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्-बाल या कीड़े जिसमें परेहुये ऐसा अन्न या नील वा लाखसे दूषित अन्न या नस नाड़ी हाड़ चमड़ा इनसे भिड़ा बिगड़ा छुआ अन्न खाइके एक दिन उपवास करे=तैसा शातातप ने भी कहाहै कि=बाल कीड़ों से मिला अन्न वा लोहू मांस आदि न छूने योग्य चीजों से छुआ बिगड़ा अन्न वा गर्भकी हत्या करनेवाला भ्रूणहा कहाता है तिसकी आंखों से देखाहुआ अन्न वा पतत्री पक्षीओंका जुठारा हुआ अन्न वा कुत्ता सुअर गायोंका

सुंघाहुआ अन्न वा अनेक दिनका बना धरा सूखा या कई दिनका बासी सडा बुसा अन्न या वृथापक्व जो देव पितर अभ्यागतको निवेदन किये बिना बनाकर धराहो या देवताके निमित्त भेट देनेको संकल्प किया अन्न धराहो या देवताका चढा या हविष किसी पूजाके निमित्तकी सामग्री धरीहो इनमें किसी एकहो के खालेने में एक दिनका उपवास प्रायश्चित्तहै दूसरे दिन पंचगव्य का आहार करना चाहिये (ये दोनों संवर्त्त शातातपकी व्यवस्था केवल उसके ऊपर आरूढहै कि जिसने इच्छाके बिना ऐसा अन्न खाया हो=और=जिसने जानि बूझि इच्छा के साथ ऐसा खायाहो तिसकेलिये अग्रोक्त प्रायश्चित्तहै=यदाहविष्णुः=मृद्वारिकुसुमादींश्चफलकन्देक्षुमूलकान् विरामूत्रदूषितान्प्राश्यकृच्छ्रपादंसमाचरेत् सन्निकृष्टेएवमेवस्यात्कृच्छ्रस्त्वशुचिभोजने (अल्पसंसर्गेपादोमहासंसर्गेऽर्धसाक्षादशुचिलिप्तवस्तुभक्षणेपूर्णकृच्छ्रंकुर्यादितिव्यवस्थार्थांत्रिधात्वविज्ञेयं॰ धर्मशास्त्रोक्तव्रतेपुल्लिंगोपिकृच्छ्रशब्दः=अर्थात्–कोई ग्रेष माटी या जल या खाने के फूल आदि या फल कन्द गांडा मूली आदि कोई चीज विष्ठा या मूत्रसे थोडी दूषितहुईहो तिसको खाइकर चौथाई कृच्छ्रसाधै तब शुद्धहोय एवं जो अति समीपसे दूषित हुईहो तिसको खाकर आधा कृच्छ्र साधै एवं जो चीज गूह मूतसे साक्षात्कार लिपिगईहो तिसको खाकर पूरपूर कृच्छ्र करै तब शुद्ध होय (इन तीनोंका दृष्टान्त ऐसे समझो कि बेरी के वृक्ष तले हगी मूती धरतीके पास गिरे बेर कोई ले आवें तो यह थोड़े दूषित कहावेंगे परन्तु जो हगी मूती धरती पर गिरे बेरले आवें तो यह अति समीप से दूषितहुये कहावेंगे इसके सिवाय यदि कोई ऐसे बेरों को चुनि कर खाइ जाय जो साक्षात् हगे हुये विष्ठामें भरिपरेहों तो यह अशुचि भोजन कहा जाकर पूरा कृच्छ्र करनेसे विशुद्धहोगा इसीतरह सब चीजोंपर तीनि भेद समझि लेना ॥ ० ॥ अगिले व्यासजी के वचन में जो संसर्ग वर्णन करेंगे तिसमें केवल अशुचि प्राणीके छुइजाने मात्र का चर्चा या अशुचि द्रव्योंसे छुइजाने मात्रका चर्चाहै लिपिजानेका नहीं=यथाहव्यासः=संसर्गदुष्टंयच्चान्नंक्रियादुष्टंचकामतः भुक्त्वास्वभावदुष्टञ्चतप्तकृच्छ्रं समाचरेत्(एतच्चासंस्पृष्टामेध्यादि रसोपलब्धौवेदितव्यमिति मिताक्षरा=अर्थात्–जो अन्न संसर्ग (किसी मलीन सूखी वस्तुकी छुआछाई मात्र) से दूषित हुआ यद्वा खोटी क्रिया से अर्थात् बामे हाथसे परोसने आदि निषिद्ध प्रकारोंसे अथवा अपने स्वभावही से दूषित हुआ हो जैसे बासी होकर बुसिजाना आदि ऐसे अन्नोंको खानेवाला तप्तकृच्छ्र साधै (इस मे संसर्गका चर्चा किया सो उस भांति का कोरा संसर्ग समझना कि जिसमें किसी

चीजका रस न लगने पावै उसीके भक्षण का यह प्रायश्चित्त है ॥ ०॥ रजस्वला चांडालादिस्पर्शेतु—रजस्वला आदि का छुआ अन्न खाने का प्रायश्चित्त आगे देखो=तदाह शंखः=अमेध्य पतित चांडाल पुल्कस रजस्वलाऽवधूत कुणि कुष्ठि कुनखि संस्पृष्टानिभुक्त्वाक्षच्छ्रं चरेत (एतत्कामकारविषयं अकामतोऽर्धंकुर्यादितिमिताक्ष॰ रा=अर्थात्—अमेध्य विष्ठा रक्त मांस आदि॰ पतित॰ चांडाल॰ पुल्कस॰ रजस्वला॰ अवधूत संन्यासी आदि॰ कुणी जिसका हाथ विकृत बिगड़ा हो॰ कोढ़ी॰ कुनखी जिसके नख बिगड़े हों॰ इनके छुये अन्न खाइके कृच्छ्रव्रत आचरै (यह भी इच्छाके साथ खाइजाने पर समझना किन्तु इच्छा बिना खाने में आधा कृच्छ्र कराना यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥ ०॥ अग्रोक्त विष्णुके वचन वाला प्रायश्चित्त अशक्तके निमित्त पर मिताक्षराकार बताते हैं=यदाहविष्णुः=भुक्त्वाऽस्पृश्यैस्तथाऽशौचि के पार्कीदैश्चदूषितम् कुशोदुंबरविल्वाद्यैःपत्तर्सांबुजपर्वकैः शंखपुष्पीसुवर्चादिक्काथंपीत्वा विशुद्ध्यतीति (तदशक्तविषयंरजकादि स्पर्शविषयंवा इति मिताक्षरा=अर्थात्—नछूने योग्य जीवों या मनुष्योंका छुआ अन्न तथा सूतकी लोगोंका छुआ अन्न खालेवै या बार कीड़ोंसे दूषित अन्न खाय या कुशा गूलर बेल आदिके पत्तोंपर धरा हुआ या कल्हर कमल इनके पत्तोंपर धराहुआ खाय सो शंखपुष्पी सुवर्चा आदि औषधियों का क्वाथ पीकर शुद्ध होजाता है (यह छोटा प्रायश्चित्त अशक्त पुरुषके निमित्तपर या रजक आदिका स्पर्श होजाने मध्ये समझना किन्तु अति मलीन के स्पर्श मध्ये नहीं यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥०॥ शूद्रादिस्पर्शेतु—शूद्रआदिसे छुआ बिगड़ा अन्न खानेके प्रायश्चित्त जुदेहैं=तदाहहारीतः=शूद्रेणोपहतंभोज्यंकीटैर्वाऽमेध्यसेवि भिःभुंजानेषुतुवायवदद्याच्छूद्र उपस्पृशेत अनर्हत्वात्सपंक्तौतुभुंजानेषुवाययोत्थायोच्छि ष्टंप्रयच्छेदाचामेद्वाकुत्सित्वावायप्राप्नंदस्युस्तत्र प्रायश्चित्तमहोरात्रम=अर्थात्—भोजन करते हुये खाने योग्य अन्न जो शूद्रके छूनेसे यद्वा विष्ठा आदि मलीन स्थानमें रहिने वाले कीड़ोंसे अशुद्ध होजाय अथवा भोजन करते पुरुष को शूद्र अपने हाथ से जल अन्न आदि कुछ देदेवै किन्तु परोसिदेवै या भोजन करनेवाले कोढ़ी छुइ लेवै यद्वा उनदपनकी अयोग्यतासे चौकेकी पंक्तिहीमें घुसिजाय अथवा एकपांतिमें बैठे भोजन करते अनेक ब्राह्मणोंमें कोई एक उठिकर अपनी पत्तल आदि जूठनि पांतिके बाहर लेजाय या उसी जगे बैठा रहिकर पांतिसे बाहर वाले किसी जूठनि के खवैया को समर्पण करदेवै अथवा ऐसा न करनेपरभी केवल आचमन करनेलगै तो इस पुरुष को पांतिजुदी करदेनेके दोषमें एकदिन रातिभर उपवास प्रायश्चित्त करनाचाहिये

और उस जूठी पंक्तिके मनुष्य जो ऐसा होजाने बादि खातेरहैं तिनको भी व्रतकरना चाहिये और उसकोभी कि जिसको शूद्रने छुईलिया या कुछ परोसि दियाया इनके सिवाय जहां जिस पांति में परोसने वाले किसी को निन्दा करते हुये परोसैं तो उस पांतिका अन्नखानेवाले और परोसनेवाले सभीको एक उपवास प्रायश्चित्त करना चाहिये=उच्छिष्टायांपंक्तौतु—जूठी पंक्तिमें भोजन करने मध्ये क्रतुस्मृति में विशेषता कहीगई है=यथा=यस्तुभुक्ते द्विजःपंक्तयामुच्छिष्टायांकदाचन अहोरात्रोषितोभूत्वापंचगव्येनशुद्ध्यतीतिक्रतुस्मरणम्=अर्थात्—जो कोई द्विज होकर कदाचित् जूठी पंक्तिमें (कि जिसके लक्षण सब तरह ऊपर कहिचुके) भोजन करै सो एकदिनराति भर उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्धहोताहै=जूठीपंक्तिमें भोजनकरने पर पराशर ने भी विशेषता कही है=यथा=एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणांसहभोजने यद्येकोपित्यजेत्पात्रंशेषमन्नंनभोजयेत् मोहाद्भुंजीतयस्तत्रपंक्त्यामुच्छिष्टभोजनः प्रायश्चित्तंचरेद्विप्रःकृच्छ्रं सांतपनंतदा=अर्थात्—एक पांतिमें अनेकब्राह्मणोंके सहभोजन में बैठे हुयोंमें से यदि कोई एक भी अपने आगेका पात्र त्यागि देवै किन्तु बचे अन्न को न भोजे तिससे पांति जूठी होजातीहै तहां यदि कोई अपनी मूर्खतासे जूठाभोजन करै सो ब्राह्मण कृच्छ्रसान्तपनका प्रायश्चित्त आचरै तब शुद्ध होय=और=मंत्रविधि रहितायन्नभोजनेतु—परोसी हुई थाली पर जलके साथ मन्त्र विधि किये विना अन्न खालेने या बामे हाथसे परोसे अन्नखाइलेने आदि कुछ बातों का प्रायश्चित्त यहांपर अन्यमतके ग्रन्थकर्ताने कहाहै=यथा=समुत्थितस्तुयोभुंक्ते भुक्तभाजनेवासनिर्मुक्त कंभुक्ते योभुंक्तेऽसंत्रभोजनम् एववैवस्वतःप्राहभुक्त्वासांतपनंचरेत्=अर्थात्—खड़ा होके यदि भोजन करै या जो कोई भोजन किये जूठे पात्रमें भोजनकरै या बामेहाथसे दिये हुये अन्नको भोजन करै या मंत्रविधि किये विना भोजन करै तिनके लिये वैवस्वत मनु ऐसा कहिते हैं कि सांतपन व्रत आचरैं॥ ० ॥ मुर्दा आदि बूड़े कूप आदि का जल पीने मध्ये जुदे प्रायश्चित्त हैं=तदाह विष्णुः=मृतपंचनखात्कूपादत्यंतोपहताद्वोदकंपीत्वाब्राह्मणस्त्र्यहमुपवसेत् द्व्यहंराजन्यः एकाहंवैश्यःशूद्रोनक्तं सर्वेचांतेपचगव्यंपिबेयुरिति (अत्यंतोपहतादितिमूत्रपुरीषादिभिर्वेत्यभिप्रेतं=अर्थात्—पांच नखवाले प्राणियोंमें कोई मरा जीव जिस कुआमें गिरपराहो या जिस कुआमें गूह मूत आदि अति मलीन कोई चीज गिरीहो तिसका जलपीकर ब्राह्मण तीनदिन क्षत्री दो दिन वैश्य एक दिन उपवास करै और शूद्रको नक्तव्रत चाहिये जिसमें दिनभर उपासकरिके रातिमें आधा पेट भोजन किया जाताहै॰ सभी लोग अपना अपना व्रत करने के

वादि पंचगव्य पीवैं तब शुद्धहोयँ=जहां=किसी कूपमें गिराहुआ मुर्दा मुख पसारने आदि हेतुसे पानीपीकर गलिघुलिजाय तिसका जलपीने मध्ये अग्रोक्त प्रायश्चित्तहै=यथा हारीतः=क्लिन्नभिन्नंशवन्तोयेतत्रस्थंयदितत्पिवेत् शुद्ध्यैचान्द्रायणंकुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापिवायदिकश्चित्ततःस्नायात्प्रमादेनद्विजोत्तमः जपंस्त्रियवगास्नायीअहोरात्रेणाशुद्ध्यतीति (इदंचान्द्रायणंकामतोमानुषशवोपहतकूपजलपानविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्–जिस जलमें मुर्दा परा रहिनेसे फूलिकर गलै या फूटिजाय तिस जल को यदि पीवै तो इस दोषकी शुद्धिकेलिये चान्द्रायण करै अथवा तप्त कृच्छ्र करै और जो कोई ब्राह्मण जलको पिये विना केवल स्नान मात्र अपनी मूर्खता से करै सो अच्छे जलमें जाकर त्रिकाल स्नान करिके गायत्री जप करतेहुये एक दिनरात्रि भर व्रत करके शुद्ध होताहै (मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह महीनेभरका चांद्रायण उस जलके पीने पर समझना जिसमें मनुष्यका मुर्दा गिरके सड़ाहो और पीने वाले ने जानि बूझि इच्छा सहित पिया हो॰ तिससे तप्त कृच्छ्र वाला प्रायश्चित्त मनुष्यसे उपरान्त किसी अन्य जीवके मुर्देवाला जल पीने पर आरूढ हुआ=मिताक्षराकार फिर कहितेहैं कि यह प्रायश्चित्त इच्छासहित जल पीनेपर ठहिरचुका॰ तिससे इच्छा विना पीने वाले पर छे दिनका प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि अगिले वचन के अनुसार व्यवस्था मानीजासक्ती है=यदाह देवलः=क्लिन्नंभिन्नंशवंचैवकूपस्थंयदिजायते पयःपिवेत्त्रिरात्रेणमानुषेद्विगुणंस्मृतम=अर्थात्–कुआंमें परा हुआ मरा जीव यदि भीगि फूलिके फूटि जाय तो उस जलको विना जाने पी लेनेवाला तीन दिन दूध पीकर व्रत करै परन्तु जो मनुष्य का मुर्दा गिराहो तो इससे दूना छे दिनका व्रत चाहिये ॥ ० ॥ चाण्डालादिकृतकूपजलपानेतु–चंडाल आदि अति मलीनों के कूप या पात्रका जल पीने मध्ये आपस्तंबका कहा प्रायश्चित्तहै=यथा=चांडालकूपभांडस्थंनरःकामाज्जलंपिवेत् प्रायश्चित्तंकथंतत्रवर्णेवर्णेविनिर्दिशेत च रेत्सान्तपनंविप्रःप्राजापत्यंचभूमिपः तदर्द्धंचचरेद्वैश्यःशूद्रेपादंविनिर्दिशेत्=अर्थात्–चाण्डालके कुएका पानी या उसके वासनमें धरा पानी कोई मनुष्य इच्छा सहित पीलेवै तहां प्रत्येक वर्णोंके प्रायश्चित्त कैसे आज्ञा दिये जायँ सो कहितेहैं कि ब्राह्मण शान्तपन आचरै क्षत्री प्राजापत्य करै वैश्य आधा प्राजापत्य करै शूद्र चौथाई करै (ये प्रायश्चित्त सब कामनासे पिये जल पर आरूढहैं=किन्तु=इच्छा के विना पीलेने मध्ये अग्रोक्त प्रायश्चित्त हैं=तदाह देवलः=चाण्डालकूपभाण्डस्थमज्ञानादुदकम्पिवेत् सत्र्यहेणशुद्ध्येतशूद्रस्त्वेकेनशुद्ध्यति=अर्थात्–चण्डाल के कुएका या

बासन का धरा उदक जो कोई बिना जाने पीलेवै सो द्विजाती मात्र तीन दिन व्रत करनेसे पवित्र होताहै शूद्र एकही व्रत करिके शुद्ध होता है (अन्त्यजों के कूप या बासन का पानी अनेक बार पीनेका अभ्यास करै तिसको प्राजापत्य चाहिये नीचे दूर जाकर आपस्तम्बका वचन देखना)=और=चण्डाल आदि सभी नीचोंके बनाये बांधे छोटे छोटे जलाशयोंका पानी पीलेनेपरभी कूपहीके समान व्यवस्था होगी= यथाह विष्णुः=जलाशयेष्वथाल्पेषु स्थावरेषुमहीतले कूपवत्कथित शुद्धिर्महत्सुतु नदूषणम्=अर्थात्—कुआंसे उपरान्त छोटे जलाशय जो धरती पर स्थावर हों तिनके जल पीनेमें भी कुआंके समान प्रायश्चित्त आदि शुद्धि कहीहै पर बहुत बड़े तड़ाग झील आदि जलाशय जिनमें धारा प्रवाह जल होताहो चाहें किसी के बनवायेहों या चाहें कोई जीव उनमें मरा हो तौ भी जल पीने आदि का कुछ दोष नहीं है न प्रायश्चित्तकी जरूरत होगी ॥ ० ॥ पुष्करिणी तलैया बड़ेगड़हिले आदिके पानी पर जुदी व्यवस्थाहै=तदाहापस्तंबः=म्लेच्छादीनांजलंपीत्वापुष्करिण्यांहृदेपिवा जानुदघ्नशुचित्तेयमधस्तादशुचिस्मृतम् तत्तोयंयःपिबेद्विप्रःकामतोऽकामतोऽपिवा अकामात्नक्तभुंजीस्यादहोरात्रंतुकामतः=अर्थात्—म्लेच्छ आदि मलीन मनुष्योंके कब्जामें रहिती पुष्करिणी या हृद (गड़हिलेहौज) का जलपीकर यह व्यवस्थाहै कि गोड़ों के घूंटे जिसमें डूबि जायँ सो.तौ जल पवित्रहै घूटेंसे नीचे होय सो अशुद्धहै ऐसे अशुद्ध जलको जो कोई ब्राह्मण पीवै सो इच्छा बिना पीनेवाला दिन भर व्रत किये पीछे रात्रि में भोजन करै पर इच्छा सहित पीकर एक दिन राति का पूरा उपवास करै ॥ ० ॥ भाण्डस्थदध्यादिभक्षणे तु—रजक छीपा रँगरेज धोबी आदि अन्त्यजों के पात्रका जल पीने मध्ये जुदा प्रायश्चित्त है=तदाहपराशरः= भाण्डस्थमन्त्यजानान्तुजलन्दधिपयःपिबेत् ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रश्चैवप्रमादतः ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनान्तुनिष्कृतिः शूद्रस्यचोपवासेन तथादानेनशक्तितः=अर्थात्—अन्त्यजों के बासनमें धरा पानी या दही या दूध जो कोई अपनी भूलसे पीलेवै सो ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन तीनोंकी शुद्धि ब्रह्म कूर्च उपवास करनेसे होती है और शूद्रने पीलियाहो तिसकी शुद्धि केवल उपास और यथाशक्ति दान करनेसे भी होती है—परन्तु इनमें से जिन किसी ने इच्छा सहित पिआहो तिसको यही प्रायश्चित्त दूना करना चाहिये=इसके सिवा=जिसने अनेक बार ऐसा पानी दही दूध पीनेका अभ्यास किया हो तिसके लिये अगिले वचनसे प्राजापत्य विचारना होगा=यदाहआपस्तम्बः= अन्त्यजैःखानिताः कूपास्तडागावाप्यएववा एषुस्नात्वाचपीत्वाचप्राजापत्येनशुद्ध

ति=अर्थात्–अन्त्यजों के खोदवाये कूप या तड़ाग या बावड़ी इनमें स्नान करिके या पानीपीके प्राजापत्य करे तब शुद्ध होय (यह बारम्बारके अभ्यासकी व्यवस्था सामान्य उनके बासन और कूप आदि सभी पर आरूढ़है क्योंकि प्रायश्चित्त बड़ा होनेसे इसीका चर्चा ऊपर लिख चुकेहैं कि आपस्तम्ब का वचन नीचे दूर जाकर देखना)=और=जो इन्हीं आपस्तम्बने दूसरे अगिले वचनमें केवल पंचगव्यहीपीना कहा सो वह रोगी आदि अशक्त पुरुष पर समुझना होगा=यदाह आपस्तम्बः=प्रपाल्बरगवेघटकेचशैलेद्रोगयांजलंकोशविनिर्गतंच श्वपाकचाण्डालपरिग्रहेषुपीत्वाजलंपंचगव्येनशुद्धयेत=अर्त्थात्–कुत्ते आदि जीवोंको खानेवाले श्वपाक कंजर आदि और अमली चाण्डाल आदि अति मलीन मनुष्योंके कब्जामें रहितीहुई पिआउओं का पानी या उनके घड़ोंका भरा धरा पानी या पर्वतमें द्रोणी द्रोण जो प्रसिद्धहो॰ तीहैं कदाचित् किसी द्रोणीमें चण्डालों का निवासहोय उसी द्रोणीके बीच कोई पानीका झरना ऐसा छोटासा झरता होय जिसपर उन्हीं चण्डालोंका दार मदार सदा रहिताहो तो इस झरनारूपी कोशके निकसे हुये पानीकोभी न पीनाचाहिये यह तात्पर्य्यहै (शैलेपर्वतमध्यस्थलेद्रोणयावारिकोशाद्विनिर्गतंजलंचेत्यन्वयः) इन जलों को यदि कोई द्विजाती पीलेवे सो पंचगव्य पीकर शुद्धहोसक्ताहै यदि रोगी आदि अशक्त होय जैसा ऊपर लिखि चुके अन्यथा पूर्व्वोक्त ही व्रत देखने होंगे ॥ ० ॥ एक यह भी वचनहै कि=प्रपांगतोविनातोयंशरीरंयोनिर्यिचोत एकाहक्षपणांकृत्वा सचैलंस्नानमाचरेत॰ सुरायटप्रपातोयंपीत्वानाव्यजलन्तथा अहोरात्रोषितोभूत्वापंचगव्यंजलंपिवेत=अर्थात्–जहां कहीं नदी कूप आदि जलकीप्राप्ति न होनेसे पिआऊ पर जाकर कोई देह धोवे सो एक दिन सब अन्न छोड़िके समय बितानेके आदि वस्त्रों सहित किसी नदी आदि तीर्थ पर स्नान जाकरकरे तब दोष दूर होताहै॰ एवं यह दूसरा नियमहै कि मदिरा के मटकों में धरा पानी या सर्व जातोंकी सामान्य पिआऊका पानी जिस ब्राह्मण विज्ञानीने पीलियाहो या नाव्यजल अर्थात् जहां नदी आदि के किनारे पर अतिशय थोड़े जलमें अनेक नाव टिकी बँधी रहिती हों तिनके नीचेकापानी जो मलीन कीचड़केसमान होजाताहै वही नाव्यजल पीलिया हो अथवा नावके भीतर भरा या मटके आदि में धरा हो सो भी नाव्य जल समुझना इन जलोंको पीकर यह प्रायश्चित्त चाहिये कि एक दिन रातिका उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीलि जानिके उसका पतना अन्न पावै तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ एक यादरखनेके तौरसे यह बात यहां प्रसंगसे लिखे देतेहैं कि प्रायश्चित्तों

के वर्णनमें जहांजहां प्राजापत्य या सान्तपन आदि नामलिखेहों तहां तो उन्हींका विधान जो कुछ होता हो सोई कियाजायगा अन्यथा जहां साधारण ऐसा लिखा हो कि एक या सात दिन उपवास करै तहां एक दो तीन आदि व्रत निराहार भी होसक्ते हैं इससे अधिक संख्या सात बारह पन्द्रह आदि जहां लिखीहो तहां सर्व्वत्र यह समुझिलेना कि यावक पीकर व्रत करनेहोंगे अर्थात् गो मूत्रमें जौका दलिया वा साबुत जौ रांधि के पतला दलिया वा गाढा माड़सा बनाया जाय सो यावक होताहै यहां तक अशुचि प्राणीसे छुई और अशुचि वस्तुओंसे छुई भिडी खानी पीनी चीजोंके प्रायश्चित्त कहे गये–अब नीचे भाव दुष्ट चीजें खालेनेके प्रायश्चित्त कहे जायँगे भाव दुष्ट भी अनेक तरहसे होती हैं ॥

अथभावदूषितकालदूषिताद्यन्नभोजनप्रायश्चित्तानां प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदएकोसप्ततिमः (७१)



इस परिच्छेदमें भावदुष्ट और काल दुष्ट आदि अनेक दूषित अन्न भोजन करने के प्रायश्चित्त कहेजायँगे–तिनमें प्रथम भाव दूषित के फिर उसीके अन्तर्गत जिस अन्नपर झूंठी भ्रान्तिसे भी कुछ शंका खडी होजाय तिसकेखाइलेनेका प्रायश्चित्त॰ फिर काल दूषित भोजनका प्रायश्चित्त॰ फिर ग्रहण होते आदि समयों पर खाने के प्रायश्चित्त॰ फिर अनुक्त प्रायश्चित्तवाले दोषोंके प्रायश्चित्त॰ फिर गुणदूषित कांजी आदि चीजों के प्रायश्चित्त और उसीके भीतर पीना फोक आदि खाने के प्रायश्चित्त और बिना होमे या दिये बिना खाइलेने का प्रायश्चित्त फिर फूटे टूटे बासनमें या बिरले साजे पत्तों पर खानेका॰ फिर हाथ घँघोलि दई हुई चीज खाने का॰ फिर शूद्रके हाथसे परोसा अन्न खाने वा जल पीनेका प्रायश्चित्त ॥

(भावदुष्टान्नादिभक्षणप्रायश्चित्तं)

भाव दुष्टका यह अर्थ है कि जिस वस्तुका आशय अभ्यन्तर किसी प्रकार से खोटा समुझागया हो चाहे उसवस्तुके वर्ण रंगतिसे या उसके आकार डौल बनावट से या उसमे कोई रस ऐसा अतिशय होता हो जिसके खानेसे शरीरमें तरह तरहके

दुर्गन्ध आदि खोटे मल बहुत पैदा होयँ सो संसारमें निन्दा योग्यहोते हैं जैसा बमन कफ थूक डकार नाक कीचड़ मल मूत्र अपानवायु या चित्तमें उद्वेग पैदाकरै या वीर्य को क्षीणताकरे या कामदेवकी आतुरता उत्पन्नकरै या कोढ़ आदि महारोगोंको उत्पन्न करसकै इत्यादि नाना भांतिसे भाव दुष्ट चीजोंके लक्षण वैद्यक शास्त्र से भी जाने जाते हैं— इनसे उपरान्त भी अनेक लक्षण भाव दुष्ट के होते हैं दृष्टान्त जैसे यद्यपि अन्न सर्व्वथा उत्तम निर्विकार है परन्तु जो मन में भ्रांति खड़ी होजाय कि इसमें मेरे अमुक शत्रु ने विष मिलाकर भेजा या और किसी से मिलवाया होगा या अमुक पतितने छुईलियाहोगा इत्यादि॰यद्यपि उसमेंविष न हो तौभी ऐसीशंका खड़ी होजानेसे वह अन्नभी भाव दुष्ट कहाताहै इत्यादि और भी समझने—इन चीजों का भक्षण करना प्रायः तपोमार्ग से निषिद्ध है जैसा साँचे तपस्वी लोग मूंगही की दाल खासक्ते हैं उरद की न खायँगे इत्यादि इसी दृष्टान्त में सब समझलेना=भाव दुष्ट आदि भक्षण का प्रायश्चित्त पराशर ने कहा है=यथा=वाग्दुष्टंभावदुष्टं चभाजने भावदूषितम् भुक्त्वान्नंब्राह्मणः पश्चात् त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति (एतत्कामकारविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्—जो कोई भी अन्न वाणी के नामही मात्रसे भाव दुष्ट होय या अपने आशय से भाव दुष्ट होय या वासन में धरने के दोषसे भाव दुष्ट हो जाय जैसा काँसे पात्रमें बकरी खड़ी चीज बिगड़ जातीहै या तांबेमें दही दूध आदि या हाड़ के बासन में हरकोई चीज अशुद्ध कहाती है इत्यादि कोईसा भाव दूषित अन्न यदि कोई ब्राह्मण खाय सो उस दिनसे दूसरा दिन लेकर तीन दिन व्रतकरने पर शुद्ध होता है (इच्छा सहितखाने वाले को यह प्रायश्चित्त चाहिये यहमिताक्षरा कार ने कहा ॥ ० ॥ भ्रांति जनक शंकायांतु—भ्रान्ति रूप शंका के उत्पन्न होने में वशिष्ठ के बचनानुसार प्रायश्चित्त है=यदाह वशिष्ठः=शंकास्थाने समुत्पन्ने अभोज्याभक्ष्यसंज्ञिते आहारशुद्धिंवक्ष्यामितन्मेनिगदतःशृणु अक्षारलवणांरूक्षांपिबेद्ब्राह्मींसुवर्चलाम् त्रिरात्रंशंखपुष्पींवाब्राह्मणःपयसासह पलाशबिल्वपत्राणिकुशान् पद्मसुदुम्बरम् अपःपिबेत्क्वाथयित्वात्रिरात्रेणविशुद्ध्यति=अर्थात्—वशिष्ठ जी कहतेहैं कि जहां भ्रांतिरूपी शंका खड़ी होजाय कि मैंने बिना जाने अमुक तरहका दूषित अन्न खाया यहां नहीं खवाने और न खाने योग्य अन्नही साक्षात होय जिसमें शंका खड़ी हुई ऐसे आहार की शुद्धि करना मैं कहिताहूँ सो मेरे कहिने को सुनो ब्राह्मी नाम की सुवर्चला औषधी जो जंगल से आती है तिसको तीन दिन ऐसेपीवै कि न उसमें कोई खारी नमकीन रस मिलावे न घी दूध आदि चिकनाई का रस

मिलावे किन्तु रूखी पीडावें तिससे शुद्धि होजायगी अथवा वही शंकामात्र ब्राह्मण तीन दिन शंखपुष्पी शंखाहूली को दूध के साथ औटिके पीवें अथवा ढाखावेल कुशा पद्म गूलर इन पाँचों के पत्ते पानी में काढ़ा बनाकर पीवें तौभी तीन रात्रि से विशुद्ध होता है किन्तु जैसी शंका होय तैसाही प्रायश्चित्त इन में से चुनि लिया जाय=मनुने कुछ और विशेषता इसपर कही है=यथा=संवत्सरस्यैकमपिचरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्यचविशेषतः=अर्थात्–कोई द्विजोत्तम जिसने संवत्सर के भीतर बहुत कालतक भी विना जाने कुछ अशुद्ध भोजन किया हो तो उस विना जाने खाते रहिने की दोष शुद्धि के लिये एक पूरा कृच्छ्र भी आचरें जो बारह दिन में होता है और जिसने जानि बूझि खाया हो तिसको इससे दूना आदिविशेषता से करना चाहिये=इस पाठ में ये प्रायश्चित्त द्विविधा रूपी भ्रांति की शंका पर सामान्य मर्यादा से दर्शाये गये तिससे इसमें किसी वस्तु का नाम विशेष नहीं कहा ॥ इत्यभोज्यभोजनशंकायाःप्रायश्चित्तं ॥

(अथ कालदूषितभोजन प्रायश्चित्तं)

काल दूषित उसको जानना जो वस्तु केवल कालही के प्रभाव से विगड़ी ठहरे दृष्टांत जैसे बासी खरा अन्न यद्यपि श्रेष्ठ था परन्तु काल के विलम्ब से बुसिगया दूसरा दृष्टान्त जैसे गाय का दूध एक उत्तम चीज है तथापि बिआनी गाय के दस दिन जबतक न वीतेहैं तब तक इतने काल के प्रभाव से अशुद्ध है इत्यादि अनेकधाअन्य चीजें भी होती है=तिनको जिसने इच्छा विना धोखासे खाया हो तिसके लिये एक ही दिन का उपवास है (शेषेषूपवसेदहः) इसी मनु के वचन से पहिले भी प्रायः कहिचुके हैं=परन्तु=जिसने इच्छा सहित खायाहो तिसकेलिये अगिलाप्रायश्चित्त है=यदाह शंखः=केवलानिचशुक्तानि तथापर्युषितंचयत् रुचीशपक्वंभुक्त्वातुत्रिरात्रंव्रतीभवेत् (केवलानिअस्नेहाक्तानीतिमिताक्षरा=अर्थात्–केवलअन्न, जिनमेंघीका मेल न होय और शुक्त जो कांजी सिर्का आदि कालहीके विलम्ब से परिणामपाते हैं तथा पर्युषित बासी तिवासी आदि बुसे अन्न तथा हालही का पकाया अन्न जो अति क्षुधातुर ने क्रिया रहित पकाया हो तिसको खाइके तीन दिन व्रती होना चाहिये ॥ ० ॥ नवीन वर्षा का जल भी अति लघुकाल से दूषित होता है तिसको पीने का प्रायश्चित्त आगेदेखो=तदाहवृद्धयाज्ञवल्क्यः=ऋंगास्थिदन्तजैःपात्रैःशंखशुक्तिकपर्दकैः पीत्वानवोदकंचैव पंचगव्येनशुद्ध्यति (कामतस्तूपवासः कर्तव्यइतिमिता-

क्षरा=अर्थात्–सींग हाड दांत इनकेबने पात्रोंसे जलपीवै या शंख सीप कौड़ा घोंघा से पीवै या नवोदक नवीन वर्षासे जो नदी आदि में भरि आया हो तिसकोपीलेवै सो पञ्चगव्य पीकर शुद्ध होता है–परन्तु जिसने इच्छासहित पिआ हो तिसकोएक उपवास भी करना चाहिये–क्योंकि आगिले वचन से यह तात्पर्य मिलता है=यथा स्मृत्यंतर=कालेनवोदकंशुद्धंनपिवेत्त्र्यहहितत्र अकालेतुदशाहंस्यात्पीत्वानाद्यादहर्निशम=अर्थात्–वर्षा ऋतुके काल में जो वर्षा प्रथम हुईहो तिसका नया जल यद्यपि शुद्ध धरती पर संचय हुआहो तौभी तीन दिन तक वह न पीना चाहिये और जो वर्षांत के विना किसी ऋतु में अकाल वर्षा हुईहो तो दस दिन तक न पीना चाहिये कदाचित कोई पीलेवै सो एक दिन रात्रि भर भोजन विना उपवास करै॥०॥ ग्रहणकालान्नादि दूषितान्ने तु–ग्रहण परते काल में भी काल दूषित भोजन कहाता है तिसका प्रायश्चित्त आगे देखो=तदाह शातातपः= नवश्राद्ध ग्रामयाजकान्नं ग्रहभोजनम् नारीणांप्रथमेगर्भेभुक्त्वा चांद्रायणंचरेत्=अर्थात्–प्रेतके नवश्राद्ध का अन्न खाय या ग्राम याजक का अन्न खाय या सूर्य चन्द्र का ग्रहण परते समय भोजनकरै या स्त्रियोंके पहिलौठी गर्भ रहिने के निमित्त पर भोजन करै अर्थात् उसी उत्सवके नामसे जो कुछ अन्न बांटा वर्तायागया तिसको खाय तो यह खानेवाला पुरुषचांद्रायण करै तब शुद्ध होय–और ग्रहण के दिवसआदि उसके दवेहुये सूतकोसमयपरभी खाने का निषेधक प्रायश्चित्त आगे देखो इसी के प्रसंग पर नीचेकीव्यवस्था है॥

(अनुक्तप्रायश्चित्तनिषेधेषुचभोजनशुद्धिः)

ऊपरली व्यवस्था के प्रसंग में एक निराली व्यवस्थाअब लिखतेहैं जिसमें फुटकर ग्रंथों के अनेक वचन एकत्र लिखे जायँगे और तात्पर्य उनका यही है कि जिन अवसरों पर भोजन करना निषेध है परन्तु प्रायश्चित्त नहीं कहा गया तिनका भी प्रायश्चित्तसमक्ष में आवै=तत्राह मार्कंडेयः=चंद्रस्यर्यदिवाभानो र्यस्मिन्नहनिभार्गव ग्रहणंतुभवेत्तस्मिन्नपूर्वंभोजनंक्रियात् नाचरेत्सग्रहेचैवतथैवास्तमुपागते यावत्स्यान्नोदस्तस्यनाश्नीयात्तावदेवतु=तथा ग्रन्थांतरं=ग्रहणंतुभवेदिंदोःप्रथमादधियामतः भुंजीतावर्त्तनात्पूर्वंप्रथमेप्रथमादधः=तथाऽन्यदपि=अपराह्णेनमध्याह्नेसायाह्नेनहसंगवेभुंजीतसंगवेचेत्स्यान्नपूर्वंभोजनक्रिया=एवंमनुरस्तु=नाश्नीयात्संधिवेलायां• नातिप्रगे• नातिसायं इत्येवमादि=वृद्ध शातातपस्तु=बालादर्विचसक्तूंश्चयोषित्वासोवर्जयेन्निशि भोजनंतिलसंबद्धंस्नानंचैवविचक्षणः (इत्येवमादिष्वनादिष्टप्रायश्चित्तेषु प्राणायाम

प्रतंकार्यंसर्वपापापनुत्तये उपपातकजातानामनादिष्टस्यचैवहीति ३०६ योगीश्वरोक्तं द्रष्टव्यमितिमिताक्षरा=अकामतस्तु ग्रोयेयुपवसेदहरितिमनूक्तोपवासो द्रष्टव्यइतिच मिताक्षरा=अर्थात्-मार्कंडेय ने यह कहा है कि चन्द्रमा या सूर्य्य का ग्रहण जिस दिन होनेकोहोय तिस दिन उसके होनेसे पहिले भोजन रसोई आदि क्रिया कुछ न करनी चाहिये • और ग्रहण दिनमें भी नहीं अर्थात् जिस दिन ग्रसा ग्रसाया बिम्ब उदय हुआहो तिसदिन ग्रहणहोजानेके बादिभी रसोईआदि न करनी चाहिये•तथा अस्त उपागतेपिकाले अर्थात् जब ग्रसा हुआ बिम्ब अस्त होगया हो तौ जब तक फिर उदय न होय तब तक उतने काल में न भोजन करै=तैसा अन्य ग्रन्थ का यह वचनहै कि=चन्द्रमाका ग्रहण यदि रात्रिके प्रथम प्रहरसे उपरान्त होनेवाला ठहिरै तौ उस दिनके ठीक दुपहरसे भीतरले कालमें भोजन करै किन्तु मध्याह्न के उपरांत न करै• परन्तु जो रात्रि के पहिले पहर के भीतर ग्रहण ठहिरै तौ दिन के प्रथमही पहरके भीतर भोजन करै उपरान्तमें नहीं=तैसा और भी ग्रन्थान्तर वचन है जिसमें ग्रहणके विना भी सब दिनोंका यह नियमहै कि=न तौ अपराह्न कालमें भोजनकरै न मध्याह्नकालमें,न सायाह्न काल में न संगव काल में भोजन करै• भला कदाचित् संगव काल में करना भी परै तौ प्रातःकाली संगवसे पहिले सूर्योदय होने के विना तौ अवश्यही न करना चाहिये (इसमें अपराह्न शब्द से दिनमान का सबसे पिछला तिहाई भाग समझना • मध्याह्न शब्दसे ठीक दुपहर की बिचली छै घड़ी तीन पहली तीन पिछली समझनी अथवा केवल दो घटि,का एक पहली एक पिछली तौ अवश्यही माननी क्योंकि यही मध्याह्न सध्योपासना का समय होता है• सायाह्न काल भी सूर्यास्तके ठीक समयसे तीन घड़ी पहले तीन पीछे तक होताहै•ऐसेही प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले पीछे तीन तीन घड़ी मिलिके छै घटिका तक होताहै उन्हीं घड़ियों के बीतने पर अनन्तरकी छै घड़ी संगव काल के नाम से होती है=ऐसाही मनुने भी कई वचनों मे जुदा जुदा कहाहै कि=सन्धियोंकी वेलापर नभोजनकरै• अति प्रातः-कालमे भी न करै यहां अतिप्रातःकाल उसीको समझना जो संगव के नाम की छै घड़ी कहिचुके• अति सायंकाल मे भी न खाय •ऐसे और निषेध भी मनुस्मृति में हैं कि जिनके प्रायश्चित्त नहीं लिखे=वृद्धशातातप ने भी कहा है कि=धाना दद्री होलाबहुरी आदि चबेने और दही सत्तू इनको रात्रिमें अपना कल्याण चाहनेवाला वर्जित करै और तिल का बना भोजन तथा स्नान भी विवेकी पुरुष रात्रि मे न करै (मिताक्षराकार कहिते हैं कि जैसी ये बातें कहीं तैसे और भी जे कोई वचन कहीं

देखि परैं कि जिनमें निषेधके द्वारा यद्यपि दोष दर्शाया गया परन्तु उस दोष का प्रायश्चित्त कुछ नहीं कहा तिन सभी में वह प्रायश्चित्त विचारना जो आगे ३०६ तीनसौ छठे मूलश्लोकसे योगीश्वर आप कहेंगे कि एकसौ १०० प्राणायाम करने चाहिये • इसका विशेष ब्यौरा उसी स्थलपर समझि लेना=और=जिसने इन्हीं निषिद्ध कालोंमें इच्छा विना धोखा आदि लाचारी से खाया हो तिसके लिये एक दिनका उपवास है (शेषेयूपवसेदहः) इसी मनुके वचनसे विचारना चाहिये यह भी मिताक्षराकारने कहा॥ इतिकालदूषितान्नभोजनप्रायश्चित्तं॥

(अथ गुणदुष्टशुक्तादि भक्षणप्रायश्चित्तं)

अत्रमनुः=शुक्तानिचकषायांश्च पीत्वाऽमेध्यान्यपिद्विजः तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्नव्रजत्यधः=अर्थात्–कांजी सिर्का और अपवित्र काढ़े अरक भी ब्राह्मण पीकर तब तक अशुद्ध रहिता है जब तक वह पचिकर गुदा से न निकसि जाय (इसमें भी प्रायश्चित्त कुछ नहीं कहा पर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि इच्छा के विना पीने वालेपर वही एक दिन का उपवास चाहिये जो मनुने (शेषेयूपवसेदहः) इस वचन से कहा था=और जिसने इच्छा सहित पिया हो तिसको तीन का व्रत अगिले वचन के अनुसार चाहिये जैसा शंखने यह कहा है (केवलानिचशुक्तानि तथापर्युषितंचयत् ऋचीयपक्वंभुक्त्वाचत्रिरात्रंतुव्रतीभवेत्) अर्थात् केवल औरशुक्त और बासी तिवासी और कराही का पकाया कढ़ी आदि और भी खायके तीन दिन व्रत राखैं–फिरभी–मिताक्षराकार इसका प्रतिप्रसव दर्शाते हैं कि यह कांजी आदि जो निषेध किये गये सो केवल जो गुण से दुष्ट होयँ तिनहीं का प्रायश्चित्त समझना किन्तु आमले आदि उत्तम गुण वाले फलों के अचार में जो कांजी सा पानी खड़ा होता है तिसका निषेध नहीं है–इस बात का प्रमाण भी अगिला वचनदेखौ (कांजिकाम्रफलाद्येषुगृहेषुस्थापिताभवेत् तस्मात्तुकांजिकाग्राह्यानेतरस्याः कदाचनेतिस्मरणात्) अर्थात्–जिन घरोंमें श्रेष्ठ गुणके फलों सहित (अचार) कांजी धरी गईहो तिसकी कांजी ग्रहण करने योग्यहै और किसी की नहीं॥ पिण्याका दौतु–तिल आदिका पीना या औटे घीका मैल या बादाम आदि कोई मींग मथि कर चिकनाई निचोड़ने से बची हुई लीझी इत्यादि बहुधा अन्य चीजें भी होतीहैं तिनको खाइलेने पर गौतमने बमन कराइके घी चाटना प्रायश्चित्त कहा है॥०॥ अहुतादत्तान्नादिभक्षण प्रायश्चित्तं–कची पक्की आदि भोजन की वस्तु आहार

के निमित्तसे बनाई जाय या थालीमें परोसि आगे धरीजाय सो अग्नि को जिमाने आदि संस्कारोंके विना अभक्ष्य होताहै तिसका प्रायश्चित्त है=यथाह लिखितः= यस्यचाग्नौनक्षिपतेयस्यचान्नंनदीयते नतद्भोज्यंद्विजातीनांभुक्त्वाचोपवसेदहः वृथा कृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः आहिताग्निर्द्विजोभुक्त्वा प्राजापत्यसमाचरेत्=अर्थात्–द्विजातियों में जिसके घर अग्नि में अन्न नहीं छोडा जाता और अभ्यागत गऊ आदि को नहीं दिया जाता हो तिसका ऐसा अन्न खानेके योग्य नहीं है कदाचित् कोई विप्र खालेवै सो एक दिन उपवास करै–एवं वृथाकृसर • वृथासंयाव • वृथा पायस• वृथा पूव• वृथाशष्कुली•इनको आहिताग्नि होकर जो द्विज खाइ सो प्राजापत्य आचरै तब शुद्ध होय=परन्तु जो अनाहिताग्नि ब्राह्मण इनको खाय तो वह एकही दिनका उपवास (ग्रेयेयुपवसेदहः) इसी वचनके अनुसार करै=कृसर उस भोजनका नामहै जो रसोईमें दो चीजें मिलाकर पकाई जायँ जिन दोनोंका रूप पकि जाने पर भी जुदा जुदा देखिपरै दृष्टान्त जैसे खिचरी आदि • संयाव का दृष्टान्त है गुझिआ पिराक आदि • पायस का दृष्टांत है खीरि आदि • पूप का दृष्टान्त पुआ गुना आदि अथवा अपूप शब्द लेनेका दृष्टान्त है कसार आदि• शष्कुलीका दृष्टांत है पूरी आदि • इतने नाम कहिनेसे सब तरहके भोजनका स्वरूप जाहर कियागया तिनके साथ वृथा शब्दकी योजनासे यह भाव दर्शाया है कि ठाकुर नारायण को भोग वा अग्नि जिमाउना आदि देवता का निमित्त (बहाना) धरे विना जो भोजन कीवस्तुबनाईगईसोवृथाकहातीहैतिसकोखानेकेदोप्रायश्चित्तव्यवस्थितकियेगये॥

(भिन्नभग्नपात्रादिषु भोजनेच प्रायश्चित्तं)

फूटे टूटे फटे आदि बहुतेरे साजे भी पात्रोंमें भोजन करनेका निषेध है कदाचित कोई ब्राह्मण आदि विवेको ऐसे खाय तिसके प्रायश्चित्त हैं=यथाह संवर्तः=शूद्राणांभाजनेभुक्त्वाभुक्त्वावाभिन्नभाजने अहोरात्रोषितोभूत्वापचगव्येन शुध्यति=तथा स्मृत्यंतरेपि=वटार्काश्वत्थपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः कोविदारकदंबेषु भुक्त्वाचांद्रायणं चरेत्=तथान्यच=पलाशपद्मपत्रेषुगृहीभुक्त्वैन्दवंचरेत् वानप्रस्थोयतिश्चैवलभतेचांद्रिकफलम्=अर्थात्–संवर्तने कहाहै कि शूद्रों के बासनमें भोजन करै या अपने भी फूटे बासनों में खाय सो एक दिनरात्रि का उपवास करिके दूसरे दिन पचगव्य पीकर शुद्ध होताहै=तैसा किसी और स्मृतिका यह वचन है कि=बरगदा•अकौआ•पीपर• कुम्भी• तिन्दुक• कचनार• कदम• इनके पत्तोंपर धरिके भोजन करै तिसको चांद्रा-

यण करना चाहिये=तैसा और भी यह वचन है कि=ढाखा पदम इनके पत्तों पर गृहस्थी पुरुष भोजन करें तिसको चांद्रायण करना चाहिये॰ परन्तु वानप्रस्थ और यती संन्यासी आदि जो इनपर भोजन करें तिनको चांद्रायण करनेकी बराबर फल मिलता है अर्थात उनको विशेषकर इन्हीं पत्तोंपर भोजन करना चाहिये॥ विरली चीज ऐसीहैं जिनमें हाथ थँबोड़कर न देनी परोसनी चाहिये किन्तु चमचा आदि किसी पात्रसे उठाकर देनी चाहिये तिनके खाइ लेनेका प्रायश्चित्त नीचे देखो॥

(हस्तदानादिक्रियादुष्टभोजनप्रायश्चित्तं)

अथ पराशरः=माक्षिकंफाणितंशाकंगोरसंलवणांघृतम् हस्तदत्तानिभुक्त्वातुदिनमेकमभोजनम् (कामतस्तु हारीतोक्तंद्रष्टव्यं)=अर्थात—सहत॰ राब॰ रँधसाग॰ दही॰ दूद॰ मठा॰ नमक॰ घी॰ ये चीजें हाथ डबोकर दीहुई खाइके एकदिन निराहार व्रत राखना (परन्तु जिसने जानि बूझि इच्छा सहित ऐसी चीज खाईहो तिसके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त देखना=यदाह हारीतः=हस्तदत्तभोजने अब्राह्मणसमीपेभोजने दुष्टपंक्तिभोजने पंक्त्यग्रतोभोजने अभ्यक्तमूत्रपुरीषकरणे मृतसूतकशूद्रान्नभोजने शूद्रैःसहस्वप्नेत्रिरात्रमभोजनम्=अर्थात—हाथ थँबोलिके दीहुई खानेमें॰ अब्राह्मण जिसमें ब्राह्मणके लक्षण नहीं तिसके पास बैठि खाने में॰ पाँतिसे पहिले खाइ लेने में (अर्थात पांति जब तक नहीं बैठी कोई एक पहिले भोजन करिलेवै या ज्योंनारकी पाँति बैठिजाने पर भी परस होते समय भोजनकी आज्ञा प्रकट होनेसे पहिले कोई खाने लगैं तिस दोष) में॰ और दूषित पाँति जो इसी उक्त प्रकारसे दूषित होचुकी या जिस पाँतिमें कोई अपांक्त पुरुष घुसि बैठा या किसीने पत्तल उठाइ डारी इत्यादि दोषवाली पंक्तिमें खाने पर॰ खाते समय हाथ पैर आदि धोने लगें या तेल मलिकर खाने बैठें या खाते समय मूत गूह दपकिपरें ऐसा भोजन करनेमें॰ मरेका सूतकी अन्न या शूद्रका अन्न खाइलेने से शूद्र के साथ सोने में॰ इन सब दोषों पर तीन तीन दिनका निराहार उपवास प्रायश्चित्त है॥ ०॥ अदल बदलसे पर्याय लक्षणके साथ दिया अन्न भी दूषित कहाता है तिसका प्रायश्चित्त आगे देखो=तदाह वृद्धयाज्ञवल्क्यः=ब्राह्मणान्नंददच्छूद्रः शूद्रान्नंब्राह्मणोददत् द्वयमेतदभोज्यंस्याद्भुक्त्वातूपवसेदहः=अर्थात—ब्राह्मणका अन्न यदि शूद्रके हाथ से दिया जाय या शूद्र का अन्न यदि ब्राह्मणके हाथ से दियाजाय तौयह दोनोंअन्नअभोज्यहोतेहैं तिनको यदि खाय सो एक दिन उपवास करै॥ ०॥ स्वकीयान्नमपिशूद्रहस्तेनाग्राह्यं—

शूद्रके हाथसे अपना भी अन्न खाने पीने पर प्रायश्चित्त है=तदाह मनुः=शूद्रहस्ते नयोभुंक्तेपानीयंवापिवेत्क्वचित अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति=अर्थात-शूद्रके हाथसे जो कोई द्विजाती खाता है या कहीं कोईजलपीवे सो एकदिन राति का उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है=और भी=अन्नको मुह से फूंकना आदि कई बातोंका निषेध है=तदप्याह मनुः=आसनारूढपादोवावस्त्रार्धं प्रावृतोपिवा मुखेनधमितंभुक्त्वाकृच्छ्रं सांतपनंचरेत=अर्थात-ऊँचे आसन पर पैरधरे या फर्श पर बैठाहुआ अथवा आधी धोती ओढे हुये खाय यद्वा गरम अन्न को मुह से फूंकि फूंकि भोजन करे तिसको कृच्छ्रसांतपन करना चाहिये ॥

अथाचनवपुराणादिश्राद्धान्नभुग्ब्राह्मणानांप्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदःद्विसप्ततितमः (७२)



इस परिच्छेदमें सब तरहके नवे पुराने बीचके श्राद्धोंका नौता आदि कुछ अन्न खानेवाले ब्राह्मणोंके प्रायश्चित्त भेद कहे जायँगे–तिनके प्रसंगसे वृद्धिश्राद्ध आदि उत्सवोंके श्राद्ध और कुमौत वालों के श्राद्ध और अपांक्तोंके श्राद्ध और संस्कारों के अंगभूत श्राद्ध और कच्चे अन्नके आम श्राद्ध खाने वालोंके जुदे जुदे प्रायश्चित्त कहे जायँगे–और जो ब्रह्मचारी होके श्राद्धखाय या परस्पर बदले के व्यौहार में अनिष्ट भोजन कोईभी द्विजाती करे तिनके भी प्रायश्चित्त है ॥

(त्रिरात्रादिश्राद्धान्नभोजनेप्रायश्चित्तं)

अत्राह भारद्वाजः=भुंक्ते चेत्पार्वणश्राद्धेप्राणायामान्षडाचरेत उपवासस्त्रिमासा दिवत्सरांतंप्रकीर्तितः प्राणायामत्रयंवृद्धावहोरात्रंसपिंडने असरूपेस्मृतंनक्तं व्रतपारणकेतथा द्विगुणंक्षत्रियस्यैतद् त्रिगुणंवैश्यभोजने साक्षाच्चतुर्गुणंह्येतत्स्मृतंशूद्रस्यभोजने (अतिथौद्वारितिष्ठतिनभोक्तव्यं) अतिथौतिष्ठतिद्वारिह्यपःप्राश्नंतियेद्विजाः रुधिरंत द्भवेद्वारिभुक्त्वा चान्द्रायणंचरेत=हारीतो प्याह=एकादशाहेतुत्र्यहंभुक्त्वासंचयनेतथा उपोष्यविधिवत्स्नात्वाकूष्मांडे र्जुहुयाद्घृतम=विष्णुरप्याह=प्राजापत्यंनवश्राद्धे या दोनंचाद्यमासिके मैत्रकिर्केतदर्धंस्तुपचगव्यंद्विमासिके (इतिचापद्विषयमिति मिता क्षरा)=अनापदितुहारीतआह=चान्द्रायणंनवश्राद्धे प्राजापत्यंतुमिश्रके एकाहस्तुपु

राणोयुप्राजापत्यंविधीयते (प्राजापत्यन्तुमिश्रके इत्येतदाद्यमासिकविषयंद्रष्टव्यं इ तितु मिताक्षरा=द्वितीयादिषुतु यदभिशानसतोक्तं यथा=प्राजापत्यंनवश्राद्धेपादोनन्त्वा द्यमासिके त्रैपक्षिकेतदर्धन्तुपादोद्वैमासिकेतथा पादोनकृच्छ्रं निर्दिष्टंयड्मासेचतथा ब्दिके त्रिरात्रंचान्यमासेषुप्रत्यहंचेदहःस्मृतम=अर्थात्–यदि कोई ब्राह्मण किसी ब्राह्मणके पार्वणश्राद्धमें कि जो कनागत आदि पर्वोंमें होताहै भोजन करै सो छे बार प्राणायामही करिके शुद्ध होजाता क्योंकि पार्वणश्राद्ध बहुत अनिष्ट नहींहै• परन्तु जिस मृतकको दो मास बीतिजाने बादि तीसरे महीनेका श्राद्ध आदि लेकर वर्षी पर्यन्त चाहैं तिस महीनेका मासिक श्राद्ध होय तिसका अन्न खानेवाले को एक उपवास करना चाहिये• जिसने पुत्रका जन्म आदि किसी वृद्धिश्राद्धमें जो नान्दीमुख प्रसिद्ध है खायाहो तिसको तीनि प्राणायाम करने चाहिये क्योंकि यह पार्वणसे भी कुछ श्रेष्ठहै• जिसने सपिण्डीश्राद्धमें खायाहो तिसको एकदिन रातिभर उपवास करना चाहिये•जिसनेअसद्रूप श्राद्धमें खाया हो जिसका कोई प्रसिद्ध नामरूप न हो तिसको नक्त भोजन व्रत करनाचाहिये और जिसने महाव्रतोंकेपारण संबंधी श्राद्धमें खाया हो तिसकोभी यही नक्तव्रत अर्थात् रात्रि में भोजन करना चाहिये (यह सब केवलब्राह्मण का अन्न खानेपर कहागया किन्तु क्षत्रीका श्राद्धान्न खाकर इनसे दूने प्रायश्चित्त और वैश्य का श्राद्धान्न खाने में तिगुना और साक्षात् शूद्र का श्राद्धान्न खाने में चौगुना करवाया जाय (अतिथौतिष्ठतिनभोक्तव्यं) अतिथि अभ्यागत जिनके द्वार पर उपस्थित होय तिसको दिये विना पानी तक पीलेने वाले द्विजाती लोग जैसा रुधिर पीते हैं तैसा दोष लगताहै तिससे अतिथि को दिये विनाकुछ अन्न खाइ लेवै सो चांद्रायण व्रत करै यह भारद्वाज ने कहा= हारीत भी कहिते हैं कि=एकादशा का श्राद्धान्न खाइके तीन दिन उपवास करै तथा अस्थिसंचयन (मुर्दाके हाड़ चुगने) के दिनका श्राद्धान्न खाइ सोभी तीन दिन उपवास करनेके पीछे विधि से स्नान करिके कूष्मांड नाम जाति के वेदोक्त मंत्रों से घी का होम करै= विष्णु भी कहिते हैं कि= नवश्राद्ध नवीन जो एकादशा तक होते हैं तिनमें यदि कोई विप्र भोजन करै सो प्राजापत्य करै• परन्तु जो महीना पूरा होने पर पहिले महीने का श्राद्धान्न खाय सो चौथाई कम करिके तीनि पाद प्राजापत्य करै• जो तीनि पाख पूरे होने पर तिपखी श्राद्ध का अन्न खाय सो आधा प्राजापत्य करै• जो द्विमासी श्राद्ध का अन्न खाय सो पंचगव्य ही पीकर एक दिन में शुद्ध होता है (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह सब छोटे प्रायश्चित्त उसके लिये समझना

जिसने आपत्काल के प्रभाव से ऐसे अन्नखाये हों=किन्तु अच्छे भले दिनोंमें जिसने खाया हो तिसके लिये हारीत ने जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि=नव श्राद्धोंमें खाकर चान्द्रायण करे और मिश्रक श्राद्ध में खाकर बारह दिन का प्राजापत्य करे और पुराने श्राद्ध जिनको मरे बहुत वर्षे बीति गई तिनमें खाकरएकही दिन का प्राजापत्यहोता है (मिश्रक श्राद्ध उसको जानना जो पहिले मास का श्राद्ध किया जाय (क्योंकि अति नयाभी नहींरहा अतिपुराना भी नहीं ठहिरा इसीसे दोनों लक्षण इसी में समिले हुये ठहिरे) यह मिताक्षराकार ने कहा और यह भी कहा कि= दूसरे महीनाको आदि लेकर जो मासिक श्राद्ध किये जायँ तिनका अन्नखाने मध्ये षट्त्रिंशन्मत का कहा प्रायश्चित्त आगे देखो कि=नवीन श्राद्ध जो एकदशा तक होते हैं तिसका अन्न खाइ सो प्राजापत्य करे और पहिला महीना पूरा होनेका श्राद्धान्न खाय सो पौन प्राजापत्य करे और त्रिपक्षी श्राद्ध का अन्न खाय सो आधा प्राजापत्य करे और द्वैमासिक श्राद्ध का अन्न खाइ सो चौथाई प्राजापत्य करे और छमाही श्राद्ध या वर्षीश्राद्ध का अन्न खाइ लेने में चौथाई कम तीन पाद कृच्छ्र करना कहा है और इनसे उपरान्त जो महीने वर्षके भीतर बचे तिनका श्राद्ध किया जाय तिसका अन्न खाने वाले को सामान्य तीन दिनका प्रायश्चित्त चाहिये और जहां कहीं साल भरतक रोज रोज श्राद्ध किया जाय या नित्य श्राद्ध की विधि से रोज श्राद्ध किया जाय तिसका अन्न खाने वाला एक दिन उपवास करिके शुद्ध होता है (यह प्रायश्चित्त सब उसके लिये कहेगये जिसने ब्राह्मण का श्राद्धान्न खायाहो ॥०॥ क्षत्री आदि वर्णों का श्राद्धान्न खालेने मध्ये उसी षट्त्रिंशन्मत ग्रन्थ में जुदे प्रायश्चित्त हैं सोभी यहां देखो=यथाह=चान्द्रायणंनवश्राद्धे पराकोमासिके स्मृतः त्रैपक्षिकेसांतपनंकृच्छ्रोमासद्वयेस्मृतः क्षत्रियस्यनवश्राद्धे व्रतमेतदुदाहृतम वैश्यस्यार्धाधिकंशेषंकार्यत्रिभिर्मनीषिभिः शूद्रस्यतुनवश्राद्धे चरेच्चांद्रायणद्वयम सार्धचांद्रायणंमासेत्रिपक्षेत्वैंदवंव्रतम मासद्वयेपराकःस्या दूर्ध्वंसांतपनंस्मृतम=अर्थात्–नये श्राद्धों का अन्न खाकर चांद्रायण करे• प्रथम मासका श्राद्धखाकर पराक व्रतकरे• त्रिपक्षी श्राद्ध खाकर सांतपन करे• दुमाही श्राद्ध खाकर कृच्छ्र करे• यह क्षत्री के नव श्राद्ध खानेमें व्रतका नियम कहा गया• जिसने वैश्य का नया श्राद्ध खाया हो तिसको क्षत्री से डौढ़ा चाहिये यह मनीषी लोगों का कथन है• और शूद्र का नया श्राद्ध जिसने खाया हो सो पूरे दो चांद्रायण करे• जिसने वैश्य का मासिक श्राद्ध खाया हो सो डेढ़ चांद्रायण करे• जिसने वैश्य की तिपखी खाई हो सो एकचां-

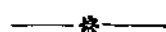
द्रायण करै• जिसने वैश्य का दुमाही श्राद्ध खाया हो सो पराक व्रत करै इसके उपरान्त के श्राद्धों में सांतपन करना कहा है ॥०॥ अपमृत्युवच्छ्राद्धे तु-शंखछ जी का वचन यद्यपि अविशिष्ट है कि=चांद्रायणंनवश्राद्धेपराकोमासिकेस्मृतः पक्षे त्रयेऽतिकृच्छ्रःस्यात्षड्मासेकृच्छ्रएवतु । आब्दिकेपादकृच्छ्रं स्यादेकाहःपुनराब्दिके अतऊर्ध्वंनदोषःस्यात्शंखस्यवचनंयथेति (तदपिसर्पादिहत श्राद्धस्यविषयमितिमिता क्षरा•येस्तेनपतितक्लीबाइत्याद्यपांक्तं यविषयंवेतिचमिताक्षरा=अर्थात्- नव श्राद्ध का अन्न खाइलेने में चांद्रायण और मासिक श्राद्ध खाने में पराक और तिपखी श्राद्ध खाने में अतिकृच्छ्र और छमाही श्राद्ध खाने में कृच्छ्रही करना कहा है और वर्षी श्राद्ध का अन्न खाने में चौथाई कृच्छ्र किया जाय और पुनराब्दिक अर्थात् दूसरे वर्षके भीतर जो श्राद्ध होय तिसका अन्न खाने में एकही दिन उपवासकिया जाय इसके उपरांत तीसरी वर्ष आदिके श्राद्धों में कुछ दोष नहीं ऐसा शंखजी का यही वचन एकादिके कहिता है (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह शंख जी का कहा प्रायश्चित्त उन श्राद्धों पर समझना जो सांप काटे आदि कुमौत मरेहुयों के श्राद्ध कियेजायँ अथवा चोर पतित नपुंसक आदि अपांक्तेयोंके श्राद्ध पर समझना• क्योंकि यह प्रायश्चित्त बड़ा है) औरभी अगिले वचनों में देखना इन्हीं अपांक्तेयों का श्राद्ध खाने मध्ये बड़े प्रायश्चित्त कहेगये हैं=यथा=चांडालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि दंष्ट्रिभ्यश्चपशुभ्यश्चमरणंपापकर्मणाम पतनानाशकैश्चैवविषोद्बंधनकैस्तथा भुक्त्वैषांषोडशश्राद्धं कुर्यादिन्दुव्रतंद्विजः॥ अपांक्तेयश्राद्धभोजने-भरद्वाजोप्याह=अपांक्तेयान्समुद्दिश्ययश्राद्धमेकादशेऽहनि ब्राह्मणस्तत्रभुक्त्वान् शिशुचांद्रायणंचरेदिति आमश्राद्धेतथाभुक्त्वातप्तकृच्छ्रेणशुध्यति संकल्पितेतथाभुक्त्वाचिरात्रंक्षपणंभवेदिति भरद्वाजेनगुरुप्रायश्चित्ताभिधानात्=अर्थात्-इतनी कुमौत कहाती हैं कि जो चांडाल के हाथ से मरै या जलमें डूबै या सांप काटामरै या ब्राह्मण के शाप से मरै या बिजली गिरिके मरै या दाढवालों से फाड़ा जाय या पशुओं से मरै या ऊँचे से गिरिके मरै या भूखे धन्ना देकरमरै या जहर खाके मरै याफाँसी से मरै इतनी मौतें पापियों की अपने पाप कर्मों से होती हैं इनके षोडशी श्राद्ध में जो कोई ब्राह्मणभोजन करै सो चांद्रायण व्रतकरै तब शुद्ध होय= भरद्वाज मुनि भी कहिते हैं कि=अपांक्तेय जो मराहो जिसके नाम का उद्देश करिके जो कुछ अन्न ग्यारहवें दिवस दिया जाय वही उसका श्राद्ध कहा जाता है उस अन्न को यदि कोई ब्राह्मण खाय तिसको शिशु चांद्रायण करना चाहिये• इसकी विधि नीचे

लिखी देखो• तथा आमश्राद्ध जो कचा अन्न देकर निर्वाह किया जाता है तिसका अन्न खाइ सो तप्तकृच्छ्र करि शुद्ध होता है• तथा सकल्प किये अन्न में भोजन करै सो तीन दिन सपराक व्रत करै जिसमें सब काम धन्धे छोडि के एकान्त में बैठिके उपवास करना होता है• इस तरह से भरद्वाज ने भी अपांक्तयों का श्राद्धान्न खाने पर बड़े प्रायश्चित्त कहे= शिशु चांद्रायण का लक्षण (चतुरःप्रातरश्नीयात् पिण्डान्विप्रसमाहितः चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचांद्रायणंस्मृतं) अर्थात् इस रीति से व्रत करै कि चारग्रास प्रातःकाल सूर्योदय की वेरापर खाय और चार कौर अस्त होते समय खाके राति वितावै तौ यही शिशु चांद्रायण कहाता है पर और वातों से सावधानरहै ॥ आमश्राद्धादेशस्तु ॥ आमश्राद्धके लक्षण (आपद्यनग्नौतीर्थेच चन्द्रसूर्यग्रहेतथा आमश्राद्धं द्विजैःकार्यं शूद्रेणतुसदैवहि अपत्नीकःप्रवासीचभार्यायस्यरजस्वला आमश्राद्धं द्विजैःकार्यंशूद्रेणतुसदैवहि=अर्थात्–द्विजातियोंको कचे अन्न का श्राद्ध यातो आपत्काल में करना चाहिये कि जब रसोई बनाना आदि अग्नि का प्रबंध न होसकै यातीर्थपर या चंद्रसूर्यके ग्रहणमें या जिसकेपत्नीके न होनेसे प्रबन्ध न होसके या जो कोई विदेशमें ठौर ठिकाने बिनाबैठाहो या जिसकीभार्यारजस्वला होगई हो तौभी आमश्राद्ध करै परन्तु शूद्रको सदा सर्वदाकचे अन्नका श्राद्धदेने की आज्ञाहै वह पाक विधि न करै•येबातें यहांकेवल प्रसंगसे दर्शाई गई= अब ऊपरकी प्रकृत व्यवस्थाका शेष फिर लिखतेहैं कि ब्रह्मचारी होकर जो श्राद्धोंमें भोजन करै तिसके जुदे प्रायश्चित्त आगे देखो॥श्राद्धभुग्ब्रह्मचारिप्रायश्चित्तं–वृद्धयम आह= मासिकादिषुयोऽश्नीयादसमाप्त व्रतोद्विजः त्रिरात्रमुपवासोस्यप्रायश्चित्तंविधीयतेप्राणायामत्रयंकृत्वाघृतं प्राश्यविशुद्ध्यति (इदमज्ञानविषय मितिमिताक्षरा•कामतस्तु सएवाहाग्रे=मधुमांसंचयोऽश्नीयात् श्राद्धं सूतकमेववा प्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रं व्रतशेषंसमापयेत्=अर्थात्–ब्रह्मचारियोंके लिये बड़े यमने कहाहै कि जिस द्विजातीने अपना ब्रह्म चर्य आदि व्रत नहीं पूरा किया उसके भीतर यदि मासिक श्राद्ध आदि का भोजनखाय सो तीन दिन उपवास किये पीछे तीन प्राणायाम करिके घी चाटे तब शुद्ध होय (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसको चाहिये जिसने अज्ञानतासे खायाहो क्योंकि• इच्छा सहित खानेवाले का प्रायश्चित्त आगे वेही वृद्धयम कहितेहैं कि=जोकोईब्रह्मचारी मद्यमांसखाय या श्राद्धमेंखाय या सूतक में खाय सो प्राजापत्य रूपी कृच्छ्रव्रत करै तिस पीछे अपना व्रत पूरा करै॥ आमश्राद्धभोजनेतु सर्वत्रार्द्धम्–कचा सिद्धान्न देनेके श्राद्धवाला अन्न चाहे गृहस्थी ब्रा-

हुआ या ब्रह्मचारी होके खाय तिन सबहीको अपने पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंका आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये-इसका प्रमाण षट्त्रिंशन्मतका वचन आगे देखो (आम श्राद्धेतदर्द्धन्तु प्राजापत्यंचसर्वदा) कच्चे अन्नके श्राद्ध में पक्के अन्न वाले प्रायश्चित्त चाहें प्राजापत्य वा औरही जो कुछहों सो आधेआधे कर्तव्यहैं यहसर्वत्र सर्वदा नियम समझे रहिना ॥ ० ॥ इन सबसे उपरान्त जो उशना का वचन है कि=दशकृत्वःपिबे चापोगायत्र्याश्राद्धभुग्द्विजः ततःसन्ध्यामुपासीतशुद्ध्येत्तुतदनन्तरम् (तदनुक्तप्रायश्चित्त विषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्-श्राद्ध भोगने वाला ब्राह्मण दश बार गायत्री पढ़ि कर जल पीवे फिर उससे आगिली सन्ध्याकी उपासना नित्यविधिके अनुसार करै तिससे शुद्ध होजायगा (सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने उन श्राद्धोंका भोजन कियाहो जिनके नाम से कुछ प्रायश्चित्त कहीं नहीं लिखा यह मिताक्षराने कहा ॥०॥ संस्कारांगभूतश्राद्धान्नभोजनेतुव्यासः=अर्थात् संस्कारों के अंगभूत जो बहुवा जन्मसे लेकर जातकर्म आदि संस्कारोंके साथ भी श्राद्धकिये जाते हैं तिनका अन्न खाने मध्ये व्यासजीने प्रायश्चित्त जुदा कहा है=यथा=निवृत्ते चूडाहोमेतुप्राङ्नामकरणात्तथाचरेत्सांतपनंभुक्त्वाजातकर्मणिचैवहि अन्योऽन्येषु तुभुक्त्वान्नंसंस्कारेषुद्विजोत्तमः नियोगादुपवासेनशुद्ध्यतेनिन्द्यभोजने=अर्थात्-चूडा कर्म(चोटीरखाना) होचुकनेके समयपर जो श्राद्ध पितरोंकी तृप्तिके अर्थ कियाजाय या कोई बड़ा होम पूरा होने के समय पर किया जाय या नामकरण (दसूठनि) से पहिले किया जाय या जातकर्म जन्म होनेके समयका जो कर्म होताहै तिसमें श्राद्ध कियाजाय इनमें जो कोई ब्राह्मण भोजनकरै वह सांतपन प्रायश्चित्त आचरै (परस्परभोजनव्यवहारस्थलेतु) दूसरी यह व्यवस्था है कि जिसने ऐसे किसी रिश्तेदार के घर निंद्य भोजन छठी दसूठनि या मृतसूतक आदि में किया हो जहां बदले में खाने खवाने का व्यवहार होय तो यह ब्राह्मण किसी और को नियोगी (मुखतार) बनाकर उसके द्वारा एक व्रत कराने से भी शुद्धहोताहै चाहें अपने आप करै तो भी कुछ निषेध नहींहै=मुखतार बनाने मध्ये-शास्त्रांतर में यह नियम है= भार्याभर्तुर्व्रतंकुर्याद्भार्यायाश्चपतिस्तथा असामर्थ्येद्वयोस्ताभ्यांव्रतभंगोनजायते- तथा-पुत्रंवाविनयोपेतंभगिनींभ्रातरंतथा एषामभावएवान्यंब्राह्मणंविनियोजयेत्= भर्ताके व्रतको उसकी भार्याकरै या भार्याके व्रतको उसका भर्ताकरै तौ इस तरहसे दोनों को किसी समय सामर्थ्य न होनेमें व्रतका भंग नहीं होताहै-भार्या के न होने में-अच्छे चाल चलन संयुक्त किसी पुत्रको अपने व्रतपर मुख्तार करै या बहिनको

या भाई को इनके न होनेमें औरही किसी ब्राह्मण को नियुक्त करे॥ सीमंतकर्मादिसत्कारेषुच ॥०॥ सीमंतोन्नयन कर्म जो गर्भाधानसे छठे आठवे महीना एक पूजा विधि प्रसिद्ध है तथा ऐसे और जो कुछ सस्कार होते हों तिनका अन्न खाने मध्ये जुदा प्रायश्चित्त है=तदाह धौम्यः=ब्रह्मौदनेचसोमेच सीमन्तोन्नयनेतथा जातश्राद्धेनवश्राद्धेद्विजश्चांद्रायणाचरेत् (अत्रब्रह्मौदनाख्यकर्मयज्ञांगभूतंसोमसाहचर्यादितिमिताक्षरा=अर्थात्-ब्रह्मौदन इस नामका एक कर्म विशेष यज्ञोंका कोई एक अंग होताहै तिसमें यदि कोई ब्राह्मण खाय तथा सोमनामसे भी यज्ञ विशेष कोई वेदोक्त कर्म होताहै तिसमें खाय या सीमन्तोन्नयन में खाय• जातश्राद्ध जो पुत्रजन्म होने बादि किये जायँ तिनमे खाय या नवश्राद्ध जो मरने पर एकादशातक किये जायँ तिनमे खाय तो यह ब्राह्मण चान्द्रायण करे तब शुद्ध होय॥ अब नीचे उन अभक्ष्योंका वर्णन होगा जो अन्न सर्वथा निर्विकार है कोई तरह दोष यद्यपि नहीं है परन्तु केवल परिग्रहका दोष मानाजाता है अर्थात् विरले मनुष्यों का स्वामित्व कब्जा उनपर होनेसेही दोष लगता है तिससे अभक्ष्य (न खानेयोग्य) कहेजातेह॥

अथपरिग्रहदोषमयान्नस्याभक्ष्यस्यभक्षणेप्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदश्चिसप्ततितमः (७३)



इस परिच्छेद में केवल उन्हींके प्रायश्चित्त कहे जायँगे कि जिन मनुष्योंनेपरिग्रह दोषमय भोजन किया हो (इसका ब्योरा इसी चक्रके ऊपर लिखि चुके तहां देखो) परन्तु उसके भेद अनेक है सो नीचे पाठ बांचने से प्रतीत होगे कि इतने मनुष्योंका दिया किया अन्न अभोज्य होता है• तिससे अनन्तर जबर्दस्ती कोई म्लेच्छ आदि कुछ खवावे या हिंसाकर्म करावे तिसके भी प्रायश्चित्त (परिग्रहा भोज्य में गिनती) है• फिर सूतकोके परिग्रहका अन्न खानेवालोंके• फिर निपट निपूतेआदिका अन्नखानेवालोंके प्रायश्चित्तहै•ये सबजुदेभेद भी उसीपरिग्रहमयदोषमेंगिनतीहै॥

(परिग्रहाभोज्यभोजनप्रायश्चित्तं)

अर्थात् जो भोजन अपने स्वरूपसे निषिद्ध नहींहै पर किसी विरले पुरुषका स्वा-

मित्व उसपर होनेसेही खानेका निषेध होय सो (परिग्रहा शुचि) कहाता है=जिन पुरुषोंके स्वामित्व वाला अन्न खानेका निषेध है तिनके नाम लक्षण योगीश्वर भी आचार मर्यादामें वर्णन करचुके हैं तहां १५९ एकसौ उनसठि मूलश्लोक उत्तरार्ध से लेकर १६४ एकसौ चौंसठिके अन्ततक साढे पांच श्लोकों की व्यवस्था देखो= और=मनुने उनसे कुछ अधिक नाम लक्षण दर्शायेहैं कि जिनका अन्नखाना मनेहै= यथाह मनुः=नाश्रोत्रियततेयज्ञे ग्रामयाजिहुतेतथा स्त्रियाक्लीबेनचहुतेभुंजीतब्राह्मणः क्वचित् मत्तक्रुद्धातुराणांतुनभुंजीतकदाचन गणान्नंगणिकान्नंच विदुषाचजुगुप्सितम् स्तेनगायनयोश्चान्नंतक्ष्णोवार्धुषिकस्यच नादीक्षितकदर्यस्यबद्धस्यनिगडस्यच अभिशस्तस्यषंढस्यपुंश्चल्यादांभिकस्यचचिकित्सकस्यमृगयोःक्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः उग्रान्नंसूतिकान्नंच पर्याचान्तमनिर्दशम् अनर्चितंवृथामांसमवीरायाश्चयोषितः द्विष दन्नंकदर्यान्नंपतितान्नमवक्षुतम् पिशुनानृतिनोश्चैवक्रतुविक्रयकस्यच शैलूषतन्तुवा यान्नंकृतघ्नस्यान्नमेवच कर्मारस्यनिषादस्यरंगावतरकस्यच सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्र विक्रयिणस्तथा श्ववतांशौंडिकानांचचैलनिर्णेजकस्यच रजकस्यनृशंसस्ययस्यचो पपतिर्गृहे मृष्यन्तियेचोपपतिंस्त्रीजितानांचसर्वशः अनिर्दशंचप्रेतान्नमतुष्टिकरमेव चेति (अत्रचपदार्थाअभक्ष्यकांडे श्राद्धकांडेचव्याख्याता इतिमिताक्षरा=अर्थात्– यहां अश्रोत्रिय उसको समझना जो पुरुष विख्यात न होय तिसकी करी ज्योनार आदि यज्ञका अन्न भोजन करना विवेकी ब्राह्मण को निषेध है• ग्राम के पुरोहित पाधाका किया होम यज्ञ तिसका अन्न खानेका निषेधहै• स्त्री ने या निपट नपुंसक ने होम यज्ञ किया हो तिसमें भी खानेका निषेध है• एवं मतवारे नशेबाज क्रोधी रोगी इनका भी कभी न खाय•गणान्न जो मठधारी आदि अपडारा करतेहैं तिसका अन्न भी•गणिका वेश्या खानगी आदि स्त्रियों का अन्न • और भी जो कोई अन्न ज्ञानी पुरुषोंका निन्दा किया ठहिरे सोभी• चोर गायन की वृत्ति करने वालों का अन्न•लकड़ी काटने आदिकी जीविका करनेवाले बढैयों का अन्न• अनुचित रीति से विआज खाताहो तिसका अन्न • अदीक्षित जिसको यज्ञोपवीत आदि गुरु दीक्षा न मिलीहो तिसका अन्न•कदर्य जिसने खोंटाधन संग्रह किया तिसका अन्न•कैदी और हवालातीका अन्न• अभिशस्त जिसको शाप या कोई पाप लगा हो तिसका अन्न• षंढ नपुंसक जो अतिकामी होकर नपुंसकहोगयाहो तिसका अन्न• पुंश्चली स्त्री और दम्भी पुरुषका अन्न• चिकित्सक जो चीरफारकी चिकित्सा और औष-धी बनानेमें जीवहिंसा करताहो तिसका अन्न• चिड़ीमार आदि शिकारी लोगोंका

अन्न• क्रूरप्रकृति वालेका अन्न• जूठ खानेवालों का अन्न• उग्र एक जाति होती है जो क्षत्रीके बीजसे शूद्रकी कन्यामें उत्पन्न हुई थी दोनोंके लक्षण मिलि के क्रूरही आचरण उसके होते हैं तिसका अन्न• सूतिका सौरिका अन्न जो दशदिन के भीतर हो• पर्याय अन्न वही जो शूद्रका अन्न ब्राह्मणके हाथसे या ब्राह्मणका अन्न शूद्र के हाथसे परोसा जाय सोभी•अनर्चित अन्न जो इन्द्रअग्नि आदि देवताओं के निमित्त नहीं अर्पण कियागया• वृथा मांस जो यज्ञविधिसे उपरान्त हुआहोय •अवीरा नारीका अन्न भी न खाना (अवीरा वही कहातीहै जिसके पुत्र पति इन दोमें कोई एक भी नहो•शत्रु का अन्न• कदर्य अतिकृपण जो धनके होते हुये भी कुटुम्ब को आराम न देताहो तिसका अन्न• पतित जो जातीधर्मसे गिराये गये तिनका अन्न • अवक्षुत जिस अन्नके ऊपर किसीने छींकमारीहो• पिशुन जो विराने अवगुण ढूंढ़ि ढूंढ़ि गैरों से कहिता फिरै तिसका अन्न • अनृती जो असत्यही अभ्यास रखता हो तिसका अन्न • क्रतुविक्रयक वह पुरुष जो यज्ञादि कामोसे बची हुई खानी पीनी सामग्री की चीजें बेचै तिसका अन्न भी न खाना अथवा दूसरा अर्थ यह भी है कि क्रतु नामसे अपनी कोईसी प्रतिज्ञा रूपी संकल्पको बेंचिडारै तिसका अन्नभी अभक्ष्य होताहै (इसका दृष्टान्त जैसे हम सत्यही बोलते हैं किसी मामिले पर असत्य नहीं कहिसक्ते हैं ऐसे संकल्पकी सची प्रतिज्ञा जिसने बहुत कालतक पालन करी हो और कदाचित् किसी मुआमिलेपर कुछ लेनेके लोभमें आकर असत्य कहि आवै तो यह पुरुष क्रतुविक्रयकर्ता ठहिरै क्योंकि उसके पास सत्य की प्रतिज्ञा रूपी बड़ा उत्तम यज्ञफल मौजूद और सबको मालूमथा तिसको उसने दाम लेकर बेचि दिया इसी दृष्टांतसे और तरहकी भी अटल प्रतिज्ञा समझि लेना कि हम शरणागत की रक्षा अवश्य भावसे करते हैं और कभी लोभ में आकर ऐसा न करैं इत्यादि•शैलूष नट कहाते हैं तिनका पेशा जो कोई त्रैवर्णिक जाति करने लगै तिसका अन्न•इसी तरह तन्तुवाय कपड़ा बुननेका पेशा करनेवालोंका अन्न•कृतघ्न जो किसीका किया हुआ उपकार मेटिडारै तिसका अन्न•कर्मार लुहारका पेशा करनेवालेका अन्न• निषाद मल्लाह आदिका पेशा करनेवालोंका अन्न • रंगावतरण जो रँगसाजी या तसबीरोंका उतारना यद्वा स्वांगतमाशोंमें आपही वेष बदलिके तरह तरहके अवतार धरैं इत्यादि पेशा करने वालोंका अन्न• सुनार और बँसफोर और शस्त्र बेचनेवालों का अन्न • कुत्ते पालनेवालोंका अन्न• कलालोंका अन्न• चैलनिर्णोजक धोबी आदि जो कपड़े धोनेका कामकरैं तिनका अन्न• रजक छीपा रँगरेज आदि जो रँगाई का

कामकरें तिनका अन्न• नृशंस हिंसक जो जीवहिंसा वाला कामकरें तिनका अन्न• जिसके घरमें उपपति लुगाईका जारयार भी रहिताहो तिसका अन्न• जे कोई पुरुष अपने घर जारको आतेजाते देखि सहिलेतेहों तिनका अन्न• जो स्त्रियोंके जीते हुये उन्हींके वशमें रहितेहों अर्थात जिस घरमें पुरुषकी बात न चलतीहो तिसका अन्न•प्रेतका अन्न जो मौतसे दशदिन भीतर काहो• अतुष्टिकर अन्न जिसको देखने से मनमें ग्लानि खड़ी होती हो• ये सब अन्न खाकर प्रायश्चित्त करना चाहिये सो आगे दर्शावैंगे (मिताक्षराकार कहिते हैं कि इस व्यवस्था में जो कुछ पदार्थ कहे गये तिनकी व्याख्या पहिले भी जहां तहां अभक्ष्यकांडके पाठमें और श्राद्धकांडके पाठमें लिखि चुकेहैं=मनुने इन सबके नाम दर्शाने पीछे सबका एकही प्रायश्चित्त कहिदिया सो देखो=यथा=भुक्त्वाऽतोऽन्यतमस्यान्नममत्याक्षपणंत्र्यहम मत्याभुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेवचेति=अर्थात्–इन सबमेंसे किसी एकही का अन्न विना जाने खाकर तीन दिन क्षपणाक रूपीव्रतकरे जिसमें सबकाल बंधे छोड़िके निराहार रहना होताहै और जिसने जानिबूझि खायाहो सो पूरा कृच्छ्रव्रत आचरे या जिस ने गूह मूत वीर्य धोखासे खायाहो सो भी कृच्छ्र प्रायश्चित्त करै तब शुद्धहोय॥०॥ धोखासे उक्तान्न खाइ लेने पर पैठीनसिने भी तीनिही दिनका व्रतकहा और अन्न भी कुछ औरभांतिके निषेध कियेहैं=तद्यथाह पैठीनसिः=कुनखीश्यावदन्तःपित्राविद्वमानः स्त्रीजितःकुष्ठीपिशुनः सोमविक्रयीवाणिजकोग्रामयाजकोऽभिशस्तोवृषल्याभिजातः परिवित्तिः परिविन्दानोदिधिषूपतिः पुनर्भूपुत्रश्चौरः कांडपृष्ठसेवकश्चेत्य भोज्यान्नाअपांक्तेया अश्राद्धार्हाःएषांभुक्त्वा दत्त्वावाऽविज्ञानात्त्रिरात्रमिति=अर्थात्–इसमें जो नाम कहे तिनके भी अर्थ पहिले प्रकरणोंमें जहां तहां व्यौरेवार कहि चुके हैं तिससे यहां केवल उन्हींका अर्थ लिखे देतेहैं जो कोईसा विशेष नामहोय• बिगड़े नखवाला• श्यावदांत वाला• पितासे विरोध राखने वाला• स्त्रियों से हारा हुआ• कोढ़ी• पिशुन चुगल खोर• सोमविक्रयी• वाणिजक ब्राह्मण• ग्रामयाजक ब्राह्मण• अभिशस्त जिसको शाप या पाप लगाहो• वृषली में सन्तान जिसने पैदा करी• परिवित्ति• परिविन्दान• दिधिषू का पति• पुनर्भूका पुत्र• चोर• जिसब्राह्मण के घर बनेनी उसकी भार्या बनिके बैठी हो वह कांड पृष्ठसेवी समझना इस वचन के प्रमाण से कि (स्वकुलंपृष्ठतः कृत्वायोवैपरकुलंव्रजेत तेनदुश्चरितेनासौकांडपृष्ठइतिस्मृतः) इतने सभी पुरुषोंका अन्न खाने योग्य नहीं और ये पांतिमें बैठारने योग्य नहीं और श्राद्ध के योग्य नहीं इनका अन्न विना जाने धोखासे खाकर

तीन दिन उपवास करै तब शुद्ध होय॥ ० ॥ इन्हीं सबके नाम कुछ इनसे भी अधिक दर्शाय कर शंखजी ने इनका अन्न खाने वाले ब्राह्मण को चांद्रायण प्रायश्चित्त करना कहा है जो एक महीना भरमें होताहै सो अभ्यास पर समझना कि जिसने अनेकवार इनका अन्न खाया हो वह चांद्रायण सेही शुद्ध होगा=इसी प्रकार=गौतम ने जूठनि खवैया पुंश्चली अभिशस्त आदि अभोज्यान्नों के नाम सब गिनाइकर उनका अन्न खानेवाले को पहिले वमन करिके घी चाटना प्रायश्चित्त कहा है सो अति छोटा होने के हेतु से आपत्कालिक विषय समझना कि जिसने अन्नाकाल आदि आपत्तिमें उनका अन्न खायाहो सो इस छोटे प्रायश्चित्त से पवित्र हो सक्ता है॥ जिसको जबर्दस्ती से अभोज्य भक्षण करवायागया हो तिसका प्रायश्चित्त नीचे॥

(बलात्कारेणाभोजितस्यप्रायश्चित्तं)

यस्तुबलात्कारेणाभुज्यतेतस्यापस्तंबेनविशेषउक्तः=यथा=बलाद्दासीकृतायेतु म्लेच्छचांडालदस्युभिःअशुभंकारिताः कर्मगवादिप्राणिहिंसनम् उच्छिष्टमार्जनंचैवतथोच्छिष्टस्यभोजनम् खरोष्ट्रविड्वराहाणां मामिषस्यचभक्षणम् तत्स्त्रीणांचतथासंगस्ताभिश्चसहभोजनम् मासोषितेद्विजातौतुप्राजापत्यंविशोधनम् चांद्रायणंत्वाहिताग्नेःपराकस्त्वथवाभवेत् चांद्रायणंपराकंचचरेत्संवत्सरोषितः संवत्सरोषितःशूद्रो मासार्द्धंयावकंपिबेत् मासमात्रोषितःशूद्रःकृच्छ्रपादेनशुद्ध्यति ऊर्ध्वंसंवत्सरात्कल्प्यंप्रायश्चित्तंद्विजोत्तमैः संवत्सरैस्त्रिभिश्चैवतद्भावंसनियच्छति–अर्थात्=जिस किसी को जबर्दस्ती से न खाने की वस्तु कुछ खवाई जाय तिसके जुदे प्रायश्चित्त आपस्तंबने कहे हैं कि=जो कोई कहीं पकड़ि के जबर्दस्ती से म्लेच्छ चण्डाल आदि डाकुओं ने दास बनाये और मलीन वा अशुभ काम उनसे करवाये या गाय बैल आदि जीवों का बध उनके हाथ से कराया हो और गदहा ऊंट विष्ठा खाने वाला सुअर इनके मांस खवाये हों और उन चण्डाल म्लेच्छों की स्त्रियों से सङ्गम इसका हुआहो या उनके साथ मिलिके भोजन करना पराहो–ऐसा द्विजाती तीनोंवर्णों में कोई हो जो एक महीना भर तक उनके साथ बसा फँसा रहाहो तिसकी शुद्धि बारह दिन प्राजापत्य की विधि करने से होजाती है॰ परन्तु वह पुरुष जो आहिताग्नि अग्नि की पूजा करने वालाहो तौ चांद्रायण करिके शुद्ध होगा अथवा महीना के भीतर कुछ थोड़े दिन चण्डालोंके साथ रहिना पराहो तो इस अग्निमान की शुद्धि बारह

गृहस्थधर्मसंवृत्तोयोददातिपरिवर्जितः ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचःसंप्रकीर्तितः=अर्थात्-लिखित नामा मुनि कहितेहैं कि=वार्धुषिक जो अनुचित किस्तिलगानेकी उगाही आदिप्रकारोंसे व्याजखाता हो और अव्रत वह कि जिसके किसी बातका नियम सचा नहोय और अप्रुत वह कि जिसके वेटा पोता पर पोता आदि नहोने में वारह प्रकारके शास्त्रोक्त पुत्रों में भी कोई नहो और शूद्रवर्णमें कोईसी जाति हो• इनके अन्न खाइके तीनदिन निराहार व्रतकरे=तथा उन्हींने यहदूसरा वचन कहाहै कि=परपाक निवृत्त•परपाकरत•अपच•इन तीनोंका अन्नखाकर ब्राह्मणको चांद्रायण करना चाहिये(मिताक्षरा कार कहितेहैं कि यहइतना वडा प्रायश्चित्तकुछएकवार के भोजन पर नहीं किन्तु अनेकवार खाने का अभ्यास करनेवाले पर समझना= अपने धरे तीनों नामके लक्षण भी लिखित मुनि आपही कहिते हैं कि=जो गृहस्थी अग्नि कर्मको आरोपित करिके भी पंचयज्ञोंको न करै उसीको (परपाकनिवृत्त) इसनामसे मुनीश्वरोंने कहाहै और जो पांचयज्ञोंको करिके भी नित्य निरन्तर प्रातःकाल उठिके पराये अन्नसे मौताखौता खाकर जिन्दगी काटताहै वही(परपाकरत) इस नामसे कहाता है और जो गृहस्थ के सब धर्मोंमें लगा हुआ तत्पर होते भी एक ददाति कर्मसे खालीहै कि वह भिक्षा आदि किसीप्रकारसे भी दानमात्र कुछ न करताहो उसीको धर्मतत्त्वके जाननेवाले ऋषीश्वरोंने(अपच)इसनामसे जताया है ॥०॥ जोकि ब्रह्मचारी आदिका अन्नखाने पर यह प्रायश्चित्त है कि=यतिश्चब्रह्मचारी चपक्वान्नस्वामिनावुभौतयोरन्नंनभोक्तव्यं भुक्त्वाचांद्रायणंचरेदिति=अर्थात्-संन्यासी और ब्रह्मचारी ये दोनों पक्वान्न के परिभोक्ता हैं परन्तु इनदोनोंका अन्न गृहस्थीको न खानाचाहिये कदाचित कोई खाय सो चांद्रायण करै=और जो=पार्वण श्राद्ध आदि न करनेवालोंका अन्नखानेपर भरद्वाजने प्रायश्चित्त कहाहै कि=पक्षेवाथवि वासासेयस्यनाश्नंतिदेवताः भुक्त्वादुरात्मनस्तस्यद्विजश्चांद्रायणंचरेदिति (तदुभय मप्यभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्-हर पखवारे या हरमहीने जिसके घर देवता नहीं जिमाये जातेहों ऐसे दुरात्माका अन्नखाकर ब्राह्मणको चांद्रायण करना चाहिये (सो यह दोनो वचन के प्रायश्चित्त भी एकवार के भोजन पर नहीं किन्तु अनेकवारके अभ्यासपर समझना यह मिताक्षराकारने कहा ॥ ० ॥ पहिले सबकहे गये निषिद्धों से उपरान्त जो निषिद्धाचरणवाले कुछ और हों तिनका अन्नखाने पर षट्त्रिंशन्मत के ग्रन्थमें प्रायश्चित्तहै सो देखो=यथा=निराचारस्यविप्रस्यनिषिद्धा चरणस्यच अन्नं भुक्त्वाद्विजःकुर्याद्दिनमेकमभोजनम्=अथाचैवसंवत्सराभ्यासेपट्टिं

शन्मतेरवोक्तं=यथा=उपपातकयुक्तस्यअव्दमेकं निरंतरम् अन्नंभुक्त्वाद्विजःकुर्यात्परा कंतुविशोधनमिति=अर्थात्–जिस ब्राह्मणमें ब्राह्मणत्वका आचार न होय तिसका अन्न और जो खोटे आचरणसे संयुक्तहोय तिसका अन्न जो कोई ब्राह्मणखाय सो एकदिन निराहार उपवास करे=इन्हींका अन्न जो एकसालभर निरन्तर खाताहै तिसका प्रायश्चित्तभीयद्गिशन्मतहीमें कहाहै कि=उपपातकसे संयुक्तका अन्न जो कोई ब्राह्मण एक वर्षभर निरन्तरखाय तिसको पराक नामका प्रायश्चित्त करना चाहिये (उपपातक अनेकधा होतेहैं परन्तु यहाँपर निराचार और निषिद्धाचरण इन दोहीका चर्चाहै ॥ ० ॥ इदंतुभक्ष्याभक्ष्यप्रायश्चित्तकांडगत विशेषोदितव्रतक दंवकं द्विजाग्रयस्यैव क्षत्रियादीनांतुपादपादह्रान्याभवतीतिमिताक्षरा=विप्रेतुसकल देयंपादोनंक्षत्रियेस्मृतम् वैश्येर्द्धंपादएकस्तुशूद्रजातिषुशस्यते इतिविष्णुस्मरणात्= अर्थात–मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह भक्ष्याभक्ष वाले प्रायश्चित्तों के कांड में आकर जुदा एक व्रतोंका समूह दर्शाया गया सो ब्राह्मणकेही प्रयोजनपर आरूढ़ है तथापि जो कदाचित् इन्हीं बातोंसे क्षत्रीका प्रयोजन आनिपरै तो उसको चौथाई कमकरिके यही प्रायश्चित्त पौनें पौने बतायेजायँ एवं वैश्यको आधे आधे शूद्रको एक एक पाद बतायेजायँ इसका प्रमाण यथोक्त विष्णुका वचन है कि=ब्राह्मण में पूरा प्रायश्चित्त लगावै और क्षत्रीमें पौन और वैश्यमें आधा और शूद्रजातियोंमें एक पाद ठीक है• परन्तु प्रकरण के बीचमें जहां कहीं विरली व्यवस्था तीनो वा चारोवर्णोंको भिन्न भिन्न कहिचुकेहों तिसमें यहक्रम करनेका नियम नहीं लगाया जासक्ता है यह याद राखना॥

(इत्यभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तप्रकरणं)

इस प्रकरणमें ६९ उनहत्तरि परिच्छेदके प्रारम्भ से लेकर७३ तिहत्तरि के अंत तक पांच परिच्छेद है पांचों में सब तरहके अभक्ष्योंकी व्यवस्था कहीगईहै तिससे अभक्ष्योंका प्रकरण इसका नाम ठहिरा॥

अब नीचे७४के परिच्छेदमें दो किस्मके पापोंका जुदा जुदा प्रायश्चित्त लिखा जायगा• तहां यद्यपि जातिभ्रंशकर आदि नामोंकी किस्म एक जुदीहै उसका परि- च्छेद भी जुदा होना चाहिये था परन्तु उसका पाठ अतिशय थोड़ा है उनके लिये जुदा घर नहीं बनाया जासक्ता•तिससे प्रकीर्ण किस्मके परिच्छेद में उनको भी वि- राने घरमे जगह देनी परेगी ॥

दिन पराक व्रत की विधि करने से होजायगी• परन्तु जो महीनासे अधिक एकवर्ष तक चण्डालोंकेवशमें रहाहो चाहैं अग्निसात् या अनग्निसात् कोईहो चांद्रायणऔर पराकभी दोनों प्रायश्चित्त करै तब शुद्धहोय यहसब द्विजातियोंकी व्यवस्था कही• कदाचित् कोई शूद्रही एक वर्ष तक ऐसा फँसा रहा हो तिसको एक पखवाराभर यावक पीके व्रत करने चाहिये (गोमूत्र में रँधे जौ का दलिया यावक होता है• परन्तु जो शूद्र भी एकही महीना तक उनमें फँसा रहाहो सो कृच्छ्र व्रत की चौथाई केवल तीन दिन यावक पीकर या कृच्छ्र ही की रीति से व्रत करिके शुद्ध होजाय गा• परन्तु जहां कोई द्विजाती या शूद्र एकवर्षसे जितना अधिक दिनोंतक चण्डालों में घिरा फँसा रहाहो उतनाही प्रायश्चित्त भी अधिक बढ़ाकर हिसाब से करवाना चाहिये सोभी यह कल्पना सिर्फ तीनि वर्ष के भीतर में प्रायश्चित्त बढ़ाने की होसक्ती है किन्तु पूरे तीनि वर्ष चण्डालों के साथ रहिते बीति जाने में यह पुरुषभी उन्हीं के समान होजाताहै फिर प्रायश्चित्त नहीं लगता॥ अब नीचे यह व्यवस्था लिखी जायगी कि जबकोई किसी सूतकमें खाय तिसपर क्याप्रायश्चित्त चाहिये॥

(आशौचिपरिग्रहान्नभोजनप्रायश्चित्तं)

अत्रछागलः= अज्ञानाद्भोजनेविप्रः सूतकेमृतकेपिवा प्राणायामशतंकृत्वाशुद्ध्यंते शूद्रसूतके वैश्येयाष्टिर्भवेद्राज्ञिविंशतिर्ब्राह्मणेदश एकाहंचत्र्यहंपंचसप्तरात्रमभोजनम् तथाशुद्धिर्भवत्येषांपञ्चगव्यंपिबेत्ततः (इतिब्राह्मणादिक्रमेणैकाहत्र्यहादयोयोज्याः इदमकामविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्–सूतकों वाले काम के कब्जे में रहिता हुआ अन्नभी अभोज्य होता है तिसके खवैया पर जो प्रायश्चित्त चाहिये सो छागलमुनि कहिते हैं कि=जो ब्राह्मण किसी शूद्र के वृद्धिसूतक में या मौत सूतक में विनाजाने भोजन करैं सो एक सौ १०० प्राणायाम करिके शुद्ध होते हैं और वैश्य के सूतकों में भोजन करैं सो साठि ६० प्राणायाम करिके शुद्ध होते हैं और क्षत्री के सूतकों में खाकर २० प्राणायामों से और ब्राह्मण के सूतकों में खाकर दश १० प्राणायामों से पवित्र होते हैं• परन्तु केवल प्राणायामों से नहीं किन्तु ब्राह्मण के सूतक में एकदिन क्षत्री के सूतकमें तीनदिन वैश्य के सूतक में पांचदिन शूद्रके सूतकमें खाइकर सातदिन निराहार व्रतभीकरै फिर व्रतोंके समाप्त होने बादि एकदिन पंचगव्य पीवैं तब शुद्धहोयँ (यहप्रायश्चित्त इच्छाके विना भूलभालमें खाले मध्ये कहागया=किन्तु=जानि बूझि इच्छा सहित खानेके विषय पर आगिला प्रायश्चित्त देखो=यदाह मार्कंडेयः=भुक्त्वात्तुब्राह्मणाशौचे चरेत्सांतपनंद्विजः भुक्त्वातु

क्षत्रियाशौचेतथाकृच्छ्रोविधीयते वैश्याशौचेतथाभुक्त्वा महासांतपनंचरेत् शूद्रस्यैव तथाभुक्त्वा द्विजश्चांद्रायणांचरेदिति=अर्थात्-ब्राह्मण किसी ब्राह्मण के सूतकों में भोजन करै तिसको सांतपन करना चाहिये• क्षत्रीके सूतकोंमें भोजन करै सो कृच्छ्रव्रत आचरै• वैश्य के सूतकों में भोजन करै सो महा सांतपन करै• शूद्र के सूतकों में कोई द्विज भोजन करै सो चांद्रायण करै तब शुद्धहोय ॥०॥ इनके सिवाय जिसने इच्छा सहित वारम्बार सूतकोंमे खानेका अभ्यास किया हो तिसके लिये बड़े प्रायश्चित्त हैं सो आगे देखो=तदाह शंखः=शूद्रस्यसूतकेभुक्त्वा षड्मासव्रतमाचरेत् वैश्यस्य तुतथाभुक्त्वात्रिमासान्व्रतमाचरेत् क्षत्रियस्यतथाभुक्त्वाद्वौमासौव्रतमाचरेत् ब्राह्मणस्यतथाऽऽशौचेभुक्त्वामासव्रतंचरेत् (इदमभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्-शंख मुनि कहते हैं कि शूद्र के सूतकों में खाइके छमाही भर व्रत आचरै• वैश्य के सूतकोंमें खाइके तीन महीने व्रतकरै• क्षत्रीके सूतकोंमें खाइके दो मासभर व्रत करै• ब्राह्मण के सूतकोंमे खाइके एकमहीना भर व्रतकरै ॥ ० ॥ ऊपर छागल के वचनसे आदि लेकर इसीपाठमें सूतकी अन्न खानेपर जोकुछ प्रायश्चित्त लिखेगये तिनका प्रारंभ सूतक बीतिजानेके दूसरे दिनसे करनाहोताहै क्योंकि जितनेसूतकी दिन बाकी हैं उतने दिन खानेवालाभी सूतकी रहिता है उसकोभीस्नानमात्रकी आशौच विधि करनी होती है•यह नियम देखो सब से पहिले परिच्छेदमें चौदहवीं अधिकोक्तिके अन्त में गौतम का वचन है• फिर सत्रहवें १७ मूल श्लोक वाली अधिकोक्ति के अन्त में देखो जहां सूतकान्न भोजन के निषेध आदि नियम जो उसी अधिकोक्ति के पूरे होने तक व्यवस्थित होरहे हैं कि जिस वर्ण के सूतकमें शामिल होय यहा अन्न खाय उसी वर्ण के समान सूतक माने-और यहांभी अग्रोक्त विष्णु का वाक्य देखो कि (आशौच व्यपगमे प्रायश्चित्तकुर्यात) सूतकी दिन बीति जानेपर प्रायश्चित्तकरै ॥ अवनीचे निषद निपुते आदिका अन्न खानेपर प्रायश्चित्त कहेजायेंगे॥

(अपुत्रादीनां भोजन प्रायश्चित्तं)

अथाह लिखितः=भुक्त्वावार्द्धुषिकस्यान्नमव्रतस्यासुतस्यच शूद्रस्यचतथाभुक्त्वा त्रिरात्रस्यादभोजनम्=तथा=परपाकनिवृत्तस्यपरपाकरतस्यच अपचस्यतुभुक्त्वान्नं द्विजश्चांद्रायणांचरेत् (एतच्चाभ्यासविषयमिति मिताक्षरा=परपाकनिवृत्तादेर्लक्षणंचतेनैवोक्तं=गृहीत्वाग्निंसमारोप्यपंचयज्ञान्ननिर्वपेत् परपाकनिवृत्तोऽसौमुनिभिः परिकीर्तितः पंचयज्ञांस्वयंकृत्वापरान्नादुपजीवति सततंप्रातरुत्थायपरपाकरतस्तुसः

अथजातिभ्रंशकरसंज्ञकाद्युपपापाना'प्रकीर्णसंज्ञकपापानां- चवहुविधानाप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः चतुःसप्ततितमः (७४)॥

यह परिच्छेद अपनी प्रधानता से प्रकीर्ण पापों के प्रायश्चित्त पर आरूढ है तथापि इसके प्रारम्भ में पहिले जातिभ्रंशकर १ सकरीकरण २ अपात्रीकरण ३ मलिनी करण ४ इस नामसे चारप्रकार के उपपातकों के प्रायश्चित्त संक्षेप रीति से कहिदिये जायँगे–तिस पीछे प्रकीर्णक पापोंको विस्तार दियाजायगा (क्योंकि प्रकीर्ण यह नाम यद्यपि एक है पर भेद इसके अनेक हैं) किन्तु (इदनुक्त तत्प्रकीर्णक)जोजो उपपातक किसीप्रकरण या परिच्छेदमें गिनती न कियेगयेहों सो सब यहां ढूंढने से मिलैंगे क्योंकि प्रकीर्णक उन्हींका नामहै जोपहिले कहींनहींकहे॥

(अथ जातिभ्रंशकरादिपातक प्रायश्चित्त)

यद्यपि सभी पातक उपपातकों के प्रायश्चित्त यथा क्रम से वर्णन होचुके हैं तथापि एक यह भेद समझना चाहिये कि जितने उपपातक दर्शाये गये उन्हीं में से बिरलों वा अनेकों के जुदे नाम जातिभ्रंशकर पाप सकरी करण पाप अपात्री करण पाप मलिनी करण पाप इत्यादि मनु आदि मुनीश्वरों ने जुदे नाम भेद किये हैं यह वृत्तांत २४२ दोसौ बयालिस की अधिकोक्ति में देखो–जिन मुनीश्वरों ने ऐसे जुदे नाम धरे तिनको जुदे नामों के प्रायश्चित्त भी उसी तरह कहिने परे–तिनको भी इस स्थल पर लिखते हैं कि पढने वालों को सन्देह न रहै तिनमें प्रथम मनु का वचन देखो= यथाह मनुः= जातिभ्रंशकरकर्मकृत्वाऽन्यतमंमिच्छया चरेत्सांतपनकृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया सकरापात्रकृत्येषुमास-शोधनमैदवः मलिनी करणीयेषुतप्तःस्याद्यावकस्त्र्यहमिति (अन्यतममितिसर्वत्रसबध्यते= अर्थात्–मनु कहिते हैं कि जिन अनेक पापों का नाम जाति भ्रंशकर मैंने धरा तिनमें से कोई एक कर्म इच्छा सहित जो कोई करे तिसको सांतपन कृच्छ्र करना चाहिये जिसने इच्छा के बिना कर्म्म किया हो तिसको प्राजापत्य चाहिये इसी तरह सकरी

करण में से या अपात्रीकरण में से कोई एक पाप कर्म करै तिसको एक महीना चांद्रायण करनाचाहिये इसी तरह मलिनी करणीय नामके कर्मोंमें से कोई एक पाप करै तिसको तीन दिन गरम यावक पीकर व्रत करनाचाहिये॥०॥ इन्हीं पापों पर यमने भी जुदे प्रायश्चित्त कहे हैं=यथाह यमः=संकरीकरणंकृत्वामासमश्नीतयावकम् कृच्छ्रातिकृच्छ्रमथवा प्रायश्चित्तंसमाचरेत् अपात्रीकरणंकृत्वातप्तकृच्छ्रेणशुद्ध्यति सांतकृच्छ्रेणवाशुद्धिर्महासांतपनेनवा मलिनीकरणीयेषुतप्तकृच्छ्रं विशोधनम्=बृहस्पतिनापि जातिभ्रंशकरेविशेष उक्तः=ब्राह्मणस्यरुजं कृत्वा रासभादिप्रमापणम् निन्दितेभ्योधनादानंकृच्छ्रार्धंव्रतमाचरेदिति (सर्वांजातिभ्रंशकरादिप्रायश्चित्तानां मन्वाद्युक्तानांजातिशक्त्याद्यपेक्षया विषयोविभजनीयःइतिमिताक्षरा= अर्थात्–यम ने ऐसे कहा है कि सकरीकरण पाप करिके एक महीना भर यावक भोजन करे अथवा कृच्छ्रातिकृच्छ्र प्रायश्चित्त आचरे तथा अपात्रीकरण पाप करिके तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त से पवित्र होताहै या सांतकृच्छ्र से या महा सांतपन से शुद्धि उसकी होती है तथा मलिनी करणीय पापों मे कोई कर्म जिसने किया हो तिसके लिये तप्तकृच्छ्र नामक प्रायश्चित्त है=बृहस्पति ने भी जातिभ्रंशकर पापों के समूह पर जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि= ब्राह्मण के शरीरमें चोट लगाइके या गदहा आदि पशुओं का प्राण वध करिके या निन्दित कर्म करने वालों से धन का लेन करिके आधा कृच्छ्र व्रत साधै (मिताक्षराकार कहितेहैं कि ये मनु आदिऋषियों के कहे जाति भ्रंशकर आदि पापों के प्रायश्चित्त दोषी लोगों की जातिशक्ति आदि की अपेक्षा पर यथायोग्य बांटि देने चाहिये= फिर कहिते हैं कि=इस प्रकार से योगीन्द्र याज्ञवल्क्य जी के हृदय में उत्पन्नहुये अभक्ष्य आदिके प्रायश्चित्त संक्षेप से प्रदर्शित किये– किन्तु जो सर्वथा लिखते तो बहुत बड़ा विस्तार होता ॥ ० ॥ इसबात पर ध्यान करो कि २९०दोसौनब्बे मूल श्लोक वाली अधिकोक्ति छूटे कितना अन्तर बीति गया तबसे कोई योगीश्वर का मूल श्लोक नहीं आया यद्यपि बीच के अनेक पाठ उसी अधिकोक्ति के शेष पाठ में से लिखे गये क्योंकि यहां तक सभी पाठ उसी मूल श्लोक की टीका में गिनती किये गये हैं तथापि उस मूल श्लोक से या उसकी अधिकोक्ति से कुछ भी संबन्ध इन पाठों का नहीं है जो भक्ष्याभक्ष्य के प्रकरण में अनेक भेदों से लिखे गये क्योंकि यह अनेक ग्रंथांतर की व्यवस्था संग्रहकरीगईहै॥ अब आगे योगीश्वर आपही अपनी व्यवस्था २९१ दोसौ इक्यानबे मूल श्लोक से छेड़ेंगे॥ जातिभ्रंशकर आदि चारों नाम के विशेष

लक्षण भेद जो देखने हों तो २४२ दोसौ ब्यालिस की अधिकोक्तिसें ढूंढना॥ इति जातिभ्रंशकरादिप्रकरणपापानांप्रायश्चित्तचतुष्ठयं॥

यहां तक सर्वथा॰ महापातक॰ पातक॰ अनुपातक॰ उपपातक॰ इनसबके प्रायश्चित्त भेद वर्णन होचुके—अब सबसे छोटे पांचवीं छठी भाँति प्रकीर्णक नाम के पापों पर प्रायश्चित्त योगीश्वर आपही आगे छेडेंगे तिसको ग्रन्थान्तर स्मृतियों की व्यवस्था से विस्तार देकर पूराकिया जायगा=प्रकीर्ण पापों का प्रकरण इन सबही पापों से निराला माना गया है कि जोकुछ यहां तक ऊपरवर्णन होचुका॰ निराला माना जाने का हेतु केवल यहीहै कि दिन रातिके आठो पहर में संसारी कामों के वर्तावासे छोटे छोटे पाप जो प्रत्येक समयपर अचानक उत्पन्न होजाते हैं तिनके छोटे छोटे प्रायश्चित्त भी सब इसी परिच्छेद में ढूंढे मिल सकेंगे॥

(अथप्रकीर्णक प्रायश्चित्तानि)

प्राणायामीजलेस्नात्वाखरयानोष्ट्रयानगः। नग्नःस्नात्वाचभुक्त्वाचगत्वाचैवदिवास्त्रियम् २९१
गुरुंहुंकृत्यत्वंकृत्यविप्रंनिर्जित्यवादतः। बध्वावावाससाक्षिप्रंप्रसाद्योपवसेद्दिनम् २९२
विप्रदंडोद्यमेकृच्छ्रस्त्वतिकृच्छ्रोनिपातने। कृच्छ्रातिकृच्छ्रौसृक्पातेकृच्छ्रोभ्यंतरशोणिते २९३

अर्थः—गदहा वा ऊँट के योगसे चलती गाड़ी आदि सवारी में जो बैठा हो या नंगा जल में नहाया हो या नंगा बैठि भोजन किया हो या अपनी ही भार्या साथ दिन में मैथुन किया हो सो नदी आदि में खूब स्नान और प्राणायाम करिके शुद्ध होता है ॥ २९१ ॥ गुरु को हूँ करिके तू करिके या किसी ब्राह्मण को वाद से जीति के या कपड़ा से वांधि के शीघ्रही प्रसन्न करिके दिन भर उपवास करे= अर्थात्—पिता माता जेठा भाई आदि किसी गुरुजन को कदाचित् इस तरह बोले कि हूं या तू ऐसा है इत्यादि किसी तरह रूक्ष वचन के साथ घुड़के या कुछ बात कहे तो यह दोषी होता है एवं किसी अपने से बड़े या छोटे या बराबरके ब्राह्मण को क्रोध के साथ ऐसा कहे कि हूँ चुपहोजा बके मत ऐसे घुड़की के साथ वितंडा रूपी बातों से जीते सो दोषी कहाता है या उसके गले में हाथ ही कोमल रीति से लगाकर वा रूमाल आदि कपड़ा से गला ढीली रीति से ही वांधि कर भी दोषी होता है॰ इन सबका यही प्रायश्चित्त है कि जिनका अपमान किया तिनके पैरों पर मूड़ धरने आदि उपायों से उनको प्रसन्न करिके एक दिन भोजन न करे=गला थांभने या कपड़े से ढीलाही लपेटने से उपरान्त अपराधों के बड़े प्रायश्चित्त हैं सो

अगिले श्लोक में देखो॥२९२॥ ब्राह्मणको मारना सोचि डंडा लकड़ी उगानेमात्र पर कृच्छ्र प्रायश्चित्त है• डंडा उसकी देह पर लगाने मध्ये अतिकृच्छ्र है• लोहू चलि परने पर कृच्छ्रातिकृच्छ्र प्रायश्चित्त है• अभ्यंतर शोणित में कि जहां लोहू टपकने नहीं पाया किन्तु खाल के भीतर उभरि के रहिगया हो तिसमें भी केवल कृच्छ्र प्रायश्चित्त है॥ तीनों श्लोकों की अधिकोक्तिभी जुदी जुदी देखो॥ २९३॥

२९१ अधिकोक्तिः=दोसौ इक्यानवे के श्लोकमें जो प्राणायाम सहित स्नान कहा तिसको मिताक्षरा कार इच्छा से किये कर्मों पर ठहिराते हैं=क्योंकि मनु के अग्रोक्त वचन में खुलासा यही तात्पर्य है=यथा=उष्ट्रयानंसमारुह्यखरयानंतुकामतः सवासाजलमाप्लुत्य प्राणायामेनशुध्यति=अर्थात्–ऊँट या गदहा की जुड़ी सवारी पर कामनासे बैठने वाला वस्त्रों सहित गोता लगाइके प्राणायाम करिके शुद्धहोता है=तिससे कामना विना दैव योग से बैठना परै तिसको प्राणायाम छोड़ि केवल स्नान मात्र समझि लेना=और जो साक्षात् गदहा ऊँटकी पीठिपर बैठा हो तिसके लिये पूर्वोक्त प्राणायाम सहित स्नान दो वार करना चाहिये क्योंकि यह दोष उससे बड़ा है इति मिताक्षराकाराः॥ २९१॥ दोसौ बानवे में जो ब्राह्मण को वितंडा बाद से जीतने पर प्रायश्चित्त कहा तिसके ऊपर यम का यह वचन है कि=वादेनब्राह्मणंजित्वाप्रायश्चित्त विधित्सया त्रिरात्रोपोषितःस्नात्वाप्रणिपत्यप्रसादयेत् (इत्यभ्यासविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्–वितंडावादसे ब्राह्मण को जीति के प्रायश्चित्त की इच्छा करै तिसको यह चाहिये कि पहले तीन दिन उपवास करै तिस पीछे स्नान करिके उस ब्राह्मण के सन्मुख साष्टांग प्रणिपात से गिरिके उसे प्रसन्न करै (मिताक्षराकार कहितेहैं कि यहबड़ा प्रायश्चित्त कई वारके अभ्यास पर समझना या कई वार की बराबर एकही वार जिसने अपमान कियाहो तिसके लिये॥ २९२॥ तिरानबे श्लोक में डंडे आदि से मारने पर वृहस्पति ने जुदे प्रायश्चित्त कहे हैं=यथा=काष्ठादिनाताडयित्वात्वग्भेदेकृच्छ्रमाचरेत्अस्थिभेदेऽतिकृच्छ्रःस्यात्पराकस्त्वंगकर्त्तने=पादप्रहारे यमः=पादेनब्राह्मणंस्पृष्ट्वाप्रायश्चित्तविधित्सया दिवसोपोषितःस्नात्वाप्रणिपत्यप्रसादयेत्=अर्थात्–लकड़ी आदि से मारिके यदि खाल तोड़िदी हो तो कृच्छ्र व्रत आचरै जो हाड़ तोड़ि दिया हो तो अतिकृच्छ्र करै यदि कोई अंग भी कटि गया हो तो पराक व्रत करना चाहिये=लात मारने मध्ये यमने कहाहै कि=पैर से ब्राह्मण को छुइकर प्रायश्चित्तकी अपेक्षामें एक दिन उपवास किया हुआ स्नान करि उस ब्राह्मण के संमुख साष्टांग प्रणाम

से गिरिके उसे प्रसन्न करै॥ अविकोक्ति इतनी यहीं थी सो लिखि चुके—परन्तु—इसी दोसौ तिरानवे की टीका में कुछ लम्बा पाठ है जिसका संबन्ध मूल श्लोकसे कुछ नहीं है॰ तिससे उसकी जुदीस्थापना करी जायगी उसमें औरभी प्रकीर्ण संज्ञा वाले दोषों के प्रायश्चित्त विशेष कहे जायँगे जिनको योगीश्वर ने इस हेतु से नहीं वर्णाया कि बहुधा अन्य स्मृतियों मे उनके स्वरूप और प्रायश्चित्त भी वर्णन हुये हैं सो सब आगे देखना॥ २९३॥

(अन्यानिच प्रकीर्णक पापानां प्रायश्चित्तानि)

अत्रमनुः=विनाऽद्भिरप्सुवाऽप्यार्तःशारीरंसंनिषेव्यतु सचैलोबहिराप्लुत्यगामालभ्यविशुध्यतीति (विनाऽद्भिरित्यसंनिहितास्वप्स्वित्यर्थः शारीरंमूत्रपुरीषादि॰इदमकामविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्—कहीं जलके मिलने विना या जलके होतेहुये भी कोई रोगी गुदा आदि अंग धोये विना शरीर में लगे मल मूत्र को किसी दिन सेवन करै सो तब शुद्ध होय जब सभी वस्त्रों सहित जलाशय के बाहर खूब स्नान करिके. अपने शरीर को गाय के देह से कौली भरिके लगावै (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने कामना के विना मल मूत्र भरी देह राखी हो॰ किन्तु जिसने इच्छा सहित ऐसी मलीनता लादी होय तिसके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त है=यदाह यमः=आपद्गतोविनातोयं शारीरंयोनिषेवते एकाहंक्षपणांकृत्वा सचैलोजलमाविशेत=अर्थात्—किसी आपत्ति में फँसाहुआ जलके विना शरीर के मल का सेवन जो कोई करै वह एक दिन निराहार रहिके सचैलस्नान करै॥

जोकि सुमन्तु का यह वचनहै कि (अप्स्वग्नौवामेहतस्तप्तकृच्छ्रमिति (तदनार्तविषय मभ्यासविषयवेति मिताक्षरा=अर्थात्—जलों में वा अग्नि में मूतने पर तप्तकृच्छ्र चाहिये (सो यह निरोगी का चर्चा या वारम्बार के अभ्यास का चर्चा है यह मिताक्षरा ने कहा॥

नित्यश्रौतादिकर्मलोपेतु मनुः=वेदोदितानांनित्यानां कर्मणांसमतिक्रमे स्नातकव्रतलोपेचप्रायश्चित्तमभोजनम्(श्रौतेषुदर्श पूर्णमासादिषु कर्मसु॰स्मार्तेषुनित्यहोमादिषु प्रतिपदोक्तेष्ट्यादिप्रायश्चित्तैरुपवासस्यसमुच्चयः—स्नातकव्रतानिनजीर्णे मलवद्वासाभवेच्चविभवेसतीत्येवमादीनिप्रागुक्तानि=अर्थात् — मनु ने कहा है कि वेदोक्त नित्य कर्मों का अतिक्रम होजाने में या स्नातक पुरुष के व्रत (नियम जो आचार

मर्यादा कारण्ड में एक जुदे प्रकरण के द्वारा वर्णन होचुके तिनमें किसी व्रत) का लोप होजाने पर भी एक दिन भोजन का न करना प्रायश्चित्त है (मिताक्षराकार कहिते हैं कि अमावस पूर्णमासी आदि में वेदोक्त जो कर्मकरने कहेहैं तिनको नित्य कर्म जानना और स्मार्त जो स्मृतियों के अनुसार नित्यहोम किये जातेहैं तिनका लोप होने में अग्रोक्त एक दिन का उपवास ऐसी युक्ति से समझना कि उनके मध्ये जहां कहीं पहिले प्रकरणों में उनके नाम से प्रायश्चित्त रूपी इष्टि आदि करना कहिचुके हैं तिसके साथ यह एक उपवास भी जोडि लेना—और स्नातक व्रत वेहैं कि जैसा पहिले आचार में वर्णन होचुके हैं कि धन के होते हुये फटे मैले वस्त्रों को न पहिरै इत्यादि बहुत नियम हैं ॥ ० ॥ क्रतु नाम के ऋर्षोंचर ने भी स्नातक व्रतों का स्वरूप दर्शाइ कर पीछे से यह कहा है= एतेषामाचाराणामेकैकस्यव्यति क्रमणे गायत्र्यष्टशतजपकृत्वापूतोभवतीति=अर्थात्—ये स्नातक पुरुष के आचार जो कुछ कहे तिनमे किसी एकही का व्यतिक्रम होजाने पर आठ सौ गायत्री मंत्र का जप करिके पवित्र होता है ॥ ० ॥ नित्य कर्मों में पंच महा यज्ञभी गिनती और सबसे प्रधान हैं तिनका लोप होजाने मध्ये अग्रोक्त प्रायश्चित्तहै=यदाह वृहस्पतिः= अनिर्वर्त्यमहायज्ञान्योभुंक्तेप्रत्यहंगृही अनातुरःसतिधनेकृच्छ्रार्धेनसशुध्यति आहिता ग्निरुपस्थानंनकुर्याद्यस्तुपर्वणि ऋतौनगच्छेद्भार्यावासोपिकृच्छ्रार्धमाचरेत्=जोकोई गृहस्थी रोगी न होते हुये या धनवान् होके रोग होने पर भी नित्यंप्रति पांच यज्ञों से निपटे विना भोजन करै सोभी एक दिनकी बावत आधा कृच्छ्र करै यहां पांचनें किसी एकही दो यज्ञ को कई दिन तक न करै सो आधा कृच्छ्र करिके शुद्धहोता है॰एवं आहिताग्नि होके जो पर्वों के रोज अपने उपस्थान कर्म को न करै या जो कोई द्विजाती ऋतु काल पर भार्या के साथ संगम न करै तिसको भी आधा कृच्छ्र करना चाहिये (आधा कृच्छ्र छः दिन में होता है ॥

जिसकी पहिली भार्याकेजीतेहुये दूसरी या तीसरीभार्या मरै और वह पुरुषअग्नि मानहोय तौ उसअग्नि से छोटी स्त्रियोंको दाहदेनानिषिद्धहै तिसके प्रायश्चित्तआगे कहितेहैं=द्वितीयादि भार्यापरमेदेवलः=मृतांद्वितीयांयोभार्यांदहेद्वैतानिकाग्निभिः जी वंत्यांप्रथमायांतु सुरापानसमंहितत्=अर्थात्—पहिली जेठी भार्या जीवतेदूसरी लहुरी मरीको वैतानिक अग्नियोसे जो कोई दाह कर्मकरै तौ यह जेठीका भाग उसको दे दिया तिसके पाप में सुरापान के समान प्रायश्चित्त चाहिये यह देवलने कहा ॥

स्वभार्यार्डभिगमनेतुयमः=स्वभार्यांतुयदाक्रोधा दगम्येतितरोवदेत् प्राजापत्यंचरे

द्विप्रःक्षत्रियोदिवसान्नव षड्वैश्यंतुचरेद्वैश्य स्त्रिरात्रंशूद्रआचरेत्=अर्थात्–कोई अपनी शुद्ध भार्याको क्रोधमें आकर ऐसा दोष लगावै कि यह अगम्याहै संगम के योग्य नहीं रही वह पुरुष जोब्राह्मणहो तो बारह दिन प्राजापत्यकरै क्षत्रीहो सो नौ दिन करै वैश्य हो सो छे दिन और शूद्रहो सो तीनदिन प्राजापत्य करै यह यमनेकहा॥

अस्नानभोजनादौतुहारीतः=वहन्कमंडलुंरिक्तं सस्नातोऽप्नंश्चभोजनम् अहोरात्रेणशुद्धिःस्याद्दिनजाप्येनचैवहि=अर्थात्–स्नातक होकर जल से खाली लोटा साथ राखै या कोई द्विजाती होकर स्नान किये विना भोजन करै तिसकी शुद्धि एकदिन रातिका निराहार उपवास और दिनभर जप करने से होतीहै यह हारीत ने कहा॥

ज्योंनारकी एकही पांतिमें अनेकोंके बैठेहुये विषमरीतिसे परोसै कि एकोंको प्रीतिसे कुछ अधिक या अच्छी चीज औरोंको और तरह परोसै या कोई कहिकर ऐसा करावै या कोई खानेवाला इसी रीति मांगै तिनको भी यमका कहा प्रायश्चित्त है=यथाह यमः=नपंक्त्यांविषमंदद्यान्नयाचेतनदापयेत् प्राजापत्येनकृच्छ्रेण मुच्यन्तेकर्मणस्ततः=अर्थात्–पांतिमें विषम किन्तु ऊँच नीच रीतिसे न देवै न मांगै न कहिकर दिलावै क्योंकि ऐसे कर्मके पापसे प्राजापत्य कृच्छ्रव्रत करिके शुद्धहोते हैं अन्यथा नहीं॥

किसी जलका बांध या नदी नालेका पुल तोड़ै या कन्याके विवाहवाले कामों में भांजी मारै या समतामें विषमताकरै तिनके भी लाचारी प्रायश्चित्तहै=तदप्याह यमः=नदीसंक्रमहंतुश्चकन्याविघ्नकरस्यच समेविषमकर्तुश्चनिष्कृतिर्नविधीयते अयाणामपिचैतेषांप्राजापत्यंतुमार्गणम् भैक्ष्यलब्धेनचान्नेनद्विजश्चांद्रायणंचरेत्(संक्रमउदकावतरणमार्गः समेविषमकर्तापूजादाविति मिताक्षरा=अर्थात्–यमराजका वचन है कि जो द्विजाती होकर नदीका बांध तोड़ै या कन्याके विवाह आदि कामों में विघ्न डारै या समतामें विषमताकरै तिसकी निष्कृति अर्थात् छुटकारा तो अगिले जन्मों तक भी नहीं है किन्तु पापका फल भोगना तो अवश्य होगा तथापि लोकाचार के वर्ताव हेतुसे इन तीनोंको भी प्राजापत्यही करवाया जाय परन्तु जो दोषी पुरुष ब्राह्मण होय तो उसके लिये विशेषताहै कि भिक्षासे मांगे मिले अन्नसे चान्द्रायण आचरै (समता में विषमता करना यह कि जहां बराबर को तिलक पूजा दक्षिणा आदिका प्रयोजनहो तहां न्यूनाधिक भेदकरै और इसीका दूसरा अर्थ यह भी है कि एकसार मार्ग आदि धरती पर गड्ढहलाकरै अर्थात् अपना मकान बनाने आदि कारणोंसे इतनी माटी खोदै जिससे सर्व साधारणों का रास्ता बिगड़जाय

जिसमें किसी गाड़ी बैल मनुष्य आदिकी टांग टूटना सम्भव हो या वसीती पानीभरि कर बालक बच्चे आदिका डूबना सम्भव होय तिसके पापका यह चर्चा है क्योंकि जैसा जलके उतारेआदिका संक्रम बांध काटनेका पापहै तैसाही यह पापहै जिसका व्योरा लिखा• तैसाही तीसरा कन्याके विवाह आदिमें विघ्न करवाना बड़ा पाप है इसीसे इन तीनोंको एक साथही दर्शाकर ऐसा कहाहै कि इनकी मुक्ति नहीं होती है नरकोंमें अवश्य जाना होताहै परन्तु लोक व्यवहारके निमित्त से प्रायश्चित्त करावा चाहिये) इस व्यवस्थाके प्रयोजनसे २२६ दोसौछव्वीस मूलश्लोकभीदेखो॥

इन्द्रधनुर्दर्शनादौऋष्यशृंगः=इन्द्रचापपलालाग्निंयद्यन्यस्यप्रदर्शयेत्प्रायश्चित्तम होरात्रंधनुर्दण्डप्रचर्दक्षिणा=अर्थात्–इन्द्रधनुष जो सूर्य या चन्द्रमा के विम्बको घेरा देकर कभी उदय हुआ देखि परताहै तिसको जो पुरुष देखिलेय तिसको यह चाहिये कि वह और किसीको न दिखलावे न चर्चाकरै• इसी प्रकार पलाल धान कोदो आदिका फूस पयार तिसकी अग्नि दूर जलती देखि दूसरेको नहीं दिखावे• कदाचित आप देखि दूसरेको दिखावे तिसपर यह प्रायश्चित है कि एक दिनराति उपवास करिके जो धनुष दिखायाहो तो एक धनुषदान करै जो अग्नि दिखाई होतो एक लाठी दानकरै यह ऋष्यशृंगऋषिने कहा (इसका हेतु कुछ होने पर भी नहीं कहा जासक्ता है तिससे वाचनिक व्यवस्था जाननी कि जो वचन मुनीश्वरोंके मुखसे निकसा वही प्रमाण है क्योंकि तेजस्वी महात्माके मुखसे कोई वचन वृथा कभीनहीं निकसता है ॥

पतितादिभिःसंभाषणेतु गौतमः=नम्लेच्छाशुद्धैर्धार्मिकःसहसंभाषेत संभाष्यपुण्य कृतोमनसाध्यायेत् ब्राह्मणेनसहवासम्भाषेत• भार्यान्वित्तलाभवधंपृथग्वर्षाणीति=अर्थात् जो मनुष्य धार्म्मिक धर्म्मवान् कायदेवान् है तिसको चाहिये कि वह म्लेच्छ मलीन अशुद्धोंके साथ प्रयोजनके विना और प्रयोजन से अधिक वात चीत न करै और प्रयोजनसे भी जितनी वात करनीपरै तिसको करनेके अनन्तर अच्छे पुण्यात्मा राजर्षी ब्रह्मर्षी आदि पुराने और नवीन वर्त्तमान तपस्वी लोगोंका ध्यान मनमें करै और मुखसे भी नाम उचारण करै अथवा गुण संयुक्त किसी ब्राह्मणसे वातचीत करै तब शुद्ध होय यह गौतम ने कहा ॥

स्वस्यैवधनलाभादेर्विघ्नकरणेपिगौतमः=भार्यान्वितलाभवधंपृथग्वर्षाणीति (भार्यान्वधनानांलाभस्यवधे विघ्नकरणेप्रत्येकंसंवत्सरंनाक्तं ब्रह्मचर्यमिति मिताक्षरा= अर्थात्–अपने घर में निज भार्या के साथ कोईसा उपद्रव मार पीट आदि अनुचित

रीतिसे उत्पन्न करे या घरके धनकी हानि वृथा करे या होते हुये लाभ की हानि करडारे कि जिससे वह लाभ माराजाकर फिर न होसके तौ इन तीनों पापके ऊपर भी जुदा जुदा एक एक वर्षका प्राकृत ब्रह्मचर्य करे तब शुद्धहोय यह गौतमनेकहा (यह तर्क न करना कि अपने लाभकी हानि कौन करताहै क्योंकि ऐसे बहुतहोते हैं जिनसे अपने लाभकी हानि मूर्खता से होजाती है और ऐसे भी होते हैं कि जहां भाई भतीजे बेटा बाप आदि में विरुद्ध होय तहां एक के द्वारा होते लाभ में दूसरा वैरभावसे जाकर उसमें विघ्नकरि आताहै इत्यादि और मूरतोंसे भी होताहै तिनके प्रायश्चित्त कहे॥

ब्रह्मसूत्र यज्ञोपवीत कंधेपर होने विना जो जल पान या भोजन या शंका लघु शंकासे मलमूत्र करे तिसके प्रायश्चित्त स्मृत्यन्तरमें कहेहैं=यथा=विनायज्ञोपवीतेन यद्युच्छिष्टोभवेद्द्विजः प्रायश्चित्तमहोरात्रं गायत्र्यष्टशतंतुवा (अत्रऊर्ध्वोच्छिष्टेउपवासः अधोच्छिष्टस्योदकपानादिषु गायत्रीजप इतिमिताक्षरा=अकामतस्तु=पिबतो मेहतश्चैवभुंजतोऽनुपवीतिनः प्राणायामत्रिकंषट्कंनक्तंचत्रितयंक्रमात् इतिस्मृत्यंतरोक्तंचद्रष्टव्य=अर्थात्—जनेऊ कन्धे पर होने विना कोई द्विजाती पुरुष यदि किसी तरह जूठा होजाय तहां एक दिन राति का उपवास या आठ सौ गायत्री का जाप प्रायश्चित्त है (इसमें यह व्यवस्था है कि जो ऊपर के अंगमें हाथ मुहसे जूठा हुआ सो उपवास करे जो नीचेके अंगमें गुदा लिंगसे जूठा हुआहो सो गायत्री जपै—यह व्यवस्था भी उसके लिये समझना जो अपनी बेपरवाहीसे जानिबूझि ऐसा भ्रष्टहुआ हो किन्तु=डोरिधारी साथ रहिते भी दैवयोगसे ऐसा जिसपर होगया हो तिसको अन्य ग्रन्थका वचन आगे देखो कि=विना जनेऊ पानी पीना या मूतना या खाइ लेना जिसपर होजाय सो इन तीनों बात के यथा क्रम से तीन प्राणायाम और छै प्राणायाम और नक्तव्रत जुदे जुदे करे (नक्तव्रत उसका नामहै जो निर्जल व्रतकरिके चार घटी राति गयेके भीतर भोजन करै यह भी अभोजन की बराबर कहाता है॥

भुंक्त्वाशौचाचमनमकृत्वोत्थानेतु स्मृत्यन्तरे=यद्युच्छिष्टत्वनाचांतोभुक्तवाऽनाशना ततः सद्यःस्नानंप्रकुर्वीतसोऽन्यथापतितोभवेत्=अर्थात्—भोजन करनेमें यदि खाइ चुकने पर न खानेके बादि जल पीने विना आचमन लिये विना चौकेसे बाहर उठि जाय सो तत्कालही स्नानकरे अन्यथा जो न करे सो पतितठहिरै अर्थात् जातिपांति से बाहर करदिया जाय स्मृत्यन्तर की यह व्यवस्था है॥

चौराद्युत्सर्गादौतु वशिष्ठः=दंड्योत्सर्गेराजैकरात्रमुपवसेत् त्रिरात्रंपुरोहितःकृच्छ्र

मदंड्यदण्डनेत् रोहितांश्चिराः राजा=अर्थात्–दण्ड देने के योग्य चोर आदि अपराधी यदि छोड़ि दिया जाय तो राजा एक दिन उपवास करै पुरोहित तीन दिन करै और जो अदण्ड्य किसी पुरुष को दण्ड दिया गया हो कि जिसका कुछ अपराध यथार्थ मे नहीं था या वह पुरुष अपराध की दशा में भी दण्ड पाने से मुआफ़ था तिसको दण्ड दिया गया तहां पुरोहित को पूरा बारह दिन कृच्छ्र करना चाहिये और तीन दिन राजा को (यहां पर अदालती पुरोहित का चर्चा है जो धर्म शास्त्र देखने का अधिकारी होय किन्तु कर्मकांडी पुरोहित का चर्चा यहां नहींहै॰राजद्वारों में दोहरे पुरोहित होते हैं॥

जिस पाँति में कोई चोर या पतित आदि बैठा हो तिसमें भोजन करने मध्ये प्रायश्चित्तहै=तदाह मार्कंडेयः=अपांक्तेयस्ययःकश्चित्पंक्तौभुंक्तेद्विजोत्तमःअहोरात्रोषितोभूत्वापंचगव्येनशुद्ध्यति=अर्थात्–कोई द्विजोत्तम ब्राह्मण जो अपांक्तेय की पंक्ति मेंभोजन करै अथवा उस की करी ज्यौनार आदि पंक्ति में अर्थात् रसोई में भोजन करै सो एक दिन राति निराहार व्रत करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है यह मार्कंडेय जी ने कहा॥

नीली वस्त्रादि विषयेतु आपस्तंबः–नीलीरक्तंयदावस्त्रंब्राह्मणोगेयुधारयेत्अहोरात्रोषितोभूत्वापंचगव्येनशुद्ध्यति॰ रोमकूपैर्यदागच्छेद्रसोनील्यास्तुकस्यचित् त्रिषुवर्णेषुसामान्यंतप्तकृच्छ्रं विशोधनम॰ पालनविक्रयश्चैवतद्वृत्त्यातूपजीवनम् पातनंतुभवेद्विप्रेत्रिभिःकृच्छ्रैर्व्यपोहति॰नीलीदारुयदाभिंद्याद्ब्राह्मणस्यशरीरतः॰शोणितंदृश्यतेयत्रद्विजश्चांद्रायणंचरेत्॰ स्त्रीणांक्रीडार्थसंभोगेशयनीयेनदुष्यतीति=अर्थात्–आपस्तंबने कहा है कि ब्राह्मण जो अपने शरीर में नीला रँगा कपड़ा ओढै या पहिरै तो एकही बारऐसा करने पर एक दिन रातिभर निराहार व्रत करके पंचगव्यपीवै तब शुद्ध होय॰ परन्तु जिस द्विजाती ने इतनी देर तक नीला वस्त्र पहिरा हो कि उसके पसीना निकसने से रोम छिद्रों में कपड़े का पसेव जाकर लगै तौ फिर तीनों वर्णों के लोगों को एक ही यह सामान्य प्रायश्चित्त है कि तप्त कृच्छ्र करैं॰ औरजो कोई द्विजाती नील का खेत बोवै या घर मे धरै या बेचै,या किसी तरह नील के काम से जीविका राखै तिसको जाती धर्म कर्मों से (पातन) गिराइ देना यही दंड किया जाय परन्तु यह ऐसा पुरुष जो ब्राह्मण हो तो तीनि कृच्छ्र साधन कराइ के फिर जाति में मिलाया जाय एवं क्षत्री दो कृच्छ्र करिके और वैश्य एकही कृच्छ्र करिके जाति में मिलाया जासक्ता है (परन्तु शूद्रको इस काम का निषेध नहींहै॰

और नील की लकड़ी यदि ब्राह्मण के शरीर में आपही किसी तरह से खुसिजाय या कोई अन्य पुरुष मार देवे कि जिससे कुछ लोहू का चिह्न उभरि आवैतौयह ब्राह्मण चान्द्रायण करै तव शुद्ध होय— परंतु स्त्रियों के लिये इतना प्रतिप्रसव है कि उनके क्रीडा संभोग वाले निमित्तों में शयन काल के वस्त्र नीले होयँ तिसमें दोष नहीं लगाया जासक्ता है कि स्त्री के प्रसंग समय उसके पतिको भी उनवस्त्रों से संसर्ग रहा तथापि जो विवेकी और क्रियावान पुरुष होते हैं वे अपनी स्त्रियोंसे भी नील बचाते हैं (और वचन में जो शयनीय भोग समय का विशेषण दियागया तिसकी खसूसियत से यह तात्पर्यहै कि हर वक्त के ओढने पहिरनेवाले कपडे स्त्रियोंके भी नीलेन होने चाहिये कि जिससे रसोई आदि कामोंतक अशुद्धि पहुँचे इसीलिये वचनमें क्रीडार्थका निमित्त दियागया है किजिन स्त्रियोंको रसोई आदि से जिसवक्तपर संबंध कुछ न हो तिनको मंगल कार्यके उत्सवोंमें भी उतने समयतक क्रीडाके अर्थसे नीले वस्त्र धारण करना दोष नहींहै॥ ० ॥ स्त्रियोंके सिवाय विरले पुरुष और विरले काम और विरले वस्त्रों के नाम से भी कुछ कुछ प्रतिप्रसव दिया गयाहै (प्रति प्रसव धर्मशास्त्रमें एक मर्यादाका नाम है कि जिस कामका निषेध किया गया हो उसी कामको थोडासा किसी जघेपर करनेकी फिर पीछेसे आज्ञा देदीजाय) तदाह भृगुः=स्त्रीधृताशयनेनीलीब्राह्मणस्यनदुष्यति नृपस्यरद्धौवैश्यस्यप र्ववर्जविधारणम्=तथावस्त्रविशेषकृतप्रतिप्रसवः=कंवलेपट्टसूत्रेच नीलीरागोन दुष्य तीतिस्मरणात्=अर्थात्—भृगुजी का वचनहै कि स्त्रियोंके अंगमें धारणकिया नीला कपड़ा ब्राह्मण को सोते समय दूषित नहीं करता है और राजा क्षत्री को वृद्धि में अर्थात् सेनाआदि समूह में रण विरंगे वस्त्रोंके कार्य में कुछ दोष नहीं है और वैश्य को शीत काल में काले कंवल वनात आदि पर्वोंको छोडिकर ओढने में कुछ दोष नहीं है=इसीलिये विरले वस्त्र में नीला रंग होनेका यह प्रतिप्रसव दिया है कि= वानात आदि ऊनी कंवल में तथा रेशमी कपडे में नील रँग दूषित नहीं है (परन्तु ब्राह्मण को इन वस्त्रों का भी निषेध है यहप्रति प्रसव केवल वैश्य को शीत काल मध्ये कहा गया है सो भी पर्वों को छोडिके और ब्राह्मण सदा आपही पर्वरूप और तीर्थरूप होता है उसके लिये शीतकाल में भी नहीं—और नीला कहिने से तद्रूप नीले वर्ण को समुझना किन्तु हरारंग जो नीलके संयोगसे वनता है ऐसे हरेरंग की वानात या रेशमी का निषेध ब्राह्मण के निमित्तमें भी नहीं है तथापि भोजन और भजन के समयमें हरे होने का निषेध तात्पर्यसे भी सिद्ध है॥

शंख ने विशेष कर ब्राह्मण के लिये दारवे की खाट आदि पर बैठना या राजा के रण से भागना या पूजा आदि उत्तमकामों के बीच में निकसिजाना आदि और भी अनेक बातें एक साथ इकट्ठी मने करीं तिनके प्रायश्चित्त भी कहिदिये हैं=यथाह शंखः=अध्यस्यशयनंयानमासनंपादुकेतथा द्विजःपालाशवृक्षस्यत्रिरात्रंतुव्रती भवेत् • क्षत्रियस्यरणेपृष्ठंदत्त्वाप्राणपरायणः संवत्सरंव्रतंकुर्याच्छित्त्वावृक्षंफलप्रदम् • द्वौविप्रौब्राह्मणाग्नीवादम्पतीगोर्द्विजोत्तमौ अन्तरेणयदागच्छेत्कृच्छ्रं सांतपनंचरेत् • होमकालेतथादोहेस्वाध्यायेदारसंग्रहे अन्तरेणयदागच्छेत् द्विजश्चांद्रायणंचरेदिति (दोहे सान्नाय्यांगभूते•एतच्चाभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्=शंखजी कहिते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण ढाखे की लकड़ी से बनी खाट या सवारी का माचा या तख्त पीढ़ी आदि आसन या खड़ाऊँ पर चढ़िके बैठे खड़ा होय सो तीन दिन व्रत करे=और कोई ब्राह्मण जो शस्त्रबाँधि कर सवीपन की नौकरी किये हो सो उस राजा के रणमें अपने प्राणोंके भयसे पीठि दिखाकर उलटा भागै वह एक वर्ष भर ब्रह्मचर्य का व्रत करै और फलोंका देनेवाला कोई पेड़ जिसने काटाहो वहभी एक वर्ष भर व्रत करै=और दो ब्राह्मण कहीं बैठे हों या बात करते हुये मिले चले जाते हों या परस्पर पढ़ते और पढ़ाते हों तिनके बीच होकर जो कोई निकसिजाय सो बीच में विक्षेप करने के पाप में कृच्छ्र सांतपन प्रायश्चित्त करै• इसी प्रकार जो ब्राह्मण और अग्नि के बीच में जो चला जाय सोभी कृच्छ्र सांतपन करै (यहांपर वही अग्नि माननी जोउसी ब्राह्मण से किसी तरह का वास्ता रखती है अन्यथा जहां निरपेक्ष कोई अग्नि कहीं जलती या धरी हो तिसके निकट कोई निरपेक्ष ब्राह्मण चला जाता या बैठा हो तिनके बीच होकर निकसि जाने का यह दोष नहीं है) इसी प्रकार दंपती पति पत्नी कहीं बैठे या चले जाते हों तिनके बीच होकर निकसि जाय सो भी कृच्छ्र सांतपन करै• इसी प्रकार गाय और ब्राह्मण इन दो के बीच निकसि जाने वाला कृच्छ्र सांतपन करै तब निर्दोषी होय=इसी प्रकार जहां कोई होम कर्म करता करवाता हो या गाय को दुहता दुहवाता हो और स्वाध्याय नामक वेद पाठ आदि कोई सा पाठ करता करवाता हो या दार संग्रह विवाहकर्म करता करवाता हो और इनके उपलक्षण से यज्ञोपवीत मंत्र दीक्षा श्राद्ध कर्मआदि भी समझि लेना इन कामों के बीचमें जो कोई निकसिजाय सो द्विजाती चांद्रायण व्रत आचरै तब निर्दोषी ठहरै॥

क्वचिद्देशविशेषगमनेपि देवलः=सिंधुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथाप्रत्यंतवासिनः अंगवंग

कलिंगांश्चान्नगत्वासंस्कारमर्हति(एतच्चतीर्थयात्राव्यतिरेकेणाद्रष्टव्यमितिमिताक्षरा= अर्थात्–देवल कहिते हैं कि सिन्धुदेश सौवीर देश सौराष्ट्रदेश तथा (प्रत्यन्त देशों अर्थात्) म्लेच्छ देशों को जाइके और अंगदेश वंगदेश कलिंग देश अन्ध्र देशों को जाइके दुबारा जनेऊ करवाने योग्य होता है (परन्तु यह तीर्थ यात्रासे उपरालजाने का चर्चा है अर्थात् जगन्नाथ आदि बड़े तीर्थोंको जातेहुये जो निषिद्ध देश सम्भाने पर तिनके लिये पुनः संस्कार की जरूरत नहीं है ॥

सूर्य में छिद्र देख परना आदि अरिष्ट किन्तु खोटे अपशकुन जो अनेक भांति होते हैं तिनके भी प्रायश्चित्त हैं=तदाह शंखः=दुःस्वप्नारिष्टदर्शनादौ घृतंसुवर्णंच दद्यादिति=यमोप्याह=प्रत्यादित्यंनमेहेत नपश्येदात्मनःशकृत् दृष्ट्वासूर्यंनिरीक्षेत ब्राह्मणंगामथापिवेति=शंखस्तु=पादप्रतापनंकृत्वाकृत्वावह्निमधस्तथा कुशैःप्रमृज्य पादौतुदिनमेकंव्रतीभवेदिति=अर्थात्–खोटास्वप्ना और खोटे अरिष्ट देखपरने आदि में घी और सुवर्ण का दान करें तिससे फिर कल्याणही होताहै यह शंखने कहा= यम ने भी यह कहा है कि=सूर्य के सन्मुख न मूतै और अपना विष्टा न देखैकदा-चित् विष्टा देखि लिया हो तो सूर्य्य के दर्शन करें और सूर्य बादलमें छिपे हों तो ब्राह्मण के दर्शन करे ब्राह्मणभी न मिले तो गाय के दर्शन करै=शंख ने भी कहा है कि=अग्नि में पैर तपावै या खाट के नीचे आगि धरिके सोवै या कुशाओं से पैर माजै सो एक दिन व्रत करै तब निर्दोषी ठहिरै ॥

अथाभिवादननियमातिक्रमः= तत्रक्षत्रियाद्युपसंग्रहणे हारीतः=क्षत्रियाभिवादने ऽहोरात्रमुपवसेत् वैश्याभिवादनेद्विरात्रम् शूद्रस्याभिवादने त्रिरात्रमुपवासः= तथाग्र-स्यारूढपादुकोपानहा रोपित पादोच्छिष्टांधकारस्थ श्राद्धकृज्जपदेवपूजानिरताभि वादने त्रिरात्रमुपवासःस्यात् अन्यत्रनिमन्त्रितेनान्यत्रभोजनेपित्रिरात्रमित्यपिहारीतः (समित्पुष्पादिहस्तस्याभिवादने ष्येतदेवेतिमिताक्षरायतः) (समित्पुष्पकुशाज्या म्बुमृद्वन्नाऽक्षतपाणिकश्च जपहोमचक्रवर्त्तीनांनाभिवाद्यैतवैद्विजम् इत्यापस्तंबीयेजपा दिभिः समभिव्याहारात्=अर्थात्–अभिवादनके नियम छोड़िकर जोकोई अतिक्रम से अभिवादन करै तिसके प्रायश्चित्त कहा चाहते हैं (अभिवादन का अर्थ है प्रणाम नमस्कार पैर छूना आदि प्रधान है और दूसरा अर्थ यहां पर यह भी है कि किसी को पहिले चिताइ के कुछ बात कहिना कि जिससे दूसरे को अवश्य ही बोलना परै• इस प्रकरण में दोनो तरह के अर्थों से प्रयोजन लिया जायगा• इस तरह से कि बिरली बात में केवल प्रणामही का अर्थ और बहुधा बातोमे दोनों

अर्थ माने जायँगे केवल अभिवादन के शब्द से) सो सब आगे अपनी बुद्धि से यथा योग्य समझि लेना किन्तु अनेक बातें कही जायँगी=तिनमें प्रथम क्षत्री आदि को ब्राह्मण होकर अभिवादन करै अर्थात् भूल से नमस्कार आदि शब्द कहिउठै तिस के मध्ये हारीत जी कहिते हैं कि=क्षत्रीको अभिवादन करै तिसको एक दिनराति भर उपवास करनाचाहिये जो वैश्यको अभिवादन करै सो दो दिन उपवास करै जो शूद्रको अभिवादनकरिबैठे सो तीनदिन उपवासकरै=तथा हारीतही यह दूसरी व्यवस्था कहितेहैं कि जोकोई अपनी मूर्खतासे अग्रोक्त पुरुषों को प्रणामरूपी अभिवादन या किसी और तरहका संबोधनकरै कि एक जो खाटपर लेटा या चढ़ताहो दूसरा जो खड़ाऊँ या जूताको पहिरनेलगा हो जबतक न पहिन पावै तबतक उससे न बोले॰तीसरा जो जूठा होरहा हो॰चौथा जो अँधेरेमें बैठा हो॰जो श्राद्ध करताहो॰जप करता हो॰ देवताकी पूजामें लगा हो॰इनको भूल से अभिवादन करिउठै सो तीनदिन उपवास करै॰और का नौता स्वीकार करिके और का भोजन करि आवै सोभी तीन दिन प्रायश्चित्तकरै (यही तीनदिनका व्रत उसको भी चाहिये जो पत्र फूल आदिसे अटके हाथवालेको अभिवादनकरै इससे हाथकीचीज बिरली गिरिजानेका खटका होताहै बिरली देवताके निमित्तवाली जूठी होजातीहै क्योंकि अगिले आपस्तम्बके वचन में यही तात्पर्य है सो देखो कि) समिध या फूल या कुशा या घृत या जल याअक्षत जिसके हाथ में मृदुरीति से ढीले थँभे हैं या जपमें लगाहो या होमआदि कर्म करता हो ऐसे ब्राह्मणों में किसी को भी प्रणाम संबोधन कुछ न करै॥ ०॥
इसी प्रकार यही तीन दिन का व्रत उसको भी चाहिये कि जो पुरुष उक्त चीजों को लिये हुये किसी दूसरे को नमस्कार करै या दूसरेका नमस्कार सुनिके प्रत्यभिवादन के द्वारा स्वीकार करै—यथाह शंखः=नोदकुंभहस्तोऽभिवादयेन्न भैक्ष्यंचरन्न पुष्पाज्ञ्यादि हस्तेनाशुचिर्नजपन्न देवपितृकार्यंकुर्वन्नशयानः (इतिशंखेन तत्रापि प्रतिषेधादितिमिताक्षरा=अर्थात्—पानी का घड़ा हाथ लियेहुये किसीको नमस्कार न करै न भिक्षा लेते हुये समय पर न अपने हाथ फूल घृत आदि कुछ थाँभे हुये न अशुद्ध होते (अर्थात् भोजन से उठिके वा हजामत कराते वा शंका लघु शंका से उठि कर हाथ पैर मुह धोने बिना एवं प्रातःकाल के शौच से निपटे बिना) न जप करते हुये न देव पितरों का कुछ काम करते हुये न लेटे हुये अभिवादन करै यह शंख जी ने दूसरे को भी उन्हीं बातों का निषेध कियाहै तिससे इसको भी वही प्रायश्चित्त चाहिये—तात्पर्य सबका यही है जो जो बातें निषेध करी गईं सो

परस्पर सब दोनों को समझनी कि अभिवादन ऐसे समय पर करना चाहिये जब सर्वथा सावधान देखे जिससे दूसरे की कुछ हानि या उसके मन में कोईसा क्षोभ न उत्पन्न होने पावे क्योंकि संसार में अभिवादन केवल मुलाकाती प्रीति का हेतु कायम किया गया है तिसमें भी यदि रंज या हानि पैदा हुई तो फिर यही पाप का चिह्न है॥ ०॥ विज्ञानेश्वर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि इसी तरह और भी स्मृतियों के वचन जहां देखि परें तिनको भी स्वीकार करना क्योंकि ग्रन्थ बड़ा हो जाने के डर से यहां सब नहीं लिखे गये हैं॥ २९३॥ इसी दोसौ तिरानवे मूल श्लोक से लेकर यहां तक संबन्ध मात्र से प्रकीर्ण प्रायश्चित्तों के अनेक पाठ भेद लिखे गये बल्कि प्रकीर्ण प्रायश्चित्तों का प्रारम्भ २९१ दो सौ इक्यानवे मूल श्लोक से हो चुका था॥

(इतिप्रकीर्णकप्रायश्चित्तप्रकरणंसमाप्तं)

इस प्रकरण में एकही ७४ चौहत्तरि का परिच्छेदहै जिसमें जाति भ्रंशकरादि पापों की व्यवस्था को छोड़िके प्रकीर्णक पापों की २१ इक्कीस व्यवस्थायें जिनके सब जुदे जुदे पाठ यहां तक पूरेहुये॥ इस प्रकरण में और इससे पहिले बहुत बड़े भक्ष्या भक्ष्य के प्रकरण में भी वेही बातें रक्खीगई हैं जो रोज रोजके वर्ताव में हर वक्त काम आती हैं—इनहीं का तीसरा भेद और है कि वह भी रोज रोज के वर्ताव में आता है वह चौथे परिच्छेद में तीसवें ३० मूल श्लोक से वर्णन होचुका तहां उसीकी अवधि कोष्ठ भर में देखो उसके प्रायश्चित्त इनसे भी अति छोटे हैं

यद्यपि इस ग्रंथ में प्रायश्चित्त कुछ और भी कहिने शेष रहे हैं परंतु यहां तक सभी पापों का निपटारा होचुका है प्रसिद्ध पातकों में कोई ऐसा नहीं रहा जिसका प्रायश्चित्त न कहिचुके हों॰तथापि यहसंसार अनंतहै इसमें पापरूपी निमित्तों के स्वरूप भी अनन्तहैं जो सब एकसाथ गिने नहीं जासक्ते हैं कि जिनके प्रत्येक जुदे नामों से प्रायश्चित्त कहे जासकें ॰न जानिये किसकाल में किसी मनुष्य के द्वारा किसप्रकार का अपूर्व पाप उत्पन्न होय तिसका भी प्रायश्चित्त इन्ही के अनुकूल सोचिकर देना होता है जो यहांतक वर्णन होचुके ॰ परंतु उसमें सोच विचार से अन्याय होजाने की शंका भी सर्वत्र लगी रहिती है॰ और जो प्रत्येक जुदे नामों से प्रायश्चित्त वर्णन होचुके लिखेसबजुदेहैं तिनमें भी विचार किये विना आदेशकर देने से प्रायश्चित्ती पुरुष की वृथा प्राणहानि होजाना आदि अनेक शंका लगी

रहिती हैं-तिसके विचार की सुघडाई बनी रहिने के प्रयोजन से एक सामान्य मर्यादा आगे पचहत्तर ७५ परिच्छेद में योगीश्वर आपही दर्शावैंगे कि जिसका सर्वत्र सहारा लिये रहिने से अन्याय न होनेपावै॥

अथ अनुक्तप्रायश्चित्तपापेष्वपिनिष्कृतिकल्पनायुक्तिविचारोनामपरिच्छेदः पंचसप्ततिमः (७५)



इस परिच्छेद में विशेषकर ऐसे पापों के प्रायश्चित्त विचारे जायँगे कि जिनके नामसे कोई प्रायश्चित्त इसग्रन्थ भरमें कहीं भी न लिखा हो–इसके सिवाय जितने प्रायश्चित्त यहांसे आगे आगे लिखेजायँगे और जितने यहांतक पहिले से वर्णन होते रहे तिन सबहीका साधारण एक विचार है सोभी इसी परिच्छेदमें निर्णय किया जायगा॥

(प्रायश्चित्तंच देशकालादिविचारेणैव)

देशंकालंवयःशक्तिंपापंचावेक्ष्ययत्नतः। प्रायश्चित्तंप्रकल्प्यंस्याद्यत्रचोक्तानिष्कृतिः २९४

अर्थः–देश काल वयस् शक्ति पापकोभी देखिके यत्न से प्रायश्चित्त कल्पना किया जाय जहां निष्कृति न कही गई तहां भी–अर्थात–जो कुछ प्रायश्चित्त यहां तक सब तरहसे वर्णन होचुके अथवा आगे जो कुछ कहेजायँ तिनका वर्तावा जहां करना परे अथवा किसी ऐसे पाप का प्रायश्चित्त देना परे जिसके नामसे शास्त्र में न लिखागया हो तहां तहां सर्वत्रइतनी बातों के विचारसे प्रायश्चित्त देनाचाहिये कि–प्रथम देशका विचार फिर काल का विचार फिर अवस्था का विचार फिर उस प्रायश्चित्ती की शक्ति सामर्थ्यका विचार और उस पाप के स्वरूप काविचार करै कि जिसके ऊपर प्रायश्चित्त देना चाहागया ऐसे पूरे यत्नों से प्रायश्चित्तकी कल्पना करनीयोग्य है कि जिससे कर्ता पुरुषके प्राणों की हानि वृथा न होजाय यही इसका तात्पर्य है और यहभी तात्पर्य है कि अतिशय छोटे पाप में बहुत बड़ा प्रायश्चित्त न होजाय॥ २९४॥

२९४ अधिकोक्तिः– उक्त बातों का व्योरा यहां समझाते हैं कि जहां कर्ता पुरुष को प्राणांतिक प्रायश्चित्त की आज्ञा न होने परभी केवल वर्तमान के आ-

चरणों में किसी कठिनाई से प्राण जातेरहें तहां उसके प्राण वृथा जानेके सिवाय एक यह भी दोष खडा होता है कि प्रायश्चित्त ही पूरा न होसका क्योंकि बीचही में उसकी कठिनता से प्राण चले गये—तिससे इन दृष्टान्तों को समझना चाहिये कि जैसा आगे ३१२ तीन सौ बारहवें मूल श्लोक से योगीश्वर कहेंगे कि (दिन में वायु को पीता हुआ खडा रहि कर रात्रि को जल में बैठिके बितावै फिर दूसरे दिन सूर्य निकसि आने पर एक हजार गायत्री जपिकर शुद्ध हो जाता है परन्तु जिसने ब्रह्महत्या करीहो वह इस प्रायश्चित्तसे नहीं शुद्ध होगा किन्तु यह अन्य पापोंका चर्चा है) ध्यान करो कि यही प्रायश्चित्त किसी से करवाया जाय तहां देश का विचार ऐसे होसक्ताहै कि हिमालयके निकट वर्ती देशों में जलका निवास न करवाना चाहिये ऐसेही कालका विचार है कि अति शीत के ऋतु काल में जल का निवास वर्जित करे अर्थात् हिम देश और हिम काल को बचाइ कर जल का निवास कल्पित करे इत्यादि और बातें भी देश काल की अपेक्षा में समझनी—एवं वयस् अवस्था का विचार है कि जहां नब्बे वर्ष का बूढा या बारह वर्ष के भीतर का बालक प्रायश्चित्ती ठहिरे तहां यदि बारह वर्ष वाले प्रायश्चित्त उन पर आदेश किये जायँ तौ प्राणों की विपत्ति आनि परैगी तिससे बीच को अवस्था वाले पर बारह वर्ष का व्रत आरूढ किया जासक्ता है कि जिसका देह सर्वथा बलवान होय॰ इसी लिये किसी स्मृति का यह वचन है (क्वचिदर्द्धक्वचित्पादः) कहीं आधा कहीं चौथाई प्रायश्चित्त बतावै इस वचनसे बूढे बालक आदिका ह्रासरूपी निर्वाह दर्शाया है कि इनको पूरा व्रत न देना चाहिये सो यह न्याय पहिले भी जहां तहां बडे प्रकरणों में वर्णन होचुका—एवं शक्ति का यह विचार है कि जिस प्रायश्चित्त में धन का दान या तप का करना आदि कोई बात नियत होय सोभी उसकी शक्ति के अनुरूप कराना उचित है क्योंकि (पात्रेधनंवापर्याप्तं) यह वचन कहीं लिख चुका है कि अच्छे पात्रों को खूब धन समर्पण करे यह नियम निर्धन के साथ नहीं चल सक्ता है—तथा उद्रिक्त अति श्रेय पात्र पुरुषोंके निमित्त में पराक आदि व्रतों का विचार है कि जैसे बारह दिन कोरा लंघन करना यह पराक होता है जो किसी निमित्त पर करना लिखाहो और वही निमित्त किसी ऐसे पात्रपुरुष पर आरूढ होय जो जप तप करने में समर्थ हो तौ फिर पराक आदि व्रत करवाना कुछ न्यायात्मक नहीं बल्कि वेद की संहिता आदि के पाठ या गायत्री आदि जप करवाने योग्य ठहिरैंगे॰ एवं राजा आदि कोई जो बहुत सा धन दान कर सकने में

समर्थ हो तिसपर भी पराक आदि व्रत का उपदेश देना अनुचित है• एवं जहां कोई स्त्री या शूद्र जाती पुरुष प्रायश्चित्ती होय तहां उसके पाप का प्रायश्चित्त यद्यपि जप पाठ आदि शास्त्र में नियत होय जो विद्या से सबधित है तथापि स्त्री औरशूद्र को इन कामों की आज्ञा देना न्याय नहींहै अर्थात उनसे व्रतही करवाने चाहिये• इन्हीं कारणों से ५४ चौवन परिच्छेद में सब जीवों की हिंसा पर जुदे जुदे दानोंके स्वरूप दर्शाने पीछे दोसौ चौहत्तरि मूल श्लोक से योगीश्वर ने यह कहा था कि (हाथी आदि की हिंसा पर लिखे दान देने में असमर्थ होय सो प्रत्येक दान के पलटेमें कृच्छ्र व्रत साधे) इसी प्रकार किसी और स्मृतिमें निरोगिनि स्त्री तथा रोगी पुरुषको भी तप करने में असमर्थ जानिके प्रायश्चित्तमें कमी करने की यह आज्ञा है कि (स्त्रियां तथा रोगी पुरुष भी नियत प्रायश्चित्त का आधा करवाने के योग्य हैं) इसी २९४ मूल श्लोक में पाप को भी सोचिके प्रायश्चित्त विचारना कहा गया तिसमें यह सोचना है कि प्रथम उस रीति से पापों के दर्जे कायम करें कि जैसा २४२ दोसौ बयालिस की अधिकोक्ति में डौल कहा गया था फिर उस प्राप्त किये दर्जा के भीतर यह सोचौ कि यह पाप प्रत्यय सहित या बिना प्रत्यय के ठहिरा फिर यह सोचौ कि सबसे प्रथम एकही बार का यह पाप है या इसीको वारवार करते बहुत काल बीति चुका है तिस पीछे श्रेष्ठ यत्नों से धर्म शास्त्र को समस्त आद्योपान्त देखि भालि के प्रायश्चित्त निकासें कि जिससे कोईसा दूषण उसमें न रहिजाय—तिसमें एक यह भी डौल विचारना कि इच्छा बिना धोखा से उत्पन्न हुये पापों पर जितना प्रायश्चित्त लिखा हो तिसको इच्छा से पाप करने वाले पर दूना ठहिराना चाहिये और उसी का चौगुना उसपर कि जिसने इच्छा सहित वार वार का अभ्यास किया हो यह अन्य स्मृतियों का सिद्धांत है ॥ ० ॥ तथैव ६० साठि परिच्छेद में २८६ दोसौ छियासी मूलश्लोक देखो उसमें कहाथा कि (झूंठा कोई किसी को महा पापों से या गोहत्या आदि उपपापों से दोष लगावे सो एक महीना भर जलके आहार से रहिकर जप करै तब शुद्ध होय) यह प्रायश्चित्त उस स्थल पर यद्यपि सामान्य रूप से एकहो कहा गया था तौभी अप्रोक्त मर्यादा के विचार से उसमे यह सोचना चाहिये कि महा पाप और उपपाप का एकही प्रायश्चित्त होना अयुक्तहै तिससे उसमेंभी हर एक दर्जाके पापोंपर व्यवस्था कल्पित करनी चाहिये अर्थात जिसने बड़े बड़े पापोंका झूंठा दोष लगाया हो तिसको वही एक महीनेका पूरा प्रायश्चित्त कराना किन्तु जिसने उपपापों का

झूठा दोष लगायाहो तिसके लिये महीना में कुछ कमी अपने न्याय रूपी विचार से करदेनी चाहिये तो यह भी एक पापही का विचार है ॥ ० ॥ इसके उपरान्त विरले ऐसे भी वचन हैं कि (हसितजृंभितास्फोटनानिनाकस्मात्कुर्यात्–तथा–नोदन्वतोंऽभसिस्नायान्नचश्मश्रूादिकर्तयेत अन्तर्वत्न्याःपतिःकुर्वन्नप्रजाभवतिध्रुवम) इत्यादौ प्रायश्चित्तंनोपदिष्टं तत्रापिदेशाद्यपेक्षया प्रायश्चित्तकल्प्यं=अर्थात्–अकस्मातही निरर्थक हसना या जंभाना ऐंड़ाना ताल ठोकना आदि आकारों को न करे यहनिषेध कियागया है–तथा–गर्भवती नारी का पति समुद्रके जलमें न स्नान करे न दाढ़ी मुछ आदि कटावै क्योंकि ऐसा करने वाले के सन्तान पैदा नहीं होती है यह निश्चय जानो) इत्यादि और भी अनेक ऐसे वचन हैं कि जिनमें विरले आचरणों का निषेध या उनका दोष भी दर्शाया गया है परन्तु प्रायश्चित्त कुछभी नहींकहा है कदाचित इन्हीं दोषों का प्रायश्चित्त कल्पित करना परै तहांभी देश काल आदि का विचार जैसा मूल श्लोक में कहिचुके सो सब करना चाहिये ॥ ० ॥ इस पर वादी पुरुष तर्कना खड़ी करता है कि पाप रूपी निमित्त मात्र कहीं भी कोई ऐसा नहीं दिखाई देता है जिसका प्रायश्चित्त न कहा गया हो क्योंकि यदि कदाचित किसी पापका प्रायश्चित्त लिखने से रहिभी गयाहो तिसका भी प्रायश्चित्त आगे ३०६ तीन सौ छठे मूल श्लोक से योगीश्वर आपही कहा चाहते हैं और गौतम ने भी (एतान्येवानादेशेविकल्पेनक्रियेरन्निरये काद्दादयःप्रतिपादिताः) एक दिवस आदिके व्रतरूपी प्रायश्चित्त दर्शाय कर पीछेसे कहि दिया है कि इन्हीं प्रायश्चित्तों को विकल्प से उन पापों परभी करें कि जिनपर कोई प्रायश्चित्त न कहागया हो –इसका समाधान कियाजाता है कि यह तर्कना तुम्हारी सच्ची है और ३०६ मूल श्लोक आदि में उपदेशभी सामान्य भाव किया जावैगा सोभी होउ उससे कुछ विरोध यहां नहीं है क्योंकि यहां मूल श्लोक में सर्व देशकाल आदि की अपेक्षा पर इसबात की कल्पना का अवसर ठीक ठीक है •और तुम्हारी तर्कना पर तर्कना येही यह उत्तर है कि अभी ऊपर जो हमने जंभाने आदि बातोंपर कल्पना करना कहिचुके जो वह नहीं कही जाती तो क्या ३०६ मूलश्लोक वाली आज्ञा से काम यहां चल सक्ता क्योंकि वहांपर जो १०० प्राणायाम करने कहेंगे सो हसित आदि छोटे छोटे दोषों पर सर्वत्र इतना बड़ा प्रायश्चित्त अयुक्त है तिससे यहां की कल्पना से यह तात्पर्य है कि उन प्राणायामों को उपपाप आदि छोटे दर्जे के पापों से दोष लगाने वाले पर पूरा सैकड़ा न आरूढ करै अर्थात जैसा पाप हो तैसीही

प्राणायामों की संख्या थोड़ी या बहुत मौके भीतरही कल्पित करें अथवा जिस दोषी को निर्गुणी होने आदि से प्राणायाम करने की योग्यता या सामर्थ्य न हो तिसके लिये अपने बुद्धिके विचारसे कोई और प्रायश्चित्त सोचै कि जिसको वह करसके ॥ ० ॥ वादी पुरुष फिरभी एक प्रश्न खड़ा करताहै• क्योंजो पापका छोटापन कैसे जानाजाय जिसके द्वारा प्रायश्चित्तमें कमीकरैं या कुछ और कल्पनाकरैं• इसमें यह उत्तर न देना चाहिये कि प्रायश्चित्त के छोटापन से पाप का छोटापन जानाजाता है क्योंकि मेरा केवल उन्हीं पापों का यह प्रश्न है जिनके लिये कुछ प्रायश्चित्त न कहागया हो —उत्तर •यह प्रश्न तुम्हारा सत्य है परन्तु ऐसे तुच्छ पापों का छोटापन या बड़ापन जानना स्वतः सुगमहोता है क्योंकि कुछ तो उनकेअर्थवाद की चर्चा कहिने सुनने मात्र सेही बोध होजाता है फिर यह भेद देखाजाता है कि उसने जानि बूझि के यह दोष किया यद्वा•विनाजानेंकिसी धोखा आदि से होगया—इसके सिवाय दंड के छोटापन बड़ापन सेभी दोष का छोटापन बड़ापन समुझा जासक्ता है,उसीके अनुसार प्रायश्चित्त का छोटापन बड़ापन कल्पित होसक्ता है—इसका दृष्टांत देखो ७४चौहत्तरि परिच्छेद में २९१।२९२।२९३।इन्हीं तीनश्लोकों को अधिकोक्तों सहित विचारो कि उनमें ब्राह्मण को ब्राह्मण मात्र कोई दण्डा उठावै या लगावै या अधिकचोट लगावै इत्यादि भेदों के अनुसार प्राजापत्यआदि छोटे बड़े प्रायश्चित्त कायम किये गये केवल सजाती सवर्णों के दोषपर दर्शायेगये सो वह एक नमूना है • कदाचित् वेही दोष ऐसे ढगसे उत्पन्न होयँ कि ऊंचे वर्ण वाला नीचे वर्णको दण्डाआदि उठावै तब उसके दण्डकीन्यूनताके अनुसार उन्हीं प्रायश्चित्तों में न्यूनता कल्पित करनी होगी अथवा नीचे वर्ण वाला ऊंचे वर्ण को दंडाआदि उठावै तहां उसके दण्डकी बढवारी अनुसार उन्ही प्रायश्चित्तों मे वृद्धि कल्पित करनी होगी• दण्डके अनुसार जो विचार करना कहा गया सो व्यवहार मर्यादा परिपाटी मे दण्डविधान के स्थल पर जहाँ (प्रतिलोम्यापवादेषु द्विगुणास्त्रिगुणोदमः) यही मूल श्लोक मिलै तहां इसकी अधिकोक्ति पर्यन्त व्याख्या देखो तब यह बात समझमें आवैगी क्योंकि आचार मर्यादा १ व्यवहार मर्यादा २ प्रायश्चित्त मर्यादा ३ ये तीनों कांड एकही धर्म शास्त्र के तीनि अंग हैं सो तीनों यद्यपि जुदे जुदे रक्खे गये हैं परन्तु तीनो का संबंध परस्पर संबंधा क्रम से मिला हुआ एकही तात्पर्य है ॥ २९४ ॥

यहां तक सर्वथा पापी पुरुषों के प्रायश्चित्त वर्णन किये गये परन्तु इसमे यह

शंकाहै कि जो पापी अपने उद्धतपनेसे नकरना चाहै तब क्या करनाचाहिये तिसका उपाय अगिलेपरिच्छेदमे दर्शावैंगेऔर उसकाभी कि जिसनेप्रायश्चित्त पूराकिया॥

अथास्वीकृतप्रायश्चित्तपतितस्यपरित्यागकरणेस्वीकृत प्रायश्चित्तस्यसत्कारकरणेचार्थंपरिच्छेदःषट् सप्ततितमः(७६)

इस परिच्छेद में दो विधी जानी जायँगी कि जे कोई पतित पापी लोग प्रायश्चित्त करना नहीं चाहें तिनके भाई बन्धु इकट्ठे होकर इस रीतिसे जाति बाहर करें–दूसरे जो प्रायश्चित्त को स्वीकार करिके पूरा करिआवें तिनको इस रीतिसे फिर जाति में मिलावैं॰ तिसमेंभी स्त्रियोंके निमित्त कोई जुदा प्रकार कहाजायगा॰ और विरलों की छूटभी दर्शाई जायगी कि अमुकामुकों से प्रायश्चित्त करि आने परभी मेल मिलाप सत्कार आदि व्यवहार न करना चाहिये॥

(दासीघटविधिः)

दासींकुंभंवहिर्ग्रामान्निनयेरन्स्ववांधवाः। पतितस्यवहिःकुर्युःसर्वकार्येषुचैवतम् २९५

अर्थः–दासी कुम्भको ग्रामसे बाहर पतितके स्वकीय बांधव लेजावैं तहां उसको सब कामोंसे बाहिरा करैं=अर्थात्–पतितके जे कोई भाई बंधुआदि जातिसंबंधी हों सो सब इकट्ठे होकरएक दासी को दूत बनाकर प्रथम उसीपतितकेपास खबर भेजैं कि प्रायश्चित्त न करनेके हेतुसे आज ऐसा प्रवन्ध होता है (यदि वह दासीसे इस बातके समाचार सुनिकरभी अधीनीसे प्रायश्चित्तका स्वीकार न करै तो (फिरउसी दासी के हाथ से भरवाये जलका भरा कुम्भ माटी का घडा उसी दासी के मूडपर धराकर उसे आगे लेकर सर्व भाई बंधु उसके पीछे पीछे साथ जाकर वस्तीसे बाहर किसी विख्यात तीर्थ आदि के स्थलपर धरिके लुढकावैं अर्थात् त्यागरूपसेफेंकवावैं (यही दासी कुम्भ कहाता है॥ २९५ ॥

२९५अधिकोक्तिः–दासी घटको त्यागनेकेसमय उसी जीवतेहुये पतितके नामसे मरेहुये प्रेतोंकीतरह जलदान कियाजाताहै और चतुर्थी नवमीआदि रिक्ता तिथियों

मे यह काम करना कहा है=तदाह मनुः=पतितस्योदकंकार्यंसपिंडैर्बांधवैःसह निन्दितेऽहनिसायाह्नेज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ=अर्थात्–निन्दित खोटेवार खोटीतिथिकेरोज संध्या के समीपी कालमें दिनका पांचवां भाग वर्तमान होनेपर समस्त जाती लोग जिनसे भाजी बाइंन का व्यौहार हो तिनको इकट्ठे करिके उनके सन्मुख और गुरु पुरोहित ऋत्विजआदिके सन्मुख पतितके सपिंडलोग उसके बांधवोंको साथलेकर पतितके नामका जलदान करें यह मनुने कहा=और यहभी मनुने कहाहै कि=दासी घटमपांपूर्णंपर्यस्येत्प्रेतवत्पदा अहोरात्र मुपासीरन्न शौचंबांधवैःसह=अर्थात्–जल के भरे घट को दासीअपने पैर से उलटा करै जैसे मरेप्रेतकेलिये कियाजाताहै उसीतरह लुढकावेऔर सब सबंधीजन बांधवोंसहित एकदिन रातिभर इकट्ठेरहिकरव्रतराखें और सूतक मानैं=मिताक्षराकार कहिते हैं कि घट का फेंकवाना जलदान पिंडदान आदि प्रेत कर्म कराने के बादि चाहिये क्योंकि आगे गौतम के कहे विधान में यही देखि परता है ॥ ० ॥यथा गौतमः= तस्यविद्यायोनिगुरुसंबन्धाश्चसन्निपात्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्माणिकुर्युःपात्रंचास्यविपर्यस्येयुः दासःकर्मकरोवापात्रमानीय दासीघटात्पूरयित्वादक्षिणाभिमुखोयदाविपर्यस्येत् इदंअमुकमनुदकंकरोमीति नाम ग्रहांतंसर्वेन्वालभेरन्प्राचीनावीतिनोमुक्तशिखाविद्यागुरवोयोनिसंबंधाश्चवीक्षेयेरन्नतोऽपःउपस्पृश्यग्रामंप्रविशेयुरितिगौतमः=अर्थात्–उस पतित के विद्या संबन्धी लोग सहपाठी या पढने पढानेवाले और योनिसंबन्धीलोग जिनकी लड़कियां व्याहिके उसकेघर आई हों और गुरु पुरोहित आदि जो उसके कहालेहैं तिन्हें इकट्ठेकरिके उसके सपिंड लोग उदक दान आदि प्रेतकर्म जो कुछ दाह के दिन एकही रोजहोते हैं सो सब करें और इसके नामका पात्र अर्थात् दासी घटभी उलटवावैं तिसकाजुदा यह विधान है कि उन्हीं सपिण्डों का दास टहलुआ या उसके न होने पर कोई और ही कर्म कर मजदूर मट्टी का घड़ा लाइकर उसमे दासी घट नामसे जल भरिके वही दास या दासी दक्षिण दिशा को मुह किये उसी दासी घट को जब उलटा करें तभी सपिंड और बांधव लोग पापी का नाम लेकर ऐसा मन्त्र बोलैं कि (अमुकमनुदकं करोमि) फलाने को आज से अनुदक भागी मैं करता हूँ अर्थात् किसी से जल दान पाने का भागी वह नहीं रहा न किसी अपने कुटुम्बी को जल दान करनेमें शामिल होसकेगा• इस मन्त्र को बोलते समय ये सब लोग जनेऊ को दाहिने कांधे पर धरलिके और चोटी की शिखा को खोलि के अपसव्य होकर मन्त्र बोलैं फिर पीछे से सब लोग आपस में परस्पर यथा क्रम से मिलैं भेटैं और इसी मंत्र का बोध

सबको कराते जावैं यह सब काम होते हुये पापी के विद्या गुरु और योनि संबंधी आदि सब नाते दार लोग देखें तिसके बादि जलमें स्नान करिके अपने ग्राम बसती को चले जावें यह गौतम ने कहा ॥ ० ॥ परन्तु यह त्याग रूपी कर्म कराना उसी दशा में आवश्यक है कि जब बंधुओं से प्रेरणा किया हुआ भी प्रायश्चित्त न करे अर्थात् बन्धु जनों को यह उचित है कि पहिले बारम्बार प्रायश्चित्त कराने की प्रेरणा ताकीद उसपर करें=यदाह शंखः=तस्यगुरूवांधवान्राजसमक्षंदोयानभिख्या प्यानुभाष्य पुनःपुनराचारंलभस्वेतिसयद्येवमप्यनवस्थितमतिःस्यात् ततोऽस्यपात्रंवि पर्यस्येदिति=अर्थात्–उस पापी के गुरुजन और बन्धुओं को राज अदालत के सन्मुख पापीके दोषों को अच्छीतरह कहि समुझाइके कि अवहूं प्रायश्चित्त करिके फिर अच्छे आचार को पकड़ो– ऐसा कहिने पर भी यदि वह अपनी समुझ को ठिकाने पर न लावें तब जाकर उसके नाम का दासीघट उलटा करवावें (यह शंख जीने कहा=दासी घट उलटा होचुकने के बादि ये सभी बांधव आदि उक्त पापी को सब कामों में बोलना चालना पास बैठारना आदि सत्कारों से बाहर करें=तदाह मनुः–निवर्तेरंस्ततस्तस्मात्संभाषणं सहासने दायाद्यस्यप्रदानंच यात्राचैवहिलौकि की=अर्थात्– दासी घट की विधि पूरी होजाने से अनन्तर उस पापीमें बोल चाल और पास बैठारना और पैतृक धनका भागदेना या भाजी बाइने का व्यौहार देना आदि बातें निवर्तित होजावें और भी जो कुछ संसारी व्यवहार देन लेन आदिहोते हैं सो भी बन्द किये जायँ= इसपर भी यदि कोई उसके साथ स्नेह आदि कारणों से बोलै तिसको प्रायश्चित्त कराया जाय–यथा (अत ऊर्ध्वं तेनसंभाष्य तिष्ठेदेक रात्रंजपन्सावित्रीमज्ञानपूर्वं ज्ञानपूर्वंचेत्त्रिरात्रमिति) अर्थात्–त्याग होजानेके उपरांत उसके साथ कोई बिना जाने बात करे सो एक दिन राति भर गायत्री जप करते हुये बितावै यह उसका प्रायश्चित्त है पर जिसने उसका त्याग होना जानते हुये बात चीत करी हो सो तीन दिन राति भर गायत्री जप करते हुये एक ठिकाने पर बैठा रहै ॥ २९५ ॥

(अथकृतप्रायश्चित्तस्यप्रत्यावर्तनविधिः)

यह बात कहा चाहते हैं कि बंधुओंके त्यागि देनेसे जिसको पछतावेमें वैराग्य आया तिससे त्याग होजानेके बादि जिसने प्रायश्चित्त किया अथवा दासीघट उलटा होनेके विनाही बंधुओंके समझानेसे प्रायश्चित्त किया अथवा किसीकी प्रेरणा

विना आपही जिसने प्रायश्चित्त किया तिनको साधना पूरीहोने वादि क्याकरना चाहिये तिसको आगे पांचश्लोकों में आपही योगीश्वर वर्णन करेंगे॥

(नूतनघटविधिःनिवर्तितप्रायश्चित्तस्यसत्कारः)

चरितव्रतआयातेनिनयेरन्नवंघटम्। जुगुप्सेरन्नवाऽप्येनंसंविशेयुश्चसर्वशः २९६

अर्थः—प्रायश्चित्त रूपी व्रतसाधन करिके लौटिआने पर सपिंड आदि बंधुलोग नवीन घटभरिके लेजावें और इसपुरुषकी किसीतरहसे कुछ निन्दा न करें औरसब तरहसे उसमे अपनाहेलमेलभीकरें॥ ध्यानकरो यहांपरनवीन घटवतानेसे यहतात्पर्य दर्शाया है कि पूर्वोक्त दासीघट के विधानमें नवीनकी ख़सूसियत नहुंहनी॥२९६॥

२९६ अधिकोक्तिः=घटके साथ सत्कारसे घर ले आना कहा• इसमें दो भेद हैं कि आगे योगीश्वरके ३०० तीनसौ मूलश्लोकमें (घटेऽपवर्जिते) इसपदसे घटका त्यागना भी प्रतीत होताहै और मनुके ग्यारहवें अध्याय मे १८६। १८७ इनदोनों श्लोकसे भी त्यागना प्रतीत होता है फिर इन्हीं में अस धातुके अर्थ भेद से घट का साथ लेआनाभी सिद्ध होताहै तथैव आगे गौतमके विधानमें भी साथ लेआना सिद्ध होताहै• इसी प्रकार कहीं लोकमें समक्ष भी यह देखा गया है कि बंधुलोग जला-शयसे घट भरिके उसके आगे आगे साथ लेकर घरको जातेहैं• तिससे निश्चितहुआ कि दोनों भेद ठीक ठीकहैं जहां जैसा सम्भव होय तहां तैसाही वर्ताव कियाजाय• और भी आचार मर्यादा परिपाटीमें सातवां मूलश्लोक तथा उसीका अभिप्रायार्थ देखो कि दो रीतों मे विकल्प से कोई एक रीति अपनी इच्छा से अंगीकार करें ये सभी लक्षरा भेद आगे समझिलेना॥ ०॥ पवित्र जलाशयमें स्नान कराइके घट के साथ घर को ले आना चाहिये=यथाह मनुः=प्रायश्चित्तेतुचरितेपूर्णकुंभमपांनवम् तेनैवसार्धंप्रास्येयुःस्नात्वापुण्येजलाशये १८६॥ सत्वप्सुतघटप्रास्यप्रविश्यभवनंस्वकम् सर्वाणिज्ञातिकार्याणियथापूर्वंसमाचरेत् १८७=अर्थात्—प्रायश्चित्त करिके आने पर उसके सपिंड समानोदक आदि बंधुलोग उसी के साथ जाकर पुनीत जलाशय में सभी स्नान करिके जलके भरे नवीन घट को (प्रास्येयुः) जल में फेंकें या ग्रहण करिके साथ लेजावें ये दोनो अर्थ ठीकहै १८६॥ वह प्रायश्चित्ती पुरुष उसी घट को जलाशयमें (प्रास्य) फेंकिके या जल ग्रहण करिके अपने घर को जाइ प्रवेश करिके ज्ञातिसवंधीसव कार्य करनेलगै जैसे पहिले किया करता हो १८७॥ यद्यपि अर्थ दोनों ठीकहैं तथापि जल भरिके साथ लेजाना अर्थ उत्तम है क्योंकि गौतम ने

इस बातपर एक जुदा विधान कल्पित कियाहै तिसमें भी यही अर्थ देखि परता है सो सब आगे देखो फिर इसकेमध्ये तीनसौ की अधिकोक्तिभी देखना॥ ०॥ अत्राह गौतमः=यस्तुप्रायश्चित्तेनशुद्ध्येत तस्मिन्कुंभेशातकुंभ मयपात्रंपुराय तमात्तद्ध्रदात्पूरयित्वा स्रवन्तीभ्योवा ततएनमप उपस्पर्शयेयुरथास्मैतत्पात्रंदद्युस्तत्संप्रतिगृह्यपेत (शांतायौःशान्तापृथिवीशान्तंशिवमन्तरिक्षंयोरोचनस्त मिह गृहणामीत्येतैर्यजुर्भिःपावमानीभिस्तरत्समन्दीभिः कूष्मांडैश्चाज्यंजुहुयात् हिरण्यदद्यात् गांचाचार्याय) यस्यप्राणांतिकप्रायश्चित्तं समृतशुद्ध्येत्• एतदेवशान्त्युदकसर्वेषूपपातकेष्वपि• ततएनकृतप्रायश्चित्तं तेनैवक्रुत्सयेयु.सर्वकार्येषुक्रयविक्रयादिषु तेनसहसंव्यवहरेयुः=अर्थात्–यह सब गौतमने आपही कहाहै कि–जो कोई प्रायश्चित्तसे शुद्धहोजाय तिस पर कुम्भविधि करनेमें सुवर्ण का बना घट होय अथवा चाँदी आदि माटी पर्यन्त किसी औरही धातुका पात्रहोय तौभी उसमें कुछ सोना डार देना चाहिये तिसको पवित्र तालाव कुराड या नदियों से भरिके उस प्रायश्चित्ती के आगे करिके साथ साथ लेजावें किसी जलाशय पर अर्थात् अभी पहिले घरके भीतर वह न घुसै उसी जलाशयमें इसको स्नान करवावें इसके अनन्तर वही जलका भरापात्र उसके हाथों में समर्पण करें तिसको दोनों हाथसे अच्छे थाँभिकर जपकरै अर्थात् यदि आपही वेदमन्त्रों के जपनेमें समर्थहो तो आपही जपै अन्यथा किसी वेदपाठीको अपनेसाथ प्रतिनिधि बनाकर उसके मुखसे जपकरावै और घीका होमकरै तिसके लिये (शान्तायौ.शान्तापृथिवी आदि ऋचाओंके नाम चिह्न भी देदियेहैं कि इत्यादि यजुर्वेद की पावमानी और तरत्समन्दी ऋचाओंसे जपकरै तथा कूष्मांड नामके वेदमन्त्रोंसे घृतका होम करै और सोना चाँदी तथा गाय भी आचार्य को दान करै कि जिसने यही जप होम करवायाहो)किन्तु जिसका प्राणान्तिक प्रायश्चित्त ठहिराहो जैसा ब्रह्महत्या आदिके प्रकरणोंमे कहाथा कि अग्निमें जलिजाना आदि प्रायश्चित्तहो सो मरजानेसेही शुद्धहोता यह घटकी विधि उसके लिये नहीं है• यही शान्ति का उदक रूपी घट विधान सब तरह के उपपातकों में भी जानना • तिसके अनन्तर इस प्रायश्चित्ती पुरुषको वे बन्धुजन किसी प्रकारसेभी नकोसैं अर्थात् पहिलेदोष बाबत कोईसी निन्दा उसकी नकरैं और सब कार्यों तथा क्रय विक्रय आदि सौदागरी के व्यवहारोंमें भी उसके साथ अच्छी रीतिसे वर्ताव करैं कि जो कुछ पहिले छूटिगयेथे यह गौतम ने कहा (इसका विधान थोडासा और बाक़ी रहा सो आगे ३०० के मूलश्लोकमें देखो॥ २९६॥

इस परिच्छेद में यहां तक २९५। २९६ दोसौ पंचानवे छानवे के दोनों मूल श्लोकसे जो कुछ व्यवस्था पतित पुरुषके निमित्तपर कहीगई सोसब नीचेके श्लोक से पतिता स्त्रियोंके निमित्त पर भी अतिदेश उतारा जायगा॥

(स्त्रीष्वप्यतिदेशः)

पतितानामेषएवविधिःस्त्रीणांप्रकीर्तितः। वासोगृहांतिकेदेयमन्नंवासःसरक्षणम् २९७

अर्थः—पतिता स्त्रियोंकी भी यही विधि कहीगई=अर्थात्—जैसा दोसौ पंचानवे २९५श्लोकसे पतित पुरुषोंका दासीघट उलटा करना या जलदान पिण्डदान करना आदि कहा गया वही सब स्त्रियोंकाभी समझिलेना और जैसा दोसौछानवे २९६ श्लोकसे प्रायश्चित्तकिये पुरुषका सत्कार करना कहागया वही सब स्त्रियोंकाभी जानना (यह अतिदेश धर्मका स्वरूपहै) तथापि पुरुषोंकी अपेक्षा यहां स्त्रियोंकेनि-मित्तपर थोड़ीसी विशेषमर्यादा एक जुदीहै सो उत्तरार्धमें देखो।घरकेसमीपवासदेना तथाअन्नवस्त्रभी रक्षासहित =अर्थात्—यहीइतनानियम विशेषहै कि जो कोईस्त्रियां अत्यंत पतित ठहिरें और प्रायश्चित्त को न करें तिनका दासीघट विधानआदि कर्म होजाने के बादि भी कहीं बाहर न जाने देवे परन्तु घर में भी घुसना उनका निषिद्ध है तिससे घरके समीप ही किसी फूस पत्ते आदि की बनाई झोपडीमें निवास क-रावे और प्राणावने रहिने योग्य मोटा अन्न और मैले पुराने वस्त्रदेते रहिकर ऐसी चौकसाई से राखे जो किसी पुरुषका समागम उसमें न होसके (इसअप्रोक्त नियम से यह बात भी आपही सिद्ध होती है कि जिन प्रायश्चित्तों की साधनापुरुषों को जंगल या वन विदेश में जाकर करनी कही थी • कदाचित वेही प्रायश्चित्त कहीं पर्देदार स्त्रियों पर आरूढ होयँ तौभी उनका बाहर जाना उचित न होगा किन्तु इसी रीति से घर के समीप जुदे स्थान में रहिकर व्रतादिक साधन करेंगी या घरू पुरुषों की रक्षा साथ तीर्थ आदि के स्थान पर कि जैसा कुछ विवेकी वि-द्वानों के विचार से ठहिरे• बल्कि ऐसे ही अटपटे विचारों के अर्थ में पचहत्तरि ७५ का परिच्छेद सबसे जुदा रक्खा गया है कि सब तरह की टेढ़ टपेड वाली वातोंकी गुंजायश उसमें सोची जासक्ती है॥ २९७॥

यहां यह सन्देह खड़ा होता है कि वे अत्यन्त पतिता स्त्रियां कौन हैं जिनके लिये यह जुदी विधि परित्याग मध्ये कही गई क्योंकि पतित अनेक भांति की होती हैं तिनमें इनकी क्या पहिचान होगी सो अगिले मूल श्लोक से दर्शाते हैं॥

(स्त्रीणांअतिपातित्यचिह्नानि)

नीचाभिगमनंगर्भपातनंभर्तृहिंसनम्। विशेषपतनीयानिस्त्रीणामेतान्यपिध्रुवम् २९८

अर्थ:-नीच से संगम• गर्भ का गिराना• भर्ता का वध करना• स्त्रियोंको ये भी तीन कर्म निश्चय पूर्वक विशेष पातित्य का हेतु हैं=अर्थात्- जो जो महा पातक आदि पुरुषों के पातित्य का हेतु कहे गयेहैं तिन कर्मों से स्त्रियां भी पतित होती हैं परन्तु स्त्रियों के अग्रोक्त तीनि कर्म अधिक हैं जिनसे अत्यन्त पतित होजातीहैं• तिनका यह व्यौरा है कि एक जो हीन वर्ण आदि नीची जाति के पुरुष में गमन करै• दूसरा कर्म जो अपना या विराना किसी स्त्रीका गर्भ उसके कहिने या न कहिने आदि किसी तरह से गिराती फिरै और यह गर्भ चाहै ब्राह्मणी का यद्वा और ही किसी वर्ण की स्त्री का या अपनेही पेट का गिराया हो तो हर सूरत में पतित होगी•तीसरा कर्म भर्ता का वध करना चाहै विष देकर या औरही किसी प्रकारसे मारना और यहां पर भर्ता शब्द से वह पुरुष जानना जो स्त्रीका भरण पालनकर्ता हो किन्तु चाहैं उसका सजाती विवाहित या विजाती विवाहित या धनक आदि किसी प्रकार का पति हो तिसका प्राणघात करना या करवाना भी भर्तृहिंसन कर्म कहाता है तिस कर्म के करने वाली पतिघ्नी कहाती है॥ २९८॥

२९८ अधिकोक्ति:-पुरुषों के पतित हो जाने मध्ये इतने कारण प्रसिद्ध हैं १ महापातक २ अतिपातक ३ पातक ४ अनुपातक ये चार तो एक ही एक बार होने से पतित बनाइ देते हैं पांचवें ५ उपपातक कई बार होजाने पर पतित बनातेहैं ऐसे ही इनसे छोटे छठे दर्जे वाले पाप इच्छा सहित अनेक बार होने से वेभी कर्ता पुरुष को पतित बनाते हैं येही सब स्त्रियों को भी पतित करते हैं (यह मूल श्लोक में अपि शब्द से ध्वन्यर्थ लिया गया) परन्तु स्त्रियोंको तीन पातक इन सबसे उपरान्त भी होतेहैं=एवंशौनकोप्याह=पुरुषस्ययानिपतननिमित्तानिस्त्रीणामपितान्येव ब्राह्मणीहीनवर्णसेवायामधिकपततीति=अर्थात्-ऊपर की वार्ताको शौनकने भी दृढ कियाहै कि पतित होजानेके जितने कारण पुरुषोंके लिये कहेगये वेही सबस्त्रियों को भी होतेहैं परंच ब्राह्मणी स्त्री यदि अपनेसे हीन वर्णोंकी सेवा सगति में पहुँचे सो अत्यन्तही पतित होतीहै=वसिष्ठस्तु=त्रीणिस्त्रियाःपातकानिलोकेधर्मविदोविदुः भर्तृवधोभ्रूणहत्यास्वस्यगर्भस्यपातनम्=अर्थात्-भर्ता का वध• भ्रूण हत्या जो गैर स्त्रियोंका गर्भ गिरावे या किसी का छोटा बचा मार डारै•अपना गर्भ गिराना• ये

तीनमहापातक धर्मज्ञलोग स्त्रियोंके बताते हैं (इसवचनका यहतात्पर्यनहीं है किइन तीनिसेउपरान्तपातकस्त्रियोंके नहीं हैं क्योंकिइनहींविषयकाऔरभी वचनआगेदेखो) इनमेंववशिष्ठः=चतस्रस्तुपरित्याज्याःशिष्यगाशुरुगाचयापतिघ्नीचविशेषेणजुंगितोपगताचया—इतिचतसृणामेवपरित्यागइत्युक्तंव्रतासांप्रायश्चित्तमचिकीर्षतीनांमध्ये चतसृणामेवशिष्यगादीनां चैलान्नगृहवासादिजीवनहेतुत्वाद्युक्तेनत्यागंकुर्यात् नान्यासामित्यभिप्रायःअतश्चान्यासांपतितानां प्रायश्चित्तमकुर्वतीनामपिवासोगृहांतिकेदेयमित्यादिकंकर्तव्यमित्यवगम्यतेइतिमिताक्षरा=अर्थात्—वशिष्ठने यह भी कहा है कि•ये चार स्त्रियां तो अवश्यही त्यागिदेने योग्य हैं—एक जो अपने भर्ताके शागिर्द विद्यार्थी सेवक नौकर आदिसे सगमकरै•दूसरी जो गुरुओंसे अर्थात् अपने या पतिके बाप चचा मामा फूफा आदि रिश्ते से बड़े बूढ़े गिनेजाते हों तिनमें किसी गुरुजनके साथ संगमकरै•तीसरी पतिनी जो भर्ताके प्राण विनाशै•चौथी जुंगितोपगता जो अपनी जातिसे नीचीजातोंके पुरुषमें संगम करै•ये चार स्त्रियां विशेषकर जुदी कहीगईहैं कि इनका त्यागही उचित होताहै—इस पर मिताक्षराकार कहितेहैं कि इन चारिहीका त्यागना कहा तिसका यह तात्पर्य है कि जहांतक सबतरहकी महापतिता होती हैं तिनमें जो कोईभी स्त्रियाँ प्रायश्चित्त करने पर उतारू न होयँ तिनमेंसे केवल इन्हीं चारोंका परित्याग इसप्रकारसे करना चाहिये कि रहिनेको जगहभी न देवै और अन्नवस्त्रभी न देवै किन्तु ग्रामसे बाहर छोडिआवै परन्तु इनसे उपरान्त जो और ऐसी बाकी रहीं जिन्होंने प्रायश्चित्त करना नहीं कुबूल किया तिनको इसढंगसे न छोड़ना चाहिये अर्थात् उनको उसरीतिसे रखना चाहिये जैसा ऊपर २९७ मूलश्लोक उत्तरार्ध के अर्थमें कहिचुके हैं कि दासीघट विधान किया जानेके अनंतर उनको घरहीके समीप जुदी झोपडी में बसावै और मोटा झोंटा अन्न वस्त्र भी देतारहै इत्यादि•यहतात्पर्य समझागया मिताक्षराकारने यहकहा॥२९८॥

अब अगिले मूलश्लोक में उसमर्यादाका कुछ अपवाद भी योगीश्वर दर्शावैंगे जो २९६ श्लोकसे वर्णन हुई थी अर्थात् सत्कार की मर्यादा जो कुछ उसमें कही थी वह सभी प्रायश्चित्ती पुरुषोंपर नहीं समझनी किन्तु विरलोंको छोडिकर समझनी होगी यही उसमें अपवाद (छूट) का स्वरूप जानना॥

(संविशेयुरित्यस्यापवादश्च)

शरणागतबालस्त्रीहिंसकान्संविशेन्नतु। चीर्णव्रतानपिसतःकृतघ्नसहितानिमान् २९९

अर्थः—शरणागत• बालक• स्त्री• के हिंसकों कृतघ्न सहितों के प्रति व्रताचरण कियेहुयेंकोभी इनकेप्रति न संवेशकरै=अर्थात्—शरण आयेको मारनेमरवानेवाले• बालक बचेका वध करनेवाले• स्त्री मात्रका वधकरनेवाले•और कृतघ्न पराया किया उपकार मेटनेवाले सहित•ये सब पातकी यद्यपि प्रायश्चित्त भी करि आये जिससे निर्दोष ठहर सक्तेहैं तथापि इनकेसाथ पास न संवेश करै (अर्थात् इनकेपास जाना आना बैठना उठना आदि या कोईसा व्यवहार इनके साथ रोपना आदि न करना चाहिये और यथार्थ यह तात्पर्य है कि यद्यपि प्रायश्चित्त करिआनेसे शुद्धिमानी गई और इसी से खाने खवाने मिलने मिलाने आदि व्यवहार भी जरूरीमात्र करने परेंगे तथापि इनका पूराविश्वास न करना चाहिये॥ इसीलिये मूलश्लोक में (नतु संविशेत) यह कहागया कि सम्यक् अच्छेप्रकार से प्रवेश उनमें न करै॥ २९९॥

२९९अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार इसअपवादरूपीवार्ता कोवाचनिकप्रतिषेधभी नामधरते हैं=यथा=नसंव्यवहरेदितिवाचनिकोऽयंप्रतिषेधः किमिदंवचनंकुर्यान्नहिव चनस्यातिभारोस्ति अतश्चयद्यपिव्यभिचारिणीस्त्रीवधेऽपिइदमेवप्रायश्चित्तंतथापि वाचनिकोऽयंव्यवहारप्रतिषेधः—अर्थात्—उनकेसाथअच्छेव्यवहार न करै यहकहिना एक(वाचनिकनिषेधहै) वाचनिकउसे कहितेहैं जो किसीमर्यादाके अनुसार तो नहीं सिद्धहोता हो केवल मुखहीके वचनसे निषेधकियाजाय जैसा दोषोंछाननेसे२९६मूल श्लोकवाली मर्यादा से व्यवहार करना सिद्ध होही चुका तो भी यहां वचन मात्रसे प्रतिषेध कियागया तिससे (संव्यवहारकीमर्यादाहोते) वाचनिक प्रतिषेध इसका नाम ठहिरा • तिसपर यहतर्क खड़ी होतीहै कि यह वचन क्या चीज़ है जिसे कोई मानै कुछ इस वचनका बोझ किसीपर नहींहै जिससे मानाजाय•इसीलिये समझा कर समाधान देतेहैं कि ऐसे समझो एक दृष्टान्तहै कि जैसा इसी मूलश्लोक में स्त्री घाती पुरुषका विश्वास मने कियागया स्त्री वध भी दोभांतिकाहै कि एकने अपनी भार्या व्यभिचारिणी को लोकलज्जा से मारडारा और एक ने निरपराध स्त्री को मारडारा जो व्यभिचारिणी नहीं थी केवल उसका भूषण हरने आदि कारणों से घातकिया इस दशामें दोनों घाती पुरुष यदि प्रायश्चित्त करिके आवें तब जिसने लोकलज्जासे वध कियाथा तिसके साथ संव्यवहार करना और उसको विश्वासपात्र जानना प्रत्यक्ष सूचित होताहै • दूसरेका विश्वास करना या उसके साथ संव्यवहार जोड़ना यह प्रत्यक्ष अनिष्ट है यथार्थ से ऐसेही अपघातियोंके साथ संव्यवहार बैठा उठी आदिका वाचनिक निषेध है कुछ उनके लिये नहींहै जिन्होंने लोकलज्जा से

लाचार होकर स्त्रीका वध किया यद्वा किसी धोखे आदि दैवयोगसे अपनी इच्छा बिना वध होगया जैसे किसी वाहन सवारीको लेजातेहुये मार्गमें कोई स्त्री दबकर मरगई और आपही पापके भयसे प्रायश्चित्त करनेपर उतारू शीघ्र हुआ हो तो यह उसके हृदयसे धर्मिष्ठलक्षण पाया गया तिससे इसी एक दृष्टान्त के अनुसार बहुधा और भी दृष्टान्तोंपर ध्यान सर्वदा देदेकर वाचनिक निषेधका वर्ताव करना होगा॥ इसी दृष्टान्त से योगीश्वर के मूल श्लोकमें यह बातभी सिद्ध होतीहै कि दोप्रकार के स्त्री घातियों में जो कोई एक विश्वास के लायक समझा गया है तिसके लिये २९६ दोसौछानवे मूलश्लोक पूर्वार्ध की मर्यादा से शांतिघट का विधान करवाना आदि कुछ भी मने नहींहै करवाना चाहिये परन्तु दूसरी भाँति का स्त्री घाती बालघाती शरणागत घाती और कृतघ्न भी यदि प्रायश्चित्त करिआवें तब उनकेलिये शांति घटलेजाना आदि कुछ भी योग्य नहींहै॰तिससे यह २९९ श्लोकवाला अपवाद भी वाचनिक प्रतिषेध ठहिरायागया॥ २९९॥

दोसौछानवे श्लोकवाले विधानका जो कर्म शेषरहा था सो नीचे अब लिखतेहैं॥

(पूर्वोक्तविधावपिविशेषः)

घटेऽपवर्जितेज्ञातिमध्यस्थोयवसंगवाम्। प्रदद्यात्प्रथमंगोभिःसत्कृतस्यहिसत्क्रिया॥ ३००

अर्थः—घटके अपवर्जित होनेपर जातिके बीच बैठा हुआ प्रथम गौओंको यवस प्रकर्ष से देवे॰गौओंसे सत्कार किये कीहो सत्क्रिया होय=अर्थात्—जिसका शांति कुम्भरूपी कर्म समाप्त होगया किन्तु उसी कृतघ्न के साथ प्रायश्चित्ती पुरुष घरमें आगया वह अपने ज्ञाति बन्धुके समाज में बैठाहुआ सबसे पहिले यह कामकरै कि गौओंके लिये घास अपने हाथसे छोड़े क्योंकि प्रथम गौआ से सत्कार पाचुकने परही जाति बन्धु आदि करके सत्कार होना चाहिये॥ ३००॥

३००अधिकोक्तिः—यहां बन्धु बिरादरी से सत्कारहोना केवल यही अभिप्रेत है कि उसके साथ भोजन आदिका वर्ताव किन्तु उसकी दीहुई ज्योंनारको स्वीकार करें परन्तु पहिले जब गौयें उसकीदई घास आदिको स्वीकार करें अर्थात् देतेसार प्रीतिसे खानेलगें यही उसका गौओंसे सत्कार होना सूचित कियाहै॥ तात्पर्य इस का यह कि यदि गौयें उसका दियाहुआ अन्न घास न भक्षणकरें तो फिर बिरादरी भी ज्योंनारका स्वीकार न करें और दुबारा प्रायश्चित्त करनेपर आरूढ करें=हारीतोप्याह=स्वशिरसायवसमादायगोभ्योदद्याद्यदितः प्रतिगृह्णीयुरथैनप्रवर्तयेयु

रिति•इतरथानेत्यभिप्रेतम्=अर्थात्—हारीतने भी यह कहा है कि अपने सुहृदपर ला-दिकर घास गौओं के आगे छोड़े जो गौयें खाने लगें तो इस प्रायश्चित्ती को खाने पीने आदि व्यवहारों में बन्धुजन प्रवर्त करें • अन्यथा नहीं यह अभिप्राय सूचित कियाहै॥ ०॥ दोसौ छानवे २९६ अधिकोक्ति के प्रारम्भ में जो बात लिखीगई थी उसपर भी ध्यान देना चाहिये कि यहां•के मूलश्लोक में (घटेऽपवर्जिते) यह पाठ है तिसका अर्थ यद्यपि त्यागहीका प्रत्यक्ष है कि घटके त्याग होजाने में अगिला कर्म कियाजाय तथापि मिताक्षराकारने जलाशयमें छोडि आना फेंकिआना अर्थ नहीं स्वीकार किया बल्कि यह स्वीकार लिखा है कि (घटेऽपवर्जितेह्रदादुद्धृत्यपूर्णाकृच निनीते— असौचरितव्रतःसपिण्डादिमध्यस्थोगोभ्योयवसंदद्यादितिमिताक्षरा) अर्थात् घटका अपवर्जित होना यह कि तालाव कुण्ड आदिसे भरिके पूर्ण कुम्भ साथ ले-जाने बादि—यह प्रायश्चित्त किया हुआ पुरुष अपने सपिंड आदि बंधुओंके बीच में बैठिके प्रथम गौओं को घास छोड़े—सो यही अर्थ सुन्दर जानो क्योंकि मूलश्लोकमें भी घटका अपवर्जन कहिने से यह तात्पर्य नहींहै कि जलमें फेंका जावै बल्कि यह ध्वन्यर्थ है कि घटका समस्त पूजा कर्म आदि निपटि जानेपर घासदेना आदि कर्म करे=और मनु का यह वचन जो पहिले भी लिखि चुके हैं कि (स्तु अप्सुतंघटं प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकं) सो इसका भी अर्थ व्यत्यस्त योजना से ऐसा होता है कि वह प्रायश्चित्ती अपने घर में प्रवेश करिके फिरि उस घटको जलमें छोड़आइ के अगिले कामों का प्रारम्भ करै अर्थात् वहां जलाशय से भरिके जो घट उसके साथ घरको आया हो तिसे तो उसी दिन या और किसीदिन उचितजानिके जला-शय पर सिराइ आवै फिर और कामों का प्रारम्भ करै तो यह सिराइ आना सब तरह के यज्ञों में प्रसिद्ध है कि जिस घट का पूजा कर्म्म आदि सर्वथा निपटि जाता है वह अन्त को जलही में सिरायाजाता है कुछ इनबातों में विरोध नहीं है इसी से मनु मुक्तावली टीकाकार कुल्लूक भट्टने जलमेंफेंकना अर्थलिखा सोभी कुछविरोधी नहींहै॥ ३००॥ अब अगिले परिच्छेदमें सभी प्रायश्चित्तोंकामिला भूला एकही मार्ग स्वीकार करना कहा जायगा॥ ३००॥

—०—

अथसकलप्रकाशप्रायश्चित्तानांसाधारणधर्मविषये पर्षदाऽनुमतप्रायश्चित्त स्वीकरणविवेकोऽयं

परिच्छेदः सप्तसप्ततितमः (७७)

—*—

इस परिच्छेद में पर्षत सभा समाज के द्वारा ऐसे सभी पापों के प्रायश्चित्त विचार होने का प्रकार जाना जायगा कि जो जो पाप करने के समय पर ही या कुछ काल पीछे भी प्रकाश होजायँ—क्योंकि—उनमें यद्यपि कर्ता पुरुष आपही ज्ञानी ध्यानी धर्म्मशास्त्र का विवेक्ता होय तौभी वह अपने मध्ये निर्णय करने का अधिकारी नहींहै—इसी लिये तरह तरह की सभाओं के स्वरूप ढौंग आगे दर्शावेंगे और जिस रीति से सभा में जाना प्रश्न करना चाहिये सो भी॥

(विख्यातदोषस्यायं विधिः)

विख्यातदोष कुर्वीतपर्षदोऽनुमतंव्रतम् २०१ (पूर्वार्धएव)

अर्थः—विख्यात दोषी पुरुष पर्षत का अनुमत व्रत करै=अर्थात्—जिस दोषीका पाप विख्यातहोगया हो उसको धर्मसभाके विचारसेही प्रायश्चित्त करनाचाहिये चाहैं वह धर्मशास्त्र आदि सर्वशास्त्रों के विचार करने मे आपही अति चतुर हो तौभी अपनेलिये आप न विचारै किन्तु सभाकेद्वारा बुझिके करै वरन जिसअवसरमें सभासदों की अपेक्षा इस दोषी में शास्त्रज्ञता आदि कुछ विशेषता विद्यमान हो तहां उसी सभा के साथ मिलकर विचार करनेका अधिकार इसको सूचितहै सोकरै॰ तथापि प्रायश्चित्त के नियम उसी पर्षत सभा के अनुमत के द्वारा कल्पित होंगे—और—दोष का विख्यात हो जाना यह कहाता है कि जिस पापको उत्पन्न करनेवाला केवल वही पुरुष एकाकी हो तिसको अन्य पुरुषभी मालूम होजानेसे कहिने लगें या जिस पाप को उत्पन्न करानेवाले कोई और भी दो चार सहायक हों वे अवश्यही जाना करतेहैं परन्तु उनका जानना मुख्यकर्ता के निकट कुछविख्याति में गिनती नहीं है अर्थात सहायकों से उपराल्त मनुष्य जानि कर चर्चा करनेलगैं सो विख्यात दोष कहाता है॥ २०१ ॥ यह पूर्वार्ध श्लोक है॥

३०१ अधिकोक्ति—धर्म सभा के पास जाने का जुदा प्रकार होता है=यथादां

गिराः=इत्तेनिःसंशयंपापे नभुंजीतानुपस्थितः भुंजानोवर्दयेत्पापंयावन्नाख्यातिपर्षदि सचैलंवाग्यतःस्नात्वाक्लिन्नवासाःसमाहितः पर्षदानुमतस्तत्वंसर्वंविख्यापयेन्नरः व्रतमादायभूयोपितथास्नात्वाव्रतंचरेर्दिति=अर्थात्–पाप करना निश्चय होजाने पर सभा में उपस्थित हुये बिना न भोजन करे क्योंकि जब तक सभामें जाकर प्रायश्चित्त नहीं मांगता है तब तक बीच में भोजन करते हुये किया हुआ पाप वृद्धि को पहुँचता रहिता है तिससे शीघ्रही कपड़े पहिने हुये सचैल स्नान करिके भीजे वस्त्र सहित अपने चित्त को ठिकाने रक्खे हुये जाकर सभा से अनुमत पाइकार दोषीमनुष्य अपना सब यथार्थ ब्यौरा सुनावे और व्रत का उपदेश वहां से लेकर फिर उसी तरह दुबारा गोता लगा कर चला जाय अपने प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करे ॥ ० ॥ पराशर ने यह भी नियम दर्शाया है कि पहिले कुछ पुण्य दान करिके तब सभा में बूझने जाय=यथा=पापंविख्यापयेत्पापीदत्त्वाधेनुंतथाऋषभम् (एतच्चोपपातकविषयं महापातकादिष्वधिकं कल्प्यमिति मिताक्षरा)=अर्थात्– पराशर ने कहा है कि गाय और वृषभ दान करिके पापी अपने पाप को सभा में सुनावे (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह सिर्फ उपपातकोंपर समझना किन्तु महापातक आदि बड़े पापों पर इससे अधिक दान पापकी बड़ाई के अनुसार सोचना चाहिये) और यह अगिला जो वचन है कि=तस्माद्द्विजःप्राप्त पापःसकृदाप्लुत्यवारिणि विख्याप्यपापं पर्षद्भ्यःकिंचिद्दत्त्वाव्रतंचरेर्दिति (तत्प्रकीर्णक विषयमितिमिताक्षरा) अर्थात्–पूर्वोक्त कारण से द्विजाती जब किसी पाप से संयुक्त होय सो जलमें एक ही बार गोता लगाकर सभा के पण्डितों को कुछ देकर अपना पाप कहि सुनाय कर प्रायश्चित्त आचरे (इसपर मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह कुछेक देना जो कहा सो सबसे छोटे पाप प्रकीर्णक नामसे ७४ के परिच्छेद में जो कहे गये तिनपर समझना) यहांपर सोचने का स्थल है कि पराशर के वचन को और इस वचन को मिलाकर एकही व्यवस्था मिताक्षरा ने कही तिसके उत्तम मध्यम आदि कई भेद किये सो यह कल्पना सुन्दर नहीं क्योंकि पतित के हाथ से पतित का दिया हुआ गाय वृषभ रूपी महा दान लेना धर्म शास्त्री पण्डितों का यह काम नहीं वे आपही प्रायश्चित्ती हो जायँगे अर्थात् असत्प्रतिग्रह का प्रायश्चित्त देखो ६८ अर्थात् परिच्छेद में २९० दोसौनब्बे मूल श्लोक से कहिचुके हैं– तिससे पराशर ने जो गाय वृषभ का दान किये पीछे धर्म्मसभा में जाना कहा सो औरही किसी दान पात्र के निमित्त देना अर्थ ठीक है बल्कि पराशर के सोरह असर वाले अर्थ

श्लोक में कोई प्रयोगही ऐसा नहीं है जिससे धर्म सभा के पण्डित भी दान के संप्रदान भूत समझे जायँ—और जो (तस्मात् द्विजः प्राप्तपाप इत्यादि) पिछले वचनमें साफ साफ कहा है कि (पर्षद्भ्यः किंचिद्दत्वा) सभा के पण्डितों को कुछ देकर० सो यह मिहनताने की रीति से दक्षिणा देनी सूचित करी है क्योंकि परिश्रम का वेतन मिले विना किसी का तन मन किसी कार्य में अच्छे नहीं तत्पर होता और व्यवस्था का कोई सुगम काम ऐसा नहीं है जिसको हर कोई पण्डित सुघड़ भलाई में कहि सकैगा वह परिश्रम का काम है और परिश्रम का हक लेना किसी दान प्रतिग्रह में गिनती नहीं है न उसको लेकर कोई दोष लगिसक्ता है क्योंकि यहांपर देने लेने की वाचनिक आज्ञा पाई गई—और जो पापों की बड़ाई छोटाई के ऊपर बहुत या मध्यम या थोड़ा देना मिताक्षराने ठहिराया सो भी ठहिराना कुछ आवश्यक नहीं किन्तु दान वित्त समान यह नियम सर्वसाधारण है कि जैसा कोई अधिक धनी या दरिद्री होगा उसी के अनुरूप दान बताया जासक्ता है— और दूसरे वचन में जहां ढेठ पण्डितों का परिश्रम देना कहा गया तिसमें भी किंचित् शब्द का प्रयोग सिर्फ इसी आशय पर आरूढ है कि जैसा बड़ा छोटा परिश्रम उनकासमझि परै तैसाथोड़ा याबहुत कुछ देकर व्यवस्था बूझै॥ यहांतक तीनसौ एक मूलश्लोक पूर्वार्धकी अर्थोक्ति पूरीहुई इसी टीकाकी शेषव्यवस्था नीचे लिखतेहैं॥३०१॥

(अथपर्षत्स्वरूपं)

पर्षत् सभा जिसमें प्रायश्चित्त बूझना कहा सो कैसी हो तिसके भी अनेक लक्षण है सो देखो उनमें प्रथम मनुका कहा स्वरूप दर्शाते हैं=यदाहमनुः=त्रैविद्योहैतुकस्तर्कीनैरुक्तोधर्मपाठकः॥त्रयश्चाश्रमिणःपूर्वेपर्षत्स्याद्दशावरा॥=अर्थात्—सभामें अच्छे पुरुष चाहैं जितने जुड़ैं परन्तु दश महात्मा इस प्रकारके होने चाहिये जिनमें कोई त्रैविद्य कोई हैतुक कोई तर्की कोई नैरुक्त कोई धर्म पाठक हों और० ब्रह्मचारी० गृहस्थ० वानप्रस्थ० इन तीनों आश्रम के सत्पुरुष होयँ संन्यासी नहीं (त्रैविद्य वे कहाते हैं जो तीनों वेद की कुछ कुछ शाखायें अर्थों सहित पद्धिक्रम समझे हों केवल स्वर के साथ ऋचाओं का गाना मात्र नहीं) हैतुक वहजानना जो हेतुरूपी वाद में रत हो अर्थात् हेतु जो कारण होय तिसको पकड़ि के अतियुक्ति के साथ बात कहिने का अभ्यास रखता हो सोहैतुक पुरुष कहाताहै पर यह भी शास्त्रसंपन्न होकरऐसाहोय०इसीलिये मिताक्षराकार ने दोनों मीमांसा का अर्थ तत्त्व जानने

वाला इसको कहा है क्योंकि विचार पूर्वक तत्त्व निर्णय करसकने का नाम है मीमांसा और इसीसे मीमांसा उस ग्रन्थ का भी नाम है जिसमें ऐसा तत्व निर्णय हो सक्ता हो• वह मीमांसा रूपी निर्णय भी दो भांति का होताहै इसीसे उसकेग्रंथ भी दो भांति के प्रसिद्ध हैं पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा अर्थात् पहिली मीमांसा कर्म कांड है पिछली मीमांसा ब्रह्मज्ञान का विचार है• तहां जैमिनि के बनायेहुये ग्रन्थसेंकर्मकांडके सन्देह निर्णयहोते हैं उसीका नाम पूर्वमीमांसा भी कहाताहै और ब्रह्म जो परमात्मा परमेश्वरहै तिसके जो सन्देह खडेहोयँ सो सब वेदान्त से निर्णय होसक्ते हैं जैसा इसी ग्रन्थ में सन्यास आश्रम के प्रसंग से अध्यात्म नामका प्रकरण बहुत बड़ा वर्णन होचुका है इसी तरह वेदान्त के और बहुत ग्रन्थ हैं सो सब उत्तर मीमांसा किन्तु पिछली मीमांसाके नामसे कहातेहैं•यह तात्पर्य दहिरा हैतुक पुरुष का पर सामान्य अर्थ यही है कि जो वार्ताके तत्व को युक्तिसे निर्णय करसके सो हैतुक जानो (तर्की उसका नामहै जो तर्कशास्त्रमें कुशलहोय परन्तु न्यायशास्त्रपढ़ा होने परभी उसकी तर्क ऐसी न हो कि श्रुति या स्मृतियोंसे विरुद्धहोय अर्थात् दोनों मीमांसा के अनुकूल उसका तर्क होनाचाहिये) नैरुक्त उसका नामहै जो व्याकरण विद्या से प्रयोजनवाले शब्दों की निरुक्ति दर्शावे और वह भी नैरुक्त पुरुष होताहै जो वेदका एक अगहो निरुक्त कहाताहै तिसको पढाहो (धर्मपाठक जो धर्मशास्त्र की स्मृतियाँ आप ऐसी पढा हो जिन्हें और को समुझाइकर पढासके) ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थ इनतीन आश्रमों के सत्पुरुष उनको जानना जो अपने अपने आश्रम के नियम धर्मोंका वर्तावा ठीक ठीक आचरण करते हों॥ ०॥ ऐसी सभा न मिलनेपर मनुने पर्षदका दूसराडौल दर्शाया है=यथा=ऋग्वेदविद्यजुर्विच्चसामवेदविदेवच त्र्यवरापरिषज्ज्ञेयाधर्मसंशयनिर्णये=अर्थात्—ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद इनकी शाखाओंके जुदे जुदे भी अर्थोंसहित जाननेवाले अर्थात् एक एक पुरुष एकहीएक वेदकी कोई शाखा विधि पूर्वक पढाहो ऐसे तीनिही पुरुष जिस परिषत्में शामिल होयँ सोभी धर्मका संदेह निर्णय करनेवाली सभा होतीहै॥०॥ इसके भी न मिलने पर मनुने कार्यके निर्वाह का और डौल दर्शाया है=यथा=एकोपिधर्मविद्धर्मंयव्यव स्येत्समाहितःज्ञेय परमोधर्मोनाज्ञानामुदितोऽयुतैः=अर्थात्—धर्मशास्त्र का विज्ञाता यदिसमाहित चित्तहोके जिस धर्मको एकही पुरुष विचार करै सोई परमधर्म जानो क्योंकि धर्मशास्त्र सबशास्त्रोंके ऊपर अधिष्ठाताहै धर्मकीमर्यादा इसीकेद्वारा जानी जातीहैपरच धर्मके न जाननेवाले दशहजारमिलिकेभी कहैं सो धर्मकीगिनतीमेंनहींहै

(विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि इन बड़ी छोटी सभाओंका वर्तावा जैसा जहां सभव हो तैसा तहां समझना अथवा महापातक आदि बड़े छोटे पापों के भेद से भी जानना अर्थात् बहुत बड़े पापका प्रायश्चित्त बूझने को बड़ी पर्यंत के मितते हुये छोटे में न जाना चाहिये ॥ ० ॥ एक यह स्मृत्यन्तर वचन है कि=पातकेषुशतपर्यंतसहस्रसह दादिषु उपपापेषुपचाशत्स्वल्पस्वल्पेतथाभवेत् (तदपिमहापातकादिदोषानुसारेण पर्षदोगुरुलघुभावप्रतिपादनपरंनपुनः सख्यानियमार्थंमन्वादिमहास्मृतिविरोधप्रसंगा दितिमिताक्षरा)=अर्थात्–पातक नामके बड़े पापोंके लिये एकसौ सभासद की पर्यंत में बूझना चाहिये और उनसेबड़े महापातक आदि पापोंकेलिये सहस्र सभासदों की पर्यंत होय और छोटे दर्जावाले उपपातक नामकेपापोका प्रायश्चित्त बूझनेको ५० पचास मनुष्योंकी सभा चाहिये फिर इनसे भी छोटेपापोके बध्ये इससे भी थोड़े पचीस आदि सभासद होयँ यह समझना (विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह वचन केवल इसलिये है कि दोषकी बड़ाई छोटाई के अनुसार सभाका बड़ापन या छोटापन होना चाहिये पर यह तात्पर्य इसका नहींहै कि जिसमे एकसौ बताये या हजार बताये तिसमे उतनेही पूरम्पूर मनुष्यचाहिये क्योंकि जो ऐसातात्पर्यमाना जाय तो फिर मनुआदि बड़ीबड़ी स्मृतियोके नियमसे विरोधखड़ा होनेलगे जैसाऊपर दश या तीन वा एकही विद्वानसभारूप कहागयाहै)इसपर मर्यादा परिपाटी संपादक व्याख्याकार का यह विचार है कि यह बहुत बड़ी संख्या के लगभग अधिकता जो ठहिराईगई सोभी सर्वसाधारण मनुष्योंकी समझनी किन्तु इसकेसाथ उतने विद्वानों काहोना आवश्यक है कि जैसा पहिले दश वा तीन वा एकही विद्वान् होनाकहाथा तो फिर कुछ भी विरोध इसमे नहीं है अन्यथा उतनी सख्याओं के लगभग केवल विद्वानोंका संग्रह करना वा होसकना न आवश्यकहै न संभवहै बल्कि उक्त सख्याओं के नियम छोड़िकर लगभग वाला डौल सर्वसामान्य सभासदों का ठहिराया गया तिसमे भी पूर्वोक्त यथा सभव की युक्ति लगानी होगी कि जहां दोषी पुरुष बड़ा आदमी होय जिसके दबावसे इतने अधिक सभासद इकट्ठे होसकें सिर्फ तहांकी यह व्यवस्था है सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ देवलने सभाके स्वरूप में एक जुदा डौल दर्शाया है= यथा=स्वयत्नब्राह्मणाब्रूयुरल्पदोषेषुनिष्कृतिम् राजाचब्राह्मणाश्चैव महत्सुतुपरीक्षि ताम्=अर्थात्–जो उपपातक आदि छोटे पापहो तिनमें पण्डित ब्राह्मण आपही प्रायश्चित्त बतावें परंच महापातक आदि बड़े पापोमे राजा और ब्राह्मण भी मिलिकर सभा करें तिसमे दोषकी परीक्षा से प्रायश्चित्त करावें (इस वचन में यह तात्पर्य है

कि जिन अपराधों में राजवादी (राजमुद्दई) होसक्ता हो तिनको ब्राह्मण लोग केवल आपही प्रायश्चित्त कराइ के राजासे छिपावें नहीं क्यों वैसे महादोषों में राजद्वार से जुर्माना आदि राजदंड होनेके अनन्तर प्रायश्चित्त कराना धर्म शास्त्र का सिद्धान्त है–तिससे यद्यपि किसी बिरले महादोषीके ऊपर कोई वादी बनिके राज में निन्दाकरने को न गया हो तौभी प्रायश्चित्तका बोझ उसपर धरनेवालों को यह सूचित कियाहै कि प्रथम प्रायश्चित्तही के वहाने से राजद्वारमें उस दोषका प्रकाश करें जिससे राजा उसी दोषका निर्णय ब्राह्मणोंकी पर्षत् में शामिल होकर निर्णय किये पीछे यथायोग्य राजदंड लेकर प्रायश्चित्त विचारने की आज्ञा विद्वानों पर आरूढ़ करैगा यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ परन्तु यह भी एक धर्महै कि यदि कोई दोषी मनुष्य अपने पापसे दुखमानि के आपही किसी पर्षत् के पास जाकर प्रायश्चित्त बूझै तो उस परिषत्को अवश्यही विचार करना और वताना योग्यहोताहै क्योंकि ऐसा न करने से परिषत्को भी दोष लगताहै–यदाहांगिरा:=आर्तानांमार्गमाणानां प्रायश्चित्तानियेद्विजाः जानंतोनप्रयच्छंतितेयांतिसमतांतुतैः=अर्थात्–पीड़ितहुये बूझने आये हुयोंको जे कोई विद्वान् ब्राह्मण धर्मशास्त्र जानते हुये प्रायश्चित्त नहीं वतातेहैं वेभी उन्हीं पापियोंके समान ठहिरतेहैं ॥ ० ॥ परन्तु किसीसभाका सभासद कोई धर्मके जानेबिना यदि प्रायश्चित्त बतावै सो वतानेसे भी पापी और प्रायश्चित्ती भी होताहै=तदाहर्वांगिरः=अज्ञात्वाधर्मशास्त्राणिप्रायश्चित्तंददातियः प्रायश्चित्तीभवेत्पूतःकिल्विषंपर्षदंव्रजेत्=अर्थात्–धर्मशास्त्रों को आद्योपांत पढ़े समझे बिना जो कोई पंडित प्रायश्चित्त बताताहै तिसके करनेसे प्रायश्चित्ती शुद्ध होजाताहै परंच उस प्रायश्चित्ती का पाप उसी सभासद पर आरूढ़ होताहै ॥ ० ॥ यहाँ तक प्रायश्चित्त बताने की रीति जो कहिचुकेसो ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंको वतानेपर कहीगई कुछ भेदभाव नहींहै तथापि सत्री आदिको वताने मध्ये अंगिराने एकजुदी रीति भी कही है=यथा=न्यायतोब्राह्मणःक्षिप्रंक्षत्रियादेःक्षतेनसः अंतराब्राह्मणांकृत्वाव्रतंसर्वंसमादिशेत् तथाशूद्रंसमासाद्यसदाधर्मपुरःसरम् प्रायश्चित्तंप्रदातव्यंमंत्रहोमविवर्जितमिति (तत्रयागाद्यनुष्ठानशीलानांजपादिकंवाच्यं इतरेषांतुतपः) कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाःकदाचित्पापमागताः जपहोमादिकंतेभ्योविशेषेणप्रदीयते ये नाम धारकाविप्रामूर्खाधनविवर्जिताः कृच्छ्रचांद्रायणादीनितेभ्योदद्याद्विशेषत इति=अर्थात्–सत्री और वैश्य जहाँ पाप किये ठहिरें तहाँ धर्मज्ञ ब्राह्मण उनको न्याय के अनुसार शीघ्रही सम्पूर्ण व्रत भले प्रकार से वतावें परन्तु बीचमें उनके गुरु पुरोहित

आदि किसी प्रतिष्ठामान् ब्राह्मणको साक्षीभूत मध्यस्थ बनाकर व्रतका आदेश करे अर्थात् केवलएकपरएकवैठिके प्रायश्चित्त न बतावै कि जहां सिर्फदोषी पुरुष और धर्मशास्त्री इन दोकेसिवाय तीसरा न हो (सो यह नियम उस दशापर आवश्यकहै कि जहां अनेक विद्वानों की सभा इकट्ठी न होसके केवल एक धर्मशास्त्रीही प्रायश्चित्तका आदेश करनेवाला होय जैसा (एकोपिधर्मविद्धर्मइत्यादि) मनुके वचन से ऊपर कहिचुके-तथैव किसी शूद्रको पापकिया पाइकर भी इसीरीतिसे पुरोहित आदि को बीच में मध्यस्थ बनाकर धर्म के अनुसार प्रायश्चित्त देना चाहिये परन्तु शूद्रके निमित्त में सदा यही धर्म है कि उसको जप होम से रहित प्रायश्चित्त बतावै अर्थात् जिन दोषों पर जप होम करना कहीं लिखा हो तिनमें भी शूद्रको जप होम करनेकी आज्ञा न देनी चाहिये—शूद्रके सिवाय अन्य वर्णोंके मनुष्य ब्राह्मण आदि भी जे कोई निपट निरक्षर होयँ तिनको भी जप होम आदि न बताना चाहिये तहां ऐसा करना चाहिये कि (जे कोई द्विजातीलोग यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान में सदा निरन्तर या जब तब लगे रहते हों तिनको जप होम आदिवाले प्रायश्चित्त बतावैं औरोंको तप करना किन्तु व्रतादिक प्रायश्चित्तबतावें) क्योंकि यही नियम अगिले वचन में साफ कहे देते हैं कि—जे कोई द्विजाती कर्म करने में अभ्यास रखते हों या तप करने में अभ्यास रखते हो वेही कभी पाप में फँसैं तव उनके लिये विशेष कर जप होमादिरूपी प्रायश्चित्त दिया जाता और जे नामहीं मात्र के ब्राह्मण निरक्षर मूर्ख धनसेहीन दरिद्री तिनको जुदे जुदे उनकी दशाकेअनुसार कृच्छ्र और चांद्रायण आदिबतावे॥ यहप्रायश्चित्त बतानेकाडौल केवल विख्यातपापोंकेऊपर कहागया किन्तु छिपेहुये पापोंके प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेदमेंवर्णन होगे॥इतिपरिच्छेद॥

(इतिप्रकाशप्रायश्चित्तानांसर्वसामान्यविधिनिर्णायकप्रकरण)

(त्रिपरिच्छेदमय)

इस प्रकरण में ७५। ७६। ७७ पचहत्तरि परिच्छेद के प्रारम्भ से सतहत्तरिके अततक तीनि परिच्छेद हे तीनो में यद्यपि जुदे जुदे विषयो का वर्णन है परन्तु ये तीनो जुदे विषय सब तरह के पापो में आदि मध्य अंत के अवसर भेद से विचारने परतेहैं तिससे इन तीनो परिच्छेदका एकही प्रकरण मानागया कि जब कभी किसी पापकी विख्याति होकर प्रायश्चित्त सोचना परे तव उस पापके विचारवाला जुदा प्रकरण या परिच्छेद पहिले ढूंढिकर उसके साथही इसप्रकरणको देखा चाहिये॥

परन्तु जिनसे कभी दैवयोग से कोई पाप होगया और गुप्त होनेके हेतुसे खुल्लम न होने पाया ऐसे पापी पुरुष जो अपने पापका छिपा हुआ प्रायश्चित्त करना चाहै तिनकी व्यवस्था आगे ७८ अठहत्तरि परिच्छेद से लेकर जानी जायगी॥

अथरहस्यप्रायश्चित्तानांसर्वेषांसाधारणधर्मं विवेकसहितः-ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽयं परिच्छेदः अष्टसप्ततितमः(७८)

इसपरिच्छेदमें विशेषतासे दो बात जानीजायँगी कि प्रथम तौ छिपेहुये पापोंकासाधारण एक धर्म जो सर्वत्र काम आवैगा–दूसरे महापातकोंमें से केवल एकब्रह्महत्या जो किसीने छिपीहुई करीहो जाहर न होनेपाई तिसकारहस्यप्रायश्चित्त कहाजायगा (रहसि) एकान्त में छिपकर जो काम कियागया वही रहस्य कहिलाता हैं चाहैं पापहो या उस पाप का छिपा हुआ प्रायश्चित्तहो॥

योगीश्वर याज्ञवल्क्य मुनि यहां से आगे आगे छिपे पापों के प्रायश्चित्तों का विस्तार किया चाहते हैं कि जिससे शरीरमे घुसे हुये पापों को दुहिकर उस भांति से निकासि फेंकै जैसे थनोंमे छिपाहुआ दूध बछरा के योग से निकासा जाता है (यहां पर प्रायश्चित्तों को बछरा के दृष्टांत में समझना प्रायश्चित्ती पुरुष को दोहने वाला समझना) इसी लिये योगीश्वर पहिले उन सभी प्रायश्चित्तों का साधारण धर्म दर्शाते हैं जो आगेआगे सभी व्रतो की आदि में सोचना होगा सो देखौ निचले तीन सौ एक वाले उत्तरार्ध से॥

(रहस्यप्रायश्चित्तविचारः)

अनभिख्यातदोषस्तुरहस्यंव्रतमाचरेत् ३०१

अर्थः–अनभिख्यातदोषी रहस्य व्रत को आचरै=अर्थात्–जिस दोषी का पाप उसके सहायको से उपराल् मनुष्यो की जीभ तक न पहुँचै सो रहसि एकांत में गुप्त ही प्रायश्चित्त करै॥ ३०१॥ उत्तरार्धोऽयं॥

३०१ अधिकोक्ति–यहां यह शका है कि मनुष्यके सहायक मिलापी समीप

आदि अनेक भांति के होते और वेही किसी पाप को करते जानि सक्ते हैं तिनका जानना छोड़िकर उपराल् मनुष्य कहे इसमें नाना प्रकार के विरोध खड़े होते हैं क्योंकि जिस पाप को सहायकों ने देखा जाना तिसको सभी मनुष्य जानि सक्तेहैं फिर क्योंकर कोई पाप अनभिख्यात कहावे इत्यादि—इसका यह समाधान है कि पापी के सहायक सिर्फ वेही अभिप्रेत हैं जो उसको पाप कर्म्म करवाने में साथी हुये हों जैसा किसी स्त्री से उसका संदेशा कहि आना ले आना बुलाइ लाना आदि ऐसाही सर्वत्र सभी पापों में समझि लेना कि जितने पुरुष वा स्त्रियां पाप कार्यके सहायक वा साक्षी बने हों वे सब यद्यपि पापी के पाप को जानते और परस्पर चर्चा करते हैं तथापि उनका जानना विख्याति में गिनती नहीं माना गया है अर्थात उनसे उपराल् चाहैं पापी के सहायक हों वा असहायक हों तिनमें पाप की चर्चा नहीं फैली हो तो यह पाप अनभिख्यात कहाजाता है• ऐसे पाप को करने के बादि भी दोषी पुरुष पछिता कर अपनी शुद्धि के लिये यदि प्रायश्चित्त करना चाहै सो छिपौआ व्रत साधे—तहां—जो ऐसापुरुष आपही धर्मशास्त्रमेंप्रवीण होय सो औरसे न कहिकर आपही अपने निमित्त पर यथा योग्य प्रायश्चित्त विचारै• जो धर्मशास्त्र को न जानता हो सो अन्य धर्मज्ञों के पास जाकर अपना पाप सुनाये बिना किसी और के बहाना से प्रसंग छेडिकर इस तरह बूझै कि जिसकिसी ने गुप्त पाप किया हो अर्थात• ब्रह्महत्या•बाल हत्या• मातृ भगिनी गमन• परदार, गमन• सुरापान आदि जो कुछ पाप किया हो तिसका नाम धरिके बूझै कि,इसमें उसको रहस्य प्रायश्चित्त क्याकरना चाहिये• या जिज्ञासुता की रीति से ही बूझै• कि अमुकामुक पाप छिपौआं जिसपर होजायँ तिनका गुप्त भावही से क्या क्या प्रायश्चित्त होता है ॥ ० ॥ इसी प्रकार से स्त्री और शूद्र भी औरों से बूझिके रहस्य प्रायश्चित्त का स्वरूप ज्ञान कर सके हैं इसीसे उनको भी करने का अधिकार सिद्ध होगया• इसपर यह न कहिना चाहिये कि रहस्य प्रायश्चित्तों के स्वरूप प्रायस् जपादिकों की प्रधानता से निर्णीत हुये हैं तिससे स्त्री और शूद्रों को विद्या पढने का अधिकार न होने से इन प्रायश्चित्तों का अधिकारही नहीं• क्योंकि इन प्रायश्चित्तों में जपादिकों की निर्विकल्प ही कुछ प्रधानता नहीं बल्कि उनमे दान करना आदि भी उपदेश किया जायगा और गौतम के कहे प्राणायाम आदि का भी करना सभव है तिससे भी• बल्कि स्त्री शूद्रों से उपराल् औरों को भी जपादिक मे पूरा अधिकार नहीं पाया जाताहै क्योंकि मन्त्र और मन्त्रका देवता उसकाऋषि,

छन्द इनका अच्छा बोध होना भी अधिकार का उपयोगी है इनके विना औरों काभी निर्विकल्प विषय नहींहै और भी यह सतर्क उत्तर है कि तडागवनवानेआदि में ज्योतिष्टोम आदि के विषय वाला विरोध नहीं जोड़ा जाता है तैसे यहांभी समझना कि स्त्री शूद्रों को पढ़ने का अधिकार न होने से प्रायश्चित्त करने का अधिकार नहीं मेटा जासक्ता है ॥ ० ॥ परन्तु त्रैवर्णिक पुरुषों को देवता आदिका ज्ञान होना अवश्यही अपेक्षित है=यथाह व्यासः= अविदित्वाऋषिच्छंदोदैवतंयोगमेवच योऽध्यापयेज्जपेद्वापिपापीयान्जायतेतुसः=अर्थात्–ऋषि और छन्द और देवता और मन्त्र का विनियोग नहीं जानि के जो कोई पाठ या जप करै सो पापी होताहै ॥ ० ॥ व्रताहारादिनियमाः–रहस्य प्रायश्चित्त जो आगे सवदर्शाये जायँगे उन्ही का यह धर्म सामान्य वर्णन होरहा है तिनमें इतना और भी यह जुदा नियम समुझे रहिना कि यद्यपि जिन व्रतों में कुछ आहार करना न लिखा जाय तथापि उन में दूध पीना या पंचगव्य या यावक आदि जैसा प्रकाश प्रायश्चित्तों में कहिचुके तैसा यहां भी समझि लेना• जहां कोई काल विशेष न कहा जाय तहां संवत्सर आदि समझना• प्रायश्चित्त करने का ठिकाना जिनमें न कहा जाय तिन में पर्वत के निकट शिला आदि का स्थल समझना जैसे प्रकाश प्रायश्चित्तों में गौतम आदि के कहे नियम हैं तिनमें ढूंढना चाहिये यह मिताक्षराकारों की दर्शाई हुई व्यवस्था है ॥ २०१ ॥

यह सब इतना रहस्य प्रायश्चित्तों का साधारण धर्म दर्शाया जो सबही की आदि में विचारना होगा अब अगिले मूल श्लोक से लेकर रहस्य प्रायश्चित्तों के स्वरूप सब जुदे जुदे ब्रह्महत्या आदि गुप्त पापों पर उसी क्रम से दर्शावेंगे कि जैसा पहिले खुल्लम पापों के प्रायश्चित्त ब्रह्महत्या आदि के क्रम से वर्णन हो चुके ॥

(ब्रह्मवध प्रायश्चित्त)

त्रिरात्रोपोषितोजप्त्वाब्रह्महात्वघमर्षणम्। अन्तर्जलेविशुद्ध्येतदत्वागाञ्चपयस्विनीम्॥ २०२॥

अर्थः–ब्रह्महा तीनरात्र उपास किया जलके भीतर अघमर्षण को जपिके पयस्विनी गाय देकर विशुद्ध होय=अर्थात्–छिपी हुई ब्रह्महत्या जिसपर होगई सो ब्रह्महा पुरुष किसीसे जाहर किये विनाही तीन दिन उपवास करै और उन्हीं तीनों दिवस तीर्थ के जलाशय पर जलकेभीतर निमग्न बैठाहुआ उस अघमर्षणमन्त्र को जपै जो इसी नामके महर्षि ने अघमर्षण सूक्त (ऋतंच सत्यंचेति) इत्यादि ऋचाओं

का अनुष्टुप् भाव और वृत्त और देवता के परिज्ञान सहित निश्चयकरिके प्रकाश किया है उसी सूक्तको जल में छिपकर तीन वार जपे जितनी देरमें तीनि आवृत्ति पूरी होसक्तीहैं उतने काल तक तीनों दिन जप किये पीछे चौथेदिन दूध देती हुई बिआनी अधिक दुधार गाय दान करिके शुद्ध होजाताहै ॥ ३०२॥

३०२ अधिकोक्तिः=ऊपर लिखे नियमोंका प्रमाणभी अग्रोक्त वचनहै—यथाह सुमंतुः—देवद्विजगुरुहताप्सुनिमग्नोऽघमर्षणंसूक्तंत्रिरावर्तयेत् मातरंभगिनींगत्वा मातृष्वसारंस्नुषां सखींचान्यद्वाऽगम्यागमनंकृत्वाऽघमर्षणमेवान्तर्जले त्रिरावर्त्यतदेतस्मात्पूतोभवतीति=अर्थात्—सुमन्तुने खुलासाही कहिदियाहैकि—देव•द्विज•गुरु•इनका हता पुरुष जलमें निमग्नहोके अघमर्षणसूक्तको तीनवार जपै किन्तु•माता•भगिनी को गमनकरिके यामाताकी बहिन मावसीको या पिताकी बहिन फूआको या बेटा की वधूको या सखी कोभी गमनकरिके यद्वा और प्रकारका अगम्या गमनकरिके अघमर्षण सूक्तहीको जलके भीतर तीनिवार जपिके वह पापी इनपापोंसे छुटिकर शुद्ध होजाता है (अर्थात् अघमर्षणसूक्तही एक ऐसा परमतीव्र शास्त्रहै जिससे सब तरहके पाप कटिजातेहैं) सुमंतुके इसवचनमें देवहता जो कहा सो दो तरहका समझना किन्तु जिसने गुप्तभावसे कोई देवमूर्ति तोड़ीहो या छिपकरकहीं किसीराजा का वध किया हो तहां राजा का वध भी दो तरह का समझना किन्तु जिसने किसी शस्त्र आदिसे वधकिया हो या तांत्रिक प्रयोगोंवाली कृत्यासे वध किया हो ये सभी देवहंता समझिलेने और द्विजहंता यद्यपि यहां पर ब्रह्महत्या की प्रधानता से ब्राह्मण को मारनेवाला अभिप्रेतहै तथापि शब्द अर्थसे द्विजाती मात्रका मारनेवाला समझना किसी दोष और विरोध मे गिनती नहींहै क्योंकि अघमर्षणसूक्त जो ब्रह्महत्यापर्यन्त महापाप को मेटिसक्ता है उसको क्षत्री वैश्यके वधका पाप मेटने में न कुछ उजर है न कठिनाई है(इस व्याख्या मे ऊपर जो खुलासा शब्द लिखागया तिसको यावनी भाषा के अनुसार सारार्थका बोधक न समझना किन्तु देशी भाषा में खुल्लमको खुलासा कहिते हैं दृष्टान्त जैसे ढँकासा या खुलासा-स्पष्टमिवेत्यर्थ• स्पष्टमेवेत्यभिप्रायः ॥ एतच्चकामकारविषयमितिमिताक्षरा=यत्तुमनुनोक्तं=सव्याहृतिप्रणवकाःप्राणायामास्तुषोडश अपिभ्रूणहनमासात्पुनंत्यहरहःकृता—तदप्यस्मिन्नेवविषयेगोदानाशक्तस्यवेदितव्यमितिमिताक्षरा=अर्थात्—मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त जो लिखि चुके सो सब उसके लिये समझना जिसने इच्छा सहित अग्रोक्त पाप किये हों=वल्कि जो मनुने यह कहाहै कि=सोरह प्राणायाम

ओंकार प्रणव और व्याहृतियों सहित रोज रोज एक महीनातक साधे तो ये इतने प्राणायामभ्रूणहत्यारे को भी पवित्र करतेहैं अर्थात् किसीका गर्भ या बालक बचा तक विनाश जिसने किया हो(इसके भीतर ऊपर कहे पापोंको भी समझना क्योंकि भ्रूणहत्या सबसे बडी होतीहै) सो भी इतने प्राणायामों से शुद्ध होजाताहै—मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह मनुका कहा एक महीने का प्रायश्चित्त इसी पूर्वोक्त विषयपर समझना कि जिसने इच्छा सहित पाप किया हो और योगीश्वर वाला अघमर्षणसूक्त तीनदिन जपने के पीछे यदि गोदान करने में असमर्थहो तो गोदानके पलटे यह एक महीनेका प्राणायाम अधिक साधै (ऐसेही महीने आदि के व्रतों में कि जहां जहां खाने पीनेका कुछ चर्चा नहीं किया जाय तहां तहां सर्वत्र वही नियम देखिलेना जो इससे पहिली अधिकोक्तिमें व्रताहार आदि नियम लिखचुकेहैं) इतिसकामकृतहत्यादिप्रायश्चित्तं॥ अथाकामकृतहत्यादि विषयेसकामाकामभेदाः=यत्तुगौतमेन—यदर्विंशदहोरात्रव्रतमुक्तोक्तं•तद्व्रतेएव ब्रह्महत्यासुरापान सुवर्णस्तेय गुरुतल्पेषु प्राणायामैः स्नातोऽघमर्षणंजपेदिति— तदकामतोऽसकृद्विषय मिति मिताक्षरा=अर्थात्—गौतमने—छत्तीस दिनरातिका व्रत बयान करिके साथही उसके यह कहाहै कि• ब्रह्महत्या• सुरापान• सुवर्णस्तेय• गुरुतल्पगमन• इन चारों प्रकारके महापातकोंपर वही ३६ दिनका व्रत करनेमें यह चाहिये कि नित्यप्रति स्नान करिके अघमर्षण सूक्तको जपै (स्थलहीमें जपना कहा जलके भीतर बैठना यहां पहिले कहेकी तरह मत समुझिलेना) मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह गौतम का कहा प्रायश्चित्त उसकेलिये समुझना जिसने इच्छासे चाहेबिना कई बार पाप कियाहो=और=जिसने निपट कामनासे चाहिकर पूर्वोक्त हत्या आदि पाप कई बार छिपसा कियेहों। अथवा इच्छाके बिनाही पहिलेसे बढ़िया पाप अर्थात् श्रोत्रियका बधकियाहो या आचार्यका बध कियाहो या यज्ञ करते ब्राह्मण आदिका बधकियाहो तिन सबकेलिये आगे बौधायन का वचन देखौ=यदाहबौधायनः=ग्रामात्प्राचीमुदीचींवादिशमुपनिष्क्रम्य स्नातःशुचिवासाः उदकान्तेस्थण्डिलमुपलिप्यस कृत्क्लिन्नवासाः सकृत्पूतेनपाणिना आदित्याभिमुखोऽघमर्षणंस्वाध्यायमधीयीत प्रातःशतंमध्याह्नेशतमपराह्णेशतमपरिमितंचोदितेषु नक्षत्रेषुप्रसृतियावकंप्राश्नीयात् ज्ञानतोऽज्ञानतःकृतेभ्यउपपातकेभ्यः सप्तरात्रात्प्रमुच्यते द्वादशरात्रान्महापातकेभ्योब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयानिवर्जयित्वा एकविंशतिरात्रेणतान्यपितरतीति— तत्कामकारविषयं • अकामतःश्रोत्रियाचार्य सवनस्थवधविषयंवेति मिताक्षरा=

अर्थात्—बौधायन ने जो इस प्रकार से प्रायश्चित्त दर्शाया है कि–ग्राम से पूर्व और उत्तर की दिशा में घूमिके उसी जगह स्नान किया हुआ शुद्ध वस्त्र पहिने जलाशय के समीप ही (स्थण्डिल) चबूतरी तुल्य वेदी बना कर एकही बार गोता लगाइ भीगा वस्त्र एक ही पहिरे हुये एकही बार पवित्र हाथ से स्थण्डिल को लीपि के उस पर सूर्य के सन्मुख बैठा हुआ अपना पाठ अघमर्षण वेद मंत्र से पढ़े (इसकी कितनी आवृत्ति करनी चाहिये सो कहिते हैं कि) प्रातः कालिक संध्या के साथ एक सौ अघमर्षण पढ़े मध्याह्न की सन्ध्या साथ एक सौ अघमर्षण जपै सायंकाल की सन्ध्या से पहिले एक सौ अघमर्षण के मन्त्र जपि चुके फिर सन्ध्या के साथ भी यथा शक्ति अघमर्षण मन्त्रों का पाठ करै जिनका परिमान कुछ नहींहै किन्तु जितने होसकें वही अपरिमित परिमान है तिस पीछे राति में नक्षत्रों का उदयहोने पर एक पसर अर्थात् आधी अँजुरी जौ लेकर उन्हें गोमूत्र में रांधि के यावक बनावै तिसका भोजन करै ऐसा नियम सात दिन करने से उन पापों से छुटि जाता है कि जो कुछ गुप्त भाव से उपपातक मात्र अपने ज्ञान सहित किया हो वा अज्ञानता से किया हो और बारह दिन ऐसा नियम साधने से महापातकों से भी छुटि जाता है पर (ब्रह्महत्या॰ सुरापान॰ सुवर्णस्तेय) इन तीनों को छोड़िके शेष महापातकोंका यह नियम कहा गया और इक्कीस दिन इसी तरह अघमर्षण का जप करने से उन तीनों से भी छुटि जाता है–मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह बौधायनका कहा प्रायश्चित्त कामना सहित किये पापों पर करना चाहिये अथवा बिना कामना केभी जिस किसीने श्रोत्रिय विद्वान् का वध किया यद्वा आचार्य का वध किया हो या किसी को यज्ञ करते मारडारा हो तिसको भी यह २१ इक्कीस दिन का प्रायश्चित्त चाहिये॥ अथवा कामना सहित श्रोत्रिय आचार्य और यजस्थ का वध किया हो तिसके लिये अग्रोक्त मनुका वचन देखो=यथा= अरण्येवात्रिरभ्यस्य प्रयतोवेदसंहितां मुच्यतेपातकैःसर्वैःपराकैःशोधितस्त्रिभिरिति–तत्कामतःश्रोत्रियादिवधविषयं इतरत्कामतोऽभ्यासविषयंवेति मिताक्षरा=अर्थात्– वन जंगल में तीन बार वेद की संहिता पाठ करिके जितेन्द्र होके रहिते हुये तीनि पराकों से शोधे हुये सभी पातकों से छुटि जाता है अर्थात् चाहैं कोईसा पाप गुप्त किया हो पहिले तीनि पराक व्रत करिके पीछे वेदकी संहिता तीनि बार पढ़े–सोयह बड़ा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने कामना सहित श्रोत्रिय आदि का वध किया हो अथवा श्रोत्रिय आदि से उपरालुओं का वध इच्छा सहित अनेक बार किया हो तिसके लिये भी

समझना यह मिताक्षराकारनेकहा॥ यत्तुवृहद्विष्णुनोक्तं=ब्रह्महत्यांकृत्वा ग्रामात्प्राचीमुदीचींवा दिशमुपनिष्क्रम्यप्रभूतेन्धनेनाग्निंप्रज्वाल्याघमर्षणेनाष्टसहस्रमाहुतीर्जुहुयात्ततएतस्मात्पूतोभवतीति–तन्निर्गुणवधविषयमनुग्राहक विषयंवेतिमिताक्षरा=अर्थात्– बड़े विष्णु का जो कथन है कि–छिपी ब्रह्महत्या करिके ग्राम से बाहर पूर्वदिशा या उत्तर दिशामें निकसिके बहुत ढेर ईंधनकी अग्नि जलायके अघमर्षण मन्त्र से आठ हजारआहुतें होमें तिससे इस पाप से छुटि जाता है– मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त सुगम है तिससे उसके लिये समझना जिसने निर्गुण ब्राह्मण को मारा हो अथवा गुणवान् को मारने वाले का अनुग्राहक जो कोईबना हो तिसके लिये भी॥ यत्तुयमेनोक्तं=त्र्यहंतूपवसेद्युक्तस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणम–तद्गुणवतोहंतुर्निर्गुणवधविषयं प्रयोजकानुमंतृविषयंवेति मिताक्षरा=अर्थात्–यम ने जो कहा है कि–तीनि दिन उपवास करै जितेंद्री होके फिर तीन दिन जल के आहारसे रहै तहां तीन बार अघमर्षण को नित्य जपता रहै तौ सभीपातकों से छुटि जाता है–मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उससे भी सुगम है तिससे उसके लिये समझना जो मारने वाला गुणवान् होकर उसने निर्गुणी ब्राह्मण को मारा हो अथवा गुणवान् को मारने वाले के साथी सहायक प्रयोजक अनुमन्ता बने हों तिनके लिये भी॥ यत्तुहारीतेनोक्तं=महापातकातिपातकानुपपातकानामेकतः संपातेवाऽघमर्षणमेवत्रिर्जपेदिति–तन्निमित्तकर्तृविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्– हारीत ने जो कहा है कि जब किसी पर एक साथ ही सब तरह के पाप आपरैं किन्तु महापातक अतिपातक अनुपपातक आदि एक साथ ही बनि परैं या इन में से कोई एक तरह का पाप आपरै तब अघमर्षण को ही तीन तीन बार कुछ दिन जपै–मिताक्षरा कार कहिते हैं कि– यहप्रायश्चित्त केवल निमित्त कर्ता पर आरूढ होना चाहिये (निमित्तकर्ता वही कहाता है जिसने हाथ से नहीं मारा परन्तु किसी तरह से हृदय को दुखाया जिससे वह आप ही बूड़ि मरा या विष भक्षण किया इत्यादि अनेक भेदहैं॥ मिताक्षरा कार कहिते हैं कि जैसे दस पाँच मुनीश्वरों के वचन यहां पर मैंने लिखे और उनके न्यूनाधिक भाव से विषय भेदपर विभागकरि दिखलाया तैसे और भी स्मृतियों के वचन ढूंढ़ि कर विभाग कर लेना चाहिये क्योंकि ग्रन्थ बढ़ि जानेके डरसे यहां सब नहींलिखे जाते हैं• फिर कहिते हैं–कि– यही प्रायश्चित्त रूपी श्रुतों का समूह जिस जिस परिमाण से लिखा गया तिसमें से एक चौथाई कम करिके तीन पाद उसके लिये

समझना कि जिसने यज्ञ कार्य में लगी हुई स्त्री का वध कियाहो या यागस्थक्षत्री पुरुष का या यागस्थ वैश्य पुरुष का या आत्रेयी का वध किया हो (आत्रेयी के लक्षण तीसवें परिच्छेद में देखो॥ ३०२॥

योगीश्वर ने इसी ३०२ मूल श्लोक में ब्रह्महत्या पर तीन दिन का व्रत कहाथा अगिले मूल श्लोक में विकल्प के लिये उसी ब्रह्महत्या पर एक ही दिन का व्रत कहेंगे परन्तु इन दोनों विधान को छोटा मत समझना क्योंकि दोनों में जल का निवास भी दर्शाया है जो सबसे बड़ा तप होता है॥

(प्रायश्चित्तान्तरंब्रह्मघ्नस्यैव)

लोमभ्यःस्वाहेत्यथवादिवसंमारुताशनः। जलेस्थित्वाऽभिजुहुयाच्चत्वारिंशद्घृताहुती ३०३॥

अर्थः—अथवा दिन भर वायु भक्षण किये जलमें स्थिति करिके लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे घृतकी चालीस आहुतें अग्निमे होमै=अर्थात्—अथवा जो पहिले कहे प्रायश्चित्तको न करना चाहै तो यह करै कि एक दिन रात भर उपवासरूपी व्रत किये हुये दिवस बीतिजाने पर संध्या समयसे लेकर तमाम रात्रिभर जलमें बैठै फिर प्रातःकाल जलमेंसे निकसिके अग्निको वेदीपर प्रज्वलित करै तिसमें चालीस आहुतियां घीसे होमै उन्हीं मंत्रोंसे कि जो पहिले (ब्रह्महत्यावाले प्रकरणके बीच उनतीसवें २९ परिच्छेदके प्रारम्भसे २४७ दोसौसैंतालिस के मूलश्लोक और उसी की अविकोक्ति में) लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि आठ मंत्र लिखे गयेथे उन प्रत्येक से पांच२ आहुतें छोड़े सो आठ पंजे चालीस होतीहैं—यद्यपि एकही दिन कहा तथापि इसको पूर्वोक्तके बराबर समुझना जलमें निवास एक राति भर करने के बड़प्पन से यह प्रायश्चित्त छोटा नहीं॥ ३०३॥ इतिब्रह्मवधमहापातकस्यप्रायश्चित्तं॥

---※---

अथब्रह्महत्याव्यतिरिक्तमहापातकत्रयरहस्यानां तत्संसर्गिणोपिरहस्यप्रायश्चित्तविवेकोऽयंपरिच्छेदः ऊनाशीतितमः (७९)

—※—

इस परिच्छेद में ब्रह्महत्या से उपरान्त महापातक तीनों भांति के जो छिपकर हुयेहों तिनके जुदेजुदे प्रायश्चित्त रहस्य और संसर्गी के प्रायश्चित्त भी सब जाने जायँगे॥

(सुरापानप्रायश्चित्तं)

त्रिरात्रोपोषितोहुत्वाकूष्माण्डीभिर्घृतंशुचिः। ३०४ (पूर्व्वार्धोऽयं)॥

अर्थः—तीन रात्रि उपवासकिये कूष्माण्डी ऋचाओंसे घृत होमिके शुचिहोय=अर्थात्—सुरा पीकर जो अशुचि हुआहो वह भी चालीस आहुतें ऊपर के श्लोक में दर्शाई हुई होमिके पवित्र होताहै परन्तु इसके मंत्र जुदेहैं कि जैसा अधिकोक्ति में देखो॥ ३०४॥

३०४ अधिकोक्तिः—(कूष्माण्डीभिःयद्देवादेवहेडनमित्याद्याभिः कूष्माण्डद्दृष्टाभिरनुष्टुभमंत्रलिंगदेवताभिऋग्भिश्चत्वारिंशतघृताहुतीर्हुत्वाशुचिर्भवेदितिमिताक्षरा) अर्थात्—मूल श्लोकमें यद्यपि आहुतियोंकी संख्या कुछ नहीं कही परञ्च कूष्मांडी ऋचाओं से घृत होमना कहा तिसका निर्णय मिताक्षराकार ने यह लिखा है कि (यद्देवादेवहेडनं) इत्यादि ऋग्वेद की ऋचायें जो कूष्माण्डनाम ऋषिकी कही कूष्मांडी कहाती हैं जिनका अनुष्टुभ मन्त्ररूप देवताकहाताहै तिनसे चालीस आहुतें घीकी होमिके वह पुरुष शुद्ध होजावै जिसने छिपमा सुरापान किया हो॥ बौधायनेनाप्युक्तं=अथकूष्मांडदृष्टाभिरनुष्टुभिर्जुहुयात् योऽपूतएवात्मानंमन्येत यदर्वाचीनमेनोभ्रूणहत्यायास्तस्मान्मुच्यते अयोनौवारेतःसिक्त्वाऽन्यत्रस्वप्नात्=अर्थात्—बौधायनजी प्रथम अथशब्दसे अन्वादेश प्रकट करतेहैं कि यह प्रायश्चित्त चाहिये किन्तु कूष्मांड की देखी विचारी अनुष्टुभ मंत्ररूपो ऋचाओंसे वह पुरुष होम करै जो अपने शरीर को अपवित्र मानता हो अर्थात् जिसने सुरा आदि कोई अशुद्ध वस्तु

खाई पीहो और जो इसी जन्मका किया पाप कोई गर्भ हत्या बालहत्या सम्बन्धी होय तिससे छूटिजाताहै अथवा स्वप्नमें वीर्यपात होनेसे उपरान्त जो बढ़िया पापहै कि जिसने अयोनिमे वीर्यपात कियाहो तिस पापसे भी छुटिजाताहै (यहांपर अयोनि कहिनेसे यह तात्पर्यहै कि योनिके विनाही धरती आदि पर वीर्यपातकिया हो यद्वा पुरुषके साथ मैथुन करिके वीर्य गुदामें सींचाहो सो भी अयोनिमें सींचना कहाजासक्ताहै यद्वा चाण्डाली वा गुरानी आदि अगम्या स्त्रियोंकी योनिहीमें सींचाहो सो भी अयोनिमें सींचना तात्पर्यहै क्योंकि वहयोनि उसकेवीर्य सींचनेयोग्य नहींहै तिससे अयोनि इसी शब्दसे उपलक्षित करी (परन्तु सोतेसमय स्वप्नमें किसी स्त्री के ध्यानसे अथवा विना ध्यानके आपही वीर्य गिरजाय तिसकेलिये यहप्रायश्चित्त नहींहै-अन्यत्र स्वप्नात्-इसअपवाद रूपी छूटका यही तात्पर्यहै) और यह भी तात्पर्यहै कि जिसने सोते समय अपनी कामनासे किसी स्त्री का स्वरूप ध्यान करिके उसकी योनि में वीर्य्य सींचा होय तो यह अयोनि ही में सींचना कहावेगा क्योंकि यथार्थसे कोई योनि वहांपर साक्षात्कार नहींमौजूदहै तिससे अयोनिकही गई अर्थात् उसके मध्ये यही प्रायश्चित्त करना चाहिये जो बौधायन मुनिनेकहा-बौधायनके इस वचनमें (अयोनौवारेत:सिक्त्वा) इसी पदसे अनेक अर्थ जो उत्पन्न हुये तिसका यहीकारणहै कि उन्होंने वा शब्द इसी निमित्तपर दर्शायाहै कि सब तरहके अर्थ भेद समुझेजायँ ॥ ० ॥ यत्तुमनुना=कौत्सजप्त्वाऽपइत्येतद्वासिष्ठंच प्रतीत्यृचम माहित्रशुद्धवत्यश्चसुरापोऽपिविशुद्ध्यति-इतिमासप्रत्यहंयोडशकृत्वोऽपनःशोशुचदघमित्यादीनामन्यतमस्यजपउक्तः सत्रिरात्रोपवासकूष्मांडहोमाशक्तस्यवेदितव्य इतिमिताक्षरा=अर्थात्-मिताक्षराकार ऊपरकी व्यवस्था कहिकर फिर कहिनेलगे कि-मनुने जो कौत्स आदि श्लोकमें (अपनःशोशुचदघ) इत्यादि अनेक ऋचायें दर्शाइकर उनमेंसे किसी एकही मन्त्रका जप एक महीनाभर प्रत्येक दिवस सोरह सोरह बार जपना कहा सो उसके लिये समुझना कि जिसपर बौधोंचर का बताया तीन दिन उपवास और एक दिन कूष्मांडो मन्त्रो से चालीस आहुतें घी की न होसकैं (यहां पर शोचना चाहिये कि तीन चार दिनकी अवधि के सन्मुख यद्यपि एक महीना की अवधि बहुत बडी होती है तथापि आचार्य्यने उसको इसहेतु से छोटी ठहिराया है कि उसमें केवल सोरहमन्त्रो का जपही करना होगा किन्तु उसके सन्मुख तीन दिनका उपवास और चौथे दिन चालीस आहुतें देना बहुत कठिन प्रतीत होता है) इसीलिये जो कोई इस कठिनाई को न साधि सकै सो

उसको करै यह कहा–परन्तु मनुके उस वचन का यह तात्पर्य नहीं है कि सोरह मन्त्रोंसे अधिक न जपै बल्कि यहतात्पर्य है कि जितना अधिक जप होसके उतना करै पर कम से कम सोरह बार अवश्यही किसी एक मन्त्र का उच्चारण कियाकरै कि जिस मन्त्र का नियम प्रथम दिन से स्वीकार किया गया हो=अब=उस कौत्स आदि श्लोक वाली टीका यहां लिखिकर भाषा अर्थ भी दर्शाते हैं=यथा= कौत्स मिति०कौत्सेन ऋषिणा दृष्टं अपनःशोशुचदघं इत्येतत्सूक्तं–वशिष्ठेन ऋषिणादृष्टंच प्रतिस्तोमेभिरुषसंवशिष्ठा इत्येवं ऋचं–माहित्रं० महित्रीणा मवोस्त्ववित्येतत्सूक्तं–शुद्धवत्य एतानिंद्रंस्तवाम इत्येतास्तिस्रऋचः। प्रकृतंमासमहरहः षोडशकृत्वोऽप्यजपि-त्वासुरापोऽपिविशुद्ध्यति। अपिशब्दात् आतिदेशिक सुरापान प्रायश्चित्ताधिकृतो-पि २४६ श्लोक अध्यायः ११ मनुमुक्तावल्या मितिपाठः=अर्थात्–(अपनः शोशुच दघं) यही सूक्त जो कौत्स ऋषि ने वेद में निश्चय किया था तिसको जपै–या–(प्रतिस्तोमेभिरुष संवशिष्ठा) यह ऋक् मन्त्र जो वेद में वशिष्ठ ऋषि ने प्रकाश किया था तिससे यह वाशिष्ठ नाम कहाता है तिसको जपै–या–(महित्रीणामवो स्तु) यह इतना सूक्त जो महित्र ने प्रकाश किया था तिसको जपै–या–(शुद्धवत्य एता निन्द्रं स्तवाम) ये इतनी तीन ऋचायें जो शुद्धवती नाम से कहाती हैं तिनको जपै=कितना जपै या कबतक जपै यह सन्देह खड़ा रहा– तिसके लिये जैसा इससे पहिले श्लोक में मनु कहि चुके हैं वही एक महीना की अवधि तक सोरह सोरह मन्त्रों का जप रोज करना सूचित हुआ क्योंकि उसमें सोरह प्राणायाम करने कहे ये उतना जप करने से भी सुरा पान का पातक मिटि जाता है॥ अब मिताक्षरा–एतच्चा कामतः पैष्ट्याःसकृत्पाने० गौडीमाध्व्योस्तु पानावृत्तौ वेदितव्यं=अर्थात्=इस पर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसकोलिये समझना जिसने पैष्टी सुरा जो अन्नके संयोगसे बनतीहै बिना इच्छाके एकहीबार पीलईहो और गौड़ी जो गुड़सेबनतीहै माध्वी जो महुआसेबनतीहै इनको इच्छारहित अनेकबार पीलियाहो तिसकेलियेभी॥०॥ फिरकहिते हैं कि जिसनेकामनाकेसाथ सुरापानकिया तिसको अग्रोक्त मनुका कहा प्रायश्चित्त है=यथा=मंत्रैःशाकलहोमीयैरब्दंहुत्वाघृतंद्विजः सुगु र्वप्यपहंत्येनोजप्त्वावानमइत्यृचम=अर्थात्–द्विजाती पुरुष शाकलहोमी नामके वेद मंत्रों से एक साल भर घी का होम करिके बड़े से बड़े भी पाप को विनाश करता है अथवा (नम इन्द्रश्च) इस ऋचा को एक साल भर जपि के पाप को धो देता है= अर्थात् (देव कृतस्यैनस) इत्यादि आठ मन्त्र वेद में शाकल होमी कहाते हैं तिनसे

रोज रोज घी होमि के एक वर्ष पूरा करै अथवा (नम इदुग्रं नम आवि वास) इस ऋचा से जप करते हुये एक साल पूरा करै दोनों तरह से महापातक नाश होजाते हैं (यहां पर नम इत्यादि ऋचाका दो जगह दोहरा रूप मनु मुक्तावली और मिताक्षरा के पाठ भेदसे होगया है तिसका ठीक शोधन वेदहीसे होसक्ता है॥ ० ॥ मिताक्षराकार फिर कहिते हैं कि मनु का अग्रोक्त एक दूसरा जो वचन है कि (महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः अभ्यस्याब्दं पावमानीर्भैक्ष्याहारोविशुद्ध्यति) सो इस वचन का प्रायश्चित्त उसके लिये समझना कि जिसने बारम्बार उसी महापापका अभ्यास किया हो यद्वा अनेक महापापों का समुचय एक साथ किया होय=और अर्थ इसका यही है कि यदि कोई द्विजाती महापातकों से संयुक्त होजाय सो एक साल भर अपने चित्त को लगाकर गौओं के पीछे पीछे फिरै और (पावमानीः) इस ऋचाका जप बारम्बार अभ्यास करतार है और भिक्षा मांगि भोजन किया करै तो यह शुद्ध होजाताहै (सुरापानका प्रायश्चित्तकिये पीछे एकदुधारगाय देनीचाहिये सो३०५मूलश्लोक मे देखना॥ यहपूर्वार्ध मूलश्लोककी अधिकोक्ति पूरीहुई ३०४॥ उत्तरार्ध से सुवर्ण हरने का प्रायश्चित्त नीचे कहेंगे ॥

इतिसुरापान महापातकस्य प्रायश्चित्त॥

(अथसुवर्णस्तेय प्रायश्चित्त)

ब्राह्मणस्वर्णहारीतुरुद्रजापीजलेस्थितः ३०४

अर्थः–तु–अव्यय के योग से तीन रात्रि का उपवास जो पहले कहिचुके वह इसमें भी लगता है तिससे–ब्राह्मण का सुवर्ण हरने वाला महापातकी पूर्वोक्त तीन दिन का उपवास किये जल में बैठा हुआ रुद्र जप करने से विशुद्ध होता है अर्थात (नमस्तेरुद्रमन्यव) इत्यादि शत रुद्रीका जप तीनदिन जलमे बैठिके करै॥ ३०४ ॥

३०४अधिकोक्तिः=शातातपने एक जुदी विशेषताके साथ यहीकहा है=यथा =मद्यंपीत्वागुरुदारांश्चगत्वास्तेयं कृत्वाब्रह्महत्यांचकृत्वा भस्माच्छन्नोभस्मशय्यांशयानोरुद्राध्यायीमुच्यतेसर्वपापैः=अर्थात–मद्य पीके या गुरुदारा गमन करिके या चोरी करिके या ब्रह्महत्या करिके रुद्री पाठ करतेहुये सभी पापोंसे छुटिजाता है जो देहमे भस्म रमाये और भस्महीपर लोटिपोटि रहिकर पाठकिया करै=यहां भी तीनिही दिन समुझने जो ऊपर कहिचुके और कितना जाप करै इस अपेक्षा

में ग्यारह आवृत्ति करनी चाहिये क्योंकि (एकादश गुणान्वापिरुद्रानावर्त्य धर्म्मवित् महापापैरपिस्पृष्टो मुच्यतेनात्रसंशयः) यह अत्रि मुनि का वचन प्रमाण है कि धर्म्म का जाननेवाला यदि महापापों से भी संयुक्त होजाय और उस से कोई और प्रकारका प्रायश्चित्त न होसके तो वह ग्यारहगुणारुद्रोंका पाठकरिके भी शुचि जाताहै इसमें संशय नहीं॥ ० ॥ यत्तुमनुना=सकृज्जप्त्वाऽस्यवामीयं शिव सकल्पमेवच सुवर्णमपहृत्यापिक्षणाद्भवतिनिर्म्मलः (इतिद्विपञ्चाद्दक्संख्याकस्य-अस्यवामस्यपलितस्यहोतुरिति सूक्तस्य-तथा-यज्जाग्रतोदूरमुदैतुदैवमिति शिवसंकल्पस्यवा-सकृज्जपउक्तः सोऽत्यन्त निर्गुण स्वामिक स्वर्ण हरणे गुणवतोऽपहर्तुर्द्रव्य.सुवर्णान्न्यून परिमाण विषयोऽनुग्राहक प्रयोजक विषयोवा-आवृत्तौतु महा पातक संयुक्तोऽनुगच्छेदित्यादिनोक्तन्द्रष्टव्यमिति मिताक्षरा= अर्थात्-मिताक्षराकार ऊपरकी व्यवस्थासे निपटिके फिर कहितेहैं कि॰जो मनुने सकृज्जप्त्वा आदि वचनमे दर्शाये मन्त्रके एकही बार जप करनेसे क्षणमात्रमे शुद्धहोजाना कहा सो उसके लिये समझना जो अत्यन्त निर्गुण अर्थात् नित्य नैमित्तिक यज्ञों की निपटही न करने वाले ब्राह्मण का सुवर्ण जिस किसी गुणवान् अर्थात् यज्ञादि कर्म करने वाले ने चुपतोअर हराहो अथवा इन लक्षणों के बिना भी सुवर्णके मुख्य परिमान से न्यून सोना हर लिया हो अथवा मुख्य चोर से उपरान्त जो कोई उस चोर का अनुग्राहक प्रयोजक आदि कोई सहायक हो तिसकेलिये भी समझना क्योंकि प्रायश्चित्त अति छोटा है-और जिसने कई बार सोना हरा हो तिसके लिये ऊपरली अविकोक्ति के अन्त में महापातक संयुक्तो आदि मनु के वचन वाली व्यवस्था देखना- मिताक्षराकार ने प्रायश्चित्त को इस हेतु से अति छोटा कहा कि मनुने एकही बार मन्त्र का जपना और क्षणमात्र में पापीका निर्मल होजाना दर्शाया है-परन्तु-मनु मुक्तावली टीका में एक महीना भर हररोज एकबार मंत्र जपना कुल्लूक भट्टने दर्शायाहै-तिससे अब दोनो टीकाके भाषा अर्थलिखने आवश्यक ठहिरे-तहां पहिले मिताक्षरा की पंक्तें जो ऊपर लिखि चुके तिनका यह अर्थ है कि मनु ने-सकृज्जप्त्वा आदि इस वचन में ५२ बावन ऋचा की संख्या वाले-अस्यवामस्य पलितस्य इत्यादि सूक्त का जप एकही वार सकृत् शब्द से दर्शाया-तथा-यज्जाग्रतोदूरमुदैति इत्यादि शिवसंकल्प नामक मंत्रका जप एकही वार सकृत्शब्द से दर्शाया और एक ही वार एक मंत्र जपने से उसी क्षण मात्र में पापी का निर्मल होजाना कहा-तथापि=इस व्याख्या को हरतरह अनुचित जानि के कुल्लूक भट्ट

ने यह व्याख्या लिखी है कि (प्रकृतत्वात् मासमेकं प्रत्यहमेकवारं (अस्यवामस्येत्यादिक मस्यवामीयंसूक्तं जपित्वा) शिव सकल्पंच (यज्जाग्रतोदूर मित्येतत्) वाजसनेय के यत्पठितं तज्जपित्वा सुवर्ण सपहृत्य क्षिप्रमेव निष्पापोभवति २५०) अर्थात्–कुल्लूक भट्ट कहिते हैं कि मनुके ग्यारहवें अध्याय का दो सौ पचासवां यह श्लोकहै और २४८ दोसौ अरतालिसके श्लोकमें एक महीना भर प्रायश्चित्त करनेका प्रसंग आचुकाहै उसी प्रकृत प्रसंगसे यहां भी एक महीनाभर हररोज एक बार अस्यवामीय नामक सूक्त जपना और शिव सकल्प नामक मंत्र भी जपना जो यजुर्वेदकी शाखा वाजसनेयनामके बीच कहीं आयाहै। तौ इसप्रायश्चित्तसे सुवर्ण का अपहर्ता भी सशात् निर्मल होताहै अर्थात् पूरे महीनाभर प्रायश्चित्त पूरा कर चुकनेके समयसे लेकर शुद्ध होजाताहै यह तात्पर्य क्षिप्र शब्दका ठीकहै–वह नहीं कि एक सायतभर में शुद्ध होजाय जिससे प्रायश्चित्त अति छोटा समुझा गयाथा (सुवर्णस्तेय का प्रायश्चित्त किये पीछे एक दुधार गाय देनी चाहिये सो ३०५ मूल श्लोकमें देखना ॥ ३०४ ॥

इतिसुवर्णस्तेयमहापातकस्यप्रायश्चित्तं॥

(अथगुरुतल्पप्रायश्चित्तं)

सहस्रशीर्षाजापीतुमुच्यतेगुरुतल्पगः गौर्देयाकर्मणोऽस्यान्तेपृथगेभिःपयस्विनी ३०५॥

अर्थः–सहस्रशीर्षा जपनेवाला गुरुतल्पगामी भी मुक्त होताहै इन सबको इस कर्मके अन्तमें पयस्विनी गाय भी जुदी देनी चाहिये=अर्थात्–जिसने छिपमा गुरु दारा गमनकियाहो जिसका भेद नहीं खुलनेपाया तौ यह पापी सहस्रशीर्षा आदि सोरह ऋचाओंवाला सूक्त जो नारायणका प्रकाश किया कहाताहै जिसका पुरुष देवता है अनुष्टुभ छन्दहै त्रिष्टुप्छन्द जिसका अन्तहै तिसको जपतेहुये उस गूढ पाप से छुटिजाताहै–और (पृथक्एभिः) गुरुतल्पगामी तथा पूर्वोक्त सुरापानकारी और सुवर्णस्तेयी इन तीनोंको पृथक् जुदे अपने प्रायश्चित्त रूपी कर्मके समाप्त होनेपर बहुत दुधार गाय दूध देती हुई बच्छा सहित दान करनी चाहिये॥ ३०५॥

३०५अधिकोक्तिः=सहस्रशीर्षाजापी इसपदमें ताच्छील्य प्रत्ययहोनेसे आवृत्ति पाठ समुझागया है कि वारम्वार जपता रहै किन्तु एकही वार जपिके न चुपका होजाय–इसीका प्रमाण भी यमका यह वचनहै कि (पौरुषंसूक्तमावर्त्यमुच्यतेसर्व्व

किल्विषात्) अर्थात्–पुरुष देवतावाला सूक्त जो सहस्रशीर्षा के नामसे कहिचुके तिसको वारम्वार जपिके सवतरह के पापोंसे छुटिजाता है॥ आवृत्तौचसंख्याऽपेक्षायामवस्तनश्लोकगताचत्वारिंशत्संख्याऽनुमीयते–अत्रापिप्राक्तनश्लोकगतं त्रिरात्रोपोषितइतिसम्बध्यते इतिचमिताक्षरा=अर्थात्–मिताक्षराकार यह भी कहितेहैं कि बारबार जपने मध्ये जो यह कहाजावै कि कितनी संख्यातक वारवार पाठ किया जाय और कितने दिन कियाजाय तो फिर ३०३ तीनसौतीनके श्लोकमें ४० चालीसकी संख्या जो आहुतोंपर कही गई और ३०४ के श्लोकमें भी स्वीकार करी गई वही यहां भी पाठों पर अनुमान होतीहै और उसी ३०४ के श्लोकमें तीन रात्र उपवास करना कहाथा सो भी यहां समुझिलेना कि तीन दिन तक उपवास किये हुये सहस्रशीर्षा आदि सूक्तके पाठकी आवृत्ती करता रहै–इसबात का प्रमाण भी वृहद विष्णुका यह वचनहै कि (त्रिरात्रोपोषितःपुरुषसूक्तजपहोमाभ्यां गुरुतल्पगः शुध्येत्) अर्थात्–तीन दिन व्रत कियेहुये पुरुष सूक्तका जप और होम इन दोकामों के करनेसे गुरु भार्या गामी शुद्ध होवे (तीनों पापियोंको गोदान करना ऊपर कहि चुकेहैं) मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह प्रायश्चित्त जो कहागया सो इच्छाविना स्वतः वनिपरे पातक पर समुझना और अगिले वचनसे मनुका कहा प्रायश्चित्त भी इच्छाविनाके वनिपरे पातकपर समुझना=यथाहमनुः=हविष्यन्तीयमभ्यस्यनतमंह इतीतिच जपित्वापौरुषंसूक्तम्मुच्यतेगुरुतल्पगः (इत्येकादशाध्याये २५१ श्लोकः= अर्थात्–हविष्यन्तीयनाम के वेदोक्त मंत्रको वारम्वार अभ्यास करिके या नतमंह इत्यादि नामके मंत्रको या इतिमेमनः इसमंत्रको या पौरुषसूक्तको जपिके गुरुभार्यागामी मुक्त होताहै (अक्षरार्थ केवल यहीहै सो लिखागया) परन्तु मनुमुक्तावली टीका और मिताक्षरामें इस वचनकी संस्कृतव्याख्या जैसी लिखीहै और उनमें कुछ थोड़ासा अन्तर भी प्रतीत होताहै तिससे उन दोनोंको तद्रूप यहां दर्शातेहैं=तत्राहकुल्लूकभट्टः–हवीति–हविष्यन्तमजरंस्वर्विदामेकोनविंशतिऋचः नतमंहोदुरितमित्यष्टौ हविष्यन्त इतिवा इतिमेमनः शिवसंकल्प इतिचसूक्तं सहस्रशीर्षा पुरुषइत्येतच षोडशसूक्तंमासमेकंप्रत्यहमभ्यस्येतिषवणात्प्रकृतत्वात्षोडशाभ्यासेनजपित्वा गुरुदारगःतस्मात्पापान्मुच्यते–इत्येकादशाध्याये २५१श्लोकटीका=अथामिताक्षरायथा– हविष्यन्तीयमजरंस्वर्विदिति• नतमंहोनदुरितं इतिवा• इतिमेमनः– सहस्रशीर्षेत्येषामन्यतमस्य मासं प्रत्यहं षोडश षोड़शकृत्त्वचां चत्वारिंशत्संख्याकजपउक्तो मनुनासोयकामविषयएव=कामतस्तु=मंत्रैःशाकलहोमीयैरितिमनूक्तान्द्रष्टव्यं=अर्थात्–प्रथम

कुल्लूकभट्टकृत व्याख्यामें यह तात्पर्यहै कि-जिन जिन ऋचाओं वा सूक्तोंकी समस्या मनुके वचनमें उपस्थितहै तिनकेसाथ अभ्यासकी आज्ञा लगीहोनेसे अनेकवार जप करना समुझागया और (कबतक या कितने वार इस प्रश्नकी अपेक्षामें) पहिले २४८ के श्लोकमें रोज रोज सोरहवारका नियम और एक महीने तक प्रायश्चित्त करनेका नियम जो मनुजी कहिचुकेहैं उसी प्रकृतआज्ञासे यहां भी एक महीनाभर हररोज सोरहवार कोई सा एक मंत्र निरन्तर जपलिया करै तौ गुरुदारगामी शुद्ध होजाताहै=इसी वचनकी व्याख्यामें मिताक्षराकारने इतना भेद अधिक याज्ञवल्क्य जीके वचनके अनुसार और भी दर्शायाहै कि=उक्त मंत्रोंमें कोईसा एक मंत्र महीना भर तक सोरह सोरह चालीसकी संख्यासे गुणाकर जप किया करै क्योंकि योगीश्वरके ३०३ तीनसौतीनवाले मूलश्लोकमें चालीसका नियम आचुकाहै तिससे सोरहको चालीसगुणा करनेसे ६४० छःसौ चालीस मंत्र नित्यप्रति जपने ठहिराकर पीछेसे कहाहै कि यह प्रायश्चित्त भी उसीपर आरूढ होगा जिसपर विना इच्छा के पाप होगयाहो=किन्तु कामना से किये हुये पाप मध्ये=मनुका दूसरा वचन जो पहले भी लिख चुके हैं सो देखो=यथा=मंत्रैःशाकलहोमीयैः रब्दंहुत्वाघृतंद्विजः सुगुर्वप्यपहंत्येनोजप्त्वावानमइत्यृचम (इत्येकादशाध्याये २५६ मनुः=अर्थात-देवकृतस्य-इत्यादि वेदके मंत्र जो शाकल होमीय इस नामसे कहातेहैं तिनसे एक सालभर निरन्तर हररोज घी का होम करिके वह द्विजाती शुद्ध होजाताहै जिसने गुरुतोअर वड़ेसे वड़ा भी पाप इच्छा सहित कियाहो॰ अथवा इस होमको न करसके सो (नम इन्द्रश्च इत्यादि) इस ऋचाको एक सालभर जपिके वड़ेपापको धो देवै॥ ०॥ मिताक्षराकार फिर कहितेहैं कि जिसने उक्त पापको इच्छा सहित कईवार कियाहो तिसकेलिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त देखना कि जैसा यदविंशन्मतनाम के ग्रन्थका यह कथनहै=यथा=महाव्याहृतिभिर्होमस्तिलैःकार्योद्विजन्मना उपपातकशुद्ध्यर्थंसहस्र परिसंख्यया। महापातकसंयुक्तोलक्षहोमेनशुद्ध्यतीति (तदावृत्तिविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात-जिसने सिर्फ उपपातक मात्र कियाहो ऐसे द्विजाती को उस पापकी शुद्धिकेलिये तिलोंसे एकसहस्र आहुतियोंकाहोम महाव्याहृतियोंसे करना चाहिये जो गायत्रीके साथ होतीहैं। परन्तु जिसने महापातक रूपी पाप कियाहो वह एक लक्ष आहुतियोंसे शुद्ध होताहै (सो यह एक लाख आहुतोंका होम उसीपर समुझना जिसने उसीपापको कईवारकियाहो यह मिताक्षराने निर्णयसे निपटारा किया ॥ ०॥ फिर कहितेहैं=यत्तुयमेनोक्तं=जपेद्वाप्यस्यवामीयंपावमानीरथापिवा कुन्ताप

७८ अठत्तरि के परिच्छेद में रहस्यों की साधारण मिली झुली मर्यादा कहि-कर केवल ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त कहे गये फिर उनासी ७६ के परिच्छेद में सर्व महापातकों के प्रायश्चित्त कहे तिससे महापातकों का निपटारा यद्यपि होचुका परन्तु रहस्यों का प्रकरण अबतक नहीं पूरा हुआ किन्तु उपपातक आदि पापों को अगिले परिच्छेदों में देखना तब इक्यासी परिच्छेद के अन्त में जाकर इसप्रकरण की समाप्ति होगी॥

अथउपपातकादीनांप्रकीर्णकपर्यंतानांभेदाविशेषानांचसर्वेषांरहस्य प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽयं परिच्छेदः अशीतितमः (८०)

इस परिच्छेद मे सब तरह के उपपातक जो गोवध से आदि लेकर छप्पन प्रकार के प्रकाश प्रायश्चित्तों के स्थल में दर्शाये गये तिनके रहस्य प्रायश्चित्त यहां जाने जायँगे और भी प्रकीर्ण पापों पर्यंत अति छोटे पापों के प्रायश्चित्त इसी में मिल सकेंगे॥

(सर्वोपपातकादीनांप्रायश्चित्तं)

प्राणायामशतंकार्यंसर्वपापापनुत्तये उपपातकजातानामनादिष्टस्यचैवहि २०६॥

अर्थः—सब पापोंकी अपनुत्तिकेलिये उपपातकोंसे उपजेहुयों के और अनादिष्ट केलिये भी प्राणायामोंका सैकरा करना चाहिये=अर्थात्—गोवध आदि ५६ छप्पनप्रकारके उपपातक जो २३४ दोसौ चौंतीस मूल श्लोक से लेकर २४२ दोसौ बयालिस तक दर्शायेगयेथे उनमेंसे जिस किसी कर्मको छिपोअर कोई करे तिनसे उपजे पापोंकी अपनुत्ति अर्थात् धोडारनेकेलिये एकसौ प्राणायाम करने चाहिये• तथा अनादिष्ट जिन पापोंके नामसे कोई रहस्य प्रायश्चित्त इसप्रकरण में न कहा गयाहो जैसे जातिभ्रंशकर संकरी करण मलिनी करण आदि नामोंके पाप जो मन्वादिस्मृतियों में विदितहैं तिनहीको छिपोआ कोई करिबैठे तिसके पाप धोनेके लिये भी प्राणायामोंका सैकरा करना चाहिये• तथैव सभी पापोंको धोडारने के

लिये भी प्राणायाम कियेजासक्ते हैं अर्थात् सर्व पाप कहिनेसे कोई पाप छूटा हुआ नहीं रहा किन्तु पूर्वोक्त महापातकों को आदि लेकर सबसे छोटे प्रकीर्णक पापों तक जितने पाप संसारमेंहोतेहों तिनमेंसे चाहें कोईसाबड़ा या छोटापाप जिसकिसी ने छिपीआ कियाहो और प्राणायाम करनेका अभ्यास जिसको अच्छीतरहसे हो रहाहो तिसको अन्य प्रायश्चित्त करनेकी अपेक्षा अधिकनहींहै वहकेवल प्राणायाम साधनकरिके शुद्ध होसक्ताहै तहां इतनाभेदहै कि छोटेपापोंपर थोड़े और बड़े पापोंपर बहुत प्राणायामकरनेहोंगे तिसका ब्यौरा अधिकोक्ति में देखो ॥ ३०६ ॥

३०६ अधिकोक्ति=महापातकोंमें कोईसा एक पातक छिपीआ जिसनेंकिया हो तिसको चारसौ ४०० प्राणायाम करने चाहिये॰ जिसने अति पातकों में कोई पापकियाहो तिसको तीनसौ ३०० प्राणायाम करने चाहिये॰ जिसने अनुपातकों में कोई पाप छिपीआ कियाहो तिसको दोसौ२०० प्राणायाम करनेचाहिये उपपातकोंपर एकसौ १०० मूलमें कहिचुके सोईकरे-इसरीतिसे प्राणायामकी संख्या में कल्पना करनी चाहिये-क्योंकि-प्रकाश प्रायश्चित्तों में यह एक नियम कहा गयाथा कि जिस महापातक पर जितना प्रायश्चित्त करना कहाहो उसी पापको यदि कोई ऐसे ढंगसे उत्पन्नकरे कि उपपातकोंकी गिनतीमें आजाय महापातकों की गिनतीमें न रहे तहां उस महापातकपर लिखा प्रायश्चित्त उसको सिर्फ चौथाई करनाचाहिये सब नहीं-उसी नियमके न्यायसे यहां भी यद्यपि उपपातकोंपर ठीक ठीक एकही सैंकरा प्राणायामोंका लिखाहै तथापि पापोंके बड़ापनपर अधिकता होनी उचितहै=इसीप्रकार प्रकीर्णक नामकेपाप जो सबसेछोटे गिनेजातेहैं जिनका स्वरूप ७४ चौहत्तरिके परिच्छेद में वर्णन होचुकाहै कदाचित् उनमें से कोई पाप छिपीआ कियाहो तिसको सौ १०० प्राणायामसेभी कमतीकी कल्पनाकरनी चाहिये=इसीकल्पनाके अनुरूपआगे यमकीकही व्यवस्थादेखो=यथाहयमः=दशप्रणव संयुक्तैःप्राणायामैश्चतुःशतैः मुच्यतेब्रह्महत्यायाःकिंपुनःशेषपातकैः=अर्थात्-दशओं कारोंसे संयुक्त प्राणायाम चारसौ ४०० संख्या तक (जितने दिनोंमें होसकें) साधन करनेसे ब्रह्महत्या से भी छूटिजाताहै फिर और पापोंसे छुटिजाना क्या बड़ी बातहै कुछ नहीं=इसी व्यवस्थापर बौधायनमुनिने कुछ विशेष एक जुदाप्रकार भी दर्शाया है=यथा=अपिवाक्चक्षुःश्रोत्रत्वग्घ्राणमनोव्यतिक्रमेषुत्रिभिःप्राणायामैःशुद्ध्यति १ शूद्रस्त्रीगमनान्नभोजनेषुपृथक्पृथक्सप्ताहंसप्तसप्तप्राणायामान्धारयेत् २ अभक्ष्याभोज्यामेध्यप्राशनेषुतथावाऽपण्यविक्रयेषु मधुमांसघृततैल लाक्षालवणरसान्नवर्जेषुच-

७८ अठत्तर के परिच्छेद में रहस्यों की साधारण मिली भुली मर्यादा कहि-कर केवल ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त कहे गये फिर उनासी ७९ के परिच्छेद में सर्व महापातकों के प्रायश्चित्त कहे तिससे महापातकों का निपटारा यद्यपि होचुका परन्तु रहस्यों का प्रकरण अबतक नहीं पूरा हुआ किन्तु उपपातक आदि पापों को अगिले परिच्छेदों में देखना तब इक्यासी परिच्छेद के अन्त में जाकर इसप्र-करण की समाप्ति होगी॥

अथउपपातकादीनांप्रकीर्णकपर्यंतानांभेदाविशेषानांचसर्वेषांरहस्य प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽयं परिच्छेदः अशीतितमः (८०)

—•—

इस परिच्छेद मे सब तरह के उपपातक जो गोवध से आदि लेकर छप्पन प्रकार के प्रकाश प्रायश्चित्तों के स्थल में दर्शाये गये तिनके रहस्य प्रा-यश्चित्त यहां जाने जायँगे और भी प्रकीर्ण पापों पर्यंत अति छोटे पापों के प्रायश्चित्त इसी में मिल सकैंगे॥

(सर्वोपपातकादीनांप्रायश्चित्तं)

प्राणायामशतंकार्यंसर्वपापापनुत्तये उपपातकजातानामनादिष्टस्यचैवहि १०६॥

अर्थः—सब पापोंकी अपनुत्तिकेलिये उपपातकोंसे उपजेहुयों के और अनादिष्ट केलिये भी प्राणायामोंका सैकरा करना चाहिये=अर्थात्—गोवध आदि ५६ छ-प्पनप्रकारके उपपातक जो २३४ दोसौ चौंतीस मूल श्लोक से लेकर २४२ दोसौ बयालिस तक दर्शायेगयेहैं उनमेंसे जिस किसी कर्मको छिपौअर कोई करै तिनसे उपजे पापोंकी अपनुत्ति अर्थात् धोडारनेकेलिये एकसौ प्राणायाम करने चाहिये• तथा अनादिष्ट जिन पापोंके नामसे कोई रहस्य प्रायश्चित्त इसप्रकरण मे न कहा गयाहो जैसे जातिभ्रंशकर सकरी करण मलिनी करण आदि नामोंके पाप जो म-न्वादिस्मृतियों में विदितहैं तिनहीको छिपौआ कोई करिबैठै तिसके पाप धोनेके लिये भी प्राणायामोंका सैकरा करना चाहिये• तथैव सभी पापोंको धोडारने के

लिये भी प्राणायाम कियेजासक्ते हैं अर्थात् सर्व पाप कहिनेसे कोई पाप छूटा हुआ नहीं रहा किन्तु पूर्वोक्त महापातकों को आदि लेकर सबसे छोटे प्रकीर्णक पापों तक जितने पाप सृष्टिमेंहोतेहों तिनमेंसे चाहें कोईसावड़ा या छोटापाप जिसकिसी ने छिपौआ कियाहो और प्राणायाम करनेका अभ्यास जिसको अच्छीतरहसे हो रहाहो तिसको अन्य प्रायश्चित्त करनेकी अपेक्षा अधिकनहींहै वहकेवल प्राणायाम साधनकरिके शुद्ध होसक्ताहै तहां इतनाभेदहै कि छोटेपापोंपर थोड़े और बड़े पापोंपर बहुत प्राणायामकरनेहोंगे तिसका ब्यौरा अधिकोक्ति में देखो ॥ ३०६ ॥

३०६ अधिकोक्तिः=महापातकोंमें कोईसा एक पातक छिपौआ जिसनेकिया हो तिसको चारसौ ४०० प्राणायाम करने चाहिये• जिसने अति पातकों में कोई पापकियाहो तिसको तीनसौ ३०० प्राणायाम करने चाहिये• जिसने अनुपातकों में कोई पाप छिपौआ कियाहो तिसको दोसौ२०० प्राणायाम करनेचाहिये उपपातकोंपर एकसौ १०० मूलमें कहिचुके सोईकरे—इसरीतिसे प्राणायामकी संख्या में कल्पना करनी चाहिये—क्योंकि—प्रकाश प्रायश्चित्तों में यह एक नियम कहा गयाथा कि जिस महापातक पर जितना प्रायश्चित्त करना कहाहो उसी पापको यदि कोई ऐसे ढंगसे उत्पन्नकरै कि उपपातकोंकी गिनतीमें आजाय महापातकों की गिनतीमें न रहे तहां उस महापातकपर लिखा प्रायश्चित्त उसको सिर्फ चौथाई करनाचाहिये सब नहीं—उसी नियमके न्यायसे यहां भी यद्यपि उपपातकोंपर ठीक ठीक एकही सैंकरा प्राणायामोंका लिखाहै तथापि पापोंके बड़ापनपर अधिकता होनी उचितहै=इसीप्रकार प्रकीर्णक नामकेपाप जो सबसेछोटे गिनेजातेहैं जिनका स्वरूप ७४ चौहत्तरिके परिच्छेद में वर्णन होचुकाहै कदाचित् उनमें से कोई पाप छिपौआ कियाहो तिसको सौ १०० प्राणायामसेभी कमतीकी कल्पनाकरनी चाहिये=इसीकल्पनाके अनुरूपआगे यमकीकही व्यवस्थादेखो=यथाहयमः=दशप्रणव संयुक्तैःप्राणायामैश्चतुःशतैः मुच्यतेब्रह्महत्यायाःकिंपुनःशेषपातकैः=अर्थात्—दशओंकारोंसे संयुक्त प्राणायाम चारसौ ४०० संख्या तक (जितने दिनोंमें होसकें) साधन करनेसे ब्रह्महत्या से भी छूटिजाताहै फिर और पापोंसे छुटिजाना क्या बड़ी बातहै कुछ नहीं=इसी व्यवस्थापर बौधायनमुनिने कुछ विशेष एक जुदाप्रकार भी दर्शाया है=यथा=अपिवाक्चक्षुःश्रोत्रत्वग्घ्राणमनोव्यतिक्रमेषुत्रिभिःप्राणायामैःशुद्ध्यति १ शूद्रस्त्रीगमनान्नभोजनेषुपृथक्पृथक्सप्ताहंसप्तसप्तप्राणायामान्धारयेत् २ अभक्ष्याभोज्यामेध्यप्राशनेषुतथावाऽपण्यविक्रयेषु मधुमांसघृततैल लाक्षालवणरसान्नवर्जेषुय-

मादयन्त्यदेवंयुक्तंद्वादशाहंद्वादशद्वादशप्राणायामान्धारयेत् ३ अथपातकोपपातकव र्जंयचान्यदेवंयुक्तं अर्द्धमासं द्वादश२ प्राणायामान्धारयेत् ४ अथपातकपतनीयवर्ज्ज यचान्यन्यदेवंयुक्तम्मासंद्वादश२प्राणायामान्धारयेत् ५ अथपातकवर्जंयचान्यदप्येव मुक्तं द्वादशार्द्धमासान् द्वादश२प्राणायामान्धारयेत् ६ अथपातकेपुसंवत्सरं द्वादश २ प्राणायामान्धारयेत ७ इति बौधायनः (अस्यचमिताक्षरायां व्यवस्था यथा) तत्र वाक्चक्षुरित्यादिनाप्राणायामत्रयंप्रकीर्णकाभिप्रायं १ शूद्रस्त्रीगमनान्नभोजनेत्यादि नोक्तास्त्रकोनपंचाशत्प्राणायामाउपपातकाविशेषाभिप्रायाः २ तथाअभक्ष्याभोज्ये- त्यादिनोक्ताश्चतुश्चत्वारिंशदधिकशतप्राणायामाअप्युपपातकविशेषाभिप्रायाएव ३ अथपातकोपपातकवर्जमित्यादिनोक्ताः साशीतिशत प्राणायामाजातिभ्रंशकराद्य भिप्रायाः४ अथपातकपतनीयवर्जमित्यादिनोक्ताःषट्त्र्यधिकशतत्रयप्राणायामाःगोव धाद्युपपातकाभिप्रायाः५ अथपातकवर्जमित्यादिनोक्ताःषट्त्र्यधिकशतसहितद्विसहस्र संख्याकाःप्राणायामा अतिपातकानुपातकाभिप्रायाः ६ अथपातकेष्वित्यादिनोक्ता विंशत्यधिकशतत्रययुक्ताश्चतुःसहस्रप्राणायामामहापातकविषयाइतिमिताक्षराका राः ७ =अर्थात्–बौधायन का बहुत बड़ा वाक्य जिसके बीच बीच सात अंक देकर जुदे सात भेद मर्यादा प्रिय लेखकने अर्थों की सुगमता चाहिके करदिये हैं प्राचीन ऋषि वाणी और दूरदेशी देशान्तर बोलचाल की तरासपर संस्कार उसका होनेके हेतुसे आधुनिक वा अवश्य संस्कृत वाणीकी अन्वय परिपाटीसे अर्थलगाना उसका भासकहै क्योंकि अर्थ लगानेसे मुख्य प्रयोजनमें व्यतिक्रम आजाताहै–इसीहेतु से मिताक्षराकारने एक निराली व्यवस्थाके साथ उसका गोल गोल फलादेश प्रकाश कियाहै उसीके भाषा अर्थ व्यौरेवार दर्शातेहैं समुझो कि–अपि वाक् चक्षु आदि प्रथम भेदके लेखमें सिर्फ तीन प्राणायाम करने जो बौधायनजीने कहे तिनको प्र- कीर्णक नामके अति तुच्छ पापोंपर समुझना जिनका स्वरूप ७४चौहत्तरिके परि- च्छेद में दर्शाया गयाथा १॥ एवं शूद्रस्त्री गमनान्न भोजन आदि द्वितीय भेदमें सात दिन सात सात ४९उनचास प्राणायाम करने जो कहे तिनको सबसे छोटी किस्मके उपपातकों पर समुझना क्योंकि (उपपातक मुख्य छप्पनभांतिके २३४ दोसौ चौं- तीसमूल श्लोक से लेकर कहे गये उन से उपरालू भी छोटे मोटे अनेक होते हैं) उनमे जो सब से छोटी किस्म समुझी जाय तिसका यहां प्रयोजन देखि परता- है २॥ एवं अभक्ष्या भोज्य आदि तृतीय भेद में बारह दिन बारह बारह १४४ एकसौ चवालिस प्राणायाम जो कहे तिनकोभी जुदे उपपातकोंपर समझना अर्थात

(छोटी किस्म को दूसरे भेदमे कहि चुके उनसे कुछ बड़े उपपातक यहांपर समझे जाते हैं) जो मध्यम किस्म के होते हैं ३ ॥ अथ पातकोपपातक आदि चतुर्थ भेद में पन्द्रह दिन बारह बारह १८० एक सौ अस्सी प्राणायाम जो करने कहे तिनको जाति भ्रंशकर सकरी करण मलिनी करण आदि नामोंके कुछ बड़े उपपातकोंपर समझना (क्योंकि जैसे क्रमसेप्राणायाम अधिकहोतेआतेहैं तैसेही पापोंमें बड़ापन पाया जाता है ४ ॥ अथ पातक पतनीय आदि पांचवें भेद के पाठ में तीस दिन बारह बारह ३६० तीन सौ साठि प्राणायाम जो कहे तिनको गोवध आदि बहुत बड़े उपपातकों पर समझना (केवल उपपातकों की चार किस्में छोटी बड़ी इस प्रयोजन पर करी गईं ५ ॥ अथ पातक वर्जं आदि छठे भेदके पाठ में छः महीनेतक बारहबारह २१६० दो हजार एकसौ साठि प्राणायाम जो कहे तिनको अतिपातक और अनुपातक दोनों किस्म के पापोंपर समझना (ये दोनों किस्में यद्यपि सभी उपपातकों से बड़ी हैं तथापि महा पातकों से छोटी हैं) इन पातकों के सब जुदे दर्जा के नाम भेद समझने चाहिकर २४२ दोसौ बयालिस की अधिकोक्तिको देखो ६॥ अथ पातकेषुसंवत्सर आदिसातवें पाठ में सालभर पूरे तीन सौ साठि दिनतक बारह बारह प्राणायाम कुल ४३२० चार हजार तीनसौबीसकरने जो कहे तिनको महा-पातकों पर समझना (क्योंकि यह सबसे बड़े पातक होते हैं इन्हीं पर इतनीबड़ी संख्या सूचित हुई• यह व्यवस्था मिताक्षराकार ने उसी बौधायन के वाक्यपर स्था-पन करी ७ ॥ इसमें प्राणायामों की तादाद जो कुछ लिखी गई सो सब बौधायन की कही ठीक ठीक है और पातकों की छोटाई बड़ाई का जैसाअनुक्रम यहां मि-ताक्षराकार ने व्यवस्थापित किया सो भी इसी प्रकार से न्यायात्मक देखि परता है क्योंकि इस क्रमके न होने से बौधायन के वचनों की मीजा नहीं मिल सक्ती थी–परन्तु–पाठक जनों को इतना सदेह शेषरहा कि यह गोलमगोल व्यवस्था जो कही गई तिसको बौधायन के मूल वचनों पर किस रीति से घटावें क्योंकि उनके अक्षरों पर इस गोल व्यवस्था की शृंखला नहीं मिलती है जिसके मिलजाने बिना विश्वास नहीं आताहै–तिससे–मर्यादा परिपाटी सपादक उन दोनोंकी शृंखला मिला कर आगे जुदी व्याख्या दर्शाते हैं जिससे जिज्ञासुओं का मनोरंजन होसके ॥ अथ द्वयोःशृंखलामेलन= बौधायन कहिते हैं कि (अपिवाक् चक्षुः श्रोत्र त्वक् घ्राण मनो व्यतिक्रमेषु) अपि शब्द से गर्हा निन्दा की शंका रूपी सभावना अपने मनहीं में समुचित होने पर• उन कारणों से कि• वाक् वाणी का व्यतिक्रम रूपी पाप

जैसा किसी शिष्य को एकान्त में गाली देना या क्रूर वचन कहिदेना या गुरु को सम्मुख आते देखि प्रणाम शब्द कहिना योग्य था सो नहीं कहा गफलत से भूलि-गया तौ भी यह वाणी का व्यतिक्रम हुआ अथवा हाँसी ठट्ठा आदि में निरर्थक असत्य बोला हो इत्यादि नाना भाँतिसे समझना और वाणी की सहचरी रसना जिह्वा भी मुखही में होती है तिसमें कुरीति का भोजन करना आदिभी उसका व्य-तिक्रम कहा जाता है सोभी तुच्छ पाप में समझना जैसे जलके साथ बाल आदि मुह में चला गया या खुला धरा पानी पीलिया हो इत्यादि किन्तु जूठा भोजन कर लेनाआदि बड़े पापका चर्चा यहां नहीं है प्रायश्चित्त छोटाहोनेके हेतुसे• एवंचक्षुस् नेत्रों का व्यतिक्रम जैसा अमेध्य विष्ठा आदि पर दृष्टि परगई या पुत्र वधू आदि को कुदृष्टि से देखा अथवा कुदृष्टि किये विना भी उनके किसी लज्जा वाले अंग पर अपनी दृष्टि धोखे से पर गई हो तौभी यह नेत्रोंका व्यतिक्रम ठहिरा इत्यादिनाना-भाँति से• एवं श्रोत्र कानों का व्यतिक्रम जैसा महात्मा की निन्दा आदि सुनि परी या कोई अपशकुनरूपी शब्द किसीजीवका रोदन आदि सुनिपरा हो इत्यादि•एवं त्वचा खालरूपी इन्द्रीका व्यतिक्रम जैसा खाल सब देहभरमें होतीहै उसमें कहींपर किसी मलीन वस्तुका छुइजाना या पुत्र वधू आदिके हाथ पाओंसेअथवा हाथ पावँ आदि कोईअंग धोखासे भिड़जाना एकदोषहै सो यह त्वचाका व्यतिक्रम कहिलाता है इत्यादि• एवं घ्राण इन्द्री जो नाकहै तिसका व्यतिक्रम जैसे विष्ठा वा मद्य आदि की दुर्गंधि नासा के छिद्रों में घुसि गई हो इत्यादि• एवं मनोव्यतिक्रम जैसे मन सबही इन्द्रियों का अधिष्ठाता है उसके द्वारा ईश्वर का स्मरण और संसार की भलाईवाले विचार करने मनका मुख्य धर्म्म है तिसको छोड़ि के दूसरों की बुराईवाला विचार करनेलगाहो•इत्यादि नानाभाँतिके छोटेपाप प्रकीर्णकहिलातेहैं•इन सातइन्द्रियों के व्यतिक्रम जो कहेगये तिनमें किसी एकही के होने पर तीन प्राणायाम करने कहे–इनसे उपरान्त मिताक्षराकार के व्यवस्थापित किये प्रकीर्णक नामके पापभी इन्हीं सात इन्द्रियोंसे उत्पन्न होतेहैं चौहत्तरि७४परिच्छेद में २९१ दोसौइक्कानवे मूलश्लोकसे आदि लेकर खूब सोचिके समझो किन्तु उनपरभी तीनिही प्राणायाम सूचितहुये–तहां यह विचारभी करनाचाहिये कि उनमेंभीजोकुछ बड़े बड़े पाप देखि परें तिनको जुदे खींचिकेनिचले दूसरे भेदवाले पापोंके साथमेंजोड़ना अर्थात उनके ऊपर सिर्फ तीनही प्राणायाम नहीं बल्कि निम्नोक्त उनचास करने चाहिये• यहां तक पहिले भेदका मीलान हुआ ॥ १ ॥–बौधायन फिर कहितेहैं कि (शूद्रस्त्रीगमना

न्नभोजनेषुपृथक्पृथक्) शूद्र जातिका दिया हुआ अन्न या शूद्रका छुआ अन्न पानी या शूद्रका देखा हुआ तैयार अन्न ये सब दूषित और निषिद्ध होतेहैं तिसका भोजन करलेना• एवं स्त्रीके संगम समय भोजन करना या स्त्री के साथ भोजन करना• एवं राह चला भोजन या राह चलते भोजन करना• इन तीनों तरहके भोजनरूपी दोषों में जुदा जुदा प्रत्येक निमित्तपर सात रोज तक सात सात प्राणायाम करें क्योंकि ये एकप्रकारके छोटे उपपातकहैं निदर्शनके निमित्तकहेगये किन्तु इन्हींके उपलक्षण से और भी छोटे उपपातक समुझेजातेहैं—इसीलिये विज्ञानेश्वरने इनतीनोंसे उपरान्त इनके समान छोटे उपपातकों पर उनचास ४९ प्राणायाम समुझाएथे उनका स्वरूप ढूंढे मिलसक्ताहै ७० । ७२ । ७३ सत्तरि और बहत्तरि और तिहत्तरि परिच्छेदों में विस्तारसे वर्णन होचुका तहां देखो ॥ २ ॥=बौधायन फिर कहते हैं कि (अभक्ष्या भोज्या मेध्य प्राशनेषु) तथावा (अपण्यविक्रयेषु) मधु मांस घृत तैल लाक्षा लवण रसान्न वर्जेषु (यच्चान्यदप्येवंयुक्तं) अर्थात् (अभक्ष्य वह कि जो निपट खानेकेयोग्यही न हो जैसे पियाज आदि निषिद्ध चीजें• अभोज्य वह कि यद्यपि अन्न आदि पदार्थ खानेके योग्यहैं पर किसी अशुद्ध प्राणीके छुइजाने या मलीन वस्तु से भिड़ जाने आदि कारणोंसे भोजनकी योग्यता उसमें नहीं रही•अमेध्य वह कि जो अपने आप स्वरूप से देखने में भी अत्यन्त मलीन और अपवित्र हो जैसे विष्ठा राधि पीब खँखार आदि•अप्रोक्त तीनों प्रकारमें कोईएक भी वस्तु मुहमेंधरे या हलकमेंउतारे तिन पापोंमें) तथा वा पक्षान्तरमें और भी जो जो पाप इन्हींके समान होतेहों तिन में भी (अपण्य विक्रयके पापोंमें भी कि जिन चीजोंका बेचना छत्तीसमे मूलश्लोक से अरतीसमेतक निषेध कियागयाथा उन्हींको यदि छिपिकर बेचा हो तहां बारह दिनतक हररोज बारह बारह प्राणायाम करें) परन्तु मद्य मांस घी तेल लाख नमक रस गोरस अन्न इनका भी बेचना सबकेसाथमें निषेध किया गयाथा तिनको यहां छोड़िके अपण्य विक्रयका यहप्रायश्चित्त समुझना क्योंकि चालीसमे मूलश्लोक से ये जुदे इतने पतनीय कहे गयेथे तिससे इनके बेचनेवाले को यह छोटासा प्रायश्चित्त बड़े अनर्थमें गिनती यह तात्पर्य्यहै (यच्चअपिअन्यतएवयुक्तं•) और भी जो कुछ पाप इसीप्रकार ठीक ठीक संसार में होताहो जो इन्हीं पापोंके समान समुझा जाय जिसका नाम यहां नहीं लिखा तिससे भी यही प्रायश्चित्त समुझना यह सब कथन बौधायनकाहै—इसीलिये विज्ञानेश्वरने अप्रोक्त १४४एकसौचवालिस प्राणायामोंको औरभी मध्यम किस्मके उपपातकोंपर व्यवस्थापितकियाहै(भलाछिपको

जैसा किसी शिष्य को एकान्त में गाली देना या क्रूर वचन कहिदेना या गुरु को सन्मुख आते देखि प्रणाम शब्द कहिना योग्य था सो नहीं कहा गफलत से भूलि-गया तौ भी यह वाणी का व्यतिक्रम हुआ अथवा हाँसी ठट्ठा आदि में निरर्थक असत्य बोला हो इत्यादि नाना भांतिसे समझना और. वाणी की सहचरी रसना जिह्वा भी मुखही में होती है तिसमें कुरीति का भोजन करना आदिभी उसका व्यतिक्रम कहा जाता है सोभी तुच्छ पाप में समझना जैसे जलके साथ बाल आदि मुह में चला गया या खुला धरा पानी पीलिया हो इत्यादि किन्तु जूठा भोजन कर लेनाआदि बड़े पापका चर्चा यहां नहीं है प्रायश्चित्त छोटाहोनेके हेतुसे• एवं चक्षुः नेत्रों का व्यतिक्रम जैसा अमेध्य विष्ठा आदि पर दृष्टि परगई या पुत्र वधू आदि को कुदृष्टि से देखा अथवा कुदृष्टि किये बिना भी उनके किसी लज्जा वाले अंग पर अपनी दृष्टि धोखे से पर गई हो तौभी यह नेत्रोंका व्यतिक्रम ठहिरा इत्यादिनाना-भाँत्ति से• एवं श्रोत्र कानों का व्यतिक्रम जैसा महात्मा की निन्दा आदि सुनि परी या कोई अपशकुनरूपी शब्द किसीजीवका रोदन आदि सुनिपरा हो इत्यादि• एवं त्वचा खालरूपी इन्द्रीका व्यतिक्रम जैसा खाल सब देहभरमें होतीहै उसमें कहींपर किसी मलीन वस्तुका छुइजाना या पुत्र वधू आदिके हाथ पाओंसे अपना हाथ पावँ आदि कोईअंग धोखासे भिड़जाना एकदेशहै सो यह त्वचाका व्यतिक्रम कहिलाता है इत्यादि• एवं घ्राण इन्द्री जो नाकहै तिसका व्यतिक्रम जैसे विष्ठा वा मद्य आदि की दुर्गंध.नासा के छिद्रों में घुसि गई हो इत्यादि• एवं मनोव्यतिक्रम जैसे मन सबही इन्द्रियों का अधिष्ठाता है उसके द्वारा ईश्वर का स्मरण और संसार की भलाईवाले विचार करने मनका मुख्य धर्म्म है तिसको छोड़ि के दूसरों की बुराईवाला विचार करनेलगाहो•इत्यादि नानाभांतिके छोटेपाप प्रकीर्णकहिलाते हैं•इन सातइन्द्रियों के व्यतिक्रम जो कहेगये तिनमें किसी एकही के होने पर तीन प्राणायाम करने कहे—इनसे उपरान्त मिताक्षराकार के व्यवस्थापित किये प्रकीर्णक नामके पापभी इन्हीं सात.इन्द्रियोंसे उत्पन्न होतेहैं चौहत्तरि७४परिच्छेद में २९१ दोसौइक्यानवे मूलश्लोकसे आदि लेकर खूब सोचिके समझो किन्तु उनपरभी तीनही प्राणायाम सूचितहुये—तहां यह विचारभी करनाचाहिये कि उनमेंभीजोकुछ बड़े बड़े पाप देखि परें तिनको जुदे खींचिकैभिनचले दूसरे भेदवाले पापोंके साथमेंजोड़ना अर्थात उनके ऊपर सिर्फ तीनही प्राणायाम नहीं बल्कि निम्नोक्त वनवास करने चाहिये• यहां तक पहिले भेदका मीलान हुआ ॥ १ ॥—बौधायन फिर कहितेहैं कि (शूद्रस्त्रीगमना

न्नभोजनेपृथक्पृथक्) शूद्र जातिका दिया हुआ अन्न या शूद्रका छुआ अन्न पानी या शूद्रका देखा हुआ तैयार अन्न ये सब दूषित और निषिद्ध होतेहैं तिसका भोजन करलेना• एवं स्त्रीके सगम समय भोजन करना या स्त्री के साथ भोजन करना• एवं राह चला भोजन या राह चलते भोजन करना• इन तीनों तरहके भोजनरूपी दोषों में जुदा जुदा प्रत्येक निमित्तपर सात रोज तक सात सात प्राणायाम करें क्योंकि ये एकप्रकारके छोटे उपपातकहैं निदर्शनके निमित्तकहेगये किन्तु इन्हींके उपलक्षण से और भी छोटे उपपातक समुझेजातेहैं–इसीलिये विज्ञानेश्वरने इनतीनोंसे उपरान्त इनके समान छोटे उपपातकों पर उनचास ४९ प्राणायाम समुझाएथे उनका स्वरूप ढूंढे मिलसक्ताहै ७० । ७२ । ७३ सत्तरि और बहत्तरि और तिहत्तरि परिच्छेदों में विस्तारसे वर्णन होचुका तहां देखो ॥ २ ॥=बौधायन फिर कहते हैं कि (अभक्ष्या भोज्या मेध्य प्राशनेषु) तथावा (अपण्यविक्रयेषु) मधु मांस घृत तैल लाक्षा लवण रसान्न वर्जेषु (यच्चाप्यन्यदेवयुक्तं) अर्थात् (अभक्ष्य वह कि जो निपट खानेकेयोग्यही न हो जैसे पियाज आदि निषिद्ध चीजें• अभोज्य वह कि यद्यपि अन्न आदि पदार्थ खानेके योग्यहैं पर किसी अशुद्ध प्राणीके छुइजाने या मलीन वस्तु से भिड़ जाने आदि कारणोंसे भोजनकी योग्यता उसमे नहीं रही•अमेध्य वह कि जो अपने आप स्वरूप से देखने में भी अत्यन्त मलीन और अपवित्र हो जैसे विष्टा राधि पीव खँखार आदि•अथोक्त तीनों प्रकारमें कोईएक भी वस्तु मुहमेंधरै या हलकमेंउतारै तिन पापोंमे) तथा वा पक्षान्तरमें और भी जो जो पाप इन्हींके समान होतेहों तिन में भी (अपण्य विक्रयके पापोमें भी कि जिन चीजोंका बेचना छत्तीसमे मूलश्लोक से अरतीसमेतक निषेध कियागयाथा उन्हींको यदि छिपिकर बेचा हो तहां बारह दिनतक हररोज बारह बारह प्राणायाम करें) परन्तु मद्य मांस घी तेल लाख नमक रस गोरस अन्न इनका भी बेचना सबकेसाथमें निषेध किया गयाथा तिनको यहां छोड़िके अपण्य विक्रयका यहप्रायश्चित्त समुझना क्योंकि चालीसमे मूलश्लोक से ये जुदे इतने पतनीय कहे गयेथे तिससे इनके बेचनेवाले को यह छोटासा प्रायश्चित्त बड़े अनर्थमें गिनती यह तात्पर्य्यहै (यच्चअपिअन्यतएवंयुक्तं•) और भी जो कुछ पाप इसीप्रकार ठीक ठीक ससार में होताहो जो इन्हीं पापोंके समान समुझा जाय जिसका नाम यहां नहीं लिखा तिसमे भी यही प्रायश्चित्त समुझना यह सब कथन बौधायनकाहै–इसीलिये विज्ञानेश्वरने अथोक्त १४४एकसौचवालिस प्राणायामोंको औरभी मध्यम किस्मके उपपातकोंपर व्यवस्थापितकियाहै(मलाविकको

मध्यम किसको समुझना इसअपेक्षामें) ५३ त्रेपन परिच्छेदकी आदि से ६८अरसठि परिच्छेदके अन्त तक जितने उपपातकों के प्रकाश प्रायश्चित्त कहेगयेहैं तिनको मध्यमसमुझना परन्तु उनसबमेंसे जिनका स्वरूपजातिभ्रंशकरोंमें या संकरीकरणोंमे या अपात्रीकरणोंमें या मलिनीकरणोंमेंभी देखिपरे तिनकोछोडिके यहनियमसमुझना क्योंकि दोजघे गिनतीहोनेसे दोतरहका प्रायश्चित्त नहींकियाजायगा औरदो में जहां छोटा प्रायश्चित्त होय सोभीनहीं किन्तु बडाकियाजायगा तिसकेलिये यह छूट लिखी गई है सो समुझि लेना ॥ ३ ॥=बौधायन फिर कहते हैं कि (अथपात कोपपातकवर्जयचान्यदेवंयुक्त) ऊपर कहे पापों से अनन्तर और जो कुछ बढिया पाप लगा हो तहां ऐसे उचित है कि पन्द्रह रोजतक बारह बारह प्राणायाम करें परन्तु पातक नामके पापों और बहुत बड़े उपपातक नामके पापोंको वर्जितकरके उनसे निचले बढिया पापका यह नियमजानो—अर्थात्—बौधायन के इस कथन का यह तात्पर्य्य है कि मध्यम उपपातकों से कुछ बड़े हो पर उत्तमदर्जाके उपपातको से कुछ मध्यम हो तिनके लिये यह पखवारे का प्रायश्चित्त जानो—इसीलिये विज्ञानेश्वर ने अप्रोक्त १८० एकसौअस्सी प्राणायामों को जातिभ्रंशकर आदि पापों पर समुझाया था जिनके चारोंनाम अभी तीसरे पाठके अन्तमे लिखेगये देखि लो• इनके प्रकाश प्रायश्चित्त ७४ चौहत्तरि के परिच्छेद में कहिचुके हैं• इन्ही के अत्यन्त स्वरूप लक्षण २४२ दोसौ बयालिस की अधिकोक्ति में जाकर समुझो ॥ ४ ॥=बौधायन फिर कहते हैं कि (अथ पातक पतनीय वर्जयचाप्यन्यदेवयुक्त) अथनाम ऊपरले पापों से अनन्तर जो और बड़ा पाप है उसमें पातक और पतनीयोंको छोड़िके ऐसा उचितहै—अर्थात—पूरे पातक और पतनीयजो पातकसे कुछ नीचे दर्जामें होतेहें इन दोभाँतिसे उपराळू जो इन दोनोंसे नीचे दर्जामें अन्यभाँतिके ऐसे पापहैं जो ऊपरले चौथे पाठवालोंसे कुछ बड़े समुझेजायँ तिनहीमें ऐसाकरना उचितहै कि एक महीनाभर हररोज बारह प्राणायाम सावै यह बौधायनका कथन है—इसीलिये विज्ञानेश्वरने अप्रोक्त ३६० तीनसौसाठि प्राणायामोंको गोवध आदि बहुत बडे उपपातकों के अभिप्राय पर समुझना कहा क्योंकि इस प्रकार के वेही प्रतीत होतेहें उनके स्वरूपों को समुझना जिसको आवश्यक हो तो ४० चालीसवे परिच्छेद से लेकर ५२ बावन परिच्छेद की अत्य सीमातक देखो कि उन्ही तेरह परिच्छेदों में गोवधको आदि लेकर जितने उपपातकोंके प्रकाश प्रायश्चित्त कहे गयेहैं उन्हींकेरहस्य प्रायश्चित्त यहां तीनसौ साठि प्राणायामसे दर्शायेगये॥५॥=

वौधायन फिर कहिते हे कि (अथपातकवर्जंयचान्यदर्ध्येवमुक्तं) अथानन्तरं यचपापंअन्यदपिपातकवर्जस्यात्तत्रएवउक्तं इतियोजना) ऊर्ध्वोक्त पापों से ऊँचे चढिकर अनन्तर उनसे लगभायदिऔरहो वढिया पापहोय जो पूरेपातकसे वर्जित होय तहाँ ऐसे कहाहै—अर्थात्—पाँचवें पाठवाले पापों से कुछ ऊँचाहोय परच पूरे पातकोंसे कुछ नीचा होय तिसमे ऐसा कहा है कि एक छमाही भर हररोज बारह प्राणायाम साधै(यहांपर पातक या पूरे पातकसे महापातक समझा गयाहै क्योंकि पाठके क्रमसे अर्थहीका क्रम बलवान् होताहै (इसी न्याय से मिताक्षराकारने अ-ग्रोक्त २१६० इक्कीससै साठि प्राणायामों को अतिपातक और अनुपातकों के अ-भिप्रायपर ठहिराया है कि जिससे आगे सातवे पाठसे विरोध न आनेपावै ॥ ६ ॥= वौधायन फिर कहिते हैं कि (अथपातकेषुसवत्सर)ऊर्ध्वोक्तोंसे ऊँचे चढिकर उनसे अनन्तर जो सवसे वढियापातक अर्थात् जिनसे ऊँचा कोई और पाप न होता हो तिनमें एक सालभर हररोज बारह प्राणायाम साधै—इसी लिये मिताक्षराकार ने अग्रोक्त ४३२० तेंतालिससैबीस प्राणायामोंको महापातकोंके विषयपर ठहिराया है क्योंकि उनसे बड़ा कोई और नहींहै ॥ ० ॥ महापातक• अतिपातक• पातक•अ-नुपातक•उपपातक•इन सबके मुख्य स्वरूप २४२ दोसौ वयालिसकी अविकोक्ति मे देखो वहाँ इनके एक एकमें कईकईभेद हैं परच महापातकोंसे वडा कोई नहीं है• उपपातकोंमें परस्पर छोटाई वड़ाईके हेतुसे चारपाँचक भेदहोतेह ॥ ० ॥ विज्ञानेश्वर अपना विचार कुछ और भी दर्शाते हैं कि(इदचाभ्यस्याभोऽथेत्यादिनोक्तप्रायश्चित्त पचकअत्यनाभ्यासविषयसमुच्चितविषयवा (अर्थात् वौधायन के पहिले दो पाठ भेद छोड़िके शेष पाँच भेदोंके पाठमें जो पाँचप्रकारके प्रायश्चित्त कहेगये तिनको अत्यन्त अभ्यासकिये पापोंपर समझना कि जिसने वारम्वार वही एकपाप किया हो अथवा एकहीवार मिलेझुले कईपाप एकसाथ होगयेहों तिनपर भी इन प्राय-श्चित्तों की योग्यता होगी ॥ फिर कहिते हे कि मनुके अग्रोक्त वचनवाला प्राय-श्चित्त भी अभ्यासही के विषय पर समझना=यदाहमनु =एनसांस्थूलसूक्ष्माणांचि कीर्षन्नपनोदनम अवेत्यृचजपेदब्दयत्किंचिदमितीतिच=अर्थात्—महापातक आदि स्थूल पापोंका तथा उपपातक आदि सूक्ष्म पापोंका अपनोदन करना चाहते हुये यह प्रायश्चित्तकरै कि (आवइतिऋच) अर्थात् अवतिहेलो वरुण इत्यादि ऋचाको एक सालभर या (यत्किंचिद) अर्थात् यत्किंचिद वरुण देवोजन इत्यादि ऋचाको एक सालभर और (इतिइतिचऋच) अर्थात् इतिमेमनस इत्यादि ऋचावाले सूक्तको

एकवार नित्यंप्रतिजपाकरै=अत्र मिताक्षराकाराः (यत्तुमनुनाअब्दंयावत्प्रत्यहमर्थांत रविरुद्धेयुकालेषु अवतेदेलेत्यादीनांऋचांजपउक्तःसोप्यभ्यासविषयः) अर्थात मनुने जो एक वर्षभर अवते आदि तीन ऋचाओंका जप इस ढँग से करना बताया है कि हररोज अपने अन्यजरूरी कामोंके हर्जवाले समयोंसे उपरान्त फुर्सतके समयपर एक बार जपाकरै• सोभी यह वारवार के अभ्यासवाले पापोंका प्रयोजन देखिपरता है क्योंकि सालभरका प्रायश्चित्त बहुत बड़ाहै॥ ० ॥ इन सब रहस्य प्रायश्चित्तों में यह एक शंका खड़ी रहीहै कि ऊपरकी व्यवस्था में सभीतरह के पाप दर्शायेगये जो जो प्रकाश प्रायश्चित्तों में आचुके थे उनमें बहुवा पाप ऐसे हैं जो हर्गिज गुप-तौअर नहींकिये जासक्ते हैं इसका दृष्टान्त जैसे ४८ अड़तालिस के परिच्छेदमें परि-वेदनके नामसे एक विवाहरूपी पाप कहागया जिसमें विवाह ठहिरानेवाला करानेवाला औरनाईपुरोहित आदि अनेक मनुष्योंकीसहायतासे कार्य सिद्धहोताहै वे सभी उसको जानते हैं तो फिर क्योंकर गुप्ततौअर पाप ठहिरै जिसका रहस्य प्रायश्चित्त कियाजाय जैसा यह एक दृष्टान्त कहा तैसे और भी अनेक पापहैं जो किसी तरहसे छिपिनहीं सक्ते=इसके समाधान भी अनेक हैं=प्रथम तो यहीउत्तर देनाचाहिये कि जोबात नहींछिपसक्तीहै उसमेंरहस्य प्रायश्चित्तका संबंध क्यों जोड़तेहो उसमेंप्रकाश ही प्रायश्चित्त किया जायगा जो उसके लिये पहले से नियत होचुका• दूसरा यह उत्तर है कि विरले स्थलमें वहीकर्म छिपाहुआ भी होजाता है (तहाँ रहस्यही प्राय-श्चित्त की जरूरत होगी (क्योंकि भाट पुरोहित आदिका जानना गिनती में इस लिये नहीं आताहै कि वे खुद भी कुछपाप भागी होते हैं अर्थात सहायकों को भी प्रायश्चित्तकी योग्यता पहिले लिखचुके हैं इसीलिये यह नियम है कि जिस पाप के जितने सहायआदिकर्ताके साथीहों तिनसेउपरान्तलोगजानिपावैं औरनिन्दासहित चर्चाकरैं तभी प्रकाशकी पदवीतक पहुँचताहै अन्यथा सहायोंके जानने मात्रसेनहीं• कदाचित् यह कहिने में आवे कि भाट पुरोहित आदिसे उपरान्त कुछ बराती भी अ-वश्य होंगे तौभी यही उत्तर है कि वे बराती भी उसके सहायों में गिनती होसक्ते हैं तिससे उनका भी जानना प्रकाशकी पदवी तक नहीं जासक्ताहै क्योंकि यदि उनको उसका अन्यायपाप स्वीकारठहिरा तभी उसकेसाथी याबराती बने अर्थात्प्रायश्चित्त भी तब होताहै कि यातो पापी आपही धर्मके डरसे मन में ग्लानि पैदा करै या पंच बिरादरी आदि कोई निन्दा करनेपर उतारू होयँ•तहाँ जो साथी बरातीबने वे आपही प्रायश्चित्त के संसर्ग भागी होनेके हेतुसे मुखिया की निन्दा नहीं करसके हैं और

उनसे उपरान्त उसके बिरादर आदि यद्यपि इस कर्मका होना सुनिकर जानैंभी परन्तु धर्मके बोध बिना या और किसी हेतुसे निन्दा करने पर उताह्व न होयँ तौ यह पाप उसका अनेकों के जानने पर भी प्रकाश होनेकी गिनती में नहीं आया गुप्तौअर में ठहिरा तिससे ऐसी दशामें यदि मुख्य पापी आपही पापके भयसे मनमें ग्लानि को उत्पन्न करें तिसकी शुद्धि रहस्य प्रायश्चित्त से होसक्ती है इसीलिये प्रकाश और अप्रकाश दो भाँतिके प्रायश्चित्त निर्मित हुये हैं तिससे कोई भी स्थल शंका करने योग्य नहीं है ॥ ३०६ ॥ यद्यपि योगीश्वर ने भी सबही उपपातकों पर एकसौ प्राणायामकरने कहे तथापि आपही उसका थोड़ासा अपवाद नीचे दर्शावेंगे• अर्थात् अगिले मूल श्लोक से उसी की अधिकोक्ति में भी जितने उपपातकों पर जुदा प्रायश्चित्त दर्शावेंगे तिनपर वही प्रायश्चित्त करना चाहिये किन्तु ऊर्ध्वोक्त प्राणायाम नहीं ॥ ३०६ ॥

(क्वचित्प्राणायामशतस्यापवादः)

ओंकाराभिष्टुतःसोमसलिलंपावनंपिवेत् । कृत्वातुरेतोविरामूत्रप्राशनंतुद्विजोत्तमः ३०७

अर्थः—रेतस् वीर्यधातु विष्ठा मूत्र• द्विजोत्तम द्विजाती इनको मुह में चोखके यह प्रायश्चित्त करें कि सोमालता (एक वेलि) का सलिल स्वरस निचोडि उसको ओंकार से अभिमन्त्रित करें वही पावन है अर्थात् शरीर का पवित्र करने वाला रस होता है तिसको पीलेवें ॥ ३०७ ॥

३०७ अधिकोक्तिः— विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त केवल उसके लिये समझना जिसने वीर्य विष्ठा आदि इच्छा विना धोखा से चखिलिया हो— किन्तु चाहिकर चखने वालेको सुमन्तु का बताया करना चाहिये=यदाह सुमंतुः= रेतोविरामूत्र प्राशनंकृत्वा लशुनपलांडुगृञ्जन कुम्भकादीना मन्येषांचाभक्ष्यादीनां भक्षणांकृत्वाहंसग्रामकुक्कुट श्वशृगालादिमांसभक्षणंकृत्वा ततः कण्ठमात्रमुदक मवतीर्य शुद्धवतीभिः प्राणायामंकृत्वा ब्रह्मव्याहृतिभि रुरोगमुदकंपीत्वा तदेतस्मात्पूतोभवति=अर्थात्—वीर्य विष्ठा मूत्र चाखि के या लहसुन प्याज गाजर कुम्भीसाग आदि अन्य अभक्ष्यों का भक्षण करिके या हंस घरेलू मुर्गा कुत्ता सिआर आदि के मांस खाइके तिस पाप के हेतु से यह प्रायश्चित्त है कि गले के समान गहिरे जलमें गोता लगाइ उसी जल मे खड़े होकर शुद्धवती नाम की ऋचाओं से प्राणायाम करिके फिर ब्रह्मव्याहृतियों से पढ़ि कर जल इतना पीवें जो हृदयतक पहुँचे अधि-

क नहीं तिस कर्म के करने से इस पाप से छुटि कर पवित्र हो जाता है॥ ० ॥ मनु ने भी अभक्ष्य भक्षण और असत्प्रतिग्रह के लिये एकजुदा प्रायश्चित्त देकर ऊर्ध्वोक्त प्राणायामोंका छुटकारा (अपवाद) दर्शाया है=यथा=प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वाचान्नंविगर्हितम जपंस्तरत्समंदीयं पूयतेमानवस्त्र्यहात=अर्थात—जोकोई वस्तु धनादिक दान के द्वारा ग्रहण करने योग्य नहो सो अप्रतिग्राह्य कहाती है जैसेविष शस्त्र मदिरा हाड आदि या चण्डाल महापातकी आदि पतितों का कोईसा धनहो सोभी जिनका स्वरूप२९०दोसौ नव्बेकी अधिकोक्ति में कहिचुके उनमेंसे कोईवस्तु लेकर पाप भागी जो हुआ हो अथवा भात भाँति के अभक्ष्य जो ६९ उनहत्तरि से तिहत्तरितक पांच परिच्छेदोंमें वर्णनहुयेथे उनमेंसे कोई निन्दित अन्नआदि जिसने खाइ लिया हो वह दोषी पुरुष तीन दिन इन्हीं चार मन्त्रोंका जप करते हुये शुद्ध होता है अर्थात (तरत्‌ समन्दी धावती) इत्यादि चिह्न वाली चारों ऋचाओं को यथाशक्ति के अनुसार या पाप की लघुता गुरुता के अनुसार थोडी या बहुत संख्या अपने तात्कालिक विचार से कल्पित करै कि इतना जप करना चाहिये=ध्यानकरो=अवोक्त पापों पर यह दूसरा प्रायश्चित्त आरूढ होजाने से पूर्वोक्तप्राणायामों का निरादर होगया इसी को धर्म्म शास्त्र में अपवाद नाम कहिते हैं इसी को भाषा में छूट या छुटकारा समझिलेना कि इतने पापों में प्राणायाम की जरूरत नहीं॰ परन्तु॰ यह विवेक इतना उपरालूहै कि विवेकी पुरुष यदि अपने पाप दोषको कुछ गहिरा समझे कि सिर्फ सोमलताका रस पीने मात्रसे संतुष्टि मेरी न होगी तिसको दोनो विधि करनी चाहिये अर्थात इससे पहिली अधिकोक्ति में लिखे बौधायनवाले ४९ उनचास प्राणायाम या १४४ एकसौ चवालिस प्राणायाम अथवा योगीश्वरके बताये सौ १०० प्राणायाम या इनमें से इच्छाके अनुरूप कमीनेकर साधना किये पीछे सोमालता का रस पीवै अथवा जहां सोमालता न मिलसकै तहां भी अवश्य प्राणायामही करनेहोंगे तिससे यह तात्पर्य नहींहै कि निपट प्राणायामोंका करना किसी निषेध में गिनती हो बल्कि उनकी साधना में कठिनता जानिके दूसरी सुगम रीति यहां कहीगई॥ ० ॥ वीर्य विष्टा मूत्र आदि शरीरके मैल जलमें छोडना एक पापहै यह औरोंके देखते कम होता बल्कि गुप्तीअर अधिक होताहै तिससे इसके मध्ये एक जुदा प्रायश्चित्त मनुने कहाहै (अप्रशस्तंतुकृत्वाप्सुमासमासीतभैक्ष्यभुक्) जलोंके भीतर विष्टा वीर्य करनाआदि बुराकर्म करिके एकमहीना भीखमाँगि भोजन कियाकरै तब उन पूर्वोक्त प्राणायामोंको करिके शुद्धहोय अन्यथा प्रायश्चित्त

न करने से छिपे पाप की वृद्धि होती रहेगी कि जैसे ऋण के ऊपर व्याजकी वृद्धि होती रहती है॥ ३०७॥

(अतितुच्छपापस्यप्रायश्चित्तं)

निशायांवादिवावापियदज्ञानकृतंभवेत्। त्रैकाल्यसंध्याकरणात्तत्सर्वंविप्रणश्यति ३०८

अर्थः—रातिमें या दिनमें जो अज्ञानसे कियाहोय=अर्थात्—अति छोटी किस्मके प्रकीर्णक पाप जो किये गयेहों राति या दिनमें पुरुषकी भूलसे और छोटी या बड़ी किस्म के उपपातक-जो केवल मनके विचारही में उत्पन्न हुये हों या केवल मुहसे कहिडारने मात्रसे उत्पन्न हुयेहों सो सब तीनोंकाल की संध्या उपासन करने से विनाश होजातेहैं• पर इनसे बड़े पाप संध्यासे नहीं मिटते हैं॥ ३०८॥

३०८ अधिकोक्तिः—इस वार्तामें यमका वचन प्रमाण है=यथा—यदह्नाकुरुतेपापं कर्मणामनसागिरा आसीनःपश्चिमांसंध्यांप्राणायामैर्निहंतितत्=अर्थात्—कर्म या मनसे या वाणीसे जो कुछ पाप दिनमें पुरुष करता है सो सब साँझ की संध्यापर बैठि प्राणायामेंसे विनाश करदेता है=एवंशातातपस्तु=अनृतंमद्यगन्धंचदिवामैथुनमेवचपुनातिवृषलान्नंचसंध्यैवहिउपासिता=अर्थात्—असत्य बोलना या मदिराआदि दुर्गंधें सूंघना या दिन में स्त्रीसे मैथुन करना आदि छोटे छोटे पाप यहाँतक कि शूद्र का दियाहुआ अन्नभी खायाहो सबको सन्ध्या ही उपासन करीहुई पवित्र करदेती है पर बढ़िया पापों में नहीं (संध्या वहिरुपासिता)कहीं ऐसा भी पाठ देखागया है तिससे यह अर्थ सिद्धहोताहै कि बहिर्देश वस्तीसे बाहर किसी मैदानके पुण्यस्थान पर कूप तड़ागआदिका सहारालेकर संध्याकरीजाय जहाँ सूर्यका पूरा विम्ब आसन के सन्मुख और समस्त किरणों की प्रभारूपी सूर्य की वृत्तियां अपने सब अंग पर आसकें और मनुष्योंका संघात जहाँ न होय ऐसे निर्द्वंद्व ठिकानेपर चित लगाकर अच्छी आराधनासे करीहुई संध्या अपने पूरे फलको देसक्ती है॥३०८॥

आगले परिच्छेद में वेदों की ऋचा आदि समस्त मन्त्रोंका संग्रहकरिके एकत्र दर्शावेंगे कि जिनमंत्रों काप्रयोजन सर्वत्र प्रायश्चित्तों में जहाँ तहाँ आनि परताहै॥ और विरले प्रायश्चित्तभी कहेंगे॥

—※—

अथसकलमहापातकादिपापहरसाधारणपवित्र मन्त्रजपहोमानांनामचिह्नस्वरूपप्रकाशकोऽयं परिच्छेदःएकाशीतितमः (८१)

———*———

इस परिच्छेद में उन सभी मन्त्रों के नाम चिह्न दर्शाये जायेंगे कि जिनका जप करना प्रायश्चित्तों में कहिचुके • वल्कि बहुधा मंत्र ऐसे इसमें मिलेंगे जिनका चर्चा कहीं नहीं आया तौभी उनके जपने से सर्व पापों का नाश होसक्ता है• इसी में वेदाभ्यासी पुरुष का प्रायश्चित्त और पूरे ज्ञानी ध्यानी का प्रायश्चित्त साधारण सभी पापोंपर एकही रूप से दर्शावेंगे॥

(सर्वपापहरा मंत्राः)

शुक्रियारण्यकजपोगायत्र्याश्चविशेषतः। सर्वपापहराह्येतेरुद्रैकादशिनींतथा ३०९

अर्थः—शुक्रिय• आरण्यक• गायत्री• इनका जुदा जुदाही जप तथा• रुद्रैकादशिनी• ये सब जुदे जुदे सर्व पापों के हरने वाले होते हैं—अर्थात्—शुक्रिय इस नाम से भी वेदहीका एक अंशहै जिसका पता मिताक्षराकारने यह दिया है(विश्वानिदेवसवितः—इत्यादि वाजसनेयकेपठ्यते) इस पदको आदि लेकर यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा में जिसका पाठ है• तथा आरण्यक भी वेदही का अंश है जिसका पता यह दिया है (आरण्यकंच—ऋचंवाचं प्रपद्ये मनोयजुः प्रपद्ये इत्यादि तत्र च पठ्यते) कि आरण्यक भी ऋचं वाचं प्रपद्ये आदि कहताहै उसका भी पूरापाठ उसी वाजसनेयी शाखा में पढा जाता है—इन दोनोंका जप ऐसा उग्र है कि महापातक आदि सकल पापों का विनाश होता है तथा इनसे जुदा गायत्री का जप अत्यंत उग्र है तथा रुद्रैकादशिनीका अर्थात् ११एकादश रुद्रों के रुद्रानु वाकरूपी मन्त्र जो वेदही में प्रसिद्ध हैं उन सबका यही एक नाम है तिनका जप सबसे अधिक उग्र है कि जिससे महापातक आदि सभी पाप हरे जातेहैं और (मूल श्लोक में ह्यापच इस चकार के अन्वर्थ से अघमर्षण आदि और भी अनेक मंत्र सर्व पापों के हरने वाले होते हैं तिनको भी समझि लेना उनके मध्ये वशिष्ठ का वचन अविकोक्ति में देखना॥ ३०९॥

३०९अधिकोक्तिः—शुक्रिय आदि मन्त्रोंका जप कितनाकरै इस अपेक्षामें सर्वत्र यह समझलेना कि जैसा बडा या छोटा पापहोय तैसा बहुत या थोडा जप अपनी बुद्ध से विचार किया जासक्ता है जैसा गायत्री के मध्ये मिताक्षराकार ने व्यवस्था नियत करी है कि=गायत्र्याश्च महापातकेषुलक्ष मितिपातकानुपातकयोर्दशसहस्त्र उपपातकेषुसहस्त्रंप्रकीर्णकेषुशत मित्येवंविशेषतोजपःसर्वपापहरः=तथाच शंखेनो-क्तं=शतंजप्तातुसाविती तुच्छपापविनाशिनी सहस्त्रजप्तातुतथापातकेभ्यःप्रमोचिनी दशसाहस्रजाप्येनसर्वकिल्विषनाशिनी लक्षंजप्तातुसादेवीमहापातकनाशिनी—सुवर्ण स्तेयकृद्विप्रोब्रह्महागुरुतल्पगः सुरापश्चविशुद्ध्यन्ति लक्षंजप्त्वानसंशयः=अर्थात्— मिताक्षराकार कहितेहैं कि गायत्री का जप महापातकों में एकलक्ष संख्याकरना कहा है इस हेतु से पातक तथा अनुपातकों पर दस हजार चाहिये और उपपातकों पर एक हजार और प्रकीर्णक पापों पर एकसौ संख्या रखनी चाहिये इस तरह जुदी जुदी विशेषता से सभी पाप हरेजाते हैं=यही क्रम शंखजी ने कहा है कि=सा-विती एक सौ संख्या मात्र जपी हुई तुच्छ पापों अर्थात् प्रकीर्णकों का विनाश कर-तीहै तथा एक हजार जपीहुई पातकों अर्थात् उपपातकों से छुटाइ देती है दश-हजार जाप करने से सर्व किल्विष अर्थात् पूरे पातक और अनुपातक नाशकरती है पुनि एक लक्ष जपी हुई वह गायत्री देवी महापातकोंका विनाश करतीहै—किन्तु— सुवर्ण का चुराने वाला ब्राह्मण और ब्रह्महत्या करने वाला और गुरु भार्या संगम करने वाला और सुरापान करनेवालाभीये चारों महापातकीहोते हैं ये सब एकएक लाख जप करिके शुद्धहोजाते हैं सन्देह न करना॥०॥ यत्तुचतुर्विंशतिमतेनोक्तं= गायत्र्यास्तुजपेत्कोटिंब्रह्महत्यांव्यपोहति लक्षाशीतिंजपेद्यस्तुसुरापानाद्विमुच्यते पु-नातिहेमहर्तारंगायत्र्यालक्षसप्ततिः गायत्र्यालक्षषष्ठ्यातु मुच्यतेगुरुतल्पगः इति (तद्गुरुत्वात्प्रकाशविषय मितिमिताक्षरा=अर्थात्— चतुर्विंशति मत वालों ने जो कहा है कि—गायत्री का किरोड़ जप करै तिससे ब्रह्महत्या मिटि जाती है और जो अस्सी लाख मंत्र जपै वह सुरापान के पातक से छुटि जाय और गायत्री का सत्तरि लाख जप किया हुआ सुवर्ण चुराने वाले को पवित्र कर देता है और गायत्री के साठि लाख जप सेगुरुतल्पगामी शुद्ध होता है॰ यह कहा (मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त अति बड़े होने के हेतु से प्रकाश पापों के विशोधन पर सम-झना किन्तु यहां रहस्य पापोंपर नहीं॥०॥ रुद्रैकादशिनी के मध्ये यह वचनहै= एकादशगुणान्वापि रुद्रानावर्त्यधर्मवित् महद्भ्यःसतुपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः=

अर्थात्—ग्यारह रुद्रमंत्रों को ग्यारह गुणा लौटि लौटि जपिके वह पुरुष महापापों से भी छुटि जाता है इसमें सन्देह नहीं (जबकि इसमें महापातकों पर ग्यारह गुणी आवृत्ति कही गई तौ फिर इनसे छोटे अति पातक आदि पर कम कल्पना करनी चाहिये अर्थात् चौथाई चौथाई यथा क्रमसे कमकरते चले आना यह तात्पर्य्य है ॥ ० ॥ च शब्द के ख्वन्यर्थ से अघमर्षण आदि अन्य मन्त्रोंका संग्रह समझिलेना जो कहिचुके तिनके मध्ये वशिष्ठका अप्रोक्त वचन है=यथा—सर्ववेदपवित्राणिवक्ष्या-म्य हमतःपरम येषांजपैश्चहोमैश्चपूयन्तेनात्रसंशयः अघमर्षणंदेवकृतंशुद्धवत्यस्तरत्स-माः कूष्मांड्यःपावमान्यश्चदुर्गासावित्र्यथैवच। अभिषंगाःपदस्तोमाः सामानिव्याहृतीस्तथा भारुंडानिचसामानि गायत्रंरैवतंतथा पुरुषव्रतंचभासंच तथादेवव्रतानिच अब्लिंगावार्हस्पत्यंवावाक्सूक्तंमधुमत्तथा शतरुद्यथर्वशिरस्त्रिसुपर्णंमहाव्रतम गोसूक्तं चाश्वसूक्तंचइन्द्रशुद्धेवसामनी ॥ त्रीण्याज्यदोहानिरथंतरंचअग्नेर्व्रतंवामदेव्यंबृहच्चएतानिपूतानिपुनंतिजंतून् जातिस्मरत्वंलभतेयदिच्छेत्=अर्थात्—यहां से वशिष्ठ जी उन मंत्रोंके नाममात्र दर्शाते हैं जो वेद में सर्वथा पवित्र गिनेजातेहैं जिनका जप करिके या होम करिके पापी लोग पवित्र होतेहैं तिनके नाम—अघमर्षण•देवकृत• शुद्धवन्ती•तरत्समादि•कूष्मांडियों• पावमानियों•दुर्गा•सावित्र्यः•अथ• अभिषंगाः• पदस्तोमाः• सामानि• व्याहृतियों• भारुंडानि• चसामानि•गायत्रं• रैवतं•पुरुषव्रत• भास• देवव्रतानिच•अब्लिंगाः•वार्हस्पत्य• वंवा•वाक्सूक्त•मधुमत• शतरुद्री• अथर्वशिरस्• त्रिसुपर्ण• महाव्रत• गोसूक्त•अश्वसूक्त• इन्द्रशुद्धि•सामनी ॥ त्रीण्याज्य दोहानि• रथन्तर• अग्नेर्व्रतं• वामदेव्य•बृहत्—ये इतनी सवऋचायें ऐसीहैं कि जपने से जीवोंको पवित्र करती हैं और जो जातिस्मरत्वको इच्छा करिके निरन्तर सेवन करें तौ वह भी पावें ॥ ३०६ ॥

(गायत्र्यातिलहोमः सर्वपापेष्वेव)

यत्रयत्रचसंकीर्णमात्मानंमन्यतेद्विजः। तत्रतत्रतिलैर्होमोगायत्र्यावाचनंद्विजैः ३१०

अर्थः—द्विजाती पुरुष अपनेको जहां जहां संकीर्ण माने अर्थात् ब्रह्महत्याआदि कोई महा पाप लगिजाने में उसके दोष से अपने को जटित समझै तहां तहां सर्वत्र गायत्री से तिलों का होम करे और ब्राह्मणों से तिलों से वाचन करावै ॥ ३१० ॥

३१० अधिकोक्तिः= महापातकों पर गायत्री से पूरा एक लक्ष होम करना चाहियेक्योंकि (गायत्र्यालक्षहोमेन मुच्यतेसर्वपातकै रितियमस्मरणं) यमका यह,

वचनहै कि गायत्री से एक लक्ष होम करने मे सबतरह के पातकोंसे शुचि जाताहै— इससे नीचे अतिपातक आदिपर यथा क्रमसे एक एक चौथाई कमी देकर होमकरना चाहिये=तथा तिलैर्वाचनं कार्यं=तदाह रहस्याधिकारेवशिष्ठः=वैशाख्यांपौर्णमास्यांच ब्राह्मणान्पञ्चसप्तच क्षौद्रयुक्तैस्तिलैःकृष्णैर्वाचयेदथवेतरैः (इतरैःशुक्लै रित्यर्थः) प्रीयतान्धर्मराजेतियद्वामनसिवर्तते यावज्जीवकृतंपापंतत्क्षणादेवनश्यति=. अर्थात्—योगीश्वर ने गायत्री से तिलों का होम या तिलोंसे वाचन कराना दो बात कहीं तिनमें वाचन का विधान वशिष्ठ ने रहस्य प्रायश्चित्तों के रहस्याधिकार में कहा है कि—वैशाखी पूर्णमासी के रोज पांच या सात ब्राह्मणों से सहत लगे काले तिलों से अथवा सुपेद ही तिलों से वाचन करावै किस मन्त्र से सो कहिते हैं कि (प्रीयतां धर्मराज) इस मन्त्र से अथवा जो कुछ कामना मन में होय तिसका मन्त्र बनावै जैसा (अमुकं पापं विनश्यतु) इत्यादि मन्त्रों से वाचन कराने में जहां तक जिन्दगी भरमें पाप किया हो सो सब उसी समय नाश हो जाता है (यद्यपि योगीश्वर की विवक्षा अनुसार सहत लगे तिलों से होम करावै यही अर्थ ठीक प्रतीत होता है) परन्तु विज्ञानेश्वर की आगली विवक्षा से वशिष्ठके इसवचन मेंभी,वाचन शब्द का अर्थ तिलदान करना समझा गया है तथा (ब्राह्मणान् पञ्चसप्तच) इस द्वितीया विभक्ति से भी यह तात्पर्य प्रकटहोता है कि सहत लगे तिल पांच सात ब्राह्मणों को दान देकर प्रीयतां धर्मराज यह वाचन करावै= इसीलिये विज्ञानेश्वर ने इसी वचन के अनन्तर ऐसा कहा है कि=अनियत कालं अपिदानतं नैवोक्तं=अर्थात्— जिस वशिष्ठ ने पूर्णमासी के नियत काल पर यह दान बताया उसीने अनियत कालों में भी चाहैं तब दान करना कहा है=यथा=कृष्णाजिनेतिलान्कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी । ददातियस्तुविप्राय सर्वंतरति दुष्कृतम=अर्थात्—काले मृगछाला पर काले तिल धरिके और सोनाधरिके सहत घृतधरिके जो ब्राह्मणको देताहै वहसभी अपने बुरे पापों को मेटता है (दोनों वचन पर दृष्टि देकर यह विचारना चाहिये कि पहिले वचन में (क्षौद्रयुक्तैस्तिलैः) सहत लगे तिल कहिने से होम ही करना समझा जाताहै तथापि विज्ञानेश्वर की विवक्षा से यदि उसको दान करना समझि लियाजाय तो फिर युक्त शब्दसे भी सहत का लगाना तिलमें नहीं किन्तु साथ देना धर देना माना जायगा कि जैसा इस दूसरे वचन में कृष्णाजिन के ऊपर तिल सहत आदि अनेक चीजें धरनी कही गई— तिससे जहां जैसा सम्भव हो तहां उसी प्रयोजन वाले किसी एक अर्थ का स्वीकार करना योग्य होगा ॥ ० ॥ व्यासेनाप्युक्तं=

तिलधेनुंचयोदद्यात्संयतात्माद्विजन्मने ब्रह्महत्यादिभिःपापैर्मुच्यते नात्रसंशयः=अर्थात्–व्यासने भी कहा है कि जो कोई आप अपने इंद्रियादिक शरीर को तप के द्वारा शुद्ध करिके तिल धेनु रूपी दान ब्राह्मण को देता है सो ब्रह्महत्या आदि महापापों से छुटिजाता है (तिल धेनु वही कहाती है कि मृगछाला के ऊपर तिलधरिके सोना चाँदी सहित या शक्ति के अनुरूप सोने चांदी के पात्र में या तांबे के पात्र में या ढाक आदि पवित्र पत्तों परही यथाशक्ति काले तिल सोने चांदी सहित धरिके उसी को धेनुरूप मानि के पाप मोचन के अर्थ से संकल्प करें) विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि जैसे दोचार दान यहांपर दर्शाये तैसे इनको आदि लेकर और भी अनेक दान हैं जो रहस्य काण्ड में और जहाँ तहाँ ग्रंथों में जाने जाते हैं सो सब उन्हीं द्विजाती लोगों के लिये समझना जो पढ़े पण्डित न होने से जप होम करने में समर्थ न हों तथा स्त्री मात्र और शूद्र जाती पुरुषोंके निमित्तमें समझना जो सदाही वेद मन्त्रोंके अधिकारी नहीं हैं=विज्ञानेश्वर फिर कहिते हैं कि=यत्तु यमेनोक्तं=तिलान्ददाति यःप्रातःस्तिलान्स्पृशतिखादति तिलस्नायीतिलान्जुह्वन्सर्वंतरतिदुष्कृतम्–तथा–द्वेचाप्यश्वयुजमासस्यचतुर्दश्यांतथैवच अमावास्यापूर्णमासी सप्तमीद्वादशीद्वयम् संवत्सरमभुंजानः सततंविजितेन्द्रियः मुच्यतेपातकैःसर्वैःस्वर्गलोकंचगच्छति=यथाविशोक्तं=क्षीराब्धौशेषपर्यंके आषाढ्यांसंविशेद्धरिः निद्रांत्यजतिकार्तिक्यांतयोःसंपूजयेद्धरिम् ब्रह्महत्यादिकंपापं क्षिप्रमेवव्यपोहति–इत्यादि तत्सर्वं विद्या विरहिणांकामाकामकृताभ्यासविषयतयाव्यवस्थापनीयमितिमिताक्षरा=अर्थात्=यमने जोकहाहै कि–जो कोई अपने पाप की बढ़ाई अनुसार किसी नियत करी अवधि तक रोज निरंतर प्रातःकाल तिलों का स्पर्श (हाथों से छुइलेना) किया करता और तिलों को पानी में पीसिके स्नान और तिलों का होम साधारण मात्र विना मन्त्रके भी और तिलोंका दानकरिके तिलोंको खाइके व्रत करताहै और तबतक इन्द्रियोंको जीति अपने वश में राखताहै सो सब तरहके पातकों से छुटि जाता और स्वर्गलोकमेंभी जाताहै=और जो शविने यहकहाहै कि=क्षीरसागर में शेषनागरूपी शयनपर आषाढ़ी पूर्णमासी के रोज विष्णुभगवान् निद्रालेनेको प्रवेशकरते हैं फिर कार्तिकी पूर्णमासीमेंजाकर निद्रात्यागतेहैं इन दोनों पूर्णमासीके रोज हरिको यथा विधान से जो कोई अच्छी तरहपूजै सो ब्रह्महत्या आदि पाप को तत्काल विनाश करदेताहै•इत्यादि औरभी जो कुछ दान पूजन कहीं लिखा देखो सो सब ऐसे लोगों के लिये जो विद्या से विहीन होयँ उनके पाप की मूरति एक बार या अनेक बार और कामना से चाहिकर पाप

करने या विना इच्छा पाप होजाने के जुदे जुदे भेदों पर व्यवस्था कल्पितकरलेनी चाहिये अर्थात् जैसा छोटा बड़ा पाप देखो तैसा छोटा बड़ा दान पूजन आदि प्रायश्चित्त सोचो॥ ३१०॥ विद्यावान् पुरुष जोनित्य नैमित्तिक धर्म क्रियासे भी संपन्न होय उसपर यदि कोई पाप दशा धोखे से बनिजाय अर्थात् पाप से डरते बचते हुये भी दैवगतिसे होजाय तिससे उसके चित्त को छिपी हुई अतिशय ग्लानि खड़ी होय तिसका जुदा नियम आगे कहिते हैं॥ ३१०॥

(सर्वधर्मनिरस्याज्ञानकृत पापस्यविशेषः)

वेदाभ्यासरतंक्षांतंपंचयज्ञक्रियापरम्। नस्पृशंतीहपापानिमहापातकजान्यपि ३११

अर्थः—वेद के अभ्यास में निरत क्षमायुक्त पंचयज्ञों की क्रिया में तत्पर को इहां कोई पाप नहीं स्पर्श करते हैं महापातक से उत्पन्न हुये भी=अर्थात्—इहां संसार में जो कोई पुरुष वेदाभ्यास को रखते हुये क्षमा से भी संयुक्त होय जो पीड़ा देनेवाले की पड़ा सहिकर प्रतिकार कुछ न करता होय और पंचयज्ञों की क्रिया में शास्त्रोक्त विधि से सदा लगा रहिता हो तिसपर यदि कोई पाप कभी दैवयोग से बनि जाय तो वह उसको नहीं लगता है चाहे महापातक ही क्यों नहो॥ इसका विशेष तात्पर्य अगिले ३१२ के श्लोक में देखना॥ ३११॥

३१२ अधिकोक्ति= वेदाभ्यासस्यलक्षणा (वेदस्वीकरणंपूर्वं विचारोऽभ्यसनं तपः तद्दानंचैवशिष्येभ्योवेदाभ्यासोहिपंचधा) अर्थात्— वेदाभ्यासी उसका नाम है जिसने प्रथम वेद आदि शास्त्र को पढा फिर मनन के प्रकार से विचार किया फिर उसके पाठ आदिका अभ्यास कई वार किया फिर इसमें लिखे तपको किया फिर शिष्यों को उस वेद का पढाने द्वारा दान किया हो तो यह पांच भांति का वेदाभ्यास कहा जाता है तिसके होने पर भी पुरुष में क्षमा होनी यह शर्त है॰क्षमा का लक्षण पूरा यही है कि जिसमें दुखदाई को प्रतिकार करने की समर्थ विद्यमान हो तो भी क्षमा करिके प्रतिकार कुछ न करने का स्वभाव जिसका होय॰ और पंचयज्ञ जो नित्य किये जाते हैं यह सबसे बड़ा धर्म्म गृहस्थी का प्रसिद्ध है तिससे पंचमहायज्ञ उनका नामहै पांचोंके जुदे नाम एक ब्रह्मयज्ञ जो ध्यान पाठआदि रूपोंसे होता है १ देवाग्नि यज्ञ जो देवपूजन ऋषितर्पण अग्नि होत्र आदि रूपों से कहाता है २ पितृयज्ञ जो नित्य श्राद्ध पितृतर्पण आदिरूपों से विख्यातहै३ नृयज्ञ जोअतिथि अभ्यागतके पूजन भोजनसे लेकर इष्टमित्र स्वाश्रित भृत्यवर्ग कुटुंबअनाथ

दीन दुखी आदिको सदन्नसे संतृप्त करने और स्वल्प भिक्षा देने पर्यंत अनेक रूपों से होताहै ४ भूतयज्ञ जो बलिवैश्वदेव रूपीकर्म से लेकर पशु पक्षी कुत्ता कागआदि चींटी पर्यंत जीवोंकोभी यथाशक्ति चूगादेना आदि रूपों से होता है ५॥ ०॥ मिताक्षराकार कहिते हैं कि यद्यपि ऐसे पुरुषको महापातक भी होजाने पर नहीं लगते कहे परन्तु केवल उसीपापका यह चर्चाहै जो दगा धोखेसे होगया हो इसीलिये अगिले वशिष्ठके वचनोंकोदेखो=यथा=वशिष्ठ ने=यदाऽकार्यशतंसाग्रंकृतंवेदश्चधार्यते।सर्वं तत्तस्यवेदाग्निर्दहत्यग्निरिवेन्धनम् (इति प्रकीर्णकाद्यभिप्रायेणाभिधायाभिहितं) नवेदबलमाश्रित्यपापकर्मरतिर्भवेत् अज्ञानाच्चप्रमादाच्च दह्यतेकर्मनेतरत्=अर्थात्-वशिष्ठजी ने=जब किसीने सौसेभी अधिक न करने योग्य कामकियेहों पर वह वेद की धारणाभी रखताहो तो उसका वह पाप सर्वथा वेद रूपी अग्नि जैसे ईंधन को जलादेतीहै अर्थात् पाप उसे लगने नहींपाता (यह प्रकीर्णक आदि तुच्छ पापों के अभिप्राय से दर्शाइके फिर अगिले वचन में कहा है कि) वेद पढे होने के बल को पाइकर इस नियम के सहारे से जानि बूझि पाप कर्मों में रति न करनी चाहिये क्योंकि वेद की अग्निसे केवल वही पाप जलि सक्ते हैं जो अज्ञानता से होजायँ या भूलमें होजायँ किन्तु इनसे इतर जानिबूझि किये पापोंको नहींजलाइसक्तीहै॥ ०॥ योगीश्वर के मूल श्लोक में यह तात्पर्य नहींहै कि उसको पाप नहींलगताहै तिससे निपट प्रायश्चित्त ही न करना होगा किन्तु यह तात्पर्य है कि थोड़ा प्रायश्चित्त करिके शुद्धहोसकैगो सो अगिले मूलश्लोक में देखो ॥ ३११ ॥

(ऊर्ध्वोक्तपुरुषस्य प्रायश्चित्तं)

वायुभक्षोदिवातिष्ठन्रात्रिंनीत्वाप्सुसूर्यदृक्। जप्त्वासहस्रंगायत्र्याःशुद्ध्येद्ब्रह्मवधादृते३१२

अर्थः—दिनमें वायु भक्षी रहिके रात्रिको जलमें बिताकर सूर्य देखनेपर गायत्री का सहस्र जपकरिके शुद्धहोय ब्रह्मवध से रहित=अर्थात्—वेदाभ्यासी पुरुष जिसका चर्चा ऊपरले मूलश्लोक में आयाथा उसी का यह छोटा प्रायश्चित्त है कि यद्यपि महापातक भी नहीं लगते कहेगये तो भी महापातकों में यह इतना अपवाद है कि एक ब्रह्महत्या के बिना कोई और महापातक भी जिसपर दैवयोग से बनिगया हो तिसको यह प्रायश्चित्त करना चाहिये कि—एक दिनभर वायुभक्षी अर्थात् कुछ न खाकर उपवासकिये बैठा रहिकर संध्यासमयसे जलमें जावैठै वहां वैठेहुये रात्रिको बिताकर सूर्यका उदय होआनेपर उनके दर्शन किये पीछे एकसहस्र गायत्रीका जप

करै उसी जल में बैठे रहिकर (या जिसको बैठे रहिने की शक्ति शेष न रही हो सो जलसे बाहर निकसि किनारे बैठि सूर्य के सन्मुख जपै) तौ यह सब तरहके महापातकसे भी छुटिजाता है पर एक ब्रह्महत्या से नहीं= जब कि इतना करने से महापातक एकबार का मिटिजाया तौ फिर उपपातक आदि छोटा पाप अनेकबारकिया मिटिजायगा और छोटेछोटे अनेक पाप जो एकहीबार इकट्ठे एकसाथहुयेहैं वेभी इतना करने से मिटि जायँगे यह समझि लेना॥ ३१२॥

३१२ अधिकोक्तिः=मिताक्षराकारस्तु= सावित्र्याःसहस्रंजपित्वा ब्रह्मवधव्यतिरिक्त सकलमहापातकादिपापजातान्मुच्यते अतश्च उपपातकादिष्वभ्यासेऽनेक दोषसमुच्चये वा वेदितव्यंविषम विषयसमीकरणस्यान्याय्यत्वात= अर्थइसकावही है जो अभी ऊपरलिखिचुके उसपर मिताक्षराकार कहितेहैं कि छोटे बड़े सभी पापों पर एक ही प्रायश्चित्त समझिलेने से सब छोटे बड़े बराबर ठहरजाते सो अन्याय ठहिरता तिससे वही व्यवस्था ठीक है जो लिखीगई=इस प्रायश्चित्त से ब्रह्महत्या नहीं छुटती है इसका यह तात्पर्य है कि ब्रह्महत्या अज्ञानता से होजाने पर भी ऐसे वेद के अभ्यासीकोभी वही प्रायश्चित्त करनाचाहिये जो ३०२ तीनसौ दो के मूल श्लोक से सबके लिये कहिचुके=और=रातिभर जलमें जो बैठना कहा या दूसरेदिन गायत्री का जाप जलमें बैठिके-तिसके मध्ये शीत देश या शीतकाल आदिकी व्यवस्था एक जुदीहै सो सब ७५ पचहत्तर के परिच्छेद में २९४ दो सौ चौरानबे मूल श्लोक से वर्णन होचुकी तहां देखो॥

(अथवाशिष्ठंविशेषप्रायश्चित्तं)

मिताक्षराकार ने यहां पर वशिष्ठ जी का कहा एक जुदा व्रत और भी प्रकाश किया है=यथा=यवानां प्रसृतिमञ्जलिं वायथ्यमाणां घृतचाभिसन्नयेत (यवोऽसि धान्यराजस्त्वंवारुणोमधुसंयुतः निर्णोदःसर्वपापानां पवित्रमृषिभिःस्मृतः) इत्यनेन-घृतं यवामधुयवाःपवित्रममृतंयवाः सर्वपुनंतुमेपापंवाङ्मनः कायसंभवं-इत्यनेनवा) अग्नि कार्यंनकुर्वीततेनभूतवलिंतया नाग्नेनभिक्षांनातिथ्यंनचोच्छिष्टंपरित्यजेत (येदेवामनोजाता मनोयुजःसुदक्षादक्षपितरः तेनःपांतुतेअवन्तुतेभ्योनमः तेभ्यः स्वाहा इत्यनेनात्मनिजुहुयात) त्रिरात्रमेवाभिहृदयेपापक्षयायत्रिरात्र सप्तरात्रब्रह्महत्यादिषु द्वादशरात्रंपतिततोत्पन्नश्च॥ इत्येतद्विगवलंयनेनान्यपिस्मृतिवचनानि विवेचनीयानि ति मिताक्षरा= अर्थात्-एक पसर भर अथवा एक अँजुरी भर जौ लेकर तपते हुये

घृत में छोड़िके (यवोसिवान्य आदि) अगिलेहोमन्त्रों से अभिमन्त्रित करै अर्थात् घी में जौ भुनते रहैं तब तक इन मन्त्रों को बारम्बार पढ़ता जाय पवित्र लकड़ी की समिध से चलाता जाय और घी के नीचे अग्नि भी हवनीय काष्ठकी जलावै जैसा ढाख आदि हवनीय प्रसिद्ध है और गायका घृतभी केवल इतने अनुमान से चढ़ावै जो भुनते हुये जवों में खिपि जाय बचै नहीं) दैव योग से कुछ बचि भी जाय तौ भी उस घृत से या जवों से न होम आदि अग्नि का संबंधी कोई काम करै न भूतबलि कर्म करै न अग्र न भिक्षा न आतिथ्य करै न आप इसमें से जूठनि छोड़े (अर्थात् भिक्षा देनी एक ग्रास मात्र कहाती है तथा चारि ग्रास भर देना अग्रदान कहाताहै सो कुछ न करै और आतिथ्य यह कहाताहै कि नवीन किसी अभ्यागतको आया देखि बैठारि के पेट भरि भोजन कराया जाता है सो भी उस घी जवों से न करै) तौ फिर क्याकरना चाहिये सो कहिते हैं कि (ये देवासनो जाता आदि स्वाहा पर्यंत मन्त्र पढ़ि पढ़ि के अपनेही आत्मा में होम करै) कबतक करै सो कहिते हैं कि बुद्धि बढ़ाने की कामना से पवित्र बुद्धि के लिये तीनि राति और प्रकीर्णक आदि छोटे उपपातकों का विनाश चाहि कर तीन रात्र और इनसे बड़े उपपातकों का क्षय करने के लिये सात रात्र पर्यन्त करै और ब्रह्महत्या आदि महा पातक याअति पातक या अनुपातक लगे हों तिनका क्षय करने के निमित्त पर बारह रात्र पर्यन्त करै और जो कोई पतित के वीर्यसे उत्पन्न दैवयोग से होगया कदाचित् वही वीर्य्य दोष को मिटा कर अपने शरीर का शुद्ध करना चाहै तौ बारह दिन वह भी करै= अपने ही आत्मा में होम करै परन्तु जूठनि भी न छोड़ै =यह तत्त्व पहले कहिचुके हैं तहां यद्यपि वशिष्ठजी ने कुछ विशेष ब्योरा नहीं खोला तथापि होम करने का डौल केवल यही देखिपरताहै कि एकएक जौ एक एकमंत्रपढिकर हलकमें छोड़ै तहां जितने जौएकदिनकेलिये भूनेगये उनमेंसे एकभी जौ न छोड़ै जो जूठनिमें गिनती होसकै—इसके सिवाय (घृतंयवा मधुयवा) इस मन्त्रके ध्वन्यर्थसे यहभीसिद्ध होता है कि जौ को भूनने के बाद सहतमें लपेटै तभी दूसरे मन्त्रको पढ़ै तिसके बाद तीसरे मन्त्रको पढि पढि मुंहमें छोड़ै और एक पसर या अँजुरीभर जौका विकल्प केवल आदमीके डीलडौल या पेटके अनुरूप समुझना कुछ पापोंकी छोटाई बड़ाईपर नहीं क्योंकि जितने दिनों का प्रायश्चित्त होय उतने दिनों तक इसी आहार से रहिकर व्रत करनेहोंगे॥०॥ विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार ने ३१२ तीनसौबारह के मूलश्लोक वाली टीकामें इस प्रायश्चित्त की स्थापना करी तिससे यह भी प्रतीत होता है कि

मूल श्लोकवाले प्रायश्चित्तसे जिस पुरुषको ब्रह्महत्या नहीं मिटती कहीगई तिसके लिये ३०२ तीनसौ दो के मूलश्लोकवाला प्रायश्चित्त बताया गया उसी पुरुषकेनिमित्त में अग्नोक्त बारह दिन का प्रायश्चित्त भी सूचित हुआ कि दोनोंमें जिस किसी के द्वारा अपनी शुद्धि होसकती ठीकठीक समझै तिस एक ही को विकल्प से साधै किन्तु दोनों को नहीं॥ ० ॥ विज्ञानेश्वर पीछे से कहिते हैं कि इसी मार्ग के अवलम्बसे और भी स्मृतियोंके वचन विवेचन करने चाहिये जो नवीन देखने में आवैं॥

इतिसकलरहस्यपापहरमंत्रहोमादीनांपरिच्छेदः ३१२

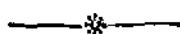
(इतिसर्वरहस्य प्रायश्चित्तानां प्रकरणं)

इस प्रकरण में समस्त ४ चारि परिच्छेद हैं अर्थात् ७८ अठत्तरि परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर यहां ८१ इक्यासी परिच्छेद के अन्त तक एकही प्रयोजनकेचार भेद जुदे किये गये हैं उन सब का प्रकरण एक है॥

विनियुक्तव्रतव्रातरूपभेदबुभुत्सिते कीदृशमितिसंक्षेपाल्लक्षणांवक्ष्यतेऽधुना (तत्र तावत्सकल प्रकाशरहस्यव्रतांगभूतधर्मानाह) अर्थात्–मिताक्षराकार कहिते हैं कि जिन व्रतोंका समूह जिन पापोंपर जुदा जुदा विनियुक्त किया गया तिनके रूपभेदों की चाहना होनेके समय यदि ऐसा सन्देह खड़ा होय कि अमुक नाम का व्रत कैसे होता है इसी लिये उन व्रतों के संक्षेप लक्षण अब आगे कहे जाते हैं सो अगिले परिच्छेदों में यथाक्रमसे देखो (तहां पहिले रहस्य और प्रकाश दोनों तरहके प्रायश्चित्तों में सर्वत्र उन व्रतों के अंग भूत धर्मों का स्वरूप दर्शाइ कर सान्तपन आदि व्रतों के स्वरूप कहे जायँगे॥

---*---

अथकृच्छ्रादिव्रतानांमध्ये–सांतपनकृच्छ्रस्यानेकभेद विधायकोऽयं परिच्छेदः द्व्यशीतितमः (८२)



इस परिच्छेद में–कृच्छ्र आदि व्रतों का एक भेद जो –सांतपन या सान्तपन कृच्छ्र इस नामसे कहाताहै तिसके स्वरूप भेद जाने जायँगे कि ऐसे ऐसे विधानों से जुदे नाम भेद भी होजातेहैं –तहाँ पहिले (३१३–३१४) इन्हीं दो श्लोकोंसे समस्त आद्योपांत प्रायश्चित्तोंके साधारण धर्म दर्शावेंगे जो प्रकाश तथा अप्रकाश दोनों तरहके प्रायश्चित्तों में कामआवें॥

(सकलप्रायश्चित्तव्रतांगधर्माः)

ब्रह्मचर्यंदयाक्षांतिर्दानंसत्यमकल्कता। अहिंसाऽस्तेयमाधुर्य्यंदमश्चेतियमाःस्मृताः ३१३

स्नानंमौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः। नियमागुरुशुश्रूषाशौचाक्रोधोऽप्रमादता ३१४

अर्थः–ब्रह्मचर्य॰ दया॰ क्षांति॰ दान॰ सत्य॰ अकल्कता॰ अहिंसा॰ अस्तेय॰ माधुर्य॰ दम॰ ये यम नामसे संयमरूपी धर्मकहे–और स्नान॰ मौन॰ उपवास॰ इज्या॰ स्वाध्याय॰ ॰ उपस्थनिग्रह॰ गुरुकीशुश्रूषा॰ शौच॰ अक्रोध॰ अप्रमाद॰ ये आवश्यक नियमरूपी धर्मकहे=अर्थात्–समस्त प्रायश्चित्त कांड में यहांतक जितने कुछ प्रायश्चित्तों के स्वरूप भेद चाहें प्रकाश पापों केहों या रहस्य पापोंके नियत कियेगये और विशेष लक्षण उनकेआगे कहेजायँगे तिन सबही व्रतोंके साथ इतने अबोक्त धर्मोंका होना परम आवश्यकहै क्योंकि इनके होने विना किसी भी कियेहुये व्रतकी संसिद्धि नहीं होतीहै–इनके बहुधा अर्थ तो सूधे स्पष्ट हैं तथापि–ब्रह्मचर्य सेशरीरकी सब इंद्रियों का संयम समुझना और उपस्थ लिंगेन्द्री सबके साथ में आगई तौभी इसका निग्रह जोतनाजुदाकहाराया सो यह गोवलीवर्द न्यायसे निर्देश कियाहै कि जैसे गोशब्दके उचारणमें गाय बैल सब समुझेगये तौभी बैलके निमित्त में विशेष नियम कहिने के अर्थसे उसका जुदा नाम बलीवर्दही लियाजाता है॰ अकल्कता कुटिलताका छोड़िदेना कहाताहै ॰दम कहिनेसे हाथ पैरआदि बाहरली इन्द्रियोंको चंचलता रोकना समुझा जाताहै॰माधुर्य कोमलवाणी बोलना॰अस्तेय चोरी न करना॰अप्रमाद उचित कर्मको उसके समय पर न भूलना॰बाकी सब सुगम हैं॥ ३१३॥३१४॥

३१३ अधिकोक्तिः=मिताक्षराकारः(यत्पुनर्मनुनोक्तं— अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवं चसमाचरेत्इति)तदप्येतेषामुपलक्षणानपरिगणनाय (अत्रचदयाक्षांत्यादीनांपुरुषार्थत याप्राप्तानामपिपुनर्विधानंप्रायश्चित्तांगत्वार्थं) क्वचिद्विशेषोप्यस्तियथा विवाहादि ष्वभ्यनुज्ञातस्याप्यनृत वचनस्यनिवृत्यर्थंसत्यवचनविधानम् पुत्रशिष्यादिकर्मपिताडनी यमपिनताडनीयमित्येवमर्थमहिंसाविधानमित्येवमादि=अर्थात्—मनुनेजोकहाहै कि— अहिंसा• सत्य• अक्रोध• आर्जव सरलता• आचरै) सो यह योगीश्वर केही गिनाये धर्म्मों का उपलक्षणहै कुछ इसलिये नहीं कि इनकी जुदी गणना करीजाय या ऊ- परलों के साथ मिला कर गिने जायँ (और योगीश्वर के दर्शाये गणमें दया क्षांति आदि कितनोंपर यह तर्कहै कि प्रायश्चित्ती पुरुष को पुरुषार्थत्व सेही समझे जाते थे कि ये लक्षण जो सभी सज्जनोंमें होतेहैं उसमें होनेचाहिये तथापि यहां जुदे ला- कर लिखनेसे यहतात्पर्यहै किअवश्यही प्रायश्चित्तोंका अंगभूतसमझेजायँ) और उन्हींमें विरलोंका जुदाभी कुछ तात्पर्यहै कि जैसे विवाह आदि विरले स्थलों पर असत्य बोलनेकी अनुज्ञा यद्यपि शास्त्रोक्तहै तहांभी प्रायश्चित्तीको असत्यनबोलना चाहिये इसलिये सत्य बोलने का नियम यहां दर्शाया गया तथा पुत्र शिष्य आदि को ताड़ना यद्यपि शास्त्रोक्त है तिनको भी प्रायश्चित्ती पुरुष न मारै इसीतात्पर्य्य के अर्थ से अहिंसा का नियम यहां जुदा भी दर्शाया गया• इत्यादि कुछ और भी विरलोंके जुदे तात्पर्य्य हैं तिससे इन दोनों श्लोकमें सब धर्म्मोंका इकट्ठा लिखना उचित ठहिरा ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

(सांतपनाख्यंव्रतं)

गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकम्। जग्ध्वापरेद्युरुपवसेत्कृच्छ्रंसांतपनंपरम् ३१५ ॥

अर्थः—गोमूत्र•गोवर गायका•दूध•दही•घृत येभी गायके•कुश भिजोकर उनका जल लेलेना• ये सब मिलेहुये खाकर दूसरेदिन कोरा उपवासकरै तो यह दोदिनका व्रत सांतपन कृच्छ्र नाम से परमउग्र है (पहिले दिनभी कुछ न खाकर गोमूत्र आदि मिली चीजोंका आहार करनाकहा तिससे दोनोंदिन व्रतही में गिनती हैं ॥ ३१५ ॥

३१५ अधिकोक्तिः—कितना गोमूत्र आदि लिया जाय यह परिमान आगे क- हेंगे=जबकि इन्हीं गोमूत्र आदि सब चीजों को इस रीतिसे कि पहिलेदिवस कोरा उपवास करै दूसरे दिन मन्त्र पढ़िकर इनको मिलावै और मन्त्रही पढ़िकर पीवै तबयही ब्रह्मकूर्च नामका व्रत होता है जैसा आगे पराशर का कथन देखो=यदाह

पराशरः=गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पिःकुशोदकम् निर्दिष्टंपंचगव्यंतु प्रत्येकंकायशोधनम् गोमूत्रंताम्रवर्णायाःश्वेतायाश्चापिगोमयम् पयःकांचनवर्णाया नीलायाश्च तथादधि घृतंचकृष्णावर्णायाःसर्वंकापिलमेवच अलाभेसर्ववर्णानांपंचगव्येष्वयंविधिः गोमूत्रेमाषकास्त्वष्टौ गोमयस्यतुषोडश क्षीरस्यद्वादशप्रोक्तादध्नस्तुदशकीर्तिताः गोमूत्रवत्घृतस्याष्टौतदर्धंतुकुशोदकम् पंचगव्यमृचापूतंहोमयेदग्निसंनिधौसप्तपत्राश्चये दर्भाअच्छिन्नाग्राःशुचित्विषः एतैरुद्धृत्यहोतव्यंपंचगव्यंयथाविधि इरावतीइदंविष्णुर्मानस्तोकेचशंवती एताभिश्चैवहोतव्यंहुतशेषंपिबेद्द्विजः प्रणवेनसमालोड्यप्रणवेनाभिमंत्र्यच प्रणवेनसमुद्धृत्यपिबेत्तत्प्रणवेनतु मध्यमेनपलाशस्यपद्मपत्रेण वा पिबेत् स्वर्णपत्रेणताम्रेणवाब्रह्मतीर्थेनवापुनः यत्त्वगस्थिगतंपापं देहेतिष्ठतिमानवे ब्रह्मकूर्चोपवासस्तुदहत्यग्निरिवेन्धनम्= अर्थात्—गाय का मूत्र गोबर दूध दही घृत कुशोदक मिलाकर पंचगव्य कहा गयाहै जिसकी प्रत्येक वस्तु जुदीजुदी कायाको शोधने वाली होती है॥ इन में गोमूत्र लाल गायका गोबर सुपेद का दूध सुनहरे वर्णवालीका दही नीली गायका घृत काली गाय का और सब चीजें कपिल वर्ण वाली कपिला कोभी होयँ जो ऐसी न मिल सकें तो सब रंगों वालीकी ये सब चीजें लेनी चाहिये यह तो पंचगव्यों की विधि सग्रह करने मध्ये कही॥ परिमान इस रीति से कि गोमूत्र आठ मासे भर गोबर सोरह मासे दूध बारह मासे दही दशमासे घृत भी गोमूत्र की बराबर आठ मासे कुशोदक सबकी तोलसे आधालेना यह ऐसा पंच गव्य बनाके ऋचा पढ़के पवित्र किया हुआ अग्नि के समीप होमे (किन्तु अग्नि के बीचमें नहीं) किस प्रकार से कि सात पत्रोंवाले कुश लेकर जिनकीनोक टूटी न हो जड़का बकला छुड़ाके शुद्ध कियेहोयँ तिनसे उठाकर पंचगव्य अग्रोक्तजैसी विधिहो तैसे अग्नि के समीप होमै किन्तु(इरावतीइदंविष्णुर•मानस्तोके•शंवती) इतनी ऋचाओं के पूरे पूरे पाठ से एक एक बार होमना चाहिये इस होम से जो बचेसो द्विजाती प्रायश्चित्ती पुरुष पीवै॥ इस रीति से कि प्रणव ओंकारसे घोलि के ओंकार सेही अभिमंत्रित करिके ओंकार हीसे उठाकर ओंकारही पढ़िकर पीवै॥ काहे से उठाकर पीवै सो कहिते हैं कि ढाख के तीन पत्तों में विचले पत्रसे उठाकर पीवै या पद्म के पत्तेसे या सोनेके पत्रसे या ताम्रके पात्र आचमनी आदि से अथवा कुछ न हो तो हथेली पर ब्रह्मतीर्थ के द्वारा पीवै॥ तो इस ब्रह्मकूर्च नामी उपवास के करने से वह सभी पाप जैसे अग्नि से ईंधन की तरह भस्म होजाता है जो कुछ मनुष्य के देह में खाल हाड़ों तक पहुँचि गयाहो॥ ० ॥ इसी पंचगव्य को जब तीन

दिन अभ्यास कियाजाय तिसको यति सांतपन संज्ञा होतीहै=तदाह शंख: (एतदेव त्र्यहाभ्यस्तंयतिसांतपनंस्मृतम्) यहीसब चीजोंसे मिलाहुआ पंचगव्यतीनदिनपिया हुआ यतिसांतपन कहाताहै॥०॥जाबाल मुनिने एकएक चीज रोज पीके सातवेंदिन कोराव्रतकरनेसेसप्ताहभरकासांतपनकहाहै=यथा=गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोद कमएकैकंप्रत्यहंपीत्वात्वहोरात्रमभोजनत्वकृच्छ्रं सांतपनंनामसर्वपापप्रणाशनम्=अ र्थात्–पंचगव्य और कुशाकुशोदक यथाक्रमसे हररोज एकएकचीजपीकेसातवेंदिन आठोंपहरकोरा उपवासकरैतौयहसातदिनकाकृच्छ्र सांतपनव्रतसभीपापोंकाविनाश करनेवालाहोताहै(प्रायःकृच्छ्र शब्दसेविशेषरा बहुधा व्रतोंमें इसलिये जोड़ेदेतेहैंकि इसकी कठिनाई समुझीजाय क्योंकि कृच्छ्रनामहै कष्टका॥ योगीश्वरने पहिलेदिन पंचगव्य दूसरेदिन कोराव्रत करनाकहिकर कृच्छ्रसांतपन उसकानामधरा१उसीको पराशर ने एकहीदिन विधिके साथ पंचगव्य पीना कहिकर ब्रह्मकूर्च उसका नाम धरा परंतु मिताक्षरा ने इसकेसाथ भी पहिलेदिन कोरा व्रत करना समुझाया तिस- से इसमेंभी दोही दिन ठहिरे २उसी पंचगव्य कोतीन दिनतक पीनाकहिकर शंखने यतिसांतपन उसका नाम धरा-३जाबालिने एकही एक चीज रोजपीना कहिकरसात दिनका कृच्छ्र सांतपन व्रतनाम धरा४इनचारों कृच्छ्रव्रतोंकाछोटापन बड़ापन प्राय- श्चित्ती पुरुषकी शक्ति और पापका गहिरापनआदि सोचिके व्यवस्थानियतकर- नी चाहिये जहांपर कृच्छ्र व्रतकरना कहागया हो–इसीप्रकारआगेभी अधिकोक्तों में एकही व्रतके अनेक भेदहोनेके स्थलोंपर व्यवस्था नियत करनीचाहिये॥३१५॥

(महासांतपन व्रतलक्षणं)

पृथक्सांतपनंद्रव्यैःषडहःसोपवासकः। सप्ताहेनतुकृच्छ्रोयंमहासांतपनःस्मृतः ३१६

अर्थः–एक उपवास सहित छःदिन जुदे गोमूत्रआदि चीजोंसे सान्तपन जोकिया जाय (अर्थात् गोमूत्र आदि एकही एक द्रव द्रव्य पीकर सातवेंदिन कोराव्रतकरै), तो यह सात दिनका कृच्छ्रव्रत महा सांतपन कहागयाहै (जैसा ऊपरलीअधिकोक्ति में जाबाल ने कहा था॥ ३१६॥

३१६ अधिकोक्ति=महासान्तपन कई भांति के होतेहैं उनमेंएक पन्द्रह दिनका= तदाहयमः= त्र्यहंपिबेत्तुगोमूत्रंत्र्यहंवैगोमयंपिबेत् त्र्यहंदधित्र्यहंक्षीरंत्र्यहंसर्पिस्ततः शुचिः महासांतपनंह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम्=अर्थात्–तीनदिन गोमूत्र पीवे तीन दिन गोबर पीवै तीन दिन दही तीन दिन दूध तीन दिन घी पीवै तिससे शुद्ध हो जायगा

यह महा सान्तपन नाम का व्रत सर्व पापों का विनाश करने वालाहै ॥ ० ॥ इक्कीस दिनका भी महासान्तपन होताहै=तदाह जावाल:=यणाणामेकैकमेतेषांत्रिरात्रमुपयो जयेत्, त्र्यहंचोपवसेदंत्यंमहासान्तपनंविदु:=अर्थात्— इन गोमूत्र आदि छः चीजों में एकएक को तीन तीनदिन पीवै तिसके छोतिया अठारह और पीछेसे तीनदिन कोरा उपवास करै तो यह २१ दिन का महासान्तपन कहिते हैं ॥ ० ॥ गोमूत्र आदि सांतपन की सब चीजों में एक एकको दो दो दिन पीनेसे बारह दिनका भी सान्तपन होता सो अति सांतपन कहाता है=तदप्याहयम:=एतान्येवतथापेयादेकैकन्तुद्व्यहंद्व्यहम् अतिसांतपनंनाम श्वपाकमपिशोधयेत् (श्वपाकमपिशोधयेदित्यर्थवाद: =अर्थात्—,इन्हीं कुशोदक पर्यंत छः चीजों को एक एक जुदीजुदी दोदो दिन पीवै तौयह अतिसान्तपन नाम कहावै चाण्डाल को भी शुद्ध करै (सो यह अर्थवादरूपी एक प्रशंसा है कि चाण्डाल से संसर्ग जिसका होजाय ऐसे द्विजाती को शुद्ध कर सक्ताहै ॥ ३१६ ॥,यहां भी महासान्तपन के छोटे बड़े जितने भेद हुयेहैं तिनको वही व्यवस्था है जो ऊपर की अविकोक्ति में आचुकी ॥ ३१६ ॥

अथपर्णकृच्छ्र·पादकृच्छ्र·तप्तकृच्छ्राद्यानां कृच्छ्र व्रतभेदानां विशेषत:स्वरूप विधायकोऽयं परिच्छेद: त्र्यशीतितम:(८३)

—•—

इस परिच्छेदमें अनेक कृच्छ्रोंकेस्वरूप और नाम भेद जाने जायेंगे• तिनमें प्रथम पर्ण कृच्छ्र आदि जो पत्ता या फलफूल आदि से होतेहैं• फिर पादकृच्छ्र आदि जो कईतरहके व्रत मिलिकार एकपाद माना जाताहै उसीके प्रसंगमें दिवाभोजीव्रत नक्त भोजी व्रत अयाचित भोजी व्रतभी कहे जायेंगे• फिर कृच्छ्रार्ध आवाकृच्छ्रभी •फिर पादोनपौनकृच्छ्रभीदर्शावेंगे•फिरतप्तकृच्छ्र शीतकृच्छ्रआदिभीअनेकरूपसेदर्शावेंगे॥

(पर्णकृच्छ्रव्रतलक्षणं)

पर्णोदुंबरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकै: । प्रत्येकंप्रत्यहंपीते·पर्णकृच्छ्रउदाहृत: ३१७

अर्थ·—पर्ण (ढाख• गूलर• कमल• बेल• कुश• इन पांचों के पत्तों का जल निचोड़िके यथाक्रमसे एकएक दिन एकएक जलको हररोजपीवै तो यह पांच दिन का व्रत पर्णकृच्छ्र नाम कहाहै ॥ ३१७ ॥

३१७ अधिकोक्तिः=पर्णकृच्छ्रके अनेकभेदहैं जहां इनपत्तोंको मिलाकर क्वाथ बनाया हुआ तीनरात्रि कोराव्रत करने के बादि पियाजाय तहाँ पर्णकूर्च नामहोता है=तदप्याहयमः=एतान्येवसमस्तानित्रिरात्रोपोषितःशुचिःक्वाथयित्वापिवेदद्भिःपर्णकूर्चोऽभिधीयते=अर्थात्– येही सब चीजें जलसे क्वाथ करिके तीनरात्रि व्रत किये पीछे शरीरसे शुद्धहोकर पीवै तौ यह चारिदिनका पर्णकूर्च कहाता है॥०॥ जहाँ बेल आदिके फलों मे प्रत्येक जुदे फलको या सबको मिलाकर क्वाथ बनाया हुआ पियाजाय तहाँ फल कृच्छ्र कहाता है इसी तरह फूल आदि पिये जायँ तहां उन्हीं केनामसे कृच्छ्र कहातेहैं यहसब आगे मार्कंडेय के वचनों में देखो=यथाह मार्कण्डेयः=फलैर्मासेनकथितःफलकृच्छ्रोमनीषिभिः श्रीकृच्छ्रःश्रीफलैःप्रोक्तःपद्माक्षैरपरस्तथा मासेनामलकैरेवंश्रीकृच्छ्रमपरंस्मृतम् पत्रैर्मतःपत्रकृच्छ्रःपुष्पैस्तत्कृच्छ्रउच्यते मूलकृच्छ्रःस्मृतोमूलैस्तोयकृच्छ्रोजलेनतु=अर्थात्–उक्त वृक्षोंके फलोंसे क्वाथ किया एक मास पीना बुद्धिमानों ने फल कृच्छ्रनाम व्रत कहाहै तथा केवल बेलके फलोंसे श्रीकृच्छ्रनाम कहाहै तथा कमलगट्टाओंसे पद्मकृच्छ्र इत्यादि और इसी तरह एक मास आमलकों से भी दूसरा श्रीकृच्छ्र नाम होताहै जो पत्तों से कियाजाय सो पत्रकृच्छ्र नाम कहाता है पुष्पों से पुष्पकृच्छ्रनाम होता है मूलजड़ों से किया जाय सो मूल कृच्छ्र कहा जाता है जो केवल जल से किया जाय सो जलकृच्छ्र तोयकृच्छ्र कहा जाताहै॥ ३१७॥

(तप्तकृच्छ्रव्रतलक्षणं)

तप्तक्षीरघृतांबूनामेकैकंप्रत्यहंपिबेत्॥एकरात्रोपवासश्चतप्तकृच्छ्रउदाहृतः ३१८॥

अर्थः–गरमदूध घृत जल इनमें एक एकको एक एकदिन तपाइके पीवै तिसपीछे एकदिन रातिका उपवासभी कोरा करै तौ यह चारदिन में तप्तकृच्छ्रव्रत होता कहा (इसको महातप्त कृच्छ्र भी कहिते हैं॥ ३१८॥

३१८ अधिकोक्तिः=तप्तकृच्छ्र भी अनेक भाँतिसे होताहै॰यथा (एभिरेवसमस्तैः सोपवासैर्द्विरात्रसंपाद्यःसांतपनवत् तप्तकृच्छ्रःइतिमिताक्षरा) अर्थात्–इन्हीं गरम दूध आदि सब चीजोंको इकट्ठी एकदिन पीकर दूसरे दिन कोराव्रत करनेसे दोदिन में यह भी सांतपन की तरह तप्तकृच्छ्र कहलाता है यह मिताक्षराकारने कहा इसी लिये उन्होंने चारदिनके व्रतपर मूलके अर्थमें महातप्तकृच्छ्र नामकहा जो मूलश्लोक में नहीं है॥ ०॥ बारह दिन का भी तप्तकृच्छ्र होता है=तदाहमनुः=तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलान् प्रतित्र्यहंपिबेदुष्णान्सकृत्स्नायीसमाहितः=अर्थात्–तप्त

कृच्छ्रकोआचरतेहुये ब्राह्मण जल दूध घृत पवन इनमें एकएकको तीनतीनदिनगरम गरम पीवें और चित्तको सावधान रखकर एकहीवार स्नान कियाकरै तो यह बारहदिनका तप्तकृच्छ्र होताहै ॥ ० ॥पंचगव्य की चीजें जहां-जहां दूध आदि एकही दो पीवनी कही गई तहां सर्वत्रकितने परिमाणतक पीवनीचाहिये सो सब अगिली व्यवस्था में देखो=यथाहपराशरः=अपांपिबेत्तुत्रिपलंद्विपलंतुपयःपिबेत्पलमेकंपिबेत्सर्पिस्त्रिरात्रंचोष्णमारुतम (त्रिरात्रंचोष्णमारुतमिति त्रिरात्रस्यपूर्णा उष्णोदकंवाल्पं पिबेदित्यर्थ इतिमिताक्षरा=अर्थात्–जलपीकेव्रतकरना लिखाहो तहां तीनपलपीवे और दूध लिखाहोतहां दोपलपीवै जहां घृत लिखाहो तहां एकपल पीवै और गरम हवा·तीनरात्रि (मिताक्षराकार कहिते हैं कि तीनरात्रि गरम हवा कहिने का यह तात्पर्य है कि त्रिरात्र व्रतके पूर्णहोने पर थोड़ा सा गरम जलही विकल्प से पीवे) सो यह ऐसे स्थल का चर्चा है जिस किसी व्रत में उष्णमारुत पीना कहा हो ॥०॥ जहां ठंढादूध आदि पियाजाय तहां शीतकृच्छ्रनाम होताहै=यथा=त्र्यहंशीतंपिबेत्तोयंत्र्यहंशीतंपयःपिबेत् त्र्यहंशीतंघृतंपीत्वावायुभक्षःपरंत्र्यहम=अर्थात्–ठंढा जल तीन दिनपीवै फिर तीनदिन ठंढा दूध पीवै फिर तीनदिन ठंढा घृत पीके पीछेसे तीन दिन केवलवायुभक्षणकरै औरकुछनहीं तौयह बारहदिनका शीतकृच्छ्रकहाताहै॥३१८॥

(पादकृच्छ्रचर्चा)

एकभक्तेननक्तेनतथैवायाचितेनच । उपवासेनचैवायंपादकृच्छ्रःप्रकीर्तितः ३१९

अर्थः–एकभक्तसे नक्तसे तथैव अयाचित से भी उपवासकरनेसेभी यह पादकृच्छ्र कहाहै=अर्थात्–ये चारों व्रत मिलिके चारदिनमें एक पाद कृच्छ्र व्रत कहाता है= और एक भक्तकेनामसे दिवसमें थोड़ासा रूखासूखा भोजन घी दूध आदिको छोड़ि के समझना और नक्त के नाम से नक्तव्रत समझना जिसमें सिर्फ रात्तिही को स्वल्प भोजनकिया जाता है और अयाचित व्रत इस ढंगसे होताहै कि न किसी से मांगे न किसीको समस्या करै यदि स्वतः कोई चाहै कईदिन बीतिजानेपर भोजनकी वस्तु आगे लाधरै तभी थोड़ासा खाइके बचा हुआ किसी जीवको देदेवे पास न रक्खे फिर इसी प्रकार जिस दिन कोई बिना मांगे लाकर आगे धरै इसी दिन थोड़ासा खाइ यदि कोई कुछ नलावै तौ निपट कोरे व्रत करता रहे तिसका नाम अयाचित व्रत कहाताहै और चौथा रूप उपवास कहा सोभी कई प्रकारके उपवास होतेहैं इन सब चारों के विशेष ब्योरे अविकोक्ति में देखो ॥ ३१९ ॥

३१९ अधिकोक्तिः—एकभक्तेन॰यह मूल श्लोक में देखो तिसके लिये एकभक्त व्रत का लक्षण यहां देखो (दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यतेनियमेनयत् एकभक्तमितिप्रोक्तंरात्रौतन्नकदाचन) अर्थात् दिन का आधा दोपहर बीति जाने पर जो नियम से थोड़ा भोजन किया जाय वही एक भक्त व्रत कहाता है परन्तु रात्रि में कदापि न करै न दूसरी बार दिनमें करै परन्तु नियत समयपर थोड़े से रूखे भोजनका निपट त्याग भी न करै इसका नियम यही है॥ (एतच्चकृच्छ्रादीनांव्रतरूपत्वात् पुरुषार्थ भोजनपर्युदासेन कृच्छ्रांगभूतं भोजनंविधीयते—तथा चापस्तंबः—त्र्यहमनक्ताश्यदिवाशीततस्त्र्यहमयाचितव्रतः इतिमिताक्षरा=अर्थात्— रूखा भोजन दर्शाने के निमित्त पर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यद्यपि भोजन करना एक बार कहा परन्तु घी दूध आदि पुष्टाईका भोजन करना यहां निषिद्धहै क्योंकि कृच्छ्र आदि व्रतोंकारूप एक यह भी पाद कृच्छ्र है तिससे वही भोजन सूचित किया है जिससे शरीर दुर्बल बना रहै—जैसा आपस्तम्ब के इस वचन से भी तात्पर्य मिलता है कि—तीनदिन अनक्ताशी जो रात्रि में न खाय फिर तीन दिन अदिवाशी जो दिनमें नखाय तिसपीछे तीन दिन अयाचित व्रत करै कि जो कुछ विना मांगे सन्मुख आजाय तो थोड़ा सा खाय यदि नहीं आवे तो नहीं) यह वचन आपस्तंब का यहांपर केवल दृष्टान्तके लिये प्रासंगिक रीति से मिताक्षरा कारने लिखाहै यह याद रखना॰ इसी प्रकार गौतम का वचन आगे प्रासंगिक दर्शाते हैं—यथा (गौतमेनापीदमेवस्पष्टीकृतं—हविष्यंप्रातराशी भुक्त्वातिस्रोरात्रीर्नाश्नीयादिति॰ एवंनक्तभोजनविधावपि=अर्थात्—मिताक्षरा कार कहिते हैं कि गौतमने भी यही रूखा भोजन दर्शाया है यह कहिकर कि—प्रातराशी जो दिनमें भोजन करनेका व्रत रखता होय सो हविष्य नाम घी दूध आदि एकही बार दैवयोगसे यदि खाइ तिसको खाकर तीन रात्रि तक निपट कुछ न खाय यह इसका एक जुदा प्रायश्चित्त समझना॰ इसी प्रकार रात्रि की भोजन विधि में भी समझि लेना तिससे सिर्फ रूखे भोजन की आज्ञा है चिकनाई आदि नहीं यह सब (एकभक्तेन) इन्हीं पांच अक्षरोंकी व्यवस्था सिद्धहुई॥ ०॥ नक्तेन॰ यह मूलश्लोक में देखो नक्त व्रतका जुदा विधान है सो यहां देखो=यथा= हविष्य भोजनस्नानं सत्यमाहारलाघवम् अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजीषडाचरेत्॥ नक्तन्निशायांकुर्वीत गृहस्थोविधिसंयुतः यतिश्चविधवाचैव कुर्यात्तत्सदिवाकरम् सदिवाकरनास्नाचे दतिमेघटिकाद्वये निशानक्तंतुविज्ञेय यामार्द्धप्रथमेसदा—तथा—दिवसस्याष्टमेभागे मन्दीभूतेदिवाकरे नक्तंतद्विजानीया न्ननक्तंनिशिभोजनम्

नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थेतुविधीयते यतेर्दिनाष्टमेभागे रात्रौतस्यनिषेधनात्=अन्यच माहात्म्यकारणांयथा= देवैस्तुभुक्तंपूर्वाह्ने मध्याह्नेऋषिभिस्तथा पराह्णेपितृभिर्भुक्तंसंध्यायांगुह्यकादिभिः सर्ववेलामतिक्रम्य नक्तेभुक्तमभोजनम्=अर्थात्-नक्तभोजी जो केवल रात्रिमें भोजन का नियम राखै सो इन छः बातों का आचरण करै कि स्नान १ सत्यबोलना २ हविष्य भोजन अर्थात् पवित्र अन्न का भोजन जैसे जो धान मूंग आदि देवान्न कहातेहैं किन्तु यहांपर हविष्य कहिनेसे घीदूध खीरि पूरी मेवा आदि मत समझि लेना जो हवन में काम आते हैं ३ आहारलाघव थोड़े भोजन का स्वभाव ४ अग्नि में भी उसी अन्न की आहुतें देना भोजन के समय पर पहिलें और इसी लिये इस भोजन को अलूनारखना चाहिये५धरतीपर शयनकरनाहै॥ गृहस्थी पुरुष इन्हीं छः नियमों के साथ नक्त नाम के व्रत को रात्रि में साधै परन्तु यती सन्यासी और विधवा स्त्रियांभी उसी नक्तव्रतकोसदिवाकर लक्षणकेसाथसाधैं यदि किसीको सदिवाकर नामसे करना होय तो वह दिनके अन्तमें दोघड़ी दिन शेषरहे परकरै और जिन गृहस्थी लोगोंको निशानक्त करना कहिचुके तिनको दिनमें नहीं किन्तु सदाही रात्रि में पहिले पहरके अर्ध भीतर चारघड़ी राति गये तक जानना-तैसाही दूसरा यह प्रमाण है कि-दिनके आठवें भागमें सूर्य मन्दहोनेपर जो भोजन कियाजाय उसको भी नक्तव्रत जानें किन्तु केवल उसीको न जानें जो रात्रिमें भोजन करना कहा क्योंकि गृहस्थ धर्मके नक्तव्रत मध्ये तो नखत उगि आनेपर नक्षत्रोंका दर्शनकिये पीछे भोजन कहाहै और यतीके नक्तव्रतपर दिनके आठवें भागमें भोजन करना सिद्ध किया गया क्योंकि यतीको उसके सन्यासधर्म से राति में भोजन का पूरा पूरा निषेधहै तिससे वह सदिवाकर नक्तव्रत साधै और यतीके समान विधवाको भी समझना किन्तु उसको भी रात्रिमें भोजनका निषेधहै=इस नक्त भोजनका महात्म जिनकारणों से अधिकहै सोभी समझो=दिनमानकी तीनतिहाई संध्याकालको छोड़िके समझनी-तहाँ पूर्वाह्ण की पहिलीतिहाई में देवता भोजन करते हैं उनके साथमें न खाना चाहिये- दूसरी तिहाई मध्याह्न में ऋषीभोजन करते हैं उनका भी अदब रखनाचाहिये-तीसरी पराह्णकीतिहाईमें पितर भोजन करते हैं उनकेसाथ न खाना- चौथे निपट संध्याकाल में गुह्यक आदि भोजन करते हैं उनके भी समयपर व्यतिक्रम न करना चाहिये तिससे सभी वेलाओंको उलाँघिके रात्रिमें भोजन करना ठहराया॥ ० ॥ अयाचितेन-यह मूलश्लोक में देखो बिना मांगे भोजनसे व्रतकरना कहा तिसको ब्योरेवार व्यवस्था यहाँ समझो कोई साकाल उसके लिये नहीं

बताया कि अमुक समय भोजन करें तिससे दिनमें या रातिमें जिस किसी बेराविना मांगा भोजन आपही आजाय तभी केवल एकहीवार थोडासा प्राणाधारणमात्रभोगै किन्तु वारम्बार नहीं और पेट भरके भी न खाय क्योंकि सभी कृच्छ्रव्रतों में तप करनेकी प्रधानता है तिससे दुबारा या पेटभर खाना सिद्ध नहीं होता—और—यह भी तात्पर्य नहींहै कि गैरही से न मांगै किन्तु अपने भी सेवक भार्या आदिसे मांगनेका निषेध है बल्कि इसीलिये अपने संबंधीसे इसकाभेद भी न कहिना चाहिये कि मैंने अयाचित व्रत धारण कियाहै क्योंकि ऐसा जानिके अपने संबंधी भार्या आदि शीघ्रतासे अवश्यही लेकर दौड़ेंगे और बहुतसी विनती भी करें तो कुछ अचम्भा नहींहै तिससे उसव्रतका स्वरूप भंगहोजाना सम्भवहै और यहभी तात्पर्य नहींहै कि निपट अपनोंका दिया भोजन करनाही नहीं किन्तु यह तात्पर्य है कि दिनको बिताऊ समभि या व्रतका अभिप्राय स्वतः जानिपानेपर भार्या आदि आपही विनामांगे यदि भोजन पहुंचावें तो फिर थोड़ासा भोगना उचित है परन्तु यदि अपने या बिराने भी नहीं कोईलावें तहां एकदोदिनका कोराव्रत करने में धैर्यराखे फिर अवश्यही कोई लावेगा संदेह इसमें नहींहै—बल्कि इसी अभिप्राय से गौतम ने यह कहाहै कि (अथापरंत्र्यहंनकंचनयाचेत) इसके अनन्तर तीनदिन किसी पर याचना न करै॥०॥ ये सब तीनप्रकार के भोजन कोई दिनमें कोई रातिमें कोई विनामांगे चाहैं तब आने पर खाने कहे यद्यपि यह कहचुके हैं कि थोड़ा भोजनकरै तथापि थोड़ेका परिमान कुछ नहीं समुझागया तिससे अगिली पराशरकी व्यवस्था देखो=यथाह पराशरः= सायंतुद्वादशग्रासाःप्रातःपंचदशस्मृताः चतुर्विंशतिरायाच्याःपरंनिरशनंस्मृतम्=अर्थात्—जिसको संध्यासे रात्रितक भोजन करनापरै सो बारहग्रास भोगै जिसको एकभक्त नामके व्रतमें प्रातःकाल से लेकर दिनमें किसी वेरा भोजनका नियम होय तिसको पन्द्रहग्रास भोगने चाहिये जिसको अयाचित भोजन चाहै किसीवेरा करनाहोय सो चौबीसकौर भोगै तो यह तीनों विधिका भोजन भी परम निराहार व्रत कहाता है= आपस्तंबने=इन्हीं ग्रासोंका परिमान और तरहसे कहाहै • यथा=सायंद्वाविंशतिग्रासाःप्रातःषड्विंशतिस्मृताः चतुर्विंशतिरायाच्याः परंनिरशनाख्यं कुक्कुटाण्डप्रमाणास्तु यथावाऽऽस्यंविशेत्सुखम्=अर्थात्—सायंकाल के भोजन वाला बाईसग्रास भोगै प्रातःकालिक भोजनवाला छब्बीसकौर भोगै अयाचित भोजनवाला चौबीस कवल भोगै तो ये तीनों व्रत परम निराहार में गिनती हैं और कवल या ग्रास उसका नाम है कि मुर्गाके अंडे बराबर अन्न अथवा जिस किसी के मुहमें जितना अन्न एकबार

अथ प्राजापत्य कृच्छ्रादीनां बहुभेदानांस्वरूपनामलक्षण भेदविधायकोऽयं परिच्छेदःचतुरशीतितमः (८४)

—※—

इसपरिच्छेद में प्राजापत्य कृच्छ्र इस नाम को आदि लेकर अनेक भांतिके कृच्छ्रों का रूप नाम लक्षण पहिँचानि जाने जायँगे– तिनमें सबसे प्रथम प्राजापत्यही के लक्षण भेद (उनके बीच में शिशुकृच्छ्र भी) फिर अतिकृच्छ्रके लक्षण भेद• फिर कृच्छ्रातिकृच्छ्र के लक्षण भेद•फिर पराक नामकृच्छ्र• फिर सौम्यकृच्छ्र•फिर तुलापुरुषनाम कृच्छ्र•सबइसी क्रमसे कहेजायँगे॥

(प्राजापत्य कृच्छ्रस्य लक्षणं)

यथाकथंचित्त्रिगुणःप्राजापत्योऽयमुच्यते ३२० (पूर्वार्धार्थं)

अर्थः–जैसे हो किसी भांति प्रयत्नसे तिगुना व्रत यही प्राजापत्य कहाजाता है= अर्थात्–यहीव्रत पादकृच्छ्र वाला जोपहिले कहिचुके (३१९मूलश्लोकसे देखो) सो जैसेचाहो तैसे किसी प्रकारके प्रयत्नरूपी विधानसे तिगुनाकरो वही प्राजापत्य कहावै(जैसे चाहो तैसे किसी प्रकारसेकरो• इसकथनका यहतात्पर्य है कि तिगुना कई प्रकारों से होता है उनमें से कोईसा एक प्रकार जिसको तुम अपनी इच्छा से मनोज्ञ जानो उसीके योग्य जतन जैसा होता हो तिसके द्वारा तिगुना करो) सोइस गोल मोलबात का ब्यौरा बहुत लम्बा है अधिकोक्ति में॥ ३२०॥

३२० अधिकोक्तिः= तीनसौ उन्नीस ३१९ मूल श्लोक में जिस रीति से चार दिन का पाद कृच्छ्र व्रत समझाइ चुके उसी को तिगुना करि बारह दिनका पूरा प्राजापत्य कहा तिगुना करने के भी कई ढंग हैं तिनका ब्यौरा मिताक्षराकार यहां समझाते हैं कि (अयमेवपादकृच्छ्रःयथाकथंचित् दण्डकालितवदावृत्त्यास्वस्थानवि वृद्ध्यावा तत्राप्यानुलोम्येन प्रातिलोम्येनवा तथावश्यमाणजपादियुक्तंतद्रहितंवा त्रि• रभ्यस्तः प्राजापत्यविधीयते) अर्थात् यही पूर्वोक्त पादकृच्छ्र दण्ड कालित न्याय की तरह आवृत्तियां बढ़ाकर अथवा अपने अपने स्थान ही की वृद्धि से तिनमेंभी अनुलोम सूधे क्रम से या प्रतिलोम उलटे क्रम से वृद्धिकरें ये दो भेद औरहैं तथैव जो आगे कहा चाहते हैं सो जपादिक भी साथहों या उनके विनाभी तीनवार अभ्यास

कियाहुआ पूरा प्राजापत्य कहाता है) इतने भेदोंमें कोईसा एक भेद करनेवाले के विचार वाली इच्छा पर आरूढ है सो इन भेदों के ठीकठीक लक्षण भी यथा क्रम से आगे जुदे जुदे ग्रन्थों के प्रमाण से दर्शाते हैं=तिनमें एक दंड कालित की तरह वाले पक्ष को वशिष्ठ ने प्रकाश किया है=यथा=अहःप्रातरहर्नक्त महरेकमयाचित म् अहःपराकंतत्रैकमेवंचतुरहौपरौ अनुग्रहार्थंविप्राणांमनुर्धर्मभृतांवरः बालवृद्धातुरे ष्वेवंशिशुकृच्छ्रमुवाचह=अर्थात्–एक रोज दिन के भोजन वाला व्रत एक रोज राति में भोजन वाला एक रोज, बिना मांगे भोजन का चौथे रोज निपट निराहार व्रत करिके फिर इसीप्रकार चार चार दिनों के दो फेर पिछले जानों अर्थात् पांचवें दिन से वही एक एक रोज वाला क्रम साधें फिर नवमे रोज से उसी प्रकार साधें तो यह बारह दिन में शिशु कृच्छ्र नाम का प्राजापत्य पूरा होता है जो धर्मज्ञ मनुने ब्राह्मणों पर अनुग्रह के लिये और बालक बूढ़े आतुरों के निमित्त पर कहा था (यहां इतना भेद जुदा समुझे रहिना कि बालक बूढ़े रोगियों के लिये शिशुकृच्छ्र कहा सो केवल चार दिन में होगा इसी को तिगुना करने से प्राजापत्य नाम सुवेक्रम से स्वस्थान की वृद्धिवाला पक्ष भी मनुने आपही प्रकाश किया है= यथा=त्र्यहंप्रातस्त्र्यहंसायं त्र्यहमद्यादयाचितम् परंत्र्यहंचनाश्नीयात्प्राजापत्यंचरेत् द्विजः=अर्थात्–निरन्तर तीन रोज तक दिन में भोजन फिर तीन दिन राति में भोजन वाला नक्त व्रत करिके तीन दिन अयाचित बिना मांगे भोजन का व्रत करें फिर सब से पीछे तीन दिन कोरा निराहार करें तो भी यह बारह दिन का प्राजापत्य होगा॥ इसीको उलटे क्रमसे प्रातिलोम्यावृत्तिके नामसे वशिष्ठने प्रकाशकिया है=यथा=प्रातिलोम्यंचरेद्विप्रःकृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम्=अर्थात्–ब्राह्मण इसीप्राजापत्यकृच्छ्रको उलटे क्रमसे आचरें चान्द्रायण करनेकेबाद अर्थात् पहिले चांद्रायण करें फिर इस प्राजापत्य को उलटे मार्गसे साधे किन्तु पिछले कोरे निराहार वाले तीनि व्रतोंको सबसे पहिले फिर अयाचित व्रतोंको फिर नक्तव्रतोंको फिर दिन के भोजनवालोंको यही उलटा क्रमठहिरा॥ जपादिकोंकेबिना केवल कृच्छ्रही करना जो ऊपर चर्चा करचुकेहैं तिसका पक्ष अंगिराने स्त्री और शूद्र आदि के निमित्त में प्रकाशकियाहै=यथा=तस्माच्छूद्रंसमासाद्यसदाधर्म्मपथेस्थितम् प्रायश्चित्तंप्रदातव्यं जपहोमादिवर्जितम्=अर्थात्–पूर्वोक्त कारणसेसदा निर्विकल्प यहीनियमहै कि प्रायश्चित्त करनेकी इच्छासे धर्मके पन्थ पर आरूढ हुये शूद्रको पाइकर जप होम आदिसबवालेविधानोंकोछोड़िकेप्रायश्चित्तबतानाचाहिये–॥अनजपादिनियमाः–

सुखपूर्वकजासके (इनदोनों आपस्तंब तथा पराशरके कहे कल्पों में जो कुछ थोड़े बहुतका अन्तर है तिसको मनुष्य की देहशक्ति या पेटकी बड़ाई छोटाईपर भेद करिके जोड़िलेना तिससे विरोध बाकी न रहेगा ॥०॥ प्राजापत्य नामका व्रत भी कृच्छ्र कहाताहै तिससे यहांकृच्छ्रपादके प्रसंगमें उसकाभी चर्चाकरना आवश्यक ठहरा• किन्तु आपस्तंबहीने प्राजापत्य प्रायश्चित्तको चारतरहविभागकरिकेउन्हींको चारि ४पाद कृच्छ्र कहिकर चारोवर्णोके अनुरूपव्यवस्था करी है=तथाचआपस्तंबः=त्र्यहं निरशनंपादःपादश्चायाचितस्त्र्यहम सायंत्र्यहतथापादःपादःप्रातस्तथात्र्यहम॥ प्रातः पादंचरेच्छूद्रःसायंवैश्यस्यपादयेत अयाचितंतुराजन्येत्रिरात्रंब्राह्मणोस्मृतम=अर्थात—प्राजापत्यकृच्छ्रका एकपाद वह समझना जो सिर्फ तीनदिन निराहार व्रत किया जाय•फिरएकपाद वह समझना जोतीनदिन अयाचित भोजनसे व्रत कियाजाय•फिर एकपादउसे समझना जोसायंकाल आदि नक्तभोजनतीनदिनकियाजाय फिरएकपाद वह समझना जो तीनदिन प्रातर्भोजन अर्थात जिसको एक भक्त के नामसे कहिचुके तैसा व्रत तीनदिन किया जाय• ये सभी बारह दिनके व्रत निरन्तर एकसाथ किये जायँ तहां पूरा प्राजापत्य या पूराकृच्छ्र कहाताहै॥ इन चारों जुदे पादोंको वर्णों पर इस तरह बांटि दियाहै कि शूद्र प्रातःपाद व्रतको करै और सायंपाद व्रतको वैश्य करै और अयाचित पाद कृच्छ्र को क्षत्री करै और कोरे निराहार वाले तीन व्रतका कृच्छ्रपाद ब्राह्मण को करना चाहिये॥ जब इनमेंसे कोरे निराहार और अयाचित वाले दोनों पाद मिलाकर छै दिनका व्रत एक साथ कियाजाय तब आधाकृच्छ्र होताहै जब संध्याके भोजन वाला पाद छोड़ि शेष तीनो पाद एकसाथ नौ दिनमें सावन किये जायँ तहां पौन कृच्छ्र कहाता है क्योंकि (सायंप्रातर्विनार्धंस्यात्पादोनंनक्तवर्जितमितितेनैवोक्त) उन्हीं आपस्तंबने पीछे से कहिदिया है कि सांझ और सकारे वाले भोजनके दोपादोंको छोड़िके शेष दो पादों का अनुष्ठान किया जाय तिस को आधा कृच्छ्र जानना • जहां नक्त भोजनवाले पादके विना तीनों कियेजायँ तहां पौन प्राजापत्य जानना=उन्हीं आपस्तम्बने=आधे कृच्छ्रका दूसराभी प्रकार दर्शायाहै=यथा=सायंप्रातस्तथैकैकं दिनद्वयमयाचितम दिनद्वयंनचाश्नीयात कृच्छ्रार्धः सोऽभिधीयते=अर्थात—एक दिन रात्रि भोजनका व्रत करै दूसरे रोज दिन के भोजन वाला व्रत करै तीसरे और चौथे रोज अयाचित व्रत करै फिर पांचवें छठे दो दिन कोरा व्रतकरै तो इसप्रकारसेभी आधा कृच्छ्र होताहै ॥ ० ॥ यह शंका खड़ी होती है कि आपस्तम्ब के वचन में तीन तीन दिनों का एक एक पाद कहा सो तो ठीक

प्रतीत होताहै क्योंकि उसी हिसाबसे छे दिनका अर्द्ध कृच्छ्र कहा उसी लेखेसे नौ दिनका पौन कृच्छ्र कहा उसी लेखेसे वारह दिनका पूराभी होता है• परन्तु योगीश्वरने तीनसौ उन्नीस ३१९ के श्लोक मूलमें चार दिनका पादकृच्छ्र वताया उसकी विधि क्योंकर मिलाईजाय क्योंकि उसलेखेमें सोरह दिनका पूराकृच्छ्र होनाचाहिये अथवा उन्हीं चार दिनको पादकृच्छ्र नाम छोड़ि त्र्यंशकृच्छ्र कहिना चाहिये था— इसका—यही समाधानहै कि उसमें लेखाजोखा लगानेकी अपेक्षा कुछनहींहै क्योंकि उन चार दिवसोंका नामही पादकृच्छ्रव्रत जुदी विशेषतासे रक्खा गयाहै इसीलिये उसे तिगुना करिके वारह दिनका प्राजापत्य नामसे पूरा कृच्छ्र वतावेंगे (तीनसौवीस का मूल श्लोक देखो) इसके सिवाय कृच्छ्रों के अनेक रूप होतेहैं सवही में वारह दिनका नियमनहींहै सो सवआगे तीनसौवीसकी अधिकोक्तिमें विस्तारसेआवेंगे तव समुझिलेना ॥ ० ॥ उपवास भी चौथे व्रतका स्वरूप मूलश्लोकमें कहागया तिसके लक्षण भी अनेकहैं सो यहां देखो (उपावृत्तस्यपापेभ्योयस्तुवासोगुणैःसह उपवासः सविज्ञेयःसर्वभोगविवर्जितः) अर्थात उप—वास ये दो शब्द मिलाके नाम धराहै इस हेतुसे कि पाप कर्म्मोंसे मनको उपावृत्त करना हटाइ लेना उप शब्दसे दर्शाया फिर उस पुरुषका ठहिरना वास कहाताहै परन्तु गुणोंकेसाथ वासहोय तो उपवास ठीक समुझाजाय यहां गुणभी वही समुझने जो८२वयासीके परिच्छेदमें (३१३–३१४) इन्हीं श्लोकोंसे ब्रह्मचर्य आदि लिखिचुकेहैं उन्हीं सव गुणोंकासेवन और सव तरह के भोग रूपी आरामको छोड़िके एक ठिकानेपर वैठने का उपवास नाम जानो—सर्व भोगोंका छोड़ना यहांतक अभिप्रेतहै कि निपट कुछभी न खानापीना चाहिये (तपनोदयमारभ्य यामाष्टकमभोजनम् उपवासःसविज्ञेयः प्रायश्चित्ते विधीयते) अर्थात् सूर्यनारायण के उदयसे लेकर पूरे आठ प्रहरोंभर न खाना सो उपवास जानना जो प्रायश्चित्तों में कियाजाताहै परंच ऊर्ध्वोक्तगुण भी सवहोनेचाहिये• तथा अग्रोक्त काम करनेका त्याग राखै (उपवासफलंनश्येद्दिवास्वप्नाचमैथुनात् स्त्रीणां संप्रेक्षणात्स्पर्शात्ताभिःसकथनादपि) क्योंकि उपवास किये हुयेका भी फल नाश होजाता है दिनमे सोइ रहिने से या मैथुन करनेसे तथा स्त्रियोंको पूरी निगाह भर देखनेसे या उनको छुइलेनेसे या विना छुये भी उनके निकट वैठि परस्पर वात चीत वहुत करनेसे भी उपवासोंका फल वृथा नाश होजाताहै ॥ ३१९ ॥

प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंके अनेक भेद अगिले परिच्छेद में देखना ॥

——:※:——

जपादिक सहित कृच्छ्र करनेका पक्षकहिना शेष रहा तिसको तीनों वर्णोंके निमित्त में समुझिलेना जो कुछ पढ़े लिखे भी हों क्योंकि विद्याके सम्बन्धसे उन्हीं पर योग्यता उसकी शेष रही—सो भी गौतमऋषि ने उन्हीं तीनों वर्णोंके निमित्त में स्पष्ट प्रकाशकरीहै=यथा=अथातःकृच्छ्रान्व्याख्यास्यामः हविष्यान्प्रातराशान्भुक्त्वा तिस्रोरात्रीर्नाश्नीयात् अथापरं त्र्यहंनक्तंभुंजीतापरं त्र्यहंनकंचनयाचेतथापरं त्र्यहमुपवसन् तिष्ठेदहनिरात्रावासीत क्षिप्रकामः सत्यंवदेदनार्यैःसहनभाषेतरौरवयौधाजये नित्यंप्रयुंजीतानुसवन मुदकोपस्पर्शनमापोहिष्ठेतितिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयीत—हिरण्यवर्णाःशुचयःपावकाइत्यष्टाभिरयोदकतर्पणांनमोहमायमोहमायमंहमायधन्वनेतापसायपुनर्वसेनमःमौञ्ज्याय औम्र्याय वसुविन्दाय सर्ववर्णविन्दायनमः पारायसुपाराय महापारायपारदाय पारयिष्णवेनमः रुद्रायपशुपतयेमहतेदेवायत्र्यम्बकायैकचरायाधिपतये हरायशर्वायेशानाय उग्रायवज्रिणे घृणिने कपर्दिनेनमः सूर्यायादित्यायनमः नीलग्रीवाय शितिकंठायनमः कृष्णायपिंगलायनमः ज्येष्ठायश्रेष्ठायवृद्धायेंद्राय हरिकेशाय ऊर्ध्वरेतसेनमः सत्यायपावकाय पावकवर्णायैकवर्णाय कामाय कामरूपिणेनमः दीप्तायदीप्तरूपिणेनमःतीक्ष्णायतीक्ष्णरूपिणेनमःसौम्यायपुरुषाय महापुरुषायमध्यमपुरुषायउत्तमपुरुषायब्रह्मचारिणेनमः चन्द्रललाटायकृत्तिवाससेनमः—इति—एतदेवादित्योपस्थानमेताएवाऽऽज्याहुतयो । द्वादशरात्रस्यांतेचरुंश्रपयित्वाएताभ्योदेवताभ्योजुहुयात्—अग्नयेस्वाहा सोमायस्वाहाअग्नीषोमाभ्यामिंद्राग्निभ्या मिंद्रायविश्वेभ्यो देवेभ्योब्रह्मणेप्रजापतये अग्नयेस्विष्टकृते—इति—अंते ब्राह्मणभोजनम्—तत्र (तिष्ठेदहनिरात्रावासीतक्षिप्रकामः) इत्यस्यार्थः—यस्तुमनसोऽप्येनसःक्षिप्रमेकेनैवकृच्छ्रेणाक्षिप्रंमुच्येयं इत्येवंकामयतेअसावहनिकर्माविरुद्धेषुकालेषुतिष्ठेत् रात्रावासीत (सर्वंरौरवयौधाख्यसामजपः नमोहमायेत्यादिभिस्तर्पणादित्योपस्थानादिकंचरुश्रपणादिकंचयोगीश्वराद्यनुक्तंक्षिप्रकामःकुर्वीत— अतएवयोगीश्वराद्युक्तप्राजापत्यकृच्छ्रस्यानेगौतमोक्तस्यानेकेतिकर्तव्यतासहितंद्रष्टव्यं एवमन्यान्यपिस्मृत्यंतरोक्तानिविशेषणान्यन्वेषणीयानीतिमिताक्षराकाराः=अर्थात्—गौतम आदिके नामसे मिताक्षराकार इस बहुतबड़े विधानको ग्रन्थान्तरसे खींचकेदर्शातेहैं सोयथाक्रमसेदेखो=अब यहांसे कृच्छ्रोंका व्याख्यान करेंगे जैसा तीनदिन हविष्य जो धान आदि प्रातःकालिक भोजन करिके उन्हीं रात्रों में कुछ न खाय अनन्तर इसके और भी तीनरोज नक्तभोजी होकेरहे अर्थात् दिनमें न खाय रातिही में खायाकरै फिर तीनदिन अयाची होके किसीपर न मांगै तथा और भी तीनदिन कोरा उपवास करते दिनमें

रहै तथा रात्रिमें भी जो शीघ्र अपने पाप मोचनकी कामना रखताहो तो ये नियम साधे सत्यबोले दुर्जनों से बातचीत न करै और सामवेदोक्त रौरवयौध नामका साम जप होताहै तिसको नित्य दिनमें उचित समय पर वैदिके जपै और सर्वदा नित्यही त्रिकालस्नानकरै और आपोहिष्ठा इत्यादि पवित्रवती तीनि ऋचाओंसे मार्जन करै फिर इसके अनन्तर (हिरण्यवर्णा शुचयःपावकाः)इत्यादि आठ ऋचाओंसे जलका तर्पण करै इसके अनन्तर' ऐसे चिह्न से आगे नमोहमाय आदि लेकर कृत्तिवास से नमः पर्यन्त जितने मंत्र ऊपर लिखे मौजूद हैं उन सबको पढिकर आदित्यका उपस्थान करै अर्थात् सूर्यके सन्मुख खड़े होकर दृष्टिमिलाकर इतने मंत्रोंसे स्तुति करै और जलमें तर्पण इन मंत्रोंसे भी करै अर्थात् जैसा हिरण्यवर्णा आदि आठऋचाओं से करना कहिचुके तैसा उपस्थानके मंत्रोंसे जुदा तर्पणभी करनाचाहिये और इन्हीं उपस्थानवाले जुदे जुदे मंत्रोंसे घृतकी आहुति भी एकएक देनीचाहिये यह रोजरोज की साधना विधि कहीगई ऐसा बारहदिन किये पीछे होमकेलिये चरु पकाइके इतने देवताओं के अर्थहोम करै किन्तु जो (अग्नयेस्वाहा आदि मंत्रहैं तिनसे आहुतेंदेकर पूर्वोक्त उपस्थान और तर्पणके मंत्रोंसेभी होमकरना फिर पीछेसेब्रह्मभोजकराना॥०॥ यद्यपि यथाक्रमसे समस्त विधानके अर्थलिखेगये परन्तु बीचमें(तिष्ठेदहनिरात्रावासी तक्षिप्रकामः)ये चौदह अक्षर जो प्रारंभके समीपही आचुकेहैं तिनका विशेष ब्यौरे वारअर्थ सबसे नीचे आकर मिताक्षराकार जुदाभी दर्शातेहैं कि-क्षिप्रकाम उसपुरुष का नामहै जो मनसे अपने हृदयसे कामना रखताहो कि मैं शीघ्र अपने पापसे छूटों अर्थात् एकही कृच्छ्र करिके शुद्ध होसकों इसको चाहिये कि दिनमें पूजा कर्म के अविरोधी उचित कालोंमें बैठे वा उपस्थान आदि सध्ये सूर्यके सध्य समयपर खड़ा होय एवं रात्रिमें जहां जैसा उचित हो उसीपर स्थितहोय (तिससे यह सिद्धांत ठहिरा कि रौरवयौध नामका जप और नमोहाय आदि मंत्रोंसे तर्पण तथा उन्हींसेसूर्यका उपस्थान आदि जो कुछ लिखिचुके या खीरि पकानाआदि और जोकुछ कहागया कि जिनबातोंको योगीश्वर आदिने प्राजापत्यके साथमें नहीं दर्शाया सो सब उसको करना चाहिये जो शीघ्र अपने काम की सिद्धि चाहै–इसी से यहभी तात्पर्य ठहिरा कि योगीश्वर आदिकेबताये दोप्राजापत्योंके स्थानपर इसगौतमकीकर्त्तव्यता सहित विचारकरै क्योंकि गौतम औरभी अनेकोंने ऐसाही कहाहै॥ ३२०॥यह तीनसौबीस के पूर्वार्द्ध श्लोकवाली अविकोक्ति पूरी हुई इसमें केवल प्राजापत्यही के लक्षण भेद कहेगए ये सबकृच्छ्रही कहातेहैं इससे आगे अतिकृच्छ्र के लक्षण कहेजायँगे॥

(अतिकृच्छ्रस्वरूपं)

अयमेवातिकृच्छ्रःस्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ३२०

अर्थः-यही अति कृच्छ्र होय यदि पाणिपूर अन्न भोजन होय-अर्थात्- यही प्राजापत्य जो ऊपर कहिचुके सो अतिकृच्छ्रनाम कहानेलगे जो एक मुट्ठीभर अन्न खाकर कियाजाय-इसका भी यह तात्पर्य्यहै कि प्राजापत्य सर्व्वथा उसी रीति से कियाजाय जैसा लक्षण उसका कहिचुके हैं परन्तु इतनी विशेषता होनी चाहिये कि उसमें जहांजहां दिनके या रातिके भोजनोंमें बाईस या चौबीस या छब्बीसकौर भोजन करना लिखाहो तिसको छोड़ि केवल एक मुट्ठीभर अन्न भोजन कियाजाय इतनी विधि बदलनेसे अतिकृच्छ्र कहाताहै और अन्तके दिवसोंमें जहां कोरा उपवास कहिचुके सो यहां भी उसीतरह कियाजायगा उसमें मुट्ठीभर अन्न की अपेक्षा नहींहै और वहांपर प्राजापत्यके चारऊदेपाद या तीनिही पाद जैसे कहिचुके तिनकी उलटा पलटी अर्थात् अनुलोम या प्रतिलोम क्रम जैसा कुछ कहा गयाथा सो सब यहां भी उसी प्रकार समुझे रहिना ॥ ३२० ॥

३२० अधिकोक्तिः=यत्तुमनुनोक्तं=एकैकंग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणित्रीणिपूर्व्ववत् त्र्यहंचोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः=अर्थात्-मनुने यह कहाहै कि तीनि तीनि दिनोंके तीनि फेर कुल्ल नौ दिनतक एकही एक ग्रास भोजन करै सो उसी पहिली रीतिसे (कि जैसा कृच्छ्रव्रत में तीन दिन सवेरे तीन दिन सांझको तीन दिन विना मांगे जब कोई लेआवे तभी खाय यही प्राजापत्य में कहि चुके हैं उसीके अनुसार यहां नौ दिन भर एक एक ग्रास रोज खाकर) पीछेसे तीन दिन कोरे उपवास करै तो यह द्विजातीका अतिकृच्छ्रव्रत कहावै-अर्थात्-पहिला प्राजापत्य जो कहिचुके सो कृच्छ्रहीकहाजाता यह अतिकृच्छ्रकहावै और कृच्छ्रातिकृच्छ्र इससे आगे कहा जायगा वह ३२१ तीनसौइक्कीस मूलश्लोकमें देखना इन तीनोंमें यह भेदहै कि पहिला छोटा दूसरा उससे बड़ा और तीसरा इनदोनोंसे बड़ा होगा (मिताक्षराकार कहितेहैं कि अति कृच्छ्र में योगीश्वरने मुट्ठी भर अन्नखाना कहा और मनुने एक ग्रासभर अन्न खाना कहा तिससे यह कठिन प्रतीत होता समर्थ पुरुष को बताना चाहिये) यथार्थ में ये दोनों बात बराबर हैं कुछ भेद नहीं क्योंकि एक ग्रास भी मोरके अंडे बराबर कहिचुके हैं वह अण्डा एक मुट्ठीभर होताहै॰ तिससे यह भी न कहिना चाहिये कि यह समर्थको बताना वह असमर्थ को॥ ३२० ॥

(कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्यपराकस्यचरूप)

कृच्छ्रातिकृच्छ्रःपयसादिवसानेकविंशतिम् । द्वादशाहोपवासेनपराक परिकीर्तित ३२१

अर्थ—एकविंश २१ दिनपर्यन्त दूधपीकर व्रतकियाजाय सो कृच्छ्रातिकृच्छ्रनाम कहाताहै—कितना दूधपीकर इसअपेक्षासे ३१८ तीनसौ अठारहकी आविकाकिमेंप-राशरका वचन देखो=गौतम ने केवल जल पीकर बारह दिनका कृच्छ्राति कृच्छ्र व्रत बताया है (अब्भक्षस्तृतीयःसकृच्छ्रातिकृच्छ्रः) अर्थात् पहिले दो भाँति के रूप कहिकर पीछेसे कहाहै कि तीसरा वह जो सिर्फ जलखाके होय सो कृच्छ्रातिकृच्छ्र नाम जानो ॥ † ॥ बारहदिनकोरा उपवास करनेसे पराक व्रत कहाता है ॥ ३२१ ॥

(सौम्यकृच्छ्रस्यरूप)

पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनाप्रतिवासरम् । एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्र सौम्योऽयमुच्यते ३२२

अर्थः—पिण्याक• आचाम• तक्र• अंबु• सक्तु• इनका प्रतिवासर एक एकसाधन करिके पीछे से एक दिन कोरा उपवास भी करे=अर्थात्—प्रथम दिन तिलोंका पीना खली • दूसरे दिन आचाम अर्थात् भात का माड़ •तीसरे दिन मट्ठा• चौथे दिनजल• पांचवे दिन सतुआ धानके बने अथवा जौ के बने• छठे दिन कोरा उपवास करिके छे दिनका यह सौम्यकृच्छ्रव्रत कहाताहै (कितनी कितनी ये चीजें खाय इस अ-पेक्षामें यह समझिलेना कि जितना थोड़ा खानेसे प्राणोंकी रक्षा बनी रहेगी उतना खाय बहुत नहीं ॥ ३२२ ॥

३२२अधिकोक्तिः=जाबालमुनिने चारिही दिनका सौम्यकृच्छ्रकहाहै=यथा= पिण्याकसक्तवस्तक्रचतुर्थेहन्यभोजनम्वासोवैदक्षिणांदद्यात्सौम्योऽयंकृच्छ्रउच्यते= अर्थात्—एक दिन पीना• दूसरे सत्तू• तीसरे मट्ठा• चौथे दिन कोरा उपवास और एक वस्त्रकी दक्षिणादान करे तो यह सौम्यकृच्छ्र कहाजाताहै ॥ ३२२ ॥

(तुलापुरुषकृच्छ्रस्यरूपं)

एषांत्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्ययथाक्रमम् । तुलापुरुषइत्येषज्ञेय पञ्चदशाहिक ३२३

अर्थ—इन पाचोंका तीन रात्रि एक एकका अभ्यास यथा क्रम करने से यह पन्द्रह दिनका तुला पुरुषनाम कृच्छ्र व्रत कहाताहै=अर्थात्—यथा क्रमसे यह कि उन्हीं पूर्वोक्त तिलखली आदि पांचोंमें पहिली चीजको पहिलेतीनदिन फिर दूसरी

को तीन दिन फिर तीसरीको तीन दिन फिर चौथीको तीन दिन फिर पाँचवींको तीन दिन खाकर पन्द्रह दिन पूरे करै (इसमें पन्द्रह दिनका नियम कहिदेनेसे छठे दिन कोरे व्रतको मनादी ठहिरी ॥ ३२३ ॥

३२३ अधिकोक्तिः=यमने इक्कीस दिनका तुला पुरुष बतायाहै=यथा=आचामसयपिरायाकंतकंचोदकसक्तुकाव त्र्यहंत्र्यहंप्रयुंजानोवायुभक्षस्त्र्यहंहयम एकविंशतिरात्रस्तुतुलापुरुषउच्यते (इतिहारीतोक्तोऽतिकर्त्तव्यताग्रन्थगौरवभयान्नलिख्यते इति मिताक्षरा=अर्थात्–माड़•पीना•मठा• जल•सत्तू• इनको तीन तीन दिन खाता हुआ बादि पन्द्रह दिनके छेदिन वायु भक्षीहोय अर्थात् कोराव्रतकरै तौ यह इक्कीस रात्रिका तुला पुरुषव्रत कहावे (मिताक्षराकार कहितेहैं कि हारीत के बनाए ग्रन्थ में यह बात बहुत बड़ी कर्त्तव्यतासे वर्त्तमानहै इस ग्रन्थ बढ़िजानेके भयसे उसे नहीं लिखतेहैं ॥ ३२३ ॥ अब अगले परिच्छेदमें चान्द्रायणव्रतोंके भेद और उनकेसाथ भी थोड़ासाकृच्छ्रों का वर्णन कियाजायगा ॥ ३२३ ॥

अथचान्द्रायण सोमायन मासिकव्रतभेदानां नामलक्षण विधिप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पञ्चाशीतितमः (८५)



इस परिच्छेदमें चान्द्रायण मासिक व्रतके अनेक लक्षण भेद उनकी विधि और नामों सहित प्रकाश कियेजायँगे तिनमें प्रथम• यवमध्यचान्द्रायण•पिपीलिकामध्यचान्द्रायण फिर सबका विधान•फिर साधारणचान्द्रायण• यतिचान्द्रायण• शिशुचान्द्रायण• ऋषिचान्द्रायण• सोमायन के विधान• ये सब इसी क्रमसे लिखेजायँगे ॥

(चान्द्रायण व्रत रूपं)

तिथिवृद्ध्याचरेत्पिण्डान्शुक्लेशिख्यण्डसम्मितान्। एकैकंह्रासयेत्कृष्णेपिंडंचान्द्रायणंचरन् ३२४

अर्थः–चान्द्रायणको करतेहुये शुक्लपाखमें शिखीमोरके अण्डे समान पिण्डों का तिथिकी वृद्धिसे बढ़ाते हुये चरै भक्षण करै फिर कृष्णपाख में एक एक पिण्ड घटाताजाय=अर्थात्–शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे प्रारम्भकरै उस दिन छिपीहुई चन्द्रमा की एकही कलाहोतीहै तिसमें एक गोला दालि चावल आदि अन्नका मोरके अंडे

बराबर बनाके खाय फिर द्वितीयाको दो पिण्ड तृतीया को तीन इसी रीतिसेपूर्णमासीको पन्द्रह पिण्ड खाइके अँधेरी प्रतिपदा को १४ चौदह पिण्ड खाय दोयज को १३ तेरह पिण्ड तीजको १२ बारह पिंड इसीप्रकार कृष्णाचतुर्दशीको एकही ग्रास खाकर अमावास्यामें निपट कोई कला चन्द्रमाके नहींरहतीहै उसदिन कोरा उपवास करे तो यह चान्द्रायण व्रत कहाता है ॥ ३२४ ॥

३२४ अधिकोक्तिः=वशिष्ठः=एकैकंवर्धयेत्पिण्डशुक्लेकृष्णेचह्रासयेत इन्दुक्षयेन भुंजीतएषचान्द्रायणोविधिः=अर्थात्–वशिष्ठने साफ यही कहाहै कि शुक्लपाख में एक एक पिंड रोज बढावै और कृष्णपाखमें एक एक रोज घटावै परन्तु इन्दुक्षय नाम जो अमावास्याहै तिसकेरोज कुछ भी न खाय यह चान्द्रायणकी विधि जानो (चन्द्रमाके अयनका बढना घटना जैसा होताहै तैसाही आचरण इस व्रतके कर्म्म का होताहै तिससे चान्द्रायण इसका नाम ठहिरा) जैसा यह कहागया तिसका विशेषनाम यवमध्य चान्द्रायण भी कहाताहै क्योंकि जौके दोनों छोर नोकें और बीचमे मोटापन होताहै उसीप्रकार इसचान्द्रायणमें दोनोंछोर एकहीएक पिंडखाने से नोकें पतरी और बीचमें पूर्णमासीके ठिकाने पन्द्रह पिण्डोंकी बहुत मुटाई फिर दोनों तरफ जौके समान ढाल होताहै–इतियवमध्यंचान्द्रायणं ॥ अथपिपीलिकामध्यचान्द्रायणविधिः–अर्थात्–यही चान्द्रायण जहां कृष्णपक्षकी प्रतिपदा से लेकर एक एक पिंड खाकर कियाजाय जिसमें लौटिकर पूर्णमासीका कोरा व्रत करनाहो जो कृष्ण प्रतिपदासे एक दिन पहिले आतीहै तो फिर इसका विशेषनाम भी पिपीलिका मध्य कहाजाय कि जैसे चीटा चीटी बीचमेंखाली और दोनों छोर मोगरीसे मोटे हुआ करतेहैं तैसाही डौल इसचान्द्रायणका होजाताहै (प्रकार इस का यही है कि अँधियारी परिवा से एकएक ग्रास बढाते अमावसको पन्द्रह ग्रास खाकर उजियारी परिवा को चौदह फिर इसीतरह एक एक घटाते चौदसिमें एकही खाकर पूर्णिमाको निपट एक भी नहीं तिससे चीटेके आकार बीचमें खालीठहिरा क्योंकि पूर्णमासी महीनाके बीच मे होती है) तथापि आचार्योंने इसप्रकारका स्वीकार नहीं किया क्योंकि अमावास्यामें निपट विधुक्षय होनेसेकोरा व्रत करना सिद्ध होचुकाहै तिसमें पन्द्रहग्रास खानेका व्योंत आकर परताहै यह विरोध अच्छानहीं–तिससे–इसी पिपीलिका मध्य चांद्रायणका दूसरा व्योंत करणपरा सो दर्शाते हे कि पूर्वोक्त यवमध्य चांद्रायण केढगसे केवल इतना भेद करना चाहिये कि अँधियारी परिवासे प्रारम्भकरें परन्तु प्रथम दिन चौदह ग्रास भोगे

जो इसी पूर्वोक्त मार्गसे सोरहवें दिवस खातेरहे फिर दूसरेदिन द्वितीया को तेरह तृतीयाको बारह इसीप्रकार घटाते जाकर चौदसिको एकही ग्रास खाकर अमावस में कोरा व्रतकरै फिर दूसरेदिन उजियारी परिवाको एक दोयजको दो तीजको तीन ग्रास इसी प्रकार बढ़ाते जाकर पूर्णमासी को पन्द्रहग्रास खाकर उसीदिन व्रत को समाप्तकरै तो यह ठीक ठीक पिपीलिकामध्य कहाजायगा कि बीचों बीच अमावस में कोराव्रत किया गया और ग्रास भी दोनों ओर एक एक दो दो आदि बढ़ते जाकर दोनों ओर मोटे होगये—और इसी व्योंतका प्रमाण आगे वशिष्ठके वचनोंसे मिलता है=यथाहवशिष्ठः=मासस्यकृष्णपक्षादौ ग्रासानद्याच्चतुर्दश ग्रासापचयभोजीसन्पक्ष शेषंसमापयेत तथैवशुक्लपक्षादौग्रासंभुंजीतचापरम् ग्रासोपचयभोजीसन्पक्षशेषंसमापयेत=अर्थात—वशिष्ठजीने खुलासा कहिदिया है कि महीना के अँधेरे पाख की आदि में परिवा के रोज चौदह ग्रास भोगे फिर दूसरे दिन से एक एक घटाकर भोगते हुये पाख पूराकरै (इस व्योंतमें अमावस कोरी रहिजातीहै) तैसेही उजीते पाख की आदि में परिवा के रोज एक और ग्रास भोगै फिर दूसरे दिनसे एक एक रोज बढ़ाकर भोगतेहुये बाकी पक्षको पूराकरै यहां पूर्णमासी में पूरे पन्द्रहकौर होजायँगे यह ठीक पिपीलिका मध्य चान्द्रायणका स्वरूपहै जिसकी अमावस में नहीं खाना परा ॥ ० ॥ यह शंका खड़ी रहिगईहै कि जब किसी पाखमें कोई तिथिघटिजाय या बढ़िजाय तब इनग्रासोंकी योजना कैसे ठीक आवेगी• तिसके लिये इन्हीं वशिष्ठ के वचनोंपर ध्यान करना चाहिये कि अँधेरे उजेरे दोनों पाखवाले जुदे जुदे श्लोकों में (पक्षशेषंसमापयेत) यही एकपाद आरोपित किया इसका यही तात्पर्य है कि पाखमें जितने दिन बाकी हों उनमें चाहें कोई तिथि घटी या बढ़ीहो तौ भी पक्ष का बाकी भाग समाप्त करै अर्थात अमावस और पूर्णमासी ये दोनों पक्ष की सीमारूपी हदें होतीहैं इन्हीं हदों तक ग्रासोंका घटाना या बढ़ाना समाप्त करदेना चाहिये किन्तु एकपाखवाले कवलोंका हिसाब दूसरे पाखतक न जाने देवै इसका इसीमें समाप्तकरै—इस व्याख्यासे भी यह स्वरथ निकसा कि तिथिके बढ़िजानेसे कवल भी बढ़ाये जायँ घटिजानेसे कौर भी घटाये जायँ—इसका दृष्टान्त जैसे उजीते पाखवाली तीजको तीनग्रास खाने होतेहैं यदि उसी तृतीयाकी वृद्धिहोकर दोतीजें होजायँ तहाँ दोनों तीजोंको तीन तीन ग्रास खानेचाहिये• इसप्रकार जहाँ पंचमी की हानिहोय तहाँ उसके नामके पाँचकौर न खाने होंगे अर्थात चौथिमें चारग्रास खाकर दूसरे रोज षष्ठी आपरने में छैग्रास होंगे इन्हीं दोनों दृष्टान्तसे सर्वत्र समझि

लेना—क्योंकि (तिथिवृद्ध्यापिंडांश्चरेत) यह ३२४ मूलश्लोक में पहिला पादहै योगीश्वर का तिससे भी यही नियम सिद्धहोताहै कि तिथियोंके आधीन पिंड होते हैं ॥ ० ॥उपयोगिविधानं—चांद्रायणका उपयोगी विधान भी गौतमने पिपीलिका मध्यकी प्रधानता से कहिकर यवमध्यपर भी अतिदेश उसका किया है बल्कि वही विधान सबतरह के चांद्रायणोंपर समझना=तदाहगौतमः=अथातश्चांद्रायणंतस्योक्तोविधिः कृच्छ्रे वपनव्रतंचरेत श्वोभूतांपौर्णमासीमुपवसेत आप्यायस्वसंतेपयांसिनवोनव इतिचैताभिस्तर्पणं माज्यहोमोहविषश्चानुमंत्रणंउपस्थानंचचन्द्रमसः॥ यद्देवादेवहेडनमितिचतसृभि राज्यंजुहुयात देवकृतस्येतिचांतेसमिद्भिः(ओंभूः ओंभुवः ओंस्वः ओंमहः ओंजनः ओंतपः ओंसत्यंयशः श्रीऊर्कइट् ओंजः तेजःपुरुषःधर्मःशिवः) इत्येतैर्ग्रासानुमन्त्रणं—प्रतिमन्त्रंमनसानमःस्वाहा इतिवासर्वानेतैरेव ग्रासान्भुंजीत॥तद्ग्रासप्रमाणमास्याविकारेण चरु भैक्ष्य सक्तु कण यावक शाक पयो दधि घृतमूलफलोदकानि हवींषि उत्तरोत्तर प्रशस्तानि ॥ पौर्णमास्यांपंचदशग्रासान्भुक्त्वा एकैकापचयेनापरपक्षमश्नीयात्— अमावास्यायामुपोष्यै कैकोपचयेन• पूर्वपक्षंविपरीतमेकेयामेयचांद्रायणोमासः इति=अत्रचमिताक्षरा—अत्रग्रासप्रमाणंआस्याविकारेणेति यदुक्तंतद्बालाभिप्रायं शिख्यंडपरिमितपंचग्रासभोजनाशक्तेः—क्षीरादिद्रवहविषां शिख्यंडपरिमितत्वंतु पर्णपुटकादिनासम्पादनीयं—तथाकुक्कुटांडाद्यामलकादीनितुग्रासपरिमाणानि स्मृत्यंतरोक्तानिशक्तिविषयाणि शिख्यंडपरिमाणाल्लघुत्वात्तेषां—यत्पुनरुक्तंश्वोभूतांपौर्णमासीमुपवसेदित्यत्र चतुर्दश्यामुपवासमभिधाय पौर्णमास्यांपंचदशग्रासान्भुक्त्वेत्यादिना द्वात्रिंशदहरात्मकत्वं चांद्रायणस्योक्तंतत्पक्षांतर प्रदर्शनार्थंनसार्वत्रिकं योगीश्वर वचनानुरोधेन त्रिंशदहरात्मकस्यदर्शितत्वात यद्येतत्सार्वत्रिकं स्यात तदानैरन्तर्य्येणसंवत्सरे चांद्रायणानुष्ठानानुपपत्तिःस्यात चन्द्रगत्यनुवर्तनानुपपत्तिश्च=अर्थात—गौतमका कथन है कि अब यहां से चान्द्रायण कहिना है तिसके विधानका यह अनुक्रम है कि एक चांद्रायण क्या बल्कि सभी कृच्छ्रमात्र में पहिले मुंडन कराइ के व्रतका आरम्भ करै तहां आरम्भसे एकदिन पहिले (वपनव्रतंचरेत) वपनके निमित्त व्रतआचरै अर्थात जहां पूर्णमासीसे चान्द्रायण प्रारम्भकरना स्वीकार हो तहां दूसरेदिन सबेरे पूर्णमासी आने वाली देखि पहिले दिन मुण्डनकराइकेउसी दिन मुंडनके निमित्त कोरा उपवासकरै(इसीप्रकार अन्यकृच्छ्रोंमें समझिलेना)पूर्णमासीसे रोजका यह कृत्यकार्य है कि (आप्यायस्वसन्ते पयांसि नवोनव) इत्यादि चिह्नवाली इतनी ऋचाओंसे तर्पण और घीका होम और जिस किसी अन्नके ग्रास

विशेष वचन धंशधोय है• और प्रायश्चित्त का स्थलभी एक प्रकारका तीर्थ गिना जाता क्योंकि तीर्थके लक्षण शास्त्रोक्त भी अनेक हैं तिससे प्रायश्चित्तके निमित्त से चतुर्दशी में भी वपनका कुछ दोष नहींहै यह समझिलेना ॥ ३२४ ॥

अगले मूलश्लोक से दूसरी भांति के चांद्रायण कहे जायँगे॥

(साधारणचांद्रायणं)

यथाकथंचित्पिंडानांचत्वारिंशच्छतद्वयम्। मासेनैवोपभुंजीतचांद्रायणमथापरम् ३२५

अर्थः—यह और चांद्रायण है कि जैसे किसी प्रकार के प्रयत्नसे हो दोसौचालीस पिंडोंका ब्योंत लगाकर एकहीमास भरमें भोगै=अर्थात्—ऊपर जो तीसदिन का चांद्रायण योगीश्वर ने कहा तिसमें समस्त२२५ दोसौ पचीसग्रास महीनाभरके होतेहैं उससे उपरान्त गौतम के कहे विधान में दूसरी पूर्णमासी के पन्द्रहग्रास बढ़िजानेसे २४० दोसौचालीसकौर होजातेहैं उन दोनों प्रकारसे जुदा यह प्रकार कहा चाहते हैं इसलिये२४० दोसौचालीसपिंड तीसही दिनमें भोगेजायँ तिनके ब्योंतका कोईसा नियत लेखा एकहीसा नहींहै अर्थात् इसके लेखे में अपनी इच्छाके अनुसार युक्ति लगानी होतीहै इसीसे यह कहा गया कि जैसे किसी प्रकार से होसके तैसे बारहवीसी पिण्डोंका ब्योंत एक महीना के दिनों पर फैलावै—उस फैलावा के इतने डौल हैं कि रोज मध्याह्न के समय आठग्रास खानेका नियम राखै अथवा चारकौर दिनमें चार कवल रातिमें खानेका नियम राखै तौ भी तीसदिनमें दोसौचालीस होजायँगे अथवा एकदिन चारपिण्ड दूसरे दिन बारहपिण्ड इस डौलसे भी हिसाब ठीक आवैगा अथवा एकदिन कोरा उपवास फिर दूसरे दिन सोरह पिण्ड इकट्ठे या दिनराति में दोबार भोगै तौभी वही लेखाहै• इसीतरह अन्यप्रकार भी कल्पना किये जासक्तेहैं तिनमें कोईसा एक प्रकार अपनी इच्छा और शक्ति संभव आदि के अनुकूल सोचिके जैसा कुछ पहिलेदिन मंजूरकरै वही डौल तीसदिनतक चलाजाय तौ यह पूर्वोक्त यवमध्य और पिपीलिकामध्य दोनोंसे जुदा प्रकार (साधारण) इस नामसे कहाता है (यतिचांद्रायण• शिशुचांद्रायण आदि इनके नाम भेद भी होतेहैं सो अधिकोक्ति में मनुके वचनों से देखना ॥ ३२५ ॥

३२५ अधिकोक्तिः—जितने डौल यहां दर्शाये सो नामसहित मनुने भी कहेहैं= यथा=अष्टावष्टौसमश्नीयात्पिंडान्मध्यंदिनेस्थितेनियतात्माहविष्यस्यथतिचांद्रायणं चरेत् ॥ चतुरःप्रातरश्नीयात्पिंडान्विप्रःसमाहितः चतुरोऽस्तमितेसूर्येशिशुचांद्रायणं

चरन ॥ यथा कथंचित्पिडानांतिस्रोऽशीतीःसमाहितः मासेनाश्नन्हविष्यस्यचंद्रस्यैतिसलोकताम=अर्थात्—मनुने यह कहाहै कि जो कोई ब्राह्मण यतिचांद्रायण करनाचाहै सो ठीक दुपहरके समय अपने शरीरको वशमे राखे हुये आठपिंड हविष्य के अर्थात् पवित्र अन्नोके रोज रोज एक महीना भर भोगै तौ यही यति चांद्रायण कहाताहै ॥ फिर कहिते हैं कि यदि कोई विप्र शिशुचांद्रायण किया चाहै सो अपने शरीर और चित्तको सावधान राखे हुये चारकौर प्रातःकाल और चारकवल सूर्य अस्तहोते समय भोगै तौ यही शिशु चांद्रायण कहाजाता है ॥ फिर कहिते हैं कि हविष्य जो पवित्र अन्नहैं नीवार•सामा आदि तिसके तीनअस्सी अर्थात् बारह बीसी पिंड जो २४० दोसौचालीस होतेहैं सो चाहैं किसी प्रकारसे जैसे होसके तैसे एकही मासमे भोगै (अर्थात् जैसे ऊपर योगीश्वर के श्लोक मे कहिचुके तैसे यहाँ भी समझने) तौ इसरीतिसे करनेवाला भी चन्द्रमा के लोकमें जाकर जन्म लेताहै अर्थात् जिस किसीने यद्यपि कोई पाप नहीं किया जिसके प्रायश्चित्त की जरूरत हो विना जरूरत के भी ऐसा व्रत करनेवाला ऐसाफल पावैगा यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥ ऋषिचांद्रायण—मूल श्लोकमें पीछेसे अपर यहशब्द जो लगाया तिसका अर्थ जो कुछ उसीजघे लिखागया सो भी ठीक है पर उसी अपर शब्दका यह भी तात्पर्य है कि अपरनाम और चांद्रायण जो नहीं कहे तिनको भी ग्रन्थान्तर में समझिलेना=यदाहयम=त्रींस्त्रीन्पिडान्समश्नीयान्नियतात्माद्दढव्रतःहविष्यान्नस्यवैमासमृषिचांद्रायणस्मृतम=अर्थात्—जो कोई ऋषि चांद्रायण किया चाहै सो एक मास अपने शरीरको अच्छे नियम से प्रीतिके सचाव्रत राखे हुये हविष्यान्न के तीन तीन पिंड रोजखाय (इसमें सिर्फ ९० नब्बे पिंडोंका हिसाब जुड़ता है ॥ ० ॥ मिताक्षराकार कहिते हैं कि—योगीश्वर तथा मनुके कहे• यतिचांद्रायण• शिशुचांद्रायण आदि अनेक और यमका कहा ऋषि चांद्रायण•इन सबही में यह समझिलेना कि परिवाको आदि लेकर चन्द्रमाकी गतिके अनुसार साधना करनेकी अपेक्षा इनमें नहीं है तिससे सिर्फ तीसदिनका महीना चाहै तिस किसी तिथिसे मानिके प्रारभ किया जासकता है अर्थात् तिथियोंकी घटी वढी आदि किसी कारणसेपूरे तीसदिन मानने के लिये यदि चौथि पचमी आदिकिसी औरही तिथिसे प्रारभ करनापरै तौ भी कुछ दोषनहीं•परन्तुयदिश्वँवेरी वाउजेरी परिवासेप्रारभहोसकै तौवहअधिक श्रेष्ठजानो॥०॥ अथ सोमायन—सोमायन इसनामसेभी एक महीनेका व्रतजुदे प्रकारसेहोताहै=तदाहमार्कंडेयः=गोक्षीरंसप्तरात्रत् पिवेत्स्तनचतुष्टयात् स्तनत्रयात्सप्तरात्र सप्तरात्रस्तन

बनानेहीं उसका नामहविय् होताहै इसीहविय् का अनुमन्त्रण अर्थात् मन्त्र पढिके पवित्रकरना और चन्द्रमाका उपस्थान उसकेसामने खडे होकर मन्त्रोंसे स्तुतिकरना और॥यद्देवादेवहेडनं आदि चारऋचाओंसे घृत होमै और होमके अन्तमें देवकृतस्य इत्यादि वेद मन्त्र से समिधों से घृत लेकर होमै॥ फिर (ओंभूः आदिसे शिवःपर्यंत) इतने मन्त्रों से पढिकर अपने रोजके सामूली ग्रासोंको पवित्र करै–तिससे अनन्तर फिर एक एक ग्रास हाथ में लेकर उन्हीं ओंभूः आदि सर्व मन्त्रों को बोलिकर पीछे से नमःस्वाहा यह मनमें कहिकर ग्रास मुहमें धरै इसी विधिसे सब ग्रासों को भोगै॥ उन ग्रासों का यह प्रमाण है कि जितना सुख पूर्वक मुहमें चलाजाय किन्तु मुखप-सारना आदि विकार न करने परैं (किन चीजों के ग्रास होयँ सो कहिते हैं) चरु अर्थात् पकाया भात वा खीरि•भैक्ष्य अर्थात् भिक्षासे मांगिलाया मिलाजुलाअन्न• सतुआ•कनकी तन्दुल की• यावक जौ का दलिया• शाक जो बथुआ सरसों आदि का इस काम के योग्य समझि परै• दूध• दही• घृत•मूल अर्थात् आलू घुइयांसकर-कान्द आदि जो निषिद्ध न हों•फल जोजो इस काम योग्य समुझिपरैं जैसे बेल खर-बूजा आदि• उदक गंगाजल आदि जो अतिशय पवित्र हों•इस कामके निमित्तमें ये सभी हविय् कहाते हैं इनमें पहिलेकी अपेक्षा पिछले पिछले अधिक श्रेष्ठजानो यह रोज रोज का विधान कहिके गौतम जी ग्रासों को प्रारम्भ करने का प्रकार अब कहिते हैं कि॥ प्रथम पूर्णमासी के रोज पन्द्रह ग्रास खाइके अगिले दिन दूसरे पाख की परिवा से एक एक घटाते हुये रोज खाया करै=फिर अमावस में कोरा उपवास करिके परिवासे एकएक ग्रास रोज बढावै तो यह पूर्णमासी दूसरी पर्यंत फिर पन्द्रह ग्रास खाकर एक मास चान्द्रायण कहाता है (इसीका विशेष नाम पिपीलिका मध्य पहिले कहिचुके हैं) गौतम कहिते हैं कि किरले एक आचार्यों के मतसे यही चान्द्रायण पहिला पाख उलटा करदेने से भी होता है (जिसका नाम यवमध्य कहाराया और विधान भी योगीश्वर आदिने कहा) यह सब गौतम का कथन पूरा होचुका=इसपर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि–गौतम के विधानमें ग्रास का प्रमाण जो यह कहा गया कि जितना सुख से मुहमें जासके सो बालक प्रायश्चित्तियों के अभिप्राय पर समझना क्योंकि मोर के अण्डे बराबर उन्हीं के मुह मे नहीं जासक्ता है और बालक उनको समझना जो मोर के अंडे बराबर पांच ग्रास एक दिनमें न खाइसकैं–और दूध आदि पतरी ढरकनी चीजें जो हवियमें गि-नतीकरीं तिनके ग्रास मोरके अण्डे समान क्योंकर होसकैंतहां उतने परिमाणवाली

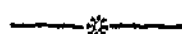
पत्ते की दोनी आदि से नाप तौल करनी चाहिये– और इन्हीं ग्रासों के परिमान किसी ग्रन्थ में मुर्गाके अराडे समान किसीमें बहुत बड़े हरे आवँरे के समान इत्यादि भेद जहां देखिपरें तिनको भी मनुष्यों की शक्ति के भेद पर समझि लेना क्योंकि मोरके अराडा से ये सब छोटे हैं–और जो गौतम ने चौदसि का उपवास फिर पूर्णमासी से पन्द्रह ग्रास का प्रारम्भ लेकर महीनाकी दूसरी पूर्णमासी तक चान्द्रायण की समाप्ति कही तिसमें चौदसि पूनों के दो दिन बढि जाने से बत्तीस दिन होगये सो यह एक दूसरा पक्षांतर समझि लेना कि जहां कोई बत्तीस दिनकी विशेषता से करनाचाहै सिर्फ तहांका यह नियमहै सर्वत्र नहीं क्योंकि सर्वत्रका सामान्यवही नियम है जोकि याज्ञवल्क्य आदि अनेकों ने तीस दिनका चांद्रायण ठहिराया॰ कदाचित् बत्तीस दिन वाला भी सर्वत्र के निमित्त माना जाय तो यह विरोध खड़ा होता है कि जब कोई कहीं एक सम्वत्सर में निरन्तरबारह चांद्रायण की साधना कियाचाहै तहांपूरे बारह न होसकें तथापि यदि ऐसा समाधान दियाजावै किबारह पूरे करने के लिये एक सबत्सर से उपरान्त दिनबढाये जासक्तेहैं जिससे बारहमहीने और चौबीस दिनमें प्रयोग पूरा होगा॰ तहां यह सबसे बड़ा व्यतिक्रम है कि चांद्रायण चन्द्रमा की गतिके ऊपर होताहै वह गतिभी इतने दिन बढानेसे सर्वत्र छूटि जायगी कि जिसके छूटिजानेसे मुख्य क्रमका व्यतिक्रम होजायगा इति मिताक्षराकारा॥०॥एक यहबार्ता यादिरखनी चाहिये कि विधिमें चन्द्रमाका उपस्थानआदि कहिचुके हैं सो वह चन्द्रमा का उदयहुये विना असगत है तिससे रोज रोज चंद्रोदय के समय पर विधान और पीछेसे उक्त ग्रासों का भोजन किया जायगा चाहे किसी बेरा उदयहोय इसीकारण चांद्रायण व्रत सबसे कठिन कहाता और इसीसे अमावस को एकभी ग्रास नहीं खायाजाता क्योंकि उस दिन बिल्कुल उदय नहींहोताहै–परन्तु ऐसा नियमभी उन्हींको समझना जो साक्षर सज्ञान विद्वान् होते सम्पूर्ण विधिके साथ साधें अन्यथा मूर्ख जन उदय होने बिनाभी रात्रिमें किसी एक नियत समयपरग्रास खाकर व्रत करते हैं क्योंकि जो चन्द्रोदयके आधीन करनाचाहै तोफिर नियत व्रत का होनाभी उनसे रहिजाय तिससे उत्तम कल्पको उपेक्षासे मन्द कल्पका स्वीकार कराया जाता है (गौतम की कही विधि के प्रारम्भ में पूर्णमासी पहिले जो मुंडन कराना कहा यद्यपि चतुर्दशी में क्षौर कर्मका निषेध है तथापि वाचनिक विधि के विशेष वाक्यसे कुछ दोष नहींहै) सामान्य वाक्यसे विशेष वाक्य बलवान् होता है इसी लिये (तीर्थेक्षौर चतुर्दश्यां) तीर्थमें चतुर्दशी को क्षौर कराना योग्यहै यह

द्वयाद्वस्तनेनैकेनयड्रात्रंत्रिरात्रंवायुभुग्भवेत एतत्सोमायनंनाममहाकल्मषनाशनम्=अ-र्थात–गायकादूधसातदिनपी चैचारथनोंसे फिर सातदिन तीनथनोंसे पीवै फिरसात दिन दोथनोंसे पीवै फिरछै दिनतक एकथनसेपीवै फिर तीनदिनकेवल वायुपीकेरहे तो यह तीसदिनका सोमायन व्रत महापातकोंका विनाशकरने वालाहोताहै (इसमें चार वा तीन आदि थनोंसे दूधपीनाकहागया तिसका तात्पर्यकेवलयही संभवहै कि थनको मुट्ठीमें दाबिके दूधकी धारें मुहमें लीजायँ अर्थात बासन में दुहिकरन पीना चाहिये॥ इसीप्रकार ग्रन्थान्तर में चारों सप्ताह बराबर कहिकर इकतीस दिनका मासव्रत कहा सोभी कुछविरुद्धनहीं क्योंकि इकतीसदिनकाभी महीना विरलाहोता है–तथाचवचनं (सप्ताहंचेत्यतद्गोस्तनमखिलमथत्रीन्स्तनानद्वौतथैकंत्र्यहंचोपवासोयदिभवतितदामासिसोमायनंतत्)अर्थात सातसातदिन गायके स्तनइसक्रमसे यदिपीवै कि पहले सप्ताह भर अखिलसमस्त अर्थात चारोंथन दूसरे सप्ताहसेतीनथन तीसरे सप्ताहमें दोहीथनचौथेसप्ताहमेंएकहीथन पीकर पीछेसे तीनदिन कोरे उपवास भी कियेजायँ तो यह इकतीस दिनकेमहीनामेंसोमायन व्रतहोताहै–तदपिचांद्रायणधर्मकमेवेतिमिताक्षरा) अर्थात मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह सोमायन इसनामसे भीचांद्रायणकेधर्मवालेतुल्यसमझना–क्योंकि–हारीतनेपहिलेयहकहिकर किअबहम चांद्रायणका अनुक्रम कहेंगे और वह ऐसे होताहै जैसा चांद्रायणही समझाइके सो-मायनका भी अतिदेश किया तिससे=यह कहिकर मिताक्षराकार फिर कहिते हैं कि=उन्हीं हारीतने दूसरा एक सोमायन भी जुदा दर्शायाहै•सो देखो=यदाहमिता-क्षराकारः–यत्पुनस्तेनकृष्णचतुर्थीमारभ्यशुक्लद्वादशीपर्यन्तंसोमायनमुक्तं–यथा–चतुर्थीप्रभृति चतुस्तनेनत्रिरात्रं त्रिस्तनेनत्रिरात्रं द्विस्तनेनत्रिरात्रं एकस्तनेनत्रिरात्रं•एवमेकस्तनप्रभृतिपुनश्चतुस्तनांतं• यातेसोमचतुर्थीतिनूस्तयानःपाहितस्यैनमःस्वाहा• यातेसोमपंचमी यदीत्येवं यथार्थास्तिथिहोमा एकमासं एनोऽभ्यः पूतश्चंद्रमसः समानतांसलोकतां सायुज्यंचगच्छति इतिचतुर्विंशतिदिनात्मकं सोमायनमुक्तं तदशक्तविषयमितिमिताक्षरा–अर्थात–हारीत के कथन को मिताक्षराकार दर्शाते हैं कि हारीतने अँधियारी चतुर्थीसे प्रारम्भ करिके उजियारी द्वादशीतक चौबीस दिनका सोमायन कहाहै कि–चौथिसे लेकर तीन दिनतक चारोंथनों से दूधपीवै तीन दिन तीनथनोंसे तीनदिन दोहीथनोंसे तीनदिन एकही थनसे• इसीप्रकार फिर एकथनसे लेकर चारथन पर्यन्त करे अर्थात पहिले तीनदिन एकथनसे फिर तीनदिन दोथनोंसे फिर तीन दिन तीन थनोंसे फिर तीन दिन चारों थनों से (ये सब दोनों फेरे जोड़िके

चौबीसदिन होतेहैं इसमेंकुछ संदेहनहीं परन्तु इन्हीं सबदिनोंमें रोजरोज तिथियोंके नामसे तिथिहोम करना भी बताते हैं कि) पहिलेदिन चौथिमें चौथिके नामसे यह मंत्रबोले (यातेसोमचतुर्थीतनूःतयानःपाहि तस्यैनमःस्वाहा) दूसरेदिन पंचमी तिथि में उसीके नामसे यह मंत्र बोले(यातेसोमपंचमीतनूःतयानःपाहितस्यैनमःस्वाहा) इसी प्रकारषष्ठीआदिके नाम जोड़ि जोड़ि इसीमंत्रसे रोज होमकरै• येहीतिथि होमकहाते हैं एकमास करनेसे पापोंसे शुद्धहोकर मनुष्य चन्द्रमाके बराबरी दर्जेको पहुंचताहै उसके चन्द्रलोकमें रहिने पाताहै बल्कि चन्द्रमाके शरीरहीमें संयुक्तहोके रहिताहै— इतना सुनाइके मिताक्षराकारकहितेहैं कि हारीतनेयहचौबीसदिनका भी सोमायन बताया सो उनकेलिये समझना कि जिन लोगोंसेपूर्वोक्त इकतीस या तीसदिनकानहो सके (इसमे जोतिथियोंके होमकहे तिनमें केवल मन्त्रही कहिकर सामग्री कुछनहीं बताई न कोईसा विशेष लक्षणकहा तिससेभी प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि दूधकीवारें मुहमें लेते समय मुखसे और हृदय सेभी उन मन्त्रोंका उचारण करें यही स्वरूपहोम का बताया किन्तु अग्नि में नहीं) परंच (इसबातका समाधान कुछनहीं ज्ञाथआता और मिताक्षरा ने इसबातपर पकड़भी न खड़ीकरी कि साफ चौबीसदिनका अर्थात बताकर हारीतने वाक्य पूरा करनेके अन्तमें एक महीना क्यों कहि दिया—तथापि मर्यादा प्रियके विचार से हारीतके वाक्य में हेतु गर्भित ध्वन्यर्थ देखि परताहै कि बारह दिन थनों का दूध पीनेके पहिले तीन दिन कोरा उपवास करें फिर दुबारा बारह दिन थनोंको पीकर अन्तमें तीनदिन कोरा उपवास करें (इसमें विशेष भेद इतना है किऊपर मार्कंडेय आदिकोंने महीना भरमें एकहीबार तीन दिन वायुभक्षी होना कहाया हारीतने उसके दो भाग बनाकर दोनों पखवारे के आदि अन्तमें तीन तीन दिवस वायु भक्षी होना दर्शाया) तिनसे छःदिन उन्हीं चौबीस दिनमें जुड़िकर पूरा महीना ठहिरा कदाचित यह ध्वन्यर्थ न होता तो हारीत के मुखसे एक महीने का शब्द भी नहीं निकसता और ऊपर जो चौबीस दिनका नाम आया सो यह व्याख्या मिताक्षरा की प्रत्यक्ष है कि उसने बारह बारह दिनों का जोड़ समझाया कुछ हारीत के मुहका शब्द नहींहै• बल्कि हारीतने इसीलिये कृष्ण पाख के तीन दिन छोड़िके चतुर्थीसे थनपीनेका आरम्भ करना बताया फिर इसीलिये शुक्लपाख की द्वादशीतक थनोंकोपीकर पीछेके तीनदिन उपवासोंके अर्थ बाकी रखदिये और छः उपवासोंका कराना यह महीना भरका नाम रखिदेनेसे आपही सिद्धहोता है कुछ खुलासा कहिने की जरूरत नहींरही ॥ ३२५ ॥

यहां तक चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि सभी व्रत भेदोंके लक्षणमात्र कहेगये- अब योगीश्वर अगिले परिच्छेद में इन सबके साथ जो कुछ विधान करना शेषरहा सो दर्शावेंगे॥

अथसर्वेषांपूर्वोक्तव्रतादीनामनुष्ठानसमयोपयोगिक्रिया विधिप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः षडशीतितमः (८६)



इस परिच्छेद में चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि साधारण सभी व्रत भेदों की क्रिया विधि एकही कही जायगी कि जो सबके साथ काम आवे- अर्थात् जितने व्रतहोमआदि प्रायश्चित्तोंके स्वरूप पहिलेकहिचुके उनमेंसे जिसकिसी का अनुष्ठान कोई करनाचाहै तिसकेसाथ रोजरोज क्याक्या क्रिया करनी चाहिये सो सब यहां एक साथ इकट्ठी कहेंगे॥

(साधारणी कर्तव्यता)

कुर्यात्त्रिषवणस्नायीकृच्छ्रंचांद्रायणंतथा। पवित्राणिजपेत्पिंडान्गायत्र्याचाभिमन्त्रयेत् ३२६

अर्थः — त्रिषवणस्नायी बनिकर कृच्छ्र करे तथा चांद्रायण भी और पवित्र मन्त्रोंकोजपै तथा गायत्रीसेभीपिंडोंको अभिमन्त्रितकरै-अर्थात्-कृच्छ्रयाचान्द्रायण केदिवसों में पवित्र मन्त्रों को जपै और (उसमें जो पिंड नामसे गिनना ग्रास खागे कहे गये उन्हीं) पिडों पर भी वेदके पवित्र मन्त्र पढै तथा गायत्रीसेभी उन्हीं पिंडों को पवित्र करै-इन बातोंका ब्यौरेवार निर्णय अधिकोक्ति में देखना॥ ३२६॥

३२६ अधिकोक्ति:-योगीश्वरने इसवचन में कृच्छ्रों और चांद्रायणोंका मिला झूला साधारण एकही धर्म दर्शाया है कि अधिक उत्तम फल चाहने वाला इस रीति से करै (किन्तु यह तात्पर्य नहीं है कि दोनों को मिलाकर एक साथ करै) तहां कृच्छ्र जो प्राजापत्य आदि वर्णन होचुके प्रसिद्धहैं उनमें से जो कुछ कोई क्रिया चाहे यद्वा चान्द्रायणक्रिया चाहे उसीका यह बाकी रहा विधान है जो सर्वत्र नहीं कहा जासक्ता था अब कहिते हैं कि-त्रिषवणस्नान का नियम लेकर उन व्रतों को करै-परन्तु मिताक्षराकार इस पर यह अनुमत खडा करते हैं कि ३१८ तीन सौ अठारह मूलश्लोक में जो तप्तकृच्छ्र कहा गया था तिसको छोडिके यह नियम जानना

क्योंकि उसके मध्ये मनुने एकही बार स्नानका नियम साफ खोलिकर कहि दिया है (तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलाग प्रतित्र्यहंपिवेदुष्णान्सकृत्स्नायीसमाहितः) यह वचन उसी अविकोक्ति में आचुका तहां देखो—तिससे त्रैकालिक स्नान तप्तकृच्छ्र में न करे बाकी और सब तरहके व्रत विधानोंमें करे—क्योंकि—मनुने इस का प्रकार भी इस तौरसे कहाहै (त्रिरह्वस्त्रिर्निशायांच सवासाजलमाविशेत स्त्रीशूद्रपतितांश्चैवनाभिभाषेतकर्हिचित्) अर्थात—कृच्छ्रादि व्रत करने वाला पुरुष तीन बार दिनके आदि अन्त मध्यमें और तीनिबार राति के आदि अन्त मध्य में स्नान के निमित्तसे वस्त्रों सहित जलाशयमें कूदि कर गोते लगावे (इस वचन का यह तात्पर्य है कि जिस किसी व्रतके विधान का प्रयोजन विशेषकर दिनमें होताहो तिस के मध्ये दिनही में त्रिकाल स्नान करे या जिस किसी व्रतका विधान प्रायः रात्रि में करना परे तहां रात्रिही में तीनिबार और दिनमें मामूली एकबार स्नानकरे अथवा किसी स्त्री शूद्र आदिसे स्पर्शही अनायास होजाय या उनसे बात चीत करनीपरी हो तब उसके निमित्तसे चाहें रात्रिहो या दिनहोय तत्काल स्नान करिके शुद्ध होजाय इसी लिये दूसरे अर्धश्लोकमें कहिदिया है कि स्त्री और शूद्र और पतितों से बातचीत न करे इसी ध्वन्यर्थके आशयसे छे बारका स्नान वताया कि एक दो बार से लेकर चाहें छेबार तक नहाना परे पर अपने शरीर को प्रत्येक समय शुद्ध बना राखे और यही आशय अगिले अन्य वचनोंसे भी देखिलेना किन्तु आगे चलिकर कोई वचन दोही बारका स्नान वतावेंगे" तिससे छेबारका निर्विकल्प नियम नहींहै कदाचित् इसका निर्विकल्प मानाजाय तो फिर जहां दशदश हजार जपोंका आरंभ होय तिसमें पहर पहर प्रति स्नानके हेतुसे बड़ा भारी एक विघ्न खड़ा होजाय कि उस मामूली जप आदि कर्मको करने भी न देवे—हां—यह ठीकहै कि जो कोई अति मूर्ख होनेसे जप मंत्र आदि क्रियाओंको न करना जानै तिसको वारम्वार स्नानका अवकाश भी मिलसक्ताहै तथा अन्य कर्मोंके अभावमें छे बारके स्नानही का यदि नियमसाधै तो यह उसकेलिये एक तपमें गिनती होसक्ताहै—इसीलिये—मिताक्षरा कारने अपना यह अनुमत खड़ाकियाहै कि यह राति और दिनमें भी तीनतीनबार का स्नान सिर्फ उसके लिये जानना जो अति समर्थ होके नियम साधिसके किन्तु सबके लिये नहीं =मिताक्षरा कार फिर कहितेहैं कि—वैशंपायन मुनिने दोवार भी स्नान बतायाहै सो उसकेलिये जानना जिसपर त्रैकालिक न होसके—तथाच वैशंपायनः=स्नानंत्रिकालमेवस्याद्द्विकालंवाद्विजन्मनः (इतितत्त्रियवणास्नानाशक्तस्यवेदित

व्यमितिमिताक्षरा=अर्थात्—क्वच्छ्रोंमें द्विजाती को तीनों कालमें स्नान चाहियेअथ-वा दोही कालकरै=और जो=गार्ग्य मुनिने (एकवासाश्चरेद्भैक्ष्यंस्नात्वावासोनपीडये त्•तदतिशक्तस्यैव• एकवासाआर्द्रवासा• लघ्वाशीस्थंडिलेशयइत्येकवस्त्रतायाअपि शंखेनपाक्षिकत्वाभिधानादितिमिताक्षरा) ऐसा नियम कहाहै कि एकही धोतीसे स्नानकरिके भिक्षामांगै किन्तु भीजी धारण किये रहिके मांगै वस्त्र निचोड़ै नहीं• यहभी नियम शक्ति वालेका समुझना जिसकी देहसें बलहो•एकही वस्त्र राखने मध्ये शंखने भी यह कहिकर दर्शायाहैकि थोड़ासा हलुकाभोजन करिके स्थंडिल परसोवै अर्थात् ऊंची मारी रेतआदिकी चबूतरीबनाके उसपर लोटिरहै कपड़ानहींबि छावै॥०॥स्नानविधानं—स्नानकरनेका पूराविधानहारीतनेबतायाहैकिऐसेकरना= यथा=त्र्यवरंशुद्धवतीभिः स्नात्वाऽघमर्षणं तर्जले जपित्वाधौतमऽहतंवासः परिधाय सान्नासौम्येनादित्यमुपतिष्ठेत्=अर्थात्—तीनवार तीनों काल में स्नान करिके अथवा यथा संभवहो दोही कालमें स्नान करिके जल के भीतर अघमर्षसूक्त को जपिके प-श्चात् धुलाहुआ वस्त्र जो फटा पुराना न हो सो पहिन के (सदेवसौम्येदमग्रआसीत्) इत्यादि सामवेदोक्त सौम्य मन्त्रों को पढ़ते हुये सूर्यके सन्मुख खड़े होकर उपस्थान कर्म करै (यह तौ केवल स्नान करने की विधि कही चाहै तीन या दो अथवा एक ही बार का स्नानहो स्नान के साथही इतना करै॥ अथ पवित्रमंत्रविधानं—फिर योगीश्वरने जैसा मूलश्लोकमें पवित्र मंत्र जपने कहे तिनको आसनपर बैठि के जपै• इसमें यह सन्देह रहा कि वे पवित्रमंत्र कौनहैं तिनको जपै सो सब आगे मिताक्षरा कार समुझाते हैं देखो=पवित्राणिच=अघमर्षणदेवकृतः शुद्धवत्यस्तरत्समा इत्यादि वशिष्ठादि प्रतिपादितानामन्यतमान्यर्थाविरुद्धेयुकालेषुजपेत्•सावित्रींवा• सावित्रीं वाजपेच्चित्यं पवित्राणिचशक्तितः सर्वेष्वेवव्रतेष्वेवंप्रायश्चित्तार्थसादृतः इतिमनुस्मर णादितिमिताक्षरा=अर्थात्—पवित्र मंत्रोंके लक्षण८१ इक्यासीके परिच्छेद में वर्णन हुयेथे तहां ३०९ तीनसौ नौकी अधिकोक्तिमें वशिष्ठ के भी छे श्लोक देखो (सर्व वेदपवित्राणि) इसको आदि लेकर लिखे होंगे उनमें अघमर्षण देवकृत आदि अनेक मंत्रोंके नाम लक्षण जैसे वशिष्ठजीने कहे तैसे और भी ऋषियों ने जहां कहीं पवित्र मंत्र दर्शाएहों तिन सबहीको पवित्र जानो उनमें जे कोई मन्त्र जिसके प्रयोजन वाले समझिपरैं उसको उन्हींका जप करना चाहिये परन्च ऐसे समयोंपर करना चाहिये कि जिस वेरा प्रायश्चित्त सबंधी किसी मुख्य कामका कोई सा नियत समय न हो अर्थात् मुख्य कार्योंसे उपरालू जो फालतू समय बचते दीखें तिनमें जप करना चा-

हिये जिससे मुख्यकामोंका विरोध न होसके यह तात्पर्य है—अथवा—इन मंत्रों का बोध जिसको न होय वह सावित्री गायत्री को जपे क्योंकि मनुने भी यही नियम दर्शाया है कि चान्द्रायण और प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंमें भी सदा गायत्री जपे या अघमर्षण आदि पवित्र मन्त्रोंको या गायत्री और पवित्रोंको भी अपनी शक्तिके अनुसार चाहें दोनों तरह के जप करे=और भी=चौरासी परिच्छेद में ३२० तीनसौ बीस वाली अधिकोक्तिमें (अवजपादिनियमाः) इसी नामका पाठ देखो उसमें गौतमने यह लिखाहै कि (रौरवयौधाजपेनित्यंप्रयुंजीत॰ इति तदपि पवित्रत्वादेवोक्तं नतुनर्नियमाय) प्राजापत्यादिमें रौरवयौध नाम का सामवेदोक्त जप रोज करे॰ सो यह गौतमका कथन भी उस जपे केवल इसी अभिप्राय से समझना कि वह रौरव यौध जप भी पवित्र मंत्रोंमें गिनतीहै जैसे यहां पर दर्शाए हुये अन्य मंत्रहैं तैसा वह भी एक पवित्र मंत्रहै अर्थात् उस आज्ञासे नियमात्मक यह तात्पर्य नहींहै कि उसी को जपना चाहिये और मन्त्रोंको नहीं वल्कि उससे एक निदर्शन पाया जाताहै कि प्राजापत्योंके प्रयोगमें चाहे उसको जपे चाहें किसी औरही पवित्र मन्त्रको जपे अथवा गायत्री जपे॰ तिससे जो कोई सामवेदको न पढाहो तिसको रौरवयौधके वदले गायत्री आदिका जप करना निषेध नहीं है—और जो—उन्हीं गौतमने उसी विधिके प्रसंगमें (न मोहमाय मोहमाय) इत्यादि मन्त्रोंको दिखाइके यह कहाहै कि इतनी ही आहुतें घीकी चाहिये॰ सो इस वातको भी नियमात्मक न समझिलेना कि प्राजापत्योंमें सर्वत्र उन्हीं मन्त्रोंसे होम होता होगा सो कुछ नियम नहींहै—क्योंकि—मनु ने महाव्याहृतियोंसे भी होम करना कहाहै=यथाहमनु=महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यःस्वयमन्वहम् अहिंसासत्यमक्रोध मार्जवंचसमाचरेत्=अर्थात्—कृच्छ्र साधना के दिनों तक रोज रोज किसीकी सहायता विना अपने आपही (ओंभूः ओंभुवः ओंस्वः ओंमहः ओंजनः ओंतपः ओंसत्यं) इन महाव्याहृतियोंसे घृतका होम करे—घृतही से क्योंकि (आज्यंहविरनादेशे जुहोतिषुविधीयते॰ इति परिशिष्टवचनात्) परिशिष्टमें यह आज्ञा लिखी गईहै कि जहां कहीं होम करने कहेहो पर कोई हवि का नाम नहीं वतायाहो तहां घृतहीसे होम कियाजावे=यदि कहो कि यहांपर पवित्र मन्त्रों का वर्णन होरहाहै तिसमें महाव्याहृतियोंकी पवित्रता और उनका साधारण मंत्रत्व मनुकेवचनसे समझाया गया=उन्हीं व्याहृतियोंका साधारण मन्त्रत्व और पवित्रत्व भी षट्त्रिंशन्मतके ग्रन्थमें साफ साफ कहाहै=यथा=जपहोमादियत्किंचित्कृच्छ्रोक्तंसम्भवेन्नचेत् सर्वव्याहृतिभिःकुर्याद्गायत्र्याप्रणवेनच (आदित्यहणादुदकतर्पणा

दित्योपस्थानादेग्रं हणं=अर्थात्–जप होम आदि और इसी आदि शब्दसे जलतर्पण सूर्यका उपस्थान आदि जो कुछ कृच्छ्रोंमें कहा हो तिसका जानना या करना जहाँ सम्भव न देखिपरै तहाँ उन मन्त्रोंके विना भी वही जप होम आदि सब काम व्याहृतियों से गायत्रीसे और प्रणव ओंकारसे भी करै अर्थात् पूर्वोक्त मन्त्रोंके न मिलने से कामको न रोकै–इसीसे वैशम्पायनने ऐसा भी कहाहै कि (स्नात्वोपतिष्ठेदादित्यं सौरीभिस्तकृतांजलिः) अर्थात् स्नान करिके सूर्यके सन्मुख सौरी नाम की ऋचाओंको पढ़त अंजली बाँधि खड़ा होय (इसमें सूर्यकी ऋचाओंसे उपस्थान बताया और पहिले इसी अधिकोक्तिमें हारीतने सोमकीऋचाओंसे सूर्यका उपस्थान करना कहा था • तो इन दोनोंका विरोध छोड़ि विकल्प सिद्ध होताहै कि चाहैं इनसे करो या उनसे करो तुम्हारी इच्छा पर आरूढ है–इसी प्रकार और भी जे कोई पदार्थ इसमें कहीं पर विरोधी देखिपरैं तिन सबही का विकल्प मानि लेना और जो अविरोधी देखिपरैं तिनके समस्त भेदोंका समुच्चय मानिलेना कि यहभी और वहभी करना चाहिये=जैसे एक वृक्षकी अनेक शाखा उस वृक्षको एकही मूलपर आरूढ होनेसे परस्पर भेदवाली नहीं कहातीहैं–तैसे उसी शाखान्तराधिकरण न्यायसे सब स्मृतियोंका मूल एकही धर्मशास्त्र रूपी वृक्ष कहाता है तिसकी अनेक शाखारूपी स्मृतियां प्रसिद्ध हैं सबका एकही प्रत्यय होनेसे उन्हीं वैशम्पायन मुनिने कृच्छ्रोंके कर्मकी और उनमें जपकी संख्या की विशेषता तथा जप करने का प्रकार भी जुदे प्रकारसे कहाहै कि=ऋषभंविरजंचैवतथाचैवाघमर्षणम् गायत्रींवाजपेद्देवींपवित्रां वेदमातरम् शतमष्टशतंवापिसहस्रमथवाऽपरम् उपांशुमनसावापितर्पयेत्पितृदेवताः मनुष्यांश्चैवभूतानिप्रणाम्यशिरसाततः=अर्थात्–ऋषभ नाम के मन्त्रको और विरज नामके मन्त्रको तथा अघमर्षण को या वेदोंकी माता अतिपवित्र गायत्रीदेवी को जपै • रोज रोज कितना जपै सो कहिते हैं कि एकसौ या आठसौ या एकसहस्र या इससे भी अधिक अपनी शक्तिके अनुसार • किस रीतिसे जपै सो कहिते हैं कि उपांशु रीतिसे जपै या मनके भीतर जपै • उपांशुजप उसका नाम है जो कुछेक जीभ और ओठ हिलते मालूम होयँ पर शब्द उसका किसीको न सुनिपरै किन्तु अपना शब्द अपनेको समझि परताहो और मनकी वृत्ति देवता में लगी हो • इससे दूसरा जप मनके भीतर वह जानना जिसके ओठ बन्द होयँ तिनके भीतर नीचे ऊपर के दाँत परस्पर न भिड़ने पावैं और घाँटीमें जीभको जड़से जप होताजाय मनकी वृत्ति देवताके रूपमें लगीरहै • जप करनेके बादि देवता और पितरोंका तर्पणकरै मनुष्यों

का भी तर्पण और भूतों का भी तर्पण करै सबके पीछे शिर भुकाइ के प्रणाम करै–योगीश्वर ने मूलश्लोकमें पवित्रमंत्र जपने कहेथे तिनका ब्योरा सब यहां तक निर्णय होचुका ॥ ० ॥ पिण्डाभिमंत्रणंच–गायत्री पढिकर पिंडोंको अभिमंत्रित करना भी कहाया सो करना चाहिये=इसके मध्ये यमने एकजुदी विशेषता दर्शाई है कि=अंगुल्यग्रे स्थितंपिंडंगायत्र्याचाभिमंत्रितम् प्राश्याचम्यपुनःकुर्यादन्यस्याप्यभिमंत्रणम्=अर्थात्– पिंडोंको इसरीतिसे कि हाथकी अंगुरियों के अग्रभागमें एक पिंड थाँभिके एक मंत्र गायत्रीका पढ़ै तिसको खाइके आचमन करिके दूसरापिंड उसीप्रकार थाँभिके अभिमंत्रित करै पुनि उसकोभी खाइके आचमन करै इसीक्रम से जितनेग्रास जिसदिन के मामूली बनेहों सबको भोगै=पूर्वोक्त निर्णयके अनुसार यहाँ भी यह बात ठहिरी कि पिंडोंके अभिमंत्रण के मन्त्र जो गौतमने (३२४ तीन सौ चौबीसकी अधिकोक्ति में चान्द्रायण के विधानपर) दर्शाये थे कि (ओंभूः ओं भुवः ओंस्वः ओं महः ओं जनः ओंतपः ओं सत्यंयशः श्रीऊर्कइट् ओंजः तेजः पुरुषः धर्म्मः शिवः–इत्येतैग्रसानुमंत्रणंप्रतिमंत्रंमनसानमःस्वाहा इतिवासर्वानितैरेवग्रासान्भुंजीत) सो इनसे गायत्रीका विकल्प ठहिरा कि चाहैं गायत्री से भोगै या इन मंत्रोंसे भोगै= और जो=इन मन्त्रोंसे पहिले गौतमने ग्रास बनानेसे प्रथम उस हविष्यहीको अभिमंत्रित करना इसमंत्रसे बताया था कि (आप्यायस्वसंतेपयांसिनवोनव– इतिचैताभि र्हविषश्चानुमंत्रणं) सो यह एक जुदाकार्य होनेसे समुचय नहीं कियाजाताहै करने वालेकी इच्छारही स्वीकार करौ या मत करौ॥ ० ॥ मुण्डनविधिश्च–कृच्छ्रऔर चांद्रायण आदि व्रतोंको यदि कोई पाप कियेबिना केवल अपने अभ्युदयरूपी कल्याणकी अभिलाषा से प्रारम्भकरै तिसको मुंडन कराने की अपेक्षा नहींहै–परन्तु जब कोई पापों के प्रायश्चित्त मध्ये इन्हींका प्रारम्भ करै तब आरम्भ करते समय प्रथम मुंडन कराना चाहिये क्योंकि (वपनव्रतंचरेदितिगौतमः) गौतम के इसवचन से यह भी कर्मोंकी विधिका एक अंगहै=इसका ब्योरा वशिष्ठने दर्शायाहै=यथा= कृच्छ्राणांव्रतरूपाणांश्मश्रुकेशादिवापयेत् कक्षिरोमशिखावर्ज्जमितिकृच्छ्राणांव्रतरूपाणांव्रतरूपाणांवपनादीन्यंगानिवक्ष्यतेइतिशेषः=अर्थात्– प्रायश्चित्तों में व्रतरूपो जो जो कृच्छ्र करनेहोयँ तिनके आरम्भ में दाढ़ी मुच्छबालों आदिका वपन करावै परन्तु कांख और देहके रोमा तथा शिखाके बालोंको छोड़िके मुड़ावै•किन्तु वपन कराना भी व्रतके अंगोंमें गिनती है कि इसके बिना व्रतके अंग नहीं पूरे होते हैं॥०॥ यह वर्णन पहिले७७सतहत्तरि परिच्छेदमें आचुकाहै ३०१ तीनसौ एक मूल

श्लोक पूर्वार्धसे देखो• सभाके द्वारा प्रायश्चित्तका व्रतलेना कहा था तिसका लेना भी सिर्फ एकदिन पहिले सूचित हुआहै कि जिसदिन से प्रारम्भ करना चाहै तिसके पूर्वदिवस तीसरे पहर सभाके सन्मुख जाकर व्रतकी आज्ञा स्वीकारकरै=यदाहवशिष्ठ=सर्वोपायेयुसर्व्वेषांव्रतानांविधिपूर्वकम ग्रहणंसंप्रवक्ष्यामिप्रायश्चित्तेचिकीर्षिते दिनांतेनखरोमादीन्प्रवाप्यस्नानमाचरेत् भस्मगोमयमृद्वारिपंचगव्यादिकल्पितैः मलापकर्षणंकार्यंवाह्यशौचोपसिद्धये दंतधावनपूर्वेणपंचगव्येनसंयुतम व्रतंनिशामुखे ग्राह्यंवहिस्तारकदर्शने आचम्यातःपरंमौनीध्यायन्दुष्कृतमात्मनः मनःसंतापनंतीव्र मुद्वहेच्छोकमंततः=अर्थात्–प्रायश्चित्त करनेका विचार उत्पन्न होतेसमय सर्वत्र सभी उपायोंमें सबही व्रतोंका ग्रहण करना विधिके सहित कहिके समुझाऊंगा–अर्थात् दिनके अन्तमें सांझी ओर प्रायश्चित्ती पुरुष अपने शरीरके बाहरले अंगोंका शौच सिद्ध होनेके लिये बीसौनख और देहके रोमा तथा दाढ़ी मूछ आदि अच्छे मुडाइके स्नान करै• तहां राख गोबर मट्टी जल पंचगव्य आदि से बनाये हुये उवटनों करके मलाप कर्षण करना चाहिये किन्तु देहमें इसप्रकारकी चीजोंसे मालिश कराइके मैल छुटवाना चाहिये• तिससे पहिले दाँत भी धोकर पीछे शुद्ध स्नानकरै तिस पीछे पंचगव्य से आचमन लेकर निपट संध्यासमय तारे देखिपरने लगें तभी व्रतका स्वीकार करै फिर ग्राम बसती से बाहर जाके शुद्ध जलका आचमन करिके इससे आगे मौन साधिकर अपने किये पापको याद करते हुये मनमें बारबार संताप और शोक भी लातेहुये उनआचरणोंका निर्वाहकरै कि जो जो काम जिस व्रतमें जपतप आदि करने कहे हैं–इसीप्रकार–स्त्रियों को भी व्रतोंका परिग्रह लेना चाहिये–परन्तु इतना भेदहै कि स्त्रियों के वाल मूछ रोमा नखोंका मुड़ाना करवाना नहीं चाहिये क्योंकि बौधायन की स्मृति में यह कहाहै कि चांद्रायण आदि कृच्छ्र व्रतों में जो पुरुषको विधि कही गई वही स्त्रियों को भी होतीहै पर मूछ वाल आदिका वपन मुंडन कर्म छोडिके बाकी सब होताहै–यथा(चांद्रायणादिष्वेतदेवस्त्रियाः प्रसक्तं वपनवर्जमितिबौधायनस्मरणं–यहाँ–इस बातपर ध्यान देनाचाहिये कि जिनके मिताक्षरा रूपी दीपक से हम दीपक जोड़ते हैं उन्होंने वशिष्ठ और बौधायन के वचनोंसे व्यवस्था खड़ी करी है कि जैसा वशिष्ठ के वचन मे नखरोमा आदि पुरुषों को मुड़ाने कहे तैसा बौधायनके वचनसे स्त्रियोंको निषेधजानो–परन्तु उन्होंने अपने लिखे वशिष्ठहीके दूसरे वचन में कुछ धकाडभी न खडीकरी कि (कृच्छ्राणांव्रतरूपाणांश्मश्रुकेशादिवापयेत् कक्षरोमशिखावर्जमिति) यही वशिष्ठका पहिला वचनहै

इसमें पुरुषों को शिखा मुडाने का अपवाद किया सो भी सत्यप्रतीत होता है बल्कि काँखके बाल और खालमात्र के रोमोंका अपवाद किया सो भी शुद्ध प्रतीत होताहै तथापि दूसरे वचन में उन्हीं वशिष्ठने पुरुषोंको इन्हीं कर्मोंकी विधि कही तो यह एकही कर्त्ताके पूर्वापर वाक्यसे विरोध पायागया इसका कुछ समाधानभी न किया गया न इसपर ऐसे विरोध की पकड खडी करी गई–तथापि–मर्य्यादा प्रियके विचारसे यह समाधान प्रतीत होता है कि जब एकही मुखसे विधि और अपवाद दोनों कहेगये तौ फिर मुडानेकी विधि उनके लिये समझना जो अतिशय दुराचारी अति क्रूरहोके पापही में बुद्धि लगी राखते हैं•और रोमा आदि मुडानेका अपवाद उनके लिये समझना जिनसे दैवाधीन पाप होगया हो तौ फिर कुछ भी विरोध नहीं है और यही ध्वन्यर्थ अगले वचनों से मिलसक्ता है देखो ॥ ० ॥ वपन कर्म्म के बाबत एक जुदाभी न्याय कहा गया है=यथाहारीतः = राजावाराजपुत्रोवाब्राह्मणोवाबहुश्रुतः केशानांवपनंकृत्वाप्रायश्चित्तंसमाचरेत्केशानांरक्षणार्थंतुद्विगुणंव्रतमाचरेद्द्विगुणेतुव्रतेचीर्णेदक्षिणाद्विगुणाभवेत(एतच्च•महापातकादिदोषविशेषाभिप्रायेणद्रष्टव्यं) विद्वद्विप्रनृपस्त्रीणांनेष्यतेकेशवापनम् ऋतेमहापातकिनोगोहन्तुश्चावकीर्णिनः–इतिमनुस्मरणात=अर्थात–हारीतने कहाहै कि जहां प्रायश्चित्ती पुरुष कोईराजाहोय अथवा राजाकापुत्रहोय (यहांपुत्रके उपलक्षणमें बडिया जागीरदार भी राजाके पुत्रही कहातेहैं सो समुझेजायँ) अथवा बहुश्रुत विद्वान् ब्राह्मणहोय तौ भी बालों का वपन मुण्डन कराइकेही प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करै क्योंकारा इससे किसी का भी नहींहै परंतु यदिइनमें कोई केशोंका बचाना चाहै सो केशों की रक्षा हेतुसे दूना व्रत आचरै जहां कहीं दुगुना व्रत किया जाय तहां व्रतके पूरे होने वाली दक्षिणा भी दूनी होय(परंतु यह नियम केवल महापातक आदि बडे दोषपरसमुझना क्योंकि अगले मनुवचनका साफ यही प्रयोजनहै कि) विद्वान ब्राह्मण तथा राजा तथा स्त्रियोंके बालमुडाने नहींचाहिये परंतु महापातकी और गोहंता औरअवकीर्णी को छोडि के यह नियम समुझना अर्थात वही तीनों विद्वान् विप्र या ब्रह्मचारी राजा वा स्त्री यदि महापातकी हुये हों या गोहत्या करी हो या ब्रह्मचर्य लेकर अवकीर्णी हुये हों तिनको प्रायश्चित्त के आरंभमें अवश्य मूडमुडाना होगा किंतु मुडाने का निषेध इन पापोंसे उपरान्त में समुझना ॥ ० ॥ जाबाल मुनिने इस बातपर कुछ और भी जुदा प्रकार कहाहै =यथा=आरंभेसर्वकृच्छ्राणांसमाप्तौचविशेषतः आज्येनतुहविःशालामनोजुहुयाद्याहृती·पृथक् श्राद्धकुर्यात्तांततगोहिरण्यादिदक्षिणा

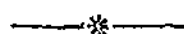
=अर्थात्-सर्व इच्छाओं के आरम्भ समय और समाप्ति के समय भी जुदा करके उस अग्नि में घीसे व्याहृतियां जुदी जुदी होमें जो घरकेबाहर की अग्नि घरसे बाहर होय किंतु ऐसा होम घरमें नहींहोता और व्रतकी समाप्ति होजाने पीछे श्राद्धभीकरै और गाय सुवर्ण आदि उत्तम दक्षिणाभी देवै ॥ ० ॥ यमने इसपर और कुछ विशेषता दर्शाई है=यथा=पश्चात्तापोनिवृत्तिश्चस्नानंचांगतयोदितम् नैमित्तिकानांसर्वेषांतथाचैवानुकीर्तनम्= अर्थात्-सब तरह के प्रायश्चित्तों का अंग प्रत्यंग रूपी ये काम कहेगये हैं जिनके होनेसे व्रतोंकी सिद्धि हुआ करती है• तिनमेंएक पश्चात्ताप है कि मुझसे ऐसा कर्म होगया धिक्कार है इत्यादि• उन्हीं में दूसरा एक निवृत्ति है कि फिर ऐसा काम कभी न मुझसे होना चाहिये अमुक प्रकारसे निवृत्त रहिसक्ता हूँ इत्यादि• तीसरा स्नानहै कि जहांतक होसके वार वार किया करै गहिरे जल में बहुत से गोता लियाकरै मन्त्रों के विधान से स्नान किया करै (इसीलिये त्रिषवण की विधि पहिले कहचुकेहैं) इत्यादि• चौथा अनुकीर्तनहै कि अपने किये पापको बारम्बार सबको सुनाया करै तिससे भी पापकी हानि होतीरहती है अर्थात् सुनने वालोंको थोड़ा थोड़ा बँट जाता है [इसमें सन्देह न करना जैसे कथा पाठ पूजा के मन्त्र आदि सुनिके कुछ अच्छा फल मिलता है उसी प्रकार पापकी बात सुनिकेभी अवश्य उसका फल भाग सुनने वालों को पहुँचताहै जैसे वायुके योगसे सुगन्धि और दुर्गन्धि दोनों का कुछ कुछ फलभाग सबको नाकोंमें बिना चाहे पहुँचि जाताहै तैसे अच्छी बुरी दोनों भाँति की वाणी के स्वरसे कानोंके द्वारा असर पहुँचता है-इसी लिये-मनुने इनबातोंके जुदेजुदे वचन कहिकर सबका ब्यौरा समझाया है=यथा=ख्यापनेनानुतापेनतपसाऽध्ययनेनच पापकृन्मुच्यतेपापात्तथादानेनचापदि ॥ यथाय थानरोऽधर्मस्वयंकृत्वानुभाषते तथातथात्वचेवाहिस्तेनाधर्मेणमुच्यते ॥ यथायथामनस्तस्यदुष्कृतंकर्मगर्हति तथातथाशरीरंतत्तेनाधर्मेणमुच्यते ॥ कृत्वापापंहिसंतप्यतस्मात्पापात्प्रमुच्यते नैवंकुर्यांपुनरितिनिवृत्यापूयतेतुसः ॥=अर्थात्-मनुकहितेहैं किपापी अपना पाप सुनाते रहिने सेभी शुद्ध होता तथा अपने मनमें धिक्कार आदि प्रकारों से पछतावा करते रहिकर भी शुद्ध होता है और कठिन तपकरने सेभी तथावेदपाठ गायत्री आदि मन्त्रोंका जप करने से भी शुद्ध होताहै तथैव दानकरने सेभी शुद्धहोता है ॥ मनुष्य अपने अधर्मको जैसे जैसे आपही अधिक लोगोंको सुनाता है तैसे तैसे सर्पकी तरह पुरानी खाल सी छोडिके शुद्ध होजाता है ॥ जैसे जैसे पापीका अन्तःकरण अपने किये खोटे कर्मकी निन्दा अपने मनके भीतर करताहै तैसे तैसे उसका

शरीर उसअधर्मसे बचताहै उसबचनेसेभी पहिला पाप क्षीणहोताहै।इसीलियेपूर्वोक्त यमके वचनमें ये बातेंभी प्रायश्चित्तका अंग ठहिराईगई ॥ पाप होजाने पर सन्ताप करिके वह पापी शुद्धहोताहै जो सन्तापकेसाथ ऐसीप्रतिज्ञारोपै कि फिर आगे को नया पाप कभी न करूँ इस प्रकार अपने चित्तको हटाकर शुद्धहोताहै तिससे प्रायश्चित्तोंका यहभी एकअंगहै ॥ यहां ये मनुकेवचन इसप्रसगसे स्थापनकियेगयेहैं कि प्रायश्चित्तोंकाअंग इनवातोंको समझिके रोजरोजको विधिकेसाथ भावना इनकी भी करो ॥ इनकेसिवाय बहुधा बातोंका त्यागभी ब्रह्मचर्यके हेतुसे कर्तव्य है=तदाह यम.=गात्राभ्यंगंशिरोभ्यगंताम्बूलमनुलेपनम्व्रतस्थोवर्जयेत्सर्वंयच्चान्यद्बलरागकृत=अर्थात्–देहकाउबटना तेलकालगाना शिरकेशनमलनाचुपड़ना पानखाना सुगन्धोंका लगाना और कोईचीज ऐसी जो लगाने या खानेसेशरीरमें रागरागवत या बलउत्पन्न करतीहो तिसकासेवन इनबातोंको वहपुरुष नकरै जो ब्रतमें लगाहो (मिताक्षराकार कहिते हैं कि इत्यादि और भांतिकी कर्तव्यता जो अन्य स्मृतियों में देखिपरै सो भी माननी चाहिये)ऊपर कही विधियों के अनुसार ब्रतको धारण करिके अवश्य पूरा करना चाहिये• अन्य था दोषभागी भी होताहै यदि नहीं पूराकरै=तदाह छागलेय·=पूर्वंव्रतंगृहीत्वातुनाचरेत्कामतोहियः जीवन्भवतिचांडालोमृतःश्वाचैवजायते= अर्थात्–पहिले ब्रतको लेकर पीछे जो कोई अपनी इच्छा से नहींकरै वह जीवता हुआ चांडाल कहाताहै और मरे पर कुत्ता होके जन्मता है•यह विस्तार केवल संचय के निमित्तसे दर्शाया गया (इस परिच्छेदके विचारों में सर्वत्र ७५ पचहत्तरि परिच्छेदका संबंध मिलारहेगा कि इसके साथ उसको भी विचारना ॥ ० ॥इस परिच्छेदकी व्यवस्था में त्रिकाल और यद्काल स्नानोंकी विधि यद्यपि प्रधानता सहित कही गई है तथापि इसके साथमें ७५ पचहत्तरि परिच्छेदवाली व्यवस्था का विचार करना आवश्यकहै कि उसके द्वारा देशकाल ऋतुओंके अनुकूल विधिकरवाईजाय अर्थात् जहां गरमीका देश या गरमीकी ऋतुवर्तमान हो तहां अवश्यभाव से यद्काल या त्रिकालका वर्ताव किया जाय इससेविपरीत जहां शीतदेश याशीत ऋतु फैलीहो तहां अति बलवान् देहवालेके सिवाय साधारण प्रायश्चित्तीकोस्नान की आवश्यकता से अधिक सनशें पर भी चाहिये अन्यथा एक दो कालका स्नान चाहिये कि जिससे प्रधान कर्मोंका अवरोध न होने पावे•इसीलिये इसअधिकोक्ति के प्रारम्भ में तप्तकृच्छ्र के प्रसंगसे चर्चा इसका आचुकाहै वहभी देखो ॥ ३२६ ॥

इतिसर्वव्रतांगभूतविधिकथनपरिच्छेदः॥

इतिसर्वकृच्छ्रादिव्रतभेदानांदानजपहोमादीनांच स्वरूपविधायकंप्रकरणम्

पंचपरिच्छेदमयं



इसप्रकरण में समस्त पाँच परिच्छेदहैं अर्थात् ८२बयासी परिच्छेदके प्रारम्भसे लेकर८६ छहासी परिच्छेदके अन्तमेंआकर यहाँतक पांचपरिच्छेदेंसे प्रकरणपूरा भया॰ क्योंकि एकही प्रयोजन के पांच भेद जुदे किये गये इनमें भी सबसे पिछला एक छहासीका परिच्छेद अपने संघाती चारो परिच्छेदों पर अधिष्ठाता है तिससे सबही के साथ इसका विचार करना चाहिये॥

अगिले परिच्छेद में यह युक्ति निकासी जायगी कि सभी व्रतदान आदि सभी पापोंपर आरूढ होसक्ते हैं परन्तु आरूढ करसकना बहुत कठिन है तिसका विचार बहुधा प्रकारों से दर्शावेंगे॥

अथ अनादिष्टपापेष्वपिचांद्रायणादिकैः सर्वैरपिव्रतभेदैः समस्तैर्व्यस्तैर्वाऽऽम्नातैरनाम्नातैर्वाशुद्धिर्भवतीत्यादिव्रत होमजपदानादीनांसर्वसाधारणविचारप्रधानोऽयं परिच्छेदः सप्ताशीतितमः (८७)



इस परिच्छेदमें प्रधानता इस बातपर आरूढ है कि जिन पापों पर किसी व्रत का आदेश नहीं कियाहो उनमें भी येही सब कृच्छ् और चान्द्रायण आदि प्राय॰ श्चित्त बताये जासक्ते हैं–दूसरा–यह भी तात्पर्य है कि जिन प्रायश्चित्तों का जिन पापोंपर आदेश किया तिनमें और जिनपर उनका नहीं आदेश किया तिनमें भी सब सभीसे सयुक्त किये जासक्ते हैं–इसका ब्योरा नीचे परिच्छेद विवेकमें देखो॥

परिच्छेदविवेकः—अर्थात इस परिच्छेद के स्वरूप मात्र का तात्पर्य विवेचन करो • चक्रमें विस्तार नहीं किया जासक्ता तिससे उसी संक्षेप का यह ब्योरा है कि—यद्यपि सर्वपापोंके नामभेद कहि कहि उनके प्रायश्चित्त भी साथही समझाते रहे • तथापि यह संसार सागर अपारहै न जानें किस बेरा किस जगह किन मनुष्यों से कैसा कोई अपूर्व पाप होजाय जिसका विशेषनाम धर्मशास्त्रमें नहीं निकसै तिस से प्रायश्चित्त विचारने वाले पण्डित की बुद्धि चक्कर खाने लगै क्योंकि जिसका नाम नहीं तिसका प्रायश्चित्त भी क्योंकर लिखा मिल सके तहां पर यह तात्पर्य नहींहै कि नाम लिखा न होने से प्रायश्चित्त न करना चाहिये अर्थात उस पर भी प्रायश्चित्त कराया जाय और इन्हीं सब कृच्छ्र प्राजापत्य और चान्द्रायण आदिमें कोईसा बताना होगा उसीबताइ सकनेकी रीति बड़े शोच विचारके साथ इस परिच्छेद भरमें जानी जायगी—परंतु—केवल यहीनहीं वल्कि दूसरा यह भी तात्पर्यइसी परिच्छेद मे आरूढ कियागयाहै कि जिनजिन व्रतादिक प्रायश्चित्तोंको जिन पापों पर नहीं कहा तिनपर भी करवाये जासक्ते हैं अर्थात जिनपापों पर जिन व्रतों का नाम रक्खागया कि इसके करनेसे शुद्धि होजायगी सोतो किये जाँहींगे वरन उन्हीं पापोंपर वेभी कियेजासक्तेहैं कि जिनकाआदेशउनपर नहींकिया अन्यपापोंकेसाथ चाहैं किसी स्थलपर कियागया हो—किंतुकुछ यहीनियम नहींहै कि जिस पापके नामसाथ जिसकिसी व्रतदान आदिप्रायश्चित्तका नाम धरागया हो उसीसे निर्विकल्प शुद्धिहोगी और किसीप्रायश्चित्तसे न होगी—इसीभांतिका मिटाना चाहिकर यह जुदापरिच्छेद कहागया है—और ठीकठीक प्रयोजन इसकायहीहै कि सबतरह के प्रायश्चित्त जोकुछ किसी बहानेसे वर्णन कियेगये सोसबंध सबतरहके पापों पर कराये जासक्तेहैं जहां जैसासंभव देखि परै कि जिस पापके ऊपर जो प्रायश्चित्त लिखा देखें और उसका साधन होसकना प्रायश्चित्तीसे दुर्घट देखि परै तहां उसके पलटे औरही किसी प्रायश्चित्त का आदेश किया जासक्ता है जो उसीकी बराबर समझा जाय जिसको प्रायश्चित्ती पुरुष अपनी शक्ति आदि के अनुकूल कर भी सके • इतनी बड़ी कथा को योगीश्वर (अनादिष्टेषुपापेषु) इसी एक पादसे दर्शावैंगे सो नीचे देखि लेना • तहां इस एकही अथवा दो पादों से अनेक तरह के ध्वन्यर्थ समझि पाना बड़ा दुर्घट होजाता तिसकी सुगमताके निमित्त मे मिताक्षराकारने ग्रन्थान्तर के संग्रहसे व्यवस्था विस्तृत करी सो सब आगे परिच्छेद भरका आलोडन मथन करिके समझी जायगी उसीका सारांश लेकर (बतौरखुलासह) मर्यादा प्रिय

अनुवादकारने यह कथा निरूपण करी अब इस कथाके अवलम्ब से उसको भी हर एक पाठक समझेंगे अन्यथा यदि यह फालतू कथा नहीं लिखी जाती तो फिर उसमेंसे कोई बात समझिपाना भाया अनुवाद होते हुयेभी महासमुद्रकी गोतहखोरी से कम न होता • क्योंकि महाशय मिताक्षराकारने ऐसी अटपटी अनवेटसे व्यवस्था धरीहै कि बुद्धिमान भी समझिपावैं और नहीं समझिपावैं पछिताताही रहिजाय• यह नहीं कि वे उसको सुगम रीतिसे नहीं समझाइ सक्तेथे या उसवातका कोई मार्गही और नहीं था क्योंकि ग्रन्थकार पुरुषोंको लिखने समझानेकी कल्पनामध्ये नाना प्रकारकी रीतें मालूम होतीहैं परन्तु (कर्तुरिच्छागरीयसी) अपनी इच्छाके आधीन जहाँपर जैसा चाहें तहाँ तैसाही लिखते हैं यहां पर उनको यही स्वीकार था• हमारा केवल यह तात्पर्यहै कि ऐसी कोई लपेट की आड़ बाकी न रहिजाय जिससे मुख्य प्रयोजनके समझनेमें भ्रांति खड़ीहोय अन्यथा यही वार्ता ऊपर चक्र में देखो कि चार पांच पङ्क्तियोमें कहिचुके उसीका इतना बड़ा ब्योरा कहा•तथापि यह सन्देह अभी खड़ाहै कि जब सभी पापोंपर सभी प्रायश्चित्तों का अदल बदल होसक्ताहै तो फिर छोटे बड़ोंकी विषमता वाला विरोध क्योंकर शांत होगा कि जिन प्रायश्चित्तोंका स्वरूप छोटाहो वे क्योंकर बड़े प्रायश्चित्तों के स्थान पर शोभित होगे इत्यादि सन्देह सब अपने अपने ठिकाने पर निपटाये जायँगे॥

(अनादिष्टानामपियोगः)

अनादिष्टेषुपापेषुशुद्धिश्चांद्रायणेनच। ३२७ (पूर्वार्ध)

अर्थः—अनादिष्ट पापोंमें चान्द्रायणसे शुद्धि चपुनः अन्य व्रतोंसेभी (तथाचकारस्योभयत्रयोगे2थीतर्रासिद्धिस्तु) चकारको पापों के साथ भी युक्त करने से दूसरा भी अर्थ सिद्ध होता है कि अनादिष्ट पापों से भी चान्द्रायण से तथैव अन्य व्रतादि कोंसेभी शुद्धि होतीहै=अर्थात्–चान्द्रायणसेभी तथैव अन्य भांतिके सबप्रायश्चित्तों से भी अनादिष्ट और आदिष्ट सबतरह के पापोंकी शुद्धि होसक्ती है यदि श्रेष्ठ विचारसे कार्य कियाजाय (आदिष्ट उन पापोंको जानना जिनपर किसी प्रायश्चित्त का आदेश कियागयाहो • यहाँ यह तर्क है कि सभी पापोंपर किसी न किसी प्रायश्चित्तका आदेश लिखा होताहै•तिससे ऐसा अर्थ लगाना कि उन्हीं प्रायश्चित्तों के मुकाबिल उनको आदिष्ट कहिना चाहिये जिनका आदेश जिन पापों के ऊपर लिखाहो • इसी रीतिसे उन प्रायश्चित्तोंके मुकाबिल अनादिष्ट पाप समझने जिन

का आदेश जिनपर नहो • और उनको भी अनादिष्ट पाप जानना जिन पर निपट किसी भी प्रायश्चित्तका नाम न धरागयाहो ऐसे दैवयोगसे कदाचित हाथ आसक्ते हैं इसी लिये इनका भी इशारा जाहर किया गया (इन बातो का विस्तार ऊपर लिखिचुके तहाँ देखो (यदि श्रेष्ठ विचारसे कार्य कियाजाय यह कहा सो उस श्रेष्ठ विचारको अधिकोक्ति में सीखना। ॥ ३२७ ॥ (पूर्वार्धश्लोक) ॥

३२७ अधिकोक्ति—योगीश्वर के मूलश्लोक पूर्वार्धके अन्तमें चकार है तिसके अर्थ जो कुछ ऊपर कहि चुके उनसे उपरालू भी कुछ और तात्पर्य केवल उसी चकारसे समुच्चय मानागया है कि (च शब्दात प्राजापत्यादिभि• कृच्छ्रैरेवसहितैस्त न्निरपेक्षैर्वाशुद्धिः) प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोसे एक एक जुदे जुदेसे भी शुद्धिहोती है या कईको मिलाकर एक साथ भी करनेसे होती है इसका दृष्टांत जैसे चान्द्रायण और प्राजापत्य और अतिकृच्छ्र तीनो आगे पीछे क्रमसे कियेजायँ या इनमेंसे एक ही कोई कियाजाय यथा सम्भव होय=इसका प्रमाण भी षट्त्रिंशन्मत का वचनहै कि=यानिकानिचपापानिगुरोर्गुरुतराणिच कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तुशोध्यन्तेमनुरत्र वीत=अर्थात—बड़ेसे बडे भी जे कोई पापहो तिनको मनुने सुभायाहै कि• कृच्छ्र • अतिकृच्छ्र • चान्द्रायण • इन तीनोका क्रमसे एक साथ साधन होय तो शुद्धिजाते हैं • (यहाँ इन तीनोका समुच्चय कहागया जैसा इन तीनिका समुच्चय तैसा और जप दान होम आदि का भी समुच्चय होसक्ता समझिलेना जहाँ जैसा उचित जानि परे) यही नियम नहीं कि पूरे तीनि का समुच्चय होताहो किन्तु उशना ने दोही का समुच्चय दर्शाया है कि=दुरितानांदुरिष्टानांपापानांमहतामपि कृच्छ्रं चान्द्रायणंचैव सर्वपापप्रणाशनम=अर्थात—उपपातक रूपी दुरितोका और पातकरूपी दुरिष्टो का और महापापोंका भी सबका नाश करनेवाला कृच्छ्र और चान्द्रायणको जानो जो आगे पीछे लगसा कियाजाय (जैसा इन दोनोका समुच्चय कहा तैसा औरों का भी परस्पर दो मिलिके समुच्चय होना समझि लेना जहाँ जैसा प्रयोजन होय=इतना कहिकर मिताक्षराकार लिखतेहैं कि (गौतमेनतु• कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्त समासकरणेनैन्दव निरपेक्षताकृच्छ्रातिकृच्छ्रयो सूचिता चान्द्रायण स्यचतन्निरपेक्षता इतिशब्देन ययार्णसमुच्चय) अर्थात—गौतम ने सर्व प्रायश्चित्तो की समस्या करिके चांद्रायणको कृच्छ्र अतिकृच्छ्र इन दोनोसे सगायर (निरपेक्ष) ठहिराया और इन दोनो को उसी चान्द्रायण का निरपेक्ष ठहिराया और वेवास्ते भी इति शब्दसे तीनोका समुच्चय=फिर कहिते हैं कि (लघुदोषेत्वनादिष्टेप्राजापत्य

समाचरेत्) इस वचनमे चतुर्विंशति मतवालोंने केवल प्राजापत्यही का नैरपेक्ष्य (बेवास्तगी) सबसे जुदापन अनादिष्ट पापके मध्ये दर्शाया किन्तु • इस वचन का यह अर्थहै कि लघुदोष रूपी अनादिष्ट पापके मध्ये प्राजापत्य आचरै (यह वचन इस ध्वनिपर कहागया है कि अनादिष्ट प्रायश्चित्त वाला पाप जब कभी उत्पन्नहोगा तो प्रायः अतिछोटे पापोंमें गिनती होगा क्योंकि बडे पापोंसे लेकर छोटों तक सब हीके जुदे जुदे नाम कहिकर उनके साथ प्रायश्चित्त भी कहे गये तिससे बड़े पापों में कोई भी अनादिष्ट कभी नहीं पैदा होसका है=मिताक्षराकार फिर कहितेहैं कि-गौतमने भी प्राजापत्य आदिकोंका परस्पर सबका नैरपेक्ष्य अर्थात् जुदापन भी बर्णाया है=यथा=प्रथमचरित्त्वाऽशुचिपूतःकर्मण्योभवति द्वितीयचरित्त्वायदन्यन्महा पातकेभ्यः पापङ्कुरुतेतस्मान्मुच्यते तृतीयंचरित्वा सर्वस्मादेनसोमुच्यते • इतिमहा पातकादपीत्यभिप्रेत=अर्थात्-इसमें निरपेक्षता जुदाई का यही एक चिह्न है कि किसी व्रतका नाम नहीं धरा चाहैं कोईसा एकहो तिसको पहिलीवार उसको अवधि भर आचरित करिके अशुद्धतासे पवित्र होकर सुकर्म करने के योग्य होजाता है फिर शुद्ध होके दूसरी बार आचरित करने से जो महापातकों के उपरान्त उनसे नीचे दर्जेमें बड़ा पाप किया हो तिससे छूटि जाता है एवं तीसरी बार करने से सभी पाप छुटिजाता है अर्थात् बड़ेसे बड़ा महापातक भी मिटि जाता है=मनुने भी यह कहाहै (पराकोनामकृच्छ्रोऽयंसर्वपापापनोदनः) यह पराक नाम कृच्छ्रहै सोई सब पापोंका विनाश करनेवाला है (अर्थात् छोटे पापोंपर एक वार बड़े पापों पर दो तीन वार बहुत बड़े पापोंपर अनेक आवृत्तीं साधन करनेसे अकेलाहो सबतरह के पापोंपर काम देसक्ता है किसी दूसरे व्रत का शामिल करना कुछ आवश्यक नहीं यह तात्पर्य है कि पराक व्रत भी सब तरहके पापोंपर किया जासका है कुछ वही नियम नहीं कि जिसपर उसका नाम धराहो=हारीतने भी सर्वपापों पर अनेक प्रायश्चित्तों का जुदा जुदा वर्ताव करना कहाहै=यथा=चान्द्रायणंयावकश्च तुलापुरुषएववा गवांचैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम्-तथा-गोमूत्रगोमयक्षीर दधिसर्पि कुशोदकम् एकरात्रोपवासश्चश्वपाकमपिशोधयेत्=अर्थात्-चांद्रायण या यावकव्रत एक महीने गोमूत्रके रंधे जौ खाकर किया जाता है या तुला पुरुष नामकाव्रत वर्णन होचुका है वही या गौओंके पीछे फिरते रहिने का व्रत वर्णन होचुकाहै वही अपने पापकी हैसियत के बराबर साधन करने से सर्व पापों के नाश करते हार ये सब एकही एक होतेहैं-तथा-गोमूत्र•गोवर•दूध•दही•घृत•कुशोदक पीना और एक

दिन कोरा उपवास करना यह चांडाल को भी शुद्ध करसकाहै फिर अन्य पापोंकी क्या गिनती रही (तात्पर्य इसका भी वही है कि पाप की बड़ाई अनुसार आवृत्तीं साधीजायँ कुछ एकहीबार करनेसे बड़े पाप नहीं मिटतेहैं यह सर्वत्र समझे रहिना= जैसा उन्हीं हारीत ने तप्तकृच्छ्रका रूप समुझाकर उसका फल इसरीति से कहाहै कि=सयकृच्छ्रोद्विरभ्यस्तःपातकेभ्य:प्रमोचयेत् त्रिरभ्यस्तोययान्यायंशूद्रहत्यांव्यपोहति=अर्थात् यह तप्त नामा कृच्छ्र दो बार साधन कियाहुआ उपपातकोंसे छुड़ाता है ऐसेही यथा न्याय तीनबार साधन कियाजाय तो यह शूद्र मारेकी हत्यासे छुड़ाताहै (ऐसेही बढ़िया पातकों पर तीनसें भी अधिक आवृत्ती कल्पित करीजायँ समुझिलेना क्योंकि यथा न्यायका ध्वन्यर्थ यहीहै=उशनाने भी यही तात्पर्य दर्शायाहै कि कहे विनकहे सर्व पापोंपर हरकोईसा प्रायश्चित्त लगाया जासक्ताहै =यथा=यवोक्तांयवानोक्तं महापातकनाशनम् प्राजापत्येनकृच्छ्रेणशोधयेचावसंशयः=अर्थात्–जहां इसकानाम कहिके बतायाहो या जहां कहीं नहीं भी कहाहो तो भी महापातक पर्यन्त नाशकरताहै तिससे जहांचाहे तहां प्राजापत्यनामी कृच्छ्र से पापोंका विशोधन करे कुछ सन्देह नहीं (सर्वत्र कहिनेका वही तात्पर्य्य है कि जैसा पाप हो तैसी आवृत्ती बढ़ावे=मिताक्षरा कार कहिते हैं कि प्राजापत्य आदि जिन व्रतोंके नाम अच्छे प्रसिद्ध हैं तिनको अनादिष्ट उपपातक आदि सभी में एक बार पापहोनेकी अपेक्षा यद्वा बारम्बारकिये अभ्यासोंकी अपेक्षा यथा संभवचाहैं जुदे किसी एकही प्रायश्चित्तको लगावे अर्थात् एकहीकी अनेक आवृत्तीं जितनी चाहै तितनी बढ़ावे अथवा प्रसिद्धमात्र सबही प्रायश्चित्त लगातारजोड़े अर्थात् एक पुरश्चरण इसका एक उसका एक तीसरेका इत्यादि सबका वर्त्ताव लगातारकरै तो भी कुछ दोष या विरोध कभी नहीं है–तथैव–जिन महापातक आदि में विरले व्रतोंका आदेश लिखा होय तिन आदिष्टों में भी यदि पाप का अभ्यास बारम्बार कियागयाहो तो फिर पापकी बढ़वारी अनुसार चाहैं उसी आदिष्ट प्रायश्चित्तकी आवृत्ति बढ़ावे चाहै जुदे नामवाले व्रतोंको लेकर उस आदिष्टकेसाथ जोड़ि लेवें= फिर कहितेहैं कि इसीलिये यमने भी (यवोक्तायवानोक्त) इत्यादि वचन जैसा उशनाका लिखागया तैसा कहाहै और=गौतमने भी उक्त निष्कृति पापोंके संग्रहार्थ ही सर्व प्रायश्चित्त ऐसा पद कहाथा–तथा–जो कि उन्हीं गौतमने (प्रथमंचरित्वा द्वितीयंचरित्वा इत्यादि वचनमें यहकहाथा कि तीसरा पुरश्चरण करके सभी पाप मुचजाताहै) सो यहसभी पापकहिना भी महापातकोंके अभिप्रायपरजानना किन्तु

सबका हिनेसे तुच्छपापोंकाप्रयोजनसमतसमुझिलेना औरयह भी सोचो कि महापातक ऐसा कोई नहीं जिसका प्रायश्चित्त न कहागयाहो तिससे उन्हींपापोंकायह प्रसंगहै कि जिनके ऊपर कोईसा प्रायश्चित्त भी यद्यपि लिखाहो तौ भी प्राजापत्य आदि अन्य प्रायश्चित्तभी यथा सम्भवकिसी प्रयोजनकीजरूरतमें समस्त व्यस्त प्रकारों से जोड़े जासक्ते हैं ॥ ० ॥ संप्रयोजनप्रकाराः—अनन्तरोक्तव्रतादि प्रायश्चित्त किसी कार्यान्तरमेंजोड़ेजानेके प्रकारभी अनेक हैं सो यथा क्रमसे यहां दर्शाते हैं कि—जिन पापोंपर बारहवर्षका प्रायश्चित्त लिखाहो तिनमें प्राजापत्य इस प्रकार से जोड़ा जासक्ताहै कि उन्हीं बारह वर्षों की अवधिमें अनेक प्राजापत्य साधन किये जायँ तो यह परम उत्कृष्ट फल देने वाली एक विशेषता जानो सो पापके अतिशय गौरवपन में यह प्राजापत्य का आदेश करना सूचित होताहै॰तिसका यहलेखाहै किप्राजापत्य नियमसे बारह दिनका प्रसिद्धहै तिससे एकमासमें अढाई होतेहैं सालभरके पूरे तीस हुयेबारहवर्षोंके ३६० तीनसौ साठि प्राजापत्य होतेहैं जहां पर इनका होना आवश्यकहोरहै तहां भी विकल्पसे कियेजासक्तेहैं अर्थात् पूराशक्तिमान पुरुष करसकेगा अन्यथा जिसमें इतनी शक्ति न होय सो इतनी तीनसौसाठि धेनुका गोदानकरै अर्थात् बारह बारह दिनपीछे एकगोदान दूधदेतीहुई सवत्साका बारहवर्ष पर्य्यन्त करतारहै तौ भीउतने प्राजापत्य करनेका फल प्राप्त होताहै॰यदि इसकाभीदानका असम्भवहो तौ सोरह मासे सुवर्णकी अशर्फीहो तीन सौ साठि देनी चाहिये—जैसा यहस्मृत्यन्तर वचनहै=प्राजापत्यक्रियाऽशक्तौधेनुंदद्याद्विचक्षणः धेनोरभावेदातव्यंमूल्यंतुल्यमसंशयम—अर्थात्—जिसको प्राजापत्य करनेकीशक्ति न हो ऐसा विचक्षण पुरुष धेनुका दानकरै धेनुके अभावमें धेनुका मूल्यहीदेवै परन्तु निस्सन्देह धेनुके बराबर मूल्यहो जितनेमें आसक्तीहो—अथवा—जिसको बराबर भी देनेको समर्थनहीं सो आधामूल्य देवै यहां सामान्यरीति से एक निष्क अशर्फी धेनुका मूल्य समुझो जैसा यह वचन है कि(गवामभावेनिष्कंस्यात्तदर्द्धपादमेववा) गौओंके अभावमें निष्कमूल्य कायम कियाजाय यहा उससे आधा वा चौथाई अपनी शक्तिकेसमान देवै=यदि कोई पुरुष मूल्य भी न देसके तिसको उतने दिन जलमें वासकरना चाहिये अर्थात् जितने प्राजापत्यों की जरूरतहो एक एक प्राजापत्य के बदले एक एक दिन जलमें वास करै (जलमें बैठनेका प्रकार २०५ तीनसौ चौथे मूलश्लोकसे कहाथा उसी जघे समुझि लेना परन्तु वहां पर शुद्ध पापों के हेतु से थोड़े दिन कहे गए सो नियमात्मक नहीं किन्तु यहां प्रकाश पापोंके प्रसगसे प्राजापत्यों की गिनतीसे कहागया) जल में भी

वेदना जिसपर न होसके सो गायत्रीका जपकरे॰कितना करे इसप्रश्नके उत्तरमें पराशरके अगिले वचनसे एक प्राजापत्यके बदले दशहजार गायत्री बारहदिनके कृच्छ्र की बराबर सिद्ध होतीहै उस लेखेसे ३६० प्राजापत्योंके स्थानपर ३६०००००छत्तीसलाख जप करना चाहिये जहां इनसे थोड़े प्राजापत्योंका बदल करनाहो तहां भी इसी हिसावसे एकही एक प्राजापत्य के बदले दशहजारका लेखा जोड़िलेना॰ क्योंकि बदला उन्हीं चीजोंसे होताहै जो आपसमें बराबरहों॰ जिन बातोंका बदला करना कहिचुके तिनकी तुल्यताका प्रमाण अगिला वचनदेखो=यदाहपराशरः=कृच्छ्रोऽयुतन्तुगायत्र्याउदवासस्तथैवच धेनुप्रदानंविप्रायसममेतच्चतुष्टयम=अर्थात्=प्राजापत्य नामी कृच्छ्र१ अयुत जप गायत्रीका२ एक दिनरातिजलमेंबैठना३ दूधदेती हुई सवत्सागायत्राह्मणकोदेना४ ये चारों परस्पर सब सबके बराबरकहातेहैं ॥ ● ॥ जो कि चतुर्विंशति मत ग्रन्थमें गायत्रीका जप छत्तीसलाखसे बहुत बढ़कर बताया गयाहै सो कुछ अशक्त पुरुषके नामसे नहीं किन्तु उसका जुदा तात्पर्य है=यथा=गायत्र्यास्तुजपन्कोटिं ब्रह्महत्यांव्यपोहति लक्षाशीतिंजपेद्यस्तुसुरापानाद्विमुच्यतेपुनातिहेमहर्त्तारं गायत्र्यालक्षसप्ततिः गायत्र्याःषष्टिभिर्लक्षैर्मुच्यतेगुरुतल्पगः (इतिद्वादशवार्षिकतुल्यविधानतयोक्तं न पुनरशक्तविषयमिति न विरोध इति मिताक्षरा=अर्थात्–सौलाख गायत्री जप करनेसे ब्रह्महत्या मिटिजातीहै अस्सीलाख जपिकर सुरापानके दोषसे छुटिजाताहै सत्तरिलाख जपिकर सुवर्णका हरनेवाला शुद्धहोता है साठिलाख जपिके गुरुदार गामी शुद्ध होताहै–इसमें चारों महापातकपर चतुर्विंशति मतवालोंने जुदी जुदी सख्याकहीं जो छत्तीसलाखसे सब चारों सख्या बड़ी हैं कोई भी छत्तीसलाखके बराबर नहीं (इसकेमध्ये मिताक्षराकार कहितेहैं कि जैसा बारहवर्षका विधान कियाजाताहै तैसा एक यह भी जुदाविधानहै पर इसमें बारह वर्षोंका कुछ नियम नहीं केवल जपकी संख्याकाही नियमहै चाहें कितनीहोवर्षोंमें होसके और इसीसे यह बढ़िया संख्या किसी अशक्त पुरुष के विषय पर नहीं मानी जासक्ती किन्तु ऊर्ध्वोक्त छत्तीसलाखवाली थोड़ी संख्या सिर्फ अशक्त पुरुष की अपेक्षापर बारहवर्षवाले प्राजापत्योंके बदले कायमहुईहै तिससे इसमें बारहवर्ष की अवधिका भी नियम साथ लगाहै कि उन्हीं वर्षोंमें जाकर जपकी संख्या पूरी होय तिससे दोनोंकी ऊंचनीचसे कुछ विरोध नहींहै=इसीप्रकार औरभी प्रायश्चित्तों के बदलहैं=कृच्छ्रोदेव्ययुतंचैवप्राणायामशतद्वयम्तिलहोमसहस्रंतुवेदपारायणतथा=अर्थात्–प्राजापत्यनाम कृच्छ्र जो बारहदिनका प्रसिद्धहै तिसकी एकही आवृत्ति२

देवी गायत्री दशहजारसंच २ प्राणायाम दोसौ ३ तिलकाहोम एकहजार आहुति ४ वेद संहिता जो मन्त्र ब्राह्मणरूप होतीहै तिसकी एकहीपारायण५—ये पांचों परस्पर सब एकसेएक बराबर मानेगयेहैं तिससे इनका भी बदल आपसमें होताहै कि एक के बदले दूसरा किया जाय (इत्यादि चतुर्विंशति और मनु आदि शास्त्रोंके कई आदेशरूपी प्रत्याम्नाय अनेक हैं) इन सब प्रत्येक जुदे जुदेको महापातकोंपर० तीन सौसाठि ३६० से गुणाकर समझिलेना कि इतने चाहिये अर्थात उक्त पांचोंमें. सब से प्रथम कृच्छ्र एकही कहा तिसको तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तौ भी ३६० ही अंक रहेंगे सोई तीनसौ साठि प्राजापत्य करने पहिले भी कहिचुके हैं १ एवंगायत्री केदशहजार कहे तिन्हें यदि तीनसौसाठिसे गुणाकरोगे तौ वेही३६०००००छत्तीस लाखहोंगे जो पहिले भी कहिचुके २एवं प्राणायाम दोसौको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तौ ७२००० बहत्तरि हजार प्राणायाम करने ठहिरैंगे३ एवं तिलहोम एकहजारको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तौ३६००००तीनलाख साठिहजार आहुतें करनी ठहिरैंगी४एवं वेदकी पारायण एकहीको यदि तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तौ ३६० तीनसौसाठि पारायण करनी ठहिरैंगी ५—यह व्यवस्था यहांतक पूरे महापातकोंपर कहीगई ॥ ० ॥ कदाचित अतिपातकोंके प्रायश्चित्त पर लेखा करना होय जिनमें बारह वर्षके जगह नौवर्षका प्रायश्चित्त कहा गया था तिनमें प्राजापत्य भी चौथाई घटाकर तीनसौसाठि के जगह २७० दोसौसत्तरि कियेजायंगे तिनके बदलेमें जो चीजें कायमहोंगी वेभी चौथाईघटाकर मानीजायँ अर्थात जलमें बैठनाभी २७० दोसौसत्तरि दिनकारहिजायगा या इतनीधेनुदेनी ठहिरैंगी याइतनी अशर्फी देनी यागायत्रीके मंत्रछत्तीसलाखकेजगह २७००००० सत्ताइसलाख रहि जायँगे याप्राणायाम बहत्तरिहजारकेजगह ५४०००चौवनहजाररहिजायँगे यातिल कीआहुतें तीनलाखसाठि हजारकेस्थान २७००००दोलाख सत्तरिहजार बाकीरहि जायँगीया वेदकीपारायण तीनसौसाठिकेस्थान चौथाई कटिकर २७० दोसौसत्तरि बाकीरहिजायँगे ॥०॥ कदाचित्उपपातकनामके पापोंपरलेखा करनापरै जिनमें बारह वर्षके जगहछः वर्षकीअवधि कहीगई थी तिनमें प्राजापत्य भी आधीसंख्या घटाकर सिर्फ आधेके १८०एकसौ अस्सी रहिजायँगे उनके बदलकी चीजें भी धेनु याअशर्फी या वेदके पाठ या जल में बैठने के दिवस उतनेही एकसौ अस्सी अस्सी माने जायँगे या गायत्री का जप अठारह लाख १८००००० या प्राणायाम बहत्तरि हजारके स्थान ३६००० छत्तीस हजार करने होंगे या तिलकी आहुतें तीन लाख साठिहजार

के स्थान १८०००० एकलाख अस्सीहजार करनी होंगी=इन बातोंका प्रमाण आगे चतुर्विंशति मत का वचन भी देखो=यथा= जन्मप्रभृतिपापानिवहूनिविविधानिच कृत्वावीणब्रह्महत्यायाः षडब्दंव्रतमाचरेत् प्रत्याम्नायेगवांदेयं साशीतिर्वाननाशतम् तथाष्टादशलक्षाणि गायत्र्यावाजपेद्बुधः= अर्थात्—जन्म से लेकर बहुत पाप अनेक भाँतिसेभी कियेहों परन्तु ब्रह्महत्यासे इधर समझनातो उनपापोंको शुद्धि चाहिकर छः वर्षभर प्राजापत्य आदि व्रतका आचरण करै यदि व्रतोंकी प्रक्रिया जिसपर न होसके सो आदेश रूपी (प्रत्याम्नाय) बदल में १८० एकसौ अस्सी गौयें धनवान् होने से देवै यद्वा धनी नहो सो बदलेमें अठारह लाख गायत्री जपै जो पण्डित होय अन्यथा यहभी नहीं तो फिर जलमें वास करना आदि जो कुछ पहिले कहा वही बदला दियाजाय (ब्रह्महत्यासे इधर कहा उसका यही तात्पर्यहै कि ब्रह्महत्या आदि महापातक जिसने कियाहो वह छः वर्ष नहीं पूरे बारहवर्षका व्रतकरै और बदले की सब चीजें दूनी करै जिससे उसे प्रयोजन परै ॥ ० ॥ कदाचित् उपपातक नामके ऐसे पापों पर लेखा करना परै कि जिनके लिये त्रैवार्षिक प्रायश्चित्त का नियम कहा गयाहो• तिनमें प्राजापत्य भी तीनसौ साठिकी चौथाई सिर्फ ६० नब्बे रहि आयँगे इसी प्रकार इनके बदल की सब चीजें चौथाई चौथाई रहि जायँगी जोसब से ऊपर जितनी तीनसौ साठि प्राजापत्यों के साथ कही गईथीं ॥ कदाचित् तीन महीना के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर लेखा करना परै तहां एक महीनेमें अ- ढाई प्राजापत्य के हिसाब से साढ़ेसात प्राजापत्य ठहिरे उनके बदल में उतनेही धेनुदान या उतनी ही अशर्फी सोरह मासे वाली या उतनेही वेद पाठ करने होंगे या उतने साढे सात रोज जल में वास करने होंगे और ७५००० पचहत्तरि हजार गायत्री मन्त्र या १५०० पन्द्रह सौ प्राणायाम या तिल होम की आहुतें ७५०० साढ़े सात हजार करनी चाहिये ॥ ० ॥ कदाचित् ऐसे उपपातकोंपर लेखा करना होय जिन में एकही मासका व्रत करना कहागयाहो तहां यह स्पष्ट है कि बारह दिनके प्राजापत्य अढाई करने होंगे अथवा उनके बदल में अढाई धेनु या अढाई धेनुका मूल्य यद्वा अढाई वेद पारायण या अढाई दिन जल में वास करना अथवा २५००० पचीस हजार जप गायत्री का यद्वा ५०० पांच सौ प्राणायाम या तिल होमकी आहुति २५०० अढाई हजार ॥ अथचांद्रायण स्थानेप्रत्याम्नायः—जहां प्रायश्चित्त इस ब्यौरा साथ लिखाहो कि एक महीना चान्द्रायण करै तहां उस चांद्रायण के बदले यदि प्राजापत्य किया चाहे तो फिर

देवी गायत्री दशहजारमंत्र २ प्राणायाम दोसौ ३ तिलकाहोम एकहजार आहुति ४ वेद संहिता जो मंत्र ब्राह्मणरूप होतीहैं तिसकी एकहीपारायण५—ये पांचों परस्पर सब एकसेएक बराबर मानेगयेहैं तिससे इनका भी बदल आपसमें होताहै कि एक के बदले दूसरा किया जाय (इत्यादि चतुर्विंशति और मनु आदि शास्त्रोंके कहे आदेशरूपी प्रत्याम्नाय अनेक हैं) इन सब प्रत्येक जुदे जुदेको महापातकोंपर० तीन सौसाठि ३६० से गुणाकार समझिलेना कि इतने चाहिये अर्थात उक्त पांचोंमें सब से प्रथम कृच्छ्र एकही कहा तिसको तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तो भी ३६० ही अंक रहेंगे सोई तीनसौ साठि प्राजापत्य करने पहिले भी कहिचुके हैं १ एवंगायत्री केदशहजार कहे तिन्हें यदि तीनसौसाठिसे गुणाकरोगे तो वेही३६०००००छत्तीस लाखहोंगे जो पहिले भी कहिचुके २एवं प्राणायाम दोसौको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तो ७२००० बहत्तरि हजार प्राणायाम करने ठहिरेंगे३ एवं तिलहोम एकहजारको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तो३६००००तीनलाख साठिहजार आहुतें करनी ठहिरेंगी४एवं वेदकी पारायण एकहीको यदि तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तो ३६० तीनसौसाठि पारायण करनी ठहिरेंगी ५—यह व्यवस्था यहांतक पूरे महापातकोंपर कहीगई ॥ ० ॥ कदाचित अतिपातकोंके प्रायश्चित्त पर लेखा करना होय जिनमें बारह वर्षके जगह नौवर्षका प्रायश्चित्त कहा गया था तिनमें प्राजापत्य भी चौथाई घटाकर तीनसौसाठि के जगह २७० दोसौसत्तरि कियेजायँगे तिनके बदलेमें जो चीजें कायमहोंगी वेभी चौथाईघटाकर मानीजायँ अर्थात जलमें बैठनाभी २७० दोसौसत्तरि दिनकाराहिजायगा या इतनीधेनुदेनी ठहिरेंगी याद्रव्यदेनी अथवा देनी यागायत्रीके संयछत्तीसलाखकेजगह २७००००० सत्ताइसलाख रहि जायँगे याप्राणायाम बहत्तरिहजारकेजगह ५४०००चौवनसहस्ररहिजायँगे यातिल कीआहुतें तीनलाखसाठि हजारकेस्थान २७००००दोलाख सत्तरिहजार बाकीरहि जायँगीया वेदकीपारायण तीनसौसाठिकेस्थान चौथाई कटिकर २७० दोसौसत्तरि बाकीरहिजायँगे ॥०॥ कदाचितपातकनामके पापोंपरलेखा करनापड़े जिनमें बारह वर्षके जगहछः वर्षकीअर्थात कहीगई थी तिनमें प्राजापत्य भी आधीसंख्या घटाकर सिर्फ आधेके १८०एकसौ अस्सी रहिजायँगे उनके बदलकी चीजें भी धेनु याअथवा या वेदके पाठ या जल में बैठने के दिवस उतनेही एकसौ अस्सी अस्सी माने जायँगे या गायत्री का जप अठारह लाख १८००००० या प्राणायाम बहत्तरि हजारके स्थान ३६००० छत्तीस हजार करने होंगे या तिलकी आहुतें तीन लाख साठिहजार

के स्थान१८०००० एकलाख अस्सीहजार करनी होंगी=इन बातोंका प्रमाण आगे चतुर्विंशति मत का वचन भी देखो=यथा= जन्मप्रभृतिपापानिबहूनिविविधानिच कृत्वावीणब्रह्महत्यायाः षडब्दंव्रतमाचरेत् प्रत्याम्नायेगवांदेयं साशीतिर्धनिनाशतम् तथाष्टादशलक्षाणि गायत्र्यावाजपेद्बुधः= अर्थात्- जन्म से लेकर बहुत पाप अनेक भाँतिसेभी कियेहों परन्तु ब्रह्महत्यासे इधर समझनातो उनपापोंकी शुद्धि चाहिकर छः वर्षभर प्राजापत्य आदि व्रतका आचरण करें यदि व्रतोंकी प्रक्रिया जिसपर न होसके सो आदेश रूपी (प्रत्याम्नाय) बदल में १८० एकसौ अस्सी गौयें धनवान् होने से देवै यद्वा धनी नहो सो बदलेमें अठारह लाख गायत्री जपे जो पण्डित होय अन्यथा यहभी नहीं तौ फिर जलमें वास करना आदि जो कुछ पहिले कहा वही बदला दियाजाय (ब्रह्महत्यासे इधर कहा उसका यही तात्पर्यहै कि ब्रह्महत्या आदि महापातक जिसने कियाहो वह छः वर्ष नहीं पूरे बारहवर्षका व्रतकरे और बदले की सब चीजें दूनी करें जिनसे उसे प्रयोजन परै ॥ ० ॥ कदाचित् उपपातक नामके ऐसे पापों पर लेखा करना परे कि जिनके लिये त्रैवार्षिक प्रायश्चित्त का नियम कहा गयाहो० तिनमें प्राजापत्य भी तीनसौ साठिकी चौथाई सिर्फ ९० नब्बे रहि आयँगे इसी प्रकार इनके बदल की सब चीजें चौथाई चौथाई रहि जायँगी जोसब से ऊपर जितनी तीनसौ साठि प्राजापत्यों के साथ कही गईथीं ॥ कदाचित् तीन महीना के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर लेखा करना परै तहां एक महीनेमें अ- ढाई प्राजापत्य के हिसाब से साढेसात प्राजापत्य ठहिरे उनके बदल में उतनेही धेनुदान या उतनी ही अशर्फी सोरह मासे वाली या उतनेही वेद पाठ करने होंगे या उतने साढे सात रोज जल में वास करने होंगे और ७५००० पचहत्तरि हजार गायत्री मन्त्र या १५०० पन्द्रह सौ प्राणायाम या तिल होम की आहुतें ७५०० साढे सात हजार करनी चाहिये ॥ ० ॥ कदाचित् ऐसे उपपातकोंपर लेखा करना होय जिन में एकही मासका व्रत करना कहागयाहो तहां यह स्पष्ट है कि बारह दिनके प्राजापत्य अढाई करने होंगे अथवा उनके बदल में अढाई धेनु या अढाई धेनुका मूल्य यद्वा अढाई वेद पारायण या अढाई दिन जल में वास करना अथवा २५००० पचीस हजार जप गायत्री का यद्वा ५०० पांच सौ प्राणायाम या तिल होमकी आहुति २५०० अढाई हजार ॥ अथचांद्रायण स्थानेप्रत्याम्नायः—जहां प्रायश्चित्त इस ब्यौरा साथ लिखाहो कि एक महीना चान्द्रायण करै तहां उस चांद्रायण के बदले यदि प्राजापत्य किया चाहै तौ फिर

(अढ़ाई नहीं) तीन प्राजापत्य करने चाहिये जो इसमें असमर्थ हो सो तीनिही तीन कोड़िसा प्रत्याम्नाय उसके बदले करे अर्थात् चाहें तीन धेनुदान या उनका मूल्य या तीन दिन जलमें वास यावेदकी संहिताके तीनपाठ या ६०० छःसौ प्राणायाम या तीसहजार ३०००० गायत्रीमन्त्र या तीन हजार ३००० तिलहोमकी आहुतें—इसव्यवस्थापर—मिताक्षराकारकहितेहैं कि (अष्टौचान्द्रायणेदेव्याःप्रत्याम्नायविधौ सदा) यह चतुर्विंशति मत ग्रंथमें जो कहाहै कि॰चांद्रायणकेबदलारूपी प्रत्याम्नाय की विधिमें सदाही गायत्री देवीके आठहजार चाहिये—तदपि (धनिनःपिपीलिका मध्यादिचांद्रायणविषयमितिमिताक्षरा) अर्थात्—वह चतुर्विंशति मतका कहा भी धनीकेलिये पिपीलिकामध्य आदि नामोंकेचांद्रायणपर प्रत्याम्नाय बदलाकरनेका विषय जानना यह मिताक्षरा ने कहा॥ ० ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्यप्रत्याम्नायः—किन्तु मिताक्षराकार कहितेहैं कि जब कभी ऐसे उपपातकों में प्राजापत्यका लेखा करनापरे जिनमें एकमहीनाभर अतिकृच्छ्र करनेकी आज्ञालिखीहोयतहां (तीनमहीना भरमें) साढ़ेसात प्राजापत्यकरने चाहिये—परन्तु—मर्यादा प्रियके विचारसेजहां एक महीनाभर कृच्छ्राति कृच्छ्र करना लिखा हो तिसकेबदले जबकिसीको प्राजापत्य करने स्वीकार हों तहां साढ़े सात प्राजापत्य करने चाहिये जो तीन महीना में पूरे होंगे(बल्कि इसीका प्रमाण आगे चतुर्विंशतिके वचनमें भी देखिलेना)और जो अति कृच्छ्र एक महीनाभर करने की आज्ञा लिखी हो तहां दोमहीना भर पांचही प्राजापत्य करने चाहिये क्योंकि अति कृच्छ्र प्राजापत्य से दूने दर्जे में होताहै तिगुने में नहीं और कृच्छ्राति कृच्छ्र प्राजापत्य से तिगुने दर्जेमें होताहै अर्थात् जितनी कठिनाई बारह दिनके प्राजापत्य में होती है तिससे द्विगुण कठिनता बारह दिनके अति कृच्छ्रमें होतीहै इसका निर्णय आगेफिर भी किया जायगा—जब कि प्राजापत्य से अति कृच्छ्र की प्रतिया दूनी ठहिरी तो फिर कृच्छ्राति कृच्छ्र की प्रतिया प्राजापत्य से आपही तिगुनी ठहिरी क्योंकि उसमें व्रतके दिवसोंकी संख्या अधिक होनेसे वहांपनप्रत्यसहै—जिसको कृच्छ्रातिकृच्छ्रके स्थानीभूतसात साढे७॥प्राजापत्य की सामर्थ्य न हो सो बदले में साढ़ेसात धेनु दान या उनके मूल्य की अशर्फी साढ़े सात या साढ़ेसात रोजतक जलमें वास करे या साढ़े सात वेद को पारायण पाठ या पचहत्तरि हजार७५००० गायत्रीके मंत्रजपै या पन्द्रहसौ१५०० प्राणायाम करे या तिल होमकी आहुतें साढ़ेसात हजार७५०० होमै=इसीप्रकार=जिसको अतिकृच्छ्र के स्थानापन्न पांचप्राजापत्योंकी सामर्थ्य न हो वह बदले में पांचधेनु दान या मूल्य

की अशर्फी पाँच या पाँच रोजतक जलमें बासकरै या वेदकी पारायण पाँचपढ़े या गायत्री का जपही ५०००० पंचास हजार या प्राणायाम १००० एक हजार करै या तिलहोमकी आहुतें ५०००पाँचहजार होमै॥ ०॥ प्राजापत्य आदि व्रतोंके परस्पर जो छोटाई या बड़ाई होतीहै तिसका कारण उनके दिवसोंकी संख्यासेभी होताहै परन्तु जहाँ परस्पर दोनोंके दिवस बराबरहों तहाँ जिसमें कठिनता अधिक होतीहै सो बड़ा ठहिरताहै• तहाँ कितनी बड़ाई या कितनी छोटाई किसकी मानी जाय इस भेदका समझानेवाला चतुर्विंशतिका अग्रोक्त वचन देखो=यथा=प्राजापत्येतुगामेकांदद्यात्सांतपनेद्वयम पराकतप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्रे तिस्रस्तुगास्तथा=अर्थात्– प्राजापत्यके बदले एक गोदानकरै सांतपनके बदले दोगायदेवै• पराक व्रतके बदले और तप्तव्रतके बदले और कृच्छ्रातिकृच्छ्रके बदले तीनतीन गोदानकरै तब उनको बराबर बदला ठहिरै और अति कृच्छ्रका नाम यद्यपि चतुर्विंशति के वचन में नहीं आया तौ भी उसके बदले में जरूरत जहाँ समझी जाय तहाँ दो गाय देनीचाहिये क्योंकि कृच्छ्रातिकृच्छ्र से वह छोटा और प्राजापत्य से बड़ा है मध्यम न्याय उसका यही सिद्ध होताहै–यहाँ–प्राजापत्य की अपेक्षा सांतपन में दूना बड़ापन पायागया क्योंकि दोगाय देनीकहीं (और सांतपन छोटे बड़े कई दर्जाके होतेहैं) तिससे३१६ तीनसौसोरहकी अधिकोक्तिमें यमकेवचनसे १५पंद्रहदिनका और जाबालके वचनसे २१ इक्कीस दिनका महासांतपन कहागया था उनके मध्ये यह दोगायवाला बदल समझना क्योंकि प्राजापत्य की अपेक्षा दूनापन उन्हीं में पायागया–और तीनसौ पन्द्रह३१५की अधिकोक्ति में जाबाल के वचनसे सातदिनका तथा३१६तीनसौ सोरह मूलश्लोक में योगीश्वर के वचन से भी सातदिन का सांतपन कहा गया था तिसके बदले में एकही गोदान समझिलेना क्योंकि वह अपने प्रभावसे एक प्राजापत्यकी बराबर मानाजाताहै–और तीनसौ पन्द्रह ३१५ मूल श्लोक में योगीश्वरके वचन से तथा उसकी अधिकोक्ति में शंखजीके वचन से तीन दिनका यति सांतपन भी कहाथा इनदोनोंमें आधागोदान समझिलेना क्योंकि ये अर्धप्राजापत्यकी बराबर मानेजाते हैं इस आधेका प्रमाण आगे षट्त्रिंशन्मत के वचन में देखना जहां (सांतपनस्यचार्धं) यही पाद आवैगा (ऊर्ध्वोक्तचतुर्विंशति के वचन में•दद्यात्सांतपनेद्वयं• यह पाद जो आया था तिसकी व्याख्या मिताक्षरा में कुछ नहीं यद्यपि लिखीथी तौभी इतना विस्तार उसका सिद्ध भया सो स्थापन कियागया और यही व्याख्या निर्विकार जानो (अत्रनिष्प्रयोजनीयाचव्याख्या) इसकोछोड़िके सि-

ताक्षराकारने भी कुछ व्याख्या जो दर्शाई तिसमें एक धोखाहै कि उन्होंने (पराक तप्त कृच्छ्रातिकृच्छ्र) इसी चतुर्विंशति के वचन में ऐसा पदच्छेद (पराक•तप्तकृच्छ्र• अतिकृच्छ्र) माना तिससे कई विरोध खड़ेहुये वल्कि कृच्छ्रातिकृच्छ्र के न रहिनेसे अति कृच्छ्रही के दोभेद उनको माननेपरे जो यथार्थ में कुछ भेद नहींहै—यथाहुर्मि ताक्षराकाराः (एतच्चैकैकंग्रासमश्नीयादित्यैकैकग्रासपक्षेवेदितव्यं•पाणिपूरान्नपक्षे पुनर्धेनुद्वयमेव) अर्थात् वे कहिते हैं कि अतिकृच्छ्रके नामसे यह तीनि गायवाला नियम उस अतिकृच्छ्र पर जानना जो नौदिन एक कौर खाने और तीनदिन कोरे उपवास करनेसे बारह दिनमें होताहै•दूसरा एक मुट्ठीभर नौरोज अन्न खाकर तीनि उपवासों सहित बारहदिनमें होताहै तिसके बदले दोही गाय देनीचाहिये क्योंकि यह उससे कुछ सुगम देखि परताहै—यहां भी—मर्यादा प्रियके विचारसे इन दोनोंमें बड़ापन छोटापन का कुछभेद नहींहै न दिवसों की संख्यासे कुछ भेदहै दोनों प्रकार बारहदिनमें सिद्धहोतेहैं तहां योगीश्वरने मुट्ठी भर भात आदि कोई सा अन्न खाना कहा और मनुने एक ग्रासभर अन्नखाना कहा यह कुछभी भेद नहींहै क्योंकि एक ग्रास भी मयूर के अण्डे बराबर पहिले सिद्ध हो चुकाहै वही मोरका अण्डा कुछ मुट्ठी भरसे कम नहीं होता अथवा जितना अन्न जिसके मुहमें एकबार में समावै सो भी ग्रास का परिमान कहा गया था इस प्रकार से भी कुछ भेद नहीं पाया जाता है क्योंकि जिसके मुहमें जितना अन्न आसकैगा उसके हाथकी मुट्ठीमे भी उतनाही आसकैगा कुछ अधिक नहीं कि जिसके हेतुसे तीन और दो गायका बदला दोतरह माना जासके (बल्कि इसी भेद की चाहना से मिताक्षराकार ने उस व्याख्या में एक ग्रास एक आंवरे भरका लिखि दियाहै कि जिससे मुट्ठी भरके सन्मुख उसमे छोटापन समझिपरे सो इसलिये नहीं माना जासक्ताहै•कि मनुने जिस वचन में एक एक ग्रास खाना कहा तिसमें आमलक भरकी समस्या भी कुछ नहीं है) और जो मिताक्षरा कार ही के वर्णन का प्रमाण मानें कि जो कुछ लिखा सोई सही तौभी यह प्रश्नखड़ा होता है कि जब ऐसे अतिकृच्छ्र मे तीनि गोदान माने तौफिर कृच्छ्रातिकृच्छ्र जो सबसे बड़ा बाकी रहा तिसमें कितने गोदान किये जायँ इसका कुछ भी उत्तर नहींहै—इतिप्रसंगादेवनिरर्थकव्याख्यानं=अथप्रकृतंप्रयोजन=इन्हीं बहुधा विरोधोंकीदृष्टिसे ऊपरली व्याख्या जो मर्यादाप्रियनेसिद्धकरी सो निर्विघ्न जानो कि=एकग्रासवाले और मुट्ठीभर भोजनवाले दोनों अति कृच्छ्र को बराबर मानिके दोनोंमें दोहीदो गाय दानकरनेका ठीक बदलहोगा और कृच्छ्राति

कृच्छ्र के बदले में तीनिगोदान करनेहोंगे जैसे चतुर्विंशति के वचन में स्पष्ट लिखे देखिलो•उसी वचनमें पराक परभी तीनिही ३गोदान करने कहेगये यद्यपि पराक भी बारहदिनका होताहै दिवसोंकी बडाई उसमें नहींहै परन्तु कठिनताका बडापन उसमें अधिक है कि बारहदिन कोरे उपवास करनेसे होताहै• उसीवचनमें तप्तनाम के व्रतपर भी तीनिही ३गाय देनी कही गई और तप्तकृच्छ्र का विधान भी ३१८ तीनसौ अठारह मूलश्लोक आदि में सिर्फ चारदिनका फिर मनुके वचन से बारह दिनका भी कहा था इससे अधिक नहीं परन्तु वह अपनी कठिनता से बडा माना गया है कि उसमें बहुत गरम तपाये हुये घी दूध जल पीने होते हैं तिससे उसके बदल में तीनगाय देनी कहीं कुछ विरोध इसमें नहींहै• उसी चतुर्विंशतिके वचन में कृच्छ्रातिकृच्छ्र के बदले जो तीनिगाय देनी कहीं तिसका बडापन दिवसों की अधिकतासे भी प्रत्यक्ष है कि तीनसौ इक्कीस३२१मूलश्लोक में योगीश्वरने२१ इक्कीस दिन थोड़ासा दूधपीकर साधन करना कहा और उसी जघे अधिकोक्ति में गौतमने बारहदिन जलपीके रहिना कहा तौ ये बारह भी इक्कीस के बराबर ठहिरे क्योंकि उसमें नौदिनकी संख्या अधिक है परन्तु थोडे दूधका सहारा देखि परताहै• गौतम के विधान में यद्यपि दिवसोंकी अवधि केवल बारह दिनकी है परन्तु केवल जल पीके बारहदिन काटने बड़े कठिन हैं कि जैसे पराकमें बारहदिन कोरे उपवास किये जातेहैं इसी कठिनतासे पराकपर तीनिगायदेनी कहीथीं तैसे दोनोंतरहके कृच्छ्राति-कृच्छ्रों में तीनि गाय न्यायात्मक ठहिरीं– अतिकृच्छ्र बाकीरहा कि जिसका नाम चतुर्विंशतिके वचन में नहींहै तथापि उसके बदले में दोगाय देनी इस हेतुसे न्याया-त्मक ठहिरीं कि प्राजापत्य और कृच्छ्रातिकृच्छ्र दोनोंके बीच वाला दर्जा उसका प्रसिद्धहै और इसीलिये प्राजापत्यसे द्विगुणा उसकोमानतेहैं क्योंकि यद्यपि दिवसों की तादाद प्राजापत्य और अति कृच्छ्र में भी बराबर बारह की होती है परन्तु सु-गमता कठिनता के भेदसे आपस में छोटापन बडापन होताहै अर्थात् अति कृच्छ्र में नौदिन तक एकही ग्रास वा एकही मुट्ठी खाकर पीछेसे निरन्तर तीनदिन कोरा उपवास करना होताहै तिससे पूरे बारह दिन उपवासही ठहिरे और प्राजापत्य में तीनतीनदिन बाईस चौबीस आदि ग्रासोंको खाते हुये बीच बीच कोरा उपवास हर चौकड़ी में एकही करना होताहै अर्थात् तीन उपवास तीनजघे बँटिजाने से कठिनता नहीं रहिती है तिससे येही तीन उपवास और नौदिन थोडा खाना परा तिसके भी तीनिही उपवास के बराबर मानेगये इसप्रकारसे छदिनके बराबरकठिनता सिद्धहुई

और ऊपर अतिकृच्छ्रमें बारहदिनकी कठिनता सिद्धहुई इसीसे दूने आवेकाभेद इन में होताहै इसीसे यहबात सिद्धहोतीहै कि छैदिनकी कठिनतावाले प्राजापत्य कृच्छ्र में एकधेनुदेनीकही तो फिर बारहदिनकी कठिनतावाले अतिकृच्छ्रमें दोधेनुदेनीसिद्ध होगई कुछ सन्देह नहीं रहा॥ ० ॥ एकादशगोदानस्यप्रत्याम्नायाः कदाचित उस प्रायश्चित्त से प्राजापत्यका बदल करना परै जो चालीसवें परिच्छेद में दोसौ चौंसठि २६४ मूलश्लोक उत्तरार्ध से बताया था कि तीनदिन उपवास करिके दश गाय और एक ओड़ू वृषभ दान करै–तहां इतने सब कृत्यके बदले साढ़ेग्यारह प्राजापत्य करने चाहिये इस लेखेसे कि दशप्राजापत्य दशगायके और एक वृषभ तथा तीन उपवास दोनो मिलाकर इसके बदले डेढ़ प्राजापत्य चाहिये• जो इनको न करसके तिसके लिये पूर्वोक्त रीति से अन्यप्रकारके बदल बताये जायँ कि इतनेही साढ़ेग्यारहदिन जलमें निवासकरै या वेदसंहिताकीपारायण साढ़ेग्यारह आवृत्ति करै अथवा एकलाख पन्द्रह सहस्र ११५००० गायत्री के मन्त्र जपै या ११५०० साढ़ेग्यारह सहस्र तिलकी आहुतें करै तौभी उसके बराबर प्रायश्चित्त मानाजाता है॥ ० ॥ मासपयोव्रतस्यप्रत्याम्नायः कदाचित उस प्रायश्चित्तसे प्राजापत्यों का लेखा करना होय जो दोसौपैंसठि २६५ मूलश्लोक में योगीश्वरने (पयसावापि मासेन) इसी तीसरे पादसे यह कहा था कि एक महीना दूधपीके व्रतकरै•तहां इस महीने भरमें दूध पीना छोड़ि के बदले में अढ़ाई प्राजापत्य किये जासक्ते हैं अथवा इन्हीं अढ़ाई के अनुसार अन्य बदल भी पूर्वोक्त रीतिके लेखे सहित कियेजासके हैं॥ ० ॥ पराकस्यप्रत्याम्नायः जिन उपपातकोंपर पराकव्रत करना लिखाहै जो बारहदिन कोरे उपवास करने से होताहै तिसको यदि कोई करना न चाहै तो बदलेमें तीन प्राजापत्य करने चाहिये जो बारह बारहदिनके हिसाब से छत्तीसदिन में पूरे होंगे परन्तु इनमें बाईस चौबीस आदि ग्रास खाकर करने की सुगमता कुछ होतीहै इसीसे छत्तीसदिन बारहदिनके बराबर समझे जायँगे क्योंकि यही बराबरी पहिले चतुर्विंशति के उस वचनसे भी सिद्ध हुईथी कि जहांपराक व्रतकेस्थानपर तीनिगाय देनीकहीं तीनिगायके न होनेमें तीनि प्राजापत्य आदि अनेक बदल सिद्ध हुयेथे क्योंकि एक गायकादान एक प्राजापत्य की बराबर होताहै–यही पराक व्रत की बराबरी आगे षट्त्रिंशन्मत के वचन से प्रत्यक्ष देखि परती है=यथा=पराकतप्त कृच्छ्रातिकृच्छ्र कृच्छ्रत्रयंचरेत्सांतपनस्यचाप्येवमशक्तोव्रतमाचरेत=अर्थात-पराक• तप्त•कृच्छ्राति कृच्छ्र• इनको न करसकनेमें एक एक के बदले में तीनतीन कृच्छ्रव्रत

अर्थात् प्राजापत्य करै और सांतपनके न करसकनेमें अर्ध प्राजापत्यकरै (यहांआधा प्राजापत्य बतानेसे गोदान भी आधाही बदले में करना सिद्ध होगा• तिससे सांतपन में छोटापन पाया गया• इसी लिये यहाँ पर उसी सांतपन को समझना जो सिर्फ दोही दिनमें या तीनदिनमें होना कहा था उसीकेबदले छेदिनमें आधाकृच्छ्र करना ठीक जानो (बल्कि इसी मूल कारण से पूर्वोक्त चतुर्विंशति के वचन में भी जहां सांतपनके बदले दोगाय देनोकहीं तहां प्राजापत्य भी दो ठहिरे तहां इस छोटे सांतपनपर न समुझना चाहिये किन्तु वहांपर बदलके बड़ापनसे ही सांतपन में बड़ापन पायागयाथा–इसीलिये पन्द्रह वा इक्कीस दिनके महासांतपनोंपर दोगायोंका दान-या दो प्राजापत्य करने कहेथे•फिर इन्हीं दोभेदोंके बीचमें जो सातदिनवाले सांतपन होतेहैं तिनपर एक पूरा गोदान या पूरा एक प्राजापत्य करना ठीक समुझना• किन्तु न्याय वही कहाताहै कि आवश्यक पदार्थोंका बिभाग यथायोग्य होजाय जिनके परस्पर कुछविरोध बाकी न रहै॥ तप्तकृच्छ्रेतुसन्देहनिवारणं-तप्तनामी कृच्छ्रमें सन्देह बाकीरहा कि जिसकेबराबर बदलमें तीनि गोदान या तीनि प्राजापत्य रूपी कृच्छ्र करने कहेगये सो किस तप्तके बदले किये जायँ क्योंकि तप्तकृच्छ्र भी छोटे बड़े कई प्रकारके देखिपरते हैं जैसा ३१८ तीनसौ अठारह मूल श्लोक में योगीश्वरने चार दिनमें होनाकहा (उसीको दूना करिके आठदिनमें भी होता कहीं सुनाहै) उसीका आधा दो दिनमें भी मिताक्षराकारने उसी अधिकोक्तिमें दर्शायाहै कि गरम दूध घी जल तीनोंको एकही दिन इकठौरे पीकर दूसरेदिवस कोरा उपवास करनेसे दोदिनका भी तप्तकृच्छ्र होताहै–फिर उसी अधिकोक्तिमें मनुके वचन से बारह दिन का तप्त कहागया उसका भी स्वरूप केवल वही है कि योगीश्वर के बताये चारदिन वाले को लगातार तीनि वार करनेसे बारह दिन होतेहैं–इन्हीं बारह दिनका प्रमाण अग्रोक्त गौतमके वचनसे भी मिलता है कि (पयोघृतमुदकं वाय तप्तं प्रतित्र्यहंपिवेत्सतप्तकृच्छ्र इति गौतमः) अर्थात्–दूध घृत जल वायु इन चारोंको गरम गरम तीन तीनदिन पीवै सो बारह दिनका तप्तकृच्छ्र कहाताहै यह गौतम ने कहा• परन्तु इससे अधिक दिन किसी ने भी नहीं कहे तिससे सबसे बड़ा बारह दिनका ठहिरा उसीके बदल मध्ये तीनि गोदान या तीनि प्राजापत्य ठहिरे क्योंकि उसकी कठिनताके बड़ापनसे प्राजापत्योंकेद्वारा तिगुने छत्तीस दिन बदलमें देनेपरै अन्यथा आठ दिन वालेपर दोही प्राजापत्य समझने और चार दिनवाले पर एकही प्राजापत्य समुझना और दोदिनके तप्तकृच्छ्रपर अर्ध ही प्राजापत्य जानना•

यह सन्देहका निपटारा भया अब इन सबही की तुल्यता समुझी चाहिये सो देखो ॥ ० ॥ तुल्यानांव्रतभेदानांतुल्यत्वनिरूपणं—ऊपरली व्यवस्थाओंपर सर्व्वत्र ध्यान करना चाहिये कि यद्यपि बारह दिनवाले प्राजापत्य एकही महीना में अ- ढाई सिद्धहोतेहैं और इसीलिये हरएक महीने भरके व्रतोंपर अढाई प्राजापत्योंका आदेश कियागया•परन्तु•चान्द्रायण एकमहीनामें कठिनाईसे होताहै तिसकेमध्ये उस कठिनाई के बड़ापन से तीनि प्राजापत्यों का आदेश कियागया—उसके बादि चतुर्विंशतिका वचन देखो जिसमें बारह दिनका पराक भी तीनि प्राजापत्यों को बराबर ठहिरा—और उसी जघे बारह दिनका तप्त कृच्छ्र भी तीनि प्राजापत्यों को बराबर ठहिरा—और उसी वचनमें इक्कीस दिनका कृच्छ्रातिकृच्छ्र भी तीनि प्राजा- पत्योंकी बराबर तथा जलपीकर बारह दिनवाला भी कृच्छ्रातिकृच्छ्र तीनिप्राजा- पत्यों के बराबर ठहिरा• बल्कि अभी थोड़ी दूर ऊपर षट्त्रिंशन्मत के वचन में भी उसीका प्रमाण समुझायागया कुछ सन्देह शेष नहीं रहा—तिससे—सर्वथा यह नि- र्णय सिद्ध होचुकाहै कि• चान्द्रायण• पराक• तप्तकृच्छ्र कृच्छ्रातिकृच्छ्र ये चारो व्रत परस्पर बराबर मानेगये और प्राजापत्यनामका कृच्छ्र इनकी बराबर तब होवै कि जब उसकी निरन्तर तीनि आवृत्तियां पूरे छत्तीस दिनमें सावी जायँ यह भी ऊपर सिद्ध होचुका ॥ ० ॥ अथप्राजापत्यानांचप्रत्याम्नायाः (प्राजापत्यानां स्थानेपिप्राजापत्यैस्तुलितानांनिवेशनमित्यर्थः) अनन्तर लेख में तुल्यत्व निरूपण होनेका फल यहीहै कि जहां कहीं जितने प्राजापत्योंकी जरूरत ठहिरै तहां उनकी बहुत दिनोंवाली अवधिमें किफायत शोचिके अर्थात थोड़े दिनोंमें निपटारा करना चाहिके चान्द्रायण आदि चारोंव्रत भेदमेंसे किसी एकहीका आदेश होसक्ताहै कि जितने प्राजापत्योंकी संख्याहोय तिससे तिहाई संख्या इनकी रक्खीजाय•उसका दृष्टान्त जैसे बारह वर्षके व्रत पर ३६० तीनसौ साठि प्राजापत्य नियत होचुके हैं तिनकी तिहाई संख्या १२० एकसौबीस चाहैं चान्द्रायण करो चाहैं पराक चाहैं तप्तकृच्छ्र चाहैं कृच्छ्रातिकृच्छ्र करो सबहीका बराबर फल होताहै—तस्माद्द्वादश- ताक्षराकाराः (चान्द्रायणपराकतप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्रास्तुप्राजापत्यत्रयात्मका द्वादश वार्षिकव्रतस्थाने विंशत्युत्तरशतसंख्यकाअनुष्ठेयाः तत्प्रत्याम्नायास्तु वेन्वादशस्विषु णाःपूर्वोक्ताएवेति मिताक्षरा) अर्थात—ये चारो जुदे २ ही तीन प्राजापत्यों की बराबर होते हैं तिस से बारह वर्ष वाले प्रायश्चित्त के स्थान पर इनको एकसौ बीस १२० ही संख्याका अनुष्ठान आदेश किया जावै परन्तु प्राजापत्य के बदल

वाली चीजें धेनु दान आदि इतनी संख्या से तिगुने करने होंगे अर्थात् जितने प्राजापत्यों के साथ पहिले (प्रत्याम्नायरूपी) बदल कहेगये थे कि धेनु दान या वेद के पाठ आदि तिनकी तिहाई न होगी किन्तु वे उतनेही करने होंगे जिस पर चान्द्रायण आदि न होसकें यह आशय यहांसे आगे भी सर्वत्र समझे रहिना=इसी प्रकार=अति पातकों पर कि जहां २७० दोसौ सत्तरि प्राजापत्य बताये थे उनकी भी तिहाई संख्या नव्वे ९० होती है इतनेही चांद्रायण आदि चारों में कोई एक प्राजापत्योंके स्थानपर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=पातक नाम के पाप जो अति पातकोंसे कुछ नीचे उनके समान कहे जातेहैं जिनपर १८० एकसौअस्सी प्राजापत्य बतायेथे उनकी भी तिहाई संख्या ६० तीनबीसी होतीहै इतनेही चांद्रायण आदि चारोंमें कोई एक प्राजापत्यों के स्थान पर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=तीनि वर्ष के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर कि जहां नव्वे ९० प्राजापत्य ठहिराये थे उनकी भी तिहाई संख्या ३० डेढ़बीसी होतीहै इतनेही चांद्रायण आदि चारोंमें कोई एक प्राजापत्योंके स्थान पर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=गोवध प्रायश्चित्तके स्थलपर जहां तीनि महीनेका गोव्रत कहागयाहो तहां (गोमंडल नरिहाईके पीछे फिरना गोचर्म ओढ़ना गोव्रजमें रातिको रहिकर गौओं को सेवा चौकसी आदि करना गोमूत्र आदि पंचगव्यों का संग्रह करना इत्यादि बहुत बड़े झगड़ोंके हेतुसे उस व्रतको नहीं करना चाहे या किसी कारणसे बानक उसका न बनता दीखे (और साढ़े सात प्राजापत्यों का आदेश न करना चाहे तिससे उन्हीं तीन महीनोंमें चान्द्रायण व्रतका आदेश करै जो पूरे तीनिही चांद्रायण कियेजायँ अथवा यदि इसमें भी कुछ दिवसोंकी किफाइत चाहे तो फिर पराक या बारहदिन वाला तप्तकृच्छ्र या कृच्छ्रातिकृच्छ्र इन्हींमें से किसी को तीनि आवृत्ती आदेशकरै क्योंकि ये चारोही एकसे बराबर मानेगये हैं परस्पर इनके दिवसों की कमी वेशी पर कुछ तर्क नहींहै केवल क्रियाकी कठिनता या सुगमतासे न्याय इनका होताहै=इसी प्रकार=बहुधा उपपातकों पर जहां एक महीने व्रत करना लिखा हो तहां भी एकही चांद्रायण योगीश्वरका कहा करना चाहिये कि जिसका डौल ३२४-३२५ तीनसौ चौबीस और पचीस मूल श्लोकोंमें दो भांति से योगीश्वरने कहा था=इसी प्रकार=सबसे छोटे प्रकीर्णक नामके पापों पर जहां जहां जिस पाप के नाम साथ जो कुछ प्रायश्चित्त लिखाहो सो अवश्य छोटा होगा तिसके अनुसार सर्वाभिज्ञ्रषि के प्राजापत्यका एक पाद या दोपाद या पूराही प्राजापत्य आदेश कियाजासक्ता है

उसीके अनुसार प्राजापत्यके वदल भी जो जो पहिले लिखे सो सव यथायोग्य लेखे सहित किये जासक्ते हैं–परन्तु जो उसी एक छोटेसे पापकी आवृत्ति अनेकवार करी गईहों तो वह भी बडेपापों की गणना में आजाताहै तिससे चान्द्रायण आदि चारो वडे प्रायश्चित्तोंमें से भी कोई एक एकही वार या दो वार आदि लगातार कियाजा-सक्ताहै–मिताक्षराकार कहिते हैं कि–इसी न्याय मार्गके अवलम्बसे औरभी जहां कहीं संदेह खड़ा होय तहां ऐसीही कल्पना करनी चाहिये॥ ० ॥ फिर कहिते हैं कि अग्रोक्त एक वृहस्पतिका वचन है तिसका भी वृत्तान्त समझना चाहिये=यथा ह वृहस्पतिः=जन्मप्रभृतियत्किंचित्पातकंचोपपातकम् तावदावर्तयेत्कृच्छ्रं यावत्य त्रिगुणांभवेत्-इति(तदपि द्वेष्टव्येपरदारे इतिगौतमोक्त द्वैवार्षिक समानविषयं·तथात्रै मासिकादिविषय भूतोपपातकावृत्तिविषयवा· पातकपदाभिधेयेचांडालादिस्त्रीगमे द्विरभ्यासविषयंच) तत्र(ज्ञानात्कृच्छ्राब्दमुद्दिष्टमज्ञानादैन्दवद्वयमिति सकृद्बुद्धिपूर्व गमनेकृच्छ्राब्दविधानात् तदभ्यासेद्विवर्षतुल्यंत्र्यब्दिकृच्छ्रं विधानंयुक्तमेवेति मिता-क्षरा=अर्थात्–जन्म से लेकर जो कुछ पातक और उपपातक हुआहो तहां प्राजा-पत्य नामी कृच्छ्र को वारम्वार आवृत्ती से घुमाकर लगातार तब तक साधे जब तक साठि कृच्छ्र पूरे होयँ–वृहस्पति ने यह कहा इस पर मिताक्षराकार कहिते हैं कि (यह साठि कृच्छ्रों का परिमान भी पातक मध्ये गौतम के कहे दो वर्ष वाले विषय के समान जानो जैसा गौतम ने कहा था कि माता भगिनी आदि अपने सवंधको छोडिके पराई दारा जो कहातीहों तिनमें संगम करनेवाला दोवर्ष भर व्रत करै तैसा साठि कृच्छ्र भी पराई दारा एकवार गमन करनेके पातकपरजान-ना क्योंकि दोही वर्ष में साठि प्राजापत्य पूरे होते हैं • तथा उपपातक उस भाँति के कि जिनके ऊपर तीन महीने या इससे भी थोड़ा दो महीने आदि का प्रायश्चित्त लिखा गयाहो उन्हीं पापों को अनेक वार जिसने अभ्यास किया हो तहां भी अ-भ्यास को थोड़ी वहुत सीमा के अनुरूप साठि कृच्छ्रों तक प्रायश्चित्त की अवधि कल्पित होजाय यह तात्पर्य वा शब्दके विकल्प से समझि लेना • और इनसे वडे पातक नामके पाप जो कहाते हैं तिनमें भी यह साठि कृच्छ्रोंकी पहुँच इस तौर से पाई जाती है कि चांडाली आदि स्त्रियोंमें दोवार सगम कियाहो तो इस पातकपर साठिकृच्छ्र करने चाहिये क्योंकि) तहां चांडाली गमनका प्रायश्चित्त (ज्ञानात्कृ च्छ्राब्द जानि वूझि इच्छा सहित संगम करनेसे एकवर्ष कृच्छ्र करना और विना जाने धोखासे सगम करनेसे दो महीनेके चान्द्रायण करना कहाहै • तो उस जानि

बूभि एकवार के संगम पर एक वर्ष भर कृच्छ्र व्रत को विधानसेही यह बात सिद्ध होतीहै कि जब कोई पुरुष चांडालीमें दुवारा आदि संगम का अभ्यास करै तिस को दोवर्ष के बराबर कृच्छ्र करने चाहिये जो बारह दिन के हिसाब से दो वर्ष में साठि ६० कृच्छ्र होतेहैं • तिससे बृहस्पतिके वचनमें साठि कृच्छ्रोंका विधान कुछ अयोग्य नहीं ठहिरा ॥ ० ॥ और जो सुमन्तुका यह वचन है कि=यदल्पयसकृदस्य स्त्वंविद्धिपूर्वमघम्महत्व तच्छुद्ध्यत्यब्दकृच्छ्रे णामहतःपातकादृते—इति (तदप्युपपातका द्यावृत्तिविषयं•तथाअज्ञानादब्दद्वयमिति यमोक्तौब्दद्वयविषयभूतपातकावृत्तिवि- षयवेतिमिताक्षरा=अर्थात्—जो पाप चाहें बड़ा भी हो और जानिके भी किया हो यद्वा अनेक वार उसका अभ्यास किया हो तो भी एक वर्ष भर निरन्तर लगातार कृच्छ्र करनेसे वह पाप सब शुधि जाताहै पर महापापके विना किन्तु एकसालभर के तीस प्राजापत्योंसे महापातक नहीं नष्ट होसक्ताहै उसके लिये बढ़िया प्रायश्चित्त चाहिये-यह सुमन्तुने कहा (मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह अनेकवारका अभ्यास किया पाप जो तीसही प्राजापत्यसे मिटिजाना कहा सोभी उपपातक आदि छोटे पापोंका प्रयोजन समझिलेना • तथा विनाजाने किये पाप के ऊपर दो चांद्रायण यह यम के कहे दो चांद्रायणके योग्य जे कोई पातक ठहिरैं तिनकी कई आवृत्ति जिसपर विना जाने होगई हों तिसके लिये भी यह तीस कृच्छ्रों वाला प्रायश्चित्त विकल्पसे समझना अर्थात् जहां किसी दूसरे प्रायश्चित्तकी मर्यादासे विरोध खड़ा होता हो तहां तो नहीं परन्तु जहां दूसरी मर्यादा से विरोध नहीं दीखै तहां येही तीस कृच्छ्र कराये जासक्ते हैं अन्यथा दूसरी मर्यादा जो प्रधानतासे उस पापके ऊ- पर आरूढ़ हुईहो उसीका वर्ताव करना होगा इसीलिये वा शब्दसे विकल्प रक्खा गयाहै ॥ ० ॥ असम्भवे-ब्राह्मणभोजनं—एक यह विशेषता भी समझनी शेष रही कि जब कोई पुरुष या स्त्री रोगग्रस्त होने आदि कारणों से जप तप करनेमें असम- र्थहो परन्तु धन धान्यसे संपन्न होय तो वह अपने करने योग्य कृच्छ्र आदि व्रतों के स्थानपर शेष विद्वान ब्राह्मणोंको सद्भोजन देकर उक्त व्रतोंका फल पाता है सो करै • इसके मध्ये अग्रोक्त वचन देखो=यथा स्मृत्यतरे=कृच्छ्रे पचातिकृच्छ्रे त्रिगुणा महरहस्त्रिषवेदंतृतीयेचत्वारिंशत्तप्ते त्रिंशच्छतगणिताविंशति स्यात्पराके कृच्छ्रे सांतपनाख्येभवतियदधिकाविंशति सैवहीना द्वाभ्यांचांद्रायणेस्यात्तपसिकृशवलो भोजयेद्विप्रमुख्यान् (अहरहरितिसर्वत्रसंबध्यनीय • तृतीयःकृच्छ्रातिकृच्छ्रः अत्र प्राजापत्य दिवसकल्पनया विद्वद्विप्राणां यथिभोजनभवतीति मिताक्षरा=अर्थात्—

प्राजापत्य नामी कृच्छ्र के न कर सकने में बारह दिनतक पांच ब्राह्मणों को नित्य प्रति उत्तम भोजन देता रहै • इसी प्रकार अति कृच्छ्र के नकरने में तिगुने किंतु पंद्रह ब्राह्मणोंको नित्यजिमावै•इसीप्रकार तीसरे कृच्छ्रातिकृच्छ्रके न करनेमें तीस विद्वानों को जिमाता रहै•और तप्तकृच्छ्रमें चालीस विप्रों को नित्य जिमावै• और पराक नामी कृच्छ्रमें नित्य प्रति एक बीसो तीनि गुनो गनिकर जो संख्या होतीहो अर्थात तीनिबीसी ब्राह्मणोंको जिमायाकरै•और बारह दिनवाले सांतपन नाम के कृच्छ्र में छब्बीस विप्रोंको नित्य जिमाया करै• और चांद्रायण के न करसकने में चौबीस विप्रोंको नित्यजिमावै वह प्रायश्चित्ती जो तपकरनेमें दुर्बलहोय (यहां सब सेपहिलेप्राजापत्यमें जोपांचकहे सो बारह पंजेसादि सब होतेहैं ऐसेही औरों में स-मझलेना ॥०॥ एक चतुर्विंशति मतके वचनमें उक्त ब्राह्मणोंकी संख्या इससे थोड़ी देखि परतीहै कि=विप्राद्वादश वाभोज्याःपावकेष्टिस्तथैवच अन्यावापावनीकाचि त्समान्याहुर्मनीषिणः(इति प्राजापत्यस्थानेद्वादशविप्राणां भोजनमुक्तंतन्निर्धनविषय मितिमिताक्षरा=अर्थात–प्राजापत्य या उसकेकोई बदल भी न कर सके सो बारह विप्रोंको भोजनकरावै या पावकेष्टि जो पावक अग्निकेनामसे वेदोक्त कर्म होता है वहीकरै या औरही कोई पावनीक्रिया होय इनको मनीषी लोग बराबर बताते हैं (इसमें प्राजापत्य के स्थानपर एकही एक रोज अथवा एकही दिन इकट्ठे बारह जिमानेकहे सो यह अतिनिर्धन प्रायश्चित्तीके निमित्तपरजानना यह मिताक्षराकार ने समझाया॥ ० ॥ और उसी चतुर्विंशति मतमें एक दूसरे वचनसे चांद्रायण के स्थान भूत आदेश भी कहेहैं=यथाचांद्रायणेमृगारीष्टिःपावनेष्टिस्तथैवच मित्र विंदा पशुश्चैव कृच्छ्रं मासत्रयंतथा नित्यनैमित्तिकानांचकाम्यानांचैवकर्मणाम इष्टीनां पशुबन्धानामभावेचरुःस्मृ ता–इति (तदपिचांद्रायणाशक्तस्य•यत्तुकृच्छ्रं मास त्रयं तथेति कृच्छ्रा ष्टकंप्रत्याम्नातं तदपि बदरसूर्यविषयं चांद्रायणैर्विभिः कृच्छ्रैरिति दर्शितत्वादलमतिप्रसंगेनेति मिताक्षरा=अर्थात–चान्द्रायण के स्थानमें मृगारि इष्टि नामका वेदोक्त कर्म्म या पावन इष्टि कर्म्म जो अग्निके पावन इस नामसे कहाता है या मित्रविन्द पशु नामका कर्म्म या तैसाही तीन महीने का कृच्छ्र व्रत जानो–इसकेसिवाय–नित्यकर्म्मोंके या नैमित्तिकोंके या काम्य कर्म्मों के भी या पशुबन्ध नाम की इष्टियों के अभाव में (अर्थात इनमें से कोई कर्म्म जिसे करना चाहिये उससे वह न होसके तो यह न होनाही अभाव कहाता है तिस अभाव के स्थान में (चरुःस्मृताः) खीरि आदि साकल्य करने कहे इसका यही तात्पर्य है कि उन

कामोंके बदले होम करदियेजायँ—यह चतुर्विंशति मतका कथनहै• इसमें मिता-क्षराकार केवल एक चान्द्रायणाके प्रयोजनपर कहिते हैं कि (यह नियम सिर्फ उ-नकेलिये जो चान्द्रायणको न करसके और जो चान्द्रायण के स्थानपर तीनमहीना के आठ वा साढ़े सात कृच्छ्र करने कहे सो उसके लिये जो बिल्कुल मूर्ख और श-रीरसे मजबूतहो क्योंकि पहिली मुख्य व्यवस्था मे कहिचुके हैं कि चान्द्रायण के स्थानपर तीनकृच्छ्र कियेजायँ तो यहतीनि और आठके अन्तरसे बड़ा विरोधआवै सो भी उस विरोधके दर्शाने हेतु चर्चा मात्र कियागया कुछ आठसे प्रयोजन यहाँ नहींहै ॥ ० ॥ ध्यान करो कि यह परिच्छेद बहुत बड़ाहै और यह भी ठीकहै कि इतना विस्तार नहीं किया जाता तो इन बातोंका समुझिपाना दुर्घट होता—परन्तु इतने विस्तारका तात्पर्य केवल वहीहै जो परिच्छेद के आरम्भ और चक्रमें कहि चुके और इतने बड़े विस्तारका सारमात्र योगीश्वरने सिर्फ सोरह अक्षरोंसे जताया था देखो तीनसौ सत्ताईसका पूर्वार्ध मूलश्लोक ॥ ३२७ ॥ इसीका उत्तरार्ध अगिले परिच्छेदमें जाकर काम आवैगा अर्थात उसमें विषय दूसरा जानो ॥

इतिप्रत्याम्नायानांपरिच्छेदः समाप्तः ॥

(प्रकरणांचासी)

इत्यनादिष्ट प्रायश्चित्तोपायभेदेषु आदेशि-
कप्रत्याम्नायानांयुक्तिप्रकरणं ॥

इस प्रकरण में केवल एकही ८७ सत्तासीका परिच्छेद है अर्थात इतने लम्बे परिच्छेदमें एकही प्रयोजनकी वार्त्ता वर्णन करीगई तिससे यह आपही परिच्छेद और आपही प्रकरणका रूप मानागया है ॥

अथ धर्मार्थेपिचान्द्रायणकृच्छ्रादीनामुभयत्रफलसाधनत्वम्भवतीतिगुणप्रकाशकोयंतथाप्यत्रशास्त्रस्यफलप्रदर्शकोयंपरिच्छेद अष्टाशीतितमोंतिमश्च(८८)

सबसे पिछला यही परिच्छेदहै—इस परिच्छेद अट्ठासीमें यह बात जानीजायगी कि चान्द्रायण कृच्छ्र आदि की साधना कुछ प्रायश्चित्तही के निमित्त नहीं होती

बल्कि जन्मान्तर के पापों का उदय रूप दुर्भाग्य आदि शोधन करना चाहिके भी होती और केवल पारलौकिक पुराय रूपी धर्म चाहिके भी होती है या केवल इसी लोकमें प्रतिष्ठा आदि श्रेष्ठ फलको चाहिकर भी होतीहै या दोनों लोक में साधारण फलकीचाहसे भी होताहै या केवल अपने मोक्षफलकीचाहसे भी होती है इत्यादि—इनके सिवाय—सर्व धर्म शास्त्र के पढ़ने और सुनने और घर में पुस्तक राखने आदि श्रद्धासे जो कुछ फल होतेहैं सो भी सब इसी परिच्छेदमें॥

(चान्द्रायणस्यधर्मार्थत्वंच)

धर्म्मार्थंयश्चरेदेतच्चंद्रस्यैतिसलोकताम् ३२७

अर्थः—यही चांद्रायण जो कोई अपने अभ्युदयकी कामनासे धर्महीके निमित्त साधनकरै सो चन्द्रलोक में पहुंचता है ॥ ३२७ ॥

३२७अधिकोक्तिः—तात्पर्य इसका यहीहै कि प्रायश्चित्तको जरूरत होने विना भी यदि अपना पुरायफल प्राप्त होना चाहिके साधै सो चन्द्रलोक में अर्थात् चन्द्रलोक भी एक प्रकारका स्वर्गही जुदा होताहै तहाँ पहुँचै—सो यह फलभी एक वर्ष भर साधना करनेसध्धे जानना क्योंकि अग्रोक्त गौतम के वचन में यही तात्पर्य है= यदाहगौतमः= एकमाप्त्वाविपापोविपाप्माभवर्मेनोहंति द्वितीयमाप्त्वादशपूर्वान् दशपरान्आत्मानंचैकविंशंपंक्तिंचपुनाति संवत्सरंचाप्त्वाचंद्रमसः सलोकतांगच्छति= अर्थात्—श्रेष्ठ विधिकेसाथ एकचांद्रायण पूराकरिपाइके उनपापोंसे रहितहोजाताहै जो उसके संचितहोयँ॰पापरहित पुरुष आगामी सबतरह के पापोंको हटाताहै॰फिर दूसरे चांद्रायणको ठीक ठीक साधिके अपने दश पहिले पुरुषा और दश अगिली संतानोंको और बीचमें इक्कीसवें निज आपेको भी पवित्र करताहै इसीप्रकार तीसरे आदि चांद्रायणों से फलकी वृद्धि होते होते वर्ष भर में बारह चांद्रायण अच्छे साधिके चन्द्रमाके लोकमें स्वर्ग सुख भोगता है ॥ ३२७ ॥

(कृच्छ्राणामपिधर्मार्थत्वं)

कृच्छ्रकृद्धर्मकामस्तुमहतींश्रियमाप्नुयात् । तथागुरुक्रतुफलंप्राप्नोतिसुसमाहितः ३२८

अर्थः—धर्मकी कामनासे कृच्छ्र करनेवालाबड़ी श्री प्रतिष्ठा आदि लक्ष्मीको पावै जैसे गुरु यज्ञोंका कर्ता समाहित होके अपने फलको पाताहै=अर्थात्—जैसे राजसूय आदि बड़े बड़े यज्ञोंका करने वाला यज्ञोंका फल (अर्थात् अपने राज्य आदि रूपों

से बड़े फलको) पाताहै तैसे यह पुरुष भी प्राजापत्य आदि कई भांतिके कृच्छ्रोंको अथवा एकही किसी कृच्छ्रको समाहित होके संपूर्ण व्रतके अंग प्रत्यंगों सहित साधे जिसमें कोईभी किन्तु शेष न रहिजाय कि अमुक विधि की हीनता रही तो उस किये हुये कृच्छ्रका फल यहीहै कि उसके कुलजातिके संबंध वाली लक्ष्मीकी वृद्धि बहुत होतीहै अर्थात् जो कुछ व्यापार उसके कुल में या जातिमें होता हो या जिस बातकी कामना उसके हृदयमें मौजूदहो उसही की संपत्तों में अत्यंत समृद्धि होती रहती है और शोभा और सुकीर्ति और सुबुद्धि आदिकी प्रतिभा बढ़ि जाती है= इसमें=सुसमाहित का अर्थ ऊपर लिखा गया तिससे यहभी तात्पर्यहै कि शास्त्रार्थ से व्रतोंके अंग जैसे सिद्ध होचुके हैं तैसे पूरे अंगों बिना साधना करनेसे भी फल की सिद्धि नहीं मिलतीहै और यहभी तात्पर्यहै कि प्रायश्चित्तों के प्रयोजनमें जैसा इन्हीं व्रतोंके प्रत्याम्नाय रूपी आदेश और बदलभी दर्शाये गये तैसा यहां धर्मकी कामना मध्ये साधन करनेमें न होगा किन्तु यहां जिस व्रतका संकल्प किया जाय वही पूरे अंगोंसे कर्तव्य होगा तैसेही बदल वाले कर्मभी निज अपनेही नामोंसे जुदे किये जायँगे–बल्कि यह भी तात्पर्य है कि जहां किसी व्रत की एक दो आवृत्ति करनेसे फलकी उत्पत्ति देखने में न आवे तहां उसी व्रतकी अनेक आवृत्तों लगातार करनी चाहिये अर्थात् निराश होके मन को न हटावे किन्तु आशा लगी रखकर निरन्तर उसमें रगड़ किये जावे तिसको अवश्य फलकी प्राप्ति होतीहै (अतिसंघर्षण करैजुकोई। अनलप्रकटचन्दनतेहोई॥ ३२८ ॥ इतिचांद्रायणादीनांप्रायश्चित्तंविनापिधर्मार्थत्वम्॥

अथच

(अस्यैवधर्मशास्त्रस्य सेवनकर्तृणांफलम्)

(तत्रप्रार्थनाच ऋषिभिःकृतावरदानार्थरूपैव)

श्रुत्वैतान्नृपयोधर्मान्याज्ञवल्क्येनभाषितान् । इदमूचुर्महात्मानंयोगीन्द्रममितौजसम् ३२९ य इदंधारयिष्यंतिधर्मशास्त्रमतंद्रिताः । इहलोकेयशःप्राप्यतेयास्यंतित्रिविष्टपम् ३३० विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यांधनकामोधनंतथा । आयुःकामस्तथावाऽऽयुःश्रीकामोमहतींश्रियम् ३३१ श्लोक त्रयमपिह्यस्माद्यःश्राद्धेश्रावयिष्यति । पितॄणांतस्यतृप्तिःस्यादक्षय्यानात्रसंशयः ३३२ ब्राह्मणः पात्रतांयातिक्षत्रियोविजयीभवेत् । वैश्यश्चधान्यधनवानस्यशास्त्रस्यधारणात् ३३३ यइदंश्रावयेद्विद्वान्द्विजानपर्वसुपर्वसु । अश्वमेधफलंतस्यतद्भवाननुमन्यताम् ३३४ श्रुत्वैतद्याज्ञवल्क्योपिप्रीतात्मामुनिभाषितम्। एवमस्त्वितिहोवाचनमस्कृत्वास्वयंभुवे ३३५ ॥

=अर्थात्–ऋषिलोग याज्ञवल्क्य से कहे इतने सब धर्मोंको सुनिकर (जो आचार अध्याय से लेकर यहां तक तीनि कांडों में योगीश्वर ने कहे तिनको अच्छे समुझि पाने पीछे) ऋषय यह कहने लगे उन अपार शक्तिमान् महात्मा योगीन्द्र को कि ॥ ३२९ ॥ जे कोई इस धर्मशास्त्र को निरालस होके धारण करेंगे वे पुरुष इस लोक में यशको पाइके स्वर्गमें जावेंगे ॥ ३३० ॥ विद्यार्थी बनिके यदि इसको धारणा करें सो पूरी विद्या की शक्ति पावें तथा जो धनकी कामना से पढ़ें सो धनको पावें जो आयु की कामनासे इसका अभ्यास करें तिसकी आयु बढ़िजाय श्रीशोभा संपत्ति प्रतिष्ठा आदिकी कामना राखें तिसको वही प्राप्तहोय ॥ ३३१ ॥ जो कोई श्राद्ध कर्मके बीच इसका पाठ करावें अथवा इसके तीनिही श्लोकमात्र पढ़िकर निमंत्रित विप्रों को सुनावें तिसके पितरों की अक्षय तृप्ति होय इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३२ ॥ ब्राह्मण होके जो इसका अभ्यास करें सो ब्राह्मणों में सत्पात्र ठहिरें क्षत्री इसको धारणासे विजयमान् होय वैश्य इसको पढ़ें सो धन धान्यवान् होय ॥ ३३३ ॥ इतनी प्रार्थना करिके ऋषिलोग एक और प्रार्थना करते हैं कि जो कोई विद्वान् होके प्रत्येक पर्वोंमें द्विजातियों को सुनावें तिसको अश्वमेध यज्ञ कियेका फल होय॰यह सब जितनी प्रार्थना हम सामश्रवा आदि ऋषिओं ने पांच श्लोकों द्वारा आप से प्रकाशकरी सो सब तद्रूप आप स्वीकार करें अर्थात् अपने कहे शास्त्ररूपी वचनोंमें ऐसाही प्रभाव अपनी अपार शक्तिसे आरूढ़ करें (यह सुनिके आगे वरदान देतेहैं॥ ३३४ ॥ इतनी मुनि लोगों को प्रार्थना सुनि के याज्ञवल्क्य भी प्रसन्न हृदय होकर स्वयंभू नाम विधाताको ध्यानमात्रसे प्रणाम करिके प्रसन्न मुखसे उत्तर वरदान देकर बोले कि यह सब इसी प्रकार होउ जो कुछ तुमने चाहा ॥ ३३५ ॥

——*——

(ग्रन्थ समाप्तिः)

---*---

समाप्तोऽयंमहाग्रंथोधर्मशास्त्रानुवादतः मर्यादापरिपाट्याख्योवेदवेदनवेन्दुके (१९४४) वि
क्रमार्कस्यभूपस्यख्यातेसंवत्सरोत्तमे १ श्रीमर्यादाप्रियस्यैवस्वाऽऽयासेनादितःखलु आचारोव्यव
हारश्चप्रायश्चित्तमितित्रयः कांडायत्रविशेषेणतृतीयस्तेष्वयंजनाः २ परिच्छेदमयाःसर्वेपृथक्कार्या
नुरोधतः कांडाःसच्छीघ्रबोधायसंतिकर्तुःक्रियागुणैः ३ तत्रादिमौचद्वौकांडौपूर्वमेवहिमुद्रितौ कर्तुः
स्वातंत्र्यभावेनसप्तवर्षपरिश्रमैः आर्गलाख्येपुरवरेस्थितिःकर्तुर्हियत्रवै ४ तृतीयोऽयंधनाभावकार
णैःसुविलंबितः पंचवर्षततःसोपिसिद्धिंप्राप्तोयथाधुना ५ सर्वेषामुपकारायविद्वतांसुलभायच मुं
शीनवलकिशोरैर्धनंदत्वास्वकीयकम् कर्तुःसंतृप्तिपर्यन्तमौदार्य्येणवरीयसा६ नियोजितःपुनर्वारंम
र्यादाप्रियपंडितः प्रायश्चित्ताभिधस्यास्यनिर्माणेक्लिष्टकर्मणि ७ स्थितोऽप्यार्गलसंज्ञेहिपत्तनप्र
वरेह्यहम् शुक्लोदुर्गाप्रसादाख्योनियुक्तस्तेनमुंशिना वर्षद्वितयकालेनतिद्वतुकृतवानिमम् ८ पां
डुलेखेऽथसंपूर्णेमयादत्तश्चशोधितः लक्ष्मणापुरिसंप्राप्तोलखनऊइतिशब्दिते ९ नगरेसर्वतः
ख्यातेसाकेताधिपतिस्थितो मुद्रांकलिपिगेहंतुयत्रख्यातंमहत्तमम् १०(गीतिः) मुंशीनवलकिशोरैः
श्रीनवलकिशोरप्रेसइतिनाम्ना तस्मिन्नयंतृतीयः कांडोमुद्रितःकर्तुरसमक्षम् ११ यदातुमुद्रितः
प्राप्तोमयाकर्त्रैवलोकितः आर्गलेहिपुरेतिष्ठन्ज्ञातःशोधनकर्मणा १२ कर्तुरेवासमक्षत्वात् यंत्र
दोषादिकारणैः यंत्रवैतनिकानांचप्रमादात्तुविशेषतः १३ संक्षिप्तेष्वपिवाक्येषुगलितानिपदानि
च बहूनिदृष्टिमायातितानिशोध्यानिपाठकैः १४ किंचतच्छोधनार्थंतुशुद्धाशुद्धविवेचनम् अ
शुद्धशुद्धपत्राख्यंयंत्रमग्रेऽभिधीयते १५ पांडुलेखानुसारेणपुस्तकेकंचशोधितम् स्वस्यैववर्तनार्था
यतन्ममोपस्थितंजनाः १६ एवंचतुर्दशेवर्षेत्रयःकांडाःसुसज्जिताः (१९४४) सद्वत्सरेविक्र
मस्यवेदवेदनवेन्दुके १७ मुंशीनवलकिशोरस्त्वथसर्वान्पुनःस्वयम् मुद्रयिष्यतिभूयोपिस्वातंत्र्ये
णैवचेच्छतः१८यतस्तेनास्यग्रंथस्यकर्तुःपूर्वकृतापिच प्रतिज्ञापूरिताह्यंतेनिजौदार्य्येणसज्जनाः१९
सी आई ई त्रिभिःशब्दैर्यस्यनामअलंकृतम् सार्वभौमप्रदत्तैश्चअर्थस्तेषामयंजनाः२० भारतस्याधि
राष्ट्रस्यसुहृत्तमअसौमहान् मुंशीनवलकिशोरःसर्वसज्जनसम्मतः २१ येनार्गलपुरेरम्येभार्गवा
नांहितायतु विद्याश्रमइतिख्यातापाठशालानिरूपिता २२ प्रतिज्ञायाह्टशीपूर्वंमयाकर्त्रानिरू
पिता व्यवहारमर्य्यादायाःसमाप्तौचेहदृश्यताम् २३ (सायथा—प्रायश्चित्ताभिधेकांडेनप्रति
ज्ञामयाकृता द्रव्यादिप्रतिबंधानांकारणानिविलोक्यच गुरुकांडःसएवास्तिभूरिद्रव्यव्ययेनतु
सिद्धिस्तस्यचसंभावीनसहायःप्रदृश्यते प्रतिज्ञांयदिवाकश्चिद्वरिणीश·करिष्यति तदाहमुद्यतोभू
त्वाकरिष्यामिनसंशय·—इतितस्याःस्वरूपं) एषाहिमुंशीनवलेननूनंकिशोरकात्याननभूपितेन द
शेविदेशेषुचपूजितेनप्रसाधिताऽहंचकृतःकृतार्थः २४ जन्मभूमिश्चमेगंगापारदेशेविशेषतः हर्दोई
मंडलाधीनेप्रविभागेवृहत्तमे २५ साकेतविषयेशाहाबादख्यातेपुरोत्तमे शनिवाजारकेस्थाननो
रातीरेगृहंमम २६ भग्नमंदिरविख्यातशिवालयसमीपगम् वसतिःकान्यकुब्जानांयत्रख्याता

महीतले २७ अभूद्भरद्वाजमहर्षिगोत्रेशुक्लेतिविख्यातकुलेविशुद्धे विद्यावरःश्रीहरिवंशशर्मापस्ये ष्टदेवःखलुसिंहथाना २८ वेणीरामइतिप्रोक्तःपुत्रस्तद्गुणसन्निभःतस्यपुत्रास्त्रयोजातास्तेचधर्मविशा रदाः २९ ज्येष्ठःठाकुरनाथस्तुगंगारामश्चमध्यमः चोक्षेलालइतिप्रोक्तःकनिष्ठोमत्पिताचसः ३० कूपारामादिपूर्तानांनिर्मातामध्यमोधनी प्रातिभाव्यकरश्चासीत्प्रत्यर्थीनांचराजनि ३१ दुर्गाप्र सादशर्माऽहंमर्यादाप्रियसत्तमः वाल्यादेवत्यजन्देशंविचरन्नर्गलेपुरे ३२ आगराइतिविख्यातेपट्टन प्रवरेस्थितः अत्रासीनोहादिस्थांतुमर्यादापरिपाटिकाम् ३३ कृतवान्सुखवोधायसज्जनानांचप्रीतये धर्मार्थसुखमोक्षाणांमर्यादायाःप्रवृद्धये ३४ ॥

मुंशी नवलकिशोर के छापेखाने में छपी मार्च सन् १८८८ ई० ।

इस पुस्तक को पण्डित रामबिहारी व पण्डित वदीदीन ने शुद्ध किया ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	अष्टा	ष्टा.	३७	३०	त्रिप्येतेषु	त्रिवेतेषु
२	२०	अवराथः	अचराथः	३८	३	याग्य	योग्य
४	१८	जमसूतक	जन्मसूतक	३८	२५	शुद्दोक्रिया	दोशुद्धक्रिया
७	२२	दक्षिणाग्निजन्म	दक्षिणाग्निका जन्म	३८	२६	वडागढिरा)	वड़ाठढिरा)
८	२४	मुर्दालेजायॅ	मुर्दा न लेजायॅ	३९	१४	न्मृतत्वयसूत	न्मृतकेत्वयसूत
९	७	त्रिरात्रि	त्रिरात्र	३९	१७	नकरै--परंतु =	नकरै=परंतु——
९	१०	दिमुखाः	दिङ्मुखाः	४०	१२	यमिश्रेपे	यमिश्रेये
१०	३	नोद्वुपर्ययु	नोदुघपर्ययु	४०	१७	श्रेपादद्या	श्रेपान्दद्या
१०	१४	प्रयात्र	पूर्वान्न प्र	४०	२०	श्रेपरहै	श्रेपरहैं
११	३	पाचमेअधिकोक्तिमें	पाचमेकोअधिकोक्तिमें	४१	२१	मिताक्षराका	मिताक्षराकार
१३	२६	अगिरा	अगिराः	४१	२३	गर्भस्तुत्या	गर्भस्त्यां
१३	२७	शौव	शौच	४२	१८	गर्भकेगस्नेमें	गर्भकेगिरनेमें
१६	७	मांस	मास	४२	२१	अचतुर्था	आचतुर्था
१६	२०	गर्हभिया	गर्हाभया	४३	२४	सूतकाद्योधि	सूतकाद्योभि
२०	२८	कास्थिरत्व	काश्यस्थिरत्व	४४	२	शौचकापेध	शौचकानिपेध
२१	२७	तिनका	तिनको	४५	२	अग्निहोत्रार्थं	अग्निहोत्रार्थं
२३	३	त्रिवृंत्यापि	त्रिवृत्यापि	४५	६	जवताजो	जवताओ
२३	३	पित्रुदा	पितृपा	४५	७	तवताजी	तवताओ
२३	१२	मातापितारिति	मातापित्रोरिति	४५	९	रात्रिभिर्मासितु	रात्रिभिर्मासतुल्यः
२४	२३	पिडपानीय	पिड्पानीय	४५	२६	ह्स्य सतो	हत्यात्ततो
२४	२४	सवकोअर्थात्द्वैवे	अर्थात्सवकोद्वैदैवें	४६	८	त्रिरात्रिमशु	त्रिरात्रमशु
२५	७	अविभक्तिधन	अविभक्तधन	४७	१०	चकिंचि	नचकिंचि
२६	५	पछे.	पोछे	४९	२५	छटेलेकर	छोटेलेकर
२८	१७	यावज्जाव	यावज्जीव	४९	१९	वियोदुधन	वियोदकोदुरंधन
३१	६	मतकरें	मतकमे	५६	१३	भवेत्येव	भवत्येव
३१	९ १०	भोक्तुर्देप	भोक्तुर्दीप	५७	१३	धारना	धराना
३१	१८	सिद्धिकिये	सिद्धकिये	५७	१९	दातजाम्मि	दातजम्मि
३२	२६	बहुत॥काल	बहुतकाल	५९	१७	विशोधनम्	विशोधनम्
३६	२८	†	†	६०	१०	य-वै	यानैव
३७	१५	पुत्रवती	पुत्रवतीं	६१	१७	परानर	पयश्व
३७	१८	सस्पर्शेन निपिध्यते	सस्पर्शान्निपिध्यते	६२	६	अविगीत	अविगीत
३७	१८	सस्पर्शसूतिकायास्तु	सस्पर्शसूतिकायास्तु	६२	२१	सामी	सासत्र
३७	२४	द्विजाश्चाद्रायण	द्विजश्चान्द्रायण	६३	४	अस्नायन.	आस्नायन

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धाशुद्धपत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	५	दानध्ययने	दानाध्ययने	९६	१४	तातवरक्ता	तातवरक्त
६३	१०	निवहिचले	निर्वाहचले	९६	१४	तयौपधी	तयौपधीः
६३	१४	दानध्ययने	दानाध्ययने	९७	७	योग्यहै	योग्यहैं
६३	१८	होतीवहा	होतीवहो	९७	८	पतनोया	पतनोय
६३	२०	चिराचिमाहु	चिराचमाहु	९८	४	श्चविष्ठाया	श्वविष्ठाया
६४	५	पचियो	पचियों	१००	१४	विपणि दुकान ,	विपणिदुकान.
६६	२१	शुद्धास्यु	शुद्धा स्यु	१००	१४ १५	दुकानखेतो	दुकान खेतो
६७	९	पिद्यल	पिछले	१००	२२	दुरैत	दुरैत्
६९	११	कृच्छ्र पादो	कृच्छ्रपादो	१००	२३	कुटुम्वच	कुटुम्वच
६९	१२ १३	कृच्छ्रचान्द्रायणव्रत	कृच्छ्रनामकव्रत	१०१	१३	यस्यगाच	यस्यरात्र
७३	१०	पुरोस्ति	पुरोहित	१०१	१४	तद्राष्ट्रन्दु	तद्राष्ट्रन्दु
७५	१०	क्रतुस्मरण	क्रतुस्मरण	१०३	१५ १६	नग्नोश्चैवावि	नग्नोश्चैवावि
७६	१३	यन्द्कउपल	यन्दकेउपल	१०४	१२	होसके	होसकै
८१	५	स्नायात्सस्पृष्ट	स्नायात्सस्पृष्ट	१०५	१५	वानाप्रस्थ	वानप्रस्थ
८३	१५	श्वानम्वपाक	श्वानश्वपाक	१०५	१६	पितृ देवा	पितॄन्देवा
८३	२६	स्पृस्द्वा	स्पृष्ट्वा	१०५	२०	करताहै	करतारहै
८३	२६	छुवेचढा	छुईचढो	१०५	२०	भीकरता	भीकरतारहै
८५	२२	भासवायसमाचारि	भासवायसमाचार	१०६	२०	विल्कुल	विल्कुल्ल
८६	७	करौमुत्का	करौमुत्तवा	१०८	१३	यद्वाग्निसे	यद्वाअग्निसे
८६	१२	करौमुत्का	करौमुत्तवा	१०८	१८	फलौकोमीगसे	फलौकोमीगसे
८७	१६	पकोईट	पक्कोईट	१०८	२०	वाऽनिवागते	वाऽहनिवागते
८७	२८	प्रचालित	प्रचालित	१०९	२	सप्रदैसे	सप्रपदैसे
८८	२६	तोसरावहभी	तीसरावहभी	१०९	१०	पुरपुर	पुरंपुर
८९	४	स्पृस्यमानव'	स्पृश्यमानव.	१०९	३०	हृत्यशक्तित:	हृत्यशक्तित:
८९	१०	कृच्छ्रचान्द्रायण	कृच्छ्रप्राजापत्यआदि	११०	२	विकल्पं	विकल्प
९३	२१	निर्वाहकरै	निर्वाहकरै	११०	२९ ३०	भोजोवस्त्र	भोजावस्त्र
९३	२२	होनयर्णका	हीनवर्णको	१११	१५	उम्रे	उसे
९४	१६	नीचकेद्रोकर्म	नीचकेद्रोकर्म	१११	२०	प्राणायात्रा	प्राणयात्रा
९४	१६	कर्मोको	उनकर्मोको	११२	१०	आपित	आरोपित
९५	२३	जोवन	जीवन्	११२	२४	मौनसाधे	मौनसाधे
९४	३०	यकर	सकर	११२	२८	मूलश्लोकोंमें	मूलश्लोकमें
९६	११	सोर्यानि	ओर्यानि	११३	२८	हमाप्रस्थान	महाप्रस्थान
९६	११	वदरेंगुदेः	वदरेंगुदे	११५	२५	(की)	(कि)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११६	५	मोटेमुड़े	मोटेगुद्दे	१४६	१४	सवारी	चराचरसवारी
११६	२०	यह्वस्थो	गृहस्थो	१४६	१०	गर्भमें	वृक्षादिकस्थावर या
१२१	२	तर्कनाकरनो ′	तर्क न करनो				नरादिक जंगम देहोंके
१२१	२५	भर अन्यथा	भारद्विअन्यथा				गर्भमें
१२१	२५	विरोधापाति	विरोधापत्ति	१४८	१०	कहाआते	कहाँसे आते
१२२	११	वनिपर	वनिपरै	१४८	२१	याकपसमर्थः	याकर्तु समर्थः
१२२	३०	मान्यैरत्त	मान्यैरत्तं	१४९	२	महापच	पचमहा
१२३	२२	ब्राह्मण प्रव्रजति	ब्राह्मणः प्रव्रजति	१४९	०	ग्रन्थ	ग्रन्थि
१२४	२५	ति॰ ड	तीनदंड	१४९	२२	इद्रियादि	इन्द्रियादि
१२५	२०	प्रजापत्ये	प्राजापत्ये	१५३	११	परिभाया	परिभाषा
१२४	२६	वैणवाद	वैणवानुद	१५३	१२	विचक्तता	विविक्तता
१२४	२६	प्रमाणद	प्रमाणानुद	१५३	१०	गणवेदिभिः	गुणवेदिभिः
१२५	२१	ग्रच मुनि.	श्चरेन्मुनिः	१५३	२२	देसके	देखसके
१२५	२८	देवस्थन	देवस्थल	१५४	६	करपिन	कर्पन
१२६	१०	वथामात्रः	कंथामात्रः	१५४	४	उसेदेवै	उसैदेवै
१२८	२१	महागाराराय	सप्तागाराण्य	१५५	२०	इडफूटन	इडफूनि
१३१	२	पर॰च	परञ्च	१५७	५	योमिरूपी	योनिरूपी
१३१	०	गार्वावियोभि	पौर्वावियोभि	१५०	०	उधर	उद्धृत
१३१	०	रन्येरगार	रन्यैरगार	१५०	११	ठोकथ्योरा	ठोकथ्यौरा
१३१	२४	घर्षणाम्दृ०	घर्षणम्	१५८	२	सातापुत्र	मातापुत्र
१३३	५	समष्टु	समुष्ट	१६६	८	शृंगार	शृंगाटक
१३३	१६	राग	राग	१६८	२	नहीकहे	नहींकहेंगे
१३४	४	चतुष्ठ्य	चतुष्टय	१७५	२३ २४	दोपक	दोपक
१३४	११	धारणआदि	धारणाआदि	१७७	१६	चनवहै	चनन्तहै
१३८	१	यव	यतन	१७७	२२	सधोना	सधीना
१३९	१०	मैकुछमहो	मैकुछभेदनहीं	१७८	८	चालीसऔर इक	चालीस और एक
१४१	१०	आकीर्यो	आकार्यो			तालिस	इकतालिस
१४१	१६	दृष्टिजमाचाहरे	दृष्टिजमायाचाहरे	१८८	१४	मूड-में	मूड
१४१	२५	वपपा	वपुपा	१८८	१०	पाद	पाच
१४३	६	सकास	सकाश	१८८	२६	कातर	कालांतर
१३३	२४	प्रलोकदेखो	परिछेदविचारो	१७६	२४	निजठिकाने	निजनिजठिकाने
१४४	८	मूलश्लोको	मूलश्लोक को	१८०	३	स्वेदयपण	स्वेदसयण
१४५	२१	प्रेरक को	प्रेरक को,	१८१	१४	इससब	इन सब

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८१	२२	मैत्र्यादित्यसे	मैत्र्यादित्यसे	२२६	२२	है तिसे	हैतिसे
१८३	११	पहूच	पहुच	२२६	२४	वाग्रन्दसैके	वाग्रब्द्के
१८३	२१	अगभूति	अगभूत	२३०	१२	परमेश्वर	परमेश्वरने
१८३	२९	मजीरा	मंजीरा	२३०	२१	नामहो कभी	नामहैजोकभी
१८७	३	सन्तर्प्य	सन्तर्प्य	२३१	४	इकार	इन्कार
१८८	३०	करना ऊर्ध्वोक्त	करना)ऊर्ध्वोक्त	२३१	१६	मेवतु:	मेवतु
१९०	२१	समवाय:	समवाय)	२३१	२७	येकोई	जेकोई
१९१	५	स्वभावहोसे	स्वभावहोसे	२३२	८	ततस्मात्	ततस्तात्
१९१	१६	बिगडतेहुये	बिगड़तेहुये	२=२	२३	स्वर्गजितो	स्वर्गजिता
१९१	२४	परिच्छेद: ॥	परिच्छेद: ॥ १४ ॥	२३६	२७	किजिसे	किजिससे
१९२	४	(व: युष्मान्प्रति	(वः युष्मान्प्रति)	२३७	३०	यागसाधना	योगसाधना
१९४	२७	खोटे	खोटे	२४४	७	मनुष्योतर	मनुष्येतर
१९६	२०	ज्यातिष्टोम	ज्योतिष्टोम	२४६	१६	कुडासो	कु डाशो
१९८	२४	आतोहैं जव	घातोहैं कि जव	२४८	२	वनर:	वानर:
२०१	७	जानौं	जानौ	२४८	२	न्माजरि:	न्मार्जार:
२०१	१५	जानौं	जानौ	२४८	२	खद्योत:	खद्योत:
२०५	३	उत्पन्नभुई	उत्पन्न भई	२४८	६	गवना:	गमना:
२०५	४	होय)	होयँ)	२४८	१८	कन्यादूप	कन्यादूपक
२०७	१८	वयसवाले	वयस्वाले	२५०	४	निरार्य:	निर्णय:
२१०	२६	भवेत)	भवेत्)	२५०	२७	करनेवाल	करनेवाले
२१२	३१४	योगनिलाप	योगमिलाप	२५१	१३	पर्पां के	पापांके
२१६	१४	रचौ तिनमें	रचीं तिनमें	२५२	२३	त्रि दितस्य	त्रि दितस्य च
२१६	१४	विद्वान	विद्वान्	२५३	२६	कहतोहै	कहातोहै
२१६	२१	हैअर्थात	हैं अर्थात्	२५४	१०	वाक्यात	वाक्यातर
२१७	१२	ये मुनीश्वरौ	समनीश्वरौ	२५४	२१	नत्रार	नात्र:
२१७	१३	जानौं	जानौ	२५५	१३	अग्रुभनाति	अशुभनाति
२१७	१३	समझे	समुझे	२५५	२२	देखाहुआ	काटाहुआ
२१७	१८	मत्यजानौं	सत्यजानौ	२५६	५	प्रायश्चित्तो	प्रायश्चित्तो
२१८	२२	दखिपरते	देखिपरते	२५६	७	लियेठचित	लियेउचित
२२२	२१	अपतक	अवतकनहीं	२६०	५	स्वजानात्	स्वज्ञानात्
२२३	२६	वन्धतन्मात्र	गधतन्मात्र	२६०	८	व्रतसाधे	व्रतसाधे
२२४	१५	येश्रोता,	अयेश्रोता	२६०	२५	फलभो	फलभी
२२७	२	जानै।	जानौ	६१	८	नेष्टम	नेष्टवा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६१	२६	नहींदिखोगई	नहींदिखोगई
२६२	१०	सोपतितात्याग	मोपतितात्याज्य
२६२	२५ २६	समार	ससारी
२६२	३०	जाराद्वो	जारीद्वो
२६४	१५	उसेकहते	उसैकहने
२६४	१०	इतन	इतने
२६५	७	कहतादै	कहाताहै
२६६	१०	वनसेउसे	वलसेउसे
२६७	८	पराधी	अपराधी
२६७	८	अर्यात्	अर्थात्
२६७	१५	पिप्रयोजित	विप्रयोजित.
२६७	२६	न्याय	न्याय =
२६९	१४	अनुमन	अनुमनन
२६९	२४	ढकहुवे	ढकेहुये
२६९	२६	कारणकोठोक	कारणकोठीक
२६९	२७	उसककार्य	उसकेकार्य
२६९	३०	व्यभिचारसे	व्यभिचारसे
२७०	५	किसीडुबना	किसीकाडूबना
२७०	१३	ओपध	औषध
२७०	१४	ठप	रुप
२७०	२०	तर्हीभा	तहाभी
२७०	२६	अकाररातु	अकारणातु
२७२	८	वेदों का	वेदों को
२७२	१०	भिग्रमन	भिग्रमन
२७३	४	पातका	पातको
२७४	२६	सिद्धि	सिद्ध
२७४	२७	अग्निकोतुझे	अग्निकोतुके
२७५	१३	तोहैगुण	तोहु गुण
२७५	६	मिलना	मिलाना
२७५	२०	किसीयेद्दी	किसीकोयेही
२७८	१२	कामाखनु	कामास्वनु
२७७	२२	पायश्चित	प्रायश्चित
२७७	२६	प्रश्नोनुता	प्रश्नोझभता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७७	२७	पढवेदका	पढे वेदका
२७९	२	शिष्यकोस्त्रोच,हिन	शिष्यकोस्त्री० चहिन
२८०	११	मेपातकोंका	मेपातकोंका दोभातिसे
२८०	२४	लेभागे	लेभागी
२८१	११	क्योंजो	क्योंजो
२८२	१८	मल कर्मे	मूनरलोकमे
२८२	२८	यानिविगाना	योनिविगाडना
२८५	१०	नहै	नहीं है
२८५	१४	होतोहैं)	होतोहैं(औरवेभीअस तुपास्त्र है किजिनमेअ भिचार व्यभिचारो को शिखाहो)
२८५	२०	जातिभ्रन्य	जातिभ्रष्ट
२८६	११	पाध्य	पाध्याय
२८६	२१	पितृया	पितृगा
२८६	२३	अन्यकराणि	अयकराणि
२८६	३०	मिकुठ्ठनोचे	सेकुठ्ठनोचे
२८७	१५	अपनेधरो	अपनेकोधरो
२८६	२८	वचनप्रभाव	वचनके प्रभाव
२९०	१०	बहुतसेनाभेद	बहुतने नामभेद
२९०	१४	आवेगी	आवेगी
२९०	२२	भिखामी	भिखायी
२९१	१५	गौतमनेउन्हींगौतमने	उन्हींगौतमने
२९१	२५	उनके पत्नी	उनके पत्नी
२९२	८	निव क्षकरे	निर्वाहकरे
२९२	८	प्रविष्ठिस्य	प्रविशेत्स
२९२	२१	खड्गगपाणिर्द्वादश	खड्गगपाणिर्द्वादश
२९३	१४	नित्यप्रति	नित्यप्रति
२९४	६	प्रकृतियार्ता	प्रकृतवार्ता
२९५	३ १	भौ न है	भोनहीं है
२९६	१०	पायागया	पायागया
२९७	३	ढोगुना	ढोगुना
२९८	२३	कदाचिन	कदाचित्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९९	१०	हुये को	हुयेको
२९९	१०	करता है	करताहै
३००	८	बताने	बतावे
३०१	२५	नपुन:सर्वं	नपुन सर्वा
३०२	२६	योग्यपात्रोंका	योग्यपात्रोंको
३०४	११	साधना ऋ	साधनाकी ऋ
३०४	१०	कियाजा	कियाजाय
३०५	२४	अब्राह्मणस्तु	अब्राह्मणास्तु
३०५	२४	अद्योराजभृत	आद्योराजभृत
३०६	८	श्रोत्रिय वा	श्रोत्रिय वा
३०६	६	दुच्छासा	दुच्छासा
३०६	१३	करे	करै
३०६	२४	पावै०	कितपसेछुटकारापावै
३०७	६	सममब्राह्म	सममब्राह्म
३०७	२३	नहोसके	नहोसकै
३१०	२	अश्वमेधमेंभीअव	अश्वमेधमेंअव
३११	१०	भृत	भृथ
३१२	८	करनासबदशामें	करनाकष्टाउनसबदशाओंमे
३१२	९, १०	–योग्यहै कि	योग्यहै कि–
३१४	४	चतमस्त्वे	चत-मस्त्वे
३१४	१२	प्रकार स	प्रकार से
३१६	१२	स्नायुनि	स्नायूनि
३१६	१२	स्नायुभि	स्नायुभि
३१७	६	अदेय	आदेय
३१८	६	कशिरा:	कशिरा:
३१८	२६	बैठे	बैठै
३१९	१४	वाचित्रुता	वाचियुता
३१९	२१	हरकाई	हरकोई
३१९	२८	सुद्विहोतेहैं	युद्धहोते हैं
३१९	३०	अश्वमेधक	अश्वमेधका
३२०	१०	तर्कभी	यद्दतर्कभी
३२१	३	स्वतीम	स्वतीम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२१	१६	ब्राह्मात्मक	ब्राह्मणात्मक
३२२	३	ब्रह्ममात्रा	ब्रह्मयात्रा
३२२	१७, १८	ताग्नेधर्म:	ताग्नेधंर्म:
३२२	२	द्योपद्वस्तु	द्योपपद्वस्तु
३२३	१०	घातककरै	घातकहोय
३२३	१२	चत्रीभूता	छत्रीभूता
३२६	२२	य यती	या यती
३३१	५	सवमस्था	सवनस्था
३३२	५	घातर्थं	घातार्थं
३३२	१६	ब्राह्मण	नाह्मण
३३३	६	मुख्यनिय	मुख्यनियम
३३४	८	मरणच्छुद्धि	मरणाच्छुद्धि
३३५	२५	मद्यांकी	मद्योंकी
३३६	३०	ठह्दा	ठहिरा
३३७	२०	मात्रवच्छेन	मात्रावच्छेदेन
३३८	८	हविर्निहूयं	हविर्निरुप्य
३३८	२६	देवना	देवाना
३३९	५	हठै फिरैं	हठैफिरैं
३३९	१५	दातव्य	दातव्य:
३३९	२१	कुयान्माता	कुर्यान्माता
३४०	३	चैनौ	चैनो
३४०	२०	कर्याान्वापि	कर्यान्वापि
३४०	२०	भचयेत्रि	भचयेत्त्रि
३४२	१०	करै या	करैया
३४२	१०	पीवै या	पिवैया
३४२	१८	चौथेका	चौथेकाल
३४२	२	थोडभोजन	थोडाभोजन
३४३	१५	पिण्याकया	पिण्याकया
३४३	१६	पचोहुई	पहुचोहुई
३४५	१३	सुराकेभाड	सुराकेभाड
३४५	२६	ग्रन्थकर	ग्रगकर
३५१	२४	मर्पयेत	मर्पयेत्
३५२	१६	वालाछिटकाय	वालछिटकाय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५३	१२	मरणाज्जीव	मरणावजीव
३५३	१०	कोईजातिषर्ण	कोईहोजातिवर्ण
३५४	७	न मारे	नमारै
३५४	६	देखे	देखो
३५४	२२	होवेहो	हो वेहो
३५५	६	राजासकृद्दन्या	राजासकृदुन्या
३५५	६	और कि	औरहै कि
३५५	२०	लिक्ष्या	लिखा
३५६	२	जहाकहो	जहाकहीं
३५६	६	नहोहोती	नहींहोता
३५६	१६	दण्डुहो	दड ज्ञु
३५६	१०	सावधानड	सावधान हो
३५६	२५	काभिधान	का विधान
३५६	२६	लिच्चामात्रे	लिखामात्रे
३५६	३०	साविचा	साविर्त्री
३५७	२	प्रायश्चित	प्रायश्चित्तं
३५७	५	ब्रह्महाव्रत	ब्रह्मह्वव्रतम्
३५७	५	इदच	इदच
३५८	३	हर्चादेय	हर्त्ता देय
३५८	१३	औदुम्बरताम्रमय शस्त्र मितिमिताचारा	तत्रगुलिकामयमाग्नेय शस्त्रमिति मर्यादाप्रिय विचार (तुपचाइतिभा पाया,उडुवरफलसदृश गुलिकाया सयोगात्—
३५८	१८	गोयमाग्नि	गोमयाग्नि
३५९	२	मुवर्णपद्दा	सुवर्णपद्दा
३६०	५	नहींसभव	नहींसभव
३६०	२४	इदमनसापाप	मनसापाप
३६१	५	मुवण	सुवर्ण
३६१	६	पुरुपव	पुरुप
३६१	७	अयद्दा	अथवा
३६१	८	वार दर्प	वारहवर्ष
३६०	१६	गुरुषोमातृ	गुरुयोमातृ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६०	१९	उदरपूर्ण	उदरपूर्णा
३६०	२०	इसीमान्यता	इसीसेमान्यता
३६८	२४	ञालकर्ण	जातूकर्ण
३६८	३०	कार्योंसेमाफ	कार्योंसे सवर्तनेसाफ
३६९	१८	नहीं अत्रोक्त	नहीं ॥ ० ॥ अत्रोक्त
३६९	२०	वहीदोनो	वहीदोनों
३७०	२	जननी	जननीं
३७३	१०	सुनो	सुनौ
३७३	१०	फौरचो	और जो
३७३	१८	करावस्मृति	कण्वस्मृति
३७५	१०	लि खिचुके	लिखिचुकेतहा३६६पृष्ठ कोपचोसवींपंक्तिसे देखो ॥ ० ॥
३७५	१०	ब्राह्मणीका	ब्राह्मणीका
३७५	२०	दिनसेरहे	दिनशेपरहे
३७५	२६	जातूकर्ण	जातूकर्ण:
३७६	५	कहिचुके	कहिचुकेहैंतीनसौतिह त्तरिपृष्ठमें दूसरीपंक्तिसे पचीसवींतकदेखो
३७६	२०	यहनहींतो	यहनहींतो
३७६	२०	वचनदूढो	वचनढूंढोतीनसौचौह त्तरि३७४ पृष्ठमेंसातवीं पंक्तिसे चौदहवीं तक देखो
३७६	२६	त्रिपवर्षा	त्रिपक्षो
३८८	६	मास परेत्	मासचरेत्
३८६	१२	हसगौ	हंसगौ
३८६	२०	ससृज्यते	मस्त्येत
३८६	१५	शयनैर्यानस्त्रो	शयनैर्यानथौव
३९०	६	भोजनाप्न	भोजनासन
३९२	२	मद्दवा	मन्दवा
३९२	२	दुहूषे	दूर्वे
३९२	१३	कार्श्चादयें	करैचादयें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०१	१८	कुल	कुल्ल	४३१	२६	श्रुणोऽपिच	श्रणोऽपिच
४०२	११	लेकर २४३	लेकर २४२	४३१	३०	चाद्वियेयविसको	चाद्वियेयाजिसको
४०३	२०	गौयें	गौएँ	४३३	१४	टचितहोंगी	उचितहोंगी
४१०	२२	कामारतुद्विगु	कामातुद्विगु	४३३	२५	श्रवकीर्ण	श्रवकीर्णि
४१०	३०	द्वचत में	द्विचत्तमें	४३५	१३	करना और	करना
४११	७	अविसृज्ञानौ	अविसृद्धज्ञानौ	४३६	१०	सथिकं	मथिखं
४१५	३०	सातिव	सावित	४३८	१९	जानेहुयेथे	जानेहुयेथे
४१६	५	भिइनना	भिइंनना	४३८	२६	आकर्पणसे	आकर्षसे
४१६	११	अधि	अधिक	४३९	२	गुरुकठ	गुरुकठो
४१६	२०	किन्तुइन्हीं	किन्तुउन्हीं	४३९	५	स्तेयोउपपा	स्तेयोपपा
४१६	२४	कृच्छ्रप्रादो	कृच्छ्रपादो	४४०	५	अठगुण	अठगुणा
४१८	३	दैवाद्ध्या	दैवात्‌ध्या	४४१	८	विपसमुभान	विपयसमुभाना
४१९	२४	तद्व यवहित	तद्व्यवहित	४४२	५	कृच्छ्रऔरअतिकृच्छ्र	कृच्छ्रातिकृच्छ्र
४२०	६	पैद्राकिजैपा	पैद्राकियाकिजैपा	५४२	१०	तापवाद	तापवाद:
४२०	१६	कहिचुके	कहिचुके	४४२	२०	हरेका	होरेका
४२०	१०	कलाके	कलाकि	४४३	२६	तत्रिगुण	तत्त्रिगुण
४२०	२०	मौटनै	मोटनै	४४४	०	व्यपहारि	व्यपहारे
४२३	०	योक्तत्र	योक्त	४४५	२	अनाहितग्नितानिता	अनाहिताग्निता
४२५	२	वर्तासे	वर्ताविसे	४४५	०	अधिकारसो	अधिकारहोसो
४२५	२१	कारणं	कार्यं	४४६	१८	प्रवृत	प्रवृत्ति
४२६	१६	कुर्गे:कांगे:	कुर्गे:कार्गे:	४४७	४	वाससामान्य	वाससामन्य
४२६	१०	वनोरम्मसे	वनोरम्सोसे	४४७	१२	यज्ञोज	यकचोज
४२६	२०	जंजेरेके	जंजेरेके	४४७	१८	पुणय०मुकम	पुण्यमुकर्म
४२७	९	दुहिते	दुहने	४४७	२०	हजार मंत्र	हजार ओंकारमंत्र
४२७	१९	स्माच्छ्वापदे	स्माच्छ्वापदे	४४७	२३	मोलवस्तु	मोलको वस्तु
४२७	२४	लुनेमरी	लूनेमरी	४४७	२४	इसप्रकार	इसीप्रकार
४२८	३	अपालत्वान	अपालत्वात्	४५०	३	अधिकारवे	अधिकार है
४२९	५	गुवावे	खवावै	४५१	१२	तिसे	तिसे
४२९	८	धारिचाडि	धारिचाडि	४५१	१३	जेठोछोटो	जेठोको छोटो
४२९	१४	गौयँ	गौएँ	४५०	२०	तादृश्यायेव	तादृश्याएव
४२९	१५	मरजायेंयहां	मरजायें,यहां	४५३	२४	का दारामे	को दारामें
४३०	२	दतस्मगायां	दंतधंगायां	४५६	१६।१०	कृच्छ्रोनिवृत धर्मकर्म	कृच्छ्रोऽनिवृत्तधर्मकर्म
४३०	२०	नैरयेऽधपद	नैरयेऽधंपाद			योति (कृच्छ्रइति	यो,तिकृच्छ्रइति

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१०	०	तच्चो	तच्चां	५५०	१६	ध्यानकरो	ध्यानकरौ
५१०	१८	तभीक्रीड़	तभीक्रीड़े	५५१	३०	कह्नोवे	कर्ह्योवे
५१८	१३	देये	देवे	५५३	२	अथयाज्य	अथअयाज्य
५१८	१३	गिरावे	गिरावै	५५३	२३	साप्राजापत्य	सप्राजापत्य
५१८	२६	मान	माना	५५४	१५	मंत्यमैत्य	मंत्यक्रमैत्य
५२२	६	ब्रह्मचार्यादिनां	ब्रह्मचर्यादीनां	५६०	८	सर्पस्यनकुल	सर्पस्यनकुल
५२२	१५	आश्रय	आश्रम	५५६	०	तड़ागाराम	तड़ागाऽऽराम
५२२	२५	परागया	धरागया	५६२	१६	ब्रह्मोज्झता	ब्रह्मोज्झिता
५२३	४	मोक्षवकोर्वे	मोक्षवकीर्यो	५६३	१२	तिलकेसातमा	तिलकोसातमा
५२३	२०	होमतो	होमतो	५६३	३०	करे	करै
५२३	३०	देवताम्य:	देवताभ्य:	५६५	१२	स्त्रीहिंसाविभिर्जीवन	स्त्रीहिंसादिभिर्जीवन
५२४	३	मंत्रमेलिखिदिये	मन्त्रमैंनेलिखिदिये	५६५	१४	च्छेद.(श्च	च्छेदः)श्च
५२४	३	शखलिखितौ	शंखलिखितौ	५६६	३	पट	पट्
५२६	१०	चांद्रायण	चांद्रायणे	५६०	१६	नचत्रा	नक्षत्र
५३६	१४	योच्छिष्टभोजनीयं	याच्छिष्टभोजनीयं	५६०	१६	दृशार्थं	दशार्थं
५३८	२	माहुतिर्जुह्वी	माहुतीर्जुह्वी	५६८	२५	ब्राह्मजीवी	ब्रह्मजीवी
५३८	२१	हिन्मा	हिंमा	५६८	३०	नर्ह्योंकितव	नर्ह्योऽकितक
५३६	२	हिन्मा	हिंमा	५६६	१६	लेलने	लेलेने
५४०	११	कर्तासमाभूतवादीको	कर्ताकोसमाभूतवादीसे	५७०	१३	मर्थपरावे	मर्यापरावे
५४३	२०	मपंत्यानां	मपांत्यानां	५७०	१५	भ्यांविहरत	भ्यांविरहंत
५४३	२०	मपतये	मपांतवे	५७०	१८	परांमुख	पराङ्मुख
५४४	२	छठेदिन	छठेकालकितु रात्रिम-	५७३	१२	ममाचरी	ममाचरे
			मयतोमेरेदिन	५७४	४	विरोधयां	= विरोधयां
५४५	२५	तानिवर्षे	तीनवर्ष	५७४	१५	येखी	देखी
५४५	२६	केसगमार	केसगमवर	५७४	१०	अन्यों	अर्थों
५४६	१६	गुद्धयतो	शुद्धयतो	५७४	२४	अत्यात्	अर्थात्
५४६	२१	गुद्दमाप्नो	शुद्धमाप्नो	५७५	१२	लैगाचि	लोगाचि
५४६	२८	गुद्दको	शुद्धिको	५७८	२६	नित्यपति	नित्यप्रति
५४०	८	पात्रयाप्तया	अभियातया	५७६	८	रेष्या	रेष्मा
५५८	११	पिनायता	प्रमापिता	५८०	२०	लेउन्हें	लेयने
५४६	१४	रजन्वलाप्नो	रजस्वगाप्नो	५८०	२८	प्रासंगिको	प्रासंगिको
५५०	१२	रमपिक्रय	रमपरिच्छेदमेंकुल वि-	५८१	२०	समुभ्को	समुभी
			क्रय	५८२	६	पत्रांट्टादि	पत्नाद्वादि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			स्वत प्राप्तहोसोखाइके				नेहोदिनों तक उत्तम
			स्थंडिलपरसोवै				प्यारोत्र रीत जिमावै
८३८	१६	चैवाघंमर्पणम्	चैवाघमर्पणम्				दृष्टांतजैसे चांद्रायण में
८३९	१९	छुल्कारा	छुटकारा				तीसदिनतक चौबीस
८३९	२०	जुहुयाद्याहृती.	जुहुयात्व्याहृती				ब्राह्मण॥०।
८४४	२२	अनादिष्टपापौ	आदिष्टपापौ	९६२	१९	नेसमुझाया ॥	नेसमुझाया- परन्तुजैसा
८४५	६	त्यादिभि०	त्यादिभि.				अतिनिर्धन को प्राजाप
८४८	२३	एकानिटक	एकानिष्क				त्यके बदलेबारहब्राह्मण
८५२	२५	सातसाढे	साढेसात				कहेतैसाअन्यव्रतोंके उ-
८५२	२६	उनकमूल्य	उनकेमूल्य				परलेहिसाबसे किस ने
८५५	२५	तीनदिनकारा	तीनदिनकोरा				हिंसके उतनेउनमें भी
८५६	२	बारहदिनको	पूरेबारहदिनको				निजनिजलेखे से इन्हीं
८५८	२८	जुदेरहो	जुदेजुदेहो				बारहकेअनुरूप समुझि
८५६	२३	कर्मीवेथो	कर्मीनेथो				लेना ॥०॥
८६०	२६	च्छ्रान्द	च्छ्राब्द।	९८२	२०	स्थानभूत	स्थानीभूत
९६२	११	समुझलेना	समुझलेनाअर्थात्जिस	९६३	४	औरजो	और जो
			व्रतकोसाधना जितने	९६३	५	बिल्कुल	बिल्कुल
			दिनहोतीहोउसमेंउत	९६४	२५	प्राप्नोतु	प्राप्नोति

इति

—※—

नामकिताब

पद्यसंग्रह

(व)

वृहज्जातक
वृहत्संहिता
विनयपत्रिका मूल व
टीका सहित
व्रजविलास
व्रजविलासमारावली
व्रह्मोत्तरखण्ड
विष्णुपुराणभाषा
वाराहपुराण
वीजककबीरदास
वीजगणितदोभाग
वैतालपच्चीसी
वकावलीसुमन
वैद्यजीवन
वैद्यमनोत्सव
वैद्यप्रिया
बालशिक्षा दो भाग

(भ)

भक्तमाल
भविष्यपुराण
भोजप्रबन्धसार
भाषाव्याकरण
भाषातत्त्वदीपिकाव्या०
भूगोलतत्त्व
भाषाचन्द्रोदय
भूगोलवर्णन

(म)

मार्कण्डेयपुराणसटीक
माधवनिदान
मुहूर्तचक्रदीपिका

नामकिताब

मुहूर्तचिन्तामणिसटीक
मुहूर्तमार्तण्डसटीक
मुहूर्तगणपति
मुहूर्तदीपक
महाभारतदर्पण
तथाअलगरउन्नीसोंपर्व
महाभारत सबलसिंह
कीवनाई
मिश्रितमाहात्म्य
मनमोहनी
मनमोहन
महारामायण
मनुस्मृति
मंगलकोष

(य)

याज्ञवल्क्यस्मृति
योगवाशिष्ठ
युगलसंवादबोधप्रकाश
यमुनालहरी
युगलविलास

(र)

रेखागणितदोनोभाग
रघुवंशसंस्कृतवभाषादो
जिल्दोंमें
रामायणमूलतुलसीकृत
मोटेअक्षरोंकी
रामायणतुलसीकृतमूल
छोटे अक्षरों की
तथा मोटे औरचिकने
कागजकी
रामायणतु०कृ०छापाटैप
रामायणतुलसीकृतस०

नामकिताब

रामायण शुकदेवजी की
टीका सहित मै काड
रामायणटीकारामचरण
की मैकाड
रामायणकीमानसप्रचा०
रामायण तुलसीकृतका
शब्दार्थकोष
रामा०तु०कृ०काइतिहास
रामायण तुलसीकृतकी
मानसदीपिका
रामायणकवितावलीतु-
लसीकृतमूलवसटीक
तथा श्रीवैद्यनाथजीकी
टीकासहित
रामायणगीतावलीमूल
तथा सटीक
श्रीमद्वाल्मीकीयरामा-
यणभाषामैकाड
रामचन्द्रिका सटीक
रामायणरामविलास
अद्भुत रामायण
रामायणअध्यात्मविचार
राम विवाहोत्सव
रासलीला
रामगीता
रसचन्द्रोदय व रसवृष्टि
रागप्रकाश
रागसंग्रह
रामिनुसनूकूमीकाइतिहास
रसमञ्जूषा
रसायनप्रकाश
राजनीति

नामकिताब

(ल)

लघुसिद्धांत कौमुदी
लग्नचन्द्रिका
लिपिपुस्तकरसैदन०तक
लिंगपुराण
लोधेश्वरमाहात्म्यउर्दू
व नागरी
लक्ष्मी सरस्वती संवाद
दोनोंभाग

(श)

शार्ङ्गधरभाषाटी०सहित
शिवसहस्रनाम
शनिश्चरकी कथा
शिवविवाहवचनावली
शंकर दिग्विजय
शिवपुराण भाषा
शंकरचरित्रसुधा
शृङ्गारलतिका
शिवसिंहसरोज
शृङ्गारबत्तीसी
शुकबहत्तरी
शिक्षापत्र
शालागीतचन्द्रिका
शकुनौतिभाषा
शिक्षाप्रबन्ध
शिक्षावली
शिशुबोध
शृंगारसुधाकर
शीघ्रबोध
सतसयीसटीकनिहालोलाल कृ०

इत्यादि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६४२	१६	हामरूपी	ह्यासहपी
६४५	२४	प्रतिलोम्या	प्रातिलोम्या
६४६	१६	अघोनी	अधोनी
६४०	२५	से सामन्व	सेनामत्र
६५०	५	प्रतिगृह्यपेत्	प्रतिगृह्यजपेत्
६५०	६	त्रुभि.पाप	त्रुभिःपाव
६५१	१२	देखो । घर	देखो ॥ १ ॥घर
६५२	५	तीनकर्म	तीनकर्म
६५२	१०	चाहै	चाहैं
६५२	२०	सगति	मगति
६५४	१४	चारिणीस्त्री	चारिणीस्त्री
६५४	२०	जिसेकोई	जिसैकोई
६५५	१६	साप	साय
५५५	२६	गृहणायु	गृह्णीयु
६५६	६	पूर्णकुंच	पूर्णकुंभेच
६६०	१२	पर	पर
६६१	५	सहस्र	सहस्रं
६६२	३	क्योंवैसे	क्योंकिवैसे
६६५	२५	निर्माणहुये	निर्माणहुये
६६८	१३	मुक्तोक्त	मुक्तोक्त
६८१	३	क्रियाहो(	क्रियाहोयादिवा अग्नि होत्रीकोपत्नी वधकरी यागर्भिणीके अविज्ञात गर्भकाविनाशकिया हो -अविज्ञातकायहअर्थहै क्रिइसगर्भसे लडकाहो नायालडकीया नपुंसक वैदाहोतायहजौरा जव नक्नसमुझानायतभी तकविनाशकियाहो (आत्रेयीके
६९१	१०	घृताहुतो	घृताहुतौ
६९२	१८	कूष्मापडङ,	कूष्माण्ड

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६०२	२२	ऽन्यत्व०	ऽन्यत्र
६०३	२०	यांशुचदद्य	यांशुचदध
६०४	४	एकमन्व	एकमत्र
६०४	५	जिसमन्व	जिसमत्र
६०४	७	दद्य	दधं
६०४	८	मधी	मधो
६०४	१०	आतिदेशिक	आतिदेशिक
६०४	१२	दद्य	दध
६०४	१३	मन्व	मत्र
६०४	२६	शाकल	स कल
६०६	२१	मनुमे	मनुने
६०७	२३	(पृथकराभि)	पृथकग्भि)
६०८	३०	यकाम	स्यकाम
६०६	२०	जपेद्दारयस्य	जपेद्वाप्यस्य
६०६	३०	कुताप	कुंताप
६८०	२	निविस्त्रै पान्	विस्रैपान्
६८०	५	नि विस्त्रै पान्	निविस्रैपान्
६८२	१५	सर्वोपपात	सर्वोपपात
६८३	४	सृष्टिमें	सृष्टिमे
६८७	३०	यामेध्यप्राश	ज्यामेध्यप्राश
६८३	३०	ऽपरायविक्रये	ऽपण्यविक्रये
६८१	३	द्वादश २	द्वादशद्वादश
६८४	४	द्वादश २	द्वादशद्वादश
६८४	५	द्वादश २	द्वादशद्वादश
६८४	५	द्वादश २	द्वादशद्वादश
६८५	२२	मोजा	मौजा
६८७	२६	अन्यतएव	अन्यतएव
६८६	६	प्रोक्त	चोक्त
६९१	२४	शुद्धिवतो	शुद्ध वतो
६९२	६	घनादिक	धनादिक
६९५	४	वुद्ध	वुद्धि
६९५	७	प्रमाचिनी	प्रमोचिनी
६९६	७	महापापा	महाय पा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६९६	१३	पूतानिपुनति	गोतानिपुनति	७१७	१५	नामसूधेक्रम	नाम॥सूधेक्रम
६९७	४	तिलैर्वाचिन	तिलैर्वाचन	७१८	२२	नमोह्वायेत्यादि	नमोह्मायेत्यादि
६९८	१४	य प्रात स्तिला	य प्रातस्तिला	७१८	२४	त्यंतरोक्तामि	त्यतरोक्तानि
६९८	१०	चौराध्योशेप	चौराध्यौशेप	७१९	१३	को साघना	को साधना
६९९	९	तिससेउसकोचितको	जिससेउसकोचितको	७१९	२१	कालौमैंनैठे	कालौमैंबैठै
६९९	१३	पडासहि	पोडासहि	७२०	२६	प्रतीतहोता	प्रतीतहोताहै
७००	१२	पापउसे	पापउसै	७२१	२१	इनपाचौ	इन पांचौं
७००	२२	रात्रको	रात्रिको	७२२	४	दिनकोरेव्रतको	तीन कोरेव्रतोको
७०१	२८	विवेचनोयाना	विवेचनीयानो	७२२	११	उसनहीं	उसैनहीं
७०३	७	आवै ॥	आवैं॥ ३१२ ॥	७२२	२४	कार्तिथिको	कार्तिथिको
७०३	८	परिच्छेद ३१२	परिच्छेद ॥	७२४	१०	गासभुंजीत	ग्रासभुंजीत
७०४	१९	सूधेस्पस्ट	सूधेस्पष्ट	७२५	१५	विकारेशो	विकारेषो
७०५	१६	कोताडना	कोताडना	७२५	१०	कुक्कुटाडाद्रामिल	कुक्कुटाद्द्रामन
७०६	४	सर्पकापिल	सर्वकापिल	७२५	२६	कृत्यकार्य	कृत्यकार्यं
७०६	२०	कुथलकर	कुथलेकर	७२६	१६	श्रेष्ठजानौ	श्रेष्ठ्नानौ
७०६	२२	ग्रवतो)	ग्रवतो)	७२७	२०	पूर्णमासीपहिले	पूर्णमासीसेपहिले
७०६	२४	वचे	वचै	७३०	२	भुभवेत	भुभवेत्
७०७	२	सञ्ज्ञा	सञ्ज्ञा	७३२	१६	गिननाग्रास	गिनमाग्रास
७०७	५	कोरा	कोरा	७३३	३०	स्नायक्तस्य	स्नानाशक्तस्य
७०७	८	आठो	आठौ	७३४	४	आर्द्रवासा०लघ्वाशी	आर्द्रवासालघ्वाशी
७०७	२६	सान्मपन	सान्तपन	७३४	४	लघ्वाशी +	लघ्वाशी०लघ्वाशी-
७०७	२०	न्यहवे	न्यहवै				इतिचपाठान्तरोभय
७०८	८	दुव्य हम्	दुव्यह				सुदर (अर्थात् न्घाशी
७०८	१३	तिनको	तिनको				पाठहोनेसेजोकुछ ठि-
७०८	२१	कृच्छ्राधं	कृच्छ्रार्ध				कानेपरबैठेआपही आ-
७०९	१०	मासेनक्थित	मासेनकथितः				करमिलैवही भोजनक-
७०९	२०	एकरात्रोप	एकरात्रोप				रै-लघ्वाशीवांहाभोज-
७१४	२	इनदोनों	इनदोनों				नकरै-दोनोंअर्थठीक हैं
७१४	९	पादचरेच्छूद्र	पादचरेच्छूद्र	७३४	८	काहिकरदर्शाया	काहिकरनियम दर्शाया
७१४	९	वैश्यस्यपादयेत्	वैश्यस्यद्रापयेत	७३४	८	भोजनकरिके	भोजनकारके-या-लघा-
७१४	१२	एकपादउसे	एकपादउसै				शी ऐसापाठांतर होने
७१५	९	उसैतिगुना	उसैतिगुना				मे-उसठिकाने रहे जो
७१६	२२	प्रतिलोम्येनवा	प्रातिलोम्येनवा				कुछ अवफनमूलआदि